छावा

शिवाजी सावंत

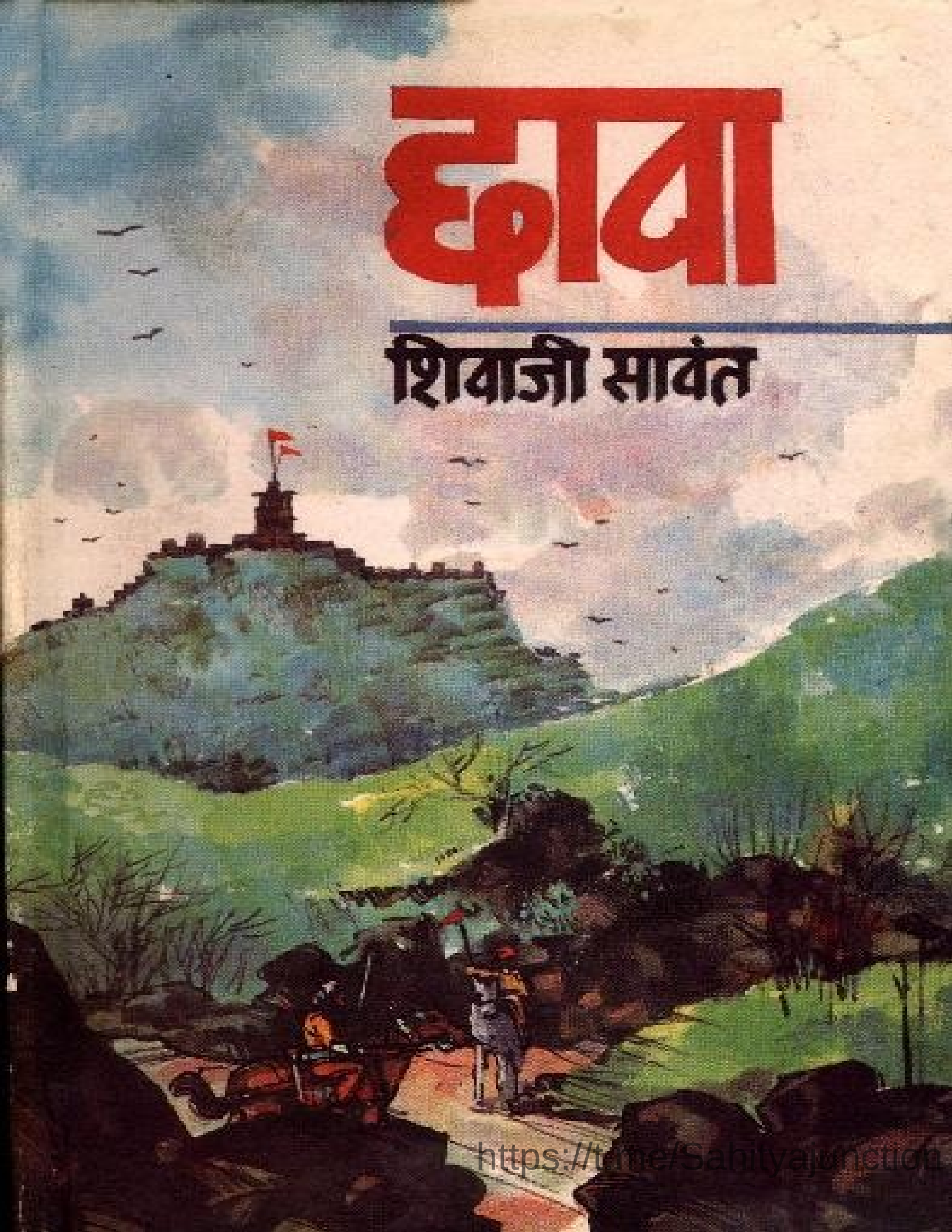

https://t.me/Sahityajunction

छावा
(ऐतिहासिक उपन्यास)

https://t.me/Sahityajunction

प्रकाशक / लेखक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फ़िल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

https://t.me/Sahityajunction

https://t.me/Sahityajunction

छावा

शिवाजी सावंत

अनुवाद
वेदकुमार वेदालंकार

भारतीय ज्ञानपीठ

https://t.me/Sahityajunction

पहला संस्करण : 1984
पाँचवाँ संस्करण : 1996
दसवाँ संस्करण : 2006
तेरहवाँ संस्करण : 2010
चौदहवाँ संस्करण : 2012
पन्द्रहवाँ संस्करण : 2014

ISBN 978-81-263-4012-5

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

आवरण : पुष्पकणा मुखर्जी

© अमिताभ एस. सावन्त

CHHAVA
(Marathi Novel)
by Shivaji Sawant

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003
e-mail : jnanpith@satyam.net.in, sales@jnanpith.net
website : www.jnanpith.net

Fifteenth Edition : 2014

https://t.me/Sahityajunction

यह ‘राजगाथा’ श्रद्धासहित समर्पित है
इन्द्रायणी और भीमा
सरिताओं को,
जिन्होंने
अपनी अगणित जल-लहरियों को नेत्र बनाकर,
समय को साक्षी रखकर,
तुलापुर ग्राम में
देखा था कि
यदि अवसर आ ही पड़े
तो
एक मराठा शूर राजा
साक्षात् मृत्यु का भी
किस प्रकार
स्वागत
करता है।

https://t.me/Sahityajunction

छावा

https://t.me/Sahityajunction

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ।।

—भर्तृहरि

मद के कारण जिनके गण्डस्थल गीले हैं, ऐसे मदोन्मत्त हाथी को देखते ही सिंह का छावा उस पर टूट पड़ता है। पराक्रमीजनों का स्वभाव ही ऐसा होता है। आयु उनके तेज का कारण नहीं होती।

https://t.me/Sahityajunction

एक

शहरे-आगरा को औरंगज़ेब की पचासवीं सालगिरह की सुबह ने रौशन कर दिया। ताजमहल ने भी सालगिरह देखने के लिए अपनी मीनारों की चमकती आँखें लालक़िले की दिशा में घुमा लीं।

मुलकचन्द की सराय में महाराज शिवाजी और उनके पुत्र युवराज सम्भाजी ने स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी विशिष्ट वेशभूषा धारण कर ली और वे अपने डेरे में स्फटिकमय शिवलिंग की पूजा करने बैठ गये। नौ बरस का राजकुमार सम्भाजी सराय से दीखने वाले यमुना नदी के पाट को देखने में मग्न था। उधर औरंगज़ेब लालक़िले में 'सब्र की नमाज़' पढ़ चुका था। सूरज आकाश में आधा हाथ ऊपर चढ़ आया था, तो भी वह मक्के की ओर मुँह करके क़ुरानशरीफ़ के 'कलमे' पढ़ता ही जा रहा था।

औरंगज़ेब के महल के बाहर रामसिंह का पहरा जारी था। सारे आगरा शहर में धूम मची हुई थी।

सराय में अब महाराज के सारे साज़ो-सामान की तैयारी पूरी हो चुकी थी। महाराज और सम्भाजी शरीर पर ज़री का बुँदकीदार जगमगाने वाला सफ़ेद अँगरखा, सिर पर चमचमाने वाला केसरी रंग का टोप, कण्ठ में भवानी की माला, कानों में सोने के चौकड़े आदि धारण करके सजे हुए तैयार घोड़ों के पास आ खड़े हुए थे। उन्हें जाना था शहंशाह औरंगज़ेब के दरबार में 'ख़िलअत' लेने के लिए। मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ शिवाजी की पुरन्धर में जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार वे औरंगज़ेब के दरबार में सम्मिलित होने के लिए सुदूर दक्षिण से यहाँ आये थे। त्र्यम्बकपन्त सुमन्त, रघुनाथपन्त कोरडे, सर्जेराव जेधे, हिरोजी फर्ज़न्द, मदारी मेहतर, राघोमित्र, दावलजी घाटगे आदि श्रेष्ठ जन पंक्तिबद्ध खड़े थे। सभी ने विशेष वस्त्र धारण किये हुए थे।

महाराज मिर्ज़ा राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वही उन्हें दरबार में पेश करने के लिए साथ ले जाने वाला था; परन्तु अभी तक रामसिंह का अता-पता न था, अभी तक तो उससे भेंट ही नहीं हो पायी थी।

अन्ततः रामसिंह का मुंशी गिरिधरलाल सराय में आया। अपने चेहरे पर आये झेंप के भावों को छिपाते हुए राजाजी को तसलीम करके उसने कहा, "अभी तक राणाजी क़िले से लौटकर नहीं आये। आप उनकी हवेली तक चलें। मैंने क़िले की ओर हरकारा भेज दिया है। राणाजी बस

https://t.me/Sahityajunction

आते ही होंगे।" वह राजपूत मुंशी सामने खड़े इस 'दक्खनी मावले'[1] की कीर्ति भली भाँति जानता था। कमर तक तीन-तीन बार झुक रहा था और कन्धे पर रखे उपरने को बार-बार ठीक करता, सँभालता वह 'जी, जी' कहता जा रहा था। इतनी प्रतीक्षा के बाद रामसिंह तो आया नहीं, आया तो एक मुंशी। महाराज के माथे के शिवतिलक पर माथे की त्यौरियों के साथ ही खिंचाव आ गया। परन्तु उस समय वे चुप ही रहे।

गिरिधरलाल के साथ ही महाराज और सम्भाजी अपनी सारी सामान-सामग्री सहित आगरा में मिर्ज़ा राजा जयसिंह की हवेली के निकट आये। राजपूती ढंग की अटारी वाली उस हवेली के सामने रामसिंह ने राजाजी के निवास की सारी व्यवस्था की थी। हवेली के विस्तृत अहाते में छोटी-बड़ी रावटियाँ और सायबान वाले डेरे-शामियाने खड़े किये गये थे। राजा साहब के साथ जानेवाला साज़ो-सामान इसी अहाते में रख दिया गया था।

अब सूरज आकाश में हाथ-दो हाथ ऊपर चढ़ आया था। बायें हाथ में धूपदानी और दायें हाथ में मोरपंख के गुच्छे लिये हुए फ़कीरों की टोलियाँ आगरा के गली-कूचों में घूम-घूमकर ख़ैरात जमा कर चुकी थीं और अब वे सब लालक़िले की चहारदीवारी के पास इकट्ठे हो गये थे। औरंगज़ेब के सरदार, अमीर-उमराव सूबेदार, आदि, जो जगह-जगह पर डेरा डाले पड़े थे, अब लालक़िले के निकट पहुँचने लगे।

महाराज सम्भाजी को साथ लिये शामियाने के दरवाज़े में रामसिंह की प्रतीक्षा करते-करते अब काफ़ी बेचैन हो उठे थे। परन्तु इसी समय ऊपर आसपास क्या हो रहा है, इससे भी वे अनजान थे।

सामने वाली मिर्ज़ा राजा की हवेली की अटारी के साथ लगे दालान में चिक के परदों के पीछे, मिर्ज़ा राजा जयसिंह और रामसिंह का 'ज़नाना' खड़ा था। उस ज़नानख़ाने की औरतें अपनी मेहँदी रँगी अँगुलियों से महाराज और सम्भाजी की ओर संकेत कर रही थीं। एक मन्द दबी फुसफुसाहट फैली हुई थी, "वो देखो, शेरे दक्खन शिवा और उसका बेटा सम्भाजी!"

दिन दो हाथ ऊपर चढ़ आया था। लालक़िले के मुख्य दरवाज़े का नगाड़ा अब लगातार बजता जा रहा था। सरदारों के दल-के-दल क़िले के भीतर आने लगे। संगमरमर के खम्भोंवाले 'दीवान-ए-आम' का लुभावना और झाड़-फानूसों से सजा हुआ दरबार अब पूरी तरह तैयार हो गया था। ज़रदोज़ी का बुँदकीदार अँगरखा बदन पर पहने, सिर पर पंखों की कलगीवाला टेढ़ा किमॉश पहने हुए औरंगज़ेब अपने असबाबख़ाने से बाहर निकला। उसके हर कदम के आगे-आगे फ़र्राश नर्म मुलायम गद्दों की बिछावत बिछाते हुए चल रहे थे।

अल्क़ाबों की ऊँची पुकारें सुनाई देने लगीं।

"बा ऽअदब ऽ बा-मुलाहिज़ा ऽ तहेदिल होशियार ऽऽऽ अबुलमुज़फ्फ़र मुईनुद्दीन मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर आलमगीर बादशाह गाज़ी ऽऽ मालिके तख्ते ताऊस ऽऽ शाहनशाहे हिन्दोस्ताँ तशरीफ़ ला रहे हैं—होशियाऽऽर!"

इन उपाधियों की पुकारों को सुनते समय रामसिंह के राजपूती मन का दम घुटा जा रहा था, मानो कि उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया गया हो। वह विवशता से व्याकुल था—औरंगज़ेब के दरबार में शिवाजी को उपस्थित करने की ज़िम्मेदारी उसकी थी और इधर महल पर उसे पहरा

https://t.me/Sahityajunction

देने का काम भी सौंपा गया था।

औरंगज़ेब के दीवान-ए-आम के दरबार में कदम रखते ही दरबारी लोगों का समूह उसे ताज़ीम देने के लिए उसी तरह कमर तक झुक गया जैसे हवा के एक ही झोंके से घास के विशाल मैदान की सारी घास एक साथ नीचे झुक जाती है।

रामसिंह ने अपनी हवेली की ओर सन्देशवाहक सवारों को भेजा। उन्होंने आकर मुंशी गिरिधरलाल को सन्देश दिया, "दरबार शुरू हो चुका है। राजा साहब को ले आओ। मैं आ ही रहा हूँ।"

अब महाराज के पास इतना भी समय न था कि वे गिरिधरलाल के प्रति क्रोध प्रकट करें। महाराज तथा सम्भाजी शामियाने के बाहर आये। महाराज ने अपने दाहिने हाथ का सहारा देकर नौ बरस के बालक सम्भाजी को घोड़े पर बैठा दिया। महाराज स्वयं भी एक सजे हुए घोड़े पर सवार हो गये।

कुँवरसिंह, तेजसिंह, गिरिधर तथा बख़्शीबेग के साथ महाराज लालक़िले की ओर चल पड़े। उनके पीछे उनके सरंजाम के अन्य लोग थे। आफ़ताबी झलने वाले सेवक उनके तथा सम्भाजी के दोनों ओर आफ़ताबी पंखे झल रहे थे।

रास्ते में आने वाले फ़कीरों को महाराज और सम्भाजी मुट्ठी भर-भर ख़ैरात बाँट रहे थे। इस समय आगरा के मुख्य मार्गों पर आने-जाने वाले किसी भी दूसरे सरदार या ओहदेदार की सवारियाँ नहीं थीं। इसलिए 'दक्खनी शिवा आ रहा है' यह ख़बर वायु के वेग के समान सभी अटारियों-हवेलियों में फैल गयी। सभी मर्द लोक लालक़िले में जा उपस्थित हुए थे, इसलिए अब आगरा की स्त्रियाँ-बच्चे-बूढ़े, सब घरों की अटारियों में और झरोखों के आसपास आकर इकट्ठे हो गये थे। औरंगज़ेब ने तो महाराज की उपेक्षा की ही थी परन्तु रामसिंह के मन में उनका स्वागत-सम्मान करने की इच्छा होते हुए भी वह विवश हो गया था, फिर भी इस 'बड़े और छोटे' मावले राजाओं का स्वागत-सम्मान इस निराले और शानदार ढंग से आगरा और शाहजहाँ की रियाया कर रही थी।

वैसे राजाजी की सवारी का सारा आयोजन 'दर्शनीय' नहीं था, बल्कि इतना साधारण था कि देखने वालों पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु 'शिवा'—इन दो अक्षरों से बने नाम को अब किसी भव्य आयोजन की आवश्यकता ही न रही थी। ऊँचे विशाल वृक्षों को भी तड़ातड़ जलाने वाला 'दावानल' और सारे हिन्दुस्तान में दौड़ लगाने वाला मावल देस का जंगली 'अन्धड़'—इस प्रकार की कीर्ति ही अब महाराज की आन-शान बन चुकी थी।

महाराज और सम्भाजी गिरिधरलाल के साथ दहार आरा बाग़ की ओर जा रहे थे। वे जिस हवेली के सामने से निकलते थे, उस हवेली की अटारियों और झरोखों पर पड़े परदों को या काले बुरक़ों को मेहँदी लगे गोरे हाथ धीरे से उठा रहे थे। उन बुरक़ों को उठानेवाले हाथ कुछ क्षणों तक ऊपर ही थमे रह जाते थे। "ऐ अल्लाह—सुरूर ऽऽ सूरते मर्द!" बुरक़ों में से कोमल स्वर उठ रहे थे।

इधर महाराज और सम्भाजी आगरा के रास्तों पर ख़ैरात बाँटते चल रहे थे और उधर लालक़िले के दीवान-ए-आम में औरंगज़ेब नज़राने के तबक़ कुबूल कर रहा था। राजाजी की सवारी जा रही थी कि दो राजपूत घुड़सवार अचानक एक छोटे रास्ते से उनके सामने आ

https://t.me/Sahityajunction

निकले। उनकी मरोड़दार दाढ़ियों से पसीने की धाराएँ बह रही थीं। वे दो घुड़सवार थे—रामसिंह के सेवक डूंगरमल चौधरी और रामदास। महाराज को कोर्निश करके उन्होंने अपने घोड़े सीधे जाकर गिरिधरलाल के घोड़े से सटा लिये। दबी आवाज़ से राजपूती ज़ुबान में वे गिरिधरलाल से कुछ कह रहे थे, "राणाजी...दरबार...रास्ता...नूरगंज..." ऐसे कुछ शब्द ही महाराज सुन पाये।

"क्या बात है मुंशी?" राजाजी ने गिरिधरलाल की बात जानने का प्रयत्न करते हुए पूछा। सारा क़ाफ़िला दहार आरा बाग़ के पास रुका हुआ था।

"कुछ नहीं सरकार! राणाजी रास्ता भटक गये। वे दूसरे ही रास्ते से हवेली में पहुँच गये। उनका हुक्म है कि आपको नूरगंज के बग़ीचे के पास ले आया जाए।" गिरिधरलाल ने उत्तर दिया।

क़िले से मुख़लिस ख़ाँ के साथ निकला रामसिंह रास्ता भटक गया था। वह राजासाहब से मिलने निकला था, परन्तु किसी दूसरे ही रास्ते से अपनी हवेली पर जा पहुँचा था।

दक्षिण देश में भीमा नदियों की घाटियों में मंजिरा गाँव में डेरा डाले पड़े थे मिर्ज़ा राजा जयसिंह और लालक़िले में 'तख़्ते-ताऊस' पर बैठा था औरगंज़ेब। दोनों ही जानते नहीं थे कि कभी-कभी ऐसे अनेक लोग रास्ता भूलकर भटक जाते हैं! और फिर किसी के इस तरह राह भटक जाने से कई बार युगों-युगों की राहें अनजाने में ही एक जगह आ मिलती हैं!!!

गिरिधरलाल और कुँवरसिंह ने राजाजी की सवारी को नूरगंज बाग़ की दिशा में फिरा लिया। यह काफ़िला फ़िरोज बाग़ से ज़रा आगे निकला ही था कि लालक़िले का दीवान-ए-आम का दरबार बरख़ास्त हो गया!

महाराज और सम्भाजी नूरगंज बाग़ के निकट आकर ठहर गये। राजासाहब के लिए 'नज़र' के रूप में सात-आठ झूल पहनाये हाथियों का दल साथ लेकर रामसिंह मुख़लिस ख़ाँ के साथ बहुत तेज़ी के स़ाथ नूरगंज बाग़ के पास आया।

कुँवरसिंह ने आगे बढ़कर राजासाहब का रामसिंह से परिचय कराया। घोड़े पर बैठे गोरे उजले रामसिंह का माथा पसीने से तर-बतर हो आया था। महाराज की सीधी और नुकीली नाक की ओर देखते हुए उसके माथे पर पसीने की बूँदें और अधिक इकट्ठी हो आयीं। अपने कन्धे के उत्तरीय से उसने पहले माथे के पसीने को पोंछा।

महाराज के स्वागत-सम्मान में बहुत कुछ असावधानियाँ या भूलें हो गयी थीं, यह रामसिंह अनुभव कर रहा था। परन्तु उन सबको राजासाहब भूल जाएँ, ऐसा कौन-सा शिष्टाचार या व्यवहार मैं अब दिखलाऊँ, यही बात अब वह मन में सोच रहा था।

बागडोर खींचकर घोड़े को धीरे-धीरे चलाता हुआ घोड़े पर बैठा रामसिंह राजासाहब के घोड़े के पास आया। "राजासाहब," बस इतना ही जैसे-तैसे उसने कहा और उन्हें आलिंगनबद्ध करने के लिए अपने हाथ सीधे फैला दिये। राजासाहब ने भी घोड़े पर बैठे-ही-बैठे उसका आलिंगन किया। इस प्रकार घोड़े पर बैठकर वे आज तक किसी से भी नहीं मिले थे। बालक सम्भाजी के ध्यान से यह बात छूटी नहीं। उन्होंने मन-ही-मन समझ लिया—रामसिंह भरोसे का आदमी है।

फिर रामसिंह ने अपना घोड़ा सम्भाजी के घोड़े तक बढ़ाया। उनके कन्धे पर हाथ रखकर उसने कहा, "कुँवर शम्भूराजा!"

https://t.me/Sahityajunction

रामसिंह ने सब हाथियों को महाराज के डेरे की ओर रवाना कर दिया और अब वह निकल पड़ा—दो मावले सरदारों को औरंगज़ेब के दरबार में पेश करने के लिए।

लालक़िले का मुख्य दरवाज़ा आ गया। सभी सरदार, उमराव दरबार में जा चुके थे, इस कारण नौबतवाले काफ़ी देर से आराम से बैठे थे। अब ज्योंही उन्होंने महाराज, रामसिंह और सम्भाजी को आते देखा तो एकदम भौचक होकर वे अगवानी की नौबत बजाने लगे। इस समय तक लालक़िले में औरंगज़ेब का 'दीवान-ए-ख़ास' का दूसरा दरबार भी समाप्त हो चुका था।

महाराज और सम्भाजी गेरुए रंग का लालक़िला देखते हुए आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने घोड़ों को रामसिंह के सईसों को सौंप दिया था। नज़राने भरे थाल उठाये हुए मावले सैनिकों को अपने पीछे रखकर महाराज और सम्भाजी अब ग़ुसलख़ाने के दरबार की ओर जा रहे थे। इस समय औरंगज़ेब ग़ुसलख़ाने के साथ वाले पेशाबघर में खप्पर के टुकड़े से 'इस्तिंजा' कर रहा था!

'इस्तिंजा' के बाद हाथ-पाँव धोकर औरंगज़ेब ने 'वुज़ू' किया। खस की सुगन्धिवाला ठण्डा पानी पीकर वह ग़ुसलख़ाने के चहारदीवारी से घिरे हुए तख़्त के अहाते में दाख़िल हुआ। ग़ुसलख़ाने के प्रवेश-द्वार पर पहुँचकर रामसिंह ठहर गया। कमर तक झुककर उसने शिवाजी महाराज से प्रार्थना की, "जूते यहीं उतार दीजिए राजासाहब।" सुनते ही महाराज के माथे पर त्योरियाँ खिंच आयीं, फिर भी महाराज ने अपने भगवे जूते संगमरमर के फर्श पर उतारकर रख दिये। उन जूतों के पास ही बालक सम्भाजी ने भी अपने जूते उतार दिये।

रामसिंह ने वज़ीर ज़ाफ़र ख़ाँ के पास सूचना भेजी। सात-आठ हाथ ऊँचे और क़िले के समान बन्द एक अहाते में गिरदे पर टिककर बैठे हुए औरंगज़ेब के सामने ज़ाफ़र ख़ाँ पेश हुआ। छाती पर आज हाथ रखकर, झुककर उसने औरंगज़ेब के सामने अर्ज़ किया, "आला हज़रत ऽ ऽ, दक्खन से 'शीवा' भोंसला अपने फर्ज़न्द के साथ आया है। रामसिंह उसे आपके सामने पेश करने की इजाज़त माँगता है।"

यह समाचार सुनकर गिरदे पर टिककर बैठा औरंगज़ेब एकदम आगे को उठ आया। उसके हाथ की तस्बीह के मनके फेरने वाली उँगलियाँ क्षणभर के लिए रुक गयीं। कुछ क्षण यूँ ही गुज़र गये।

झुके हुए वज़ीर ज़ाफ़र ख़ाँ की तरफ़ अत्यन्त शान्त शब्दों की 'ख़िलअत' औरंगज़ेब ने फेंकी, "इजाज़त," एक बार ग़ुसलख़ाने की ओर देखकर औरंगज़ेब दुबारा गिरदे के सहारे बैठ गया। मनके फिर घूमने लगे।

रामसिंह को सामने करके महाराज दरबार में जाने को तैयार हुए। रामसिंह फिर अचानक ठहर गया। अपने कमर के रेशमी कमरबन्द में खोंसा हुआ मुग़लिया ढंग की नक्काशी वाला रूमाल उसने कमरबन्द से निकालकर अपने हाथ में ले लिया। अदब से झुककर वह रूमाल महाराज के हाथों में देता हुआ वह बोला, "लीजिए!"

भौं टेढ़ी करते हुए राजा ने रूमाल की ओर देखा और रामसिंह से पूछा, "यह क्या है?"

"यह एक दरबारी रिवाज है राजा साहब। नज़राना पेश करते समय आला हज़रत ने आपसे अगर कुछ पूछा तो यह रूमाल मुँह पर रखकर जवाब देना—राजासाहब! यह रिवाज है।"

महाराज ने कुछ कहा नहीं। वह रूमाल उन्होंने दायीं मुट्ठी में दबा लिया।

https://t.me/Sahityajunction

रामसिंह के साथ राजासाहब और कुमार सम्भाजी ग़ुसलख़ाने में प्रविष्ट हुए। उस दरबार में औरंगज़ेब के शाइस्ते ख़ाँ, बहादुर ख़ाँ, अमीन ख़ाँ, शेख़मीर, ज़ुल्फिकार ख़ाँ, नजाबत ख़ाँ, जसवन्त सिंह आदि अनेक नेक बन्दों की भीड़ जमा थी।

सारे दरबारियों के हरे, नीले, जामनी सब रंगों के किमॉश और अँगरखे थे। केवल महाराज और सम्भाजी के सिरों पर भगवे रंग के टोप थे। ये भगवे टोप साफ़ सबसे अलग झलक रहे थे।

महाराज रामसिंह के साथ औरंगज़ेब के नज़दीक गये। उन्होंने 'नज़र' के रूप में एक हज़ार मुहरें, दो हज़ार रुपये तथा 'निसार' के रूप में पाँच हज़ार रुपयों के तबक़ औरंगज़ेब को पेश किये। पिता-पुत्र दोनों ने शाही रिवाज के मुताबिक मुजरे भी किये। सारे दरबार में सबसे छोटा यदि कोई था, तो वे थे नौ बरस की आयु के कुमार सम्भाजी!

महाराज औरंगज़ेब के बारे में हमेशा कहा करते थे कि उनकी करनी सारी दुनिया जानती है। उसी औरंगज़ेब को आज बालक सम्भाजी एकटक देख रहा था।

क़िले के चारों ओर से बन्द उस संगमरमरी आसन से औरंगज़ेब का सारा शरीर छिपा-सा था। दरबार के लोगों को केवल उसके गले के ऊपर का सिर ही दिखाई दे पाता था। बस केवल सिर, जिस सिर को सलामत रखने के लिए उसने अनेकों के सिर धड़ से अलग करवा डाले थे। जिस सिर में छुपी हुई अक़्ल का चतुराई से इस्तेमाल करके, और क़ुरान की ढाल सामने रखकर उसने अपनी ऐंठदार बादशाही हवस आज तक पूरी की थी।

कुमार सम्भाजी ने सोचा था, औरंगज़ेब कुछ बोलेगा परन्तु उसने कुछ भी न कहा, न पूछा।

बख़्शी असद ख़ाँ ने आगे बढ़कर राजासाहब और सम्भाजी के हाथों में दरबारी सम्मान के रूप में पान के बीड़े दिये।

रामसिंह तख़्त की ओर मुँह रखकर पीछे-पीछे हटता हुआ ढाई हज़ारी सरदारों की पंक्ति में जाकर खड़ा हो गया।

बख़्शी असद ख़ाँ ने महाराज को और सम्भाजी को पंचहज़ारी सरदारों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। यह पंक्ति शाही आसन से बहुत दूर थी। 'ख़िलअत' बाँटने का काम प्रारम्भ हुआ। औरंगज़ेब के शहज़ादों को, ज़ाफ़र ख़ाँ और जसवन्त सिंह को 'ख़िलअतें' दी गयीं।

ख़िलअत लेकर जसवन्त सिंह पीठ की ओर पीछे-पीछे हटता हुआ महाराज के सामने आकर खड़ा हो गया। शाही दरबार अब ख़त्म होने को था।

'धूप-आँधी में सैकड़ों मंज़िलें तय करके हम यहाँ तक क्यों आये हैं? यह दरबार है या मज़ाक़ है? क्या यही है हमारा सम्मान?' राजासाहब की सारी देह में सिर से पैर तक गर्म ख़ून की बिजली की-सी लहर दौड़ गयी।

स्वागत के लिए एक मुंशी आया। आसन पर बैठे घमण्डी औरंगज़ेब ने एक शब्द भी बोलने की ज़रूरत नहीं समझी। पीछा करनेवाले हमारे मावले घुड़सवारों ने आज तक जिनकी सिर्फ़ पीठ ही देखी है, उनके कन्धों पर यहाँ ख़िलअतें चढ़ायी जाती हैं। अपमान की वेदना असह्य होने से महाराज की छाती धौंकनी के समान चलने लगी। साँस फूलने से छाती पर पहनी हुई कौड़ियों की माला भी काँप रही थी। माथे की सीधी उभरी हुई नस और अधिक फूल उठी और साथ-साथ शिवतिलक की रेखाएँ भी काँपने लगीं। सारा शरीर जैसे जलती हुई मशाल बन गया—भड़कती!

https://t.me/Sahityajunction

काँपती! जलाने वाली एक मशाल!

ग़ुसलख़ाने की संगमरमर की दीवारों को भी जिन्हें सुनकर रोमांच हो आये, ऐसे झनझनाते बोल राजाजी के मुख से यकायक निकले, "राऽम सिंह!" सारे दरबार की शान्ति भंग हो गयी। महाराज की दायीं भौंह घोड़े की नाल के समान टेढ़ी होकर अब ऊपर तन गयी थी।

गरदन पीछे घुमाकर रामसिंह की पंक्ति की ओर देखते हुए महाराज फिर गरज उठे, "राऽम सिंह!"

हाथ में पकड़ा हुआ आबासाहब[1] का हाथ एकदम गर्म हो उठा है, यह कुमार सम्भाजी ने स्पष्ट अनुभव किया। इस बदले हुए स्पर्श के साथ ही एक अपरिचित झनझनाहट उनके सारे शरीर में फैल गयी। बीच में आने वाले सरदारों से टकराने से बचता हुआ रामसिंह महाराज के पास तक आया।

सामने खड़े एक सरदार की ओर हाथ दिखाकर दहकती आँखों से महाराज ने रामसिंह से पूछा, "यह हमारे सामने कौन खड़ा है, रामसिंह?"

"जी, वे महाराजा जसवन्त सिंह हैं।" रामसिंह समझ नहीं पाया था कि मामला क्या है! घबराहट से उसका गला सूख गया था।

"जसवन्त सिंहऽऽ! हमारे मुल्क से भागकर आया जसवन्त सिंह! इसके पीछे खड़ा किया हमें तुमने! नहीं। यह हम कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते!"

राजा साहब का हाथ न जाने कब सम्भाजी के हाथ से छूट गया! हम कौन हैं, कहाँ हैं, किसी भी बात का राजासाहब को ध्यान नहीं रहा। उनके कान की लौ तमतमाकर लाल हो उठी। आँखों के भीतर लाल शिराओं का ज्वाला-समूह भड़क उठा। काँपती हुई कर्णपाली के साथ-साथ सुवर्ण चौंकड़े भी काँप रहे थे। केसरी टोप के नीचे राजा की मुख-मुद्रा में एक नारंगी वर्ण का 'भोसले वंशीय' सूर्य ही अवतरित हो आया था।

और अधिक विचार न करते हुए महाराज अपनी पंक्ति से बाहर आ गये। बीच वाले खुले मार्ग के मुलायम गलीचे पर आते ही उन्होंने औरंगज़ेब की ओर एकदम पीठ फेर ली।

"महाराज साहब!" कहते हुए काँपते हुए सम्भाजी सरदारों की कतारों के बीच से उनकी ओर दौड़े। महाराज के कान जैसे बधिर हो गये थे। वे दरवाज़े की ओर जल्दी से कदम बढ़ा रहे थे। उन्हें पकड़ पाने के प्रयत्न में रामसिंह भी उलटा दौड़ रहा था। मुँह सूख जाने से जीभ तालु से चिपकी जाती थी और प्राण व्याकुल हो रहे थे। तख़्त की ओर पीठ न करके झपपट पाँच कदम पीछे हटकर फिर महाराज की ओर देखकर, एक कसरत-सी करते हुए रामसिंह महाराज तक जा पहुँचा। उनका हाथ अपने हाथ में लेकर ज़ोरों से हिलाते हुए, हलकी दबी आवाज़ में रामसिंह ने कहा, "सुनिए तो राजा साहब!"

"कभी नहींऽ?" कहते हुए राजा साहब ने उसका हाथ झटककर अलग कर दिया। इस झटके के कारण रामसिंह ने जो रूमाल उन्हें पहले दिया था, वह राजा साहब के हाथों से छूटकर नीचे मुलायम गलीचे पर जा गिरा।

हड़बड़ाये हुए छोटे से सम्भाजी, "महाराज साहब! महाराज साहब ऽ!" पुकारते हुए उनके पीछे-पीछे बीच के खुले मार्ग पर दौड़ते हुए आये और आकर उन्होंने महाराज का हाथ पकड़

https://t.me/Sahityajunction

लिया। दोनों दरबार के बाहर के एक चबूतरे तक आये और क्षण भर वहीं रुके रहे।

मावल-खण्ड के पुरन्धर, राजगढ़, प्रतापगढ़ आदि किसी भी गढ़ या भवन ने कभी ऐसा दृश्य न देखा होगा, उस संगमरमरी चबूतरे ने आज यह भी देख लिया। ऊपर हैं, क्रोध से थरनिवाले शिवाजी महाराज और नीचे हैं उनका हाथ पकड़कर भय से थरथर काँपनेवाले छोटे सम्भाजी। ऐसा विचित्र दृश्य था वह।

चबूतरे की बगल में एक सीढ़ीनुमा भाग था। महाराज उसी ओर मुड़ गये। उन्होंने सम्भाजी का हाथ छोड़ दिया। महाराज दोनों हाथों में सिर को कसकर पकड़ते हुए उस सीढ़ी पर बैठ गये। उनके एक हाथ की मुट्ठी कसकर बँधी हुई थी, जिसमें था दरबार से मिला बीड़ा। ज़ोर-ज़ोर से चलने वाली साँस की तेज़ी महाराज को अब स्वयं अनुभव हो रही थी।

उधर दरबार में गड़बड़ी मची थी। ज़ाफ़र ख़ाँ से औरंगज़ेब को पता लगा कि 'शीवा ख़िलअत की वजह से ख़फ़ा हो गया है!' उसने मुलतफल ख़ाँ, मुख़लिस ख़ाँ और आक़िल ख़ाँ को हुक्म दिया, "शीवा को ख़िलअत देकर ठण्डा करके यहाँ ले आओ।"

वे तीनों बन्दे महाराज के पास आये। उनसे प्रार्थना करने लगे कि वे ख़िलअत ले लें। अब तो महाराज और भी भड़क उठे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इनकार करते हुए कह सुनाया, "चाहे तो तुम्हारा बादशाह मुझे क़त्ल कर सकता है, लेकिन मैं अब दुबारा दरबार में नहीं जाऊँगा।"

औरंगज़ेब ने रामसिंह को अन्दर बुलाकर उससे पूछा, "क्या बात हुई रामसिंह? शीवा क्यों ख़फ़ा हो गया?"

"हमारे मुल्क की गर्मी से उनकी तबीयत ख़राब हो गयी है, आला हज़रत," रामसिंह ने राजनीतिज्ञों का-सा उत्तर दिया।

औरंगज़ेब ने हँसकर कहा, "उसे अपने मुकाम पर पहुँचा दो।"

"जी हुज़ूर," कहता हुआ रामसिंह बाहर आया।

पसीने से तर हुई मुट्ठी में दबाया हुआ बीड़ा राजासाहब ने फ़र्श पर फेंक दिया था। सम्भाजी तो अपना बीड़ा पहले ही फेंक चुके थे।

थोड़ा समय बीतने पर महाराज की कँपकँपी कुछ कम हो गयी। रामसिंह उन्हें साथ लेकर मुक़ाम की ओर जाने लगा।

"महाराज साहब, आपके जूते," सम्भाजी ने याद दिलायी। किसी दूसरे द्वारा उठाने की प्रतीक्षा न करके कुमार सम्भा ने वे भगवे जूते उठाये और उनके सामने ला रखे। महाराज ने जूते पहन लिये।

रामसिंह के साईसों द्वारा लाये गये घोड़ों पर महाराज तथा सम्भाजी बैठ गये। रामसिंह के साथ यह सारा आयोजन डेरे की ओर वापस लौट चला। कोई किसी से कुछ भी न बोल रहा था। सब मौन चले जा रहे थे।

सम्भाजी बीती हुई सारी घटना और महाराज का वह चेहरा याद करके सोच-विचार में खो गये थे—माँ जगदम्बा एक बार जब महाराज के स्वप्न में आयी थीं, तब उनका मुखमण्डल बिलकुल निराला-सा दिखाई दे रहा था। उनका आज का चेहरा तो बिलकुल दूसरी ही प्रकार का हो गया था। स्वयं माँ जीजाबाई ने भी यह लाल-लाल चेहरा देखा होता तो वह भी अवश्य घबरा

https://t.me/Sahityajunction

जातीं।

महाराज और बालक सम्भाजी लालक़िले के सदर दरवाज़े के बाहर आ गये। मुमताज की कब्र को गोदी में लिये हुए ताजमहल अपनी मीनारों से उनकी ओर देख रहा था। शायद आज वह धन्य हो उठा था! मुमताज के अपने बच्चों दारा, मुरार और शुजा से भी जो बात न हो सकी थी; ख़ुद बादशाह शाहजहाँ भी जो कर न पाया था, वह काम करके राजा साहब लालक़िले के बाहर निकल रहे थे।

औरंगज़ेब की पचासवीं सालगिरह का उदित हुआ दिन अब साँझ उतर आने के कारण नीरव हो चला था।

रामसिंह की हवेली में महाराज और सम्भाजी दीवानी दालान की बैठक में बैठे थे। चेहरे पर चिन्ता की कजली चढ़ाये रामसिंह भी वहीं खड़ा था। रामसिंह के सेवकों ने ख़ुशबूदार शरबत के प्याले लाकर मेहमानों को दिये।

दरबार में महाराज को उचित स्थान पर ही खड़ा किया गया था, ख़ुद मिर्ज़ा राजा जयसिंह और ताहिर ख़ाँ जहाँ खड़े होते हैं, यह वही जगह थी। रामसिंह इन बातों द्वारा महाराज को समझाने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु अब तो बाण धनुष से छूट चुका था।

"भाई साहब, आप फ़िक्र न करें," महाराज ने उसे दिलासा देते हुए कहा। पहली ही बार आज उन्होंने 'भाई साहब' कहकर रामसिंह को जानबूझ कर सम्बोधित किया था।

महाराज आधा घण्टा उसकी हवेली में ठहरे। फिर वापस अपने मुक़ाम पर आ गये।

रामसिंह ने अपने एक सहायक, गोपीराम मेहता के हाथों महाराज के लिए सूखे फलों-मेवों की भेंट भिजवायी। महाराज ने उसे 'सिरोपाव'[1] भेंट में दिया। रामसिंह के दो विश्वासपात्र सहयोगी बल्लूशाह और गिरिधरलाल महाराज से मिलने के लिए आये।

बल्लूशाह के मन में महाराज के शौर्य की गाथाओं को सुनने के कारण उनके प्रति आदरभाव था। वह वहाँ उन्हें यह सलाह देने आया था कि बादशाह से वह दिलजमाई कर लें। राजासाहब सकुशल दक्षिण देश में वापस पहुँच जाएँ, यही वह चाहता था। कुछ देर बाद महाराज और गिरिधर चले गये। 'दीया-बत्ती' का समय हो आया था। महाराज नित्य के अनुसार स्फटिकमय शिवलिंग की पूजा करने बैठे।

उधर औरंगज़ेब ने लालक़िले में अपने ख़ास महल के भीतर आयोजित एक मजलिस बरख़ास्त कर दी थी और वह 'मग़रिब' की नमाज़ पढ़ने चला गया था।

इस मजलिस में औरंगज़ेब के विशेष सरदारों, ज़ाफ़र ख़ाँ, जसवन्त सिंह मुर्तुज़ा ख़ाँ ने और औरंगज़ेब की बहन जहाँआरा ने यह पुरज़ोर सलाह दे डाली थी कि 'बदतमीज़' शिवा को क़त्ल कर दिया जाय!

औरंगज़ेब इस बात से बहुत चिढ़ा बैठा था कि महाराज ने उसकी दी हुई ख़िलअत एकदम ठुकरा दी थी। इतना ही नहीं, उसे इस बात की भी चिढ़ थी कि वह फिर कभी दरबार न आने की घोषणा कर गये थे। फिर भी वह ऊपर से शान्त दिखलाई देता था।

नमाज़ पढ़ते समय भी उसने दो बातों का मन में निश्चय कर लिया—'शीवा' को दरबार में पेश होने के लिए मजबूर करना और उसे ख़िलअत लेने के लिए विवश करना और यदि वह यह

https://t.me/Sahityajunction

मान लेता है तो फिर उसे काबुल की मुहिम पर भेज देना। वहाँ से उसके सही-सलामत लौटने की सम्भावना थी ही नहीं। यदि 'शीवा' ने ये बातें न मानीं, तो मुल्ला मौलवियों के द्वारा 'शीवा' की बदतमीज़ी का मामला तय करा लेना। वे ज़रूर कोई सज़ा सुनाएँगे, 'शीवा' पर उसकी तामीली कराना। वे लोग कौन-सी सज़ा सुनाएँगे, इसे वह बख़ूबी जानता था!

औरंगज़ेब ने आगरा के कोतवाल, फ़ौलाद ख़ाँ को बुला भेजा। वह परतीत राय नामक हरकारे के साथ आकर पेश हुआ। औरंगज़ेब ने उसे हुक्म दिया, "रामसिंह से कहो कि शीवा को समझा-बुझाकर कल दरबार में ले आये!"

फ़ौलाद ख़ाँ और परतीत राय लालक़िले से रामसिंह की हवेली में आये और उन्होंने अपने आलीजाह का हुक्म रामसिंह को कह सुनाया। काफी रात हो चुकी थी, फिर भी रामसिंह महाराज के डेरे में आया और उन्हें साथ लेकर अपनी हवेली में वापस लौट गया। वहाँ काफ़ी देर तक वह महाराज को यह समझाता रहा कि बादशाह सलामत के सामने हाज़िर होना कितना ज़रूरी है!

महाराज उससे विदा होकर अपने डेरे पर आये। सारे आगरा शहर में सालगिरह की रोशनी जगमगा रही थी। यमुना के जल में विविध रंगों की छटाओं के फूल खिल उठे।

काफी देर तक महाराज के आने की प्रतीक्षा करके सम्भाजी पलँग पर सो गये थे। उन्होंने कुछ खाया भी न था। महाराज की भी कुछ खाने की इच्छा ही न थी।

महाराज ने अपने सिर का टोप उतारकर तबक़ में रख दिया। सोये हुए बालक सम्भाजी को देखकर उनके मन ने कहा, 'इन्दें साथ न लाना ही अच्छा था।'

"माँ जगदम्बे! जगदम्बे!" कहते हुए वह सम्भाजी के पास ही पलँग पर लेट गये। पिता-पुत्र बिना कुछ खाये-पिये यमुना के किनारे अपने डेरे में पड़े थे। महाराज की आँखों की नींद ग़ायब थी। दूसरी ओर लालक़िले में और सारे आगरा शहर में बिरयानी और सगौती की दावतें उड़ रही थीं। आज दरबार में जो कुछ क़िस्सा हुआ था, उसकी चर्चा करते-करते आगरा के बाशिन्दे कह रहे थे, "जो हाल शहज़ादा दारा, मुराद और शुजा का हुआ, ज़रूर वही हाल इस दक्खनी 'शीवा' का भी होगा।"

अगले दिन सूरज काफी ऊपर तक चढ़ आया था, तो भी महाराज अपने पलँग पर से उठे नहीं थे। उन्होंने त्र्यम्बकपन्त, रघुनाथपन्त, निराजी, रावजी आदि अपने सहयोगियों को बुलाकर कहा, "हमें ज्वर हो आया है!" यह समाचार अपने आप रामसिंह के कानों तक जा पहुँचा। वह जानता था कि राजा साहब का बुख़ार बनावटी है परन्तु 'आपको बुख़ार क्यों कर चढ़ आया?' ऐसी बात वह उनसे पूछ नहीं सकता था। उसने मन-ही-मन यह ताड़ लिया कि शिवाजी अब किसी भी तरह दरबार में नहीं जाएँगे।

महाराज ने रघुनाथपन्त कोरडे के हाथों रामसिंह को यह सूचना भिजवायी : "हम बीमारी के कारण मजबूर हैं, दरबार न आ सकेंगे। हमारे बेटे युवराज सम्भाजी को दरबार में ले जाना।"

अब स्थिति यह थी कि हर किसी मिलने-जुलने वाले आदमी को बड़ी चतुराई से अपना सहायक बनाये बिना महाराज आगरा से निकल नहीं सकते थे।

सबसे बुरा हाल था रामसिंह का। उसके लिए आवश्यक था कि वह महाराज साहब को

https://t.me/Sahityajunction

सुरक्षित भी रखे और साथ ही औरंगज़ेब का विश्वासपात्र भी बना रहे। परन्तु सबसे बड़ी परीक्षा थी बालक सम्भाजी की! राजा साहब के साथ आये लोगों में से वे सबसे छोटे थे, परदेस में थे और तिसपर अब प्राण भी घोर संकट में आ फँसे थे।

महाराज सम्भाजी को हर प्रकार की सावधानी बरतने की सूचनाएँ दे रहे थे, "जिस रास्ते से दरबार में जाओगे वह रास्ता ठीक-ठीक याद रखना। वापस लौटते समय रामसिंह से प्रार्थना करना कि वह तुम्हें किसी दूसरे रास्ते से वापस लाये। बादशाह यदि तुमसे कुछ पूछें तो बिना हिचकिचाहट उत्तर देना। जैसा कुछ भी बन सके, हिन्दुस्तानी भाषा बोलने का प्रयत्न करते रहना। जितने आद्मियों से मिलने का मौक़ा मिले, मिलना, उनसे जान-पहचान बढ़ाने का प्रयत्न करना।"

उन्हें सूचनाएँ देते समय महाराज बीच-बीच में ठहर जाते थे। उन्हें रह-रहकर याद आते थे माँ जीजाबाई के वे बोल : "राज्य के लिए दाँव पर लगाना ही हो, तो पुरानी पीढ़ी के लोगों को लगाना चाहिए। नयी पीढ़ी के युवाजनों के द्वारा तो भविष्य की योजनाएँ साकार करनी चाहिए।"[1]

शाम हो आयी थी। महाराज पलँग पर लेट गये। तभी रामसिंह सम्भाजी को दरबार में ले जाने के लिए आया। लेटे हुए महाराज का आशीर्वाद पाने के लिए उनके चरणों का स्पर्श करते हुए सम्भाजी ने कहा, "मैं जा रहा हूँ, महाराज साहब।"

"अंऽऽ।" महाराज कृत्रिमता से कराह उठे। रामसिंह सम्भाजी को साथ लेकर दरबार की ओर चल पड़ा। इस सवारी में भी राजासाहब का सारा सजा-सजाया साज-सामान युवराज सम्भाजी के साथ था। एक सजे हुए सफ़ेद घोड़े पर युवराज सम्भाजी बैठे थे। रामसिंह के घोड़े के साथ-साथ अपना घोड़ा चलाते हुए नौ बरस के राजकुमार सम्भाजी दिल्ली तख़्त के बादशाह की मुलाकात के लिए जा रहे थे, अकेले! बाबर से लेकर औरंगज़ेब तक कई बादशाहों के दरबार भरे होंगे, परन्तु आज जैसा निराला अवसर शायद पहले कभी ही आया हो!

अपने सरंजाम के साथ रामसिंह और युवराज सम्भाजी लालक़िले में आये। 'दीवान-ए-ख़ास' का मग़रिबी दरबार भरा हुआ था। रामसिंह सम्भाजी को अपने पास लेकर खड़ा हो गया।

अस्काबों की लम्बी पुकारें गुँजीं और साथ ही औरंगज़ेब ने दरबार में प्रवेश किया। उसे ताज़ीम देने के लिए सभी दरबारी लोग कमर तक झुक गये। राजकुमार सम्भाजी दूर दिखलाई देने वाले औरंगज़ेब की ओर देखते हुए वैसे ही सीधे खड़े रहे। चूँकि लोग सभी झुके हुए थे, इस कारण इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया कि किशोर सम्भाजी सीधे खड़े हैं।

वज़ीर ज़ाफ़र ख़ाँ ने सबसे पहले रामसिंह के बारे में ही पूछताछ की। रामसिंह युवराज सम्भाजी को साथ लिये बैठक के सामने पेश हुआ। कोर्निश करने के लिए झुके हुए रामसिंह की पीठ पर ही औरंगज़ेब ने एक सवाल फेंका, "क्यों रामसिंह, शीवा कहाँ है?"

"जी हुज़ूर, उनकी तबीयत ख़राब हो गयी है। उन्हें तेज बुख़ार है।" रामसिंह ने झुके-झुके ही उत्तर दिया।

कोट के समान चारों ओर से बन्द ऊँचे तख़्त पर बैठे औरंगज़ेब ने कुछ विशेष आशय लिये हुए गर्दन हिलायी।

https://t.me/Sahityajunction

“उन्होंने अपने फ़रज़न्द को भेजा है, आलीजाह।” रामसिंह ने कोशिश की कि औरंगज़ेब को अब जो बुख़ार चढ़ने वाला है, वह कुछ कम हो जाए।

औरंगज़ेब की मोटी बड़ी आँखें कुमार सम्भाजी पर जा टिकीं। उसकी आँखों से आँखें मिलाये, सम्भाजी भरे दरबार में निर्भय खड़े थे। वे चार आँखें थीं, परन्तु उन चार आँखों में नितान्त भिन्नता थी। दो आँखें थीं औरंगज़ेब की जो अपने किये कर्मों की धूल के कारण धुँधलाये दर्पण के समान थीं और दो आँखें थीं कुमार सम्भाजी की, भीतर-बाहर से स्फटिक के समान स्वच्छ!

सम्भाजी को देखते ही औरंगज़ेब का कुटिल स्वभाव जाग उठा। उसने पूछा, “क्यों फरज़न्द सम्भा, तुम्हें नहीं आया बुख़ार?” राजकुमार सम्भाजी में अपने पर चढ़ आती हर चीज़ को परे ढकेलने की प्रवृत्ति थी। सम्भाजी ने तड़ाक से उत्तर दिया, “नहीं ऽऽ। हमें बुख़ार नहीं आता। हम दूसरों को बुख़ार चढ़ाया करते हैं!”

“क्या कहा इसने?” औरंगज़ेब ने भौंहें तानकर रामसिंह से पूछा। सम्भाजी ने क्या कहा, यह रामसिंह भी ठीक से समझ नहीं पाया था। परन्तु उत्तर देना तो ज़रूरी था। उसने झुककर कहा, “जी हुज़ूर, उन्होंने कहा हमें बुख़ार नहीं है!”

“कैसी मासूमियत है! ज़ाफ़र, सम्भा को नज़राना इनायत करो!” औरंगज़ेब ने वज़ीर को आज्ञा दी।

युवराज सम्भाजी को ‘सिरोपाव’ मोती का कण्ठा और रत्नजड़ित कटार भेंट दी गयी!

रामसिंह की हवेली वाले बैठक के दालान में राजपूती बनावट की एक बड़ी चौकी पर रखी थी एक पूजा की थाली, जिसमें एक चमकदार गहरे काले रंग का शालिग्रामी शिवलिंग रखा हुआ था। उसके निकट रखी एक दूसरी थाली में पूजा की सामग्री सजायी हुई थी। रामसिंह महाराज और सम्भाजी को उनके मुक़ाम के स्थान से अपने साथ अपनी हवेली के इस पूजा के कमरे में ले आया था।

‘मिर्ज़ा राजा की आगरा की हवेली में आकर कभी मुझे शिवलिंग की पूजा करनी पड़ेगी’—यह विचार महाराज के स्वप्न में भी कभी न आया था। परन्तु स्वप्न और सत्य तो सदा ही आपस में चकमा देकर एक-दूसरे पर हावी होने का प्रयत्न किया करते हैं।

सम्भाजी जिस दिन दरबार में जाकर वापस आये थे, उसके अगले दिन ही औरंगज़ेब ने सिद्दी फ़ौलाद ख़ाँ को हुक्म दिया, “शीवा को मुक़ाम पर से हटाकर रैनन्दाज़ ख़ाँ की कोठी में ले जाओ।”

जैसी दारा के साथ गुज़री, वही बात महाराज को रैनन्दाज़ ख़ाँ की कोठी में ले जाने के बाद होनेवाली थी—अर्थात् बिना हिचक-संकोच के उनकी हत्या! रामसिंह की हवेली के सामनेवाले खुले पड़ाव में ऐसा करना सम्भव न था।

न जाने कैसे यह ख़बर रामसिंह को मालूम हो गयी। वह सीधा मीर बख़्शी मुहम्मद अमीन ख़ाँ की हवेली पर जा पहुँचा। अमीन ख़ाँ उसका मित्र था। ऊँचे ओहदे पर था। उसकी मार्फत

https://t.me/Sahityajunction

रामसिंह ने औरंगज़ेब को साफ-साफ सन्देश कहलवा भेजा, “शिवाजी को मारने से पहले मुझे परिवार सहित मार डाला जाय!”

यह सन्देश मिलते ही धूर्त औरंगज़ेब ने जान लिया कि षड्यन्त्र की ख़बर फैल गयी है। उसने रामसिंह को ही जाल में फँसाने के लिए पासा फेंका, “शिवाजी आगरा से बाहर नहीं जाएगा, इसके लिए तुम ज़मानत लेने को तैयार हो क्या?” उसने सन्देश रामसिंह को कहला भेजा।

‘महाराज के प्राणों पर आया संकट मेरे ज़मानतनामा देने से टल रहा है,’ यह सोचकर रामसिंह ने सन्तोष की साँस ली और ज़मानतनामा लिखकर हस्ताक्षर करके बख़्शी अमीन ख़ाँ के हाथों भेज दिया।

औरंगज़ेब ने उसे मंज़ूर कर लिया। अब रामसिंह महाराज के लिए सही-सही ज़मानतदार बन गया।

महाराज को जब यह ज्ञात हुआ कि रामसिंह ने मेरे प्राणों पर आये संकट को दूर करने के लिए अपने प्राण मुसीबत में फँसा लिये हैं तो वे सोच में डूब गये। उन्होंने रामसिंह को विश्वास दिलाया, “हम बेलपत्ती उठाकर शपथ लेते हैं कि तुम्हारा विश्वास निभाएँगे। निश्चिन्त रहो।”

इसी वचन के अनुसार महादेवजी की पूजा करने के लिए महाराज सम्भाजी के साथ आज रामसिंह की हवेली में आये थे। हवेली की बैठक वाले दालान में बल्लूशाह, गिरिधारीलाल, गोपीराम, तेजसिंह आदि रामसिंह के अपने लोग थे। महाराज के साथ थे रघुनाथपन्त, दत्तोजीपन्त, त्र्यम्बकपन्त, निराजी आदि श्रेष्ठजन।

महाराज ने चौकी पर रखे शालिग्रामी रंग के शिवलिंग की पूजा की। पिण्डी के एक बेलपत्र को हाथ में उठाया और अपनी सीधी लम्बी उँगलियों से उसे रामसिंह को देते हुए कहा, “हम शिवजी की शपथ लेकर कहते हैं कि जब तक तुम हमारे लिए जामिन बने हो, तब तक हम आगरा शहर छोड़कर कहीं नहीं जाएँगे।”

महाराज ने रामसिंह को आलिंगन में भर लिया। रामसिंह औरंगज़ेब के यहाँ जामिन बन गया। महाराज और रामसिंह शपथ के बन्धन में बँध गये। एक ही समय में महाराज दो प्रकार की क़ैद में फँस गये, एक थी औरंगज़ेब की कुटिलनीति की तो दूसरी थी रामसिंह के स्नेह की। यह सारा ज़मानत वाला मामला भी विचित्र-सा था! देखा जाय तो अपनी सुरक्षा के लिए महाराज को ही औरंगज़ेब की ओर से रामसिंह को जामिन के रूप में माँगना चाहिए था, परन्तु ज़मानत महाराज को ही देनी पड़ी। उलटी रीति से न चले, तो मुग़लिया सल्तनत ही कैसी?

सम्भाजी और रामसिंह आगरा शहर का एक चक्कर लगाकर वापस लौट रहे थे। उनके घोड़ों के पीछे-पीछे दस-बारह राजपूत घुड़सवारों का दल भी चल रहा था। दिन ढलने को था। यह दल कुम्हारों की बस्ती में से गुज़र रहा था। कुम्हारों के धाबेवाले घरों के सामने, ऊँच-बड़े घमोरे, माट, मटके, सुराहियाँ आदि जमाये रखे थे। इन्हें देखकर रामसिंह ने हाथ के इशारे से सारे दल को ठहरने की आज्ञा दी। बिना मुड़े ही उसने आवाज़ दी, “डूँगरऽ!”

“जी,” कहता हुआ डूँगरमल सामने आया।

https://t.me/Sahityajunction

“इनमें से कुछ मटके राजासाहब के आदमियों के लिए ले लो।” रामसिंह ने एक कुम्हार के ओसारे की ओर इशारा करके कहा। कुम्हार ने जब देखा कि शाही सवारियाँ रुकी हुई हैं, तो उसने चाक घुमाना बन्द कर डण्डे से चाक को रोक दिया। आगे बढ़कर रामसिंह और युवराज सम्भाजी को कोर्निश करके वह विनम्रता से बोला, “क्या हुक्म है सरकार? क्या ख़िदमत करूँ?” उसके सिर पर उत्तर भारतीयों वाला मुँडासा बँधा था। अपने कीचड़-सने हाथ उसने मराठा-मावले लोगों के ‘राम-राम’ वाले ढंग से नमस्कार करने के लिए जोड़े हुए थे।

“कुछ अच्छे-से मटके दो। इन मेहमानों के लिए ज़रूरत है,” रामसिंह ने राजकुमार सम्भाजी की ओर इशारा करके कहा।

कुम्हार ने आँखों पर ज़रा ज़ोर देकर सम्भाजी की ओर देखा। सहज स्वाभाविक रूप से ही उसके मुख से हल्के बोल निकले, “सवारियाँ मावल देश की दिखलाई देती हैं।” तभी कुम्हार की दृष्टि सम्भाजी राजा की छाती पर पड़ी हुई कौड़ियों की माला की ओर गयी।

कुम्हार की बोली सुनकर सम्भाजी राजा की दायीं भौंह अचानक अनजाने ही ऊपर चढ़ गयी —‘अरे, यह आदमी तो हमारे देश का दिखाई देता है। बोली भी मावलों की-सी है, दीखता भी मावल-खण्ड का है।’ एक विचार उनके मन के चाक पर गोल-गोल घूमने लगा और निश्चित आकार धारण करने लगा। कुम्हार ने एक पत्थर उठाया। उससे एक अच्छे-पके मटके को ठन-ठन बजाकर डूँगरमल को दिखाया। सम्भाजी के मन में भी एक नयी बात की टंकोर टनटना उठी।

मटके हाथ में लेकर उनके भारीपन और पक्केपन की जाँच करके डूँगरमल ने चार मटके पसन्द किये। रामसिंह ने अपनी कमर के दुपट्टे में खोंसी हुई दीनारों की थैली बाहर खींचकर घोड़े पर बैठे-बैठे ही डूँगरमल की ओर फेंकी।

उसे लपककर डूँगरमल ने कुम्हार को घड़ों की क़ीमत के रूप में दीनार दिये। थैली फिर लाकर रामसिंह को दे दी।

कुम्हार ने और डूँगरमल ने वे घड़े चार सवारों के हाथ में दे दिये और डूँगरमल घोड़े पर सवार हो गया। रामसिंह को कुम्हार ने फिर एक बार तसलीम की।

“चलिए, कुँवरजी,” रामसिंह ने अपनी गर्दन को एक झटना देते हुए सम्भाजी से कहा।

रामसिंह ने घोड़े को ज्यों ही एड़ लगायी, शेष राजपूत अश्वारोहियों ने भी घोड़ों को एड़ दी। सारा दल निकल पड़ा।

कुमार सम्भाजी ने जानबूझकर ही घोड़े की बागडोर को खींचकर अपने घोड़े को एक हल्की-सी ख़ास एड़ लगाने का दिखावा किया। घोड़ा गड़बड़ा गया, समझ न पाया कि आगे जाना है या पीछे जाना है, इस कारण खुरों को आगे-पीछे नचाता हुआ वहीं खड़ा रह गया। जब सम्भाजी ने यह ठीक-ठीक देख लिया कि रामसिंह-डूँगरमल का दल पाँच-दस कदम आगे निकल गया है, तो उन्होंने झट से अपने गले से बड़े-बड़े मोतियों का कण्ठा निकालकर हाथ में ले लिया।

कुम्हार सम्भाजी के घोड़े की ओर देखता हुआ दीनार मुट्ठी में थामे खड़ा था। सम्भाजी ने अपना कण्ठा कुम्हार की ओर फेंका। बोले, “हम मावल देश के हैं। भवानी के उपासक हैं! जान-

https://t.me/Sahityajunction

पहचान रखना हमारी। हम चलते हैं, राम-राम।" कहकर सम्भाजी ने घोड़े को एक ज़ोरदार एड़ लगायी और आगे बढ़ गये।

"राम-राम जी," कुम्हार के ये शब्द सम्भाजी ने सुने ही नहीं।

भौचक बने कुम्हार ने मोती-कण्ठे की ओर देखकर अनुमान कर लिया, "यह बच्चा तो मावले सरदार का दिखाई देता है।" वास्तव में वह कुम्हार मराठा प्रदेश का मूल निवासी था। हाथ की कारीगरी उसे उत्तर भारत के आगरा शहर में खींच लायी थी।

अब घटनाएँ दिन-रात की तरह एक-दूसरे का पीछा करती हुई घूम रही थीं।

रामसिंह को विश्वास दिलाने की दृष्टि से महाराज ने उसके राजपूत शस्त्रधारी सैनिकों का पहरा अपने पड़ाव पर लगवा दिया।

सम्भाजी और रामसिंह की घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी। जो कुछ हुआ था, वह इतना विचित्र और भयानक था कि राजासाहब और कुँवर सम्भाजी की सुरक्षा के लिए रामसिंह अब पूरा चौकस बना हुआ था। 'ये शाही मेहमान अपने देश में सही-सलामत कैसे पहुँच सकेंगे'—इस बात की चिन्ता उसे सता रही थी। इस चिन्ता के दो कारण थे। एक तो यह कि दिया वचन निभाना राजपूत का बाना था, और दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण था कि यदि महाराज और सम्भाजी को यहाँ कुछ हो गया, तो दक्षिण देश में बसनेवाले उसके पिताजी मावलों के भीषण आक्रमण से सुरक्षित बचकर आ सकेंगे अथवा नहीं, इस बारे में भी उसे सन्देह था! जगदम्बा ने ही अपना यह रहस्यमय त्रिशूल आगरा की छाती पर ताना हुआ था। परन्तु इस पर उस जगदम्बा का भी वश कहाँ था? महाराज और सम्भाजी तो उसके उपासक ही थे, परन्तु स्वयं मिर्ज़ा राजा भी उसके भक्त थे। आख़िर उस माँ जगदम्बा को तो सभी भक्तों का ध्यान रखना था।

महाराज को काबुल के अभियान पर भेजने का अपना निश्चय औरंगज़ेब ने रामसिंह को बता दिया था। परन्तु न जाने किस कारण वह निर्णय बाद में उसने बदल दिया।

महाराज ने औरंगज़ेब के वज़ीर ज़ाफ़र ख़ाँ की हवेली पर जाकर उससे भेंट की और उसे बहुमूल्य नज़राना भी दिया। परन्तु बादशाह से मध्यस्थता करने का यह उपाय भी उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ।

दक्षिण देश से मिर्ज़ा राजा के ख़लीते औरंगज़ेब को मिल रहे थे। अन्ततः औरंगज़ेब ने तंग आकर मिर्ज़ा राजा को सन्देश भेजा, "तुमने दक्खिनी 'शीवा' को किस-किस बारे में ज़ुबान दी है? उन सब बातों की सिलसिलेवार तफसील भेजो।"

महाराज के हाथ में अब एक ही चाल शेष थी—औरंगज़ेब के सामने सुलिखित प्रार्थना-पत्र भेजना।

अमीन ख़ाँ की मारफ़त राजासाहब ने औरंगज़ेब के सामने यह अर्ज़ी पेश की : "पुरन्धर की सुलह के समय तय किये मुताबिक मेरे क़िले अगर बादशाह मुझे वापस दे दें, तो मैं उन्हें दो करोड़ रुपये पेश करूँगा। मुझे दक्खिन जाने की इजाज़त मिले। मैं अपने बेटे सम्भाजी को आगरा में ही छोड़ जाऊँगा। बादशाह चाहें, तो मैं कसम उठाने को तैयार हूँ। दक्षिण में बादशाह सलामत की आदिलशाह के बीजापुर पर मुहिम चल रही है। मुझे वहाँ जाने की इजाज़त मिले। उस मुहिम में मैं फतह पाकर दिखाऊँगा। समय आया तो उस जंग में अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर भी

https://t.me/Sahityajunction

आलीजाह के कदमों में अपनी चाकरी को सही साबित करूँगा!"

अमीन ख़ाँ ने यह अर्ज़ी वज़ीर ज़ाफ़र ख़ाँ के द्वारा दरबार में पेश करायी। इस दरबार में सम्भाजी रामसिंह के साथ उपस्थित थे। ज़ाफ़र ख़ाँ ने वह अर्ज़ी ज़िल्लेसुभानी औरंगज़ेब को पढ़कर सुनायी।

अपने हाथ की तसबीह रोककर औरंगज़ेब ने उस प्रार्थना-पत्र का एक-एक शब्द बहुत ध्यानपूर्वक सुना। वह अर्ज़ी सुनते समय उसके हाथ की माला के चार मनके हमेशा की तरह सीधे न फेरे जाकर उलटे ही फिर गये। यह बात उसके ध्यान में भी नहीं आयी। झुके हुए ज़ाफ़र ख़ाँ के हाथों रखी अर्ज़ी के पुलिन्दे की ओर देखते हुए निहायत ख़ामोशी से औरंगज़ेब ने कहा, "ज़ाफ़र, देखो 'शीवा' कितना इनायती है! शाही इलाक़े के तीन करोड़ रुपये हज़म करके हमें दो करोड़ बख्श रहा है!!" और क्या जाने क्या कुछ बुदबुदाते हुए वह तख़्त पर से उठ खड़ा हुआ। दरबार बरख़ास्त हो गया।

सम्भाजी के साथ-साथ रामसिंह भी दरबार से बाहर निकला। सब दरबारी लोग बाहर चले गये। उस ख़ाली 'दीवान-ए-ख़ास' में बस कन्नौजी धूप के गोल-गोल छल्ले ही उड़ रहे थे।

रामसिंह सम्भाजी को साथ लेकर डेरे पर आया। वहाँ महाराज रामसिंह की प्रतीक्षा में बैठे थे। डेरे में त्र्यम्बकपन्त, रघुनाथपन्त, निराजी आदि लोग उपस्थित थे। रामसिंह और सम्भाजी तम्बू के भीतर आये।

"क्या हुक्म हुआ हमारी अर्ज़ी के बारे में रामसिंह?" महाराज ने रामसिंह से पूछा।

"आपकी अर्ज़ी के बारे में आलीजाह ने कुछ कहा नहीं, राजासाहब। हज़रत ज़रूर सोचकर कुछ-न-कुछ करेंगे ही। आप फिक्र न करें।" रामसिंह वहीं थोड़ी देर ठहरकर अपने आदमियों के साथ अपनी हवेली की ओर वापस चला गया।

अपने हाथ पीठ पर बाँधे हुए और दृष्टि पैरों की ओर लगाये हुए महाराज डेरे में ही इधर-उधर घूम रहे थे। कुमार सम्भाजी पलँग पर बैठकर महाराज की बेचैनी को देखकर व्याकुल हो रहे थे।

"रघुनाथपन्त, बादशाह हमारी अर्ज़ी के बारे में क्या फैसला करेगा?" महाराज ने बीच में रुककर रघुनाथपन्त कोरडे से पूछा।

"युवराज जी को यहाँ रखकर जाने की जो बात आपने लिखी है, उसका कुछ-न-कुछ अनुकूल परिणाम निकलेगा प्रभु!" खेमे की कनात के पास खड़े रघुनाथपन्त ने कहा।

यह सुनते ही महाराज ने कुमार सम्भाजी की ओर देखा। उन्हें माँ साहिबा (जीजाबाई) के कहे शब्द याद आ गये : 'यदि अवसर आ पड़े और राज्य के लिए किसी को दाँव पर लगाना ही हो, तो पुरानी पीढ़ी के लोगों को लगाना चाहिए। नयी पीढ़ी के युवा जनों के द्वारा तो भविष्य की योजनाएँ साकार करनी चाहिए।'

महाराज सम्भाजी की ओर मुड़े, उन्हें कुछ समझाने-बुझाने की दृष्टि से। परन्तु...

जैसे अकस्मात् ही आकाश में अन्धड़-बवण्डर के बादलों के नगाड़ों की गड़गड़ाहट गूँज उठती है, उसी प्रकार अनगिनत घोड़ों के टापों की आवाज़ों की गड़गड़ाहट महाराज ने और शेष लोगों ने अकस्मात् सुनी। सुनते ही महाराज एकदम चौकन्ने हो गये। सम्भाजी झट से पलँग पर से उठ खड़े हुए। दोनों के टोपों की मोतियों की लड़ियाँ झटकों से थरथरा उठीं।

https://t.me/Sahityajunction

रामसिंह का पहरेदार नंगी तलवार लिये बाहर से घबराता-हड़बड़ाता हुआ भीतर आया। उसके पीछे-पीछे ही बाहर गये हुए रघुनाथपन्त, त्र्यम्बकपन्त और निराजी भी हथियार खींचे हुए भीतर आये। सभी के काँपते-उलझे हुए अस्पष्ट बोल राजासाहब और सम्भाजी के कानों में पड़े, "धोखा हुआ है स्वामी! हबशी सैनिक हथियार खींचे आ रहे हैं। भागिए, दौड़िए!!"

इन बाण-से तीखे शब्दों से महाराज भी गड़बड़ा उठे। थाल में रखी 'भवानी' तलवार उठाने के लिए उन्होंने कदम बढ़ाये ही थे कि फिर बालक सम्भाजी की ओर देखकर उन्होंने कदम वापस खींच लिये। सम्भाजी को उन्होंने एकदम पास खींचकर अपनी देह से चिपटा लिया। एक-एक क्षण बीत रहा था। परन्तु इतनी-सी ही देर में राजासाहब के मन में न जाने कितने विचारों के हथियार आपस में टकरा उठे। राजगढ़ से निकलने के बाद से आज तक हृदय में ही दबाकर रखे हुए अपमान, चिन्ता, वेदना आदि भावों के बाँध फूट पड़े।

'श्री के आशीर्वाद का फल यह राज्य...युद्धभूमि में खेत रहे स्वामिभक्त सैनिक...राजगढ़ से विदा होते समय माँ साहिबा द्वारा हाथ पर रखा दही का थक्का...माँ साहिबा...मिर्ज़ा राजा जयसिंह...' ऐसे विचित्र अजीब दृश्य उनकी आँखों के सामने तैर-से गये। 'न जाने कितने हबशियों के क्रूर वार अब हमारे और बालक सम्भाजी के शरीरों पर होने वाले हैं,' इस कल्पना के मन में आते ही महाराज का तन-मन थर्रा उठा, 'ओह! अभी जीवन की बाजी अधूरी है, पराया देश है, इन क्षणों में इकलौते पुत्र के साथ आकस्मिक और अपमान-भरी वह मृत्यु! सर्वस्व की होली! शतरंज की हारी हुई बाज़ी! बदनामी भरी पराजय!'

महाराज के सूर्यवत् तेजवान् नेत्रों में भी चिन्ता घिर आयी। सम्भाजी को अपने शरीर से दबाकर पकड़े हुए उसे अंक में भरते हुए महाराज के काँपते होठों से भर्रायी वाणी में ममता से आर्द्र ये शब्द बिखर पड़े, "प्यारे ऽ सम्भू ऽ, विश्वासघात हुआ, हमने धोखा खाया!"

तलवार के फाल में जिस प्रकार धार समायी रहती है, उसी प्रकार बालक सम्भाजी भी अपने आबासाहब की भुजाओं के आलिंगन में चिपके हुए थे। गर्दन ऊपर उठाकर वह महाराज के मुख की ओर देख रहे थे और छाती में उठ रही थीं बेचैनी की असंख्य लहरें।

"महाराज साहब ऽऽ," कहते हुए उन्होंने अपना मुख महाराज के अँगरखे से बार-बार रगड़ लिया। वे पिता-पुत्र काले गहरे बादलों के बीच घिरी विद्युल्लेखा के समान काँप रहे थे।

बेतहाशा दौड़कर आते हुए घोड़ों की टापों ने कुछ ही क्षणों में डेरे के चारों ओर घेरा डाल दिया। घोड़ों को जब अचानक रोका गया, तो अगले पैर ऊपर उठाकर खुरों को पटकते हुए वे हिनहिना उठे। हिनहिनाहट की तेज़ आवाज़ों ने सारे वातावरण को गुँजा दिया। इसके तुरन्त बाद एक घने, रोयेंदार, उजड्ड और मज़बूत हाथ ने खेमे के झिरझिरे परदे को ऊपर उठाकर फेंक दिया और भीतर आया—ठोड़ी की ओर झुके हुए भारी होठों वाला, पत्थर के रंग का-सा आगरा का भारी-भरकम डील-डौलवाला हबशी फ़ौजदार सिद्दी फ़ौलाद ख़ाँ!

कमर में बँधी चौड़े फाल की जमदाड़ की मूठ को अपनी मोटी-मोटी उँगलियों से पकड़कर वह दरवाज़े के पास ही ठहर गया। लिसोड़े के जैसी अपनी मोटी विरूप आँखों को तरेरते हुए उसने महाराज को देखा। उसकी ठोड़ी की ओर लटकने वाले मोटे होठ खुले और चौड़े-चौड़े दाँत चमक उठे, "मेरे हथियारबन्द फ़ौजियों का तुम पर कड़ा पहरा लग चुका है। तुम्हें किसी से भी मिलने-जुलने की सख़्त मनाही है। यह आलीजाह का हुक्म है। याद रखो।" उसकी मोटी घनी

https://t.me/Sahityajunction

भौंहें क्षण भर को खिंचीं, फिर फैल गयीं।

कन्धे पर चमचमाते हरे ख़िलअती कपड़े का दाहिना छोर पंख की तरह फैलाकर फ़ौलाद ख़ाँ वापस लौट पड़ा। उत्तर की प्रतीक्षा भी उसने नहीं की। जिस प्रकार मुहर्रम का ताबूत नाचते-नाचते आगे बढ़ जाता है, ऐसा वह तेज़ी से खेमे के बाहर निकल गया।

कुछ ही देर में खेमें के चारों ओर पाँच हजार विशालकाय हबशी सैनिकों की चौकियाँ लग गयीं। हबशियों ने तोप गाड़ियों की कतारें ऐसी जमा लीं कि तोपों के मुँह खेमे की ओर रहें।

कभी पन्हाला के क़िले पर सिद्दी जौहर ने घेरा डाला था, आज भी 'सिद्दी का घेरा' लग गया। मावल-खण्ड का सिंह आगरा की हरी चरागाह में बन्द हो गया! राजासाहब क़ैदी बन गये।

औरंगज़ेब के हाथ की तस्बीह और महाराज की छाती की कपर्दिकमाला में अब होशियारी के दाँव शुरू हो गये थे।

महाराज को क़ैदी बना लिया गया, परन्तु सम्भाजी पर यह बन्धन लागू नहीं था। वह रामसिंह की हवेली, आगरा शहर अथवा लालक़िले में आ-जा सकते थे। औरंगज़ेब को मालूम नहीं था कि उसने ऐसी छूट देकर कितनी बड़ी गफ़लत कर डाली थी। 'छोटा ही क्यों न हो, आख़िर शत्रु और साँप तो किसी के अपने नहीं होते'—यह सिद्धान्त वह भूल गया था! और यह तो था मावल देश का विषैला छोटा उड़नसाँप! ज़रा मौका मिलते ही सरसराता हुआ फन ऊपर उठाकर खड़ा होनेवाला!

महाराज अब ऊपर से बिल्कुल शान्त दिखलाई देते थे परन्तु उनके भीतर मन का मन से ही भीषण वाद-विवाद हो रहा था। उनके जागरूक मन को एक ही बात की लगन लगी थी—सम्भाजी और साथ आये सभी लोग इस यम की दाढ़ से छुटकारा कैसे पाएँ? कौन-सी युक्ति की जाय? कैसी चाल चली जाय? और महाराज ने भवानी का नाम लेकर शतरंज का पहला दाँव चलाया।

एक दिन शाम को राजासाहब को एवं सब प्रमुख विशिष्ट स्वामीजनों का सायंकाल की 'दीया-बत्ती' के समय का नमस्कार करने कुछ मालवे सैनिक आये। उन्हें देखते ही महाराज ने त्यौरियाँ चढ़ाकर डपटकर पूछा, "क्यों आये हो तुम लोग? चले जाओ यहाँ से! युवराज का और हमारा जो कुछ होना होगा सो होगा।" महाराज ने खड़े हुए सम्भाजी को अपनी ओर खींचते हुए कहा।

मावले हड़बड़ा गये। यह सारा शोरगुल सुनकर फ़ौलाद ख़ाँ डेरे के पास आया। उसे आया देखकर लगातार तेज़ी से इधर-उधर घूमते हुए महाराज मावलों से कड़ककर बोले, "क्या कहते हैं हम, चले जाओ! अब तुम्हारे बारे में कुछ सोचने का हमारे पास समय नहीं। निकल जाओ यहाँ से!"

महाराज ने जब देखा कि मावले सैनिक भौचक्के हो गये हैं, तब उन्होंने गुप्त संकेत की निशानी के रूप में अपने गले की माला को उठाकर माथे से शिवतिलक से एक बार लगाया और नीचे छोड़ दिया। चतुर मावले इस दिखावे का अर्थ तुरन्त जान गये।

"परन्तु हम जाएँ कहाँ?" गरदन नीचे करके दावलजी घाटगे ने पूछा।

"कहीं भी जाओ। देश को वापस जाओ। निकलो।" महाराज ज़ोर-ज़ोर से इधर-उधर चक्कर

https://t.me/Sahityajunction

लगाते हुए बोले।

"क्या मामला है?" सिद्दी फ़ौलाद ख़ाँ ने भीतर आते हुए पूछा।

"चाकरी करते हैं ये! क़ैदी की चाकरी! ख़ान, इन लोगों का बोझ हम पर अब किसलिए? इन्हें जाने दो। मैं आलीजाह की ख़िदमत में दरख़ास्त देता हूँ। इन्हें राहदारी का परवाना दे दो।"

महाराज ने फ़ौलाद ख़ाँ की मारफ़त एक अर्ज़ी औरंगज़ेब को दी और अपनी अस्थायी सेना को वापस लौट जाने का परवाना देने की प्रार्थना की।

बहिर्जी[1] ने अपने भेदिये जासूस भिन्न-भिन्न वेश में आगरा में जहाँ-तहाँ बिखेर दिये। उसका नाम था 'बहिर्जी' परन्तु यह बहिर्जी 'बहरा जी' नहीं था। शत्रु के किसी भी महत्त्वपूर्ण और विशेष स्थान के रहस्य सुनने में उसके कान पूरी तरह सजग थे। नाम सीधा-सादा-सा था 'बहिर्जी' और काम कर दिखाता था बहुविध बहुरूपी!

'मुझे रामसिंह के पड़ाव से हटाकर अन्यत्र रखा जाय।' ऐसी एक अर्ज़ी भी महाराज ने औरंगज़ेब के सामने पेश की।

'रामसिंह हमारा कदीम चाकर है। तुम्हें वहीं रहना होगा,' औरंगज़ेब ने उत्तर भिजवाया।

'मैं जीवन से ऊब चुका हूँ। मुझे आला हज़रत काशी में निवास करने की इजाज़त दें। मेरी इच्छा है कि वहाँ संन्यासी बनकर रहूँ।' महाराज ने इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र भी औरगंज़ेब को भेजा।

'शीवा औलिया बनना चाहता है! ठीक है। उससे कहो कि इलाहाबाद के क़िले में जाकर वह औलिया बनकर रहे। वहाँ हमारा सूबेदार बहादुर ख़ाँ उसकी अच्छी तरह हिफाज़त करेगा।' औरंगज़ेब ने उत्तर भिजवाया।

महाराज और औरंगज़ेब के बीच शतरंज का यह खेल अब एक दूसरे की चालों को मात देने के लिए पूरे ज़ोरों से चल रहा था। उस समय जो कुछ हो रहा था या पिछले दिनों हो चुका था, उसे देखकर अब सम्भाजी की समझ और अनुभव में काफी वृद्धि हो गयी थी। हम कैसी उलझन में फँस गये हैं, यह वे समझ गये थे। अब वे रामसिंह से और अधिक आदरपूर्वक व्यवहार करने लगे थे। जब भी समय मिलता, तभी वह कुम्हारों की बस्ती में जाकर कुम्हार से मिलते रहते थे। हमेशा की तरह वह एक दिन रामसिंह के साथ लालक़िले में आये। रामसिंह ने सुना कि बादशाह सलामत पहलवानों की कुश्तियाँ देख रहे हैं।

रामसिंह सम्भाजी को साथ लेकर कुश्ती के अखाड़े के पास आया।

एक विशाल गोलाकार मैदान में मट्ठा और तेल मिलाकर तैयार की हुई लाल मिट्टी का अखाड़ा था। उस अखाड़े के चारों ओर लकड़ी का मज़बूत कठघरा था।

कठघरे के निकट बनी हुई एक बैठक पर औरंगज़ेब बैठा था। उसके सिर पर आफ़ताबी पंखे और चँवर डुलाये जा रहे थे। उसके पीछे कुछ सरदार खड़े थे। अखाड़े की लाल मिट्टी आगरे की तेज़ धूप में चमक रही थी। उसे देखते हुए औरंगज़ेब मन में सोचने लगा—'ख़ुदाताला ने हर क़िस्म की मिट्टी पैदा की है। लाल, काली, सफ़ेद भी मगर हरी मिट्टी क्यों नहीं पैदा की?' बेचैन होकर उसने हाथ में पकड़े हुए गुलाब के फूल को नाक से लगाया ही था कि उसकी निगाह रामसिंह और सम्भाजी पर जा पड़ी!

https://t.me/Sahityajunction

हरे रंग के जाँघिये पहने पठान, हबशी, उज्बेकी, तुरकी आदि विकराल देहवाले पहलवान अखाड़े में उतरे हुए थे। औरंगज़ेब को कोर्निश करने के बाद 'या मौला अली' की गर्जना करके एक पैर से नाचते हुए वे सारे अखाड़े का चक्कर लगा रहे थे। कुश्ती शुरू होने से पहले अखाड़े की मिट्टी सामनेवाले पहलवान के हाथ में देखकर दनादन ताल ठोंक रहे थे। आपस में गुँथे हुए एक-दूसरे को पछाड़ने का प्रयास कर रहे थे। उनके चमकदार शरीरों से पसीना टपक रहा था।

सम्भाजी रामसिंह के साथ ही उन मल्लों के बलवान् और सुडौल शरीरों को देखते हुए उस कठघरे के पास खड़े हो गये।

'एकदम ज़िल्ले-सुबहानी के सामने कैसे जाए'—यह सोचकर रामसिंह भी वहीं ठहर गया। अखाड़े में होनेवाली कुश्तियों को देखने में दोनों ही खोये हुए थे।

"रामसिंह," बख़्शी असद ख़ाँ की आवाज़ सुनकर रामसिंह जैसे एकदम जाग उठा।

"क्या बात है?" रामसिंह को न जाने कितने दिनों के बाद आज ऐसे कुछ क्षण प्राप्त हुए थे कि जब वह जी-भर कुश्ती देखने में मग्न था, परन्तु अब वे क्षण भी जाते रहे।

"आला हज़रत ने पूछा है कि 'शीवा' का यह बच्चा कुश्ती लड़ेगा क्या?" असद ख़ाँ ने मानो रामसिंह के गले पर ही तलवार की नोक रख दी।

बालक सम्भाजी का हाथ अपने हाथ में पकड़कर रामसिंह ने कहा, "ज़रा इनकी उम्र तो देखो, असद ख़ाँ!"

बख़्शी असद ख़ाँ अभी आगे कुछ सोच ही रहा था कि सम्भाजी सीधे उससे ही कह उठे, "हाँ, हम ज़रूर लड़ेंगे कुश्ती, परन्तु चाकर बनाकर रखे हुए इन पहलवानों से नहीं। ऐसे पहलवान तो हमें रोज़ मुजरे किया करते हैं। हाँ, हमारी बराबरी का कोई शहज़ादा अखाड़े में उतरे, तो हम भी जाँघिया कस लेंगे।"

असद ख़ाँ ने सम्भाजी का यह कथन औरंगज़ेब को कह सुनाया। औरंगज़ेब ने अपनी बैठक पर बैठे-बैठे ही एक बार सम्भाजी को घूरकर देखा।

"असद, उसे पहलवानों की ठण्डाई पिलाओ," औरंगज़ेब ने इतना ही कहा परन्तु मन में सोचने लगा—'हमारे सपूत शहज़ादे न जाने कैसे बनेंगे?' इसी सोच-विचार में डूबा हुआ वह बैठक से उठा और नमाज़ पढ़ने के लिए अपने महल की ओर चला गया।

राजगढ़ के देवमन्दिर में शालिग्रामी शिवलिंग के सन्मुख चन्दन के पीढ़े पर माँ जीजाबाई बैठी थीं—अन्धड़वाली वर्षा के आघात से सुन्न और घनी अँधियारी सन्ध्या के समान!

नन्हे युवराज और महाराज आगरे में क़ैदी बना लिये गये—यह समाचार सुनते ही उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उनके हृदयपुष्प को किसी ने डण्ठल सहित उखाड़ फेंका हो। इस समय वे अपने थके-बूढ़े काँपते हुए हाथों से एक-एक बिल्वपत्र शिवपिण्डी पर चढ़ा रही थीं। उन्होंने संकल्प किया था, पिण्डी पर एक लाख बिल्वपत्र अर्पण करने का, सम्पूर्ण व्रत की अवधि में पूर्ण निराहार रहने का।

एक और भी स्त्री थी वहाँ, जो अपने गुदना-भरे हाथों से और उदासी-भरे मन से उनके

https://t.me/Sahityajunction

सामने सौ-सौ बेलपत्रों से भरी थालियाँ रखती जा रही थी। यह स्त्री थी—धाराबाई। धाराऊ[1] सम्भाजी की माता सईबाई की मृत्यु के बाद उन्हें दुग्धामृत पान करानेवाली उनकी धाय माँ! एक थाली की बेलपत्तियाँ समाप्त होते ही धाराऊ संख्या की याद के रूप में एक सोने की मुहर उठाकर पास रखे तरबहने में रखती जा रही थी।

उस समय देवमहल में इतनी भीषण शान्ति का साम्राज्य छाया था कि 'शान्ति' शब्द का मन-ही-मन उच्चारण करने से भी वातावरण की शान्ति भंग हो जाय! लटकनेवाले अखण्ड दीप का और उसमें भरे हुए करंज के बीजों के तेल का तुमुल संघर्ष छिड़ा था। और 'चर्रर्रऽऽ' आवाज़ हो रही थी। माँ जीजाबाई के हृदय को हो या न हो, परन्तु धाराऊ के हृदय को वह आवाज दो टूक किये डालती थी।

जिजाऊ ने अपनी मूक वाणी द्वारा और खुले नेत्रों द्वारा सामने खड़ी उग्र-दर्शना जगदम्बा के साथ एक भीषण संघर्ष ही छेड़ा हुआ था! एक-एक बेलपत्र रखने के साथ-साथ माँ जीजाबाई के मन की स्मृतियों का एक-एक आवरण खुलता जा रहा था। वहाँ थे सैकड़ों आवरण; हंज़ारों तहें। उनके मन ने कहा, 'हे माँ जगदम्बे। कितना छल-कपट किया है तूने हमसे! ज्येष्ठ[1] सम्भाजी महाराज को तूने कनकगिरि में हमारे बीच से उठा लिया। होदेगिरि[2] के वनों में तूने हमारे सिन्दूर को ही पैरों तले रौंदकर मार डाला। शिवाजी को पुत्र प्राप्ति हुई इस कारण अभी हमारे मुख से प्रसन्नता के दो बोल भी न निकले थे कि तूने हमारी बड़ी बहूरानी को हमसे छीन लिया! और आज...आज...'

'जो कुछ हमें भाता है, वही तेरे मन को भी क्यों भाता है? आख़िर तू हमें ही अपना प्रिय क्यों नहीं बना लेती? या हमारा यह सूना भाल देखना तुझे भी पसन्द नहीं? बोल ना माँ, यह अपना त्रिशूल तू अभी और कितनी बार हमारे गले पर लगाने वाली है? क्यों करें हम पूजा तेरी?'

'नहीं, नहीं, कहे देती हैं हम, तुझे यह सब रोकना होगा! हमारे महाराज और नन्हे युवराज का यदि बाल भी बाँका हुआ तो, याद रखना! हम तेरी भी सम्मान-मर्यादा सँभाले नहीं रखेंगी!!'

आगरा का गर्म प्रदेश अब और भी झुलसने लगा था। मृग नक्षत्र के उदित होते ही बौछारों और बरसात की झड़ियों से ताजमहल, हवेलियाँ और कोठियाँ भीगने लगीं।

पहरा देने का काम अधिक सुविधाजनक हो, इस कारण फ़ौलाद ख़ाँ ने महाराज का निवास रामसिंह की हवेली से हटाकर पासवाली पत्थरों की बनी एक कोठी में बदल दिया। खुले मैदान के तम्बू-शामियाने की अपेक्षा इस कोठी की क़ैद महाराज के लिए अधिक कठोर बन गयी। बाहर वर्षा की धाराएँ थीं, भीतर राजा के मन में भी विचारों की जलधाराएँ बरसने लगीं। बौछार पर बौछार, विचारों के बाद विचार जैसे एक-दूसरे का पीछा करने लगे।

और एक दिन यह अजूबा हुआ कि भले-चंगे महाराज अचानक बीमार हो गये। उनके अपने ही आदमियों को भी यह समाचार सुनते ही एक गहरा धक्का लगा। रोगी व्यक्ति को शायद सावधानी-सतर्कता के अधिक उपाय सूझते हैं।

'मरहठा बीमार हो गया'—यह खुशी की ख़बर फ़ौलाद ख़ाँ के कानों तक जा पहुँची। पहरे

https://t.me/Sahityajunction

पर तैनात हबशियों ने ख़बर पहुँचा दी थी।

वह पूछताछ करने के लिए राजा साहब की कोठी में आया। मोटे होठों को खोलते हुए उसने पूछा, "सुना है कि तुम्हारी तबीयत ख़राब है?" लिसोड़े-जैसी उसकी आँखों में चमक पैदा हो गयी। पैर पीछे खींचनेवाले कामचोर घोड़े को जैसे घोड़ों का चतुर पारखी देखता-जाँचता है, वैसे ही फ़ौलाद ख़ाँ महाराज की ओर ताकने लगा!

गर्म लोहे का ठप्पा पुट्ठे पर लगते ही जैसे घोड़ा कराह उठता है, वैसे ही महाराज बिलकुल स्वाभाविक रूप से, भारी वेदना से पीड़ित व्यक्ति के समान कराह उठे। सारे मुखमण्डल पर असह्य पीड़ा की रोली फैली थी। वे धीरे से पलँग पर से उठ बैठे। उठते ही सह्याद्रि की विशाल शिला की-सी उस छाती से ज़ोर की खाँसी उठी।

"खान, हमें अब अपनी ज़िन्दगी का भरोसा नहीं रहा। बेचैनी से प्राण व्याकुल हो उठे हैं। हम पर एक मेहरबानी करो। हमारे पापों को धो डालने का एक मौक़ा दो। हमारी इच्छा है कि कुछ दान-ख़ैरात करें। मेवा-मिठाई की, दीनारों की, सब चीजों की।" हाँफते हुए जैसे-तैसे ये शब्द कहकर महाराज शान्त हो गये। उनके मस्तक के शिवतिलक में सिकुड़न आ गयी। उन्होंने पलँग की चौखट की बाजू की लकड़ियों को दोनों हथेलियों में ज़ोर से दबा लिया। सिर नीचे लटका लिया और जैसे वह पश्चात्ताप और ग्लानि से जल रहे हों, और अब अपने किये 'पापों' का बोझ उतार फेंकना चाहते हों, इस तरह अत्यन्त सहज रूप में उन्होंने अपनी गर्दन दायें-बायें हिलायी। ख़ान आँखें फैलाकर उन्हें देख रहा था।

महाराज की बगल में ही पलँग पर बैठे हुए सम्भाजी भयभीत काँपती दृष्टि से महाराज की ओर देख रहे थे!

"ख़ान, हमें ख़ैरात करने के लिए आलीजाह से इजाज़त दिलवा दो। बस, हम पर इतनी मेहरबानी करो।"

जैसे वेदना असह्य हो उठी हो, इस प्रकार का अभिनय करते हुए महाराज ने "हे जगदम्बे, जगदम्बे" कहा। फिर आँखें बन्द कर वे पलँग पर लुढ़क पड़े, जैसे किसी कँगूरे के ढोंके-ढेले धीरे-धीरे गिरते रहें और सारा कँगूरा ही नीचे आ रहे। इस अभिनय द्वारा महाराज ने फ़ौलाद को मानो भवानी की माला की गुत्थियों में उलझा लिया।

"जरूर...हम ज़रूर कोशिश करेंगे।" ख़ान के मोटे सख्त होठों से शायद जीवन में पहली बार ही कुछ नरमी के शब्द निकले हों!

ख़ान कोठी के बाहर चला गया। सम्भाजी बैठे-बैठे महाराज के माथे की ओर देखते रहे। महाराज की आँखें बन्द थीं और माथे पर बीच-बीच में बल पड़ रहे थे।

औरंगज़ेब ने बड़ी प्रसन्नता से महाराज को दान-ख़ैरात करने की इजाज़त दे दी। त्र्यम्बकपन्त और निराजीपन्त आगरा की मेवा-मण्डी से मध्यम आकार वाले पिटारे मिठाइयों से भर-भरकर राजकीय प्रथा के अनुसार महाराज के राज-स्पर्श के लिए भेजने लगे।

फ़ौलाद के भारी-भरकम हबशी पहरेदारों को यह ख़याल में ही न आ पाया कि पिटारे धीरे-धीरे बड़े आकार के क्यों होते जा रहे हैं!

महाराज के 'हस्त-स्पर्श' पाये हुए ये मिठाई के पिटारे सारे आगरा शहर में जहाँ-तहाँ दिखाई

https://t.me/Sahityajunction

देने लगे। उन पिटारों की स्वादिष्ट मिठाइयाँ खाते समय सरायों में बसे फ़कीर और आगरा-निवासी आकाश की ओर हथेलियाँ कर के दुआ देने—"खुदा बीमार को सलामत रक्खे!!"

आगरा का आकाश बरसात के घने बादलों से घिर आया था। कोठी के भीतर बैठे महाराज के मन पर भी विचारों के डरावने काले बादल मँडरा रहे थे। प्रवाह में बहती नौका के समान कभी उनका मन तेज़ी से भागता हुआ राजगढ़ तक जा पहुँचता था और वहाँ जगदम्बा की मूर्ति के सम्मुख हताश मुद्रा में बैठी हुई अपनी माँ साहिबा को देखते ही घबराकर तुरन्त वापस लौट पड़ता था।

पाँयते की ओर बैठे असमंजस में डूबे सम्भाजी व्यथित नेत्रों से महाराज की ओर देख रहे थे! 'क्या सचमुच ही महाराज साहब बीमार हैं?' हर क्षण उठने वाली नयी निराली शंकाओं की घाटी में उनका मन इधर-उधर टक्करें खा रहा था।

उनके मुख पर छाया हुआ यह सन्देह महाराज से छिपा न रहा। वह धीरे से उठे और सम्भाजी के कानों के चौकड़ों के पास अपने होठ ले जाते हुए उन्होंने फुसफुसाते हुए कुछ कहा।

कोहरे से भरी किसी प्रातःकाल में शीतल वायु के कारण सूर्यफूल की पँखुड़ियों पर जैसे ओस की बूँदें प्रकट हो उठती हैं, वैसे ही मोतियों के समान अनमोल महाराज के ये बोल सम्भाजी सुनने लगे, "निराश न होओ! हमारी यह बीमारी बनावटी है। यहाँ से जैसे भी हो, निकल जाना है—हमें भी और तुम्हें भी। रामसिंह से मिलने आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की बातें ध्यान देकर सुना करो। कुम्हार बस्ती से सम्पर्क तोड़ी नहीं! सावधान रहो!"

"हे जगदम्बे, जगदम्बे" कहते हुए और कराहते हुए महाराज फिर पलँग पर लेट गये।

सम्भाजी ने एक बार उनके मस्तक पर चिह्नित शिवतिलक की ओर देखा। उनके हाथ अपने आप ही आगे की ओर बढ़ गये तथा महाराज के पैर दबाने लगे।

उस समय कोठी में विचित्र-सा वातावरण बन गया था। महाराज सचमुच ही बीमार हैं, एक आवरण सम्भाजी ने भी अपने चेहरे पर ढाँप लिया।

"दो पण्डित आपसे मिलने आये हैं। अन्दर आने की आज्ञा चाहते हैं। आलीजाह ने उन्हें आपसे मिलने की इजाज़त दी है!" कोठी के दरवाजे पर नियुक्त रामसिंह के पहरेदार नाथावत ने भीतर प्रवेश करके महाराज को बताया।

"आने दो उन्हें," महाराज ने पलँग पर लेटे-लेटे ही कहा। उत्तर भारतीय ब्राह्मणों का वेश धारण किये हुए दो व्यक्तियों को साथ लेकर नाथावत कोठी में आया। ये दो व्यक्ति थे—कवीन्द्र परमानन्द और इलाहाबाद के कवि कुलेश।

उन्हें आया देखकर महाराज पलँग पर से उठने का प्रयत्न करने लगे। महाराज को नमस्कार करके झट से आगे बढ़कर परमानन्द ने आग्रहपूर्वक कहा, "आप लेटे रहिए स्वामिन्!"

महाराज का यश सुनकर वे दोनों कवि उनसे मिलने के लिए आगरा आये थे। उन्होंने औरंगज़ेब से प्रार्थना की थी कि उन्हें महाराज से मिलने की आज्ञा दी जाय। औरंगज़ेब ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। शायद उसने मन में सोचा होगा कि 'रोगी शीवा को ये पण्डितगण

https://t.me/Sahityajunction

अपनी काफ़िरोंवाली पद्धति से ठीक-ठीक समझा देंगे कि जीवन कितना नश्वर है!'

परमानन्दजी ने अपना परिचय दिया। महाराज उठकर बैठ गये! "ये प्रयाग के एक कवि हैं—कविवर कुलेश!" परमानन्दजी ने कुलेश की ओर संकेत करते हुए महाराज से उनका भी परिचय करा दिया!

"बड़े सौभाग्य की बात है कि आपके दर्शन हुए," कवि परमानन्द ने कहा।

सम्भाजी की पीठ पर अपना हाथ रखकर महाराज ने धीरे-धीरे एक-एक शब्द बोलते हुए कहा, "यह हमारे सुपुत्र हैं—सम्भाजी!" सम्भाजी ने दोनों कवियों को नमस्कार किया।

कवि कुलेश ने जब महाराज और सम्भाजी को एक साथ देखा, तो उनके मन में यह विचार उठा—'काली माता, दुर्गाभवानी ने स्वयं अपने त्रिशूल से ही जिस अज्ञात महाकाव्य की रचना की है, ये दोनों उस महाकाव्य के दो सर्ग ही प्रतीत होते हैं! एक सर्ग पूर्ण हो चुका है—एक की अभी रचना की जा रही है। आज औरंगज़ेब ने अपने मेहँदी रँगे हाथ बढ़ाये हैं कि इन सर्गों को वह पोंछ डाले। कौन करेगा इन सर्गों की रक्षा?' कवि कुलेश के नेत्रों के सम्मुख साक्षात् शस्त्रधारी दुर्गा की मूर्ति चमक उठी। पास बैठे परमानन्दजी को और सम्भवतः उन्हें स्वयं भी सुनाई न दे पाया हो, इतना धीरे से वह बुदबुदाये, "रक्ष रक्ष दुर्गेश नन्दिनी!" महाराज ने अत्यन्त शान्त चित्त से दोनों कवियों के साथ चर्चा की। उसके पश्चात् दोनों कवि जब जाने लगे, तो महाराज तथा सम्भाजी को उन्होंने उत्तर भारतीय शैली से अत्यन्त सम्मानपूर्वक नमस्कार किया।

"हिरोजी, रामसिंह को हमारी इस इच्छा की सूचना दो कि हम अपने फीलख़ाने के सारे हाथी इन कविगणों को दान करना चाहते हैं।" महाराज ने अपने सेवक हिरोजी फर्ज़न्द को आदेश दिया!

"जी, सरकार," हिरोजी ने झुककर महाराज की आज्ञा स्वीकारी।

परमानन्द और कवि कुलेश महाराज की ओर देखते ही रह गये। परमानन्दजी से रहा न गया। आदरपूर्वक नमस्कार करके वह बोले, "स्वामिन्, हमें हाथियों से क्या प्रयोजन?"

"कविराज हमें वैराग्य उत्पन्न हो आया है। अब यह सराय छोड़ने की इच्छा है। आप ही कोई मार्ग बतलाएँ। हाथियों को कहीं न कहीं तो ठिकाने लगाना ही होगा।"

महाराज का प्रत्येक शब्द दो अर्थों से पूर्ण था। उनके इस कथन का जो आशय महाराज समझाना चाहते थे, उसे परमानन्द जी ने भलीभाँति ताड़ लिया था।

महाराज अब पलँग पर लेट गये। सम्भाजी ने उनके पैताने की ओर की शॉल उनके शरीर पर उढ़ा दी। उनके कानों में, मन में महाराज के बोल रह-रहकर गूँज रहे थे—'इस सराय से निकलना है। हमारी यह बीमारी बनावटी है। कुम्हारों की बस्ती से सम्बन्ध बनाये रखो। हाथियों को ठिकाने लगाना होगा।'

सम्भाजी धीरे-धीरे अपने महाराज साहब के चरण दबाने लगे। उस कोठी में महाराज की 'बीमारी' इस तरह रंग ला रही थी।

"यह भार अब असह्य हो गया है, हे माँ भवानीऽऽ! यह कैसी कठिन परीक्षा ले रही है तू हमारी?

https://t.me/Sahityajunction

वे पिता-पुत्र शत्रु के बन्दी बन गये। हम अपनी इस देह में क़ैद हैं। तेरी जय-जयकार करते हुए हमने तेरी पूजा के लिए 'वस्त्रज्योतियाँ'[1] जलायी हैं। और तू...? तूने हमारे इस मातृत्व को अपने जलते हुए दीपक के स्पर्श से न जाने कितनी बार जलाया है! तू तो सारे संसार की माता है, 'आऊ' है। फिर तेरे चरणों तले बैठकर भी हम अनाथ क्योंकर बनी हैं? ले ले माँ, वापस ले-ले। यह तेरी अपनी ही दी हुई यह हमारे प्राणों की हल्दी-रोली[2] तू ही अपने आठ हाथों से वापस ले ले! नहीं! नहीं! अब यह बोझ सहन नहीं किया जाता।" जैसे धूनी में बबूल की गाँठ जलती रहती है उसी प्रकार राजमाता जीजाबाई का हृदय असत्य वेदना की जलन से सुलग रहा था। उनके विचारों की चिनगारियाँ उस हृदय से निकलकर बाहर जा गिरती थीं और नष्ट हो जाती थीं। मन के आँगन में सर्वत्र बिखर जाती थीं!

उनके सम्मुख खड़ी थी जगदम्बा; समई और अखण्ड दीप की किरणों की जगमगाहट अपने शरीर पर ओढ़े खड़ी थी वह! समस्त संसार में मचे हुए 'अभद्र, अमंगल' को पी डालने के लिए ही मानो उसने अपने विशाल नेत्र अधिक विस्फारित किये हुए थे! इन नेत्रों की ओर देखते ही जिजाऊ बैठी-बैठी ही एकदम काँप उठीं। उनके चिन्तापुर मन और शरीर के तुलसी चौरे पर मानो किसी ने पात्र ही उलटकर शीतल जल के छींटों से तन-मन को सुन्न कर दिया हो! वे सिहर उठीं। मन में एक विचित्र-सा अमंगल विचार अकस्मात् उठा और वह विचार उनका एक पैर रक़ाबी में अटकाकर जैसे उन्हें दूर तक घसीटते हुए ले गया! इस मन की खींचातानी से उनके तन-प्राण आहत हो गये। जगदम्बा के विशाल विस्फारित नेत्रों की ओर देखते हुए जिजाऊ ने अपनी आशंका स्पष्ट की—'नर मुण्डों की तुझे सदा चाह रहती है। तूने आज ये आँखें अवश्य ही मेरे प्यारे पुत्र और युवराज की ओर फैलायी हैं!'—ऊँचे पहाड़ी दुर्ग के महल की प्राचीर से जैसे कोई पीतल की थाली गिरे और शिलाओं-कगारों से टकराती, काँपती, थपेड़े खाती हुई नीचे गहरी खाई में जा पड़े, इसी प्रकार व्यथाकारी इस अमंगल विचार ने उनके मन को कहीं अँधेरे गढ़े में ढकेल दिया।

"नहीं, नहीं, यह बोझ सहा नहीं जाता।" हतबुद्धि हुई जिजाऊ ने असह्य वेदना से मन्दिर के गर्भगृह देवासन के चबूतरे पर अपना सूना भाल रख दिया, जगदम्बा के सम्मुख! उनके मन की उलझी हुई स्थिति उस तलवार के फल के समान हो गयी थी, जो न तो म्यान में समा सके, और न ही बाहर निकलकर हाथ में आ पाये।

गर्भगृह के चबूतरे पर उन्होंने माथा टेका हुआ था। नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली थी। मन्दिर में भवानी देवी के सामने देवी-भक्त के हाथ की वस्त्रज्योति जैसे हवा में काँपती-लहराती है, वैसे ही जिजाऊ का सारा शरीर काँप रहा था।

घबराई हुई धाराऊ शीघ्रता से आगे आयी। परन्तु 'माँ साहिबा को कैसे पुकारूँ' यह भी वह समझ न पायी। देहात के एक कुर्मी किसान के घर से वह यहाँ राजमहल में आ गयी थी! सम्भाजी की धाय बनकर। जिजाऊ को कैसे दिलासा दिया जाय, इस सोच-विचार में डूबकर उसने सिसकते-सिसकते ही अपना गुदना भरा हाथ जिजाऊ की पीठ पर रखा। उसे इसकी भी सुध न थी कि उसकी अपनी आँखों से आँसू की बूँदें टपटप टपककर नीचे पीढ़े पर रखे हुए तरबहने में टपक रही हैं। उस पात्र में बेलपत्तियों की संख्या को स्मरण रखने के लिए रखी गयी सोने की वे मुहरें भरी थीं, जिन्हें उसने ही एक-एक करके रखा था। अब वह तरबहना भर चुका

https://t.me/Sahityajunction

था। वे मुहरें अब धाराऊ के मावल देस के आँसुओं से धुल रही थीं। उस देवमन्दिर की पत्थर की दीवारें भी उस भावपूर्ण दृश्य को अपनी मोहित और अभिभूत दृष्टि से देख रही हैं, यह सम्भवतः जिजाऊ तथा धाराऊ को भी पता न था!

जिसने अपना हाथ 'ढाढस' देने के लिए जिजाऊ की पीठ पर रखा हुआ था, वह थी 'धाराऊ'! उसका हाथ जिनकी पीठ पर रखा था और जिनका माथा जगदम्बा के चरणों में झुका हुआ था, वह थीं माँ जीजाबाई 'जिजाऊ'—महाराज शिवाजी की माता। और उन दोनों के सिर पर अपने विशाल नेत्रों के कृपामय हस्त फैलाये खड़ी थी जगदम्बा—समस्त मावल-खण्ड की माता! कैसा भावपूर्ण दृश्य था यह! देवमन्दिर की दीवारें भी इस भावजगत् में डूबी-सी थीं।

ठीक इसी समय आगरा की पत्थर की कोठी में 'मीर हसन' नामक एक शाही चित्रकार अपने कुशल चित्रकारी भरे हाथों से महाराज का चित्र बना रहा था।

वह मीर हसन नामक चित्रकार दक्षिण देश से वहाँ आया था। महाराज उससे बातचीत करते जाते थे और अपनी बीमारी की सच्चाई दिखलाने के लिए रह-रहकर खाँसते भी जाते थे?

कभी उस चित्रकार को, कभी महाराज को, तो कभी चित्रित चित्र को देखते हुए कुमार सम्भाजी के मन में अनेक विचारों की उथल-पुथल मची हुई थी।

यह चित्रकार महाराज का चित्र बना रहा है। हम भी यदि चित्रकार बन सकते तो...। न जाने महाराज के कितने चित्र हमने बना दिये होते! प्रतापगढ़ में देवी उपासक का भेस धारण किये लाठी पटकते हुए उसके ताल-ठेके पर नाचनेवाले देवी-भक्त महाराज; राजगढ़ की राजसभा में बैठकर सबको यह प्रेरणा देने वाले महाराज—'हम सबको मिलकर मावले लोगों को जाग्रत करना होगा—जो बैठे हैं, उन्हें उठाना होगा। उठे हुओं को चलाना होगा और चलते हुओं को दौड़ाना सिखाना होगा,' घोड़े पर बैठने से पहले उसे नमस्कार करनेवाले और क्षणभर के लिए आँखें बन्द करके फिर घोड़े को सरपट दौड़ानेवाले महाराज; बात करते-करते बीच ही में माँ भवानी की कौड़ियों की माला[1] को हाथ से छूनेवाले महाराज; 'तुम्हें जो भी कष्ट है, उसे हमें बताना चाहिए,' कहकर बूढ़े देहाती के कन्धे पर हाथ रखकर उसे दिलासा देनेवाले महाराज; कमर झुकाकर, हाथों को भूमि से लगाकर माँ साहिबा को तीन बार मुजरा करनेवाले महाराज; देवी की पूजा की वस्त्रज्योति के ऊपर से हथेलियों को फिराकर फिर अंजलि को अपने मुख पर लगा लेनेवाले महाराज; लोहारख़ाने में बनाये जा रहे नये हथियारों को अपने हाथ में लेकर जाँचने-परखने वाले महाराज; माँ साहिबा के हाथ से दही के थक्के को अंजलि में लेकर आचमन करते समय अनजाने ही पलकें मींच लेनेवाले महाराज; बादशाह के दरबार में 'कभी नहीं' की गर्जना करके तमतमाया चेहरा लेकर बाहर जानेवाले महाराज; खेमे के चारों ओर हबशियों का घेरा लगते ही हमें गाढ़ आलिंगन में भरकर 'बेटे, हमने धोखा खाया' कहनेवाले महाराज; आदि न जाने ऐसे उनके कितने ही चित्र हमने तैयार कर दिये होते!

'माँ साहिबा का तो अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक हम बस एक ही चित्र बनाते—आगरा के लिए प्रस्थान करते समय उन्होंने मौन रहकर ही हमारे आबासाहब को अपने अंक में भर लिया था। केवल यही चित्र! और धाराऊ का, उस धाय माँ का?'

राजकुमार सम्भाजी मीर हसन की उस तूलिका को और चित्र को देखते हुए अपने आप को भूल चुके थे।

https://t.me/Sahityajunction

'मनसूबे बनाने में माहिर' औरंगज़ेब ने अपनी तसबीह का एक-एक मनका आगे बढ़ाते-बढ़ाते एक 'मनसूबा' तय कर लिया था। महाराज को क़त्ल करा देने का! आगरा शहर में विट्ठलदास की हवेली अब लगभग बनकर पूरी तैयार हो चुकी थी। उसने तय कर दखा था—फ़ौलाद ख़ाँ को आज्ञा देकर 'शीवा' को इस कोठी से उस नयी कोठी में ले जाना। अगले ही दिन हबशी जल्लाद नंगी तलवारें लेकर उस हवेली में पहुँचनेवाले थे, और जो हालत दाराशिकोह की हुई, वही इस दक्खिनी 'मरहट्टे' की होनेवाली थी!

इसके बाद बादशाह रामसिंह के गले पर एक बालिश्त चौड़े फलक की तेग लगाकर उसके द्वारा घोषणा करवा देने वाला था—'बीमार शीवा गुज़र गया।' फिर महाराज की स्मृतिरूप उनके 'वस्त्रों' को लेकर साँडनी सवार मंजिल-दर-मंजिल दक्खिन में पहुँचने वाले थे! 'ख़िलअत' पहना हुआ औरंगज़ेब का कोई एक सरदार उनके साथ जानेवाला था। सूने कपाल की एक 'बूढ़ी' के सामने महाराज के उन वस्त्रों को थाल में सजाकर, कहनेवाला था—"आलीजाह ने दवा पानी की काफी कोशिश की, मगर बस नहीं चला। राजासाहब...राजासाहब ख़ुदा को प्यारे हो गये!" और मानो उसके अपने ही परिवार का कोई आदमी गुज़र गया हो, ऐसा अभिनय करते हुए वह गहरे दुःख से पीड़ित-सा बनकर गर्दन नीचे झुकाकर खड़ा रहनेवाला था। निस्सन्देह ही इस दुखदायी समाचार से समस्त राजगढ़ में ऐसा आक्रोश-विलाप मच जानेवाला था कि जो बरसों तक समाप्त ही न होता!

इतना होने के बाद इधर उत्तर में सँभालकर रखे सम्भाजी को 'शहज़ादे सम्बू' कहकर मुल्ला-मौलवियों द्वारा उसे मुग़ल रीति-रिवाज पढ़ा-सिखा देना औरंगज़ेब के लिए कुछ कठिन काम न था। कोमल पौधों को जी चाहे वैसे मोड़ा-घुमाया जा सकता है।

इसके बाद दिल्ली के आस-पासवाले विद्रोहियों का विद्रोह ठण्डा करके, जन्म से मराठा पर वृत्ति से मुग़लिया बने हुए 'शीवा के बच्चे सम्बू राजा' को साथ लेकर एक लाख सैनिकों की सेना के साथ दक्खिन देस में निर्भय होकर उतर आना औरंगज़ेब के लिए बहुत आसान हो जाता!

फिर स्वयं अपनी सवारी के ख़ास हाथी की अम्बारी में अपने साथ 'सम्बू राजा' को बिठाकर ढोल-नगाड़ों की गड़गड़ाहट में औरंगज़ेब के लिए सारे मराठा-प्रदेश में यह डौंड़ी पिटवा देना आसान था—'तमाम मुफलिसों को ज़ाहिर होऽऽ, बादशाह सलामत राजा शिवाजी की 'अमानत' लाये हैं ऽऽ! अदब-अदब!!'

यह था औरंगज़ेब के मन में छुपा हुआ 'शाही' मनसूबा।

औरंगज़ेब शतरंज खेलता था या नहीं, यह तो उसके वज़ीर या बेगमें या फिर मुल्ला-मौलवी ही जानें। परन्तु यदि वह वास्तव में खेला ही करता हो, तो? तो उसकी शतरंज में राजा के सिवाय अन्य सब मोहरे ज़रूर एक ही जात के होंगे। केवल ऊँट ही! वही ऊँट, जो जब कभी चाल चलता है, तो बिना चूके हर बार टेढ़ी चाल ही चलता है!

औरंगज़ेब ने महाराज के आदमियों को आगरा छोड़कर जाने के आज्ञापत्र दे दिये! वह तो चाहता ही था कि शिवाजी का यहाँ जैसे बने वैसे अकेला ही बच रहना ठीक है। और इस तरह उसे अपने क़ब्ज़े में कर लेना आसान था, आज्ञापत्र मिलते ही महाराज के लोग आगरा से चले गये।

महाराज ने रामसिंह से कई बार तक़ादा किया, "तुम अपनी ज़मानत का करारनामा रद्द

https://t.me/Sahityajunction

करवा लो। हमारे लिए तुम अपनी जान फन्दे में क्यों फँसाते हो?"

रामसिंह ने कई प्रकार से युक्ति-उपाय करके अपनी ज़मानत को रद्द करवा लिया! औरंगज़ेब ने भी शायद यह सोचकर कि अब इसकी ज़रूरत भी क्या है इस जमानत को रद्द कर दिया। अब रामसिंह नियमतः मुक्त हो गया।

'बीमार' के लिए 'दुआ' माँगने की ख़ातिर मिठाई बाँटना जारी था। पिटारे नियमित समय पर कोठी में आते थे। इन पिटारों के यथायोग्य वितरण के लिए महाराज कभी सेवक हिरोजी फर्ज़न्द को तो कभी दूसरे सेवक मदारी मेहतर को उन पिटारों के साथ भेज देते थे।

जिस दिन यदुवंशीय राजा वसुदेव मूसलाधार वर्षा की मार सहन करते हुए 'बाल कृष्ण' को लेकर कंस के कारागृह से सुरक्षित निकले थे, वह कृष्णाष्टमी का दिन भी बीत गया। इस दिवस ने महाराज के मन में गुप्त रूप से एक दिशा दिखला दी—कारागृह से पलायन! परन्तु यह बात कैसे बने? पिटारे में बैठकर? महाराज के खुले सावधान नेत्रों के सामने जैसे सैकड़ों वस्त्रज्योतियाँ जल उठीं। चकमा। शत्रु को पिटारों से चकमा! विचार के आते ही महाराज झट पलँग से उठ बैठे! "हिरोजी ऽ, गला सूख रहा है। पानी!" राजासाहब ने हिरोजी को आज्ञा दी। पानी का गड़ुआ लेकर हिरोजी महाराज के सामने आया। उसके हाथ से गड़ुआ लेते समय महाराज की दृष्टि अकस्मात् उसकी ओर गयी तो महाराज उसकी ओर देखते ही रहे गये, जैसे किसी दर्पण में देख रहे हों। हिरोजी महाराज का नौरस भाई था। उसी शक्ल-सूरत महाराज से बहुत मिलती-जुलती थी। उसकी ठोड़ी पर महाराज के समान ही दाढ़ी थी, जो नीचे की ओर नोकदार होती गयी थी।

महाराज के मन के चाक पर एक विचार घूमने लगा। भवानी ने उस विचार-चक्र को अपने त्रिशूल से और ज़ोर से घुमाया। घड़ा बनने लगा—महाराज के मन का निश्चय पक्का हो गया—'हमारा पहनावा पहनकर हिरोजी हमारी जगह पलँग पर सोएगा—औरंगज़ेब का दरबारी 'बीमार' बनकर! हम हिरोजी का मवाल देस के निवासियों वाला वेश पहन लेंगे और हिरोजी बन जाएँगे। फिर आगे? आगे क्या होगा? आगे माँ भवानी जो मार्ग दिखावेगी वही करेंगे।'

'महाराज, पानी!" गड़ुआ में लेकर विचारों में खोये हुए महाराज को हिरोजी ने याद दिलायी!

गड़ुआ हिरोजी को वापस देते हुए महाराज शान्त वाणी में बोले, "हिरोजी, हमारा चलने-फिरने, उठने-बैठने, बात करने आदि का ढंग ध्यान से देखा करो। हमने एक बड़ा काम पूरा करने की सोची है।"

हिरोजी ने अस्पष्ट हुंकारी भरी, "जी स्वामी!" वह महाराज के मन की बात समझ न पाया था!

अपने कमरबन्द को उतारकर हिरोजी को देते हुए महाराज बोले, "अभी पिटारे आते ही होंगे। उनमें से किसी एक पिटारे में यह कमरबन्द रख दो। इस तरह रखो कि इसका छोर ढक्कन से बाहर दिखाई दे। तुम स्वयं पिटारों के साथ जाओ। और जो कुछ आगे घटित हो, वह हमें आकर बताओ।"

"जी," हिरोजी महाराज की बातों का कुछ छोर नहीं पा रहा था!

https://t.me/Sahityajunction

उत्तर भारतीय कहार पिटारे लेकर समय पर उपस्थित हुए। ढक्कन खोले गये और महाराज ने पिटारों के भीतर भरी मिठाइयों को अपना 'हस्त-स्पर्श' दिया।

हिरोजी ने महाराज का कमरबन्द एक पिटारे के भीतर यों रखा कि उसका छोर बाहर दिखता रहे।

कमर तक झुककर महाराज को अदब-मुजरा करते हुए हिरोजी पाँच कदम हटा और पिटारों के साथ-साथ कोठी के बाहर चला गया। ये पिटारे कोठी के दरवाज़े वाली पहरे की पहली चौकी से सही सलामत गुज़र गये। दूसरी चौकी से भी बच निकले ही थे कि एक हबशी पहरेदार ने अपनी मोटी-भद्दी आँखें और अधिक चौड़ी करते हुए डपटकर कहा "ठहरोऽ! खोलो इसे।" अपनी तेग़ की नोक पिटारी से लगाते हुए वह बोला।

कहारों ने उस पिटारे को जमीन पर रख दिया। हिरोजी ने झपटकर आगे बढ़कर पिटारे का ढक्कन खोल दिया।

पहरेदार ने कमरबन्द का छोर पकड़ा और झटका देकर बाहर खींचा, "खाली करो यह पिटारा।" पिटारें में भरी लड्डू, जलेबी, हलवा आदि मिठाइयाँ उसने निकलवाकर बाहर रख दीं। शायद इस बात का यकीन कर लिया कि किसी लड्डू में 'शीवा' तो नहीं छिपा है।

महाराज ने जो सोचा था, वही हुआ। हबशी समय-समय पर पिटारों की तलाशी ले रहे थे। भविष्य में भी ले सकने की सम्भावना थी।

आगरे में श्रावण मास की कृष्ण एकादशी के उस दिन वर्षाऋतु का ज़ोर अब कम हो गया था। दरबार से लौटकर आनेवाला रामसिंह और उसके घुड़सवारों का दल लालक़िले के दरवाजे से बाहर आ रहा था। रामसिंह के मुख पर चिन्ता छायी हुई थी। उसके माथे का राजपूती तिलक बार-बार आकुंचित हो रहा था। उसके एक तरफ सम्भाजी एक उमदा घोड़े पर बैठे थे। वह लगामों को सँभालते हुए धीमी चाल से चल रहे थे। कोई किसी से कुछ न बोलता था। इन दोनों के पीछे-पीछे कुछ राजपूत घुड़सवार भी थे।

यद्यपि औरंगज़ेब ने पूरी कोशिश की थी कि क़त्ल का भेद कहीं बाहर न फूट जाय, परन्तु लालक़िले की विद्रोही दीवारों ने यह भेद रामसिंह तक पहुँचा ही दिया था।

दूसरे दिन ही महाराज को आगरा की एक नयी कोठी में पहुँचाया जाना था। और परसों 'जुम्मे' के 'पाक' दिन 'नापाक' शीवा को इस दुनिया से दूसरी दुनिया में भेज देना था, शायद जहन्नुम में 'ख़िलअत' लेने के लिए!

मुँह से झाग फेंकते हुए घोड़े दुलकी चाल से चले जा रहे थे। स्वाभिमानी रामसिंह के प्राण यूँ व्यथित हो रहे थे, मानो गर्दन किसी फन्दे में फँस गयी है। घोड़ों के खुरों से उठनेवाली आवाज़ें भी आज उसे अजीब-सी लग रही थीं।

'कल आपको अपनी कोठी से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जाएगा। सावधान रहिए'—यह सन्देशा जैसे भी बने, महाराज तक पहुँचना आवश्यक था, आज ही और वह भी बहुत सावधान रहकर। परन्तु यह बात उन तक पहुँचायी जाए, तो कैसे? दरबार की ओर से उसे महाराज से मिलने की 'मनाही' थी। कोठी में वह जा न सकता था। यह समाचार यदि पहुँच न पाये, तो परिणाम स्पष्ट ही था। उसके माथे के राजपूती तिलक पर हमेशा के लिए एक कलंक लग जाता।

https://t.me/Sahityajunction

रामसिंह की हवेली आ गयी। सईसों ने झट से आगे बढ़कर घोड़ों की लगामें पकड़कर घोड़ों को अपने क़ब्ज़े में कर लिया।

कोठी की बीचवाली राजपूती शैली की बैठक में रामसिंह ने सम्भाजी को बैठाया। वह इधर-से-उधर बेचैनी से घूम रहा था और रह-रहकर उसका हाथ तलवार की मूठ पर जाता था। अत्यन्त बेचैनी और चिन्ता में डूबे हुए रामसिंह ने एक गहरी लम्बी उसाँस भरी।

सम्भाजी ने जब चाचा रामसिंह की यह व्याकुलता देखी, तो वह बैठक से उठ आये। उसके पास जाकर बोले, "चाचाजी, आपको क्या कष्ट है?" सम्भाजी की ओर देखते ही रामसिंह का दिल भर आया। उनके कन्धों पर अपने हाथ रख कर वह कई क्षणों तक सम्भाजी की आँखों में ही देखता रह गया। उनके कपाल पर बने हुए दो दल वाले शिवतिलक को देखते ही रामसिंह के मन में एक विचित्र कल्पना अकस्मात् कौंध गई। "हे चण्डी! माता चण्डी," उसके होठों से शब्द निकले।

सम्भाजी के कन्धों को दृढ़ता से पकड़कर उसने कहा "कुँवर, हमारे साथ आओ!" सम्भाजी को साथ लेकर वह सीधा हवेली के देवमन्दिर में आया। गर्भगृह में पूजित रणचण्डी की मूर्ति के सम्मुख उसने घुटने झुका दिये। माथे को क्षणभर के लिए देवी के चरणों में नवाया। फिर तुरन्त उठकर देवमन्दिर के द्वारों को उसने अर्गला लगाकर बन्द कर दिया।

उसने रणचण्डी के चरणों में अर्पित एक त्रिदल बेलपत्र उठाया। उसकी दो दिशाओं की पत्तियों को तोड़ते हुए उसने सम्भाजी के हाथ में दिया और उसकी आँखें आँसुओं से भर आयीं।

"कुँवर साहब, मेरी बात को ध्यान देकर सुनो। आज रात कोठी में जाकर राजासाहब से मिलो। उनसे कहना, कल आपको यहाँ से हटाया जाने वाला है। यह बेलपत्ती उन्हें देना और कहना, बस सिर्फ़ यह एक ही पत्ता शेष रहा है।" कण्ठ गद्गद हो आने के कारण रामसिंह अधिक कुछ न कह सका। विह्वल होकर उसने सम्भाजी राजा को छाती से लगा लिया।

उसकी छाती से लगे हुए सम्भाजी के मन में कहीं दूर शहर से आनेवाले ये शब्द गूँजने लगे—'राजपूत अर्थात राजा का पुत्र! हम भी राजपूत हैं! तुम भी राजपूत हो और रामसिंह भी राजपूत है!!'

रामसिंह से अलग होकर जब सम्भाजी ने उसकी छाती की ओर देखा—उस छाती पर मिर्ज़ा राजा जयसिंह की छाती पर झूमनेवाला 'हरा तमगा' नहीं था।

रामसिंह की हवेली में भोजन करके सम्भाजी महाराज से मिलने कोठी में आये। महाराज साहब की चरण-धूलि मस्तक पर लगाकर उन्होंने सारी कोठी में सावधानी से नज़र दौड़ायी। मदारी और हिरोजी दीवार से सटकर खड़े थे। ताकों में जलनेवाली मशालें अपने हृदय का प्रकाश बिखेरते हुए अन्धकार को दूर हटाने का प्रयत्न कर रही थीं।

"बैठो," पलँग पर लेटे हुए महाराज ने हथेली से बिस्तर को थपथपाते हुए कहा।

सम्भाजी विनयपूर्वक उनके बिस्तर पर बैठ गये। "दरबार में गये थे क्या?" महाराज ने शान्त रीति से पूछा।

https://t.me/Sahityajunction

"जी!"

कुछ देर यूँ ही शान्ति रही। मशालें भी धीरे-धीरे जल रही थीं। दरवाजे पर जो राजपूत और हवशी पहरेदार तैनात थे, वे अस्त्र हाथों में थामे इधर से उधर नियमित रूप से आ-जा रहे थे। उनकी हिलती हुई परछाइयाँ भीतर कोठी में पड़ रही थीं और कभी महाराज को तो कभी सम्भाजी के बदन को भी ढाँप लेती थीं। फिर दूर चली जाती थीं।

"भोजन किया तुमने?" महाराज ने प्यारभरे स्वर में पूछा।

"जी, हाँ," सम्भाजी ने हुंकारी भरी!

"महाराज साहबऽ...चाचा रामसिंह का एक सन्देश है। बादशाह कल आपको इस कोठी से दूसरी जगह ले जाएगा। चाचा ने यह बेलपत्ती आपको देने के लिए कहा है। उनकी आँखें भर आयी थीं, पत्ती देते समय। चाचा ने कहा, राजा साहब से कहना—सिर्फ़ एक ही पत्ती बाक़ी है।"

दिनभर हवा से बातें करते हुए सरपट दौड़नेवाले घोड़े रात को जब अस्तबल में खड़े आँखें बन्द किये शान्तिपूर्वक सुस्ता रहे हों, और ऐसे समय अकस्मात् ही एक काला नाग फुफकार करता हुआ फन उठाकर उन घोड़ों की कतार के बीच आ निकले, तब जिस प्रकार घोड़े खुरों से खुर टकराते हुए बिदक उठते हैं, इसी प्रकार महाराज के समस्त सुप्त विचार एकदम जाग उठे। कोठी बदलने का अर्थ है क़त्ल! दयनीय मृत्यु!

कोहनी पर भार देकर महाराज आधा ऊँचे तक एक झटके से उठ बैठे। उद्विग्नता में उन्होंने सम्भाजी की भुजा दृढ़ता से पकड़ ली। उनकी ओर एकटक देखते हुए सम्भाजी की सूरत में उन्हें एक 'देवी-भक्त' बालक दिखाई दिया—जो 'भवानी माँ की जय' पुकारता हुआ लाठी के ठेके पर नाच रहा हो! सम्भाजी के जन्म के समय हरभट ज्योतिषी ने कुण्डली देखकर जो भविष्यवाणी की थी, वह उन्हें याद हो आयी—'यह बालक ऊँचे पर्वतीय दुर्गों पर राज करेगा, प्रलय मचाएगा।'

फिर अकस्मात् उन्हें याद हो आयी सम्भाजी की माता सईबाई की! मृत्यु शय्या पर पड़े हुए सईबाई ने कहा था—'यह अकेला जीव आपके चरणों में छोड़कर जा रही हूँ।'

उसी समय महाराज ने मन ही मन एक निश्चय किया, पूरी तरह दृढ़ निश्चय! 'हम इस कोठी से बाहर निकलने में सफल हुए तो ठीक, अन्यथा इस बाल राजा को तो जैसे भी बने, यवनों के पंजे से निकालना ही होगा। ऊँचे पर्वतीय दुर्गों पर राज करने के लिए, प्रलय मचाने के लिए!'

परन्तु ऊपर से महाराज शान्त दिखाई देते थे। बोले, "आज तुम यहीं इस कोठी में ही सोना।"

महाराज धीरे-से शय्या पर लेट गये। फिर ऐसा खाँस पड़े कि देखनेवाले का जी भी उन्हें खाँसता देखकर व्याकुल हो उठे। झूठी, नकली खाँसी। हिरोजी ने आगे बढ़कर उनके सामने पीकदान रखा।

पीकदान में थूककर महाराज ने कहा, "हिरोजी, ख़ाँसाहब को सूचना दो। कहो कि हमारे नन्हे राजा आज कोठी में ही सोने की ज़िद कर रहे हैं। आज इन्हें यहीं सोने दिया जाय।"

"जी," पीकदान को पलँग के पाये के पास रखकर हिरोजी बाहर चला गया। मदारी ने औषध की एक ख़ुराक होरसे पर घिसनी शुरू की।

https://t.me/Sahityajunction

फिर हिरोजी बाहर गया और तुरन्त ही लौटकर उसने फ़ौलाद ख़ाँ का कहा महाराज को बताया, "महाराज, ख़ाँसाहब ने कहा है कि, बेशक-बेशक, बच्चे को सोने दो बाप के साथ।"

उस रात्रि को निशादेवी ने ही आकर पूजा के लिए चौक पूर दिया था। इसके बाद इस कोठी में भवानी देवी का नाम लेकर एक निराला 'कीर्तन-नृत्य' प्रारम्भ हुआ जिसके साथ ही 'श्री' भवानी के आशीर्वाद से स्थापित राज्य की आगामी कई पीढ़ियों का भवितव्य निश्चित होने जा रहा था। घटनाओं का, हुनर का, धैर्य का और निपुणता का 'कीर्तन-नृत्य' प्रारंभ हो चुका था अब।

मन-ही-मन माँ भवानी की जय-जयकार करते हुए, महाराज को, सम्भाजी, हिरोजी, मदारी और सभी को इस 'कीर्तन-नृत्य' को बिलकुल चुपचाप रहकर सफल बनाना था। इनमें से एक भी भक्त यदि चूक कर गया, तो वह जगदम्बा अपने आठों हाथों में 'वस्त्रज्योतियाँ' लेकर सबको सम्पूर्णतः भस्मसात् करने में चूक करनेवाली नहीं थी! यह एक ऐसा व्रत था कि जिसका पालन महाकठिन कार्य था।

अपने मस्तक के शिवतिलक पर दाहिने हाथ की मुट्ठी को औंधा रखे हुए महाराज पलँग पर लेटे हुए थे। उनकी बगल में ही फ़र्श पर हिरोजी बैठा था। पलँग के पायताने पर सम्भाजी बैठे थे! कोठी में प्रकाश और गर्मी फैलाते हुए मशालें जल रही थीं। आँखें मींचकर ही महाराज ने सम्भाजी से कहा, "बाल-राजा, ज़रा निकट आओ।" सम्भाजी आगे खिसक आये।

"मैं जो कुछ भी कहूँगा, उसे ध्यान देकर सुनो! एक भी बात भूलना नहीं!" महाराज क्षणभर ठहरे, मन दृढ़ बनाया फिर कहने लगे, "कल प्रातःकाल तुम कोठी के बाहर जाओ। चाचाजी की हवेली में जाओ। नित्य के अनुसार दरबार में हो आओ। जाते समय सर्जेराव को अपने साथ ले लो। पहला दरबार समाप्त होते ही चाचा रामसिंह से कहना कि—'तबीयत ठीक नहीं! हम चलते हैं।' और सर्जेराव के साथ क़िले के बाहर आ जाना। तुम कुम्हारों की बस्ती में अपने देस के कुम्हार के घर पर ही रुके रहना। सर्जेराव से कहना कि दो घोड़े लेकर नूरगंज बाग़ के निकट तैयार रहें। हम कल तुमसे कुम्हार के घर में ही मिलेंगे। तीसरा पहर बीत जाने पर, हम आएँ या न आएँ, तुम सर्जेराव के साथ आगरा के बाहर निकल जाना। उनके पास आज्ञापत्र हैं। उन्हें दिखाकर मथुरा जा पहुँचो। वह जो कुछ कहें, वैसा ही करो। कम बोला करो। हमारी प्रतीक्षा करते हुए रुके मत रहना," कहकर महाराज ठहर गये। उनकी बन्द आँखों के आगे से न जाने कितने चेहरे चक्कर लगाते हुए घूम गये—माँ साहिबा, पुतलाबाई, धाराऊ, येसूबाई, और साँवले रंग की देहवाली जो उन्हें छोड़कर संसार से कूच कर गयी, वह सम्भाजी की माता सईबाई।

जो कुछ कहा गया है, वह कुमार सम्भाजी ने कहाँ तक समझ-बूझ लिया है, यह जानने के लिए महाराज ने वह सब विवरण पुनः एक बार सम्भाजी के मुख से कहलवाकर सुना! महाराज पलँग पर से उठ बैठे।

"अब तुम सो जाओ," महाराज ने सम्भाजी से कहा। मदारी ने आगे बढ़कर युवराज सम्भाजी का टोप हाथ में ले लिया और उसे ले जाकर तबक़ में महाराज के टोप के निकट रख दिया। सम्भाजी पलँग पर लेट गये।

खुले-बिखरे बालों वाले सम्भाजी को देखकर महाराज के मन में भीषण व्याकुलता का समुद्र उमड़ आया। उन्होंने धीरे से उस बाल राजा का सिर अपनी गोदी में रख लिया। कौन कहे, कहीं

https://t.me/Sahityajunction

यही अन्तिम भेंट न हो!

महाराज की सीधी और आगे की ओर नोकदार होती हुई उँगलियाँ सम्भाजी के घुँघराले-घने काले बालों पर से फिरने लगीं मानो मावल-खण्ड का आकाश ही सूर्य के किरण-जाल पर से उँगलियाँ फिरा रहा था।

सम्भाजी को अनेक दिनों बाद ऐसा प्यार-दुलार भरा 'बिछौना' मिला था। उनकी पलकें झपकने लगीं। फिर आप ही बन्द हो गयीं।

गोदी में शान्त भाव से सो रहे सम्भाजी को मशालों के उजाले में देखते हुए महाराज विचारों में खो गये। सोचने लगे—सचमुच ही तुम भाग्यशाली हो! हमें नहीं स्मरण आता कि कभी हमें भी अपने पिताजी की गोद में सिर रखकर सोने का अवसर मिला हो। बेटे, तुम आयुष्मान होओ, ऊँचे दुर्गों पर रहो! प्रलय मचा दो! हे जगदम्बे! जगदम्बे!

महाराज ने सम्भाजी की गर्दन धीरे से बिछौने पर रख दी। वह भी उनके पास ही लेट गये। पलँग के पास ही हिरोजी एक कमली पर अपने हाथ का ही तकिया बनाकर वहीं लेट गया। मदारी पहरा देने के बहाने घूमता रहा।

"हिरोजी," लेटे-लेटे ही महाराज ने धीरे से पुकारा।

"जी," फ़र्श से आवाज़ आयी।

महाराज पलँग पर से ही नीचे लेटे हुए हिरोजी से दबी आवाज़ में बिछौने की चादर की ओर देखते हुए कहने लगे। हिरोजी कानों में प्राण भरकर उनकी बात सुनने लगा।

"हमारी सारी आदतों को ठीक से याद कर लिया है न?" महाराज ने पूछा।

"जी," हिरोजी ने हुंकारी भरी।

"सुबह लालक़िले में जब नौबत बजती है तो बादशाह 'फ़ज्र' की नमाज़ पढ़ता है। उसी समय रात के पहरेदार भी पारी बदलते हैं। उसी समय तुम्हें बीमार बनकर हमारी जगह सोना है। तुम्हारा चेहरा हमसे बहुत मिलता-जुलता है। कल सुबह से तुम बनोगे महाराज और हम बनेंगे हिरोजी। हमारी जगह पलँग पर दरवाजे की ओर पीठ करके यूँ ही सो जाना। कल हम पिटारों के साथ हिरोजी बनकर बाहर जाएँगे। घण्टे भर बाद तुम अपनी हमेशा जैसी वेशभूषा पहन लेना। यहाँ जो मसनद, गिरदे तकिये हैं, उन्हें पलँग पर सलीके से लगाकर ऊपर से शॉल ओढ़ा देना। शाम को पहरेदार बदलते हैं, उस समय तुम होशियारी से कोठी के बाहर निकल जाना, जैसा भी बने, भाग-दौड़कर अपने देस तक पहुँचो। असावधान मत रहना।

"यहाँ सोने के बाद अपनी मुँछों पर रह-रहकर उल्टी मुट्ठी घुमाने की आदत छोड़ देना। हिरोजी, तुम्हारी यह आदत बन गयी है, इसलिए विशेष रूप से कह रहा हूँ!"

हिरोजी ने आँखें फैलाकर सब सुन लिया। मन में विचार-चक्र घूमने लगा। उसने अनुभव किया मानो मन में महाराज के प्रति जो आदरभाव है, वह अब बारह बन्दोंवाला कुरता फाड़कर बाहर फूट निकलेगा।

"अब सो जाओ," पलँग ने फ़र्श को आज्ञा दी! देवी के 'कीर्तन-नृत्य' का पहला 'नमन-गीत' पूरा हो गया था। उधर लालक़िले में मुलायम बिस्तर पर लेटा हुआ औरंगज़ेब शरीर पर गर्म रजाई ओढ़े हुए अपनी दोनों हथेलियों को आसमान की ओर उठाकर कह रहा था, "या खुदा, आमीन!

https://t.me/Sahityajunction

आमीन!”

श्रावण कृष्ण द्वादशी का प्रभात वर्षाकालीन बादलों के घेरे को फोड़कर बाहर निकल आने के लिए जूझ रहा था।

“दुड दुडऽऽ धुम्म धुम्ममम दुड-दुड धुम्म” लालक़िले के नक्कारख़ाने में ‘सबर’ की नौबत बज उठी। प्रातःकालीन वायु पर सवार होकर वह महाराज के बन्दीगृह की कोठरी में आ घुसी।

महाराज तो जाग ही रहे थे। नौबत सुनते ही उन्होंने आगरा के प्रातःकालीन पवन के कानों में अपना प्रियतम और प्रेरणादायी मन्त्र कहा, “हे जगदम्बे, जगदम्बे!”

मनुष्य चाहे बेईमान हो जाए, लेकिन किसी भी देश-प्रदेश की ‘वायु’ बेईमान नहीं होती। उस वायु को कोई एक बार अपना खिवैया बना ले, तो उसके पीछे-पीछे अपनी जीवन-नौका को निश्चित होकर खेया जा सकता है। कुछ क्षणों तक महाराज ने लेटे-ही-लेटे अपने कुल के रीति-रिवाजों की प्रतीक कौड़ियों की माला पर हाथ फिराया। महाराज की उँगलियों की और उस कपर्दिक माला की बिना बोले ही कुछ मन्त्रणा होने लगी।

उधर अपने ख़्वाबगाह से बाहर निकलकर औरंगज़ेब ने ‘वुज़ू’ किया! फिर मक्के की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ने के लिए कश्मीरी शतरंजी पर घुटने टिकाकर वह कलमा पढ़ने लगा, “अल्हमदुल्लिल्लाह।”

“हिरोजी,” महाराज ने हिरोजी को पुकारा, मानो संकल्प ने साधन को पुकारा हो।

“जी,” हिरोजी ने दबी आवाज़ में उत्तर दिया। वह रात भर गम्भीरता से विचार करते हुए जागता रहा था।

“मदारी,” जिस पर सारा दारोमदार था, उस मदारी को महाराज ने आवाज़ लगायी।

“जी, मैं जाग रहा हूँ।” उत्तर आया!

क्षण भर शान्ति ने अपनी काली कमली फिर उस कोठरी में फैला दी! “मदारी, दरवाज़े के पास खड़ा रह। कोई कोठरी के भीतर झाँके, तो हमें इशारे से बताना।”

“जी,” मदारी उठा और कोठरी के दरवाज़े पर और जालीदार खिड़की पर नज़र रखकर पहरा देने लगा। करंज के बीजों का तेल जलकर कम हो जाने के कारण मशालें भी अब मन्द हो गयी थीं।

“हिरोजी, लेटे-लेटे ही शरीर का पहनावा उतारो।” महाराज द्वारा आयोजित उस ‘कीर्तन-नृत्य’ में अब रंग चढ़ रहा था।

पलँग पर लेटे-ही-लेटे महाराज ने अपना अँगरखा, भीतरी वस्त्र और चुनटदार तंग मोहरी का घुटन्ना उतार लिये। गले का कण्डा, कौड़ियों की माला, कान के स्वर्ण-चौकड़े, अँगूठी आदि एक-एक कर के उतारकर हिरोजी को दे दिये। दाहिने हाथ में पहने हुए सोने का कड़ा निकालने का वह प्रयत्न कर रहे थे, पर वह निकल नहीं पा रहा था। हिरोजी ने अपनी बगलबन्दी और तंग घुटन्ना पलँग पर सरका दिये। महाराज ने लेटे हुए ही हिरोजी के कपड़े पहन लिये। लम्बी सीधी उँगलियों से अपने माथे का शिवतिलक उन्होंने खुरचकर मिटा दिया।

https://t.me/Sahityajunction

पास ही सोये हुए सम्भाजी की पीठ पर एक बार प्यार से हाथ फिराया। महाराज की वेशभूषा पहनकर इधर हिरोजी भी तैयार हो चुका था!

"हिरोजी, अब हम उठते हैं। झटपट हमारी जगह आ जाओ। हम तुम्हारे सामने दर्पण पकड़कर खड़े हो जाएँगे। उसमें देखकर माथे पर शिवतिलक लगा लेना।"

महाराज ने शरीर की शॉल को दूर हटा दिया और वे पलँग से नीचे उतर गये। पहले तो हिरोजी को संकोच अनुभव हुआ, परन्तु फिर मन को दृढ़ बनाते हुए वह पलँग पर चढ़ गया। इस सारी हलचल के कारण सोये हुए बालक सम्भाजी ने एक निःश्वास छोड़ते हुए करवट बदली। हिरोजी ने उनकी पीठ पर प्यार-भरा हाथ फिराया।

हिरोजी का सूती सफ़ेद फेंटा महाराज ने कमर में कस लिया। नीचे का होठ दाँतों में दबाकर काफी प्रयत्न करके उन्होंने अपने दाहिने हाथ का सोने का कड़ा बाहर निकाल लिया। पलँग के पास जाकर उन्होंने हिरोजी को उसके हाथों में पहना चाँदी का कड़ा निकालने को कहा। महाराज ने स्वयं ही अपने हाथों से सोने का कड़ा हिरोजी को पहना दिया और उसका चाँदी का कड़ा अपनी कलाई में चढ़ा लिया। महाराज ने सिर पर बलेटेदार और कंगन जैसी गोल आकार वाली बड़ी पगड़ी पहनी हुई थी।

हिरोजी का गला रुँध गया था। बोला, "महाराज...।"

महाराज ने उसे ढाढस बँधाते हुए कहा, "अब तुम ही महाराज हो। संकोच मत करो! जैसे हम कहा करते हैं, वैसे एक बार 'जगदम्बे' कहो!"

हिरोजी एक क्षण के लिए हिचकिचाया। फिर मन को कठोर बनाकर उसने छाती की कपर्दिक माला पर उँगलियाँ घुमायीं और आँखें मींचकर धीरे से बोला, "हे जगदम्बे, जगदम्बे।" बिलकुल महाराज ही तो सोये थे पलँग पर।

इन शब्दों को सुनते ही महाराज कमर तक झुक गये। फ़र्श तक झुककर अदब-मुजरा करते हुए उन्होंने हिरोजी की ठीक-ठीक नकल प्रस्तुत कर दिखायी। "महाराज, मुजरा," सीधा खड़ा होते हुए उन्होंने बायें हाथ से अपने बारहबन्दी कुरते के दाहिने हाथ की चुनट को ऊपर सरकाया; बिलकुल हिरोजी के समान! मुँछों पर से ओंधी मुट्ठी घुमायी। चाँदी का कड़ा नीचे कलाई तक सरक आया था, सो उसे ऊपर चढ़ाकर हाथ के पहुँचे में दबाकर बैठा दिया।

बाहर पहरेदार बदल गये थे और भीतर राजा बदल गये थे। आगरा का दिन भी बदल रहा था। पलँग पर शान्त निद्रा में हिरोजी के साथ सोये सम्भाजी इन सब से अनजान थे।

महाराज ने हिरोजी के आगे दर्पण थामे रखा। मदारी ने शिवतिलक की थाली पकड़ी हुई थी। हिरोजी अपने मस्तक पर द्विदल वाला शिवतिलक चित्रित कर रहा था।

सुख और दुख की दो पत्तियाँ उन सबके मस्तक पर शिवाजी ने ही तो चित्रित की थीं अब। तो नैया पार लगाना उन्हीं की शक्ति पर अवलम्बित था।

प्रभात हो गया। सम्भाजी उठ गये। मदारी ने उनके हाथ में पानी का गड़ुआ दिया। सम्भाजी तश्तरी में हाथ धोने लगे। यह देखकर, हिरोजी बने हुए महाराज के मन में काफी देर से जो समस्या घूम रही थी, उसके बारे में उन्हें एक उपाय सूझ गया।

महाराज यह जाँचना चाहते थे कि उनके इस 'स्वाँग' के विषय में पहरेदारों को कोई शक

https://t.me/Sahityajunction

होता है अथवा नहीं। युवराज सम्भाजी का उस नये 'हिरोजी' की ओर ध्यान नहीं था। महाराज तुरन्त आगे बढ़े और उन्होंने तश्तरी को उठाया। तश्तरी लेकर वे गर्दन सीधी तान कर कोठरी के बाहर गये। तश्तरी खाली करके फिर कोठरी में आ गये। बाहर नंगे हथियार थामे हुए पहरेदार अपने-अपने काम पर तैनात थे। कोई हलचल नहीं हुई।

महाराज कोठरी की दीवार से लगे बड़े अदब से खड़े थे। मदारी ने सम्भाजी राजा को उनका जिरह टोप बड़े अदब के साथ कमर झुकाकर पेश किया। हिरोजी पलँग पर यूँ ही लेटा हुआ था।

"महाराज साहब," सम्भाजी ने पलँग के पास जाते हुए कहा।

"हाँ," पलँग पर लेटे हुए हिरोजी ने हुंकारी भरी। फिर उसने बिलकुल स्वाभाविक ढंग से ही खाँसने का अभिनय किया।

"हम चलते हैं।" सम्भाजी ने कहा और वे पाँव छूने के लिए पलँग के पैताने की ओर बढ़े!

हिरोजी ने खाँसते हुए ही झट से अपने पाँव दूर खींच लिये और हाँफते-खाँसते हुए वह बोला, "हमने जो कुछ कहा, उसका ध्यान रखो! अब तुरन्त ही बाहर चले जाओ। कुम्हारों की बस्ती में हमारी प्रतीक्षा करो—तीसरे पहर तक। आयुष्मान होओ।"

कुमार सम्भाजी ने 'जी' कहते हुए पलँग को तीन बार मुजरा किया और वे कोठी से बाहर जाने लगे।

मावले भेसवाले महाराज से रहा न गया और वह दीवार छोड़कर आगे बढ़ आये। बाहर जानेवाले उस 'बाल' देवीभक्त को पीछे की ओर से देखते समय उनके मन में विचारों का तूफ़ान मच गया। 'यह राज्य स्थापित हो, यह तो उस 'श्री' भवानी के मन में है। हम सब उसी राज्य के सेवक हैं। यशस्वी बनी!' दूर जानेवाली नन्हे सम्भाजी की आकृति को महाराज एकटक देखते ही रह गये।

मदारी हिरोजी का वेश धारण करने वाले महाराज की ओर व्यथित गद्गद अन्तःकरण से देख रहा था, क्योंकि अब महाराज को इस बात का ध्यान नहीं था कि उनकी छाती पर कौड़ियों की माला नहीं है, वह अपनी सुध-बुध भूले अपनी छाती के मालावाले खाली स्थान पर ही हाथ की उँगलियाँ घुमा रहे थे।

तीसरा पहर ढल चुका था। कुम्हारों की बस्ती में बालक सम्भाजी, त्र्यम्बकपन्त और निराजीपन्त कुम्हार के घर में बैठे थे। कमली पर बैठे सम्भाजी विचारों की मार से व्याकुल हो रहे थे। कभी स्वयं ही उठकर घर के बाहर जाकर नूरगंज बाग़ की ओर से आनेवाले रास्ते पर दृष्टि गड़ाते थे, फिर भीतर आकर कमली पर बैठ जाते थे।

गणेश चतुर्थी का त्यौहार निकट आ गया था। इस कारण घर के सामने चबूतरे पर कुम्हार की बनायी कच्ची 'गणेशमूर्तियाँ' पंक्तियों में सजायी रखी थीं।

गणेश। शिवजी के पुत्र। शुभंकर। सम्भाजी ने छाती पर हाथ जोड़कर उन अधबनी कच्ची मूर्तियों को नमस्कार किया!

बालक सम्भाजी की घबराहट अब बहुत बढ़ गयी थी। '...और यदि महाराज साहब आये ही नहीं तो? तो...तो जेथे चाचा के साथ आगरा के बार निकल जाना है। मथुरा की दिशा में कूच करना है। मथुरा? कहाँ है मथुरा? न जाने कैसी है! वहाँ से जैसे भी बने, अपने देश तक पहुँचना

https://t.me/Sahityajunction

है। और जब बड़ी माँ साहिबा पूछेंगी 'तुम्हारे आबासाहब कहाँ हैं?' तो...? माँ साहिबा! कितने दिन बीत गये, उन्होंने हमारे माथे पर शिवतिलक अंकित नहीं किया और धाराऊ छोटी माँ जी, धाराऊ के दो पुत्र रायाजी, अन्तोजी, साईस, गोमाजी बाबा...'

उनका मन का पत्र प्रवाह में बह गया।

'टाप ऽ टाप-टाप ऽ' घोड़ों की टापों की धीमी आवाज़ें सम्भाजी के कानों में पड़ीं। उनके मन की विचार-शृंखला टूट गयी। कमर में बँधी तलवार की मूठ को हथेली से दृढ़ता से पकड़ते हुए वह कमली से झटपट उठ खड़े हुए। निराजीपन्त की ओर एक बार देखकर वह त्वरित ही कुम्हार के घर से बाहर आ गये।

बाहर सावन की एक हल्की-सी फुहार से छिड़काव-सा हो रहा था। उस फुहार के जालीदार रुपहले परदे के बीच से उन्होंने देखा कि दो घुड़सवार दुलकी चाल से चले आ रहे हैं। दोनों के सिरों पर कंगनी पगड़ियाँ थीं।

उन सवारों में एक थे सर्जेराव जेथे। वह आगे बढ़े और सामने आकर उन्होंने युवराज सम्भाजी को मुजरा किया। "चलो, तुरन्त ही निकलना है," उन्होंने धीरे-से कहा।

"निकलना है?" सम्भाजी एक क्षण के लिए हिचकिचाये। "महाराज साहब को साथ लिये बिना ही? कहाँ? क्यों?" सर्जेराव के साथ आनेवाला घुड़सवार भी नीचे उतर आया था। छत की बल्ली से टकराने से बचने के लिए उसने अपनी गर्दन एक ओर थोड़ी-सी झुकायी हुई थी। उस घुड़सवार के पाँव में एक विशिष्ट गति और शैली थी। उसके पैरों में मावली देस वाले जूते चरमरा रहे थे।

उस सवार के हर बढ़ते कदम के साथ ही सम्भाजी का शरीर झनझना उठता था। जैसे वैशाख मास की तप्त आँच से क़िले की चहारदीवारी सनसनाकर गर्म हो उठती है।

'ये...ये तो महाराज साहब ही हैं।' मन की बात का आँखों ने ज्यों ही समर्थन किया, सम्भाजी तेज़ी से आगे को बढ़ आये।

महाराज कुछ क्षण के लिए गड़बड़ा गये। फिर अचरज-भरी आँखों से अपनी ओर देखने वाले सम्भाजी को उन्होंने आँखें फैलाते हुए एक संकेत किया—सावधानी का संकेत। कुछ न बोलने का संकेत। सम्भाजी भी उनका आशय समझ गये।

"निराजी, तुम बालाजी की सराय में जाओ। वहाँ मथुरा के दो कवि रहते हैं। उनसे कहो, कि 'हाथी' मथुरा के घाट पर आ रहे हैं। नौका तैयार रखनी चाहिए।" महाराज ने निराजी के कानों में कहा।

घोड़े पर बैठकर निराजी ने दौड़ लगायी, परन्तु इस बार महाराज को मुजरा नहीं किया उसने।

"त्र्यम्बकपन्त, बतायी हुई सभी वस्तुएँ तैयार रखी हैं न?" महाराज ने त्र्यम्बकपन्त से पूछा।

अपने हाथ की गठरी को ऊपर उठाकर दिखाते हुए त्र्यम्बकपन्त ने आज्ञा पूर्ण होने के आशय से गर्दन हिलायी।

"हम अब कुम्हार से विदा माँगने जाते हैं।" सर्जेराव की ओर देखते हुए सम्भाजी ने महाराज से कहा।

https://t.me/Sahityajunction

“चलो, हम भी कुम्हार से विदा लें।” महाराज सबके साथ कुम्हार के घर में आये।

आज क्या कुछ हो रहा है, इस बात का कुम्हार को कुछ भी पता न था। वह गणेश की मूर्तियों को कपड़े से धीरे-धीरे पोंछ रहा था। “बाबा, हम अब चलते हैं।” बालक सम्भू ने उससे कहा। वह आगे बढ़ आया। “बाहर तो बारिश हो रही है...और...” उसकी बोली में मावलदेस और उतरदेस की बोली का मिश्रण था।

महाराज गणेश की मूर्तियों की ओर टक लगाकर देख रहे थे। पंक्तियों में सजाई रखी उन मूर्तियों को देखकर वे मन में बहुत व्याकुलता अनुभव कर रहे थे।

युवराज सम्भाजी ने अपने गले से आख़िरी कण्ठा भी उतार लिया।

अवसर देखकर महाराज भी धीरे से आगे आये और सम्भाजी के कानों में धीरे से फुसफुसाते हुए बोले, “कण्ठा उसे दो, परन्तु उससे यह वचन ले लो कि हमारे यहाँ से जाते ही वह इन मूर्तियों को यहाँ से कहीं दूर रख दे। कहीं बहुत दूर।”

“बाबा, यह लो और हमारे लिए एक काम करो,” सम्भाजी ने कुम्हार से कहा।

“कहिए सरकार?”

“ये सारी मूर्तियाँ हमारे जाने के बाद यहाँ से कहीं दूर पहुँचा देना। पहुँचा दोगे ना?”

“जी,” कुम्हार ने मूर्तियों की ओर देखते हुए कहा।

“हमें वचन दो।” सम्भाजी ने अपना हाथ आगे बढ़ाया। बेचारा कुम्हार समझ न पाया कि वचन किस पद्धति से दे। उसने झट से नीचे झुककर एक मिट्टी का ढेला उठाया और सम्भाजी के हाथ पर रखते हुए बोला, “वचन चाहिए न? यह लो! यही है हमारा देवता।”

महाराज की आँखें सन्तोष से दमक उठीं। सब लोग कुम्हार के घर से बाहर निकल पड़े।

सम्भाजी के घोड़े को सामने रखकर महाराज, सर्जेराव, त्र्यम्बकपन्त आगरा शहर के दक्षिण दिशावाले नगरद्वार के पास आये।

महाराज ने जो सोचा था, वही हुआ। पहरे पर तैनात चौकीदारों ने उस दल को रोक दिया। सर्जेराव घोड़ा आगे निकालकर चौकीदारों के पास आये। उन्होंने कमर में खोंसे हुए परवाने निकालकर दिखा दिये। “कौन-सी सवारी है ये?” एक पहरेदार ने सर्जेराव को डपटते हुए पूछा।

महाराज ने आगे निकलकर शहरवाली रामसिंह की हवेली की ओर पगड़ी का सिरा रखते हुए उत्तर दिया, “राणा रामसिंह के मेहमानों की सवारी।”

मिर्ज़ा राजा का शाही दरबार में जो दबदबा था, उसे वह पहरेदार जानता था। उसने आज्ञापत्र देखकर उस दल को जाने दिया। अब यह निश्चित हो गया कि अफवाह फैलेगी कि महाराज दक्षिण दिशा की ओर गये हैं। सब लोग दक्षिण नगरद्वार से बाहर निकले। सब मौन थे। साँझ आगरा शहर पर छा चुकी थी। महाराज ने यमुना नदी की ओर हाथ से संकेत किया। घोड़े यमुना नदी की दिशा में दौड़ने लगे।

यमुना नदी के किनारे पर पहुँचते ही घोड़े रुक गये। सब उतर पड़े। त्र्यम्बकपन्त ने गठरी खोली। महाराज और सम्भाजी ने शरीर के पहनावे उतारकर भगवी कफ़नी शरीर पर पहन ली

https://t.me/Sahityajunction

और वे संन्यासी बन गये। यमुना मन में पछता रही थी क्योंकि अन्धकार के कारण वह इन दो 'देवीभक्त' संन्यासियों को देख भी न पा रही थी!

शरीर से उतारे गये कपड़ों की गठरी बनाकर त्र्यम्बकपन्त ने गठरी घोड़े पर लाद दी। वह और सर्जेराव महाराज और सम्भाजी के साथ घोड़ों की लगामें पकड़कर यमुना की कछार की कोमल रेत पर चलते हुए नदी के किनारे-किनारे उत्तर दिशा की ओर जाने लगे। उन लोगों के और अपने बीच में थोड़ा फ़ासला रखकर महाराज और सम्भाजी भी यमुना की गीली रेत में चल रहे थे। उनके पद-चिन्हों के साथ-साथ ही अब यमुना नदी को साक्षी बनाकर भविष्यकाल का एक महाभारत ही लिखा जाने वाला था।

वह घाट आ गया जहाँ से नौकाएँ मथुरा की ओर जाती थीं। विदा होने से पूर्व महाराज ने त्र्यम्बकपन्त और सर्जेराव को छाती से लगा लिया। घाट पर निरोजी, कवीन्द्र परमानन्द और कवि कुलेश को साथ लिये पहले से तैयार खड़े थे।

अन्धकार के कारण यमुना नदी का पात्र दिखाई न देता था, फिर भी राजा साहब ने और सम्भाजी ने यमुना माई को नमस्कार किया और वे नौका में सवार हो गये। उनके बाद निराजी भी नौका में आ गये। मल्लाहों ने चप्पू चलाना प्रारम्भ किया।

अन्धकार को चीरती हुई नौका आगे बढ़ रही थी। जब नौका बीच धार में पहुँची, तो महाराज ने अपने कन्धे पर लटकती झोली में हाथ डाला और उसमें से मुट्ठी-भर सोने की मुहरें निकालकर सम्भाजी के हाथ में देते हुए कहा, "यमुना मैया को अर्पित करो।" सम्भाजी ने मुट्ठी-भर मुहरें यमुना के नील जल को अर्पित कर दीं।

"महाराज साहब, आपने कुम्हार से वे मूर्तियाँ दूसरी जगह हटाने के लिए क्यों कहा!" काफी देर से मन में आये उस प्रश्न को सम्भाजी ने आख़िर पूछ ही लिया।

नाविकों ने चकमक पत्थर को रगड़कर मशालें जला ली थीं। उनके उजाले के घेरे में यमुना का जितना जल आता था, वह अब चमक उठा।

लहरों की ओर देखते हुए महाराज बोले, "अब हबशी कुम्हार के घर की तलाशी लेंगे ही! उनकी नज़रों में यदि ये मूर्तियाँ आएँगी तो पहले से ही ग़ुस्से से भरे हुए वे हबशी मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किये बिना रहेंगे क्या?"

उत्तर सुनकर सम्भाजी की छाती उस कफ़नी में भी फूल उठी। वह महाराज की ओर देखते ही रह गये।

इस समय लालक़िले में औरंगज़ेब की मग़रिब की नमाज़ समाप्त हो चुकी थी। वह ऊँचे आसमान की ओर हथेलियाँ उठाकर उस ख़ुदा ताला को दरबारी 'शाही' स्वीकृति दे रहा था। "अर्रहमा ऽ निर्रहीमऽ सचमुच तुझ जैसा दयावान् अकेला तू ही है!"

इसी दया के परिणामस्वरूप यह हुआ कि कोठरी में हिरोजी ने पलँग पर गावतकिये और गलतकिये इकट्ठे किये, महाराज के टोप को भी तबक़ से हटाया। उसके स्थान पर पानी की सुराही रखकर उसे कपड़े से ढाँप दिया और वह कोठी से बाहर निकल गया।

मदारी तो औषध लाने के बहाने पहले ही कोठी से रफ़ूचक्कर हो गया था। सब पंछी उड़ गये थे। रह गये थे कुछ पंख, क़ैद की स्मृतियों के।

https://t.me/Sahityajunction

हवेली के देवगृह में रणचण्डी के सम्मुख माथा टेककर एक स्वाभिमानी राजपूत दुहाई माँग रहा था, "मेहमान सलामत रहें।" यह था रामसिंह।

एक इमारत ऐसी थी, जिसने यमुना की ओर समाधानपूर्वक देखते हुए सन्तोष की साँस भरी, "भगवान् की दया है कि मेरे नाम पर सदा के लिए जो कलंक लगनेवाला था, वह टल गया।" यह इमारत थी विट्ठलदास की हवेली।

यमुना के जल में लहरें उठ रही थीं। नाव किनारे लग रही थी।

महाराज के मन में एक बात बहुत देर से घुमड़ रही थी। महाराज ने सम्भा जी से पूछा, "कुम्हार के घर में हिरोजी के भेस में होते हुए भी तुमने हमें पहचान कैसे लिया?"

उत्तर सुनने के लिए यमुना ने भी अपनी कलकल ध्वनि को थोड़ी देर के लिए रोक लिया।

महाराज के चरणों की ओर देखते हुए सम्भाजी ने विनयपूर्वक कहा, "उस समय आपके सिर पर पगड़ी थी, फिर भी आप ऐसे चल रहे थे, मानो आपके सिर पर तब भी टोप रखा हुआ हो।"

मथुरा के ब्राह्मणों के मुहल्ले के एक घर में भगवी कफ़नी पहने एक संन्यासी और एक बाल-संन्यासी प्रविष्ट हुए। इनके पीछे-पीछे निराजी भी भीतर आये। यह घर था मोरोपन्त पिंगले[1] की पत्नी के भाई कृष्णपन्त त्रिमल का। निराजी ने इस घर को खोज निकाला था और वह महाराज को इस सुरक्षित स्थान पर ले आये थे।

कृष्णाजी और उनके भाई विसाजीपन्त ने उत्तर भारतीय सुन्दर पद्धति से उन महान अतिथियों का हार्दिक स्वागत किया। उनकी मातुश्री लक्ष्मीबाई ने रसोई बनाना प्रारम्भ किया। पाकशाला में मथुरा की विशेष ढंग की रसोई की सुगन्धि महकने लगी।

घर के अतिथि-गृह में बिछाये गये स्वच्छ आसन पर महाराज और बालशम्भू भगवे चोले पहने बैठे थे। भाग्य किस के द्वार पर किस रूप में ला खड़ा करे, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। वास्तव में देखा जाय, तो संन्यासी, योगी और बैरागियों का स्वागत महाराज को करना चाहिए था, परन्तु आज वे ही स्वयं संन्यासी बनकर दूसरे के घर में अतिथि बनकर गये थे; वह भी मथुरा जैसे तीर्थ-क्षेत्र के एक ब्राह्मण के घर में।

महाराज ने उसाँस भरी। कफ़नीधारी सम्भाजी को वे देखने लगे। अनेक विचित्र विचारों की भगवी कफ़नी का रंग उनके मन पर भी छा गया था।

"राजा तो जन्मतः संन्यासी ही होता है। सब-कुछ त्यागकर संन्यासी होना सरल है, परन्तु सबके बीच रहकर संन्यासी बनना कठिन कर्म है। इसी भाव को अधिक जाँचने-परखने के लिए हमने अनेक साधु-सन्तों के चरण पकड़े। परन्तु तुमने तो यह रहस्य इस छोटी-सी आयु में ही जान लिया है। बेटे, ऐसे ही बने रहो तुम। कर्म-कर्तव्य राजा का, परन्तु मन से संन्यासी।"

सबके भोजन कर चुकने के पश्चात् महाराज ने सबके साथ मन्त्रणा की और आगे की गतिविधि के बारे में निश्चय कर लिया!

महाराज और सम्भाजी बिस्तर पर लेट गये! संन्यासी से लिपटकर एक बाल-संन्यासी भी सो गया।

उधर आगरा में कुहराम मच गया। 'शीवा गायब को गया' यह ख़बर सारे शहर में फैल गयी

https://t.me/Sahityajunction

थी? उस ख़बर की दहशत से औरंगज़ेब ने अपने महल में चारों ओर हथियारबन्द सिपाहियों के पहरे और मज़बूत कर दिये।

"बेमुरव्वत, निकलो यहाँ से," कहकर उसने चुनिन्दा गालियों से फ़ौलाद ख़ाँ को लताड़ा और महल से बाहर निकलवा दिया।

"वज़ीरे-आलम, 'शीवा' ने कितने रुपये नज़र-निसार पेश किये थे?" औरंगज़ेब ने ज़ाफ़र ख़ाँ से विचित्र और कड़वा सवाल किया।

"बाप-बेटे ने मिलकर क़रीबन डेढ़ हज़ार मुहरें और पन्द्रह हज़ार रुपये नज़र किये थे हुजूर!" ज़ाफ़र ख़ाँ ने ख़जानची से पूछकर बताया।

"और उसे दरबार में पेश होने के लिए कितना ख़र्च दिया गया था?" औरंगज़ेब के माथे पर बल पड़ गये।

"एक लाख रुपये, आलीजाह।" और ज़ाफ़र ख़ाँ को सवालों के पीछे छिपा मतलब समझ आया, इसलिए उसने दबी-दबी-सी आवाज़ में उत्तर दिया।

"नमकहराम, दाग़ाबाज़।" हिसाब में आये घाटे को देखकर औरंगज़ेब बेचैन हो उठा। और तसबीह के मनके तेज़ी से खींचते हुए कुछ भुनभुनाने लगा।

इधर महाराज और सम्भाजी काँख में दबाई झोली में लाखों रुपये के हीरे, जवाहरात छिपाये मथुरा के नगरद्वार से बाहर निकल रहे थे। महाराज के साथियों ने बैरागी, संन्यासी, भोले, उदासी आदि साधुओं के भिन्न-भिन्न वेश धारण किये हुए थे। अलग-अलग टोलियाँ बनाकर और एक-दूसरे से सम्पर्क बनाये रखकर वे आगे बढ़ रहे थे—बनारस की दिशा में। उनके पथप्रदर्शक के रूप में स्वयं कृष्णाजीपन्त तथा कवि कुलेश साथ थे। कृष्णाजीपन्त के भाई काशीपन्त और विसाजी भी साथ थे।

दिनभर किसी धर्मशाला में विश्राम और सायंकाल एवं प्रभात के बीच के काल में रास्ता तय करते हुए उनकी यह यात्रा जारी थी। मार्ग में आनेवाली नदियों के विशाल पाट उनकी गति में बाधा उत्पन्न कर रहे थे।

एक शाम को महाराज का पड़ाव एक धर्मशाला में था। कृष्णाजीपन्त ने धूनी जलायी। उसके चारों ओर गोल घेरा बनाकर महाराज सम्भाजी, कृष्णाजी, कुलेश आदि बैरागी साधु बैठ गये।

"सर्जेराव, हमने कितनी यात्रा पूरी की है?" महाराज ने भोले साधु का वेश पहनकर बैठे सर्जेराव से पूछा।

"जी, होगी कोई दस कोस की।" सर्जेराव ने उत्तर दिया।

"बस, इतनी ही!" महाराज ने एक कुटका उठाकर धूनी में डाल दिया। बालक सम्भाजी धूनी के दहकते अंगारों की ओर दृष्टि गड़ाकर देखने में मग्न थे। ज्वालाओं की चटाचट आवाज़ में उनका मन रम गया था। उन्हें उन ज्वालाओं में अपने मावल देश में और राजगढ़ में मनायी गयी होली के 'कण्डे-उपलों' का ढेर दिखाई दे रहा था! मानो कि बड़ी माँ साहिबा की शान्तवाणी ही उस धूनी में से बाहर आ रही थी—'यदि अवसर ही आ पड़ा, तो तुम्हें और हमें भी हाथ डालना पड़ेगा—होली के सुलगते ढेर[1] में!'

https://t.me/Sahityajunction

मथुरा से दूर आगे बढ़ रही थी वह बैरागियों की टोली। सब तेज़ी से कदम बढ़ाते चल रहे थे। कुमार सम्भाजी का घोड़ा बार-बार पीछे रह जाता था। बात करने की धुन में महाराज कभी आगे निकल जाते थे और फिर एकदम रुक जाते थे। तब सारी मण्डली रुक जाती थी। सबके पुनः इकट्ठे आ मिलने पर यात्रा फिर शुरू हो जाती थी।

"थक गये क्या?" महाराज ने सम्भाजी से पूछा।

"जी, नहीं।"

फिर उनके मन में जाने कौन-सा निश्चय आया कि महाराज एकदम ठहर गये। उनके मस्तक के भस्म की रेखाएँ संकुचित हो गयीं। मुखमण्डल पर कोई निश्चय झलक उठा। पसीने से भीगे और लाल सुर्ख़ शरीर वाले सम्भाजी की ओर उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा और फिर पास जाकर उनके कन्धे पर अपना 'संन्यासी' हाथ रखा!

"ज़रा इधर आओ," भर्रायी हुई आवाज़ में महाराज ने रास्ते के पास के एक डौलदार फैले हुए वृक्ष की ओर हाथ से संकेत करते हुए कहा। वे पिता-पुत्र वृक्ष के घेरे के नीचे आ गये। डोली के लोग पगडण्डी पर ही खड़े रहे। महाराज के मन की बात का कोई भी अनुमान नहीं लगा पा रहा था।

"एक बात सुनोगे हमारी?" महाराज की आवाज़ सदा की भाँति नहीं थी।

"जी, कहिए।" कुछ क्षण शान्ति रही।

अपने मन की बात पुत्र सम्भाजी से कहते हुए आज तक महाराज को कभी भी शब्द खोजने नहीं पड़े थे। आज वे शब्दों को खोज रहे थे।

"पल्ला दूर का है..." महाराज रुक गये, अचानक।

"जी!"

"तुम...तुम यहीं रुकोगे क्या?" महाराज ने सम्भाजी के कन्धे अधिक ज़ोर से पकड़ लिये। बालशम्भू को वह दृढ़ पकड़ ही शब्दों की अपेक्षा अधिक कुछ कह रही थी। पिता-पुत्र की आँखें दो प्रज्वलित वस्त्रज्योतियों के समान एक-दूसरे से टकरायीं और एक-दूसरे से बहुत कुछ कह गयीं। ज्वाला ने मानो चिनगारी को कुछ समझाया, हाथ की एक दृढ़ पकड़ से ही।

"जी, आज्ञा कीजिए।" सम्भाजी के मुख से ठोस वचन प्रकट हुए।

महाराज की आँखें छलछला आयीं। जिस प्रकार सेना की चण्डावल का सवार घमासान रण-संग्राम के बीच से हथियार चलाता हुआ हरावल तक आ पहुँचता है, उसी प्रकार एक विचार महाराज के मन के समस्त अटकावों को दूर हटाता हुआ अचानक प्रकट हुआ—'सचमुच इस सम्भाजी के रूप में किसी ने हमारे ही हृदय के अंश को सोने के रस में डुबोकर अपने साँवले[1] हाथों से हमें यह उपहार दिया है।' अभिमान से महाराज के नेत्रों में जल छलक आया।

'साँवले हाथ—यह अकेला जीव' क्षणभर में ही महाराज सुध-बुध खो बैठे। "चलो," सम्भाजी के कन्धों पर हाथ रखकर महाराज वृक्ष के नीचे से मण्डली की ओर चले।

"कृष्णाजी पन्त, ध्यान से सुनो।" मण्डली के बीच आकर महाराज ने कृष्णा जी पन्त को थोड़ा अलग ले जाकर मन को दृढ़ बनाते हुए कहा।

https://t.me/Sahityajunction

“हाँ, स्वामी!”

“हम लोग आगे जाते हैं। हमारे ये सुपुत्र, केसोपन्त और कविजी के साथ पीछे लौटेंगे। मथुरा जाएँगे। अपनी सबसे मूल्यवान धरोहर हम आज तुम्हारे हाथ सौंप रहे हैं। अपने देश जाकर हम अपना राजपत्र देकर अपने सरदारों और सैनिकों को भेजेंगे। तब तक कुँवर तुम्हारे भाई के पास रहेंगे। अब से ये हमारे नहीं, तुम्हारे बेटे हैं।” महाराज ने शान्त भाव से कहा।

कृष्णाजी त्रिमल ने अनुभव किया, मानो किसी ने मन-भर की शिला उनकी छाती पर रख दी हो। “कहो, क्या सोच रहे हो?” महाराज ने उन्हें चिन्तित देखकर दिलासा देते हुए पूछा।

“महाराज, हम निर्धन ब्राह्मण हैं, यह राजपुत्र हैं। यदि कुछ अनहोनी हो गयी तो हम आपको कैसे मुँह दिखाएँगे, स्वामी?” कृष्णाजी ने मन की सत्य बात कह ही दी।

“कृष्णाजीपन्त, अनहोनी तो अब भी हो सकती है। परन्तु निश्चित मानो कि यदि कुछ हुआ भी, तो हम तुम्हें उस अपकीर्ति का दोषी कभी भी न मानेंगे।” महाराज ने कृष्णाजीपन्त को धैर्य बँधाते हुए कहा। आख़िरकार कृष्णाजी इस योजना में सहयोगी बन गये। उन्होंने केसोपन्त को भी राजी कर लिया।

“तुम केसोपन्त के साथ वापस लौट जाओ। वह जैसा कहेंगे, वैसा ही करो। किसी को साथ लिये बिना बाहर मत घूमना।” महाराज भारी मन से सावधानी की सारी सूचनाएँ सम्भाजी को देने लगे।

उनके मुख से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द को सम्भाजी ने तल्लीन होकर उसी तरह सुना जैसे देव-भक्त चँगेरी में हल्दी-रोली सँभालकर रखता है।

“केसोपन्त, तुम्हारे घर में कौन-कौन है?” महाराज ने त्रिमल के घर के विषय में अधिक जानकारी पाने की दृष्टि से पूछा।

“माताजी हैं, भाई-बहनें हैं।” त्रिमल ने उत्तर दिया।

“तो आज से यह तुम्हारे भानजे हुए। ध्यान रखना।” महाराज धैर्यपूर्वक कह रहे थे।

उधर सम्भाजी के मन का सुवर्णपत्र वायु के झोंके पर सवार होकर झकोरे खाता हुआ कहीं दूर पहुँच गया था। वे उसे बलपूर्वक पकड़ रखने का प्रयत्न कर रहे थे।

किसी धार्मिक यात्रा का जुलूस जब गाँव से बाहर निकलता है और तब जैसे झाँझ, मृदंग, करताल और घण्टों का कोलाहल मच उठता है, वैसे ही सम्भाजी के मन में इस समय भावनाओं ने विक्षोभ मचाया हुआ था। आँखों के सामने से अनेक चेहरे तैरते-दौड़ते जा रहे थे।

आख़िर विदाई का वह क्षण भी आ पहुँचा। उस ‘धैर्य के अवतार’ को भी अब ऐसा अनुभव होने लगा मानो उसके गले की घण्टी में कुछ अटक गया हो। शब्द जैसे कवच पहनकर बैठ गये थे। कलेजे पर भावनाओं का बोझ असह्य हो उठा था। महाराज ने अपने हृदय के उस भोसले वंशीय सपूत के कन्धों को हाथों से थपथपाया था। वे दो पिता-पुत्र जैसे भवानी के दो नेत्र ही थे। कहने को दो थे परन्तु जो कुछ सहना-भोगना है, मिलकर ही भोगनेवाले। दो होकर भी एक।

महाराज ने झोली में हाथ डालकर सोने की एक पिण्डी बाहर निकाली। उनकी दैनिक पूजा का स्फटिकमय शिवलिंग हिरोजी के साथ रह गया था, अतः उन्होंने पूजा के लिए इसे ख़रीद लिया था।

https://t.me/Sahityajunction

इस शिवपिण्डी को सम्भाजी की अंजलि में रखते हुए महाराज ने कहा, “अब से सूर्योदय और सूर्यास्त का नमस्कार इसे ही किया करो। कम बोला करो और इस पिण्डी पर भरोसा रखो।”

अंजलि में विरागी शिव की बैरागी महाराज द्वारा दी गयी सुवर्ण पिण्डी को लिये कुमार सम्भाजी महाराज की ओर एकटक देख रहे थे।

जैसे दुर्ग की प्राचीर के सुडौल पत्थरों पर कुहासे के समय जलबिन्दु छलक उठते हैं, इसी प्रकार उनकी आँखों में आँसू की बूँदें छलछला आयीं। पुतलियों रूपी पंछी के पंख भीग गये। निकले हुए मोती गालों से लुढ़कते हुए कफ़नी पर टपक पड़े।

कर सम्पुट में रखी शिवपिण्डी को हृदय से लगाकर बालशम्भू ने आगे बढ़ते हुए घुटने भूमि में टिका दिये। अपना बैरागी माथा उस चक्रवर्ती संन्यासी के चरणों पर रख दिया।

उस स्पर्श से ही महाराज की सारी देह में रक्त की ऐसी तप्त लहर उठी कि सारी देह में रोमांच हो आया। उस लहर ने उनके नेत्रों में ‘भोसले’ मोती छलका दिये। संन्यासी ने अपनी लम्बी बरौनियों वाली पलकें बन्द कर लीं। बालशम्भू के सिर की पगड़ी पर महाराज के आशीर्वाद आँसू की बूँदें बनकर टपक पड़े।

“शम्भू बेटे ऽ उठो,” महाराज ने स्वयं को सँभालते हुए सम्भाजी को ऊपर उठाया।

“महाराज साहब, माँ साहिबा को, बड़ी और छोटी माँ जी को, धाराऊ को, सबको हमारा... मुजरा कहना...।”

सुनते ही महाराज गद्गद् हो उठे। कड़कती हुई बिजली जैसे किसी मन्दिर के शिखर पर गिरती है और उसकी लपट से निकटवर्ती विशाल वट-वृक्ष भी काँप उठता है, उसी प्रकार एक विचार ने महाराज को झकझोर दिया। ‘इस कुण्डली[1] में स्वकीय जनों द्वारा छल-कपट होने का योग है!’ महाराज का हाथ तुरन्त छाती की कौड़ियों की माला की ओर गया, परन्तु वहाँ माला नहीं थी।

चारों पैरों में दन्दानेदार शिकंजा कसे हुए हाथी के समान महाराज व्यथित हो अकुला उठे। ‘और...और यदि ये सकुशल वापस नहीं लौटे, तो? तो माँ साहिबा हमारा मुँह भी न देखेंगी।

जब उन्होंने सती होने की ठानी थी, तब हमने उन्हें जैसे-तैसे समझा-बुझा लिया था, वैसा इस बार सम्भव नहीं हो सकता।’

महाराज का हृदय जैसे गहरी खाई में जा पड़ा। हृदय में ऐसी टीस उठी कि महाराज ने सम्भाजी को देह से चिपटा लिया।

परिस्थितिरूपी वायु के झोंकों से मावल-खण्ड की दो पताकाओं के सिरे परस्पर मिलकर एक हो गये। उस स्नेहपूर्ण आलिंगन में राजा अपना ‘राजत्व’ और ‘बाल-राजा’ अपना ‘बालकत्व’ भूले, खोये हुए थे।

फिर मन को दृढ़ बनाकर महाराज ने बालक सम्भाजी को अलग किया। केसोपन्त को हीरे और माणिक दिये, अपना अनमोल हीरा सँभाल रखने के लिए महाराज ने धैर्यपूर्वक कहा, “आयुष्मान होओ।”

“हम पत्र देकर अपने चतुर सहायकों को भेजेंगे। पत्र मिलते ही तुरन्त अत्यन्त होशियार

https://t.me/Sahityajunction

रहकर उनके साथ निकल आना। सावधान रहो। जय भवानी!” महाराज के नेत्रों में अब शान्ति थी।

“जय भवानी!” महाराज के धैर्यभरे जयघोष को बालक सम्भाजी ने दुहराते हुए कहा।

---

1. पूना के आसपास के पर्वतीय प्रदेश को मावल भाग कहते थे। उस विशाल पर्वतीय भू-भाग में ऐसे बारह मावल-खण्ड हैं! इस प्रदेश के सामान्य जन ‘मावला’ कहलाते हैं।
1. सम्भाजी अपने पिता शिवाजी महाराज को ‘महाराज साहब’ अथवा ‘आबासाहब’ कहकर सम्बोधित किया करते थे।
1. राजा की ओर से प्राप्त होने वाला सिर से पाँव तक का पहनावा।
1. मिर्ज़ा राजा जयसिंह और महाराज के बीच पुरन्धर की सन्धि के अवसर पर शिवाजी ने सम्भाजी को जामिन बनाकर मुग़ल छावनी में रखना स्वीकार किया था। उसे सुनकर माँ जीजाबाई ने शिवाजी से उक्त वाक्य कहे थे।
1. महाराज शिवाजी के गुप्तचर विभाग का प्रमुख अधिकारी।
1. ‘आऊ’ शब्द मराठी के ‘आई’ (अर्थात् माता) का ही परिवर्तित रूप है। प्रस्तुत कथा प्रसंग में ‘आऊ’ शब्द से विषय वात्सल्य, ममता एवं आदरभाव का बोध होता है।
   धाराबाई = धाराऊ, जीजाबाई = जिजाऊ।
1. जिजाऊ के जेठ; शिवाजी के अग्रज।
2. जीजाबाई के पति शहाजी महाराज का शिकार करते समय घोड़े से गिरकर रक़ाबी में पैर अटकने के कारण देहान्त हो गया था।
1. महाराष्ट्र में भवानी के भक्तगण कपड़े की बनी बटदार लम्बी मशालें जलाकर नाचते-झूमते हैं! इन मशालों को ‘पोत’ कहते हैं—वस्त्रज्योति।
2. देवी भवानी की पूजा के समय माथे पर, वस्त्रों पर हल्दी-रोली लगाने की प्रथा है। कार्य के प्रारम्भ में भी हल्दी-रोली बिखेरते हैं।
1. कुल स्वामिनी तुलजाभवानी के अनन्य उपासक शिवाजी तथा उनके परिवारीयजनों में गले में कौड़ियों की माला धारण करने की प्रथा थी। कौड़ियों की माला पहनना, देवी के सम्मुख वस्त्रज्योति हाथ में लेकर नृत्य करना, हल्दी-रोली उछालना-बिखेरना, चँगेरी लेकर देवी के नाम से भिक्षा माँगना आदि कुछ प्रथाएँ उस काल में अत्यन्त पवित्र एवं प्रेरणादायी मानी जाती थीं। आज भी ये प्रथाएँ प्रचलित हैं।
1. शिवाजी महाराज के पेशवा (प्रधानमन्त्री)।
1. होली के अवसर पर जलती हुई होली में नारियल फेंकना और उसमें हाथ डालकर नारियल बाहर निकालना, यह मराठा-मावले सैनिकों की एक प्रिय, साहसपूर्ण और पवित्र परम्परा थी।
1. सम्भाजी की माता सईबाई साँवले रंग की थीं।
1. सम्भाजी के जन्म के समय राज-ज्योतिषी-द्वारा बनायी गयी जन्म-कुण्डली का एक अंश।

https://t.me/Sahityajunction

दो

इससे पूर्व ऐसा कभी न हुआ था। परन्तु आज भोसले कुल की स्थिति उस चौकी के समान हो गयी थी, जिसके पाये चार भिन्न स्थानों में जा पड़े हों। मथुरा में बाल सम्भाजी, तीर्थ क्षेत्र के मार्ग पर बढ़ रहे महाराज, राजगढ़ में हताश जिजाऊ माँ साहिबा और शृंगारपूर में सम्भाजी जी की पत्नी[1] येसूबाई!

मुण्डन कराके सम्भाजी को उपनीत 'बटु' बना दिया गया था। सिर पर गोक्षुर के समान गोल शिखा, शरीर के वस्त्र के सिरों की गाँठ गले के पीछे बाँधे, छाती पर आड़ा यज्ञोपवीत और मस्तक पर गन्धद्रव्य का तिलक लगाये सम्भाजी अब पहचाने भी न जाते थे। उपनयन न होने पर भी वे 'उपनीत' हो गये थे।

केसोपन्त ने उन्हें उत्तर भारतीय नित्यकर्म एवं उपासना की सब विधियाँ, आचमन, सन्ध्या आदि सिखा दिये थे। केसोपन्त के सुसंस्कृत घर में सम्भूराजा संस्कृत भाषा को सुनते थे। इस भाषा के सौन्दर्य ने उनका मन मोह लिया था। सायंकाल के समय गगनसुन्दरी ज्यों पूर्णचन्द के खिले हुए पुष्प को अपनी नीलवर्ण अलकावलि में गूँथ लेती है, ऐसे ही सुमधुर थी वह भाषा! मधुरतर, मधुरतम। इसे सुनते समय ऐसा प्रतीत होता था मानो शरीर के चारों ओर कोमल सुनहरी शॉल ही लपेट रखी हो।

यूँ तो यह भी एक भाषा है, अन्य भाषाओं के समान, परन्तु इसका निरालापन ठीक-ठीक कैसा है, यह सम्भाजी बहुत दिनों तक समझ न पाये थे।

एक बार वे विसाजीपन्त के साथ भगवान् के दर्शनों के लिए हरिहरेश्वर के मन्दिर में गये थे। वहाँ आरती हो रही थी। उसे सुनते ही उनके मन का गूढ़ प्रश्न हल हो गया—इस भाषा में हमारे देश के देशभक्ति के गीतों के गायक माँ भवानी की महिमा का गान करते हैं, बस ठीक वैसी है यह भाषा महिमामयी, मधुर।

मन्दिर से वापस लौटते समय उन्हें एक निर्जन एवं ध्वस्त स्थान 'कंस का क़िला' दिखाई दिया। विसाजीपन्त ने पूछा, "क़िला देखना है?"

"अवश्य," कहकर सम्भाजी मथुरा के सबसे ऊँचे स्थान, कंस का क़िला, पर जा चढ़े। सामने था यमुना की धारा का एक शानदार मोड़।

https://t.me/Sahityajunction

जलधारा के बीच में अपने पैरों के चप्पू चलाते हुए कछुए कभी उछलकर ऊपर आते थे और तब उनकी लम्बी ग्रीवाएँ ऊपर दिखाई देती थीं! फिर अचानक ये लम्बी रेखाएँ पानी में छिप जाती थीं।

'बड़ी माँ साहिबा यदि इस यमुना तट की रेत पर खड़ी हों, तो कैसी दिखेंगी?' शम्भू राजा के मन में भी यह विचार घूम गया। वे आँखें गढ़ाकर यमुना की ओर देख रहे थे।

उन्हें क्या पता था कि ठीक इसी समय इसी यमुना में आगे मिलनेवाली गंगा और सरस्वती नदियों के त्रिवेणी-संगम पर महाराज की साधु-मण्डली भी खड़ी है। प्रयाग के त्रिवेणी-संगम में स्नान करके महाराज घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तब उन्हें एक पारधी ने रोका।

अपने हाथ में पकड़े पंखों के गुच्छ को सामने रखकर वह बोला, "बाबाजी, ये गरुड़ के पंख हैं, मैनाक पर्वत के। हर काम में सफलता देने वाले हैं ये। ले जाओ पाँच!"

महाराज के माथे पर बल पड़ गये। 'हर काम में सफलता। गरुड़ के पंख।' पारधी के हाथों में उन गरुड़ के पंखों को देखकर महाराज को बालशम्भू की याद हो आयी। 'अब तो एक ही काम में हमें यश प्राप्त करना है—हमारे शम्भू बेटे के सकुशल वापस आने के काम में।'

महाराज ने गरुड़ के पाँच पंख अपनी सीधी लम्बी उँगलियों में थाम लिये। सर्जेराव ने पारधी को दीनार दिये। क्षणभर को पंखों की ओर देखकर महाराज ने उन्हें काँख की झोली में डाल दिया। उन्हें भी पता न था कि उसी समय उनका 'गरुड़ बच्चा' कंस के क़िले के ऊँचे स्थान पर से खोई-खोई आँखों से यमुना को निहारने में मग्न है और अपनी माँ साहिबा के विषय में सोच रहा है।

समय ने भी रात-दिन के काले-सफ़ेद गरुड़ पंख अपने मुकुट में खोंस लिये। डेढ़ महीने का समय बीत गया। एक-एक पड़ाव आगे बढ़ते-बढ़ते महाराज मराठी प्रदेश में संन्यासी के वेश में सक्षेम आ पहुँचे।

जैसे आग पर रखे दूध के बर्तन में उफ़ान आता है उसी प्रकार राजगढ़ का हृदय उल्लास से भर उठा।

महाराज पहाड़ी क़िले के नीचे की तलहटी तक पहुँच गये। उनके आगमन का सुसमाचार मोरोपन्त ने जिजाऊ को सुनाया। "माँ ऽऽ साहिबा, महाराज...महाराज...सकुशल लौट आये हैं। स्वामी संन्यासी के वेश में तलहटी तक पहुँच रहे हैं। हम उनकी अगवानी करने के लिए पालकी लेकर नीचे जा रहे हैं। सारा दुर्ग ही तलहटी की दिशा में दौड़ पड़ा है।" भावनाओं के तीव्र प्रवाह ने मोरोपन्त की आँखों में आज तक जमी हुई सारी चिन्ताओं को दूर बहा दिया था—आँखों से जलधारा बरसने लगी।

केवड़े के शिथिल फूल के समान गलितगात्र बनी हुई जिजाऊ का मन इस प्रकार कम्पित होकर भ्रमित हो उठा, जैसे खौलते जल में तुलसी का पत्ता ऊपर-नीचे चक्कर खाता है। उस सम्भ्रममय अवस्था में स्वयमेव वाणी फूट निकली, "हे जगदम्बे, जगदम्बे!"

भरी हुई आँखों से उन्होंने सामने खड़ी जगदम्बा की ओर देखा। पर वह तो दिखाई न देती थीं। "क्या? देवी क्रुद्ध हो गयीं हम पर?" जिजाऊ का हृदय काँप उठा, "हे माँ, मन की उलझन-ऐंठन की अवस्था में हमने तुझे बहुत-कुछ बुरा-भला कहा है। माँ, क्रोध न करना। हम तो तेरी

https://t.me/Sahityajunction

सन्तान हैं।" जिजाऊ ने भरी हुई आँखों के कोनों को पोंछा। गर्भगृह के चबूतरे पर उन्होंने अपना माथा टेक दिया।

मोरोपन्त आज्ञा पाने के लिए बहुत देर से खड़े हैं; इसका भी उन्हें ध्यान न रहा था।

मोरोपन्त तलहटी तक पहुँचने के लिए अधीर हो रहे थे। उनके लिए मन को संयमित करना असह्य हो उठा था। बोले, "माँ साहिबा, हम चलें क्या?"

हाथ के संकेत से उन्हें निकट बुलाकर जिजाऊ ने बहुत कठिनाई से एक-एक शब्द कहा, "पन्त, उनका पहनावा साथ ले जाओ। कहते हैं—पुत्र को संन्यासी के वेश में माता के सामने नहीं आना चाहिए। जाओ।" जीजाबाई ने धाराऊ की ओर देखा। पर वह थाली में एकत्रित मुहरों की ओर देख रही थी।

नीचे तलहटी में कौन-कौन आये हैं, इस बात का मोरोपन्त को कुछ पता न था। इसलिए उन्होंने महाराज और युवराज सम्भाजी के राजवस्त्रों से भरे तबक़ उठाये हुए सैनिकों को साथ लिया और क़िले से नीचे उतर गये।

नीचे दुर्ग की तलभूमि में बसी बस्ती के मुखिया के घर में महाराज अपने बैरागियों की मण्डली के साथ कमली पर बैठे थे। घर के बाहर भीड़ मची थी। उतावले लोगों की बातें बन्द ही न होती थीं। संन्यासी उन्हें सुनकर व्याकुल हो रहा था। इतने में ही मोरोपन्त आ पहुँचे। उन्होंने पालकी को द्वार पर ही रोका और तबक़धारी मावलों के साथ वह मुखिया के घर में प्रविष्ट हुए। महाराज को देखते ही मोरोपन्त झपटकर आगे बढ़े। महाराज के बैरागी चरणों में मस्तक नवाने के लिए वे झुकने ही वाले थे कि महाराज ने कमली पर से उठकर उन्हें बीच में ही रोक लिया और गले से लगा लिया। दोनों का प्रेम छलक-छलक पड़ा। कदली स्तम्भ ज्यों रिसता हो, उसी प्रकार पन्त के नेत्रों से अश्रुधारा टपकने लगी।

"महाराज, शीघ्र चलें। माँ साहिबा..." मोरोपन्त के आगे के शब्द कण्ठ में ही खो गये।

"निकलने से पहले, महाराज, यह राजसी वस्त्र धारण करें। शास्त्रों में विधान है कि पुत्र को माता के सम्मुख संन्यासीवेश पहनकर नहीं जाना चाहिए।" पन्त ने जिजाऊ की 'रीत' पालन करनेवाली बात महाराज को बतायी। सुनकर महाराज के कपाल की भस्म रेखाएँ आकुंचित हो गयीं। 'सच ही तो है। इसका तो हमें ध्यान ही नहीं रहा।' महाराज के मन का मस्तक की रेखाओं ने अनुमोदन किया। वे तनी हुई रेखाएँ शिथिल हो गयीं।

तबक़धारी सैनिकों ने तबक़ ले जाकर भीतर के कमरे में रख दिये। महाराज भीतर गये। पहनी हुई कफ़नी उतारने के लिए उन्होंने कफ़नी को हाथ लगाया ही था कि क्षणभर को उनका हाथ ठिठक गया। मन में विचारों की कफ़नी पहन ली—'हम तो यह कफ़नी आज उतार रहे हैं, परन्तु शम्भू बालक के शरीर पर तो वह आज भी है। ऐसे विचार जब आते हैं, तो ऐसा लगता है कि हम शरीर की कफ़नी कभी भी न उतारें! पुत्र संन्यासी बना हुआ है और पिता राजसी वस्त्रों में रहे, यह कैसा विचित्र खेल है? न जाने माँ भवानी के मन में क्या है?'

"जगदम्बे, जगदम्बे," कहकर महाराज ने कफ़नी उतार डाली। पहनने के लिए उन्होंने कमली पर रखे तबक़ में रखा हुआ अँगरखा उठाया ही था कि महाराज के सारे तन-बदन में जैसे बबूल के काँटे से चुभने लगे। आँखें फैलाकर वे तबक़ में रखे हुए एक छोटी बाँहोंवाले अँगरखे की

https://t.me/Sahityajunction

ओर देखते ही रह गये। यह अँगा था कुमार सम्भाजी का।

उसे देखते ही महाराज़ के भीतर का 'राजा' और 'संन्यासी' दोनों रूप कहीं दूर खो गये! शम्भू बालक के 'आबासाहब' का भाव मन में प्रबल हो उठा और एक अनिष्ट भाव महाराज के मन में बेतहाशा घुस आया—'हमारे बालक शम्भू यदि वापस न लौट सके तो?'

वेशभूषा धारण करके और शिवतिलक अंकित करके महाराज कमरे से बाहर आये। बैरागियों और मन्त्रियों के साथ वह मुखिया के घर से बाहर निकले। बाहर खड़े मावला जनसमूह में आगे बढ़ने की होड़-सी लगी थी। पगड़ियाँ महाराज के पादत्राणों पर झुकने लगीं। स्वामिभक्तों की आँखों के कोने गीले हो गये। सभी जन अपना 'खोया हुआ राजा' पाकर तलवार के समान उसे सँभालकर आँखों की म्यान में समा रखने का प्रयत्न करने लगे।

उस सारे कोलाहल के बीच मोरोपन्त को छोड़कर और किसी के भी ख़याल में यह बात न आयी कि युवराज सम्भाजी वहाँ नहीं हैं।

पहरावे का एक जोड़ा वापस आया देखकर मोरोपन्त घबरा उठे। अपने लोगों को राजदर्शन देकर महाराज पालकी में सवार हो गये। पालकी का लटकता फुँदना उन्होंने ज्योंही हाथ में पकड़ा, एक विचार ने भी उनके मन को दृढ़ता से पकड़ लिया—'अब माँ साहिबा पूछेंगी—हमारे बालक शम्भू कहाँ हैं?' हमारी प्रतीक्षा करते-करते जो थक-हार चुकी हैं, उन माँ साहिबा को अब क्या बताएँगे? पालकी के हिचकोलों के साथ-साथ महाराज का मन भी झटके खाने लगा।

आज कई दिनों बाद क़िले के पाली दरवाज़े की नौबत बज रही थी। महाराज मुख्य उपरिकोट में आये। उनकी मुख मुद्रा पर निश्चय झलक रहा था। आँखों ने माँ साहिबा को देख पाने के लिए जैसे हरिण के पाँव लगा लिये थे।

मुख्य चबूतरे पर राजमाता जिजाऊ खड़ी थीं। उनके पीछे खड़ी थी धाराऊ—नेत्ररूपी मावल पंछी को बड़ी कठिनाई से वश में करने का प्रयत्न करती हुई।

महाराज विशिष्ट जनों के साथ मुख्य चौक में आये। सामने जिजाऊ खड़ी थीं। पारिजातक वृक्ष के समान थीं वे। अपने अश्रुरूपी श्वेत पुष्पों को जगदम्बा के चरणों में समर्पित करने की कामनावाली—जिजाऊ; मन्दिर की ओर जानेवाली, परन्तु घोड़ों के पैरों तले रौंदी गयी एक पगडण्डी के समान परिस्थितियों की मारी—जिजाऊ; भवानी द्वारा बिखेरी गयी हल्दी-रोली को अपने भीतर समेट लेने को लालायित एक चँगेरी के समान—जिजाऊ; वहाँ खड़ी थीं।

क्षणभर के लिए महाराज को अपने पाँव फ़र्श के साथ जकड़े हुए-से प्रतीत हुए। दूसरे ही क्षण समुद्र के ज्वार के समान भावनाओं का सागर उनके हृदय में उफन आया। महाराज तेज़ी से आगे बढ़े। मोतियों की लड़ी झूल उठी! उस मोतीमाला का सिर पर डोलता हुआ गुच्छा ही जिजाऊ को दिखाई दिया। फिर उनकी आँखों को आँसुओं के सफ़ेद परदे ने ढक लिया। उस झिलमिले परदे में से होकर एक धूमिल स्वप्न-सा उनकी ओर बढ़ा आ रहा था। एक तेज-पुंज वस्त्रज्योति ही उनकी ओर आ रही थी। शेष कुछ भी उन्हें दिखाई न पड़ता था, वे अन्य कुछ देखना भी नहीं चाहती थीं।

महाराज ने जब उनके चरणों में माथा नवाया, तो जिजाऊ की समस्त देह रोमांचित हो उठी। उस रोमांच के कम्प के कारण उनकी पलकों पर झलकती बूँदें टपटप टपक पड़ीं मानो जिजाऊ

https://t.me/Sahityajunction

साहिबा की धैर्यशाली आत्मा ही नेत्रों के महाद्वार से होकर बहने लगी। उन्होंने झुककर काँपते हाथों से पुत्र शिवा को ऊपर उठाया। और, जिस प्रकार प्रभातकाल की मन्द वायु के झोंके से सुगन्ध जा मिलती है, यमुना के जलमय पृष्ठ पर सूर्य की किरण विश्राम करती है, उसी प्रकार पुत्र शिवाजी माँ जिजाऊ के आलिंगन में समा गये।

पुत्रत्व को आज सर्वस्व मिल गया। मातृत्व बौरा उठा; मौन बन गया। कृतज्ञता आज कृतकृत्य हो गयी। इस दृश्य को देखकर चौक में उपस्थित प्रत्येक जन को यही अनुभव होता था—'मैं ही जिजाऊ साहिबा हूँ। महाराज मेरी ही बाँहों में हैं।' वहाँ एक देहाती हृदय ऐसा था, जिसने शंका-कुशंकाओं को छाज में डालकर पछोरना शुरू किया था। उससे उड़ने वाली भूसी उसकी आँखों में पड़ रही थी—धाराऊ का हृदय था वह।

'मेरा लाल कहाँ है?' सोचते हुए उसने भरी हुई आँखों से महाराज के साथ आये बैरागियों की टोली में झाँकना शुरू किया। प्राचीर के बड़े-बड़े कंगूरे उठा कर कोई हर क्षण उसके हृदय पर रखता जा रहा है, ऐसा धाराऊ को प्रतीत हो रहा था।

आलिंगन में समाये हुए महाराज की ओर देखते समय जिजाऊ के रुँधे हुए कण्ठ से बस केवल एक शब्द ही जैसे-तैसे निकल सका—"शिऽवऽबा?" वह शब्द था वात्सल्य से भीगा, प्यार में डूबा। जन्माष्टमी के दिन दूध की धारा से नहलाये जाते हुए बालकृष्ण की छोटी मूर्ति ज्यों धारा से बाहर प्रकट होती है इस प्रकार प्रकट हुआ था वह शब्द।

उस शब्द से उनके अपने कान ही सुन्न हो गये, मन छिन्न हो गया। उस शून्यता-भिन्नता में उनकी समस्त भावनाएँ विद्रोह कर उठीं। और दूसरे ही क्षण जिस प्रकार आकाश के नीलेपन के बीच से बिजली की नागिन सरसराती हुई निकल जाती है, उसी प्रकार उनके मन में एक केंचुली वाली अनिष्ट शंका की नागिन कहीं से रेंगती हुई आ गयी—'हमारा शम्भू बेटा?'

महाराज के कन्धों को हाथों से पकड़कर झकझोरते हुए काँपते हुए उन्होंने पूछा, "शिवबा, हमारे शम्भू बेटे कहाँ हैं?"

उस प्रश्न में वात्सल्य था, परन्तु उसमें छिपे हुए भय-आतंक को भी राजा ने ताड़ लिया। वे स्तब्ध हो गये। ध्वज-दण्ड पर से सरकती हुई पताका ज्यों नीचे आती है उसी प्रकार महाराज ने नीचे झुकते हुए अपना मस्तक जिजाऊ के पाँवों पर रख दिया।

महाराज का मौन जिजाऊ के लिए असह्य हो उठा। उन्होंने अपनी हथेलियों से महाराज के कन्धों को झकझोरकर कँपा देनेवाला प्रश्न पुनः पूछा, "बोलो, शिवबाऽ, बतलाओ।" उन लड़खड़ाते शब्दों में वही अनिष्ट-शंका छिपी थी।

'क्या उतर दें?' शिवाजी सोच में डूब गये! फिर अकस्मात् ही एक बात उनके मन में सूझी। दुःख-सन्ताप और पश्चात्ताप का अभिनय करते हुए सिर के टोप को ज़ोर-ज़ोर से हिलाते हुए महाराज ने माँ साहिबा से कहा, "माँ साहिबाऽ...माँ जी। अपने शम्भू बेटे को काल ने छीन लिया। वह...वह हमें छोड़कर चले गये।"

ऐसे अशुभ शब्दों का उच्चारण करते ही महाराज का मन भीतर-ही-भीतर भय से थर्रा उठा। उनके बन्द नेत्रों को भी दिखाई दे रहा था एक 'साँवला हाथ'। उन्हें लगा, जगदम्बा की वस्त्रज्योति पर जमे हुए कज्जल से वह हाथ रँगा हुआ है और उनकी ओर ही बढ़ा आ रहा है।

https://t.me/Sahityajunction

इस विचार के मन में आते ही वे अत्यन्त भयभीत हो उठे।

जिजाऊ ने अपने कानों को काँपते हाथों से दबा लिया। मुख से एक हृदयवेधी चीत्कार निकल गयी, "शम्भू बेटे..." उन्हें सारा चौक गोल-गोल घूमता, चक्कर खाता-सा प्रतीत हुआ। आसन का चौथरा नीचे से हटा लेने पर जैसे जगदम्बा की उग्र मूर्ति भी नीचे गिरने लगती है उसी प्रकार जिजाऊ भूमि पर ढुलक पड़ीं। "अरे मेरे भगवान्!" कहते हुए धाराऊ भी धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी, जैसे उसके पैरों को लकवा मार गया हो। उसका सारा शरीर हिलने-काँपने लगा।

महाराज झट से आगे बढ़े और उन्होंने जिजाऊ को सँभालने का प्रयत्न किया। चौक में खड़ी पगड़ियाँ भी थरथराने लगीं। स्वामिभक्तों की आँखों के आँसुओं से बारहबन्दी कुरते भीगने लगे। एक ही क्षण में सारी बैठक की रौनक ही नष्ट हो गयी। सारा रंग-रूप बदल गया। डण्ठल रहित फूल ही हाथ में शेष रह जानेवाली जैसी स्थिति हो गयी थी। महाराज वापस लौट आने का आनन्द मनावें अथवा छोटे महाराज के चल बसने के दुःख से रो पड़ें, कोई भी कुछ समझ न पाता था।

"माँ साहिबा, तनिक हमारी बात तो सुनिए।" महाराज जिजाऊ को सँभालते हुए और उन्हें देवमहल की ओर ले जाते हुए बार-बार कह रहे थे। जिजाऊ को तो जैसे कुछ भी सुनाई न दे रहा था।

"पन्त धाराऊ को भी इधर भेज दो," उस स्थान से जाते हुए महाराज ने देवमहल की ओर संकेत करते हुए मोरोपन्त से कहा।

महाराज जिजाऊ को देवमहल में ले आये। पहले उन्हें समुचित रीति से वहाँ बैठाया। धाराऊ के हृदय का बाँध जैसे फूटा ही चाहता था। वह भावनाओं के प्रवाह को मुँह में साड़ी का छोर ठूँसकर रोकने का प्रयत्न करती हुई देवमहल में आ गयी।

धाराऊ के भीतर आने पर महाराज ने अर्गला लगाकर द्वार बन्द कर लिया। भवानी के चरणों पर पड़े एक बिल्वपत्र को उठाया। फिर वे नितान्त शान्त होकर गर्भगृह में देवी के पादासन पर मस्तक रखकर बैठी हुई जिजाऊ के निकट आये।

"माँ, साहिबाऽ!" महाराज ने जिजाऊ के कन्धे पर हाथ रखकर उन्हें धीरे से पुकारा। "हमारी सौगन्ध है आपको। सिर ऊपर उठाइए और मेरी बातों को ध्यान से सुनिए।"

भरी हुई आँखों से जिजाऊ ने ऊपर देखा। महाराज ने बिल्वपत्र माँ साहिबा के हाथों में दिया और फिर वह 'संकल्प-पुरुष' कहने लगा, "माँजी, अधीर न बनें! बालक शम्भू मथुरा में सकुशल वर्तमान हैं। वह औरंगज़ेब के चंगुल से सकुशल बाहर निकल सकें, इस कारण ही हमने यह चाल चली है। स्वयं अपनी जीभ पर और आपके हृदय पर शिला का मनों-भारी बोझ रखकर ही हमने ऐसा कहा है। माँ जी, ऐसा कहना-करना ज़रूरी है, यह आप समझ लें। तब ही शम्भू कुशलक्षेम सहित यहाँ लौट कर आ पाएँगे।" महाराज थोड़ी देर चुप रहे। फिर भवानी की मूर्ति की ओर देखते हुए बोले, "इस उद्देश्य से ही हमने आज आपको जीवन में पहली बार ऐसा कष्ट दिया है। परन्तु आशा है, आप हमारा उद्देश्य जानकर हमें क्षमा करेंगी।"

जिजाऊ के हृदय में, कानों में, विविध-भावनाओं ने कोलाहल मचाया हुआ था—वे क्या कहें, क्या न कहें, समझ न पा रही थीं। सिर हिलाते हुए वे जैसे-तैसे बोलीं, "शिवबा तुमने चाल

https://t.me/Sahityajunction

तो खोज निकाली, परन्तु तुम्हारी ये कठोर चालें हमारा निर्बल हृदय कैसे सहन कर पाएगा? कुछ भी करो, हमारे प्यारे शम्भू को हमारे सामने ले आओ।"

धाराऊ आँखें फैलाये महाराज की ओर देख रही थी। वह कहना चाहती थी, 'यह...यह ऐसी बात मुँह से निकली कैसे?' परन्तु उसके मुख से एक शब्द भी न निकल पाया। उसका मन तुरन्त उड़कर, जिसे उसने कभी देखा नहीं था, उस मथुरा में जा पहुँचा था।

देवमहलों में ऐसी नीरवता छा गयी थी कि साँस की आवाज भी सुनाई दे। महाराज, जिजाऊ, धाराऊ, तीनों के मन में शम्भू राजा ही मँडरा रहे थे। इसी समय रानियों के महल में अकस्मात् ऐसा तीव्र क्रन्दन-विलाप मचा कि देव मन्दिर की यह नीरवता खण्डित हो गयी।

रनिवास में पुतलाबाई अपने महल में अपने पति शिवाजी के स्वागत के लिए थाली में नीराजना सजाये उत्सुक बैठी थीं। परन्तु उससे भी अधिक उत्सुक थीं वह बाल शम्भू की आरती उतारने को। उन्हें वे पुत्र से भी बढ़कर प्यार जो करती थीं। परन्तु ज्योंही दासी ने आकर रोते-रोते बालशम्भू का दुःखद समाचार सुनाया, वे टूटकर पलँग पर बैठ गयीं। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा, मानो काली रस्सियों से बना हुआ एक बड़ा तावीज़ बनाकर किसी ने उससे सम्पूर्ण शरीर को कसकर बाँध डाला हो! तावीज़ की याद आते ही उनके मुख से अकस्मात् निकल पड़ा, "दग़ाबाज़!"

यह शब्द कहा गया था उस तावीज़ के लिए, जो पुतलाबाई ने आगरा के लिए प्रस्थान करते समय अपने बालशम्भू की भुजा में बाँधा था। पुतलाबाई का दम घुटने लगा, गला रुँध गया।

बालक शम्भू की सुरक्षित वापसी के उद्देश्य से महाराज ने हृदय कठोर बनाकर राजगढ़ में शम्भूराजा के 'मृतक-कर्म' पूर्ण किये। सारे दुर्ग को मरणा-शौच लग गया। सम्भाजी की मृत्यु की अफवाह बारहों मावल-खण्डों में फैल गयी। गाँवों-बस्तियों की घरों-कुटियों में भी दुःख छा गया।

राजगढ़ से महाराज का भेजा हुआ एक सन्देशवाहक सवार शृंगारपूर के नगरद्वार में प्रविष्ट हुआ। अपने सिर की पगड़ी उतारकर वह सम्भाजी के श्वसुर पिताजी शिर्के की हवेली की दहलीज़ लाँघकर भीतर गया।

"तुरन्त मिलने आइए। कुछ विशेष बातें कहनी हैं!" इतना ही सन्देश महाराज ने पिताजी को लिखकर भेजा था।

अब मथुरा पर शीतऋतु का राज्य था। यमुना का जल कुहरे की रजाई ओढ़ने लगा। सूरज काफी ऊपर तक चढ़ आये, तो भी उस जल के दर्शन नहीं हो पाते थे। महाराज को मथुरा से गये दो मास का समय बीत चुका था। दशहरा अभी-अभी बीता था। सम्भाजी थैली लेकर आनेवाले सन्देशवाहक की बाट जोह रहे थे।

"कोई आया क्या?" वे प्रतिदिन स्नान, दर्शनादि से लौटते ही कृष्णाजीपन्त की माताजी लक्ष्मीबाई से पूछते थे। ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे, त्रिमल परिवार के लोगों की चिन्ता में वृद्धि हो रही थी। कोहरा घना होता जा रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

एक दिन कन्धे पर खुरजी लटकाये, उत्तर देश के व्यापारियों की वेशभूषा धारण किये हुए दो व्यक्ति त्रिमल के घर में प्रविष्ट हुए।

शम्भूराजा काशीपन्त के साथ नगर में कहीं गये थे। घर में केवल विसाजी और लक्ष्मीबाई थे। व्यापारियों ने उन्हें ठीक से पहचान लिया था।

उन व्यापारियों में से एक ने बन्दों से बँधी थैली खुरजी से बाहर निकाली और विसाजी के हाथ में दी। सिर के साफे के छोर में बाँधी हुई एक रत्नजटित अँगूठी उसने उनके हाथ पर रखी और कहा, "आज्ञा है कि ये भानजे को देना," व्यापारी त्रिमल की बैठक में बैठ गये।

शम्भूराजा ज्योंही बाहर से लौटे, उन्होंने प्रतिदिन के अनुसार विसाजी से नितान्त उत्सुक होकर प्रश्न पूछा, "कोई आया है?" वहाँ बैठे व्यापारियों की ओर उनका ध्यान नहीं था इसलिए व्यापारियों द्वारा किये गये मुजरे भी वे देख नहीं पाये।

विसाजी ने मौन रहकर ही अँगूठी सम्भाजी के हाथ में दी। उसकी जगमगाहट से उनकी आँखों में लाखों सूर्य जगमगा उठे। 'अरे! महाराज साहब की अँगूठी।'

अपने आपको भूलकर वह एकटक अँगूठी को ही देखते रह गये। अँगूठी के रत्न से फूटने वाली किरणों से उनके मन में असंख्य भावों का उफान-सा आ गया—माँ साहिबा, महाराज साहब, समस्त मातृवर्ग, धाराऊ, गोमाजी बाबा अन्तोजी, रायाजी, केशव, पण्डित, मावल-खण्ड...

उन्होंने बैठक में खड़े व्यापारियों की ओर दृष्टि फेरी ही थी कि वे दोनों कमर तक झुक गये। मावली शैली के मुजरे पेश हुए और व्यापारियों के मुख से गुप्त 'सांकेतिक' कविता निकली, "माता की यह हल्दी-रोली। जंगल से वायु बोली।"

खड़ाऊँ खटखटाते हुए सम्भाजी उनके पास आये। कई दिनों के बाद सुनाई दी मावलदेश की बोली ने उनका हृदय मथ डाला था। सांकेतिक काव्य में ही उन्होंने उत्तर दिया, "भवानी की यह हल्दी-रोली। जंगल से वायु बोली!"

यात्रा के लिए आवश्यक सामान की गठरी कन्धे पर उठाये काशीपन्त मथुरा छोड़कर निकले थे—तीर्थयात्रा को। साथ थे बटु वेशधारी सम्भाजी। किसी को सन्देह न हो, इसलिए माता लक्ष्मीबाई भी साथ निकल पड़ी थीं। सचमुच 'तीर्थयात्रा' ही तो करनी थी—महाराज और सम्भाजी राजा का निर्माण करनेवाली माँ जिजाऊ को वे जी-भर देखना चाहते थे।

यमुना और मथुरा से विदा होते हुए सम्भाजी का दिल भर आया। त्रिमल परिवार कड़ाके की सर्दी के बीच ही मार्ग पर आगे बढ़ता जा रहा था।

महाराज के गुप्तचर और शस्त्रधारी सैनिक उन पर अपनी देख-रेख रखते हुए आगे-पीछे चल रहे थे। वे लोग उनके आस-पास रहकर शस्त्रों को छुपाकर, कोई फ़कीर का, कोई इत्र फ़रोश का, कोई कठबैद का, कोई एकदम मुग़ल सरदार का वेश धारण करके साथ चल रहे थे। सबने छटी-कटी दाढ़ियाँ रखी हुई थीं।

यह 'यात्रा' उत्तर से दक्षिण के मावल-खण्ड की ओर जा रही थी। चलते-चलते सम्भाजी की

https://t.me/Sahityajunction

पिण्डलियों में ऐंठन भर जाती थी। रात्रि के विश्राम के समय लक्ष्मीबाई उन पिण्डलियों पर तेल की मालिश करके कष्ट कम करने का प्रयत्न करती थीं। मार्ग में ही कहीं पर पत्थरों का चूल्हा बनाकर खिचड़ी पकाकर वह सबको खिलाती थीं।

अब उज्जैन नगरी पास आ गयी थी। यात्रियों ने हवेली नामक एक गाँव की धर्मशाला में डेरा डाला हुआ था।

काशीपन्त नदी से पानी की गगरी भर लाये। लक्ष्मीबाई ने पत्थरों के चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ा रखी थी। काशीपन्त सम्भाजी की पिण्डलियों की मालिश करके ऐंठन कम कर रहे थे। सब मौन थे। नित्य की भाँति सारे कामकाज हो रहे थे।

अचानक घोड़ों की टापों की आवाज़ धर्मशाला की दिशा में आती प्रतीत हुई। यात्रियों ने आँखों ही आँखों में एक-दूसरे को सावधान रहने का संकेत किया।

कुछ क्षणों के भीतर ही चार मुग़ल घुड़सवारों का एक दल धर्मशाला के सामने आ धमका। सवारों ने घोड़ों से उतरते ही बागडोर घोड़े की पीठ पर उछालकर फेंकी और वे चारों झपटते हुए निकट आने लगे। बटोहियों के हृदय आतंकित हो उठे। फिर भी मानो सैनिकों को हमने देखा ही नहीं ऐसा भाव दिखाते हुए वे यात्री अपनी-अपनी जगह काम में ही मगन रहे।

"ए कुफ़्र की नस्ल, कहाँ से आये हो तुम?" सवारों के अगुआ ने आँखें तरेरते हुए काशीपन्त से पूछा।

"जी मथुरा से," काशीपन्त त्रिमल ने उत्तर दिया।

"कहाँ जा रहे हो?"

"तीरथ यात्रा के लिए रामेसर जा रहे हैं हुज़ूर।"

"यह कौन है?" वह अगुआ सम्भाजी के सामने आ खड़ा हुआ। उस अगुए का नाम था—हरहिकमत ख़ाँ।

"यह मेरा भानजा है सरकार।" काशीपन्त ने उत्तर दिया।

"झूठ। सूअर, ये 'शीवा' दक्खनी का बच्चा 'सम्भा' है।" इन वाक्यों को सुनते ही सम्भाजी के कानों की लोलकी लाल हो उठी, मानो किसी ने कलेजे पर अंगारा रख दिया हो। 'ख़त्म हो गया। अब तो सारा खेल ही ख़त्म हो गया।' सम्भाजी की पिण्डलियों में फिर ऐंठन आ गयी।

"शीवा? कौन शीवा? यह तो मेरा भानजा है।" काशीपन्त ने आवाज़ चढ़ाते हुए ऐसे कहा, मानो वे शिवाजी को जानते ही न हों। और वह अपने भानजे को किसी भी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं हों। उन्होंने शम्भूराजा को अपने से चिपटा लिया।

"यह तेरा भानजा है? क्या नाम है इसका? माँ कहाँ है इसकी?" हवलदार ने प्रश्न-रूपी कोड़े को एक और फटकार जमायी।

"इसका नाम माधव है। इसकी माँ गुज़र गयी है।" काशीपन्त ऐसे बोले जैसे अपनी बहन की स्मृति से उनका गला भर आया हो।

"झूठ। बम्मन, तेरी जुबाँ यूँ सीधे से नहीं खुलेगी।" उस हवलदार ने अपने हाथ का कोड़ा काशीपन्त की बगल पर मारा। उस कोड़े का सिरा सम्भाजी की बाँह पर भी पड़ा और एक

https://t.me/Sahityajunction

निशानी छोड़ गया। यात्रीगण बेचैन हो उठे, 'शाही शिकंजे में अटक गये।'

"हम ग़रीब ब्राह्मण हैं, यात्रा पर जा रहे हैं, रहम करो सरकार!" कोड़े की मार की वेदना भूलकर केसोपन्त अपनी सारी अभिनय कला को दाँव पर लगाते हुए बाज़ी हारती हुई अपनी किस्मत से झगड़ रहे थे। वे गिड़गिड़ाने लगे।

"हरहिकमत ख़ाँ, यह बम्मन है, तो इसकी जुबान यूँ नहीं खुलेगी। इसे एक ही थाली में खाना खाने के लिए कहो, अपने भानजे के साथ।" एक सवार ने अपने सरदार को एक तरकीब सुझायी।

"मरहवाऽऽ, बिलकुल दुरुस्त।" कहते हुए हवलदार ने काशीपन्त को धमकाते हुए कहा, "ए बुतपरस्त, यह भानजा है न तेरा, तो इसके साथ एक ही थाली में खाना खा। ए बुड्डी, लगा थाली," हिकमत ख़ाँ ने हुक्म दिया। सारे यात्री गड़बड़ा गये। उलझन में पड़ गये। ऐसी बात क्योंकर की जाय?

"शास्त्र में ऐसा करना..." केसोपन्त कुछ कहना चाहते थे।

"जहन्नुम में गया तेरा शास्तर। थाली लगा, ए बुढ़िया।" हिकमत ख़ाँ ने उन्हें बोलने ही नहीं दिया।

काशीपन्त ने सम्भाजी की ओर देखा। उन्हें सन्देह हुआ, अब इस राजपुत्र का रक्त उबल पड़ेगा। शम्भूराजा कुछ गड़बड़ झमेला कर बैठेंगे, फिर सबकी रवानगी हो जाएगी उज्जैन के आबदारख़ाने में। जीवन भर के लिए धब्बा लग जाएगा! लक्ष्मीबाई ने समझदारी दिखाते हुए थाली में खिचड़ी परोसी। उसमें मथुरा की मिठाई रखी।

कमली की तह बनाकर बिछायी गयी और उसके एक ओर केसोपन्त बैठ गये।

"बैठो, बेटा," कहते हुए उन्होंने बटु सम्भाजी को थाली की दूसरी ओर बिछायी कमली पर बैठने का इशारा किया।

मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे अवसर आते हैं, जो आकर एक ही क्षण में अत्यन्त बहुमूल्य समझदारी की बातें सुझा जाते हैं।

शम्भूराजा कमली पर बैठ गये। उन्होंने काशीपन्त के साथ ही 'बलिवैश्वदेव' की आहुतियाँ दीं। क्षणभर के लिए दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा और दोनों ने मन ही मन कुछ पक्का कर लिया। आँखें बहुत कुछ कह जाती हैं।

भोजन की थाली को नमस्कार करके उन्होंने उसे हाथ लगाया। उन दो हाथों में से एक हाथ था—यमुना के जल का अर्घ्य देनेवाले ब्राह्मण का और दूसरा हाथ धरती को रक्त का अर्घ्य चढ़ाने की ही जिनकी 'कुल की रीत' है, उस भोसले का। यह भाग्य की लीला थी। काशीपन्त और शम्भू राजा एक ही थाली में खाना खाने लगे। हिकमत ख़ाँ और उनके साथी यह देखकर छटपटाकर रह गये।

"ग़लत ख़बर दी कम्बख्तों ने," हिकमत ख़ाँ ने ख़बर पहुँचानेवाले को खरी खोटी सुनायी।

"यह चावल चबानेवाला गुलशब्बो शीवा का बच्चा कैसे होगा? चलो।" सिपाही धर्मशाला के बाहर चले गये। यात्रियों ने सन्तोष की साँस ली। धर्मशाला में शान्ति छा गयी।

शम्भूराजा की ओर अभिमान और कौतुक-भरी दृष्टि से देखते हुए काशीपन्त ने मन ही मन

https://t.me/Sahityajunction

सोचा—'वास्तव में हमारा भी इतना अवधानी, इतना समझदार भानजा होता, तो कितना अच्छा होता!"

सम्भाजी राजा की उँगलियाँ अभी थाली का अन्न मिलाने में ही व्यस्त थीं। आज उन्होंने पहली बार यह अनुभव किया—'हमें...आज तक इस प्रकार सामने बैठकर आबासाहब के साथ एक ही पात्र में भोजन करने का सौभाग्य कभी नहीं मिला।'

उत्तर में जन्मा एक संस्कारशील ब्राह्मण और 'श्री' के राज्य की स्थापना करनेवाले महापुरुष का इकलौता अंकुर एक-दूसरे के साथ-साथ खाना खाते हुए इस प्रकार के भिन्न-भिन्न विचारों में डूबे हुए थे। कभी-कभी भाग्य निराले खेल दिखाया करता है, ऐसा ही खेल तो था यह!

सारे कष्ट और आपदाएँ भोगते हुए 'त्रिमल परिवार' का यह यात्री दल अब राजगढ़ से एक पल्ला दूर रह गया था। हरकारों ने यह समाचार राजगढ़ के मुख्य उपरिकोट तक पहले ही पहुँचा दिया था।

जिजाऊ के दर्शन करके महाराज स्वयं दुर्ग से उतरकर नीचे की बस्ती में आये—शम्भूराजा की अगवानी करने; सच कहा जाय तो अपने ही जिगर के टुकड़े को हाथ बढ़ाकर स्वीकार करने; उनके साथ मोरोपन्त अण्णाजी, प्रतापराव, आनन्दराव, केशव पण्डित, कृष्णाजी, मुहम्मद सईस, गोमाजी बाबा आदि चुनिन्दा लोग थे। सम्भाजी के राजवस्त्रों को तबक़ों में सजाये तबक़धारी सेवक साथ थे। युवराज सम्भाजी को ऊपर दुर्ग में ले जाने के लिए सुनहरे और व्याघ्रमुखी डण्डोंवाली लाल सिकलाती कपड़े के अस्तर से मढ़ी हुई एक पालकी नीचे की बस्ती में तैयार खड़ी थी।

प्रतीक्षा करते समय आनेवाले क्षण आते तो हैं, परन्तु जानेवाले क्षणों के पीछे शीघ्र गति से जाते नहीं हैं; ठहर से जाते हैं। इस स्थिति में मन के लिए खींचातानी कैसी असह्य हो उठती है।

महाराज बस्ती की ओर आनेवाली पगडण्डी पर दूर तक दृष्टि लगाये हुए थे। चारों ओर हरे-भरे घास के मैदानों के चमचमाते गलीचे लहरा रहे थे। उन लहरों से महाराज के मन में विचारों की तरंगें उठ रही थीं। किसी होली के त्यौहार पर कभी शम्भूराजा ने उनसे पूछा था, "आबासाहब, आप जलती होली के बीच का नारियल बाहर निकाल सकेंगे?"

महाराज ने एक उसाँस छोड़ी, "शम्भूराजा, हम भी निकालते हैं होली के भीतर से नारियल, परन्तु...परन्तु न जाने क्यों हम अचानक वह जलता गर्म नारियल पड़ोसी के हाथों में दे बैठते हैं। फिर उसके हाथ जलते रहते हैं। देखो न...हम तुम्हें उत्तर में ले गये और तुम्हारे हाथों में ऐसा ही तप्त नारियल दे बैठे। माँ भवानी ने ही लाज बचा ली, अन्यथा आज माँ साहिबा को हम क्या उत्तर देते?"

बालशम्भू को एक नज़र देख पाने के लिए महाराज लालायित हो उठे थे। कहीं दूर पर काशीपन्त और लक्ष्मीबाई के बीच चलने वाले बटु सम्भाजी को पहले दिखाई पड़ी रायगढ़ की संजीवनी माचो[1] पर लहराने वाली एक भगवे रंग की बिन्दी। उन्होंने छाती पर हाथ लगाकर उसे सम्मान दिया। राजगढ़ के दिखलाई पड़ते ही उनके दबे हुए विचार ऐसे उछल पड़े जैसे नाले के पानी को पार करनेवाले घोड़े के पैरों से पानी की सफ़ेद-स्वच्छ बौछारें इधर-उधर उछल पड़ती हैं! कई स्मृतियाँ, अनेक चेहरे, कई स्थान, सबने मिलकर मन में ऊधम-सा मचा दिया।

https://t.me/Sahityajunction

‘जब हम राजा जयसिंह की भेंट के बाद शाही फरमान लेकर लौटे थे, तब महाराज साहब आगे आकर मिलने के लिए माची पर नहीं आये थे। आज भी यदि वे न आये हों तो?’ बटुवेशधारी शम्भू चलते जा रहे थे। पाँव में पहनी खड़ाऊँ की खटखट आवाज़ हो रही थी। हृदय धड़क रहा था—एक-एक क्षण बिताना असह्य हो उठा था।

सागर के जल पर पूर्व दिशा का सूर्य जैसे चमचमा उठता है, यों सामने के घास के मैदान के बीच की पगडण्डी जहाँ समाप्त होती थी, वहाँ दूर सिरे पर सम्भाजी को कुछ झिलमिलाता-सा दिखाई दिया। वे चलते-चलते क्षणभर को रुक गये। आँखों पर ज़ोर देकर उन्होंने उस जगमगाती वस्तु के बारे में कुछ अनुमान किया!

उनका हाथ अनजाने में ही काशीपन्त के हाथ से छूट गया। दूर पर महाराज के ज़िरहटोप की सोने की कलाबत्तू की जगमगाहट दिखाई दी। उसे देखते ही बालशम्भू के नयनों में लाखों सूर्य चमक उठे। छत्ते में शान्त बैठी मधुमक्खियाँ अचानक एकदम झुण्ड बनाकर उड़ने लगीं। इस प्रकार इनके हृदय में रक्त की तरंगें सरसराने लगीं।

साथ चल रहे काशीपन्त और लक्ष्मीबाई को भौचक बनाते हुए एकदम अपने हाथ ऊँचे उठाकर बटु सम्भाजी ने पुकार लगायी, “महाराज साहब!” और होठों से निकाले शब्द हमसे आगे भागे जा रहे हैं, यह ध्यान आते ही वे तेज़ी से दौड़ पड़े। पैर में पहनी खड़ाऊँ दूर जा गिरीं। बरसात की मार से घबराया हुआ बछेड़ा जिस प्रकार घुड़साल दिखाई देते ही पूँछ ऊपर उठाकर दौड़ने लगता है, उसी प्रकार बटु सम्भाजी दौड़ पड़े। सम्भव होता तो मावलदेस का ऊँचा आकाश भी इस भोसलाई राजपुष्प को उठाकर अपने मन के उमड़ते कल्लोल को शान्त करने के लिए अपने नीलवर्ण के आलिंगन में भर लेता।

चारों ओर फैले हुए घास के हरे मैदान में से एक सुनहरा अंकुर फूट कर आता हुआ शिवाजी महाराज को दिखाई दिया। उनके शिवतिलक में सिकुड़न आ गयी—आँखों पर ज़ोर देकर वे देखने लगे...

“शम्भू बेटाऽ दौड़ रहा है...गिर गया तो?” जैसे कोई आठ हाथों को आगे बढ़ाकर दौड़ पड़े, ऐसे महाराज झटपट आगे बढ़े। महाराज इस प्रकार झटपट क्यों चले जा रहे हैं, यह उनके साथ के लोगों को पहले तो समझ नहीं ही आया; परन्तु जब समझ आया, तो वे सब भी महाराज के पीछे-पीछे ही तेज़ी से चलने लगे।

बटु सम्भाजी का मुख पसीने से अभिषिक्त और गर्मी से लाल हो उठा था। वे हाथ उठाकर दौड़े आ रहे थे। कन्धे की खिसकने वाली झोली को बार-बार सँभाल रहे थे वे। सम्भव होता तो वे इस झोली को फेंक ही देते।

झोली सँभालते हुए दौड़नेवाले बटु शम्भू को देखकर महाराज गद्‌गद हो उठे। उन्होंने सोचा—‘वामनावतार की बटुमूर्ति भी ऐसी ही रही होगी क्या?’

जैसे क़िले की प्राचीर से सनसनाती हुई हवा जा टकराती है, पर्वत शिखर से छलाँगें लगाता हुआ, भागता हुआ, पहाड़ी नाला ज्यों किसी झागदार, तीव्रवेग वाली नदी से जा मिलता है; उसी प्रकार बटु सम्भाजी पग बढ़ाते हुए महाराज से जा मिले। श्वास से दूर गया हुआ प्रश्वास आ मिला। तलवार से धार आ मिली। राजयोगी से बालयोगी आ मिला। दूरदर्शी एवं निपुण महानता से सहनशीला सयानी लघुता आ मिली। आबासाहब से बालशम्भू आ मिले। आबासाहब की

https://t.me/Sahityajunction

कमर को बालशम्भू ने दृढ़ रूप से आलिंगन में कसा हुआ था। आबासाहब के अँगरखे में उनका मुख छिपा हुआ था। और वे मुख को बार-बार इधर-उधर रगड़ रहे थे। उनके मस्तक पर लगे गन्ध द्रव्य का टीका बिखर गया था—महाराज की टोप की लड़ियाँ भी तेजी से हिल रही थीं।

"म ऽ हा..." शम्भूराजा बोलना चाहते थे परन्तु जैसे शब्द के स्वर ही भावों के स्वरों में अटककर उलझ गये।

महाराज की लम्बी-सीधी हथेलियाँ शम्भूराजा की पीठ पर फिर रही थीं। ममता से, अभिमान से, धन्यता के भाव से? कैसे? कैसे? यह या तो वे हाथ जानें या वह पीठ ही जाने।

पीठ पर फिरने वाले उस हाथ ने बालशम्भू का उबलता हृदय शीतल कर दिया। गर्दन उठाकर उन्होंने भरे नयनों से महाराज की ओर देखा—वही-वही सीधी सरल मुखमुद्रा—पिण्डी के समान। कुछ याद आते ही सम्भाजी महाराज से अलग होकर पीछे हटे और उन्होंने उनके चरणों पर अपना माथा रख दिया। फिर उठकर अपने कन्धे की झोली सामने लाकर उसमें हाथ डाला। महाराज ने उत्तर देश में विदा होते समय सोने की जो पिण्डी उन्हें दी थी, वह उसमें से बाहर निकाली। पिण्डी धूप में झिलमिला उठी।

महाराज की ओर तनिक देखकर वह स्वर्ण पिण्डी उनकी अंजलि में रखते हुए वे विनयभाव से बोले, "हम...हम कम बोला करते थे आबासाहब।" उनकी दृष्टि महाराज के चरणों पर टिकी थी।

धूप में चमचमाती पिण्डी की ओर देखकर महाराज सोच रहे थे—'इन्हें...इन्हें तो अधिक बोलना चाहिए।'

अचानक महाराज को याद आयी प्रयाग के घाट की पैड़ियों पर मिले उस पारधी की। 'हर काम में सफलता देनेवाले गरुड़ के पंख'—महाराज के नासापुट से एक समाधान का उच्छ्वास निकल पड़ा।

दूर वन में कहीं पर आम्रकुंज के बीच में बैठा, तण्डुलकण खाकर तृप्त हुआ कपोल घुघुआ रहा था—"कुट-कुट-कुटुर्र कुटुर्र।" परन्तु महाराज को तो अब उसकी घुघुआती बोली सुनाई ही नहीं दे रही थी।

सम्भाजी राजा ने बटुवेश उतारकर राजवेश धारण किया। कहारों ने 'जय भवानी' की गर्जना करते हुए पालकी उठायी और पालकी राजगढ़ के पर्वतीय दुर्ग पर चढ़ने लगी। उस पालकी में महाराज के साथ सम्भाजी भी बैठे थे। पालकी के पीछे मोरोपन्त अपने श्यालक कृष्णजी और काशीपन्त के साथ पहाड़ पर चढ़ते आ रहे थे। लक्ष्मीबाई एक डोली में बैठी थीं।

क़िले के पाली दरवाज़े तक पालकी पहुँची और क़िले की नौबत इतनी ज़ोर-ज़ोर से बजने लगी कि शायद पहले कभी न बजी होगी। नौबत की दुड़-दुड़-दुम सुनते ही क़िले की बन्दूक़ों, पटाख़ों और तोपों ने भी अपने कण्ठों की रुद्रध्वनि गुँजा दी। धमाकों की आवाज़ की गुंजन से मावल की घाटियाँ दहल उठीं।

ऊपर दुर्ग में जिजाऊ, धाराऊ, और पुतलाबाई को अनुभव हो रहा था कि जैसे तोपों-बन्दूक़ों

https://t.me/Sahityajunction

की धड़धड़ाहट की अपेक्षा उनके अपने हृदयों की धड़कन ही कान सुन्न किये दे रही है।

पालकी संजीवनी माची पर आकर ठहर गयी। यहाँ आकर महाराज और युवराज सम्भाजी नीचे उतर पड़े। वे साथ-साथ चल रहे थे और विश्वासपात्र सरदारों-सेवकों का समुदाय पीछे-पीछे चल रहा था। माची पर जितने लोग थे, वे आ-आकर उनके चरण छूने लगे। संजीवनी माची से उपरिकोट में जाने के लिए एक सुरंग से होकर जाना पड़ता था। सब लोग सुरंग के मुख तक आये। प्रहरियों ने सुरंग के मुख की शिला को दूर हटाया। महाराज और सम्भाजी सुरंग में प्रविष्ट हो गये। मशालों का धूसर-मन्द प्रकाश सीढ़ियों पर पड़ रहा था। चलते-चलते दोनों एक विशेष सीढ़ी पर पैर रखते ही ठहर गये। उन्होंने एक-दूसरे को देखा। उन्हें स्मरण हो आया—यहीं एक बार महाराज ने कहा था और सम्भाजी ने सुना था—'भोसले वंशीयजनों को सुरंगों से क्या भय! चाहे वे रास्ते की सुरंगें हों अथवा जीवन के मार्ग की।'

उपरिकोट[1] आ गया। सब विशिष्ट जन दहलीज़ तक आ चुके थे। किसी को कुछ अनुमान भी न था कि तभी भीतर से गाढ़े की साड़ी पहने धाराऊ अपने गुदे हुए हाथों में एक काला मुरग़ा पकड़े एकदम सामने आ गयी। बालशम्भू को सामने देखते ही उसका देहाती कुनबी प्यार उमड़ आया। मुख से बोल निकल पड़े, "अरे मेरे लाल, कहाँ था? कहाँ था रे तू?"

उसने हाथ में पकड़े उस मुरग़े को सम्भाजी के चारों ओर तीन बार घुमा कर निछावर कर दिया। भयभीत मुरग़ा बड़ी विचित्र-सी आवाज़ में चीख़ा। पंख फड़फड़ाते हुए उस मुरग़े को फिर धाराऊ ने दूर फेंक दिया :

"आऊऽ," सम्भाजी ने सबके सामने उनके कुनबी चरणों में अपना राजमस्तक रख दिया। आँचल में ज्यों कोई पूजा के नारियल को सँभालकर ले, इस प्रकार धाराऊ ने झुककर बालशम्भू को अपने शरीर से दृढ़ता से लिपटा लिया।

उसका मौन मन कह रहा था—'महाराज के इस लाल को कभी किसी पापी की नज़र न लगे।' धाराऊ के नेत्र-रूपी मावल देस की दो गगरियों का जल टपकने लगा। धाराऊ से अलग होकर सम्भाजी चौक के पत्थर की बनी देहली पर महाराज से सटकर खड़े हो गये। सुहागिनों ने उनके चरणों को भरी हुई गगरियों के जल से धोया। सम्भाजी के पाँवों में पैदल यात्रा के कारण बिवाई फटी हुई थी। उसमें वह जल घुसा, तो चरचराहट होने लगी। प्रज्वलित नीराजनों से उनके मुखमण्डल की आरती उतारी गयी।

सम्भाजी की उत्सुक दृष्टि रह-रहकर खोज रही थी, माँ साहिबा को। देहली पार करके वे महाराज के साथ मुख्य चौक में आये। राजमाता जीजाबाई आज शायद पहली ही बार वहाँ तक आयी हों। फिर वहाँ खड़ा रहना भी उनके लिए सम्भव न हुआ। वात्सल्य की नदी उल्टी बहने लगी। आज जिजाऊ के थके बूढ़े पाँवों में भी न जाने कहाँ से शक्ति अवतरित हो आयी थी। अपने सिर से ढरके कुलीन आँचल का भी उन्हें ध्यान न रहा। वे सीधी चलती हुई आगे बढ़ने लगीं। उनके रूप में मानो मावल-खण्ड का 'मातृत्व' ही साकार होकर आगे बढ़ा आ रहा था।

महाराज को पीछे छोड़कर शम्भूराजा ही आगे दौड़ पड़े और क्षण भर में ही जिजाऊ के पैरों से जा लिपटे। सारा चौक गद्गद हो उठा।

"माँऽ साहिबा। माँ साहिबाऽ। माँ साहिऽबा।" प्रत्येक शब्द के साथ ही उनका कण्ठ अवरुद्ध

https://t.me/Sahityajunction

हो रहा था। 'अहा-हा, माँ साहिबा के पहने वस्त्रों में भी एक विशेष प्रकार की गन्ध छिपी रहती है। प्राण व्याकुल बनानेवाली गन्ध है यह। अबीर में मिली हल्दी-रोली की-सी गन्ध।' और बालक सम्भाजी भावविह्वल हो कर माँ साहिबा की साड़ी में अपना सिर बस ज़ोर-ज़ोर से रग़ड़ने लगे।

आज और इसी विशिष्ट क्षण में जिजाऊ समझ पायीं कि माँ भवानी के आठ हाथ क्यों हैं? सम्भवतः वे आठ हाथ भी उस जगज्जननी को अपर्याप्य ही प्रतीत होते होंगे।

जिजाऊ अपने हाथों की संख्या की कमी की पूर्ति वाणी द्वारा कर रही थीं, "शम्भू बेटेऽ, शम्भूऽ बेटे। शम्भू बेऽटे।"

वात्सल्यमयी भावनाओं के आवेग में भी जिजाऊ के मन में विचित्र-सा विचार साँप के समान रेंगता हुआ कहीं से आ घुसा—'शम्भू बेटे को काल ने हमसे छीन लिया।' जिजाऊ काँप उठीं। उन्हें याद हो आयी—'मृत्यु ने पहले भी कई बार हमारे स्नेहीजनों को हमसे छीना है। पहला प्रहार था उनके ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी पर—तोप का एक दनदनाता गोला उसे छीन ले गया था। काल के दूसरे प्रहार ने उनके पति को ही घोड़े की रक़ाबी में पैर अटकाकर उनका बुरा हाल किया था। तीसरा प्रहार था सईबाई पर, उनकी पुत्रवधू पर। ओषधों की विस्तृत मात्रा भी उसे बचा न सकी थी।'

जब-जब अपने स्नेही-आत्मीय जनों की मृत्यु होती है, तो पीछे रहनेवालों का जीवन कैसा 'ऊसर-बंजर' बन जाता है, यह सत्य जिजाऊ ने अनेक बार भोगा था। जिजाऊ ने शम्भूराजा को अपने आलिंगन में और अधिक कस लिया। उनके नेत्रों से 'बड़ों का प्यार' शम्भूराजा के टोप पर टपकने लगा।

चौक में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को यह दृश्य देखकर अनुभव हो रहा था, 'हम भी स्वयं छोटे राजासाहब हैं। हम भी इस 'बड़ों-के-प्यार' में नहा रहे हैं।'

भावना के उफ़ान के कुछ कम होते ही जिजाऊ ने आँचल के छोर से आँखों की कोर को पोंछा। मुहरों से भरी थैली को बालशम्भू पर से निछावर करके और फिर उनके कन्धों पर हाथ रखकर वे शान्त स्वर में बोलीं, "चलो ऽऽ।"

जिजाऊ सम्भाजी को लिये जा रही थीं, मानो गगन की नीलिमा ही विद्युत की एक रेखा को साथ लेकर दूसरे छोर तक पहुँचाने जा रही हो। जिजाऊ जा रही थीं देवमन्दिर की ओर शम्भूराजा को साथ लिये, जगदम्बा के कृपालु चरणों में प्रणाम अर्पित करने के लिए।

सब उपस्थित सरदार, अधिकारी, आदि ने उनकी ओर पीठ करके दूर जाती हुई उन दो मूर्तियों को विनम्र भाव से अभिवादन किया।

देवी के दर्शन करके शम्भूराजा पुतलाबाई के महल में गये। पुतलाबाई वहाँ उनकी आरती उतारने के लिए आरती सजाये सब कुछ भूली खोयी-खोयी खड़ी थीं। बस, एकटक शम्भूराजा की ओर ही निहार रही थीं।

उनके सामने आकर सम्भाजी उनकी चरणधूलि मस्तक से लगाकर बोले, "माँ जी, हमारी आरती उतारेंगी ना?" प्यारे बेटे के वही शब्द, नदी के जल के समान कूदते-फाँदते हुए आनेवाले, वे ही नेत्र—दर्पण के समान स्वच्छ। पुतलाबाई के हाथ की आरती काँपते-थरथराते हुए स्वयमेव घूमने लगी।

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी ने कमर के फेंटे में खोंसा हुआ तावीज़ बाहर निकाला। उसे आरती की थाली में रखकर बोले, "माँ जी, लीजिए, हम सकुशल आ गये। रास्ते में हम यह तावीज़ झोली में रखा करते थे। माँ जी, सच कहते हैं, जब तक झोली कन्धे से लटकी हुई होती थी, तब तक किसी प्रकार का भय-आतंक हमें सताता नहीं था।"

"हाँ, हाँ, बहुत प्रभावशाली है वह तो।" पुतलाबाई के मन में थाली में रखे तावीज़ को देखते हुए विचार आया।

पुतलाबाई ने आरती चौकी पर रख दी और न जाने मन में क्या आया कि उन्होंने फिर वह तावीज़ उठा लिया। शम्भूराजा के पास जाते हुए मौन रहकर उन्होंने वह तावीज़ उनकी भुजा में बाँध दिया और प्यार से उन्हें अंक में भर लिया। पुतलाबाई को शम्भूराजा में एक विचित्र रूप दिखलाई दिया—सईबाई का रूप। काले धागों का बुना हुआ। साँवले वर्ण का।

वहाँ से शम्भूराजा सोयराबाई के महल में गये। पाँवों पर माथा टेक कर उन्होंने बड़ी माँ जी के दर्शन किये। उन्हें ऊपर उठाते हुए सोयराबाई ने कहा, "सोचती हूँ, हमारे श्रीमान् जी मुख से यह कैसे कह सके कि तुम्हें काल ने छीन लिया? उठो, चिरंजीवी बनो। इस क़िले में सब लोगों ने तुम्हारे 'मृतककर्म' पूर्ण किये हैं। माँ साहिबा को यह सब कहना ही होगा। एक लाख लोगों को अन्नदान कराये बिना इस दोष का परिहार नहीं हो सकेगा।"

सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये। अपनी थकी हुई आँखों से वे सोयराबाई के पैरों पर अंकित महावर के बेलबूटों का घुमाव देख रहे थे। सोयराबाई की बातों में भी महावर के बेलबूटों के समान गुत्थियाँ ही थीं। परन्तु उन बेलबूटों की गुत्थी का सिरा सम्भाजी को मिल नहीं रहा था—मिल भी नहीं सकता था।

उस दिन रात्रि के समय जिजाऊ के महल में पलँग पर सम्भाजी आँखें मूँदे लेटे हुए थे। वास्तव में मार्ग की थकावट के कारण उन्हें नींद आनी चाहिए थी, परन्तु वे जाग रहे थे। उनके मन में प्रश्नों की मार से धूल उठने लगी थी—'हमें काल ने छीन लिया', स्वयं महाराज साहब ने ही यह सब लोगों से कहा, इस क़िले में लोगों ने हमारी 'मृतक-क्रिया' पूरी की—क्यों? आबासाहब ने क्यों किया ऐसा? इसमें...इसमें भी उनका कोई भला इरादा ही होगा क्या? यदि इरादा भला न होता, तो वे हमारी ख़ातिर दुर्ग से नीचे उतरकर क्यों आते? सोचते-सोचते ही नींद उनकी पलकों पर सवार हो गयी।

उनकी पिण्डलियों की तेल लगाकर मालिश करने में मग्न धाराऊ उनकी झपकती पलकों को देख रही थी। ममता तो बस एक ही बात जानती है—मूक रहकर सेवा करना। धाराऊ थी ममता—साक्षात् वात्सल्य थी वह।

मार्गशीर्ष मास की धुन्धभरी पूर्णिमा का दिन गुँजन मावल प्रदेश में उदित हुआ। स्नान करके टोप सिर पर धारण किये सम्भाजी जिजाऊ के महल में आये।

जिजाऊ ने पीतल की सलाई से उनके मस्तक पर द्विदल शिवतिलक अंकित किया। फिर उनके साथ जिजाऊ दरबार की ओर चल पड़ीं। उनके पीछे चल रहे थे सेवक तथा सैनिकगण, हाथों में थाल लिये—जिनमें वे सोने की मुहरें भरी थीं, जिन्हें जिजाऊ ने बिल्वपत्र समर्पण के व्रत की स्मृति रूप सँजो कर रखा था। आज वे मुहरें दान के रूप में बाँटी जानेवाली थीं।

https://t.me/Sahityajunction

आज राजगढ़ का दरबार सम्मान-पात्र अधिकारियों से सुशोभित था। यह दरबार आज भरा था—सम्मान प्रदानार्थ। आज महाराज सबके सामने कृष्णाजीपन्त, काशीपन्त एवं लक्ष्मीबाई को सम्मानित करना चाहते थे। उन्होंने युवराज सम्भाजी को मथुरा से सुरक्षित रूप से यहाँ पहुँचाया जो था।

जिजाऊ और युवराज शम्भू दरबार में आये। राजासन पर बैठे हुए महाराज जिजाऊ को देखते ही आदर भाव से उठ खड़े हुए। उनके सम्मुख गये। दरबारी लोगों ने भी उन्हें मुजरे किये।

जिजाऊ, महाराज और सम्भाजी ऊँचे आसन पर बैठ गये। महाराज का इशारा पाकर दरबारीगण भी बैठ गये। दरबार प्रारम्भ हुआ। सेवकों ने मुहरों से भरे थाल बैठक की एक ओर पंक्ति में सजाकर रख दिये। राजसभा की प्रथा के अनुसार हल्दी-रोली की डलिया सबके सामने घुमायी गयी। सबने उसमें से चुटकी-भर हल्दी-रोली लेकर मस्तक पर लगायी और सामने बिखेर दी। महाराज ने बैठे-बैठे ही पन्त-अमात्य निलोपन्त की ओर देखा।

निलोपन्त आगे बढ़े और उन्होंने आज के दरबार के आयोजन का प्रयोजन कह सुनाया, "उत्तर में महाराज बहादुर पर घोर संकट आया था। महाराज ने अत्यन्त निपुणता से शत्रु की क़ैद को भेद डाला। देश की ओर वापस लौटने के लिए बैरागी का वेश धारण किया। परन्तु मार्ग में एक कठिनाई आ उपस्थित हुई। छोटे महाराज को साथ लेकर चलना कठिन सिद्ध हो रहा था। इस कारण सरकार बहादुर ने छोटे महाराज को मथुरा के त्रिमल-परिवार के हाथ सौंप दिया। त्रिमल महाशयों ने प्रयत्नों की पराकाष्ठा करके इस घर का 'अलंकार' इस घर तक ला पहुँचाया है। इस कारण से त्रिमल-परिवार के तीन सदस्यों का सम्मान करना आवश्यक है, यह सोचकर महाराज ने आज यह दरबार आयोजित किया है।

"इस दरबार में सम्मान के रूप में उपर्युक्त काशी त्रिमल, मथुरा निवासी को नक़द रुपये पच्चीस हज़ार..." निलोपन्त रुक गये।

मोरोपन्त के पास बैठे हुए काशीपन्त त्रिमल उठे और विनम्र भाव से बैठक के निकट आये।

महाराज ने और युवराज सम्भाजी ने चाँदी के रुपयों से ऊपर तक भरे हुए तबक़ों को 'हस्त-स्पर्श' दिया। काशीपन्त ने झुककर मुजरा करके उन तबक़ों को हाथों में लिया। उनके हाथ और मन भरे-भरे थे। मथुरा में रहते समय वे जिस श्रद्धाभक्ति भरी दृष्टि से यमुना मैया को देखा करते थे, उसी भावपूर्ण दृष्टि से वह आज 'जिजाऊ-मैया' के दर्शन कर रहे थे। अपने हाथों वाले तबक़ को एक ओर रखकर उन्होंने बैठक पर विराजे हुए महाराज, युवराज तथा जिजाऊ माँ जी राजपरिवार की उस त्रिमूर्ति को उत्तरी शैली से साष्टांग दण्डवत् किया।

उपरने की ज़रीदार किनारी को सीधा करते हुए निलोपन्त आगे कहने लगे, "त्रिमलों की मातुश्री-माताजी लक्ष्मीबाई, मथुरा निवासी को नक़द रुपये पच्चीस हज़ार।" निलोपन्त ने राज्ञीवर्ग की बैठक की चिक के एक ओर एक बार देखा। परदा थोड़ा-सा हिला और महिलाओं की बैठक के स्थान से लक्ष्मीबाई बाहर आयीं।

जिजाऊ के 'हस्त-स्पर्श' के बाद उनके द्वारा दिया गया चाँदी के रुपयों का तबक़ लक्ष्मीबाई ने अपने कम्पायमान हाथों में थाम लिया। आँसुभरी आँखों से वह जिजाऊ को निकट से देख रही थीं। उनके हाथ में चाँदी के रुपयों से भरे-पूरे तबक़ थे और उनकी दृष्टि को दिन के उज्ज्वल प्रकाश में भी दुग्ध धवल चाँदनी छायी हुई-सी दिखाई दे रही थी।

https://t.me/Sahityajunction

तबक़ को एक किनारे रखकर लक्ष्मीबाई प्रणाम करने के लिए झुकने लगीं, “बहन, हम पर तुम्हारा असीम ऋण है। यह क्या करती हो? काश! हमारे लिए सम्भव होता तो हम स्वयं ही फल-फूलों से तुम्हारी गोद भर देतीं—यहीं आज इस राजसभा के सामने।” जिजाऊ ने लक्ष्मीबाई को हाथ थामकर उठाते हुए कहा। ‘हमारी माँग सूनी है’ यह खेदमय अनुभूति उस समय जिजाऊ के मन को झिंझोड़ गयी।

काशीपन्त, कृष्पाजी और विसाजी को ‘विश्वासराव’ उपाधि दी गयी। उन्हें पहनावे, पालकी, हाथी आदि देकर विशेष रूप से सम्मानित किया गया।

दानभरे तबक़ युवराज सम्भाजी के सामने आते जा रहे थे। नाम की घोषणा होने के पश्चात् सम्भाजी उन तब़कों को हस्त-स्पर्श दे रहे थे।

उपवास के पारण को पूर्ण करके दरबार में बैठी हुई जिजाऊ का मन सन्तोष से भर उठा। तबक़ अब समाप्त होने वाले थे। सम्भाजी के माथे पर कुछ बल से पड़ गये। महाराज की ओर झुककर उन्होंने धीरे-से कहा, “महाराज साहब...”

“कहो,” महाराज सन्तोष से प्रफुल्लित थे।

“सम्मान के रूप में एक तबक़ आगरा की ओर भी रवाना किया जाय।”

महाराज ने भौंह ऊपर उठाकर, ‘किसके लिए’, बिना कुछ बोले ही प्रश्न पूछा। महाराज की छाती पर पड़ी माला की ओर दृष्टि गड़ाकर सम्भाजी ने कहा, “कुम्हार-बस्ती के कुम्हार ने हमें घर का-सा प्यार दिया था—उसके लिए।” उनकी आँखों के आगे गणेश की कच्ची मूर्तियों की पंक्तियाँ उभर आयीं।

अनजाने में ही महाराज का हाथ अपने आप सम्भाजी की पीठ पर चला गया। अभिमान से छाती फूल उठी। अँगरखे में, बगलों के स्थान पर जैसे तनाव आ गया। मुहरों से भरा एक थाल आगरा के कुम्हार के नाम से अलग रख दिया गया।

महाराज ने अपने निजी प्रबन्धकों की ओर देखा। हाथ में तबक़ उठाये हुए एक सेवक को लेकर प्रबन्धक महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने मुजरा पेश किया। तबक़ धारक सेवक ने थाल पर ढँका हुआ वस्त्र हटाया और झुककर वह तबक़ महाराज के सामने पकड़ रखा। सम्भाजी ने देखा कि तबक़ में सोने के तारों से मढ़ा हुआ एक पदक रखा है। उसमें न जाने किस प्रकार के पंख पिरोये हुए थे।

“यह क्या है?” उन्होंने महाराज से पूछा।

“ये गरुड़ के पंख हैं; हर काम में सफलता दिलानेवाले।” महाराज ने तबक़ में रखे पदक की ओर देखते हुए उत्तर दिया। उन्होंने सेवक को आँखों के संकेत से कहा कि तबक़ जिजाऊ के सामने रखा जाय। “माँ साहिबा, उस पदक को हाथ लगावें।” महाराज ने जिजाऊ की ओर देखा।

जिजाऊ ने गरुड़ पंख के उस पदक को ‘हस्त-स्पर्श’ दिया। अब वह पदक सच्चे अर्थों में हर काम में सफलता देनेवाला बन गया।

जिजाऊ महाराज से कुछ पूछना ही चाहती थीं कि क़िले के पाली दरवाज़े के नक्कारख़ाने से नौबत बजने की आवाज़ उठी और दरबार में सुनाई देने लगी।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज और जिजाऊ ने एक-दूसरे की ओर देखा और दोनों के मुख पर एक मन्द मुस्कराहट छा गयी। उनके मुस्कराने का कारण दूसरा कोई भी समझ नहीं पाया।

दरबार समाप्त होने को था। क़िले का पोतराज भागता-दौड़ता हुआ ऊँची बैठक के सामने आया। मुजरा करके कहने लगा, "सरकार, आज पूनम है। माँ भवानी के 'कीर्तन-नृत्य' का उत्सव मनाने की आज्ञा हो जाए। रात्रि को महाराज और आप सभी सामन्त-सरदार लोग उस 'कीर्तन-नृत्य' के समय उपस्थित रहें।"

"हाँ-हाँ, ज़रूर," महाराज ने पोतराज[1] को पान का बीड़ा और नारियल दिया। दरबार समाप्त हो गया।

अभी सायंकाल हुआ ही चाहता था कि थाली के समान गोल-गोल चन्द्र रूपी पुष्प गगन सुन्दरी ने अपने जूड़े में गूँथ लिया। फिर उस उजले पुष्प की सुगन्धि चाँदनी बनकर सारे दुर्ग में फैल गयी।

दरबार के बीच के खुले भाग में देवी के गायक-नर्तकों ने पहले चावलों से चौक पूर दिया था। भोजनोपरान्त महाराज, युवराज सम्भाजी और जिजाऊ के साथ 'कीर्तन-नृत्य' देखने ऊँची बैठक पर आ विराजे। सारा सभागृह मनुष्यों की भीड़ से भरा था।

'कीर्तन-नृत्य' के पूर्व चावल से चौक पूरने का कार्य सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात् नर्तक-दल का मुखिया सामने आया। सिर की लाल पगड़ी झुकाकर बोला, "सरकार, माँ भवानी का जै-जैकार शुरू करने का आदेश हो।"

महाराज ने उसे हाथ उठाकर कुछ देर के लिए ठहरने को कहा। महाराज के राजटोप में गरुड़ पंख का पदक मड़ा हुआ था। महाराज बार-बार अन्तःपुर की ओर वाले दरवाजे की ओर देख रहे थे। सबकी नज़रें भी उसी दरवाज़े की ओर टिकी हुई थीं।

उस दरवाज़े के पीछे पहले गुदना भरे हाथों से आँचल सँवारती हुई एक हलचल-सी हुई। फिर कंगनों की खनक गूँज उठी। इस खनक को सुनने में कुछ क्षण ही बीते होंगे कि तीन आकृतियाँ भीतर से दरबार में प्रविष्ट हुईं—सम्भाजी के श्वसुर गलमुच्छों वाले पिलाजी शिर्के, दुलारभरे मनवाली धाराऊ और इन दोनों के बीच थी येसूबाई—सम्भाजी की किशोरवयीन लजीली वधू। ग्रीवा झुकी हुई। हृदय धड़कता हुआ।

'सम्भाजी को काल ने छीन लिया'—इस अफवाह को सच मानकर उनकी पत्नी येसूबाई ने सती होने का निश्चय कर लिया था और उस समय उनके पिता पिलाजी जब सम्भाजी के पादत्राण माँगने के लिए आये थे, तब महाराज ने उन्हें समझा-बुझाकर शृंगारपूर वापस भेज दिया था।

अब सम्भाजी के सकुशल लौट आते ही उन्होंने पिलाजी को लिख भेजा था : 'पूर्णिमा की रात तक हमारी बहूरानी को लेकर चले आइए। आते समय अपनी कुलदेवी भावेश्वरी देवी की भभूत लाना न भूलें! शम्भूराजा सकुशल गढ़ में आ गये हैं।'

पिलाजी को दरबार में प्रविष्ट होते देखकर सम्भाजी विनम्रतावश उठने को ही थे कि पिलाजी के साथ ही आगे-आगे बढ़ने वाले किसी के दो कोमल नाजुक पैर भी उन्हें दीख पड़े, जिनमें सोने के तोड़े पहने हुए थे। इन दो नाजुक पैरों के जादू से न जाने क्या हुआ कि सम्भाजी एक झटके

https://t.me/Sahityajunction

के साथ अपने आप वापस अपनी जगह पर आ बैठे। परन्तु महाराज आगे बढ़ते हुए बोले, "आओ, बहूरानी," येसूबाई की भुजा पकड़कर वे उन्हें आगे लाये और उन्हें माँ साहिबा के निकट ही सम्मानपूर्वक बैठा दिया। पिलाजी भी बैठ गये। महाराज ने अपने सामने लायी गयी हल्दी-रोली की चंगेरी में से चुटकी भर रोली लेकर ऊपर आकाश में बिखेर दी और गायकों को जै-जैकार प्रारम्भ करने का संकेत किया।

नर्तकों ने वस्त्रज्योतियाँ जलायीं और 'नमन-गीत' गाना प्रारम्भ किया, "हे गजवदन-गणराजा गौरी नन्दन!" दुक्कड़ और इकतारे के मिले-जुले ताल-सुर गूँजने लगे। नर्तकों का मुखिया जलती-लहराती नाचती वस्त्रज्योतियों पर से बार-बार हाथ फिराकर और एक कान पर हाथ रखकर जगदम्बा का माहात्म्य गान गा रहा था :

"आदिशक्ति की महती महिमा, मुझे बनाया भक्त उसी ने।"

राजकुमार सम्भाजी ने आगरा की यात्रा से बहुत-कुछ सीख-जान लिया था। अनपेक्षित प्रसंगों ने उन्हें सयाना बना दिया था।

महाराज ने अपने अधिकार के अन्तर्गत सभी क़िलों का एक दौरा किया और सब क़िलेदारों तथा दुर्गों के सैनिकों से भेंट की। अपने पन्त-सचिव अण्णाजी दत्तो की सलाह से उन्होंने जमाबन्दी, लगान आदि के नियम बनाये। अपनी फ़ौज के लिए नये नियम निर्धारित किये।

"सैनिक वर्षा ऋतु के चार महीनों में अपने-अपने गाँवों को जा सकते हैं। वहाँ वे खेती की जुताई-बोआई के काम करें और दशहरा होते ही सरकारी काम के लिए उपस्थित रहें। आठ मास तक फ़ौज के आक्रमण-अभियानों में भाग लें और जीविका प्राप्त करें। आक्रमण के दौरान स्त्रियों के साथ किसी प्रकार भी असभ्यता का बरताव न करें। अभियान पर जाते समय और बरसात में अपने घर लौटते समय चौकी के पहरे पर नियुक्त राजकर्मचारी को तलाशी लेने दें। ग़ैरक़ानूनी कोई काम न करें। इन नियम-आदेशों का जो भी उल्लंघन करेगा, उसके हाथ जल्लाद द्वारा कटवा दिये जावेंगे।" महाराज ने सेना के लिए ऐसे कठोर नियम बना दिये।

महाराज ने ज़मीन के लगान के बारे में जो नियम बनाये, वैसे शायद मलिक अम्बर ने भी न बनाये होंगे। "गाँव के देशमुख, देशपाण्डे, पटेल और चार सयाने वृद्ध ग्रामीण, ये सात लोग मिलकर बैठें और ज़मीन की विसात देखकर उस ज़मीन की श्रेणी निर्धारित करें। सरकारी लगान इसी के अनुसार ही तय किया जाए। जो लोग लगान नक़द रक़म के रूप में जमा न कर सकें, उनसे वस्तु के रूप में, धान्य के रूप में लिया जाय। किसान को खेती के लिए हल, बैल, बीज आदि की आवश्यकता पड़े तो सरकारी कार्यालय वे वह सब उसे दिया जाय।" राज्य की स्थिरता के लिए, भविष्य की योजनाओं के लिए, महाराज ने ये नीतियाँ बनायीं। बालक सम्भाजी इन नीति-नियमों आदि को बनते देख रहा था और यूँ उसकी समझ बढ़ रही थी।

अपने शस्त्रधारी सैनिकों और किसानों के प्रति महाराज कितनी आत्मीयता दिखलाते हैं, यह बात युवराज सम्भाजी के ध्यान से छूटी नहीं। जवानों-किसानों के विषय में बात करते समय महाराज के वचनों में माया-ममता टपकती थी। सम्भाजी सोचते थे—'हमारे आबासाहब को यदि खाली समय मिल पाये, तो वे अवश्य ही हमें भी साथ लेकर किसी कुर्मी-किसानों के गाँव में जाएँगे। अपनी राजसी पोशाक उतारकर ज़रूर घुटने तक की धोती और फतुही पहनेंगे और बैलों के पीछे-पीछे हत्या पकड़कर हल भी चलाएँगे। इतना ही नहीं—हमें भी सिखाएँगे—बालशम्भू—

https://t.me/Sahityajunction

लो, लकड़ी का हथोड़ा हाथ में लो और हमने जो हल चलाया है, उसके पीछे-पीछे के ढेले फोड़कर भूमि को साफ करते चलो।'

राजगढ़ के कक्ष में मन्त्रिगण उपस्थित थे। पेशवा मोरोपन्त दायें हाथ में एक पुलिन्दा लिये खड़े थे। शायद वह कोई ख़लीता था। उनके बायें हाथ में ख़लीते की खाली थैली थी, जिसके बन्द और फुँदने अभी तक झूल रहे थे। ख़लीता पूरा खोलकर मोरोपन्त खड़े थे।

बैठक पर महाराज, जिजाऊ और सम्भाजी बैठे थे। रानियों की बैठक में परदे के पीछे पुतलाबाई, सोयराबाई आदि राज्ञीवर्ग बैठा था। येसूबाई भी बैठी थीं पुतलाबाई के निकट—सलज्ज, ग्रीवा नीचे झुकी हुई। अपने मायके से लौटने के बाद आज बैठक में बैठने का उनके जीवन का यह प्रथम अवसर था। उत्सुकता ने उनके मन को छेड़ा—'इस चिक के पीछे बैठक में बैठे लोगों के राजटोप भला कैसे दीखते होंगे?' मन ने देखना चाहा, परन्तु लज्जा ने ग्रीवा न उठाने दी। उनके पिताजी, पिलाजी उन्हें यहाँ ससुराल में छोड़कर वापस शृंगारपूर चले गये थे। अब उन्हें यहीं राजगढ़ में ही रहना था—महाराज की इच्छा जो थी यह। मोरोपन्त पेशवा को महाराज ने दृष्टि से ही अनुमति दी और शान्त वातावरण में पेशवा की आवाज़ गूँजने लगी—राजवधू येसूबाई मन लगाकर उन शान्त, मन्द शब्दों को सुनने लगीं।

"मशहुरल अनाम दाम दौलतहु शहज़ादे मुअज़्ज़म; सूबे दक्खन की ख़िदमत में राजा शिवाजी का दण्डवत हो; आगे विशेष यह...

"यह ख़लीता भेजने का प्रयोजन आप जान लें। हम अपने प्राणों के भय के कारण आगरा से यहाँ अपने देश में बचकर निकल आये। हमारे फर्ज़न्द सम्भाजी भी यहाँ आ गये। निकलते समय हम आला हज़रत की इजाज़त न ले सके। वजह आप बख़ूबी जानते हैं। हर एक को अपनी जान प्यारी होती है।

"हालाँकि हम बचकर निकल आये, फिर भी हम हज़रत साहब के ही चाकर-बन्दे हैं। उनकी सेवा के लिए हर तरह तैयार हैं। आपसे इल्तिजा है कि हज़रत साहब को समझा-बुझा दें। हमारे फर्ज़न्द सम्भाजी बादशाह की सेना में सेवा करते ही थे। हमारे आज के किले और ये सारी साधन-सम्पत्ति सभी कुछ आज भी बादशाह सलामत की ख़िदमत में हाज़िर है। यह जानकर हमारे फर्ज़न्द सम्भाजी को फिर एक बार चाकरी करने का मौ़का दिया जाय। जैसा कुछ भी सुलह-समझौता अब आपस में हो सके, उसके लिए आपको कोशिश करनी चाहिए। ज़्यादा क्या लिखें, आप सब जानते हैं।"

औरंगज़ेब ने दक्खिन की सूबेदारी से जसवन्त सिंह को हटाकर उसके स्थान पर अपने पुत्र मुअज़्ज़म को नियुक्त किया था। मुअज़्ज़म शिवाजी से दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहता था। यह उसकी राजनीतिक चाल नहीं थी—बल्कि अपनी सुरक्षा का एक तरीक़ा था। वह ख़ूब समझता था कि उसके कुचक्री बाप ने उसे शिवाजी के मुँह में क्यों ढकेला है। कई घमण्डी तलवार के धनियों का शिवाजी के जबड़े में जाकर क्या हश्र हुआ था, यह भी उसने देखा-जाना था। दूसरी ओर महाराज भी चाहते थे कि अपने राज्य के फिर से पाँव जमा लेने तक मुग़लों से संघर्ष करना आत्मघात होगा। इसी कारण उनकी इच्छा थी कि दक्खिन के सूबेदार मुअज़्ज़म से सुलह और शान्ति की बातें की जाएँ।

जिजाऊ, मन्त्रिगण और सभी उपस्थितों ने ख़लीता सुना और वे दंग होकर महाराज की ओर

https://t.me/Sahityajunction

देखने लगे। अभी आगरा वाली मुसीबत टली नहीं थी और महाराज फिर सम्भाजी के माध्यम से एक नयी चाल चल रहे थे।

महाराज शान्त बैठे थे। उन्होंने बालाजी आवजी की ओर देखा। बालाजी बैठक के सामने आये। मुजरा करके खड़े हो गये। बालाजी आवजी ही महाराज के दूत बनकर औरंगाबाद जाने वाले थे।

मोरोपन्त ने ख़लीते को गोल बनाकर एक पुलिन्दा बनाया और थैली में सरका दिया। फिर उस थैली को महाराज के सामने रखा। महाराज ने उसे हस्त-स्पर्श दिया। हाथ में पहनी मुँदरी का पुखराज झिलमिल-झिलमिल चमक उठा। उसकी किरणें सम्भाजी के मुखमण्डल पर पड़ीं।

लजीली किशोरी येसूबाई ने सिर उठाकर, नज़रें चुराकर परदे के पीछे बैठक पर बैठे राजटोपधारी एक सजीले बाँके किशोर को देखने का प्रयत्न किया। परन्तु वे कुछ देख न पायीं—बालाजी झुककर ख़लीता ले रहे थे और हाय, वह राजटोप तो उनकी आड़ में छिपा था!

“बालाजी, सब काम पूरी सावधानी और शान्ति से हो। जैसे भी बने यह सन्धि होनी ही चाहिए।” महाराज ने बालाजी से कहा।

“जैसी आज्ञा प्रभु!” ख़लीता बालाजी आवजी ने स्वयं अपने हाथ से लिखा था। वही ख़लीता अब उन्होंने मोरोपन्त के हाथों से लिया। मुजरा करते हुए वे औरंगाबाद की दिशा में कूच करने के लिए पीछे-पीछे हटने लगे।

“बाल शम्भू, यदि यह सन्धि हो गयी तो तुम्हें शहज़ादे से मिलने औरंगाबाद जाना पड़ेगा, अकेले...। जाओगे?” महाराज ने सम्भाजी से पूछा।

“हाँ, हाँ, अवश्य जाएँगे हम। आगरा जाते समय तो हम वेरूल (मलोटा) की गुफाओं को देखते हुए उस रास्ते से गये थे, परन्तु लौटते समय उस रास्ते से नहीं आ पाये। फिर एक बार मौक़ा मिलेगा तो अवश्य देखना चाहेंगे हम वेरूल की गुफाएँ।” सम्भाजी ने उत्तर दिया। युवराज के उत्तर से प्रसन्न होकर महाराज ने हँसते हुए जिजाऊ की ओर देखा, परन्तु वे तो गम्भीर बनी बैठी थीं।

वेरूल की गुफाओं की बात निकलते ही सम्भाजी को याद आयी, वहाँ की भित्तियों-प्रस्तरों पर चित्रित नारी की, नायिकाओं की अनेक भावमुद्राएँ। परन्तु ‘हमारी दृष्टि जैसे अकस्मात् खिंचकर चिक के परदे की ओर क्यों गयी?’ यह सम्भाजी समझ नहीं पाये। दृष्टि ने परदे के पीछे देखना चाहा, परन्तु उस ओर का कुछ भी दिखाई न देता था। वायु के एक झोंके ने आकर उस परदे को हिलाया। उस कारण परदे में तरंगें-सी उठने लगीं। सम्भाजी का मन परदे की इन्हीं तरंगों पर लहराकर पहुँच गया—दूर-सुदूर—औरंगाबाद तक, वेरूल की गुफाओं तक।

“महाराज, नायक आये हैं बाहर,” महल के किसी सेवक ने भीतर आकर सूचना दी।

“आने दो उन्हें,” महाराज टहल रहे थे। टहलते-टहलते रुक गये। सम्भाजी भी पास आकर खड़े हो गये। बहिर्जी नायक महल में आया। आकर उसने मुजरा किया। मुजरा करते समय उसके मुँडासे के लटकते छोर हिल उठे।

“मालिक, मुग़लिया राज्य में अपने रघुनाथपन्त और त्र्यम्बकपन्त अटक गये थे। अब सकुशल छूटकर नीचे गढ़ की तलभूमि तक आ पहुँचे हैं। परन्तु बड़ी दुर्दशा हो गयी है उनकी।”

https://t.me/Sahityajunction

बहिर्जी क्षणभर रुक गया।

तभी महाराज को स्मरण हो आया—'हम आगरा से बच निकले, परन्तु रघुनाथपन्त और त्र्यम्बकपन्त पीछे रह गये थे। वे वहाँ औरंगज़ेब के पहरेदारों में जा फँसे। फ़ौलाद ख़ाँ ने उनका बुरा हाल किया—मृत्यु से अधिक भयानक यातनाएँ दीं उन्हें। ऐसा सुना था हमने। वास्तव में उनके भाग्य में तो मृत्यु ही बदी थी। मुअज़्ज़म के साथ सुलह की बातचीत का लाभ हुआ और औरंगज़ेब ने उन दोनों को, हाड़-मांस के अवशेष उन पुतलों को छोड़ दिया।...इन्हें छोड़ दिया है—इसका यही अर्थ है कि अब सुलह पक्की हो जाएगी।'

"मालिक, उन्हें पहनने-ओढ़ने के लिए वस्त्र भेजने चाहिए। फटे हाल हो गये हैं वे। और... और मालिक..." बोलते-बोलते बहिर्जी की वाणी लड़खड़ाने लगी।

"कहो-कहो, नायक, और क्या समाचार हैं?"

बहिर्जी का गला रुँध गया, बोल न फूट पाते थे। सिर की पगड़ी को दायें-बायें झुलाता वह कहने लगा, "ना-ना महाराज, जीभ तालु से चिपकी जाती है—वह समाचार आपको कैसे बताऊँ?"

मन्द गति से महराज बहिर्जी के पास आये। उनकी आवाज़ गम्भीर हो गयी थी, "नायक, हम जब मुग़लों की क़ैद में थे, अब अगर हमारा कुछ भला-बुरा हो जाता, तो वह ख़बर भी तो तुम्हें माँ साहिबा को बतानी ही पड़ती ना! जासूस और ज्योतिषी को ख़री और सही बात कहनी चाहिए। कहो—कौन-सा समाचार है?"

"महाराज...दिल्ली की जुम्मा मस्जिद में अपने भूतपूर्व सेनापति नेताजी पालकर को मुल्लाओं ने क़लमा पढ़ा दिया है। उनका नाम बदलकर मुहम्मद कुलीख़ान बना दिया है उन्हें। निसार ख़ाँ ने उनकी पत्नी को यहाँ देस में क़ैद करके उसे भी दिल्ली भेज दिया। उनका भी धर्म बदलकर मौलवियों ने मस्जिद में उनका नये सिरे से निकाह कराया।" बहिर्जी जाति से रामोशी था—पहरा देने का और जासूसी का परम्परागत काम था उसका। उसने वीर सेनापति नेताजी के शौर्य को अपनी आँखों देखा था—जाना था। उसे याद कर-कर उसकी आँखों से जलधारा बरसने लगी।

महाराज ने बहिर्जी को धीरज बँधाने के लिए उसके कन्धे पर हाथ रखा, पर उनके हाथ भी काँप रहे थे। आँखों में आँसू भर आये। 'नेताजी' साक्षात् 'दावानल', घोड़ों की पीठ पर बैठा—भड़कते हुए आगे बढ़नेवाला दावानल जो 'नेता' था, आज 'न था' हो गया। अंगारा कोयला बन गया।

युवराज सम्भाजी महाराज और बहिर्जी की ओर ध्यानपूर्वक देख रहे थे। बातें सुनकर उनका हाथ अकस्मात् तलवार की मूठ पर गया। कानकी लोलकी क्रोध से लाल हो उठी। आँखों से आग बरसने लगी।

उनकी मन की आँखें देख रही थीं—तसबीह की माला पकड़ा हुआ एक हाथ और उनका अपना हाथ मूठ पर अधिक कसता जा रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज अब अपने बिखरे हुए राज्य की शासन व्यवस्था के काम में मग्न थे। औरंगज़ेब ने उनके सुलह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। दक्खिन के सूबेदार मुअज़्ज़म उर्फ़ शाह आलम की मारफ़त औरंगज़ेब की स्वीकृति महाराज को प्राप्त हो गयी थी। सम्भाजी के लिए भी स्वीकृति आ चुकी थी।

सन्धि के अनुसार यह तय हुआ था कि महाराज के प्रतिनिधि के रूप में युवराज सम्भाजी को शाही मनसबदार माना जाय—उन्हें चार हज़ारी 'मनसबदार' बनाया जाय और बरार[1], खानदेश[2] की जागीर का पन्द्रह लाख होन की आमदनी का प्रदेश बतौर माफ़ीदारी उन्हें बहाल किया जाय।

औरंगज़ेब कुटिल राजनीति के खेल ही जानता था। उसने सन्धि के रूप में यह चाल दिखाई थी, जो दीखती थी हाथी की चाल, परन्तु चाल थी वह ऊँट की टेढ़ी—फँसाने वाली।

सम्भाजी को माफ़ीदारी की जागीर दी गयी थी बरार और खानदेश की, जिसका अर्थ यह था कि सम्भाजी को औरंगाबाद में मुक़ाम करना पड़ेगा; और इस तरह शिवाजी का बेटा 'मनसबदार' बनकर ही क्यों न हो, रहेगा औरंगज़ेब के क़ब्ज़े में 'जामिन' बनकर। यदि उनके मन में ऐसा कुटिल इरादा न होता, तो क्या पुरन्धर की सन्धि में औरंगज़ेब को जो प्रदेश शिवाजी से मिला था, उस मावल प्रदेश का ही 'मनसबदार' वह सम्भाजी को नहीं बना सकता था? परन्तु ऐसी सीधी सरल चाल चलता, तो वह औरंगज़ेब क्यों कर कहलाता? महाराज ताड़ चुके थे कि औरंगज़ेब मोरपंख का गुच्छ दिखाकर हमारे चेहरे पर केवाँच के पत्ते फिरा रहा है। उन्होंने दिल्ली दरबार को स्पष्ट कहलवा भेजा—जागीर की माफ़ीदारी हमारे फर्ज़न्द सम्भाजी ज़रूर अदब से लेंगे, मगर वे जागीर की जगह पर औरंगाबाद में नहीं रहेंगे। प्रतापराव गूजर और निराजी, रावजी, उनके मुतालिक और नायब बनकर जागीर का कामराज किया करेंगे।

सुलह के अनुसार महाराज की सभी शर्तों को मान लिया गया था। औरंगाबाद से मुअज़्ज़म का पत्र आया : 'जागीर के 'सम्मान-वस्त्र' और बादशाही फरमान लेने के लिए फर्ज़न्द सम्भाजी को औरंगाबाद भेज दीजिए।'

तुरन्त ही महाराज के जासूस बहिर्जी, कर्माजी, विश्वास आदि औरंगाबाद की ओर दौड़ पड़े। उन्हें मुअज़्ज़म के बारे में पूरी और सही जानकारी प्राप्त करनी थी। यह ऐसी चतुर राजनीति का खेल खेलना बस केवल शिवाजी महाराज के ही बस की बात थी। वे सदा ही ऐसे खेल खेलते आये थे। दुश्मन के एक घेरे में से छूटकर निकले नहीं कि तुरन्त दूसरे घेरे में वे ख़ुद ही घुस पड़ते थे। सम्भाजी को अभी-अभी तो उन्होंने एक क़ैद से सकुशल छुड़ा लिया था और तुरन्त ही वे उन्हें अपनी इच्छा से ही फिर एक दूसरी क़ैद में ढकेलने का साहस कर रहे थे। उस चाल में धोख़ा था ज़रूर। इस चाल की सफलता इस बात पर आधारित थी कि मुअज़्ज़म का स्वभाव कैसा है। इसी तरह इसी चाल से यह भी सिद्ध होनेवाला था कि सम्भाजी कितना निर्भय और धैर्यशाली है।

गुप्तचरों ने औरंगाबाद तक जाकर पूरी जानकारी ला दी—'मुअज़्ज़म भोग-विलासी है। साज-सिंगार और ऐशो-आराम में मगन रहता है। शिवाजी से वह मन-ही-मन घबराता है। अपने पिता से भी वह दूर-दूर ही रहता है।'

महाराज ने काफी सोच-विचार के बाद सम्भाजी को औरंगाबाद भेजने का निर्णय कर लिया।

https://t.me/Sahityajunction

उन्हें भरोसा था कि सम्भाजी दरबार के सारे रीति-रिवाजों को निभा सकेंगे। स्वयं वे ही जब औरंगाबाद हो आवेंगे, तो औरंगज़ेब को उन पर पूरा-पूरा न सही, थोड़ा भरोसा तो होगा ही।

इस निश्चित कार्य की पूर्ति का समय तब आया, जब दीवाली ऐन सिर पर आ गयी थी। राजनीति को तीज-त्यौहार और भावना से क्या लेना-देना!

कड़ाके की सर्दी के दिन थे। नरक चतुर्दशी के उषाकाल में जिजाऊ और पुतलाबाई ने बालक सम्भाजी को अभ्यंग स्नाना कराया। मिष्टान्न, जलपानादि हुए। सायंकाल के समय दुर्ग की तीनों माचियों पर, कंगूरों पर और उपरिकोट में दीपकों की पंक्तियाँ वायु की लहरों से खेलती हुई जल रही थीं। मूलरूप में ही राजगढ़ का आकार ऐसा था, मानो पक्षीराज गरुड़ अपने पंखों को फैलाकर उड़ रहा हो। अब दीपकों की पंक्तियों से सुशोभित होकर वह ऐसा दीख रहा था मानो उसने पंखों पर नक्षत्रों का साज चढ़ा लिया हो। दीवाली के दूसरे दिन सोने की मुहरों से भरे थाल की पूजा हुई। लक्ष्मीपूजा भी की गयी। तीसरा दिन था शुद्ध प्रतिपदा-परिवा का। उस दिन पत्नी का विशेष महत्त्व होता है। पुतलाबाई ने भोर से पहले ही येसूबाई को स्नान कराया, आभूषण, वस्त्रादि से शृंगार कराया, और फिर पुतलाबाई उन्हें जिजाऊ के महल में ले आयीं। महल के बीच शालिग्रामी रंग का चन्दन निर्मित पाट रखा हुआ था। उस पाट के चारों ओर रंगोली के आकर्षक बेल-बूटे चित्रित थे, पीतल के चमचमाते दीपक मन्द-मन्द जल रहे थे।

जिजाऊ ने बालशम्भू का हाथ अपने हाथ में लेकर उसे उस पाट पर बैठाया। पुतलाबाई ने येसूबाई के हाथ में आरती की थाली दी। उस थाली में जलनेवाले पाँच नीराजनों के प्रकाश से येसूबाई के मुख का केतकी वर्ण और अधिक झिलमिला रहा था। आँखें उस प्रकाश से बचना चाह रही थीं। कोई चम्पाकली खिलते समय अपनी पँखुड़ियों को खोलना चाहती हो, पर सकुचा रही हो, ऐसा रूप-रंग बन आया था येसूबाई का।

"इस थाली को हाथ में लेकर आरती उतारो अपने श्रीमान जी की," पुतलाबाई ने येसूबाई के लाज-संकोच को टूर करने के लिए प्यार-भरे बोलों से समझाया।

काँपते-थरथराते हाथों से घबरायी वह वधू अपने पति के मुखमण्डल के चारों ओर आरती घुमा रही थी। उसकी दृष्टि थाली में गड़ी हुई थी। ऐसा लगता था मानो ललाई भरी प्राची दिशा ऊपर उठकर आ रहे सूर्यदेव की आरती उतार रही थी।

जिजाऊ ने झुककर सम्भाजी के हाथ में एक सुवर्णाभूषण दिया। पैठण नगर की बनावट वाला एक कण्ठहार था वह। हार हाथ में लेकर सम्भाजी ने जिजाऊ की ओर देखा मानों आँखों से पूछ रहे हों—'क्या करें इसका?' अपनी वधू के साथ मनायी गयी यह उनकी भी तो पहली ही दीवाली थी ना। जिजाऊ ने मुस्कराते हुए संकेत से समझाया—'इसे आरती की थाली में रख दो।'

सम्भाजी ने वह हार थाली में रखा—दृष्टि नीचे ही टिकी हुई थी। फिर जिजाऊ ने बहुमूल्य रेशमी साड़ी, चोली, वस्त्र आदि से भरी हुई एक थाली सामने रखी। सम्भाजी ने उसे हाथ से छूकर पास रखे एक पाट पर रख दिया।

येसूबाई ने वह आरती नीचे रखी और अपने सुहाग को कुलीन पद्धति से तीन बार नमस्कार किया। राजगढ़ ने आज तक कई परिवा के त्यौहार देखे थे परन्तु 'बाल' और 'बाला' द्वारा मनाई गयी शुद्ध प्रतिपदा की परिवा आज की पहली ही थी। इसके बाद 'भैयादूज' का दिन आया।

https://t.me/Sahityajunction

सखूबाई, राणुबाई और अम्बाबाई इन बहनों ने अपने भैयाराजा—सम्भाजी की आरती उतारी।

आज ही उन्हें औरंगाबाद की ओर प्रस्थान करना था। फिर सम्भाजी ने दादी माँ जिजाऊ, माता पुतलाबाई और सोयराबाई, धाय माँ धाराऊ आदि से आशीर्वाद पाया। येसूबाई से तो बस इतना ही कह पाये, "हम चलते हैं।"

उपरिकोट के मुख्य चौक में प्रतापराव, निराजी, रावजी, सोमनाथ, प्रह्लाद निराजी, आनन्दराव आदि श्रेष्ठजन उपस्थित थे। ये लोग दुर्ग से नीचे उतरने के लिए तैयार खड़े थे। थोड़ी देर बाद जिजाऊ के साथ सम्भाजी वहाँ आये। सम्भाजी ने प्रस्थान करने से पूर्व जिजाऊ के चरणों में प्रणाम किया। "चिरंजीवी होओ, कार्य सफल होते ही वापस लौट आना।" जिजाऊ ने आशीर्वचन कहे।

जो लोग सम्भाजी के साथ जाने वाले थे, वे लोग, महाराज और सम्भाजी अब संजीवनी माची की ओर जाने लगे। इस माची पर दुर्ग से नीचे उतरने के लिए पालकी तैयार रखी गयी थी।

सब लोग माची की ओर जाने वाली पहाड़ी सुरंग के द्वार पर आये। रक्षकों ने द्वार की शिला हटायी और महाराज तथा सम्भाजी भीतर उतर गये। उनके पीछे प्रतापराव, निराजीपन्त, रावजी, आनन्दराव, प्रह्लादपन्त आदि अधिकारीगण भी सुरंग में उतरे। एक-एक सीढ़ी उतरते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। भीतर के प्रहरी इन श्रेष्ठजनों को मुजरे कर रहे थे। सुरंग में मशालों का धूसर-मन्द प्रकाश फैला हुआ था। महाराज अपनी हथेली युवराज सम्भाजी के कन्धे पर रखे उतर रहे थे। अचानक चलते-चलते महाराज के मन में न जाने क्या विचार आया कि वे एक सीढ़ी पर रुक गये। पीछे के लोग अपने-आप ही रुक गये।

"तुम्हें याद है वेरूल की कैलाश-गुफा की?" महाराज से पूछा।

"जी हाँ, अच्छी तरह याद है," दोनों की आवाज़ों की प्रतिध्वनि सुरंग में गूँजी।

"उस पत्थरों के शिल्प में तुम्हें कौन-सा दृश्य मोहक प्रतीत हुआ?"

"कैलाश पर्वत को उठाने के कारण थका-माँदा रावण।"

"...?" आश्चर्य से भौंहें चढ़ाकर महाराज ने सम्भाजी की ओर देखा।

"इतना बलशाली था रावण, परन्तु कैलाश पर्वत को उठा नहीं पाया।" शान्त वाणी से सम्भाजी ने उत्तर दिया। उत्तर सुनकर महाराज की छाती फूल उठी।

सब संजीवनी माची तक आये। युवराज सम्भाजी ने अपना हल्दी-रोली से सुरेखित मस्तक महाराज के चरणों में नवाया। उन्हें ऊपर उठाकर अंक में भरते हुए महाराज धैर्यपूर्ण स्वर में बोले, "सावधान रहना। हम तुम्हारे साथ नहीं हैं, परन्तु प्रतापराव तो हैं। उनकी सलाह के अनुसार चलो। यशस्वी बनो। हम तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करेंगे।"

सम्भाजी सजाई हुई पालकी में सवार हो गये। पालकी का खिला हुआ शानदार फुँदना उनके हाथ में था। पालकी चल पड़ी और रणसिंगों की तेज़ आवाज़ें गूँजने लगीं। पालकी के साथ आफ़ताबधारी सेवक, चोबदार, झण्डा-बरदार भी चल रहे थे।

पालकी क़िले के पाली दरवाज़े से आगे निकली। पीछे पाँच हज़ार शूरवीर घुड़सवार भी साथ निकले। कूच का डंका बजने लगा। इस डंके की आवाज़ को ऊपर दुर्ग में सम्भाजी की बहनों—सखूबाई, राणूबाई और अम्बाबाई ने सुना, येसूबाई ने भी सुना और जिजाऊ ने भी। धाराऊ ने भी

https://t.me/Sahityajunction

सुना अवश्य, परन्तु कान जैसे बधिर थे, मन सुन्न हो गया था उसका।

श्री भवानी के राज्य के सेवकों को नाते-रिश्तों को भी भुलाना पड़ता है। वे पहले हैं भगवती भवानी के अनन्य-उपासक। वह माँ-भवानी अपने आठों हाथों में से एक हाथ उठाकर जिस दिशा की ओर संकेत करे, राज्य के रणबाँकुरों के लिए वही दिशा है, वही लक्ष्य है। आज उसी माँ-भवानी ने युवराज सम्भाजी को दिशा दिखलायी थी—औरंगाबाद की। वे निकल पड़े नातों-रिश्तों का मोह तोड़कर।

एक-एक पड़ाव तय करते हुए सम्भाजी औरंगाबाद पहुँचे। दिल्ली दरबार का एक अमीर सरदार जसवन्त सिंह उनकी अगवानी के लिए आगे आया। फिर उसके सम्मुख ही सम्भाजी को 'मनसबदार' के 'सम्मान-वस्त्र' प्रदान किये गये। युवराज सम्भाजी ने भी उसे नज़राना पेश किया।

औरंगाबाद के शाही महल में सम्भाजी अपने सहायक प्रतापराव, निराजीपन्त, रावजी आदि के साथ गये और वहाँ शाहआलम से उनकी भेंट हुई। शहज़ादे का रंग ताँबे का सा, परन्तु गोरा था। वह सम्भाजी से मिलकर बहुत ख़ुश हुआ। होठों ही में बुदबुदाकर बोला, "माशा अल्लाहऽ! क्या सूरत है?" उसने युवराज सम्भाजी को पूरे सम्मान सहित एक झूलदार हाथी और रत्नजटित तलवार भेंट दी। सम्भाजी ने भी उसे नज़राना पेश किया। एक शानदार भव्य बैठक में शाह आलम ने सम्भाजी को अपने पास ही बिठा लिया। स्वयं जसवन्त सिंह को भी ऐसा सम्मान कभी न मिला था। वह हाथ बाँधे सामने खड़ा था।

शहज़ादे ने फिर सम्भाजी से उनकी लम्बी यात्रा के विषय में पूछताछ की। महाराज के स्वास्थ्य के कुशल-क्षेम के बारे में भी उसने जानना चाहा। फिर अचानक उसका ध्यान सम्भाजी के गले में पड़ी हुई कौड़ियों की माला की ओर गया। सम्भाजी के इस निराले रूप को देखकर वह सोच में खो गया—'हमने भी बचपन से आज तक बहुत-सी मुहिमें कीं, शिकार खेले, मगर इस छोटी-सी उम्र में जितनी बेख़ौफ़ी है, वह क्या अपने में कभी थी?'

अब रुख़सती का वक़्त आया। शाही महल के अत्तार ने इत्रदानी में से काबुली इत्र के फाहे बड़े अदब से झुककर शहज़ादे और सम्भाजी के हाथों पर लगाये। एक ख़िदमतगार सुनहरे नक्काशीदार तबक़ में बड़े-बड़े गुलाबों का एक गुच्छा लिये बैठक के सामने हाज़िर हुआ।

तबक़ में रखा गुलाब का गुच्छा हाथ में लेकर पहले शहज़ादे ने उसे देखा। सम्भाजी के हाथ में देते समय उसके मुँह से बोल फूट पड़े, "लीजिए, राजासाहब। गुलाब भी क्या ही ख़ूबसूरत फूल है!"

एक दिन युवराज सम्भाजी अपने सहायकों सहित घृष्णेश्वर के ज्योतिर्लिंग के दर्शनों के लिए गये। उसके निकट ही वेरूल की गुफाएँ हैं। बहुत दिनों से उनकी इच्छा थी कि गुफाएँ देखें, अतः वे वहाँ भी हो आये।

मराठा सेना की छावनी औरंगाबाद के दक्षिण नगरद्वार के पास थी। शामियाने, खेमे लगाये गये थे। सम्भाजी प्रतापराव के साथ शहर का चक्कर लगा आते थे। उन्होंने पाया कि मुग़लों की दक्खिन की यह राजधानी सुन्दर है, लुभावनी है। महाराज ने उन्हें कहा भी था—"जितना बन

https://t.me/Sahityajunction

सके, औरंगाबाद शहर की देखभाल करना।"

एक दिन प्रतापराव के साथ शहर में घूमकर वे डेरे पर लौटे, तो निराजीपन्त ने सूचना दी, "शहज़ादे सरकार युवराज जी को याद फ़रमाते हैं। मुलाकात का उद्देश्य क्या है, कुछ पता नहीं।"

सम्भाजी ने यह सूचना सुनी और उनकी सलाह जानने के लिए प्रतापराव की ओर देखा। प्रताप के माथे पर बल पड़ गये थे, फिर भी बोले, "युवराज को मुलाकात के लिए जाना चाहिए। पानी में रहकर मगर से बैर लेना अच्छा नहीं।"

सम्भाजी ने प्रतापराव, निराजीपन्त, रावजी सोमनाथ आदि सहायकों को साथ लिया और पूरे शानदार सरंजाम के साथ वे शहज़ादे से मिलने शाही महल में पहुँचे। शहज़ादे का वज़ीर आगे बढ़ आया और वह उन्हें बैठकवाले महल में ले गया।

"आइए।" कहते हुए चेहरे पर मुस्कराहट लिये, मोहक रूपवाला शहज़ादा बैठक से उठकर आगे आया और सम्भाजी का हाथ अपने हाथ में लेकर उन्हें अपने नज़दीक बैठा लिया। उनके ख़ास-ख़ास सरदार बा-अदब दोनों ओर क़तारों में हाथ बाँधे खड़े थे। प्रतापराव और अन्य सरदार भी ऐसे स्थान पर जा खड़े हुए जहाँ से सम्भाजी पर नज़र रख पाना सहज हो। पहले कुछ इधर-उधर की बातें हुईं और फिर शहज़ादे ने मुख्य बात की शुरुआत की :

"सम्भूराजा, कभी शिकार खेलते हो?"

"नहीं।" सम्भूराजा ने शान्त रहकर उत्तर दिया।

"ताज्जुब है। राजा के फर्ज़न्द आप और शिकार का शौक नहीं रखते?" शहज़ादे की भौंहें ऊपर चढ़ गयीं।

"लेकिन हम यदि खेलना ही चाहें, तो हमारे महाराज साहब हमें शिकार करने की इजाज़त अवश्य देंगे।"

"तो फिर आज चलिए हमारे साथ शिकार खेलने। हम आज रामटेक के जंगलों में निशाना आज़माने जा रहे हैं।"

"नहीं शहज़ादे हम न आ सकेंगे।" सम्भाजी सावधान होकर बोले।

"क्यों, डरते हो हमारे साथ जंगल में जाने से?" शहज़ादे ने व्यंग्य किया। सम्भाजी ने प्रतापराव की ओर देखा। प्रतापराव को भी अनुमान नहीं था कि ऐसा कोई निराला आमन्त्रण सामने आएगा। वह भी सोच-विचार में डूबे थे, क्या संकेत करें, सोच नहीं पा रहे थे।

"डरने की कोई बात नहीं। हम ज़रूर आएँगे आपके साथ शिकार खेलने," सम्भाजी ने गर्दन सीधी रखकर तड़ाक से जवाब दिया।

"वाह, वाह, आफ़रीन! हमें आपसे यही उम्मीद थी। हम आपकी सवारी का इन्तज़ाम करेंगे। आप अपने चुनिन्दा लोग साथ ले लें।" शहज़ादे ने प्रतापराव की ओर देखकर उत्तर दिया।

तय हुआ कि दोपहर थोड़ी ढलने के बाद नगर से बाहर निकला जाय। इत्र गुलाब पेश किये गये। सम्भाजी शहज़ादे से विदा लेकर अपने डेरे पर वापस आ गये।

सम्भाजी ने प्रतापराव की सलाह से अपने बहादुरों में से कुशल पटेबाज, तीरन्दाज़, बरछैत

https://t.me/Sahityajunction

और जंगलों में घोड़े दौड़ाने में निपुण सवार चुन लिये। आनन्दराव, प्रतापराव, निराजी, रावजी आदि निष्णात शस्त्रधारी भी अपने घोड़ों पर ज़ीन कसकर तैयार हो गये। युवराज सम्भाजी ने पहले शरीर पर ज़िरह-बख़्तर चढ़ाया, फिर टोप के नीचे शिरस्त्राण पहना। सब कुछ तैयार था। वे लोग अब शहज़ादे के सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सन्देश मिलते ही सम्भाजी अपने चुने हुए लोगों के साथ छावनी से बाहर निकले। शहज़ादा एक हाथी पर सुरक्षित हौदे में बैठा था। एक दूसरा हाथी भी सम्भाजी के लिए वहाँ लाया गया था।

शहज़ादे ने हौदे में से महावत को इशारा किया। महावत ने हाथी को अंकुश लगाकर घुमाया और वह हाथी को सम्भाजी के सामने ले आया। हाथी सधा हुआ था। उसने सवार को पहले शानदार सलामी दी। फिर झूलता-झूलता वह नीचे बैठ गया। युवराज सम्भाजी ने कमरबन्द में से मोहरों से भरी एक थैली खींच निकाली और वह थैली महावत की ओर उछालकर फेंकी। महावत ने उस थैली को झेल लिया और सम्भाजी को कोर्निश किया।

अब हाथी की पीठ से सीढ़ी लगायी गयी। शस्त्रधारी युवराज सीढ़ी से होकर हौदे में आ बैठे। फिर महावत ने हाथी को खड़ा किया और शहज़ादे के हाथी की बगल में ला खड़ा किया। प्रतापराव, रावजी, निराजी, आनन्दराव और चुनिन्दा शिकारी साथी सम्भाजी के हाथी को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। शहज़ादे ने हाथ उठाकर और मुस्कराकर सम्भाजी को अदब दिया तथा सम्भाजी ने भी हाथ उठाकर हँसते हुए उसके अदब का प्रत्युत्तर दिया।

इसके साथ ही बड़े-बड़े ढोल-नगाड़े बज उठे। हाथी, घोड़े, निपुण शिकारी, हँकवैये आदि दक्षिण नगर द्वार से बाहर निकल पड़े। रामटेक के जंगल में पहुँचकर हाथी रुक गये। पीछे चलनेवाले शिकारी, हँकवैये और घुड़सवार चारों ओर बिखर गये। सम्भाजी के लोग उनके हाथी को घेरकर खड़े हो गये।

आज शहज़ादा सम्भाजी को दिखाना चाहता था कि 'शाही शिकार' कैसा होता है। हँकवैये और शिकारी-साथी जहाँ-तहाँ फैल चुके हैं—यह देखते ही शहज़ादे ने इशारा किया, महावतों ने हाथियों को जंगल में घुसाया। प्रतापराव, आनन्दराव आदि सरदार मण्डली हाथी के पीछे घोड़ों को धीरे-धीरे चला रहे थे। हाथी एक ऊँची पहाड़ी पर आकर रुक गये। यहीं से शिकार पर निशाना साधना था। यहाँ से ठीक सामने एक पठार फैला था। जंगल में से चारों ओर से कई सँकरे गहरे रास्ते इस पठार पर आकर मिलते थे।

शहज़ादे ने हौदे में बैठे-बैठे ही अपने हाथों में एक तीर-कमान लिया। उसने कमान को एक बार झुकाकर और डोरी को टंकार देकर मज़बूती की जाँच कर ली। उसके कई सरदारों ने भी तीर-कमान या भाले हाथों में तान लिये। मराठी बरछैतों ने भी उन्हें देखकर अपने बरछे, भाले, धनुष आदि तान लिये।

रामटेक के उस शान्त वन में अचानक होहल्ला मच गया। तरह-तरह की आवाज़ों से जंगल चीखने-कराहने लगा। हँकवैयों ने हाँका शुरू कर दिया था। इनके बीच ही रणसिंगों की तीखी-तेज़ आवाज़ गूँज उठी। यह इस बात का संकेत था कि शिकार अब शिकारियों के शस्त्रों की मार के भीतर आ गये हैं।

पहले कुछ क्षणों तक तो प्रचण्ड कोलाहल सुनाई देता रहा। फिर साथ ही सँकरे-नीचे रास्तों

https://t.me/Sahityajunction

से भागते हुए आये वन-गौओं के झुण्ड-के-झुण्ड। सफ़ेद, चित-कबरी, छोटी-बड़ी वन्य गौएँ; बेचारी प्राणों के भय से रँभाती-चीख़ती हुई, पूँछ उठाकर अन्धाधुन्ध भागती हुई उस पठार पर आ गयीं। मराठा शिकारियों ने जंगली गौएँ देखीं! वे उन्हें देखेते ही गड़बड़ा गये। रँभाती और बिदकी हुई गौएँ एक-दूसरे से टकरा गयीं। सींग-से-सींग टकराये। इसी समय पहाड़ी पर से छूटने लगी—भालों और तीरों की बौछार। मर्मस्थलों पर प्रहार होने के कारण कई गौएँ रँभाती-कराहती हुई पठार पर गिर पड़ीं। जो बच गयीं वे फिर घबराकर सँकरे-नीचान वाले रास्तों पर भाग पड़ीं। घायल गौओं ने कुछ देर झटके दिये और फिर निष्प्राण हो रहीं।

गौओं का रँभाना-कराहना और तड़पना सम्भाजी ने ज्यों ही देखा, वे हौदे में झटके से खड़े हो गये। हाथ के तीर-कमान तो सामने गौओं को देखते ही छूटकर गिर गये थे। खुरों को झटका दे रही, तड़पती उन गौओं को देखकर उनका हाथ व्याकुलता से कौड़ियों की माला पर ही फिरता रहा। आँखों से अश्रुधारा बरस रही थी। विवश होकर उन्होंने आँखें मीच लीं। कानों में रह-रहकर गौओं का रँभाना गूँज रहा था। "सेनापतिऽऽ," उन्होंने प्रतापराव को ज़ोर से चिल्लाकर पुकारा। प्रतापराव घोड़ा पास ले आये।

"शहज़ादे से कहो, हमें ऐसा शिकार और यह खेल पसन्द नहीं है। हम जा रहे हैं।" सम्भाजी ने उनसे कहा और महावत को आज्ञा दी, "हाथी घुमा लो।"

महावत ने हाथी का मुँह मोड़ लिया।

उधर प्रतापराव ने सम्भाजी का कहा, शहज़ादे को जा कहा। सम्भाजी के हाथी के साथ-साथ मराठा घुड़सवार, तीरन्दाज़, बरछैत भी वापस जाने लगे। कोई कुछ न बोलता था।

युवराज सम्भाजी ने हौदे में से अपने तीरन्दाजों के तरकस की ओर देखा। हरेक तरकस पहले के समान भरा हुआ था। सामने जंगली गौओं को आया देखकर मराठा शिकारियों ने अपने हथियार रोक लिये थे।

सम्भाजी के मुख पर असीम सन्तोष झलक उठा। बगल में घोड़े पर दौड़ लगानेवाले सेनापति प्रतापराव से सम्भाजी ने पूछा, "गूजर काका, हमें शिकार करना ही हो तो किसका शिकार करें?"

"जी प्रभु, वन्य श्वापदों का करें या फिर जंगली सूअरों का करें।" प्रतापराव ने ऊपर हौदे की ओर देखते हुए कहा। महावत हाथी चलाने में मग्न था—उसे क्या पता था कि उसके हाथी पर भी इस समय मावल-खण्ड का एक सिंह बैठा है जिसने इरादा किया है कि शिकार करेगा तो केवल जंगली सूअरों का!

औरंगाबाद छोड़ने से पहले युवराज सम्भाजी ने रावजी सोमनाथ और प्रह्लाद निराजी की औरंगाबाद में रहनेवाले कार्याधिकारी के रूप में नियुक्ति कर दी। महाराज ने सम्भाजी को औरंगाबाद भेजने के पीछे जो चतुर राजनीति का पासा फेंका था, उसे पूर्णतः कार्यान्वित करके सम्भाजी औरंगाबाद से रायगढ़ वापस लौट आये।

इसी समय महाराज ने बीजापुर के आदिलशाह से भी सुलह कर ली। इस सुलह के अनुसार बीजापुर दरबार ने महाराज को सालाना तीन लाख होन चौथाई के रूप में देना मंज़ुर किया। इस

https://t.me/Sahityajunction

प्रकार अब 'श्री' के स्वराज्य की दो दिशाएँ सुरक्षित हो गयी थीं—दक्षिण दिशा की बीजापुर की आदिलशाही और उत्तर दिशा की मुग़लिया सल्तनत—इन दोनों से सुलह हो चुकी थी।

महाराज को इस समय यदि चिन्ता सता रही थी तो केवल कोंकण की दिशा की। समुद्र के किनारे बसे इस लम्बे प्रदेश में प्रभु, नाईक, सावन्त, दलवी, आदि देशमुख-सरदारों ने अपने पैर जमाये हुए थे। महाराज की अधीनता उन्हें मान्य नहीं थी। वे सारे प्रदेश में लूटपाट मचाते और गाँवों-बस्तियों को जलाते फिरते थे। जब वे जान पाते थे कि शिवाजी की सेना उनके प्रदेश की ओर बढ़ रही है, तो सेना आने से पहले वह प्रदेश छोड़कर पुर्तगाली गोवा के पंखों के नीचे जा छिपते थे। उधर पुर्तगाली गोवा की ग़रीब प्रजा भी शासकों से तंग आ चुकी थी। फिरंगियों ने गोवा में बलात् धर्म परिवर्तन करने की मुहिम शुरू की हुई थी। गाँव के गाँव धर्म परिवर्तन के शिकार हो रहे थे। जो प्रजाजन विरोध करते थे, उन्हें चौक के बीच खड़ा करके ज़िन्दा जला दिया जाता था। सैकड़ों बरसों का कई पीढ़ियों का अपना प्यारा गाँव छोड़कर निराश्रित प्रजा कारवार प्रदेश और कोंकण प्रदेश में भागकर आ रही थी। कोई रखवाला न था उनका। अब महाराज ने यह ठान लिया और इन देशमुखों-सरदारों तथा गोवा के फिरंगियों का घमण्ड चूर करने के लिए वे स्वयं पूरी फ़ौज लेकर राजगढ़ से कोंकण प्रदेश की ओर चले गये।

राजगढ़ के ख़ास महल में गिरदे-तकियों से सजी बैठक पर जिजाऊ और सम्भाजी बैठे थे। उनके सम्मुख शीशम की बनी एक चौकी पर केशव पण्डित बैठे थे—मस्तक पर गन्ध-द्रव्य की आड़ी रेखाएँ थीं। उनके सामने एक लकड़ी की तिपाई पर भगवे रंग की चादर बिछी हुई थी और उस पर रामायण की पोथी रखी थी। केशव पण्डित रामायण के श्लोकों का पाठ कर रहे थे। एक-एक पृष्ठ समाप्त होते ही उसे उठाकर रखते जाते थे। देववाणी के श्लोक उनके मुख से शुद्ध स्वर और लय में बँधकर प्रकट हो रहे थे। संस्कृत के श्लोक का पाठ करके वह स्थानीय भाषा में उसका अर्थ समझाते जाते थे :

"लंकाधिपति रावण का वध करने के पश्चात् प्रभु रामचन्द्रजी अयोध्या लौटकर आये और सिंहासनारूढ़ हुए। उन्होंने अपने शूरवीरों का उपहारादि देकर यथायोग्य सम्मान किया। भक्तराज हनुमानजी को उन्होंने एक मोती-कण्ठा भेंट दिया। हनुमानजी उस कण्ठे को लेकर अयोध्या के नगर-द्वार के निकट आये और एक ऊँचे वटवृक्ष पर जा बैठे। कण्ठे के एक-एक मोती को दाँतों से फोड़-फोड़कर फेंकने लगे। वह देख रहे थे कि इस कण्ठे के मोतियों में हमारे प्रभु श्रीराम कहाँ छिपे हैं। उन्हें किसी भी मोती में उनके प्रभु न मिले। वह व्याकुल हो गये। वृक्ष के नीचे मोतियों के टुकड़े फैले हुए थे।"

कथा का प्रसंग सुनकर सम्भाजी भावाभिभूत हो गये। उनके मन की नौका भावनाओं की लहरियों में डोलने लगी—'प्रत्येक वस्तु में 'राम' को खोजना चाहिए। ओह, कितनी गहन निष्ठा है! हनुमान जी ने अपनी छाती फाड़कर दिखाया—प्रभु श्रीराम हृदय देश में निवास करते हैं, इसी प्रकार क्या हम भी कभी महाराज साहब की महिमामयी मूर्ति अपने अन्तःकरण में भर पाएँगे?'

"किस विचार में डूबे हो, शम्भू?" जिजाऊ ने पीठ पर प्यार से हाथ रखते हुए पूछा।

प्रश्न का उत्तर देने के लिए सम्भाजी ने अभी सिर ऊपर उठाया ही था कि उन्हें अस्त्र-शस्त्र आदि की शिक्षा देनेवाले गुरु गोमाजी बाबा भीतर बैठक में प्रविष्ट हुए। मुजरा करते हुए बोले, "माँ जी, कोलापुर भाग की ओर से पुनाल गाँव का एक आदमी आया है। उसका नाम है

https://t.me/Sahityajunction

ज्योत्याजी। आदमी बड़ा हुनरबाज़ है। भरोसा रखने लायक है। माँ साहिबा के चरणों में रहकर, महाराज की सेना में चाकरी माँग रहा है। इसी कारण आपसे मिलना चाहता है।"

"आने दो उसे," जिजाऊ ने शान्त भाव से कहा।

एक शानदार, हट्टा-कट्टा नौजवान भीतर प्रविष्ट हुआ। कलाइयों में चाँदी के कड़े पहने वह मावल-खण्ड के बल-तेज की जीवित प्रतिमा लग रहा था। फ़रशी मुजरा करके वह खड़ा हो गया।

"किस गाँव के हो?" जिजाऊ ने उसे ध्यान से देखते हुए पूछा।

"जी, पुनाल गाँव का हूँ।" ज्योत्याजी ने अदब से उत्तर दिया।

"कौन-कौन से हथियार चलाना जानते हो?"

"पटा, भाला, बोथाटी, गतका, सब कुछ चला सकता हूँ, माँ सरकार।"

"ठीक है, परन्तु तुम्हारी सच्चाई और ईमानदारी का भरोसा कैसे किया जाय?"

प्रश्न सुनकर जोत्याजी कुछ देर के लिए हड़बड़ा गया। फिर बोला, "जी, एक माँ के चरणों में क्या बालक को अपनी सच्चाई सिद्ध करनी पड़ेगी?" उत्तर सुनकर जिजाऊ का चेहरा खिल उठा। युवराज सम्भाजी भी उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए। सोचने लगे—इस देहाती के विशाल वक्ष में कितनी स्वामिभक्ति छिपी होगी, अनुमान कर पाना कठिन है।

"गोमाजी, इसे राजकार्यालय में ले जाओ और बालाजी से इसकी भेंट कराओ। कहो—इसे भरती कर लिया जाय।" जिजाऊ ने कहा।

आदेश सुनकर गोमाजी और ज्योत्याजी मुजरा करते हुए पीछे-पीछे हट रहे थे। अभी वे गरदन घुमाकर मुड़ना ही चाहते थे कि जिजाऊ ने उन्हें ठहरने को कहा। फिर कहने लगीं, "सुनो जोत्याजी, हमने तुम्हारी ईमानदारी के बारे में पूछा, इसलिए बुरा मत मानना। सुनो, राज्य प्राप्त होना फिर भी सरल है, परन्तु ईमानदार-सच्चा सेवक मिलना बहुत कठिन होता है। रामायण भी यही कहती है।"

आज महाराज ने राजसभा बुलायी थी। मन्त्रिगण और सम्भाजी उपस्थित थे। प्रतापराव, निराजी और आनन्दराव युवराज सम्भाजी की ओर से मुतालिक और नायब बनकर बरार और खानदेश की ओर रवाना हो रहे थे। सम्भाजी ने उन्हें अत्यन्त आदरपूर्वक श्रीफल, सम्मानवस्त्र और बीड़े दिये। उन तीनों सरदारों ने युवराज सम्भाजी और महाराज को अदब से मुजरे किये।

सेनापति प्रतापराव की मराठा फ़ौज राजगढ़ से नीचे उतरने लगी। पाली दरवाज़े के नक्कारख़ाने के नगाड़े बज उठे। कूच के नगाड़ों की आवाज़ सुनकर सम्भाजी सोचने लगे, "सेना हमारे पीछे-पीछे चले और हम सेनापति बनकर सेना का नेतृत्व कर रहे हों, ऐसा शुभ दिन जाने कब आएगा!"

राजगढ़ में युवराज सम्भाजी का सम्मान सर्वत्र धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। राजमहल में, रनिवास में, किले के अठारह शस्त्रागारों में राजकार्यालय में, सभी जगहों में लोग उन्हें महाराज की 'बोलती-चलती छाया' के रूप में मानने लगे थे।

https://t.me/Sahityajunction

राजगढ़ में धाराऊ सदा येसूबाई के साथ-साथ रहती थी। दोनों में घनिष्ठता बढ़ गयी थी। येसूबाई धाराऊ को 'माँ जी' कहकर पुकारती थी और उसे सगी माँ से बढ़कर मानती भी थी। धाराऊ उन्हें कहती थी 'बहूजी' परन्तु सगी बेटी का-सा प्यार करती थी। राजगढ़ के राजपरिवार की प्रथा के अनुसार छोटे लोग अपने बड़े-बूढ़ों को सूर्योदय और सूर्यास्त के समय नमस्कार करने जाते थे। येसूबाई प्रतिदिन 'सूर्योदय' और 'सूर्यास्त' का नमस्कार करने जिजाऊ के ख़ासमहल में जाती थीं। ऐसे हर अवसर पर धाराऊ भी साथ रहती थी।

सम्भाजी और येसूबाई का विवाह बचपन में ही हो गया था। और वे विवाह के बाद से अब तक मायके में ही रह रही थीं। अब सम्भाजी के आगरा से लौटने के बाद मायके से ससुराल में वे पहली बार ही आयी थीं। शुरू के कुछ दिनों में वे घबरायी-सिटपिटायी-सी रहीं, परन्तु जिजाऊ, धाराऊ, पुतलाबाई और स्वयं महाराज साहब के प्यार-दुलार भरे बोलों से अब राजगढ़ में उनका मन रमने लगा था। हाँ, एक स्थान ऐसा था, जहाँ जाकर उनकी जिह्वा जकड़ जाती थी। वह स्थान था—सोयराबाई का महल। येसूबाई को कभी माँ साहिबा से, आबासाहब से, यहाँ तक कि अपने 'उनसे' भी अब संकोच का अनुभव नहीं होता था, परन्तु न जाने क्यों इन सोयराबाई 'सास जी' से वे बहुत घबराती-सी थीं। ये सासजी थीं गोरे-उजले रंग की, परन्तु येसूबाई को ऐसा प्रतीत होता था, मानो क़िले की चहारदीवारी पर कड़कती धूप में रखी हुई तलवार चमचमा रही हो।

येसूबाई ने तनिक ध्यान देकर सोयराबाई की और भी कुछ आदतें देखी थीं। देखा था, कि चलते समय उनके नाक की नोक पर ललाई आ जाती है। यह भी देखा था कि अपने हाथ में पहने सोने के कंगनों को दूसरे ज़रूर देखें, इस कारण वे बार-बार अपने सिर का आँचल ठीक करती रहती थीं। अपने माथे पर रेखित कुंकुम की दो आड़ी रेखाएँ बिलकुल सीधी हैं या नहीं, यह वे दर्पण में टक लगाकर देखती थीं और उस समय अपने आपको भी जैसे भूल जाती थीं।

नित्य चर्या के अनुसार एक दिन धाराऊ येसूबाई को साथ लेकर 'सूर्यास्त' का नमस्कार करने के लिए जिजाऊ के महल में आयी। वहाँ जिजाऊ को नमस्कार करने के लिए पूरा राजपरिवार एकत्र था। सम्भाजी थे। सभी रानियाँ थीं। महाराज उस दिन वहाँ नहीं थे, वे महाड और रायगढ़ की ओर गये हुए थे।

दीप जलाने के लिए नियुक्त नायक ने अभी-अभी आकर महल के दीवट प्रज्वलित किये थे। उसी समय जिजाऊ कुछ दासियों सहित जगदम्बा के दर्शन करके लौटीं। आते ही उन्होंने दीपज्योतियों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उनकी बुढ़ापे की थकावट अब छिपी नहीं रही थी। सिर पर पूरा आँचल ढका होने से उनके बालों पर चढ़ा हुआ चूने-सी सफ़ेदी-सा श्वेत रंग दिखाई नहीं पड़ता था। सभी रानियाँ सामने आकर जिजाऊ को नमस्कार कर रही थीं और जिजाऊ उन्हें हृदय से मंगल आशीष दे रही थीं।

सम्भाजी भी आगे बढ़े और उन्होंने जिजाऊ को प्रणाम किया।

"शम्भूराजा, तुम अब अकेले ही हमें प्रणाम क्यों किया करते हो? बेटी येसू, तनिक सामने आओ और यहाँ अपने श्रीमान् के साथ आकर खड़ी होओ।" जिजाऊ ने येसूबाई से कहा और लाज से छुई-मुई बनी येसूबाई धाराऊ को साथ लेकर आगे बढ़ीं और सम्भाजी के बायें आकर खड़ी हो गयीं। फिर दोनों ने मिलकर माँ जिजाऊ के चरणों में भक्तिभाव से प्रणाम किया।

https://t.me/Sahityajunction

जिजाऊ के होठों पर हँसी तैर गयी। आनन्दातिरेक से वाणी मूक हो रही थी—फिर भी वे बोलीं, "जीते रहो। फलो-फूलो। जो भी सुख-दुःख, भला-बुरा मानना-भोगना है, मिलकर साथ-साथ भोगो। बने रहो।" येसूबाई लज्जा की मूरत बनी खड़ी थीं। जिजाऊ ने येसूबाई की ठोड़ी को तर्जनी से ऊपर उठाया और कुछ देर तक देखती ही रह गयीं। आज उन्हें पहली बार अनुभव हुआ—'हमारे पौत्र की वधू का चेहरा तो अपने माता-पिता जैसा, शिर्के घराने-जैसा है, परन्तु उनकी आँखें ठीक कैसी हैं? हाँ, आँखें साक्षात् देवी जगदम्बा के समान विशाल, दूरदर्शी हैं।"

जिजाऊ की आज्ञा पाकर समस्त स्त्रियाँ एक-एक कर चली गयीं। परन्तु आज शायद पहली बार ही सोयराबाई सबसे पीछे रह गयीं। अपनी सेविका चन्द्रा से बात करने के बहाने वे वहीं रुक गयीं। येसूबाई महल से बाहर जाने को थीं कि सोयराबाई ने उनके पास गयीं और धीरे से बोलीं, "हमारे महल में आओगी क्या हमारे साथ?"

येसूबाई ने सिर हिलाकर आज्ञा-पालन का भाव जताया और वे विनम्र भाव से सोयराबाई के पीछे जाने लगीं। परन्तु धाराऊ के गुदना-भरे माथे पर सिकुड़न आ गयी—'यह आज क्या नयी बात है?' फिर भी वह अपनी 'बेटी' के पीछे-पीछे चल पड़ी। पुतलाबाई ने जब देखा कि येसूबाई सोयराबाई के साथ जा रही हैं, तो वे भी बहू के साथ जाने को हुईं, परन्तु जब उन्होंने धाराऊ को भी साथ जाते देखा, तो वे निश्चिन्त हो रहीं।

अपने महल में आकर सोयराबाई ने येसूबाई को हाथ से पलँग पर बैठने का संकेत किया और अपनी सेविका चन्द्रा को दृष्टि से कुछ इशारा किया। चन्द्रा भीतर के कक्ष में गयी और नक्काशीदार लकड़ी की एक मंजूषा साथ लेकर बाहर आयी। यह मंजूषा उसने अपनी स्वामिनी को दे दी।

मंजूषा हाथ में लिये सोयराबाई येसूबाई के पास आयी। मंजूषा का ढक्कन खोलकर मंजूषा उनके सामने रखकर सोयराबाई ने कहा, "ये हमारे निजी आभूषण हैं। हमारे मायके से, तलबीड गाँव से आये हैं। इनमें से तुम्हें जो भी पसन्द हो, उसे हाथ लगाओ।" मंजूषा में बाज़ूबन्द, मोती की मालाएँ, पैंजनी, राजपूती बनावट की बिन्दी बाँके, टीक आदि आभूषण थे। सोयराबाई के पिता का 'मोहिते' कुलनाम था और यह घराना मूलतः राजपूताने का था। इस कारण सोयराबाई का रंग केतकी के समान गौर और रक्त भी राजपूती था। आभूषणों का बड़ा शौक था उन्हें। पैरों पर अलते के बेल-बूटे बनवाना उनकी एक विशेष रुचि थी।

येसूबाई असमंजस में पड़ गयीं और गहनों को देखती ही रह गयीं। फिर अपने-आप ही धाराऊ की ओर मुड़ गयीं। 'क्या किया जाय?' शायद यही पूछना चाहती थीं। सोयराबाई ने ताड़ लिया। धाराऊ से बोलीं, "धारा बाई, हमारी बहू जी से कहो, संकोच न करें, किसी भी आभूषण को हाथ लगा दें।"

"हाँ, हाँ," धाराऊ ने येसूबाई को कहा, "किसी भी गहने पर हाथ रखो बहूजी। यह अपना ही महल है।" येसूबाई ने फिर से एक नज़र सब आभूषणों को देखा और अम्बिया के बनावटवाली एक टीक पर उन्होंने हाथ रख दिया।

यह देखकर सोयराबाई हँस दीं। उस हँसी में न जाने क्या भाव था! शायद कौतुक का भाव था या फिर कुछ ऐसा व्यंग्य-उपहास भी छिपा था, जो समझ न आ सके।

सोयराबाई ने झट से वह टीक उठायी। मंजूषा चन्द्रा को देते हुए उन्होंने वह टीक अपने हाथ

https://t.me/Sahityajunction

से येसूबाई के गले में पहना दी। टीक के दो डोरों को खींचकर उन्होंने वह टीक येसूबाई के गले में ठीक से बैठा दी।

इसके बाद सोयराबाई काफी देर तक महाराज के बारे में, माँ साहिबा के बारे में और अपने मायके के बारे में जाने क्या-क्या बताती रहीं। येसूबाई और धाराऊ के ज़िम्मे बस सुनने का काम था। "हम ही बोलती जा रही हैं। तुम कुछ नहीं बोलतीं बहू!" बीच में ठहरकर सोयराबाई ने तनिक बातचीत का क्रम बदलने का प्रयत्न किया। येसूबाई कुछ न बोलीं, सिर उठाकर उनकी ओर देखती ही रहीं।

"हम भी कैसी मूरख हैं? हमारे खयाल में ही न आया कि तुम बोलने में संकोच क्यों कर रही हो। तुम्हारी बोली शृंगारपूर की है, कोंकण के गाँवोंवाली देहाती-किसानोंवाली बोली। अभी दुर्ग की, राजपरिवार की ख़ास भाषा तुम कहाँ सीख पायी होंगी? तुम्हारा संकोच स्वाभाविक है। परन्तु लजाया न करो बहू। थोड़ा-बहुत बोलने की आदत डालो।" ऊपर से वचन सीधे से लगते थे, परन्तु सोयराबाई को जो कुछ व्यंग्यार्थ कहना था, कह गयीं। कड़वा-तीखा माजूफल उन्होंने गुड़ में मिलाकर पेश कर दिया।

सोयराबाई की बातें सुनकर येसूबाई के मन में आज पहली बार अपनी इस अपूर्णता की ओर ध्यान गया। 'हमारा भाग्य हमें किसान-सरदार के घर से इस राजपरिवार में ले आया, परन्तु अब हमें भी दुर्ग की व्यवहार की भाषा को सीखने-बोलने का अभ्यास करना चाहिए।' सोयराबाई की ये चालें और गुप्त उपहास की बातें न जाने कहाँ-कहाँ तक पहुँचेंगी, इसे धाराऊ ताड़ गयी थी। येसूबाई का चेहरा भी उसे म्लान दिखाई दे रहा था। उन्हें इस झंझट से छुटकारा दिलाते हुए धाराऊ बोली, "आज दिनभर तुमने उपवास रखा है न, बहू जी। चलो, अब चलकर कुछ खा-पी लो।"

सुनकर येसूबाई उठ खड़ी हुईं और, "हम चलती हैं," कहकर उन्होंने सोयराबाई को प्रणाम किया। सोयराबाई ने देखा, येसूबाई की पीठ पर गले की टीक के दो डोरे पीछे झूल रहे हैं। येसूबाई की आभूषणों की रुचि देखकर वे फिर एक बार हँस पड़ीं—'मंजूषा में राजपूती ढंग के इतने अनमोल गहने हैं, मोतियों-हीरों के गहने हैं। बहू ने हाथ भी रखा तो कोंकणी ढंग की एक टीक पर।'

धाराऊ मन में ख़ूब समझी बैठी थी। उसके मन में आया था कि कह बैठे—'रानी जी, आदमी की बोली कैसी है, इसकी बजाय उसकी बोली में प्यार-मुहब्बत कितना है, यह देखा करो।' परन्तु उसने कहा कुछ नहीं। येसूबाई की टीक की झूलती डोरियों को देखकर उसका मन बौखला उठा—'बड़ी रानी बनती हैं! बड़े घराने की हैं! इतना भी तो ध्यान नहीं रहा कि नया गहना किसी को पहनाते समय उसे हल्दी-कुंकुम लगा देतीं!...हुँ...!'

"क्या बात हुई शिवबा? हम तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करके आख़िर स्वयं तुमसे मिलने आयी हैं। बोलो, मिलने क्यों नहीं आये?" जिजाऊ ने महाराज के माथे के सिकुड़े हुए तिलक और तने हुए बल देखते हुए पूछा।

"जंजिरा की मुहिम में हम हबशी से मात खा गये, माँ साहिबा। आप जानती हैं, वहाँ समुद्र

https://t.me/Sahityajunction

के बीच में एक बहुत दृढ़ जलदुर्ग है। हबशियों के क़ब्ज़े में है वह जलदुर्ग। वह जलदुर्ग लगभग हमारे क़ब्ज़े में आ ही चुका था और सिद्दी फतह ख़ाँ उसे हमारे हवाले करने को तैयार था। मगर...मगर सिद्दी सम्बूल, सिद्दी क़ासिम और ख़ैरत ख़ाँ आदि उसके सरदारों ने उसे ही क़ैद कर लिया। हमारा बनता काम बिगड़ गया।" राजा ने बात पूरी की।

"बस, इतनी-सी बात के लिए हमसे मिलने आना टाल रहे थे? शिवबा, पराजय से कौन बच सका है आज तक! देवताओं को भी पराजित होना पड़ा है अनेक बार।"

जिजाऊ के बोल सुनकर महाराज ने चौंककर ऊपर देखा और जिजाऊ की आँखों का भाव पढ़ना चाहा।

"तो माँ साहिबा ने सब कुछ सुन लिया प्रतीत होता है।" महाराज ने भर्रायी-सी आवाज़ में कहा।

"किस बारे में?" जिजाऊ ने देखा, महाराज की मुखमुद्रा पर उदासी छायी हुई थी।

"देवताओं के बारे में।" महाराज की वाणी और अधिक भर्रा उठी।

"कहो राजा, क्या हुआ?" जिजाऊ सम्भाजी को साथ लिये उनके निकट जा खड़ी हुईं।

"माँ साहिबा, हमारा राजा बनना मिट्टी के मोल हो गया। आपका सपूत कहलाने में भी हमें शर्म महसूस होती है। जंजिरा में हमने जो समाचार सुने उन्हें सुनकर हमें प्रतीत हुआ, माने हमारे सारे स्वप्न और आकांक्षाएँ खारे समुद्र के तल में डूब गयी हैं। मुख से यह बात कैसे कहें हम आपसे।" महाराज रुक गये।

"राजा," जिजाऊ ने महाराज की पीठ पर हाथ रखकर दिलासा देना चाहा। उस हाथ के स्पर्श से महाराज ने अनुभव किया, अब माँ साहिबा की गोदी में सिर रखकर ही समाधान मिलेगा।

"कहो राजा, कहो, क्या समाचार सुना था तुमने जंजिरा में?" जिजाऊ ने धीरज बँधाते हुए कहा।

"माँ साहिबा, माँ जी, औरंगज़ेब ने पूरे उत्तर भारत को धूल में मिलाने का इरादा किया है शायद। वह हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त-भ्रष्ट कर रहा है। ओह, इन मुगलों ने काशी के बाबा विश्वनाथ का मन्दिर भी तोड़-फोड़ डाला है। उस स्थान पर मस्जिद खड़ी कर दी है दुष्टों ने। देवताओं के भाग्य में भी यों पराजय बदी होती है, वे देवता हैं, पराजय सह लेते हैं। परन्तु हम मनुष्यों के हृदय में देवताओं की इस प्रकार की पराजय की मार सहन करने की भी सामर्थ्य नहीं होती। हम शर्मिन्दा हैं, आपको मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं हैं हम।" महाराज की आँखें आँसुओं से भर आयीं। सुनकर जिजाऊ भी कुछ बोल न पायीं। उनका हाथ महाराज की पीठ पर ही घूम रहा था।

सम्भाजी ने महाराज के ये शब्द सुने और शब्दों ने जैसे उनका हृदय चीरकर रख दिया। उनकी दृष्टि देख रही थी—आगरे के लालक़िले का वह लाल मिट्टी का अखाड़ा। कोई उनसे पूछ रहा था, "ये शीवा का बच्चा, कुश्ती लड़ेगा क्या?"

https://t.me/Sahityajunction

महाराज के चिटनीस बालाजी आवजी बड़ी उतावली से भीतर आये और उन्होंने महाराज को वार्ता सुनायी, "प्रभु, प्रतापराव और रावजी मुग़ली प्रदेश से, बरार-ख़ानदेश से अचानक ही सेना के साथ लौट आये हैं। लौटने की कोई सूचना भी उन्होंने पहले नहीं भिजवायी थी। वे सब ऊपर क़िले में आ रहे हैं।"

महाराज देवमन्दिर में पूजा करने बैठे थे। हाथ में आचमन का जल था। वह जल नीचे के तरबहने में यूँ ही छोड़कर 'जगदम्बे' कहते हुए वे झट उठ खड़े हुए। उपाध्याय प्रभाकर भट्ट और केशव पण्डित उन्हें देखते ही रह गये।

जोत्याजी केसरकर ने यही वार्ता जिजाऊ को भी जा सुनायी। वह उस समय एक व्यापारी से बात कर रही थीं, जिसे उन्होंने पुणे से विशेष रूप से बुलवाया था। रानी सोयराबाई गर्भवती थीं, और जिजाऊ उनके 'दोहद' के निमित्त सातवें मास में दिये जाने भोज का आयोजन करने में मग्न थीं। पुणे के उस व्यापारी से वे गर्भवती के लिए सुन्दर-सुन्दर फूलों से बनी जालीदार और शानदार झाँकी बनवाने के बारे में चर्चा कर रही थीं।

वार्ता सुनते ही वे बात अधूरी छोड़कर उठ खड़ी हुईं। उस समय सोयराबाई की दासी चन्द्रा वहाँ 'झाँकी-का-साज' सुनने-जानने आयी हुई थी। जिजाऊ के बाहर जाते ही वह झपटकर सोयराबाई के महल में जा पहुँची। कुछ बताना ही चाहती थी कि वहाँ धाराऊ और सम्भाजी को उपस्थित देखकर ठिठक गयी।

गर्भवती का तेज सोयराबाई के मुख पर दमक रहा था। वे पलँग पर लेटी हुई थीं। लेटे हुए उन्हें दूर स्थित कालेश्वरी देवी के मन्दिर का सुवर्णमय शिखर दिखाई दे रहा था। सम्भाजी पलँग के चौखटे पर एक किनारे पर बैठे थे और कुछ सोच-विचार में डूबे थे। कई दिनों से वे अनुभव कर रहे थे—हमारे इन माँ जी के बोलने में, चाल-ढाल में, आजकल कुछ भिन्नता, कुछ परिवर्तन हो रहा है। क्या है यह, क्यों है यह—शायद इसी सोच में डूबे थे।

गर्भिणी सोयराबाई आजकल न जाने क्यों सम्भाजी से लाड़-प्यार जता रही थीं। क्यों, शायद वे भी न जानती थीं। शायद उन्हें सम्भाजी में महाराज का ही रूप फूटता हुआ दिखाई देता हो।

चन्द्रा को भीतर आती देखकर सोयराबाई ने कहा, "भीतर आना। आज क़िले की नौबत क्यों बज रही है? कौन आ रहा है?" चन्द्रा ने सम्भाजी की ओर देखा और चुप हो रही।

"बोल ना। यह सम्भाजी अपने ही तो हैं।" सोयराबाई ने हँसते हुए कहा।

चन्द्रा हड़बड़ाकर बोली, "सेनापति लौट आये हैं मुग़ली इलाक़े से।"

चन्द्रा की बात सुनकर सम्भाजी चौंके और झटके से उठ खड़े हुए। बोले, "हमें जाने की आज्ञा दें बड़ी माँ जी!"

सोयराबाई ने लेटे-लेटे ही हाथ से अनुमति जतलायीं। फिर सोयराबाई काफी देर तक बाहर जाने वाले सम्भाजी को देखती रहीं। एक बार और उन्होंने कालेश्वरी देवी के मन्दिर के स्वर्ण-कलश को निहारा।

सम्भाजी सीधे महल के कक्ष में आये। वहाँ प्रतापराव और रावजी महाराज तथा जिजाऊ के सामने खड़े थे। युवराज सम्भाजी को आया देखकर उन्होंने झट से मुजरे किये। कुछ क्षण शान्ति में बीते। फिर प्रतापराव ने मुग़लिया इलाक़े का वृत्तान्त पुनः आगे कहना शुरू किया :

https://t.me/Sahityajunction

“हमने एक ही रात में पूरी छावनी उठा ली। यह रावजी बरार में थे। उनकी ओर भी एक ख़बरग़ीर दौड़ाया और कहलवा भेजा कि झटपट छावनी उठाओ और जल्दी-से-जल्दी, जैसे भी बने, अपने मराठी प्रदेश में पहुँच जाओ। मलिक बादशाह बड़ा काइयाँ है, आड़ा दाँव लगाता है। पूरी फ़ौज-की-फ़ौज क़ैदी बना ली जाने वाली थी। वह तो ख़ैर हुई कि शहज़ादे ने मेहरबानी की। ख़ुद उसने ही अपना वज़ीर भेजकर हमें भेद बतला दिया—‘रात की रात में छावनी छोड़कर निकल भागो। नहीं तो...’” प्रतापराव कहते-कहते रुक गये।

औरंगज़ेब ने शाहआलम को गुप्त आदेश भेजा था, पूरी मराठा फ़ौज को क़ैद कर लेने का। इस आदेश की भनक शहज़ादे के कानों में पहले ही आ चुकी थी और उसने वह आदेश पाने से पहले ही प्रतापराव को इशारा कर दिया था।

प्रतापराव से पूरा वृत्तान्त सुनकर महाराज बड़ी देर तक युवराज सम्भाजी की ओर ही देखते रहे। एक गहरी उसाँस उनके मुख से निकल पड़ी...। उसाँस कह गयी : “बादशाह का फरमान हो, भेंट हो, जागीर हो या ख़िलअत हो, अब लाड़ले सम्भाजी को मुग़लों की छावनी में कभी मत भेजना।”

“राजाश्रियाविराजिता, अखण्डसौभाग्य अलंकृता सौभाग्यवती, बड़ी रानी सरकार सोयराबाई साहिबा प्रसूता हुईं। राजपुत्र उत्पन्न हुआ है।”

पुनः जन्म का सुसमाचार लेकर थैलीवाहक सवार चारों दिशाओं में दौड़ पड़े। हर क़िले में शक्कर बाँटी गयी। चौघड़े, नगाड़े बज उठे, तोपें गरज उठीं। महाराज के नाते-रिश्तेदार, राजगढ़ की ओर चल पड़े। पाँचवीं के दिन की विशेष विधियाँ हुईं। छठी की देवी ‘सटवी’ की पूजा हुई और उस देवी ने अपने अदृश्य हाथों से नवजात शिशु के भाल पर भविष्य की रेखाएँ चित्रित कर दीं।

महाराज का पूरा परिवार, सगे-सम्बन्धी जन, रनिवास के भीतर वाले सोयराबाई के महल के सामने इकट्ठे हो गये थे। सभी चाहते थे—बाल राजा को देखें। सम्भाजी भी थे वहाँ। येसूबाई भी धाराऊ के साथ आयी खड़ी थीं। सब प्रतीक्षा में थे कि उपाध्याय ने जो मुहूर्त्त निश्चित किया है उसी शुभमुहूर्त्त में बालक के दर्शन करें। उस समूह में अब स्वयं महाराज भी आ मिले।

एक जलपूर्ण गंगाल में एक खाली मुहूर्त्तपात्र तैर रहा था। वह मुहूर्त्तपात्र धीरे-धीरे भरता जा रहा था। ज्यों ही वह मुहूर्त्तपात्र पूरा भरकर नीचे डूबा, शुभमुहूर्त्त आ गया। प्रसूता के कक्ष का द्वार खुला और आगे-आगे जिजाऊ और पीछे समस्त परिवारी जन कक्ष के भीतर प्रविष्ट हुए।

नन्हा शिशु सोयराबाई की बगल में सोया हुआ था। दाई ने उसे कोमल वस्त्र में लपेटकर उठाया और जिजाऊ के सामने ले आयी। जिजाऊ ने शिशु पर मुहरें न्यौछावर कीं। फिर माँ भवानी की हल्दी-रोली को कोई भवन अत्यन्त कोमलता और विनम्रता से स्वीकार करता हो, ऐसे ही जिजाऊ ने शिशु को धीरे से सँभालकर हाथों में लिया। जी-भर निहारकर फिर उन्होंने शिशु को महाराज के हाथों में दे दिया। देते हुए जिजाऊ बोलीं, “बच्चा माँ पर गया है। परन्तु...हमने सुना है कि ये बालराजा उलटे पैदा हुए हैं।” जिजाऊ की आवाज़ में कम्पन था।

महाराज की भौंहें कुछ देर के लिए ऊपर को उठीं। फिर बड़े प्यार से अपने जिगर के टुकड़े

https://t.me/Sahityajunction

को निहारते हुए वे कहने लगे, “माँ साहिबा, चिन्ता न करें। अजी यह बालराजा उलटे जन्मे हैं, तो क्या हुआ? देख लेना, यह सारी मुग़लिया बादशाहत को उलटा कर देंगे।” महाराज के इस उत्तर से सम्भाजी बहुत प्रसन्न हुए।

“लो, तुम भी लो इसे।” कहकर महाराज ने बच्चे को सम्भाजी के सामने किया।

सम्भाजी ने पहले बच्चे पर सोने की मुहरें निछावर कीं और फिर हलके से उसे थाम लिया। उन्हें याद आयी—वेरूल की सुन्दर पर्वतीय गुहाओं की। यह शिशु भी तो शिल्पकारी का जीता-जागता सुन्दर नमूना है। सब सोच रहे थे—सोयराबाई ने गगन का चन्द्रमा ही भूमि पर ला उतारा है।

सम्भाजी शिशु को बहुत ध्यान से देख रहे थे। मन कह रहा था—‘हाँ, हाँ, अवश्य ही ये छोटे भैया सारी मुग़लिया बादशाहत को उलटा कर दिखावेंगे।’

महाराज अब आठों घड़ी सम्भाजी को साथ रखते थे। अवश्य ही कोई दूर की बात मन में सोची थी उन्होंने। शायद यही कि एक युवराज को राजकाज से सम्बन्धित सभी बातों को सीखना-ढालना चाहिए। राजकार्यालय में पत्र-व्यवहार कैसे लिखा-किया जाता है, पत्रों पर हस्ताक्षर कैसे करने चाहिए, मुहर कैसे लगायी जाती है, प्रजा के द्वारा उपस्थित वाद-विवाद की सुनवाई कैसे की जाय, किसी मामले में मन्त्री गणों की सलाह लेकर स्वयं शान्त और जागरूक रहकर निर्णय कैसे किये जाएँ, मैदान में पराक्रम दिखाने वाले बहादुर योद्धाओं को अस्त्र-शस्त्र एवं कड़े-तोड़े देकर किस प्रकार सम्मानित किया जाय, दीन प्रजाजन, किसानों आदि को धैर्य-दिलासा देकर उन्हें उत्साहित क्यों कर किया जाय, दूसरे दरबार से आये हुए दूतों के मन की बात कैसे ताड़ ली जाय, दूर जाने वालों या विरोधियों से भी घनिष्ठता बढ़ाकर उन्हें अपना कैसे बनाया जाय, रणांगण में घायल योद्धाओं को सान्त्वना के दो बोल सुनाकर उन्हें कैसे प्रोत्साहित किया जाय, राजकाज की इन सभी बातों से महाराज सम्भाजी को परिचित कराने लगे।

इस कारण सम्भाजी का हेलमेल उन लोगों से बढ़ने लगा, जो इस राजकाज के प्रधान अधिकारी थे।

एक थे श्री बालाजी आवजी—महाराज के चिटनीस। पत्र-लेखन में अति निपुण। मुहर्रिरों के ढंग की चौकड़ी लगाकर, हाथ में शुतुरमुर्ग़ के पंख की क़लम लेकर वह सुन्दर अक्षरों के मोती बिखेरना जानते थे। लिखते समय गरदन टेढ़ी करना उनकी आदत थी। कुछ ख़ास बात लिखने से पहले बीच में ही रुककर छत की ओर दृष्टि गड़ाकर देखा करते थे।

दूसरे थे श्री मोरोपन्त पिंगले—महाराज के पेशवा। महाराज ने ‘पन्त’ कहकर पुकारा और वह ‘जी स्वामी’ कहते हुए तनिक झुककर मुजरा करके झट सामने आ जाते थे। केले के तने के समान कान्तिमय शरीर, कपाल पर सदा एक-सा टीका लगाये मोरोपन्त की आदत थी तलवार की मूठ पर हाथ रखना। उसे दृढ़ता से पकड़ रखना। सिर पर कुछ कम गोल आकारवाली अनारदाने के रंग की पगड़ी हमेशा पहनते थे।

तीसरे थे श्री अण्णाजी दत्तो—महाराज के सुरनीस। पन्त-सचिव। राजसभा में किसी विषय या मन्त्रणा का प्रारम्भ वह सदा यों करते थे—‘अपनी अर्ज़ी पेश करता हूँ कि...’ उनके कन्धे पर

https://t.me/Sahityajunction

लटका हुआ लाल किनारी वाला एक दुपट्टा हमेशा छाती के दोनों ओर झूला करता था। और वह उस दुपट्टे का छोर मुट्ठी में पकड़े रहते थे। बटे हुए वस्त्र की घेरदार पगड़ी उनके सिर पर रहती थी। वैसे ही उनकी आँखें छोटी-छोटी-सी थीं, परन्तु हँसते हुए तो आँखें जैसे दिखती ही नहीं थीं। चौथे थे श्री निलोपन्त सोनदेव। महाराज के मुजूमदार। पन्त-अमात्य। राजकोष और वस्तु भाण्डागार के प्रधान। महाराज भाण्डार या कोष की जो भी वस्तु हाज़िर करने को कहें, वह झट से लाने को तैयार। मुहरें, रुपये, आभूषण, वसूल आदि आय-व्यय के व्यवहार-सम्बन्धित शब्द सदा उनकी ज़ुबान पर चढ़े रहते थे।

ये सभी सचिवगण युवराज सम्भाजी को उतना ही आदर-सम्मान देते थे जितना कि महाराज को। सम्भाजी भी इन सब ज्येष्ठ पुरुषों के प्रति असीम आदर भांव रखते थे। ये सभी लोग महाराज के विश्वासपात्र थे। आज वे जिस पद पर आ पहुँचे थे, वह पद उन सबने अपनी कार्यकुशलता, सच्चाई और ईमानदारी दिखाकर पाया था।

राजकार्यालय के मन्त्री और अधिकारी गणों से भी युवराज सम्भाजी का कर्तृत्व छिपा न था। पुरन्धर की सन्धि के समय वे नन्ही-सी उम्र में मुग़लों की छावनी में फरमान लेने गये थे और ज़ामिन बनकर रहे थे। आगरा में क़ैद से छुटकारा पाने की उनकी चतुराई, औरंगाबाद जाकर शाहआलम से मुलाक़ात करना, महाराज और जिजाऊ का प्रेम प्राप्त कर दिखाना, ये सब निशानियाँ थीं, जो सम्भाजी के व्यक्तित्व को उजागर कर चुकी थीं। इसी कारण मन्त्री, अधिकारी और क़ारिन्दे जान गये थे कि 'सम्भाजी ही वह व्यक्ति हैं जो 'श्री' के राज्य में महाराज का प्रतिबिम्ब बनकर दिखा सकेंगे। मराठा राज्य के बढ़ते हुए विस्तार का सच्चा उत्तराधिकारी बनकर दिखाएँगे ये युवराज सम्भाजी!'

उस दिन सम्भाजी सोयराबाई के महल में एक बिछावन पर पालथी मारे भूमि पर ही बैठे थे। उनकी गोदी में सोयराबाई का नवजात बालक राजाराम था। नन्हा शिशु राजाराम हाथ-पाँव हिलाते-किलकारी मारते खेल रहा था। निकट ही दीवार के पास चन्द्रा दासी खड़ी थी। सोयराबाई पलँग पर बैठी हुई बच्चे के झँगूले पर बेल-बूटे बुन रही थीं। बीच में ही मुस्कराकर सम्भाजी और उनकी गोदी में खेल रहे बच्चे की ओर देख लेती थीं। "तुम गोदी में बच्चा लिये बैठे हो। हमारी बहू ने तुम्हें इस अवस्था में देख लिया तो?" सोयराबाई ने हँसकर सम्भाजी से कहा।

"देख लिया तो क्या? बच्चे को केवल वह ही गोदी में खिलाएँ, ऐसा कोई क़ायदा थोड़े ही है।" सम्भाजी ने बच्चे के बालों पर हाथ फिराते हुए उत्तर दिया। अचानक खेलता हुआ बच्चा एकदम रुक गया और प्रकृति के नियमानुसार उसने जो मूत्रधार छोड़ी, तो सम्भाजी का अँगरखा भीग गया। "यह क्या बदतमीज़ी की रे तूने! दादा महाराज का अँगरखा गीला कर दिया।" कहती हुई सोयराबाई झटपट पलँग से उठीं। चन्द्रा भी आगे बढ़ आयी।

"रहने दो, माँ जी। ऐसा तो होता ही है।" कहते हुए सम्भाजी ने उन दोनों को रोक दिया।

राजाराम फिर खेलने लगा। चन्द्रा दूर हटकर खड़ी हो गयी। सोयराबाई पलँग पर पड़ा हुआ झँगूला उठा ही रही थी कि इतने में धाराऊ और येसूबाई महल में आ गयीं। येसूबाई ने सम्भाजी को देखा तो दरवाज़े पर ही ठिठक गयीं। उनको झिझकता देखकर सोयराबाई ने उन्हें ढाढस

https://t.me/Sahityajunction

बँधाया, “भीतर आ जाओ बहू।” सम्भाजी हड़बड़ा गये। उन्होंने पहले तो पीछे मुड़कर देखा और फिर झट से अँगरखे का गीला भाग पलथी के नीचे छुपा लिया। सोयराबाई ने यह देखा, तो हँस पड़ीं। येसूबाई से बोलीं, “सुना तुमने, तुम्हारे ‘श्रीमान्’ कहते हैं कि बच्चे को लेने का या खिलाने का अधिकार अकेले तुम्हीं को नहीं है।”

“धाराऊऽऽ!” बाज़ी अब सम्भाजी पर उलट गयी थी। उन्होंने धाराऊ को पुकारा।

“जी, आयी,” कहकर धाराऊ लपककर आगे बढ़ी।

“ज़रा इसे सँभालो।” सम्भाजी ने बच्चा धाराऊ को दे दिया; और लपककर महल से बाहर जाने लगे। सोयराबाई से इतना ही कह पाये—“हम जाते हैं।”

“हाँ, हाँ, जाओ बेटा,” सोयराबाई ने सन्तोष-भरे स्वर में कहा। फिर येसूबाई को अपने पलँग की ओर ले जाते हुए वे उनसे बोलीं, “सच बहू, तुम बड़ी भाग्यशाली हो।”

धाराऊ शिशु राजाराम को गोदी में लिये बैठी थी। बातें सुनकर उसका मन आनन्द से भर उठा।

दीपावली का पर्व निकट आ रहा था। चिटनीस बालाजी आवजी सभाकक्ष वाली अपनी बैठक पर बैठे थे। पर्व के अवसर पर महाराज के राज्ञीवर्ग को जो-जो गहने चाहिए, उन सबकी फेहरिस्त बनाने में वह व्यस्त थे। बहुमूल्य आभूषणों की यह फेहरिस्त स्वयं ही जाकर मुजूमदार निलोपन्त को देनी चाहिए, यह सोचकर वह बैठक से खड़े हुए। अपने कन्धे के दुपट्टे को ठीक-ठाक किया। वहाँ उस समय उनके किशोर आयु के दो पुत्र, आवजी, और खण्डोजी भी बैठे थे। बालाजी ने अपने दोनों पुत्रों को सावधान किया और बोले, “मैं यह फेहरिस्त मुजूमदार को देकर आता हूँ। तुम दोनों यहीं रुको, कहीं मत जाना।” आवजी और खण्डोजी ने सिर हिलाये।

उस समय बैठक-कक्ष में कोई नहीं था। चौक वाले दरवाज़े पर दो सशस्त्र प्रहरी पहरा दे रहे थे। बीच-बीच में फ़र्राश, बिछावन बदलनेवाले नौकर या झाड़-पोंछ करनेवाले नौकर आ-जा रहे थे। परन्तु उनका ध्यान आवजी-खण्डोजी की ओर नहीं गया।

सभा-कक्ष खाली था। दोनों भाइयों ने एक-दूसरे की ओर देखा। फिर दोनों दीवारों पर चित्रित रामायण और महाभारत की घटनाओं के चित्रों को बड़े ध्यान से देखने लगे। दो चित्रों के बीच में जो खाली स्थान था, वहाँ ढाल, तलवार, बरछे भाले, धनुष-बाण आदि शस्त्रास्त्र शानदार ढंग से सजाये हुए थे।

आवजी दोनों भाइयों में बड़ा था। उसका ध्यान गया क़लमदान की ओर। न जाने उसके मन में क्या आया—अपने भाई के कान में धीरे से कहने लगा, “खण्डू, मैं वह पंख की क़लम हाथ में लेकर लिखकर देखता हूँ। तू ज़रा ध्यान रखना, कोई आता हो तो झट बता देना।”

“ठीक है, तू लिख। मैं देखता हूँ।” खण्डोजी ने उसके साहस का समर्थन किया।

आवजी राजकार्यालय के चिटनीस की उस भव्य बैठक पर जा बैठा और अचरजभरी दृष्टि से देखकर उसने शुतुरमुर्ग़ के पंख से बनी क़लम को उठाया। काँपते हाथों से ही चौकी पर रखे हुए काग़ज़ पर लिखने लगा—‘ॐ नमः शिवाय’। खण्डोजी उसकी ओर कौतुक-भरी दृष्टि से देखने

https://t.me/Sahityajunction

में मग्न था।

इसी समय युवराज सम्भाजी अन्तःपुर के दरवाज़े की ओर से आये और चौखट पर खड़े होकर इन दोनों भाइयों को देखने लगे। परन्तु दोनों तो कहीं और ही खोये हुए थे। इतने में सम्भाजी के साथ आये हुए अन्तोजी, रायाजी, जोत्याजी आदि लोगों में से किसी ने ज़ोर से खँखारा। आवजी का ध्यान टूटा। उसने सामने जो देखा तो मानो उसे साँप सूँघ गया। वह झटके से खड़ा हो गया। मुजरा करना भी भूल गया। हाथ में पकड़ी हुई क़लम भी न जाने कब गिर पड़ी थी। उसके जी में आ रहा था...'बैठक पर से छलाँग लगाकर भाग खड़ा होऊँ।' खण्डोजी की स्थिति कुछ भिन्न थी। अभी कुछ देर पूर्व वह जिस स्तब्ध भाव से चित्र देख रहा था—उसी तरह चित्रवत् बना हुआ वह सम्भाजी को एकटक देखे जा रहा था।

सम्भाजी ने अपने साथ के लोगों को वहीं रोक दिया और वे स्वयं धीरे-धीरे बैठक की ओर बढ़े। अब बैठक पर खड़े आवजी को काटो तो ख़ून नहीं। खण्डोजी ज़रा होश में था, सो उसने लपककर युवराज के पैर पकड़ लिये।

सम्भाजी ने आवजी का लिखा काग़ज़ उठाया। पढ़कर देखा, लिखा था : 'ॐ नमः शिवाय'। लेखन प्रारम्भ करते समय प्रथा के रूप में ये शब्द लिखे जाते हैं, परन्तु आज सम्भाजी को इन शब्दों का निराला ही अर्थ प्रतीत हो रहा था। इन शब्दों से उनके मुख पर हर्ष का भाव खिल उठा। सम्भाजी ने नीचे गिरा हुआ वह पंख उठाया और स्याही की कुप्पी में डुबोया। फिर उन्होंने भी वही मन्त्र स्वयं लिखा : 'ॐ नमः शिवाय'! इस मन्त्र के 'शिव' ने उन्हें आबासाहब की याद दिला दी। महाराज उस समय सूरत की ओर गये हुए थे और वहाँ उन्होंने लूटपाट और तहलका मचाया हुआ था। 'ॐ नमः शिवाय' के नीचे सम्भाजी ने लिखा, 'तुलजा भवानी प्रसन्न!'

सम्भाजी ने क़लम क़लमदान में रखकर एक बार दोनों हस्ताक्षरों को ध्यानपूर्वक देखा। फिर आवजी की ओर देखते हुए बोले, "तुम्हारी लिखावट तो हमसे भी अधिक प्यारी है। कौन हो तुम? यहाँ क्यों बैठे हो?"

आवजी अब ज़रा सँभला, फिर भी बोल नहीं पाया। खण्डोजी ने हिम्मत दिखायी। बोला, "हम चिटनीस जी के पुत्र हैं। इसका नाम है आवजी, मैं हूँ खण्डोजी।"

"बैठो, आवजी, बैठक पर बैठो।" सम्भाजी ने आवजी को चिटनीस की बैठक पर बैठने का संकेत किया। आवजी अभी बैठा ही था कि इतने में बालाजी ही भीतर प्रविष्ट हुए। उन्होंने जो देखा कि आवजी बैठक पर बैठा है, तो उनकी भीतर की साँस भीतर और बाहर की बाहर रह गयी। वह लपके कि आवजी के कानों में फुसफुसाकर उसे हटने के लिए कहें, परन्तु सम्भाजी ने उनका इरादा जानकर उन्हें रोका। हँसकर कहने लगे, "चिटनीस काका, बैठने दो उसे। जैसे तुम्हारी लिखावट बहुत सुन्दर है, वैसे ही इसकी भी है। इन्हें भी पंख की क़लम से लिखना सिखाओ।" सम्भाजी मुड़े और बिलकुल महाराज की ही शैलीवाली चाल से चलते हुए अन्तःपुर में चले गये। उनके अँगरखे की पीठ पर कलाबत्तू के गोल-गोल बूटे बने हुए थे। स्तब्ध खण्डोजी की आँखें उन्हें देखकर चौंधिया-सी गयीं। उस अवस्था में भी उसने युवराज को मुजरा किया।

आज दुर्ग की तोपें दनदना रही थीं। महाराज के स्वागत में तोपें, नगाड़े, डंके और रणसिंगे भी बज उठे थे। आज महाराज एक सफल अभियान के बाद राजगढ़ लौट रहे थे। दूर तक दौड़ लगाकर इस बार उन्होंने मुग़लों का सूरत शहर बेसूरत कर दिया था। वगी-दिण्डोरी के जंगली

https://t.me/Sahityajunction

मैदानों में शाही सरदार इख़लास ख़ाँ और दाऊद ख़ाँ की फ़ौज को नाकों चने चबवाये थे; बरार की एक समृद्ध व्यापारी मण्डी 'कारंजा' नगर उनके ख़ास मावली के प्यार का शिकार बना था। सालेरी के खुले मैदान में दुश्मन को परास्त करके वहाँ के क़िले पर मराठा ज़री पताका का भगवा निशान लहरा दिया था। बागलाण, बरार और ख़ानदेश के ख़ास मुग़लिया इलाक़ों में ऊधम मचाकर वे आज विजयी होकर लौट रहे थे। अभियान पर जाते हुए किलतान-बारदाने की खुरजियाँ-थैलियाँ खाली थीं और अब उन भरी थैलियों के बोझ से घोड़ों की कमरें झुकी जा रही थीं। पहले भी एक बार महाराज इन्हीं सब प्रदेशों में पराक्रम दिखाकर लौटे थे, परन्तु इस बार के पराक्रम की शान निराली ही थी।

प्रतापराव सिलिंबकर, क़िलेदार सुभान जी, बालाजी, अण्णाजी, निलोपन्त—ये लोग राजगढ़ से पालकी लेकर नीचे तलभूमि में आये खड़े थे। महाराज पालकी में बैठकर अपने अभियान के साथी प्रतापराव गुजर, मोरोपन्त येसाजी आदि कई सरदारों के साथ ऊपर क़िले में आ गये।

जिजाऊ और सम्भाजी ने उपरिकोट के मुख्य द्वार तक आकर उनकी अगवानी की। सम्भाजी ने देखा कि इस बार महाराज के मुखमण्डल पर एक निराला तेज झलक रहा था। घोड़ों पर बैठकर निरन्तर दौड़ते रहने से उनके मुख की आभा पके हुए कोकम्बफल जैसी हो गयी थी।

सम्भाजी ने झुककर महाराज के चरणों में प्रणाम किया। उन्हें उठाते हुए महाराज ने उनकी आँखों में झाँका, तो उन्हें अकस्मात् सूरत शहर के एक चित्रकार की याद आ गयी। वे सम्भाजी से हँसकर बोले, "शम्भूराजा, सूरत की ऐन भाग-दौड़ की गड़बड़ी में भी सूरत के एक अँग्रेज चित्रकार ने हमारा चित्र बनाया था। किसी-किसी को चित्रकला में सचमुच कमाल हासिल होता है। तुम हमारे साथ होते तो तुम भी देख पाते।" सुनकर सम्भाजी के मन में उत्तर का भाव आया—'वह गोरा चितेरा कितना भी कुशल क्यों न रहा हो महाराज साहब, परन्तु आपके मुख पर अब जो कोकम्बफलों की-सी आभा खिल रही है, उसे ज्यों-का-त्यों वह भी न उतार पाता!'

महाराज को राजगढ़ में लौटे एक पखवाड़ा बीत गया था। इस बार के अभियान की लूट में जो माल मिला था, उसे वर्ग या श्रेणियों में विभाजित करके भाण्डार में रख दिया गया था। घायल सवारों की चिकित्सा में वैद्यगण व्यस्त थे और पशु-वैद्य घायल घोड़ों का इलाज कर रहे थे।

माघ मास की एकादशी का दिन मावल देश के लिए महत्त्व का था। आज राजगढ़ के सभागृह में 'सम्मान दरबार' आयोजित था। युद्ध में आहत वीरों का दरबार में सम्मान किया जाना था।

ऊँची बैठक पर महाराज, राजमाता जिजाऊ, राजपुत्र सम्भाजी विराजमान थे और नीचे मोरोपन्त, अण्णाजी, बालाजी, येसाजी, प्रतापराव, निलोपन्त, निराजी रावजी, रघुनाथ भट्ट और दत्ताजी त्रिमल विनयपूर्वक खड़े थे। चिक के पीछे रनिवास की रानियाँ सोयराबाई, पुतलाबाई, काशीबाई, महाराज की पुत्रियाँ सखूबाई और अम्बाबाई, पुत्रवधू येसूबाई और धाय माँ धाराऊ बैठी थीं।

राजसभा की प्रथा के अनुसार पहले हल्दी-रोली की चँगेरी महाराज के सामने लायी गयी। महाराज ने उसमें से चुटकी भर 'हल्दी-रोली' राजसभा की अधिष्ठात्री देवी के नाम पर बिखेर दी। फिर 'सम्मान के अधिकारी' आहत वीरों की ओर एक बार दृष्टि फेरकर उन्होंने चिटनीस बालाजी

https://t.me/Sahityajunction

आवजी की ओर देखा। बालाजी ने आज के दरबार का उद्देश्य प्रस्तुत किया :

"मातुश्री माँ साहिबा की असीम कृपा से सरकार बहादुर ने इस बार मुग़लिया प्रदेश में बागलाण, बरार, ख़ानदेश और सूरत तक दूर-दूर तक की मुहिम की। चुने हुए ख़ास पैदल सैनिक और घुड़सवार सेवा में साथ लिये थे। उन्होंने मुहिम के निश्चित उद्देश्य में पूर्ण सफलता पायी है।

"इस मुहिम में जिन वीरों ने वीरता दिखलायी है और जो बहादुर घायल हुए हैं, आज उनका यथोचित सम्मान किया जाएगा। जो सूरमा युद्ध में काम आये हैं, उनके उत्तराधिकारियों को भी आज सम्मानित किया जाएगा। इसीलिए इस 'आहत-सम्मान' दरबार का आयोजन किया गया है।"

"इस कारण श्रीयुत श्रीमान्..." बालाजी एक-एक नाम का उच्चारण करने लगे। महाराज उन सबको कड़े, मुहरें, तोड़े, सम्मान-वस्त्र आदि देकर सम्मानित कर रहे थे। सब सम्मान, उपक्रम समाप्त होने के बाद बालाजी झुककर पाँच क़दम पीछे हटकर खड़े हो गये।

महाराज द्वारा किया गया वीरों का यह महान गौरवपूर्ण सम्मान और महाराज की गुण-ग्राहकता को देखकर सारा दरबार अभिभूत हो गया था। स्वयं महाराज के हाथों से पायी वस्तुओं की ओर वे अभिमानपूर्वक देख रहे थे। कुछ क्षण इसी प्रकार बीते।

महाराज ने जिजाऊ की ओर देखा और मुस्कराहट की एक हल्की रेखा उनके होठों पर लहरा गयी। बुढ़ापे ने जिजाऊ के चेहरे पर झुर्रियों की रेखाएँ अब काफी गहरी चित्रित कर दी थीं। हँसी की यह लहर इन्हीं झुर्रियों में कहीं खो गयी।

महाराज बैठक से उठे और सारे दरबारी जनों को अपने मन का प्रयोजन कह सुनाने लगे, "भद्रजनो, आहत वीरों के सम्मान के लिए आयोजित यह दरबार तो अब समाप्त हो चुका है। अब हमारे खड़े होने का प्रयोजन भिन्न ही है।" महाराज थोड़ी देर रुके और सम्भाजी की ओर एक बार देखकर फिर कहने लगे, "उत्तर देश से मिर्ज़ा राजा जयसिंह आया। उसने हमारे फर्ज़न्द सम्भाजी को वस्त्राभूषण और हाथी देकर सम्मानित किया। उन्हें 'मनसब' दी।

"आगरा में बादशाह औरंगज़ेब ने उन्हें अपने दरबार में रत्नजटित कटार भेंट की। शहज़ादे शाहआलम ने औरंगाबाद में उन्हें हाथी और 'सम्मान-वस्त्र' देकर सम्मानित किया। केवल हम ही एक ऐसे रहे कि आज तक उन्हें कुछ भी देने का अवसर ही नहीं आया। इसलिए माँ साहिबा के और आप सबके सम्मुख हम आज कुछ कहना चाहते हैं।

"आज से हम अपने फर्ज़न्द सम्भाजी को स्वतन्त्र रूप से कामकाज करने का अधिकार प्रदान करते हैं। उन्हें राजमुद्रा, कटार और राजवस्त्र भेंट में रहे हैं," महाराज ने थोड़ी देर ठहरकर अपने मन्त्री और अधिकारियों की ओर एक विशेष उद्देश्यपूर्ण दृष्टि फेरी।

"आज से सम्भाजी इस प्राप्त अधिकार के अनुसार पत्रों पर अपनी मुहर लगा सकेंगे। राजकीय आदेश, निर्णय—क़रारनामा और ख़लीतों पर अपने हस्ताक्षर कर सकेंगे। उनकी ख़िदमत के लिए हम श्री महादेव यमाजी को व्यक्तिगत सहायक मन्त्री के रूप में नियुक्त करते हैं। चिटनीस और मुहर्रिर के कामकाज के लिए वृत्तलेखक परशुराम को नियुक्त करते हैं। राजकार्यालय के व्यवस्थापक श्री धारराव निम्बालकर सभी बातों में उनकी आवश्यक सहायता किया करेंगे। आज से राजकुमार सम्भाजी मुद्रा और अधिकार-सम्पन्न 'युवराज' बन गये हैं।"

https://t.me/Sahityajunction

महाराज का एक निजी राजकर्मचारी एक तबक़ सामने ले आया, जिसमें मुद्रा, कटार, वस्त्र और एक म्यान में बन्द तलवार रखी थी। महाराज ने तलवार उठायी और सम्भाजी से कहा, "युवराज सम्भाजी, दरबार में सामने आओ।" सम्भाजी अत्यन्त विनम्रता से उनके निकट आये। चिक के पीछे से येसूबाई टक लगाये देख रही थीं। उन्होंने देखा, महाराज ने स्वयं अपने हाथों से तलवार के म्यान की भगवे रंग की डोरियाँ युवराज की कमर में बाँध दीं।

फिर महाराज ने सम्भाजी के कन्धे पर तह किये हुए वस्त्र रखे। थाली में से थोड़ी हल्दी-रोली लेकर सम्भाजी के माथे के शिवतिलक पर मल दी।

सम्भाजी ने उन्हें तथा जिजाऊ साहिबा को प्रथानुसार नमस्कार किया। महाराज ने उन्हें ऊपर उठाया और वे सब बाहर जाने लगे। सम्भाजी का एक हाथ जिजाऊ ने और दूसरा महाराज ने थामा हुआ था। दोनों के बीच युवराज सम्भाजी चल रहे थे। भोसले कुल की इस त्रिमूर्ति को मुजरा करने के लिए समस्त मन्त्री और दरबारी लोग कमर तक झुक पड़े।

सारे दरबार में केवल एक स्त्री ऐसी थी, जो झटके से खड़ी हो गयी थी। रानियों की बैठक में बैठी सोयराबाई थीं वे। उन्होंने किसी की ओर न ताका, न निहारा। अपने पीछे खड़ी चन्द्रा दासी से वे बोलीं, "चन्द्रा, चल चलें यहाँ से। महल में हमारे रामराजा अकेले ही हैं!" जाने की हड़बड़ी में वे यह देखने को भी न ठहरीं कि चन्द्रा पीछे आ रही है या नहीं। वे झटपट अपने महल की ओर चली जा रही थीं।

उनकी तेज़ चाल के कारण साड़ी का ज़रीदार झोल नीचे भूमि पर घिसटता जा रहा था। धाराऊ ने यह देखा और उसके माथे पर सिकुड़न आ गयी—सम्भाजी 'युवराज' बन गये। सारा दरबार उन्हें मुजरा करता था, ये रानीजी ग़ुस्से में जलती-भुनती महल की ओर क्यों निकल गयीं?

भवन निर्माण विभाग के प्रधान आबाजीपन्त ने रायगढ़ के क़िले से महाराज को राजगढ़ में सन्देशा भेजा—'महाराज सरकार ने चाहा था, वैसा ही सुन्दर, शानदार गढ़ बनकर तैयार है। महाराज इस रायगढ़ दुर्ग में पधारकर एक बार देख लें। हम कारीगरों की शिल्प कृति को अपनी चरण-धूलि से धन्य करें। निर्माण की किसी त्रुटि अथवा अभाव को बतलावें। हम सेवक सेवा के लिए तत्पर हैं।'

सन्देश मिलते ही महाराज युवराज सम्भाजी और अन्य चुनिन्दा लोगों के साथ रायगढ़ पहुँचे। कारीगरों ने इन्द्र की अलकापुरी के समान रायगढ़ दुर्ग सजाया हुआ था। कलाकारों ने महाराज की कल्पना से भी दस गुना सौन्दर्य इस दुर्ग में भर दिया था। ऐसा प्रतीत होता था—किसी चाँदनी रात में स्वर्ग से कुछ कलाकार इस पर्वत की चोटी पर उतरे हों और सुडौल पत्थरों की विविध मोहक आकृतियाँ बनाकर उड़ गये हों।

रायगढ़ के निर्माण और शृंगार से महाराज अतीव प्रसन्न हुए। वे रायगढ़ वापस आये और राजज्योतिषी तथा कुलोपाध्याय प्रभाकर भट्ट से सलाह की। महाराज के राजगढ़ छोड़कर रायगढ़ के नूतन दुर्ग में प्रवेश करने के लिए एक शुभ मुहूर्त्त खोजा गया। 'महाराज राजगढ़ को नयी राजधानी बना रहे हैं,' यह समाचार स्वयं ही गुंजण-मावल प्रदेश में फैल गया। श्रद्धालु कुर्मी-किसान प्रजा गुट बना-बनाकर राजगढ़ आने लगी—भोसले कुल के राजपरिवार का दर्शन पाने।

कहा जाता है कि मधुमक्खियाँ निकट आ रहे भूकम्प की आहट पा लेती हैं और तुरन्त ही कपार कोटरों में लटकते उनके छत्ते में हलचल मच जाती है। राजगढ़ के सभी निवासियों के मनों

https://t.me/Sahityajunction

ने भी ऐसी ही एक आहट पा ली थी—'महाराज हमारे राजगढ़ को सूना बनाकर जा रहे हैं।' सबके मन घोर उदासी में डूब गये।

राजधानी बदलने का उपक्रम प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले कोषागार के हीरे-जवाहरात भरे पिटारों पर मुहर लगायी गयी और वे पिटारे सशस्त्र सैनिकों के पहरे में आगे भेज दिये गये। सम्भाजी के मन में मुहरबन्द होकर जो स्मृति-रूप हीरे-मोती थे, किन्हीं अज्ञात हाथों ने आकर उस स्मृतिकोष की मुहर तोड़ डाली। वे गतकाल की स्मृतियाँ दोहराते हुए कभी तैरने के तालाब पर, कभी मलखम्भ के अखाड़े के पास, कभी कालेश्वरी देवी के मन्दिर की घुमटी में तो कभी होली के मैदान में कितने ही देर अकेले घूमने लगे।

दुर्ग के दफ़्तरखाने के काग़ज़ों का गट्ठर मावले लोग सिरों पर ढो-ढोकर तलभूमि में ले जाने लगे। साथ ही सम्भाजी के मन के दफ़्तरखाने के न जाने कितने हस्तलिखित काग़ज़ क़िले की तेज़ हवा ने इधर-उधर उड़ा दिये। वे कभी क़िले के मुख्य चौक में, तो कभी संजीवनी माची पर, कभी सुरंग की सीढ़ियों पर, तो कभी भगवा 'ज़री-पताका' के चौथरे पर और कभी दशहरा चौक के खुले आँगन में बावले-से बनकर ख़ामोशी से घूमने लगे।

सेविकाओं ने वस्त्रागार के ज़रीदार बहुमूल्य वस्त्रों की गठरियाँ बाँध लीं। परन्तु इसे देखकर सम्भाजी के अन्तर में छुपे आगार में कितनी ही बीती घटनाओं के वस्त्र लहराने लगे। वे बस अकेले घूमते रहते थे, कभी माँ साहिबा के ख़ासमहल में, कभी आबासाहब के बैठकवाले महल में, कभी देवमन्दिर में विराजमान अष्टभुजा जगदम्बा के सम्मुख और कभी रनिवास के झूलते-लहराते परदों से उनकी यादें जा टकराती थीं।

शस्त्रागार के भाले, तलवार, कटार, ढाल आदि शस्त्रास्त्र घोड़ों की पीठ पर लाद दिये गये। सम्भाजी के मन-रूपी शस्त्रागार में विचारों के शस्त्र परस्पर टकराकर झनझना उठे।

अब यह दुर्ग हमें छोड़ जाना है। मन की विषण्ण भावपूर्ण दशा में हमने यहाँ की वायु के कानों में अपने दिल की बातें कही हैं, यहाँ की हर दीवार और पत्थर पर महाराज साहब और माँ साहिबा की साँसों की वायु जमी हुई है। सायंकाल के समय यहाँ की झाड़ी-झुरमुटों में पक्षियों के मोहक कलरव ने हमारे मन पर छाप छोड़ी है। जब पास कोई न था, तब मूक रहकर भी हमने जिससे भरपूर जी की बात कही है वह गढ़—यह राजगढ़ अब क्या छोड़ जाना होगा?

प्रयाग के दिन का सूरज गढ़ की काली-ऊँची चट्टानों पर चढ़ता हुआ ऊपर आ गया। कुमार सम्भाजी ने नित्यवत् स्नानागार में इस गढ़ में अन्तिम बार स्नान किया। नहाकर लोटा नीचे रखते हुए वे सोचने लगे—'इस बहते पानी के साथ ही न जाने कितना कुछ बहा जा रहा है।'

राजसी वस्त्र पहनकर वे दर्शनों के लिए जिजाऊ के महल में आये। वहाँ धाराऊ माँ साहिबा से सिसक-सिसककर कह रही थी, "माँ जी, अब मुझे अपने देहात को, कापूरहोल को, वापस जाने दो। अब मेरा उस नये क़िले में क्या काम है? यह स्थान कुछ ठीक था। कभी इच्छा हुई, तो यहाँ से गाँव निकट था। वह क़िला न जाने कहाँ कितनी दूर है!"

परन्तु उसे जिजाऊ ऐसा करने की आज्ञा देने को तैयार नहीं थीं और तरह-तरह से उसे समझा-बुझा रही थीं। धाराऊ उनकी बातों को सुन तो रही थी पर सिर्फ़ कानों से। बातें उसके हृदय को समझा नहीं पा रही थीं। आख़िर उसका लाल सम्भाजी आगे बढ़ा। वे बोले, "धाराऊ, तो हमें भी ले चल अपने साथ कापूरहोल को।"

https://t.me/Sahityajunction

इस बात ने धाराऊ को हिला दिया, “मेरे लाल, तेरे साथ तो नरक में भी जाने को तैयार हूँ मैं। मेरा हृदय तुझमें उलझ गया है, मेरे प्यारे।” और धाराऊ रायगढ़ जाने को राजी हो गयी।

जिजाऊ सम्भाजी को साथ लेकर राजसभा-कक्ष की ओर जाने लगीं। महाराज भी अपने महल से निकलकर वहाँ आ गये। वह त्रिमूर्ति सभागृह की बैठक पर आयी। कक्ष में इतनी भीड़ थी कि तिल रखने की जगह न थी। भीड़ थी, पर आवाज़ नहीं थी। सब ओर शान्ति छायी हुई थी।

महाराज, जिजाऊ और सम्भाजी बैठ गये। हल्दी-रोली की डलिया सामने आयी और महाराज ने चुटकी भर रोली लेकर हवा में बिखेरी। आज उनकी उँगलियाँ भी काँप उठीं-‘आह, यह इस बैठक की आख़िरी चुटकी है!’

पहले ऐसी प्रथा तो न थी परन्तु आज डलियावाले ने हल्दी-रोली की वह डलिया जिजाऊ और सम्भाजी के सामने भी रख दी। आज उन दोनों ने भी चुटकी भर रोली लेकर माँ भवानी की कृपा-याचना के लिए बिखेर दी। हल्दी-रोली के कण हवा में उड़ने लगे—साथ ही मनों की दबी भावनाओं के, आज तक भोगे भले-बुरे की स्मृतियों के कण भी सर्वत्र बिखर गये।

आज की इस बैठक में राजकुल की इन तीनों विभूतियों ने गढ़ के सभी लोगों को मुहरें, वस्त्र, शस्त्रादि देने का निश्चय किया था। उन लोगों ने आज तक सेवा की थी, उन दुर्गवासियों का तो यह अधिकार ही था। महाराज के लिए भी वह मात्र रिवाज़ नहीं था—पीछे रहने वालों को सन्तुष्ट करके जाना ही उचित था।

इस सभा-गृह की बैठक से अन्तिम दान का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इसके बाद रनिवास की ओर सन्देशा भेजा गया। दुशाले ओढ़े हुए रानियाँ और अन्य स्त्रियाँ अन्तःपुर से बाहर निकलीं और पहले से ही तैयार डोलियों में जा बैठीं।

सबके बाद जिजाऊ डोली में बैठीं। अचानक घिर आये घनघोर बादलों से जैसे आकाश भर जाता है उसी प्रकार उनका हृदय भर आया। फिर भी ऊपर से प्रकट न करती हुई वे केवल इतना ही कह सकीं, “जगदम्बे! हे जगदम्बे।” डोलियाँ दुर्ग के नीचे उतरने लगीं। धाराऊ डोली के साथ-साथ पैदल चल रही थी। उससे न रहा गया—उसने झुककर थोड़ी-सी धूलि उठायी और अपनी सूती साड़ी के छोर में बाँध ली।

मन्त्रिगण क़िलेदार सुभानजी, सिलिमकर आदि के साथ महाराज और सम्भाजी उस सुरंग की ओर जा रहे थे, जो संजीवनी माची की ओर जाती थी। चलते-चलते महाराज को सुवेला माची का शिखर दिखाई दिया। वे एकदम रुक गये। महाराज के रुकने का कारण अन्य कोई भी नहीं जान सका—परन्तु महाराज को याद हो आया था—इसी माची पर उनकी बड़ी रानी, सम्भाजी की माता सईबाई की चिता जली थी। महाराज के नेत्र गीले हो आये और हाथ अपने आप सम्भाजी के कन्धे पर आ गया।

सुरंग का मुख निकट आया। मुख की शिला को प्रहरियों ने दूर हटाया। महाराज तथा सम्भाजी उसमें उतर गये। एक-एक सीढ़ी उतरते समय महाराज एकाएक रुक गये। उन्होंने सम्भाजी से पूछा, “तुम्हें याद है, एक बार तुमने हमसे पूछा था कि कितनी लम्बी है यह सुरंग? कब ख़त्म होगी यह?”

https://t.me/Sahityajunction

“जी हाँ, याद है। और हमें आपका उत्तर भी याद है—सुरंगें कभी ख़त्म नहीं होतीं, रास्ता चलते ही जाना पड़ता है। रुकना नहीं होता।”

सुरंग से निकलकर वे पिता-पुत्र संजीवनी माची पर आये। सारी माची पर लोगों की भीड़ जमा थी। यहीं पर पालकियाँ तैयार खड़ी थीं, जो महाराज को क़िले से नीचे ले जानेवाली थीं।

फिर महाराज संजीवनी माची के ध्वज के चौथरे पर आये। वहाँ ऊँचे ध्वज-दण्ड पर लहराने वाली ‘ज़री पताका’ को, मराठों की ध्वजा को, उन्होंने गरदन उठाकर एक बार देखा। फिर महाराज ने थोपटे से कहा, “सिदोजी थोपटे, आज पालकी में बैठकर नीचे उतरने को जी नहीं चाहता। आज हम सबके साथ पैदल ही क़िले से नीचे उतरेंगे।”

देवदर्शन करके महाराज और सम्भाजी संजीवनी माची से चलकर पाली दरवाज़े की ओर बढ़ने लगे। पीछे-पीछे क़िले के सैकड़ों निवासी चल रहे थे।

सब पाली दरवाज़े तक आये। दरवाज़े के नक्क़ारख़ाने का नगाड़ा बज उठा। महाराज और सम्भाजी भी आज नगाड़े को ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि नगाड़े की लय और ठेके में आज एक लय, एक गति नहीं थी। बीच-बीच में लय टूटती थी, एक आध ठेका खो जाता था।...महाराज और युवराज सम्भाजी भी ज्योंही पाली दरवाज़ा पार करके आगे निकले, नक्क़ारचियों ने अपने हाथ की डण्डियाँ नीचे रख दीं और वे भी सीढ़ियाँ उतरने लगे।

मावलों की भीड़ के साथ-साथ महाराज और युवराज नीचे तलहटी में आये। महाराज ने क़िलेदार सुभानजी के हाथ में श्रीफल और बीड़ा देते हुए कहा, “क़िलेदार माली जैसे अपने बग़ीचे की रखवाली करता है ऐसे इस दुर्ग की देख-सँभाल तुम्हीं करना। हम चलते हैं।” महाराज ने अपने गले से मोती का कण्ठा उतारा और सुभानजी के हाथों में रख दिया।

सुभानजी ने महाराज के चरणों में जब सिर रखा, तो एक छोटे बालक के समान फफक-फफककर रो उठा। महाराज ने उसे उठाया और गले से लगा लिया। फिर कहने लगे, “धीरज न खोओ सुभानजी। यह संसार है। यहाँ जो-जो हमें प्रिय है, उसे कभी-न-कभी छोड़ना होता है।”

महाराज और सम्भाजी के सामने खड़ा था ऊँचा विशाल शिलामय देह का एक कृष्णवर्णीय देवता। दोनों ने उस शिला-गिरि-देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। यह देखकर पास खड़े मावलों के हृदय मानों फट पड़े।

आज हृदय की भावनाओं का वेग मावली प्रजा रोक न सकी। इससे पहले भी उनके प्रिय महाराज विदा होकर कई बार दूर गये थे। सूरत की मुहिम पर, मिर्ज़ा राजा जयसिंह से मिलने, अफ़ज़ल ख़ाँ की भेंट के समय, औरंगज़ेब के दरबार में परन्तु तब प्रजा इतनी व्याकुल नहीं हुई थी, आज तो मावली प्रजा बावली-सी हुई जा रही थी। मावले लोगों की पगड़ियाँ अपने स्वामी के चरणों पर झुकने लगीं।

ज़ीन कसे हुए दो सफ़ेद घोड़े वहाँ प्रतापराव ने तैयार रखे थे। महाराज ने सम्भाजी को हाथ का सहारा देकर एक घोड़े पर बैठाया और फिर दूसरे घोड़े पर स्वयं सवार हो गये। महाराज की पीठ राजगढ़ के पर्वत और दुर्ग की ओर हुई। राजगढ़ को यदि वाणी मिल पाती तो! तो शायद आज वह भी महाराज से कहता, ‘स्वामी, तनिक ठहरें। थोड़ी चरण-धूलि मैं भी ले लूँ।’ और फिर शायद वह गढ़ भी अपनी सुवेला और संजीवनी माचियों के पंख फैलाकर ऊँचे आकाश में उड़

https://t.me/Sahityajunction

जाता।

अब चल पड़े वे दो पिता-पुत्र। एक चक्रवर्ती संन्यासी अपनी कई स्मृतियों के पद-चिह्न राजगढ़ पर छोड़कर चला जा रहा था, दूसरा देवी-भक्त बालक स्मृतियों की कई वस्त्र-ज्योतियाँ जलाकर आज दूर जा रहा था।

रायगढ़ निकट आ रहा था। नीचे तलभूमि में पाचाड़ नामक बस्ती थी। उसके पास ही शिल्पकार आबाजीपन्त ने माता जीजाबाई के लिए कई खण्डोंवाली एक हवेली बनवायी थी। सारे राजपरिवार ने उस रात इसी हवेली में विश्राम किया। पाचाड़, महाराज की अस्थायी सेना का एक थाना था। गढ़ के लिए आवश्यक सामग्री की ख़रीद के लिए यही एक निकटवर्ती व्यापारी बस्ती थी।

भोर हुई। पाचाड़ की हवेली के आँगन के चबूतरे पर से सामने सारा रायगढ़ दिखाई दे रहा था, मानो किसी सरोवर के बीच एक कृष्णकमल खिल उठा हो!

जिजाऊ इस चबूतरे पर खड़ी होकर आँखों पर ज़ोर देकर रायगढ़ को देखने का प्रयत्न कर रही थीं। आँखों से कानों तक झुर्रियों की रेखाएँ और अधिक खिंच आयीं। ऊपर देखने के प्रयत्न में उनके सिर का आँचल थोड़ा पीछे सरक गया था। महाराज ने देखा—जिजाऊ के बालों में बुढ़ापे की सफ़ेद रेखाएँ अब साफ-साफ झलकने लगी थीं।

“माँ साहिबा, वह जो सामने दीख रहा है, वह है ‘ख़ूबलढ़ा’ बुर्ज़। उसकी सीध में जो दिखाई देती है—वह है पश्चिमी माची।” महाराज ने दायें हाथ की तर्जनी से संकेत करते हुए बताया। पास खड़े सम्भाजी भी बुर्ज़ और माची को ध्यान से देख रहे थे।

“राजा, हमारे लिए यह अलग हवेली क्यों बनवायी तुमने?” जिजाऊ ने सामने देखते हुए पूछा। महाराज गम्भीर हो गये। जिजाऊ के सूने भाल की ओर देखकर उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

“माँ साहिबा, हम भला आपके लिए क्या कर सकेंगे? हममें वह शक्ति कहाँ? हमारी चमड़ी छीलकर आपके पाद-त्राण बनाने से भी हम आपके ऋण से उऋण न हो सकेंगे। आपने हमसे आज तक कभी कहा नहीं, परन्तु हम जानते हैं आपके कष्ट को। आपके महल के पास से जाते समय हमने कई बार आपके दमे का और खाँसी का दौरा सुना है। माँ साहिबा, आपसे गढ़ की उँचाई की ठण्डी हवा सहन नहीं हो पाएगी। इसी कारण हमने यह हवेली बनवायी है।” कहकर महाराज मौन हो गये।

सम्भाजी उन्हें एकटक देख रहे थे।

“हमने सामने का बुर्ज़ और माची आपको क्यों दिखाये, यह आपने पूछा नहीं माँ साहिबा!” महाराज ने फिर से बुर्ज़ की ओर उँगली उठाकर पूछा।

“हम कुछ नहीं समझीं। क्या कोई विशेष बात है?” जिजाऊ ने महाराज के शिवतिलक की ओर देखते हुए पूछा।

“माँ साहिबा, आप यहाँ नीचे हवेली में रहेंगी। हमें तो ऊपर दुर्ग में ही रहना होगा। आपके दर्शन किये बिना तो अन्न का ग्रास और पानी का घूँट भी हमारे गले से नीचे नहीं उतरता। इस कारण...इस कारण हमने कारीगर इन्दुलकर से कहकर यह हवेली ऐसी तिरछी बनवायी है कि

https://t.me/Sahityajunction

जब आप यहाँ नीचे के चबूतरे पर खड़ी हों तो हम ऊपर 'ख़ूबलढ़ा' बुर्ज़ पर आकर आपके दर्शन प्रतिदिन पा सकें। लोग पूर्व दिशा के उदीयमान सूर्य को नमस्कार करते हैं, हम रायगढ़ की पश्चिम दिशा की इस हवेली में रहनेवाले सूर्य का दर्शन करेंगे!"

महाराज बौराये-से माची की ओर देख रहे थे और जिजाऊ अश्रुपूरित नयनों से अपने 'शिवबा' को देख रही थीं। सम्भाजी ने भी एक बार ऊँचे रायगढ़ को निहारा। उसके मन ने कहा—'ऊहुँऽऽ, रायगढ़ भी महाराज साहब के सामने बौना है। महाराज की कमर की तलवार तक भी तो वह गिरि पहुँच न पावेगा!'

अगले दिन प्रातःकाल शुभ मुहूर्त्त में पालकियाँ और डोलियाँ पाचाड़ की हवेली के बाहर निकलीं। सुबह के ठण्डे समय से ही कहारों ने पालकियाँ-डोलियाँ लेकर रायगढ़ के पर्वतीय दुर्ग पर चढ़ना शुरू किया।

सबसे पहले फूलों का एक बाग़ आया। पालकियाँ-डोलियाँ यहाँ कुछ देर के लिए रुक गयीं। बाग़ का माली मुजरा करते हुए सामने आया। जिजाऊ, सम्भाजी और रानियों सहित महाराज उस बाग़ में प्रविष्ट हुए। गुलाब, कदली, बेला, मावल, सेवती, गुलदाऊदी, अनन्त आदि विविध रूप-रंग के फूलों की मिली-जुली सुगन्धि से सारा बाग़ महक रहा था। महाराज एक गुलाब के पौधे के पास ठहर गये। वे उसे मोहभरी दृष्टि से निहारने लगे। वह पौधा भी जैसे अपने पुष्प-नेत्रों से राज-पुष्पों को देखने में मग्न था।

महाराज ने एक फूल की अधखिली कली को तोड़कर हाथ में लिया और माँ साहिबा को देते हुए बोले, "यह उत्तरी मुग़लिया नमूने का गुलाब है, माँ साहिबा।" पुत्र ने दिखाया इसलिए माँ साहिबा ने एक बार उस फूल की ओर देख लिया, किन्तु एक दुःख-भरी छाया उनके मुख पर छा गयी। वे महाराज से कहना चाहती थीं—'हाँ, मुग़लिया नमूना देखा है हमने राजा, जीवन में। बहुत निकट से देखा है। यह सुन्दर ज़रूर है, पर काँटे भी इसके तेज़ हैं।'

जिजाऊ ने वह फूल सम्भाजी के हाथ में दे दिया। सम्भाजी को भी याद आयी—'ऐसा ही गुलाब एक बार हमें शहज़ादे ने दिया था।'

बग़ीचे का भ्रमण करके सारा राजपरिवार आगे की चढ़ाई पर निकल पड़ा। क़िले का पहला दरवाज़ा आया। यह 'छोटा दरवाज़ा' पत्थरों से बना पक्का मज़बूत था। यहाँ कहार रुक गये। महाराज और युवराज नीचे उतर पड़े। आबाजीपन्त ने आगे बढ़कर विनम्रता के साथ एक श्रीफल महाराज के हाथों में दे दिया। महाराज ने क़िले की पहले दरवाज़े की देहली पार करने से पूर्व वहाँ नारियल फोड़कर पूजा की और नारियल के दोनों आधे भाग दोनों हाथों से दायें-बायें फेंक दिये।

फिर महाराज ने जिजाऊ को हाथ का सहारा देकर उस देहली को पार करने में सहायता की। जिजाऊ के बाद महाराज और सम्भाजी ने देहली पार की। क़िले का वह कमानदार दरवाज़ा देखकर जिजाऊ अतीव हर्षित हुईं।

यहाँ तक दुर्ग की चढ़ाई का पहला पल्ला समाप्त हुआ। आगे दूसरा शुरू हुआ। कहारों के माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। थकावट के मारे वे बीच-बीच में थोड़ी देर पालकियों

https://t.me/Sahityajunction

को टेकान लगाकर दम ले लेते थे।

आगे अनाज की कोठियाँ आयीं। फिर पहरे की पहली चौकी आयी। इसे पार करते ही आया—'महादरवाज़ा'। दरवाज़ा क्या था, मानो रायगढ़ वास्तु-पुरुष बनकर अपना जबड़ा फैलाकर सामने खड़ा था। महाराज ने महादरवाज़े की पूजा की। इस दरवाज़े के दोनों ओर ऊँचे मज़बूत बुर्ज़ थे और वहाँ से दोनों ओर एक ऊँची चहारदीवारी दूर तक चली गयी थी। इस महादरवाज़े के ऊपर नक्कारख़ाना बनाया गया था।

भोसले राजकुल इस दरवाज़े से गुज़र रहा था और ऊपर क़िले की नौबत पहली बार बज रही थी। महाराज जिजाऊ और सम्भाजी पर ऊपर से सोने की मुहरों की वृष्टि की गयी।

यहाँ से आगे क़िले की एकदम सीधी खड़ी चढ़ाई थी। महाराज और युवराज पालकी से उतरकर जिजाऊ की डोली के दोनों ओर पैदल चलने लगे। सब लोग 'हाथी के हौज़' तक आये। यहाँ से दूर पर दीख रही थीं—द्वादशकोण वाली और पाँच मंज़िलों वाली दो ऊँची मीनारें। मानो रायगढ़ अपने दो हाथ ऊँचे उठाकर आकाश से दो बातें कर रहा हो!

इसे पार करते ही आया विशाल 'गंगासागर' तालाब। जिजाऊ की डोली यहाँ ठहर गयी। महाराज ने उनका एक हाथ थामा, दूसरे हाथ को सम्भाजी ने सहारा दिया और दोनों उन्हें इस गंगासागर के किनारे ले गये। तीनों ने झुककर सरोवर के जल में देखा—दो ऊँची मीनारों का, ऊँचे विशाल नील गगन का और भोसले कुल की त्रिमूर्ति का प्रतिबिम्ब गंगासागर के जल में पड़ रहा था। उस नीचे सरोवर में आज कितनी ऊँचाई समा गयी थी! तीनों इस जल-सौन्दर्य को निहारते हुए मौन खड़े थे।

अकस्मात् जल में प्रतिबिम्बित ये सभी छायाएँ बिखर गयीं। किनारे के आम्र-वृक्ष की शाखा पर एक कौडिल्ला जलपक्षी बैठा था। काफी देर से ताक लगाये, मुहरा बाँधे, वह बैठा था। अब एकदम उसने पानी में सीधा गोता लगाया! सरोवर के जल में लहरें उठने लगीं।

पक्षी के तेज झपट्टे से सम्भाजी का ध्यान टूटा। उन्होंने देखा—कौडिल्ला पानी से बाहर निकला। इस छोटे-से जल-पक्षी ने चोंच में मछली पकड़ ली थी। सम्भाजी उसे देखते रहे। वह उड़कर शाखा पर जा बैठा, अपनी गरदन को उसने एक झटका दिया। सम्भाजी को इतना ही दिखाई दिया कि एक चाँदी की चमचमाती तार-सी धूप में चमकी और फिर कोडिल्ले की चोंच में समा गयी। मछली अभी थी, अभी चली गली।

कौडिल्ला फिर सीटी की-सी आवाज़ में चिल्लाया। शायद जी भर गया था उसका। परन्तु सम्भाजी को इस ध्वनि ने व्याकुल कर दिया।

यह राजपरिवार दो मीनारों से सुशोभित सदर दरवाज़े तक आया। यह सदर दरवाज़ा ही क़िले के मुख्य भाग—उपरिकोट का प्रवेश-द्वार था। यहाँ हिरोजी इन्दुलकर आगे बढ़ आया और उसने महाराज के हाथ में पाँव बाँधा हुआ एक काला मुरग़ा दिया। महाराज ने दरवाज़े के आगे इसे तीन बार घुमाया और दूर फेंक दिया।

हाँ, हाँ, सच कहा जाता है—चूने पत्थर से बनी इमारतों में भी स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट शिशु के समान एक परिपुष्टता, एक निर्माण का लुभावना सौन्दर्य होता है। इस पत्थर की कठोरता को भी किसी की बुरी नज़र ज़रूर लगती है। इसके लिए नज़र उतारना ठीक ही तो है।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज ने उपरिकोट के सदर दरवाज़े की पूजा की। उस पर मुहरें न्यौछावर कीं। माता की चरण-धूलि से अधिक पावन और क्या है इस धरती पर? वही चरण-धूलि उपरिकोट को पावन करे, इसलिए महाराज और युवराज ने जिजाऊ को बीच में करके उनकें दायें-बायें रहते हुए सदर दरवाज़े की देहली को लाँघकर उपरिकोट में प्रवेश किया।

उपरिकोट में भी एक दरवाज़ा था—पालकी दरवाज़ा। इसे पार करते ही पत्थरों से बनी इमारतों का विशाल भाग सामने दिखाई देने लगा, मानो किसी ने स्वप्न-नगरी का द्वार ही खोल दिया हो।

यहाँ एक ओर था 'सातमहल'। एक के साथ एक महल जोड़कर ही इसे बनाया गया था। सुडौल, घड़े हुए पत्थरों से इसकी बनावट हुई थी—ऊपर चूने की पक्की छत थी। इस छत के ऊपर की मुँडेर के निकट खड़े होने से भीतर का चौक दिखाई देता था। इस चौक में पत्थरों से छोटी-सी नहर बनायी गयी थी, जिसमें मछलियाँ क्रीड़ा कर रही थीं।

साथ-साथ लगी हुई इन सात इमारतों को देखकर सम्भाजी ने पूछा, "ये महल किसके लिए हैं?"

"ये रानियों के महल हैं, शम्भूराजा।" महाराज ने उत्तर तो दिया परन्तु उनका गला भर आया। शायद उन्हें अपनी स्वर्गवासी रानी सईबाई की याद आ गयी। 'आठवाँ' महल क्यों नहीं बनाया गया? या यूँ कहना उचित होगा—पहला महल क्यों नहीं बनाया गया? सईबाई उनकी बड़ी रानी थी न! परन्तु उनका पत्थरों का महल न सही, महाराज के मन-मन्दिर में तो वे आज भी निवास करती थीं।

फिर सबने वह 'ख़ासमहल' अथवा 'राजप्रासाद' देखा, जो जिजाऊ, महाराज और सम्भाजी के लिए विशेष रूप से बनाया गया था। इसे देखने के बाद महाराज सिंहासन चौक में आये। यह राजदरबार का स्थान था। सिंहासन से लेकर सामने के शानदार नक्क़ारख़ाने तक बीचोंबीच पाँच हाथ चौड़ी जगह खाली रखी गयी थी और इस जगह पर सुन्दर ग़लीचे बिछाये हुए थे। इन ग़लीचों की लम्बी पट्टी के मध्य में एक छोटा हौज़ बनाया गया था, जिसमें फव्वारे बने हुए थे। समस्त राजपरिवार इस फव्वारे के चारों ओर एकत्रित हो गया। हिरोजी ने सबको फव्वारों के निर्माण की कुशलता समझायी। सम्भाजी पानी की उछलती-कूदती फुहारों को देखने में अपने-आप को भूल गये थे। नक्क़ारख़ाना इतना ऊँचा और ख़ूबसूरत बनाया गया था कि कारीगरों की प्रशंसा किये बिना न रहा जाय। इसे पार करके महाराज, जिजाऊ और युवराज दरबार के बाहर के खुले प्राँगण में आये।

यहाँ जिजाऊ के लिए पालकी तैयार रखी गयी थी। महाराज, युवराज, मोरोपन्त, अण्णाजी, बालाजी, प्रतापराव, इन्दुलकर, आबाजीपन्त आदि जन पालकी के चारों ओर चल रहे थे। पालकी के पीछे राज्ञीवर्ग, येसूबाई, सखूबाई, धाराऊ आदि स्त्रियाँ चल रही थीं। जिजाऊ अब जा रही थी—दुर्ग देवता के दर्शनों के लिए। श्री 'जगदीश्वर' के दर्शनों के लिए।

जगदीश्वर का मन्दिर आगे कुछ दूरी पर था। उसके पूर्व 'होली का मैदान' था। आबाजीपन्त ने सबको बताया कि होली के त्यौहार पर होली जलाने और बनाने आदि की यहाँ कैसे सारी व्यवस्था की गयी है।

इसके बाद थी व्यापारी-हाट। यहाँ मार्ग के दोनों ओर पंक्ति में दुकानें बनाई गयी थीं। दुकानें

https://t.me/Sahityajunction

ऊँचे चबूतरों पर थीं, ताकि घुड़सवार सैनिक घोड़े पर बैठकर भी ख़रीद-फ़रोख्त कर सकें। अभी यह हाट लगी नहीं थी। हाट लगाने का ठेका प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यापारी नागप्पा श्रेष्ठी अपने सेवकों सहित उस समय वहाँ उपस्थित था। उसने आगे बढ़कर जिजाऊ की पालकी पर सोने की मुहरें बरसायीं और उनकी चरणधूलि मस्तक से लगायी।

जिजाऊ की पालकी मन्दिर के निकट आकर ठहर गयी। मन्दिर का सुनहरा कलश धूप में झिलमिला रहा था। महाराज ने जिजाऊ को हाथ का सहारा देकर पालकी से उतारा। सम्भाजी ने जिजाऊ के एक हाथ को सहारा दिया हुआ था। एक ओर पुत्र और दूसरी ओर पौत्र, मध्य में राजमाता जिजाऊ—मानो शिवलिंग पर स्वयं को समर्पित करने की कामनावाला त्रिदल बेलपत्र ही था वह।

तीनों ने झुककर मन्दिर की प्रस्तर निर्मित सीढ़ी का स्पर्श किया और वे मन्दिर के पहले चौक में प्रविष्ट हुए। पीछे-पीछे राजस्त्री समूह तथा मन्त्री थे।

गर्भगृह में समई का मन्द-मन्द प्रकाश फैला हुआ था। शिवलिंग फूलों से आधा ढँका हुआ था और ऊपर से अभिषेक पात्र की जलधारा टपक रही थी। महाराज आगे बढ़े। उन्होंने घण्टे को टंकोर दी। सम्पूर्ण देवालय और प्रांगण उस घण्टा-नाद से भर उठा। आगे बढ़ने के लिए महाराज ने पग बढ़ाया ही था कि नीचे भूमि पर पत्थर से बने एक कछुए को देखकर उन्होंने आगे बढ़ा पग पीछे खींच लिया।

“पन्त, हम हिन्दुओं के मन्दिरों में प्रवेश के स्थान पर ये प्रस्तर निर्मित कछुए के बनाने का क्या प्रयोजन होगा? तुम्हारा क्या विचार है?” महाराज ने पीछे खड़े मोरोपन्त से पूछा।

“जी, प्रभु,” कहते हुए मोरोपन्त आगे बढ़े। जिजाऊ, सम्भाजी आदि सभी जन उस कछुए की ओर देख रहे थे। अपनी पगड़ी दायें-बायें हिलाते हुए मोरोपन्त ने उत्तर दिया, “प्रभु, मैं कुछ निश्चित रूप से नहीं कह सकता। परन्तु सम्भवतः यह विष्णु के कूर्मावतार का प्रतीक हो।”

“हमारा विचार कुछ भिन्न ही है, पन्त। कछुवा अपने अंगों को भीतर खींच लेता है। इसी प्रकार मन्दिर में प्रविष्ट होने से पूर्व भक्त को अपने मन के काम, क्रोध, लोभ, मत्सर आदि मनोविकारों को दूर हटा देना चाहिए। मन को संयमित कर लेना चाहिए, यही प्रेरणा, यह कछुवा भक्तों को देता है। किन्तु हम भक्तगण भी, भूले से ही क्यों न हो, इस कछुए की पीठ पर पाँव रख देते हैं।” महाराज भावुक होकर बोले जा रहे थे।

जगदीश्वर के दर्शनों के पश्चात् जिजाऊ समस्त राजस्त्रियों के साथ उपरिकोट में आ गयीं। महाराज सम्भाजी को साथ लेकर दुर्ग के शेष भागों को देखने निकल गये।

काला हौज़, पहाड़ का खड़ा कगार, ‘भवानी-कगार,’ पानी के ‘बारह हौज़,’ बारूद के गोदाम, मन्त्रियों के निवास-स्थान—‘मन्त्री-बाड़ी’, कुशावर्त तालाब, शिरकाई देवी का मन्दिर आदि छोटे-बड़े सब स्थानों को देखकर महाराज अन्त में युवराज के साथ नक्कारख़ाने की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचे। यह रायगढ़ दुर्ग की सबसे ऊँची जगह थी। पास ही ध्वजवेदी पर भगवा झण्डा ‘ज़री-पताका’ हवा में लहरा रहा था और उसकी फड़-फड़ आवाज़ सबको स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

“वह देखो तोरणा दुर्ग...” महाराज ने पूर्व दिशा की ओर संकेत करते हुए युवराज सम्भाजी

https://t.me/Sahityajunction

को दिखलाया। “वह...वह जो दूर दीखता है, वह है राजगढ़।”

सम्भाजी हुंकारी भरते जा रहे थे। तेज़ पहाड़ी हवा के कारण दोनों के अँगरखों के छोर उड़ रहे थे, टोप की मोती-लड़ियाँ ज़ोर-ज़ोर से हिल रही थीं।

दूर-दूर तक फैली हुई विशाल सह्याद्रि पर्वत शृंखला की अनेकानेक चोटियाँ चारों दिशाओं में दिखाई दे रही थीं। परन्तु जैसे एक चतुर गड़रिया दूसरे की सैकड़ों भेड़ों के गल्ले में घुसा हुआ अपना मेमना झट से पहचान लेता है, ऐसे ही महाराज उन काले पाषाणों की बिखरी हुई चोटियों में से अपने दुर्ग गिनगिन कर बताने लगे। उनकी तर्जनी तेज़ी से घूम रही थी :

“वह है सोनगढ़, वह चाम्भारगढ़, वह घोसला दुर्ग, यह जो निकट है, वह है लिंगाणा, यह काँगोरा, यह कोंकणदिवा दुर्ग, वह तलेगढ़। शम्भूराजा, यह रायगढ़ है न सबके बीच, इसे भी तुम देवी भवानी का एक निस्सीम भक्त ही समझो। चारों ओर जो दुर्ग फैले हैं ना, वे उसके गले में पहनी हुई कौड़ियों की माला हैं। नीचे की घाटियों में गान्धारी और काल नामक नदियाँ बह रही हैं, उन्होंने जैसे अपने शुभ्र, स्वच्छ जल से देवी की पूजा के लिए सफ़ेद चावलों का चौक पुर दिया है। इस रायगढ़ की देह पर से निर्झर उछलते-कूदते नीचे गिर रहे हैं, उनकी ध्वनि ही देवी के स्तुतिगान के लिए इकतारे और दुक्कड़ की आवाज़ें हैं। पूर्व दिशा में सूर्य देव स्वयं वस्त्रज्योति लेकर प्रतिदिन पूजा सजा जाते हैं। ज़री-पताका का भगवा रंग उसने ‘हल्दी-रोली’ बनाकर अपने माथे पर मल रखा है। ऐसा है रायगढ़—देवी का अनन्य भक्त।” महाराज ने हाथ छाती पर रखकर मन-ही-मन उस श्रेष्ठ भक्त को प्रणाम किया।

एक दिन शुभ मुहूर्त में जिजाऊ के हाथों महाराज ने श्री जगदीश्वर का अभिषेक किया। इसके बाद एक मास के भीतर ही गढ़ का सारा कामकाज नियमपूर्वक होने लगा। वह प्रस्तर दुर्ग अब जीती-जागती नगरी बन गया।

परन्तु ऊँचे दुर्ग की तेज़ और ठण्डी हवा के कारण जिजाऊ का दमा उन्हें अतीव कष्ट देने लगा था। इसलिए महाराज से विचार-विनिमय करके वे तलभूमि में बसी पाचाड़ की हवेली में रहने आ गयीं। पुतलाबाई भी उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए उनके साथ ही पाचाड़ में आ गयी।

महाराज ने पाचाड़[1] की हवेली के राजकर्मचारी को गढ़ में बुलाकर अत्यन्त गम्भीरता से आदेश दिया, “हवेली के बैठक के बरामदे में एक बड़ा घण्टा बाँधने की व्यवस्था करो। एक घण्टावादक की नियुक्ति करो। उससे कहो कि प्रतिदिन जब माँ साहिबा स्नानादि के पश्चात् बैठक में जाने से पूर्व तुलसी की पूजा करने खुले आँगन के चबूतरे पर आयें, उस समय घण्टे का गजर दिया करे। इस घण्टानाद को सुनकर हम युवराज के साथ मावल माची पर आ जाएँगे। इस प्रकार से ही क्यों न हो, हमें प्रतिदिन माँ साहिबा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होगा। इस काम में किसी प्रकार की बाधा अथवा चूक नहीं होनी चाहिए, समझे?”

अगले ही दिन से प्रतिदिन प्रातःकाल के समय घण्टानाद गूँजने लगा। महाराज और युवराज के लिए तो यह घण्टानाद साक्षात् सौभाग्य ही था, परन्तु पाचाड़ की अस्थायी सेना के सैनिकों ने, अठारहों कारख़ानों के श्रमिकों ने भी यह जान लिया—‘घण्टा बज रहा है, माँ साहिबा बैठक में आ चुकी हैं।’

एक दिन महाराज इसी प्रकार प्रतिदिन के समान ही सम्भाजी के साथ मावल माची पर आये

https://t.me/Sahityajunction

हुए थे। पाचाड़ से आ रही घण्टाध्वनि की लहरें वायुरथ पर आरूढ़ होकर माची तक आ चुकी थीं। माची के सुडौल पत्थरों से बने कंगूरे पर महाराज और सम्भाजी तलहटी में नीचे पाचाड़ की बैठक की ओर आँखें गड़ाये खड़े थे।

थोड़ी देर बाद हवेली के तुलसी चौरे के पास एक श्वेत रेखा-सी प्रकट हुई। श्वेत साड़ी धारण किये हुए माँ साहिबा आँगन में आ चुकी थीं। पिता-पुत्र दोनों ने विनम्र होकर मुजरे किये। नीचे वह श्वेत-रेखा निश्चल खड़ी थी। पिता-पुत्र के नेत्र ही हाथ बनकर उस रेखा के चरणों से जा लगे थे। केवल दुर्ग के पक्षीगण चहचहा रहे थे, उड़ते फिर रहे थे। अन्यथा सर्वत्र शान्ति थी।

"युवराजऽ," महाराज ने कुछ सोचते हुए पुकारा।

"जी, आबासाहब," सम्भाजी ने तुरन्त पुकार का उत्तर दिया।

"पाचाड़ के चबूतरे पर खड़ी हुई जिजाऊ कैसे पहचान पाती होंगी तुम्हें और हमें?" महाराज ने पूछा।

"अवश्य, निस्सन्देह ही वे मुझे और आपको अलग-अलग पहचान पाएँगी।" सम्भाजी थोड़ी देर रुके, फिर महाराज के चरणों की ओर विनम्रभाव से देखते हुए बोले, "आप कितने ऊँचे हैं, हम...हम आपके सामने कितने बौने हैं! माँ साहिबा आपको पहचानने में कभी भूल नहीं करेंगी।"

नूतन दुर्ग प्रवेश के शुभ अवसर पर नाते-रिश्ते के कई लोग आये हुए थे। इनमें युवराज सम्भाजी के श्वसुर पिलाजी और सम्भाजी की पत्नी के भाई गणोजी शिर्के भी थे। अपने ग्राम शृंगारपूर वापस जाने से पूर्व गणोजी अपने बहनोई से विदा लेने आये थे। सम्भाजी उनसे गले मिले, परन्तु इसी समय उनके मन में भीतर कहीं गहरे में यह विचार खटक रहा था—पन्द्रह दिनों तक गणोजी यहाँ रहे। परन्तु आबासाहब से, या अपनी बहन से या हमसे भी कभी उन्होंने खुलकर बातें ही नहीं कीं। यदि कभी कुछ बोलना भी पड़ा, तो वह बोले कम, परन्तु आँखों की पलकें तेज़ी से झपकते रहे और एक-आध शब्द बोलकर वे हमारे या आबासाहब के हाथ में पहने हुए सोने के कड़े की ओर फड़फड़ ताकते रहते थे।

एक बार गणोजी इसी प्रकार टक लगाकर सोने के कड़े की ओर ताक रहे थे, तो सम्भाजी के मन में आया कि उनके पास जाएँ, और सबके सामने ही वह सोने का कड़ा उनके हाथ में पहना दें। परन्तु ऐसा करना अनुचित आचरण समझा जाता।

पिलाजी अपने पुत्र गणोजी और पुत्रवधू के साथ वापस चले गये। अब सम्भाजी की दिनचर्या नियमित रूप से चलने लगी थी।

क़िले में सूखे तालाब के निकट वाले मैदान में व्यायामादि की व्यवस्था की गयी थी। वहाँ एक लोहनिर्मित मलखम्भ गड़ा हुआ था। युवराज सम्भाजी इस मलखम्भ पर तेज़ी से घूम रहे थे। तेज़ी इतनी थी कि पास खड़े गोमाजी बाबा की दृष्टि टिक न पाती थी। वह बस मुँह बाये ताक रहे थे।

बचपन से सम्भाजी को अस्त्र-शस्त्र, कसरत आदि सिखाने का काम करते आये थे—

https://t.me/Sahityajunction

गोमाजी बाबा। कल का नन्हा बालक सम्भाजी अब बूढ़े गोमाजी के कन्धे तक आ लगा था। भरी-पूरी छाती और रंग नीबू का-सा पीत था उनका। इस समय वे मलखम्भ पर तरह-तरह की कसरतें कर रहे थे। मलखम्भ पर तेज़ी से घूमने के कारण दूर-दूर फैले हुए लिंगाणा, पोटला, कोकणदिवा आदि क़िले भी उन्हें उल्टे-सीधे घूमते हुए से दिखाई दे रहे थे।

मलखम्भ लौहनिर्मित था, इस कारण सम्भाजी के पसीने से भीगकर वह निखर उठा था। उसके गीलेपन के कारण अब तो उस पर हाथों की पकड़ भी नहीं बैठ पाती थी। खम्भ के ऊपरी सिरे पर गये हुए सम्भाजी अब बाण की तरह फिसलते हुए नीचे आने लगे। इस फिसलन की झोंक में ही उन्होंने अपने शरीर को बड़ी सफ़ाई से बाहर की ओर एक ऐसा झटका दिया कि वह पैंतरा लेकर ठीक गोमाजी के सामने आ खड़े हुए। शरीर पसीने से तर-ब-तर, होठों पर हँसी तैरती हुई।

गोमाजी झट से आगे बढ़े और उन्होंने एक शॉल उनके शरीर पर लपेट दी। बोले, "कसरत से गीले हुए बदन पर हवा लगना ठीक नहीं होता, छोटे मालिक!" गोमाजी ने कहा तो यही; परन्तु मन में कुछ और ही था उनके। सुडौल और बलिष्ठ शरीर के उस युवराज को देखकर उन्होंने मन में सोचा था—'हम बूढ़े हुए तो क्या हुआ? कहीं इस सोने के खम्भ को हमारी ही नज़र न लग जाए।'

व्यायाम से निबटकर सम्भाजी ने वस्त्र धारण किये। धाराऊ दूध का पात्र भरकर लायी थी। दूध पिया और युवराज सम्भाजी राजसभागृह की बैठक में आये। महाराज उस दिन रायगढ़ में नहीं थे, वह महाड़ की दिशा में गये हुए थे। बालाजी चिटनीस ने युवराज को आया देखा, तो अदब के साथ उठ खड़े हुए। पन्त सचिव अण्णाजी भी वहाँ खड़े थे, उन्होंने भी झट से मुजरा किया।

उस समय राजसभागृह में चार-पाँच देहाती खड़े थे और उनके साथ रायगढ़ की तलहटी में बसे गाँव का मुख़तार भी खड़ा था। सम्भाजी ने ज्योंही उनकी ओर देखा, वे सब कमर तक झुक गये।

"कौन हैं ये लोग?" सम्भाजी ने बैठक पर बैठते हुए पूछा।

"ये लोग नीचे के गाँव के शिकारी हैं। मुख़तार की इन लोगों के ख़िलाफ़ कुछ शिकायत है।" बालाजी ने खड़े-खड़े ही उत्तर दिया।

"क्या शिकायत है?" सम्भाजी ने मुख़तार से पूछा।

सब ख़ामोश ही खड़े रहे।

"क्या बात है चिटनीस? क्या वह शिकायत हमारे सामने कही नहीं जा सकती?"

"ऐसी कोई बात नहीं है युवराज! बात यह है कि यह बिलकुल मामूली-सा मामला है। हम लोग ही इसका निपटारा कर देंगे।" अब तक ख़ामोश खड़े सुरनीस अण्णाजी ने नम्रता से कहा।

"ठीक है, जैसा तुम उचित समझो।" सम्भाजी ने मुस्कराकर कहा। परन्तु उपस्थित शिकारियों में कुछ चुलबुलाहट मची। उनका मुखिया आगे आया और मुजरा करके बोला, "बड़े सरकार क़िले में नहीं हैं। अब आप ही हमारा कुछ फैसला कर दीजिए, छोटे मालिक।"

"कैसा फैसला, क्या बात हुई है? संकोच मत करो, साफ-साफ कहो।" सम्भाजी ने

https://t.me/Sahityajunction

शिकारियों के मुखिया को धीरज बँधाया।

“मालिक, बखेड़ा इन लोगों ने ही खड़ा किया है। फैसला तो हम माँगना चाहते हैं आपसे।” मुख़तार ने अब मुँह खोला।

“कैसा बखेड़ा?” सम्भाजी ने उसकी ओर देखकर पूछा।

“गाँव के बाग़ वाले जंगल में इन्होंने शिकार किया। बहुत से जानवरों का शिकार किया, परन्तु सरकार की ओर से तय किया हुआ हमारा बाँटा (हिस्सा) हमें नहीं दिया। हिस्सा देने की बात सोचकर ही ये लोग चुपचाप जंगल से भाग निकले।” मुख़तार ने फ़रियाद की।

“अण्णाजी पन्त, शिकार के बारे में क़ायदा क्या है?” सम्भाजी ने पूछा।

“मुख़तार की बात सही है युवराज। सरकारी राजकार्यालय से मुख़तार को इस बारे में अधिकार दिया गया है। मुखिया और उसके ये शिकारी-साथी अपराधी हैं।” अण्णाजी ने सम्बन्धित क़ानून बताया।

“इस अपराध की सज़ा क्या है?” इसी समय सम्भाजी को अपने औरंगाबाद की शिकार-यात्रा की स्मृति हो आयी।

“इन्हें जुर्माना देना पड़ेगा, युवराज। शिकारियों को जुर्माने की रक़म राजकार्यालय में जमा करनी पड़ेगी। उसमें से तय रक़म मुख़तार को दी जाएगी। इन शिकारियों ने जितने जानवरों का शिकार किया है, उसमें हर जानवर के लिए चार शिवराई (एक सिक्का) जुर्माना उन्हें जमा करना पड़ेगा।”

शिकारियों ने जुर्माने की बात सुनी, तो घबरा गये, किन्तु मुख़तार का चेहरा खिल उठा। कुछ क्षण शान्ति रही।

“मुख़तार, तुम भी कभी शिकार करते हो क्या?” सम्भाजी ने अचानक ऐसा प्रश्न पूछा, जिसका स्वप्न में भी उसने विचार न किया था।

“जी हाँ, शिकार तो हम भी करते हैं।”

“फिर उसका हिस्सा कभी अपने गाँव के पास वाली सेना की चौकी में जमा करवाते हो क्या?”

“नहीं, नहीं, सरकार,” मुख़तार की आवाज़ दब गयी।

“तो तुम भी शिकार करते हो! तुम जानते हो कि जंगल में हर तरह के जानवर हैं। कुछ को बेखटके मारा जा सकता है, परन्तु बाघ-बघेरे आदि जानवरों को मारने में ख़तरा है। अगर इन शिकारियों को कभी बाघ-बघेरे घायल कर दें, तो इनकी कुछ पूछताछ, देखभाल तुम करते हो क्या?”

“नहीं मालिक,” मुख़तार अब पूरी तरह लड़खड़ा गया था।

“कभी किसी साहसी शिकारी ने बाघ का शिकार कर दिखाया तो जाकर उसे शाबाशी देते हो क्या? या उससे भी अपना हिस्सा ही माँगते हो?”

“...” मुख़तार के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर ही नहीं था।

“बाघ जैसे हिंस्र पशु के लिए बाँटे का नियम लागू नहीं है युवराज।” अण्णा जी ने मुख़तार

https://t.me/Sahityajunction

को बचाने के लिए क़ायदा बयान किया।

"यही तो हम कहना चाहते हैं, अण्णाजी पन्त। शिकार जैसे जोखिम-भरे खेल के लिए क़ायदे-क़ानून बिलकुल ठीक-ठीक लागू नहीं करने चाहिए। किसी हिंस्र पशु का शिकारी ने मुकाबला किया, तो ये मुख़तार जी घर में छिपे बैठे रहेंगे। भक्ष्य पशु का शिकार मिलते ही बाँटा माँगने को आ टपकेंगे। हम...हम ये जुर्माना माफ़ करते हैं।"

"पर...परन्तु...युवराज क़ानून कहता है..."

"अण्णाजी, हमने जुर्माना माफ़ कर दिया है। यह हमारी आज्ञा है।" युवराज सम्भाजी की आवाज़ कठोर हो गयी। गरदन तन गयी।

"जो आज्ञा, युवराज।" अण्णाजी कमर तक झुक गये।

"मुख़तार, याद रखो, जो सच्चा शिकारी है, वह बाँटे में मिले शिकार का मांस खाने में अपना अपमान समझता है। मुखिया, तुम भी याद रखो कि जो सच्चा शिकारी है, वह शिकार मिलने के बाद हर किसी का उचित हिस्सा उसे दिये बिना चुपचाप भागता नहीं है। अण्णाजीपन्त, हमने आज तुम्हें आज्ञा दी, उसका बुरा मत मानना। तुम बड़े हो, बुज़ुर्ग हो, हमें क्षमा करो। औरंगाबाद के जंगलों में हमने स्वयं देखा है—हमारे शिकारियों की सच्चाई और निष्ठा हमने अपनी आँखों से देखी है। सामने वन्य गौओं को देखकर एक भी शिकारी ने हथियार नहीं उठाया। हमने तो आज इन शिकारियों का सिर्फ़ जुर्माना माफ़ किया है, परन्तु उन सच्चे शिकारियों को यदि हम सम्मानपूर्वक इनाम दे पाते, तो हमें इससे भी अधिक आनन्द मिलता।

"मुख़तार, हम स्वयं तुम्हारे जंगल में आएँगे एक बार! शिकार करेंगे—केवल जंगली सूअरों का। उस समय तुम हमारे साथ रहना। सारा शिकार गाँव-बस्ती में ले जाना। तुम भी खाना और गाँववालों को भी खिलाना।"

बात पूरी करके युवराज सम्भाजी ने महाराज के समान ही एक बार 'जगदम्बे, जगदम्बे' कहा और छाती पर पड़ी कौड़ियों की माला पर से उँगलियाँ फिराते हुए वे उठ खड़े हुए। वे बाहर जा रहे थे और सब मुजरा करते हुए झुके खड़े थे।

परन्तु पन्त-सचिव अण्णाजी की अवस्था थोड़ी भिन्न थी। अपने उपरने के छोर को वे मुट्ठी में ज़ोर से दबाये जा रहे थे। आज सम्भाजी का 'युवराज' रूप देखकर वे अवश्य अभिभूत हुए थे, परन्तु फ़रियादी लोगों के सामने जो तीव्र-कठोर स्वर की आज्ञा उन्हें झेलनी पड़ी थी, उसकी तीव्रता ने उनके मन में गहरा घाव कर दिया था।

वर्षाऋतु में जलधाराएँ निरन्तर घाटियों-तलहटी में बरस रही थीं। इन जलधाराओं के थम जाने पर जब कभी पाचाड़ की हवेली की घण्टाध्वनि ऊपर सुनाई देती थी, महाराज और युवराज सम्भाजी जहाँ कहीं भी हों वहाँ से तुरन्त मावल माची पर आ जाते थे। बरसात के जलकणों से भरा रहता था आकाश और नीचे घाटी भी जलकणों से बिखरे बादलों से भरी रहती थी, अतः सौ-दो सौ हाथ दूर का भी कुछ दिखाई नहीं देता था। बस, नीचे की घाटी से 'टन-टन' की आवाज़ सुनाई देती थी।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज और सम्भाजी उसी आवाज़ की दिशा में मुजरे करते थे और काफी देर तक घाटी में ही निहारते रहते थे। बरसात की झड़ी शुरू होते ही, सेवक दौड़कर उनके सिरों पर छत्र तान लेते थे।

इसी प्रकार आठ-दस दिन बीत गये। जिजाऊ के दर्शन न होने से विह्वल बने सम्भाजी एक दिन महाराज से बोले, "आबासाहब, यह घण्टे की टंकार तो हमारे तन-मन को व्याकुल बनाये देती है। जी चाहता है कि अभी नीचे उतरकर पाचाड़ पहुँच जाएँ।"

महाराज भी माँ साहिबा और सम्भाजी के एक-दूसरे के प्रति घनिष्ठ प्यार-दुलार को भली भाँति जानते थे। तलहटी के तुषार कणों के भीतर देखने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने कहा, "कभी-कभी हमें तुमसे सचमुच ईर्ष्या होती है। कितने सीधे-भोले हो तुम! जो भी मन में आता है, तुरन्त कह बैठते हो। हम इस तरह नहीं बोल पाते। खैर...तुम पाचाड़ जरूर जाओ और चार दिन माँ साहिबा के पास रह आओ। परन्तु चार दिन बाद तुम्हें तुरन्त ही गढ़ में वापस आना होगा, क्योंकि तुम्हें अगली मुहिम का कामकाज समझाना-सिखाना है। बेटे, कुछ शिकारियो के मामले का फ़ैसला करना आसान बात है। इससे बढ़कर और भी विषय हैं, जो बड़े कठिन हैं।" कहते समय महाराज की दृष्टि पाचाड़ की दिशा में ही घूम रही थी।

"शिकारियों के फ़ैसले में हमसे कुछ भूल हुई क्या, महाराज साहब?" सम्भाजी ने नीची नज़र रखकर पूछा।

"नहीं, फ़ैसले में तुमसे भूल नहीं हुई पर राजसभा की प्रथा के बारे में तुम अवश्य भूल कर बैठे हो। फ़रियादी लोगों के सामने पन्त-सचिव को तुम्हें इस तरह कठोर स्वर में आज्ञा नहीं सुनानी चाहिए थी।"

फिर महाराज ने पाचाड़ की हवेली की ओर तर्जनी से संकेत करते हुए मन की गहराई से एक भाव प्रकट किया, "नीचे की हवेली के आँगन का कुछ भी हमें इस समय दिखाई नहीं देता। परन्तु तुम और हम जानते हैं शम्भू, कि माँ साहिबा वहाँ खड़ी हैं। क्या कारण है?...मन में असीम श्रद्धा है, विश्वास है इसी कारण न! माँ साहिबा की धुँधलायी दृष्टि भी वहाँ से हमें यहाँ खड़ा हुआ मान रही होगी। वात्सल्य और प्यार के कारण ही न! तो बेटे, ध्यान रखो, लोग श्रद्धा और प्रेम के कारण ही एक-दूसरे के लिए सब-कुछ करते हैं, अवसर पड़ने पर जान भी न्यौछावर कर देते हैं।"

तीखे और खरे बोल सम्भाजी सुन रहे थे। मन चाहता था—हित के ये चार बोल अभी बरसते रहें।

"हमसे भूल हुई महाराज साहब। हम अभी जाकर अण्णाजी से मिलते हैं और उनसे क्षमा माँगते हैं।" सम्भाजी के उस युवक-मन में महाराज के प्रति आदर और गहरा हो उठा था।

"ना, ना। ऐसा मत करना। यह तुम्हारी दूसरी भूल होगी! तुम युवराज हो, याद रखो।" महाराज ने शीघ्रता से कहा, "राजा को कभी भूल नहीं करनी चाहिए और अगर गफ़लत हो ही गयी, तो उसकी सफाई पेश करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जाओ, पाचाड़ को रवाना हो जाओ।" महाराज ने उनके कन्धे पर हाथ रखा।

सम्भाजी जिजाऊ के दर्शनों के लिए वर्षा की बौछारों के बीच क़िले से उतर कर पाचाड़ चले

https://t.me/Sahityajunction

गये थे। येसूबाई पुतलाबाई के महल के सामनेवाले छज्जे के मुँडेर के पास खड़ी थीं और सामने के चौक की प्रस्तर-निर्मित छोटी नहर के जल को निहार रही थीं। नहर का पानी बरसात के कारण मटमैला हो गया था।

थोड़ी देर तक वे इस नहर की ओर देखती रहीं। सातमहल में रानी पुतलाबाई का जो महल था, उसमें ही येसूबाई इस समय निवास करती थीं। इस महल में घटित प्रसंगों को वे इस समय याद कर रही थीं। पुतलाबाई जब माँ साहिबा के साथ जा रही थीं, उस समय, उन्होंने येसूबाई को दो-तीन बार विशेष बल देकर कहा था, "बड़ी रानी जी की बातें केवल सुनते रहा करो। उनसे उत्तर-प्रत्युत्तर करने के झंझट में मत पड़ना। जब भी उनसे मिलने जाओ, तो धाराऊ को साथ लिए बिना मत जाना। तुम अब इसी महल में रहो—इस महल को हमारा नहीं, अपना ही समझो!"

रायगढ़ में पहली बार आते समय येसूबाई ने गंगासागर तालाब को देखा था, तो मन-ही-मन निश्चित कर लिया था—'मनुष्य को इस सरोवर के समान होना चाहिए। सब कहा-सुना समाकर रखना—सीखना चाहिए। जो कुछ कान से सुना सब उगल दिया, ऐसा करना उचित नहीं।'

विचार करते-करते ही अचानक उनकी दृष्टि पानी की नहर से हटकर छज्जे के पत्थरों से बनी मुँडेर पर गयी। उस मुँडेर से सटकर जा रही थी, चींटियों की एक पंक्ति। कुछ चींटियाँ उनके पैरों पर चढ़ आयी थीं। येसूबाई ने पैर झटककर उन्हें दूर हटा दिया। वे ध्यान से देखने लगीं चींटियों को, "कैसी हैं ये चींटियाँ? अपने-से भी बड़े-बड़े सफ़ेद-सफ़ेद कणों को उठाये दौड़ी चली जाती हैं।" उनके पैरों की बाधा के कारण चींटियों की पंक्ति टूट-सी गयी थी, अब चींटियों ने फिर से पंक्ति सीधी बना ली थी।

महाराज सोयराबाई के महल से निकलकर, वहाँ नन्हे राजाराम से प्यार के दो तुतलाते बोल बोलकर येसूबाई के पीछे आ खड़े हुए थे। विचारों में खोयी येसूबाई इस बात से अनजान थी। महाराज भी चुपचाप खड़े रहकर इन नन्हे-नन्हे उद्यमशील प्राणियों के प्रयत्न-पराकाष्ठा को देख रहे थे।

"देख बेटी, इतना छोटा-सा प्राणी है, परन्तु अपनी शक्ति से कहीं बढ़कर भार ढोये ले जाता है!" महाराज ने धीरे-से कहा।

आवाज़ से येसूबाई एकदम चौंक उठीं। आँचल का छोर हाथ में पकड़कर वे नमस्कार करने के लिए झुकने को हुईं, पर महाराज ने उन्हें बीच में ही रोक दिया—कहा, "रहने दो बेटी, रहने दो।"

येसूबाई नीचे देख रही थीं। उनके माथे पर लगी कुंकुम को देखकर महाराज को अकस्मात् सईबाई की याद आ गयी। वे सोचने लगे—'काश! हमारी इस पहली पुत्रवधू को आशीर्वाद देने के लिए हमारी बड़ी रानी जी आज जीवित होतीं।' महाराज की मुखमुद्रा गम्भीर हो गयी और वे मन्दगति से टहलने लगे।

येसूबाई ने उनकी गति और आकृति को देखा, तो उन्हें भी आज अपने पिता पिलाजी शिर्के की याद आ गयी। उन्होंने अनुभव किया, मानो महाराज के रूप में उनके पिताजी ही भर्रायी आवाज़ में कह रहे हों—'इतना छोटा-सा प्राणी है, परन्तु अपनी शक्ति से कहीं बढ़कर भार ढोये ले जाता है।'

https://t.me/Sahityajunction

युवराज सम्भाजी जगदीश्वर के दर्शन करके जोत्याजी केसकर के साथ अभी-अभी ही ख़ासमहल में आये थे कि एक सेवक ने सूचना दी, "मुतालिक महादेव यमाजी आपसे मिलना चाहते हैं।"

"आने दो उन्हें," युवराज ने उन्हें आज्ञा दी।

महादेव यमाजी प्रौढ़ आयु के व्यक्ति थे। कन्धे का उपरना सँभालते हुए और पगड़ी झुकाकर मुजरा करते हुए उन्होंने निवेदन किया, "बड़े महाराज ने आपको याद किया है।" सुनते ही सम्भाजी उनके साथ-साथ महल से बाहर निकले और महाराज के राजसभागृह में पहुँचे। वहाँ मोरोपन्त, अप्पाजी, दत्ताजी त्रिमल, बालाजी आदि अदब से हाथ बाँधे खड़े थे। महाराज की पीठ पीछे उनका अत्यन्त विश्वासपात्र सेवक खण्डोजी दामाडे तलवार की मूठ पर हाथ रखे खड़ा था। युवराज को आया देखकर सभी ने मुजरे किये।

"यहाँ आओ।" महाराज ने कहा।

सम्भाजी बैठक के सामने आये और तीन बार मुजरा करके खड़े ही रहे।

"हाँ, तो तुम्हारा इनसे परिचय करा दूँ।" महाराज ने जिस व्यक्ति की ओर संकेत किया, वह था भगवी कफ़नी पहने एक तेजस्वी गोसाईं संन्यासी।

सम्भाजी बैठक के नीचेवाली सीढ़ी के बिछावन पर ही बैठ गये।

"ये समर्थ गुरु रामदास जी के शिष्य हैं—नाम है दिवाकर गोसाईं।" महाराज ने संन्यासी का परिचय कराया। संन्यासी के हाथ में दण्ड था, कलाइयों में वह रुद्राक्ष की माला पहने था। दाढ़ीधारी व तेजस्वी संन्यासी दण्ड हाथ में लेकर ही नम्रता से थोड़ा झुका।

"और ये हैं, हमारे सुपुत्र युवराज सम्भाजी।" महाराज ने सम्भाजी के कन्धे पर हाथ रखकर उनका परिचय कराया।

"रघुवीर की कृपा रहे।" संन्यासी ने कहा।

सम्भाजी ने उठकर उन्हें नमस्कार किया।

"कहिए, दिवाकर जी, कैसे पधारे आप?" महाराज ने संन्यासी के मस्तक पर चिह्नित भस्म की रेखाओं की ओर देखते हुए पूछा।

"गुरुदेव इस समय कोडोली पारगाँव में बसते हैं। उन्होंने आपसे मिलने की इच्छा प्रकट की है। आपके नाम उन्होंने एक पत्र भी दिया है।" दिवाकर गोसाईं की वाणी हनुमान जी के मन्दिर के घण्टानाद के समान गुरु-गम्भीर थी, उन्होंने कन्धे की झोली को सामने करके काग़ज़ों का पुलिन्दा बाहर निकाला और झुककर महाराज के हाथों में दे दिया।

महाराज ने उस लिपटे हुए पत्र को नेत्र बन्द करके श्रद्धापूर्वक एक बार माथे के शिवतिलक से लगाया और फिर पढ़ने के लिए बालाजी की ओर बढ़ाया। दिवाकर गोसाईं पीछे हटते हुए अपने स्थान पर जा रहे थे; फिर न जाने क्या विचार आया कि उन्हीं की ओर महाराज ने वह पत्र घुमाते हुए कहा, "इच्छा होती है कि समर्थगुरु के वचन समर्थ के शिष्य के ही मुख से सुनें।"

"जो इच्छा प्रभु रामचन्द्र जी की," कहते हुए दिवाकर गोसाईं आगे बढ़े और उन्होंने झुकते हुए वह पत्र महाराज से ले लिया। उस पत्र में क्या लिखा है, इसे वह स्वयं भी नहीं जानते थे।

आज से चौदह वर्ष पूर्व राजगढ़ में समर्थगुरु रामदास के एक शिष्य, भास्कर गोसाईं,

https://t.me/Sahityajunction

महाराज से मिले थे। महाराज ने उस समय उनका परिचय पाने की दृष्टि से पूछा था—'तुम्हारे गुरु कौन हैं? कहाँ के हैं? कहाँ निवास करते हैं?' भास्कर गोसाईं ने उस समय अपने गुरु की महिमा बखानी थी। इसके बाद महाराज राजनीति के दाँवपेंचों में इतने व्यस्त रहे कि वे समर्थगुरु के विषय में अधिक न जान पाये, न ही उन्हें मिल सके। आज स्वयं समर्थगुरु ने ही पत्र भेजा था, अत्यन्त निष्काम भाव से। समर्थ रामदास ने महाराज की दिन-दूने रात-चौगुने बढ़ते हुए पराक्रम की गाथाओं को सुना था और राजा शिवाजी के प्रति अपने भावों को उन्होंने काव्य में बाँधकर व्यक्त किया था।

"जय जय रघुवीर समर्थ!" दिवाकर गोसाईं ने वाचन प्रारम्भ करने से पूर्व भगवन्नाम का जप किया। फिर घण्टानाद के समान गम्भीर उनकी वाणी प्रवाहित हो उठी। वही काव्य-रूपी वाणी जिसका रचयिता था एक 'योगी' और जो गुणगान करती थी एक 'राजयोगी' का।

निश्चय का जो है सुमेरु, है बहुतों का संयोगी।
है विपत्ति में अखण्ड स्थिरता, है वह श्रीमन योगी।।
पर-उपकार कथाएँ जिसकी, आधिक अनन्त उजागर।
जिसकी गुण-महिमा की गाथा, अतुलनीय है भू पर।।
वह नरपति, वह हयपति राजा, गजपति है वह गढ़पति।
इन्द्र समान पराक्रम जिसका, दुर्गा की-सी शक्ति।।
है यशवान् कीर्तिमय राजा, वीरोत्तम, वरदायी।
है वह पुण्यवान् जयशाली, चतुर, सूज्ञ, फलदायी।।
शील ज्ञान की प्रतिमा है वह, दान धर्म की मूर्ति।
है सर्वज्ञ, सुशील, करे सब, अभिलाषाओं की पूर्ति।।
धीर, उदार, धर्मधन सुन्दर, शूरवीर, रणधीर।
कौशल, सावधानी में अनुपम, नृपवर, चतुर, प्रवीर।।
ध्वंस हुए हैं तीर्थ-मन्दिर, ब्राह्मण, गुरु हैं त्रस्त।
डगमग डोले पृथ्वी सकल यह, धर्म भ्रष्ट अरु, ध्वस्त।।
कौन यहाँ रक्षक बलशाली, धर्म, गौ, ब्राह्मण का।
रक्षक बनकर आया नृप यह, भाव धरे नारायण का।।
ज्ञानी, पण्डित, पुराणवाचक, कवि, याज्ञिक का आश्रय यह।
सभ्य, चतुर, तर्काचार्यों का, बहुतों का रखवाला यह।।
भूमण्डल में धर्म बचाये, कौन अन्य वह वीर?
महाराष्ट्र का धर्म बचाया, तुमने ए रणधीर।।

दिवाकर गोसाईं ने गाँव-गाँव में, बस्तियों में घूम-घूमकर आँखों से देखी थी दुर्दशा लोगों की। उनकी आँखें डबडबा आयीं। अश्रुधारा बहकर दाढ़ी के बालों से होती हुई नीचे भूमि पर टपकने लगी। उनका कविता-पाठ थम गया।

उपस्थित सभी जन कानों में समस्त प्राण समेटकर ये वचन सुन रहे थे। महाराज भावातिरेक में अपनी नासिका को उँगलियों से दबाकर नेत्र बन्द किये बैठे सोच रहे थे—'समर्थगुरु का रूप कैसा होगा भला! वे कहते हैं—भाव धरे नारायण का। श्रीमान 'योगी' योग? यह बहुत ऊँचा

https://t.me/Sahityajunction

लक्ष्य है। हम योगी कहाँ? योगी तो है हमारा वह प्रत्येक सैनिक, प्रत्येक सरदार जो रण में खेत रहा है। हम तो उन्हीं के पुण्य से योगी बने हैं। उनका भार ढोते हैं हम। महाराष्ट्र का धर्म। डगमग डोले पृथ्वी'—सोच विचार में डूबे महाराज जैसे एक अपरिचित लोक में पहुँच गये थे, दूर-बहुत दूर।

सम्भाजी ने आज अपने महाराज साहब का सही वर्णन सुना था गोसाईं के मुख से—सच है ऐसे ही हैं हमारे महाराज साहब, 'निश्चय का जो हैं सुमेरू' महामेरू! वही पर्वत, जिसके विषय में केशव पण्डित कहा करते हैं—सबसे ऊँचा पर्वत। इस रायगढ़ से भी दस गुना ऊँचा। इतना ऊँचा दृढ़ निश्चय। हाँ, हाँ, आगरा के दरबार में हमने देखा है, वह भड़कता हुआ निश्चय। अपनी आँखों से देखा है निश्चय का वह सुमेरू हमने।

'है बहुतों का संयोगी,' सच ही कहा है समर्थजी ने। बहुतों के वे आधार हैं। हमेशा कहा करते हैं—'हमें बैठे हुए मावले को सहारा देकर बैठाना होगा। बैठे हुए को पैरों पर खड़ा करना होगा और खड़े हुए को दौड़ना सिखाना होगा। सब मावलों को वही तो प्रोत्साहन देते आये हैं।'

'धीर, उदार, धर्मधन, सुन्दर'। हाँ, अति सुन्दर। दो चेहरे तो हमें ठीक-ठीक स्मरण हैं—जब उनके स्वप्न में जगदम्बा आयी थी, उस समय का चेहरा और आगरा के खेमे में हबशियों से घेरे जाने पर 'हमने धोखा खाया' कहता हुआ चेहरा।

कीर्तिमान, यशवान्, पुण्यवान्, वरदायी, जयशील,...दानशील—सम्भाजी के मन में एक-एक शब्द पाचाड़ के घण्टानाद के समान प्रतिध्वनित हो रहा था।

किंचित् सावधान होकर गोसाईं पुनः आगे पढ़ना चाहते थे कि सम्भाजी ने कहा, "गोसाईं जी, तनिक ठहरो। कृपया हमें अन्तिम दो पंक्तियाँ फिर से सुनाइये।"

"भूमण्डल में धर्म बचाये। कौन अन्य वह वीर।
महाराष्ट्र का धर्म बचाया। तुमने ए रणधीर।।"

दिवाकर गोसाईं ने ये पंक्तियाँ पढ़कर आगे पढ़ना प्रारम्भ किया। महाराज के नेत्र बन्द ही थे। सम्भाजी के कान आगे सुनने को अधिक उत्सुक हो उठे थे।

"सकुशल अन्य धर्म राज्य में, कितने जन श्रीमान्।
धन्य धन्य यशकथा तुम्हारी, छायी कीर्ति महान्।
हम बसते हैं देश तुम्हारे, मिले न तुम क्यों मौन?
स्नेह-बन्ध क्या भूल गये हो? अथवा कारण कौन?
राजनीति झंझट में अटके, हुआ चित्त क्या टूक।
अनाहूत लिक्खा हमने यह, क्षमा, हुई यदि चूक।।"

अन्तिम दो चरण सुनते ही महाराज के नेत्र एकदम खुल गये। उन्हें लगा—मानो स्वयं समर्थगुरु ही दिवाकर के रूप में सामने खड़े हैं।

केवल सम्भाजी के नेत्र बन्द हो गये थे। शायद सोचते हों—शब्दों में और आबासाहब के गुणों में कितनी एकरूपता है!

https://t.me/Sahityajunction

बागलाण[1] प्रदेश तक घुड़दौड़ लगाकर पेशवा मोरोपन्त की विजयी सेना रायगढ़ से थोड़ी दूर महाड़ नगर में आकर डेरा डाले पड़ी थी। महाराज ने मोरोपन्त को रायगढ़ में बुला भेजा था।

पड़ोस के शत्रु राज्य इस भ्रम में थे कि बरसात के शुरू होते ही मराठा सेना के घोड़े अस्तबलों में बँधे दाना-सानी खाते सुसताया करते हैं। महाराज ने उनकी इसी असावधानी का लाभ उठाने का विचार किया। उनकी योजना थी कि मोरोपन्त की विजयी सेना को युवराज सम्भाजी की सहायता के लिए लगा दिया जाय और इस बार गुजरात की सीमाओं पर बसे जव्हार तथा रामनगर के राज्यों पर आक्रमण किया जाए। राज्य कोली राजाओं के अधिकार में थे।

युवराज सम्भाजी का यह पहला अभियान था। आयु थी केवल पन्द्रह वर्ष। फिर अभियान भी आयोजित किया गया था भरी बरसात में। परन्तु इसमें निराली बात ही क्या है? 'भोसले' राजाओं का 'राजत्व' इसी प्रकार धूप-वर्षा में सूख-भीगकर ही तो बनता है।

मोरोपन्त के राजसभागृह में प्रविष्ट होते ही महाराज ने अपनी निश्चित योजना उन्हें बतायी, "पन्त, तुम अपनी फ़ौज लेकर युवराज के पीछे रहते हुए जव्हार, रामनगर तक आक्रमण करो। ऐसा समझो कि युवराज नहीं, स्वयं हम ही इस अभियान में सम्मिलित हैं। नदी-नाले, जो भी बीच में आवें, उन्हें पार करने के लिए नौकाएँ, हाथी आदि तथा अच्छे तैराकों, मछुओं, कहारों आदि को साथ रखो। बरसात की झड़ियाँ हों या बौछारें, अभियान को पूरे जोश से चलाना है। तुम जानते हो, युवराज की यह पहली मुहिम है। इसे पूरी तरह सफल बनाना है।" फिर महाराज ने युवराज को तथा मोरोपन्त को 'यम्मान-वस्त्र' प्रदान किये। उन्हें मुहिम का नेता बना दिया।

रायगढ़ के देवमहल में सम्भाजी ने जगदम्बा की तेजोमयी मूर्ति पर बेलपत्र की अंजलि बिखेरकर अर्पित की। चरणकमलों पर मुट्ठी-भर हल्दी-रोली चढ़ायी। माँ जगदम्बा के उग्र नेत्रों की उग्रता को क्षणभर देखकर अपनी आँखों में समाकर रखने का प्रयत्न किया। भूमि पर घुटने टिकाकर अपना टोपधारी मस्तक उन्होंने आदिशक्ति के चरणों में नवाया।

उनके बन्द नेत्रों ने एक चमत्कार देखा। देखा कि माँ जगदम्बा के आठ हाथों का मिलकर एक बड़ा हाथ बन गया है। उस हाथ में है एक वस्त्र-ज्योति। प्रतापगढ़ के मन्दिर में उन्होंने हाथों में जो वस्त्र-ज्योति नचायी थी, उससे भी बड़ी थी वह वस्त्र-ज्योति। माँ जगदम्बा वह वस्त्र-ज्योति अब उनके हाथ में दे रही हैं। परन्तु इतनी विशाल वस्त्र-ज्योति को अपने नन्हे-बौने हाथों में वे कैसे धारण करें? उस ज्योति के तीव्र उजाले में वे स्वयं ही खो गये हैं, लुप्त हो गये हैं।

"जय हो, जय हो देवी!" उनके होठों से अस्पष्ट ध्वनि निकली। उसमें कृपा की याचना का भाव था। अपना मस्तक देवी के चरणों से हटाकर फिर सम्भाजी ने अपने पीछे खड़े महाराज के चरणों में नवाया।

"उठो। यशस्वी बनो। जहाँ-जहाँ पड़ाव रहे, वहाँ से ख़बरगीर भेजते रहा करना। मोरोपन्त की सलाह लेकर कार्य करना।" महाराज ने उनके कन्धे थपथपाये। आज ही सम्भाजी मुहिम के लिए कूच करनेवाले थे। महाराज भी महाड़ तक उनके साथ जानेवाले थे।

देवमहल से निकलकर सम्भाजी अन्तःपुर में गये और मातृगण से आशीर्वाद पाया। पत्नी

https://t.me/Sahityajunction

येसूबाई ने जब उनकी आरती उतारी, तो नीराजन की ज्योति की ओर देखते हुए वे बस इतना ही कह पाये, "हम जा रहे हैं।" येसूबाई के कानों ने ये शब्द सुने। कान तो सन्तुष्ट हुए, परन्तु उनके लजीले नेत्रों की कामना अधूरी ही रह गयी। नेत्र ऊपर उठकर उस टोप के नीचे वाले शिवतिलक को अन्त तक देख ही नहीं पाये।

येसूबाई के पीछे खड़ी थी धाराऊ। उसने मन-ही-मन अपने ग्राम कापूरहोल के देवता से संकट-निवारण की दुहाई माँगी, "हे शम्भू महादेवजी, मेरा लाल पहली बार लड़ाई के लिए कूच कर रहा है। यश देना हे देव, महादेव।" सम्भाजी ने उसकी चरण-धूलि मस्तक से लगायी।

राजसभागृह के बाहरी चबूतरे पर मोरोपन्त, रूपाजी भोसले, खण्डोजी जगताप आदि सरदार खड़े थे। सम्भाजी भी महाराज के साथ और रायाजी, अन्तोजी, जोत्याजी आदि के साथ वहाँ उनसे आ मिले। दुर्ग के चुनिन्दा शस्त्रधारी उनके पीछे आ खड़े हुए। सब लोग दरबार चौक पार करके नक्कारख़ाने के भव्य द्वार से बाहर निकले। नौबत बज उठी।

इसके पश्चात् राजा, युवराज, सरदार आदि का समुदाय दुर्ग के देवता जगदीश्वर के दर्शनार्थ गया। बेलपत्र समर्पित किये और फिर सब लोग दुर्ग के ढलान के मार्ग पर चल पड़े। दो मीनारें, फिर गंगासागर, फिर महादरवाज़ा आया। वहाँ की नौबत झड़ने लगी। यहाँ आते ही महाराज और सम्भाजी के कदम ठिठक गये। कारण केवल वे दोनों ही जानते थे—पीछे खड़े लोग केवल अनुमान लगा रहे थे।

महाराज और सम्भाजी के कदमों को जैसे किसी ने जकड़ लिया। दोनों ने केवल एक-दूसरे की ओर देखा—बोल कुछ नहीं पाये। वे वहाँ ठहर गये थे—उन्हें आज तक हमेशा राजगढ़ में क़िले का दरवाज़ा पार करके सुरंग में उतरकर निकलना पड़ता था। यहाँ कहाँ थी वह सुरंग? दोनों का मन राजगढ़ पहुँच गया था।

सब लोग नीचे पाचाड़ की हवेली—नहीं, नहीं—मन्दिर में आये। बाहर घण्टा और भीतर मातृदेवी थी वहाँ। हवेली अब मातृमन्दिर ही तो बन चुकी थी।

महाराज और मोरोपन्त सभागृह में ही रुक गये। केवल सम्भाजी, रायाजी, अन्तोजी के साथ हवेली के ख़ासमहल में गये। वहाँ जिजाऊ और पुतलाबाई उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। युवराज ने उन्हें प्रणाम कर चरणधूलि माथे से लगायी। जिजाऊ उन्हें हवेली के देवमन्दिर में ले गयीं और वहाँ सबने देवी के दर्शन किये।

जिजाऊ कुछ गहरे सोच में डूबी थीं। कहने लगीं, "तुम्हारे आबासाहब भी जब वे तोरण के क़िले से जा टकराये थे, तुम्हारी आयु के ही थे। वे जीतकर लौटे थे। हमें विश्वास है—तुम भी विजयी होकर लौटोगे।"

सबका भोजन पाचाड़ में हुआ। महाराज और सम्भाजी हवेली के बाहर निकलने के लिए सभागृह के पास आये। फिर जैसे किसी ने खींच कर उन्हें घण्टे के नीचे ला दिया हो, वहाँ खड़े-खड़े उन्होंने ऊपर मावल माची की ओर देखा। वहाँ से जिजाऊ को वे देख पाते थे। अब वापस लौटने तक माँ जिजाऊ के दर्शनों का लाभ अप्राप्त रहेगा। उन्होंने एक बार पुनः अपने नयनों में माँ जिजाऊ का रूप समा लिया।

"हम चलते हैं।" कहकर वे जिजाऊ से विदा हुए और पाचाड़ की हवेली से बाहर निकल

https://t.me/Sahityajunction

पड़े।

बाहर साईस चारजामे कसे हुए द्रुतगतिवाले घोड़े लिये तैयार खड़े थे। महाराज और युवराज घोड़ों पर सवार हुए और महाड़ की ओर दौड़ने लगे। आकाश में यत्र-तत्र बादलों के टुकड़े बिखरे थे। गर्मी से सवारों के शरीरों से स्वेद धाराएँ बरस रही थीं।

महाड़ मराठा सेना की घुड़साल की छावनी थी। यहाँ मोरोपन्त की दस हज़ार की बहादुर फ़ौज कूच करने के लिए उद्यत थी। उसके आगे अम्बारी वाला फ़ौजी हाथी खड़ा था।

दुपहर की धूप कम होने तक सबने महाड़ के बड़े भवन में विश्राम किया। जब दिन एक पहर शेष रहा तो नगाड़े, चौघड़े गरज उठे। मोरोपन्त ने पाँच हज़ार अश्वारोहियों को हाथी के आगे निकाला और इस प्रकार हाथी सेना के बीचोंबीच आ गया। पीछे घुड़सवार और पैदल सैनिक थे।

महाराज और सम्भाजी हाथी के हौदे के निकट आये। महावत ने हाथी को बिठाया। हाथी पर बैठने से पूर्व सम्भाजी ने घुटने टेककर महाराज के चरणों में अपना सिर रखा। इस समय उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि घुटने टेकना कितने भिन्न प्रकार का होता है। उन्हें स्मरण हो आया—'पुरन्धर के क़िले के निकट हमने एक बार औरंगज़ेब का शाही फ़रमान लिया था तब हमें शाही ऊँट के सामने अदब से घुटने टेकने पड़े थे। और आज?'

उन्हें उठाते हुए महाराज ने कहा, "होशियार रहो। युद्ध की होली में से जलते हुए विजय-रूपी नारियल निकालोगे न शम्भू?"

"जी, हम पूरा प्रयत्न करेंगे।" सम्भाजी ने उत्तर दिया।

"शाबाश! विजयी होकर लौटो। जय भवानी।" महाराज के नेत्रों से वीरता का तेज चमक उठा।

"जय भवानी," सम्भाजी ने उस घोष को दुहराया।

हाथी से सीढ़ी लगायी गयी। सम्भाजी हौदे में बैठे। उनके बाद मोरोपन्त भी सेना के दोनों ओर दृष्टि रख पाने के लिए हौदे में आ गये। रायाजी गाडे, अन्तोजी गाडे; रूपाजी भोसले, खण्डोजी जगताप, मोरेश्वर नागनाथ आदि अश्वारूढ़ सरदार हाथी को घेरकर चलने लगे।

झण्डाबरदारों ने झण्डे ऊँचे उठाये। रणसिंगों की हुंकारें गूँजने लगीं, नगाड़े बज उठे, अश्वसेना शानदार गति से आगे बढ़ने लगी।

आगे बढ़ने लगा शम्भू, शिव का वरदायी हस्त सिर पर रखे। आगे-पीछे दस हज़ार रणबाँकुरे मावले भी कूच कर रहे थे। युवराज की सेना को आँखों से ओझल होने तक महाराज अपने लोगों के साथ-साथ वहीं खड़े-खड़े देखते रहे। उन्हें कभी सुने हुए, किसी के कहे हुए शब्द याद आ गये—'यह बालक ऊँचे दुर्गों पर रहेगा। प्रलय मचाएगा।'

---

1. सम्भाजी का विवाह बचपन में हो गया था। पत्नी का नाम येसूबाई था। शृंगारपूर येसूबाई का मायका था।
1. पहाड़ी क़िले की चहारदीवारी पर तनिक नीचे की ओर बनाया गया ढलवाँ भाग या मंच-

https://t.me/Sahityajunction

माची। पहाड़ी क़िलों में ऐसी कई माचियाँ बनायी जाती हैं। यहाँ से दूर तक के प्रदेश पर दृष्टि रखी जा सकती है।

1. पहाड़ी दुर्गों में क़िले का मुख्य भाग 'बाला-ए-क़िला' सबसे ऊपर होता है। इसी भाग में राजप्रासाद, अन्तःपुर, राजसभागृह आदि इमारतें होती हैं।—इसे उपरिकोट कहते हैं।
1. महाराष्ट्र में भवानी के उपासकों की विशेष जाति है, जिसे 'गोन्धली' कहते हैं। देवी की स्तुति-उपासना के गीत गाकर, पोत या 'वस्त्रज्योतियाँ' हाथ में लेकर नृत्य-गीत द्वारा ये देवी के चरणों में अपना भक्ति-भाव समर्पित करते हैं। पोतराज = 'कीर्तन-नृत्य' दल का मुख्य व्यक्ति।
1. वर्तमान महाराष्ट्र के विदर्भ प्रदेशान्तर्गत अकोला, अमरावती, आदि कुछ ज़िले।
2. महाराष्ट्र के धुले और जलगाँव ज़िलों का भू-भाग।
1. रायगढ़ दुर्ग पाचाड़ से ढाई हजार फ़ीट ऊँचाई पर स्थित है। यह पर्वतीय मार्ग अति दुर्गम है तथा लगभग चार मील लम्बा है। चढ़ने-उतरने में तीन-चार घण्टे लगते हैं।
1. उत्तरी महाराष्ट्र में स्थित नासिक ज़िले का एक भूभाग।

https://t.me/Sahityajunction

तीन

मंज़िल-ब-मंज़िल होते हुए सेना जव्हार के निकट आ पहुँची। जव्हार—झाड़-झाड़ियों के बीच बसा हुआ वह नगर दूर से दिखाई दे रहा था। मोरोपन्त युवराज सम्भाजी के साथ हौदे में बैठे थे। उन्होंने नगर की ओर संकेत करते हुए सम्भाजी को दिखाया, "वह है कोली लोगों के राजा विक्रमशाह की ऊँची कोठी का कलश।"

सम्भाजी ने सावधान होकर देखा—ऊँचा कलश साफ दिखाई दे रहा था। आज उनकी छाती में एक विशिष्ट अनुभूति हुई—महाराज के समान ही उनकी भौंह ऊपर तन गयी। हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। उन्होंने तलवार की नोक को जव्हार की दिशा में रखकर युद्ध की हुंकार भरी, "हरऽ हरऽ महादेव!"

आगे-पीछे की सेना ने हज़ारों गुना ज़ोर से वह घोष गुँजाया, "हरऽ हरऽ महादेवऽऽ!" मोरोपन्त अपनी घुड़सवार सेना के सेनानियों के नाम पुकारकर आदेश दे रहे थे, "नगर को चारों ओर से घेर लो। डंके, नगाड़ों का कोलाहल मचाओ। एक घुड़सवार के साथ दो पदाति-सैनिक रखो। आगे बढ़ो—बोलो—हर-हर महादेव!" सूरत शहर से केवल पच्चीस कोस की दूरी पर बसा जव्हार नगर देखते-ही-देखते सम्भाजी की घुड़सवार सेना की चपेट में आ गया—चारों ओर से घिर गया।

मराठों ने मार्ग में कई कोलियों को क़ैद कर लिया था। अब उन्हें धमकाकर घोड़ों पर बिठाया। उन्हें सामने रखकर मराठों की एक टुकड़ी जव्हार में घुस दौड़ी। ये क़ैदी बनाये कोली लोग अपनी कोली भाषा में पुकार-पुकारकर कह रहे थे, "भागो, मराठे आ गये। शिवाजी का बेटा सम्भाजी ही ख़ुद बड़ी फ़ौज लेकर चढ़ा आ रहा है। दौड़ो, भागो।"

सारे नगर में पुकारों-अफ़वाहों की खलबली मची हुई थी। घुड़सवारों की पहली टुकड़ी दौड़ती हुई दूसरी ओर से शहर के बाहर निकल गयी। उसका काम पूरा हो गया था।

कोली लोग चकराये हुए थे। वे समझे कि सेना का ज्वार उमड़ा चला आता है। इसी चकराहट-हड़बड़ाहट का फ़ायदा उठाते हुए पाँच हज़ार मावले पैदल सैनिक भाले-तेगें तानकर 'जय भवानी' की गर्जना करते हुए चारों ओर से जव्हार में घुस पड़े। लोहे से लोहा बज उठा।

कोली-राजा विक्रमशाह इतना घबरा गया कि अपने कुछ साथियों के साथ वह कोठी से

https://t.me/Sahityajunction

बाहर आया और नासिक की ओर भाग निकला—मुग़लों की छावनी में आसरा पाने। परन्तु यहाँ अपनी प्रजा को वह मराठा घोड़ों की टापों-तले दब जाने के लिए बेसहारा छोड़ गया।

राजा भाग गया—जव्हार अनाथ हो गया। अब तो ख़ूब लूटपाट मची। सोना, चाँदी, मोती, न जाने क्या-क्या सम्पत्ति मराठों के हाथ आयी।

सम्भाजी का फ़ौजी हाथी जव्हार में प्रविष्ट हुआ। हाथी के गले में बजते चाँदी के घण्टे की आवाज़ मराठों ने सुनी। वे अब झटपट सारा लूट का माल लेकर नगर के बाहर निकलने लगे। शहर का एक चक्कर लगाकर सम्भाजी जव्हार की पश्चिम दिशा में आये। वहाँ डेरे-शामियाने तानने का काम शुरू था। कुछ ही देर में सेना के पड़ाव की पूरी तैयारी हो गयी।

इसी खंबायत नामक प्रदेश में पिता, शिवाजी ने दो बार सूरत[1] शहर में लूट मचायी थी और आज सूरत से सिर्फ़ पच्चीस कोस पर स्थित जव्हार को पुत्र सम्भाजी ने लूटा था।

पड़ाव में एक चौतरे जैसी बैठक बनायी गयी थी। युवराज सम्भाजी वहाँ बैठे हुए थे। उनके सामने सोने, चाँदी, रुपये, मोती आदि का ढेर लगाया गया था। सब वस्तुओं को अलग-अलग करके कई ढेर लगे थे। कुल सत्रह लाख रुपयों के मूल्य की सम्पत्ति लूट में मिली थी।

जिन कोलियों ने जमकर लड़ाई की थी, उन्हें आख़िर क़ैद करके और मुश्कें कसकर युवराज के सामने लाया गया। भारी-भरकम देह वाले कोलियों के मुख पर अभी भी ऐंठ थी, मानो वे कोई भी सज़ा भोगने को तैयार हों।

मोरोपन्त ने विजय-वार्ता का पत्र लिखकर तैयार रखा था। इस पत्र पर सम्भाजी ने हस्ताक्षर किये। फिर वह पत्र की थैली एक ख़बरगीर को दे दी गयी, जो इसे महाराज के पास ले जानेवाला था।

“जिन लोगों को क़ैद किया गया है, उनके बारे में युवराज निर्णय करें, यह प्रार्थना है।” क़ैदियों की ओर इशारा करके मोरोपन्त ने नम्रतापूर्वक कहा।

सम्भाजी ने एक बार उन लोगों पर नज़र घुमाकर देखा। आख़िर वे कोली लड़े तो अपने देश की सुरक्षा के लिए ही न। सम्भाजी का हाथ छाती पर पड़ी कौड़ियों की माला पर गया और शिवतिलक की रेखाएँ आकुंचित हो गयीं। शान्त और धैर्य वाणी से वे बोले, “पन्त, इनमें से जो लोग अपनी सेना की सेवा में सम्मिलित होना चाहें, उन्हें भर्ती कर लो। जो इसके लिए राज़ी न हों, उनकी मुश्कें खोल दो और पूरे सम्मान के साथ उन्हें वापस भेज दो।”

“जी, जैसी आज्ञा,” मोरोपन्त ने झुकते हुए आश्चर्य से कहा। युवराज का निर्णय इतना प्रौढ़ और सन्तुलित होगा, इसका उन्होंने अनुमान भी नहीं किया था।

जव्हार की छावनी उठा ली गयी। लूट का माल कड़े पहरे में रायगढ़ की ओर रवाना किया गया। अब युवराज की सेना रामनगर को अपना लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ने लगी। रामनगर से दो पड़ाव की दूरी पर सेना ने पड़ाव किया। रामनगर, सूरत से दक्षिण दिशा की ओर केवल पन्द्रह कोस की दूरी पर था।

मोरोपन्त सलाह-मशविरा करने के लिए युवराज के डेरे में आये। भीतर युवराज के ख़ास अपने लोग रायाजी, अन्तोजी आदि बैठे थे।

“युवराज, हमने यदि रामनगर पर हमला किया, तो सूरत की मुग़ल सेना उनकी सहायता को

https://t.me/Sahityajunction

दौड़ेगी।" मोरोपन्त ने मुजरा करते हुए कहा।

"इसलिए कुछ ऐसा करना चाहिए कि सूरत भी हमारी धाक में रहे," सम्भाजी ने पन्त के विचार को आगे बढ़ाया।

"धाक बैठाने के लिए हम यह करें कि रामनगर पर हमला बोलने से पहले एक बार अपनी घुड़सेना को सूरत के चारों ओर दौड़ा लावें।" मोरोपन्त ने सलाह पेश की।

खण्डोजी जगताप और रूपाजी भोसले को यह सलाह बहुत पसन्द आयी। परन्तु इस सलाह को सुनकर युवराज गहरे सोच-विचार में डूब गये। बरसात के मौसम में बारिश-आँधी का कोई भरोसा नहीं, तब फ़ौज को दो हिस्सों में बाँटना क्या उचित होगा?

"हम सोचते हैं कि सूरत के सूबेदार को एक ख़लीता भेजा जाय और उससे खण्डनी माँगी जाय। उसे ऐसा भ्रम करवा दिया जाय, मानो स्वयं महाराज ही इस मराठा सेना के साथ हैं। सूरत शहर में अपने गुप्तचर भेजकर ऐसी अफ़वाह फैला दी जाय। इस प्रकार सूरत की सेना अपने शहर को बचाने में ही अटक जाएगी?"

मोरोपन्त और अन्य लोग युवराज की ओर देखने लगे। युवराज की सुझाई युक्ति अकाट्य थी। सभी ने यह चाल पसन्द की।

"चार लाख रुपये खण्डनी के रूप में तुरन्त लाकर पेश करो, वरना शिवाजी राजा अपनी सेना के साथ शहर पर हमला बोल देंगे।" पन्त ने धमकी-भरा ख़लीता सूरत के सूबेदार को भेज दिया। उस थैलीवाहक सवार के साथ-साथ चतुर गुप्तचर भी सूरत में घुस गये।

परिणाम सही हुआ। सूरत में हाहाकर मच गया। रामनगर पर धावा बोलने का यही उचित समय था, परन्तु इसी समय गुप्तचरों द्वारा समाचार मिले कि नासिक और बागलाण के क्षेत्र में विक्रमशाह तथा दिलेर ख़ाँ फ़ौजें सजाने में लगे हैं। इस पर और कठिनाई बरसात की भी आ खड़ी हुई। सम्भाजी की फ़ौजें इस कारण रामनगर से पीछे हटकर सुरक्षित स्थान पर आ गयीं। गुजरात की बरसात से मावली डेरे और कनातें भीगने लगीं।

वर्षा ने इसी प्रकार एक पखवाड़े तक मराठा सेना को रोके रखा। इसी बीच मोरोपन्त ने सूरत के सूबेदार को दो पत्र और भेजे, ताकि वह जान सके कि मराठा सेना अभी खंबायत के इसी प्रदेश में डेरा डाले है।

जब बरसात थोड़ी कम हुई, तो मराठा सेना फिर रामनगर पर चढ़ दौड़ी। "मराठे आ रहे हैं," यह सुनकर रामनगर का सोमशाह पहले ही भाग खड़ा हुआ था। वह अपने परिवार सहित सूरत प्रदेश में गणदेवी के निकटवर्ती चिरवली ग्राम में डेरा डाले बैठा था।

रामनगर की भी वही अवस्था हुई, जो राजा के भाग जाने के कारण जव्हार की हुई थी। बेचारा रामनगर घनघोर वर्षा की मार से व्याकुल था ही, उस पर सम्भाजी के शस्त्रधारी सैनिकों ने उसे लूटकर पूरी तरह साफ कर दिया।

उधर सूरत के सयाने सूबेदार ने एक निराली तरकीब खोज निकाली थी। शिवाजी को रोकने के बहाने वह अपनी ही रय्यत से पैसे वसूल कर रहा था।

रामनगर की लूट में मिले माल को बोरियों में भरकर मुहरें लगा दी गयीं। छावनी में ही युवराज ने आहतों के सम्मानार्थ दरबार आयोजित किया। दोनों हमलों में जिन बहादुरों ने वीरता

https://t.me/Sahityajunction

दिखलायी थी, उन्हें सोने के कड़े, तोड़े, मुहरें, सम्मान-वस्त्र आदि वस्तुएँ भेंट की गयीं।

आकर्षक रूपवाले युवराज सम्भाजी को छावनी में अपने बीच देखकर मावले सैनिक विशेष रूप से उल्लास का अनुभव कर रहे थे। स्थान-स्थान पर, रात को अलाव के आगे, वे सम्भाजी की प्रशंसा करते न थकते थे।

वहीं एक दिन सम्भाजी ने रूपाजी, रायाजी, अन्तोजी आदि साहसी साथियों के साथ रामनगर के निकटवर्ती वनों में शिकार भी किया। हाँके में प्राणी तो थे अनेक, परन्तु सम्भाजी ने हाथी के हौदे में बैठकर गोली चलायी केवल काले-तगड़े सूअरों पर। शिकार को छावनी में लाया गया। सैनिकों को उस दिन सागौती का तीख़ा ताज़ा भोजन मिला, तो उस सर्दी की ठिठुरन के वातावरण में भी वे ताज़े हो गये।

मराठा सेना ने सूरत को एक बार चकमा दिया और रामनगर का पड़ाव हटाकर वह दूसरी ओर चल पड़ी। इस बार वह पश्चिमी पर्वत शृंखला को लाँघकर नासिक-त्र्यम्बक की दिशा में बढ़ रही थी।

नासिक पहुँचकर सेना को दो टुकड़ियों में बाँटा गया। एक ने त्र्यम्बक को अपना निशाना बनाया, और दूसरी टुकड़ी ने नासिक पर आक्रमण कर दिया।

जव्हार के विक्रमशाह और दिलेर की सम्मिलित सेना ने उस मराठी फ़ौज पर हमला कर दिया, जो छावनी के उत्तर भाग में थी। वहाँ बड़ी मारकाट मची। कई मावले सैनिक हताहत हो गये। परन्तु मराठा सैनिकों ने भी धारराव कोली और राजा विक्रमशाह के पुत्र को गिरफ़्तार कर लिया था और उन्हें मौत की सज़ा दी थी।

नासिक (उर्फ़ गुलशनाबाद) की मुग़ल छावनी जाधवराव के नियन्त्रण में थी। जाधवराव मुग़लों की ख़िदमत में थे और शिवाजी महाराज के सगे ममेरे भाई थे। इस तरह सम्भाजी के वह ममेरे चाचा हुए।

गोदावरी नदी ने देखा कि नासिक और त्र्यम्बक दोनों नगर मराठों ने जीत लिये हैं।

रूपाजी भोसले ने मुग़ल सरदार जाधवराव को क़ैद कर लिया था। जाधवराव की मुश्कें कसकर नासिक की फ़ौजी छावनी में युवराज सम्भाजी के सामने लाया गया। सम्भाजी ने अपने ममेरे चाचा सिन्दखेड के निवासी जाधवराव को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा। अपनी माँ साहिबा के ये भानजे, ये हमारे चाचा आज मुग़ली पहनावा पहने सामने खड़े हैं। उनके हृदय में उद्विग्नता मच गयी तथा जिजाऊ की याद आते ही उनका हाथ छाती पर आ गया। इसे देखकर जाधवराव को भ्रम हो गया। वह समझे—युवराज के मन में ख़ून का रिश्ता जाग उठा है और युवराज ने उन्हें ही नमस्कार किया है।

“रूपाजी, चाचा साहब की मुश्कें खोल दो,” सम्भाजी ने अतीव शान्ति से कहा।

रूपाजी चौंक उठा। कुछ देर के लिए वह सम्भ्रमावस्था में खड़ा रहा।

“रूपाजीऽऽ!” बैठक पर से चाबुक के फटकार जैसी तेज़ आवाज़ आयी। रूपाजी ने झटपट मुश्कें खोल दीं।

मोरोपन्त युवराज की दायीं ओर खड़े थे। युवराज ने उनसे कहा, “पन्त, चाचा साहब को बतलाओ कि वह युवराज के सम्मुख खड़े हैं। अभी तक दरबार की प्रथा के अनुसार मुजरा नहीं

https://t.me/Sahityajunction

किया है उन्होंने।”

“जी,” मोरोपन्त ने झुकते हुए कहा और वह जाधवराव के पास आये। उन्होंने चेतावनी दी, “राव, तुम क़ैदी हो। युवराज को मुजरा करो।”

अब जाधवराव चौंके। उनकी गरदन तन गयी और आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं—बोले, “बाघ को क़ैद करोगे, तो भी वह घास नहीं खाएगा। अल्हड़ बच्चों को मुजरा करनें की रीत नहीं है जाधवराज के कुल में।”

“कौन है बाघ?” सम्भाजी के नेत्रों से आग बरस रही थी। वे झटके से बैठक पर से उठे। उनकी फटकार-भरी आवाज़ सुनकर पन्त, रायाजी आदि ऊपर से नीचे तक काँप उठे थे।

अत्यन्त निडर भाव से कदम बढ़ाते हुए सम्भाजी जाधवराव के सामने गये। भाले की-सी तीखी नज़र को चाचा साहब की आँखों में गड़ाकर, नथुने फुलाकर, कोड़े की फटकार की-सी तेज़ आवाज़ में वे बोले, “शेर घास नहीं खाता है, हम जानते हैं। मगर एक पाली हुई बिल्ली के मुँह से यह रीत की बात अच्छी नहीं लगती।...वास्तव में आपका स्थान इतना ऊँचा है कि हम आपको देखते ही चरणों में प्रणाम करें।...परन्तु आज हमें आपको चाचा साहब कहते हुए शर्म आती है। हमारी माँ साहिबा के भानजे हैं आप। इसलिए आपको मुजरा पेश करना ही चाहिए—हमें नहीं, उन्हें—माँ साहिबा को। हमें देखकर आपको याद आयी क्या अपनी बुआ की? हमें तो आपको देखते ही माँ साहिबा की याद आ गयी। चुपचाप मुजरा पेश करो उस गद्दी को—हमारी नहीं, माँ साहिबा की गद्दी को। नहीं तो...!”

“नहीं तो क्या करोगे?” जाधवराव ने भौंह टेढ़ी करके घमण्ड से कहा।

“क्या करेंगे हम? जिस जीभ से तुम जाधवराव के कुल की ‘रीत’ गा रहे हो, उसे काट कर यहीं तुम्हारे हाथ में रखवा देंगे हम। पन्त।”

सम्भाजी की साँस ग़ुस्से से फूल उठी थी।

“रावऽऽ, युवराज को और उस गद्दी को मुजरा करो सीधी तरह,” मोरोपन्त ने जाधवराव के कन्धे झकझोरते हुए कहा। आज उन्होंने युवराज का ग़ुस्सा देखा था...उनका मन सन्त-से रह गया था।

एक क्षण बीता—दो क्षण बीते। फिर जाने क्या हुआ—ज़िन्दगी-भर तसलीम कोर्निश कर-करके जिनकी कमर टेढ़ी हो चुकी थी, वह जाधवराव अपने बीते जीवन का सारा चित्र आँखों के सामने देखकर विह्वल हो उठे। उनकी आँखों के कोने गीले हो गये और साँस फूल उठी। इसी अवस्था में जाधवराव आगे बढ़े और उन्होंने सीधे जाकर सम्भाजी के पैर पकड़ लिये। आवाज़ भर्रा उठी। गरदन हिलाते हुए बोले, “बुआजी के पैरों में प्रणाम करने की हमारी योग्यता नहीं है, सच तो यह है कि तुम्हारे पैरो...”

क्षण-भर में ही युवराज का रूप बदल गया। उन्होंने शीघ्रता से जाधवराव को ऊपर उठाया। मन ने कहा—‘ये माँ साहिबा के रिश्तेदार हैं। भानजे हैं—हमारे ममेरे चाचा हैं।’ उनकी आँखों में जल भर आया। मन में सोया हुआ ‘छोटापन’ इस दम जाग उठा। वे झुके और जाधवराव के चरणों को हाथ लगाया।

नासिक-त्र्यम्बक के मुग़लिया सरदार आज ‘श्री’ भवानी के राज्य की सेवा में सहायक बन

https://t.me/Sahityajunction

गये!

सम्भाजी की सेना अब वापसी के मार्ग पर चल पड़ी। रास्ते में वणी-दिण्डोरी नामक मुग़लिया थाने को जीतकर वहाँ के थानेदार, सिद्दी हिलाल को सम्भाजी ने 'स्वराज्य' की सेना में भर्ती कर लिया और मराठा फ़ौज रायगढ़ की दिशा में कूच करने के लिए मराठा प्रदेश में पहुँच गयी।

मोरोपन्त ने कुछ थैली-सवार रायगढ़ की ओर आगे दौड़ाये थे। उनके साथ पत्र भेजा था, "स्वामी द्वारा निश्चित ध्येय में सफलता पाकर युवराज वापस लौट रहे हैं।"

रास्ते में आनेवाली नदियों को नौकाओं द्वारा पार करते हुए मावली सेना अपने मावल देश की ओर जा रही थी। वर्षा ऋतु का वेग कम हो चुका था। युवराज हौदे में बैठकर आसमन्त भीगे-निखरे हुए मराठा प्रदेश को निहारते जा रहे थे। हौदे में उनके पीछे मोरोपन्त तथा जाधवराव बैठे थे।

हाथी के गले में बँधी चाँदी के घण्टे की खनखनाहट से सम्भाजी किसी दूसरे लोक में पहुँच गये थे। वह खनखनाहट बढ़ते-बढ़ते पाचाड़ की हवेली के घण्टे की टनटनाहट जैसी हो रही थी। कहीं दूर पर एक पतली-सी श्वेत रंग की निर्मल निर्झर धारा ऊँचे कगार पर से नीचे गिर रही थी। सम्भाजी की आँखों ने समझा—'यह पतली श्वेत जलधारा नहीं है, यह तो वही श्वेत रेखा है, जिसे हम मावल माची पर खड़े होकर नीचे पाचाड़ की हवेली में देखा करते हैं।'

कभी-कभी युवराज को काव्य पंक्तियों का स्मरण हो आता था—प्रतीत होता था, दिवाकर गोसाईं अब भी कह रहे हैं—यशवान्, कीर्तिमय, वीरोत्तम, वरदायी...

"भूमण्डल में धर्म बचाये। कौन अन्य वह वीर?
महाराष्ट्र का धर्म बचाया। तुमने ए रणधीर।"

काव्य पंक्तियों को दुहराते हुए सम्भाजी के मन को एक विचार ने व्याकुल बना दिया—'काश, हमें भी समर्थगुरु जी के समान सरस कविता-कला प्राप्त होती! तब हम इस दूर पर दीखने वाली श्वेत रेखा को, हमारी माँ साहिबा को, शब्दों में बाँध पाते। काश, उनकी और महाराज साहब की चरण-धूलि से पावन हो सकते हम, जगदीश्वर के मन्दिर द्वार का कच्छप बन पाते!'

एक-एक पड़ाव तय करते हुए युवराज और मोरोपन्त की वह विजयी सेना पाचाड़ तक आ पहुँची। हरकारों ने रायगढ़ में ख़बर पहुँचा दी। महाराज अपने सरंजाम के साथ पालकी में बैठकर नगर-द्वार पर उपस्थित थे—युवराज की अगवानी के लिए। उन्हें आया देखते ही सम्भाजी तेज़ी से आगे बढ़े और उन्होंने महाराज के चरणों का स्पर्श किया। महाराज ने उन्हें उठाया और छाती से लगा लिया। रायगढ़ से तोपों के गोले दनदनाते हुए छूटकर इस स्वागत की शान बढ़ा रहे थे।

युवराज, महाराज, मोरोपन्त, जाधव चाचा आदि सब जन पैदल चलकर पाचाड़ की हवेली तक आये। पुतलाबाई सभागृह की देहली पर आयी खड़ी थीं। उन्होंने मुट्ठीभर चावल लेकर विजयी युवराज के मुख के चारों ओर घुमाया और न्यौछावर करके दूर फेंक दिया। सब जन जिजाऊ की बैठक के महल में आये। जिजाऊ इस बार स्वयं पाँच कदम आगे बढ़ आयीं।

https://t.me/Sahityajunction

युवराज चरणों में प्रणाम करने को झुकना चाहते थे कि जिजाऊ ने उन्हें उठाकर अंक में भर लिया। फिर अपने झुर्रीदार होठों से सम्भाजी के माथे के शिवतिलक को चूम लिया।

जिजाऊ ने जीवन में न जाने कितने उतार-चढ़ाव देखे थे। आज उनकी आँखें भर आयीं—हमारे लाड़ले युवराज का यह विजयी रूप देखने के लिए आज हमारी बड़ी बहू जीवित होती तो...। उनकी आँखों के सामने एक साँवला पत्ता कहीं दूर से उड़कर आ गया। युवराज की पीठ पर हाथ फेरते हुए उनके मुख से बोल निकले, "सदा विजयी बनो!"

"आऊ साहिबा, आपसे भेंट करने के लिए हम अपने साथ एक बड़ा आदमी लाये हैं। आज्ञा करें तो सामने लाया जाए।" युवराज ने मन्द हँसी हँसते हुए कहा।

"हाँ, हाँ। हम तो पाचाड़ में इसीलिए ठहरी हैं कि सबसे भेंट हो। बुला लो उन्हें।" जिजाऊ ने कहा।

युवराज ने जोत्याजी को आँख से संकेत किया। थोड़ी ही देर में जोत्याजी जाधव चाचा को साथ लिये बैठक-महल में आया। जिजाऊ ने जाधवराज को देखा और उनके माथे की झुर्रियों में और अधिक सिकुड़नें उभर आयीं। उनका मन सुदूर अतीत काल में पहुँच गया।

"आऊ साहिबा, चाचा साहब को अपने बरताव का पछतावा है। उनका मुजरा आप कृपया स्वीकार करें!" सम्भाजी ने देख लिया था कि जिजाऊ जाधवराव को देखकर असमंजस में पड़ गयी हैं, इसी कारण स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा।

परन्तु इतने ही में जाधव चाचा तुरन्त आगे बढ़े और जिजाऊ के चरणों में जा पड़े। जिजाऊ ने देखा था, उन्हें ख़ूब याद था कि उनके मायके के लोगों ने आपस में फूट, लड़ाई की वजह से क्या-क्या नहीं भोगा था। मायके के कई रिश्तेदारों ने लाचार बनकर मुग़लों की दासता स्वीकार ली थी। ये सब बातें उन्हें ख़ूब याद थीं। उनका मन खिन्न हो गया। पलँग के हत्थे को पकड़कर वे बैठ गयीं। महाराज और सम्भाजी झट से उनके दोनों ओर आकर खड़े हो गये।

"इन्हें जाने दो, राजा," जिजाऊ की वाणी मद्धम थी, सिर इधर-उधर हिल रहा था। जाधवराव ने यह देखा तो वह लज्जा के कारण महल से बाहर चले गये।

जाधवराव को आज समझ आया कि जिजाऊ का नाम लेते ही नासिक में उस दिन सम्भाजी की आँखें आग क्यों बरसाने लगी थीं। जिजाऊ का सम्मान उन्हें प्राणों से भी प्यारा जो था।

उस दिन सबने पाचाड़ में मिलकर भोजन किया और सब जन चढ़कर रायगढ़ आ गये। सब लोग ऊपर क्या आये, युवराज की प्रथम विजय-गाथा ही दुर्ग चढ़कर आ पहुँची थी।

श्रावण मास के आते ही रायगढ़ में धूप-छाँव की आँख-मिचौनी का खेल चल रहा था। महाराज की यात्रा के प्रस्थान से पूर्व की समस्त व्यवस्था की जा रही थी। महाराज जिस शिवलिंग की नित्य पूजा करते थे, उसे उनके सहायक खण्डोजी दामाड़े ने एक लकड़ी की सन्दूक़ची में रखा। इस शिवलिंग पर सर्प के फन का छत्र था। महाराज समर्थगुरु रामदास से भेंट करने चाफल की गढ़ी की ओर जा रहे थे। रायगढ़ का प्रबन्ध उन्होंने युवराज सम्भाजी के हवाले किया था।

"समर्थ जी का दर्शन करके हम तुरन्त वापस आ जाएँगे। हमारी अनुपस्थिति में रायगढ़ की

https://t.me/Sahityajunction

देख-रेख तुम्हें करनी है। सबको साथ लिये कर्म-कर्त्तव्य पूर्ण कर दिखाओ!" महाराज ने रायगढ़ के राजसभागृह से निकलते समय युवराज से कहा।

"जैसी आपकी इच्छा...," सम्भाजी कुछ कहना चाहते थे, परन्तु शब्द अटक कर रह गये।

"कहो, कहो।"

"समर्थ महाराज को हमारा नमस्कार कहें।"

"हाँ, हाँ, अवश्य।"

"और...और..." सम्भाजी बात पूरी तरह कह नहीं पा रहे थे।

"क्या बात है, कहो न!"

"हमारी...हमारी प्रार्थना है कि समर्थ जी ने अपनी कविता के 'ओवी' नामक छन्द में जिस प्रकार आपकी महिमा का वर्णन किया है, उसी प्रकार यदि वे माँ साहिबा का भी कर सकें तो...। सचमुच उनकी वाणी रस से परिपूर्ण है।"

महाराज पहले मन्द मुस्कराये और फिर उनके मुख पर गम्भीरता छा गयी। सम्भाजी के कन्धे पर हाथ रखकर कुछ देर वे यूँ ही खड़े रहे। वे कहना चाहते थे—'हाँ, बिलकुल यही विचार—ऐसी ही बात हमारे भी मन में उस समय आयी थी, जब हम समर्थ जी का भेजा पत्र सुन रहे थे।'

परन्तु उन्होंने इस विचार को मन में ही रखा और इस भाव को इस रूप में प्रकट किया, "युवराज, माँ साहिबा की गुणगाथा को शब्दों में बाँधना अतिकठिन कार्य है। सम्भवतः समर्थ जी इसी कारण उस विषय में अब तक मौन रहे हैं। हम अब चलते हैं। तुम्हें स्वयं पाचाड़ की हवेली का ध्यान रखना है। 'ओवी' छन्द सुनने की अपेक्षा अपनी इच्छानुसार दुर्ग के नीचे उतरकर तुम उनके दर्शन कर ही सकते हो। तो ठीक; हम चलते हैं अब।"

महाराज मुड़कर चल दिये। पीछे-पीछे मोरोपन्त, अण्णाजी, प्रतापराव आदि मन्त्री एवं अन्य सेनानी-गण थे।

युवराज महादरवाज़े तक पैदल चलते हुए उनके साथ गये। वापस लौटते समय उनका ध्यान गया गंगासागर की ओर, जिसका जल सावन की धूप में चमचमा उठा था। उसका सुनहरा रुपहला रूप देखकर सम्भाजी के मन में भाव उठा—'हमारे आबासाहब भी तो ऐसे ही हैं। कितने रूप हैं उनके! कितनी विचारों, भावों की तरंगें हैं उनके मन में!'

नागपंचमी के पर्व में केवल दो दिन शेष थे। महारानी सोयराबाई ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक अपने निजी राजकर्मचारी से कहकर आभूषणों की तथा बहुमूल्य वस्त्रों की सूची तैयार की, जिन्हें वे पर्व के लिए आवश्यक मानती थीं। फिर उन्होंने वह सूची अपने सेवक के हाथ अधिकारी मुजूमदार निलोपन्त सोनदेव के पास भिजवा दी।

सेवक निलोपन्त का निवेदन लेकर फिर सोयराबाई के पास लौट आया, "आवश्यक गहनों और वस्त्रों की सूची पर युवराज के सिक्के और आज्ञा-पत्र का होना आवश्यक है, जिसके बिना वस्त्रागार की मुहर तोड़ी नहीं जा सकती।"

सेवक के मुख से यह बात सुनते ही सोयराबाई के तन-बदन में आग लग गयी। नाक-कान की लौ और आँखें लाल हो आयीं। बेचारे सेवक का क्या अपराध था, परन्तु सोयराबाई उस पर

https://t.me/Sahityajunction

ही बरस पड़ीं।

"मुजूमदार की यह मजाल कि हमें ऐसी सूचना भेजे। महाराज को छोड़कर हम किसी ऐरे-गैरे के सिक्के-आज्ञापत्र की परवाह नहीं करतीं, क्या यह उन्हें पता नहीं है?"

उस समय धाराऊ वहाँ बैठी थी और डेढ़ वर्ष के राजाराम को कुरता-पाजामा पहना रही थी। सोयराबाई की तीखी बात सुनकर उसका मन काँप उठा। वह बूढ़ी थी, अनुभवी थी। भली भाँति जानती थी वह कि अगर आसमान में गड़गड़ाहट हो, तो चार बूँदें क्यों न हों, बरसती ज़रूर हैं। उसने राजाराम के माथे पर शिवतिलक की रेखाएँ बनायीं और उन्हें साथ लिये वह सोयराबाई के महल से बाहर निकली। बाहर निकलते समय उसने दूर से ही सुना—सोयराबाई सेवक से कह रही थीं, "जाकर मुजूमदार से कह कि हमने बुलाया है।"

धाराऊ नन्हे राजाराम को लेकर युवराज के महल में आयी। नन्हे राजाराम ने अपने दादा को आते देखा, तो तेज़ी से दौड़ते हुए, 'दादा-दादा' कहते हुए सम्भाजी की ओर लपके। सम्भाजी ने झुककर उसे उठाकर छाती से लगा लिया। बच्चा मचल-मचलकर उनकी बाँहों में खेलने लगा। उसे रोकते हुए युवराज बोले, "अरे, अरे। ज़रा धीरे भाई, ज़रा धीरे। तुम्हारे जन्म के समय हमने सुना था—तुम मुग़लिया सल्तनत को पलटकर रख दोगे, परन्तु तुम तो ऐसे दौड़ते आये कि जैसे अपने दादा साहब को ही पलट दोगे।" सम्भाजी ने यह बात नितान्त अबोध भाव से कही थी, परन्तु धाराऊ इसे सुनकर एकदम चौंक उठी। उसने घबराकर चारों ओर देखा कि कहीं कोई सुनता न हो। फिर धीरे से फुसफुसाकर सम्भाजी से बोली, "छोटे राजा, उनसे ऐसी बात मत कहो। पहले ही लोग तिल का ताड़ बनाने की ताक में रहते हैं, तिस पर आपकी ऐसी हँसी में कही गयी बातों का न जाने क्या बेतुका अर्थ लगाया जाय!"

"क्यों, क्या हुआ धाराऊ?" राजाराम की पीठ पर हाथ फेरने वाले युवराज ने हड़बड़ाकर पूछा।

धाराऊ ने सोयराबाई के महल में देखा हुआ क़िस्सा कह सुनाया। युवराज का फिर रहा हाथ अकस्मात् रुक गया। फिर उनके माथे के तिलक की रेखाएँ खिंचकर उलझ गयीं। दरवाज़े की ओर देखकर उन्होंने आवाज़ दी, "मुतालिऽऽक!"

एक सेवक भीतर आया। सम्भाजी ने उसे आज्ञा दी, "जा, महादेव यमाजी से कह कि हमने मुजूमदार निलोपन्त को याद किया है।"

नन्हे राजाराम से खेलते हुए युवराज इधर-उधर टहलने लगे। धाराऊ के हाथ-पाँव काँप रहे थे। मौन बनकर वह सोच रही थी—'जाने अब क्या होगा?'

मुतालिक महादेव यमाजी और मुजूमदार निलोपन्त भीतर आये। मुतालिक महादेव यमाजी उनके पीछे था। सोयराबाई ने निलोपन्त को बुरी तरह खरी-खोटी सुनायी थी। बौखलाए हुए मुजूमदार मुजरा करना भी भूल गये। आते ही कहने लगे, "हम चाकर लोग क्या करें, युवराज? बड़े सरकार की आज्ञा है कि आपके आदेश के बिना वस्त्र एवं भूषणागार की मुहर न तोड़ी जाय।"

"पन्त, वह सूची हमें दो।" सम्भाजी ने शान्ति से कहा। नन्हे राजाराम को उन्होंने धाराऊ को दे दिया। निलोपन्त ने सूची युवराज को दे दी। युवराज ने एक बार उसे देखा और बोले, "आओ

https://t.me/Sahityajunction

हमारे साथ।”

धाराऊ कहना चाहती थी—‘वहाँ मत जाओ, छोटे मालिक।’ परन्तु जैसे उसके मुख पर मुहर लग गयी थी।

युवराज निलोपन्त के साथ वस्त्रागार तक आये। उन्हें देखते ही शस्त्रधारी प्रहरी दूर हटकर खड़े हो गये।

“पन्त, मुहर तोड़ो,” युवराज का स्वर कठोर था। युवराज ने राजकर्मचारी से चाबियाँ लेकर स्वयं वस्त्रागार का दरवाज़ा खोला। फिर बोले, “अब हम एक-एक गहने का नाम लेते हैं। उन्हें तबक़ में निकालकर अलग रखो।” युवराज ने सूची पढ़ते हुए कहा। निलोपन्त झटपट भाग-दौड़कर एक-एक आभूषण निकालने लगे। सूची समाप्त हुई। परन्तु इसी समय युवराज स्वयं आगे बढ़े और खुली हुई उस अलमारी में जितने भी आभूषण रखे थे, मुट्ठी भर-भरकर तबक़ में रखने लगे।

“इस सूची के अनुसार समस्त आभूषणों को लेकर तुम स्वयं बड़ी माँ जी की सेवा में उपस्थित होओ।” सूची की दूसरी प्रति युवराज ने निलोपन्त को दे दी।

वस्त्रागार का प्रहरी तबक़ उठाने के लिए आगे बढ़ा तो सम्भाजी ने उसे रोक दिया और स्वयं ही वह तबक़ उठाकर चल पड़े।

दृढ़ मन से वे सोयराबाई के महल के सामने आये। उन्हें देखते ही महल के प्रहरी ने भीतर जाकर सूचना दी। सोयराबाई ने यह सूचना सुनी और जानबूझकर दरवाज़े की ओर पीठ फेरकर खड़ी हो गयी। युवराज तबक़ लिये महल में आये। उन्होंने चौकी पर तबक़ रखा और पीठ फेरकर खड़ी सोयराबाई को तीन बार मुजरा किया। कुछ काल यूँ ही बीत गया—बँधा हुआ-सा, अटका हुआ-सा।

“त्यौहार के लिए आवश्यक सभी आभूषण आपकी सेवा में प्रस्तुत करने हम स्वयं आये हैं, बड़ी माँ जी। इसे स्वीकार करें।”

सोयराबाई चुप्पी का पुतला बनी रहीं। उनके मस्तक के कुंकुम की रेखाओं के बीच पसीने की बूँदें उभर आयी थीं।

“और एक प्रार्थना है आपके चरणों में। इस दुर्ग के सभी सेवक आपके ही हैं। हमें भी अपना सेवक ही समझिए। आपको जिस चीज़ की आवश्यकता हो, कृपया हमें आदेश दें।” इस कथन में एक कुलीनता, एक विनम्रता थी।

अब सोयराबाई भीतर-ही-भीतर जल-भुनकर रह गयीं। युवराज ने ऐसा आचरण दिखाया था कि सोयराबाई की सब चालें बेकार हो गयी थीं। फिर भी उनका नाम था—सोयराबाई। मुँह दूसरी ओर करके ही उन्होंने टेढ़ी व्यंग-गर्भित बात कही, “हमारी बहू को यदि आवश्यकता हो, तो क्या इसी तरह लाओगे गहने?”

“नहीं,” सम्भाजी ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।

“क्यों? क्या मतलब?”

“मतलब यह है कि वह कुर्मी-कुनबी हैं। कुनबियों को गहनों से क्या लगाव? अच्छा, हम चलते हैं।”

https://t.me/Sahityajunction

सोयराबाई ने पहले कभी 'कुर्मी-कुनबी' कहकर टेढ़े बाँके बोलों से येसूबाई का जी दुखाया था। वे बोल इस तरह पलटकर उनसे आ टकराएँगे, यह सोयराबाई ने सोचा भी नहीं था। वे छटपटाकर रह गयीं।

सम्भाजी जब महल से बाहर जाने लगे, तो उन्हें एक बात याद आ गयी। चाहा कि कह दें—'आप अलंकारों पर प्राण न्यौछावर करती हैं, हमें तो बस यह नन्हा 'राम' अलंकार ही बहुत भाता है।' परन्तु वे कुछ बोले नहीं।

विचारों की दुनिया में खोये हुए सम्भाजी घूमते-घूमते मीनारों तक आये और उसी धुन में पहली-दूसरी मंज़िलें तय करते हुए सबसे ऊँची पाँचवीं मज़िल तक जा पहुँचे। इसी 'ठन-ठन-ठन' की घण्टा-ध्वनि पाचाड़ की ओर से उठी। सम्भाजी एकदम सोये से जागे, परन्तु अब इतना समय भी न था कि वे पाँचवीं मंज़िल से मावल माची तक पहुँच सकें। अन्ततः उन्होंने वहीं से पाचाड़ की दिशा में तीन बार मुजरा किया।

घण्टा-ध्वनि बन्द हुई और महाराज के वचन उनके कानों में गूँजने लगे—'ध्यान रखो। लोग श्रद्धा एवं प्रेम के कारण ही एक-दूसरे के लिए सब कुछ करते हैं, अवसर पड़ने पर जान भी न्यौछावर कर देते हैं। श्रद्धा...प्रेम...' एक दीर्घ निःश्वास उनकी नासिका से निकला। मन ने फिर कहा—'सच ही हमारे आबासाहब कितने मर्मस्पर्शी वचन कहते हैं!' इसी के साथ उनके नेत्रों के सम्मुख महाराज की हास्य और तेज़ से झलकती मुख-मुद्रा घूम गयी। उन्हें याद आया—महाराज आजकल यहाँ नहीं हैं। वे समर्थगुरु रामदास के सहवास में ब्रह्मानन्द लूट रहे हैं।

रायगढ़ के कुशावर्त तालाब में लगवाने के लिए रक्त, नील, श्वेत, वर्णों के कमलों की गाँठदार जड़ें सम्भाजी ने महाड़ के तालाब से विशेष रूप से मँगवायी थीं। रायाजी और अन्तोजी तालाब के पंकमय तट में इन गाँठों को लगाने-बोने के काम में मग्न थे और निकटवर्ती करंज वृक्ष की छाया में खड़े हुए इस उपक्रम को देख रहे थे। कल्पना में डूबे वे सोचने लगे—'अपनी लम्बी नालों को कीचड़ में गाड़कर जब ये विविध वर्णों के कमल इस कुशावर्त सरोवर के जल पर डोलने लगेंगे, तब कितना लुभावना रूप होगा इसका!' कल्पना मानों उनके नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष हो उठी। रायाजी, अन्तोजी ने कार्य समाप्त होते ही सरोवर की सीढ़ियों पर जाकर हाथ-पाँव धोये और सम्भाजी के पास आये।

"रायाजी, देखते हैं हम अब तुम्हारे हाथों की शक्ति का चमत्कार कैसा है! देखते हैं, इन लगाई हुई गाँठदार जड़ों में से कितनी जीवित रहती हैं।" सम्भाजी ने कहा।

"छोटे मालिक, फूलों की यह जात बहुत फैलने वाली है। ज़रा-सा पाँव जमा कि पलक झपकते दूर-दूर तक फैल जाती है। आप देखिए, ये गाँठें कुछ ही दिनों में सारे तालाब को घेर लेंगी।" अन्तोजी ने हँसकर कहा।

"क़सूर माफ हो छोटे सरकार, सरकार ने आपको याद किया है। उत्तर हिन्दुस्तान से जाने कौन दो पाहुने आये हैं। माथे पर गन्ध द्रव्य के येऽऽ लम्बे-लम्बे आड़े पट्टे हैं उनके।" ज्योत्याजी सरकार महल की ओर से आया था। उसने सम्भाजी को वृक्ष की छाया में खड़ा देखा, तो वहाँ जाकर सूचना दी।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज समर्थगुरु रामदास से मिलकर आये थे, उस घटना को अब डेढ़ महीना बीत चुका था।

"चलो," कहते हुए सम्भाजी निकल पड़े। दूर पर जगदीश्वर के मन्दिर का स्वर्ण-कलश तिरछी किरणों में झिलमिलाता उन्हें दीख पड़ा। युवराज की आँखों में उससे चकाचौंध अवश्य हुई, परन्तु मन में एक विचित्र भाव भी कौंध गया—'जगदीश्वर के मन्दिर के द्वार के निकट जो प्रस्तर निर्मित कछुआ है, क्या उसे भी कभी इस स्वर्ण कलश को देखेने का सौभाग्य प्राप्त होगा?'

'कौन होंगे भला ये उत्तरी हिन्दुस्तान के पाहुने!'—इसी सोच में सम्भाजी ने बैठक महल की देहली पार की। महाराज को देखते ही तलवार का हत्था मुट्ठी में पकड़कर उन्होंने मुजरा किया। कोई दो महाशय वहाँ विराजमान थे। उनकी ओर देखते हुए सम्भाजी आगे बढ़े।

"आओ युवराज। इन्हें पहचानते हो?" महाराज ने मुस्कराकर दोनों महाशयों की ओर संकेत करते हुए कहा।

दोनों महाशयों ने उत्तरी पद्धति से हाथ जोड़कर, कमर झुकाकर मथुरावाली शैली में उन्हें नमस्कार किया। इसके साथ ही सम्भाजी की स्मृतियों की भीतरी तहें एक-एक कर खुलने लगीं। यमुना नदी का शानदार मोड़ उन्हें याद आ गया।

इन दो व्यक्तियों में से एक के शरीर पर भगवे रंग की कफ़नी थी। दूसरे ने उत्तर भारतीय लम्बा चोगा, ज़री किनारी की धोती, उपरना और घेरेदार पगड़ी का पहनावा धारण किया हुआ था।

"ये...ये कविराज...।" नाम को याद करने के प्रयत्न के कारण सम्भाजी के माथे के तिलक में बल पड़ गये। "ये...ये हैं कवि कलश। वाराणसी के बीच रास्ते में मथुरा तक हमारे साथ रहे थे!"

"अपराध क्षमा करें युवराज। हम कवि कलश नहीं, कवि कुलेश हैं।" कविजी ने हँसते हुए सम्भाजी की भूल को सुधार दिया।

"और यह दूसरे महाशय हैं...कवि परमानन्द। हम से आगरा की कोठी में मिले थे।" महाराज ने कफ़नी पहने व्यक्ति का परिचय कराया।

"युवराज, इन महाशयों का कथन है कि वे केवल हमसे मिलने आये हैं। दो-चार दिन यहाँ विश्राम कर लौट जाएँगे। ज़रा इन्हें तुम बतलाओ कि तुम्हें कविता से कितना लगाव है। हम तो इनसे यहीं रह जाने का आग्रह कर रहे हैं।" ऐसा कहकर महाराज हँस पड़े।

"जी, आपका कहना बिल्कुल ठीक है। हमारा भी यही आग्रह है कि ये महाशय सदा यहीं निवास करें।" सम्भाजी के इस वचन से सभी प्रसन्न हो उठे।

"हे चण्डी! माता चण्डी।" कुलेश ने हँसी के थमने पर धीरे से कहा।

एक कुम्मैती रंगवाले चमकीले शरीर के घोड़े पर सवार होकर सम्भाजी भवानी-कगार की ओर घूम रहे थे। वहाँ से बायीं ओर लिंगाणा दुर्ग दिखाई दे रहा था। दाहिनी ओर पोटला और सीधे

https://t.me/Sahityajunction

सामने की ओर तोरणा और राजगढ़ के दुर्ग भी दिखाई दे रहे थे, परन्तु दूरी के कारण वे शिखर काले-अँधियारे-से दिखाई दे रहे थे।

आज राजगढ़ को देखते ही वे उसे देखते ही रह गये। 'राजगढ़! मानो कोई गरुड़ पंख फैलाकर उड़ा ही चाहता हो!'

इतने में 'दुडऽऽ दुडऽऽ दुड' आवाज़ उठी। रायगढ़ के नक्कारख़ाने की नौबत ज़ोर से बज रही थी। थोड़ी ही देर बाद क़िले के तोपखाने की तोपों ने भी उस आवाज़ को चौगुना बढ़ा दिया।

सम्भाजी ने लगाम खींचकर घोड़े को एड़ लगायी। कुम्मैती घोड़ा पूँछ के बालों को फुलाये दौड़ने लगा। काला हौज़, जगदीश्वर-मन्दिर, बाज़ार पेठ, होली का मैदान होते हुए वे नक्कारख़ाने तक आये। वहाँ की कमान पर एक शेर की प्रस्तरमूर्ति अंकित थी, उसके फैले मुँह और उठे हुए पंजों ने इस भागदौड़ में भी उनका ध्यान खींच ही लिया। यहीं वे घोड़े से कूदकर उतर पड़े और साईस की तरफ बागडोर फेंककर झपटते हुए दरबार के चौक से आगे बढ़कर दरबार में प्रविष्ट हुए। वहाँ महाराज बैठक पर बठै थे। सम्भाजी को आया देखते ही महाराज ने कन्धे पर थाल लेकर पास खड़े मावले सैनिक के थाल में से एक मुट्ठी शक्कर भर ली।

महाराज स्वयं बैठक की सीढ़ियाँ उतरकर आ रहे हैं, यह देखकर सम्भाजी स्वयं तेज़ी के साथ आगे बढ़े। सम्भाजी मुजरा करने को झुका ही चाहते थे कि महाराज ने उन्हें ऊपर की रोक लिया।

"युवराज, लो, शक्कर से मुँह मीठा करो। पन्हाला का क़िला हमारे बहादुरों ने जीत लिया है। पूरे बारह बरस बाद हमारी अभिलाषा पूरी हो पायी है।" महाराज ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक अपने हाथ से शक्कर सम्भाजी के मुँह में डाली।

सम्भाजी को शक्कर के मीठेपन के साथ-साथ दिवाकर गोसाईं के वे मीठे बोल भी याद आ गये—

'वह नरपति वह हयपति राजा। वह गजपति वह गढ़पति!'

उस दिन सायंकाल के समय अतीव सन्तुष्ट एवं प्रसन्न मन से वे सोयराबाई के महल में गये। सोयराबाई ने वहाँ शक्कर का एक थाल दासी द्वारा चौकी पर रखवा लिया था। वे राजाराम को लिये वहीं खड़ी थीं। महाराज ज्योंही निकट आये, सोयराबाई ने नन्हे राजाराम से कहा, "जाओ। निकट जाओ। देखो तो सही, तुम्हारे आबासाहब तुम्हें क्या देने वाले हैं।"

बालक को अपनी छाती से लगाकर महाराज ने प्यार से उसके गालों को चूम लिया। बोले, "हम क्या देंगे भला इन्हें! दाता तो वह 'श्री' है, वही समर्थ है।" महाराज की दाढ़ी के स्पर्श से राजाराम को गुदगुदी हुई, तो वह दूर हटे, परन्तु महाराज ने उनके गालों पर से हथेली फिरायी। नन्हा बालक केवल तीन वर्ष का था—पूछने लगा, "श्ली क्या होती है आबासाहब?"

महाराज ने हँसते हुए कहा, "यह हमें भी कहाँ ज्ञात है बेटे? 'श्री' को जान ले, तो मनुष्य 'समर्थगुरु' ही बन जाता है।"

सोयराबाई ने पिता-पुत्र का संवाद सुना। मन में छटपटाहट और झल्लाहट मची हुई थी उनके। कुढ़ते हुए सोच रही थीं—'केवल बातें ही कर रहे हैं पिताजी अपने पुत्र से! उनके हाथों से दी गयी शक्कर से मुँह मीठा होना भी भाग्य की ही बात है शायद।'

https://t.me/Sahityajunction

सोयराबाई ने राजाराम को अपनी ओर खींच लिया। बोलीं, "आओ बेटे, इधर आओ। कहीं तुम न बन जाना समर्थगुरु।"

उस दिन दरबार में महाराज ने अपने हाथों सम्भाजी को शक्कर खिलायी थी। यह वृत्तान्त सोयराबाई के अन्तःपुर के सेवक ने महारानी जी की सेवा में ज्यों-का-त्यों बयान कर दिया था।

महाराज महल से बाहर निकलते समय गुत्थी सुलझाने का प्रयत्न कर रहे थे—'कहीं तुम न बन जाना समर्थगुरु। क्यों कहा ऐसा सोयराबाई ने?' परन्तु वे कुछ जान नहीं पाये। भला वे समझ भी कैसे पाते!

'पाडवा' का त्यौहार आया। चैत शुद्ध प्रतिपदा के शुभ पर्व पर घर-घर के ऊपर 'पाडवा-ध्वजाएँ' खड़ी की गयी थीं। लम्बे बाँस के ऊपरी सिरे पर चमचमाती धातु के गड़ुवे उलटे रखकर उस बाँस को आम के पत्तों से, बन्दनवारों से सजाया गया था। चोली-साड़ी के नये वस्त्र बाँस के ऊपरी सिरे पर लहरा रहे थे। सफ़ेद चम्पा के फूलों की मालाएँ और नये वस्त्रों के सिरे ऊँचे दुर्ग की पहाड़ी हवा में सर्वत्र फहरा रहे थे।

महाराज आज पन्हालगढ़ के क़िले को रवाना होनेवाले थे। उनके बहादुर सरदारों, कोण्डाजी, फर्ज़न्द, अण्णाजी, मोत्याजी खलेकर और गणोजी कावला ने अत्यन्त चतुराई से वह क़िला फतह किया था। महाराज सेनापति प्रतापराव गुजर और एक बड़ी फ़ौज साथ लेकर वह क़िला देखने जा रहे थे। रायगढ़ को उन्होंने सम्भाजी के अधिकार में सौंप दिया था।

पाडवा त्यौहार के विशेष भोज के पश्चात् दुपहरी ढल जाने पर महाराज युवराज और सेनापति प्रतापराव के साथ जगदीश्वर के मन्दिर में गये। मन्दिर से वे लोग बाहर आये, तो सामने लिंगाणा का क़िला और आसपास फैली हुई पर्वत-शृंखला दिखाई दे रही थी।

लिंगाणा-क़िले के पहाड़ी उतार पर 'दावानल' भड़क उठा था। न जाने दो शाखाओं के आपस में टकराने से यह जंगल जल उठा था अथवा किसानों द्वारा धान की कटाई वाले खेतों को जलाने के लिए सुलगाई आग के कारण। पूरा जंगल इस समय धधक रहा था, मानो लिंगाणा ने पीली ताम्रवर्णी ज्वालाओं के रूप में हल्दी-रोली से भरे अपने हाथ आकाश की ओर ऊँचे उठाये हुए थे।

मन्दिर के पत्थर के पुश्ते पर हाथ रखकर सम्भाजी अग्नि के इस आश्चर्यपूर्ण नृत्य को टक लगाये देख रहे थे। जब पीछे से किसी ने लम्बी-सीधी उँगलियोंवाली हथेली उनके कन्धे पर रखी, तभी उनकी समाधि टूटी। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, महाराज खड़े थे। सम्भाजी को सामने का विशाल दावानल महाराज की आँखों की पुतलियों में प्रतिबिम्बित होकर छोटा-सा होकर समाया हुआ दिखाई दे रहा था।

महाराज भी गम्भीर भाव से दावानल की ओर देख रहे थे।

"यह जंगल की आग बहुत भयानक होती है प्रभु। पंछी-पखेरू इस आग में ऐसे जा-जा पड़ते हैं, जैसे किसी ने उन्हें खींच लिया हो। व्यर्थ ही अपने पंख जला लेते हैं। पगले पंछी!" प्रतापराव सामने की ज्वालाओं को देखते हुए कह रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

“उन पखेरुओं का क्या दोष है, सेनापति! दोष इस दावाग्नि का भी नहीं है। दोषी वह क्षण है, जिसमें दो शाखाएँ आपस में टकराती हैं। क्षणों पर किसका वश चलता है भला।” सम्भाजी उनके वचनों को तृप्त होकर सुन रहे थे और आँखें उनकी पुतलियों में समाये हुए दावानल को देखती जा रही थीं।

येसूबाई धाराऊ के साथ पाचाड़ गयी थीं। आठ दिन उन्होंने जिजाऊ के सहवास में बिताये और फिर रायगढ़ लौट आयीं। कड़ी सर्दी का मौसम था, बदन को चूमने वाली सर्द हवाएँ बह रही थीं। येसूबाई ने तेज़ सर्द हवा से बचने के लिए सिर और मुख के चारों ओर साड़ी का छोर लपेट रखा था। इस समय भी उन्हें पाचाड़ में माँ साहिबा के कहे अनुभवी वचनों का स्मरण हो रहा था।

एक बार येसूबाई जिजाऊ के गठिया से पीड़ित घुटनों पर सूअर की चरबी की मालिश कर रही थीं। जिजाऊ ने उनसे कहा था, “सुनो बेटी, ये भोसले कुल के मर्द भी अकड़े-दुखते जोड़ों की तरह ही हैं। स्वयं मौन, शान्त रहकर इन मर्दों पर प्यार-ममता का तैलमर्दन किया जाए, तो ही ये लोग थोड़े स्वस्थ-सन्तुलित बने रहते हैं।”

इस समय येसूबाई धाराऊ के साथ डोली दरवाज़े के बाहर आकर सामने के खुले पठारी मैदान में आकर खड़ी थीं। क़िले के शिल्पकार आबाजीपन्त ने सातमहल के साथ लगे इस मैदान की रचना विशेष हेतु से की थी। महाराज के अन्तःपुर की स्त्रियाँ डोली दरवाज़ा पार करके इस मैदान में आकर खुली हवा में घूम सकती थीं। इस समय युवराज सम्भाजी पाचाड़ के निकटवर्ती वन में आखेट के लिए गये हुए थे और महाराज पन्हाला दुर्ग में थे।

चैत्र मास में आसमन्त प्रकृति-सौन्दर्य बिखरा हुआ था। येसूबाई धाराऊ को साथ लिये पठार पर खड़ी निसर्ग की विविध छटाएँ देखने में मग्न थीं। सामने की पर्वत राशि पर केसरी वर्ण के पलाश पुष्पों की शिखाओं से दावानल का-सा भास होता था। पीले फूलों से लदी बाण वृक्षों की झाड़ियाँ कगारों पर झूलती-डोलती हुई बहुत प्यारी लग रही थीं।

हवा इतनी तेज़ थी कि येसूबाई का आँचल सिर पर ठहर न पाता था। उन्होंने उसे सिर के चारों ओर लपेटकर कसकर पकड़ा हुआ था।

सामने पश्चिम दिशा में सूर्य का लाल बिम्ब क्षितिज तक झुक आया था। उसे देखते समय येसूबाई को अकस्मात् एक अपूर्व विचित्र-सा अनुभव-आभास हुआ ‘पलाश-पुष्प की शिखाओं का लाल मुकुट उस सूर्य की प्रतिमा ने धारण किया हुआ है। कोकिला के पंचम स्वर की कूक उस मुकुट से जा टकरायी है।’ देखते-ही-देखते ढाल के आकार का वह सूर्य-बिम्ब पिघलने लगा। उन्हें भास हुआ—‘यहाँ हमारी छाती में, हमारी चोली में वह सामने का सूर्य पिघलता-पिघलता आ मिला है। यह क्या हो रहा है आज हमें। यह कैसी मिचलाहट, कैसी अभूतपूर्व घबराहट, क्या है यह?’

और येसूबाई चीख उठीं, “धाराऊऽऽ!” काँपते हुए शब्द होठों से निकले। वे आँचल मुख में दबाकर झट से बैठ गयीं।

क्षणभर के लिए धाराऊ भी चकरा गयी। परन्तु दूसरे ही क्षण उस वृद्धा-माता के अनुभवों ने उसे सब कुछ समझा दिया। आँखों में चमक आ गयी। हाथ येसूबाई की पीठ पर रखकर उसने

https://t.me/Sahityajunction

अपने देहाती कुनबी प्यार-भरे बोलों से येसूबाई को धैर्य बँधाते हुए कहा, “डरो नहीं बेटी, चलो उठो। ऐसा तो होता ही है, परन्तु ऐसी अवस्था में तुम्हारा इस तेज़ ठण्डी हवा में खड़ा रहना ठीक नहीं।”

येसूबाई अभी तक थर-थर काँप रही थीं। धाराऊ ने उन्हें सहारा देकर उठाया और सहारा देकर सातमहल की ओर ले चली, मानो इस युवती-युवराज्ञी के रूप में बाहर की प्रकृति की सुन्दरता ही भीतर जा रही थी।

पाचाड़ के वनों में युवराज सम्भाजी ने एक बाघ मार गिराया था। आठ सैनिक उसकी भारी-भरकम लाश को ऊँचे दुर्ग तक उठाकर लाये थे। दुर्ग के सभी अठारह कारख़ानों के मेहनती मज़दूर भी इस शिकार को देखने के लिए होली-मैदान में जमा हो गये थे।

महाराज ने यह समाचार पन्हाला में सुना था और वे पन्हाला दुर्ग को अण्णाजी और प्रतापराव की देख-रेख में छोड़कर दत्ताजी त्रिमल तथा बालाजी आवजी के साथ स्वयं उस शिकार को देखने आये थे।

मैदान में भीड़ जमा थी। सब लोग फुसफुसाती आवाज़ों में युवराज के पराक्रम की प्रशंसा कर रहे थे। बाघ के फैले हुए मुख पर आज मक्खियाँ मँडरा रही थीं—यही मक्खियाँ उसकी जीवित अवस्था में शायद दो कोस के आस-पास भी फटकने का साहस न कर पातीं। बाघ के पीले शरीर पर लम्बे काले पट्टे चमक रहे थे। उसकी पूँछ, जो कभी जलती हुई मशाल के समान तेज़ और शक्ति का प्रतीक थी, आज चेष्टाहीन पड़ी थी। उपस्थित सभी लोग आँखें फाड़-फाड़कर इस अजूबे को देख रहे थे। इन लोगों में चिटनीस बालाजी के युवावस्था को प्राप्त दो पुत्र खण्डोजी और आवजी भी थे। निराजीपन्त का युवा पुत्र प्रह्लाद भी वहाँ उपस्थित था।

इतने में महाराज पधारे। उनके आते ही भीड़ दूर हट गयी। मुजरों की झड़ियाँ लग गयीं। युवराज ने भी बन्दूक की नली को बायें हाथ में थामकर दायें हाथ से मुजरा किया। वे छाती फुलाकर अपने शिकार की ओर बड़े गर्व से देख रहे थे।

महाराज ने ज्योंही बाघ की लाश को देखा, उनका उठा हुआ हाथ ऊपर ही रह गया। फिर हाथ एकदम कौड़ियों की माला से आ लगा। उन्होंने पलकें क्षण-भर के लिए मींच लीं। महाराज उस समय एकदम मौन ही बने रहे, कुछ भी नहीं बोले।

सम्भाजी अभिमान से छाती फुलाकर बतला रहे थे—हँकवैयों ने जंगल में हाँका कैसे किया। यह जानवर एकदम न जाने कहाँ से आ प्रकट हुआ, दूसरे शिकारियों में कैसे भगदड़ मच गयी, हमने घोड़े पर से कैसे निशाना लगाया!

परन्तु महाराज ने केवल इतना ही कहा, “हमारे महल में आकर तुरन्त हम से मिलो।” महाराज लौट पड़े। उनके अँगरखे के पीठ की कलाबत्तू के बेलबूटे चमचमा रहे थे।

महाराज जैसे शीघ्रता से आये थे, उतनी शीघ्रता से लौट भी पड़े थे।

सम्भाजी पालकी दरवाज़े से होकर महल की ओर जाने लगे। वे जब उपरिकोट के चौक में आये तो सातमहल में पुतलाबाई के महल के सामने की अटारी में येसूबाई धाराऊ के साथ बैठी

https://t.me/Sahityajunction

थीं। बाल खुले थे। धाराऊ उनके खुले बालों की कंघी-सफाई के कार्य में जुटी थी। इसी अवस्था में येसूबाई ने ज्योंही बन्दूक हाथ में थामे युवराज को आते देखा, तो झटके से वे उठ खड़ी हुईं और सीधी महल के भीतर भाग गयीं। क्या हुआ, यह धाराऊ समझ भी न पायी।

"बहूजी, बालों की लटें उलझी हुई रह गयीं..." कहते-कहते वह उनके पीछे महल में चली गयी। येसूबाई के मुखमण्डल का रूप कैसा ललाई-भरा बन गया है, यह दिखाने के लिए उसने उनके सामने दर्पण पकड़े रखा, परन्तु लाज से छुईमुई बनी येसूबाई मुख उठाकर देख भी न पायीं।

आज्ञा के अनुसार सम्भाजी पहनावा पहनकर महाराज के महल में उपस्थित हुए। वहाँ महाराज हथेलियाँ पीठ की ओर बाँधे झरोखे में से बाहर की ओर देखते खड़े थे। फिर उनकी स्थिर उँगलियों में कुछ हलचल हुई और दृढ़ता से उँगलियाँ एक-दूसरे में गुँथ गयीं।

"युवराज, शिकार निश्चय ही बहादुरों का खेल है। कभी हमारा भी जी करता है, तो हम भी शिकार करते हैं।" महाराज की आवाज़ भारी हो गयी थी। "मगर...मगर हम लोग भोसले हैं, यह तुम शायद भूल गये हो। हम पहले भोसले हैं, बाद में शिकारी हैं जो भूल तुमने कर डाली, वह हमसे भी हो गयी थी एक बार। बाघ का शिकार किया था हमने। उस समय माँ साहिबा ने हमारी आँखें खोली थीं। हम जिस माँ भवानी के अनन्य उपासक हैं, बाघ उनका वाहन है। फिर कभी ऐसी भूल न करना! समझे?"

"जी, यह...यह बात तो हम भी भूल ही गये।" लज्जा से युवराज की ग्रीवा नीचे झुक गयी।

"यही तो मैं कहता हूँ—भविष्य में सदा ध्यान रखो।"

"जी हाँ!"

महाराज ने 'जी हाँ' के इस मन्द दबे स्वर को सुना और वे मुड़कर सम्भाजी के निकट आये। उनके कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, "सिर ऊपर उठाओ!" महाराज की वाणी के रूप में मानो रायगढ़ ही बोल रहा था।

युवराज ने सिर ऊपर उठाया। महाराज के सतेज नेत्रों से उनके स्फटिकवत् निर्मल नेत्र जा मिले। महाराज ने अनुभव किया-युवराज के नेत्रों में एक विरली निर्भयता; रणभेरी-सी गम्भीरता है। यह नेत्रों का निर्भय-गम्भीर भाव उन्हें बहुत भला लगा। वे बोले, "सुनो युवराज, हम तुम्हारी शक्ति की क़द्र करते हैं, पर वह शक्ति बाघ का शिकार करने में व्यय न हो, बाघ के समान आक्रमण करनेवाली हो।"

इस क्षण सम्भाजी ने अनुभव किया, मानो उनका शिकार उठ बैठा है। आबासाहब उसकी पीठ पर बैठकर ये हितकारी वचन कह रहे हैं।

"ठीक है, तुम अब जाओ," महाराज ने सम्भाजी के कन्धे थपथपाकर कहा।

युवराज उन्हें मुजरा करते हुए पीछे हट रहे थे। उनकी विनम्रता को देखकर महाराज को किंचित् हँसी आ गयी। बोले, "क़िले के पौनी चर्मकार से कहकर उस शिकार में भूसा भरवाकर तैयार करवाओ। बाघ की उस विशालकाय आकृति को दरबार के निकटवर्ती चौक में एक चबूतरे पर बिठवा लो। यह तुम्हारे साहस की निशानी तो रहेगी ही, असावधानी में तुम जो भूल कर बैठे हो, उसकी भी तुम्हें याद दिलाया करेगी।"

https://t.me/Sahityajunction

“जी।”

‘हमारे आबासाहब को पूरी तरह समझ पाना अति कठिन है।’ महल से बाहर निकलते समय यह भाव सम्भाजी के मन में गहरा बैठ गया था।

“हम देवदर्शनार्थ दो दिन के लिए बाहर जा रहे हैं,” महाराज ने सम्भाजी को सूचित किया और उन्होंने महाड की ओर प्रस्थान किया।

अगले दिन अँग्रेज़ों के मुम्बई दरबार से मराठा-राज्य का वकील पिलाजी सुन्दर राजगढ़ आया। वह सूचना लाया था कि अँग्रेज़ों का वकील थॉमस महाराज से कुछ बातचीत करने यहाँ आया है। महाराज तो यहाँ हैं नहीं, अतः वह युवराज से मिलने की आज्ञा चाहता है?

“साहब को आने दो यहाँ,” सम्भाजी ने पिलाजी को आज्ञा दे दी।

अँग्रेज़ दरबार का थॉमस निकलसन नामक एक अँग्रेज़ अधिकारी मुम्बई से नागोठणे, पाली, सारसगढ़ मार्ग से होता हुआ पाचाड़ तक आया था। उसके साथ सैंतीस लोग थे और श्यामजी शेणजी नामक एक दुभाषिया भी साथ था। थॉमस अपने दरबार द्वारा सौंपे गये दो उत्तरदायित्व पूरा करने यहाँ आया था। प्रतापराव की सेना की निकट भूतकाल की एक घुड़दौड़ में अँग्रेज़ों के हुबली स्थित माल की कोठियों को ज़मीन खोद-खोदकर लूटा गया था। इससे कुछ काल पूर्व राजापुर की कोठी को भी इसी तरह लूटा गया था। इस लूट की क्षतिपूर्ति मराठों से वसूल करना एक काम था और दूसरा कार्य था कि मराठा-प्रदेश से होकर नमक और लकड़ी मुम्बई ले जाने का आज्ञापत्र प्राप्त करना।

पिलाजी ने दुर्ग से नीचे उतरकर थॉमस साहब को युवराज का सन्देश सुनाया। गोरा साहब रायगढ़ और युवराज को देखने के लिए उत्सुक था, अतः सूचना पाते ही बूट-पतलून पहनकर वह तुरन्त तैयार हो गया। परन्तु इसी समय एक भयानक बवण्डर उठ खड़ा हुआ। मिट्टी के ऊँचे चक्करदार बगूलों ने पाचाड़ को घेर लिया और अगले ही क्षणों में बेमौसमी तेज़ बारिश रायगढ़ तथा पाचाड़ पर बरसने लगी। गोरा साहब उस दिन पाचाड़ में ही अटक गया।

अगले दिन शामजी शेणवी और पिलाजी के साथ थॉमस हाँफते-हाँफते जैसे-तैसे रायगढ़ चढ़ आया। उसने चिटनीस बालाजी को आने की सूचना भिजवायी। बालाजी ने अगवानी की और उस गोरे साहब को वह महाराज की बैठक में ले गया।

“युवराज, अँग्रेज़ों का वकील बैठक में उपस्थित है।” बालाजी ने युवराज के महल में जाकर मुजरा करके सूचना दी।

बालाजी के मन में कई शंकाएँ उठ रही थीं, वह सोच रहे थे कि यह दूसरे दरबार का एक चतुर दूत यहाँ आया है। बातों-ही-बातों में युवराज को बहकाकर आड़े रास्ते पर ले जाएगा और अपने मन की सोची पूरी करा लेगा।

इस कारण जब युवराज महल से बाहर निकल रहे थे, तो बालाजी विनम्रता से कहने लगे, “युवराज, महाराज आज यहाँ नहीं हैं। यह अँग्रेज़ों की जात बड़ी चतुर होती है, इसलिए प्रार्थना है कि बातचीत बहुत सावधान रहकर की जाय।”

https://t.me/Sahityajunction

“चिटनीस, हमने सुना है कि अँग्रेज़ साहब हमें देखने आये हैं। देखने दो उन्हें जी भर। हर्ज़ ही क्या है?” सम्भाजी ने हँसते हुए उत्तर दिया।

युवराज बालाजी के साथ सभागृह की बैठक पर आये। पिलाजी और शामजी ने उन्हें मुजरे किये। थॉमस ने भी अपने सिर की सफ़ेद पंखों के तुर्रेवाली बड़ी-सी टोपी उतारी। टोपी को छाती के सामने करके गर्दन और कमर झुकाकर उसने युवराज सम्भाजी को ख़ास अँग्रेज़ी शैली में अभिवादन किया।

युवराज ने बैठक पर बैठते ही शामजी से सवाल किया, “क्यों शामजी, तुम्हारे साहब की तबीयत कैसी है?”

थॉमस इतना ऊँचा पहाड़ी दुर्ग धूप में चढ़कर आया था। उसका चेहरा अब भी पके कोकम्ब फल के जैसा लाल-लाल था। नीली-कंजई आँखों से वह अपने सामने बैठे राजसी नवयौवन का रूप निहार रहा था।

“जी, तबीयत बिल्कुल ठीक है। वह आपकी सेवा में अँग्रेज़-दरबार की अर्ज़ी पेश करने आये हैं।” शामजी ने मध्यस्थ की ज़िम्मेदारी निभाना शुरू किया।

“ठीक है, कहने दो,” सम्भाजी ने सामने के तबक़ में से गुलाब की एक कली उठायी। उसे सूँघते हुए वे पीछे के गिरदे पर पीठ टेककर बैठ गये।

“आपके सेनापति की फ़ौजों ने हुबली नगर की अँग्रेज़ी कोठियों को ग़लती से लूट लिया है। युवराज, मराठा-दरबार और अँग्रेज़-दरबार के बीच किसी प्रकार का वैरभाव नहीं है। इसलिए अँग्रेज़-दरबार की प्रार्थना है कि इस लूट की क्षतिपूर्ति की जाय।” किराये के टट्टू के समान शामजी की जीभ अपना हेतु मीठे वचनों में प्रकट करने लगी।

बालाजी, शामजी, पिलाजी आदि सभी जन चौकन्ने होकर देखने लगे—‘देखें, युवराज अब क्या कहते हैं?’

“शामजी शेणवी, हमें ज्ञात है कि हमारे सेनापति प्रतापराव इस समय पन्हाला प्रदेश में हैं। उन्होंने तुम्हारे गोदामों को लूटा है, ऐसा कहने में तुमसे भूल तो नहीं हो रही?” युवराज ने शामजी को दूसरे आड़े रास्ते पर मोड़ दिया। “अच्छा, और कुछ अर्ज़ी है?”

“जी हाँ, दूसरी अर्ज़ी यह है कि मराठा-प्रदेश में से होकर नमक और लकड़ी ले जाने का आज्ञापत्र अँग्रेज़ों को दिया जाय। इससे दोनों दरबारों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे।” शामजी ने अपनी झोली में से दूसरी गोटी बाहर निकाली।

“नमक और लकड़ी तो प्रतिदिन की ज़रूरत की चीज़ें हैं। शेणवी, तुम्हारी दोनों प्रार्थनाओं के बारे में निर्णय पाने के लिए तुम्हें महाराज के आने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। हम तुम्हारी बातें उनसे कहेंगे। वे देवदर्शन को गये हैं, दो ही दिनों में लौट आएँगे।” युवराज ने गुलाब की कली को फिर तबक़ में रख दिया।

“चिटनीस, गोरे साहब को विदाई के बीड़े दो।” सम्भाजी ने बालाजी से कहा।

“जी,” कहते हुए बालाजी ने पान का तबक़ थॉमस साहब के सामने रखा।

अन्त में बैठक से उठते समय युवराज ने अपने दूत पिलाजी सुन्दर से कहा, “पिलाजी, तुम स्वयं इन साहब को पाचाड़ तक पहुँचा आओ। वहाँ इनके विश्राम की व्यवस्था करो। यहाँ ऊपर

https://t.me/Sahityajunction

के दुर्ग की हवा साहब को रास नहीं आएगी!"

थॉमस कमर तक झुककर अभिवादन कर रहा था और सम्भाजी अपनी कौड़ियों की माला पर उँगलियाँ फिराते हुए 'हे जगदम्बे, जगदम्बे' कहते हुए बैठक से बाहर जा रहे थे।

दो दिन बाद महाराज पाचाड़ लौट आये थे। शामजी ने स्वयं भाग-दौड़कर उनसे गुलाकात की और गोरे साहब की तथा महाराज की भेंट का समय भी निश्चित कर लिया। निश्चित समय पर वह थॉमस साहब को साथ लेकर पाचाड़ के राजसभागृह में आ उपस्थित हुआ।

भेंट का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए शामजी ने बात प्रारम्भ की, "दो दिन पूर्व ही हम ऊपर दुर्ग में गये थे और वहाँ हमने आने के प्रयोजन युवराज के सम्मुख निवेदित किये हैं।" महाराज के मुख पर इस वाक्य का क्या प्रभाव पड़ा, यह देखने के लिए शामजी यहाँ थोड़ा रुका। परन्तु महाराज ने जैसे ही यह सुना, वे बैठक से उठ खड़े हुए और अत्यन्त शान्त स्वर में कहने लगे, "शेणवी, हमारे और थॉमस साहब की वार्ता के लिए आज का मुहूर्त ठीक नहीं है। हम उनसे कल मिलेंगे!"

"जी," शामजी ने हुंकारी भरी। महाराज हवेली के भीतर चले गये। थॉमस और शामजी अपने मुक़ाम पर लौट आये, परन्तु वे हड़बड़ाये हुए थे।

सच यह था कि महाराज की मुहूर्तवाली बात एक बहाना थी। महाराज यह नहीं जानते थे कि रायगढ़ में थॉमस और शामजी से युवराज की क्या बातचीत हुई है। इस बातचीत की जानकारी ज़रूरी थी, कहीं आगे की बातचीत में विरोध अथवा कुछ उलटा-सीधा न हो जाय।

महाराज ने एक राजकर्मचारी को ऊपर दुर्ग में भेजा। उसके द्वारा सम्भाजी से कहा गया था, "अँग्रेज़ साहब से तुम्हारी क्या बातें हुई हैं, विस्तृत विवरण बतलाओ। पिलाजी सुन्दर को नीचे पाचाड़ में भेज दो।"

सम्भाजी ने पिलाजी को पाचाड़ भेजा। महाराज ने पहले उससे भेंट की और फिर थॉमस से मिलने का समय निश्चित किया।

परन्तु थॉमस साहब की झोली जैसे सम्भाजी की भेंट में खाली ही रह गयी थी वैसे ही महाराज की भेंट में भी उन्हें खाली हाथ रह जाना पड़ा।

थॉमस आया था नमक के विषय में 'शिव' और 'शम्भू' से मिलने परन्तु उसे फ़ीके मुँह ही मुम्बई वापस लौट जाना पड़ा।

केशव पण्डित जिजाऊ की सेवा के लिए पाचाड़ आये हुए थे। उन्होंने लकड़ी की तिपाई पर समर्थगुरु रामदास की लिखी काव्यकृति 'दासबोध' की पोथी रखी थी। इन दिनों वर्षा का ज़ोर था। मावल देस के आकाश से घनघोर गर्जन करते हुए काले-काले मेघ मूसलाधार बरस रहे थे। रायगढ़ के पहाड़ी कगारों पर से लाल मटमैले पानी के झरने गरजते-उछलते नीचे की ओर दौड़ रहे थे। पंछी अपने कोटरों में बन्द हो गये थे। इस धुआँधार वर्षा के बीच एक हरकारा सिर पर

https://t.me/Sahityajunction

पत्तों से बना छतना लेकर पाचाड़ से रायगढ़ आया। वह समाचार लाया था—'सर्दी के कारण माँ साहिबा के जोड़ों में अकड़न आ गयी है। दमे का दौरा भी बहुत तेज़ हो गया है।'

शिकार किये हुए बाघ की चरबी कुप्पियों में भरकर सुरक्षित रखी गयी थी। सम्भाजी ये कुप्पियाँ लेकर तुरन्त उतरकर पाचाड़ आ गये। जिजाऊ बिस्तर से उठ नहीं पाती थीं। हवेली के सभी लोग उनकी सेवा-शुश्रूषा में लीन थे। पुतलाबाई स्वयं शुश्रूषा की सारी देख-रेख कर रही थीं। वे वहाँ पलँग के निकट खड़ी थीं। फिर भी जब जिजाऊ ने सम्भाजी को आया देखा, तो उनके मुख पर असीम समाधान झलक उठा। धैर्य और भी बढ़ गया।

केशव पण्डित विशेष रूप से जिजाऊ के लिए ही पाचाड़ में निवास करते थे। उन्होंने दोपहर के बाद लकड़ी की तिपाई पर 'दासबोध' की पोथी रखी। महाराज जब समर्थगुरु के दर्शनों के लिए गये थे, उस समय गुरु महाराज ने यह 'दासबोध' की पोथी उन्हें देकर अनुगृहीत किया था। महाराज ने यह पोथी पाचाड़ में माँ साहिबा के लिए रख छोड़ी थी।

शरीर पर महीन, सुकोमल, भगवा रेशमी वस्त्र तथा उत्तरीय धारण किये केशव पण्डित ने ग्रन्थ पठन से पूर्व ईश-स्मरण किया और 'दासबोध' की पोथी खोली। सारे भवन में धूप, गुग्गुल आदि गन्ध द्रव्यों की सुगन्धि सर्वत्र फैली हुई थी।

पण्डित महोदय ने स्पष्ट वाणी में एवं मन्द गति से 'दासबोध' की काव्य पंक्तियों का पठन प्रारम्भ किया। जिजाऊ, सम्भाजी और पुतलाबाई ध्यान लगाकर सुन रहे थे।

मृत्यु का साम्राज्य बेरोकटोक है, वह बेलगाम है, इस विचार को समर्थगुरु जी ने इस प्रकार व्यक्त किया था :

सुकर्म संचय न हो शेष जब, लगे विलम्ब न दिन का, पल का।
क्षण दो क्षण भी पूर्ण नहीं हों, जाना पड़े जनों को, वश क्या।
मृत्यु न देखे कौन हयपति, मृत्यु न जाने कौन गजपति।
मृत्यु कहे ना किसे नरपति, ना कोई, सैनिक सेनापति।

मृत्यु की अबाध गति का वर्णन करते हुए वैरागी समर्थ रामदास की वाणी में भी धनुष की टंकार के समान गूँज उत्पन्न हो उठी थी :

मृत्यु कहे न यह पराक्रमी, यह रणशूर, क्रूर भीषण यह।
मृत्यु न देखे ताप उग्रता, बली-महाबली, धनशाली यह।
कौन चक्रवर्ती है सम्मुख, कौन चमत्कारी या भूपति।
मृत्यु न कहे किसी को ब्राह्मण, व्यापारिक, धार्मिक या धनपति।
कहे न विद्यासम्पत्ति सागर, धूर्त, बहुश्रुत या विद्वज्जन।
मृत्यु न जाने वैदिक पण्डित, शास्त्र-मर्म का ज्ञाता सज्जन।

भावविह्वल हुए केशव पण्डित के शब्द कम्पायमान हो उठे। जिजाऊ नेत्र बन्द किये उस टंकार की ध्वनि को सुन रही थीं। सम्भाजी का हाथ उनके हाथों में था।

काँपते स्वरों में केशव पण्डित आगे बाँचने लगे :
गये यहाँ से, पाये जिन्होंने, बहु धन, आयु, राज्य और पद।
अपरम्पार कीर्ति के स्वामी, चले मृत्यु पथ, हुआ चूर मद।

https://t.me/Sahityajunction

गये कई दल-बल के स्वामी, समा गये सब यम के मुख में।
अगणित राजा गये, खो गये, वंश, जाति के मानी दुःख में।

अभी तक समर्थ ने अपनी सशक्त वाणी से मृत्यु की भीषणता का चित्रण किया था, अब आगे वही वाणी मृत्यु के घने वन से बाहर निकलकर भक्तिमार्ग का प्रतिपादन करती हुई हरे-भरे पर्वत पर विहार करने लगी :

कई कई जन्मों के पीछे, नर पाता यह शरीर सुन्दर।
दुःख निवारण का यह साधन, मिला सके ईश्वर से सत्वर।
इस अनमोल देह को यदि नर, लगा जाए सेवा, परार्थ में।
तभी सफल यह, न तो व्यर्थ है, पाये नर, दुःख, मृत्यु ही जग में।
प्राणों से तुम प्राण मिलाओ आत्मा परमात्मा में।
हे मानव, खोजो तुम रह-रह परब्रह्म जीवन में।
छोड़े जड़ जग, जगदीश्वर को खोजे, ईशरूप हो जाये।
अत्र तत्र सर्वत्र उसे क्यों, क्षति दुर्भाव सताये।
कष्ट करे नर तन से, मन से, उत्कट यश फैलाये।
जन-मन में वह स्नेह बढ़ाये, प्रेम की जोत जलाये।

समर्थगुरु रामदास ने अपने जीवन में जीव-जगत का जो अनुभव पाया-भोगा था, उन्हीं अनुभवों का सार अपने काव्य में इस प्रकार कहते समय मानो वे स्वयं विदेह बन गये थे। अपने उपास्य देव श्री रामचन्द्र के नीलवर्ण नेत्रों की आभा ही उनके शब्दों में प्रकट हो रही थी, जिजाऊ तथा सम्भाजी कानों की अंजलि बनाकर इन शब्द-पुष्पों को समेट रहे थे :

योनिचक्र में घूम-घूमकर, पाता नर यह देह अन्त में
नीति न्याय से चल जीवन भर, पाये चोखा नाम अन्त में।
यश पावे तो सुख नहीं पावे, सुख पावे तो यश खो जाय।
यही रीत जग की रे मानव, कर्म करे सो सब पा जाय।
भव्य भाव का ग्रहण करे नर, कटु, नीरस को त्यागे।
निस्पृह होकर कीर्तिमान् हो, भू में तप, यश जागे।

इतने हृदयस्पर्शी शब्दों की योजना करके अन्त में समर्थ जी शब्दों से ही कहते हैं :

अब समाप्त शब्दों की खटखट, हुआ ग्रन्थ परिपूर्ण।
सद्गुरु कहे करे यह मानव, भक्तिभाव से जीवन पूर्ण।

"जय जय रघुवीर समर्थ!"—केशव पण्डित ने पाठ समाप्ति का मन्त्र पढ़कर पठन समाप्त किया।

जिजाऊ ने अपने थके-बूढ़े हाथ जोड़े हुए थे। बन्द नेत्रों से भाव अश्रुधारा बनकर टपक रहे थे।

सम्भाजी के मस्तिष्क में वही प्रेरणादायी जीवन-दर्शन बार-बार गूँज रहा था :

'कौन चक्रवर्ती है सम्मुख, कौन चमत्कारी या भूपति।'

https://t.me/Sahityajunction

‘अगणित राजा गये, खो गये, वंश जाति के मानी दुःख में।’
‘कष्ट करे नर तन से, मन से, उत्कट यश फैलाये।’
‘प्राणों से तुम प्राण मिलाओ, आत्मा परमात्मा में।’
‘भव्य भाव का ग्रहण करे नर, कटु नीरस को त्यागे।’
‘योनिचक्र में भ्रमण-घूमकर, पाता नर यह देह अन्त में।’
‘नीति-न्याय से चल जीवन भर, पाये चोखा नाम अन्त में।’

आषाढ़ मास की एकादशी बीत गयी। सम्भाजी अभी तक पाचाड़ में ही थे। वर्षाऋतु का लाल-मटमैला पानी लेकर गान्धारी और काल नामक नदियाँ रायगढ़ की तलहटियों में घेरा डाले उफनकर बह रही थीं।

सम्भाजी नित्य के अनुसार जिजाऊ के गठिया-पीड़ित घुटनों पर चरबी की मालिश कर रहे थे। तभी जिजाऊ शान्त वाणी में उनसे कहने लगी, “बहुत दिनों से हम तुमसे कुछ कहना चाहती हैं। हमारी बात सुनोगे क्या, बेटा?”

“जी, कहिए ना माँ साहिबा!”

“हमने सुना है बेटे कि तुम्हारी बड़ी माँ जी का और तुम्हारा ज़रा-ज़रा-सी बातों को लेकर मनमुटाव होता जा रहा है।” कहकर जिजाऊ ठहर गयीं। उनके थके हुए नेत्र कुछ देर के लिए प्रज्वलित समई की ज्योति पर टिके रहे।

सम्भाजी के हाथ जिजाऊ के घुटनों पर से सरककर नीचे पैरों पर आ गये। भर्रायी आवाज़ में उन्होंने कहा, “आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहते हैं माँ साहिबा, हम उनका बहुत आदर करते हैं। उनके साथ सदा विनम्रता से व्यवहार करते हैं।”

“विनय को तो स्त्रियों के लिए आवश्यक कहा गया है बेटे! पुरुषों को तो सहनशील होना चाहिए। यदि उन्होंने विनम्रता छोड़ी, तो भी तुम्हें अपनी सहनशीलता का त्याग नहीं करना चाहिए। तुम्हारी माँ का देहान्त हुआ, तब से यह संकट तुम्हारे पीछे आ लगा है। आयु के साथ-साथ यह भेदभाव भी बढ़ने की सम्भावना है। हमारे लिए जहाँ तक सम्भव हुआ, हमने आज तक तुम्हारी पीठ पर हाथ रखा है, परन्तु अब हम थक चुकी हैं।” जिजाऊ भवन की छत की ओर निहार रही थीं, जैसे उनकी दृष्टि बहुत दूर भविष्य को देख पा रही हो। इस तरह टक लगाकर देखते हुए वे आगे कहने लगीं, “हाथ की उँगलियाँ एक-सी नहीं हैं, इस कारण कोई एकाध उँगली को अलग निकाल नहीं देता। अपनी समस्त योग्यता को दाँव पर लगाकर सबको साथ लेकर चलना ही हितकारी होता है। यह बात भी मत भूलो। साक्षात् जगज्जननी जगदम्बा को भी अपने उपासकों को साथ लेना ही पड़ता है। छोटे-बड़े सब अपने हैं। यही बातें हम जीवन भर तुम्हारे आबासाहब को कहती आयी हैं। आज तुम्हें भी वही बता रही हैं।”

“जी,” सम्भाजी ने हुंकारी भरी। साथ-साथ कहे गये वचनों का स्नेह भी हृदय में सँजो लिया।

“जाओ। बाहर देख आओ कि बरसात की झड़ी कुछ कम हुई है क्या?” विषय से वातावरण रुँध गया था, जिजाऊ ने उसे कुशलतापूर्वक बदल डाला।

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी भवन से निकलकर सभागृह के निकट आये। बरसात की तेज झड़ी अभी-अभी थमी थी। काँपती-लहराती बूँदों के नीचे के जल में गिरने से 'टुबुक-टुबुक' आवाज़ हो रही थी।

सम्भाजी फिर भवन में गये और हाथ का सहारा देकर उन्होंने जिजाऊ को पलँग से नीचे उतारा। उन्हें सहारा देकर वे हवेली के घण्टेवाले चबूतरे के निकट आये। वहाँ नियुक्त घण्टावादक आगे बढ़ आया और मुजरा करके उसने गजर बजाना प्रारम्भ किया।

थोड़ी ही देर में रायगढ़ की मावल माची पर एक भगवा रंग की 'ज़री-पताका' की बिन्दी दिखाई देने लगी। माची के सेवक ने यह 'ज़री-पताका' लहरायी थी, जो संकेत था इस बात का कि महाराज मावल माची पर आ चुके हैं। जिजाऊ के बूढ़े नेत्र उस भगवा बिन्दी को भला कैसे देख पाते! सम्भाजी ने उन्हें बताया, "माँ साहिबा, महाराज साहब माची पर आ गये हैं।"

सुनते ही जिजाऊ की आँखों के सम्मुख महाराज का सीधा लम्बा मुखमण्डल तैर गया। होठों से शब्द फूटे : "आयुष्यमान होओ।"

सम्भाजी ने ये शब्द सुने और उन्होंने भी माची की दिशा में मुजरा किया। मन में वे सोच रहे थे—'सच ही हमारी माँ साहिबा की महिमा का वर्णन तो केवल समर्थगुरु ही अपनी समर्थ वाणी से कर पाएँगे।'

वर्षाऋतु समाप्तप्राय थी। रायगढ़ का आसमन्त प्रदेश हरियाली से लहलहा उठा था। सम्भाजी जिजाऊ से आज्ञा पाकर पाचाड़ से रायगढ़ चले आये थे।

इस बीच दो विशेष घटनाएँ घटित हुई थीं। सेनापति प्रतापराव ने विजापुर (बीजापुर) राज्य के सेनापति अब्दुल करीम बहलोल ख़ाँ को उमराणी के खुले मैदान में घेर लिया था। रणनीति के अनुसार उसे जहन्नुम रसीद कराना चाहिए था, परन्तु वे उसे छोड़ देने की भूल कर बैठे थे। दूसरी घटना यह थी कि वाई के प्रदेश में स्थित पाण्डवगढ़ क़िले को मराठा सेना की एक टुकड़ी ने झपट्टा मारकर जीतने का प्रयत्न किया था।

दशहरे का दिन आ गया। प्रथानुसार महाराज, युवराज तथा राजाराम सहित देवमहल में जगदम्बा के दर्शनार्थ आये। उसके बाद दशहरे की कुछ आवश्यक प्रथाओं का प्रारम्भ हुआ। वहाँ फ़र्श पर मिट्टी का एक ढेर बनाया गया था। उस में नौ दिन पूर्व कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा को गेहूँ के बीज बोये गये थे। वे बीज अब अंकुरित हो गये थे। युवराज सम्भाजी ने पहली प्रथा के अनुसार अंकुरित पौधों को मुट्ठी से पकड़कर उखाड़ा, जड़ों की मिट्टी को झटका और फिर वे कोमल पौधे राजाराम के राजटोप में खोंस दिये। इस अंकुरमय तुर्रे से नन्हे राजाराम और भी लुभावने दिखाई देने लगे।

इसके बाद महाराज ने अपनी वह 'भवानी-तलवार' उठायी, जिसकी दशहरे के नौ दिनों तक पूजा की गयी थी। दूसरी प्रथा के अनुसार महाराज ने इस तलवार की धार पर से अपना अँगूठा 'सर्रर्र' से खींचा। रक्त की धार टपकने लगी। रक्तमय अँगूठा माँ भवानी की मूर्ति के चरणों से लगाकर उन्होंने नववर्ष को ताज़े रक्त की भेंट अर्पित की।

फिर युवराज सम्भाजी भी आगे बढ़े और उन्होंने भी अपना शस्त्र उठाया। म्यान से तलवार खींचकर तलवार की तेज़ धार को एक बार प्रज्वलित नेत्रों से देखा और 'जय भवानी' का घोष

https://t.me/Sahityajunction

करके अँगूठा धार पर से खींचा। टपकते अँगूठे को उन्होंने माता भवानी के पैरों तले दबे महिषासुर के मस्तक से लगाया।

इसके बाद कुछ क्षण बीते। अब महाराज, युवराज, देवी का मुख्य पुजारी पोतराज, सभी लोग बालक राजाराम की ओर देख रहे थे। बालक नन्हा था, भौचक्का हुआ था।

"बालराजा, आगे बढ़ो। हथियार उठाओ!" महाराज ने उन्हें हिम्मत दिलायी। बालक ने आगे बढ़कर छोटी-सी तेग उठायी, परन्तु उसे म्यान से बाहर नहीं खींच पाया। सम्भाजी ने नीचे झुककर तलवार म्यान से बाहर निकाल दी। अब अँगूठा फिराने की बारी थी। बालक राजाराम सहम रहा था। एक विचित्र-सी दृष्टि से वह महाराज की ओर देख रहा था। "लगाओ तलवार से अँगूठा, बेटे।" महाराज ने पीठ थपथपाते हुए कहा।

परन्तु राजाराम ने गर्दन नीचे झुका ली। यह देखकर सम्भाजी नीचे झुककर वीरासन में उनके पास बैठ गये। बोले, "बालराजा, हमारी बात मानो। सिर ऊपर उठाओ। हमारी ओर देखो।" ठोड़ी को तर्जनी से उठाते हुए सम्भाजी ने कहा।

"अच्छा, अपना अँगूठा तो इधर लाओ।" कहकर सम्भाजी ने राजाराम का नन्हा-सा अँगूठा अपनी दो उँगलियों में पकड़ लिया। राजाराम को कुछ पता न था कि आगे क्या होगा। सम्भाजी ने अँगूठा नंगी तलवार की धार पर हलके से फिराया!

नन्हे राजाराम कराह उठे। सम्भाजी ने उन्हें तलवार सहित उठाया और उनका रक्त-सिंचित अँगूठा जगदम्बा के चरणों से लगा दिया। रक्त की बूँदों से देवी का अभिषेक कराया।

राजाराम के अँगूठे से टपकती बूँदें सम्भाजी के अँगरखे पर पड़ी थीं, परन्तु उधर उनका ध्यान नहीं था। उन्होंने बड़े लाड़-प्यार से राजाराम को उठाकर छाती से लगा लिया। बालक का ध्यान अँगूठे की ओर से हट जाए, इसलिए वे उन्हें बहलाते हुए कहने लगे, "अब दशहरा चौक में हम लोग कचनार के पत्तों का ढेर फोड़ने जाएँगे। ये...ये इत्ता बड़ा ढेर होता है वहाँ पत्तों का। हाँ, साथी लोग एक दूसरे पर टूट-टूटकर लूट मचाते हैं उन पत्तों की। बड़ा मजा आता है बालराजा।"

दशहरे का त्यौहार बीत गया। महाराज सातारा की ओर रवाना होनेवाले थे। विदा होने से पहले वे सोयराबाई के महल में आये। उनके निकट बैठे बालराजा को प्यार से लेते हुए वे कहने लगे, "चलो बेटा, आओगे क्या हमारे साथ सातारा को?"

उनके इसी वाक्य को आगे खींचते हुए सोयराबाई कहने लगीं, "इनका भाग्य कहाँ है ऐसा? इनके भाग्य में तो यहीं रहकर, आज हाथ या अँगूठा तो कल पैर ज़ख़्मी बना लेना ही लिखा है!"

"क्या मतलब?" महाराज ने चौंककर पूछा।

सोयराबाई मौन ही रहीं। उन्होंने राजाराम को महाराज से अपनी ओर ले लिया।

दशहरे के दिन देवमहल में जो प्रसंग घटित हुआ था, उसमें अपनी ओर से नमक-मिर्च लगाकर पोतराज ने सोयराबाई को सब आ सुनाया था।

महाराज सातारा कूच कर गये थे। चार दिन बाद ही समाचार मिला कि उन्होंने पाण्डवगढ़ जीत लिया है। सम्भाजी ने यह शुभ समाचार सुनकर पूरे रायगढ़ वासियों में शक्कर बाँटी।

https://t.me/Sahityajunction

धाराऊ एक कटोरा भर पेय लायी थी। यह पेय सम्भाजी को अतिप्रिय था—कुलथी के बेसन की पतली गरम-गरम कढ़ी। सम्भाजी ने कढ़ी पी और अपने महल से बाहर निकले।

बाहर यादव नामाजी पहरा दे रहा था। उसके मुजरे को स्वीकार करके सम्भाजी ने उससे कहा, "यादवराव, हमारे साथ आओ।" वे दोनों दरबार चौक में आये। वहाँ एक चबूतरे पर पंजा ऊपर उठाये भूसा-भरे मृत बाघ की मूर्ति स्थापित की गयी थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो बाघ अभी झाड़ी से बाहर निकल आया हो—बिल्कुल जीवित-सा लग रहा था वह।

यादव नामाजी के साथ जगदीश्वर का दर्शन करके युवराज कुशावर्त सरोवर के निकट आये। सरोवर अनेक वर्ण के कमल पुष्पों से भरा था। उसका सौन्दर्य दृष्टि को मोह लेता था। मन्द वायु में डोलनेवाले वे फूल अत्यन्त सुहाने-लुभावने प्रतीत हो रहे थे। भ्रमरों को किसी ने निमन्त्रित किया था क्या? न सही परन्तु वे एक-दूसरे से टकराते हुए इस फूल से उस फूल पर मँडराते घूम रहे थे।

सम्भाजी अभिभूत से होकर कुशावर्त को निहार रहे थे। एक विचार-रूपी कमल उनके मन में भी खिल उठा—'हमारी माँ साहिबा को फूल बड़े प्यारे हैं। एक बार उन्हें ऊपर दुर्ग में लाकर यह सरोवर अवश्य दिखाना चाहिए।'

"यादवराव सरोवर में उतरो और भिन्न-भिन्न वर्ण के कोमल फूल नाल सहित तोड़ लाओ।" युवराज ने आज्ञा दी। यादवराव तालाब में उतरा और नीले, श्वेत, लाल वर्णों के कमलों के अर्धविकसित पुष्प बाहर ले आया।

"पानी तो ऐसा ठण्डा—बदन को काटता है, जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो।" कहते हुए उसने नालसहित कमल फूल सम्भाजी के हाथ में दिये।

इन फूलों का सौन्दर्य निरखते हुए युवराज उपरिकोट की ओर आये। दरबारी चौक में फव्वारोंवाला हौज़ था, उछलती धाराओं के सौन्दर्य को निहारते हुए वे महल में आये।

उन्हें ज्ञात न था कि वहाँ धाराऊ और येसूबाई खड़ी हैं। येसूबाई बालक राजाराम को लिये खड़ी थीं। धाराऊ ने युवराज को आया देखा, तो जैसे उसे कुछ याद आ गया। अपने आप से ही बात करती हुई वह एकदम वहाँ से खिसकने लगी। बोली, "अरे मुझे तो कुछ याद ही नहीं रहता। माँ भवानी की पूजा की आरती अभी पुजारी को सजाकर देनी है मुझे।" कहती हुई वह महल से बाहर निकल गयी।

"आओ भैया।" राजाराम को लेने के लिए सम्भाजी ने हाथ फैलाये। बालक राजाराम को शायद अभी तक अँगूठे की वेदना याद थी। उसने सिर दूसरी ओर घुमा लिया।

"अरे व्वाह! क्या रूठ गये हो हमसे?" कहते हुए उन्हें लेने के लिए सम्भाजी आगे बढ़े। येसूबाई की गोद से उन्हें लेने के प्रयत्न में सम्भाजी की उँगलियों का स्पर्श येसूबाई की भुजाओं से हुआ। एक सिहरन-सी ऊपर से नीचे तक दौड़ गयी। सारे शरीर में मानो अंग-अंग में कमल के फूल खिल उठे, पलकें फड़फड़ा उठीं। धीरे से आँखें उठाकर उन्होंने राजटोपधारी युवराज की आँखों में देखा, क्षणभर आँखें चार हुईं, पर अगले ही क्षण येसूबाई की दृष्टि भूमि पर जा टिकी। लजाई-सिटपिटाई येसूबाई जाने को उद्यत हुईं।

"ठहरो!" किसी ने आवाज़ देकर उनके पैरों को उसी जगह पर ही जकड़ दिया।

https://t.me/Sahityajunction

“देखो जी, तुम तो हमसे बोलती नहीं हो और ये बालराजा भी रूठे-रूठे हैं। अब हम क्या करें? अच्छा, ये तो लो।” कहते हुए सम्भाजी राजाराम को गोद में उठाये आगे बढ़े और उन्होंने अपने हाथ के कमल पुष्प येसूबाई के सामने किये। बोले, “ये फूल या तो जगदीश्वर को देने योग्य हैं और या तुम्हें देने योग्य। लो, फूल लो न।”

दिल बुरी तरह धड़क रहा था और हाथ काँप रहे थे। फिर भी येसूबाई ने वे रंगबिरंगे फूल हाथ में थाम लिये। इस बार के स्पर्श से फिर कर्णपाली पर लाज की ललाई छा गयी। फिर एक बार आँखें चार हुईं और येसूबाई जो वहाँ से निकलीं तो सीधी महल से बाहर चली गयीं।

थोड़ी देर बाद धाराऊ महल में आयी। उसने देखा, केवल दोनों भाई ही वहाँ हैं। उसकी बूढ़ी आँखों से भी एक परिवर्तन छिपा नहीं रहा—सम्भाजी के हाथों में अब फूल नहीं हैं। वह बोली, “पूजा की थाली तो सजा ली मैंने, परन्तु देवी को अर्पित करने के लिए नाल सहित कमल के पुष्प लाना तो रह ही गया। अब भला मुझ बेचारी को कौन लाकर देगा वे फूल?” और धाराऊ राजाराम को लेकर भेद-भरा हास्य छोड़ती हुई वहाँ से चली गयी।

महाराज ने इस बार की चढ़ाई में बंकापूर को लूटकर तथा कारवार प्रान्त को तहस-नहस करके विशेष सफलता पायी थी। प्रतापराव और आनन्दराव मकाजी को पन्हाला प्रदेश में पीछे छोड़कर महाराज पूरे दो मास बाद अब रायगढ़ आये थे। रायगढ़ आते ही दो ख़बरें भी उन्होंने सुनीं—एक अच्छी ख़बर थी, और दूसरी थी बुरी ख़बर।

बुरी ख़बर यह थी कि साम्राज्य के एक पुराने सेवक मुजूमदार निलो सोनदेव स्वर्गवासी हो गये थे। ख़ुश ख़बर यह थी कि काशी के धर्माचार्य गागाभट्ट महाराज से मिलने रायगढ़ आ रहे थे।

महाराज के कुलोपाध्याय नासिक निवासी पं. अनन्त भट्ट कावले ने एक विशेष प्रतिनिधि भेजकर उन्हें काशी से नासिक बुलाया था। गागाभट्ट की इच्छा थी कि उनकी तथा महाराज की भेंट हो।

महाराज ने अण्णाजी को पालकी तथा अन्य भव्य आयोजनों के साथ नासिक भेजा था, ताकि वे गागाभट्ट को पूरे आदर-सम्मान के साथ लिवा लाएँ।

गागाभट्ट के दर्शन माँ जीजाबाई भी कर पाएँ, इस दृष्टि से महाराज ने सम्भाजी को यह काम सौंपा कि वे जिजाऊ को पाचाड़ से ले आवें। सम्भाजी डोली और कहारों को लेकर नीचे पाचाड़ तक उतर आये। थकित गात्रा वृद्धा जिजाऊ को सहारा देकर उन्होंने डोली में बिठाया, दूसरी डोली में पुतलाबाई बैठीं। महाराज का पूरा राजस्त्री परिवार रायगढ़ में आ गया, केवल रानी काशीबाई को पाचाड़ में रहना पड़ा, क्योंकि वे रुग्ण थीं। श्रीक्षेत्र काशी के धर्मपीठ के एकश्रेष्ठ आचार्य रायगढ़ पधार रहे हैं, इस समाचार से सर्वत्र आनन्द की लहर दौड़ गयी। महाराज और सम्भाजी दक्षिण देश के मावल-खण्ड की विशेष पद्धतियों से स्वागत की तैयारियाँ कराने में मग्न थे।

आचार्य जी का स्वागत करने के लिए आबाजीपन्त ने रायगढ़ दुर्ग के सिंहद्वार पर एक भव्य मण्डप बनाया था। उसके सामने चौधड़ा-नगाड़ा बजाने की व्यवस्था की गयी थी।

महाड से अनन्त भट्ट का सन्देश आया—‘आचार्य महोदय अपने कुछ शिष्यों के साथ पधार

https://t.me/Sahityajunction

रहे हैं।' महाराज और सम्भाजी ने जिजाऊ को प्रणाम किया और वे पालकी में बैठकर रायगढ़ से नीचे उतरने लगे। उनके पीछे मोरोपन्त, अण्णाजी, दत्ताजी, येसाजी, निश्चलपुरी, कवि परमानन्द, कवि कुलेश, प्रभाकर भट्ट, केशव पण्डित आदि श्रेष्ठजन भी नीचे उतरे।

पालकी का झूलता फुँदना हाथ में पकड़े सम्भाजी का मन भी हिलोरें ले रहा था—'कैसे दीखते होंगे भला आचार्य महोदय? समर्थगुरु के समान? परन्तु उन्हें देखने का भी सौभाग्य हमें कहाँ प्राप्त हुआ? हमें काशी के मार्ग से बीच में ही मथुरा आ जाना पड़ा था। काशी का दर्शन न कर पाये थे हम। परन्तु अब काशी को देखने का भी क्या उपयोग है! वहाँ के बाबा विश्वनाथ का मन्दिर तो औरंगज़ेब ने लूट लिया है। मन्दिर तोड़कर उन्हीं पत्थरों से मस्जिद बना दी है उसने, हमने ऐसा सुना है। औरंगज़ेब—भरे दरबार में भी कठघरे के पीछे बचकर बैठनेवाला। हमसे 'कुश्ती लड़ेगा क्या?' पूछनेवाला।'

पालकी हिचकोले ले रही थी। डण्डों से आवाज़ हो रही थी। सम्भाजी को भास हो रहा था कि मानो पालकी से यह आवाज़ आ रही है :

भूमण्डल में धर्म बचाये, कौन अन्य वह वीर।
महाराष्ट्र का धर्म बचाया, तुमने ए रणधीर।

'महाराष्ट्र का धर्म'—अनजाने में ही एक उसाँस निकल गयी। पालकी जिजाऊ की पाचाड़वाली हवेली से आगे बढ़ने लगी। मार्ग के दोनों ओर शस्त्रधारी सैनिक पंक्तिबद्धि खड़े थे। भिश्ती लोग पालकियों को आते देख दूर हट जाते थे।

सब लोग स्वागत-मण्डप तक आये। बिछाये हुए मुलायम ग़लीचों पर चलते हुए महाराज मण्डप के भीतर आये। वहाँ सजाई गयी बैठक का महाराज ने निरीक्षण किया। गावतकिये, गिरदे, बिछावन आदि सब व्यवस्था उत्तम पायी। आसन के पास एक सैनिक वस्त्र से ढँका सोने का तबक़ कन्धे पर लिये खड़ा था।

महाराज ने मोरोपन्त, अण्णाजी, येसाजी, परमानन्द, कवि कुलेश आदि के मुख पर दृष्टि डाली। उनका मन विचारों की गहराई में डूब गया, जैसे राजगढ़ की सुरंग में उतर गया हो!

'कितना पुण्यशाली शुभ योग है यह! यदि हम आमन्त्रित भी करना चाहते तो भी आचार्य गागाभट्ट के लिए काशी से यहाँ तक का मुग़लिया प्रदेश पार कर आना अत्यन्त दुष्कर कार्य था, परन्तु वे अब स्वयं ही यहाँ स्वेच्छा से पधार रहे हैं, कितना पुण्यशाली है यह अवसर!'

इसी समय महाड की दिशा में ऊँची शंखध्वनि हुई, जिसने महाराज का ध्यान भंग कर दिया।

"वेदमूर्ति-वेदज्ञ आचार्य पधार रहे हैं," प्रभाकर भट्ट ने भीतर आकर सूचना दी। महाराज और युवराज मण्डप से बाहर आये। आचार्यजी के शिष्य सुध भूले, गले की नसें फुलाकर, सिर ऊँचा उठाये ऊँचा शंखनाद कर रहे थे। इसी पवित्र नाद में फिर नौबत की गूँजती मर्दानी आवाज़ें मिल गयीं।

महाराज तेजी से पालकी तक आगे बढ़े और उन्होंने आचार्य गागाभट्ट को हाथ का सहारा दिया। भगवे अस्तर की पालकी से आचार्य जी बाहर आ गये।

सम्भाजी जी-भर निहार रहे थे—'यही तो है वह काशी, जिसे हम देखने से वंचित रह गये।' आज वे जी-भर निहार रहे थे काशी के महान आचार्य को—सिर पर पीतवर्णी ज़री-किनारी की

https://t.me/Sahityajunction

पगड़ी, शरीर पर भगवे रंग की शॉल, उत्तरी शैली की लाल किनारी की सफ़ेद धोती, कान्तिमय चरणों में लकड़ी की खड़ाऊँ, मस्तक पर गन्धद्रव्य की शैव रेखाएँ, घण्टे के समान गोल-गोल मुखमुद्रा, प्रदीप्त परन्तु शान्त नेत्र।

गागाभट्ट के रूप में हिन्दू विद्वत्ता का सूर्य ही यहाँ पधारकर मावल देश के स्वागत की चाँदनी में नहा रहा था। सम्भाजी जैसे खिंचे हुए से आचार्य महोदय की बगल में जा खड़े हुए। एक ओर महाराज और दूसरी ओर युवराज को साथ लिये गागाभट्ट मण्डप में प्रविष्ट हुए और सुशोभित आसन पर विराजमान हुए। महाराज ने स्वर्ण की थाली में रखा श्रीफल उन्हें भेंट दिया। उस नारियल फल पर फिर शॉल आदि सम्मान-वस्त्र रखे।

इसके पश्चात् महाराज और सम्भाजी ने घुटने टेककर आचार्य-चरणों में प्रणाम किया। आचार्य जी उस प्रणाम को स्वीकार करने के लिए आगे झुके। हाथ उठाकर और नेत्र बन्द कर उन्होंने आशीर्वाद दिया, "जयोऽस्तु!"

महाराज और सम्भाजी के साथ आचार्य गागाभट्ट दुर्ग में पधारे। प्रथम जगदीश्वर के दर्शन करके पैदल चलते हुए व्यापार-पेठ, नक्कारख़ाना, दरबार चौक आदि देखते हुए वे महाराज के ख़ासमहल में आये। वहाँ बैठक महल में महाराज, जिजाऊ, सम्भाजी और राजाराम के लिए एक सुन्दर राजबैठक सजायी हुई थी। उसके सामने वेदमूर्ति के लिए मृगचर्म से आच्छादित एक विस्तीर्ण आसन बनाया गया था।

आचार्य जी के पधारने की सूचना अन्तःपुर में पहुँच चुकी थी। रानियाँ, राजपुत्रियाँ, येसूबाई, राजाराम आदि समस्त परिवारजनों को साथ लिये जिजाऊ बैठक महल की देहली तक आयीं।

उन्हें आया देख आचार्य गागाभट्ट आगे बढ़े। जिजाऊ के रूप में मावल देश का निर्मल गगन ही विद्युत् के वस्त्रों को धारण कर देहली पर सुशोभित था।

गागाभट्ट ने एकटक उन्हें निहारकर कहा, "माताजी, प्रणाम," कहकर उन्होंने झुककर जिजाऊ के चरणों का स्पर्श किया। जिजाऊ ने कल्पना भी न की थी कि ऐसा कुछ होगा। वे झट से पीछे हट गयीं, फिर बोलीं, "यह क्या करते हैं आप? आप तो परमश्रेष्ठ आचार्य हैं।"

गागाभट्ट ने उनकी भावना का आदर करते हुए कहा, "माताजी, आपके चरण हमारे लिए गंगा माता से भी अधिक पवित्र हैं। हम आचार्य-पण्डित हैं, धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन के। परन्तु आप तो साक्षात् धर्म की माता हैं।" इन वचनों में मानों गंगा ही कलकल ध्वनि से गा रही थी। महाराज गद्गद हो उठे। आँखों के कोनों में अश्रु छलक आये। सम्भाजी की छाती गर्व से फूल उठी।

आचार्य महोदय ने हाथ के संकेत से जिजाऊ से बैठक पर बैठने की प्रार्थना की। धीरे-धीरे चलते हुए जिजाऊ बैठक पर आ गयीं। महाराज ने आचार्य महोदय से मृगचर्म के आसन पर विराजमान होने की विनती की। आचार्य पधारे और उनके चरणों के नीचे प्रभाकर भट्ट ने एक ताम्रस्थाली रखी। महाराज सम्भाजी, राजाराम, राज्ञीवर्ग आदि सभी ने आचार्यजी का विधिसहित पादप्रक्षालन किया।

अन्त में जिजाऊ भी पादप्रक्षालन के लिए उठना चाहती थीं कि गागाभट्ट ने महाराज से

https://t.me/Sahityajunction

कहा, “राजन्, उन्हें आसन पर ही बैठी रहने को कहें। माता यदि पुत्र के चरणों की पूजा करे, तो उससे पुत्र की आयु कम हो जाती है। हम अभी जीवित रहना चाहते हैं—कम-से-कम कुछ काल तक, जब तक कि हमारा एक संकल्पित धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं हो जाता।”

महाराज ने आचार्यजी की इच्छा जिजाऊ को बतायी। फिर उन्हें ऊँचे आसन पर अपने और सम्भाजी के बीच बैठा लिया। पीछे राजस्त्री परिवार खड़ा था। बैठक में मन्त्रिगण, चुने हुए सरदार-अधिकारी आदि हाथ बाँधे विनम्रता से खड़े थे। सबका ध्यान था उस संवाद की ओर जो दो धैर्यमूर्तियों के बीच चल रहा था।

वेदशास्त्र सम्पन्न आचार्य महोदय ने पहले ईशस्मरण किया। फिर वाराणसी की गंगा वाणी रूप में उनके मुख से प्रवाहित होने लगी, “पुरुषश्रेष्ठ राजा शिवाजी! हम सुदूर तीर्थक्षेत्र काशी जी से यहाँ आये हैं—मन में एक पावन संकल्प लेकर। हमने आपका यह दुर्ग देखा, हम परम सन्तुष्ट हैं। यहाँ सब कुछ है, केवल एक वस्तु का अभाव है और वह है सिंहासन का। सिंहासन के बिना राजन्, राजदण्ड नहीं और राजदण्ड के बिना धर्म की स्थापना सम्भव नहीं। आज समस्त आर्यावर्त में हिन्दुओं का एक भी राजपीठ नहीं है। हिन्दू-सिंहासन नहीं है कि जिसे देखकर हिन्दूमात्र गर्व से सिर ऊँचा रख सकें, अभिमान एवं वीरता से संग्राम कर सकें। सिंहासन के अभाव में हिन्दू आज स्वयं को पराजित, निराश्रित अनुभव करते हैं। हे नरश्रेष्ठ, आज धर्म सुरक्षित नहीं रहा। असुरक्षित धर्म, धर्म ही नहीं रह पाता..।

“हमने आपकी कीर्तिगाथा काशी में सुनी थी। अन्तःकरण ने हमें प्रेरणा दी कि आज राजा शिवाजी ही यह भार अपने सशक्त कन्धों पर उठाने में समर्थ हैं।

“राजन्, उत्तर देश में आज पवित्र मन्दिरों का ध्वंस किया जा रहा है। मूर्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट की जा रही हैं। उद्दण्ड म्लेच्छों के कारण सर्वत्र हाहाकार मच गया है। निर्बल हिन्दू प्रजा का बलात् धर्मपरिवर्तन किया जा रहा है।” आचार्य की वाणी अब परम गम्भीर हो गयी थी।

“यदि यही अवस्था बनी रही, तो राम और कृष्ण की यह पावन धरती एक दिन राख बन जाएगी। यही कारण है कि उत्तरवासियों के प्रतिनिधि के रूप में हम यह भिक्षापात्र लिये आपके दुर्ग में आये हैं। हे धर्मरक्षक, हमें सिंहासन दो। हे नरोत्तम, धर्मदण्ड को राजदण्ड का बल दो। तुम छत्रपति राजा बनो। हमें ‘छत्र’ दो।” भाव-विह्वल होकर आचार्य जी ने अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर आकाश में उठा लीं। उत्तर दिशा दक्षिण दिशा को पुकार रही थी।

जिजाऊ की आँखों में आँसू भर आये थे। वे कुछ भी देख नहीं पाती थीं। महाराज के नेत्र भी बन्द थे और उँगलियाँ कौड़ियों की माला पर फिर रही थीं। एक-एक कौड़ी उन्हें इस समय रण में खेल रहे एक-एक बलिदानी वीर की स्मृति दिला रही थी।...पावनखिण्ड में जूझनेवाला वीर बाजीप्रभु देशपाण्डे, सिंहगढ़ का विजेता बहादुर तानाजी, पुरन्धर के दुर्ग का रक्षक बलिदानी मुरारबाजी, सूर्याजी, रामजी और भी न जाने कितने ही वीर...। महाराज को आभास हुआ मानो वे सब भी हाथ ऊँचे उठाकर पुकार-पुकारकर याचना कर रहे हैं—“महाराज, तुम छत्र धारण करो। हमारे बलिदान को सार्थक बनाओ।”

युवराज सम्भाजी सम्मोहित-से वेदमूर्ति गागाभट्ट के तेजस्वी, निर्भय मुख को देख रहे थे। उन्हें आभास हुआ, मानो रायगढ़ भी अपने ऊँचे कगारों-शिखरों द्वारा कुछ सन्देश-प्रेरणा दे रहा है। वे उसे अपने कानों में, हृदय में भरकर रखना चाहते थे।

https://t.me/Sahityajunction

“राजदण्ड के बिना धर्म की स्थापना सम्भव नहीं।...असुरक्षित धर्म धर्म नहीं रह पाता।... पवित्र मन्दिरों का ध्वंस किया जा रहा है...मूर्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट की जा रही हैं।...निर्बल हिन्दू प्रजा का बलात् धर्मपरिवर्तन किया जा रहा है...” सम्भाजी के भीतर से कोई जैसे इन्हीं शब्दों को बार-बार ध्वनित-प्रतिध्वनित कर रहा था :

मार-मार कर ही मरे, वह सद्गति को पाये।
फिर आवे, सुख भोगने, लोक सुकीर्ति गाये ।।

आचार्य गागाभट्ट की आज्ञा महाराज ने शिरोधार्य की। बैठक में हुई चर्चा के समाचार को शायद रायगढ़ के पंछी-पखेरुओं ने भी सुना था। वे उड़-उड़ कर पूरे मावल देश में यह आनन्ददायी समाचार सुना आये।

‘हमारा राजा गद्दी पर बैठेगा। बड़ा महाराज बनेगा। लम्बा-चौड़ा दरबार होगा उसका।’ बारहों मावल-खण्डों की हर कुटी-झोंपड़ी में यही भोले-हर्षभरे बोल सुनाई दे रहे थे।

पनघट और नदी के घाटों पर घड़े परस्पर कह रहे थे—‘बेचारी बुढ़िया ने आज तक बड़ा बनवास भोगा है। अब उसकी आँखें ठण्डी होंगी। वाह री माँ—पूत जने तो ऐसा। नहीं तो एक हमारे भी सपूत हैं—भोजन के यार—भूमि पर भार...’

इस राज्याभिषेक में किसी प्रकार का दोष अथवा अभाव न रहे, इस हेतु सें अनन्तभट्ट कावले पुनः नासिक गये। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण-सभा आयोजित की। इस सभा में दो विवादास्पद विषय उपस्थित किये गये। एक यह कि कलियुग में क्षत्रियों का लोप हो चुका है और दूसरा यह कि राज्याभिषेक होनेवाले राजा का मौंजीबन्धन होना आवश्यक है। राजा शिवाजी का मौंजीबन्धन नहीं हुआ है। हाँ, विवाह अवश्य हुए हैं।

आचार्य गागाभट्ट ने इस ब्राह्मण सभा में शास्त्रों के अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया कि प्रायश्चित्त के द्वारा संस्कारों की हानि दूर की जा सकती है।

अपने कुल की वंशावली लाने के लिए महाराज ने अपने चिटनीस बालाजी को राजपूताना भेजा था। वहाँ बालाजी ने मेवाड़, उदयपुर, जयपुर आदि नगरों में भ्रमण करके वंशावली की सूची प्राप्त की। इस खोज से यह सिद्ध हो गया कि शिवाजी सूर्यवंशी ‘सिसोदिया’ वंश के राजपूत क्षत्रिय थे। राणा भीमसिंह, सज्जनसिंह, दिलीपसिंह, देवराज जी आदि सूर्यवत् तेजवान् राजपूत राजाओं के वंशज थे वे।

इस प्रकार सब बाधाएँ दूर हुईं। गागाभट्ट की सूचनाओं के अनुसार राज्याभिषेक के विवरण तैयार किये जाने लगे। ज्येष्ठ रानी होने के कारण पटरानी का पद सोयराबाई को तथा महाराज के अधिकारों और उत्तरदायित्वों के उत्तराधिकारी के रूप में सम्भाजी का युवराज पद पर अभिषेक किया जाय, ऐसा आदेश भी आचार्य गागाभट्ट ने दिया।

रायगढ़ अब मावलों की राजधानी बनने जा रहा था। सजधज प्रारम्भ हो गयी थी। शिल्पकार हिरोजी इन्दलकर दरबारी चौक और ख़ासमहल को झाड़फानूस, खूबसूरत फ़र्श, रोशनी आदि की सजावट से सुन्दरतम बनाने के काम में जुट गये। कारीगरों की छैनियाँ पत्थरों से बातें करने

https://t.me/Sahityajunction

लगीं। ताल, ठेके पर गाने लगीं—'छत्रपति राजा शिव', बढ़ई, सुनार, लुहार, मातंग, ढेढ़—सभी जन पूरी शक्ति से काम में जुट गये।

जौहरी, सर्राफ़ और अत्तार प्रभूत व्यापार की आशा लगाये रायगढ़ में आने लगे। अस्तबल के घोड़े नालबन्दी के लिए बाहर निकाले गये। दूर-दूर के सूबों-परगनों से भारवाही बैल अनाज के थैले ढो-ढोकर मुख से झाग फेंकते हुए, नीचे से ऊपर चढ़ रहे थे। धान्य के भाण्डार थैलों से भरे जाने लगे।

दुर्ग के मन्दिरों की मूर्तियों पर वज्रलेप चढ़ाया जाने लगा। लाल बन्दों से बँधी थैलियाँ कमर में खोंसकर थैली-सवार सन्देश ले जाने लगे, लाने लगे। दुर्ग के अठारहों कारख़ानों ने मानो नया जीवन पा लिया था। चाँदी के कड़ों से सुशोभित मर्दाने हाथ और कुहनी तक चूड़ियों का सिंगार किये जनाने हाथ सब कुछ भूलकर एक भव्य स्वप्न साकार करने में लीन हो गये थे।

शिल्पी रामजी दत्तो ढलाई के काम में निपुण था। उसने महाराज के हाथों पहले नारियल फोड़वाकर पूजा की और फिर 'सिंहासन' की घड़ाई-ढलाई के कार्य का शुभारम्भ किया। रामजी जानता था कि वह एक 'रामचन्द्र' का आसन बना रहा है! बत्तीस मन सोने का। चमचमाते ख़ालिस सोने का आसन!

सम्भाजी हाथी हौज़ के पास खड़े थे। 'त्रिशूल' नामक एक जवान हाथी उस हौज़ में घुसा हुआ था। बहुत बरस पहले जब वह त्रिशूल अभी बच्चा ही था, उसे रस्सियों से बाँधकर क़िले के पिछले दरवाज़े के रास्ते यहाँ ऊँचे पर्वतीय दुर्ग पर लाया गया था। अब वह जवान हो चुका था, पानी से बाहर ही नहीं आना चाहता था। बेचारा महावत उसे बाहर निकालने की कोशिश कर-करके हार गया था। 'त्रिशूल' ने आज शायद हठ करने की ठान ली थी। सम्भाजी महावत की परेशानी को देखते हुए खड़े-खड़े ही सोच रहे थे।

सायंकाल की नौबत बज रही थी। अकस्मात् ही नौबत एकदम बन्द हो गयी, जैसे किसी ने हाथ पकड़कर रोक दिया हो। सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये, नज़र सामने की ओर गयी। वहाँ दूर पर लिंगाणा दुर्ग का पर्वत था, जो बरसों के दावानल से जलकर अब काला दिखलाई पड़ रहा था।

सम्भाजी तुरन्त उपरिकोट की ओर लपके। जाते-जाते उनके कानों ने झुँझलाये महावत के ये खीज-भरे बोल सुने, "त्रिऽशूऽल, अरे हठ छोड़ दे रे! आज हौज़ के कीचड़ में फँसने की ठानी है क्या?"

सम्भाजी महादेव यमाजी और यादव नामाजी को साथ लेकर लपकते हुए पालकी-दरवाजे से होकर उपरिकोट में आये। वे महाराज के ख़ासमहल की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तभी उन्होंने अनुभव किया—आज ज़रूर कोई ख़ास बात हुई है।

भीतर बैठक के सामने जासूस कर्माजी खड़ा था। कपड़े धूल से भरे थे। कर्माजी सेनापति प्रतापराव की सेना का जासूस था। बैठक के आस-पास मोरोपन्त, अण्णाजी, बालाजी, येसाजी आदि शान्त खड़े थे। सबकी गरदनें झुकी हुई थीं।

सम्भाजी महाराज को मुजरा करने के लिए झुक रहे थे कि महाराज ने कहा, "ठहरो युवराज, यह मुजरा हमें नहीं, हम सबके उन राज्याधिकारी को करो, जो संसार से विदा हो गये हैं।"

https://t.me/Sahityajunction

महाराज के पैर जैसे मनों भारी हो गये थे। वे धीरे-धीरे चल कर युवराज के निकट आये और उनके कन्धों पर हाथ रखकर बोले, "शम्भू बेटे, हमारे सेनापति प्रतापराव ने अपने प्राणों को झोंक दिया। पठान सरदार बहलोल ख़ाँ की दस हज़ार की विशाल फ़ौज की आग में घुसकर उस पागल पंछी ने अपने पंख जला लिये। हमारे सेनापति गुज़र गये। हमसे रूठकर दुनिया ही छोड़कर चले गये वे। हठ से, ज़िद करके चले गये वे।"

सम्भाजी को याद आया—प्रतापराव ने बहलोल ख़ाँ को घेर लिया था। परन्तु उसे जिन्दा छोड़ने की भूल कर बैठे थे वे। महाराज को इस भूल पर बहुत क्रोध आया था। इसी राजसी क्रोध की धुन में महाराज ने प्रतापराव को लिखा था : 'पठान को घेरकर तुमने फिर उससे सुलह क्यों कर ली? अब शत्रु को धूल में मिलाये बिना हमें मुँह मत दिखाना।'

बहलोल ख़ाँ ने प्रतापराव के शिकंजे से छूटते ही सारे मराठा-प्रदेश में धमा-चौकड़ी मचाना प्रारम्भ कर दिया था। प्रतापराव पूरे एक साल तक उसका पीछा करते रहे थे। अपनी भूल सुधारने का मौक़ा ताक रहे थे वे। परन्तु बहलोल ख़ाँ अब होशियार बन चुका था, वह गुफ़ा से बाहर ही नहीं आता था।

इसी समय प्रतापराव ने समाचार सुना—'महाराज सिंहासन पर बैठनेवाले हैं।' सोचने लगे—'रायगढ़ लौटना पड़ेगा। परन्तु बहलोल ख़ाँ तो जिन्दा है अभी, महाराज को मुँह कैसे दिखाएँ हम?'

नेसरी गाँव के और कुपे के दर्रे के निकट बहलोल ख़ाँ अपनी दस हज़ार फ़ौज के साथ छावनी डाले पड़ा है, यह ख़बर प्रतापराव को मालूम हुई। उनकी अपनी सेना कम थी, सेना लेकर आक्रमण करने से विजय हाथ आना असम्भव बात थी। परन्तु उससे असम्भव बात थी बहलोल को ज़िन्दा छोड़कर महाराज को मुँह दिखलाना। इसलिए प्रतापराव ने एक दिन अपने चुने हुए सरदारों को अपने खेमे में बुलाया। बुलाने का कारण कोई नहीं जानता था। प्रतापराव ने यह कहकर उन्हें एक गहरी मुसीबत में डाल दिया, "हम आज अकेले ही बहलोल ख़ाँ पर हमला करने जा रहे हैं। बिलकुल अकेले। महाराज से हमारी आख़िरी बन्दगी कह देना!"

वहाँ उपस्थित छः बहादुरों ने यह बात सुनते ही अपनी तलवारें म्यान से बाहर खींच लीं। बोले, "सेनापति जी, जहाँ आप, वहीं हम।" महाशिवरात्रि के दिन प्रतापराव ने घोड़े पर सवार होकर जयघोष किया, "हरऽ हरऽ महादेव!" और वे टूट पड़े दुश्मन की सेना पर। उनके पीछे-पीछे छः दीवाने बहादुर भी लपके।

वे सात दीवाने पंछी दस हज़ार सैनिकों पर टूट पड़े और फिर नहीं लौटे। सात बिजलियाँ टूटीं और गहरे विशाल समुद्र में खो गयीं।

विशाल सेना-रूपी दावानल में घुसते समय प्रतापराव का मन-पंछी कह रहा था—'यह जंगल की आग बहुत भयानक होती है, प्रभु। पंछी-पखेरू इस आग में ऐसे जा पड़ते हैं, जैसे किसी ने खींच लिया हो। व्यर्थ ही अपने पंख जला लेते हैं पगले पंछी।'

सम्भाजी को इस समय न जाने महावत के कहे हुए वे शब्द क्यों याद आ गये—'त्रिऽशूल, अरे हठ छोड़ दे रे। ज़िद मत कर।'

https://t.me/Sahityajunction

रायगढ़ पर प्रतापराव की बलिदानी मृत्यु के कारण अशौच-दुख छाया था। रुँधे हुए भारी मन से महाराज ने प्रतापराव के 'मृतक-कर्म' पूरे किये। सेनापति का पद रिक्त हो गया था। यह पद उन्होंने हँसाजी मोहिते को देना निश्चित किया। उन्हें सम्मान- वस्त्रादि देकर महाराज ने हँसाजी मोहिते को 'हम्बीरराव' उपाधि भी प्रदान की।

हँसाजी महारानी सोयराबाई के भाई थे। इस कारण उस नयी नियुक्ति से सोयराबाई के मन में सरसों फूल उठी। संकट-कठिनाई के अवसरों पर खून के रिश्ते वाले ही तो काम आते हैं। अपना भाई-बिरादर सत्ता के पद पर हो, तो मनुष्य के मन को यूँ ही एक सहारा-सा मिलता है। न जाने क्यों!

आचार्य गागाभट्ट ने अनेक धर्मग्रन्थों का आधार लेकर सम्पूर्ण विस्तार सहित राज्याभिषेक की विधियों का एक ग्रन्थ तैयार किया—'राज्याभिषेक प्रयोग'।

इन्हीं दिनों पाचाड़ से समाचार आया—रानी काशीबाई का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। महाराज, युवराज, जिजाऊ, रानियाँ, येसूबाई, धाराऊ आदि समस्त राज-परिवार पाचाड़ चला आया। रोगी काशीबाई कुछ बोल नहीं पाती थीं; मौन रहकर ही वे महाराज की ओर तथा सम्भाजी की ओर केवल शून्य दृष्टि से देखे जा रही थीं। वे अन्त तक कुछ कह भी नहीं पायीं—मौन ही संसार से कूच कर गयीं। अन्तःपुर में विलाप मच गया।

काशीबाई का निर्जीव शरीर महल में रखा हुआ था। उनका माथा कुंकुम की आड़ी रेखाओं से भरा हुआ था। महाराज ने उनका निष्प्राण हाथ अपने हाथों में लिया। उनकी आँखें छलछला आयीं। काशीबाई मौन रहकर न जाने कौन-कौन सी आकांक्षाएँ मन में छिपाये विदा हो गयीं। राज्याभिषेक के मंगल उत्सव में उनके कारण कहीं 'अमंगल' न आ घुसे, यह सोचकर ही कहीं उन्होंने जाने की शीघ्रता तो नहीं की थी।

उस दिन पाचाड़ के बाहरी पथरीले मैदान में काशीबाई की जलती चिता को सम्भाजी उदास मन से देखते खड़े थे। ज्वालाओं की 'चटाचट' आवाज़ के साथ कविता-रूपी पक्षियों के पंखों की फड़फड़ाहट भी उनके कानों में पड़ रही थी।

सुकर्म-संचय न हो शेष जब, लगे विलम्ब न दिन का, पल का,
क्षण दो क्षण भी पूर्ण नहीं हों, जाना पड़े जनों को, वश क्या,
मृत्यु न कहे किसी को ब्राह्मण, कौन राजपत्नी वा कन्या,

प्रतापराव के आत्म-होम के ठीक एक मास बाद काशीबाई की चिता जली थी। युवराज के रूप में राजटोप सम्भाजी के सिर पर पहनाया जाना ही था, परन्तु उससे पूर्व राजा के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में सम्भाजी का मुण्डन-कर्म किया गया। रायगढ़ दुर्ग में फिर एक बार मरणशौच काल छा गया।

काशीबाई के समस्त मृतक-कर्म पूर्ण हुए। अब महाराज सम्भाजी के साथ प्रतापगढ़ को रवाना हो रहे थे। इस प्रतापगढ़ में ही उनकी कुलदेवी माँ भवानी का मन्दिर था। शिल्पी रामजी दत्तो ने सवा मन सोने का एक छत्र बनाया था। माँ भवानी की मूर्ति पर यह छत्र लगाकर महाराज उस

https://t.me/Sahityajunction

जगज्जननी का आशीर्वाद पाना चाहते थे। यात्रा का दूसरा प्रयोजन था—शिवथर नामक पर्वत-घाटी में स्थित गुहा में समर्थगुरु रामदास के दर्शन पाना।

पिता और पुत्र ने जिजाऊ की आज्ञा लेकर चुने हुए सैनिकदल के साथ रायगढ़ से प्रस्थान किया। फूलों से सुसज्जित पालकी में वस्त्रों से आच्छादित वह स्वर्णछत्र रखा गया था।

'जय भवानी' की गर्जना करके कहारों ने पालकी कन्धे पर उठा ली। वे देवी के उपासक चल पड़े—प्रतापगढ़ की दिशा में माँ भवानी के सिर पर छत्र की स्थापना करने। यात्रा के पहले पड़ाव धूपवाले खुले प्रदेश में थे। इसके बाद दल जावली प्रदेश के घनघोर जंगल वाली घाटी में घुसा।

दूर पर ऊँचे पर्वतीय दुर्ग प्रतापगढ़ का नील शिखर दिखाई दे रहा था। प्रतापगढ़ के दर्शन होते ही महाराज के मन में न जाने स्मृतियों की कितनी वस्त्र-ज्योतियाँ भभक उठीं। इसी प्रतापगढ़ में भूतकाल में क्या-क्या भला-बुरा नहीं बीता है। अफ़ज़ल ख़ाँ और शिवाजी की भेंट यहीं की 'जनी की पहाड़ी' पर ही तो हुई थी।

सारा दल 'जनी की पहाड़ी' से आगे बढ़ता हुआ प्रतापगढ़ तक आया। क़िलेदार ने महाराज और युवराज की अगवानी की। माथे पर कुंकुम के बड़े तिलक धारण करनेवाली सौभाग्यवती स्त्रियों ने उनकी आरती उतारी।

छत्रस्थापना का मुहूर्त अगले दिन था। भोजनादि के पश्चात् दोपहर ढलने पर महाराज सम्भाजी को साथ लेकर क़िले का निरीक्षण करने निकले। सबने क़िले के ख़ास महत्त्व के स्थानों का निरीक्षण किया और सब लोग 'अब्दुल-बुर्ज़' पर आये। यहाँ से बीजापुर राज्य के सरदार अफ़ज़ल ख़ाँ की गोल गुम्बदवाली कब्र एक हण्डे के समान गोल-गोल दिखाई दे रही थी। महाराज उसे देखते हुए बहुत गम्भीर हो गये थे।

"महाराज साहब, अफ़ज़ल ख़ाँ ने बीजापुर के भरे दरबार में बीड़ा उठाया था कि आपको जिन्दा या मुर्दा पेश करेगा। परन्तु उसके वध के बाद आपने तो उसकी शानदार कब्र बनवायी है। इसके पीछे आपके मन में कौन-सा विचार था?" सम्भाजी ने अफ़ज़ल ख़ाँ की कब्र की ओर देखते हुए पूछा। महाराज की विचारधारा इस प्रश्न से भंग हुई।

महाराज ने चौंककर सम्भाजी के मुख की ओर देखा। पूरा मस्तक गन्धद्रव्य के तिलक से भरा हुआ, मूँछों की कोर गालों की ओर मुड़ने वाली। सम्भाजी की नासिका से नीचे उभरती काली रेखा ने आज महाराज का ध्यान खींच लिया। वे बोले, "युवराज हमारा वैर कर्त्ता से नहीं, उसकी करनी से होता है। शत्रु की मृत्यु के साथ ही शत्रुता भी मर गयी, ऐसा हम मानते हैं।"

"परन्तु शत्रु वैसा नहीं मानते, महाराज साहब। हमारे काका प्रतापराव ने युद्धक्षेत्र में वीरगति पायी, परन्तु उनकी पावन देह नहीं मिली हमें। हम अन्तिम अग्नि-संस्कार भी नहीं कर पाये उनका। हमारे जो वीर युद्ध में काम आते हैं, उनके धड़ दुश्मन की छावनी में कुत्तों के सामने फेंके जाते हैं। फेंके जाते रहेंगे। यह कौन-सी रीत है?"

बात वज़नदार थी, युक्ति अकाट्य थी। महाराज इस बात से सुन्न बने रह गये। फिर शान्त स्वर में कहने लगे, "मुग़लाई में और 'श्री' के राज्य में यही तो भेद है, प्यारे शम्भू। हमने शत्रु द्वारा गिराये हुए मन्दिरों को फिर से बनाया है, आगे भी बनाते रहेंगे, परन्तु किसी के धर्मस्थानों को धूल

https://t.me/Sahityajunction

में मिलाने की बात हमें स्वप्न में भी नहीं छू सकती। आज जैसा तुम सोचते हो, वैसा ही कभी हम भी सोचा करते थे, परन्तु माँ साहिबा ने हमारी बुद्धि निर्मल-शुद्ध बनायी, विचार उदात्त बनाये।"

जिजाऊ का नाम जिह्वा पर आते ही दोनों मौन, शान्त हो गये। दूर भवानी के मन्दिर में सन्ध्याकालीन आरती के वाद्य सुनाई देने लगे। युवराज को आभास हुआ मानो वे इस समय मावल माची पर खड़े हैं। उनके हाथ अपने आप मुजरे के लिए छाती से जा लगे। फिर वे महाराज के साथ ही अब्दुल-बुर्ज की सीढ़ियाँ उतरते हुए भवानी के मन्दिर की ओर चल पड़े।

पन्त-सचिव अण्णाजी दत्तो को महारानी सोयराबाई ने अपने महल में बुला भेजा था। अण्णाजी अपने उपरने का छोर मुट्ठी में पकड़े-मसलते सोयराबाई के महल में प्रविष्ट हुए।

महारानी को देखते ही उन्होंने मुजरा किया।

"आओ, सुरनीस[1]। हमने सुना है—अभिषेक की सारी विधियाँ निश्चिंत हो चुकी हैं।" सोयराबाई ने अपने मतलब की बात छेड़ी।

महाराज और सम्भाजी रायगढ़ में नहीं हैं, यह देखकर सोयराबाई ने चन्द्रा दासी की मारफ़त पन्त-सचिव सुरनीस अण्णाजी को अपने महल में बुला भेजा था। मन में कुरेदती एक गुत्थी सुलझाना चाहती थीं वे।

"जी, सब विवरण पूर्ण किया जा चुका है।" अण्णाजी ने नीचे देखते हुए पूछे गये प्रश्न का उत्तर दिया। इतने में चन्द्रा दासी का हाथ पकड़े हुए बालक राजाराम बैठक में आये। अण्णाजी ने उन्हें देखते ही मुजरा किया।

सोयराबाई ने नन्हे राजाराम को अपने पास ले लिया। उसके गले का मोतीकण्ठा, जो पहले से ही ठीक था, उसे यूँ ही एक बार ठीक-ठाक किया। इसी समय मन में यह भी सोच लिया कि अपने मन की ख़ास बात अण्णाजी से क्योंकर कही जाय।

"तो विवरण पूर्ण हो चुका है। अच्छा, तो उस विवरण में हमारे बालराजा के लिए कौन-कौन-सी विधियाँ निश्चित की गयी हैं भला?" सोयराबाई की भेदती-सी नज़र अण्णाजी की पगड़ी के चारों ओर घूमी और फिर उनके माथे के तिलक पर आकर ठहर गयी।

अण्णाजी भला क्या बोलते? उनके पास उत्तर न था।

"क्यों सुरनीस, क्या इनके लिए कोई भी विधि निश्चित नहीं हुई है? चुप क्यों खड़े हो?" सोयराबाई ने गम्भीर आवाज़ में पूछा।

"जी, आचार्य जी ने जो अभिषेक-पद्धति निश्चित की है, उसमें बालराजा का स्वतन्त्र रूप से कोई उल्लेख नहीं है।" अण्णाजी ने माप-तौलकर बात कह दी।

"क्या मतलब? क्या ये बालराजा 'श्रीमान्' जी के कोई नहीं लगते? फिर तुम लोग इन्हें मुजरे क्यों किया करते हो?"

"महारानी जी, ग़लत न समझें। वास्तव में इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। स्वयं महाराज ने ही आचार्य जी को अभिषेक-पद्धति निश्चित करने के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किये हैं।"

https://t.me/Sahityajunction

“यही तो हम कहना चाहती हैं। आचार्य जी को दुर्ग में आये दो दिन ही बीते हैं। उनके निर्णय में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो उस विषय में उनसे कहेगा कौन? तुम्हारा काम नहीं है क्या कि ऐसी त्रुटियों की ओर उनका ध्यान दिलाओ?” सोयराबाई ने अण्णाजी को घेर-घेरकर खलिहान के बैल के समान खूँटे से जकड़ दिया।

“जी, ठीक है। हम यह बात आचार्य जी से कह देंगे परन्तु वे हमारी बात मानेंगे ही, इसका क्या भरोसा?”

“तुम कहो तो सही उनसे।”

“जी,” अण्णाजी की पगड़ी धीरे से डोली। सोयराबाई और राजाराम को मुजरा करते हुए, पीछे हटते हुए वे महल से बाहर निकल गये।

थोड़ी देर बाद ही सोयराबाई की दासी चन्द्रा मन्त्री-बाड़ी में अण्णाजी के घर जा पहुँची और वहाँ अण्णाजी की पत्नी को हल्दी-कुंकुम का निमन्त्रण दे आयी। उसी शाम अण्णाजी की पत्नी जब सोयराबाई के महल में आयी तो सोयराबाई ने क़ीमती रेशमी चोली-कपड़े से तो उनकी गोद भरी ही, उस रेशमी चोली-वस्त्र पर एक मोती पिरोयी नथ रखना भी वे नहीं भूलीं। गोद-भराई के समय सोयराबाई ने हँसते हुए कहा था, “अपने लोग इसी तरह आते-जाते रहें, तो बहुत अच्छा लगता है।”

साज-सामान और छोटी-सी सेना को साथ लेकर महाराज और सम्भाजी अब शिवथर की पर्वत-गुहा की ओर जा रहे थे। मार्ग के नदी-नालों, सँकरी-गहरी सड़कों को घोड़े पर बैठकर पार करते समय सम्भाजी के मन में बार-बार यह विचार आ रहा था—‘कैसे दिखते होंगे समर्थ स्वामी? सूर्यभक्त, रामसेवक उस संन्यासी का रूप कैसा होगा भला? संन्यासी होकर भी उनके शब्दों में कैसा अग्नि-कणों का-सा तेज है! हमारी माँ साहिबा उनको कितना वन्दनीय मानती हैं!’

अन्ततः सारा दल शिवथर की घाटी तक आ पहुँचा। यहाँ से आगे दो पर्वतों के बीच सँकरा मार्ग था—जो गुहा तक जाता था। शंखों की उच्च ध्वनि से जैसे सारी घाटी, सारा वन ही उछल-कूद रहा था। हरे-भरे जंगलों पर घाटी में से उठने वाली धूनी का धुआँ ऊँचे वलयों में छा रहा था और उसके साथ ही शंख-ध्वनि भी ऊपर तक चढ़ती जा रही थी।

महाराज के आगमन की सूचना समर्थजी को पहले ही मिल गयी थी, इस कारण स्वयं गुरु महाराज अपने लँगोटधारी शिष्यों के समुदाय सहित स्वागत के लिए आगे तक आये हुए थे। “जय जय रघुवीर समर्थ!”—भक्ति रस में पगी यह वाणी सर्वत्र गूँज रही थी। महाराज ने समर्थगुरु को आया देखा, तो सम्भाजी से बोले, “शम्भू, स्वयं समर्थजी पधार रहे हैं। सामने वे ही हैं। घोड़े से तुरन्त उतरो।”

महाराज उतर पड़े। पैरों के जूते उतारे और झटपट आगे को दौड़ते हुए-से वे समर्थगुरु जी तक जा पहुँचे और उनके चरणों में अपना मस्तक रख दिया।

“राममय बनो।” महाराज के टोप पर हथेली रखकर समर्थगुरु ने मानो आशीर्वाद का छत्र ही रख दिया हो।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज एक ओर हो गये। अब सम्भाजी ने आगे बढ़कर समर्थजी के चरणों में शीश नवाया। सम्भाजी को उन चरणकमलों के कोमल स्पर्श की विशेष अनुभूति हुई। विचारों के भ्रमर मन में मँडराने लगे :

'योनिचक्र में घूम घूमकर। पाता नर यह देह अन्त में।'

"रघुवीर के दास बनो।" समर्थगुरु का जप मालाधारी हाथ सम्भाजी के टोप पर आ गया।

सम्भाजी ने उठकर समर्थगुरुजी के शान्त, तेजस्वी, मुखमण्डल पर दृष्टि डाली। वर्षा धाराओं से भीगकर स्वच्छ हुआ और श्रावण मास की धूप में प्रकाशमान रायगढ़ का प्रस्तरमय कगार जैसा दिखलाई पड़ता था ऐसी ही कान्ति थी उस मुखमण्डल की—दृढ़ निश्चयी, निर्मलता, शान्ति की मूर्ति, त्याग का परमोच्च शिखर, चार पुरुषार्थों का धनी, एक संन्यासी, एक गोसाईं!

समर्थ जी की दृष्टि में ऐसी शीतलता थी कि देखने वाले के तन-मन पर उनके कमण्डलु के जल का छिड़काव-सा हो रहा था। उसी शीतल दृष्टि से सम्भाजी को, उनके मस्तक पर अंकित भस्म की रेखाओं को देखते हुए समर्थगुरु ने कहा, "तुम...युवराज...सम्भाजी...अँ..."

"जी," सम्भाजी ने सिर हिलाया।

"कृपा रघुवीर की।" नेत्र निमीलित कर समर्थगुरु ने कहा।

"स्वामी महाराज, आपने आगे आने का कष्ट क्यों उठाया?" महाराज ने स्नेहभाव से पूछा।

"जो सारे देश को अपने पीछे ले चलने की क्षमता रखता है, उसका आगे बढ़कर स्वागत करना ही उचित है। चलो।" समर्थगुरु ने गिरिगह्वर की ओर संकेत किया।

गिरिगह्वर का निवासी वह रामभक्त अपने दोनों ओर जगज्जननी जगदम्बा के दो अनन्य भक्तों को साथ लेकर आगे बढ़ने लगा। शंख-नाद से गिरिगुहा गूँज उठी। इसी नाद में महाराज की सेना के वादक ने अपने रणसिंगे की थरथराती ध्वनि भी मिला दी।

"स्वामी महाराज को हम रायगढ़ पधारने का निमन्त्रण देने आये हैं।" पत्थर की गुहा में महाराज के ये वचन गूँज उठे।

पत्थर से बनी एक चौकी पर समर्थगुरु एक व्याघ्र-आसन पर बैठे थे। उनके निकट कमण्डलु, लकड़ी का टेका, और भगवे वस्त्रों से लिपटी ग्रन्थ-पोथियाँ रखी हुई थीं। उनके पीछे मारुति की पुरुषाकार विशाल मूर्ति थी। वहीं एक मज़बूत धनुष भी रखा हुआ था और धनुष के नीचे भूमि पर बाणों से भरा एक तूणीर रखा हुआ था।

महाराज और सम्भाजी समर्थगुरु के सम्मुख बिछी हुई एक कमली पर पालथी मारकर बैठ गये। मठ में जलनेवाली धूनी के धूम्र-वलय गुहा में लहरा रहे थे।

कुछ देर तक समर्थगुरु नेत्र बन्द किये जपमाला फिराते रहे। फिर उन्होंने पलकें खोलीं। होठों से उदात्त आशय के विचार प्रकट होने लगे :

"राजन्, तुम्हारे राज्याभिषेक की वार्ता हमने भी सुनी है। इसीलिए हम अभी नेत्र बन्द कर अयोध्या तक हो आये हैं। तुम हमें निमन्त्रित करने यहाँ तक आये हो, हम धन्य हुए। राजा शिवबा, हमने तो अपनी सम्पूर्ण तपस्या का बल-रूपी छत्र पहले से ही तुम्हारे सिर पर रखा हुआ है। परन्तु हम तो पर्वत-कन्दराओं के निवासी, गोसाईं बाबा हैं। हमें सांसारिक बन्धनों में क्यों

https://t.me/Sahityajunction

बाँधते हो? केवल लोक-लज्जा के कारण हम लँगोटी और उदरभरण के निमित्त भिक्षा की झोली धारण करते हैं—अन्यथा ये वस्तुएँ भी हमें भाररूप ही हैं। इसलिए राजन्, हमें संसार में मत उलझाओ।

"तुम्हें हम प्रभु रामचन्द्र जी का ही अवतार मानते हैं। अब हम तुम्हें जो राजयोग का उपदेश सुनाएँगे, उसे ध्यान देकर सुनो। सब भ्रम-संशय दूर करके राज्याभिषेक का उत्सव विधिपूर्वक सम्पन्न करो। अभी तो तुम्हें इतने महान कार्य सम्पन्न करने हैं, जो तुम्हारे हाथों अब तक नहीं हो सके हैं।"

समर्थगुरु ने नेत्र बन्द कर लिये और वे मन के परे किसी अन्य लोक में प्रविष्ट हो गये।

"जी," महाराज के कम्पित स्वर में कहा।

इसके पश्चात् समर्थगुरु के मुखारविन्द से एक-एक शब्द सूर्य बनकर प्रकट होने लगा। पिता-पुत्र कानों को कमण्डलु बनाकर रामभक्ति रस से पूरित करने लगे। वह गुहा ही मन्दिर का गर्भगृह बन गयी—गुरु रामदास के राजयोग सम्बन्धी वचनों से गुहा परिपूर्ण होने लगी :

प्राणों का भय जिसे सताये, क्यों वह नर क्षत्रिय कहलाये?
अन्य करे व्यवसाय काम कुछ, पेट भरे वह जैसे-तैसे।
दृष्टि भरी हो तेज-ताप से, कार्य-सिद्ध हित हिंसा, वध हो।
वही शूर, रणधीर नृपति है, चकित करे जो पराक्रमों से।
नरपति का प्रताप हो ऐसा, व्याघ्र दहाड़ें—भेड़ें भागें।
वन में हैं अरना भैंसा भी, तन विशाल भयभीत न कोई।
करे संगठन बहुत जनों का, सबको सम नहीं जाने।
राजा योग्य पुरुष को चुनकर, काम सौंप दे सावधान हो।
सेनापति, नेता हों मानी, प्राणों के बलिदानी।
सैनिक जो ऐसे मिल पावें, सदा विजय पावे वह नरपति।
विद्रोही, कपटी जो भी हों, कर संहार कठोर दण्ड दे।
सोच विचार करे नित राजा, यथायोग्य समझे-समझाये।
बल-साहस ही शक्ति वीर की, होती प्राप्त विजय बल से ही।
देखे अवसर, कार्य करे नृप, कठिन समय पर सोच समझकर।
टकराएँ दो-दो सेनाएँ, तलवारें चमकें लहराएँ।
सदा करें भूपति भीषण रण, सीमा राज्य, दूर फैलाएँ।
देव, देवमन्दिर टूटें यदि, क्या वह जीवन? मृत्यु भली है।
समझो अपना धर्म खो गया, धर्म डुबाया तुमने अपना।
राजनीति से कर जन-संग्रह, महाराष्ट्र की रक्षा करना।
समय नहीं खाने, सोने का, कर्म बहुत हैं, लक्ष्य बहुत से।
राजनीति में त्याग गर्व को, करो सगंठन लोक-परीक्षण।
बिखरे-टूटे जन को जोड़ो, गुत्थी को सुलझाओ।
पाओ आशीष देव ईश का, हाहाकार मचाओ।
धर्म-राज्य स्थापित करने को, जीतो देश, शत्रु को मारो।

https://t.me/Sahityajunction

“जय-जय रघुवीर समर्थ!” अपने प्रिय नाम स्मरण से समर्थगुरु ने कविता की समाप्ति कर बन्द नेत्रों को खोला। आसन से उठकर वे हनुमान जी की मूर्ति के निकट गये। कन्धे तक ऊँचा धनुष उन्होंने हाथ में थाम लिया था। वे दोनों कमली पर ही खड़े हो गये।

समर्थगुरु महाराज के सामने आ खड़े हुए और वैरागी वाणी में कहने लगे, “हमने तुम्हें आशीर्वाद तो दिया ही है। अब यह हमारा कोदण्ड भी तुम लो। तुम्हारे राज्याभिषेक के अवसर पर हम वैरागियों की यह भेंट समझो। हमारे पास देने के लिए और है भी क्या? आज के प्रसंग के अनुरूप ही हमारी यह भेंट है। लो, विजयी होओ।”

कोदण्ड को समर्थगुरु ने आगे बढ़ाया। महाराज के नेत्रों में कृतज्ञता के अश्रु आँखों के कोनों में छलक आये थे। उन्होंने झुककर अत्यन्त आदरभाव से वह धनुष हाथ में लिया। आँखें बन्द करके धनुष को माथे के शिवतिलक से लगाया और फिर उसे सम्भाजी के हाथ में दे दिया।

युवराज ने भी आँखें बन्द कर लीं। धनुष को शिवतिलक से लगाये हुए समर्थ जी की कविता की एक पंक्ति बार-बार उनके मन में गूँज रही थी :

‘प्राणों का भय जिसे सताये। क्यों वह नर क्षत्रिय कहलाये?’

धनुष और तूणीर हाथ में धारण किये हुए सम्भाजी समर्थगुरु से कुछ कहना चाहते थे, परन्तु फिर संकोचवश ठहर गये। एक बार उन्होंने महाराज की ओर देखा।

“कहो, कहो, निस्संकोच होकर कहो, युवराज।” समर्थगुरु की दृष्टि से सम्भाजी की हिचकिचाहट छिपी न रह सकी।

“कुछ नहीं, हम...हम...कहना चाहते थे कि...” सम्भाजी फिर कहते-कहते अटक गये।

“कहो न, क्या कहना चाहते हो?” समर्थगुरु ने मुस्कुराते हुए पूछा।

“स्वामी महाराज ने जैसे श्लोकों में महाराज साहब का चित्र खींचा है, वैसे ही यदि माँ साहिबा का महिमामय रूप भी आप शब्दों में बाँध दें, तो हमारे कान धन्य हो जाएँ।”

समर्थगुरु ने कभी जिजाऊ को देखा नहीं था। परन्तु माता जीजाबाई की स्मृति ने उनके मस्तिष्क में अपनी माता की धुँधली-सी स्मृति एकदम स्पष्ट उपस्थित कर दी। अपनी माता को कभी उन्होंने बचपन में देखा था। आज उस माँ की स्मृति आते ही उस वैरागी ने मन को दृढ़ बनाकर वह स्मृति-चित्र पोंछ डाला।

“युवराज, तुम और महाराज धन्य हो कि प्रतिदिन उनके सान्निध्य में रहते हो। हमने उनके कभी दर्शन तो नहीं किये, हाँ कीर्ति अवश्य सुनी है। परन्तु हम सोचते हैं कि यदि हमने उनके दर्शन पाये भी होते, तो भी हम उनका शब्दचित्र उपस्थित न कर पाते। हमने ‘दासबोध’ की शब्दों द्वारा रचना की है, परन्तु उन्होंने तो जीवित ‘शिवबोध’ ही रचकर दिखा दिया है।” महाराज की ओर उँगली से निर्देश करते हुए समर्थगुरु ने कहा।

“वाल्मीकि ने रामायण की रचना की, परन्तु माता कौशल्या की महिमा को वे भी शब्दों में पकड़ पाने में असमर्थ रहे हैं, यह बात भला हम कैसे भूल सकते हैं?”

महाराज ने समर्थगुरु के चरणों में प्रणाम किया। सम्भाजी द्रोणगिरि पर्वत को हाथों पर थामे बलशाली हनुमान की मूर्ति की ओर देखे जा रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

उस दिन महाराज ने शिवथर घाटी में ही विश्राम किया। दूसरे दिन पौ फटते ही वे रायगढ़ की ओर चल पड़े। महाराज ने उन्हें विदा करने के लिए हाथ जोड़े, तो समर्थगुरु ने अपना जयमाला युक्त हाथ उनके कन्धे पर रखकर तनिक भिन्न-निराले, कम्पायमान स्वरों में कहा, "राजन्, एक काम हमारा अवश्य करें। अपनी माता जी को हमारा दण्डवत कहें। कहें कि हम वहाँ न आ पाये, परन्तु हमारे रूप में हमारा 'दासबोध' वहाँ उनकी सेवा को तत्पर है। अच्छा, अब आप चलें। राममय होवें-जयऽ जयऽ रघुवीर समर्थ।"

सम्भाजी के नेत्र बन्द थे। सम्भाजी लौट पड़े थे। लौटते समय मन विचारों की दुनिया में खो गया था।—इतने महान तपस्वी की जन्मदात्री माता भला कैसी होगी? क्या हमारी माँ साहिबा के समान? कहाँ होगी वह माता? क्या उसने सुना होगा कभी अपने पुत्र का 'दासबोध'? दासबोध—! ओह, कितना गहन—कितना अर्थपूर्ण!

'सुकर्म संचय न हो शेष जब, लगे विलम्ब न दिन का, पल का।
क्षण दो क्षण भी पूर्ण नहीं हों, जाना पड़े जनों को, वश क्या!'

दुर्ग में पानी के जो बारह कुण्ड थे, उनकी सफाई की गयी थी। अतः कुण्डों का जल दर्पण के समान स्वच्छ हो गया था। सम्भाजी इन कुण्डों को देखते खड़े थे और मन दुहरा रहा था समर्थगुरु के श्लोकों को।

इसी बीच बाजू की झाड़ियों के नीचे के सूखे पत्तों में कुछ सरसराहट हुई और अगले ही क्षण एक चित्तीदार चंचल साँप बाण के समान तेज़ी-से झपटकर बाहर आया। थोड़ी देर के लिए वह वहाँ ठहरा और फिर एकदम फन फैलाकर हाथ-भर ऊँचाई तक खड़ा हो गया। उसकी जीभ की दो पत्तियाँ बाहर लपलपा रही थीं।

रायाजी सम्भाजी के पीछे था। उसने साँप की दिशा में भाला तान लिया। परन्तु अन्तोजी ने उसके उठे हुए हाथ को दबाते हुए कहा, "शम्भु महादेव जी का अलंकार है वह। जाने दे उसे अपनी इच्छा से।" रायाजी ने हाथ खींच लिया और वह सर्प सरसराता हुआ सामने की झाड़ियों में खो गया।

सम्भाजी रायाजी से आगे कुछ कहना चाहते थे कि महादेव यमाजी के साथ आये कवि कुलेश ने मुजरा करके सूचना दी, "जगदीश्वर के मन्दिर के ओसारे में उत्तर देश का कोई एक कवि आया है। महाराज का आदेश है कि युवराज से उनकी भेंट कराओ।"

"जैसी आज्ञा, चलो।" कौन कवि होगा भला, यह सोचते हुए ही सम्भाजी जल-कुण्डों के पास से चल पड़े।

वे महादेव यमाजी और कवि कुलेश के साथ जगदीश्वर मन्दिर के निकट आये। वहाँ आँगन के बाहर ही एक व्यक्ति वृक्ष से बँधे हुए एक सफ़ेद घोड़े को खरहरा कर रहा था। वह व्यक्ति साथ-साथ कुछ-कुछ गुनगुना भी रहा था। किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

सम्भाजी महादेव यमाजी और कवि कुलेश के साथ मन्दिर के आँगन में आये। नीचे की कच्छप-मूर्ति को बचाते हुए उन्होंने पहले घण्टे को टंकोर दी। फिर भीतर जाते हुए मन्दिर के

https://t.me/Sahityajunction

गर्भगृह में बेलपत्रों तथा कमलों से ढँकी, जलहरी की धारा से सिंचित शिवपिण्डी के सम्मुख घुटने टेककर उन्होंने मस्तक नवाया और पुजारी का दिया चरणामृत पान किया।

बाहर आँगन में आकर वे उस कवि को खोज रहे थे। मन्दिर का आँगन, गोल कमान वाले ओसारे, कमरे, सब उदासी, बैरागी, गोसाईं आदि साधुओं से भरे थे, जो दान-दक्षिणा की आशा में यहाँ एकत्रित हो गये थे। महाराज के कई जासूस भी इन साधुओं में भेस बदलकर मिल गये थे। उन्होंने महादेव पन्त को पहचान लिया।

इनमें से एक जासूस आँगन के बाहर आया और महादेव पन्त से फुसफुसाते हुए बोला, "यही है वह चारण-कड़खैत। अभी कुछ देर पहले ख़ुद महाराज आँगन में आकर इसका पवाड़ा सुन गये, मगर इस पट्ठे ने उन्हें पहचाना ही नहीं। मैंने भी इसका पवाड़ा सुना, पर इसकी बोली मुझे तो समझ नहीं आयी।" भगवी कफ़नी धारण किये हुए उस जासूस ने घोड़े को खरहरा करनेवाले ठिगने-से व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए बतलाया।

"प्रणाम करता हूँ कविवर।" कवि कुलेश ने आगे बढ़कर कहा। उस व्यक्ति ने खरहरा करना बन्द कर दिया।

"जय जयन्ती, प्रणाम!" खरहरा करने वाला व्यक्ति आश्चर्यचकित होकर कुलेश की ओर देखने लगा—यह हिन्दुस्तानी भाषा बोलनेवाला यहाँ कौन है!

उस नवागत का रंग पके आम के समान था। सिर पर कन्नौजी ढंग की पगड़ी, शरीर पर बन्दोंवाला सफ़ेद कुरता, लाल किनारीदार धोती, माथे पर आड़ा शैवतिलक, और पुखराज के समान तेजस्वी—अभिमानी नेत्र—ऐसा रूप था उसका।

हाथ में तस्मों से बँधा खरहरा खोलते हुए उसने कवि कुलेश से पूछा, "क्षमा हो, आपका परिचय?"

"हम हैं कवि कुलेश, प्रयागराज के निवासी। आपका परिचय?"

"हम हैं त्रिविक्रमपुर के त्रिपाठी। भूषण त्रिपाठी।"

"हे चण्डी, माता चण्डीऽ। कविराज भूषण, हमने आपका यश सुना है, परन्तु दर्शनों का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ।" कुलेश ने सामने खड़े उस कन्नौजी तेज को एक बार पुनः देखा और नमस्कार किया।

सम्भाजी उस वृक्ष की ओर ही आ रहे थे। उन्हें आता देखकर कवि भूषण को जानकारी देने की दृष्टि से कुलेश ने धीरे-से कहा, "ये युवराज सम्भाजी हैं।"

भूषण ने झुककर कन्नौजी पद्धति से नमस्कार किया। उतावली आँखों से उसने सम्मुख चले आ रहे क्षात्रतेज को ध्यान से देखते हुए धीरे से कहा, "जय जयन्ती! तो ये हैं सर्जा शिवाजी के सपूत।"

"कविराज, हम अपने पूज्य पिताजी का आदेश पाकर आपसे मिलने आये हैं। कहिए, आप कौन से देश से आ रहे हैं? क्या शुभ नाम है आपका?" सम्भाजी ने देखा—कवि कुलेश और कवि भूषण की पगड़ियों में काफी समानता है।

भूषण ने युवराज को अपना परिचय दिया। फिर प्रार्थना की, "युवराज, हम दूर देश से आये हैं यहाँ। हमें राजा शिवाजी के दर्शन कराने की कृपा करें।"

https://t.me/Sahityajunction

“हाँ, हाँ, अवश्य। हमारे आबासाहब के दर्शन कविगणों को अवश्य करने चाहिए परन्तु पहले आप अपना मुक़ाम यहाँ से हटावें, हमारे महल में पधारें।” युवराज ने हँसते हुए कहा।

“अच्छा जी, अवश्य।” भूषण ने आदर से कहा।

रायाजी ने घोड़े की बाग वृक्ष के तने से खोली। अन्तोजी के साथ कविभूषण भी मन्दिर में गये और वहाँ से अपनी खुरजी और बिछौना साथ ले आये।

सम्भाजी दो उत्तरी कवियों के बीच चलते हुए उपरिकोट की ओर जाने लगे। उनके पीछे थे रायाजी अन्तोजी, जो उस ‘केसर’ नामक घोड़ी की लगाम पकड़कर चले आ रहे थे। व्यापार पेठ आते ही व्यापारियों के मुजरे पेश होने लगे। कविभूषण रायगढ़ के राजवैभव को आँखों में समाते हुए चल रहे थे।

नक्कारख़ाने के दरवाजे से सब लोग दरबार के भीतर आये। इतनी ऊँचाई पर पानी के फव्वारों को देखकर भूषण अचम्भे से भर उठे—वहीं ठिठक गये। फिर चारों ओर दृष्टि घुमाकर राज सौन्दर्य से अलंकृत दरबार को उन्होंने एक बार देखा।

सम्भाजी ने अपने महल में प्रविष्ट होते समय उनका हाथ अपने हाथ में थाम लिया और यादव नामाजी नामक अपने सेवक को आँखों के संकेत से कुछ आज्ञा दी। कविभूषण को सम्भाजी बैठक के बीच तक ले गये और अपने पास ही उन्हें बैठा लिया। कवि कुलेश और महादेवपन्त दीवार के पास विनम्र भाव से खड़े थे। रायाजी अन्तोजी ने कवि की खुरजी और बिस्तरा भीतर ले जाकर रख दिये।

थोड़ी देर में चाँदी के तबक़ में केसर-मिश्रित दूध से भरे चाँदी के प्याले लेकर यादव उपस्थित हुआ। सम्भाजी ने एक प्याला उठाकर कवि भूषण के सामने रखा—कहा, “लीजिए।”

“हाँ जी,” कवि भूषण इस आतिथ्य से प्रभावित हो गये थे।

“हमें कविता अति प्रिय है। हम हमारा शौक़ है। कभी कोई कवि मिल जाए, तो हमें गंगास्नान का-सा आनन्द प्राप्त होता है।” दूध का एक घूँट पीकर सम्भाजी ने कहा।

“जी, बहुत ठीक,” कवि भूषण मन-ही-मन अनुमान लगाने में मग्न थे। यह, शिवाजी का सपूत है, तो स्वयं शिवाजी कैसे होंगे?

“कविराज आपकी बोली कौन-सी है?”

“जी, हमारी भाषा ब्रजभाषा है। यदि आज्ञा हो, तो उसका कुछ आस्वाद आपको भी करावें।”

“ज़रूर-ज़रूर। हम धन्य होंगे कविवर।” युवराज ने मुस्कराते हुए कहा परन्तु कवि भूषण की नज़र महल में इधर-उधर देखने में मग्न थी, जैसे उनका कुछ खो गया हो।

“क्या बात है कविराज? क्या कुछ ढूँढ़ रहे हैं आप?”

थोड़ी देर के लिए कवि ने हिचकिचाहट अनुभव की। फिर भीतरी कमरे के दरवाज़े की ओर देखते हुए बोले, “हमारी डफली। शायद भीतर ले जाई गयी है।”

सुनते ही सम्भाजी ने रायाजी की ओर देखा। वह भीतर के कमरे में गया और कवि भूषण की खुरजी ले आया। भूषण बैठक से नीचे उतरे और उन्होंने खुरजी में से अपनी डफली और

https://t.me/Sahityajunction

कमरबन्द बाहर निकाले। फिर बैठक-महल के बीचोंबीच आकर उन्होंने कमरबन्द से कमर कस ली। युवराज को दरबारी ठाठ से एक बार मुजरा किया। फिर आँखे मींचकर डफ़ली पर दो-चार लयबद्ध थाप लगायीं। अब कवि भूषण के शरीर में मानो विद्युत् का संचार हो उठा। उस चारण की आवाज़ एकदम बदल गयी। वीर रस बरसने लगा :

"सर्जा शिवाजी के सपूत-युवराज शम्भूराजा, अब सुनिए सर्जा राजा की कीरति।" भूषण की डफली की आवाज़ से सारा बैठक महल थर्रा उठा। नेत्र बन्द कर उन्होंने पहले जयन्ती जगदम्बा का मंगल गान प्रारम्भ किया :

"जै जयन्ती, जै आदि सकति, जै कालि कपर्दिनी—
जै मधु कैटभ छलनी, देवि जै महिष विमर्दिनी।"

मंगल स्तवन के साथ ही जैसे कवि भूषण स्वयं उस जयन्ती देवी के दरबार में जा उपस्थित हुए थे। उनकी ब्रज बोली में अब तडित् की चमक और तोपों की गड़गड़ाहट भर गयी थी।

इन्द्र जिमि जृम्भ पर बाड़व सुअम्ब पर,
रावन सदम्भ पर, रघुकुलराज है।
पौन बारिबाह पर, सम्भु रतिनाह पर।
ज्यों सहस्रबाहु पर, राम द्विजराज है।
दाबा द्रुमदण्ड पर, चीता मृगझुण्ड पर,
भूषन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।।
सर्जा सिवराज है।

"वाह ऽ, वाह ऽ, कविराज! धन्य हैं आप। हमें तो आपने आज समर्थगुरु की याद दिला दी।" सम्भाजी ने हाथ उठाकर मुक्त कण्ठ से कवि भूषण की प्रशंसा की। उन्हें इसी समय समर्थ जी के वचन भी याद आ गये :

'निश्चय का जो है सुमेरु। है बहुतों का संयोगी।
है विपत्ति में अखण्ड स्थिरता। है वह श्रीमन् योगी।'

और भी काफी देर तक भूषण की डफली थड़ाथड़ गरजती रही। सम्भाजी को उन्होंने अपनी चुनी हुई रसपूर्ण रचनाएँ सुनायीं। उनके शब्द और एक-एक काव्य पंक्ति सम्भाजी के मन में नाचती-लहराती वस्त्र-ज्योतियों के समान बन गयी थी। वे बैठक से उठे और नीचे उतरकर कवि भूषण के निकट आये। फिर अपने गले से मोती कण्ठा उतारकर उन्होंने कविराज भूषण के गले में पहना दिया। बोले, "कविराज, आपका एक-एक शब्द मोती है। हम आज अत्यन्त प्रसन्न हुए। आपकी कविता की पंक्ति मानो साँप का डोलता फन ही है।"

"मुतालिक, कवि जी का यथोचित आदर-सत्कार करो।" सम्भाजी ने महादेवपन्त को आदेश दिया। कुलेश और महादेवपन्त कवि भूषण को अपने साथ ले गये। सम्भाजी के मन में भूषण का एक शब्द बार-बार भौंरे के समान मँडरा रहा था—'सर्जा! सर्जा!'

"चलो," महाराज ने युवराज सम्भाजी से कहा, जो पूजा के लिए यथोचित वस्त्र धारण कर

https://t.me/Sahityajunction

वहाँ उपस्थित थे। युवराज ने अपने पास खड़े बालराजा के कन्धे पर हाथ रखा। आज रायगढ़ में प्रभाकरभट्ट और अनन्तभट्ट ने एक विधि पूर्ण की थी—'अशुचशान्ति' की। इस विधि के अनुसार उन्होंने एक बड़ी परात में पकाया चावल लेकर रायगढ़ दुर्ग की चहारदीवारी के किनारे बिखेरा था।

आज ही राज्याभिषेक की पहली विधि का प्रारम्भ होना था। क़िले में लोगों की इतनी भीड़-भाड़ हो गयी थी कि तिल धरने को जगह न थी। महाराज के गोत-बिरादर, सम्बन्धी लोग दूर-दूर से—फलटण, तलबीड़, शृंगारपूर, चौक, सिन्दखेड़, भुईज, पाली आदि स्थानों से—आये हुए थे।

महाराज की सेना के प्रमुख सरदार, अधिकारी—बान्दल, जेधे, मालुसरे, पासलकर, शिलींबकर, कंक, जाधव, सरदार भोसले आदि वीरगण अपनी सेना और साज सामान के साथ दुर्ग में आ चुके थे। अँग्रेज़ों के मुम्बई दरबार का वकील हेनरी आक्सिण्डेन भी रायगढ़ में आ उपस्थित हुआ था।

जहाँ-जहाँ भी स्थान उपलब्ध था, वहाँ डेरे, रावटियाँ, शामियाने, चँदोवे आदि रस्सियों से खींचकर तान दिये गये थे। नक्कारख़ाना, महादरवाज़ा, उपरिकोट सभी इमारतें आम के बन्दनवारों से शृंगार किये खड़ी थीं।

स्थान-स्थान पर वृक्षों के नीचे बड़े-बड़े खम्भों के सहारे पाकशालाएँ बनायी गयी थीं। वहाँ बड़े-बड़े चूल्हे-भट्ठियाँ बनी हुई थीं, जिन पर हण्डे चढ़े थे। नीचे से धुएँ के बादल उठकर ऊपर आकाश की ओर लपक रहे थे। इन धुएँ के बादलों के बीच से होकर धौंसा, नौबत और डंके की गड़गड़ाहट रास्ता बनाती हुई ऊपर उठ रही थी। इसी कोलाहल में शहनाई के सुमधुर स्वर भी मिल गये थे।

ऊँचे नक्कारख़ाने के ऊपर ध्वज-दण्ड पर आज एक बहुत बड़े आकार का भगवा झण्डा लहरा रहा था। मावल-खण्ड के नील आकाश को डफली बनाकर वह भगवा झण्डा फड़फड़ाकर मानो थाप दे रहा था। दुर्ग में अन्यत्र भी घर-घर पर छोटे-बड़े भगवे ध्वज लहरा रहे थे जो मानो मस्ती में सिर डुलाकर बड़ी ध्वजा के सुर में सुर मिला रहे थे।

सरकारी अस्तबल के घोड़ों के अगले दाहिने पैर में चाँदी के तोड़े पहनाये गये थे और उनकी पीठ पर नक्काशीदार, रंग-बिरंगी झूल पहनायी गयी थी। रास्तों पर भिश्ती पानी का छिड़काव कर रहे थे, ताकि धूल न उड़े।

वस्तु-भण्डार की चौकी पर सोने के और मृत्तिका के कलशों में गंगा, सिन्धु, यमुना आदि सात नदियों के जल तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण दिशा के समुद्रों से लाया गया जल भरा रखा था। महाराज सम्भाजी तथा राजाराम के साथ पूजा के वस्त्र धारण कर आचार्य गागाभट्ट के साथ अपने महल से बाहर निकले—उनके पीछे-पीछे मन्त्रिमण्डल के अष्टप्रधान, येसाजी कंक, आनन्दराव, फिरंगोजी, पिलाजी शिर्के, रूपाजी, सर्जेराव आदि प्रमुख सरदार चल रहे थे। कवि भूषण, कुलेश, परमानन्द, निश्चलपुरी आदि भी पीछे आ रहे थे। गोमाजी, खण्डोजी, रायाजी अन्तोजी के रूप में मावल देश की स्वामिभक्ति ही मानो साकार होकर चली आ रही थी।

सब लोगों ने जिजाऊ का आशीर्वाद पाया और फिर वे रामजी दत्तो की रत्नशाला में ढलाई के कारख़ाने में आये। कई सुहागिनों और दासियों को साथ लिये सोयराबाई भी वहाँ आ गयीं।

https://t.me/Sahityajunction

कारख़ाने के बीच के खुले भाग में भगवे वस्त्र से ढँका सिंहासन रखा हुआ था। उसके दायें भाग में सुवर्णनिर्मित गणेशमूर्ति रखी थी। आज सिंहासन एवं मूर्ति की पूजा का दिन निर्धारित था। इसी के साथ समर्थगुरु द्वारा प्रदत्त कोदण्ड की भी आज पूजा की जानी थी।

रामजी शनैः-शनैः आगे बढ़ा और उसने ढँका हुआ भगवा आच्छादन हटाया। सोने के सिंहासन से झिलझिल-झिलमिल चमककर किरणें फैल रही थीं। असंख्य मावले वीरों ने जो रक्त समरभूमि में अर्पित किया था, वही आज सुवर्ण-सिंहासन का रूप धारण कर मानो किरणों की वाणी में कह रहा था : 'हमने आज तक किसी को अपने शरीर का स्पर्श नहीं होने दिया। यह अधिकार, यह मान तो केवल हमारे स्वामी का ही है।'

"हे जगदम्बे, जगदम्बे," सिंहासन पर दृष्टि जाते ही महाराज का हाथ अपनी छाती पर आ गया। सिंहासन के दोनों ओर व्याघ्रमुखी हत्थे बने हुए थे। सम्भाजी को स्मरण आया—'हम पहले भोसले हैं, बाद में शिकारी हैं।'

महाराज सोयराबाई तथा युवराज चन्दन के पीढ़े पर बैठे थे। गागाभट्ट ने अथर्ववेद के गणेशस्तोत्र का पाठ प्रारम्भ किया :

"ॐ गणपतये नमः। त्वमेव कर्ता, त्वमेव...।"

गणेश-पूजा तथा सिंहासन-पूजा पूर्ण हुई। अजाबलि दी गयी। कोदण्ड की पूजा हुई और सुवर्णपुष्पों को उछालकर बिखेरा गया।

"आइए, सिंहासन का हाथ से स्पर्श कीजिए।" आचार्य जी ने राजमण्डली से प्रार्थना की। महाराज और सोयराबाई आगे बढ़े। बालक राजाराम सब विधियाँ देखते हुए कुछ दूरी पर खड़े थे।

"आओ, इस सिंहासन को हाथ लगाओ," सम्भाजी ने बड़े प्यार से राजाराम का हाथ पकड़ा और उन्हें सिंहासन के निकट ले आये।

"बोलो, हरऽऽ हरऽ महादेव!" आस-पास खड़े सब मावलों के कण्ठ से जयघोष फूट पड़ा। राजमण्डली ने सिंहासन को हाथ लगाया। अब हम्बीरराव, आनन्दराव, मोरोपन्त, अण्णाजी, रामचन्द्रपन्त, येसाजी आदि अनेक श्रेष्ठजन आगे आये और 'जय भवानी' के घोष के बीच सबने उस पवित्र सुवर्ण-सिंहासन को फूलों से सुसज्जित एक रथ पर चढ़ाया। इस रथ में पाँच श्वेत वर्ण के घोड़े जुते थे।

महाराज ने गणेश की सुवर्णमूर्ति उठायी और उसे छाती के सामने कपर्दिकमाला से लगाकर थाम लिया। सम्भाजी ने कोदण्ड उठाया हुआ था।

रणभेरियों और डंकों की रोमहर्षक ध्वनियाँ गूँजने लगीं। लोहे के छल्लोंवाली लेज़िम लेकर टोलियाँ नाच रही थीं—'छल्ल्, खण्ण, खण्ण, छल्ल्।' ऊखली पटाखों और बन्दूक़ों के विस्फोट से वातावरण दनदना उठा था। सरकारी सेना के शस्त्रधारी सैनिक नंगी तलवारें ताने पंक्तिबद्ध होकर चल रहे थे। अबीर-गुलाल से और उछाले गये फूलों से आकाश का रंग बदल गया था। रणसिंगों की ललकार गूँज रही थी।

इस शान और ठाठ से अब आगे जा रहा है—सम्मान का प्रतीक यह सिंहासन, मराठों की गद्दी की ओर—। रत्नाशाला से दरबार की ओर। सिंहासन क्या था, माता जीजाबाई के मन में

https://t.me/Sahityajunction

उत्पन्न एक तुलजाई स्वप्न ही साकार हो उठा था। रणभूमि में परस्पर स्पर्धा-सी करके जिन्होंने वीरगति पायी—उन सूरमाओं के अन्तिम शब्द 'महाराज से हमारा जुहार कहना' ही सुवर्ण रूप धारण करते जा रहे थे। समर्थगुरु का आनन्दवन भुवन ही जा रहा था। अगणित नारीजनों का सुहाग था वह सिंहासन। शिव का निर्भय त्रिशूल था! जगदम्बा दुर्गा के सिंह का उठा हुआ पंजा था वह। हिन्दू जाति का स्वाभिमान, जो सदियों तक ज़मीन में गड़ा रहा था—आज ऐरावत का-सा बल पाकर आगे बढ़ रहा था। और आगे बढ़ रहा था—'श्री' का कल्याणकारी राज्य।

इस सिंहासन के रथ के पीछे गणेशमूर्ति उठाये महाराज, पंचारती सजाये सोयराबाई, समर्थगुरु द्वारा प्रदत्त कोदण्ड उठाये युवराज सम्भाजी और उनका हाथ अपने हाथ में पकड़े बालक राजाराम चल रहे थे। सिंहासन और रक्त के सम्बन्ध से जुड़ा हुआ वह राजमण्डल चला जा रहा था।

रथ की यात्रा गाते-बजाते नौबतख़ाने के दरवाज़े से होकर दरबार-कक्ष के भीतर आयी। सिंहासन के चबूतरे के चारों ओर की झाँकी सोने से बनी थी। आठ स्तम्भ, 'मेघडम्बरी', छत्रमण्डप, मत्स्याकृति मोरछल और न्यायतुला, ऐसा निराला शानदार दृश्य था वहाँ—चबूतरे का मध्य भाग इस सिंहासन की स्थापना के लिए खाली रखा गया था। महाराज ने गणेशमूर्ति सम्भाजी के हाथ में दे दी।

रथ की गाड़ी को चबूतरे के पास लाया गया। आचार्य महोदय राजमण्डली के साथ चबूतरे पर चढ़े। प्रभाकरभट्ट भी हाथ में एक थाल लिये ऊपर आ गये। थाल हाथी के पाँवों-तले की शुभ्र धूलि से पूरित था।

इसके बाद शिल्पकार रामजी दत्तो सोने की एक मेख थाल में रखकर चबूतरे पर आया। चबूतरे पर सीढ़ी लगायी गयी। आचार्य गागाभट्ट ने वह सुनहरी मेख उठा ली तथा मन्त्रोच्चारण करते हुए उसे महाराज के हाथ में दे दिया। महाराज वह मेख लेकर सीढ़ी के निकट आये। हम्बीरराव, येसाजी, आनन्दराव आदि सीढ़ी पर चढ़ते हुए छत्रमण्डप तक गये। सबकी गरदनें इस समय ऊपर उठी हुई थीं। ऊपर मेख के लिए एक छिद्र रखा गया था। महाराज ने छत्र के उस छिद्र में वह सुवर्णनिर्मित कीला ठोंक दिया। सुवर्णमेख की विधि पूर्ण हुई। फिर महाराज नीचे उतर पड़े और सीढ़ी हटा ली गयी।

अब 'हस्तिमृत्तिका' प्रदान की विधि प्रारम्भ हुई। आचार्य गागाभट्ट ने हस्तिमृत्तिका से भरा थाल प्रभाकर भट्ट के हाथ से ले लिया। फिर मुट्ठी-भर मिट्टी ली और उसे महाराज की अंजलि में छोड़ दिया। महाराज को सूचित किया कि इस मिट्टी को, सिंहासन के नीचे जितनी भूमि आएगी, उस स्थान पर छिड़क दें। महाराज ने वैसा ही किया। इसके पश्चात् महारानी सोयराबाई आगे बढ़ीं और उन्होंने भी सुहागिन हाथों से मिट्टी को उस स्थान पर छिड़का। सम्भाजी ने भी गणेशमूर्ति और कोदण्ड प्रभाकर भट्ट को दिये तथा उन्होंने भी हाथी के पाँवों के नीचे की वह पवित्र मिट्टी सिंहासन-भूमि पर फैला दी और पीछे हट गये।

आचार्य गागाभट्ट थाल नीचे रखने के लिए मुड़ना ही चाहते थे कि सोयराबाई ने अपने निकट खड़े बालक राजाराम की अंजलि पकड़कर उनके सामने कर दी। आचार्य जी कुछ देर तक तो हड़बड़ा-से गये, परन्तु फिर उन्होंने थोड़ी मिट्टी बालक राजाराम की अंजलि में भी डाल दी। सोयराबाई बालक की अंजलि को थामकर सिंहासन-भूमि तक गयीं और राजाराम से बोलीं, "हाँ,

https://t.me/Sahityajunction

छोड़ दो बेटे अंजलि में भरी हुई मिट्टी।”

हाथी के पाँवों-तले दबी हुई, रगड़ी हुई मिट्टी इस प्रकार सिंहासन के चबूतरे पर फैल गयी।

राज्याभिषेक की पूर्वविधियों का प्रारम्भ होने से पहले महाराज सोयराबाई तथा सम्भाजी को लेकर जिजाऊ के महल में आये। सभी ने फलाहार और दुग्धपान का व्रत पालन किया था, अतः तीनों के मुखमण्डल पर एक निराली ही छटा छायी हुई थी।

जिजाऊ गिरदों तथा मसनदोंवाली बैठक के बीच बैठी थीं। पिछले एक पखवाड़े से उन्हें बहुत निर्बलता अनुभव हो रही थी, फिर भी वे इसी प्रकार बैठकर हर आने-जानेवाले से दो-चार बातें कर ही लेती थीं—कुशल-क्षेम पूछ लेती थीं।

महाराज और सम्भाजी को आता देखकर वे उठने का प्रयत्न करने लगीं कि सम्भाजी आगे लपके और उन्होंने जिजाऊ को उठने नहीं दिया। महाराज और युवराज दोनों ने जब मिलकर जिजाऊ को प्रणाम किया तो जिजाऊ ने बैठे-ही-बैठे दोनों के मुख छाती से लगा लिये। उनके शब्द भी अब बूढ़े हो गये थे, थक चुके थे। शब्दों में भी शायद झुर्रियाँ पड़ गयी थीं—वे कण्ठ में ही अटककर रह गये। उसाँस कह गयी—‘यह झाँकी देखने को काश हमारे ‘श्रीमान्’ आज जीवित होते!’ राजा शहाजी की स्मृति ने उनके नेत्रों में आँसू ला दिये।

झुर्रियों के बीच से आत्मा की माया-ममता मन ही में प्रवाहित होने लगी—‘दुर्ग में कितनी पावन विधियाँ आजकल हो रही हैं। भगवान्, किसी की दीठ न लगे। पर इनमें से एक भी विधि हम देख नहीं सकतीं। हमारा मुख अहिवाती नहीं है न। माँग का सिन्दूर जो पुँछ गया है। चारों ओर खारा समुद्र फैला हो और पेट में प्यास की आग भड़क रही हो—कुछ ऐसी ही विवश अवस्था हो गयी है हमारी! हम आज कहने को सब के बीच हैं और यूँ कहीं भी नहीं हैं।’ “जगदम्बे, जगदम्बे!” परन्तु अपने उफनते हुए मन की भावनाओं पर जिजाऊ ने शिला रख ली—केवल इतना ही कहा, “आयुष्मान होओ।”

“सदा सुहागिन रहो,” जिजाऊ ने सोयराबाई को काँपते हाथों से आशीर्वाद दिया।

“माँ साहिबा, अब आप लोगों से मिलना-जुलना छोड़ दें, तो ठीक रहेगा।” महाराज ने कसकते हृदय से कहा।

“मिलना-जुलना कैसे छूट सकता है राजा? अब तो हम राजमाता बननेवाली हैं। अब तो मेल-मिलाप और बढ़ेगा। हमसे तो यह न बनेगा कि मेल-मिलाप छोड़ दें।” जिजाऊ का निश्चयी स्वभाव उनके आग्रह में प्रकट हो उठा था।

“अच्छा, हम फिर उपस्थित होंगे,” कहकर महाराज सोयराबाई और सम्भाजी के साथ उस ‘ममता महल’ से बाहर निकले।

उन्होंने पहले जगदीश्वर के मन्दिर में दुग्धाभिषेक किया और फिर तीनों दरबार-भवन की विशाल वेदी पर आये। यहाँ मुख्य विधियों का शुभारम्भ हुआ।

आचार्य गागाभट्ट, बालम्भट्ट, अनन्तभट्ट तथा अनेक तीर्थ-स्थानों से पधारे विख्यात शास्त्रज्ञ पण्डित मन्त्रघोष के बीच, देववाणी की वर्षा के बीच विहित विधिकर्मों की सूचना महाराज को दे

https://t.me/Sahityajunction

रहे थे।

स्वस्तिवाचन, ऋत्विक पूजा, वसोद्धार पूजा, मातृका पूजा, दुर्गा पूजा, नन्दी श्राद्ध, नारायण पूजा, आज्यहोमादि विधियों की समस्त विवरण सहित पूर्ति होने लगी।

महाराज, युवराज और सोयराबाई के राजकरों से अनेक होमकुण्डों में बिल्व वट, पिप्पल, आम्र आदि की समिधाओं की आहुतियाँ पड़ने लगीं। दुग्ध, घृत दधि, मधु आदि पदार्थों की हवि दी जाने लगी। इन सब विधियों के बाद एक मज़ेदार विधि भी हुई—महाराज के मौंजीबन्धन की। इस विधि के समय महाराज चन्दन के पाट पर पौनीवाले नापित के सामने बैठे और उनका विधिवत् मुण्डन किया गया।

बलशाली महाराज आज 'बटु' बन गये। राज्ञीवर्ग, कन्यावर्ग के होते, पुत्र-पुत्रवधू के रहते, महाराज का 'उपनयन' हुआ। गले में यज्ञोपवीत आ गया—जिस महाराज ने एक नूतन राज्य को जन्म दिया—वह अब 'द्विज' हो गया।

इस उपनयन की घड़ी से पूर्व महाराज के जो विवाह हुए थे, वे मौंजीबन्धन के कारण प्रभावशून्य हो गये थे। आवश्यक हो गया कि वे विवाह शास्त्रानुमोदित कराये जाएँ। अतः सोयराबाई, सकवारबाई, पुतलाबाई आदि रानियों से महाराज का मन्त्रविधिपूर्वक पुनः विवाह कराया गया।

महाराज ने अपनी इच्छा आचार्यजी के सम्मुख प्रकट की, "हम सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। हमें सवितृ मन्त्र का पुनश्चरण दिया जाए।" गागाभट्टजी भी इस इच्छा से सहमत हो गये।

फिर सवितामन्त्र के लिए एक विशेष यज्ञकुण्ड का निर्माण किया गया। यह होम स्त्रीजनों के लिए अनुकूल नहीं माना जाता, अतः सोयराबाई को होम से अलग रखा गया।

महाराज तथा युवराज पूर्वाभिमुख होकर यज्ञकुण्ड के निकट बैठे। उनके 'भोसले' वंशोत्पन्न करों से वंश के आदि देव सूर्यनारायण के लिए चम्पक, चन्दन, बिल्वकाष्ठ आदि की समिधाएँ अर्पित होने लगीं। हवन समाप्ति के पश्चात् वे पिता-पुत्र उठ खड़े हुए तथा गंगा, सिन्धु, यमुना आदि सात नदियों से लाये गये जल से उन्होंने अंजलि द्वारा मावलदेश के गगन में प्रतिभासित सूर्यदेव को अर्घ्यदान किया।

नेत्र बन्द कर वे गायत्री छन्द में बद्ध सविता मन्त्र का उच्चारण करने लगे :

"ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।"

"भूलोक एवं स्वर्लोक को अपने प्रकाश से उज्ज्वल बनानेवाले सूर्य के उस दिव्य तेज का हम सदा ध्यान करते हैं! वह दिव्य तेज हमारी बुद्धियों को उज्ज्वल बनाए।"

शान्ति होम के पवित्र मन्त्रों के घोष से सारा उपरिकोट प्राचीर तक आपूरित हो गया था। विनायक, नक्षत्र, इन्द्र, ग्रह, पुरन्दर, होम आदि के यज्ञकुण्ड भी प्रज्वलित थे। होम में आहूत दूध, घृत आदि की सुगन्धि से यज्ञवेदी भर गयी थी।

उस विशाल वेदी के मध्य में पुष्पों से सुसज्जित एक तुला बनी हुई थी। बीच में एक दृढ़ स्तम्भ गड़ा हुआ था, बड़े आकारवाले रुपहले पलड़े उसके दोनों ओर झूल रहे थे। इस तुला की

https://t.me/Sahityajunction

भी पूजा की गयी।

तदनन्तर महाराज की तुलादान विधि प्रारम्भ हुई। दायें पलड़े में अपना दायाँ पैर पहले रखकर महाराज वीरासन लगाकर उसमें बैठ गये। आचार्य गागाभट्ट, बालम्भट्ट, अनन्तभट्ट, अंजलि भर-भरकर तबक़ों में रखी सोने की मुहरें दूसरे पलड़े में डाल रहे थे। भोसलेवंशीय उस सूर्य को सुवर्णमुद्राएँ तोलने का प्रयत्न करने लगीं।

सम्भाजी दृष्टि गड़ाये पलड़े को देख रहे थे—सोच रहे थे—'पूरा रायगढ़ भी सोना बन जाए और उसे दूसरे पलड़े में रख दिया जाय तो भी हमारे महाराज साहब का पलड़ा निश्चित ही भारी रहेगा।'

धीरे-धीरे महाराज का पलड़ा ऊपर उठा। महाराज की सुवर्णतुला पूरी हुई। मन्त्रों का उद्घोष सर्वत्र गूँजने लगा। उन सत्रह हज़ार मुहरों को आचार्य जी ने एक थाल में रखकर उन पर मन्त्रपूत पुष्प रख दिये।

इसके बाद चाँदी, ताँबा, कपूर, सीसा, फल, मधु, मसाले, शर्करा आदि वस्तुओं से महाराज की पन्द्रह तुलाएँ की गयीं।

"युवराज, आइए। आप भी तुला देवी पर पुष्प अर्पित कीजिए।" गागाभट्ट जी ने सम्भाजी के हाथ में फूल दिये। सम्भाजी ने वे फूल तुला पर चढ़ाये और हल्दी कुंकुम लगाकर तुला की वन्दना की। फिर दायाँ पैर पलड़े में रखकर वे वीरासन लगाकर बैठ गये। मन्त्रों का उद्घोष गूँज रहा था।

गागाभट्ट, बालम्भट्ट, प्रभाकरभट्ट आदि बायें पलड़े में मुहरें डालने लगे। मुहरें खनाखन बजती हुई पलड़े में गिर रही थीं। सम्भाजी के मन के पलड़े में विचारों की एक अंजलि कहीं से आ पड़ी :

'हमारी माँ साहिबा यहाँ आवें और हमें प्यार से एक बार 'बालशम्भू' कहकर उनके द्वारा पूजित शिवलिंग का केवल एक ही बिल्वपत्र यदि दूसरे पलड़े में रख दें, तो निश्चय है कि हमारा यह पलड़ा अभी पलक झपकते आकाश को छू लेगा।'

पलड़ा ऊपर उठने लगा। निकट ही महाराज पीताम्बर ओढ़े, सुध-बुध भूले सुपुत्र शम्भू की तुला देख रहे थे, परन्तु उन्हें आश्चर्य हो रहा था—'अरे, आज ये सोने की मुहरों का रंग क्यों बदल रहा है? ये पीली मुहरें हमें साँवली-सी क्यों दिखाई दे रही हैं?'

गागाभट्ट मन्त्रोच्चारण में मग्न थे, महाराज साँवली स्मृति में डूबे हुए थे, सम्भाजी माँ साहिबा के बिल्वपत्र के विचार में खोये हुए थे। इनमें से कोई नहीं जानता था कि पलड़े में बैठे इस सुनहरे कमल को कोई एक नारी-मन इस समय मुग्ध होकर अपनी नेत्र तुला में तोलने का प्रयत्न कर रहा है। वह मन था येसूबाई का—। सुनहरे बेल-बूटोंवाली रेशमी साड़ी पहने, माथे पर कुंकुम की रेखाएँ अंकित किये हुए और नाक में नथ पहने येसूबाई का मन।

कल्पना-लोक में खोयी हुई येसूबाई ने पहने हुए समस्त आभूषण अपनी बायीं आँख के पलड़े में रखकर देखा, मन-रूपी सुवर्ण कमल भी उसमें चढ़ा दिया, परन्तु दायीं आँख के पलड़े में वीरासन लगाये जो वह हठी, निडर, जवान समाया बैठा था, वह तनिक भी हिल नहीं पाया।

न जाने कितनी देर तक वे यूँ ही सुध-बुध भूले बैठी थीं कि अकस्मात् वे जाग-सी उठीं। चौंककर उन्होंने चारों ओर देखा—'कहीं हमें किसी ने निर्निमेष नेत्रों से देखते हुए देख तो नहीं

https://t.me/Sahityajunction

लिया!' धाराऊ उनके पास ही खड़ी थी...हँसते हुए कहने लगी, "बहूजी, तुम्हें नथ पहनने की आदत नहीं ना? इसलिए नथ चुभती होगी।"

येसूबाई समझ गयीं—'धाराऊ बात बदल रही है।' विचार के आते ही येसूबाई के कपोलों पर पलाश-पुष्पों की आभा खिल उठी।

सम्भाजी पलड़े से नीचे उतर पड़े।

"महारानी जी, आइए।" आचार्य जी ने सोयराबाई के हाथों में फूल दिये।

सोयराबाई ने तुला की पूजा की और ज्यों ही वे अपना दायाँ पैर पलड़े में रखने जा रही थीं, उनके मन में विचार आया कि आचार्यजी से कह दें—'आप तुला कर ही रहे हैं, तो हमारे राजाराम की तुला कर दीजिए। हमारी अकेली की तुला करने का क्या लाभ?' परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें याद आया कि 'हस्तिमृत्तिका' राजाराम के हाथ में देते समय आचार्य महोदय कैसे हिचकिचाये थे। सोयराबाई ने बात मन में ही दबा रखी।

निकट खड़ा बालक राजाराम सोच-सोचकर आनन्दित हो रहा था—'कितने बड़े-बड़े लोग तराजू में बैठ रहे हैं!'

ज्येष्ठ मास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी का प्रभात आया ही चाहता था। तीन घड़ी रात बीत चुकी थी। आज सैकड़ों सदियों की निद्रा त्यागकर रायगढ़ अपने एक सुनहले स्वप्न को हृदय में छिपाये धीरे-धीरे जाग रहा था। उस समय क़िले में पचास हज़ार आदमियों का जमघट था। नौबत की 'दुड्दुड्' आवाज़ ने ऊँचे रायगढ़ पर भी ध्वनि-छत्र ताना हुआ था।

उष:काल में स्नान करके शुचिर्भूत महाराज और सम्भाजी साथ-साथ लोकमाता जिजाऊ के चरणों के दर्शन करने उनके ख़ासमहल में आये। उन्हें आशीर्वाद देते समय जिजाऊ के मन में विकारों का कोलाहल मच गया :

'कितना कुछ बीत चुका है! न जाने कैसे-कैसे अवसर आये, पर 'माँ' की कृपा से सब तूफ़ानों से नैया पार लग ही गयी। उस 'माँ' की कृपा से ही तो यह दिन देख सकी हैं हम। पर सब भव्य-आयोजन देखने को आज काश हमारे 'श्रीमान्' होते! शिवबा के पिताजी होते! हमारी बड़ी पुत्रवधू सईबाई होतीं।' दमे से जकड़ी हुई उनकी छाती में राजा शहाजी और सईबाई की स्मृति ने एक गहरी टीस पैदा कर दी।

दमे का दौरा एकदम तेज़ हो गया, परन्तु निश्चय की प्रतिमा जिजाऊ ने महाराज और सम्भाजी के सामने उसे दबाने की कोशिश की। साँस रुँध-सी गयी। ख़राश होने लगी। आज तक उन्होंने खूब सहा था, पर अब यह दमा उन्हें असह्य हो रहा था। उन्हें एकदम खाँसी का तेज़ दौरा आ गया। महाराज और सम्भाजी दोनों बगलों में हाथ लगाकर उन्हें सहारा देकर शब्दों के द्वारा उनका दमा रोकने का निष्फल प्रयत्न करने लगे।

"माँ साहिबा!"

"माँ साहिबा, आऊ साहिबा।"

पिता-पुत्र क्षणभर के लिए राज्याभिषेक का उत्सव भी भूल गये। धाराऊ और पुतलाबाई भी

https://t.me/Sahityajunction

जिजाऊ के पीछे आ खड़ी हुई। सबने जिजाऊ को सँभालकर पलँग पर बैठा दिया। सबके मनों में व्याकुलता समायी हुई थी।

इतने में बालम्भट्ट आचार्यजी का बुलावा लेकर वहाँ आये। उन्हें देखते ही जिजाऊ बोलीं, "राजा, युवराज, अब तुम जाओ। देखो, आचार्य जी का बुलावा आ गया है। इस समय तुम हमारे नहीं हो—सिंहासन के हो। जाओ, पण्डितगण रुके, हुए हैं।"

सम्भाजी ने पुतलाबाई और धाराऊ का चरण-स्पर्श किया और दोनों वेदी की ओर जाने के लिए तत्पर हुए। सम्भाजी मुजरा करते हुए पीछे-पीछे हट रहे थे। ज्योंही उन्होंने सिर उठाकर जिजाऊ की ओर देखा, तो पाया कि जिजाऊ आँचल के छोर से नेत्रों की कोर पोंछ रही हैं। सम्भाजी के पैरों को जैसे किसी ने भूमि से बाँध दिया। वे थम गये।

"चलो शम्भूराजा," महाराज की रुँधी हुई आवाज़ उनके कानों में पड़ी। वे मुड़े और आगे चलने लगे।

"हाँफा छूटता है धाराऊ, आँखों में पानी भर आता है," जिजाऊ ने पीछे खड़ी हुई धाराऊ से कहा। परन्तु वे कहाँ जानती थीं कि धाराऊ की आँखों में पानी भर आया है—हाँफा नहीं, दमा नहीं, तो भी।

वेदी के विशाल मण्डप में ब्रह्मवृन्द, पण्डितों और शास्त्रीगणों की जैसे भीड़ लगी थी। मण्डप के मध्य में तथा आठों दिशाओं में सुवर्ण, चाँदी, ताँबा तथा मृत्तिका के कुम्भ स्थापित किये गये थे, जिन्हें आम्र पल्लवों से सजाया गया था तथा ऊपर श्रीफल रखे हुए थे। इन कुम्भों में दूध, दही, घी, मधु आदि पंचामृत तथा अभिमन्त्रित जल भरा हुआ था। इन आठ कुम्भों की ग्रीवा को धागों से बाँधकर आठों घटों को धागों द्वारा एक-दूसरे से जोड़ा गया था और इस प्रकार श्वेत धागों से एक अभिषेक-क्षेत्र निर्मित किया गया था। क्षेत्र की दक्षिण दिशा में पवित्र उदूम्बर काष्ठ से निर्मित एक बड़ी चौकी बनायी गयी थी। इसके नीचे सात नदियों से, तीर्थों से तथा समुद्र से लाया गया मन्त्रित जल भरा हुआ था। इसी चौकी पर महाराज, युवराज तथा सोयराबाई को स्थानापन्न होना था।

इस चौकी के आगे चन्दन-निर्मित पीढ़े पर एक बड़ी परात रखी थी। परात के चारों ओर चौक पूरा गया था और परात में घी लबालब भरा हुआ था। इसकी दाहिनी ओर घृत से परिपूर्ण एक स्वर्णकलश, दध से भरा एक रौप्यकलश, दही से पूरित ताम्रकलश, मधु से पूर्ण एक मृत्तिकाकलश, मोती की लड़ियोंवाला नक़्क़ाशीदार एक छत्र, मोरपंखों से सुशोभित बेलबूटेदार पंखा, भगवा रंग के डोरोंवाला एक सोने का मोरछल, आदि अभिषेक की भव्य सामग्री सजायी गयी थी।

राजमण्डली के लिए समन्त्रक स्नान के निमित्त क्षेत्र के मध्यभाग में दो स्नान चौकियाँ बनायी गयी थीं। एक सब ओर से खुली थी—जो महाराज और सम्भाजी के लिए थी और दूसरी चारों ओर से परदों से बन्द थी—वह सोयराबाई के लिए थी। स्नान का जल अभिषेक-क्षेत्र के बाहर निकलने के लिए ईंटों की छोटी-सी नाली भी बनायी गयी थी।

महाराज, सम्भाजी तथा सोयराबाई ने पहले मण्डप की पूजा की, फिर मन्त्रघोष के बीच वे

https://t.me/Sahityajunction

अभिषेक-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए।

गणेश-पूजा के पश्चात् अभिषेक की विधियों का शुभारम्भ हुआ। राजमण्डली ने हल्दी-कुंकुम चुटकी में भरकर पहले अभिषेक-क्षेत्र में बिखेरा और फिर तीनों ने दक्षिण पग द्वारा धागों की सीमा लाँघकर अभिषेक-क्षेत्र के भीतर प्रवेश किया। उनके पीछे आचार्य गागाभट्ट, बालम्भट्ट आदि मन्त्रविद् भी प्रविष्ट हुए। मोरोपन्त, हम्बीरराव, अण्णाजी, रामचन्द्रपन्त, त्र्यम्बकपन्त, दत्ताजी त्रिमल तथा रघुनाथ पण्डित आदि मन्त्रिगण भी भीतर आ गये।

मन्त्रोच्चार के बीच स्नान पूर्ण होने के बाद महाराज और सम्भाजी को मृत्तिका तथा पंचामृत से स्नान कराया गया। सम्पूर्ण मण्डप मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ था।

मन्त्रिगण को साथ लेकर महाराज चौकी के निकट आये। उन्होंने चौकी की विधिपूर्वक पूजा की और फिर वे चौकी पर इस प्रकार बैठ गये कि बैठते समय पाँव चौकी से न छूने पावें। उनके पश्चात् सोयराबाई तथा सम्भाजी भी चौकी पर आसीन हो गये।

अभिषेक के लिए जो भव्य अलंकृत वस्तुएँ वहाँ रखी थीं, उनमें से अण्णाजी ने छत्र उठाया, आफ़ताबी मोरपंख त्र्यम्बकपन्त ने धारण किया और दत्ताजी ने सुवर्णमोरछल हाथों में थाम लिया। वे तीनों चौकी के पीछे जा खड़े हुए।

मोरोपन्त ने सुवर्णकुम्भ, हम्बीरराव ने रौप्यकुम्भ, रामचन्द्र पन्त ने ताम्रकुम्भ तथा रघुनाथ पण्डित ने मृत्तिकाकुम्भ उठाया और वे चौकी के दोनों ओर खड़े हो गये।

आचार्य गागाभट्ट ने सुवर्णपुष्पों से भरी अंजलि हल्दी-रोली में मिलाकर पूर्व दिशा की ओर अर्पित की तथा उच्च स्वर से उन्होंने हर्षपूरित हो मंगला नान्दी प्रारम्भ की—

"ॐ गणपतये नमः। कुलदेवताभ्यो नमः।"

मोरोपन्त ने अपने हाथ का घृतपूरित सुवर्णकुम्भ बालम्भट्ट को दिया। महाराज, सम्भाजी तथा सोयराबाई के राजमस्तक पर अभिषेक होने लगा। तीनों—घृत, दुग्ध, दधि, मधु आदि के सत्वरस में भीगकर निखर उठे। वे निखर उठे गंगा, सिन्धु, यमुना आदि लोकगंगाओं के पावन जल में। पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिण दिशा में गरज-गरजकर उछलनेवाले सागर के पौरुषमय जल से वे नहा उठे और साथ-ही-साथ जगदम्बा का वह अनन्य भक्त रायगढ़ भी नहाने लगा—एकत्रित पचास हज़ार लोगों के हृदय से प्रवाहित हो रही स्वतन्त्रता की लहरियों में। नक्कारख़ाने पर लहराती सोने के किनारीवाली 'ज़री-पताका' भी आकाश-स्थित बलिदानी मावले वीरों के आनन्दाश्रुओं में नहा उठी। माता जीजाबाई का 'वृद्धत्व' दमे की घुटन के साथ ही कृतार्थता के भाव से भीग गया। माँ जगदम्बा भी नहा उठीं भक्तों के महिमा-गान में। हज़ारों मावले बहादुर जो झोंपड़ी-झुग्गियों में रहते थे, परन्तु रणसिंगों-डंकों की ललकार सुनते ही एक हाथ में ढाल और दूसरी में तलवार लेकर अपने घर और गृहस्थी में आग लगाकर दौड़ पड़ते थे, इन रणबाँकुरे मावलों की 'वीरता' आज नहा उठी थी, एक निराले अभिमान में। आज मराठों की भी एक राजगद्दी हो गयी।

अभिषेक के पश्चात् राजमण्डली ने बहुमूल्य राजसी वेश धारण किया। पश्चात् परात के घृत में तीनों ने अपना मुख देखा। शस्त्रों की पूजा की तथा फिर उन शस्त्रों को वे धारण कर सुशोभित हुए। सम्भाजी ने समर्थगुरु का कोदण्ड धारण किया हुआ था, जिसकी टंकार उन्हें समर्थगुरु के

https://t.me/Sahityajunction

बोलों का स्मरण दिला रही थी :

करो संगठित वीर मराठे, महाराष्ट्र का धर्म बढ़ाओ।
देवद्रोही हैं जितने कुत्ते, मारपीट कर दूर भगाओ।
कोलाहल हा हा मच जाए.....

युवराज सम्भाजी सहित महाराज अब दरबार-कक्ष की दिशा में जाने लगे। आचार्य गागाभट्ट आगे-आगे चल रहे थे। महाराज के पीछे मन्त्रिगण, शास्त्री, पण्डित, अग्रगण्य सेनानी-सरदार चल रहे थे। दूर स्थित पर्वतश्रेणी के पीछे नवीन उषःकाल अब झाँकने लगा था।

महाराज, युवराज और सोयराबाई दरबार-कक्ष में आये। वहाँ इतनी भीड़ थी कि चींटी भी न सरक पाये। छत के किनारे-किनारे चारों ओर झालरदार परदे लटक रहे थे। सारा दरबार-कक्ष फूल-मालाओं से सजा हुआ था।

सबकी आँखें राजमण्डली पर लगी थीं। अनेक लोग एड़ियाँ उठाकर-उठाकर राजदर्शनों के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे थे।

राजमण्डली सिंहासन के चबूतरे के सामने आयी। पहली सीढ़ी के पास ही एक चौकी पर चाँदी का एक गंगाल रखा था। इसके जल में एक मुहूर्त पात्र तैर रहा था। आचार्य जी द्वारा दिये गये नारियल को महाराज ने पहली सीढ़ी के पास फोड़ा और उसके दो टुकड़े दोनों हाथों से दोनों दिशाओं में फेंक दिये। फिर उन्होंने विधिपूर्वक सिंहासन की पूजा की तथा देवीभक्त पोतराज की डलिया में से हल्दी-रोली लेकर चारों ओर बिखेरी।

फिर 'हे जगदम्बे, जगदम्बे' का उच्चार उन्होंने इतने धीरे से किया कि शायद कोई भी नहीं सुन पाया होगा। इसके साथ ही उन्होंने सोने के पत्तर से मढ़ी हुई सीढ़ी पर अपना दायाँ पैर रखा। महाराज चबूतरे पर चढ़ने लगे। उसके बाद युवराज और महारानी भी चबूतरे पर आ गये।

सिंहासन के छत्र से मोती की लड़ियाँ लटक रही थीं। व्याघ्रदण्ड मय, हीरक रत्नादि से जड़े उस सुवर्ण-सिंहासन को महाराज ने एक बार हाथ जोड़कर नमस्कार किया। फिर पाँवों का स्पर्श न होने पाये, ऐसी सावधानी बरतते हुए महाराज वीरासन लगाकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठ गये।

युवराज सम्भाजी चरणासन के निकट की सुनहरी सीढ़ी पर बैठ गये। सिंहासन की बायीं दिशा में स्थित परदों से बन्द रनिवास में महारानी सोयराबाई बैठ गयीं।

महाराज के अष्टप्रधान अपने-अपने सम्मान पद के अनुसार एक-एक सुवर्ण-स्तम्भ से लगकर खड़े हो गये। छत्रधारी, गदाधारी सैनिक, चँवर और आफ़ताबी पंखा झलने वाले सैनिक अपने-अपने स्थानों पर आ गये।

इसके पश्चात् आचार्य गागाभट्ट ने महाराज और युवराज के सिर से टोप उतारकर एक खाली तबक़ में रखे और दूसरे तबक़ में रखा महाराज का अभिमन्त्रित श्वेतवर्णीय राजटोप आचार्य जी ने उठाया। मन्त्रध्वनि सर्वत्र गूँज रही थी। इसी मन्त्रध्वनि के बीच ज्योंही मुहूर्त पात्र गंगाल में डूबा, आचार्यजी ने यह अभिमन्त्रित राजटोप महाराज के सिर पर रख दिया। दूसरा केसरी रंग का टोप उन्होंने सम्भाजी के मस्तक पर रखा। इसी समय रायगढ़ का तोपख़ाना दनदना उठा। ऊखली पटाखों तथा बन्दूक़ों के धमाके सुनाई देने लगे। नगाड़े और धौंसे का दमदमा गूँज उठा।

https://t.me/Sahityajunction

गदाधारी सैनिक ने हाथ की गदा ऊपर उठाकर उपाधियों की ऊँची ललकार गुँजायी—"राजश्रिया विराजित, सकलगुणमण्डित, क्षत्रियकुलावतंस, सिंहासनाधीश्वर, गो-ब्राह्मण-रक्षक, हिन्दुपदपातशाह श्रीमान् महाराज छत्रपति शिवाजी महाराज कीऽऽ...।" "जयऽ! जयऽ जयऽ!" सारे दरबारियों ने उस ललकार को अपने स्वरों से ऊँचा उठा दिया। उस उच्च ध्वनि से चबूतरे की सुवर्णमय न्याय तुला भी हहरा उठी। एक बार हिलकर-डोलकर शायद उस न्याय तुला ने भी निश्चय कर लिया कि उसके दोनों पलड़ों में राईभर भी अन्तर नहीं है और फिर वह न्याय तुला स्थिर हो गयी।

सूर्य अब पूर्व दिशा में क्षितिज के ऊपर आ गया था। किरणें भी पीछे न रहीं। वे भी सीधी सिंहासन के चबूतरे को आकर मुजरा-सा करने लगीं। किरणों से स्वर्ण सिंहासन झिलमिला उठा। सम्भाजी ने नित्य नियम के अनुसार, परन्तु आज बैठक पर बैठकर, सूर्य भगवान के दर्शन किये। उनका यह दर्शन-सुख तुरन्त ही भंग हो गया, क्योंकि अब उनके चारों ओर सोने की मुहरों की वर्षा-सी हो रही थी। प्रधानमन्त्री मोरोपन्त सिंहासनाधिष्ठित महाराज को अंजलि भर-भर सुवर्ण-स्नान करा रहे थे। महाराज के मस्तक पर से उछलकर आती हुई उन मुहरों का नीचे सीढ़ी पर बैठे सम्भाजी के चारों ओर ढेर लग गया। उछलती, खनकती, लुढ़कती मुहरों से सम्भाजी के मन में भी एक विचार की मुहर चमचमा उठी—'काश! यही सीढ़ी जगदीश्वर के मन्दिर की सीढ़ी बन जाय, तब हम प्रस्तर-निर्मित कच्छप बन जाएँगे! आबासाहब तथा माँ साहिबा के चरण-स्पर्श का पुण्य तो प्राप्त होगा न!'

अब ज़रदोज़ी से अलंकृत भेंट-उपहारों के तबक़ एक-एक करके सिंहासन के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने लगे। भीड़ में से मार्ग बनाता हुआ अँग्रेज़ों का प्रतिनिधि हेनरी ऑक्सिण्डेन नारायण शेणवी नामक दुभाषिये के साथ तथा कई तबक़धारी सेवकों सहित सिंहासन के सामने आया। सिर से अँग्रेज़ी टोपी उतारकर, कमर से झुककर सम्मान प्रकट करता हुआ वह अँग्रेजी भाषा में कहने लगा, "यौर एक्सिलेंसी राजा शिवाजी में पावर हिज़ मर्सी टू एक्सेप्ट दि गिफ्ट्स ऑफ़ कम्पनी।"

उसने जो उपहार भेंट दिये, उसमें हीरक युक्त एक सिर-पेंच, दो अनमोल मोती तथा हीरकजटित दो कड़े थे। सम्भाजी को उसने दो हीरकजटित कड़े तथा आठ हीरों से जड़ा एक कण्ठा भेंट दिया।

उपहारों की विधि समाप्त हुई। अब दान-यज्ञ का प्रारम्भ हुआ। महाराज और युवराज वहाँ एकत्रित ब्राह्मण, गोसाईं, उप्तात, वासुदेव, पौनी-लहनादार, फ़कीर, बैरागी आदि को दान देने लगे। दान पाकर प्रसन्न हुए याचक जी भरकर आशीर्वाद या दुआ दे रहे थे, "तथाऽस्तु, 'सुखी रखे भोलानाथ', 'ख़ुदा सलामत रखे'।"

दान-विधि समाप्त हुई। दरबारी कलाकारों ने पँवाडे, नृत्य, भजन आदि द्वारा विशेष कला प्रस्तुत की। सबसे अन्त में ब्रजकवि भूषण पधारे। कमर में फेंटा कसकर वे सिंहासन के सामने आये। उनकी डफली में बिजली दौड़ने लगी। कान से हाथ लगाकर उन्होंने पहले महाराज की कुलदेवी का नमन-गीत प्रस्तुत किया :

"जै जयन्ती जय आदि सकति—
जै चमुण्ड जै चण्ड मुण्ड भण्डासुर खण्डिनी ।

https://t.me/Sahityajunction

जै सुक्त, जै रक्तबीज बिड्डाल बिहंडिनी ।।"

कुलदेवी भवानी का यह नमन-गीत सुनकर महाराज का हाथ छाती की कौड़ियों की माला से जा लगा। सम्भाजी के नेत्र बन्द थे और वे ज़ैसे अष्टभुजा देवी को साक्षात् देख रहे थे। डफली की गरजती आवाज़ से दोहे और सवैये निकल रहे थे :

दशरथ जू के राम, भैं वसुदेव के गोपाल ।
सोई प्रगटे साहि के, श्री सिवराज भुवाल ।।
सिव हि औरंग जीति सकै, और न राजा राव ।
हत्थि मत्थ पर सिंह बनु, और न घालै घाव ।।
औरन को जो जनम है, सो याको इक रोज ।
औरन को राज है सो, सिर सरजा को मौज ।।

कविभूषण द्वारा की गयी शिवमहिमा की मोहक-शैली के प्रति सारे दरबार में प्रशंसा-वचन उठ रहे थे। परन्तु कवि आँखें बन्द कर, हाथ छत की ओर ऊपर उठाकर शब्दों की वस्त्र-ज्योतियाँ लहराने में लीन था :

"जीवन में नर लोग बड़ो, कवि भूषण भाषत पैज अड़ो है ।
नर लोगन में राज बड़ो, सब राजन में सिवराज बड़ो है ।।"
"को दाता? को रन चढ़ो? को जग पालनहार?
कवि भूषण उत्तर दियो, सिव नृप हरि अवतार ।।"

सम्भाजी अपना युवराजपद भी भूल गये थे और हाथ उठा-उठाकर भूषण की सरस रचना की प्रशंसा कर रहे थे। दरबार-भवन के पीछे पानी के फव्वारे चल रहे थे, और सिंहासन के सामने शब्दों की फुहारें बरस रही थीं। महाराज की कीर्ति का बख़ान करने में कविराज भूषण अपने को भी भूल गये थे :

"तेरो तेज है सरजा दिनकर सो—
दिनकर है तेरो तेज के निकर सो।
तेरी जस है सरजा हिमकर सो—
हिमकर है तेरो जस के अकर सो।
कुन्द कहा, पयवृन्द कहा,
अरुचन्द कहा, सरजा जस आगे।
बाज कहा, मृगराज कहा,
गजराज कहा तेरो साहस आगे।"

"वाह-वाह, बहुत अच्छे!" सम्भाजी का कविमन झूम-झूम उठा। भूषण स्वेदधाराओं से नहा गये थे। जब उनका काव्यपाठ समाप्त हुआ, एक सेवक वस्त्राच्छादित सुवर्णमुद्राओं से भरा एक थाल लेकर उनके सम्मुख आ गया।

महाराज सिंहासन से उठे। सम्भाजी सुवर्ण-सीढ़ी से उठे और रनिवास में सोयराबाई उठ खड़ी हुईं। राजमण्डली अब दुर्गदेव जगदीश्वर के दर्शनों के लिए जा रही थी।

"श्रीमान् छत्रपति महाराज कीऽऽ"

https://t.me/Sahityajunction

“जयऽ! जय!” जय-जयकार से चारों ओर के महीन परदों में लहरियाँ उठीं। राजमण्डली के एक-एक पग के साथ मार्ग के दोनों ओर खड़े सैकड़ों के सिर श्रद्धा और विश्वास से झुके-झुके जा रहे थे। मुजरों की झड़ियाँ-सी लग रही थीं।

नक्कारख़ाने के सामने राजयात्रा की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। गले में सुनहरा घण्टा धारण किये छाज जैसे कानों को फड़फड़ाते हुए, बेलबूटों की चित्रकारी से सुशोभित सूँड तथा गण्डस्थल वाला, दाहिने पैर में चाँदी का तोड़ा पहने, कलाबत्तू के बेलबूटों वाली झूल पहने, सूर्य-किरणों में झलकती-चमचमाती अम्बारी वाला ‘त्रिशूल’ हाथी आज सुसज्जित ‘राज-ऐरावत’ बनकर मस्ती से झूम रहा था। उसके सामने ही खड़ा था एक सुसज्ज ‘राज-अश्व’—श्वेत शुभ्रवर्ण का उम्दा नस्ल का एक घोड़ा—जिसके अयाल पर पंखों का मोरछल झला जा रहा था, शरीर पर कोमल झूल पहनायी गयी थी, गले में सुनहरी अंबियों की माला थी तथा दायें पैर में सोने का तोड़ा पहनाया गया था। दरबार के विशिष्ट वीर विशिष्ट वेशभूषा धारण किये, हाथ में नंगी तलवार थामे मार्ग के दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े थे। छत्र, गदा, चामर धारी सैनिक हाथी के चारों ओर घेरे में खड़े थे। महावत ने हाथी को बैठाया। हाथी की पीठ से सीढ़ी लगायी गयी।

सबसे पहले सेनापति हम्बीरराव दाहिने हाथ में सुनहरा अंकुश लिये पीलवान बनकर हाथी पर चढ़े। उनके बाद महाराज तथा अन्य राजमण्डली राज-ऐरावत पर अम्बारी में आरूढ़ हुए। मोरोपन्त सुनहरा मोरछल लेकर उनके पीछे वीरासन में बैठ गये।

हम्बीरराव ने अंकुश मारकर ऐरावत को खड़ा किया। ‘राज-ऐरावत’ पर सोने के फूलों, गुलाल और फूलों की वर्षा होने लगी। राजा की शोभायात्रा निकली—कुबेर जैसे ठाठ-बाट से। रणभेरियाँ और तासे बजने लगे। लेज़िम की टोलियाँ नाचने-झूमने लगीं। पलीतेवाली बन्दूक़ों और ऊखली पटाख़ों की दनदनाहट गूँजने लगी। पटा, फरी-गतका, लाठी-बनेठी के खिलाड़ियों के बीच हाथी पर सवार राजमण्डली को अपना कौशल दिखलाने में जैसे होड़-सी लग गयी थी। गदाधारी सैनिक ने ऊँची ललकार लगायी : “राजश्रियाविराजित, सकलगुणमण्डित...” लाल कंगनी घेरेदार पगड़ियों का वह जुलूस, वह विशाल जनसागर धीरे-धीरे आगे सरक रहा था। उस विशाल जनसागर से ऊपर निकल अम्बारी में बैठे मावली देश के अभियान की उस प्रतिमा को देखने के लिए क्षितिज से काफी ऊपर उठ आया सूर्य भी जैसे तनिक देर के लिए ठहर-सा गया था। ‘शिव’ तथा ‘शम्भू’ शंकर के दर्शनों के लिए जा रहे थे। धीरे-धीरे सरकते हुए यह राजयात्रा जगदीश्वर के मन्दिर के सामने आयी।

एक ओर महारानी सोयराबाई और दूसरी ओर युवराज सम्भाजी को लेकर महाराज मन्दिर के आँगन में गये। दर्शन के पश्चात् वह राजयात्रा उपरिकोट की ओर आयी। अब राजमण्डली राजमाता जिजाऊ के ख़ासमहल की ओर जाने लगी।

“छत्रपति महाराज पधार रहे हैं,” जिजाऊ ने यह सूचना सुनी और उनकी झुर्रियों-भरी देह में रोमांच हो आया। पुतलाबाई, धाराऊ तथा येसूबाई उनके निकट खड़ी थीं।

शिवाजी तथा सम्भाजी ने जिजाऊ के चरणों में मस्तक नवाने के लिए घुटने झुकाये। रायगढ़ के दुर्ग से ऊँची, वात्सल्य ममता की उस मूर्ति के सम्मुख दोनों ने माथा टेक दिया। जिजाऊ के मुँदे हुए नयनों से निकले अश्रुबिन्दुओं को उनके मुख की झुर्रियाँ रोक नहीं सकीं। वे बूँदें बहती हुई महाराज के राजटोप पर बरस पड़ीं—राजा का अभिषेक अब वास्तविक रूप से पावन हुआ।

https://t.me/Sahityajunction

जिजाऊ आशीर्वाद देना चाहती थीं, पर शब्द खो गये थे। देह काँप रही थी—मन अगणित स्मृतियों की गुत्थियाँ सुलझाने में लीन था—विक्षुब्ध बन गया था। महाराज कुछ क्षणों तक इसी प्रकार माँ के चरणों में माथा टेके रहे, फिर जैसे किसी विचार के आते ही उन्होंने सिर ऊपर उठाया। उनके अश्रुपूर्ण नयन जिजाऊ को देख कहाँ पाते थे? महाराज ने हथेलियों से सिर पर पहने राजटोप को उठाया और इससे पूर्व कि कोई कुछ समझे-जाने, उन्होंने वह कीर्तिधवल राजटोप माता जीजाबाई—नहीं, नहीं, अपनी जिजाऊ के चरणों पर रख दिया। उनका सारा शरीर गद्‌गद हो उठा।

"शिवबाऽ!" आँचल से आँख की कोर पोंछते हुए जिजाऊ ने अतीव शीघ्रता से वह टोप उठाया और महाराज के सिर पर रख दिया। एकदम अपने सपूत को अंक में भरकर वे बस इतना ही कह सकीं :

"शिऽवऽबा!"

न जाने कितनी देर तक जिजाऊ का काँपता हाथ महाराज की पीठ पर फिरता रहा। बाहर से अत्यन्त मौन, मूक दिखाई देनेवाली वह राजमाता भीतर उठने वाली भावनाओं से गद्‌गद हो रही थी। वह श्रीमन्त योगी और वह राजमाता ही उस आलिंगन की ममता-माया को जान सकते थे। समर्थ जी का दिया कोदण्ड ही केवल इस भेंट का अर्थ जान सकता था और हाँ, युवा-युवराज सम्भाजी भी, जिसे महाराज ने तथा जिजाऊ ने कभी गोद में खिलाया था।

राज्याभिषेक की सम्पूर्ण उत्तरविधियाँ भी सम्पन्न हुईं। महाराज ने आचार्य श्री गाग़ाभट्ट को सवा लाख होन[1] दक्षिणा रूप में दिये। छोटी-सी सशस्त्र सेना भी उनके साथ भेजी और इस प्रकार उन्हें विदा किया।

राजमाता जिजाऊ से मिलने आनेवालों का ताँता लगा था—जेधे, बांदल, कंक, सिलिंबकर आदि सरदारों के साथ आये असंख्य स्वामिभक्त सैनिक प्रतिदिन जिजाऊ को प्रणाम करने आते थे।

"आऊ साहिबा, अब हमें आज्ञा दो। अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दो। अब अधिक कष्ट-झंझट में न पड़ा करो। अब बरसात आने को है। हमें अब अपने गाँवों की ओर जाना ही पड़ेगा—खेती-बाड़ी के काम हैं। आप भी यहाँ मत रहो, यहाँ आपका दमा और अधिक बढ़ जाता है। अच्छा, चलते हैं हम!" अत्यन्त निर्मल भोले-भाले मावली हृंदयों के प्रेमजल में लोकमाता आकण्ठ डूब रही थीं।

रायगढ़ के उत्सव में भाग लेने के लिए आये लोग चारों दिशाओं में रवाना होने लगे। गढ़ जैसे बिखर गया। मृग नक्षत्र के उदय के साथ ही नीले आकाश में किसी ने काली कमली फैला दी। बरसाती हवाएँ सूँ-सूँ करती हुई पागल-सी होकर काटने को दौड़ती थीं। वृक्षों की घुमटी उल्टी होने लगी। दरवाज़ों-खिड़कियों पर बाँधे गये बाँस के किवाड़ उल्टे-सीधे होने लगे। जिजाऊ, अब तक केवल मन के दृढ़-संकल्प के कारण ही जैसे-तैसे बैठी रही थीं, परन्तु अब वे बिस्तर से जा लगीं। दमे के ज़ोर में 'जगदम्बा' का भी दम घुटा जा रहा था। दो-दो कम्बल ओढ़ने पर भी शरीर की सर्दी दूर नहीं होती थी। इसलिए अब आवश्यक हो गया कि उन्हें ऊँचे गढ़ से नीचे पाचाड़ में

https://t.me/Sahityajunction

ले जाया जाय।

बन्द परदोंवाली डोलियाँ मँगायी गयीं। जिजाऊ ने शॉल ओढ़ी हुई थी। महाराज और सम्भाजी उन्हें ख़ासमहल से बाहर लाये। पुतलाबाई, धाराऊ, येसूबाई, सोयराबाई, राजाराम—समस्त परिवार उन्हें घेरे खड़ा था।

"राजा, हमें तनिक दरबार-कक्ष में ले जाओगे क्या?" जिजाऊ के मुख से शब्द निकले।

"जी," महाराज और युवराज का सहारा लिये जिजाऊ चल रही थीं। दरबार-कक्ष अभिषेक-विधि के अवशिष्ट चिह्नों से सुसज्जित होकर एक निराली शान से सजा खड़ा था।

उस रत्नजड़ित एवं बत्तीस मन सुवर्ण से निर्मित पूर्वाभिमुख सिंहासन के सम्मुख खड़े होकर जिजाऊ का सारा शरीर थरथराने लगा। नेत्र जलपूरित हो गये, थके हृदय में भावनाओं का विक्षोभ मच गया। मोतियों की लड़ियों से अलंकृत छत्र को देखकर जिजाऊ रुँधे गले से इतना ही कह सकीं, "चलो राजा बेटे, तुम्हारे सिर पर छत्र आ गया..."

उपरिकोट के पालकी-दरवाज़े से होकर जिजाऊ की डोली मीनारों के बाहर आ निकली। उस डोली के दोनों ओर महाराज और सम्भाजी पैदल चल रहे थे। पीछे अन्य स्त्रियों की सात-आठ डोलियाँ भी आ रही थीं। जिजाऊ अब रायगढ़ से विदा हो रही थीं।

सम्भाजी डोली के हत्थों से हाथ लगाये चले जा रहे थे, सोचते थे—'यह उतार कभी समाप्त ही न हो। उधर महाराज, इधर हम, डोली में माँ साहिबा—बस, यह यात्रा यूँ ही चलती रहे। कहार थक जाएँ, तो हम ही डोली को कन्धों पर सँभाल लेंगे।'

हमें स्मरण है—एक बार महाराज ने माँ साहिबा से कहा था—'हम भला आपका क्या सम्मान कर पाएँगे! हममें वह शक्ति कहाँ? हमारी खाल छीलकर उसके जूते बनाकर आपके चरणों में पहनाये जाएँ, तो भी आपके ऋण से क्या हम उऋण हो सकेंगे?'

'माँ साहिबा को खाँसी का दौरा सताता है, तो हम अतिदुखी होते हैं—काश! उनका यह दमा हम ले सकते।'

'अब अभिषेक-उत्सव समाप्त हुआ है। हम इस वर्षाऋतु में पाचाड़ में ही रहेंगे। माँ साहिबा के चरणों में ही रहेंगे। हम उन्हें स्वरचित कविताएँ सुनाएँगे। कभी उनके गठिया-पीड़ित जोड़ों की मालिश करेंगे। दमे का दौरा थमते ही चिलमची उनके सामने रखेंगे। साँस फूलने पर भी वे हमसे हँसकर ही कहेंगी—हाँ, सुनाओ अपने गीत। हमारे शिवबा को कभी नहीं आयी यह गीत-रचना की कला। तुमने यह कमी पूरी कर दी, शम्भू राजा। फिर हम कई गीत सुनाकर सबसे अन्त में वह गीत सुनावेंगे, जो हमने उन पर रचा है। वह गीत सुनते हुए वे आँखें मीचकर बस 'जगदम्बे, जगदम्बे' कहती रहेंगी। हम जानते हैं। हमें बिस्तर के पास बिठाकर हमारी पीठ थपथपाती रहेंगी। बोलेंगी कुछ नहीं, परन्तु हमारी पीठ पर फिरनेवाला उनका हाथ तो बहुत कुछ कह रहा होगा। बोलता ही रहेगा।'

पाचाड़ की राजहवेली के अन्तःपुर में दीवट मन्द-मन्द जल रहे थे। जिजाऊ शीशम के पलँग पर लेटी हुई थीं। धाराऊ पलँग के निकट भूमि पर बैठी हुई होरसे पर औषधियों की ख़ुराक घिसकर तैयार कर रही थी। उसके हाथों की चूड़ियों की खनखन से जिजाऊ के मन में भी विचारों की खलबली मच रही थी :

https://t.me/Sahityajunction

‘हमारी ज्येष्ठ पुत्रवधू की सेवा-शुश्रूषा में इसी प्रकार न जाने कितनी ख़ुराकें होरसे पर घिस डाली गयीं। ख़ुराकें ले-लेकर वे तंग आ जाती थीं। फिर भी हमें याद है, हम प्यार से डपटते हुए उन्हें ख़ुराक लेने को विवश किया करती थीं। तब हम नहीं समझ सकी थीं कि एक स्थिति ऐसी भी आती है कि औषधि की मात्रा से भी रोगी का दिल ऊब जाता है। आज भी यही हो रहा है कि ये सब लोग हमें औषध की मात्रा खाने को विवश कर देते हैं।’

“आओ बहू,” जिजाऊ ने सोयराबाई को कक्ष में आते देख मन्द-क्षीण स्वर से कहा।

उन्होंने ही सन्देश भेजकर सोयराबाई को बुलाया था।

बाहर की बैठक में महाराज और युवराज चिन्तातुर होकर वैद्य की सलाह सुन रहे थे, जिसे महाड से बुलवाया गया था। उनके चेहरों की गहरी उदासी को देखकर पाचाड़ का घण्टा भी शान्त, निश्चल रूप से लटका हुआ था। बीच-बीच में वह हवा से हिल उठता था, परन्तु उस ओर किसी का ध्यान न था।

सोयराबाई ने आँचल को हाथ से पकड़कर पलँग के निकट झुककर जिजाऊ को तीन बार नमस्कार किया। उस नमस्कार से हाथों के सोने के कंकण खनक उठे और कुछ क्षण इसी खनक में बीत गये।

“बहूरानी, अपने मन की एक बात कहने को तुम्हें बुला भेजा है।” बोलने के कारण जिजाऊ का दम उखड़-सा रहा था। दृष्टि छत से लगाये और हाथ छाती पर रखे वे लेटी हुई थीं।

“बहूरानी, अब अधिक कुछ कहने-सुनने को हम कितने दिन रह पाएँगी, इसका कुछ भरोसा नहीं।” धाराऊ के कानों में शब्द पड़े और उसके ख़ुराक घिसनेवाले हाथ एक झटके से रुक गये।

“हम जो कह रही हैं, उसे हमारे अन्तिम बोल समझो। तुमसे वह सब कहे बिना हमें मौत भी नहीं आएगी। बहूरानी, ठीक से समझ लो, अब तुम्हारे तीन-तीन बेटे हैं—राजा, शम्भू राजा और रामराजा।” जिजाऊ का दमे के साथ संघर्ष चल रहा था। वे उसे कुलीन संकल्पशक्ति से जीतने का प्रयत्न कर रही थीं। धाराऊ के हाथ अब बिल्कुल थम गये थे, कान चौकन्ने हो गये थे।

“सुनो बहू, भोसलों के घराने के पुरुष को पा सकना महाकठिन है। तुमने तो तीन पा लिये हैं। उन्हें सँभालो। ये सारा प्रपंच इतना बढ़ चुका है, इसे और अधिक बढ़ाना है तुम्हें। शम्भूराजा को तो तुम्हें सबसे बढ़कर सँभालना पड़ेगा। उनकी माँ चल बसीं और तब से हम ही उनकी ‘माँ’ बन गयी थीं। अब इन दो माताओं की संयुक्त ज़िम्मेदारी तुम्हारी होने जा रही है।...धाराऊऽऽ!” गला सूखने के कारण उन्होंने धाराऊ को पुकारा। धाराऊ उनकी आवश्यकता को समझ गयी और गड़ुवा तथा कटोरी लेकर झट सामने आ गयी। पानी का घूँट गले से उतरते ही जिजाऊ को बहुत आराम मिला।

“तुम महारानी बन गयीं, हमने सब-कुछ पा लिया। अब महामाता बनो। इसके लिए हृदय इतना विशाल बनाना होगा कि भला-बुरा सब उसमें समा जाय। बहू, भला माँ कभी मान-अपमान का सोच-विचार किया करती है? वह मनोबल प्राप्त करने के लिए माँ जगदम्बा की गुहार लगाओ। हमें चाहे भूल जाओ, पर जगदम्बा को कभी न भूलना। हमें विश्वास है कि वह ‘माँ’ तुम्हें हर घड़ी, हर पल मार्ग दिखलावेगी। यही कहना था तुमसे। अब तुम जा सकती हो।” जिजाऊ ने आँखें बन्द कर लीं।

https://t.me/Sahityajunction

सोयराबाई की नथ झूल उठी। सोने के कंगनों में खनक हुई। नमस्कार करके वे महल से बाहर निकल गयीं।

"हँ, दवाई लो माँ साहिबा।" धाराऊ ने होरसे पर घिसी हुई औषधि की मात्रा उन्हें चटा दी। जिजाऊ ने देखा—महल से बाहर जाती हुई महारानी जी की बहुमूल्य रेशमी साड़ी के बेलबूटे झिलमिल जगमगा रहे थे।

जिजाऊ के तकिये के पीछे की ओर धाराऊ खड़ी थी। जिजाऊ से कहने लगी, "माँ साहिबा, आप भली-चंगी होने वाली हैं, फिर ऐसी बातें क्यों कहा करती हैं? हम हैं न सब-कुछ निभाने-सहने को।" अचानक ही उसके कण्ठ से एक सिसकी फूटने को हुई। गाढ़े की साड़ी के छोर का गोला बनाकर उसने सिसकी को मुँह में ही दबा लिया।

मृग नक्षत्र ने पाचाड़ को वर्षा के परदों से ढँक दिया। सावित्री, काल, गान्धारी आदि नदियाँ लाल-लाल पानी से भरकर बह रही थीं। वृक्षों के पत्तों पर से पानी की बूँदें टपटप टपक रही थीं।

येसूबाई जिजाऊ को टक लगाये देख रही थीं। जिजाऊ की झपकी टूटने की प्रतीक्षा में बैठी येसूबाई उनके पाँव दबा रही थीं।

"येसू," माँ साहिबा की हल्की-सी आवाज़ से येसूबाई का ध्यान भंग हुआ।

"जी," कहकर येसूबाई उठीं। पास ही चौकी पर पूजा की एक कटोरी रखी थी, उसे उठाकर माँ साहिबा के निकट ले जाते हुए वे बोलीं, "माँ साहिबा, चरणामृत लीजिए माँ भवानी का।" येसूबाई आचमनी उनके मुख के निकट ले गयीं। जिजाऊ ने चरणामृत पान किया।

"येसू, हम पाचाड़ के सभागृह के बाहरी चबूतरे पर जब खड़ी होती थीं, तो कभी-कभी मन में विचार आता था कि क्या कभी हमारी येसू भी ऊपर मावल-माची पर खड़ी होगी?"

"हाँ, माँ साहिबा, एक बार जब हमने देखा था कि हमारे 'श्रीमान्' मीनारों की पाँचवीं मंज़िल पर हैं, उस दिन हमने मावल-माची पर आपके दर्शनों के लिए आने का साहस किया था। आबासाहब भी उस दिन दुर्ग में नहीं थे।"

येसूबाई का उत्तर सुनकर जिजाऊ को हँसी आ गयी। 'तुमने जो उस दिन हमारा दर्शन किया था न, बस समझो कि वही हमारा उस प्रकार का पहला और अन्तिम दर्शन था,' जिजाऊ ऐसा कहना चाहती थीं, परन्तु वे रुक गयीं। उन्हें याद आया कि ऐसा सुनकर येसूबाई का मुख कितना म्लान हो जाएगा। बात बदलकर वे कहने लगीं, "येसू बेटी, तुम्हें कभी कुछ कहा नहीं गया। हमारे पतिदेव ने बहुत वर्ष पहले एक विचित्र पद्धति की तुला की थी। नागर गाँव में इन्द्रायणी और भीमा नदियों के संगम पर उन्होंने हाथी के बच्चे को नाव में चढ़ाकर तुला की थी।" एकदम खाँसी का दौरा आने से उन्हें रुकना पड़ा।

येसूबाई आँचल सँवारती हुई एकदम उठ खड़ी हुईं, क्योंकि सम्भाजी के साथ स्वयं महाराज महल में आ रहे थे। उनके साथ वैद्यराज तथा मोरोपन्त भी थे। जिजाऊ की हाथी के बच्चे, नौका, तुलावाली कहानी अधूरी ही रह गयी।

सम्भाजी की उँगली पकड़कर बालराजा राजाराम आ रहे थे। जिजाऊ ने अपनी बूढ़ी-थकी

https://t.me/Sahityajunction

दृष्टि से दोनों को देखा—कौतुक भाव से देखती ही रहीं। मन-ही-मन कहा—'ऐसे ही बने रहो—राम और भरत जैसे।'

"राजा, इन्हें अब क्यों कष्ट देते हो?" वैद्य की ओर देखते हुए जिजाऊ ने महाराज से कहा।

"माता की सेवा में पुत्र को कैसा कष्ट, माँ जी!" वैद्यराज ने उन्हें दिलासा देने का प्रयत्न किया।

जिजाऊ का हाथ अपने हाथों में लेकर महाराज पलँग पर बैठ गये। क्या कहें, यह वे समझ न पा रहे थे।

जिजाऊ ने हाथ से थपथपाकर सम्भाजी और राजाराम को पलँग की दूसरी बाजू में बैठने का संकेत किया। सम्भाजी ने राजाराम को पलँग पर बैठने के लिए कहा। जिजाऊ अपने हाथों से राजाराम की पीठ सहलाने लगीं।

"बालराजा, अपने दादामहाराज की उँगली तुमने पकड़ी है न, उसे कभी छोड़ना नहीं बेटे।" जिजाऊ ने शान्त स्वर में कहा।

"माँ साहिबा, अब कैसा लग रहा है आपको?" महाराज ने समझा, जिजाऊ हमसे बात करने में हिचकिचा रही हैं।

"अब क्या लगना-लगाना है, राजा! हम अनुभवों से परे के लोक में पहुँच चुकी हैं अब। बस, आँखभर एक बार इन सबको देख लिया, तो समझो, सब पा लिया।" जिजाऊ अब नातों-रिश्तों का सूत्र तोड़ती जा रही थीं।

"राजा, एक इच्छा अवश्य है..." जिजाऊ की आवाज़ अब सभी को परायी, निराली-सी जान पड़ी—किसी अन्य लोक के पथिक की-सी।

"आज्ञा हो, माँ साहिबा!" महाराज ने प्रेम से उनका हाथ थपथपाया।

"हमारी...हमारी इच्छा होती है—माँ भवानी का 'कीर्तन-नृत्य' देखने की।"

महाराज भयभीत होकर चौंक उठे। 'माँ भवानी का कीर्तन नृत्य—जीवन की अन्तिम इच्छा?' उन्होंने मोरोपन्त की ओर देखा। मोरोपन्त ने उनकी दृष्टि का संकेत समझ लिया और वे कीर्तन-नृत्य की गायक-मण्डली को बुलाने चले गये। वैद्यराज अपनी पोटली खोलकर विविध प्रकार की औषधि-मात्राएँ तैयार करने लगे।

रात्रि को हवेली में 'कीर्तन-नृत्य' का आयोजन हुआ। जिजाऊ ने सभी उपस्थित गायकों-नर्तकों को ताम्बूल और वस्त्र प्रदान किये। गायकों ने वस्त्र-ज्योतियाँ जला लीं और उन्होंने नमन-गीत गाना प्रारम्भ किया। उनका मुखिया माँ भवानी की महिमा गा अवश्य रहा था, परन्तु उसकी आवाज़ की उदासी स्पष्ट सुनाई दे रही थी :

उदर-चँगेरी दी हाथ में
लोक लोक दौड़ाया ।
लाख चौरासी योनि में घूमा
भिक्षा पात्र धराया ।

https://t.me/Sahityajunction

जिस-जिस घर में भिक्षा माँगी
वह गृह मुझको भाया ।
आदिशक्ति का कौतुक अनुपम
भक्त मुझे है बनाया ।।

इसे सुनते समय सम्भाजी, जो जिजाऊ के पाँव दबा रहे थे, के नेत्रों से झर-झर धारा बहने लगी। महाराज का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। जिजाऊ नेत्र मीचे शान्त लेटी हुई थीं। बाहर हवेली के ऊपर और आँगन में मूसलाधार वर्षा हो रही थी। कीर्तन के इकतारे और दुक्कड़ के सुर इसी वर्षाधारा की नाद में क्षीण होकर विलीन हो रहे थे।

ज्येष्ठ के कृष्णपक्ष की एकादशी की कालरात्रि हवेली के चारों ओर मँडरा रही थी। बाहर वर्षा की धाराएँ ऊधम मचा रही थीं। हवेली के भीतर 'ममता' की शय्या के चारों ओर अनेक चिन्ताग्रस्त मन उदास खड़े थे। आऊ साहिबा के दमे के हठ के सामने औषध-मात्राओं ने पराजय स्वीकार ली थी, काढ़े तंग आ चुके थे, वनस्पतियाँ झेंपने लगी थीं।

खाँस-खाँसकर सारी पसलियाँ हिल़ चुकी थीं और जिजाऊ की अभी-अभी ही आँख लगी थी। कहीं उनकी तन्द्रा न टूट जाए, इस भय से सम्भाजी उनका हाथ अपने हाथ में लिये बैठे थे। निकट ही महाराज और राजाराम बैठे थे। मोरोपन्त, अण्णाजी, दत्ताजी, हम्बीरराव, अन्तोजी, रायाजी आदि घनिष्ठ आत्मीय जन शय्या के चारों ओर खड़े थे। शय्या के सिरहाने की ओर पुतलाबाई, येसूबाई, धाराऊ, सोयराबाई आदि स्त्रियाँ खड़ी थीं। सभी की आँखों में चिन्ता के भाव समाये हुए थे।

बाहर की बरसाती हवा का एक तेज़ झोंका महल में आ घुसा। उससे महल के भीतर के चिराग़दानों और दीवटों की ज्योतियाँ काँपने लगीं। दीप-ज्योति के कम्पन से सभी के मन में एक अनाहूत शंका घुस आयी।

आधी रात का समय था। पलँग पर से मन्द स्वर उठा, "राजा!"

"जी," कहते हुए महाराज आगे को झुके।

"गंगाजल दो हमें। तुलसीपत्र भी लाओ।"

महाराज उठे और देवगृह में रखा गंगाजल का पात्र और तुलसीपत्र ले आये। एक आचमनी से उन्होंने गंगाजल माँ साहिबा के मुख में डाला। उनके हाथ का सोने का कड़ा थरथराने लगा। अपनी माँ साहिबा के होठों पर आज तुलसीपत्र रखते हुए उन्हें अनुभव हुआ, मानो किसी ने रायगढ़ को ही उठाकर छाती पर रख दिया हो। गंगाजल और तुलसीपत्र आज धन्य हो उठे-माँ साहिबा की सेवा में अन्तिम सेवक बनकर वे आज उपस्थित हो पाये थे।

"शिवबा, हमारे पास आओ," तुलसीपत्र के पीछे से स्पष्ट शब्द सुनाई दिये। महाराज आगे को झुके।

"हाथ आगे बढ़ाओ अपना," आज सम्भवतः पहली बार ही उस कुलीन राजमहिला ने 'शिवबा' से कुछ माँगा था। महाराज ने अपने सोने के कड़े वाला थरथराता हाथ जिजाऊ के

https://t.me/Sahityajunction

निर्बल हाथों में दे दिया।

"शिवबा, हमने तुमसे कभी कुछ माँगा नहीं। आज माँगने जा रही हैं। शपथ खाओ कि दोगे?"

"जी, माँ साहिबा, अवश्य। आज्ञा करें।" महाराज का मन भर आया।

"शिवबाऽ, शिवबा, अब हमारे लाडले शम्भूराजा की 'आऊ साहिबा' भी तुम्हीं हो। हमने सम्भाजी की माता, अपनी ज्येष्ठ पुत्रवधू को वचन दिया था। अब वह वचन तुम्हें अन्त तक निभाना होगा।"

सम्भाजी ने ये वचन सुने और उनके मन का बाँध फूट पड़ा। जिजाऊ के हाथ को ज़ोर से झकझोरते हुए, सिसक-सिसककर वे कहने लगे, "आऊ साहिबा, हमें छोड़कर नहीं जा सकतीं आप। हमें, महाराज को ज़रूरत है आपकी।"

"शम्भूराजा शान्त होओ। वह ऋणानुबन्ध अब समाप्त हो चुका है। एक बात ध्यान देकर सुनो हमारी। तुम...तुम ठीक हमारे 'श्रीमान्' के समान दिखाई देते हो। पर...पर जैसे वे हमें छोड़ गये, वैसे तुम कभी येसूबाई को छोड़कर मत जाना।

"शिवबा, राजा, हमने सब-कुछ देखा-जाना है। बस एक देखना रह गया—हमारे राजाराम का विवाह करना रह गया। तुम यह शुभकार्य करना। और...और देखो, अब अपने प्राणों को धोखे में, संकट में मत फँसाया करो। अब हमारे बाद कोई नहीं है, जो तुम्हारे कुशल-मंगल के लिए 'माँ जगदम्बा' से झगड़ा मोल ले।"

ये शब्द सुनकर महाराज का सिर दायें-बायें ज़ोर-ज़ोर से हिल उठा। शरीर की सारी शक्ति जैसे खो गयी। कम्पित स्वर में वे चिल्लाये, "माँऽ साऽ हि बाऽ!"

"शिवबा, केशव पण्डित को बुलवाओ। हमें समर्थगुरु जी का दासबोध सुनवाओ।"

बाहर मध्यरात्रि भी जैसे ज़िद पकड़कर हवेली पर छा गयी थी। पहरों की चौकियों पर नियुक्त प्रहरी घूमते हुए, एक-दूसरे से भाला बदलते हुए पुकार रहे थे : "होशियार रहो! चौकीदार, होशियार!"

केशव पण्डित ने तिपाई पर दासबोध रखा और स्वयं पीढ़े पर बैठ गये। धाराऊ ने प्रकाश बढ़ाने की दृष्टि से एक समई उनके निकट लाकर रख दी। केशव पण्डित के मुख से समर्थगुरु के बैरागी शब्द निकलने लगे। जिजाऊ कानों में प्राण समाकर सुन रही थीं—सम्भाजी और महाराज भी ध्यान देकर सन रहे थे :

सुकर्म संचय न हो शेष जब, लगे विलम्ब न दिन का, पल का ।
क्षण दो क्षण भी पूर्ण नहीं हों, जाना पड़े जनों को, वश क्या ।।
गये कई दल-बल के स्वामी, समा गये सब यम के मुख में ।
अगणित राजा गये, खो गये, वंश, जाति के मानी दुःख में ।।
योनिचक्र में घूम-घूम कर, पाता नर यह देह अन्त में ।
नीति-न्याय से चल जीवन-भर, पाये चोखा नाम अन्त में ।।
कष्ट करे नर, तन से, मन से, उत्कट यश फैलाये ।
जन-मन में वह स्नेह बढ़ाये, प्रेम की जोत जलाये ।।

https://t.me/Sahityajunction

पण्डित जी की जिह्वा काँपने लगी। कविता के एक-एक शब्द से भक्तिपूरित मन विह्वल हो रहे थे। दीवटों की ज्योतियाँ भी काँप रही थीं।

प्राणों से तुम प्राण मिलाओ, आत्मा परमात्मा में ।
हे मानव, तुम खोजो रह-रह, परब्रह्म जीवन में ।।

अब तो केशव पण्डित के हाथों में भी कम्पन उत्पन्न हो रहा था। आँखें भर आयी थीं—एक-एक शब्द उनके अवरुद्ध कण्ठ से जैसे-तैसे बाहर निकल रहा था :

अब समाप्त शब्दोंऽ कीऽ खट खट । हुआ ग्रन्थऽ परिपूर्ण ।
सद्गुरु कहे, करे यह मानव । भक्तिभाव से जीवन पूर्ण ।।

"पण्डित जी, पढ़ना बन्द कीजिएऽ। मत पढ़िएऽ," सम्भाजी के व्यथित उद्गार से केशव पण्डित की पलकों पर एकत्रित अश्रुबिन्दु पोथी के पन्ने पर टपक पड़े। उनके लिए आगे पढ़ना असम्भव हो गया। सभी की वाणी मौन हो गयी थी।

परन्तु छत्रपति महाराज, युवराज सम्भाजी अथवा उपस्थितों में से कोई भी नहीं जानता था कि वहाँ तो नेत्र बन्द किये हुए जिजाऊ ने अपनी आत्मा को परमात्मा में कभी का लीन कर दिया था। शरीर की संज्ञाओं से दूर, परलोक के मार्ग पर अग्रसर लोकमाता जिजाऊ साहिबा की जीवात्मा को सम्मुख एक प्रकाश दिखाई दे रहा था—अन्तिम प्रकाश।

हाँ...। साक्षात् अष्टभुजा, शस्त्रपाणि, व्याघ्रारूढ़ा, जगदम्बा ही उनकी दिशा में चली आ रही थीं। उस दुर्गा भवानी के आगे-आगे भक्तों का समुदाय देवी-भक्तों का विशेष वेश धारण किये, छाती पर कौड़ियों की माला पहने, हल्दी-रोली से माथा लेपकर, हाथ में वस्त्र-ज्योतियाँ नचाते हुए आगे-आगे बढ़ा आ रहा था। 'जय हो...उदय हो' की गर्जना हो रही थी।

यह भवानी-भक्तों की टोली बढ़ती-बढ़ती सीधी जिजाऊ के सम्मुख आकर ठहर गयी। वाद्यों की ध्वनि मन्द होती हुई बन्द हुई। फिर व्याघ्र पर आरूढ़ उस जगदम्बा ने अपने आठों हाथ फैला दिये—भक्त बेसुध होकर पुकार उठे, "जय हो—उदय हो!"

जिजाऊ की आत्मा शरीर के सिंहासन से उठ खड़ी हुई। उन्होंने अपनी भगवी साड़ी का आँचल ठीक किया और जगदम्बा की आँखों में झाँकते हुए कुलीन शैली से, थोड़ा विनय—थोड़ी डाँट-डपट के स्वर में एक प्रश्न पूछा :

"माँ जगदम्बे! हमने नहीं सोचा था कि तुम हमारे अन्त समय में इस रूप में दर्शन दोगी। हमने सोचा था—तुम आओगी एक जीन-कसे घोड़े को साथ लेकर; और उस घोड़े की रक़ाबी में हमारा पैर फँसाकर हमें भी घसीटते हुए अपने दरबार में ले जाओगी। हमारे सिन्दूर को होदेगिरि के वनों में तुम इसी प्रकार से ही तो ले गयी थीं। परन्तु...! अस्तु! चलो, हम तत्पर हैं।"

महाराज, सम्भाजी, और सभी उपस्थित जनों को कुछ ऐसा आभास हुआ, मानो जिजाऊ के होठों से 'जगदम्बे, जगदम्बे' शब्द फूट रहे हों।

मस्तक पर सात नदियों का अभिषेक पाये छत्रधारी अभिषिक्त महाराज आज वास्तविक रूप में अनाथ हो गये—छत्रधारी, पर छत्रहीन भी। महाराज के मस्तक पर छाया हुआ 'माता' का छत्र आज खो गया। और सम्भाजी का—? जिजाऊ के प्राणहीन हाथ को वे झकझोर रहे थे, मुख पर असीम व्यथा थी, जैसे हज़ारों बिच्छुओं ने काटा हो। आँखें आँसुओं के जल से भरी थीं।

https://t.me/Sahityajunction

उस मध्यरात्रि का पाषाण-हृदय भी फट पड़े, ऐसी चीख़ मारकर वे पुकार उठे :

"आबाऽऽ, हमारी आऊ साहिबा चली गयीं।"

धाराऊ दीवार से लगी खड़ी थी। दीवार पर धड़ाधड़ माथा पटक-पटककर पुकार रही थी, "माँ साहिबा, माँ जी!" फिर जैसे एकदम कटे वृक्ष के समान वह भूमि पर गिर पड़ी। भीषण विलाप से दीवारों की ज्योतियाँ भी काँप उठीं। जिजाऊ की निर्जीव देह पर दायें-बायें सिर रगड़-रगड़कर महाराज और सम्भाजी रो रहे थे—रोते ही जा रहे थे।

आज मध्यरात्रि ने पाचाड़ पर विजय पा ली थी। आकाश भी बूँद-बूँद रो रहा था।

---

1. गुजरात का व्यापारी नगर
1. एक पद (सचिव)
1. एक स्वर्णमुद्रा जिसका मूल्य लगभग 311 रुपये था।

https://t.me/Sahityajunction

चार

युवराज सम्भाजी मीनार पर खड़े उदास भाव से प्रतापगढ़ की ओर देख रहे थे। आज प्रातःकाल ही प्रतापगढ़ से एक दूत अशुभ वार्ता लाया था—'गढ़ के आस-पास धुआँधार तूफ़ानी बरसात हुई है। प्रतापगढ़ के 'माता भवानी' के मन्दिर पर बिजली गिरी है तथा इस वज्रपात से राजा की अश्वशाला भी धूल में मिल गयी है।'

जब देवी के देवालय पर भी बिजली गिरे, तो मनुष्य की क्या कही जाय! ठीक ही हुआ कि आज हमारी माँ साहिबा यह अशुभ-अमंगल वार्ता सुनने को जीवित नहीं हैं, अन्यथा काँपती वाणी में उदासी-भरे मुख से वे महाराज से कहतीं—'राजा, यह गाज देवी के देवालय पर नहीं, हमारे शरीर पर ही गिरी है। पुरोहितजी से कहो, शान्ति कराएँ।'

विजयादशमी का पर्व आया, परन्तु इस बार महाराज दशहरा-चौक में नहीं आये। इस बार सम्भाजी तथा राजाराम ने ही तलवार के वार से कचनार के पत्तों का ढेर फोड़ा था।

एक हाथ में बालराजा का हाथ थामे, दूसरे हाथ में कचनार की शाखा लिये सम्भाजी उपरिकोट में आये और अभ्यासवशात् उनके पैर जिजाऊ के ख़ासमहल की ओर बढ़ गये—माँ साहिबा की चरणधूलि माथे से लगाने को। वे ख़ासमहल तक आये और देहली पर ही उनके पाँव ठिठक गये। बैठक में साफ चादर बिछी थी, गावतकिये और गिरदे जिजाऊ की बैठक में पहले के समान ही रखे थे। बैठक के निकट ही येसूबाई तथा धाराऊ खड़ी थीं।

अब दशहरे की प्रथा के अनुसार कुछ ही देर में अनेक लोग वहाँ, महल में आनेवाले थे। आज माँ साहिबा तो वहाँ न थीं, पर माता को देवता-समान पूजनेवाले वे लोग वहाँ आ-आकर फरशी पगड़ियाँ झुकाकर मन की बोली में 'माँ जी' से कुछ कहनेवाले थे। कचनार के थोड़े से पत्ते रखकर प्रणाम करनेवाले थे।

सम्भाजी ने जब उस सूनी बैठक में जाकर मुट्ठीभर कचनार के पत्र अर्पित किये, तो उनके हाथ थरथरा रहे थे। और मन रो रहा था। राजाराम ने भी मुट्ठी-भर पत्र अर्पित किये और फिर दोनों ने भूमि पर माथा टेककर माँ साहिबा की स्मृति को श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

येसूबाई यह करुणापूर्ण दृश्य देख न सकीं, उन्होंने मुख फेर लिया।

सम्भाजी ने जब सिर ऊपर उठाया, तो उन्हें आभास हुआ, मानो बैठक पूछ रही थी

https://t.me/Sahityajunction

—'युवराज, बालराजा, तुम दोनों अपने आबासाहब को कचनार-पत्र दे आये क्या?'

बालक राजाराम के मन को एक विचार सता रहा था। वे नितान्त अबोध भाव से अपने दादा महाराज से पूछने लगे, "दादा महाराज, हमारी बड़ी माँजी, आऊ साहिबा, इस बैठक में प्रातः-सायं हमारा मुजरा स्वीकार करने आ बैठती थीं। आजकल क्यों नहीं आतीं वे?"

बालक का प्रश्न सुनकर सम्भाजी की आँखें छलछला आयीं। वे कहना चाहते थे—'हमारे-तुम्हारे मुजरे स्वीकार करके वे थक गयी थीं, बाल महाराज। अब देवताओं के प्रणाम स्वीकारने गयी हैं।' परन्तु उनका यह उत्तर मन में ही रह गया। सम्भाजी ने धाराऊ को कचनार के पत्ते देकर प्रणाम किया और वे राजाराम के कन्धे पर हाथ रखकर महल से बाहर चले गये।

महाराज उस समय मावल-माची पर खड़े थे, इस कारण वे दोनों उन्हें कचनार के पत्ते देकर प्रणाम करने वहीं पहुँचे।

महाराज ने झुककर प्रणाम करने को उद्यत उन दोनों भाइयों को रोक लिया। सम्भाजी ने उनकी अंजलि में मुट्ठीभर पत्ते डाले और महाराज के मुख की ओर देखा। ठीक इसी समय जगदीश्वर के मन्दिर में दशमी के निमित्त सान्ध्य-आरती का घण्टा बज उठा। इसके साथ ही मन्दिर के आँगन के सभी घण्टे 'ठन ठन' बजने लगे। घण्टों का यह निनाद सम्भाजी ने ज्योंही सुना, उनकी मुखमुद्रा क्षण में ही बदल गयी। उनकी दृष्टि नीचे दूर पर पाचाड़ की ओर मुड़ गयी। इसी मावल-माची पर खड़े होकर ही तो उन्होंने न जाने कितनी बार जिजाऊ के दर्शन किये थे।

देखते-ही-देखते उनकी सारी देह पत्ते के समान थरथरा उठी। हथेलियों में मुँह छिपाकर वे सिसकने लगे। महाराज तुरन्त समझ गये कि शम्भूराजा क्यों व्याकुल हो गये। उन्होंने आगे बढ़कर सम्भाजी को छाती से लगा लिया। "शम्शूऽऽ, शान्त होओ।" महाराज का हाथ उनकी पीठ पर फिर रहा था। इस हड़बड़ी में उनके हाथ से कचनार के कुछ पत्ते उड़ गये और नीचे गहरी खाई में उतरने लगे—हवा के झकोरे खाने लगे। यह अकस्मात् क्या हो गया? छोटा राजाराम कुछ भी न समझ सका। बस, सम्भाजी के पैरों से लिपटकर खड़ा ऊपर देख रहा था। हड़बड़ाकर पुकार रहा था, "दादा महाराज, दादा महाराज!"

उस दिन सायंकाल को 'दीप-ज्योति' के समय जिजाऊ के अदृश्य चरणों में नमस्कार करने के लिए महारानी सोयराबाई, युवराज सम्भाजी, येसूबाई, पुतलाबाई, राजाराम आदि राजपरिवार जिजाऊ की बैठक में उपस्थित था। सब लोग महाराज के आने की बाट देख रहे थे।

कल्याण और भिवंडी नगरों में मुग़लों ने लूटपाट मचायी थी तथा गाँव-के-गाँव जला डाले थे। महाराज इन समाचारों का विवरण सुन रहे थे, इसी कारण उन्हें आने में विलम्ब हो गया था। कुछ ही देर में वे लपकते हुए महल में आ गये। साथ में मोरोपन्त और एक तबक़धारी सेवक भी था। वह आज नयी बात थी, क्योंकि रोज़ तो मोरोपन्त नमस्कार करने आते नहीं थे।

सबने जिजाऊ की बैठक को सायंकालीन नमस्कार किया। येसूबाई रानियों के बीच सकुचाई खड़ी थीं। महाराज ने उनकी ओर देखकर कहा, "बहूरानी, तनिक आगे आओ।" येसूबाई की कुंकुम की रेखाओं में खिंचाव आ गया। पहले से ठीक आँचल को और भी ठीक करते हुए वे बैठक के निकट आयीं।

https://t.me/Sahityajunction

“बहूरानी, हम जब तुम्हें देखते हैं, तो सच ही हमें माँ साहिबा की याद हो आती है,” सूनी बैठक की ओर निहारते हुए महाराज कहने लगे, “इस कारण माँ साहिबा को साक्षी बनाकर हम आज एक ज़िम्मेदारी तुम्हें सौंपना चाहते हैं। उसे स्वीकारोगी क्या?”

“जी,” येसूबाई ने भूमि की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

“हम आज से अपनी मुद्रा और कटार तुम्हें सौंप रहे हैं। ध्यान रखो, इस मुद्रा और कटार से सैकड़ों के प्राणों का निर्णय होता है। इस महान् ज़िम्मेदारी का भार सहन करने के लिए माँ साहिबा से आशीर्वाद माँगो। तुम अवश्य सफल होगी।”

सभी की दृष्टियाँ इस समय येसूबाई की ओर लगी थीं। ‘आबासाहब ने हमें कितना विश्वासपात्र माना है,’ यह सोचकर येसूबाई का दिल भर आया। “आबा...” उनके कण्ठ से पुकार भी पूरी तरह नहीं निकल पायी।

“कुछ मत कहो, बहू। ये ले लो!” मोरोपन्त ने तबक़ के ऊपर ढँका वस्त्र हटा दिया था, उसमें एक मुद्रा और एक कटार रखी थी।

अबोधमना येसूबाई असमंजस में पड़ गयीं। ‘श्री’ के राज्य के इस सम्मान को किस पद्धति से स्वीकारा जाय, यही सोचने लगीं। सब सोचते थे कि प्रथा के अनुसार येसूबाई अपने हाथ से तबक़ को छू लेंगी और उसे अपनाने की विधि पूर्ण होगी, परन्तु येसूबाई की दृष्टि ज्योंही किरामिजी म्यान की कटार और चाँदी की पिटारी में रखी मुद्रा की ओर गयी, उन्होंने एकदम अपना आँचल ही फैला दिया, मानो आकाश के दिये उस राजदान को धरित्री स्वीकार कर रही हो।

तबक़धारी सेवक यह देखकर गड़बड़ा गया।

“येसूऽऽ,” अभिभूत होकर महाराज कह उठे। मोहित के समान वे एकदम आगे बढ़े, वह मुद्रा और कटार उन्होंने उठायी और स्वयं येसूबाई के आँचल में डाल दी। मुख से ठीक जिजाऊ के समान बोल निकले, “विजयी बनो!”

येसूबाई ने बैठक को तीन बार प्रणाम किया। फिर महाराज को, सभी सासों को और अपने ‘श्रीमान्’ को भी प्रणाम किया। महाराज जब महल से बाहर गये, तो एक निराला सन्तोष उनके मुख पर झलक रहा था। समस्त राजपरिवार भी महल से बाहर चला गया।

पर महारानी सोयराबाई फुसकारते हुए ही अपने महल में घुसीं। आते ही उन्होंने पहले अपना सोने का कमरबन्द खोल दिया। चन्द्रा के हाथ में वह कमरपट्टा देते समय एक लम्बी आह भरते हुए उन्होंने न जाने चन्द्रा से कहा था या अपने आप से ही कहा, “हँ, मुद्रा-कटार!”

ख़ानदेश इलाक़े के नान्द्राबाद, धरणगाँव आदि शहरों तक हमला करके महाराज की विजयी सेना रायगढ़ लौट आयी थी। इन दिनों मराठा प्रदेश में कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी—धुन्ध छायी रहती थी।

महाराज ने रायगढ़ लौटकर एक बुरी ख़बर सुनी। वह यह कि न्यायाधीश निराजीपन्त परलोक सिधार गये—। महाराज का मन शोकार्त्त हो उठा। उनकी अमूल्य सेवाओं के प्रति

https://t.me/Sahityajunction

सम्मान दिखलाने के लिए महाराज ने उनके पुत्र प्रह्लाद निराजी को दरबार में सम्मान वस्त्रादि प्रदान करके न्यायाधीश पद पर नियुक्त किया! प्रह्लादपन्त सम्भाजी के समवयस्क थे और उतने ही विश्वसनीय और तीक्ष्ण बुद्धि भी थे। महाराज के सभी मन्त्रियों में वे सबसे कम आयु के थे।

महाराज जानते थे कि चाहे मौसम जाड़े का है, फिर भी उनकी गतिविधियों से औरंगज़ेब का पारा चढ़नेवाला है। इसी कारण उन्होंने मुग़ल सरदार बहादुर ख़ाँ के साथ सन्धि-वार्ता चलायी हुई थी : 'हम तो आलीज़ाह बहादुर के क़दीम चाकर हैं। अर्ज़ी है कि सम्भाजी को बादशाह की ओर से मनसब दी जाय और बादशाह की ख़िदमत में सेवा का मौक़ा दिया जाय!'

बहादुर ख़ाँ यूँ तो शिवाजी के कारनामों से सिटपिटाया हुआ था, फिर भी वह सम्भाजी को 'मनसब' दिलाने के बारे में दिल्ली को ख़लीते भेज रहा था।

यह राजनीति का दाँव था। कभी ऊँट की-सी धीमी चाल से, कभी हिरण की-सी कुलाँचें मारकर इस नीति को चलाना था। महाराज ने लिख भेजा था : 'हम तुम्हें सत्रह क़िले दे देंगे। तुम सम्भाजी को छः हज़ारी सरदार की 'मनसब' दो और भीमा नदी तक का सारा प्रदेश उनके नाम कर दो।'

इस प्रकार महाराज सम्भाजी के लिए मनसब पाने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु मन में उन्होंने कुछ और ही ठाना हुआ था।

एक दिन दरबार का कामकाज समाप्त होने के बाद महाराज ने आठ सचिवों (अष्ट प्रधानों) के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा, "जैसे हमारा मौंजीबन्धन हुआ है, उसी प्रकार युवराज का मौंजीबन्धन होना भी नितान्त आवश्यक है। धर्म की दृष्टि से जो संस्कारादि आवश्यक हैं, उनका हो जाना ही उचित है। अन्यथा बाद में बाधाएँ आ पड़ती हैं।" महाराज ने जो कहा था, अनुभव के आधार पर ही कहा था।

अष्ट-प्रधानों ने इस प्रस्ताव को समुचित बतलाया। महाराज ने अनन्तभट्ट और प्रभाकरभट्ट को मुहूर्त्त खोज निकालने का काम सौंपा। दुर्ग में अब सम्भाजी के मौंजीबन्धन की धूम मचने लगी। अनुभवियों ने जान लिया था कि सम्भाजी, जो आज सिंहासन के नीचे सीढ़ी पर बैठते हैं, कल बत्तीस मन के सुवर्ण सिंहासन के स्वामी होने जा रहे थे—स्वयं महाराज ने भी अब यह सत्य निस्संशय होकर मान लिया था। भविष्य में राज्याभिषेक के समय युवराज के मार्ग में कठिनाई न आ पड़े, इसी कारण उन्होंने मौंजीबन्धन का निश्चय किया था। सबने यह निर्णय सुना, परदों के पीछे रानियों की बैठक में बैठी सोयराबाई ने भी सुना, परन्तु वे तुरन्त उठ खड़ी हुईं और कब दरबार से निकलकर भुनभुनाती हुई अपने महल में जा पहुँचीं, यह भी किसी ने नहीं देखा।

सोयराबाई के मन में विचारों ने खलबली मचायी हुई थी। वे इस सोच में पड़ी थीं कि अपनी बात महाराज के कानों तक क्योंकर पहुँचायी जाय। उन्होंने एक बार सोचा—'अण्णाजी को बुलाकर कहें,' परन्तु इस प्रकार के काम में अण्णाजी कितने निरुपयोगी सिद्ध होते हैं, यह वे एक बार देख चुकी थीं। बहुत सोच-विचारकर उन्होंने मन-ही-मन ठान लिया—'हम स्वयं ही अपने मन की बात महाराज से क्यों न कह डालें!'

महाराज ने सम्भाजी के मौंजीबन्धन के निमन्त्रण भेजने का कार्य समाप्त किया था और वे नित्यानुसार सोयराबाई के महल में आये। राजाराम को बुलाकर हँसते हुए वे बोले, "उधर हम तुम्हारे दादा महाराज के मौंजीबन्धन के निमन्त्रण सब ओर भेज रहे हैं और तुम यहाँ महल में

https://t.me/Sahityajunction

बैठे-बैठे क्या कर रहे हो—हैं?”

सोयराबाई ने देखा—हमारे मनचीते विषय को महाराज ने स्वयं ही छेड़ दिया है, उसी सूत्र को पकड़कर वे हँसकर कहने लगीं, “हम आपकी बात कुछ समझ नहीं पातीं—भला एक ही काम दोबारा करने की क्या आवश्यकता है?”

महाराज कुछ समझ न पाये। उनकी भौंह थोड़ी तन गयी।

“अभिषेक दो बार हुआ है, अब शायद आप मौंजीबन्धन भी दो बार करेंगे?”

“क्या मतलब?”

“हम यह कहना चाहती हैं कि यदि युवराज के मौंजीबन्धन के साथ-साथ बालराजा का भी मौंजीबन्धन हो जाय, तो सबको दो बार दौड़-धूप नहीं करनी पड़ेगी।” राजाराम की ओर मुस्कराते हुए देखकर सोयराबाई ने कहा।

“अरे, क्या कहती हो? इनका मौंजीबन्धन? अभी तो ये नन्हे-से हैं। ज़रा इनका पराक्रम तो चमकने दो, फिर करेंगे इनका भी मौंजीबन्धन धूम-धाम से। क्यों, ठीक है न बालराजा?” महाराज ने हँसकर राजाराम की पीठ थपथपाते हुए कहा। परन्तु महाराज इस समय यह नहीं देख पाये कि उनका उत्तर सुनकर सोयराबाई की नाक की नोक लाल-सुर्ख हो उठी थी।

परन्तु सोयराबाई अपने मन में दबे तूफ़ान को बाँध नहीं सकीं। मुख से शब्द फुफकारते हुए बाहर निकले, “हाँ, हाँ, हमने भी सुना है—युवराज का पराक्रम क्या है? एक विचारी विधवा की पटवारगीरी छीनकर दूसरे को सौंप देनेवाले युवराज सचमुच ही पराक्रमी हैं।”

“खामोऽश!” महाराज की अकस्मात् तेज़ फटकार से बालक राजाराम घबरा गया। महाराज ने भयभीत बालक को अपने निकट खींच लिया और सोयराबाई को चेतावनी देकर कहने लगे, “युवराज के सरकारी कामकाज में हस्तक्षेप करना तुम्हारा काम नहीं। उनका पराक्रम क्या है, कैसा है, यह देखने को हम हैं न महारानी जी!”

महाराज ने राजाराम के कन्धे पर हाथ रखा और उतनी ही शान्त आवाज़ में राजाराम से कहा, “चलो हमारे साथ।”

सोयराबाई भय से थरथर काँप रही थीं। महाराज के साथ राजाराम को महल से बाहर जाते देखकर उन्होंने कहना चाहा—‘ठहरो बालराजा,’ परन्तु ये शब्द उनके होठों से बाहर निकल ही नहीं पाये।

माघ मास के कृष्ण पक्ष की पंचम तिथि को पूरे ठाठ-बाट से सम्भाजी का मौंजीबन्धन सम्पन्न हुआ।

महाराज ने अण्णाजी दत्तो और दत्ताजी त्रिमल को फोंडा प्रदेश की मुहिम पर जाने का काम सौंपा।

सम्भाजी अब युवराज के रूप में राजकार्यालय के कामकाज में ध्यान देने लगे थे। सर्दी का मौसम समाप्त हो चुका था। पुरन्धर भाग का गोपाल सेठ नामक एक व्यापारी साहूकारी-सम्बन्धी एक बखेड़ा लेकर रायगढ़ आया था। उसके मामले का निर्णय करने का काम महाराज

https://t.me/Sahityajunction

ने सम्भाजी को सौंपा—शायद परीक्षा लेना चाहते थे उनकी।

महाराज के महल के राजसभागृह में मामले की सुनवाई हो रही थी। युवराज सम्भाजी न्यायदान के कार्य में कितने निपुण हैं, यह देखने के लिए स्वयं महाराज भी सम्भाजी के निकट ही बैठे थे।

मामला पेश हुआ। सम्भाजी ने वादी तथा प्रतिवादी का वक्तव्य सुन लिया। गवाहों के नाम सुने। काग़ज़ों को भी ध्यान से पढ़ा। परम्परागत रूप से पुरन्धर की साहूकारी का उत्तराधिकार गोपाल सेठ के अनुकूल सिद्ध हो रहा था। सम्भाजी इस विवाद का मज़मून महादेव यमाजी को लिखाने लगे—महाराज सारे समय केवल सुनते ही रहे, बोले कुछ भी नहीं। सम्भाजी के मुख से निकला शब्द मानो महाराज का ही एक-एक शब्द था—वही शैली, वही ढंग।

निर्णय-पत्र पूरा हुआ। सम्भाजी ने वह निर्णय-पत्र महादेव पन्त से एक बार पढ़वाकर सुना और उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। निर्णय-पत्र एक थैली में बन्द करके तबक़ में रखकर जोत्याजी केसरकर ने वह तबक़ गोपाल सेठ के आगे रखा। गोपाल सेठ ने वह थैली उठायी, माथे से छुआयी और वह हाथ बाँध कर विनम्रभाव से युवराज के सामने खड़ा हो गया।

गोपाल सेठ मन-ही-मन प्रसन्न था। इसी समय महाराज ने गोपाल सेठ को जानकारी देते हुए कहा, “गोपाल सेठ, विवाद का फैसला तुम्हारे अनुकूल हुआ है। अब विवाद का न्याय-कर तुम्हें भरना पड़ेगा। युवराज को पाँच होन तथा सरकारी राजकार्यालय में सवा सौ होन न्याय-कर के रूप में तुरन्त भरो, तभी क़िले से नीचे उतरना।”

“जो आज्ञा, मालिक!” पगड़ी डुलाते हुए और महाराज को मुजरा करते हुए गोपाल सेठ बाहर चला गया।

महाराज ने एक बार हँसकर सम्भाजी की ओर देखा और ‘विवाद की सुनवाई हमें पसन्द आयी,’ इस आशय की सूचना उन्होंने अपने मन्द-हास्य के माध्यम द्वारा बतला दी।

महाराज ने एक ही समय में दो ज़ोरदार मुहिमें प्रारम्भ कर दी थीं। एक मुहिम का नेतृत्व सौंपा था युवराज सम्भाजी को, जो मुहिम बीजापुर के आदिलशाही साम्राज्य को कुचलते हुए सीधा गोलकुण्डा और भागानगर से जा टकरानेवाली थी। दूसरी मुहिम के नेता स्वयं महाराज थे और यह मुहिम राजापुर तथा कुडाल होते हुए फोंडा तक पहुँचनेवाली थी।

पाचाड़ में सम्भाजी की सेना जमा होने लगी। इस बार युवराज के साथ बीस हज़ार घुड़सवार वीर थे। युवराज ने राजपरिवार से विदा ली, जगदीश्वर के दर्शन किये और वे रायगढ़ से नीचे उतरकर पाचाड़ में आये। पाचाड़ में हवेली की उत्तर दिशा में जिजाऊ की एक पक्की प्रस्तरमयी समाधि बनाई गयी थी। उस समाधि के चरणों में बेलपत्र की अंजलि अर्पित करके और हल्दी-रोली चढ़ाकर सम्भाजी ने प्रणाम किया।

“उठो, विजय पाकर लौटो,” महाराज ने उन्हें ऊपर उठाया। बहुत देर तक दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहे—मानो दर्पण में निहार रहे हों।

कूच का डंका बज उठा। ध्वजाधारी सैनिक ने ज़री-पताका का ध्वजदण्ड ऊपर उठाया।

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी ने दाहिनी हथेली फैलाकर सेना को संकेत किया और उनके पीछे की घुड़सवार सेना से जयघोष का बवण्डर उठा—'हर ऽ हर ऽ हर ऽ महादेव!'

आनन्द मकाजी, रूपाजी भोसला, जोत्याजी, अन्तोजी, कोण्डाजी फर्ज़न्द आदि सरदारों के पीछे-पीछे बीस हज़ार घुड़सवार सैनिक आगे बढ़े जा रहे थे।

सम्भाजी की इस मुहिम का उद्देश्य था कि पन्हाला से निकलकर यह सेना बीजापुर राज्य के मिरज शहर पर टूट पड़े। वहाँ से आगे यह सेना बीजापुर के आदिलशाही साम्राज्य में विध्वंस, लूटमार मचाते हुए कुतुबशाह की राजधानी गोलकुण्डा-भागानगर तक जा पहुँचे। इस प्रयाण में बीजापुर की सेना को चकमा देकर भागानगर तक यों पहुँच जाना था कि कुतुबशाह समझें कि मराठा सेना हमला बोलने चढ़ी आ रही है।

सम्भाजी पन्हाला के दुर्ग में सेना सहित आ पहुँचे। तीऩ दरवाज़े के पास क़िलेदार त्र्यम्बकपन्त ने उनकी अगवानी की। उपरिकोटि का सीढ़ीनुमा मार्ग समाप्त होते ही वहाँ शम्भू महादेव का एक छोटा-सा मन्दिर था। यहाँ आकर क़िलेदार त्र्यम्बकपन्त ने युवराज से कहा, "युवराज, पहले आप इस शिवपिण्डी के दर्शन करके फिर ख़ासमहल में जाएँ, यह प्रार्थना है।"

युवराज त्र्यम्बकपन्त के पीछे उस मन्दिर में प्रविष्ट हुए। वहाँ शालिग्रामी वर्ण की एक शिवपिण्डी अखण्डदीप के प्रकाश में झिलमिल-झिलमिल चमक रही थी। त्र्यम्बकपन्त उस पिण्डी की ओर टक लगाकर देख रहे थे और जैसे सुदूर भूतकाल में पहुँच गये थे। वे कहने लगे, "युवराज, वह रात हम कभी नहीं भूल सकते। इस क़िले पर सिद्दी जौहर के चालीस हज़ार सैनिकों का घेरा लगा हुआ था। चार महीनों तक घेरा लगा रहा था। अन्त में महाराज ने एक ओर सिद्दी ज़ौहर के साथ सन्धिवार्ता प्रारम्भ की और दूसरी ओर अपने प्राणों को धोखे की आग में झोंकने का निर्णय कर लिया था। तीन सौ विशेष पराक्रमी वीरों को और बाजीप्रभु देशपाण्डे को साथ लेकर उन्होंने भारी बरसात में क़िले से रातों-रात उतरकर बच निकलने की योजना बनायी थी। प्रस्थान से पूर्व महाराज यहाँ इस शिवमन्दिर में आये थे और इस पिण्डी के अरघे से माथा लगाये वे न जाने कितनी देर तक झुके रहे थे। उस समय मैं, बाजीप्रभु, फुलाजी भी उनके साथ थे। महाराज के उस ध्यानमग्न रूप को, इस पिण्डी को तथा उस रात्रि को हम कभी भी भुला नहीं सकते।"

इस वर्णन को सुनकर सम्भाजी ने भी अत्यन्त भक्तिभाव से घुटने झुकाकर नेत्र बन्द कर शिवपिण्डी के अरघे पर माथा टेका। "युवराज, यह पिण्डी रंग बदलती रहती है," त्र्यम्बकपन्त ने उस शिवपिण्डी की विशेषता बतायी।

सम्भाजी उनकी बात को समझ न पाये। बोले, "क्या मतलब?"

"इस पिण्डी को आप यदि हथेली से ढाँप रखें, तो हाथ हटाने पर यह काली शिवपिण्डी भी सफ़ेद दिखाई देती है। फिर जामनी, फिर रुपहला, फिर गहरा नीला—इस तरह रंग बदल-बदलकर यह पिण्डी अन्त में पुनः शालिग्रामी वर्ण की हो जाती है।"

"जगदम्बे, जगदम्बे! सच कहते हो पन्त?" सम्भाजी आँखें फाड़कर उस पिण्डी को देख रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

“युवराज, स्वयं ही परीक्षा कर देखें।” त्र्यम्बकपन्त ने पिण्डी पर चढ़ाये गये बेलपुष्पों को धीरे से हटाया। सम्भाजी ने आगे बढ़कर अपनी हथेली का पंजा उस पिण्डी पर रखा। त्र्यम्बकपन्त ने आले में जलता हुआ पलीता उस पिण्डी के निकट पकड़ रखा।

थोड़ी देर हथेली वहाँ रखकर सम्भाजी ने हथेली हटायी। पन्त पलीता उसके पास ले गये। जहाँ-जहाँ हाथ का, उँगलियों का स्पर्श हुआ था, वहाँ-वहाँ वह पिण्डी सफ़ेद हो गयी थी। फिर एक के बाद एक रंग-बिरंगी छटाएँ झलकने लगीं। आश्चर्य से सम्भाजी की भौंह ऊपर चढ़ गयी और आँखों के भाव क्षण-क्षण में परिवर्तित हो रहे थे। मन श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया। कुछ देर बाद पिण्डी पुनः शालिग्रामी हो गयी। सम्भाजी ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया। आँखें मीचे हुए उनके मन में यह विचार उदित हुआ—‘हमारे महाराज साहब का मुखमण्डल भी तो इस शिवपिण्डी के समान ही है—विविध भाव-छटाओं को बिखेरनेवाला।’
सम्भाजी ने पन्हाला दुर्ग के सोमेश्वर सरोवर, सज्जा कोठी, अन्नभण्डार, बुर्ज़ों पर जमायी हुई तोपों आदि की व्यवस्था देखी और उन्हें परम सन्तोष हुआ। वे पन्हाला में दो दिन रहे और फिर त्र्यम्बकपन्त से विदा होकर क़िले के चौ-दरवाज़े से बाहर निकलकर सेनासहित दुर्ग उतरने लगे।

अब उनकी घुड़सवार सेना मिरज की दिशा में दौड़ रही थी। मिरज शहर बीजापुर के आदिलशाह की एक मज़बूत फ़ौजी छावनी थी। उससे बचते हुए आस-पास के प्रदेश को तहस-नहस करते हुए सम्भाजी की सशस्त्र सेना आदिलशाही साम्राज्य में घुस पड़ी। घुड़सवारों की कई टुकड़ियाँ बना दी गयी थीं, जो झपट्टे मार-मारकर लूटपाट मचाते हुए भागानगर की ओर दौड़ने लगीं।

गोलकुण्डा की राजधानी भागानगर की सीमा तक यह सेना हवा से बातें करती हुई जा पहुँची। कुतुबशाही राज्य के बादशाह तानाशाह ने स्वप्न में भी ऐसे साहसी आक्रमण की आशा नहीं की थी। ‘मरहटे आ गये, भागोऽऽदौड़ो!’ सारे भागानगर में कोलाहल मच गया। भयभीत प्रजाजन आसरा पाने के लिए गोलकुण्डा की चहारदीवारी के निकट जाने लगे।

“चारों ओर विनाश मचाओ, लूटपाट मचाओऽ, बोलो—हरऽ हरऽ हर महादेव!” सम्भाजी हाथ में नंगी चमकती तलवार हिलाकर गर्जना करते घूम रहे थे।

भागानगर के दक्षिण सिंहद्वार पर युवराज का शानदार कनातों वाला शामियाना खड़ा किया गया था। पसीने से नहाये हुए सम्भाजी अपनी भगदड़ मचाती सेना की टुकड़ियों का निरीक्षण करके उस शामियाने के निकट आये। घोड़े की बागडोर साईस की ओर फेंकते हुए वे उतरे। उनके पीछे आनन्दराव, जोत्याजी, रूपाजी आदि सरदार थे।

“आनन्दराव, दूत भेजकर कुतुबशाह को चेतावनी दो। कह दो कि हमारे कहे अनुसार खण्डनी तुरन्त पेश की जाए। तब तक हमारे घोड़ों का एक भी पैर पीछे नहीं हटेगा।” बैठक पर बैठते ही सम्भाजी ने आज्ञा दी।

“जी,” पगड़ी को झोंका देते हुए आनन्दराव कमर तक झुक गया। उसने आज तक नेताजी, प्रतापराव, हम्बीरराव आदि आँधी-तूफ़ानों के समान भयानक सेनापति देखे, परन्तु युवराज सम्भाजी के सजीले सौन्दर्य पर, उनकी तड़प और तेज़ी पर उनके सैनिक कितने मोहित हैं, यह अनुभव उसने इस मुहिम में अपनी आँखों से स्वयं देख लिया था।

आनन्दराव ने गोलकुण्डे के क़िले में अपना दूत भेजा। तानाशाह ने राजसभा बुलायी। उनके

https://t.me/Sahityajunction

मन्त्रियों और सलाहकारों ने भी महाराज के राज्याभिषेक की तथा बहादुरगढ़ की लूट की कहानियाँ सुन रखी थीं, अतः उन्होंने सलाह दी कि खण्डनी की रक़म तुरन्त भेज दी जाय। उसका वज़ीर मादण्णापन्त सम्भाजी से बातचीत करने गोलकुण्डा से मराठा छावनी में आया।

सम्भाजी ने उससे भेंट की तथा उसे सम्मान-वस्त्र देकर सम्मानित किया। इसके बाद दो हज़ार होनों से भरे तबक़ गोलकुण्डा के क़िले से मराठों की छावनी में भेज दिये गये। भागानगर में डच व्यापारियों की कई माल-कोठियाँ थीं। वे भी इतने घबरा गये थे कि उन्होंने एक हज़ार फ्लोरिन्स बिना माँगे ही मराठा-छावनी में पहुँचा दिये। सारी रक़म जमा होने के बाद सम्भाजी ने अपनी फ़ौज का रुख़ फिर दुबारा बीजापुर के आदिलशाह की ओर फेर लिया। परन्तु गुप्तचरों ने समाचार दिया कि पठान बहलोल ख़ाँ एक बड़ी फ़ौज लेकर आगे बढ़ा आ रहा है।

सम्भाजी ने उससे आमने-सामने भिड़ना उचित न समझकर उसकी सेना को चकमा देकर आदिलशाही राज्य के समृद्ध व्यापारी नगर हुबली की मण्डी लूट ली। इसके बाद रायबाग की छावनी जीतकर युवराज की सेना, लूट के माल को थैलों में मुहरबन्द करके पन्हाला दुर्ग की ओर वापस लौट पड़ी।

युवराज अपनी विजयी सेनासहित पन्हालगढ़ चढ़ने लगे। स्वागत में नौबत-नगाड़े बज रहे थे। पन्हालगढ़ में आते ही सम्भाजी ने लूट की सामग्री को सशस्त्र सैनिकों के पहरे में रायगढ़ की ओर रवाना कर दिया। इसके साथ ही महारानी सोयराबाई को प्रथा के अनुसार ख़लीता भी भेजा। फिर पन्हाला में उन्होंने आहतों के सम्मान में दरबार का आयोजन किया और मुहिम में शूरता दिखलाने वाले वीरों को कड़े, वस्त्र तथा अस्त्रादि देकर विशेष रूप से सम्मानित किया।

महाराज इस समय फोंडा की मुहिम पर गये हुए थे। उन्हें सम्भाजी ने सविस्तार ख़लीता भेजा : 'महाराज साहब ने जो मुहिम हमें सौंपी थी, उसमें विजय प्राप्त करके हम पन्हालगढ़ आ पहुँचे हैं। आपके चरणों के दर्शनों की कामना है।'

पन्हालगढ़ के उपरिकोट के राजसभागृह में युवराज सम्भाजी लिपिक परशुरामपन्त को राजकीय पत्रों के विषय, सिरनामे आदि लिखवा रहे थे। आनन्दराव निकट खड़े थे।

इतने में क़िलेदार त्र्यम्बकपन्त ने आकर सूचना दी, "युवराज, करे के पठारों में एक चाँबली गाँव है। वहाँ के इनामदार आये हैं। निलाजी, शंकराजी, विसाजी और त्रिम्बकजी नाम हैं उनके। चारों भाई आपसे मिलना चाहते हैं।"

"पन्त, आने दो उन्हें," सम्भाजी ने अनुमति दी।

चाँबली गाँव के वे चार इनामदार भाई भीतर आये और मुजरे करके एक पंक्ति में खड़े हो गये।

सम्भाजी ने पूछा, "कहो, चाँबलीकर, कैसे आना हुआ?"

"हम एक मामले में आपसे न्याय पाने आये हैं रायगढ़ से," ज्येष्ठ भाई निलाजी ने कहा।

"कैसा मामला? क्या हुआ है? कहो।" सम्भाजी ने चारों की पगड़ियों पर नज़र फिराते हुए पूछा।

https://t.me/Sahityajunction

“श्रीमान् महाराज जी ने पैतृक सम्पत्ति के हक़दारों पर तथा मिरासदारों पर ही सिंहासन का कर लगाया है। इनामदारों को इस कर से मुक्त रखा गया है। फिर भी पुणे के हवलदार राघो भास्कर ने हम पर सिंहासन का कर लगाया है। वह भी थोड़ा नहीं, पूरा पच्चीस प्रतिशत! हम इनामदार-माफ़ीदार हैं, हमें सिंहासन के कर से छूट मिली हुई है—यह बताने पर भी वह मानता नहीं है। हमें धमकाता है। युवराज, आपको यह संकट दूर करना होगा—हमें न्याय दिलाना होगा।”

“तुम इनामदार हो, इस बात का कोई लिखित सबूत है क्या तुम्हारे पास?”

निलाजी आगे बढ़ा और अपनी इनाम की भूमि के राजपत्र की थैली उसने सम्भाजी के पैरों पर रख दी।

सम्भाजी ने राजपत्र को पढ़ा और चाँबलीकर भाइयों से बोले, “ठीक है, तुम निश्शंक रहो। तुम्हें सिंहासन-कर से छूट मिलेगी...आनन्दराव, पुणे प्रान्त का सूबेदार कौन है?” सम्भाजी ने पूछा।

“जी, राघो बल्लाल अत्रे।” आनन्दराव ने झुककर उत्तर दिया।

“परशुरामपन्त, लिखो, जो हम लिखाते हैं।” छाती की कौड़ियों की माला पर हाथ फिराते-फिराते सम्भाजी राजपत्र लिखाने लगे। चाँबलीकर भाई, त्र्यम्बकपन्त और आनन्दराव सुनने लगे। परशुरामपन्त के हाथ की शुतुरमुर्ग़ के पंख से बनी क़लम दौड़ने लगी :

“मशरुल अनाम राघो बल्लाल, सूबेदार-पुणे प्रान्त के प्रति युवराज सम्भाजी का दण्डवत्—आगे विशेष यह कि...

“पुणे के निकट एक इनाम की ज़मीन है। उस पर राघो भास्कर हवलदार ने पच्चीस होन कर लगाया है, ऐसा हमें ज्ञात हुआ है। सिंहासन का जो कर लगाया गया है—उसमें इनामदार लोगों को छूट दी गयी है। जब महल की ओर से ही उन्हें छूट मिली है, तो उनसे कर की रक़म माँगना किसलिए?

“इसलिए तुम राघो भास्कर को लिखो कि उनके मार्ग में बाधा न पैदा करे। श्रीमन् निलाजी को महल ने कर-मुक्त रखा है, इस विषय में उसे बताओ और फिर कभी उनसे ऐसा व्यवहार न हो, इस बारे में फिर कोई शिकायत नहीं आये, ऐसी व्यवस्था करो। अधिक क्या लिखें! तुम सब जानते हो।”

परशुरामपन्त ने उपर्युक्त आशय का एक पत्र राघो भास्कर को भी लिखा। सम्भाजी ने दोनों पत्रों पर हस्ताक्षर किये। त्र्यम्बकपन्त ने वह काग़ज़ों का गोल पुलिन्दा निलाजी के हाथ में दे दिया।

“चाँबलीकर भाइयो, ये दोनों पत्र रायगढ़ जाकर पेशवा मोरोपन्त को दो और उस पर उनका सिक्का लगवा लो। फिर तुम स्वयं जाकर यह पत्र सूबेदार राघो बल्लाल को देना।” सम्भाजी ने निलाजी को सूचना दी।

“जी हुज़ूर, बहुत उपकार हुए आपके।” चारों भाई कमर तक झुककर कहने लगे।

“नहीं, नहीं, उपकार कैसा? यह तो हमारा कर्त्तव्य है,” सम्भाजी ने निलाजी के वाक्य को सुधारते हुए कहा। चाँबलीकर सन्तुष्ट होकर राजसभागृह से बाहर चले गये।

https://t.me/Sahityajunction

फोंडा से महाराज का ख़लीता आया :

'तुरन्त अपनी सेनासहित फोंडा पहुँचो। क़िलेदार त्र्यम्बकपन्त को भी साथ ले आना।'

सम्भाजी की सेना के सैनिक अब विश्राम-आराम के बाद उत्साही और प्रसन्नचित्त थे। सम्भाजी ने समस्त सेना को फिर से एकत्र किया और त्र्यम्बकपन्त के साथ तीन दरवाज़े के मार्ग से वे पन्हालगढ़ उतरने लगे। सेना कोंकण[1] के लम्बे भूप्रदेश की ओर बढ़ रही थी। राजापुर, खारे पाटण, कणकवली, कुडाल आदि नगरों से गुज़रती हुई उनकी सेना फोंडा के नगरद्वार तक आ पहुँची। आगमन की सूचना महाराज को पहले ही भेज दी गयी थी।

अण्णाजी, दत्ताजी, धर्माजी नागनाथ आदि सरदारों-सचिवों सहित महाराज फोंडा के ऊँचे पर्वतीय दुर्ग से उतरकर सम्भाजी के स्वागत के लिए कीलबन्द दरवाज़े तक आये। उनका ध्यान गया—सम्भाजी ने ऐन गर्मी में दूर की दौड़ लगायी है; इसलिए उनका मुख गेहुआँ दिखाई दे रहा है।

महाराज को स्वयं नीचे आया देखकर सम्भाजी नमस्कार करने लपककर आगे आये, परन्तु महाराज ने उन्हें झुकने नहीं दिया, सीधा आलिंगन में भर लिया। फिर बोले, "तुम्हें किसी विशेष प्रयोजन से बुला भेजा है, चलो, शान्ति से, सावधानी से बातें करेंगे।" दोनों क़िले के भीतर गये।

महाराज ने अत्यन्त चतुराई दिखलाकर आदिलशाही राज्य के क़िले, फोंडा को, क़िलेदार मुहम्मद इख़लास से जीत लिया था। निकटवर्ती गोवा प्रदेश के पुर्तगाली शासक इस विजय से घबरा उठे थे। यह विचित्र था कि पुर्तगाली अब कुछ विशेष गतिविधियाँ करेंगे, क्योंकि फोंडा का मराठों के क़ब्ज़े में रहना उनके लिए खतरे से खाली नहीं था।

विश्राम के बाद बैठक में बैठे हुए महाराज सम्भाजी को अपनी योजना समझा रहे थे, "हमने कारवार प्रान्त पर आक्रमण करने की योजना बनायी है। तुम अपनी उत्साही और तरोताज़ा सेना के साथ इस मुहिम को अपने हाथ में लो। पुर्तगाली इस फोंडा के गढ़ पर आँख गड़ाये हैं। इसलिए तुम्हें उनको दबाकर रखने के लिए उनके प्रदेश में भी दूर तक झपट्टा मारना होगा।"

"जो आज्ञा!" सम्भाजी का हृदय अभिमान से भर उठा था कि महाराज ने उन्हें दूसरी मुहिम की ज़िम्मेदारी सौंपी है। "आप इस बारे में लेशमात्र चिन्ता न करें। हम इस कार्य में पूरे उत्साह और चातुर्य के साथ जुटे रहेंगे।" सम्भाजी ने महाराज को विश्वास दिलाते हुए कहा।

महाराज ने मुहिम सम्भाजी को सौंपी। त्र्यम्बकपन्त को फोंडा का क़िलेदार नियुक्त किया और वे फोंडा से चले गये। इस बार उनके आक्रमण का लक्ष्य था—अंकोला, शिवेश्वर, काद्रा कारवार आदि आदिलशाही के प्रदेश की लूटमार।

युवराज सम्भाजी ने गोवा के पुर्तगाली वायसराय लुईस द मेंदोस ई अल्बुकर्की को धमकी भरा ख़लीता भेजा : 'फोंडा प्रान्त से लगे हेमाडबासे, अंत्रुज, बाली, काणकोण, अष्टागार, चन्द्रवाडी, कोपे, सांगे आदि साठ गाँव तुरन्त खाली कर दो, नहीं तो मराठा सेना पुर्तगाली फिरंगी प्रदेश में घुस जाएगी।'

पुर्तगाली वायसराय ने जब इस ख़लीते की ओर ध्यान नहीं दिया, तो त्र्यम्बकपन्त, धर्माजी नागनाथ, आनन्दराव आदि के साथ सम्भाजी घुड़सवार सेना लेकर फोंडा के बाहर आये और अंत्रुज के रास्ते वे फिरंगी-पुर्तगाली प्रदेश में घुस दौड़े। सब ओर लूटपाट मच गयी।

https://t.me/Sahityajunction

पुर्तगाली वायसराय इस बात का अनुमान लगाये बैठा था। उसने अपने प्रदेश की सम्पूर्ण सुरक्षा-व्यवस्था कुशलता से की हुई थी। हर चौकी और छावनी में कड़ा मुक़ाबला हो रहा था। इसी समय वर्षा-ऋतु भी शुरू हो गयी। अतः सम्भाजी ने फ़ौजें पीछे हटा लेने का निर्णय किया और वे सेनासहित फोंडा के दुर्ग में लौट आये। वहाँ वे महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर महाराज आदिलशाही राज्य में मारकाट मचाकर रायगढ़ लौट आये थे। वहाँ से उन्होंने सन्देश भेजा : 'धर्माजी नागनाथ को फोंडा का क़िलेदार नियुक्त किया गया है। तुम त्र्यम्बक पण्डित को पन्हाला भेज दो और यहाँ के क़िले की रचना सुदृढ़ करने को कहकर तुम सीधे रायगढ़ आ जाओ। बरसात शुरू हो चुकी है।'

महाराज की दी हुई आज्ञाओं का पालन करते हुए सम्भाजी ने धर्माजी नागनाथ से विदाई ली। बरसात की झड़ियों में भीगते हुए वे रायगढ़ की ओर घुड़-दौड़ लगा रहे थे—पूरे ढाई महीने बाद वे रायगढ़ लौट रहे थे। इस वापसी के रास्ते में भी सम्भाजी ने अपनी टुकड़ियों के साथ अंकोला और सरूप नाईक के प्रदेश में जाते-जाते दो-चार झपट्टे लगाये।

येसूबाई के महल में पलँग पर ही शतरंज बिछी हुई थी। सम्भाजी काले मुहरे लेकर खेल रहे थे और येसूबाई के मुहरे सफ़ेद रंग के थे।

खेल ज़ोरों पर था। कई चालें चली जा चुकी थीं और अब खेल ख़त्म होने को था। येसूबाई ने अपनी चतुर चालों से सम्भाजी के काले राजा को घेर लिया था। धाराऊ बेचारी इस खेल को क्या समझे! वह दीवार से सटकर खड़ी थी।

काफी देर तक सोचकर येसूबाई ने अपने वज़ीर के ज़ोर पर एक प्यादा सम्भाजी के राजा के पास सरका दिया। 'श्रीमान् जी का राजा अब चारों ओर से घिर गया है। हिल ही नहीं सकता!' इस विचार के आते ही येसूबाई ने अपनी नथ को थोड़ा ठीक कर लिया। सम्भाजी घुटने पर कुहनी रखे सोच में डूब थे—राजा को इस शह से बचाने का क्या रास्ता है? पर रास्ता कोई था ही नहीं।

"हार हुई हमारी। मान ली हार हमने।" हँसते हुए सम्भाजी ने अपने मुहरों को उलट दिया और पुखराज-जड़ी अपनी अँगूठी उतारकर बिसात पर रख दी।

"आबासाहब ने मुद्रा-कटार तुम्हें क्यों सौंपी है, यह हम आज जान पाये।" मुस्कराकर सम्भाजी बोले।

महल में काफी देर तक शान्ति रही। महादेवपन्त के वचनों से यह शान्ति भंग हुई। महादेवपन्त येसूबाई को मुजरा करके कहने लगे, "रानी सरकार, क्षमा करें! मुजूमदार रामचन्द्रपन्त का सन्देशा है कि महारानी के आदेश के बिना भूषणागार की मुहर नहीं तोड़ी जा सकती। मैंने आपकी दी हुई गहनों की सूची महारानी जी की सेवा में पेश कर दी है।"

नागपंचमी का त्यौहार नज़दीक था। इस कारण येसूबाई ने आवश्यक गहनों की सूची बनाकर महादेवपन्त के हाथ भूषणागार को भेजी थी।

सम्भाजी जालीदार झरोखे से बाहर की ओर देख रहे थे। बात सुनते ही झटके से मुड़े और

https://t.me/Sahityajunction

येसूबाई के पास आये, “तुमने गहनों की सूची भेजी थी?” उनकी आवाज़ कठोर हो गयी थी।

येसूबाई को कुछ अनुमान न था कि ऐसा कुछ होगा। पैरों की ओर देखकर उन्होंने सिर हिलाकर ‘हाँ’ जतायी।

“ऐसा नहीं करना चाहिए था तुम्हें।” सम्भाजी गहरे सोच में डूब गये।

“ठीक है। महादेवपन्त, बड़ी माँ जी को कहो, हम मिलने आ रहे हैं।” युवराज ने अपने राज्य कर्मचारी को आज्ञा दी। महादेवपन्त चले गये।

सोयराबाई के महल में प्रवेश करते ही सम्भाजी ने उन्हें तीन बार मुजरा किया। बालक राजाराम उनके निकट खड़ा था। वह दौड़ता हुआ सम्भाजी के पास आया, परन्तु सोयराबाई पीठ फेरकर खड़ी हो गयीं।

“माँ जी, हमारे महल से त्यौहार के आभूषणों की सूची आपके पास आयी है....”

“युवराज, यह मत भूलो कि तुम युवराज हो, तो हम महारानी हैं। हमारे राजकार्य में हस्तक्षेप करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।” पैरों पर अलते की बेलबूटों वाली महारानी जी बोलीं।

“जी। आप महारानी अवश्य हैं, परन्तु उससे भी बढ़कर आप हमारी माँ हैं। इसलिए हमारी प्रार्थना सुनें।”

“आज नाते-रिश्ते की याद युवराज को फुरसत से आयी दिखाई देती है। जिनका हाथ पकड़े तुम खड़े हो, वे बालराजा तुम्हारे भाई हैं, यह रिश्ता तुम अपने अभिषेक और मौंजीबन्धन के समय बड़ी आसानी से भूल गये थे। तब तुम्हें याद न आयी भाई की?” सोयराबाई की नासिका का अग्र भाग लाल हो उठा—नथ चुभने लगी। कमरपट्टा कसता हुआ प्रतीत हुआ। वे आगे कहने लगीं, “कुनबी लोगों को गहनों से क्या लगाव, ऐसी अकड़ दिखानेवाले तुम, भला आज कुनबी के समान गहने माँगने कैसे चले आये?”

“माँ जी,” सम्भाजी की डपटती हुई आवाज़ से बालक राजाराम चौंक गया। उसे धैर्य देने के लिए सम्भाजी उसकी पीठ थपथपाते हुए थोड़ी देर ठहरे। फिर कहने लगे, “हम कुनबी हैं, हाँ, हम कुनबी हैं। माँ साहिबा ने हमें बताया है यह। हमारे परदादा हल जोता करते थे—आप भी ठीक से याद रखें यह। परन्तु हम आज आपसे गहनों की भीख माँगने नहीं आये हैं—हम वह सूची वापस माँगने आये हैं।”

सोयराबाई फिर एक बार पराजित हुईं—चकमा खा गयीं। पर इससे क्या हुआ, आख़िर वे थीं तो सोयराबाई ही, बोलीं, “सूची वापस देना या न देना हमारे अधिकार की बात है।”

“ठीक है, जैसी आज्ञा,” कहते हुए सम्भाजी ने उन्हें मुजरा किया और राजाराम का हाथ अपने हाथ में लेकर वे प्यार से बोले, “चलो!”

“बालराजा, पीछे लौटो,” ज़री के बेल-बूटों से लिपटी महारानी जी गुर्रायीं। सम्भाजी के हाथों से एकदम झटके-से राजाराम का हाथ छूट गया। अब तक जो भी कहा-सुनी हुई थी, उसमें से सोयराबाई का यह आख़िरी वार सम्भाजी के हृदय को चीर गया। मन में अकस्मात् जिजाऊ के वचन गूँजने लगे, ‘यदि उन्होंने विनम्रता छोड़ी तो भी तुम्हें सहनशीलता नहीं छोड़नी चाहिए!’

https://t.me/Sahityajunction

लेख पूरा हो गया था। अपने लिखे उस लेख की ओर देखकर सम्भाजी के मुख पर निराला तेज झलक रहा था। उन्होंने क़लम धीरे से क़लमदान में रखी। स्याही सोखने के लिए चुटकी-भर मुलायम बालू उस पर छिड़की और फिर हल्की-सी थपकी मारकर बालू को झटक दिया।

"धाराऊ, ज़रा हमारी रानी जी को बुला लाओगी क्या?" अपनी ही धुन में खोये हुए सम्भाजी ने कहा।

धाराऊ मन्द मुस्कराती हुई, आँचल सँवारती हुई बाहर चली गयी।

थोड़ी देर में येसूबाई महल में आयीं। सम्भाजी उनकी ओर देखते हुए हँसते हुए कहने लगे, "भला पूछो तो हमने तुम्हें क्यों बुलाया होगा?"

येसूबाई के मन में अभी तक आभूषणों की सूचीवाली भूल का भय समाया हुआ था, परन्तु अब यहाँ अपने श्रीमान् जी को हँसते हुए देखकर वे उलझन में पड़ गयीं।

"नहीं पता चला ना? तो सुनो। हमने एक काव्य की रचना की है।" काग़ज़ की ओर देखते हुए उनकी आँखों में अभिमान झाँक उठा। येसूबाई के मन का संशय दूर हो गया था—उसका स्थान अब अभिमान, कुतूहल, सराहना आदि भावों ने ले लिया था।

"पढ़ें क्या वह कविता?"

आँचल के पीछे से येसूबाई का मुख स्वीकारार्थक थोड़ा-सा हिला। सम्भाजी पढ़ने लगे। वह हिन्दी भाषा की एक काव्य-रचना थी, जिसमें नारी का नख से लेकर शिखा तक का वर्णन था—नखशिख वर्णन।

हैरान और परेशान येसूबाई वह वर्णन सुनती जा रही थीं और बार-बार चौंककर दरवाज़े की ओर भी देखती जाती थीं—कहीं कोई महल में न आ जाय।

सम्भाजी का कविता पाठ पूर्ण हुआ। पूछा, "कहो, पसन्द आयी क्या कविता?"

लाज की मूरत बनी, संकोच की मारी येसूबाई चुप खड़ी थीं—क्या उत्तर देतीं!

अकस्मात् सम्भाजी के ध्यान में आया कि येसूबाई को कुछ भ्रम हो गया है। इसलिए उनकी व्याकुलता को और बढ़ाते हुए वे बोले, "भला तुम्हें क्यों पसन्द आएगा यह वर्णन? यह तुम्हारा वर्णन थोड़े ही है।"

"मैं जाऊँ क्या?" येसूबाई अब खड़ी भी नहीं रह सकती थीं।

"अच्छा, जाओ," युवराज के मुख पर हँसी झलक रही थी। मूँछों की सुन्दर रेखा में एक निराला तनाव-सा आ गया।

येसूबाई जाने को उद्यत थीं कि उनकी ज़रतारी बेलबूटों वाली साड़ी के बेलबूटों की ओर देखते हुए सम्भाजी ने अन्ततः काव्य का आशय स्पष्ट किया :

"जाते हुए सुन जाओ। यह नखशिख वर्णन है राधा का : गोकुल के कन्हैया के प्रेम में मतवाली राधा का। हमें भरोसा है कि तुम्हें भी राधा ऐसी ही ज्योत्स्ना-लता के समान दिखाई देती होगी, तलवार की धार जैसी।" सम्भाजी खिलखिलाकर हँसने लगे।

सुनकर येसूबाई के पाँव गड़बड़ा गये—जाते-जाते वे ठिठक गयीं। उनके मन में आया कि कह दें—'पहले ही क्यों नहीं बताया यह सब?'

https://t.me/Sahityajunction

रायाजी और अन्तोजी के साथ सम्भाजी उपरिकोट से बाहर निकले थे, जगदीश्वर के दर्शनों के लिए। श्रावण मास में प्रातःकाल जगदीश्वर के दर्शनार्थ जाने की यह प्रथा वर्षों से चली आ रही थी।

प्रभातकाल के धूसर प्रकाश में रायगढ़ ऐसा दिखाई देता था—जैसे कोई स्वप्ननगरी हो। वृक्षों-झुरमुटों में पक्षीगण किसी अज्ञात को पुकार रहे थे—पंख, फड़फड़ाते उड़े जा रहे थे। रायगढ़ के चारों ओर दूर-दूर तक पर्वतों की लम्बी शृंखला एक काली रेखा के समान फैली हुई थी।

जगदीश्वर मन्दिर के प्रांगण में आते ही सम्भाजी मन्दिर की चौखट पर झुके। उनकी कौड़ियों की माला मुख के सामने झूल आयी। अचानक ही उनके मन में अपनी माँ साहिबा की स्मृति जाग उठी—'हम राजगढ़ छोड़कर जब यहाँ आये थे, तब माँ साहिबा थीं। उनके साथ ही हमने इस मन्दिर की देहली पार की थी। आज शेष ज्यों-का-त्यों है, केवल वे ही नहीं हैं। परन्तु नहीं। वे यहाँ हैं क्यों नहीं! सूर्य यदि पर्वत के पीछे हो, तो भी उसका प्रकाश तो सर्वत्र छाया ही रहता है ना।'

विचारों में डूबे हुए सम्भाजी आँगन के कछुए की मूर्ति तक आये। कछुआ भूमि में अपने समेटे हुए पैरों की पकड़ द्वारा मानो कह रहा था—'मन्दिर में आने वाले ऐ भक्त, जैसे मैंने अपने पैर समेट रखे हैं, इसी प्रकार तू भी भगवान के मन्दिर में आते समय अपने मनोविकारों को समेट ले। तुझे यही सन्देश देने के निमित्त ही मेरी रचना की गयी है।' आज इस कछुए के दर्शनों से ही सम्भाजी का हृदय निर्मल हो गया। मन्दिर में जाकर उन्होंने घण्टे को टंकोर दी। वे मन्दिर के गर्भगृह में गये, शिवलिंग पर दृष्टि गड़ाये कुछ बेलफूल अर्पण करने के लिए वे धीरे-धीरे चल रहे थे कि अकस्मात् पिण्डी उनकी आँखों से ओझल-सी हो गयी और नज़र जा पड़ी एक सुहागिन नारी की ओर। मन्दिर के गर्भगृह में प्रातःकालीन पूजा समाप्त करके एक हाथ में पूजा की थाली, दूसरे में चँगेरी थामे, शुभ्रवस्त्रधारी, सत्वरूपा वह सुवासिनी बाहर आ रही थी। मानो श्रावण मास की उषा पर्वत शिखर के पीछे से उदित हो रही हो। महाराज की पूजा का स्फटिकमय शिवलिंग ही मानों राधा का स्वच्छ-निर्मल रूप धारण कर उस देवालय से बाहर निकल रहा हो। ओह! नखशिखा! साक्षात् नख से शिखा तक सौन्दर्य की मूरत। उसे देखते ही सम्भाजी का हाथ कपर्दिकमाला पर गया। होठों से शब्द निकले—"जगदम्बे! जगदम्बे!"

उस स्त्री के मस्तक पर कुंकुम का बड़ा तिलक था, दोनों हाथ सुहाग की चूड़ियों से भरे थे, गले में काले मणियों का पावन मंगलसूत्र था, गले में टीक तथा सुवर्णमणियों की माला, पाँवों की उँगलियों में चाँदी के अनवट और बिछुवे पहनी हुई उस नारी ने ज्योंही सम्भाजी के मस्तक के बड़े शिवतिलक तथा ज़रदोज़ी से चमचमाते राजटोप को भीतर आते देखा, त्योंही वह दृष्टि भूमि पर टिकाये झटपट गर्भगृह से बाहर चली गयी। जैसे प्रातःकालीन मन्द शीतल पवन का एक झोंका निकल जाय—। पलक झपकते ही वह ज्योत्स्ना-लता आँखों से ओझल हो गयी। केवल सम्भाजी का कवि-मन गाता रहा।—'नखशिखा! नख से शिखा तक साक्षात् सौन्दर्य की मूर्ति।'

उस स्त्री के प्रत्येक पग के साथ सम्भाजी की दृष्टि दौड़ी जा रही थी। वे जगदीश्वर की ओर पीठ फेरकर सूनी दृष्टि से उसी दिशा में देखे जा रहे थे, जिधर वह स्त्री गयी थी। हृदय के भीतर ज्वार उमड़ रहा था—'नखशिखा साक्षात् नखशिखा! यहाँ? रूप धारण कर, सजीव बनकर, यहाँ रायगढ़ में?'

https://t.me/Sahityajunction

रायाजी और अन्तोजी हक्के-बक्के होकर आँखें फैलाये सम्भाजी के इस निराले अभूतपूर्व रूप को आज देख रहे थे। हड़बड़ाये हुए—असमंजस में डूबे वे इस नये रूप को बस देखे ही जाते थे।

उस स्त्री ने ठीक वही रूप, वही लुभावना सौन्दर्य पाया था, जो कवि सम्भाजी ने अपने 'नखशिख-वर्णन' में राधा के विषय में वर्णित किया था। यह स्त्री सुरनीस (पन्तसचिव) अण्णाजी की रिश्तेदार थी—यहाँ रायगढ़ में अपने मायके के रिश्तेदारों के घर कुछ दिन रहने को आयी थी। उसके रूप तथा संस्कार के अनुरूप ही उसका सुन्दर नाम भी था—गोदावरी।

महारानी सोयराबाई ने श्रावण मास के शुक्रवार को क़िले की सुवासिनी स्त्रियों को हल्दी-कुंकुम का निमन्त्रण दिया था। स्त्रियाँ हल्दी-कुंकुम लेकर एक-एक करके उनके महल में से बाहर निकल रही थीं। इन्हीं स्त्रियों में ब्राह्मण बस्ती की वह सुहागिन भी थी।

सब स्त्रियाँ सातमहल के सामने चबूतरे को लाँघकर सामने के खुले आँगन में आयीं। इसी समय सम्भाजी मीनार की पाँचवीं मंज़िल पर खड़े हुए थे। सामने के गंगासागर के जल में जो धूप-छाँव का खेल चल रहा था, उसे देखने में सम्भाजी का कवि-मन तल्लीन था। मीनार के ऊपर से आस-पास के विस्तृत भाग की ओर दृष्टि घुमाते हुए जब वे देख रहे थे, तो आँगन में एकत्रित स्त्रियों के समूह में उन्हें गोदावरी दिखाई दी। उनकी नज़र उस आँगन में ही ठहर गयी। उनके रसिक हृदय का गंगासागर विक्षुब्ध हो गया। लहरों पर लहरें उठने लगीं। 'आ नखशिख सुन्दरी। कौन है यह? कौन-सा गाँव है इसका? यहाँ दुर्ग में क्योंकर आयी है?' अगले ही क्षण वे दौड़ते हुए मीनार की गोल पेंचदार सीढ़ियाँ उतरने लगे। हर मंज़िल पर प्रहरी मुजरे कर रहे थे। पहली मंज़िल पर आकर सम्भाजी ने देखा, तो आँगन में कोई नहीं था। चारों ओर के महल और हवेलियों के पहरेदारों ने जब एकदम युवराज को ही आते देखा, तो भाले सीधे तानकर वे सावधान बनकर खड़े हो गये।

कहीं से स्त्रियों की कण्ठध्वनि आ रही थी। समर्थगुरु ने महाराज को मारुति की एक मूर्ति दी थी। महाराज ने उपरिकोट में ही एक छोटा-सा गोल शिखरवाला मन्दिर बनवाकर उसमें उस मारुति की मूर्ति की स्थापना की थी। सारी स्त्रियाँ इसी मन्दिर में गयी थीं। सम्भाजी आँगन के बीच की छोटी-सी नहर में तैर रही मछलियों का खेल देख रहे थे। स्त्रियाँ एक-एक करके मन्दिर से बाहर आ रही थीं। गोदावरी भी बाहर आयी। सम्भाजी उससे बात करना चाहते थे—कुछ पूछना चाहते थे। परन्तु यह व्यवहार कैसे सम्भव था, निर्धारित नियम—प्रथाओं के अनुरूप नहीं था वह।

वे मन्दिर की दिशा में लपके। उन्हें देखकर सब स्त्रियाँ संकोचवश एक ओर हो गयीं।

सम्भाजी ने मन्दिर की सीढ़ी को स्पर्श किया और वे सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते ही रुक गये। उनका मुख अब गोदावरी की ओर था। स्त्रियाँ गर्दन नीचे झुकाये खड़ी थीं।

"कौन हो तुम? यहाँ कैसे आयी हो?" सम्भाजी ने गोदावरी से पूछा। पानी पीते समय गौ की ग्रीवा जैसे नीचे झुकी रहती है, तद्वत् गोदावरी ग्रीवा झुकाये खड़ी थी। किसी स्त्री ने उसे कुहनी से टहोका मारा। घबराकर गोदावरी ने सिर ऊपर उठाया, परन्तु सम्भाजी की चमकती आँखों से

https://t.me/Sahityajunction

आँखें चार होते ही उसका सिर फिर नीचे झुक गया।

सम्भाजी ने अपनी कुलीन मर्यादा को भंग न करते हुए फिर पूछा, "कौन हो तुम? यहाँ कैसे आयी हो?"

"जी, हम सुरनीस जी के घर में रहती हैं। गोदावरी नाम है। यहाँ मायके के रिश्तेदारों से मिलने आयी हैं।" गोदावरी ने धड़कते दिल से उत्तर दिया। वह ज्योत्स्ना-लता नख से शिखा तक थरथरा उठी थी।

सम्भाजी हँसते हुए आगे बढ़कर मन्दिर के अन्दर चले गये और सबकी दृष्टि से ओझल हो गये। गोदावरी की आँखों के आगे से जैसे श्वेत कबूतरों का झुण्ड उड़ गया था। वह स्त्री-समूह धीरे-धीरे फुसफुसाकर बातें करते उपरिकोट से बाहर निकल गया। उनके बीच आश्चर्य का विषय यही था—युवराज ने केवल गोदावरी से ही पूछताछ क्यों की? वैसे स्त्रियों की चर्चा में अनुचित—आक्षेपजनक कुछ नहीं था, फिर भी गोदावरी सबके पीछे पैर घसीटते हुए चली जा रही थी।

परन्तु उसे क्या पता था—उसे ही क्यों, मारुति का दर्शन पाने गये सम्भाजी को भी पता न था कि अपने महल की अटारी पर से महारानी सोयराबाई इस घटना को देख रही थीं। अत्यन्त शान्तभाव से अपने महल में जाते समय आँचल को ठीक-ठाक करते हुए उन्होंने स्वयं अपने से ही अवश्य कहा होगा—'तो हमारे युवराज यह पराक्रम भी दिखा सकते हैं!'

दरबार समाप्त होते ही सम्भाजी अपने महल में आये। उन्होंने टोप उतारकर तबक़ में रखा। काले-घने और घुँघराले उनके बालों का जाल गले के चारों ओर फैल गया। पलँग के पास येसूबाई खड़ी थीं। अपने मन की कोई बात कहने के उद्देश्य से वे दरबार समाप्त होने का समय देखकर ही यहाँ आ गयी थीं।

"तुम? इस समय यहाँ कैसे?"

"हम कुछ कहने आयी हैं।" येसूबाई प्यार-भरे शब्दों को ही जैसे हाथ बनाकर सम्भाजी की पीठ धीरे-धीरे सहला रही थीं।

"तो कहो!"

"हमारे कारण आपको कष्ट हुआ। बड़ी माँजी ने राजाराम को आपके महल में आने को मना कर दिया है, ऐसा हमने सुना है। यह सब हमारे कारण हुआ है। हम लज्जित हैं।"

सम्भाजी गम्भीर हो गये। हाथ पीठ पर बाँधे वे टहलने लगे। "इसमें तुम्हारी कोई भूल नहीं है। हमारे मन की दुखती रग को कोई उँगली से दबाये तो हम अपने को सँभाल नहीं पाते। हम दिल की बात साफ-साफ कह बैठते हैं। माँजी हमारे मर्मस्थल को कचोटने का काम जानबूझकर करती हैं या अनजाने में, यह हमें नहीं मालूम। ख़ैर, जाने दो। तुम इन बातों पर विचार मत किया करो।" सम्भाजी टहलना छोड़कर येसूबाई को निहारने लगे।

येसूबाई का सौन्दर्य क्या था—मानो अष्टमी की चन्द्रकला को हल्दी-रोली की डलिया में डुबाकर सामने खड़ा कर दिया गया हो। वे नीबू के रंग की ज़रतारी बेलबूटोंवाली रेशमी साड़ी पहने थीं, वैसा ही लुभावना था उनका केतकी-सा गौर वर्ण, मोतीवाली नथ पहने, माथे पर बड़ी

https://t.me/Sahityajunction

कुंकुम की रेखाओं से अंकित और आँचल से ढँका मुखमण्डल आज सम्भाजी को अधिक लुभावना लग रहा था।

सम्भाजी को अकस्मात् अँग्रेज़ों के गोरे दूत की स्मृति हो आयी, "आज दरबार में अँग्रेज़ों का वकील आया था।"

"हाँ, हमने भी सुना है। सुना है कि वे लोग हमारे जैसे दिखाई नहीं देते। भला कैसा दीखता था वह गोरा साहब?" येसूबाई ने बड़े भोलेपन से पूछा।

"गोरा साहब और कैसा दिखाई देगा। गोरा था।" सम्भाजी ने उन्हें शब्दों की गुत्थी में उलझा दिया।

उत्तर सुनकर येसूबाई ने पलकें तेज़ी से झपकाते हुए कृत्रिम क्रोध से एक बार सम्भाजी की ओर देखा और वे बिना कुछ बोले महल से बाहर जाने लगीं—पीछे से सम्भाजी ने ज़ोर से पुकारकर कहा, "साहब दिखाई देता है चूने की भट्ठी से निकाले हुए जैसा। पर जो लोग स्वयं सोने की खान से साँचे में ढलकर पैदा हुए हैं, उन्हें उस साहब के रंग-रूप की पूछताछ करने की भला क्या आवश्यकता है?"

अब महारानी जी ने उल्टी-अजीब चालें चलनी शुरू कर दीं। परन्तु उनकी हर चाल सारे राजघराने को उलझनों की खाई में ढकेलती जा रही है, इसे वे नहीं जानती थीं। वे तीज-त्यौहार तथा धार्मिक विधियों के बहाने गोदावरी को निमन्त्रण भेजने लगीं। महारानी जी के निमन्त्रण को अस्वीकार करना गोदावरी के लिए भी सम्भव न था। सोयराबाई के नौकर-चाकर और दास-दासियाँ गोदावरी के हर व्यवहार पर कड़ी नज़र रखते थे। एक 'स्त्री-मन' कोई मनसूबा बना रहा था।

सम्भाजी का स्वभाव सरल और कुछ अनगढ़-सा था। वे कभी-कभी गोदावरी से बात कर लेते थे। इस बातचीत में लुका-छिपी वाली कोई बात नहीं थी। चलते हुए हाथी को कुत्ते के भौंकने की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, यह सत्य है, परन्तु यह भी उतना ही कठोर सत्य है कि उसे ध्यान रखना चाहिए कि कहीं पैर के नीचे चींटियों का बिल न आ जाय अन्यथा क्रोधित होकर दो-चार चींटियाँ यदि उसकी सूँड के रास्ते होकर कानों या मर्मस्थानों में घुस जाएँ, तो प्राणों को व्याकुल बना देती हैं। दाँव-पेंचों से सम्भाजी कोसों दूर थे—वे उपर्युक्त सत्य से अनजान थे। मनुष्य श्रेष्ठ हो, उमदा हो, यह महत्त्वपूर्ण है, परन्तु उतना ही महत्त्वपूर्ण यह है कि उसे सदा जागरूक भी रहना चाहिए।

सोयराबाई के रूप में अब राजमहल की दीवारें भी राजघराने की प्रतिष्ठा निगलने को तैयार हो गयी थीं। प्रतिशोध मन की एक भीषण प्रवृत्ति हैं, स्त्री के मन का प्रतिशोध तो उससे भी अधिक भीषण होता है, परन्तु किसी राजस्त्री के मन का प्रतिशोध तो भीषणतम होता है—विध्वंस का ही दूसरा रूप होता है।

अब सोयराबाई के महल से विषैली अफवाहें फैलने लगीं। सारे दुर्ग में वे अफवाहें फैल गयीं। इन अफवाहों की नाली में 'ज़री-पताका' भवानी की हल्दी-रोली, शिवतिलक सभी कुछ बह जानेवाला था। सबसे भीषण परिणाम यह होनेवाला था कि जिजाऊ ने अपने अश्रु देकर और

https://t.me/Sahityajunction

असंख्य वीरों ने अपना ख़ून-पसीना बहाकर 'श्री' के राज्य का जो बीज बोया था, छोटे पौधे की अवस्था में ही उसके सूख जाने का भय उपस्थित हो गया था।

अण्णाजी फोंडा प्रान्त से लौटकर रायगढ़ आये। इधर रायगढ़ में क्या-कुछ हो रहा है, इससे वे अनजान थे। महाराज ने उन्हें काम सौंपा था कि फोंडा के क़िले को अधिक दृढ़ बनाकर दुबारा बाँधें। अण्णाजी लौटे थे कि इस बाँध-काम का विवरण महाराज के सामने निवेदित करें।

अण्णाजी ने क़िले में प्रवेश करते ही अनुभव किया कि पहरे की चौकी के पहरेदार, कारख़ानों के और राजकार्यालय के लोग उन्हें देखकर आपस में कुछ खुसफुसाने लगते हैं। दबी ज़ुबान में कुछ बोलते हैं और उनकी ओर विचित्र-सी दृष्टि से देखते हैं। इसी समय उन्हें बिलकुल अनपेक्षित रूप से सोयराबाई के महल से बुलावा आ गया।

उनके मन में शंका-कुशंकाओं की आँधी मच गयी। भयभीत मन से वे रानी सरकार के महल में प्रविष्ट हुए।

"सुरनीस, आज तुम्हारा मुजरा स्वीकार करने में हमें लज्जा अनुभव हो रही है। परन्तु हम भी विवश हैं, क्या करें? अपने ही दाँतों से अपनी जीभ थोड़े ही काटी जा सकती है!" मुजरा करने को झुके हुए अण्णाजी की उत्सुकता और उद्विग्नता को और बढ़ाते हुए सोयराबाई ने कहा।

अण्णाजी की आदत थी कि उपरने का छोर मुट्ठी में दबाये रहते थे। वह छोर एकदम छूट पड़ा, "हमसे कुछ अपराध हुआ हो, तो महारानी जी हमें बताएँ। हम कुछ समझ नहीं पा रहे। महल के लोग भी आज कुछ अजीब-सी नज़रों से हमारी ओर देख रहे हैं।" अण्णाजी ने एक कुशल राजनीतिज्ञ की-सी गम्भीर वाणी में कहा।

"सुरनीस, तुम उधर सुडौल-गढ़े पत्थरों से फोंडा क़िला मज़बूत बनाकर लौटे हो। भला हम या हमारे श्रीमान्‌जी तुम्हें क्या इनाम दें। अपमान, मानहानि? तुमने क़िला बनाया है, पर हमारा क़िला ढह गया है। परन्तु तुम तो घर के ही आदमी हो, सब कुछ समझ-बूझकर सह लोगे।" सोयराबाई ने साफ-साफ तो कुछ कहा नहीं, अण्णाजी को बड़प्पन का आभास दिलाती हुई वे बात को किनारे-किनारे ही घुमाती रहीं।

"क्षमा हो, परन्तु ठीक-ठीक क्या हुआ है, यह हम अभी तक नहीं समझ पाये हैं। हम तो आपके चरणों के सेवक हैं। आप जो कुछ उचित समझें, आज्ञा करें।"

"अण्णाजी पन्त, हमारा ही सिक्का खोटा निकला, तो परखैया का क्या दोष? जो बात जानकर-तुम दुखी होगे, उस बात को कहने में भी हमें शर्म आती है। तुम्हें अति उदार मन से युवराज को क्षमा करनी चाहिए। यह ठीक है कि उन्होंने घोर अपराध किया है, परन्तु फिर भी वे तुम्हारे अपने ही हैं। तुम्हारे घर में मायके के लोगों के बीच कुछ दिन बिताने को क़िले में आयी हुई सुवासिनी पर, गोदावरी पर उनकी बदनज़र है। सारे क़िले में इसी बात की चर्चा चल रही है।" सोयराबाई दो-चार पल रुकीं। अण्णाजी पर इन बातों की क्या प्रतिक्रिया हुई, यह देखने के लिए उन्होंने एक बार उनकी ओर देखा। अण्णाजी के माथे का तिलक यों सिकुड़ गया था, मानो अचानक जलती उदबत्ती माथे से छू गयी हो। आँखें फटी-सी रह गयी थीं और उपरने के छोर को वे मुट्ठी में कसकर दबा रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

“सुरनीस, यह अभद्र बात तुम्हें बताते हुए हमारे हृदय को कितनी व्यथा हो रही होगी, तुम स्वयं जान सकते हो। फिर भी तुम धीरज मत खोना। तुम इस घटना की चर्चा किसी से भी मत करो। हमने सुना है कि गोदावरी रायगढ़ छोड़कर कहीं और जाने की सोच रही है, परन्तु यह उसकी भूल होगी। इससे तो उसके बारे में जो भ्रान्तियाँ फैली हैं, उनकी पुष्टि ही होगी। ‘श्रीमान् जी’ को इस बारे में कुछ भी पता नहीं है। उनसे जाकर कहने का साहस किसी में नहीं है। स्वयं हम भी उनसे कहने में सकुचाती हैं।” सोयराबाई की बात पूरी हो गयी।

“जी, हम इस घटना की छानबीन करके स्वयं ही यह बात महाराज से कहेंगे।” अण्णाजी ने हक्के-बक्के होकर कहा। सिर नीचा झुकाकर “हम चलते हैं,” कहते हुए वे महल से बाहर हो गये।

ब्राह्मण-बस्ती में अपने घर लौटते ही अण्णाजी ने सबसे पहले गोदावरी को स्त्री-कक्ष में बुलाया और उससे पूछताछ शुरू कर दी, “तेरी और युवराज की मुलाकातें हुई हैं क्या?” अण्णाजी की पगड़ी का लाल रंग उनकी आँखों में उतर आया था।

गोदावरी ने गर्दन नीची झुकाकर सिर हिलाकर हामी भरी। आँखों से अश्रुधाराएँ बरस रही थीं।

“शर्म नहीं आती तुझे?” अण्णाजी की ज़ुबान बिजली बनकर कड़क रही थी।

“मेरी बात तो सुनिए। मुझे...” गोदावरी ने रहा-सहा बल समेट कर कुछ कहने की चेष्टा की।

“चुप रह मूरख। अरे, गले में बँधे मंगलसूत्र का तो कुछ ध्यान रखा होता! ख़बरदार, अगर फिर कभी घर की चौखट से बाहर कदम रखा तो।” अण्णाजी क्रोध के कारण उसकी ओर देख भी नहीं पा रहे थे। वे झटपट कमरे से बाहर चले गये।

गोदावरी का गला रुँध गया—दम घुटा जा रहा था। व्यथा की अधिकता वह सहन नहीं कर पा रही थी—इसी व्यथा के असह्य होने के कारण उसने अपना अहिवाती माथा दो-चार बार दीवार से पीट लिया। तिलक बिखर गया। वह ‘नखशिख सुन्दरी’ कमरे में बन्द हो गयी—ज्योत्स्ना-लता को काले मेघों ने घेर लिया। रायगढ़ एक स्त्री-मन के हाथों में पूरी तरह क़ैद हो गया।

गढ़ के लोगों को अब गोदावरी दिखाई नहीं देती थी। ‘युवराज ने ही उसे क़िले से गायब कर दिया है। अपना अपराध छिपाने के लिए उन्होंने ही यह चतुराई की है’—ऐसी अफवाहें क़िले भर में फैलने लगीं। फैलने नहीं लगीं—फैलायी जाने लगीं, सोयराबाई के चाकरों-दासियों द्वारा।

महारानी जी के महल में अण्णाजी का आना-जाना बढ़ गया। अण्णाजी गड़बड़ाये हुए थे—समझ न पाते थे कि क्या करें। सोयराबाई गोदावरी को उकसाने-भड़काने की अनेक युक्तियाँ उन्हें सुझा रही थीं।

उधर युवराज सम्भाजी को पता चला कि ‘बड़ी रानीजी’ के ‘बड़े महल’ में उनके बारे में कुछ भयानक षड्यन्त्र किया जा रहा है। उन्होंने अपने चतुर भेदिये अण्णाजी के घर के तथा बड़े महल के चारों ओर फैला दिये।

सम्भाजी को एक विचार बार-बार कचोट रहा था—‘अब गोदावरी का अण्णाजी के घर में रहना धोख़े की बात है। हमारे लिए भी, उसके लिए भी। ये लोग उसे जाल में फँसा रहे हैं—हमारे

https://t.me/Sahityajunction

चारों ओर फन्दा लगा रहे हैं। अब उस स्त्री का रायगढ़ में रहना ही धोखे की बात है। उसे अण्णाजी से और बड़े महल से अलग हटाना चाहिए। पर यह कैसे बने? भरे घर में से एक विवाहिता को अपने क़ब्ज़े में कैसे लिया जाय?'

व्याकुल सम्भाजी अपने महल में बड़ी बेचैनी से इधर-उधर घूम रहे थे। कभी बीच में ही रुककर छत की ओर देखते थे—कुछ भी सूझता नहीं था, तो फिर 'जगदम्बे, जगदम्बे' कहकर यूँ ही घूमने लगते थे। ब्राह्मण बस्ती में गोदावरी और अपने महल में वे स्वयं, एक विचित्र उलझन में अटक गये थे। यह घटना किसी भी क्षण महाराज के कानों तक पहुँच सकती थी। 'माँ जी, सोयराबाई अण्णाजी से बार-बार क्यों मिलती हैं,' इसका भी रहस्य वे समझ नहीं पा रहे थे। तनाव बढ़ रहा था—गुत्थी सुलझती न थी।

सोयराबाई ने गोदावरी को सन्देशा भिजवाकर अपने महल में बुला लिया था। अब आगे क्या होगा, यह तो केवल जगदम्बा ही जान सकती थीं।

"छोटे महाराज, बड़े महल की दासी चन्द्रा सुरनीस जी की हवेली की ओर गयी है। हवेली से एक डोली निकली है और बड़े महल की ओर जा रही है।" भेदिये ने आकर ख़बर सुनायी। सुनकर सम्भाजी के मन में असंख्य शंका-कुशंकाओं का नाच शुरू हो गया। हाथ पीठ पर बाँधे घायल शेर के समान वे चक्कर लगाने लगे। बुद्धि काम नहीं दे रही थी—मामला हाथ से निकला जा रहा था। उन्हें एक बार लगा कि सीधा माँजी के सामने खड़े हों और उनसे जवाब-तलब करें।

भेदिया अगली आज्ञा की प्रतीक्षा में कितनी देर से खड़ा है, यह भी वे भूल गये थे। फिर अपने मन में कुछ ठानकर वे भेदिये से कहने लगे, "जाओ। बड़े महल की जो भी ख़बर हो, वह हमें तुरन्त बतानी है, याद रखो। इसमें ग़लती हुई, तो माफ़ नहीं किये जाओगे।" भेदिया मुजरा करके चला गया। सम्भाजी निश्चय एवं दृढ़ता का भाव मुख पर लिये देवमहल की ओर जाने लगे।

देवमहल के व्यवस्थापक पुजारी ने उन्हें आते देखा, तो कमर तक झुककर मुजरा करने लगा। युवराज ने उनके मुजरे पर ध्यान नहीं दिया—कठोर धमकी-भरे स्वर में बोले, "हम देवमहल में एकान्त चाहते हैं। हमें माँ भवानी से संकट काल की विशेष प्रार्थना करनी है। तुम यहाँ से चले जाओ।" आज पुजारी ने अपने युवराज की निराली ही मुखमुद्रा देखी थी—सुन्न कठोर मुद्रा। पुजारी भौचक होकर बाहर चला गया।

पत्थर की मूरत-सी बनकर सम्भाजी खिंचे हुए से आगे बढ़े। अष्टभुजा भवानी देवी दीप के प्रकाश में, सारी देह पर हल्दी-रोली का लेप धारण किये नेत्र विस्फारित कर वहाँ खड़ी थी। सम्भाजी ने उसकी आँखों-में-आँखें मिलायीं परन्तु आज उस जगज्जननी, सर्वसंहारक, अग्निस्वरूपा देवी के तेजस्वी नेत्रों से उन्हें भय नहीं लगा। आज किसी अनाकलनीय अधिकारी से वे उसके सामने हठ करने को, मचलने को आये थे। उनकी इच्छा होती थी कि सीधा जाएँ और उसके आठों हाथों को झकझोरकर उससे पूछें—'तेरे चारों ओर रात-दिन इतनी वस्त्र-ज्योतियाँ जल रही हैं, पर तू क्या इन्हें देख नहीं पाती?'

अगले ही क्षण उन्हें प्रतीत हुआ कि देवी के नेत्रों का भाव बदल रहा है—वह भेदती-सी दृष्टि अब कमल की कली के समान मोहक बन गयी है। सम्भाजी—छोटे छत्रपति, उसके नेत्रों में एकटक निहारते जा रहे थे।

"आऊ साहिबा, माँ साहिबा," उनके अन्तस्तल से एक प्रबल आवेश का उबाल उठ पड़ा।

https://t.me/Sahityajunction

जगदम्बा के त्रिकालदर्शी वे नेत्र उन्हें माँ साहिबा के नेत्रों के समान दिखाई देने लगे। सम्भाजी के मन की शून्यता समाप्त हुई। मन के कपाट जैसे एकदम खुल गये।

'उन्होंने विनम्रता छोड़ी, तो भी तुम्हें सहनशीलता का त्याग नहीं करना चाहिए।' एक पंख कहीं से उड़ता हुआ उनकी दिशा में आया। बिल्कुल जिजाऊ की बोली का रूप धारण किये।

व्याकुल होकर उन्होंने देवमहल में चारों ओर देखा—उन्हें आभास हुआ, मानो वस्त्र-ज्योति, पालकी, पलँग, चँगेरी—माँ भवानी की पूजा की ये समस्त वस्तुएँ जैसे नाच-नाचकर कह रही थीं—'उन्होंने विनम्रता छोड़ी, तो भी तुम्हें सहनशीलता का त्याग नहीं करना चाहिए।'

युवराज का रजोगुणी मन डोल रहा था। अन्तःकरण व्यथित हो उठा था—'माँ साहिबा, आऊ साहिबा, आज तुम्हारा यहाँ होना आवश्यक था। कैसे सहन करें यह सब हम? क्या करें? तुम होतीं, तो तुमसे पूछते। नहीं, नहीं—और सब कुछ हम सह सकते हैं, पर जो हो रहा है, उसे सहना हमारी शक्ति के वश की बात नहीं। बड़ी माँ जी को सन्तोष हो सके, इसके लिए हम पूजा की ज्योति से अपने माथे को जलाकर दिखा दें। माँ साहिबा, हम गहरे संकट में आन फँसे हैं। अब इस जगदम्बा को साक्षी बनाकर जो कुछ सूझेगा, वही करेंगे। विश्वास रखिए, हमें आपके चरणों की सौगन्ध है, हम निर्भय होकर जो कुछ भी करेंगे, वह आपकी शपथ लेकर ही।' सम्भाजी ने नेत्र मींच लिये। अब उनका मन स्थिर और शान्त हो गया था। हृदय असीम निश्चय और आत्मविश्वास से भर उठा था। उन्होंने पूजा की थाली के बेलपत्र भवानी के चरणों पर चढ़ाये। चँगेरी की हल्दी-रोली, कुछ उसके उग्र रूप मुख पर छोड़ी और शेष अपने माथे पर रगड़ ली। फिर उसकी ओर पीठ न फिराकर वे पीछे हटते हुए देवमहल के बाहर आ गये।

युवराज ने अपने राजकर्मचारी महादेव यमाजी को बुलाया और उन्हें दो आज्ञाएँ दीं, "हमारी विशेष निजी सेना के दस-बारह सशस्त्र सैनिक तुरन्त हमारे सामने पेश करो। कुशल पटेबाज़ और घुड़सवार भी चुनकर भेज दो। तुम स्वयं क़िले से नीचे उतरो और पाचाड़ के बाहर की बस्ती में ज़ीन-कसे घोड़ों की एक टुकड़ी तैयार रखो। हम भी तुम्हारे पीछे कुछ देर बाद क़िले से उतरकर आ ही रहे हैं।"

महादेव यमाजी 'जी' कहते हुए महल से बाहर हो गये।

एक सेवक ने फ़ौलादी जालीदार बख़्तर उठाकर सम्भाजी के बलशाली, गठे हुए बदन पर पहनाया। दूसरे सेवक ने ज़रदोजी के केसरी बेलबूटोंवाला अँगरखा उस पर पहना दिया। कलाई में पहुँची कस दी। ढाल को युवराज की पीठ पर बाँधकर तस्मे छाती के आगे लाकर सम्भाजी को दिये। युवराज ने तस्मों को मज़बूती से बाँध लिया। उन्होंने कमर में कमरबन्द कसा। अपने सिर का सफ़ेद ज़िरहटोप उतारकर तबक़ में रखा और केसरी रंग का ज़िरहटोप सिर पर धारण किया। एक सीधी, भारी और लम्बी म्यानबन्द तलवार कमर में बाँध ली। इस रूप में ऊँचे दुर्ग पर जन्मा वह रुद्र ही साक्षात् वहाँ आया खड़ा था, प्रत्येक आगामी संकट का सामना करने के लिए। सच भी है—ऊँचे पर रहनेवालों को आँधी—तूफ़ान का सामना करने के लिए सदा कटिबद्ध रहना पड़ता है।

इस प्रकार सैनिक का सारा साज़ पहनाकर सेवक चार कदम पीछे हट गये। युवराज सम्भाजी ने उन्हें हाथ उठाकर जाने का इशारा किया। वे जाने लगे, पर उनमें से एक कुछ क्षणों के लिए ठिठक गया। वह अपने छोटे छत्रपति महाराज से कहना चाहता था—'आपके माथे पर

https://t.me/Sahityajunction

लगी हुई माँ भवानी की हल्दी-रोली बिखर गयी है। युवराज, जाने से पहले तनिक दर्पण में देख लें।' परन्तु वह कहने की उसे हिम्मत नहीं हुई।

अकेले, बिलकुल अकेले सम्भाजी विचारों के साथ-साथ तेज़ी से घूम रहे थे। कुछ देर बाद महादेव यमाजी द्वारा भेजी गयी सशस्त्र सैनिकों की एक टुकड़ी मुजरा करके सामने उपस्थित हुई। सम्भाजी ने उन हट्टे-कट्टे जवानों को देखा, तो उनका चेहरा खिल उठा। ये वे ही मर्दाने वीर थे, जो भागानगर की मुहिम में उनके साथ थे। सम्भाजी ने अत्यन्त शान्त और दृढ़ स्वर से उन्हें अपनी योजना समझायी। वे अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

बड़े महल पर जिसे नियुक्त किया गया था, वह भेदिया आया। बोला, "सरकार, 'बड़ा महल' बिल्कुल चुप्पी साधे बैठा है। पंछी भी पर नहीं मारता वहाँ। अब आगे क्या करें?"

कुछ देर सम्भाजी सोच-विचार करते रहे, फिर बोले, "अब ख़बर की ज़रूरत नहीं है। अब वह स्त्री ज्योंही बाहर निकले, तुरन्त हमें आकर बताना।"

रायगढ़ इस समय ऊपर से शान्त दिखाई दे रहा था। नक्कारख़ाने की 'ज़री-पताका' मावल देश की वायु में सदा की भाँति ही फहरा रही थी, परन्तु रायगढ़ के अन्तस्तल के दृढ़ द्वार अब खुलने जा रहे थे।

सैनिकों ने युवराज की योजना ठीक से समझ ली और उनके निडर सैनिक अपने-अपने नियुक्त काम के लिए रवाना हो गये। इधर-उधर बिखरकर नक्कारख़ाने के विशाल दरवाज़े के आस-पास टोह लगाकर बैठ गये।

उधर बड़े महल के द्वार से संगमरमर की-सी शुभ्र देहवाली गोदावरी अण्णाजी के साथ-साथ बाहर निकली। उसके मुखमण्डल पर असीम वेदना छायी हुई थी, जैसे किसी ने दाग दिया हो। वह बेचारी अपने निष्पाप मन की सत्यता को अण्णाजी को अथवा महारानीजी को समझाने में असमर्थ रही थी। सोयराबाई ने अपनी कुटिलनीति का दाँव चलाकर एक ओर उसे दोषी ठहराया था और दूसरी ओर वे उसे अभयदान देने का ढोंग भी दिखा रही थीं। अब अण्णाजी उसे महाराज के सामने पेश करनेवाले थे। वहाँ उसे क्या बोलना था? जो कुछ बोलना-बताना था, वह अण्णाजी को—उसे तो केवल सिर हिलाते रहना था।

अण्णाजी ने देखा कि गोदावरी डोली में बैठ गयी है, तो वे राजकार्यालय की ओर चल दिये। डोली नक्कारख़ाने की ओर चल पड़ी। उसके दोनों ओर अण्णाजी के दो सशस्त्र सैनिक चल रहे थे।

सम्भाजी को ज्योंही सूचना मिली कि डोली निकल पड़ी है, वे भी अपने महल से निकले। उनके मुख पर कठोरता और ऐंठन छायी हुई थी। वह मुख मानो एक जलती मशाल ही था! सैनिकों के मुजरों की ओर भी उनका ध्यान नहीं था। वे लपकते हुए नक्कारख़ाने के दरवाज़े पर आये। सब ऐसे इकट्ठे हो गये, जैसे शिकार पर हमला बोलने से पहले भेड़िये इकट्ठे हो जाते हैं।

कहार कन्धे पर डोली थामे एक हाथ में लकड़ी पकड़े, नक्कारख़ाने तक पहुँचे। वहाँ से वे दरवाज़े के आगे निकले ही थे कि सम्भाजी के सैनिकों ने डोली को घेर लिया। कहारों ने जब साक्षात् युवराज को ही हाथ उठाकर ठहरने का आदेश देते देखा, तो उन्होंने डोली को टेकनी पर टिकाया और मुजरा करके खड़े हो गये।

https://t.me/Sahityajunction

छोटे छत्रपति सम्भाजी डोली के परदे के पास मुख ले जाकर अधिकारपूर्ण वाणी से कहने लगे, “बाई, हम युवराज बोल रहे हैं। हमने तुम्हें अपने क़ब्जे में कर लिया है। डरो नहीं। तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा। हमें अपनी बड़ी आऊ साहिबा की शपथ है।” अण्णाजी के सैनिकों को तो पल झपकते ही एक ओर खींच लिया गया था।

“चलो, उठाओ,” सम्भाजी के कड़कते आदेश से कहारों को पसीना छूट गया। उन्होंने डोली को फिर से कन्धे पर रखा और युवराज ने जिस सामने की मीनार की ओर उँगली उठायी थी, वे उसी दिशा में चुपचाप दुलकी चाल से चलने लगे।

सम्भाजी इस समय भूले-भूले से बने आगे चल रहे थे। चारों ओर नंगी तलवारें तान कर चल रहे सैनिकों के बीच वह डोली, रायगढ़ की व्यापारी हाट की दाहिनी ओर से होकर मीनार की ओर निकली। इक्के-दुक्के लोग बीच में मिलते थे, पर वे भी यह समझकर कि डोली में कोई राजपरिवार की महिला है, उस डोली को मुजरा करते थे। डोली अब महादरवाजे से आगे निकल गयी। सम्भाजी के सैनिक कहारों से जल्दी-जल्दी कदम उठवाना बखूबी जानते थे।

लहाना दरवाज़ा पार करके डोली पाचाड़ आयी। पाचाड़ की बस्ती में न जाकर डोली को नगरद्वार के बाहर ही रोक दिया गया। वहाँ महादेवपन्त द्वारा घुड़सवारों का एक दल तैनात किया हुआ था। वे सवार घोड़ों को आगे बढ़ा लाये। उन घोड़ों में से सम्भाजी ने एक चूने के से सफ़ेद रंग का घोड़ा अपने लिए चुना और उसकी लगाम उन्होंने थाम ली। फिर वे डोली के पास आये।

“बाई, डोली से उतरो।” युवराज ने परदे की ओर देखते हुए कहा। गोदावरी डोली से बाहर आयी, जैसे म्यान से तलवार बाहर आयी हो। उसकी ग्रीवा नीचे झुकी हुई थी। उसके हृदय की एक-एक धड़कन उसे तोप छूटने की आवाज़ जैसी लग रही थी। उसके होश-हवास जैसे गुम थे।

“बैठो,” सम्भाजी ने एक घोड़े की ओर संकेत करते हुए उससे कहा। गोदावरी के सिर पर मानो बिजली गिरी। घोड़े पर बैठना तो उसके लिए असम्भव बात थी। अपनी असमर्थता को वह कैसे समझाये—इसी उलझन में वह कुछ देर यूँ ही खड़ी रही।

उसकी कठिनाई सम्भाजी के ध्यान में आयी। पर वे भी हड़बड़ा गये। इतनी दृढ़ता से पूरी की गयी योजना पर पानी फिरा जाता है, यह सोचकर वे चौंक उठे। फिर उन्होंने मन-ही-मन कुछ ठान लिया। पलक झपकने से भी पहले वे कूदकर उस सफ़ेद घोड़े पर बैठ गये। जैसे ही उन्होंने घोड़े की बागडोर खींची, अगले पैर हवा में उछालकर घोड़ा ज़ोर से हिनहिनाया। फिर युवराज ने घोड़े को गोदावरी के निकट से घुमाकर ऐसा खड़ा किया कि गोदावरी उनके दायें हाथ की ओर आ गयी। इससे पहले कि वह कुछ सोच-समझ पाये, उस देवी-भक्त के निष्काम हाथों ने गोदावरी को कमर से पकड़ लिया। और अगले ही क्षण गोदावरी घोड़े पर थी। घोड़े को सवार ने ऐसी कसकर एड़ लगायी कि घोड़े की देह में तीव्र कसक उठी। घोड़ा उड़ने लगा और उसके पीछे-पीछे घुड़सवार भी सरपट दौड़ने लगे। धूल के बादलों से आकाश घिर गया। वायु के वेग को लजाता हुआ वह वेताल-नायक, रायगढ़ का वह रुद्र दौड़ने लगा—लिंगाणा के क़िले की ओर।

लिंगाणा रायगढ़ के पड़ोस का ही एक छोटा क़िला था। उस स्त्री को वहाँ लाया गया और सम्भाजी के विश्वासपात्र सैनिकों के पहरे में उंसे एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। परन्तु वहाँ से चलने से पहले सम्भाजी जब उस स्त्री से विदा लेने गये, तब तो उनका हृदय भर आया। वे उसके मुख की ओर भी देख नहीं पाते थे।

https://t.me/Sahityajunction

उस स्त्री के केवड़े के समान सुकोमल कान्तिमय पाँवों की ओर देखते हुए सम्भाजी कहने लगे, "हमें दुःख है कि हम तुम्हें यहाँ लाये हैं। हमारे लिए दूसरा कोई रास्ता ही नहीं था। तुम अब हमारी क़ैदी हो। अब हमारे महाराज साहब के सामने हमें और तुम्हें दोनों को खड़ा होना पड़ेगा। तब माता भवानी और जगदीश्वर जो भी प्रेरणा दें, वही करो। हमें विश्वास है कि तुम किसी के बहकावे में या लिहाज़ में आकर ग़लत नहीं कहोगी। हम युवराज हैं, फिर भी हमें अपने हाथों से एक स्त्री को क़ैद करना पड़ा, इस बात के लिए हम भी लज्जित हैं। सम्भव हो तो हमें क्षमा कर देना। अच्छा, हम चलते हैं।"

जो भी किया है, उसके लिए खेद अथवा पश्चात्ताप करने जैसी कोई बात ही नहीं है, ऐसा मन में निश्चय करके सम्भाजी लिंगाणा दुर्ग से नीचे उतरने लगे।

उधर रायगढ़ में हाहाकार मच गया था। अण्णाजी जैसे धैर्यवान् व्यक्ति के पैर के नीचे से जैसे धरती खिसक गयी थी। व्याकुलता एवं लज्जावश वे उपरने से मुँह छिपाते हुए अपनी हवेली से महाराज के ख़ासमहल की ओर जा रहे थे। उन्होंने मन में कुछ निश्चय कर रखा था। जिस गढ़ में वे इतने वर्षों तक सम्मान और शान से रहते आये थे, वही आज उन्हें पराया लग रहा था।

"स्वामी, हमें सेवा से मुक्त करके विदाई के बीड़े दीजिए," अपने मन की चुभन को अण्णाजी महाराज से कह रहे थे, गरदन नीची थी और आँखों से धाराएँ बरस रही थीं। अश्रु टपककर नीचे के ग़लीचे में खोते जा रहे थे। महल में सर्वत्र नीरवता छायी थी। छत्रपति महाराज समझ नहीं पाते थे कि अण्णाजी आज कौन-सी पीड़ा से व्याकुल हो उठे हैं।

"क्या मतलब?" महाराज की दृष्टि अण्णाजी जी की पगड़ी पर फिर रही थी।

"स्वामीऽऽ स्वामी," अण्णाजी बोल भी नहीं पा रहे थे। उपरने में मुँह छिपाकर वे एक छोटे बालक के समान सिसक-सिसककर रोने लगे। उनकी दशा देखकर छत्रपति भी व्याकुल हो गये। वे बैठक से उठे और एक विचित्र-सी पुकार उनके मुख से निकली, "सुरनीऽस!" उन्होंने इस स्वर में आज तक कभी अण्णाजी को नहीं पुकारा था। आज इस एक शब्द के स्वर को सुनते ही अण्णाजी को एकदम याद आ गया कि वे मन्त्री हैं। उन्होंने अपने को सँभालने का प्रयत्न किया।

धीमी चाल से महाराज अण्णाजी के निकट आये। इतनी देर में उन्होंने मन-ही-मन सोच लिया था कि क्या कहा जाय। अण्णाजी के कन्धे पर अपनी गुलाबी वर्ण की हथेली रखते हुए वे कहने लगे :

"अण्णाजी, कई बार हमारे लोग हमसे तंग क्यों आ जाते हैं? रूठकर दूर क्यों हो जाते हैं? नेताजी, हमारे सेनापति, मुग़लों से जा मिले, प्रतापराव ने आत्मआहुति दी, सम्भाजी कावजी भी हमसे दूर चला गया। हमें आज तक ज्ञात नहीं हो पाया कि उनके मन का शल्य क्या था। तुम कम-से-कम जाने से पहले हमें अपने मन की व्यथा बताने तो आये हो। कहो, अण्णाजी पन्त, हमसे क्या भूल-चूक हो गयी है कि छाया के समान हमारे अपने प्यारे साथी भी पराये बन जाते हैं। एक बार तुम कहो तो सही।"

अण्णाजी ने अपना शोकावेग बड़े प्रयत्नपूर्वक रोका हुआ था, पर महाराज के इन वचनों से वे फिर एक बार फूट पड़े। उनकी दृष्टि, जो सदा महाराज के चरणों के भगवे पादत्राणों पर रहती

https://t.me/Sahityajunction

थी, अब यकायक ऊपर उठी। वे अपनी सारी व्यथा भूल गये और पगड़ी डुलाकर महाराज के सात्त्विक मुख की ओर ताकने लगे।

"नहीं, नहीं, महाराज। दोष आपका नहीं, दोष किसी का भी नहीं। दोष यदि है तो केवल हमारे भाग्य का। कृपया हमें अब मुक्त करें," अण्णाजी महाराज के चरणों में झुक गये।

"अण्णाजी, तुम्हारे जैसे वीर के मुख से अभागेपन की बात सुनने के लिए आज माँ साहिबा यहाँ होतीं, तो ठीक होता!" महाराज जिजाऊ की स्मृति आते ही थम गये। महाराज को याद आया कि माँ साहिबा ने दुर्भाग्य के कई आक्रमण किस प्रकार धैर्य से झेले थे।

"अण्णाजी, जिसने जाने की ठान ली है, उसे तो माता भवानी भी नहीं रोक सकतीं। केवल तुम जाने से पहले हमें जाने का कारण बताते जाओ। कहो, कौन-सा ऐसा कारण आ पड़ा कि तुम वह दाँव आधा-अधूरा छोड़कर शतरंज पलटकर चले जा रहे हो?" छत्रपति ने अण्णाजी के कन्धों को झकझोरते हुए कहा।

"स्वामी, हम अपने मुख से कैसे कहें वह बात? भगवान् की दया से और आपके अनुग्रह से ही हम आज तक दो-चार रोटियाँ खा पाये हैं। इसे कैसे भूलें हम? नहीं, हमारी कोई शिकायत नहीं, किसी का कोई अपराध नहीं।" अण्णाजी बोल नहीं पा रहे थे।

"तुम कहते हो कि शिकायत नहीं, इसका अर्थ है कि अवश्य ही कोई गम्भीर शिकायत है। कहते हो कि अपराध नहीं, अर्थात् अवश्य भीषण अपराध है। हम छत्रपति के नाते आदेश देते हैं, सुरनीस, अपनी कुलदेवी का नाम लेकर बतलाओ कि तुम सेवा से क्यों मुक्त होना चाहते हो?" अब महाराज की आवाज़ बदलकर दरबार के स्वर जैसी हो गयी थी।

अण्णाजी मानसिक खींचातानी में अटक गये थे। इस बार के 'सुरनीस' सम्बोधन से उन्हें असीम विश्वास प्राप्त हुआ। उपरने के छोर से आँखें पोंछते हुए दोनों हाथों से कोर को मुट्ठी में दबाकर अण्णाजी अब तत्पर हो गये थे। निश्चय भरे स्वर में कहने लगे, "महाराज, हमारा सर्वस्व लूट लिया गया है। इसी कारण हमें चाकरी से मुक्ति मिले।"

"साफ-साफ कहो, क्या हुआ है? किसने लूटा है तुम्हारा सर्वस्व?" छत्रपति अब सावधान हो गये थे।

"महाराज, महाराज, क्षमा करें—युवराज ने लूटा है हमारा सर्वस्व।"

"अण्णाजी!" महाराज यों चौंक उठे जैसे जलती वस्त्र-ज्योति शरीर से छू गयी हो।

"क्या...क्या किया है युवराज ने अण्णाजी?" अनुमान करने के प्रयत्न में महाराज का मन भटक रहा था।

"क्षमा करें स्वामी। उन्होंने जो कुछ किया है, उसे आपके सम्मुख कहते हुए भी हमें लज्जा आती है। हमें अभयदान दें महाराज।"

"तुम्हें अभयदान देते हैं हम, अण्णाजीपन्त। बताओ, क्या किया है युवराज ने?" छत्रपति के मुख पर निश्चय और कठोरता का भाव आ रहा था—माथे की नस फूलकर उभर आयी थीं।

"महाराज, हमारे घर की, हमारे नाते की एक सुहागिन स्त्री को युवराज दुर्ग से बाहर भगा ले गये हैं। हम तो किसी को मुख दिखलाने के योग्य भी नहीं रहे। हमारा सर्वस्व लुट गया है, महाराज। आपके चरणों की छाया छोड़कर अन्यत्र जाना हमारे लिए दुष्कर है, फिर भी महाराज,

https://t.me/Sahityajunction

हमें मुक्त किया जाय।”

महाराज के पैरों के निकट घुटने भूमि पर टिकाये अण्णाजी कहते जा रहे थे, परन्तु उनके एक भी शब्द को शायद छत्रपति सुन नहीं पाये थे।

“सुहागिन स्त्री को दुर्ग से बाहर भगा ले गये हैं।” यह सुनते ही महाराज सन्ताप से काँपने लगे। साँस फूल उठी—नाक की नोक पर स्वेदकण इकट्ठे हो आये। अत्यन्त दुःख तथा वशरहित क्रोध के चक्र में फँसा हुआ उनके रक्त का प्रत्येक कण जैसे कम्पायमान हो उठा था।

फिर उस लोहे के से लाल सन्तप्त राजमुख से शब्द नहीं, चिनगारियाँ बरसने लगीं, “अण्णाजी, यदि यही कारण है, तो इस दुर्ग को ही नहीं, शायद इस संसार को ही छोड़कर जाना पड़ेगा—परन्तु तुम्हें नहीं, सम्भाजी भोसले को। विश्वास रखो, ‘श्री’ के नाम से संचालित इस राज्य के दरबार में तुम्हें न्याय अवश्य मिलेगा।” छत्रपति एकान्त पाने के लिए अन्तःपुर की ओर बढ़ गये।

अण्णाजी उन्हें मुजरा करने को झुके। महाराज के टोप से लटकती मोती-मालाएँ मानो उनसे कह रही थीं—‘अण्णाजी, तुमने अपने महाराज को समझने में अभी जो भूल की है, वैसी फिर कभी मत करना।’

पसीने में नहाये हुए सम्भाजी रायगढ़ में प्रविष्ट हुए। आज तक उनके जीवन में ऐसा प्रसंग पहले कभी नहीं आया था। आज क़िले के कारख़ानों के श्रमिक भी उन्हें देखकर मुजरा करने को झुकते नहीं थे। यही नहीं, कुछ की नज़रों में तो घृणा झाँक रही थी। कुछ नज़रें सहानुभूतिपूर्ण थीं—परन्तु आदर का भाव तो एक भी आँख में नहीं था। ऊँचा आकाश, जो उन्हें रायगढ़ से सदा बौना दिखाई देता था, आज जैसे उनके टोप से आ लगा था। सारे दुर्ग में केवल एक ही बात से उनका मन कुछ सान्त्वनापूर्ण हुआ कि नक्कारख़ाने के ऊपर ‘ज़री-पताका’ हवा में सर्प के समान फहराती हुई लहरा रही थी।

रायगढ़ से लिंगाणा की ओर उनके जो पग हवा की तेज़ी से दौड़ गये थे, उन्हीं पैरों में अब जैसे मन-भर की साँकलें बाँध दी गयी थीं।—एक विचार के कारण उनके पैर उठते न थे :

‘आज हमें जीवन में पहली बार अपने महाराज साहब के सामने अपने आचरण के बारे में सफाई देनी पड़ेगी।’

और हाँ। इसी कारण वे स्वयं ही महाराज के ख़ासमहल की ओर जा रहे थे। चाहते थे कि सारी घटनाओं का वृत्तान्त महाराज से कहें और फिर महाराज जो कहें, उसी का पालन करें। सात महल के ‘बड़े महल’ को उन्होंने एक बार जलती हुई आँखों से देखा और वे अकेले ही ख़ासमहल की ओर बढ़ चले। आज उन्हें अपना अकेलापन काट खाने को दौड़ता था।

जब वे महाराज के ख़ासमहल का दरवाज़ा पार करने लगे, तो खण्डोजी दामाडे ने अपना कर्तव्य निभाया। बोला, “महाराज के आदेश से महल में आना-जाना सबके लिए बन्द कर दिया गया है।” सम्भाजी ने उसकी ओर देखा भी नहीं, उसके आड़े आये भाले को एक झटके से दूर हटाते हुए वे भीतर घुस गये।

https://t.me/Sahityajunction

जैसे पहले वे जगदम्बा से वाद-विवाद ठान आये थे, उसी प्रकार आज वे अपने आबासाहब के सामने ज़िद पकड़नेवाले थे। आज वे पूरे धीरज के साथ माँजी सोयराबाई के दुर्व्यवहार की पोथी अपने छत्रपति पिता के सामने बाँचनेवाले थे। आज तक रोका हुआ भावनावेग आज बाँध फूटकर बहनेवाला था।

सम्भाजी, जो बचपन में मिर्ज़ा राजा की छावनी में ज़ामिन बनकर रहे, जो मथुरा में अकेले रहने में भी हिचकिचाये नहीं, जो भागानगर तक सेना का नेतृत्व कर आये, उन सम्भाजी ने सोच लिया था कि आज अपने आबासाहब के चरणों में माथा टेककर कहा जाय—'आप ही हमारी 'आऊ' और आप ही हमारे 'आबा' हैं। अब हमें रायगढ़ में रहने भी इच्छा नहीं है। अब तो आप सदा सैनिक अभियानों में ही हमें साथ रखें। हम अपना यह युवराजपद आपके चरणों में रख देते हैं—आप इस पद को राजाराम को दे दें और उन्हें ही सोने की सीढ़ी पर बिठाया करें। हमने आगरा में आपके पादत्राण उठाकर आपके सामने रखे थे, बस वे ही हमें पुनः प्रदान करें। आपके पादत्राण ही हमारे लिए सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु हैं। केवल एक ही प्रार्थना है—आज दुर्ग में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जो हमारे मन को जाने। इसलिए आप हमें अपनी छाती से लगा लें, वैसे ही जैसे आपने मथुरा से विदा होते समय हमें अपने अंक में भर लिया था। बड़ी आऊ साहिबा हमें अनेक हित-वचन कह गयी हैं, आप केवल सदा अपना हाथ हमारे सिर पर रखें, यही प्रार्थना है।'

"महाराज साहबऽऽ," अन्तःपुर के बाद द्वार पर सम्भाजी के हाथ की थाप पड़ने लगी। परन्तु द्वार नहीं खुला। द्वार खुलनेवाला भी नहीं था। शायद खुल भी नहीं सकता था। भीतर उस पिता ने स्वयं ही अपने को क़ैद कर लिया था, जिसका नाता स्वराज्य की स्थापना के कार्य में असंख्य वीरों के बलिदान के साथ भी जुड़ा हुआ था। महाराज पहले छत्रपति थे, बाद में पिता, भाई अथवा पति थे। एक 'राजा' का ख़ून का रिश्ता किसी से नहीं होता। ख़ून के रिश्ते उसी क्षण समाप्त हो जाते हैं, जिस क्षण राजा राजसिंहासन पर चढ़ता है।

उस बन्द द्वार के आगे खड़े-खड़े सम्भाजी की आँखें भर आयीं। 'आज किसी ने हमें मुजरा नहीं किया—आज कोई हमें अपना नहीं बनाना चाहता।'

"टन-टन-टन,"—जगदीश्वर के मन्दिर में सान्ध्य-आरती के समय घण्टानाद हो रहा था। भीतर कक्ष में पलँग पर चिन्ताग्रस्त महाराज ने और बन्द द्वार के आगे खड़े सम्भाजी ने भी उस घण्टानाद को सुना। इस नाद ने महाराज के मन में मातुश्री जिजाऊ साहिबा की स्मृति जगा दी। उनके हाथ की उँगलियाँ कौड़ियों की माला से जा लगीं। इस काल महाराज के मन में यही एक विचार आया—'माँ साहिबा, हमारे सम्मुख आज यह जो प्रसंग उपस्थित है, उसे देखने के लिए आज आप जीवित नहीं हैं, यह एक प्रकार से ठीक ही है क्योंकि अपने ही पुत्र द्वारा किये जानेवाले अपने पोते के अभियोग का न्यायदान आप देख भी नहीं पातीं।'

द्वार के बाहर सम्भाजी के मन में आँधी उठ रही थी—'बड़ी आऊ साहिबा काश! आज आप होतीं। सब द्वारों के बन्द होने पर हम आपके चरणों में आ बैठते। आप एक बार भी यदि पुकार लेंती—शम्भूबाल, तो बस हमारे हृदय को कई रायगढ़ों को उठाने की शक्ति प्राप्त हो जाती।'

युवराज सम्भाजी उस बन्द द्वार से वापस लौट गये और लौट गया मराठा राजगद्दी का भाग्य भी। भोसले वंश के राजसी नाते-रिश्ते भी लौट गये। नियति के चक्र ने कुछ ऐसा चमत्कार

https://t.me/Sahityajunction

दिखाया कि सत्य ही सत्य से पीठ फिराकर लौट गया।

सम्भाजी ज्योंही अपने महल में प्रविष्ट हुए, महाराज द्वारा नियुक्त सशस्त्र सैनिकों ने उनके महल पर पहरा लगा दिया। पुतलाबाई और येसूबाई को भी उनसे मिलने की मनाही थी। काली रात पाचाड़ की घाटी को घेरने आ पहुँची और उसने तीन आत्माओं को तीन भिन्न स्थितियों में बन्द पाया—लिंगाणा में सम्भाजी के सैनिकों की क़ैद में बन्द गोदावरी, रायगढ़ में महाराज द्वारा नज़रबन्द किये गये सम्भाजी और राजत्व की असह्य वेदना में दम घोंटनेवाली मनोव्यथा में बन्द स्वयं छत्रपति शिवाजी महाराज।

रायगढ़ के इतिहास में यह दूसरा अशुभ दिन था। पहला दिन वह था, जिस दिन राजमाता जिजाऊ परलोक सिधारी थीं। दूसरे दिन सिंहासनाधिष्ठित छत्रपति महाराज के सामने भरे दरबार में सम्भाजी की सुनवाई होनेवाली थी। देह और छाया के समान एक, वे पिता-पुत्र आज निर्भय होकर सत्य का सामना करने को तत्पर थे।

पुतलाबाई, सेनापति हम्बीरराव तथा येसूबाई ने अपने प्रयत्नों में कोई कसर न उठा रखी, परन्तु फिर भी वे महाराज से मिल नहीं सके।

हर ज़ुबान पर यही चर्चा थी—'युवराज को तोप के मुख से बाँधकर उड़ाया जाएगा।' हर मन भयभीत था। उधर सम्भाजी भी सारी रात विचारों के थपेड़े खाकर अन्त में मन को दृढ़ बना चुके थे—'चाहे प्राणदण्ड ही क्यों न मिले!'

कड़ाके की सर्दी के दिन थे। रायगढ़ की पर्वत घाटियाँ घने कोहरे से भर गयी थीं। घने कोहरे को भेदकर बाहर निकलने के प्रयत्न में दिन भी थक-सा गया था। पाचाड़ के आँगन से निकला घण्टानाद भी उसी कोहरे में विलीन हो गया।

सूरज एक हाथ ऊपर चढ़ आया था। भयाकुल लोगों की भीड़ दरबार-महल की ओर जा रही थी। कोई किसी से कुछ बात नहीं करता था। देखते-ही-देखते राजदरबार-कक्ष प्रतिष्ठित व्यक्तियों से भर गया।

महाराज ने राजसी वस्त्र परिधान किये थे और वे अब शान्तचित्त होकर देवमहल में माँ भवानी से बहुत कुछ बोल चुके थे। बेलफूलों की अँजलि उसके चरणों में चढ़ाकर वह मराठा—'श्रीमन्त योगी' राजा देवमहल से बाहर निकला। एक-एक पग बढ़ाता हुआ वह राजसिंहासन की ओर बढ़ने लगा। उसके एक-एक बढ़ते पग के साथ-साथ नातों-रिश्तों का अटूट बन्धन भी टूटता जा रहा था।

"आबाऽऽ," अकस्मात् एक आत्मयी स्त्री ने वेद्नाभरी पुकार लगायी और वह अपने कंगन-भरे हाथों से उस योगी के चरणों में लिपट गयी।

राजस्नुषा येसूबाई बाहर की प्रस्तरनिर्मित दीवार से लगी हुई महाराज के देवमहल से निकलने की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। वे प्रतीक्षा के क्षण उन्हें युग-समान प्रतीत हुए। असह्य, असीम मानसिक व्यथा के कारण उन्होंने अब पिता का प्यार देनेवाले महाराज के चरणों का आलिंगन किया था, अपने सुहाग की भीख माँगने के लिए।

https://t.me/Sahityajunction

क्षणभर के लिए तो आकाशवत् विशाल उस राजपुरुष का मन भी डाँवाडोल हो गया। उफनकर बाहर आनेवाले अपने भावावेग को रोकने के लिए छत्रपति ने नेत्र बन्द कर लिये। उनके मन में अकस्मात् उनके कहे हुए वचन ही इस बेमौक़े आ उपस्थित हुए—'बहू, तुम्हें देखकर हमें अपनी आऊ साहिबा की याद आती है।'

महाराज ने स्वयं अपने ही हाथों से जिस आँचल में मुद्रा और कटार डाली थी, वही आँचल फैलाकर येसूबाई ने उन्हें देवी के द्वार पर ही पकड़ लिया था। येसूबाई के रूप में अब माँ साहिबा ही कुछ कहने जा रही थीं। इस विचार के आते ही छत्रपति भी व्यथित हो उठे, उनके आगे बढ़ते कदम ठिठक गये।

"बहूऽऽ," छत्रपति का कड़ाधारी काँपता हाथ येसूबाई की पीठ पर पहुँच गया। उस कम्पनमय स्पर्श से येसूबाई की हिचकियाँ बँध गयीं।

"उठो, शान्त होओ," महाराज ने उन्हें उठाया। येसूबाई बहुत कुछ कहने आयी थीं, पर अब शब्द कण्ठ में ही अटक गये थे। फिर भी हिचकियाँ और सिसकियाँ उनके मन की बात प्रकट कर रही थीं।

"हमारी बात सुनो। शान्त होओ।" महाराज के वचनों का धैर्य-भाव मृत्युशय्या पर पड़ी किसी निर्बल आत्मा को भी शक्ति देने में समर्थ था।

"सच कहते हैं हम, तुम्हें देखते ही हमें माँ साहिबा की याद आती है। तुम बिल्कुल वैसी ही लगती हो। इस समय सारे दुर्ग में केवल तुम ही ऐसी हो, जो हमें समझ सके।" क्षणों तक दबी हुई स्तब्धता महाराज के मुख से अपने आप शब्द बनकर फूट पड़ी।

"येसू, माँ साहिबा को मत भूलो। इससे भी अधिक कठिन मार्गों से उन्हें न जाने कितनी बार गुज़रना पड़ा, परन्तु वे डगमगायी नहीं। हमारे कुल की आन-बान के अनुरूप धैर्यभाव केवल तुममें ही है। विश्वास रखो, तुम्हारे सौभाग्य का सिन्दूर पोंछने का कार्य यदि जगदम्बा ने हमारे हाथों करवा ही दिया है तो...तो फिर इस सिंहासन पर तुम हमें दुबारा कभी बैठा हुआ नहीं पाओगी। हम जन्म-भर तुम्हारी सेवा करेंगे—तुम्हें माँ साहिबा मानकर।

"परन्तु हमारे हाथों से ऐसा कोई कर्म न होने पावे, इसलिए तुम उस माँ जगदम्बा को इस संकटकाल में गुहार लगाओ। हम गुहार लगाकर ही आ रहे हैं।

"बेटी, आँखें पोंछ डाल। तुझे-हमें आँखें मिली हैं जगदम्बा की। इनसे अश्रु का प्रवाह उचित नहीं। अच्छा, हम चलते हैं।"

महाराज ने शान्ति रीति से येसूबाई के कन्धे थपथपाये और वे आगे बढ़ गये। येसूबाई भी उठीं और उतनी ही शान्ति रीति से वे देवमहल की ओर बढ़ चलीं। इस समय यदि कोई उन्हें पीठ की ओर से देखता, तो यही समझता कि माँ साहिबा ही जा रही हैं, वे संसार से गयी कहाँ हैं?

उधर दरबार-भवन में 'रानी-कक्ष' में रानी सोयराबाई आ बैठी थीं। आज मन में कुछ ठानकर ही वे राजाराम को साथ लायी थीं। सोयराबाई के अतिरिक्त रानी-कक्ष में आज और कोई रानी नहीं थी।

सिंहासन-चौतरे के सुवर्णस्तम्भों से सटकर प्रधानमन्त्री मोरोपन्त दत्ताजी, प्रह्लादपन्त, हम्बीरराव, रघुनाथ पण्डित आदि सात मन्त्री खड़े थे, केवल पन्तसचिव, सुरनीस अण्णाजी दत्तो

https://t.me/Sahityajunction

का स्तम्भ खाली था। आज वे वादी थे, अतः वे अपने नित्य के स्थान पर खड़े नहीं रह सकते थे। वे सामने के दरबार-कक्ष में ग्रीवा झुकाकर नीचे खड़े थे।

चौतरे की दायीं ओर जो सुवर्णमय न्यायतुला बनी हुई थी, उसके पलड़े इतने सन्तुलित थे कि देखने वाला अन्तर्मुख होकर सोचने को विवश हो जाता था। बीच के सुवर्णमय दण्ड पर जो मत्स्य-मोरछल बना हुआ था, उसमें ऊपर एक विशालकाय, मोहक रूपवाली मछली बनी हुई थी। वह मछली आँखों में जड़े हुए एक गहरे लाल रंग के माणिक की आँख द्वारा मानो सारे दरबार को कठोर दृष्टि से देख रही थी।

दरबार के बीच के खुले भाग में फव्वारों का पानी ऊपर उछलकर कलाबत्तू के से सलमे-सितारे बनाता हुआ चारों ओर फैलकर फिर नीचे की हौज़ में गिर रहा था। छत से लटकते हुए लहरदार परदे वायु से हिल रहे थे, स्वर्णसिंहासन की दोनों भुजाओं के आगे की ओर दो खुले जबड़ेवाले सिंहों की आकृति यह सूचना दे रही थी कि यह 'सिंह-आसन' है। छत्र से लटकती मोती की लड़ियाँ मन्द-मन्द डोल रही थीं।

दरबार की प्रथा के अनुसार उपाधियों की ऊँची पुकार ने सबसे पहले सारे दरबार-कक्ष को गुँजा दिया। इसके साथ ही नक्कारख़ाने की नौबत बज उठी। सुनहरी गदा लिये एक गदाधारी सैनिक सिंहासन के चबूतरे पर आया और गदा का दण्ड भूमि पर पटकते हुए उसने ऊँची पुकार लगायी, "राजश्रिया विराजित, सकलगुणमण्डित, क्षत्रिय कुलावंतसऽऽ गोब्राह्मण प्रतिपालक, हिन्दुपदपादशाह श्रीमान् छत्रपतिऽऽ शिवाजी महाराजऽऽ।'

यह पुकार तीन बार गूँजी। "अदब ऽ, अदब ऽ," कहते हुए गदाधारी ने सारे दरबार को अन्तिम संकेत दिया। उसके दण्ड के पटकने से स्वर्णतुला के पलड़े भी थोड़े से हिल उठे। सर्वत्र ऐसी नीरवता छायी थी कि साँस की आवाज़ भी सुनाई दे। कुछ क्षण इसी प्रकार बीते। इसके तुरन्त बाद ही उस झिलमिलाते सुनहरे चबूतरे पर छत्रपति महाराज प्रकट हुए, जैसे मैनाक पर्वत के शिखर पर पक्षिराज गरुड़ आ बैठा हो।

महाराज को देखते ही सारे दरबारी कमर तक झुक गये। महाराज ने अपनी प्रजा को आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठाया। परन्तु इसी समय सोयराबाई ने 'रानी-कक्ष' में से बालक राजाराम को भेज दिया था और वे सिंहासन के चबूतरे पर आकर महाराज को मुजरा करने लगे। महाराज ने पहले उन्हें मुजरा करते देखा ही नहीं, परन्तु जब देखा तो वे भी एकदम गड़बड़ा गये। फिर एकदम गर्दन दूसरी ओर फिराकर उन्होंने कहा, "मोरोपन्त, बालराजा को तुम अपने निकट खड़ा कर लो।"

"जी," मोरोपन्त आगे बढ़े और हाथ बढ़ाकर उन्होंने राजाराम को अपने निकट खड़ा कर लिया। यह देखते ही रानी-कक्ष में बैठी सोयराबाई की ग्रीवा को झटका-सा लगा। उन्होंने अनुमान किया था कि राजाराम को देखते ही महाराज उन्हें युवराज की खाली सीढ़ी पर बैठा देंगे, पर यह उनका भ्रम ही सिद्ध हुआ।

महाराज ने पहले सिंहासन को वन्दन किया और सिंहासन से पाँवों का स्पर्श न हो, इस रीति से वे सिंहासनारूढ़ हुए। अपना भगवे जूतोंवाला दाहिना पैर उन्होंने चरणासन पर रखा हुआ था। इसके बाद महाराज ने हाथ उठाकर मन्त्रिगण को आज्ञा दी कि दरबार का कामकाज शुरू किया जाय।

https://t.me/Sahityajunction

आज के दरबार का प्रारम्भ एक युवराज को आरोपी के रूप में उपस्थित करने से न हो, इस दृष्टि से सेनापति हम्बीरराव ने झुककर अपनी सेना की कुछ आवश्यक माँगें प्रस्तुत कीं। महाराज ने हाथ उठाकर उन्हें 'स्तीकृति' दी। चिटनीस बालाजी आवजी सामने की विशेष बैठक में बैठे इस कामकाज को लिपिबद्ध करते जा रहे थे।

इसके बाद प्रधानमन्त्री मोरोपन्त ने किसी दरबार की ओर से भेजे गये उपहार के दो तबक़ों को स्वीकार करने की प्रार्थना महाराज से की। इनमें से एक तबक़ प्रथानुसार युवराज सम्भाजी के लिए भेजा गया था। महाराज ने अपने तबक़ को 'हस्तस्पर्श' देकर उसको स्वीकार किया। युवराज का तबक़ उस रिक्त सीढ़ी पर रख दिया गया, जहाँ वे बैठा करते थे। समय व्यर्थ ही बीता जा रहा है, यह सोचकर महाराज ने न्यायाधीश प्रह्लादपन्त को आदेश दिया, "न्यायाधीश, अपने विभाग का दरबारी कामकाज प्रस्तुत करो।"

प्रह्लादपन्त 'जो आज्ञा' कहते हुए झुक पड़े। सारे दरबार में भारी खिंचाव-तनाव का वातावरण था—मानो धनुष की डोरी को पूरी तरह तान दिया हो। "आरोपी युवराज को पेश करो," प्रह्लादपन्त ने अपने न्याय-विभाग के सैनिक-सूबेदार को आज्ञा दी। दरबार की आँखें उपरिकोट की ओर से आनेवाले प्रवेश-द्वार की ओर लगी थीं। अनेक के हृदयों को अपनी ही धड़कन सुनाई दे रही थी।

आरोपी युवराज सम्भाजी भोसले 'श्री' के राज्यसिंहासन के सम्मुख लाये जा रहे थे। चारों ओर से दस सशस्त्र सैनिकों के घेरे के बीच वे चले आ रहे थे—शरीर पर केसरी रंग का अँगरखा, उसी रंग का चमकता हुआ टोप, मस्तक पर साफ-उभरा हुआ शिवतिलक, छाती पर चौंसठ कौड़ियों की माला, कमर में बुँदकीदार किरमिजी रंग का चुन्नटदार घुटन्ना पहने सम्भाजी दरबार में आ रहे थे। एक नीले फेंटे से उनकी मुश्कें कसी हुई थीं, उनकी गरदन तनी हुई थी तथा आँखों से दृढ़ निश्चय का तेज टपक रहा था। पादत्राण रहित पैर नीचे के ग़लीचे पर रखते हुए वे ऐसे चले आ रहे थे, मानो एक गठीला शानदार सिंह का छावा अपनी गुफ़ा से बाहर निकल रहा हो।

उन्हें आज इस अवस्था में देखकर कई दरबारी लोगों के होठों से करुणासूचक ध्वनि निकल पड़ी—वे दरबार के रिवाज़ को भी भूल गये थे। सम्भाजी की सेना के कई सैनिक तो अपने युवराज को उस स्थिति में भी मुजरा कर बैठे।

सैनिकों ने आरोपी को सिंहासन के ठीक सामने खड़ा किया और नंगी तलवारों को मस्तक से लगाकर वे पीछे हटते-हटते अपनी जगह जा खड़े हुए।

मराठों के राजयोगी के सम्मुख आज रुद्रवत् पराक्रमी पुत्र ही आरोपी बनकर खड़ा था। जिजाऊ के 'शिबबा' के सामने उनका 'शम्भूबाल' अपराधी बनकर पेश था। माता भवानी के श्रेष्ठ उपासक के सम्मुख एक छोटा उपासक, 'मार्ग-भ्रष्ट' बनकर खड़ा था। आज जगदम्बा ने अपनी लीला से आबासाहब के सम्मुख उनके शम्भूराजा को आरोपी बनाकर खड़ा कर दिया था। छत्रपति महाराज के सामने एक स्वाभिमानी युवराज दोषी बनकर खड़ा था। शरीर के सम्मुख आज छाया ही न्याय पाने के लिए खड़ी थी। विशाल आकाश के सम्मुख पूर्व का उगता हुआ बाल-सूर्य ही आरोपी बनकर खड़ा था।

इतनी शान्ति छायी थी कि साँस की आवाज़ भी सुनाई दे। परन्तु अगले ही क्षण एक आर्त्त स्वर की ऊँची पुकार ने इस शान्ति को भंग कर दिया। "दादा महाराज!" पुकारते हुए मोरोपन्त

https://t.me/Sahityajunction

के निकट खड़ा हुआ पाँच वर्ष का बालक राजाराम सिंहासन की सीढ़ियाँ उतर रहा था।

सम्भाजी के हृदय में असह्य ऐंठन हुई। नेत्रों में जल भर आया। अँगरखे के बन्द टूटने से लगे। उन्होंने सोचा—'एकदम आगे को दौड़ पड़ें—बाल महाराज को छाती से लगा लें और उन्हें उठाकर अपने लिए लाये गये तबक़ के पास अपनी सीढ़ी पर बैठा दें।'

"पन्त, बालराजा को उनके महल में पहुँचा दो।" महाराज ने मोरोपन्त को आज्ञा दी। मोरोपन्त झट आगे बढ़े और पिछले द्वार से राजाराम को बाहर ले गये। वहाँ उन्होंने बालक राजाराम को महाराज के निजी राज कर्मचारियों के हवाले किया और मोरोपन्त पुनः प्रधानमन्त्री के स्तम्भ के निकट आकर हाथ बाँधकर खड़े हो गये।

सम्भाजी की दृष्टि अचानक सीढ़ी पर रखे तबक़ की ओर गयी और उनके मन में उठे विचार से वे और अधिक विह्वल हो उठे—'उस स्थान पर बैठकर आज तक हमारे मन ने कभी भी यह न सोचा था कि हमें कभी यहाँ इस अवस्था में खड़ा होना पड़ेगा।'

न्यायाधीश प्रह्लादपन्त असमंजस में पड़े सोच रहे थे कि दरबार में छायी भयदायी शान्ति को कैसे तोड़ा जाय!

'न्यायाधीश, आरोपी को चेतावनी दो। उसने दरबार में आकर प्रथानुसार मुजरा नहीं किया है अभी तक।" छत्रपति की ग्रीवा सर्प के फन के समान सीधी तनी हुई थी और आवाज़ में कठोरता थी।

ये शब्द ज्योंही सम्भाजी के कानों में पड़े, वे हक्के-बक्के होकर इधर-उधर देखने लगे।

इससे पूर्व कि मोरोपन्त उन्हें चेतावनी दें, उन्होंने हाथ बँधे होने पर भी कमर से झुककर महाराज को मुजरा किया। महाराज ने जब यह देखा, तो उनकी तनी हुई गरदन फिर से पूर्ववत् हो गयी।

"न्यायाधीश, आरोप-पत्र पेश किया जाय।" महाराज उस विषय को, जो थोड़ा-सा भटक गया था, फिर से मार्ग पर ले आये।

"जी, जैसी आज्ञा," प्रह्लादपन्त अब न्यायाधीश का कर्तव्य पूरा करते हुए पढ़ने लगे :

"आरोपी राजमान्यराजश्री सम्भाजी, पिता..." महाराज के सामने उनका नाम कैसे उच्चारा जाय, इस पेंच में अटके हुए न्यायाधीश लड़खड़ा गये।

"आगे पढ़ो," सिंहासन से आये शब्द ने उन्हें संकट से छुड़ा दिया।

"आरोपी रा. रा. सम्भाजी, पिता शिवाजी भोसले, आयु—अठारह वर्ष, पता—किला रायगढ़," प्रह्लादपन्त पढ़ने लगे।

"तुम्हारे विरुद्ध प्रतिवादी रा. रा. अण्णाजी पिता दत्तोजी सुरनीस, आयु अनुमानतः पचास वर्ष, पता क़िला रायगढ़ ने सन्दिग्ध फ़रियाद दाख़िल की है कि..." अपने जीवन का कटुतम कार्य करने से पूर्व प्रह्लादपन्त ने एक बार लम्बी साँस खींची और उपरने से पसीना पोंछा।

"तुमने प्रतिवादी की पत्नी की एक सम्बन्धी, मायके के रिश्तेदारों के बीच रहने को आयी गोदावरी नामक सुवासिनी स्त्री का रायगढ़ दुर्ग से बलपूर्वक हरण किया है। वह स्त्री इस समय लिंगाणा में तुम्हारे कब्ज़े में है...।" प्रह्लादपन्त रुक गये। "जो फ़रियाद पेश की है, वह तुम्हें मंज़ूर है?" महाराज ने पहले अण्णाजी से पूछा।

https://t.me/Sahityajunction

“जी,” अण्णाजी ने नीचे गरदन झुकाकर मुजरा करके कहा।

“आरोपी सम्भाजी, तुम्हें आरोप मंज़ूर है?” महाराज ने सम्भाजी की ओर देखते हुए कहा। उस दरबार में आज तक किसी ने भी महाराज की आँखों की ओर देखा नहीं था, पर आज सम्भाजी ने सीधा उनकी आँखों से आँखें मिलायीं।

“नहींऽ, हमें यह आरोप मंज़ूर नहीं है।” युवराज के मुख से घण्टानाद के समान ठनठनाते बोल प्रकट हुए।

“क्या मतलब? वह स्त्री तुम्हारे क़ब्ज़े में नहीं है?” महाराज भी थोड़ी देर के लिए हड़बड़ा गये।

“जी, हमारे क़ब्ज़े में है,” आज सम्भाजी गरदन सीधी तानकर ही उत्तर दे रहे थे।

“तो फिर तुम्हें आरोप मंज़ूर नहीं है, ऐसा क्यों कहते हो?” वे शुद्ध सुवर्ण के दो पवित्र पात्र आपस में टकराने लगे। शब्द चिनगारी बनकर प्रकट होने लगे।

“वह स्त्री हमारे क़ब्ज़े में नहीं है, हमारी क़ैद में है। हमने उसका हरण नहीं किया है, दिन-दहाड़े उसे अपनी क़ैद में बन्द किया है।” धीरे से उत्तर दिया गया।

“किस अधिकार से तुमने ऐसा किया? किस कारण से तुम्हें ऐसा करना पड़ा?” विचारों का विस्फोट होने के कारण महाराज ने मुट्ठी को राजासन की भुजाओं पर पटककर पूछा।

“कुछ स्वार्थी लोगों ने उस स्त्री को हमारे विरोध में उकसाने की ठान ली थी। हमने उसे क़ैद किया, ताकि हमसे सम्बन्धित एक मामला हमारे हाथ से बाहर न निकल जाय। एक युवराज के अधिकारों के अन्तर्गत हमें ऐसा करना पड़ा। छत्रपति के पुत्र के नाते हम ऐसा करने को विवश हो गये। भोसले वंशोत्पन्न लोगों को अवसर आने पर अपने प्राणों का मूल्य चुकाकर भी अपनी कीर्ति को निष्कलंक रखना पड़ता है, यह स्मरण करके ही हमने सम्भाजी भोसले के नाते उस स्त्री को क़ैद किया है।”

सारे दरबार ने इन आग उगलते शब्दों को सुना और सारा दरबार भ्रमसंशय में डूबने-उतराने लगा। चारों ओर खुसफुसाहट फैल गयी थी।

“कौन हैं वे स्वार्थी लोग? कौन से हेतु से ऐसा किया उन्होंने?” महाराज ने मूल खोज निकालनेवाला प्रश्न किया। सबके प्राण कानों में आ सिमटे थे।

सम्भाजी ने एक बार दहकती आँखों से रानी-कक्ष के परदे की ओर देखा। भाई राजाराम और बड़ी आऊ साहिबा की स्मृति के आते ही उनके निकलनेवाले शब्द कण्ठ में ही अटक गये।

सर्वत्र छायी शान्ति अब सबको ही असह्य हो उठी थी।

“हम पूछते हैं...कौन हैं वे लोग, जो उस स्त्री को तुम्हारे विरोध में भड़काना चाहते हैं? उनका हेतु क्या है?”

अब आज पहली बार सम्भाजी की गरदन नीचे झुक गयी। गरदन हिलाते हुए वे बोले, “नहीं, महाराज, हम इस दरबार में उनका नाम नहीं ले सकते!”

“तब तो तुम्हारे उत्तर में कुछ बल नहीं रहा।” सिंहासन की ओर से उतना ही निश्चयात्मक प्रत्युत्तर आया।

https://t.me/Sahityajunction

गुत्थी सुलझ रही थी, अब फिर उलझ गयी।

“क्षमा हो महाराज, इस विवाद की सुनवाई में स्वयं उस स्त्री को ही दरबार में उपस्थित रहने की आज्ञा दी जाय। उसे अभयदान देकर उसके मुख से झूठ-सच की परीक्षा करवायी जाय, ऐसा हमारा मत है।” सेनापति हम्बीरराव ने ठीक अवसर पर वही बात कही, जिसे युवराज कहना चाहते थे।

रानी-कक्ष के परदे के पीछे बैठी दो आँखें उन्हें तिरस्कार की भावना से घूर रही हैं, यह हम्बीरराव को पता ही नहीं था।

“नहींऽ, एक स्त्री को भरे दरबार में उपस्थित करना हमें उचित प्रतीत नहीं होता,” अण्णाजी ने पहली बार मुँह खोलकर हड़बड़ी से कुछ कहा।

“अण्णाजी, तुम भूल गये हो कि स्वयं युवराज भी आरोपी बनाकर दरबार में लाये गये हैं।” छत्रपति ने अण्णाजी की बात को तुरन्त सुधार दिया।

“पन्त, उस स्त्री को अभयदान देकर दरबार में उपस्थित रहने की सूचना दो। तुम्हें स्वयं यह काम करना है।” महाराज ने पेशवा मोरोपन्त को आज्ञा दी।

“जी,” मोरोपन्त ने वह आज्ञा स्वीकार कर ली।

“आरोपी सम्भाजी, जब तक तुम्हारी निर्दोषता सिद्ध नहीं होती, तब तक अपनी कमर में युवराजपद की वह तलवार तथा भोसले कुल की प्रतिष्ठा की प्रतीक यह कौड़ियों की माला कण्ठ में धारण करने का तुम्हें क्या अधिकार है?” महाराज के तीव्र मर्मभेदी प्रश्न से सारा दरबार स्तम्भित हो गया।

एक झटके से सम्भाजी के हाथ कौड़ियों की माला से जा लगे। नेत्रों में भय-व्याकुलता फैल गयी। भरे हुए दिल से वे पुकार उठे, “नहीं-नहीं। ऐसा नहीं हो सकेगा। चाहे तो हमारी गरदन उड़ा दी जाय।”

“खाऽमोश ऽ,” छत्रपति एक झटके के साथ सिंहासन से उठ खड़े हुए। सारा दरबार स्तब्ध हो गया। सभी चिन्तित थे—अब आगे क्या होगा?

युवराज की मुखमुद्रा ऐसी थी, मानो हज़ारों बिच्छुओं ने डंक मारा हो। उनकी ओर देखकर केवल एक ही वीर ऐसा साहसी निकला, जो हर परिणाम का सामना करने को तैयार था। वह वीर था—सेनापति हम्बोरराव मोहिते।

“क्षमा करें महाराज। जब तक युवराज की निर्दोषता सिद्ध नहीं हो जाती, तब तक साक्षात् जगदम्बा भी कौड़ियों की माला उनके कण्ठ से उतार नहीं सकतीं। हमें भरोसा है कि यदि आरोप सत्य सिद्ध हुआ, तो स्वयं युवराज ही माला उतारने से पहले अपनी गरदन काटकर रख देंगे।”

महाराज की दृष्टि एक बार हम्बीरराव की झुकी हुई पीठ पर से घूम गयी। ये बोल स्वामिभक्त के बोल थे। महाराज ने फैलाया हाथ उठाकर दरबार समाप्त होने का संकेत किया। सब दरबारी और युवराज भी अभिवादन करने के लिए कमर तक झुक गये। जब सम्भाजी ने सीधे खड़े होकर देखा, तब महाराज आसन पर नहीं थे। सब मन्त्री एक-एक करके बाहर जा रहे थे। सम्भाजी जाते हुए मन्त्रियों की पीठ की ओर देख रहे थे, परन्तु आज हम्बीरराव की पीठ पर तो उनकी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि अटककर ही रह गयी। रानी-कक्ष के परदे में काँपती हुई लहरें उठ रही

https://t.me/Sahityajunction

थीं। उधर देवमन्दिर में जगदम्बा की मूर्ति के सम्मुख ही नत बहू येसूबाई की पीठ पर पुतलाबाई अपना काँपता हाथ फिरा रही थीं—फिराती जा रही थीं।

गोदावरी को लिंगाणा दुर्ग से ले जाने के लिए गये हुए मोरोपन्त को खाली हाथ और उदास मन लेकर लौट आना पड़ा। गोदावरी उस दरबार में जा पहुँची थी, जहाँ जाकर आज तक कोई वापस नहीं लौटा है।

गोदावरी मन के भीतर उठनेवाले भीषण चक्रवात से भयाकुल हो गयी थी। उसकी स्त्रीजनोचित सुन्दरता और कोमलता विद्युत के समान तीव्र तथा चंचल हो उठी थी। उसने किसी क्षण यह विचार मन में दृढ़ कर लिया था कि अब वह किसी को भी अपना मुँह नहीं दिखाएगी।

दिशा-मैदान जाने के बहाने वह सम्भाजी के सैनिकों के पहरे में कोठी से बाहर निकली। वहाँ लिंगाणा की एक ऊँची पर्वत शिला के कगार पर खड़े होकर उसने साड़ी का आँचल कमर में खोंस लिया। हाथ जोड़कर, नेत्र मींचकर अपनी कुलदेवी का स्मरण किया। जब उसने नेत्र खोलकर नीचे की काली-नीली गहरी खाई में देखा, तो वह काली खाई उसे जगदीश्वर की काली पिण्डी के समान प्रतीत हुई। इस पर अपनी देह को बेलपत्र बनाकर अर्पित किया जाय, इस मानसिक आवेग पर वह नियन्त्रण न रख पायी और उसने नख से शिखा तक पावन, परन्तु मानसिक व्यथा-वेदनाओं से आहत वह अपना शरीर सामने की गहरी खाई में झोंक दिया था।

मोरोपन्त ने भीलों को उस खाई में उतरवाकर गोदावरी के शरीर के बिखरे अवशेषों को एकत्रित करवाया। उसके मृत शरीर को लिंगाणा की तलहटी में एक वस्त्र से ढाँककर मोरोपन्त लौट आये ताकि यह हृदयविदारक समाचार महाराज को सुनाएँ। मोरोपन्त द्वारा लायी खबर से सारा रायगढ़ एक विचित्र-गहरे शोकसागर में डूब गया। जिस-जिसने भी यह समाचार सुना, वह मौन बनकर रह गया। गोदावरी ने अपने आचरण से ही सबका मुँह बन्द कर दिया था। अब सम्भाजी के महल से पहरा उठा दिया गया।

छत्रपति महाराज मोरोपन्त, हम्बोरराव तथा प्रह्लादपन्त सहित अपने महल से बाहर निकले। वे कहारों द्वारा लायी गयी पालकी में बैठने को तैयार न थे। वे आज पैदल ही क़िले से नीचे उतरने लगे।

पाचाड़ पहुँचकर महाराज ने राज अश्वशाला के घोड़े ज़ीन कसकर सवारी के लिए तैयार रखने का आदेश दिया और स्वयं पैदल चलकर जिजाऊ साहिबा की समाधि के दर्शन किये।

साईस चारजामे कसकर घोड़े तैयार कर लाये थे। छत्रपति घोड़े पर बैठकर लिंगाणा की ओर चल दिये। उनके पीछे मन्त्रिगण तथा चुनिन्दा सशस्त्र सैनिक भी थे। सब लोग वहाँ तक आये, जहाँ गोदावरी की मृतदेह वस्त्र से ढाँककर रखी हुई थी। मोरोपन्त ने पहले से ही सूचना भिजवायी थी और उसके अनुसार वहाँ लिंगाणा की तलहटी में एक चिता रची गयी थी। सैनिकों ने गोदावरी का मृत शरीर चिता पर रखा। चिता में अग्नि दी गयी। महाराज टक लगाकर चिता पर चढ़ी उस सती की ओर देख रहे थे।

"पन्त, आबाजी महादेव को कहो कि इस सती की एक समाधि बनवायी जाय," छत्रपति ने मोरोपन्त को आज्ञा दी फिर महाराज मुड़ पड़े और घोड़े पर बैठकर दुलकी चाल से दौड़ने लगे। शेष लोग खड़े-खड़े सोचने का प्रयत्न कर रहे थे—'इस राजा को भला कौन पूरी तरह जान-समझ सकता है!'

https://t.me/Sahityajunction

ऊपर रायगढ़ के भवानी-कगार पर खड़े हुए सम्भाजी नीचे तलहटी में जलनेवाली चिता की ओर सुन्न होकर देख रहे थे। दूर पर जलनेवाली वह चिता उनका हृदय चीरे डालती थी। उन्हें प्रतीत हो रहा था—चन्द्रिका-वेली के समान सतेज एक स्त्री कन्धे पर पूजा की थाली सजाये चली आ रही है। वह निर्भय, प्रकाशमयी आकृति सीधी युवराज के सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। युवराज के पादत्राणों पर टिकी हुई उसकी दृष्टि ऊपर ही न उठ पाती थी। समस्त शरीर में सौभाग्य के अलंकार धारण की हुई उस सती के मुख से ये शब्द फूट पड़े, 'हमारे कारण युवराज को बहुत कुछ सहन करना पड़ा है। सम्भव हो तो हमें क्षमा कर दें वे।'

सम्भाजी की आँखें फैली-सी रह गयीं। होठों ने जैसे अपने को ही समझाते हुए कहा—नखशिखा! आ नखशिख सुन्दरी!!

गोदावरी तो चली गयी, परन्तु युवराज के हृदय को ऐसी चुभन दे गयी, जिसकी पीड़ा कभी मिटनेवाली नहीं थी। उधर सम्भाजी के मन में सोयराबाई के विषय में एक पक्की गाँठ पड़ गयी। सम्भाजी ने गत प्राणलेवा अनुभव से यह जान लिया कि ये 'माँजी' किस हद तक नीचे उतर सकती हैं।

महाराज जानते थे कि घटित घटनाओं ने सम्भाजी के मर्मस्थल पर प्रहार किये हैं। उन्हें पुनः अपने निकट कैसे लाया जाय, इसी असमंजस में वे डूबे हुए थे। अण्णाजी ने गोदावरी की घटना के कारण अपनी निष्ठा सोयराबाई के हाथों बेच दी थी, अतः अब उस निष्ठा को पुनः लौटा लेना उनके बस की बात नहीं थी।

बीती बातों पर विचार करते हुए सम्भाजी का मस्तिष्क थक चुका था। पलँग पर लेटे-लेटे ही उनकी आँख लग गयी। येसूबाई उनके पैताने की ओर बैठी पाँव दबा रही थीं।

जिस प्रकार नीले स्वच्छ आकाश में क्षितिज के नीचे से काले मेघों की एक लम्बी पंक्ति उठ आती है, उसी प्रकार निद्राधीन सम्भाजी के सतेज मस्तक पर अकस्मात् नींद में ही बल पड़ने लगे। फिर उनका सारा मुखमण्डल ही दग्ध के समान खिंच आया। साँस फूलकर चलने लगी। सारे मुख पर पसीने की बूँदें झलक आयीं, मानो चन्द्रकान्त मणि ही द्रवित हो उठी हो। फिर जैसे वे किसी को पूरी शक्ति से जाने से रोकने का प्रयत्न कर रहे हों, इस प्रकार सम्भाजी ज़ोर से चीख़ उठे, "ठहरीऽ, ठहरो!!" इस चीख से येसूबाई सिर से पाँव तक काँप उठीं। इस चीख़ के साथ ही सम्भाजी नींद से चौंककर एक झटके से उठ बैठे। सारे बदन में कँपकँपी छूट रही थी।

उनके मुख को वस्त्र से पोंछते हुए येसूबाई ने काँपते, परन्तु प्यार-भरे स्वर में पूछा, "क्या हुआ? किस भय के कारण चीख उठे आप?..." युवराज ने कुछ उत्तर नहीं दिया। धान्यराशि पर छाये भूसे को जैसे कुनबी छाज हिलाकर उड़ाता है, यों सम्भाजी ने गरदन को झटका देकर उस भयदायक विचार को झटककर दूर करना चाहा। उन्होंने भरी दुपहरी में एक भयानक स्वप्न देखा था।

येसूबाई पानी का प्याला लायी। सम्भाजी पानी पीकर थोड़ा सचेत हो गये। तब येसूबाई ने धीरे से कहा, "बाहर के सभागृहकक्ष में कविराज बहुत देर से प्रतीक्षा में बैठे हैं।"

बिखरे केशजाल को उसी प्रकार फैला हुआ रखकर सम्भाजी सभाकक्ष में आये। उन्हें आता

https://t.me/Sahityajunction

देखकर कवि कुलेश और उनके साथ आये एक उत्तर भारतीय व्यक्ति ने झुककर अभिवादन किया।

"युवराज, ये दुर्गा माता के भक्त हैं—ऊधो योगदेव।" कविराज ने आगन्तुक का परिचय कराया। कवि कुलेश अपनी हिन्दुस्तानी बोली में ही बात कर रहे थे। ऊधो योगदेव ने पुनः झुककर अभिवादन किया। उनके माथे पर आड़ी शैव तिलक की रेखाएँ अंकित थीं, बदन में उत्तर भारतीय पहनावा था। एकदम गौर वर्ण, गोल मुखमण्डल और सतेज आँखों के कारण वे एक निश्चयी व्यक्ति प्रतीत होते थे।

"युवराज, काली माता का भस्म तथा प्रसाद स्वीकार कीजिए," कहते हुए योगदेव ने कमर में लटकती थैली में से भस्म की एक पुड़िया और प्रसादी से भरा द्रोण युवराज की अंजलि में रख दिया।

'दुर्गा भवानी की कृपा से ही हम संकटों से सकुशल बच निकले हैं। भविष्य में भी वही हमें तारने में समर्थ हैं'—इस भाव से सम्भाजी ने अंजलि में रखे भस्म तथा प्रसाद को अपने माथे से लगाया।

"युवराज, यदि आज्ञा हो तो हम कुछ निवेदन करना चाहते हैं।" कुलेश का स्वर बदल गया था।

"अवश्य। अवश्य कहिए कविराज।" कवि कुलेश द्वारा मथुरा में दी गयी सहायता को सम्भाजी भूले नहीं थे।

"युवराज, जो कुछ हुआ है, भवानी माता की इच्छा से ही हुआ है। अब आप उस सब को भूल जाइए। आपके महाराज अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष हैं। यह आपका परम सौभाग्य है कि आप उनके पुत्र हैं। आप स्वयं कवि हैं। हमें आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि कविता ब्रह्मा का वरदान है। क्षमा और संयम के गुण ही एक कवि के अलंकार हैं।" उनके मन में कहने को बहुत कुछ बातें थीं, परन्तु 'हम उत्तर भारत के हैं, कहीं निवेदन में विनय-सम्मान के विपरीत कोई बात मुख से न निकल जाय,' इस भय से वे बोलते-बोलते रुक गये।

"कविराज, आबासाहब के प्रति हमारे मन में लेशमात्र भी क्रोधभाव नहीं है। हमारा इतना सामर्थ्य भी नहीं कि हम उन्हें क्षमा करें। हाँ, माँजी को क्षमा करना हमारे वश की बात नहीं। तुम हमारी ओर कवि के रूप में देखते हो, परन्तु हम अपनी ओर पहले युवराज के रूप में और बाद में एक कवि के रूप में देखते हैं।" सम्भाजी बोलते-बोलते ठहर गये।

कवि कुलेश मराठी भाषा थोड़ी-बहुत समझ पाते थे, परन्तु बोल नहीं सकते थे। उनके सामने इस समय जो एक सुन्दर तेजस्वी राजपुत्र खड़ा था, उसने अपनी निर्भय वृत्ति से उन्हें मथुरा में ही जीत लिया था। वे इसी भाव से इस मराठी प्रदेश में आये थे कि इन दक्षिणदेशीय पिता-पुत्र की सेवा पूरी निष्ठा के साथ कर पावें।

"अच्छा, अब आप विश्राम करें। हमें आज्ञा दें।" अप्रिय विषय की चर्चा अधिक देर तक करना समुचित नहीं, यह जानकर कवि कुलेश ने कहा। फिर झुककर मुजरा करते हुए वे योगदेव के साथ कक्ष से बाहर चले गये।

'कवि कुलेश को देखकर हमें मथुरा की स्मृति हो आती है। भूतकाल के गर्भ में कितना कुछ

https://t.me/Sahityajunction

जा समाया है।' एक गहरी उसाँस छोड़कर सम्भाजी अन्तःपुर की ओर चल दिये।

"यह लो," अन्तःपुर में आते ही एक गुदना-भरा ममतामय हाथ उनके सामने आ गया। सम्भाजी की विचारधारा भंग हो गयी। सम्भाजी ने दुर्गा माता के प्रसाद से भरी वह अंजलि सामने कर दी। कुनबी हाथों ने उस अंजलि में गुड़ तथा खोपरे का प्रसाद रख दिया। ये कुनबी हाथ थे धाराऊ के। उसने अपने गाँव कापूरहोल के शम्भू-महादेव के सामने कुछ मनौती मानी थी, आज उसने वह मनौती पूरी की थी।

उस मौसम में तेज़ हवाएँ बहने लगीं, इतनी तेज़ कि जगदीश्वर तथा शिर्काई के देवालयों की तिकोनी ध्वजाएँ भी उस हवा से फट गयीं। 'ज़री-पताका' विशेष बनावट की ध्वजा थी, परन्तु उस प्रबल-प्रभंजन के सामने वह भी सम्भवतः टिक नहीं पाएगी, यह सोचकर 'ज़री-पताका' को नक्कारख़ाने के ऊपरवाले ध्वज-दण्ड पर से उतार लिया गया।

इस प्रबल वायु के कारण छत्रपति रोगी हो गये। ठाँसवाली खाँसी ने और हल्के ज्वर ने उन्हें शय्या पर लेटने को विवश कर दिया। राजवैद्य उन्हें औषध की मात्राएँ देने में व्यस्त हो गये।

महारानी होने के नाते तथा सेवा-शुश्रूषा के उद्देश्य से सोयराबाई ने छत्रपति का महल अपने नियन्त्रण में कर लिया। अब महल में रात-दिन उनका ही आना-जाना और सम्बन्ध बढ़ गया। पुतलाबाई, सकबारबाई, येसूबाई, धाराऊ आदि राजकुल की स्त्रियाँ भी महाराज के महल में केवल स्वास्थ्य की पूछताछ करने ही जा पाती थीं।

उस दिन दुपहरी में शय्या पर लेटे-लेटे महाराज की आँख लग गयी। सम्भाजी की आत्मा महाराज से मिलने को तड़प रही थी। वे इस समय महाराज से मिलने का निश्चय करके उनके महल के द्वार पर आये थे। प्रहरियों ने उन्हें आते देखा तो भाले के फल अपने मस्तक से लगाकर वे पीछे हट गये। सेविकाएँ, जो दीवार से सटकर खड़ी थीं, युवराज को आया देखकर आँचल सँवारने लगीं।

सोयराबाई महाराज के सिरहाने बैठी थीं। उन्होंने जैसे ही सम्भाजी को आया देखा, एकदम उनके माथे की कुंकुम-रेखाओं में सिकुड़न आ गयी। वे तुरन्त उठीं और गरदन को ज़रा भी मोड़ने का कष्ट न देते हुए सीधी बाहर को जाने लगीं। जब वे युवराज के निकट से गुज़रीं, तब भी उन्होंने थोड़ी-सी गरदन टेढ़ी करना उचित नहीं समझा। परन्तु वे जब सम्भाजी के पास से गुज़रीं, तो निष्पाप मन के सम्भाजी का शरीर अपने आप कमर तक झुक गया। सम्भाजी को बाद में स्वयं अपने इस स्वाभाविक आचरण पर आश्चर्य होता रहा।

सम्भाजी ने महाराज को सोता पाया, तो वे दरवाज़े से ही वापस लौटने लगे। उनकी दृष्टि अकस्मात् ही आबासाहब की ओढ़ी हुई शॉल की ओर गयी। करवट लेते समय महाराज के पाँव शॉल से बाहर आ गये। चरणों को देखते ही सम्भाजी जैसे बँधे-से खड़े हो गये। वे धीरे कदमों से चलकर शयनकक्ष के भीतर आये और अपने महाराज साहब के चरणों को छूकर उन्होंने हाथ अपने राजटोप से लगाया। फिर वे पलँग पर महाराज के पायताने की ओर बैठ गये। दासियाँ एक-एक कर बाहर चली गयीं।

तेज़ हवा का एक झोंका महल में घुस आया। इस झोंके से लेटे हुए छत्रपति की दाढ़ी के कम घने; बिखरे हुए और काले बाल चँवर के समान लहरा उठे। इसे देखकर स्मृति का एक पत्ता कहीं से उड़ता हुआ सम्भाजी के मन में आ घुसा। उन्हें याद आया कि एक बार धाराऊ ने कौतुक भाव

https://t.me/Sahityajunction

से बताया था—'छोटे महाराज, बचपन में तुम बहुत ऊधम मचाते थे। तुम बड़े महाराज की दाढ़ी से न जाने कितनी बार खेला करते थे।'

सम्भाजी आबासाहब के शान्त एवं निद्रित मुखमण्डल की ओर टक लगाकर देख रहे थे। वे सोचने लगे—'हमने इसी मुख के कितने रूप देखे हैं। दरबार में सिंहासन पर बैठकर हमसे पूछनेवाला रूप—'तुम्हें आरोप मंज़ूर हैं?'—आगरा में निर्भय होकर 'कभी नहीं' कहते हुए बाहर निकलनेवाला रूप; 'यह मराठों की राजगद्दी है। यह गद्दी किसी के फरमान की भिखारी नहीं है। हमारे युवराज किसी के सामने घुटने झुकाने के लिए नहीं आ सकते। जाओ, चले जाओ,' इस प्रकार बहादुर ख़ाँ के प्रतिनिधि को डपटकर सुनाते समय लाल-दहकता हुआ रूप; 'हमारे सेनापति तुम्हारे मुतालिक, संसार में नहीं रहे', कहकर गूजर चाचा का दुखदायी समाचार हमें व्याकुल होकर सुनानेवाला रूप; 'माँ साहिबा, हम आज अनाथ हो गये,' कहकर माँ साहिबा की छाती पर सिर रखकर फफक-फफककर रोनेवाला रूप; 'विजयी बनकर लौटो,' कहते हुए हमें भागानगर की विजय-यात्रा के लिए विदाई देनेवाला रूप; पन्हालगढ़ की रंगरूपी पिण्डी के समान ही सदा विविध भावों की छटा बिखेरनेवाली यह मुखमुद्रा आज कितनी शान्त है!' महाराज की धारदार नासिका की ओर तथा कान के कोनों की ओर पतले होते गये नेत्रों की ओर सम्भाजी न जाने कितनी देर देखते रह गये।

'आपके महाराज बड़े श्रेष्ठ पुरुष हैं।' कवि की वाणी उनके मन में गूँजने लगी। इसी बीच बड़े महल की दासी चन्द्रा दो बार चक्कर लगा गयी।

काफी देर बाद महाराज की आँख खुली। अधखुली पलकों में से उन्हें सम्भाजी का चमचमाता टोप दिखाई दिया। "तुम?" कहते हुए महाराज सोते से उठ बैठे। धूप की तिरछी किरणों से जैसे तलवार का फल झिलमिला उठता है, यों उनके मुखमण्डल पर असीम आनन्द और सन्तोष छलक उठा।

उन्हें उठा हुआ देखकर सम्भाजी झटपट पलँग से उठे और कमर तक झुककर अभिवादन करने लगे।

"रहने दो, रहने दो। बैठो यहाँ। हमें विश्वास था कि तुम आओगे। यह खाँसी इस दृष्टि से हमारी उपकारक ही सिद्ध हुई है।" बोलने के कारण महाराज को ढाँस लगी। सम्भाजी का उस ढाँस पर भला क्या वश था, फिर भी वे व्याकुलतावश आगे को झुक गये।

कुछ देर में ढाँस कम हो गयी। इस कष्ट से महाराज का मुख लाल हो उठा था।

"शम्भूऽ, हमें तुम्हारी निडरता पर सचमुच बहुत अचम्भा होता है। हमारे पास तुम्हारी आयु में इतनी निडरता होती, तो माँ भवानी की कृपा से हम इससे भी अधिक कुछ कर दिखाते, जितना कि हम कर पाये हैं।" महाराज भूतकाल में पहुँच गये थे।

थोड़ी देर ठहरकर फिर कहने लगे, "परन्तु यदि हर एक अवसर पर निडरता को दाँव पर चढ़ा दिया जाय, तो उसका क्या परिणाम निकलता है, यह तुम अब समझ गये होगे। तुम्हारे कारण एक सती ने अपनी आहुति दे डाली। इसकी पूर्ति तुम कभी भी न कर पाओगे। किसी की कीर्ति अथवा अपकीर्ति की अपेक्षा उस स्त्री के प्राण अधिक मूल्यवान थे।" गले की ख़राश के कारण सूखी खाँसी के दौरे फिर एकदम शुरू हो गये। सम्भाजी असहाय होकर खाँसी के कष्ट को देखे जा रहे थे। उनके मन को जैसे कोई मरोड़ता-हिलाता जा रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

“हमें दुःख है तो एक ही बात का। तुम अपने मन की चुभन हमें कभी नहीं बताते। हमसे कहने में डरते हो। सब लोग हमें छत्रपति मानते हैं, तुम भी उसी प्रकार हमें छत्रपति ही मानते हो। भूल जाते हो कि हम तुम्हारे आबासाहब हैं।” हृदय की किसी अज्ञात व्यथा के कारण महाराज बोलते-बोलते रुक गये।

“तुम यदि हमारे स्थान पर होते, तब जान पाते कि छत्रपति को अपने मन को लोहा बनाकर पहले अंगारों पर तपाना पड़ता है और फिर उसे निहाई पर रखना पड़ता है। तनिक सोचो—एक सुहागिन का व्यर्थ ही बलिदान हो गया। आज माँ साहिबा जीवित होतीं, तो तुम अथवा हम कौन-सा मुँह लेकर उनके सम्मुख जा पाते? शम्भू, उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए पाचाड़ के घण्टानाद को कभी अनसुना मत करना।” छत्रपति ने आँखें बन्द कर ली थीं।

“आबाऽऽ!” सम्भाजी गोदावरी वाली घटना से भीतर-ही-भीतर सुलग रहे थे। पलँग पर सिर टेककर वे सिसकने लगे। छत्रपति की बातों ने उनके हृदय पर गहरी चोट की थी।

“शान्त होओ शम्भू, धीरज रखो!” सम्भाजी की पीठ पर महाराज का कड़ाधारी हाथ फिर रहा था—थपथपाता हाथ कुछ समझा रहा था। आकाश सूर्य को शान्त कर रहा था।

“वैद्यराज आ गये, उठो,” महाराज ने जानकारी दी। राजवैद्य औषध देने आये थे। उन्हें देखकर महाराज ने कहा, “आइए। अब हमें मात्रा की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ढाँस काफी कम हो गयी है।” परन्तु ऐसा कहते समय महाराज ने उठती हुई ढाँस को बड़ी कठिनाई से कण्ठ में दबा रखा। इस प्रयत्न में उनके मुख पर, नसों पर जो तनाव आ गया था, वह सम्भाजी से छिपा नहीं रहा। उनके मन में कवि के शब्द अभी तक गूँज रहे थे—‘आपके महाराज अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष हैं।’

महाराज की खाँसी अब काफी ठीक हो गयी थी। राजवैद्यों की सलाह थी कि उन्हें जलवायु परिवर्तन की आवश्यकता है। अतः छत्रपति ने निर्णय किया कि वे विश्राम के लिए सातारा के क़िले में जाकर रहेंगे। उनके प्रयाण की तैयारियाँ की जाने लगीं। अब शीतऋतु का प्रकोप भी बहुत कम हो चुका था।

सम्भाजी कवि कुलेश, केशव पण्डित तथा ऊधो योगदेव के साथ धर्मग्रन्थ, पुराण, राजनीति आदि के विषय में चर्चा करते बैठे थे कि इतने में उन्हें ख़ासमहल की ओर से बुलावा आया।

‘बुलावा भला क्यों आया होगा?’ मन में इसी बात को सोचते-विचारते हुए सम्भाजी ख़ासमहल के बैठकवाले कक्ष में आये। उन्होंने महाराज को आदरपूर्वक मुजरा किया, उसी समय उनका ध्यान कक्ष में हाथ बाँधे खड़े एक पगड़ीधारी व्यक्ति की ओर गया।

“युवराज, ये हैं उमाजी पण्डित। हमने इन्हें विशेष प्रयोजन से बुलाया है।” महाराज ने उस पगड़ीधारी व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा।

“हम सातारा जा रहे हैं। इन पण्डितगणों के सहवास में तुम्हारा समय भली प्रकार बीतेगा। ये शास्त्रों के जानकार हैं। ग्रन्थों पर इनका अधिकार है। हमें विश्वास है कि इनकी संगति में तुम्हारी काव्यशास्त्र की रुचि में वृद्धि होगी।” महाराज ने पिछले दिनों घटित सब घटनाओं का विवरण प्राप्त कर लिया था। शम्भूराजा का युवराज पद महारानी जी की आँखों में चुभता है और वे युवराज को किसी झंझट में फँसाने का षड्यन्त्र रच रही हैं, यह बात छत्रपति ने ठीक प्रकार से

https://t.me/Sahityajunction

जान ली थी।

"जैसी आपकी आज्ञा," सम्भाजी ने इस बीच उमाजी पण्डित को ठीक प्रकार से देख लिया था। "चलिए, पण्डित जी।" युवराज कक्ष से बाहर निकलते हुए कहने लगे। वे बाहर जा ही रहे थे कि "ज़रा सुनो"—महाराज का स्नेह में डूबा स्वर उनके कानों में पड़ा। सम्भाजी रुक गये।

"हमने सुना है कि तुमने राधा का 'नखशिखवर्णन' काव्य लिखा है। हमें नहीं सुनाया बेटे तुमने वह! अच्छा, अब पण्डितों के सहवास में रहकर कुछ ऐसी कविता रच डालो, जो तुम हमें भी सुना सको।"

सम्भाजी का चेहरा फक पड़ गया। वे 'जी' कहते हुए दौड़कर महाराज की नज़रों से ओझल हो गये।

महाराज सातारा चले गये। रायगढ़ अब सोयराबाई के अधीन हो गया। सम्भाजी पण्डितों के सहवास में शास्त्र-पुराणादि की चर्चा में व्यस्त हो गये।

अभी एक पखवाड़ा ही बीता था कि सातारा से एक हरकारा आया। वह दुर्ग पर चढ़कर हाँफते हुए रायगढ़ पहुँचा। हरकारा जो पत्र लाया था, उसे पढ़कर सारा दुर्ग चिन्ता-सागर में डूबने लगा। लिखा था कि महाराज के स्वास्थ्य पर गम्भीर रोग ने आक्रमण किया है। खाया हुआ भोजन वमन के रूप में बाहर निकल आता है। तीव्र शिरोवेदना से वे त्रस्त हैं। उन्हें तेज़ बुख़ार भी है।

चिन्ता में डूबे सम्भाजी पुतलाबाई के महल में आये। वहाँ दास-दासियाँ यात्रा के लिए आवश्यक सामान दो सन्दूक़ों में भर रही थीं। येसूबाई उन्हें सूचनाएँ देती हुई बाहर-भीतर आ-जा रही थीं।

चिन्तातुर पुतलाबाई ने कपड़े से ढँकी एक घड़िया येसूबाई को देते हुए कहा, "इसे डोली में रख दो। यह सन्दूक़ में नहीं रह पाएगी।"

"यह क्या है?" येसूबाई ने ऊपर चढ़ी भौंहों द्वारा पूछा।

"यह खटाई है। सब लोग कहते हैं कि यह उल्टी में बहुत लाभ देती है।" पुतलाबाई का मन पहले ही सातारा पहुँच चुका है, यह येसूबाई ने जान लिया। उन्होंने वह घड़िया एक ताक़ में सँभालकर रख दी।

सब राजस्त्रियाँ इसी प्रकार व्याकुलता में डूब-उतरा रही थीं कि 'बड़े महल' की एक दासी ने आकर अपनी 'बड़ी महारानीजी' की इच्छा पुतलाबाई को कह सुनायी : "तुम सब जनी सुबह के नाश्ते के बाद क़िले से उतरकर चल पड़ो। महारानी जी दुपहरी ढलने के बाद क़िले से उतरेंगी।" इस सन्देश को सुनकर पुतलाबाई सम्भाजी तथा येसूबाई की ओर देखती रह गयीं। यह ऐसा मामला था, जिस पर किसी का कोई वश नहीं था।

सामान बाँध लिया गया। सम्भाजी ने कहारों को आज्ञा दी कि वे नाश्ते से पहले ही डोलियाँ तैयार रखें।

सबने देवमहल में जाकर जगदम्बा के दर्शन किये। पुतलाबाई और येसूबाई डोली में बैठ

https://t.me/Sahityajunction

गयीं। सम्भाजी पुतलाबाई की डोली के बग़ल में चलने लगे। नौकरों ने सन्दूक़ सिर पर उठा लिये। राजा के विशेष सैनिक दोनों ओर अनुशासन में चलने लगे। डोलियाँ क़िले से नीचे उतरने लगीं।

येसूबाई ने खटाई से भरी घड़िया अंजलि में ही धीरे से सँभालकर पकड़ी हुई थी, ताकि खटाई बिखर न जाय, परन्तु उनका मन इधर-उधर झोंके खा रहा था। आबासाहब के अनेक रूप उनके मन में आ-जा रहे थे। 'इतना नन्हा-सा कीड़ा, परन्तु कितना भार ढोकर ले जा रहा है, बहू'—एक बार महाराज ने चींटियों की पंक्ति की ओर देखकर कहा था। 'तुझे-हमें आँखें मिली हैं जगदम्बा की। इनसे आँसुओं का प्रवाह बहना उचित नहीं।' बातें याद कर-करके येसूबाई की आँखें सजल हो उठीं।

सम्भाजी पुतलाबाई की डोली की छत को एक हाथ से पकड़े हुए चल रहे थे। कदम बढ़ रहे थे और मीनारें, गंगासागर, महादरवाज़ा पीछे छूटते जा रहे थे, परन्तु एक विचार सम्भाजी का पीछा नहीं छोड़ रहा था। बार-बार ध्वनि-प्रतिध्वनि मन में हो रही थी—'तुम यदि हमारे स्थान पर होते, तब जान पाते कि छत्रपति को अपने मन को लोहा बनाकर पहले अंगारों पर तपाना पड़ता है और फिर उसे निहाई पर रखना पड़ता है।'

सब डोलियाँ पाचाड़ तक आ पहुँचीं। मन की शंका-कुशंकाओं का निवारण करने की दृष्टि से सबने जिजाऊ की समाधि की धूलि को माथे से लगाया। नौकरों ने सन्दूक़ बैलों की पीठ पर लाद दिये। सशस्त्र सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गयी। सम्भाजी किरमिजी घोड़े पर सवार हो गये। कहार लयबद्ध चाल चलने लगे।

दूर सातारा में शय्या पर पड़े व्याधिग्रस्त 'शिव' के दर्शनों के लिए भोसले वंश का यह त्रिदल बेलपत्र अब वरंद घाट की ओर बढ़ रहा था।

महाराज सातारा दुर्ग के एक कक्ष में पलँग पर लेटे हुए थे। कक्ष के झरोखों के कपाट बन्द किये हुए थे और दरवाज़े-खिड़कियों पर परदे लगे हुए थे। महाराज मर्मान्तक पीड़ा से व्याकुल हो रहे थे। कमरे में पूरी तरह अँधेरा था। आने-जानेवाले को केवल पहचाना जा सके, इस कारण आलों में जलाये हुए दो दीवट भी मन्द-मन्द और उदास-से जल रहे थे।

पुतलाबाई महाराज के पैताने की ओर बैठी उनके पैर दबा रही थीं। वे अपने आप को भूली-सी कहीं खोयी हुई थीं। येसूबाई हाथ में घड़िया थामे पलँग के पास खड़ी थीं। उनके पीछे महारानी सोयराबाई खड़ी थीं। वे पूरे मुख को आँचल से ढाँके हुए थीं, परन्तु उनकी आँखों में एक विचित्र-सी चंचलता छायी हुई थी। इस चंचलता को अन्य कोई भाँप भी नहीं सकता था, वहाँ अन्धकार जो छाया हुआ था। सम्भाजी महाराज के तकिये के निकट उनका हाथ हाथों में थामे बैठे थे। ज्वरग्रस्त महाराज का हाथ गर्म तवे के समान तप रहा था।

"शम्भू," महाराज ने कराहते हुए अतीव कष्ट से पुकारा। उन्होंने सम्भाजी के हाथ को अपने हाथ में और अधिक ज़ोर से दबाया। दबाने की यह क्रिया ही बता रही थी, वे कुछ कहना चाहते हैं।

"जी," कहते हुए सम्भाजी ने झुककर पुकार का उत्तर दिया। उनके गले की कौड़ियों की माला झूलकर महाराज की छाती से जा लगी। इस माला के स्पर्श से ही महाराज का क्षीण,

https://t.me/Sahityajunction

निर्बल हुआ धैर्य महाराज की धँसी हुई आँखों में जैसे फिर से उभर आया। परन्तु सम्भाजी उस मन्द प्रकाश में इस परिवर्तन को नहीं देख पाये।

"अब कैसा लगता है आबासाहब?"

महाराज को अपना सिर दायें-बायें हिलाने में भी असह्य वेदना हो रही थी। अपनी कान्तिहीन आँखों से महाराज सम्भाजी के चमकते नेत्रों की ओर टक लगाकर देखते ही जा रहे थे।

वैद्य शिवरामपन्त कक्ष में प्रविष्ट हुए। वे छोटी-सी सीप में कोई औषध-मात्रा भरकर लाये थे।

"स्वामीऽऽ", नेत्र बन्द कर लेटे हुए महाराज के निकट आकर वैद्यराज ने अतीव स्नेह-ममतामयी वाणी से पुकारा। महाराज ने आँखें खोलीं।

"औषध-मात्रा लीजिए, स्वामी!" वैद्यराज ने सीप को आगे बढ़ाया और सम्भाजी की ओर देखा, ताकि वे महाराज को सहारा देकर बिठावें। सम्भाजी ने गरदन के नीचे हाथ लगाकर महाराज को धीरे से बैठा दिया। वैद्यजी ने उँगलियों से वह औषध-मात्रा महाराज को चटा दी।

पुतलाबाई ने एक वस्त्र से महाराज के होठ पोंछ दिये। कुछ क्षण यूँ ही बीते। अभी वह औषधि पेट में पहुँची ही थी कि जैसे तेज़ हवा बादलों को रगड़-मसलकर रख देती है, उसी प्रकार महाराज की आँतों को जैसे किसी ने मथ डाला। उनके हाथ-पैर सीधे खिंच गये, गले की घाँटी ऊपर-नीचे होने लगी।

घबराए हुए वैद्यजी ने महाराज को सहारा देते हुए पुकार कर कहा, "चिलमची लाओ!"

पुतलाबाई पलँग के नीचे रखी चिलमची ज्योंही महाराज के मुख के निकट लायीं कि एक ज़ोर की उल्टी हुई और सारी औषध-मात्रा भीतर के कफ़सहित बाहर आ गयी। वैद्यराज महाराज की पीठ पर हाथ फिरा रहे थे।

"स्वामी को लिटा दो।" वैद्यराज ने बगल से उन्हें थामा हुआ था। सम्भाजी ने महाराज की गर्दन को नीचे हाथ का सहारा दिया और उन्हें पुनः लिटा दिया।

"शिव, शिव!" वैद्यराज मन में न जाने क्या कुछ विचारते हुए, उँगलियों को आपस में गूँथ कर, भारी कदमों से कक्ष से बाहर निकल गये।

एक ही क्षण में सम्भाजी के मन में असंख्य विचारों ने क्षोभ मचा दिया। वे पलँग से उठे और वैद्यराज के पीछे-पीछे चले गये।

"वैद्य महाराज, हमारा धीरज छूटा जाता है। अब तो महाराज की ओर देखने का भी साहस नहीं होता। यह कैसा रोग है वैद्यजी?" सम्भाजी ने पूछा।

वैद्यराज होरसे को धोकर साफ कर रहे थे।

"हम उपचार के प्रयत्नों में कोई कमी न रखेंगे। परन्तु युवराज, अब हम अनुभव कर रहे हैं कि हमारे प्रयत्नों की भी एक सीमा है।" वैद्यजी ने सम्भाजी के मूल प्रश्न को टालते हुए गम्भीरता से उत्तर दिया।

"परन्तु महाराज को हुआ क्या है, यह तो बताइए। क्या किसी और को भी आपकी सहायता के लिए बुला लिया जाय?"

"हमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु इतना अवश्य है कि अब महाराज का स्वास्थ्य संकट की

https://t.me/Sahityajunction

अवस्था में पहुँच गया है।" वैद्यजी के माथे का गन्धद्रव्य का तिलक भी सिकुड़ गया।

"क्या कहना चाहते हैं आप?" सम्भाजी धीरे से चीख उठे, जैसे सौ बिच्छुओं ने उन्हें काटा हो।

"युवराज...युवराज, आपको कैसे बताएँ! हम स्वयं ही घबरा गये हैं।"

"वैद्यजी, कहिए तो सही, क्या करना होगा हमें? हम अपने प्राण देकर भी आबासाहब को बचा लेंगे।" सम्भाजी ने एकदम आगे को बढ़कर वैद्यजी का हाथ अपने हाथों में लेकर ज़ोर-ज़ोर से हिलाते हुए कहा।

"प्राणों की बलि देकर ही यदि रोग दूर हो पाता, तो हम स्वयं ही स्वामी के चरणों में अपने प्राण समर्पित कर देते।" वैद्यजी ने शान्ति से कहा।

"तो फिर करना क्या चाहिए, कहिए न?" सम्भाजी के प्राण आँखों में आ समाये थे।

वैद्यजी ने सिर नीचे झुका लिया। बोले, "अब मनुष्य कर सके, ऐसा कर्म तो केवल एक ही है।"

"क्या?"

"कुलदेवी भवानी से प्रार्थना।" वैद्यजी की आँखें भर आयी थीं।

"वैद्यऽजी!"

"युवराज, महाराज के रोग का नाम जानना चाहते हैं आप? परन्तु इसके लिए आपको कानों को पत्थर और हृदय को लोहा बनाना पड़ेगा। क्या तैयार हैं आप इसके लिए?"

सम्भाजी के मुख पर असंख्य शंकाएँ नाच उठीं।

"जनार्दन," वैद्यजी ने अपने शिष्य को पुकारा, जो होरसे को थैली में बन्द कर रहा था। "कक्ष में जाकर वह चिलमची ले आ।" वैद्यजी ने उससे कहा।

जनार्दन भीतर गया और कुछ ही देर में चिलमची लेकर बाहर आ गया। वैद्यजी ने चिलमची अपने हाथ में ली और वे झरोखे के पास गये।

"युवराज, महाराज के वमन में निकली यह औषध देखिए।" सम्भाजी काँपते पाँवों से झरोखे के पास गये। उन्होंने देखा कि चिलमची में पीले-नीले कफ़ का लोंदा है। उस विविध रंगों के कफ़ को देखकर सम्भाजी की आँखों का रंग भी बदलने लगा।

"बैद्यजी ऽऽ!" सम्भाजी के मुख से भयपूर्ण चीख निकल गयी, जैसे किसी ने उनका गला घोंट दिया हो।

"हाँ, युवराज। स्वामी को विष दिया गया है!" वैद्यजी स्तब्ध होकर जड़वत खड़े रह गये।

'विचित्र है यह रोग भी। आमाशय में गये हुए अन्न की गाँठें बन जाती हैं...। कोष्टबद्धता के कारण तीव्र शिरोवेदना हो रही है। इसके कारण समस्त शरीर में तीव्र ज्वर फैला हुआ है। हमने भरपूर प्रयत्न किये कि शरीर के भीतर के अन्न को वमन द्वारा निकाल देवें, परन्तु सम्भव नहीं हुआ। उस गाँठ बने अन्न को भीतर ही भीतर गलाकर पानी बना दिया जाय, ऐसा भी प्रयत्न किया हमने, परन्तु औषधि-मात्रा पेट में टिकती ही नहीं।' वैद्यराज शून्य में ताकते हुए जैसे अपने में ही बात करते हुए कह रहे थे। वे भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये थे।

https://t.me/Sahityajunction

कवि भूषण के सर्जा राजा को, उस छत्रपति सूर्य को, मृत्युरूप राहु ने अपने चक्र में फँसा लिया था। सातारा दुर्ग में एकत्रित सभी लोग चिन्ता की रस्सियों से जकड़ दिये गये थे।

सातारा दुर्ग में रात के दूसरे पहर के घण्टे की ध्वनि उठी और फैले अन्धकार में डूब गयी। क़िले की तल भूमि के द्वार पर रात को जो प्रहरी नियुक्त था, वह तेज़-कदमों से उपरिकोट के भीतर आया। छत्रपति के महल पर पहरा दे रहे सशस्त्र सैनिकों से उसने कुछ खुसफुसाकर बात की और भाला हाथ में थामकर झटपट द्वार के भीतर चला गया।

कक्ष में छत्रपति के पलँग के आस-पास सम्भाजी, पुतलाबाई, येसूबाई, हम्बीर राव, शिवराम वैद्य आदि लोग चिन्ताग्रस्त खड़े थे। नींद अभी-अभी महाराज की पलकों पर छायी थी। सोयराबाई उनकी पलकों की ओर देखती खड़ी थीं।

"छोटे महाराज, क़िले के नीचे की ड्योढ़ी में सन्त रामदासजी के कोई शिष्य पधारे हैं। कहते हैं कि इसी समय छत्रपति से मिलाओ। हमारा कहना मानते ही नहीं हैं।" ड्योढ़ी के पहरेदार ने धीरे से कहा।

सम्भाजी ने मामा हम्बीरराव की ओर देखा और हम्बीरराव उस दृष्टि का आशय समझकर "चल हमारे साथ"—कहते हुए प्रहरी के साथ कक्ष से बाहर आ गये। क़िले के निचले द्वार पर आकर उन्होंने दरवाज़े की दुआरी में से सिर निकालकर मशाल के मन्द प्रकाश में बाहर खड़े व्यक्ति को पहचानने का प्रयत्न किया। अन्धकार को चीरता हुआ धनुष की टंकार के समान रामनाम का घोष गूँज उठा, "जयऽ जयऽ रघुवीरऽ समर्थ!"

हम्बीरराव दुआरी से बाहर निकल आये। समर्थगुरु रामदास के एक तपस्वी शिष्य कल्याणस्वामी बाहर खड़े थे। कमर तक लम्बी और घनी काली दाढ़ी, गले तक लटकते जटाजूट, बाहु, कलाई और कण्ठ में रुद्राक्ष की मालाएँ, मस्तक पर भस्म की रेखाएँ, हाथ में कमण्डलु और टेका, ढाल के समान गोल और तेज पुंज मुख, बगल में बैरागियोंवाली झोली धारण किये कल्याणस्वामी वहाँ उपस्थित थे।

"सेनापति, हमें आदेश दिया गया है। कृपया थोड़ा भी समय व्यर्थ न गँवाओ, हमें तुरन्त छत्रपति के पास ले चलो।"

"चलिए," कहते हुए और तलवार की मूठ पर हाथ रखकर हम्बीरराव ने कल्याणस्वामी को दुआरी के भीतर चलने का संकेत किया। खड़ाऊँ खटखटाते हुए कल्याणस्वामी छत्रपति के कक्ष की प्रस्तर-निर्मित देहली तक आये और वहाँ उन्होंने खड़ाऊँ उतार दीं तथा भीतर प्रविष्ट हुए। उन्हें देखते ही पलँग के आस-पास उपस्थित सभी आत्मीय जन आगे बढ़ आये। सम्भाजी ने उनके चरण छुए तथा राजकुल की स्त्रियों ने आँचल के कोने हाथ में पकड़कर उन्हें त्रिवार नमस्कार किया। सब मौन खड़े थे, परन्तु सबके व्यवहार से एक ही भाव प्रकट हो रहा था —'स्वामीन्, हमारे महाराज को बचा लीजिए।'

कल्याणस्वामी एक देवदूत के समान मन्द-मन्द चलते हुए पलँग पर लेटे हुए उस क्षात्रतेज को एकटक निहार रहे थे। पलँग की चौखट पर बैठकर उन्होंने अपने करकमलों से महाराज के मस्तक का स्पर्श किया और बिलकुल जिजाऊ के समान ही प्यार-ममता में डूबी पुकार लगायी, "शिवबा राजा!"

https://t.me/Sahityajunction

उस चेतनामय गरुड़पंख ने जैसे ही उस लेटे हुए क्षात्रतेज के मस्तक का स्पर्श किया, महाराज की पलकें खुल गयीं। काले बादलों के बीच से जैसे अकस्मात् पूर्णिमा का चन्द्रमा दिखाई देता है, कल्याणस्वामी महाराज को इसी प्रकार दिखाई दिये। इस निर्बल अवस्था में भी वह संस्कार-सम्पन्न क्षत्रिय स्वामी के चरणों में प्रणाम करने के लिए उठने का प्रयत्न करने लगा।

"लेटे रहो राजन्, नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है?" कल्याणस्वामी ने महाराज को उठने नहीं दिया।

"एक सीप और थोड़ा दूध लाओ।" कल्याणस्वामी जैसे अपने आपसे बात करते हुए कहने लगे। फिर उन्होंने काँख में लटक रही झोली को आगे करके उसमें से दो पुड़ियाँ निकालीं।

"औषध-मात्रा पेट में टिक नहीं पाती। तुरन्त वमन के रूप में बाहर आ जाती है। रोगी की अवस्था गम्भीर है। स्वामी को...हमारे महाराज को..." शिवराजपन्त वैद्य ने पुड़ियों को देखा, तो उनसे कहे बिना रहा नहीं गया।

"वह सब हमें ज्ञात है। इसी कारण गुरुदेव ने यह भस्म और चूर्ण देकर हमें भेजा है।" कल्याणस्वामी ने एक बार रामनाम का जाप किया और दोनों पुड़ियों को अपने मस्तक से लगाया। फिर खरल में दूध के साथ घोंटे हुए उस चूर्ण को कल्याणस्वामी ने सीप में भरा और 'जयऽ जय रघुवीर समर्थ' कहते हुए महाराज को पिला दिया। यह चूर्ण किसी दिव्य वनस्पति का था।

महाराज के नेत्र बन्द थे, मुखमुद्रा क्षीण तथा निस्तेज दिखलाई देती थी। क्षण-भर के लिए छत्रपति के गले की घाँटी में हलचल-सी हुई। इसे देखकर सम्भाजी के मन में एक तीखी कटार-सी चुभती चली गयी। क्या फिर उल्टी होगी? परन्तु जैसे किसी गहरी गुहा से ध्वनि निकल रही हो, इस प्रकार छत्रपति के मुख से क्षीण स्वर में यह घोष प्रकट हुआ, "जयऽ जयऽ रघुवीरऽ समर्थ!!"

फिर महाराज किसी का सहारा लिये बिना ही शान्तिपूर्वक बिस्तर पर लेट गये। वैद्यजी ने एक गहरी उसाँस छोड़ी। सम्भाजी सब-कुछ भूलकर कल्याणस्वामी के दाढ़ीधारी, तेजस्वी, बैरागी मुखमण्डल की ओर देखते ही रह गये, जैसे देवमन्दिर में जगदम्बा की मूर्ति की ओर निहार रहे हों। इस भूली-सी अवस्था में उन्हें यह भी ज्ञात नहीं हो पाया कि 'बड़े महल' की 'बड़ीरानी साहिबा' कब उस कक्ष से बाहर चली गयी थीं।

"शम्भू!" प्रभातकाल की शीतलता में एक क्षीण पुकार उठी। सम्भाजी रात-भर जागते हुए पलँग के किनारे बैठे रहे थे। प्रातःकाल की सुखद शीतल वायु के कारण उनको झपकी आ गयी थी। परन्तु ज्योंही उन्होंने पुकार सुनी, उनकी तन्द्रा टूट गयी और 'महाराज साहब' कहते हुए वे आगे को झुके। उनके इस एक शब्द में ही न जाने कितने प्रश्न छिपे हुए थे।

"अब हम बहुत स्वस्थ हैं।" छत्रपति के पीले मुख पर भी अब आत्मविश्वास की रेखाएँ झलक रही थीं।

"स्वामी कहाँ हैं?" शिवाजी ने कुछ रुककर प्रश्न किया।

https://t.me/Sahityajunction

“जी, वे यहीं हैं। वे एक कोठरी में रातभर जलती धूनी के सामने ध्यानमग्न बैठे रहे हैं। उन्हें सूचना भिजवाएँ क्या?” सम्भाजी का मुखमण्डल प्रसन्नता से खिल उठा था। बाहर वृक्षों-झुरमुटों में पक्षीगण कलरव कर रहे थे।

“नहीं, नहीं, अभी नहीं। उनकी ध्यान-समाधि पूरी होने के बाद उन्हें सूचना दो। कहो कि आपके चरणों के दर्शनों के बिना हमें शान्ति नहीं।”

“जी,” सम्भाजी स्नानगृह की ओर चले गये। वहाँ मुँह-हाथ धोकर वे कल्याणस्वामी की कोठरी के सामने घूमने लगे और उनकी ध्यान-समाधि के पूर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगे।

दिन आधा हाथ चढ़ आया। कोठरी में से रामनाम का घोष गूँज उठा। सम्भाजी तो कल्याणस्वामी के दर्शनों के लिए व्यग्र थे ही—वे तुरन्त भीतर गये।

“स्वामीऽऽ,” कल्याणस्वामी के चरणों पर माथा रखकर सम्भाजी आगे कुछ भी बोल नहीं पाये।

“युवराज, छत्रपति का स्वास्थ्य अब कैसा है?” स्वामीजी ने युवराज को धीरे से ऊपर उठाया।

“अब वे बहुत अच्छे हैं, स्वामी! महाराज ने आज हमसे बात भी की है। वे आपके दर्शनों के इच्छुक हैं।” व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए कल्याणस्वामी को देखकर आज सम्भाजी को समर्थगुरु का स्मरण हो आया।

एक नौकर लोटा और परात लेकर उपस्थित हुआ। कल्याणस्वामी ने हाथ-मुँह धोये। गीले हाथों से भुजा, कण्ठ तथा मस्तक की पुरानी भस्म-रेखाएँ धो डालीं तथा व्याघ्रचर्म के निकट रखी अपनी झोली में से भस्म निकालकर नवीन दिवस की नवीन भस्म-रेखाएँ अंकित कर लीं। फिर झोली कन्धे पर लटका ली तथा कमण्डलु और टेका उन्होंने हाथ में धारण कर लिये। फिर एक बार उन्होंने धुँधुआती हुई धूनी पर दृष्टि डाली। ‘जयऽ जयऽ रघुवीरऽ समर्थ’ का, उदित होते हुए सूर्यदेव के समान स्पष्ट घोष सारी कोठरी में गूँज उठा।

“चलो, युवराज। इस समय तुम्हारे मन में जो विचार बार-बार आ रहा है, वही विचार तुम्हारे छत्रपति पिता के मन में भी आया था। जानते हो कौन-सा?—वैराग्य धारण करने का। परन्तु गुरुदेव ने उन्हें हितोपदेश किया। वही हितोपदेश हम आज तुम्हें भी बताते हैं। तुम्हारा धर्म है—राजधर्म। संकट तो सदैव उसके साथ ही लगे रहते हैं। तुम भी बैरागी ही हो—उस जगदम्बा के। जो तुम्हें अथवा तुम्हारे महाराज को मारना चाहता है, उसके फिर भी दो ही हाथ हैं, परन्तु रक्षणकर्त्री उस जगज्जननी के आठ हाथ हैं, यह कभी मत भूलो। चलो।” स्वामी ने मानो सम्भाजी के मन की बात ताड़ ली थी और इसी कारण ये बातें वे कह रहे थे।

स्वामीजी कोठरी से बाहर निकल पड़े। सम्भाजी के मन की सभी शंका-कुशंकाओं का अब निवारण हो चुका था। वे स्वामीजी की पीठ पर बँधे व्याघ्रचर्म के काले पट्टों को देखते हुए जैसे आकर्षित होकर उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे। व्याघ्रचर्म ने आज उनके मन को इस विचार की प्रेरणा दी—‘महाराज साहब का जीवन हो या हमारा जीवन हो, अन्ततः यह भी इस व्याघ्रचर्म के समान ही है न! सुख और दुख के काले-काले पट्टों से चित्रित।’

कल्याणस्वामी ने महाराज को आशीर्वाद दिया। वैद्यजी को रोग-निवारक चूर्ण तथा भस्म की

https://t.me/Sahityajunction

मात्रा सौंपकर वे सबसे विदा लेकर दुर्ग से नीचे उतरने लगे। सम्भाजी प्रथा के अनुसार उनके साथ-साथ तलभूमि के महाद्वार तक आये।

वहाँ पहुँचकर कल्याणस्वामी ने सम्भाजी के पुष्ट कन्धों को थपथपाते हुए कहा, "अच्छा, युवराज। अब तुम लौट जाओ।" फिर वह चक्रवर्ती संन्यासी चल पड़ा और सम्भाजी वहीं खड़े-खड़े उनकी आकृति को आँखों से ओझल होने तक देखते रहे। उनकी मन-रूपी कोठरी में जो घोष गूँज रहा था—उसे केवल वे ही सुन पा रहे थे—'तुम भी बैरागी ही हो—उस जगदम्बा के!!'

एक पखवाड़ा बीत गया। महाराज के शरीर में शनैः-शनैः पुनः शक्ति लौट रही थी। खाया हुआ अन्न पचने लगा था। इस समय तक पश्चिमी समुद्र में घूमनेवाले अँग्रेज़ों के जहाज़ अपने हर गोदाम और बस्तियों तक ख़लीते भेजकर यह ख़ुशख़बर फैला चुके थे : 'वह विद्रोही शिवाजी सातारा के क़िले में विष दिये जाने के कारण मौत का शिकार हो गया है। फिर भी हमारे गोदामों के व्यवस्थापक यह न समझ लें कि अब कोई ख़तरा नहीं रहा। शिवाजी का बेटा सम्भाजी अब राजगद्दी पर बैठ गया है। वह अपने पिता के समान ही कष्टदायक है। कहा जाता है कि उसी ने अपने पिता को विष देकर मरवाया है।'

मुग़लिया चौकियों से साँडनी सवार ख़लीतों की थैलियाँ कमर में लटकाकर ख़ुशी से झूमते-मटकते बरहानपुर की ओर दौड़ रहे थे। उन ख़लीतों में लिखा था : 'क़ाफ़िर शीवा ज़हरी आफ़त से दफ़ा हो गया। उसके कमीने बच्चे ने ही उसको ज़हर पिला दिया। रहमदिल अल्लाताला ने ही उस कम्बख्त को यह ख्याल दिया।'

ये सब कोरी अफ़वाहें थीं, यह कहने के लिए किसी ज्योतिषी की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु ये अफ़वाहें बे-सिर पैर की नहीं थीं—सातारा के दुर्ग से अत्यन्त सुनियोजित ढंग से ये फैलायी जा रही थीं।

महाराज को सान्ध्यकालीन नमस्कार करने के लिए सम्भाजी उनके कक्ष में आये थे। महाराज अब इतने सशक्त हो चुके थे कि कक्ष में ही घूम-फिर सकें। युवराज ने उन्हें नमस्कार किया। एक सेवक धूपदानी लेकर कक्ष में आया और सुगन्धित धूप घुमाकर चला गया। कक्ष की दृढ़ प्रस्तरों से निर्मित भित्तियों में बने आलों में छोटी मशालें जल रही थीं। इन मशालों और आलों को सुगन्धित धूप के वलयों ने घेर लिया।

स्थान-स्थान पर, खम्भों के निकट अथवा दीवार से लगकर कई सशस्त्र प्रहरी खड़े थे।

"महाराज साहब..." सम्भाजी की आवाज़ सुनकर छत्रपति, जो हाथ पीठ पर बाँधे घूम रहे थे, एकदम रुक गये।

"कहो!" छत्रपति की आवाज़ गम्भीर थी।

युवराज ने एक बार उन सशस्त्र प्रहरियों की ओर देखा जो पुतलों के समान स्थिर बने खड़े थे। महाराज ने सम्भाजी की दृष्टि का आशय तुरन्त समझ लिया और ताली बजायी। प्रहरियों का हवलदार ताली सुनकर तुरन्त सामने आया और मुजरा करके आज्ञा पाने के लिए खड़ा हो गया।

"हवलदार, हम एकान्त चाहते हैं।" इसी समय महाराज का ध्यान इस ओर गया कि उनका

https://t.me/Sahityajunction

अँगरखा बगलों में कितना ढीला हो गया था। इस विचार से वे बहुत व्याकुल हो उठे।

पुतले हिले। एक-एक करके सभी प्रहरी कक्ष से बाहर हो गये।

"अब अगली सूचना मिलने तक इस महल में किसी का भी आना-जाना बन्द रखी। दरवाज़ा बन्द कर लो।" हवलदार को आदेश मिला। अब कक्ष में पूर्ण एकान्त हो गया। कुछ क्षण यूँ ही तनाव और उत्सुकता में बीते।

"कहो, क्या कहना चाहते हो?" महाराज के बोलों ने शान्ति को दूर भगा दिया। फिर भी युवराज मौन ही बने रहे। अपनी बात को क्योंकर कहें, इसी असमंजस में वे डूब गये। फिर एक सहज, स्वाभाविक शब्द अपने—आप मुख से निकला, "आबासाहबऽ!"

"हाँ।"

"आबासाहब, हम आपको सावधान रहने का संकेत देने आये हैं। कहे बिना हमसे रहा नहीं गया, इसलिए..."

"कैसी सावधानी?" छत्रपति शिवपिण्डी के समान शान्त थे।

"आबासाहब, हमें आपकी आवश्यकता है, आबासाहब! हमें आपके प्राणों की...आपकी सुरक्षा की चिन्ता है। आपकी बीमारी—बीमारी..."

"शम्भू बेटा, हमारी बीमारी मामूली नहीं थी, हम जानते हैं। यहाँ उसके पीछे जो कुचक्र चल रहा है उसे भी भलीभाँति जानते हैं हम। दाँतों के बीच फँसी है, इस कारण जीभ को काट कर नहीं फेंका जा सकता। इसी कारण से हम अपना दम घोंटकर भी शान्ति और धीरज से काम ले रहे हैं। हमें सावधान रहने की तो आवश्यकता है ही, तुम्हें हमसे भी अधिक सावधान रहना चाहिए।"

अब गड़बड़ा जाने की बारी सम्भाजी की थी। वे न जाने कितनी देर तक महाराज की आँखों में ही झाँकते रहे। "तुम जानते हो शम्भू, तुम्हारे विषय में लोग क्या कहते हैं?" छत्रपति न जाने क्या बात कहेंगे, इस आशंका से ही सम्भाजी के मन में काँटा घुस गया। उनकी आँखें सजल हो आयीं, गला रुँध गया।

"तुमने...तुमने ही हमें विष दिया है!" महाराज ने ठण्डे स्वर से कहा—जैसे ध्वजदण्ड पर से ध्वज नीचे उतारा जा रहा हो। इसके बाद उनके मुख से गहरी आह निकल गयी।

"आबाऽऽ," तेल में भीगे चाबुक का आघात जैसे पीठ पर लगा हो, सम्भाजी ऐसे व्याकुल होकर छटपटा उठे। सिर भन्ना उठा। कानों की लौ में, कण्ठ में, छाती में जैसे पिघले हुए सीसे की धाराएँ बहने लगीं। वह भवानी का उपासक वस्त्र-ज्योति के समान काँप उठा। अगले ही क्षण वह महाराज के पैरों से लिपट गया। उसका सारा शरीर हिलने-काँपने लगा। कण्ठ यों अवरुद्ध हो गया जैसे तोप के मुँह में नमदे की गाँठ ठूँस दी गयी हो। 'आबाऽ ऽ' यह उनका सदैव प्रिय सम्बोधन-शब्द भी कण्ठ से न निकल पाया। राजपुत्र के राजाश्रु चक्रवर्ती राजा के चरणों पर टपकने लगे। उस युवा राजमन का दम घुटा-घुटा जा रहा था।

ऊपर का सहनशील गगन नीचे झुका। स्वयं महाराज का कण्ठ भी गद्गद हो उठा था। वे केवल युवराज की पीठ पर काँपती हथेली फिरा रहे थे—क्या कहा जाय, यह वे भी सोच न पाते थे। अकस्मात् उन्हें आभास हुआ कि एक साँवला और दूसरा केतकवर्णी मुख उनकी ओर चला

https://t.me/Sahityajunction

आ रहा है। उस रोगी शरीर को आज सईबाई और माँ साहिबा की स्मृति ने झकझोर दिया। तलघर में बन्द हथियार जैसे बहुत दिनों बाद बाहर निकाले जाएँ, इस प्रकार कुछ बोल सुदूर भूतकाल से उभरकर उनकी स्मृति से टकराने लगे—'साक्षात् रुद्र ने ही जन्म लिया है। यह बालक ऊँचे पर्वत-दुर्गों पर रहेगा...। परन्तु...इस राजपुत्र की जन्म-कुण्डली में स्वकीय जनों द्वारा विश्वासघात का योग है।'

"शम्भू, उठो, शान्त रहो।" महाराज ने पीठ थपथपाते हुए युवराज को ऊपर उठाया। सम्भाजी आज सिर उठाकर भी देख नहीं पाते थे।

"ऊपर देखो, हमारी ओर देखो," महाराज की तनिक कठोर वाणी से कक्ष भी काँप उठा। सम्भाजी की आँखें जैसे ही अपने महाराज साहब की आँखों से मिलीं, उन्हें वह प्रसंग याद आया कि जब मथुरा की अति कठिन यात्रा समाप्त कर वे राजगढ़ लौटे थे तब महाराज राजगढ़ की तलभूमि तक आये थे और उन्हें देखते ही दौड़कर उनकी ओर चले आये थे। हथेलियों से अपना चेहरा छुपाकर सम्भाजी सिसकते हुए कहने लगे, "महाराज, अब...अब तो आप ही अपने हाथों से हमें विष का प्याला दे दें। इस...इस आरोप के बारे में भला हम क्या सफाई दें? इस आरोप को सुनने की अपेक्षा तो मृत्यु भी कम कष्टदायिनी होगी।"

भावावेग में आकर महाराज ने युवराज को एकदम छाती से लगा लिया। बोले, "जगदम्बे, जगदम्बे। शम्भू, शान्त होओ। तुम्हें या हमें, मरने के लिए भी समय ही कहाँ है? शान्त होओ बेटा।"

महाराज के हाथ भी युवराज को धीरज दे रहे थे। पीठ थपथपाकर बहुत कुछ समझा रहे थे।

महाराज के मन में इसी समय युवराज के अनेक रूप चित्रमालिका के समान एक-एक कर आने लगे—सेनापति नेताजी के साथ मिर्ज़ा राजा जयसिंह की छावनी में ज़ामिन बनकर रहनेवाला निडर बालक सम्भाजी; आगरा के दरबार में भावपूर्ण नेत्रों से देखते हुए अपने आबासाहब के सामने उनके जूते ला रखनेवाला पितृभक्त सम्भाजी; शरीर पर संन्यासी के वस्त्र धारण कर मथुरा में अकेले ही रह सकनेवाला साहसी बालक सम्भाजी; प्रतापगढ़ में देवी भवानी की पूजा-ज्योति हाथ में लिये बेसुध होकर नृत्य करनेवाला बालभक्त सम्भाजी; भरे दरबार में आँखों से आँखें मिलाकर गरदन सीधी तानकर 'हमें यह आरोप मंज़ूर नहीं है' कहनेवाला स्वाभिमानी सम्भाजी।

"तुम नहीं जानते बेटे, हमें तुमसे कितनी आशाएँ हैं।" सम्भाजी को शान्त एवं स्थिर चित्त देखकर महाराज उनके मस्तक के केसरी रंग के टोप को देखते हुए पुनः टहलने लगे। उनके बोल अधूरे ही रह गये—अकस्मात् आयी सईबाई की स्मृति के कारण उनके चलते कदम भी ठिठक गये।

"तुम्हारी माँ को हमने मृत्यु से पूर्व वचन दिया था कि हम तुम्हारे 'आबा' और 'आऊ' दोनों के कर्तव्य निभाएँगे। हम तुम्हारे 'आबा' अवश्य हैं, परन्तु 'आऊ' या माँ बनने में हमारी शक्ति अधूरी रह जाती है। हमारी माँ साहिबा के स्वर्गवास से तुम्हारा सबसे बड़ा आधार ही जाता रहा है। इसीलिए अब तुम्हें स्वयं ही बहुत सावधानी से रहना होगा।" महाराज की बात से शून्यता और शान्ति सर्वत्र फैल गयी थी।

"तुम्हारे बारे में हमारे मन में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं है। हम तुम्हारे स्वभाव को ख़ूब

https://t.me/Sahityajunction

पहचानते हैं। इसी कारण हमें आज यदि चिन्ता है तो केवल तुम्हारी। युवराज, सोचो तो सही, घर की छत ही यदि सिर पर भरभराकर टूटने लगे तो शिकायत किससे और क्या की जाय? ठीक है, सब कुछ समझ लो और सावधान रहो। जाओ, निश्चिन्त होकर भोजन करो। घबराओ नहीं, हमारा स्वास्थ्य अब बहुत ठीक है। माँ भवानी तथा समर्थगुरु के कृपा-प्रसाद से हम अवश्य दीर्घायु बनेंगे। अब तुम जाओ।" छत्रपति ने अपने राज-अंश के कन्धों को थपथपाया। सम्भाजी नितान्त शान्त एवं सन्तुष्ट मन से कक्ष से बाहर चले गये।

सोचते-सोचते महाराज पलँग पर बैठ गये। उनके मुख पर चिन्ता की कजली छायी थी। बेचैनी बढ़ रही थी। वे पुनः उठे और चौकी पर पूजा की थाली में रखे स्फटिक निर्मित शिवलिंग के निकट आये। उस पिण्डी का दर्शन पाते ही उनके मन ने एक अद्‌भुत धैर्य का अनुभव किया और मन में कठोरता तथा निश्चय की शक्ति का संचार हो उठा।

वस्त्र से ढँकी भोजन की थाली कन्धे पर रखे और हाथ में पानी का लोटा लिये एक थाली परोसनेवाला सेवक भीतर आया। थाली चौकी पर रखकर उसने वस्त्र हटाया। भाप के वलय ऊपर उड़ने लगे।

थालीवाले सेवक ने भोजन की वस्तु को छत्रपति के सामने चखकर दिखाया। लोटे का पानी पिया और बिना कुछ बोले वह मुजरा करता हुआ कक्ष के बाहर चला गया। दूसरा एक सेवक लोटा तथा परात लेकर आया। महाराज ने परात में हाथ धोये और फिर वे चौकी के निकट रखे चन्दन निर्मित पाट पर पलथी लगाकर भोजन करने बैठ गये। उन्हें पाट पर बैठा देखकर परातवाला सेवक बाहर जाने लगा और जाते समय उसने कक्ष का द्वार खींचकर बन्द कर लिया।

भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व पितरों का अन्नांश थाली के बाहर चौकी पर रखकर थाली के चारों ओर जल की अंजलि घुमाकर महाराज ने चित्राहूति दी। फिर भोजन के समय का मन्त्र उच्चारण करते हुए नेत्र बन्द कर दो बार आचमन किया। थाली को थोड़ा-सा अपनी ओर खींचकर हाथ में कलाई की ओर घिसट आनेवाले कड़े को उन्होंने खींचकर भुजा के ऊपर कसकर चढ़ा लिया। इस समय उनके मन में जो एक विचार उठा, उससे वे किंचित् दुखी हुए। सोचते थे—'मन की व्याकुल दशा में हम यह बात भी भूल ही गये। अच्छा होता, आज युवराज को भी भोजन करने साथ ही बुला लेते।'

इतने में कक्ष के द्वार की कुरकुराहट हुई। महाराज ने उधर देखा, तो महारानी सोयराबाई खड़ी थीं। उन्हें देखते ही महाराज की नज़र एक बार अपनी थाली की ओर गयी और अगले ही क्षण उन्होंने मन में कोई एक विचार निश्चित कर डाला।

सोयराबाई ने महाराज को भोजन के लिए बैठे देखा, तो वे वापस जाने लगीं, परन्तु 'आ जाओ' कहकर महाराज ने उन्हें जाने से रोक लिया।

महाराज की आवाज़ में जो मन्दता थी, उसे सुनकर सोयराबाई किंचित् आश्वस्त हुईं और उनके होठों के मूल में हँसी की एक रेखा दौड़ गयी। अपनी सदा की ऐंठदार चाल से चलती हुई वे कक्ष के भीतर आयीं।

"श्रीमानजी ने अकेले में भोजन करने का निर्णय कर लिया है, यह ठीक ही हुआ।" चौकी के पास खड़ी होकर उन्होंने कहा।

https://t.me/Sahityajunction

“हाँ, अब हमें भरोसा रहा है तो केवल अपना ही। लोग क्या-क्या बातें कह रहे हैं, सुना नहीं तुमने?” महाराज सदा के समान बात करते हुए थाली के कटोरे एक-एक करके चौकी पर रखने लगे।

“रानीजी, कितने दिन हो गये—तुम हमारे साथ भोजन करने नहीं बैठ पायी हो।” महाराज ने थोड़ी देर रुककर शान्तभाव से कहा। फिर उन्होंने दरवाज़े की ओर देखकर पुकारा, “कौन है वहाँ?” बाहर थालीवाला उनकी जूठी थाली उठाने के लिए खड़ा था, वह झट से भीतर आया।

“जा, रानी साहिबा के लिए थाली लगा ला। एक चौकी यहाँ रख।” उसे आज्ञा मिली।

सोयराबाई एकदम सुन्न हो गयीं—उन्हें अनुभव हुआ कि उनके पैरों पर चित्रित अलते के बेल-बूटे बड़े होते जा रहे हैं और उनके सारे शरीर को ही लपेटे ले रहे हैं। वे भौचक्की रह गयीं।

“रानीजी, आज तुम राजाराम को नहीं लायीं साथ?” छत्रपति ने एक भिन्न विषय की ओर उनका ध्यान बँटाने का प्रयत्न किया। उनके वचन-व्यवहार में तनिक भी व्यग्रता दिखलाई नहीं देती थी।

“हमारे राजाराम को अधिक घूमना-फिरना सहन नहीं होता,” सोयराबाई ने यूँ ही कुछ उत्तर दे दिया।

आज्ञानुसार थालीवाला सेवक थाली लेकर आया। एक चौकी रखकर उस पर उसने थाली और लोटा रखा तथा प्रथानुसार वह बाहर चला गया।

“आओ, भोजन करें।” महाराज ने सोयराबाई की ओर न देखते हुए चौकी की ओर संकेत करते हुए कहा।

अलते के बेल-बूटे वाले पाँव क्षणभर को डगमगाये। ज़री-किनारी के वस्त्र भीतर से पसीने से भीग गये। सामने खड़ी उस राजमहिषी के मुख से दबे हुए, हड़बड़ाये हुए कुछ शब्द जैसे-तैसे निकल पाये, “हम आपको कहना ही भूल गयीं! हमने एक मनौती मानी है। आज हमारा व्रत है।”

महाराज की आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं। फिर भी थाली की ओर देखते हुए अत्यन्त शान्ति से वे बोले, “अच्छा, ऐसी बात है! तो हम भोजन करें?”

“जी हाँ!”

“सुनें तो सही, कौन-सी मनौती मानी है तुमने?”

“श्रीमान्‌जी स्वस्थ हो जाएँ, इस उद्देश्य से हमने वाघजाई देवी से प्रार्थना की थी। हमें सदा आपके प्राणों की ही चिन्ता सताती है, इसीलिए हम आपको सावधानी बरतने का संकेत करने आयी हैं।”

“कैसी सावधानी?”

“ये...युवराज हैं न, ये जितने सीधे-सादे दिखाई देते हैं, वैसे हैं नहीं।”

“खा ऽ मो ऽ श!” महाराज ने सामने की थाली दूर हटायी। उनका शरीर काँप रहा था, “शर्म नहीं आती तुम्हें ज़बान चलाते?”

अति मानसिक क्षोभ तथा कँपकँपी के कारण छत्रपति बोल नहीं पा रहे थे। सोयराबाई को

https://t.me/Sahityajunction

लगा जैसे उनके सारे शरीर पर किसी ने खौलता हुआ तेल उँड़ेल दिया हो। वे भी भय से काँपने लगीं। इतना भयभीत वे कभी न हुई थीं।

"तुम किसके सामने और किसके बारे में क्या कह रही हो, इसका ध्यान रखो। तुम युवराज को जितना अकेला-दुकेला समझती हो, वैसा नहीं है। वे धोखेबाज़ या विश्वासघाती भी नहीं हैं। तुम अपनी चालाकी से जो चालें चल रही हो, वे सब ज़नानी चालें हैं। एक-न-एक दिन तुम पर ही उलट पड़ेंगी। अण्णाजी के घर की एक बेचारी सुहागन को व्यर्थ ही में जान से हाथ धोना पड़ा, यह बात चाहे तुम भूल चुकी होगी, पर हम नहीं भूले हैं। युवराज के न्यायदान के दिन तुमने राजाराम को दरबार में क्यों भेज दिया था, इसे भी हम ख़ूब जानते हैं। और तो और, तुम्हारी हिम्मत कहाँ तक बढ़ सकती है, इसे हम भी जानते हैं और तुम भी ख़ूब जानती-समझती हो।" आगे कुछ कहना महाराज के लिए असम्भव हो उठा। वे ठहर गये।

सोयराबाई की आँखों में से आँसुओं की नदी बह निकली। पाँवों के अलते के बेल-बूटे जैसे अदृश्य हो गये। आज छत्रपति का क्रोध चरमसीमा पर पहुँच चुका था। उन्होंने सोयराबाई की करनी की कहानी आज तक बड़ी कठिनाई से मन में दबा रखी थी, पर आज उन्होंने उस कहानी को अंगारों के समान दहकते शब्दों से सोयराबाई के सामने बाँचने की ठान ली थी, "शम्भूराजा को तुम सौतेला मानती हो, उन्हें नीचा देखती हो। सौतेलेपन के क्या-क्या परिणाम हुए हैं रामायण में, यह क्या तुम भूल गयी हो? यह राज्य किसका है? हमारा? युवराज का? या राजाराम का? नहीं, यह राज्य है उन असंख्य वीरों का, जिन्होंने अपने प्राण देकर माँ भवानी के नाम से इस राज्य का निर्माण किया है। हम, युवराज अथवा बालराजा, सभी इस भवानी के राज्य के भक्तमात्र हैं। यह बपौती सब की है, किसी एक की नहीं। राजगद्दी के लोभ से तुम्हारा संयम ढल रहा है। तुम युवराज को बदनाम करने के ढंग सोचा करती हो और मन में समझे बैठी हो कि हम इन चालों से अनजान हैं।" महाराज स्वयं ही हँस पड़े। बहुत विचित्र-सी हँसी थी वह। विचित्र-सी शान्ति इतनी अधिक छा गयी कि महाराज के लिए असह्य हो उठी। कुछ देर इधर-उधर टहलकर वे स्फटिक-निर्मित शिवलिंग के निकट आये। बेलफूलों से ढँकी उस श्वेत पिण्डी का थोड़ा दर्शन पाते ही उनके मन में एक विचार दूर से उड़ता हुआ आया और माँ साहिबा की याद जगा गया। उनकी आँखें पिण्डी पर ही टिकी रह गयीं, हृदय भर आया।

सोयराबाई उनकी पीठ के पीछे खड़ी थीं। महाराज पुनः भर्रायी हुई, मथित-व्यथित वाणी से कहने लगे, "हमारी माँ साहिबा हम सबको छोड़कर चली गयीं। सोचा था, तुमसे जितना भी सम्भव हो सके, तुम उनके अभाव की पूर्ति करोगी। सबको प्यार-ममता से धीरज बँधाओगी। तुमने उनसे केवल उनके अधिकार ही लिये, उनके समान ममता का आँचल फैलाकर सबको छाया देना तुमसे कभी न हुआ। कम-से-कम इतना तो न भूलो कि तुम महारानी हो। हम छत्रपति हैं। सबके पालक-रक्षक हैं। तुम महारानी हो और इस नाते हमारे कर्तव्यों की आधी उत्तरदायिनी हो। तुम यदि कर्तव्य पालन न कर सको, तो न करो, चुप तो रहो। बिना बात के झंझट, विवाद पैदा करके घर में अव्यवस्था तो मत फैलाओ। इतने पर भी अगर तुम्हारी हेकड़ी छूटेगी नहीं, तो फिर हमें तुम्हारे महारानी पद की प्रतिष्ठा सँभाले रखना सम्भव न हो सकेगा। अच्छा, अब तुम जा सकती हो।" महाराज की उँगलियाँ बेचैनी के कारण कौड़ियों की माला पर फिर रही थीं।

उनके पीछे स्तब्ध बना खड़ा था—सोयराबाई नाम का एक पुतला। उसे महाराज ने अन्तिम

https://t.me/Sahityajunction

चेतावनी दी थी।

"कल पौ फटने के साथ ही तुम्हें डोली में बैठकर रायगढ़ रवाना हो जाना है। यहाँ तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। हमने हम्बीरराव को आदेश दे दिया है। तुम कैसी बेतुकी बातें करती हो और वह भी हमारे सामने, इसे ज़रा सुनती जाओ। तुमने वाघजाई देवी के सामने जो मनौती मानी थी, वह मनौती तो तुमने उसी दिन पूरी कर दी थी, जिस दिन समर्थगुरु की कृपा से हमारा स्वास्थ्य सुधरने लगा था। तुम्हारा आज का उपवास किसी अन्य प्रयोजन से होगा। वह प्रयोजन क्या है, तुम ही इसे सोच-समझ लो।"

अब सोयराबाई के लिए खड़ा रहना भी कठिन हो गया था। उनके पैरों को जैसे लकवा मार गया था। वे आँचल को मुँह में ठूँसकर बाहर जाने को हुईं। कंगनों की आवाज़ को सुनकर महाराज ने फिर एक बार डपटकर उन्हें ठहरने को कहा। सोयराबाई देहली पर ही रुक गयीं।

महाराज ने पीठ फिराकर खड़ी सोयराबाई को जलती मशाल के समान दाहक शब्दों द्वारा अन्तिम बार चेतावनी देते हुए कहा, "कान खोलकर सुन लो—यदि युवराज सम्भाजी हमें कभी विष से भरा प्याला दें भी, तो हम भरे दरबार में मन्त्रिगण को साक्षी बनाकर सिंहासन पर बैठकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वह प्याला पी लेंगे।—जानती हो, क्यों? वे इस राज्य के लिए केवल नौ वर्ष की आयु में मिर्ज़ा राजा की छावनी में ज़ामिन बनकर रहे हैं। शरीर पर कफ़नी धारण करके मथुरा से इस देश तक अकेले पैदल भाग-दौड़ की है उन्होंने!"

महाराज से आज्ञा लेकर सम्भाजी सातारा दुर्ग से चल पड़े थे—रायगढ़ की दिशा में। येसूबाई और पुतलाबाई की डोलियों के साथ चलनेवाले सशस्त्र सैनिक जल्दी-जल्दी चल रहे थे। सम्भाजी किन्हीं विचारों की दुनिया में खोये हुए से चल रहे थे। बहुत प्रयत्न करने पर भी 'माँजी' सोयराबाई साहिबा का चेहरा उनकी आँखों से हटता नहीं था। ऐसे समय वे आवेश में आकर घोड़े की बागडोर ज़ोर से खींच बैठते थे। मुख की दाँतेदार लोहे की लगाम के खिंचते ही घोड़ा बेचैनी से हिनहिना उठता था। विचारों के थपेड़ों में बह रहे सम्भाजी कभी समय-असमय लगाम खींच बैठते थे। कभी ज़ोरदार एड़ लगा बैठते थे।—उनका मन दूर तक घिसटता ही जा रहा था... आख़िर क्यों हुआ यह सब? किसका अपराध है? हमारी माँजी ऐसा बर्ताव क्यों करती हैं? क्या हम उनके कोई नहीं लगते? हमारी बात तो दूर सही, स्वयं महाराज का भी वे क्या 'सम्मान' कर रही हैं? उनकी महत्त्वाकांक्षा कहाँ तक ले जाएगी उन्हें! हमने भाई राजाराम को कभी पराया समझा ही नहीं। और ये 'माँजी' हमें कभी अपनी लगी ही नहीं। भला क्यों होता है ऐसा? महाराज साहब को विष दिया जाता है और सन्देह किया जाता है हम पर! यह सब क्या हो रहा है, कुछ समझ नहीं आता। अब और किसी की भय-चिन्ता नहीं हमें। हमें अपने से ही भय लग रहा है। कहीं हम ही कुछ उल्टा-सीधा न कर बैठें। कभी-कभी विचार आता है—माँजी के सामने जा खड़े हों और मन की सारी व्यथा-कथा उन्हें साफ-साफ कह सुनाएँ। वे यदि हमारा युवराजपद छीनने को ही व्याकुल हों, तो यह पद भी राजाराम को देकर हम मुक्ति पा जावें...

'माँ साहिबा की स्मृति से आज हृदय व्याकुल हो उठता है। उनके एक-एक शब्द से कितना दिलासा मिलता था! आज यदि वे जीवित होतीं तो? नहीं, नहीं, वे यदि आज होतीं, तो भला

https://t.me/Sahityajunction

किसकी मजाल थी कि महाराज के प्राणों के साथ इतना क्रूर खेल खेले। वे यदि होतीं, तो किसी को भी हमारे बारे में सन्देह का आरोप करने से पहले दस बार सोचना पड़ता।

'छिः! छिः...कहते हैं...हमने विष दिया है अपने महाराज साहब को। इस आरोप को सुनने से तो अच्छा था कि उस न्यायदान के दिन हमें तोप से उड़ा देने की या ऊँचे पर्वत-कगार पर से खाई में ढकेल देने की सज़ा मिल जाती। कम-से-कम ऐसा निराधार आरोप तो न सुनना पड़ता। माँजी, माँजी, आपने बिना किसी कारण के ही हमारा हृदय दो टूक कर डाला है। अन्ततः मनुष्य की सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है। हमें आबासाहब पर सच ही बहुत अचम्भा होता है। इतना सब कुछ हुआ, परन्तु उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। न जाने सहनशीलता का ऐसा असीम सामर्थ्य उन्होंने कहाँ से प्राप्त किया है? या फिर उनकी मनःस्थिति ही ऐसी हो गयी है कि वे कुछ कह ही नहीं सकते। हमें जैसे बीच दरबार में आरोपी बनाकर खड़ा किया गया, उस प्रकार क्या माँजी को खड़ा किया जायेगा? नहीं, नहीं! हम भी तो उनके विषय में अपने मन का संशय दरबार में सिर उठाकर कहाँ कह पाये? फिर हमारे आबासाहब तो कभी भी ऐसा नहीं कर सकते। यह कैसा फन्दा है?

'इस रुग्णावस्था में यदि महाराज का कुछ भला-बुरा हो जाता तो...छिः, छि ऽ!'

उन्होंने मन में उठे इस अमंगल भाव को दूर हटाने का प्रयत्न किया और स्वयं ही उनके होठों से शब्द फूट पड़े, "जगदम्बे, हे जगदम्बे।" अनजाने में ही घोड़े को एक ज़ोर की एड़ लग गयी, वह बिगड़कर दौड़ पड़ा और दूर तक दौड़ता ही चला गया।

अपना साथी-दल बहुत पीछे छूट गया है, यह ध्यान में आते ही सम्भाजी ने घोड़े को रोका और उसे धीरे-धीरे चलाते हुए वे फिर दल के साथ आ मिले। जब उनका घोड़ा माता पुतलाबाई की डोली के निकट आया, तब उन्हें कुछ धीरज-सा अनुभव हुआ। उनका बिखरा हुआ मन फिर व्यवस्थित होने लगा। एक बार उन्होंने सोचा कि सारे दल को रोक लिया जाय, और माता पुतलाबाई से जी-भर बात की जाय, ताकि मन का तनाव कम हो सके। परन्तु फिर उन्होंने इस विचार को टाल दिया।

जब वे सातारा दुर्ग से नीचे उतर रहे थे, उस समय एक बात उनके मन में खटक रही थी। स्वयं महाराज ही उन्हें विदा करने उपरिकोट के राजसभागृह तक आये थे, तो भी क़िले के कई लोग उनकी ओर कुछ विचित्र-सी दृष्टि से देख रहे थे। उन दृष्टियों में जो तिरस्कार की भावना भरी थी, वह उनके हृदय को तीखे बाण के समान भेद रही थी। उन आँखों से यही आरोप और संशय प्रकट हो रहा था कि 'इसी व्यक्ति ने 'श्री' के राज्य के छत्रपति राजा को, साक्षात् अपने पिता को ही विष देने जैसा घोर पाप किया है।'

उनके व्याकुल मन में भरी मानसिक उलझन, खेद, ग्लानि एवं उदासी की भावनाएँ धीरे-धीरे हटने लगीं और उनका स्थान लेने लगीं सन्ताप, उग्रता और प्रतिशोध की भावनाएँ। रास्ते के झाड़ी-झुरमुटों में भी उन्हें सोयराबाई ही दिखाई देने लगीं। परन्तु उनके ज़र-किनारी आँचल के पीछे सुकुमार आयु के भाई राजाराम खड़े हैं और उन्हें 'दादा महाराज' कहकर बुला रहे हैं, ऐसा आभास होते ही सम्भाजी के मन का यह मोर्चा भी टूट जाता था। उलझनों में उलझनें उलझती चली जा रही थीं।

घोड़े के खुरों से उठनेवाली धूल चारों ओर से उड़कर सम्भाजी के आसपास उड़ रही थी। यह

https://t.me/Sahityajunction

धूल कहीं मन में आकर विचारों की धूल भी न उड़ा दे, इस भय से सम्भाजी कुछ भी सोच न पाये —केवल—'जगदम्बे, हे जगदम्बे' कहते रहे।

पाचाड़ पहुँचकर सम्भाजी ने जिजाऊ की समाधि के दर्शन किये, परन्तु आज उनका दिल भर आया था। उनकी इच्छा ही न होती थी कि रायगढ़ जाएँ। इस कारण वे पुतलाबाई और येसूबाई के साथ पाचाड़ की हवेली में चार दिन तक ठहरे रहे।

वे पाचाड़ आ चुके हैं, यह सूचना ऊपर रायगढ़ पहुँच चुकी थी, परन्तु उनका कुशल-क्षेम पूछने के लिए ऊपर के राजकार्यालय से भी कोई नीचे उतरकर नहीं आया। हाँ, कवि कुलेश अवश्य एक बार आकर मिल गये थे। चार दिन बाद सम्भाजी सपरिवार रायगढ़ पहुँचे। सातारावाली अफ़वाह हवा की पीठ पर सवार होकर यहाँ भी पहुँच गयी थी। मार्ग में मिलनेवाले कारख़ानों के श्रमिक भी सम्भाजी की ओर एक विचित्र घृणास्पद दृष्टि से देख रहे थे। मुजरा भी लोग अत्यन्त विवश-से होकर तभी करते थे, जब वे समझते थे कि युवराज ने उन्हें देख लिया है।

वही रायगढ़, जो उन्हें हृदय के अंश के समान प्रिय था, आज निष्कारण ही पराया और दूर देश का-सा प्रतीत हो रहा था। प्रबल भावनाओं से मन खौल रहा था, परन्तु किसी से भी कुछ कहा नहीं जा सकता था।

इसी अवस्था में पन्द्रह दिन बीत गये। सम्भाजी दिन में केवल दो-चार बार ही अपने महल से बाहर निकलते थे—प्रातः-सायं जिजाऊ के महल में मुजरा करने के लिए अथवा जगदीश्वर के दर्शनों के लिए। अन्य सारा समय वे अपने महल में ही केशव पण्डित, उमाजी पण्डित, ऊधो योगदेव तथा कवि कुलेश के साथ काव्य, पुराणादि ग्रन्थों की चर्चा करने में बिताते थे। यह चर्चा ही उनके लिए सबसे बड़ा दिलासा थी।

धाराऊ बहुत देर तक उनके महल के भीतर या बाहर आ-जा रही थी और एक बार जब उसने सम्भाजी को अकेला पाया तो बोली, "छोटे महाराज..."

"कहो," सम्भाजी ने उसके गुदना-भरे माथे की ओर देखते हुए कहा।

धाराऊ ने जब आँखें उठाकर सम्भाजी के तेजस्वी नेत्रों की ओर देखा तथा उनके गले के चारों ओर बिखरे हुए घने घुँघराले बालों की ओर देखा, तो वह यह भूल ही गयी कि उसे क्या कहना था। इधर कुछ दिनों से उसे ऐसा ही हुआ करता था। यौवन से परिपूर्ण, हृष्ट-पुष्ट उसके अपने छोटे महाराज को देखकर अब उसे बड़े महाराज का भ्रम होने लगता था। परन्तु उसे छोटे महाराज की कई स्मृतियाँ रह-रहकर याद आती थीं।

धाराऊ को मौन बनी देखकर सम्भाजी के मुख का भाव बदलने लगा। उसकी ओर पीठ फेरकर सम्भाजी भर्रायी हुई आवाज़ में जैसे अपने-आप से ही बात करते हुए कहने लगे :

"धाराऊ, हम जानते हैं, तुम क्या पूछना चाहती हो। यही न, कि क्या हमने...हमने ही महाराज को..."

धाराऊ झट से आगे बढ़ी और अपनी तर्जनी उनके होठों पर रखकर उसने उन्हें आगे कुछ बोलने से रोक दिया। उसकी आँखें डबडबा आयीं, "छोटे महाराज, मैंने दूध पिलाया है तुम्हें। वह

https://t.me/Sahityajunction

दूध कभी बेईमान या कपटी नहीं हो सकता। मैं तुमसे यह सब कहने नहीं आयी हूँ। मैं कहने आयी हूँ—तुम्हें आज रायगढ़ आये एक पखवाड़ा बीत गया है। तुमने अभी तक एक बार भी हमारी बहूरानी से कुशल-मंगल की बात पूछी नहीं। भला उनके मन पर क्या बीत रही होगी? तुम छोटी माँजी से भी नहीं मिलते हो। भला क्या करें वे?"

जिस समस्या को सुलझाने में सम्भवतः जिजाऊ भी हार जातीं, उसे धाराऊ अपने देहाती प्यार की बोली में सुलझाने का प्रयत्न कर रही थी।

"धाराऊ, हमें आजकल किसी से भी मिलने की इच्छा ही नहीं होती।"

"ऐसा कहने से कैसे बात बनेगी? तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर-करके छोटी रानीजी इधर ही आ रही हैं। उनके साथ बाल-महाराज भी हैं।"

माँ पुतलाबाई इधर आ रही हैं, यह सुनते ही सम्भाजी फिर किसी सोच में डूब गये। अन्तःपुर में यही एक स्थान था जिसके प्रति उनके मन में विश्वास था और जहाँ वे अपने मन की बात प्रकट कर सकते थे।

धाराऊ चली गयी। कुछ देर बाद बालक राजाराम का हाथ अपने हाथ में पकड़े पुतलाबाई बैठक के कमरे में आयी। उन्हें देखते ही सम्भाजी के मन ने कहा—'काश! ये बालराजा इन माँजी की कोख से जन्म पाते।'

सम्भाजी ने जब पुतलाबाई को देखा, उन्हें याद आया उनका वह रूप जब वे खटाई की घड़िया लेकर सातारा को रवाना हो रही थीं। सम्भाजी आगे बढ़ आये और उनके चरणों में प्रणाम करके उन्होंने राजाराम का हाथ थाम लिया।

"युवराज...," बात कैसे प्रारम्भ की जाय, यह सोचते हुए पुतलाबाई रुक गयीं।

"जी!"

"तुम हमसे नाराज़ रहो, यह तो ठीक है, परन्तु...परन्तु बहूरानी का क्या अपराध है? वे इसी क़िले में रहती हैं, इतनी बात भी तुम भूल गये! भला यह कौन-सी रीत हुई?"

"माँजी, हमारे तो सारे आचार-व्यवहार ही आजकल ग़लत हुए जा रहे हैं। हमने एक सुहागन का बलपूर्वक हरण किया—साक्षात् अपने जन्मदाता को ही विष दे दिया हमने। कौन-सा मुँह लेकर हम सामने जाएँ उनके? वे युवराज्ञी प्रतिदिन दर्पण में देख-देखकर हमारे नाम से ही कपाल पर तिलक-रेखाएँ अंकित करती होंगी। भला प्रतिदिन ऐसे समय क्या सोचती होंगी वे?" सम्भाजी शून्य में निहारते बोलते जा रहे थे। शरीर में तनाव-सा आ गया था।

"युवराज...," पुतलाबाई ने मानो शब्द-रूपी हाथ ही उनके कन्धे पर धीरे से रखा। "तुम पुरुष हो। इस तरह व्यंग-रोष से भरी भाषा में अपने जी से ही बात कर सकते हो, पर हम स्त्रियों के लिए तो इतना भी सम्भव नहीं है। तुम युवराज हो, तुम ही यदि इस प्रकार निराश होकर अपने को ही बन्दी बनाने लगोगे, तो वह बहूरानी क्या करे, जिसने स्त्री का जन्म पाया है? तुम्हारे इस प्रकार के व्यवहार से वे जी में बहुत दुःखी हैं।"

"दादा महाराज..." राजाराम इतनी देर तक बातें सुन रहे थे। अब सम्भाजी के हाथ को हिलाते हुए उन्होंने कुछ कहने की इच्छा प्रकट की। वे येसूबाई के विषय में ही कुछ कहना चाहते हैं, ऐसा सोचकर सम्भाजी ने प्रेम से पूछा, "कहो, बाल-महाराज!"

https://t.me/Sahityajunction

“तुमने...महाराज साहब को विष दिया। यहाँ आने के बाद हमें तुमने एक बार भी विष नहीं दिया। हम आबासाहब के आने की बाट देख रहे हैं। तुमने...तुमने अगर हमें विष नहीं दिया, तो वे अवश्य देंगे हमें!”

बालक की बातों से सम्भाजी सन्न-से रह गये। कान की लौ तमतमा उठी। जिस हाथ में वे राजाराम का हाथ पकड़े थे, वह विचित्र ढंग से काँपने लगा। उन्होंने झट से राजाराम को उठाया और ज़ोर से दबाते हुए बालक के गालों को चूम लिया। न जाने कितनी ही देर तक वे इसी स्थिति में रहे।

उन दोनों को इस स्थिति में देखना पुतलाबाई के लिए भी असम्भव हो उठा। वे मन्द गति से, भारी कदमों से चलती हुई झरोखे के पास गयीं और बड़ी देर तक हनुमान मन्दिर के शिखर को देखती रहीं। ‘इस सारे बिखराव को पुनः एकत्रित करने की शक्ति हमारे बौने हाथों में नहीं है,’ यह भाव मन में आते ही वे खिन्न हो गयीं। ‘इस बिखराव को समेटने का सामर्थ्य तो केवल महाराज में ही है’—ऐसा सोचते हुए वे अपने मन को समझाने का प्रयत्न करती हुई आशा के एकमात्र सूत्र का स्मरण करने लगीं। नेत्र मारुति-मन्दिर के शिखर की ओर लगे थे, मन महाराज के पीछे भटकता घूम रहा था।

सातमहल में पुतलाबाई के महल के बैठकवाले कक्ष में येसूबाई खड़ी थीं। सम्भाजी उनके सामने तीव्र गति से इधर-उधर चहलकदमी कर रहे थे। कभी अचानक ठहर जाते थे। सारे कक्ष में ऐसी गम्भीर शान्ति छायी थी कि उन दोनों के लिए असह्य हो उठी थी। कौन पहले बोले, शायद इसकी होड़-सी लगी थी।

“आजकल जो कुछ सुन चुकी हो, उस कारण तुम हमारे किये के लिए लज्जित हो रही होगी,” सम्भाजी ने अपने स्वभाव के अनुसार सीधे मुख्य विषय को ही छेड़ दिया।

येसूबाई ने चौंककर ऊपर देखा। उसके ‘श्रीमान्‌जी’ के चेहरे में इतने कुछ दिनों में ही कितना परिवर्तन हो गया है, यह देखकर उनके मन में गहरी टीस उठी। “हमने सब कुछ सुना है, परन्तु हमें अभिमान है कि आपके जैसे व्यक्ति के चरणों की सेवा का सम्मान हमें मिला है।” येसूबाई की वाणी में स्पष्टता और ठोसपन था।

“क्या मतलब?” हड़बड़ाकर सम्भाजी ने पूछा। उनके हाथ एकदम पीठ पीछे आ गये और उँगलियाँ आपस में गुँथ गयीं।

“न्यायदान के गम्भीर समय में भी ‘श्रीमान्‌जी’ ने संशय प्रकट करने के लिए माँजी का नाम दरबार में नहीं लिया। आबासाहब की रुग्णावस्था के समय सातारा में श्रीमान्‌जी पर कितने आरोप लगाये गये, फिर भी श्रीमान्‌जी ने बाल-महाराज से कभी चिढ़ या रुखाई का बर्ताव नहीं किया। अब हम समझ गयी हैं कि...” कहीं दूर पर देखते हुए येसूबाई थम गयीं।

“क्या समझ गयी हो?”

“यही कि अण्णाजी के घर की उस सुहागन नारी ने लिंगाणा के पहाड़ी कगार पर से अपनी देह को खाई में क्यों समर्पित किया होगा।”

https://t.me/Sahityajunction

“क्यों? क्यों किया होगा उसने ऐसा?”

“उसने ही क्या, आपका स्वभाव ही ऐसा है कि कोई भी अपने प्राणों को आप पर न्यौछावर कर दे। भरे दरबार में आपके विषय में कुछ अभद्र-अश्लील आरोप सुनने की अपेक्षा उस धैर्यशालिनी नारी ने मृत्यु का आलिंगन करना उचित जाना। उसने सोचा होगा—कहीं दरबार में कोई असभ्य-अनुचित शब्द मुख से निकल गया तो? दुख इसी बात का है कि जो बात वह सोच पायी, वह उसके घर के अन्य लोग समझ नहीं पाये।”

येसूबाई के प्रत्येक शब्द से सम्भाजी का हृदय बेचैन हो रहा था। उन्होंने येसूबाई के विषय में जो अनुमान कर रखा था, वह बिलकुल असत्य सिद्ध हुआ। इस अपनी भूल पर भी उन्हें सुखद अनुभूति हुई। वे धीरे से आगे बढ़े और सिर नीचा किये खड़ी येसूबाई की ठोड़ी को हथेली से उठाया। कहने लगे, “हम भी अब समझे कि आबासाहब ने तुम्हें मुद्रा और कटार क्यों सौंपी होगी?”

लाज से छुईमुई बनी येसूबाई ने मुख को झटके से दूर हटा लिया।

“तुम शतरंज बहुत अच्छा खेलती हो। हमने एक बार शतरंज के बिसात की ओर देखकर शिकायत की थी, याद है तुम्हें?” सम्भाजी ने पूछा।

“कैसी शिकायत?” येसूबाई बात भूल गयी थीं।

“हमने कहा था—इस शतरंज के खेल में राजा हैं, मन्त्री है पर माँ साहिबा और युवराज, ये मुहरे नहीं हैं।” एक लम्बी साँस छोड़कर सम्भाजी झरोखे तक गये और बाहर देखते हुए पीठ-पीछे खड़ी येसूबाई से कहने लगे, “तुम और आबासाहब शतरंज का खेल बहुत कुशलता और सावधानी से खेलते हो—परन्तु एक ऐसा चतुर खिलाड़ी भी है, जिसके चातुर्य के सामने तुम्हारी कुशलता पानी भरती है।”

“कौन है भला वह?” हड़बड़ाकर येसूबाई ने सम्भाजी के अँगरखे की पीठ पर बने कलाबत्तू के बेलबूटों को निहारते हुए पूछा।

“बड़े महल वाली माँजी!” झरोखे की ओर से ठण्डे शब्द आये।

“तुम बिसात का शतरंज खेलती हो। वे नाते-रिश्तों का शतरंज खेलती हैं। वे इतनी चतुराई से चाल चलती हैं कि जिसे भी शह दें, उसका दम घुटने लगे। उनके शतरंज में मुहरों की कोई कमी नहीं और न ही यह नियम है कि शह किसे और कब दी जाय।”

येसूबाई को इस बात का कोई उत्तर न सूझा। इतने में सम्भाजी के राजकर्मचारी महादेव यमाजी का सन्देश लेकर एक सेविका भीतर आयी। वह युवराज की पीठ की ओर थी, अतः उसने येसूबाई को ही सूचना सुना दी, “सातारा से दत्ताजीपन्त आये हैं। छोटे महाराज से मिलना चाहते हैं।”

“कहो कि हम आते हैं,” कहते हुए सम्भाजी महल के बाहर निकल गये।

महाराज के महल के बाहरी सभागृह में मन्त्री दत्ताजीपन्त युवराज की काफी देर से प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने जब युवराज को आते देखा, तो विनम्रता से मुजरा किया।

“दत्ताजीपन्त, कैसा स्वास्थ्य है हमारे आबासाहब का?” सम्भाजी ने उनके मुजरे को स्वीकार करते-करते ही पूछा।

https://t.me/Sahityajunction

“जी, व्यंकटेश की कृपा से वे बिलकुल भले-चंगे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व वे पाली गये थे—वहाँ उन्होंने एक गाँव के पटेल पद के विवाद का निर्णय किया था। हम भी साथ थे। अब सरकार सातारा में हैं। कर्नाटक प्रदेश की ओर से रघुनाथपन्त हणमन्ते आये हुए हैं। उनके साथ महाराज किसी बड़ी योजना बनाने में व्यस्त हैं—गुप्त मन्त्रणाएँ हो रही हैं।”

समाचार सुनकर सम्भाजी का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा। “युवराज, स्वामी ने हमें विशेष ख़लीता देकर आपके पास भेजा है। हमें कठोर आदेश है कि वह ख़लीता आपको ही दिया जाय।” दत्ताजीपन्त ने कमर में खोंसी हुई थैली निकालकर झुककर युवराज को दी। सम्भाजी ने थैली को एक बार माथे से लगाया और उसका बन्द खींचकर भीतर रखे गोल लिपटे हुए पत्र को बाहर निकाला। एक-एक शब्द को पढ़ने के साथ-साथ सम्भाजी के मुख पर सोने की थाली के समान चमक आती जा रही थी।

‘श्री के आशीर्वाद से हम सुखी, सानन्द हैं। यह ख़लीता देकर दत्ताजीपन्त को विशेष हेतु से भेजा है। उन्हें सहायक बनाकर तुम एक शक्तिशाली सेना लेकर बीजापुर राज्य में मिरज, अथणी की दिशा से घुस पड़ो। अधिक ख़तरा न उठाते हुए भागते-दौड़ते ही मुहिम चलाने की योजना बनाओ।’

बीजापुर के आदिलशाही राज्य में वज़ीर ख़वास ख़ाँ और सरदार बहलोल ख़ाँ के बीच गहरा मनमुटाव पैदा हो गया था। महाराज इसी अवसर का लाभ उठाना चाहते थे। इस मुहिम का नेतृत्व उन्होंने सम्भाजी को सौंपा था।

“दत्ताजीपन्त, आज तुम यहीं विश्राम करो। हमें और तुम्हें मिरज की ओर रवाना होना है।” युवराज अब शेष सारी बातें भूल चुके थे।

“जी, महाराज ने हमें इसकी जानकारी दी है। हमारा विचार है कि हम नीचे पाचाड़ में उतरकर सेना का संयोजन करें। हम सातारा से आते हुए भी साथ में थोड़ी सेना ले आये हैं।”

“ठीक है। आज तुम हमारे साथ ही भोजन करो। फिर हम भी तुम्हारे साथ ही दुर्ग से नीचे उतरेंगे।”

दत्ताजी मुजरा करके सभागृह से चले गये। सम्भाजी के हाथ में था पत्र का गोल लिपटा काग़ज़ और मन में घूम रहे थे सैनिक-अभियान के विचार।

पाचाड़ के नगरद्वार पर दस हज़ार सैनिकों की सेना तैयार खड़ी थी। उसके आगे ज़ीन-कसे घोड़े पर सवार सम्भाजी, दत्ताजीपन्त, रूपाजी भोसले, कोंडाजी फर्ज़न्द आदि विशेष सरदार भी तैयार खड़े थे। कूच का डंका बजने लगा।

सम्भाजी ने पीछे की ओर न देखते हुए हाथ उठाकर हथेली फैलाकर सेना को कूच करने का संकेत किया। उस संकेत को पीछे के घुड़सवारों ने और पैदल सैनिकों ने ज्योंही देखा ‘हरऽ हरऽ महादेव’ के उच्च जयघोष से आकाश गूँज उठा। जासूसों का नायक कर्माजी अपने जासूसी घुड़सवार तथा भेदियों की टोली के साथ इस सेना के आगे रवाना हो गया था, ताकि सेना के प्रस्थान के मार्ग का निरीक्षण करके भय-संकट की सूचना दे सके।

https://t.me/Sahityajunction

इस प्रकार चल पड़ी यह युवराज सम्भाजी की सेना आदिलशाही राज्य की दिशा में। सम्भाजी का मन अब शान्त था। महाराज ने उनपर एक भय-संकट से पूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा है, इस विश्वास से ही उनका हृदय-कुसुम प्रफुल्लित हो उठा था। सम्भाजी की यह मुहिम महाबलेश्वर के पर्वतीय घाट से होते हुए, वाई सातारा को पीछे छोड़ते हुए, खटाव और विटा की दिशा से आगे जाकर आदिलशाही राज्य में मिरज की दिशा से घुसनेवाली थी।

एक-एक पड़ाव तय करते हुए युवराज की यह सेना महाबलेश्वर घाट चढ़कर ऊपर आयी। यहाँ के घने वनों को देखकर सम्भाजी का मन अतीत काल की ओर लौट पड़ा। सेना के पड़ाव से कुछ ही दूरी पर महाबलेश्वर तीर्थस्थान स्थित था। यहीं माँ साहिबा जिजाऊ की सुवर्णतुला की गयी थी। सम्भाजी ने दत्ताजीपन्त को अपने जाने की सूचना भिज़वायी और स्वयं रूपाजी भोसले तथा अन्य चुने हुए दस-बारह अश्वारोही सैनिकों को साथ लेकर महाबलेश्वर तीर्थ के निकट आये। आवश्यक वस्त्र, अलंकार आदि के थाल अश्वारोहियों के पास थे।

ऊँचे पर्वतों से कूदती-उछलती आनेवाली पाँच नदियों का पानी महाबलेश्वर तीर्थ में एकत्रित हो गया था और उन जलधाराओं की एक मोटी जलधारा बन गयी थी, जो एक प्रस्तर-निर्मित गोमुख से बाहर गिर रही थी। इस तीर्थस्थान के जिस प्रांगण में जिजाऊ की तुला की गयी थी, सम्भाजी के पैर उसी ओर मुड़ गये।

यूँ सामने कुछ भी नहीं था, परन्तु सम्भाजी की आँखें अतीत में लौटकर वह दृश्य देख रही थीं कि चाँदी के पलड़े में आऊसाहिबा जिजाऊ बैठी हैं। आबासाहब झुककर दूसरे पलड़े में मुहरों की धारा बरसा रहे हैं। उस पलड़े के नीचे पाचाड़ की हवेली लजायी-सी, दबी-सी खड़ी है। पलड़े के तले से समर्थगुरु की कविता के बोल प्रकट हो रहे हैं :

गये कई दल बल के स्वामी। समा गये सब यम के मुख में।
अगणित राजा गये, खो गये।।
प्राणों से तुम प्राण मिलाओ।
आत्मा परमात्मा मेंऽऽ।
हे मानव, तुम खोजो रह-रह परब्रह्म जीवन में।।
अब समाप्त शब्दों की खटखट। हुआ ग्रन्थ परिपूर्ण।
सद्गुरु कहे, करे यह मानव। भक्तिभाव से जीवन पूर्ण।।

भाव जगत् में डूबे सम्भाजी का हृदय मानो पूजा का घण्टा बन गया था—उस पर अकस्मात् किसी ने आघात किया और एक ही शब्द घनघना उठा—'आऽऽऽ साहिबा!"

सम्भाजी नीचे झुककर सजल नयनों से सामने की उस भूमि पर ही अपनी उँगलियाँ फिरा रहे थे। उस पावनस्थल की धूलि उन्होंने मस्तक से लगायी। साथ के सैनिकों ने भी उनका अनुकरण किया। मन के तीर्थ में इस प्रकार स्नात होकर सम्भाजी आगे बढ़े। गोमुख के निकट जाकर धारा में उन्होंने हाथ-मुख धोये और पुजारी द्वारा दिये गये उस शिवतीर्थ के जल का आचमन किया।

सम्भाजी की फ़ौज हवा से होड़ करती हुई आदिलशाही राज्य में घुस पड़ी। मिरज को एक ओर

https://t.me/Sahityajunction

छोड़कर रास्ते के छोटे-बड़े गाँवों में विध्वंस मचाती हुई उनकी सेना अन्ततः आदिलशाही राज्य की एक प्रमुख व्यापारी मण्डी 'अथणी' से जा टकरायी। मावले सैनिकों ने अथणी को घेर लिया। आदिलशाही प्रजा भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी।

"मण्डी को लूट लोऽ, बोलो हरऽ हरऽ महादेवऽ!" नंगी तलवार से अथणी की ओर संकेत करते हुए सम्भाजी ने कहा। युद्ध के आवेश से सम्भाजी के मुख का रूप इस समय कुछ और ही हो गया था।

मण्डी में लूट मच गयी। मावले सैनिकों की टुकड़ियाँ अथणी में चारों ओर से घुस पड़ीं और जैसे चमकती लाल चींटियाँ चारों ओर से बाँबी में घुसकर किसी बड़े साँप को बाहर खींच लावें, इस प्रकार सैनिकों ने एक लाख मूल्य की लूट की राशि का सम्भाजी के आगे ढेर लगा दिया। दत्ताजीपन्त ने युवराज के आदेशानुसार एक ख़लीता लिख भेजा, जिसमें इस सफलता का समाचार लिखा गया था।

लूट के माल को थैलियों में मुहरबन्द करके रायगढ़ की ओर रवाना कर दिया गया। जासूस कर्माजी ने सम्भाजी को मुजरा किया और वह सेना से अलग होकर निकल पड़ा पन्हाला की ओर। महाराज इस समय सातारा से पन्हाला आ चुके थे।

प्रतिदिन के नियमानुसार इस दिन भी महाराज पन्हालगढ़ के शिव मन्दिर में दर्शनार्थ गये थे। त्र्यम्बकपन्त जब मन्दिर पहुँचे, तब उन्होंने महाराज को रंग-रूप शिवपिण्डी की जलहरि पर माथा टेके ध्यान-मग्न पाया, अतः वे थोड़ी देर बाहर ही खड़े रहे। कुछ देर बाद महाराज ने 'हे शिव...हे शिव' कहते हुए सिर ऊपर उठाया। त्र्यम्बकपन्त मन्दिर के भीतर गर्भगृह में गये और झुककर कहने लगे, "स्वामी, युवराज की ओर से एक आनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ है। उन्होंने आदिलशाही राज्य में अथणी पर हमला बोलकर एक लाख मुहरों की लूट प्राप्त कर राजधानी की ओर भेज दी है।"

"जगदम्बे, हे जगदम्बे," छत्रपति के मुख से धीरे से ये शब्द प्रकट हुए। सामने की रंग-रूप पिण्डी जैसे विविध रंग धरण करती है, इसी प्रकार सम्भाजी के भी विभिन्न रूप उनके मस्तिष्क में कौंध गये। उन्होंने मन्दिर में प्रवेश करते समय बेलपत्रों की एक अंजलि शिवलिंग पर चढ़ाई थी, अब अंजलिभर बेलपत्र उन्होंने पुनः शिवलिंग को समर्पित किये और फिर पीछे मुड़कर न देखते हुए ही उन्होंने त्र्यम्बकपन्त को आज्ञा दी, "पन्त, आगामी सोमवार को सोमेश्वर की मूर्ति का एक हज़ार चम्पक-पुष्पों से अभिषेक करवाओ। युवराज की विजय के सम्मान में पाँच तोपों की सलामी दो।" छत्रपति ने अपनी लम्बी सीधी उँगलियों को मिलाकर मस्तक से लगाया। उनके नेत्र बन्द थे।

अपनी तलवार की धाक जमाकर और आदिलशाही राज्य में खलबली मचाकर सम्भाजी रायगढ़ आ पहुँचे। दत्ताजीपन्त सेना की एक टुकड़ी लेकर बेलगाँव की दिशा में हमला बोलने चले गये थे। महाराज अभी तक पन्हालगढ़ में ही थे।

आदिलशाही राज्य के अभियान में सम्भाजी ने भरपूर सफलता प्राप्त की थी। पिछले दिनों रायगढ़ में युवराज के रूप में उनका आदर और महत्त्व काफी कुछ कम हो चुका था, परन्तु इस

https://t.me/Sahityajunction

विजय-यात्रा के कारण सम्भाजी के प्रति लोगों का आदर-भाव अब बढ़ने लगा था।

ग्रीष्मऋतु का प्रारम्भ हो गया था। सम्भाजी अब सिद्धान्त-कौमुदी, मुक्तावली, रघुवंश, अमरकोश आदि ग्रन्थों के अध्ययन में मग्न हो गये थे और इस अध्ययन में उन्हें एक निराले आनन्द की अनुभूति होने लगी थी। उनका अधिक समय अब केशव पण्डित, उमाजी पण्डित, कवि कुलेश और ऊधो योगदेव के सहवास में बीतने लगा था, एक बार ऐसी ही एक विद्वत्सभा में काव्यशास्त्र सम्बन्धी चर्चा हो रही थी। प्रस्तुत विषय था—काव्य की नायिकाएँ।

"पण्डितजी, काव्यशास्त्र में नायिकाओं के कितने भेद माने गये हैं?" उपस्थित साहित्य-पण्डितों में से केशव, पण्डित से सम्भाजी ने प्रश्न किया।

"जी, काव्यशास्त्र में नायिकाओं के तीन भेद बतलाये गये हैं—स्वकीया, परकीया तथा सामान्या।" केशव पण्डित ने अपने अध्ययन के आधार पर तुरन्त उत्तर दिया।

"लक्षण क्या कहे गये हैं उनके?" सम्भाजी ने उत्सुक होकर पूछा।

"स्वकीया अर्थात् स्वस्त्री, नायक की विवाहिता पत्नी, परकीया अर्थात् परस्त्री तथा सामान्या का अर्थ है गणिका। इन तीन प्रकारों में से काव्यशास्त्र स्वकीया नायिका को महत्त्वपूर्ण मानता है। स्वकीया के भी तीन उपभेद माने गये हैं।"

"कौन से?"

"मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। मुग्धा नायिका वह है जिसने यौवन में अभी-अभी पदार्पण किया है, जिसका क्रोध तीव्र नहीं, जो प्रणय-प्रेम में संकोचशीला है तथा जो स्त्री सुलभ लज्जा गुण से सुशोभित है। मध्या नायिका वह है जिसका यौवन पूर्ण विकसित हो चुका है, जो प्रणय-लीला में तथा सम्भाषण में चतुरा है, तथा जो प्रसंगानुसार लज्जा का लुका-छिपी का दाँव खेलना जानती है। प्रौढ़ा नायिका वह है, जिसमें लज्जा का भाव कम है, जो प्रणय-लीला में अतिकुशल है और जो अपने मधुर वचनों से नायक को मोहित कर लेती है।" केशव पण्डित ने उपर्युक्त परिभाषा प्रस्तुत की और वे विनय भाव से झुक गये।

"वाह, अति सुन्दर!" सम्भाजी के मुख से मुक्त-रूप से प्रशंसा के वचन निकले। फिर वे अकस्मात् किसी विचार में डूब गये और अपने हाथ के गुलाब के फूल को घुमाने लगे। सबने अनुभव किया कि अब यह नायिकाभेद की चर्चा यहीं पर समाप्त हो जाएगी।

"युवराज, यदि आज्ञा हो तो हम स्वकीया नायिका के उन अन्य आठ उपभेदों का वर्णन प्रस्तुत करें, जो काव्यशास्त्र में वर्णित हैं।" कवि कुलेश कह उठे। किसी ने भी आशा नहीं की थी कि वे कुछ कहेंगे।

कुलेश की बात सुनकर केशव पण्डित के माथे पर बल पड़ गये। "अवश्य, अवश्य! कहिए, कविराज।" सम्भाजी ने गुलाब के फूल को डण्ठल से एक बार घुमाया।

कवि कुलेश ने एक बार कन्धे से खिसक आया अपना उत्तर भारतीय उत्तरीय ठीक किया और थोड़ा-सा झुके। उनके माथे की गुलाबी रंग की कन्नौजी पगड़ी में कलाबत्तू की लड़ियाँ लटक रही थीं; वे झूलने लगीं। "युवराज, काव्यशास्त्र में स्वकीया नायिका के अवस्थानुसार आठ भेद माने गये हैं—खण्डिता, अभिसारिका, स्वाधीनपतिका, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, कलहान्तरिता, प्रोषितभर्तृका और विरहोत्कण्ठिता।"

https://t.me/Sahityajunction

“वाह, अति सुन्दर, कविराज! भला इन आठ भेदों के लक्षण तो कहिए।” सम्भाजी का चेहरा खिल उठा था और दृष्टि कवि कुलेश के मुख पर जमी थी।

“जो आज्ञा,” कहते हुए कवि कुलेश आगे कहने लगे, “अपने पति को किसी अन्य स्त्री के प्रति मोहित जानकर ईर्ष्या से दग्धहृदया नायिका ‘खण्डिता’ कहलाती है। जो चोरी-चोरी अपने नायक से मिलने संकेत स्थल की ओर जा रही हो, वह ‘अभिसारिका’ नायिका कहलाती है। पति सबसे अधिक जिसके वश में है, वह ‘स्वाधीनपतिका’ कहलाती है। वचन के अनुसार संकेत-स्थल पर नायक को आया न देखकर जो स्वयं को अपमानित अनुभव करती है, वह ‘विप्रलब्धा’ नायिका है।”

एक ओर युवराज सम्भाजी मुक्त रूप से कवि कुलेश की वाहवाही में मग्न थे तो दूसरी ओर केशव पण्डित तथा उमाजी पण्डित के हृदयों में एक विचित्र-सी अपरिचित व्याकुलता समा रही थी। वे इस व्याकुलता को सम्भाजी के सम्मुख प्रकट भी कैसे कर पाते? परन्तु वे इस तथ्य को भूल नहीं पाते थे कि आख़िर कवि कुलेश दक्षिणदेशीय पण्डित नहीं हैं, उत्तर देशीय हैं। इस देश में वे ‘बाहरी’ अथवा ‘अनधिकृत’ हैं।

कवि कुलेश कहते जा रहे थे, “पति के आगमन की प्रतीक्षा में साज-सिंगार किये बैठी नायिका को ‘वासकसज्जा’ कहा गया है। अनुनय करनेवाले पति को पहले कठोर वचनों से अपमानित करनेवाली और पश्चात् सखी के सम्मुख पश्चात्ताप की भावना प्रकट करनेवाली नायिका को ‘कलहान्तरिता’ कहते हैं। पति दूर देश में है तथा जिसके दर्शनों की कोई आशा नहीं है, ऐसी नायिका को ‘प्रोषितभर्तृका’ कहते हैं। जो नायिका पति के आने की निश्चित आशा किये प्रतीक्षा में बैठी है, परन्तु पति के शीघ्र न आने के कारण जो विरह-व्याकुल हो उठी है, वह नायिका ‘विरहोत्कण्ठिता’ कहलाती है। युवराज, रीति-ग्रन्थों में इन अष्ट भेदों के भी अन्य अनेक रूप कहे गये हैं।”

कवि कुलेश सारी काव्य-सभा पर छा गये थे।

“बहुत अच्छे, कविराज।” कहते हुए सम्भाजी बैठक पर से उठकर कवि कुलेश के पास आये और उन्होंने अपने गले में पहना मोती कण्ठा कुलेश के हाथों में रख दिया। फिर कहने लगे, “कविजी, हमारी इच्छा है कि नायिका के इन आठ भेदों पर हम एक काव्य-ग्रन्थ की रचना करें।” सम्भाजी जैसे अपने-आप से बात करते हुए कह रहे थे।

“हाँ जी, अवश्य। आपके निश्चय को पूर्ण करने के लिए चण्डी माता आपको आशीष दे।” कवि कुलेश ने राजा द्वारा प्रदत्त उपहार को सिर झुकाकर स्वीकार किया।

रायाजी ने बीड़ों से भरा एक तबक़ सामने ला रखा। सम्भाजी ने उसे ‘हस्त-स्पर्श’ दिया और फिर सबको बीड़े देने के पश्चात् यह काव्य-सभा विसर्जित हुई।

सम्भाजी ‘नायिकाभेद’ काव्य की रचना में मग्न हो गये। ग्रीष्मऋतु की तीव्रता बढ़ रही थी।

एक दिन तीसरे पहर धूप कुछ कम हुई थी कि अचानक महादरवाज़े की नौबत बजने लगी। कुछ ही देर बाद सम्भाजी के लिपिक परशुरामपन्त ने आकर सूचना दी, “सिंदखेड से जाधवजी आये हैं। उनके साथ आपकी मँझली दीदी भी हैं।”

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी की बड़ी बहन राणूबाई सिंदखेड नगर के जाधव परिवार में ब्याही गयी थी। छत्रपति की पुत्री राणूबाई और रुस्तमराव जाधव अपने साज-सामान के साथ रायगढ़ के पालकी दरवाज़े पर आकर ठहरे हुए थे।

सम्भाजी ने परशुरामपन्त को साथ लिया और उनकी अगवानी के लिए पालकी दरवाज़े तक आये। सम्भाजी को आता देखकर रुस्तमराव आगे बढ़ आये। दोनों प्यार से गले मिले। इतने में सम्भाजी ने डोली से उतरती हुई राणूदीदी को देखा। वे मुस्कराते हुए आगे बढ़े और उनके चरणों में प्रणाम करते हुए बोले, "दीदी, तुमने पहले कोई पत्र, ख़लीता नहीं भेजा, एकदम से आ गयीं। पहले से पता होता तो क्या हम स्वागत के लिए नीचे पाचाड़ तक उतरकर न आते?"

"छोटे भैया, बिना कुछ सूचना दिये नैहर में अचानक पहुँच जाने में क्या आनन्द है, यह तुम क्या जानो?" राणूबाई ने हँसकर कहा। उन्होंने अपनी हथेलियों में सम्भाजी का मुख थाम लिया और प्यार से उनका माथा चूम लिया।

राणूबाई ने अवश्य ही सगुन-भरे पाँवों से दुर्ग में प्रवेश किया था, क्योंकि उन्हें आये चार दिन भी नहीं हुए थे कि पन्हालगढ़ से एक हरकारा सन्देश लेकर आया : 'छत्रपति महाराज रायगढ़ पधार रहे हैं।' महाराज का स्वागत करने को सम्भाजी अपने चुनिन्दा साथियों के साथ पाचाड़ तक आये। अगले दिन दोपहर के बाद रामोशी प्रहरियों की राजा के आगे दौड़नेवाली टोली पाचाड़ आयी। हवा में गर्मी और उमस बहुत अधिक थी, जो इस बात का संकेत थी कि तेज़ अन्धड़ और बेमौसमी वर्षा आएगी। हवा को तो जैसे साँप सूँघ गया था।

तीसरे पहर हवा एकदम तेज़ी से बहने लगी, मानो उस पर भूत सवार हो गया हो। धूल के बादल आसमान में मँडराने लगे। ऐसी प्रबल आँधी में घोड़े दौड़ाते हुए मोरोपन्त, रघुनाथपन्त, जनार्दनपन्त, हम्बीरराव, येसाजी, आनन्दराव आदि मन्त्री एवं सरदारों के साथ महाराज पाचाड़ के नगरद्वार में प्रविष्ट हुए। रणसिंगे और स्वागत वाद्य बज उठे।

सम्भाजी को आया देखकर महाराज घोड़े से उतर पड़े। साईसों ने झटपट आगे बढ़कर घोड़े को अपने कब्जे में ले लिया।

बेलगाम हवा ने चारों ओर ऊधम मचाया हुआ था। सम्भाजी को यह भी ध्यान न था कि उनका अँगरखा उड़ा जा रहा है। वे उड़ती हुई धूल को दूर हटाने का प्रयत्न करते हुए महाराज की चरणधूलि पाने को आतुर थे। आज वे एक लम्बी अवधि के बाद महाराज से मिल रहे थे। महाराज ने उन्हें नीचे झुकने नहीं दिया और छाती से लगा लिया। उनकी दायीं ओर रघुनाथपन्त हणमन्ते और जनार्दनपन्त हणमन्ते खड़े हुए थे। उनकी ओर देखते हुए महाराज ने पूछा, "इन्हें पहचानते हो?"

"जी..." सम्भाजी असमंजस में पड़ गये। सम्भाजी पहचान नहीं पा रहे, यह देखकर महाराज ही बोले, "ये हैं तुम्हारे चाचा एकोजी के कर्नाटक प्रदेश के सूबेदार रघुनाथपन्त हणमन्ते। ये एकोजी का साथ छोड़कर आये हैं और एक उच्च उद्देश्य को लेकर हमसे मिलने आये हैं।" धूल के कण महाराज की आँखों में जा रहे थे, उन्हें बचाने के प्रयत्न में पलकें फैलाते-मींचते हुए महाराज बोले, "और ये हैं उनके भाई जनार्दनपन्त।"

भरे बदन के रघुनाथपन्त ने तथा जनार्दनपन्त ने अपनी कर्नाटकी ढंग की पगड़ी झुकाते हुए सम्भाजी को सम्मान देते हुए कहा, "जय व्यंकटेश, मुजरा युवराज।"

https://t.me/Sahityajunction

“आबासाहब, हवा बड़ी तेज़ है। अब अन्धड़वाली तेज़ वर्षा शुरू होनेवाली है। आप शीघ्र चल दें, तो उचित हो!” महाराज अभी तो बीमारी से उठे हैं, कहीं वे फिर वर्षा में भीग न जाएँ, इस चिन्ता के कारण सम्भाजी शीघ्रता करना चाहते थे।

“चलो,” कहकर महाराज एक ओर रघुनाथपन्त और जनार्दनपन्त तथा दूसरी ओर युवराज को साथ लिये पाचाड़ की हवेली की ओर चल पड़े। अब थोड़ी बूँदाबाँदी शुरू हो गयी थी। इन वर्षा की बूँदों से और वायु के झोंकों से जूझते हुए महाराज चलते-चलते कहने लगे, “शम्भूराजा, रघुनाथपन्त जैसे लोग भी जब इतने दूर के प्रदेशों से आते हैं, और इस राज्य के हित के लिए मन्त्रणा करते हैं, तब हमें परमसन्तोष प्राप्त होता है। लगता है, जो कुछ भागदौड़ हमने की है, वह व्यर्थ नहीं हुई।”

सम्भाजी ने रघुनाथपन्त की ओर अत्यन्त आदर से देखा।

“महाराज साहब, सिंदखेड की दीदी रायगढ़ आयी हैं। साथ में रुस्तमजी भी हैं।” सम्भाजी ने समाचार कह सुनाया।

वार्ता सुनते ही चलते-चलते महाराज एकदम रुक गये। उनकी आँखों के आगे राणूबाई का चेहरा उभर आया। “कैसी हैं वे?” महाराज ने पूछा।

“बहुत ठीक हैं।” बहन का प्यार शब्द बनकर प्रकट हुआ। सभी लोग अभी हवेली पहुँचे ही थे कि सारे पाचाड़ की पहाड़ी तलहटी को ज़ोरदार वर्षा की तड़ातड़ बज रही धाराओं ने घेर लिया। बिजलियाँ चमकने लगीं। झाड़ी-झुरमुट थपेड़ों में फँसे थे। इतना अँधेरा छा गया कि दिन डूबने का सन्देह हो।

अगले दिन सब रायगढ़ चढ़ रहे थे। कल की वर्षा से नहाकर रायगढ़ निखर उठा था। दुर्ग की इमारत के खिड़कियों-झरोखों पर बाँस-तीलियों के परदे लगाने का काम शुरू हो गया था। घास चारे के टाल-अटाले जमा किये जा रहे थे तथा धान्यभण्डारों को धान्य से भरा जा रहा था।

जैसे ही महाराज ने शिवलिंग की पूजा समाप्त की, उन्होंने रुस्तमजी को बुला भेजा। रुस्तमजी मन में कोई हेतु लिये महाराज से मिलने आये थे।

महाराज ने उनसे सभी सम्बन्धियों के स्वास्थ्यादि के कुशल-क्षेम के विषय में पूछा। रुस्तमजी अति विनम्रता से सब प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। परन्तु महाराज से यह बात छिपी न रही कि वे कुछ कहने को आतुर हैं, पर सकुचा रहे हैं। इस कारण उनसे आत्मीयता बढ़ाते हुए महाराज ने उनके मन की बात जाननी चाही। बोले, “रुस्तमजी, अकेले हम ही कुशल-क्षेम की बातें पूछ रहे हैं, क्या तुम्हें नहीं लगता कि तुम भी हम सबकी कुशल-मंगल पूछो!”

रुस्तमजी हड़बड़ा उठे और ‘जी’ कहकर फिर रुक गये।

महाराज ने उनकी ओर मुस्कराते हुए देखकर उन्हें कुछ धीरज बँधाते हुए कहा, “बोलो, बोलो रुस्तमजी।”

“जी, हम मन में एक प्रस्ताव लेकर आये हैं।”

“वह तो हम पहले ही पहचान गये थे। कहो, क्या बात है?”

कुछ क्षण हिचकिचाहट में बीते—मानो शिवपिण्डी पर पड़े जल की एक बूँद नीचे गिरने से पूर्व इधर-उधर डोल रही हो।

https://t.me/Sahityajunction

“हम...हम युवराज के विवाह का एक प्रस्ताव लेकर आये हैं।” रुस्तमजी ने मन की बात स्पष्ट कह दी।

बात सुनकर महाराज ने ‘जगदम्बे, हे जगदम्बे’ शब्द इतने धीरे से कहे कि रुस्तमजी नहीं सुन सके। महाराज इधर-उधर टहलने लगे। उन्हें अकस्मात् ही एक विचित्र-सी अनुभूति हुई। अकस्मात् येसूबाई का चेहरा उनकी आँखों में घूम गया। वह केतकवर्णो मुख भी उन्हें साँवला दिखलाई देने लगा—बिल्कुल साँवली सईबाई के समान। वह मुखाकृति थी मौन, मन्द-मन्द, हँसी बिखेरनेवाली।

“रुस्तमराव, तुम्हारा विचार तो ठीक है। हमारी पुत्री तुम्हारे घर ब्याही गयी है और अब जाधव-कुल से पुनः एक बार नाते-रिश्ते का सम्बन्ध होना हमें भी ठीक लगता है। परन्तु हम तुम्हारे इस प्रस्ताव के बारे में कल निर्णय करेंगे।” वास्तव में महाराज ने मन में यह सोचा था कि येसूबाई और सम्भाजी की प्रतिक्रिया जानकर ही जाधवजी को कुछ उत्तर देना उचित होगा।

“जैसा आप चाहें, हमें कोई जल्दी नहीं है।” महाराज के ‘कल’ शब्द से आशान्वित होकर रुस्तमजी कह बैठे।

येसूबाई पुतलाबाई के महल में बैठी थीं। धाराऊ वहाँ दौड़ती हुई आयी और बोली, “बड़े महाराज तुमसे मिलने आ रहे हैं, बहू जी।”

येसूबाई ने इस बात को झूठ समझा। हँसकर कहने लगीं, “क्यों मज़ाक़ करती हो, धाराऊ?”

“नहीं नहीं, शम्भु महादेव की सौगन्ध। बड़े महाराज ने मुझे स्वयं बुलाकर कहा है।” धाराऊ ने गले की घाँटी को दो उँगलियों की चुटकी में पकड़कर कहा। अब तो येसूबाई एकदम परेशान हो गयीं। वे भीतर अन्तःपुर में जाने लगीं कि दर्पण में देख लें कि कपाल पर कुंकुम रेखाएँ तो सचमुच हैं अथवा नहीं।

धाराऊ अनजाने में ही ‘शम्भु’ शब्द बोल गयी थी, उन्हें उस पर हँसी आने लगी। इतने में ही महाराज महल में आ गये। अपनी ज़री की किनारीवाली रेशमी साड़ी का आँचल हाथ में पकड़कर येसूबाई ने तीन बार नमस्कार किया। परन्तु उनके मन की गुत्थी अभी तक सुलझी नहीं थी, “भला महाराज स्वयं ही क्यों आये हैं आज?”

“सदा सुहागिन रहो।” कहकर उन्हें आशीर्वाद देते समय महाराज ने यह ताड़ लिया था कि येसूबाई उलझन में हैं। उनकी व्याकुलता को और अधिक न बढ़ाते हुए महाराज ने विषय का प्रारम्भ अतीव चतुराई से किया। “बहू, तुम्हें याद है, हमने तुम्हें मुद्रा और कटार दी थी।”

येसूबाई बात का आशय समझ नहीं पायीं, केवल स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया उन्होंने।

“रुस्तमजी सिंदखेड़ से रायगढ़ आये हुए हैं। वे तुम्हें केवल कटार भेंट करना चाहते हैं। स्वीकार करोगी क्या?” महाराज ने हँसकर कहा।

महाराज की बात को येसूबाई समझ नहीं पायी थीं, परन्तु जिस ढंग से महाराज ने उसे कहा था, उसके उत्तर में येसूबाई के मुख से आदरार्थक ‘जी’ शब्द अपने आप प्रकट हो गया।

“सचमुच जब हम तुम्हें देखते हैं तो हमें अपनी माँ साहिबा की याद आ जाती है।” अब भी

https://t.me/Sahityajunction

महाराज की बात का येसूबाई छोर न पकड़ पायी थीं। परन्तु महाराज के इस वाक्य का एक बड़ा कारण था, जिसे शायद वे ही समझ रहे थे।

"रुस्तमजी ने युवराज के विवाह का एक प्रस्ताव हमारे सामने रखा है। तुम उससे सहमत होगी, तो ही हम उन्हें निर्णय बतानेवाले हैं। कहो, क्या इस संकट को अपना बनाओगी? सौतेलेपन का फन्दा कैसा दम घोंटनेवाला है, यह जानती ही हो तुम।"

सोयराबाई के कटु अनुभवों की स्मृति आते ही महाराज बोलते-बोलते रुक गये।

येसूबाई के कान की लौ लाल हो उठी। वे पाँव के अँगूठे से नीचे के प्रस्तरमय फर्श को कुरेदने का निष्फल प्रयत्न किये जा रही थीं। मन ने अकस्मात् यह दृश्य देखा कि दुर्ग के नीचे की पहाड़ी नदी की तीव्र धारा में केसरी रंग का टोप बह रहा है। वे हाथ फैलाकर उस बहते टोप को रोकने का प्रयत्न कर रही हैं, परन्तु ओह!! इनके हाथ वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाते हैं। कुछ देर के लिए येसूबाई स्तब्ध हो गयीं।

दूसरे ही क्षण उन्हें आभास हुआ कि माँ साहिबा ही उनके निकट खड़ी हैं और कन्धे पर प्यार से हाथ रखकर कह रही हैं—'बहू, ये भोसले कुल के पुरुषों को सँभालकर रखना ऐसा ही है जैसे साक्षात् जगदम्बा की वस्त्र-ज्योति को आँचल में समा रखना। इस कठिन कार्य के लिए जगदम्बा से आकाश के समान विशाल आँचल माँग लो।'

महाराज ने येसूबाई को चुप देखा, तो वे समझे कि उन्हें यह बात स्वीकार्य नहीं है। "अच्छा बहू, हम चलते हैं।" कहकर वे लौट पड़े।

"आबासाहब ने हमारी बात नहीं सुनी। सिंदखेड़ के जाधवजी ने जो प्रस्ताव रखा है, हमें वह आनन्दपूर्वक स्वीकार है।" दूध से अभिषिक्त भवानी की मूर्ति के मुख से जैसे दूध की कुछ बूँदें टपक पड़ी हों, ऐसे शान्त मधुर शब्द येसूबाई के मुख से प्रकट हुए।

महाराज के बाहर की ओर उठ रहे पग बात सुनकर थम गये। उनके मन में आया कि कह दें—'सचमुच बहू, आज तुम्हें देखकर हमें अपनी माँ साहिबा की याद हो आती है। कारण क्या है, जानती हो—उनकी स्थिति भी तुम्हारे समान ही थी। हमारे पिता राजा शहाजी ने बंगलौर में रहते समय दूसरा विवाह किया था—हमारी मातुश्री तुकाबाई से। परन्तु...परन्तु हमारी माँ जीजाबाई ने कभी भी इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा—शिकायत की तो बात ही क्या!'

महल के बाहर जा रहे पिता का-सा स्नेह देनेवाले महाराज से येसूबाई कहना चाहती थीं—'आबासाहब, सिंदखेड के जाधवजी की कटार सोने की है या किसी और चीज़ की है, हम नहीं जानते, परन्तु आप...आप यदि हमारे आँचल में सुलगते अंगारे भी डाल दें, तो भी हम हँसकर उन्हें स्वीकार करेंगी। इसके लिए आकाश के समान विशाल आँचल भी बना लेंगी हम।'

महाराज अपने महल में पहुँचे और उन्होंने तुरन्त सम्भाजी को बुलवा भेजा। परन्तु जिस पद्धति से यह बात उन्होंने येसूबाई के सामने रखी थी, उस पद्धति से अब बात नहीं कही।

सम्भाजी को विनम्र भाव से सामने खड़े देखकर महाराज के मन में मथुरा-निवासी उस बाल-संन्यासी की आकृति खड़ी हो गयी। वे अपने मन को अपने-आप समझाते हुए कहने लगे—'कितना बड़ा हो गया है शम्भूबाल! इतने ही समय में क्या कुछ नहीं देखा इन्होंने! हमने इच्छा न होते हुए भी कई बार इन्हें संकट में ढकेला है। जब तक माँ साहिबा थीं, वे सदा प्रेमवश इन्हें

https://t.me/Sahityajunction

ऐसे संकट में झोंकने से हमें रोक दिया करती थीं। आज वे होतीं तो...'

"शम्भू," महाराज ने विषय को प्रारम्भ करने का ढंग सोच लिया था, "तुम कविता लिखते हो! हमारी इच्छा है कि तुम्हें एक जीती-जागती कविता ही उपहार रूप में दें।" महाराज रुक गये।

"..." सम्भाजी सम्भ्रम में डूब गये।

"कवियों का काम केवल एक ही लेखनी से नहीं चलता। दूसरी लेखनी भी रखते हैं वे। इसी प्रकार जीवन में मनुष्य के लिए 'अपने' कहनेवाले एक-दो जीवनसाथी होने आवश्यक हैं। रुस्तमजी तुम्हारे विवाह का एक प्रस्ताव लेकर आये हैं। हमारी इच्छा है कि इसी बहाने जाधव-कुल से हमारा एक बार फिर नया नाता जुड़ जाए।"

"परन्तु..." पर्वत-गुफाओं में चित्रित नूपुरधारिणी नायिका की-सी सुन्दर एक स्त्रीमूर्ति का पूर्णचन्द्र का-सा गोल केतकवर्णो मुख सम्भाजी की आँखों के आगे तैर गया।

"हम समझ गये। हम मिल आये हैं बहू से। वे राजी हैं। तुम अपनी इच्छा बतलाओ।" अब सम्भाजी बँधकर रह गये। क्या कहा जाय, इसे वे निश्चित नहीं कर पाये।

"तो फिर क्या हम यह मान लें कि तुम्हारी इच्छा नहीं है?" महाराज ने सम्भाजी को पूरी तरह पेंच में उलझा दिया।

"नहीं...ऐसी बात नहीं।"

"फिर तुमने तो अभी तक कुछ कहा ही नहीं, हम क्या समझें?"

"महाराज साहब की आज्ञा हमें शिरोधार्य है।"

"आज्ञा शिरोधार्य है? अर्थात् हमारी आज्ञा है, इसलिए तुम्हें मान्य है, हमने तुम्हें आज्ञा कहाँ दी है?" महाराज सम्भाजी के मुख से ही स्पष्ट स्वीकृति सुनना चाहते थे।

"जी, हमें आनन्दपूर्वक स्वीकार है।" सम्भाजी ने स्पष्ट स्वीकृति दे दी। सम्भाजी महल के सभागृह से उठकर बाहर जाने लगे, तो एक विचार उनके मन को सताने लगा—'काश! आज इस बारे में सलाह देने के लिए बड़ी आऊ साहिबा, माँ साहिबा होतीं!' पाचाड़ का घण्टा इस समय शान्त निःशब्द था, तब भी सम्भाजी को आभास हो रहा था कि कोई उस घण्टे पर आघात कर रहा है। घण्टानाद हो रहा है।

महाराज से अनुमति लेकर रुस्तमजी रायगढ़ से अपनी जागीर सिंदखेड[1] की ओर रवाना हो गये। राणूबाई रायगढ़ में ही रह गयीं। एक पखवाड़े के बाद रुस्तमजी सशस्त्र सैनिकों द्वारा संरक्षित एक डोली लेकर रायगढ़ लौट आये।

ख़ासमहल में सम्भाजी के दूसरे विवाह की सगाई की बैठक आयोजित की गयी। जाधवराव जिस कन्या को साथ लाये थे, वह ज़री की बहुमूल्य साड़ी पहनकर बैठक में उपस्थित हुई। वहाँ जितने भी बड़े-बूढ़े, प्रतिष्ठितजन बैठे थे, सबको उसने तीन बार नमस्कार किया और फिर वह विनम्रता से खड़ी हो गयी।

https://t.me/Sahityajunction

भोसले कुल की राजमहिलाएँ उस कन्या के लुभावने सौन्दर्य को देखती ही रह गयीं। पुतलाबाई, सगुणाबाई, सकवारबाई—ये रानियाँ उस बैठक में उपस्थित थीं। केवल नहीं थीं, तो सोयराबाई साहिबा। सुना गया कि उनका शरीर वातव्याधि के प्रकोप से अकड़ गया था।

येसूबाई ने भी सामने खड़ी 'सुनहरी कटार' को देखा। सोचने लगीं, 'हमारे 'श्रीमान्‌जी' की कविता का आशय हम नहीं समझ पातीं, परन्तु ये अवश्य समझ पावेंगी। सचमुच आबासाहब ने ठीक ही कहा था—यह नवयुवती एकदम 'कटार' ही है—सोने की कटार! परन्तु...'

सामने खड़ी, अपने जीवन-धन की भागीदार बननेवाली उस स्त्री को देखते हुए येसूबाई को एक ही बात खटक रही थी। बड़ी माँजी, सोयराबाई के पैरों पर अलते के जैसे बेलबूटे थे, वैसे ही इस स्त्री के पाँवों पर भी बेलबूटे चित्रित थे। एक-दूसरे में उलझे हुए, गुत्थियों के गुच्छे।

येसूबाई सोचने लगीं—विवाह-विधियों के बाद हमें इनसे अवश्य कहना चाहिए कि ये अलते के बेलबूटे पाँवों में मत बनाया करो।

वह सुकन्या सम्भाजी की वधू के रूप में सबको पसन्द आयी। महाराज उसके सामने आये और उसकी ठोड़ी को तर्जनी से उठाते हुए बोले, "बेटी, सिर ऊपर उठाओ।" फिर उपस्थित जनों से बोले, "माँ साहिबा को तथा बैठक में उपस्थित भद्रजनों को साक्षी बनाकर हम घोषणा करते हैं कि सिंदखेड के जाधवजी की इस सुकन्या को हमने अपने सुपुत्र सम्भाजी की वधू के रूप में स्वीकार किया है। यह सम्बन्ध पक्का हो गया है।"

पुतलाबाई ने उस कन्या के मस्तक पर चन्दनादि गन्धद्रव्यों का लेप किया। सगाई निश्चित हो गयी। धर्मविभाग के राजपुरोहित ने पंचांग देखकर विवाह के लिए अक्षय तृतीया का शुभ-मुहूर्त निश्चित किया। निश्चित दिन और मुहूर्त्त में ठाठ-बाट से विवाह-समारोह सम्पन्न हुआ। नयी बहू का नाम रखा गया—दुर्गाबाई। अष्टनायिका पर कविता रचनेवाले सम्भाजी के जीवन-काव्य में इस प्रकार एक दूसरी नायिका ने प्रवेश किया।

सम्भाजी का 'नायिका भेद' खण्डकाव्य पूर्ण हुआ। सम्भाजी उस काव्य के श्लोकों को मन में दुहराते हुए पुतलाबाई के महल में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने जैसे ही येसूबाई को सामने खड़ी देखा, उनका समस्त काव्य ही उनके मन में गूँजने लगा। येसूबाई अन्तःपुर की ओर जा रही थीं, सम्भाजी ने 'ज़रा रुको' कहकर उन्हें रोक लिया। उनकी आँखों के आगे से काव्य की नायिका के आठों रूप एक-एक कर गुज़र रहे थे। वे मौन रहकर एकटक येसूबाई को निहार रहे थे। सोच रहे थे—'आठों नायिकाएँ मिलकर भी क्या येसूबाई के सौन्दर्य की समता कर सकेंगी?"

येसूबाई असमंजस में डूब गयीं—'ये श्रीमान्‌जी केवल एकटक इस तरह देख क्यों रहे हैं?' वे सकुचा गयीं।

"हमने एक काव्य की रचना की है। उसमें आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है। नाम है—'नायिका भेद।' हम यह देखने में तल्लीन थे कि तुम पर नायिका का कौन-सा रूप लागू होता है।" सम्भाजी की बातों से येसूबाई और अधिक गड़बड़ा गयीं। वे आगे का कुछ सुन पावें, इससे पहले ही उनकी कान की लोलकी लाल हो उठी। मोटी-मोटी आँखों की पलकें तेज़ी से फड़फड़ाने लगीं।

https://t.me/Sahityajunction

“परन्तु तुम तो आठों नायिकाओं के किसी भी रूप से मेल नहीं खाती हो।” सम्भाजी हँस दिये। “तुम जब हमारे सामने आती हो, तो लगता है, प्रज्वलित वस्त्र-ज्योति ही सामने आ गयी है। ऐसी ‘दीपशिखा’ नायिका को केशव पण्डित या कवि कुलेश तो जानते ही नहीं। समस्त काव्य-शास्त्र ढूँढ़ने पर भी हमें तुम-सी ‘दीपशिखा’ नायिका नहीं मिल सकी।”

येसूबाई के शरीर में रोमांच हो आया। अब तो सामने खड़ा रहना भी उनके लिए असम्भव हो गया। वे लपककर अन्तःपुर में चली गयीं। केवल उनकी रेशमी साड़ी के झोल की सरसराहट पीछे सुनाई देती रही।

सम्भाजी प्रफुल्लित मन से बहुत देर तक अकेले ही टहलते रहे।

इतने में धाराऊ फूलों की डलिया लिये आयी और सम्भाजी को देखकर हँसते हुए बोली, “छोटे महाराज, तुम यहाँ खड़े हो। उधर खण्डोजी तुम्हें खोजते फिर रहे हैं। बड़े महाराज ने तुम्हें याद किया है।”

सम्भाजी ने उसकी बात सुनी। उनका ध्यान उसके माथे पर अंकित गोदने के चिन्हों पर तो गया ही, साथ ही उन्हें एक बात सोचकर मीठी हँसी आये बिना न रही :

‘इस धाराऊ की कुनबियोंवाली बोली में देहात का निश्छल प्यार कैसा छलछलाया करता है! इसकी बोली सुनकर हमें हमेशा यही अनुभव होता है कि धान के खेत में हरी-हरी बालियाँ मावलदेश की मन्द बयार में झूम रही हों। हम कितना भी प्रयत्न क्यों न करें, इसकी-सी बोली हम कभी न बोल पाएँगे।’ सोचते-सोचते उनके होठों पर हँसी तैर गयी।

इस विचार के साथ ही धाराऊ के कई मनोहारी रूप उनके मन में उपस्थित हुए—महाद्वार पर ही आकर चावल की मुट्ठी से उनकी नज़र उतारनेवाली, गुड़-खोपरे का प्रसाद देनेवाली। इन्हीं रूपों को सोचते-सोचते वे महाराज के महल के बैठक-कक्ष में आये और विनम्रभाव से यह सोचते हुए खड़े रहे कि जाने महाराज अब क्या कहेंगे!

“युवराज, तुम्हारे अन्तःपुर में एक पत्नी और आ गयी हैं। तुम्हारा उत्तरदायित्व भी इसके साथ बढ़ गया है। परन्तु तुम दो समय मुजरा करने के अतिरिक्त हमसे मिलने ही नहीं आते।” महाराज सम्भाजी को बात करने के लिए प्रेरित कर रहे थे।

“जी...बात यह है कि हम...”

“किस कार्य में व्यस्त थे?”

“हम...हम एक काव्य की रचना करने में मग्न थे इन दिनों।”

“अच्छा! बहुत अच्छा किया तुमने। कौन-सा काव्य रचा है तुमने? रामायण के सम्बन्ध में? या महाभारत के सम्बन्ध में?”

“...” सम्भाजी हड़बड़ा गये थे, अतः चुप ही रहे।

“क्यों, क्या बात है? चुप हो गये तुम? हम काव्य तो लिख नहीं सकते पर विश्वास रखो, हम समझ अवश्य सकते हैं।” महाराज के होठों पर आज हँसी की एक रेखा फैल गयी थी।

“नहीं, यह बात नहीं है आबासाहब...,” सम्भाजी ने शीघ्रता से सिर हिलाते हुए कहा।

“तब क्या बात है?” महाराज ने दो-तीन शब्दों में उन्हें अटका लिया।

https://t.me/Sahityajunction

“हम...हमने अष्टनायिका के स्वभाव-भेद और लक्षणों पर एक काव्य लिखा है—‘नायिका-भेद’।”

“अष्टनायिका? स्वभाव-भेद?” इन शब्दों को सुनकर महाराज जैसे सुदूर अतीत में पहुँच गये थे। वे मौन रहकर और हाथ पीठ-पीछे बाँधकर इधर-उधर घूमने लगे। उनके मन में कहीं से एक नीला साँवला स्मृतिरूपी मोरपंख फड़फड़ाता हुआ आया और पल झपकने से भी पहले तूफ़ानी हवाओं में पर्वतों के पार उड़ता चला गया। एक हलकी-सी आह उनके मुख से निकल गयी—‘आज तुम जीवित होतीं, तो अपने पुत्र के इस कविरूप को देखकर कितनी प्रसन्न होतीं!’ आज बहुत दिनों बाद महाराज को स्वर्गवासिनी पत्नी सईबाई की स्मृति हो आयी थी।

महाराज को मौन देखकर सम्भाजी समझे कि शायद महाराज को हमारा विषय रुचा नहीं। वे लजाकर कहने लगे, “हस विषय को चुनने में हमसे भूल हो गयी क्या?” सम्भाजी चहलकदमी कर रहे महाराज के पैरों पर दृष्टि गड़ाये पूछने लगे।

महाराज रुक गये और सम्भाजी के कन्धों पर धीरे से हाथ रखकर कहने लगे, “शम्भू, सचमुच तुम कितने भाग्यशाली हो। केवल काव्य जानना-समझना किस काम का? काव्य-रचना भी मनुष्य को आनी चाहिए। तुमसे कुछ भूल नहीं हुई। जगदम्बा की अनुकम्पा से तुम्हें यह दैवी देन प्राप्त हुई है। इस प्रतिभा का उपयोग करते हुए तुम राजा की शासन-व्यवस्था के कामकाज का वृत्तान्त अपने काव्य में लिखो। देखो न, आचार्य गागाभट्ट ने अपनी दैवी प्रतिभा का कैसा सदुपयोग किया है!”

सम्भाजी अभिमान से अपने आबासाहब की ओर देख रहे थे और उनके नेत्रों की गहनता को मापने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि उनके नेत्र गंगासागर के समान हैं—नितान्त निर्मल और अथाह।

अकस्मात् महाराज की आँखों में पुखराज रत्न की-सी चमक झलक आयी। वे कहने लगे, “तुम्हें याद है शम्भूराजा?” महाराज की आवाज़ अब भर्रायी हुई थी।

“क्या?”

“समर्थगुरु ने हमें जो पत्र लिखा था, उसे सुनकर तुमने हमसे एक माँग की थी कि हम समर्थजी से प्रार्थना करें कि वे माँ साहिबा के विषय में कविता लिखें। तुमने स्वयं शिवधर की घाटी में समर्थगुरु से यही प्रार्थना की थी। शम्भू बेटेऽ ऽ...”

“जी!”

“हम सोच रहे हैं...तुम...स्वयं तुम ही आऊ साहिबा पर एक काव्य क्यों नहीं लिख देते?”

“आबाऽ,” सम्भाजी ने अस्पष्ट ध्वनि से पुकारा और वे महाराज के चरणों की ओर देखने लगे।

“क्यों, क्या हुआ?” सम्भाजी के मुख का अकस्मात् परिवर्तित भाव देखकर महाराज भी चौंक उठे।

“हमने कई बार प्रयत्न करके देखा है, आबासाहब। हाथ में लेखनी लेकर हम जब आऊ साहिबा का स्मरण करते हैं, तो हमारा तन-मन ही लेखनी बन जाता है और जैसे ‘शम्भू, शम्भू’ कहकर कोई हमें पुकारता हो, इतना भर सुनाई देता है। और तब हमारे हाथ अन्य कुछ लिख

https://t.me/Sahityajunction

नहीं पाते—केवल 'जगदम्बे, हे जगदम्बे', ये शब्द ही लिखते चले जाते हैं। ये शब्द ही हमें उत्तम काव्य प्रतीत होते हैं—हमारी लेखनी की गति जैसे कुण्ठित हो जाती है।"

'टन-टन-टन'—पाचाड़ की हवेली से घण्टे की टंकोर गूँजने लगी और रायगढ़ के महल तक आ पहुँची। गहन आत्मीय सम्बन्ध के काव्य-बन्धन को वह टंकोर और दृढ़ बना गयी।

"युवराज, जिस प्रकार काव्यशास्त्र में नायिकाओं के भेद गिनाये गये हैं, उसी प्रकार काव्यशास्त्र ने नायकों के भी चार प्रकार निश्चित किये हैं।" कवि कुलेश सम्भाजी के प्रश्न का उत्तर दे रहे थे।

बाहर आकाश जैसे बौरा उठा था—मृग नक्षत्र की मूसलाधार वर्षा रायगढ़ पर जलधारा-रूपी 'हल्दी-रोली' बिखेर रही थी। खासमहल के चारों ओर जो पत्थर की चौड़ी नालियाँ बनी हुई थीं, उनमें भरे जल में ओलती से जलधाराएँ गिर रही थीं और दुक्कड़ बाजे की सी गूँज फैल रही थी। नदी-नालों से जो पानी कभी भाप बनकर ऊपर आकाश में पहुँच गया था, आज सृष्टि के नियमानुसार वर्षाजल बनकर पुनः नदी-नालों में दौड़ लगा रहा था। भीगे पंखोंवाले पंछी अपने घोंसलों में चुप्पी साधे बैठे प्रकृति के इस चमत्कार को अपनी नन्ही-नन्ही आँखों से देख रहे थे। रायगढ़ के गंगासागर, कुशावर्त, हाथीहौज, कालहौज आदि छोटे-बड़े जलाशय लबालब भरकर बह रहे थे।

वर्षाऋतु के इसी मोहक सौन्दर्य के बीच सम्भाजी काव्यशास्त्र-चर्चा के रंग में रँग गये थे। युवराज की बैठक के निकट ही खण्डोजी, बल्लाल, रायाजी, अन्तोजी आदि लोग खड़े थे। इसी समय महाराज अपने महल में रघुनाथपन्त हणमन्ते, हम्बीरराव, अण्णाजी, दत्तोजीपन्त, येसाजी आदि सचिवों-सरदारों से कोई गुप्त मन्त्रणा कर रहे थे।

"हाँ, तो काव्यशास्त्र द्वारा वर्णित वे चार प्रकार के नायकों के लक्षण तो कहिए, कविराज?" सम्भाजी ने उत्सुकता से पूछा।

"ये चार प्रकार के नायक हैं—धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत। क्षमाशील, बुद्धिमान, शूरवीर, दानवीर और अपने गुणों का कभी अभिमान न करनेवाला, धीरता तथा उदात्तता के गुणों से मुक्त श्रेष्ठपुरुष 'धीरोदात्त' नायक कहाता है। कलाप्रेमी, सौन्दर्यप्रिय, मृदु, शूरवीर नायक, जो धीरता एवं ललित कलाओं से युक्त है, 'धीर ललित' कहलाता है। पुण्यशील, संयमी, सात्विक, चरित्रसम्पन्न, दयावान् तथा शान्ति का विशेष गुण धारण करनेवाला नायक 'धीर प्रशान्त' कहलाता है। धीरता के साथ-साथ, मायावी चंचल, घमण्डी, आत्मप्रशंसक, शक्तिशाली पुरुष को धीरता तथा उद्धतता के कारण 'धीरोद्धत' नायक कहा जाता है।

कवि कुलेश कहते ही जा रहे थे। सम्भाजी मन में 'धीरोदात्त' नायक के गुण और स्वभाव का मिलान अपने आबासाहब से कर रहे थे और उन्हें एक निराला सन्तोष प्राप्त हो रहा था।

वे अभी 'धीरोद्धत' नायक के विषय में सोच ही रहे थे कि ऐसा नायक शेष तीनों नायकों से कितना भिन्न है कि इतने में बाहर उठ रहा अस्पष्ट कोलाहल वर्षा के परदे को चीरकर उनके कानों में पड़ा। बाहर न जाने कैसी दौड़धूप हो रही थी। दुर्ग के अठारहों कारखानों का हर आदमी पालकी-दरवाज़े की ओर तेज़ी से कदम बढ़ाता जा रहा था। उनकी दबी हुई फुसफुसाती आवाज़ों के कुछ शब्द ही सम्भाजी सुन सके :

https://t.me/Sahityajunction

'कब आये?'...'पूरे भीग गये हैं?'...'पहचाने भी नहीं जाते?'...'क्या हाल हो गया बेचारे का?'

कोई भी कुछ समझ नहीं पाया कि मामला क्या है। सारे उपरिकोट में न जाने कैसी भागदौड़ मची थी।

"क्या हुआ है?" अभी सम्भाजी के माथे पर सिकुड़न आयी ही थी कि उनके राजकर्मचारी महादेव यमाजी कन्धे का उपरना सँभालते हुए झपटते हुए बैठक में आये।

"सरकार, सेनापतिजी क़िले में आये हैं।" महादेव यमाजी जो कहना चाहते थे, वह न कह पाये। गड़बड़ी में ऐसी बात कह गये कि युवराज कुछ समझ नहीं सके।

"क्या मतलब?" सम्भाजी ने स्पष्टीकरण जानना चाहा, क्योंकि मराठा सेनापति हम्बीरराव और येसाजी तो पहले से ही रायगढ़ में ही थे। फिर ये क़िला छोड़कर कौन आया है?

"नहीं—अपने सेनापति नहीं स्वामी, उधर के—मुग़लाई सेना के सेनापति...नेताजीराव आये हैं।"

"क्या कहते हो? हमारे नेताजी काका? यहाँ क़िले में आये हैं?" सम्भाजी की आँखें आश्चर्य से फैली रह गयीं। वे एक झटके के साथ खड़े हो गये।

एक ही पल में सम्भाजी के मन में न जाने कितने चित्र उभर आये! नेताजी—मराठों के पहले सेनापति, मिर्ज़ा राजा जयसिंह की छावनी, उनका शानदार शामियाना, वह मुग़लिया हुक़्क़ा, वे अंगारे, पुरन्धर दुर्ग के नीचे उनकी छावनी। सम्भाजी को याद आया कि वे जब आठ वर्ष की आयु में मिर्ज़ा राजा जयसिंह की छावनी में ज़ामिन बनकर गये थे तब नेताजी ही उनके साथ गये थे संरक्षक बनकर। एक शाम को अपने शामियाने से बाहर खड़े होकर सम्भाजी पुरन्धर के ऊँचे दुर्ग को देख रहे थे तो उनका मन अनुभव कर रहा था कि जैसे वह पुरन्धर दुर्ग उन्हें बुला रहा हो। तब इन्हीं नेताजी ने कहा था—'सच है युवराज, मनुष्य जहाँ जन्म लेता है, वह जन्मभूमि उसे बार-बार पुकारती है।' युवराज अपनी बैठक छोड़कर सीधे पालकी दरवाज़े की दिशा में चल दिये। शेष लोग अपने-आप उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

अब तक मुहम्मद कुली खाँ अर्थात् भूतपूर्व नेताजी पालकर उपरिकोट के आम चौक में पहुँच गया था। उसके साथ दो आदमी और थे। तीनों ने मुग़लिया पहनावे पहने हुए थे। भरी बरसात में वे भीगते हुए यहाँ आये थे—इस कारण कपड़े शरीरों से चिपके हुए थे। मुहम्मद कुली खाँ नीचे सिर झुकाये चुपचाप दुर्ग में आना चाहता था, परन्तु पहनावा बदला तो क्या, मराठों का पहला वीर सेनापति अपनी 'चाल-ढाल' नहीं बदल पाया था। अनुभवी आँखों ने दुर्ग के महादरवाज़े पर ही उसे पहचान लिया था और ख़बर बरसाती हवा के झोंके के समान पूरे दुर्ग में फैल गयी थी।

देखते ही देखते आमचौक के चारों ओर की इमारतों की बैठकों में भीड़ जमा हो गयी। सिर पर पहनी हुई मुग़लिया ढंग की पगड़ी पर बरसात की झड़ी की मार सहता हुआ मुहम्मद कुली ख़ाँ चौक के बीच सिर झुकाये खड़ा था। बरसात की धाराएँ उसके हृदय की आग को और अधिक भड़का रही थीं। उसकी नुकीली कटी-छँटी दाढ़ी से वर्षा की जो बूँदें टपक रही थीं उन्हीं में उसके आँसू की बूँदें भी मिली जा रही थीं। चौक में इतने लोग खड़े थे, परन्तु किसी का भी

https://t.me/Sahityajunction

साहस न होता था कि 'कुली ख़ाँ' बने हुए उस 'नेताजी' से बात भी कर सके।

वही नेताजी जो कभी राजगढ़ का शिरोभूषण था, आज कुली ख़ाँ के रूप में पाँवड़ा बनकर बीच चौक में खड़ा भीग रहा था। सभी लोग उसकी दशा पर आठ-आठ आँसू रो रहे थे।

जो दो साथी मुहम्मद कुली ख़ाँ के दोनों ओर खड़े थे, उनमें से एक ने उसके कान में फुसफुसाकर कुछ कहा और वे दोनों उसे अकेला छोड़कर महाराज के महल की ओर चल दिये। ये दोनों थे वाईनगर के ब्राह्मण पटवारी। दोनों ही महाराज के गुप्तचर-दल के चतुर सदस्य थे। उन्होंने मराठा राज्य से दूर काबुल-कन्धार तक मुहम्मद कुली ख़ाँ का पीछा किया था। नेताजी का धर्म-परिवर्तन बलात् कराया गया था तथा उसे मुहम्मद कुली ख़ाँ बनाकर औरंगज़ेब ने काबुल-कन्धार के मोर्चे पर भेज दिया था। वाई के इन दो ब्राह्मण-पटवारियों ने नेताजी का काबुल तक पीछा किया था और वे गुप्त वेश में रहते हुए नेताजी की टोह में लगे रहे थे। उनका हर समाचार वे महाराज तक पहुँचाते थे।

औरंगज़ेब ने कुली खाँ को काबुल-कन्धार की मुहिम पर भेजा था, परन्तु वहाँ यह कुली ख़ाँ लज्जा, खेद और अपमान के कारण व्यथित था, क्रोधित था। उसने एक बार मुग़ल छावनी से निकल भागने का भी प्रयत्न किया था, परन्तु पकड़ा गया और मुश्कें बाँधकर उसे लाहौर भेज दिया गया था। वहाँ लाहौर के सूबेदार ने बीच बाज़ार में हब्शी सैनिकों द्वारा उस 'कमीने' की पीठ पर कोड़े बरसाये थे।

मुसलमान बना हुआ वह मराठा-सेनापति प्रतिदिन रात्रि को बिस्तर पर सोने से पहले, न जाने आदत के कारण अथवा अपने हृदय को धीरज बँधाने के लिए 'हे शिव, हे शिव' अवश्य कह लेता था। 'शिव' शब्द के उच्चारण के साथ ही उसकी आँखों के आगे उसे प्रतिदिन एक सीधी नुकीली नाकवाला और दो तेजस्वी नेत्रों वाला मुख दिखाई देता था। बेचारा करवटें बदल-बदलकर रातें बिताता था।

वाई के पटवारियों ने इस कुली खाँ की सारी गतिविधियों के समाचार महाराज तक पहुँचाये थे। महाराज के आदेश के अनुसार ये दोनों आगरा के निकट कहीं पर अपना वास्तविक रूप प्रकट करके कुली ख़ाँ के सामने जा खड़े हुए थे। उसे समझाते हुए उन्होंने कहा था—'महाराज का हृदय बहुत उदार है। वे अवश्य तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा करेंगे। तुम जाकर उनके चरणों में आश्रय लो। मराठा-स्वराज का पौधा अभी छोटा है, उसे सँभालो-सहेजो। उसके ख़िलाफ़ हथियार उठाना समझदारी की बात नहीं है।' इस प्रकार वे पटवारी नाना रीति से कुली ख़ाँ को समझाते-बुझाते रहे और अन्ततः उसे रायगढ़ लाने में सफल हुए थे। यह कार्य उचित समय पर ही हुआ था, क्योंकि औरंगज़ेब ने कुली ख़ाँ को दक्षिण देश पर आक्रमण करने का आदेश दिया था। सब सोचने-समझने के बाद मुहम्मद कुली ख़ाँ पूरे दस बरस बाद रायगढ़ लौटा था।

सम्भाजी साथ के आदमियों सहित झपटते हुए आमचौक तक आये। वहाँ वे पत्थर के ऊँचे चबूतरे पर खड़े हुए थे। उन्हें देखते ही उपस्थित लोग मुजरा करने के लिए झुक पड़े, परन्तु उनका ध्यान तो कहीं और ही था। उन्होंने ज्योंही आमचौक में भीगते खड़े एकाकी नेताजी को देखा, तो उनके पैर जैसे किसी ने ज़ंजीरों से जकड़ दिये।

'क्या ये ही हैं हमारी छोटी माँजी के सम्बन्धी? क्या से क्या हो गया? एक पराक्रमी पुरुष की ऐसी पराजय? सोने की मिट्टी बन गयी। ये हैं हमारे नेताजी काका? छिः-छिः—इस अवस्था से तो

https://t.me/Sahityajunction

मृत्यु भी अधिक लुभावनी होती।' सम्भाजी का हृदय मथित हो उठा। आँखें सजल हो आयीं। सामने की ओर देखते हुए उन्होंने पीठ पीछे खड़े महादेव यमाजी को आज्ञा दी, "महादेवपन्त, पहनावे का थाल सजाकर लाओ।"

पहनावा किसके लिए लाना है, यह महादेवपन्त यमाजी जान गये और 'जी' कहकर लौट पड़े।

पत्थर की सीढ़ियाँ उतरकर सम्भाजी वर्षा की फुहार में भीगते हुए आमचौक में आये। एकत्रित सभी लोग दम साधे युवराज की ओर देख रहे थे।

मन्द गति से चलते हुए सम्भाजी मुहम्मद कुली ख़ाँ के सामने आये। कुली ख़ाँ गरदन झुकाये खड़ा था, उसे केवल दिखाई दिये पैर में पहने बाँकदार भगवे जूते। साक्षात् महाराज ही सामने खड़े हैं, यह सोचकर वह सिर से पाँव तक काँप उठा। सिर पर पहनी उसकी मुग़लिया पगड़ी क्षणभर दायें-बायें को हिली—खेद और पश्चात्ताप से व्यथित होकर।

हृदय के आवेग को जैसे-तैसे दबाये हुए मुहम्मद कुली ख़ाँ उनके चरणों में लिपटने को आगे बढ़ा ही था कि सम्भाजी ने झट से उसे ऊपर ही रोक लिया। मुख से शब्द निकले, "नेऽताजी काऽका।"

कुली ख़ाँ ने चौंककर ऊपर देखा। पलभर को उसकी नुकीली दाढ़ी काँप उठी—'ये कौन हैं?' फरी के समान गोल मुखड़ा और वस्त्र-ज्योति की-सी चमकती आँखें देखकर अगले ही क्षण उसने पहचान लिया—'अरे, ये तो अपने छोटे महाराज हैं! जब इनका जन्म हुआ था, तब हम पुरन्धर दुर्ग के दुर्गपति थे। इनके जन्म के उपलक्ष्य में हमने दौड़-दौड़कर आदेश दिया था तोपें दागने का। तब...तब माँ साहिबा जीवित थीं—माँऽ साऽहिबा। अब हम उनके चरणों के कभी दर्शन नहीं कर पाएँगे। हम मिर्ज़ा राजपूत राजा की छावनी में गये थे इन छोटे महाराज के संरक्षक बनकर। कितनी हिम्मत थी इस बच्चे में! हम इनके डेरे के बाहर रात-भर नंगी तलवार लिये पहरा देते थे और ये निर्भय होकर डेरे में सो जाते थे।

'आज हमारी इतनी भी तो योग्यता नहीं कि इनके चरण छू लें। क्यों आये हैं भला हम यहाँ? क्या इन पवित्र लोगों को भी अपवित्र बनाने? क्या लौट चलें यहाँ से?' व्याकुल-हृदय मुहम्मद लौट पड़ा।

सम्भाजी झट से आगे बढ़े और उसका हाथ पकड़कर उन्होंने उसकी आँखों से आँखें मिलायीं। फिर वे उसे हाथ पकड़कर सीढ़ियाँ चढ़कर चबूतरे पर ले आये। महादेव यमाजी थाल ले आये थे। उसकी ओर इशारा करते हुए सम्भाजी कुली ख़ाँ से बोले, "पहले कपड़े बदल डालो। निश्चिन्त रहो, महाराज साहब तुम्हें अवश्य शरण में ले लेंगे।"

कुली ख़ाँ को अपने कार्याधिकारियों के हवाले करके सम्भाजी सात महल की ओर चले। रायाजी उनके साथ था। वह आगे को दौड़ा और उसने रानी सगुणाबाई के महल में जाकर युवराज के आने की सूचना दी।

सम्भाजी छोटी माँ सगुणाबाई को यह समाचार कहने आये थे कि नेताजी काका लौट आये हैं। सगुणाबाई अपने महल के आगे ही खड़ी थीं। वे केवल इतना ही जान पायी थीं कि सारे दुर्ग में कुछ गड़बड़-झमेला हो रहा है। युवराज ने माँजी को मुजरा किया और अगले ही क्षण उन्होंने

https://t.me/Sahityajunction

अनुभव किया कि आज वाणी उनका साथ नहीं दे रही।

"माँजी, वे आये हैं।" सम्भाजी शब्दों को ठीक से जोड़ नहीं पाये। आज तक उन दोनों के बीच नेताजी को लेकर कभी कोई चर्चा नहीं हुई थी।

"कौन आये हैं?" सगुणाबाई के माथे के तिलक की रेखाएँ आकुंचित हो गयीं।

"मुहम्म...नेताजी काका।" मुँह से फिसलकर निकलते शब्द को सम्भाजी ने रोक लिया।

"क्या कह रहे हो?" सगुणाबाई की मुखमुद्रा यों खिल उठी, ज्यों हरसिंगार का सुपुष्पित वृक्ष, परन्तु यह प्रफुल्लता अगले ही क्षण क्षीण हो गयी और उस राजस्त्री के मुख पर गहरी मानसिक-व्यथा की छाया फैल गयी। सम्भाजी इस व्यथा को देख न पावें, इस कारण उन्होंने पीठ फेर ली। नेताजी सगुणाबाई के चाचा लगते थे।

"अच्छा, हम चलते हैं।" सम्भाजी सोच नहीं पाये कि आगे क्या कहें।

सगुणाबाई के महल से बाहर आ रहे सम्भाजी के मन में न जाने क्यों, कवि कुलेश के द्वारा वर्णित 'धीरोद्धत' नायक के लक्षण बार-बार गूँज रहे थे। प्रकृति की अवस्था यह थी कि वह पानी, जो कभी नदी से बिछुड़कर कुछ समय के लिए उससे अलग हो गया था, अब वर्षा-धारा के रूप में पुनः नदी के जल से मिल रहा था।

वाई के उन दो पटवारियों ने मुहम्मद कुली ख़ाँ को महाराज के सम्मुख उपस्थित किया। महाराज ने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया और मराठों के उस राह भूले सेनापति को फिर हिन्दू धर्म की छत्रछाया में ले आने का निश्चय किया। इस निश्चय से उनके मन्त्री भी सहमत थे।

एक सवार को पत्र-थैली लेकर नासिक भेजा गया और अनन्तभट्टजी को बुला लिया गया। अनन्तभट्टजी तथा राजपुरोहित प्रभाकरभट्टजी ने शुद्धि का मुहूर्त खोज निकाला। आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन यह शुद्धि-समारोह मनाना निश्चित हुआ, जो उस समय प्रचलित धार्मिक-नियमों—व्यवस्थाओं को एक नया मोड़ देनेवाला था। जिन हिन्दू-धर्मावलम्बी लोगों का बलात् धर्म-परिवर्तन किया जाता था, उनके लिए हिन्दू धर्म में पुनः प्रवेश पाने के सभी मार्ग उस समय बन्द थे। छत्रपति महाराज ने रायगढ़ के स्वर्ण-सिंहासन को साक्षी बनाकर पुनः धर्म-प्रवेश के ये मार्ग शास्त्रानुमोदित पद्धति से युक्त करने की ठान ली।

सारे दुर्ग में यह विधि चर्चा का विषय बनी हुई थी। परन्तु लोहारख़ाने के लुहार 'शाऽ-शूऽ' की आवाज़ें करते हुए, घन-हथौड़े चलाकर सैकड़ों शस्त्र बनाने के कार्य में मग्न थे। महाराज ने सम्भाजी को यह काम सौंपा था कि वे लोहारख़ाने के शस्त्र-निर्माण कार्य का निरीक्षण किया करें।

कोण्डाजी फर्ज़न्द, रूपाजी भोसला, खण्डोजी बल्लाल, रायाजी, अन्तोजी—ये लोग तो अब युवराज के हर दम हर घड़ी के साथी बन गये थे। वे इस समय भी उनके साथ थे ही। सम्भाजी उनके साथ लोहारख़ाने में आये। वहाँ आमने-सामने दस-दस बड़ी-बड़ी धौंकनियाँ थीं। अंगारों पर तपकर लाल-लाल हुए फाल को लुहार सँडासे से उठाते थे और हथौड़ेवाले को 'हँ, हुँ' की हुंकार-ध्वनि से ही जता रहे थे कि घन कैसे, कहाँ चलाया जाय! काले या नीले रंग के उन घड़े

https://t.me/Sahityajunction

हुए शस्त्रों को सान चढ़ाने के लिए अलग रखा जा रहा था। फिर उन घड़े हुए शस्त्रों को बनावट के अनुसार लम्बी-सीधी, फिरंगी, बाँकी तलवार या पठानी तेग के रूप में श्रेणियों में बाँटकर अलग-अलग ढेरों में रखा जा रहा था।

सम्भाजी को देखकर काम में तल्लीन और पसीने से नहा रहे लुहार घन और सँडासे को रोककर मुजरा करने का प्रयत्न करने लगे, परन्तु सम्भाजी ने हाथ के इशारे से ही उन्हें काम चालू रखने का संकेत किया और वे शस्त्रों के ढेरों के निकट आये। वे हरेक ढेर से झुककर एक-एक शस्त्र उठाते थे और मुट्ठी में उसे तौलकर उसकी जाँच-परख करके खण्डोजी, कोण्डाजी या रूपाजी को देते जाते थे।

'इन बन रहे हथियारों को क्या पता कि कौन इन्हें अपनी कमर में बाँधेगा? ये क्या जानें कि ये किसका सिर धड़ से अलग कर देंगे? धूल में मिलनेवाले उन सिरों के कारण किस राजा या सरदार की पगड़ी में सिरपेंच लगेगा, इसकी इन्हें ख़बर नहीं। ये लुहार जी-जान से जुटे हुए हैं इन हथियारों को बनाने में, परन्तु ये इन हथियारों को चलाना भी नहीं जानते। इन हथियारों का आगे क्या होगा, इसे भी ये नहीं जानते। कितनी विचित्र है यह जीवन की पहेली भी?' सम्भाजी हाथ में फिरंगी बनावट की एक तलवार को थामकर बहुत देर तक उसे देखते ही रहे।

"छोटे महाराज, इस हथियार को तनिक देखिए।" कारख़ाने के प्रमुख अधिकारी दगडोजी ने युवराज को एक बाँकी तलवार दिखायी। सम्भाजी ने अपने हाथ की तलवार रायाजी को दी और दगडोजी का हथियार हाथ में ले लिया।

"भट्ठी में डालने से पहले आप इसे देखते तो ठीक होता, युवराज। हाथी हौज़ के तले की सफाई करते समय किसी को नीचे की कीचड़-मिट्टी में यह हथियार मिला था। उसने इसे शस्त्रागार में पहुँचा दिया। जब यह यहाँ लाया गया, तब हालत यह थी कि पूरा जंग लगा हुआ था, धार भोथरी हो गयी थी। अब तो इसे पहचानना भी मुश्किल है।" दगडोजी की छाती अपनी कारीगरी के अभिमान से फूल उठी थी।

सम्भाजी उस बाँकी तलवार को देखकर किसी दूसरे ही विचार में खो गये थे। इस तलवार ने उन्हें नेताजी की याद करा दी थी। तलवारों को निहाई पर रखकर घन मारते ही हथियारों में से चिनगारियाँ निकल रही थीं। सम्भाजी के मन में विचारों के स्फुल्लिंग चमक रहे थे—'हमारे महाराज साहब भी कैसे कुशल, कैसे महान् शिल्पकार हैं। उनके मन की थाह हम कभी नहीं पा सकते, शायद कोई भी कभी नहीं पा सकेगा। हाथ में सँडासा नहीं, न ही धौंकनी है और न घनवाले श्रमिक हैं, परन्तु वे आदमी का जंग, उसके तन-मन का मैल, केवल वाणी से ही दूर कर देते हैं। हमने सोचा था कि वे नेताजी काका को केवल आश्रय देंगे, परन्तु उन्होंने तो उन्हें शुद्ध कराने का निर्णय कर डाला। सारे राज्य में इस समारोह के निमन्त्रण भेजे गये हैं। नहीं, नहीं, यह केवल एक ही व्यक्ति का लगा जंग दूर हटाने का समारोह नहीं, सारे धर्म को ही जंग लग चुका था, उसे दूर हटाने का यह महान् कार्य है। ऐसी लुहारों की-सी कारीगरी और ऐसा आग से खेल खेलना तो केवल महाराज साहब को ही आता है।' अभिमान से उनकी आँखें चमक उठीं।

फिर वे दगडोजी से बोले, "हाँ, हाँ, बहुत अच्छा हुनर है तुम्हारा।" उन्होंने तलवार दगडोजी को दे दी।

https://t.me/Sahityajunction

वैसे कृष्ण पक्ष की चतुर्थी थी वह, परन्तु वही नेताजी के लिए 'शुद्ध' चतुर्थी हो गयी थी। क्रान्तिकारी दिन उदित हुआ। यद्यपि वर्षाऋतु थी, फिर भी आमन्त्रण पाकर अनेक मान्यवर लोग दुर्ग में पहुँच चुके थे। राजसभागृह के बीच एक बैठक पर छत्रपति महाराज पूर्वाभिमुख बैठे थे। एक होमकुण्ड बनाया गया था। महाराज के आसन के निकट ही एक नीची बैठक पर सम्भाजी राजाराम के साथ बैठे थे। इन राजासनों के दोनों ओर मोरोपन्त, हम्बीरराव, अण्णाजी, प्रह्लादपन्त, निराजीपन्त, दत्ताजीपन्त आदि अष्टप्रधान खड़े थे। रानी-कक्ष में परदे के पीछे सोयराबाई, पुतलाबाई, सगुणाबाई, येसूबाई आदि राज्ञी वर्ग उपस्थित था।

उच्च मन्त्रघोष के बीच शुद्धि-संस्कार प्रारम्भ हुआ। नेताजी ने एक दिन का उपवास करके चित्तशुद्धि की थी। प्रभाकरभट्ट उन्हें राजसभागृह में लाये और पाट पर बैठाया। दुर्ग के पौनी वाले नापित ने उनकी मुग़लिया ढंग की कटी-छँटी दाढ़ी उस्तरे से साफ कर दी और सिर का मुण्डन करके चोटी का गोल घेरा मात्र शेष रखा। इसके पश्चात् नेताजी ने स्नान किया और प्रायश्चित्त विधि पूर्ण हुई। तत्पश्चात् पाँच कुम्भों में जो मन्त्रपूत जल भरा रखा था, अनन्तभट्टजी और प्रभाकरभट्टजी ने मन्त्रोच्चार सहित नेताजी के सिर पर उस जल का सिंचन किया। हर एक सिंचन-धारा से नेताजी को अनुभव हो रहा था कि सारे शरीर पर लगा अपवित्र लेप एक-एक छींटे-छपाके से धुलता चला जा रहा है। उपस्थित सभी जन अभिभूत होकर इस अपूर्व विधि को देख रहे थे।

अब महाराज बैठक पर से उठे और अनन्तभट्ट के पीछे-पीछे होकर वे चौकी पर खड़े नेताजी के सम्मुख आये। उन्होंने अपने हाथों से नेताजी को जनेऊ पहनाया। उस जनेऊ के स्पर्श से और उससे भी बढ़कर जनेऊ पहनानेवाली महाराज की उँगलियों के स्पर्श से नेताजी का शरीर पुलकित हो उठा। इस पुलक ने मराठों के उस सेनापति को पावन बना दिया।

इसके बाद महाराज ने थाल में रखे नवीन और तह किये हुए वस्त्र एक-एक करके नेताजी के कन्धे पर रखे। नेताजी का कण्ठ और हृदय गद्गद हो उठा था—उस आवेग को रोककर वे एकदम महाराज के चरणों से लिपट गये। इस आलिंगन से कुछ देर के लिए तो महाराज भी हक्के-बक्के रह गये। उनके नेत्र छलछला आये। धीरे से नीचे झुककर उन्होंने नेताजी को ऊपर उठाया।

नेताजी का सिर अब तक भी नीचे ही झुका हुआ था। यह घोषणा की जा चुकी थी कि नेताजी शुद्ध हो गये, पुनः हिन्दू हो गये, परन्तु स्वयं नेताजी के दिल में खटक रहा था कि अभी वे हिन्दू नहीं बने!

"स्वामीऽ," भावावेग के कारण उनके गद्गद कण्ठ से यह शब्द कठिनाई से निकला। इस एक शब्द से महाराज के हृदय में गहरी व्यथा मच उठी।

"कहो," महाराज ने नेताजी के मुण्डित सिर की ओर देखते हुए पूछा।

"स्वामी, एक प्रार्थना है आपके चरणों में," हृदय की व्यथा को प्रकट करने में नेताजी को कठिनाई हो रही थी।

"कहो, कहो! निस्संकोच कहो।"

"हमें...हमें..."

https://t.me/Sahityajunction

“क्या चाहिए तुम्हें?”

“स्वामी, हमें एक बार, केवल एक बार ‘नेताजी’ कहकर पुकार लें आप। आपकी वह पुकार सुनने को हृदय छटपटा रहा है।”

महाराज की ग्रीवा तन गयी। नेताजी के कन्धों को दोनों हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़कर वे कहने लगे, “अब...अब तुमने अनुभव किया कि नाम का कितना महत्त्व होता है। सिर उठाओ नेताजी, तुम हमारे ही हो नेताजी।”

नेताजी के कान व्याकुल थे इस प्रकार के शब्द सुनने के लिए। मन्त्रपूत जल से हो या न हो, परन्तु महाराज द्वारा नाम उच्चारण के साथ ही वे पूर्णतः शुद्ध हो गये, ऐसा अनुभव हुआ नेताजी को। कान की लौ लाल हो उठी। भावनाओं की आँधी को रोकने के लिए वे हथेलियों से मुँह छिपाना ही चाहते थे कि महाराज ने उन्हें उससे पूर्व ही गले से लगा लिया।

सम्भाजी सुध-बुध भूले इस मिलाप को देख रहे थे। आलिंगन ने उनके हृदय को बहुत प्रभावित किया।

दोपहर को इस संस्कार के अवसर पर एक सहभोज का आयोजन किया गया था। नेताजी को अत्यन्त आदरपूर्वक महाराज तथा युवराज के बीच में पाट पर बैठाया गया था। आज यह पहला ही अवसर था कि रानी पुतलाबाई और सगुणाबाई स्वयं परोसने का कार्य कर रही थीं। महाराज ने एक बार पूरी पंक्ति की ओर देखा और संकेत किया—“भोजन प्रारम्भ करें।” महाराज थाली में से एक-एक कटोरा उठाकर चौकी पर रख रहे थे और शेष सब लोग उनका अनुकरण कर रहे थे।

केवल विचारों में खोये हुए नेताजी ही ऐसे थे, जिन्होंने मुग़ली छावनी की आदत के अनुसार सीधा दाल-चावल मिलाना शुरू कर दिया था।

महाराज सबको अभियान की योजना समझा रहे थे। उपस्थित मन्त्री, सेनापति, सरदार उनके शब्दों को ध्यान लगाकर सुन रहे थे। युवराज सम्भाजी भी उन शिव-वचनों को अपनी हृदयरूपी सीप में सँजोकर रख रहे थे!

“एक विशेष प्रयोजन हेतु समस्त मण्डली को आज निमन्त्रित किया है। इस राज्य को दिन दूना-रात चौगुना बढ़ाना है। आज तक आदिलशाह ने हमारे राज्य पर कई आक्रमण किये। फ़तह ख़ाँ, अफ़ज़ल ख़ाँ, सलामत जौहर जैसे सरदार-सेनापति चढ़ आये थे। कई बार तो ऐसी स्थिति आ गयी थी कि लगा था, हम बचेंगे ही नहीं। परन्तु माँ भवानी की कृपा से हम सारी आपत्तियों में से सकुशल तर गये।

“आज बीजापुर का आदिलशाही राज्य निर्बल हो चुका है। घर की आपसी फूट ने उस राज्य को भीतर से खोखला कर डाला है। ऐसे समय ही उस पर हमला बोलकर उस राज्य का जितना भी प्रदेश जीता जा सके, जीत लिया जाए, ऐसा हमने सोचा है। शत्रु के द्वार की देहली पर जब तक हम नंगी तलवार चमकाते हुए खड़े न रहेंगे, तब तक हमारा अपना घर भी सुरक्षित क्योंकर रह पाएगा? इस कारण हमने योजना बनायी है कि इसी अवसर पर आदिलशाही राज्य का तुंगभद्रा नदी से लेकर कावेरी नदी तक का सारा प्रदेश जीत लिया जाए। इस योजना की

https://t.me/Sahityajunction

सफलता के लिए दूसरी ओर के पड़ोसी राज्य, गोलकुण्डा के कुतुबशाही राज्य से मित्रता कर ली है तथा औरंगज़ेब की मुग़लाई से सन्धि कर ली है।

"अब हम विजयादशमी के शुभमुहूर्त पर सेनासहित कर्नाटक प्रदेश की मुहिम के लिए निकलनेवाले हैं। आप लोगों ने आज तक हमें हर मुहिम में सहयोग दिया है, हृदय की निष्ठा से और भुजाओं की शक्ति से। इस बार भी आप साथ रहेंगे ही। यह राज्य फले-फूले, यह तो उस 'श्री' की इच्छा है। आप-हम तो उसके उपासक मात्र हैं। साहसपूर्ण हृदय लेकर आगे बढ़ने पर वह 'श्री' भवानी अवश्य हमें विजयी बनावेंगी।"

महाराज तेजस्वी नेत्रों से और भी बहुत कुछ कह गये। फिर हम्बीरराव, येसाजी और आनन्दराव को उन्होंने यह काम सौंपा कि वे कुशल पटैतों और घुड़सवारों को चुन लें।

अपनी अनुपस्थिति में रायगढ़ और राज्य की व्यवस्था सम्बन्धी विवरण बताते हुए महाराज मोरोपन्त से कहने लगे, "प्रधानमन्त्री पेशवा, जब तक हम इस मुहिम में रहेंगे, तब तक यहाँ रायगढ़ और सारे राज्य की समस्त व्यवस्था युवराज सम्भाजी के अधिकार में रहेगी। तुम, सचिव अण्णाजी, चांगोजी आदि लोग युवराज की सलाह से राज्य की व्यवस्था और सुरक्षा के लिए तत्पर रहो। कोई संकट आये, तो सब मिलकर दूर हटाना।"

"जी, जैसी आज्ञा," मोरोपन्त ने हुंकारी भरी। परन्तु सचिव सुरनीस अण्णाजी को यह व्यवस्था भायी नहीं। महाराज ने सारी योजना अपनी सशक्त वाणी द्वारा इतने प्रभावशाली ढंग से समझायी थी कि अण्णाजी को उसके विरुद्ध कुछ कहने की अथवा ननुनच करने की हिम्मत नहीं हुई।

सम्भाजी इसी सोच-विचार में डूब गये थे कि महाराज ने उन पर रायगढ़ शासन-व्यवस्था का जो भार सौंपा है, उसे क्योंकर वहन किया जाए!

सबको विदाई के बीड़े दिये गये। मन्त्रणा-सभा समाप्त हुई।

"शम्भू, हम तुमसे कुछ बातें कहना चाहते हैं। क्या समझबूझ से सुनोगे?" महाराज ने सम्भाजी को विशेष सन्देश भेजकर बुलवाया था।

"जी, आप आज्ञा दें।" महाराज क्या कहनेवाले हैं, सम्भाजी इसका कुछ भी अनुमान नहीं कर पा रहे थे।

"देखो बेटे, रायगढ़ का शासन तुम्हारे अधिकार में रहे, यह बात महारानीजी को पचती नहीं। तुम उनके स्वभाव को जानते ही हो। वे कहती हैं कि हमारी अनुपस्थिति में वे यहाँ रायगढ़ में नहीं रहेंगी—वे अपने मायके के गाँव तलबीड जाने की सोच रही हैं। यह ठीक नहीं दीखता। हमारा मन नहीं करता कि उन्हें अधिक कुछ समझाएँ-कहें। इस समय तो तुम ही समझ-बूझ से काम ले सकते हो। बोलो, हमारी बात मानोगे?" हरेक शब्द अन्तस्तल की गहरी वेदना से भरा था।

'महारानी जी!' इस एक शब्द से सम्भाजी का हृदय प्रक्षुब्ध हो उठा। मानसिक क्षोभ के कारण उनकी भरी हुई छाती धौंकनी के समान ऊपर-नीचे होने लगी। 'कैसी महारानी जी?—हमारी बात छोड़ो, स्वयं महाराज के मार्ग में भी वे कितने काँटे बिछाया करती हैं? समय पर

https://t.me/Sahityajunction

अचूक निशाना लगाती हैं! भला क्या बिगाड़ा है हमने इनका? महाराज साहब का हृदय क्षत-विक्षत होने का कारण बन जाते हैं हम। सब सोचते हैं, यह सब उलटा-सीधा हम ही करते हैं। हम ही सारी अनबन के मूल कारण हैं। उनके इस आचरण का स्पष्टीकरण हम उनसे माँग नहीं सकते, महाराज साहब को उनसे कुछ कहना भाता नहीं। कैसा विचित्र युवराज-पद पाया है हमने भी? मुँह पर पट्टी बँधी है, पीठ पर कोड़े बरसाये जा रहे हैं। आखिर कब तक सहन करें हम यह सब? क्यों सहें हम यह सब? युवराज-प्रद की क्या हमने किसी से भीख माँगी थी? पिता का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते यह पद हम तक आ पहुँचा है, परम्परा ही है ऐसी। अब हमारे इस युवराज-पद को वे फूटी आँखों देखना नहीं चाहतीं। अण्णाजी को साथ लेकर वे अपने पैर के अँगूठे से भी ऐसी कुटिल गाँठ मार देती हैं कि भले-भले लोगों की बुद्धि चकरा जाए। और मज़ा यह कि उसे वे राजनीति कहती हैं। परन्तु उनकी इस स्त्रियोंवाली राजनीति में हमारा मन पाँवों तले कुचला जाता है—स्वयं आबासाहब को मानसिक खींचातानी में उलझना पड़ता है। न जाने हमारे आबासाहब इन रानी साहिबा से संकोच क्यों करते हैं?'

"क्यों, चुप क्यों हो गये हो शम्भू?" सम्भाजी को मौन देखकर महाराज शान्ति से कहने लगे।

"जी, आप जो भी आज्ञा दें, वह हमें शिरोधार्य है।" सम्भाजी की इच्छा थी कि महाराज को इस समय किसी भी प्रकार से मानसिक यातना न हो।

"हमें भरोसा था कि तुम ऐसा ही कहोगे। हम दशहरे के बाद दुर्ग छोड़कर मुहिम पर रवाना होंगे। तुम भी हमारे साथ चलो। राज्य की सीमा तक हमारे साथ-साथ चलो और फिर शृंगारपूर में अपने श्वसुर पिलाजी शिर्के के यहाँ ठहरो। हम उस प्रदेश का प्रभानवल्ली प्रदेश का सूबा तुम्हें सौंप रहे हैं। उस प्रदेश की व्यवस्था करते हुए तुम हर भाँति उसकी उन्नति और सुरक्षा का ध्यान रखो। वहाँ केशव पण्डित और उमाजी पण्डित तुम्हारे सहायक बनकर रहेंगे। राजकार्यालय के कामकाज के लिए विश्वनाथ, खण्डोजी बल्लाल, परशुरामपन्त और महादेव यमाजी तुम्हारे साथ रहेंगे। वहाँ पण्डितों के सहवास में रहने से तुम्हारी काव्य-प्रतिभा का भी विकास होगा।" महाराज को अकस्मात् येसूबाई और शृंगारपूर के पिलाजी शिर्के की कुलदेवी भावेश्वरी की स्मृति आ गयी। वे मौन हो गये।

"एक प्रार्थना हमारी भी है महाराजसाहब। आज्ञा हो, तो निवेदन करें?" सम्भाजी ने मन को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया।

"हाँ, कहो।" महाराज की दृष्टि सम्भाजी के गले में पहनी माला की ओर गयी।

"हमारी इच्छा है कि इस मुहिम में हम भी स्वयं आपके साथ रहें। रायगढ़ और सारे राज्य पर माँजी का राज्य चलता रहे। जब हम स्वयं ही आपके साथ रहेंगे, तो सारी झंझटें अपने-आप समाप्त हो जाएँगी। झगड़े की जड़ ही कट जाएगी।"

सम्भाजी की बात सुनकर महाराज को हँसी आ गयी। "शम्भू, यह तो हमें पहले से ही पता था कि तुम ऐसी ही प्रार्थना करोगे। परन्तु यह राजनीति है बेटे। यह मन के आवेगों-उबालों से नहीं खेली जाती। एक बार हम तुम्हें आगरा साथ ले गये थे—वहाँ हम दोनों ही फँस गये थे। इस भूल का घाव अब भी हरा है। फिर से वैसी भूल करना उचित नहीं। हमने सब कुछ सोच-समझकर ही तुम्हें प्रभानवल्ली का सूबा सौंपा है। हमारा कहा सुनो, उस सूबे को अपनाकर वहाँ की शासन-व्यवस्था सँभालो।"

https://t.me/Sahityajunction

“जी, जैसी आप आज्ञा करें। परन्तु एक निवेदन है—हमें जो सूबा सौंपा गया है, उसके काम-काज में मन्त्रिगण हस्तक्षेप न किया करें।”

“यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो वह भी हो जाएगा। परन्तु यह मत भूलो कि उनकी लोगों के बारे में तुम यदि मन में ईर्ष्या-वैरभाव रखोगे, तो तुम्हारा काम नहीं चल सकेगा। आज हो या कुछ बरस बाद, तुम्हें इन्हीं लोगों के समर्थन-सलाह से एक-एक क़द्म बढ़ाना होगा। बेटे, जो रास्ते से भटककर दायें-बायें को भागना चाहते हैं, उन्हें कुशलता से रास्ते पर लाना चाहिए। अकेले नेताजी हमसे रूठकर चले गये, तो हमें कितनी मुसीबतें सहनी पड़ीं।”

“हमारे मन में किसी के भी बारे में ईर्ष्या या वैरभाव नहीं है, महाराज साहब। हम भूलने-भटकनेवाले को उचित मार्ग पर भी लाने को तैयार हैं, चाहे इसके लिए हमें कितना भी दबना-झुकना क्यों न पड़े। परन्तु जो लोग मौक़ा ताककर पैर में फन्दा डालना चाहते हैं, उनका क्या किया जाए? जो सचमुच सो रहा है, उसे जगाया जा सकता है, परन्तु जो सोने का स्वाँग रचकर लेटा हुआ है, उसे भला कोई कैसे जगाये? अब आप निश्चिन्त होकर जाएँ, पीछे की कोई चिन्ता आप न करें। आपकी जो आज्ञा है, हमें शिरोधार्य है।”

“युवराज, पिता से या राजा से प्राप्त राज्य अथवा सम्पत्ति किस काम की? वह क्या पुरुषार्थ कहाती है? हमें भी हमारे पिता ने और आदिलशाही सरकार ने पुणे की ऊसर-बंजर जागीर पर नियुक्त किया था। परन्तु हमने उनकी बात नहीं मानी। हम देश-देश में घूम-घूमकर लोगों को अपना बनाते गये—संगठन बनाते गये। मोरोपन्त, अण्णाजी आदि लोग बड़े काम के लोग हैं। तुम उनका स्नेह जीत नहीं पाते हो, और वे लोग तुम्हारे अनावश्यक साहस को पसन्द नहीं करते हैं। इस खींचातानी में हमारा दम घुटा जाता है। आज समुद्र की खाड़ी में ज़ंजीरा का हबशी राजा ताक लगाये बैठा है। वह इसी ताक में है कि उधर हम दूर के प्रदेशों में हमला करने पहुँचे और इधर वह समुद्र के साथ लगे लम्बे भू-भाग, कोंकण भाग पर कब्ज़ा कर ले। आज हो या कल हो, औरंगज़ेब की बुरी नज़र हमारे राज्य की ओर घूमनेवाली है। कभी विचार किया तुमने कि इन सबका कैसे सामना किया जाए? कितने ही तो लक्ष्य हैं, जिन्हें हमें प्राप्त करना है। इस कार्य की सफलता के लिए हर-एक आदमी को चुन-चुनकर अपना बनाना होगा। समर्थगुरु का उपदेश क्या तुम भूल गये हो—‘मराठों-मावलों को करो संगठित—महाराष्ट्र का धर्म बढ़ाओ।’ यह उपदेश हमारे तो कानों में सदा गूँजता रहता है। याद रखो, शतरंज के राजा को भी कभी-कभी दो घर पीछे हटना पड़ता है। राज्य भी शतरंज के समान एक संकटों से भरा खेल ही है, उसमें कभी ख़तरे उठाने पड़ते हैं, और कभी पीछे भी हटना पड़ता है।

“यह राज्य हमारा नहीं है, तुम्हारा भी नहीं है और रानी साहिबा का भी नहीं है। यह राज्य है ‘श्री’ का, माता भवानी का। उसके लिए अनेक स्वामी-भक्तों ने प्राणों की आहुति दी है। भोसले कुल के हम लोग तो केवल उस देवी के उपासक हैं। यह भाव जब-जब मन से दूर होता है, तभी अनबन या मनमुटाव पैदा हो जाता है। महारानीजी में इसे समझने की योग्यता ही नहीं—उनके मन में लालच समा गया है। वे राजाराम को आगे बढ़ाकर अनेक युक्तियाँ-उपाय करना चाहती हैं, हम ख़ूब समझते हैं उनकी चालों को। वे हमें समझने में भूल करती जा रही हैं, कारण यह कि हम उन्हें एक निराली दृष्टि से देखते हैं। वे रानी हैं, राजाराम की माता हैं, परन्तु हम उन्हें इन दो नातों से बढ़कर महारानी के रूप में देखते हैं। देखना चाहते हैं कि वे महारानी होने के नाते

https://t.me/Sahityajunction

समस्त प्रजाजनों की माता बनकर दिखाएँ। परन्तु वे माता तो बन नहीं सकतीं, उलटे ऐसी टेढ़ी चालें चलती हैं कि समझ नहीं आता कि रोएँ या हँसें। यदि हम उनके प्रति आदर और संकोच को तिलांजलि देकर उन्हें कोई सज़ा दे डालें, तो यह ठीक वैसा ही होगा कि जैसे दर्पण में देखकर कोई अपने ही मुख पर कालिख पोत ले।

"हमने इस राज्य के हित के लिए तुम्हें मिर्ज़ा राजा की छावनी में ज़ामिन बनकर रहने का भार सौंपा था। शरीर पर कफ़नी पहनाकर तुम्हें मथुरा में साक्षात् मृत्यु के जबड़े में रख आये थे। तुमने ये उत्तरदायित्व वहन किये। आज भी हम यह भार तुमको ही सौंप रहे हैं। यह न समझो कि हमें ऐसा करने में आनन्द मिलता है। भोसले-कुल में जन्म लेनेवाला हर पुरुष उत्तरदायित्व और कर्तव्य निभाने का प्रण लेकर ही जन्म लेता है। राजाराम अभी नन्हा बच्चा है, तुम बलशाली युवक हो। तुम ये सब बातें भलीभाँति समझ सकते हो।"

उस श्रीमन्त राजयोगी के ये बोल सम्भाजी के मन को मथ गये। वे आगे बढ़कर महाराज के पाँवों में झुके और गद्गद कण्ठ से बोले, "महाराज साहब, हम आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहते हैं कि हमें इस राज्य का लेशमात्र भी लोभ नहीं है। हमें तो आपके चरण ही सबसे अधिक वन्दनीय हैं। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही होगा।"

"शम्भू," उस भोसलेवंशीय तगड़े युवा राजपुत्र को ऊपर उठाकर गले से लगाते हुए महाराज के मुख से केवल एक यही शब्द निकल पाया।

रायगढ़ के नक्कारख़ाने के ऊपर मराठों का भगवा झण्डा 'ज़री-पताका' मावल देश की वायु से मिलकर ताल देता हुआ फहरा रहा था। कभी उसका नोकदार छोर एकदम मुड़ जाता था और सीधा कर्नाटक की दिशा की ओर इशारा करता था।

विजय-अभियान के प्रस्थान का 'विजयादशमी' का दिन उदित हुआ। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा के दिन घटस्थापना द्वारा भवानीदेवी की प्रतिष्ठा की गयी थी, दशमी के दिन उस भवानी देवी का जागरण हुआ तथा दुग्ध-धाराओं से उसका अभिषेक किया गया। उसके चरणों के निकट मिट्टी के घड़ों में प्रतिपदा के दिन बोये गये नवधान्य के कोंपल उग आये थे—धन-धान्य की समृद्धि का थाल इस रूप में उसके चरणों में समर्पित था।

इस दिन महाराज पौ फटते ही पालकी में बैठकर सम्भाजी, मन्त्रिगण और सरदारों के साथ रायगढ़ से पाचाड़ आ गये।

रानी पुतलाबाई ने निश्चय किया था कि वे महाराज की अनुपस्थिति में रायगढ़ में न रहकर पाचाड़ में ही रहेंगी। महाराज और युवराज जब पाचाड़ पहुँचे, तो पुतलाबाई ने उनके वहाँ से प्रस्थान करते समय दोनों के हाथों में दही के थक्के रखकर शुभकामना प्रकट की।

इसके पश्चात् महाराज सम्भाजी सहित पाचाड़ की हवेली से बाहर निकले। रघुनाथपन्त, जनार्दनपन्त हणमन्ते, हम्बीरराव, येसाजी, सर्जेराव जेधे, धनाजी जाधव, नेताजी पालकर, नागोजी जेधे, मानाजी मोरे, बालाजी आवजी, बाबाजी ढमढेरे, अण्णाजी, मोरोपन्त आदि मन्त्री, सेनापति एवं सरदारों का समूह उनके साथ निकला। हवेली के सभागृह में लटका हुआ घण्टा इस समय शान्त-निःशब्द था, फिर भी वह इन वीरों को मूक रहकर आशीर्वाद दे रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

“हरऽ-हरऽ महादेव!” हज़ारों कण्ठों से निकली इस ललकार की लपटें आकाश में उठने लगीं। इन्हीं ललकारों को तोपों की गड़गड़ाहट ने और भड़का दिया। बहिर्जी नाईक का निरीक्षण-दल इस सेना के आगे दौड़ पड़ा।

तीस हज़ार सैनिकों की यह सेना भोसले पिता-पुत्र के नेतृत्व में आगे बढ़ने लगी। तुरहियाँ बज उठीं, छोटे-बड़े नगाड़े गरज उठे। लो, चला जा रहा है यह भवानी का भक्त नयी दिशाओं में पराक्रम दिखलाने—वह जा रहा है चिपलूण की दिशा में और उसके आक्रमण का लक्ष्य है कर्नाटक।

मंज़िल-दर-मंज़िल यह सेना चिपलूण पहुँची, जो भगवान परशुराम का प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र है। महाराज और युवराज ने एक साथ उस तीर्थ में जाकर दर्शन पाये और पश्चात् उन्होंने वहाँ दान-पुण्य किया। चिपलूण से फिर यह सेना-सागर शृंगारपूर के मार्ग की ओर चल पड़ा।

शृंगारपूर घनी अमराइयों से घिरा हुआ सुन्दर नगर था। इस नगर के सिंहद्वार पर महाराज के समधी और सम्भाजी के श्वसुर पिलाजी शिर्के और उनके पुत्र गणोजी शिर्के पालकी लेकर स्वागतार्थ उपस्थित थे। सब लोग गले मिले। नाते-रिश्ते के लोगों के साथ महाराज और युवराज शृंगारपूर में प्रविष्ट हुए। शृंगारपूर के एक भूतपूर्व सरदार सूर्यराव सुर्वे एक संघर्ष के बाद शृंगारपूर छोड़कर दूर देश चले गये थे। तब से उनकी वह हवेली राजकर्मचारियों के कामकाज का केन्द्र बन गयी थी। महाराज के निवास की व्यवस्था इसी हवेली में की गयी थी।

रात को शान्त समय में महाराज ने पिलाजी से सम्भाजी के विषय में चर्चा की। उन्हें बताया कि प्रभानवल्ली का सूबा सम्भाजी के अधिकार के अन्तर्गत रखा जा रहा है और इस कारण वे अब शृंगारपूर में ही निवास करेंगे। पिलाजी उन्हें हर प्रकार से सहयोग दें, इस बात को पिलाजी ने आनन्दपूर्वक स्वीकार किया। फिर महाराज ने पिलाजी के पुत्र और अपने दामाद गणोजी और अपनी कन्या राजकुँवरबाई का कुशलक्षेम पूछा। भोसले और शिर्के परिवार के लोगों ने उस रात मिलकर भोजन किया।

अगले दिन प्रातःकाल होते ही महाराज हवेली से निकले और सम्भाजी के साथ भावेश्वरी देवी के दर्शनार्थ गये। शिर्के वंश की इस कुलदेवी का आशीर्वाद पाकर और पिलाजी से गले मिलकर वे विदा हुए। वे पिता-पुत्र ‘आम्बा’ नामक पर्वतीय घाट की ओर बढ़ चले। धूप अब बढ़ रही थी। मोरोपन्त और अण्णाजी रायगढ़ वापस लौट गये।

आम्बा घाट की चढ़ाई शुरू होने से पहले ही महाराज ने अपने ‘विजय’ नामक घोड़े की बागडोर खींची और उतर पड़े। सम्भाजी भी घोड़े से उतर गये। उनके उतरते ही पीछे का सेनासागर भी थम गया।

“अच्छा, शम्भू राजा, अब तुम लौट जाओ। हम आगे जाते हैं।” महाराज ने हथेली सम्भाजी के कन्धे पर रखकर कहा। कुछ क्षण मौन रहकर बीते—विदा की घड़ी आ पहुँची थी।

“महाराज साहब, आप अपना ध्यान रखिएगा। हर पड़ाव से अपनी कुशलता का समाचार भेजते रहिएगा। इस ओर की आप बिलकुल चिन्ता न करें।”

“शम्भू, भला हम चिन्ता क्यों करें? उस जगन्माता भवानी को सबकी चिन्ता है, हम-तुम तो उसके उपासक मात्र हैं। जाओ, हमारी बहूजी के साथ शृंगारपूर में निवास करो। हम लौटेंगे, तो

https://t.me/Sahityajunction

पिलाजी के मुख से अपने जामाता की प्रशंसा ही सुनेंगे, हमें विश्वास है। अच्छा, जय भवानी!"

दोनों गले मिले। दोनों के सोने के चौकड़े और टोप की मोती-मालाएँ हिल उठीं। वाणी मूक हो गयी—नेत्र भी वाचाल हो गये। वे 'शिव-शम्भू' आलिंगन से छूटकर अलग हुए। महाराज लपककर, कूदकर घोड़े पर सवार हो गये। सम्भाजी अपने सशस्त्र सहायकों, खण्डोजी, रायाजी, अन्तोजी के साथ एक ओर को हो गये। वह दिग्विजयीवाहिनी घाट की चढ़ाई चढ़ने लगी। सम्भाजी बड़ी देर तक 'विजय' घोड़े को एकटक देखते रहे, फिर उनके कानों में शब्द गूँजे—'उस जगन्माता भवानी को सबकी चिन्ता है।' धीरे-धीरे सेना आँखों से ओझल हो गयी। सम्भाजी अपने साथियों सहित लौट पड़े।

जब वे शृंगारपूर में आये, तब शाम का धुँधलका छा गया था। शिर्के की घुड़साल के बहुत से घोड़े महाराज की सेना के साथ गये थे। घुड़साल में थोड़े शेष थे।

उनमें से कुछ घोड़े लेकर एक सईस घोड़ों को अस्तबल में बाँधने के लिए एक सहायक के साथ जा रहा था। सम्भाजी को देखकर सईस और सहायक अदब से झुक गये। घोड़ों का दल रुक गया। सम्भाजी की दृष्टि उन घोड़ों की ओर गयी। सभी घोड़ों के अगले पैरों के खुरों पर अनिष्टसूचक सफ़ेद रंग का गोल धब्बा था। 'तो यह पूरा दल असगुनी है। अपशकुनी है!!' सम्भाजी मन-ही-मन चौंक उठे।

शृंगारपूर में दो दिन रहकर सम्भाजी ने पिलाजी और गणोजी से विदा ली और रायगढ़ आ पहुँचे। रायगढ़ की देख-रेख राहुजी सोमनाथ कर रहे थे। पुतलाबाई पाचाड़ की हवेली में रहती थीं, इसलिए उन्होंने सातमहलवाला अपना महल येसूबाई और दुर्गाबाई को सौंप दिया था। सिंदखेड की राणू दीदी अभी तक रायगढ़ में ही थीं। उन्हें सोयराबाई की कोई भी चाल पसन्द न थी। वे अपने भाई सम्भाजी को समर्थन और सहारा देने के लिए यहाँ मायके में ही रह रही थीं।

प्रभानवल्ली सूबे के राजकार्यालय की स्थापना करनी आवश्यक थी। सम्भाजी इसके लिए सुयोग्य व्यक्तियों का चुनाव करने लगे। इस काम में उन्हें कवि कुलेश भी सलाह दे रहे थे।

केशव पण्डित, उमाजी पण्डित तथा विश्वनाथ को साथ रखने की सलाह तो महाराज ने ही दी थी। राजकार्यालय का कामकाज चलाने के लिए परशुरामपन्त, खण्डोजी बल्लाल, महादेव यमाजी तो अनिवार्य लोग थे। सम्भाजी ने इन सबको शृंगारपूर जाने की आज्ञा दी। कवि कुलेश और ऊधो योगदेव भी सम्भाजी से आज्ञा पाकर रायगढ़ से शृंगारपूर को चल दिये। केशव पण्डित ने कामन्दकीय नीतिसार, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों के गट्ठे बाँधकर सेवकों के सिर पर रखवाये और वे भी उमाजीपन्त के साथ शृंगारपूर को रवाना हो गये। रायगढ़ छोड़कर जाने का दिन निकट आता जा रहा था। अब सम्भाजी को महाराज के आने तक शृंगारपूर में ही रहना था, अतः वे भाई राजाराम को जहाँ तक हो सके, अपने साथ रखने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु सोयराबाई को यह बात नहीं रुचती थी।

मार्ग के प्रहरी सैनिकों को चुनने का कार्य पूरा करके सम्भाजी ने पिलाजी को सन्देशा भिजवाया कि वे सपरिवार आ रहे हैं। फिर उन्होंने जगदीश्वर की पिण्डी का अभिषेक किया।

रायगढ़ से अपने विदा होने का समाचार बताने के लिए वे राणू दीदी से मिलने पुतलाबाई के महल में गये। राणूबाई, येसूबाई और दुर्गाबाई इसी महल में मिलकर रहती थीं। राणूदीदी को नमस्कार करके सम्भाजी ने विषय का प्रारम्भ किया, "दीदी, हम आबासाहब की इच्छा के

https://t.me/Sahityajunction

अनुसार परिवार सहित शृंगारपूर जा रहे हैं।”

राणू दीदी ने उनकी बात शान्ति से सुनी और फिर निश्चयपूर्ण राजोचित स्वर में कहने लगीं, “यह हमें मालूम है। हमने निश्चय कर लिया है कि हम तुम्हारे साथ चलेंगी।”

“हम आपकी बात नहीं समझे।” सम्भाजी ने हड़बड़ाकर चौंककर पूछा।

“शम्भू भैया, यहाँ आने के बाद से हम खुली आँखों से सब-कुछ देख रही हैं, पर मौन बनी हुई हैं। हमने सिंदखेड में सुना अवश्य था कि यहाँ कुछ झमेला हो रहा है, परन्तु वह इतना भयानक और टेढ़ी चालों से भरा होगा, यह हमने कभी नहीं सोचा था। तुम बड़ी माँजी की आँखों में खटकते हो। हम अच्छी तरह समझ चुकी हैं कि अब तक जो कुछ बीता-गुजरा है, वह कुछ भी नहीं है। अभी तो और भयंकर बातें होनेवाली हैं। सब लोग तुम्हें अकेला-बेसहारा समझ रहे हैं, परन्तु अब...अब हमने ही हरदम तुम्हारे साथ रहने की और तुम्हें सहारा देने की ठान ली है। अब जो कोई भी तुम्हारे पाँवों में रोड़े अटकाएगा, उससे हम स्पष्टीकरण माँगेंगी। उसे रोकेंगी। शम्भू भैया, तुम चाहो या न चाहो, हम शृंगारपूर चलेंगी ही।”

सम्भाजी अभिभूत दृष्टि से दीदी की ओर देखने लगे। राणू दीदी ने ठीक उनके मन की ही बात कही थी। राणू दीदी के प्रति सम्भाजी के मन में जो आदर-प्यार था, वह अब आँखों में छलक आया। उनका गला रुँध गया।

“क्यों शम्भू भैया, चुप हो गये? उत्तर दो न!” दीदी ने उन्हें विषय टालने नहीं दिया।

“जैसी आपकी इच्छा दीदी!” सम्भाजी ने सम्मति दे दी।

नियत तिथि को तीन डोलियाँ सातमहल के सामने लायी गयीं—येसूबाई, दुर्गाबाई और राणू दीदी के लिए। तीनों डोलियाँ पालकी दरवाज़े से बाहर चली गयीं।

युवराज ने राहुजी सोमनाथ से विदा ली। यद्यपि सोयराबाई ने रोकने का बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु भाई राजाराम मचल उठा और अण्णाजी तथा मोरोपन्त के साथ सामनेवाली मीनारों तक आ ही गया। सम्भाजी ने उसके माथे को चूम लिया और पीठ थपथपाते हुए उन्होंने राजाराम से कहा—ठीक उसी ढंग से, उन्हीं शब्दों में कहा कि जैसे महाराज ने सम्भाजी से अम्बाघाट की तलहटी में कहा था—

“अच्छा, अब तुम लौट जाओ। हम आगे जाते हैं।”

“दादा महाराज...” राजाराम कुछ कहने को थे, पर हड़बड़ा गये।

“कहो न,” सम्भाजी ने धीरे से उनका कन्धा थपथपाया।

“हम...हम भी आएँ क्या तुम्हारे साथ?” राजाराम की आँखों में आशा व अपेक्षा लबालब भरकर बह रही थीं।

उनके कन्धे पर रखा सम्भाजी का हाथ जैसे एक झटके से दूर हट गया। सम्भाजी ने एक दौड़ती नज़र से अण्णाजी, मोरोपन्त, राहुजी आदि की ओर देखा। सब सिर नीचा झुकाये खड़े थे।

इसी समय सम्भाजी को अपने बचपन की राजगढ़वाली वह घटना याद आ गयी—जब वे मिर्ज़ा राजा जयसिंह की छावनी में ज़ामिन बनकर रहने जा रहे थे तब महाराज भी उन्हें विदा करने आये थे। उस समय किसी ने सोचा भी न था कि महाराज ने अचानक अपनी कौड़ियों की

https://t.me/Sahityajunction

माला उतारी थी और दुहरी बनाकर बालक सम्भाजी के गले में पहना दी थी।

सम्भाजी के नेत्रों में अकस्मात् चमक आ गयी, हाथ छाती की ओर बढ़ गया। उन्होंने धीरे से माँ भवानी की कौड़ियों की वह माला उतारी और दुहरी बनाकर भाई राजाराम के गले में पहनाते हुए वे कहने लगे, "हम यहाँ न रहें, तो भी हमारी यह भेंट रहने देना अपने पास। पाचाड़ के सभागृह का घड़ियाल जब बजा करता है, उस समय नियमपूर्वक मावल-माची पर जाया करना और नमस्कार अर्पित किया करना! जय भवानी!"

इसके बाद सम्भाजी में अब साहस नहीं था कि किसी की ओर देख सकें। उन्होंने रायगढ़ की सामनेवाली मीनारों की ओर एकदम पीठ फेर ली। अचानक ही उनकी नज़र गंगासागर की ओर गयी। वहाँ झुकी हुई एक टेढ़ी शाखा पर कौड़िल्ला पक्षी छिपा हुआ बैठा था। वह अपनी लम्बी चोंच साफ कर रहा था, जैसे कि अभी-अभी उसने कुछ शिकार पाया हो और झट से निगल लिया हो।

रायगढ़ के पर्वतीय दुर्ग से तीन डोलियाँ नीचे उतर रही थीं। उनके पीछे ख़ास मावली ढंग की देहाती जूतियाँ पहने, बगल में एक गठरी दबाये धाराऊ चली जा रही थी। उसके जूते चरमरा रहे थे और वह चरमराहट मन में चरमराहट मचा रही थी।

'क्यों हो रहा है यह सब झंझट-बखेड़ा? मुझे तो कुछ समझ नहीं आता।'

शृंगारपूर के सुर्वे की हवेली में प्रभानवल्ली सूबे का नया राजकार्यालय खुल गया। सूबे में जितने सरदार और अधिकारी थे, वे अपने सहायकों के साथ युवराज से मिलने आने लगे। जाड़े के कोहरा-भरे दिन थे, फिर भी शृंगारपूर में रौनक छा गयी थी, भीड़-भड़क्का बढ़ने लगा था।

शृंगारपूर चारों ओर से घने जंगलों से घिरा हुआ था। सम्भाजी ने निश्चय किया कि यहाँ धनुर्विद्या का अभ्यास किया जाय। आस-पास के जंगलों में गड़रिये घास-फूस के छप्पर, झोंपड़ी बनाकर रहते थे। वे कभी-कभी शिकायत ले आते थे कि 'अमुक जंगल में बाघ ने उपद्रव मचाया हुआ है, सूअरों ने हाहाकार मचा रखा है।'

सम्भाजी खण्डोजी बल्लाल, सयाजी, अन्तोजी जैसे निष्णात शिकारियों को साथ लेकर जंगल में हाँका करवाने लगे। दस-पाँच कोस की दूरी पर बसी बस्तियों के घरों के लोग सम्भाजी द्वारा शिकार किये हुए प्राणियों को देखने आने लगे। इस अभ्यास से सम्भाजी ने तीर-कमान और ठस्से की बन्दूक़ की निशानेबाज़ी में निपुणता प्राप्त कर ली।

एक दिन शुभ मुहूर्त में सम्भाजी ने कुलदेवी भवानी का अभिषेक किया और उसका आशीर्वाद पाकर उन्होंने 'बुधभूषणम्'नामक काव्यग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की। उनका विचार था कि विष्णुपुराण, कामन्दकीय नीतिसार, मत्स्यपुराण, महाभारत आदि ग्रन्थों के कुछ श्लोकों को चुना जाय और देवी-देवता-स्तुति, राजनीति, सामान्य-नीति आदि विषयों का अपने इस ग्रन्थ में विवेचन किया जाय।

उस दिन हवेली के सभा-कक्ष में काव्यशास्त्र की सभा आयोजित की गयी थी। केशव पण्डित और उमाजी पण्डित लकड़ी की तिपाई पर पुराणग्रन्थ खोलकर बैठे थे। धूपदानी से उठते हुए सुगन्धित धूम्र के वलय छत की ओर उड़े जा रहे थे। सम्भाजी ध्यान में खोये हुए इन

https://t.me/Sahityajunction

वलयों को देख रहे थे। न जाने कब उनकी पलकें अपने आप बन्द हो गयीं। मुखमण्डल पर एक निराली शान्ति और गम्भीरता खिल उठी।

कुछ ही समय बाद उनके मुख से विघ्नविनाशक गणेशजी की प्रार्थना के श्लोक प्रकट होने लगे। परशुरामपन्त सम्भाजी की दाहिनी ओर बैठे थे, वे पंख की लेखनी से उन श्लोकों को काग़ज़ पर अंकित करने लगे :

"देवदानवकृतस्तुतिभाग हेलया विजितदर्पितनागम् ।
भक्तविघ्नहनने धृतरत्नं, तं नमामि भवबालकरत्नम् ।"

(देवों तथा दानवों द्वारा पूजित, दुष्टों का गर्व हरण करनेवाले, भक्तों के संकटों को दूर करनेवाले, रत्नादि से सुशोभित, 'शिव' के पुत्र उस गणेश को मैं नमस्कार करता हूँ।)

गणेशस्तुति के पश्चात् सम्भाजी को अपने 'बड़े महाराज' की अर्थात् दादाजी श्री शहाजी महाराज की स्मृति हो आयी। शहाजी के स्वभाव और महिमा का यथोचित वर्णन करनेवाले सुबद्ध शब्द देववाणी में सम्भाजी के मुख से प्रकट होने लगे :

"मृशत् बलान्वय सिन्धुसुधाकरः प्रथितकीर्तिउदारपराक्रमः ।
अभवदर्थकलासु विशारदो जगति शहानृपः क्षितिवासवः ।।"

(सिन्धु एवं सुधाकर के समान बलशाली, कीर्तिमान्, उदार, पराक्रमी, अर्थविद्या एवं कलाओं के विशारद, शहाजी नामक एक राजा हुए हैं।)

सम्भाजी गावतकिये पर टेका लगाये और नेत्र बन्द किये बैठे थे। पण्डितगण उन्हें आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से एकटक निहार रहे थे और कानों की सीप बनाकर उनके शब्द-मुक्ताफलों को एकत्रित कर रहे थे। कुछ क्षण इसी प्रकार गहन शान्ति में बह गये मानो शान्त सरोवर के जल पर से श्वेत हंसों की पंक्ति शान्ति से तैरती निकल गयी हो।

अब सम्भाजी के बन्द नेत्रों को अपने महाराजसाहब के निराले कई रूप, चमकदार हिलती हुई तलवार के रूप में दिखलाई देने लगे :

आगरा के दरबार में मुग़लिया बादशाह की ओर पीठ फेरकर तोप के गोले की तरह बाहर निकल जानेवाले आबासाहब; बहादुर ख़ाँ के मुग़लिया दूत को 'निकल जाओ' कहकर डाँटते हुए आबासाहब; 'अब तुमने अनुभव किया कि नाम का कितना महत्त्व होता है' कहकर नेताजी पालकर को गले लगा लेनेवाले महाराजसाहब; माँ साहिबा की समाधि पर सुवर्णपुष्प चढ़ाकर घुटने टेककर समाधि के चरणों में सिर झुकानेवाले आबासाहब; सातारा दुर्ग में रुग्णशय्या पर लेटे हुए आबासाहब; 'पिता से प्राप्त राज्य अथवा सम्पत्ति किस काम की' ऐसा सदुपदेश हमें शान्त वाणी से सुनानेवाले आबासाहब, 'भोसले-कुल के हम लोग तो केवल उस देवी के उपासक हैं' कहकर हमें छाती से लगा लेनेवाले आबासाहब...

अनेक रूपों की स्मृतियाँ एक-दूसरे में मिलने लगीं। न मन में, न ही नेत्रों में ये स्मृतियाँ पूरी तरह समा पा रही थीं। नासिका को चिकोटी में पकड़कर, वे सोच में डूबे हुए थे, माथे पर बल पड़ गये थे। अकस्मात् उनकी ग्रीवा में एक झटका आया और उससे राजटोप की मोती-लड़ियाँ डोल उठीं। इन्हीं लड़ियों से पंख फड़फड़ाते हुए शब्द-रूपी सुनहरे पक्षी उड़ पड़े :

https://t.me/Sahityajunction

"यस्यानेक वसुन्धरा परिवृतः प्रोत्तुंगचूडामणेः ।
पुत्रत्वं समुपागतः 'शिव' इति ख्यातः पुराणो विभुः ।।"

(उन शहाजी राजा को, विपुल समृद्धि एवं विशाल राज्य का स्वामी, पर्वत के समान उच्च, महान् नेता के रूप में प्रजाजनों का प्रिय, पुराणों में वर्णित नरश्रेष्ठ, 'शिवाजी' नामक एक पुत्र प्राप्त हुआ।)

"कलिकालभुजंगम् अवलीढं, निखिलं धर्ममवेक्ष्य विकलवं यः ।
जगतः पतिरंशतोवतापो स शिव-छत्रपतिर्जयत्यजेयः ।।"

(कलिकाल-रूपी सर्प का दमन करनेवाला, धर्म की दुरवस्था देखकर जो विह्वल हो उठा है, भूपति के रूप में जगती का ताप हरण करने के लिए ही जिसने अवतार धारण किया है, उस अजेय छत्रपति राजा शिवाजी की जय हो!)

'जयत्यजेयः' को सम्भाजी दो-तीन बार स्वयं दुहरा गये। उन्हें दिखाई देने लगे वे महाराजसाहब, जो 'विजय' नामक अश्वराज पर आरूढ़ होकर अम्बाघाट की चढ़ाई चढ़ रहे हैं। उन्होंने अनुभव किया कि जैसे अब भी अम्बा घाट की घाटियों-कन्दराओं में वह आवाज़ गूँज रही है—'हम चिन्ता क्यों करें? उस जगन्माता भवानी को सबकी चिन्ता है।'

अपनी वंशावली और कुल की रीति को याद करते हुए सम्भाजी का ध्यान अब स्वयं अपनी ओर केन्द्रित हो गया। महाबलेश्वर तीर्थ में गोमुख से जिस प्रकार जल की निर्मल धारा गिरती है, उसी प्रकार उनके मुख से काव्यधारा प्रवाहित होने लगी :

"तस्यात्मजः शम्भुरितिप्रसिद्धः समस्तसामन्तशिरोवतंसः ।
यः काव्यसाहित्यपुराणगीतकोदण्डविद्यार्णव पारगामी ।
विविच्य शास्त्राणि पुरातनानामादाय तेभ्यः खलु सोयमर्थम् ।
करोति सद्ग्रन्थममुं नृपालः सः शम्भुवर्मा बुधभूषणाख्यम् ।।"

(उन शिवाजी का समस्त राजाओं का शिरोभूषण, काव्यसाहित्य, पुराण, संगीत, धनुर्विद्या आदि कला एवं शास्त्रों में निष्णात्, शम्भुवर्मा नामक यह पुत्र प्राचीन शास्त्र-काव्यादि ग्रन्थों का विवेचन करके, उनसे अर्थपूर्ण भाग को चुनकर 'बुधभूषणम्' नामक इस सदग्रन्थ की रचना कर रहा है।)

इस ग्रन्थ को रसिकजन किस रीति से पढ़ें, इस विषय में निवेदन करते समय सम्भाजी के गोल, भरे हुए, तेजस्वी मुखमण्डल की शोभा कुछ निराली ही हो उठी। कुलीनता एवं विनय का भाव, जो उनके मुख पर अंकित था, इन सुकोमल शब्दों में प्रकट हो उठा :

"विविच्य सन्तः कृतिमस्यदीयां गृहन्तु सद् असद्च्चत्यजन्तु ।
क्षीरावियुक्तं परिहृत्य नीरं क्षीरं भजन्ते खलु राजहंसाः ।।"

(राजहंस दूध में मिले पानी को छोड़कर केवल दूध ही पीता है, इसी प्रकार विद्वान् सज्जन हमारी इस कृति के सत् का ग्रहण करें तथा असत् का त्याग करें।)

परशुरामपन्त की पगड़ी डोल उठी। वे युवराज द्वारा रसिकों को सम्बोधित करके कहे गये श्लोक को काग़ज़ पर लिखने लगे। श्लोक लिखकर उन्होंने उसके नीचे दो रेखाएँ खींच दीं।

https://t.me/Sahityajunction

चुटकी में मुलायम रेत लेकर उस काग़ज़ पर बिखेर दी। काव्यग्रन्थ का पहला अध्याय समाप्त हो गया था।

सम्भाजी ने आँखें खोलीं। कवि कुलेश न जाने कितनी देर से उनकी ओर टक लगाकर देख रहे थे। काव्य सुनकर वे विमोहित हो गये थे। उन्होंने पहले सम्भाजी को झुककर नमस्कार किया।

"युवराज, हम उत्तर देश से इस देश में आये हैं। परन्तु हमने ऐसा कोई युवराज नहीं देखा, जो इस प्रकार उत्तम कविता करता हो।" कवि कुलेश प्रभावित होकर कहने लगे।

"धन्यवाद कविराज, आप बैठिए तो सही। अब हम प्रयत्न करके देखते हैं कि क्या हम अपनी माता भवानी की स्तुति के गीत लिख सकते हैं?" सम्भाजी ने हाथ के संकेत से कुलेश को बैठने को कहा।

उस सभा-कक्ष में आकर पिलाजी दीवार से लगे खड़े हैं, इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं था। पिलाजी ने बैठक में आकर देखा कि उनके जामाता आँखें मींचकर संस्कृत में कुछ बोल रहे हैं, सो वे चुपचाप एक ओर खड़े होकर अभिमान-भरी दृष्टि से सारी सभा को देखते ही रह गये।

"जगदम्बे, हे जगदम्बे।" सम्भाजी ने नेत्र बन्द कर लिये। दायाँ हाथ धारण की हुई नवीन कपर्दिकमाला पर गया। उनके अन्तःपटल पर वस्त्र-ज्योतियाँ लहराने लगीं, हल्दी-रोली मुट्ठी में भर-भरकर उछाली जाने लगी। दुक्कड़ और इकतारे का संगीत गूँजने लगा—'अम्बा भवानी का उदय हो, जय हो,' की जय-जयकार ध्वनि वातावरण को कँपाने लगी और फिर शस्त्रधारिणी, रक्तनेत्रा, व्याघ्रारूढ़ा जगदम्बा ही उनके सम्मुख आ खड़ी हुई। भवानी देवी की स्तुति देववाणी बनकर उनके होठों से बह निकली :

"स्फटिकरचित पीठे श्यामलांगी भवानी—

(स्फटिकनिर्मित श्वेतवर्ण आसन पर यह श्यामलांगी भवानी विराजमान है।)

"विलसत् भालतिलकां (जिसका भाल तिलक से सुशोभित है) पूर्णेन्दुहृद्यवदनां (पूर्णिमा के चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली) सवर्तुलस्तनद्वयम् (कलशस्तनी) पद्मनेत्र विराजिताम् (कमल के समान सुन्दर नेत्रवाली) शम्भुकान्ता—(तेजःपूर्ण कान्तिधारण करनेवाली) निम्ननाभि (निम्न नाभिवाली) कृशमध्यां—(कृश कटिवाली) विलसद्रवनवसनां, रक्ततकांची परिवृताम् (रक्तवर्णीय वस्त्रों से एवं रक्तवर्ण मेखला से सुशोभित) चन्द्र-चूडामणि स्तुतिमेनाम् धरणीश शम्भुर चितामतिभवन्या (भगवान महादेव की अर्द्धांगिनी उस भवानी की, राजा शम्भु अत्यन्त भक्तिभाव से स्तुति गाता है)।"

"साधु, साधु, अतिसुन्दर," कवि कुलेश प्रशंसा के भाव को रोक नहीं पाये। पिलाजी की आँखों में असीम आनन्द छलछला रहा था, वे एकटक सम्भाजी को ही देख रहे थे।

सम्भाजी ने आँखें खोलीं। अचानक उनका ध्यान कक्ष की देहली के पास खड़ी हुई धाराऊ की ओर गया। सम्भाजी ने देखा कि वह लौटी जा रही है, इस कारण अन्य किसी से भी बात न करते हुए उन्होंने सीधा उससे ही पूछा, "कहो आऊ, क्या आज्ञा है?" धाराऊ असमंजस में पड़ गयी। क्षणभर को हड़बड़ायी, परन्तु फिर धीरज बाँधकर कहने लगी, "ये तुम्हारी धरम-करम की क्या बातें चल रही हैं, ये होने दो। मैं तो यह कहने आयी थी कि भोजन तैयार है। थालियाँ परोस

https://t.me/Sahityajunction

दी गयी हैं।”

सम्भाजी मुस्कराते हुए बैठक से उठ खड़े हुए। उठते-उठते सोचने लगे—‘हम जिस देववाणी में कविता रचते हैं, वह देववाणी श्रेष्ठ है अथवा इस धाराऊ की कुनबियोंवाली मावल देश की बोली श्रेष्ठ है, कुछ कहा नहीं जा सकता!’

येसूबाई, दुर्गाबाई और राणूदीदी विशेष बहुमूल्य वस्त्रों से अलंकृत होकर तैयार हो चुकी थीं। आज मकर-संक्रान्ति से अगला दिन था। इस दिन की प्रथा थी कि सुहागिनें ग्रामदेवी भावेश्वरी के मन्दिर में जाकर देवी की नारियल, हल्दी, चावल आदि से कोंछ भरती थीं।

प्रातःकाल ही सम्भाजी ने मलखम्भ पर दशरंग, चक्करदार, सर्पकुण्डली आदि दाँवों का व्यायाम किया। फिर स्नानादि के पश्चात् लोटा भर दूध पीकर उन्होंने देवमन्दिर में रखी कौड़ियों की माला गले में धारण की। रायाजी ने उनके सामने एक दर्पण पकड़ा और उसमें देखकर वे माथे पर शिवतिलक की रेखाएँ अंकित करने लगे। इसी समय उन्हें जिजाऊ के वचनों का स्मरण हो आया—‘शिवजी ने ही सुख-दुख की ये रेखाएँ तुम्हारे भाल पर अंकित की हैं।’

फिर युवराज बैठक में पधारे। वहाँ सूबे की प्रजा आ-आकर उनके दर्शन करने लगी। संक्रान्ति के दिन घर के बड़े-बूढ़ों को प्रणाम करने की प्रथा थी, तदनुसार सम्भाजी राणू दीदी से मिलने रनिवास में गये। येसूबाई ने अपने ‘श्रीमान्‌जी’ को आते देखा, तो आँचल सँवार कर सावधान हो गयीं। दुर्गाबाई लजाकर अन्तःपुर में जाने लगीं।

“ज़रा ठहरो, बहन,” कहकर येसूबाई ने उन्हें रोक लिया।

सम्भाजी भीतर आये और उन्होंने राणू दीदी को प्रणाम किया। उनकी दृष्टि कमरे में इधर-उधर गयी तो उन्होंने देखा कि पाट पर चाँदी की एक थाली में गुड़ और तिलों से बनाया हुआ एक मगरमच्छ रखा था, जिसकी पूजा की जानी थी। फिर शुभमुहूर्त में उसे तोड़-फोड़कर उसके टुकड़े तिल-गुड़ के प्रसाद के रूप में सबको बाँटे जानेवाले थे। सम्भाजी उस पाट के पास गये और उस गहरे-पीले रंग के मगरमच्छ की ओर देखते रहे।

“शम्भू भैया, तुम आजकल तीर-कमान, शिकार और पुराणग्रन्थों की चर्चा में खोये रहते हो। हमें डर था कि कहीं तुम संक्रान्ति के दिन परिवार के लोगों में तिल-गुड़ बाँटने के रिवाज को भूल तो नहीं जाओगे।” राणू दीदी ने सिर झुकाकर लजाती खड़ी येसूबाई और दुर्गाबाई की ओर देखते हुए हँसकर कहा।

सम्भाजी मगरमच्छ की ओर देखते-देखते कहने लगे, “देखो दीदी, हमारा स्वभाव भी इस मगरमच्छ के समान है। एक बार हमारे मन ने जो कुछ बात पकड़ ली, उसे फिर हम छोड़ते नहीं। हमने ठान लिया है कि महाराज साहब को पूरा काव्य बनाकर ही दिखलावेंगे।”

“हमें तुम्हारी ये कविता तो समझ नहीं आती। हम तो आज तुम्हारा बन्दूक़ का निशाना देखना चाहती हैं। दिखाओगे क्या?” दीदी ने यह बात भी येसूबाई और दुर्गाबाई की ओर देखकर ही कही थी। सम्भाजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, “जैसा आप चाहें। आज की परम्परा है कि भावेश्वरी के प्रांगण में जो पीपल का वृक्ष है, उस पर शाम को नारियल लटकाये जाते हैं। लोग बन्दूक़ चलाकर उन्हें फोड़ते हैं। हम आज शाम को आपको अपना निशाना अवश्य दिखाएँगे।

https://t.me/Sahityajunction

आप आइएगा न देखने!" सम्भाजी ने राणू दीदी की ओर देखा और वही दृष्टि उन्होंने येसूबाई तथा दुर्गाबाई की ओर भी घुमायी। उनकी दृष्टि कह रही थी—'दीदी, इन दोनों को भी साथ ले आना।'

राणू दीदी उनका आशय समझ गयीं। अब वे केवल हँस दीं। इतनी देर से वे जो बात सुझाना चाह रही थीं, वह बात उनके भैया राजा के दिमाग़ में अब जाकर घुसी थी।

"अच्छा, हम चलते हैं।" सम्भाजी महल से बाहर निकल गये।

एक सेविका ने सुन्दर वस्त्र से ढँकी उस चाँदी की थाली को कन्धे पर रखा। राणू दीदी, येसूबाई, दुर्गाबाई भी सेविकाओं का दल साथ लेकर हवेली से बाहर निकलीं।

शाम को नगर के बाहरी द्वार के निकट स्थित भावेश्वरी मन्दिर का प्रांगण ठस्से की बन्दूक़ों के धमाकों से दनदना उठा। सम्भाजी वीरासनवाला पैंतरा लगाकर, बन्दूक़ के दस्ते को दायें कन्धे से सटाकर, बायीं आँख मींचकर पीपल के वृक्ष पर लटक रहे नारियलों को बन्दूक़ का निशाना लगाकर उड़ा रहे थे। उन्होंने एक के बाद एक करके पाँच नारियलों का समूह फोड़ डाला। नारियल टुकड़े टुकड़े होकर वृक्ष के नीचे बिखर गये। नारियल के पानी से पीपल के पत्ते भीग गये और कुछ दूरी पर बैठक पर बैठी येसूबाई और दुर्गाबाई के हृदय भी एक निराले सुमधुर भाव से भीग उठे।

पिलाजी की हवेली की बैठक में काव्य-चर्चा की आज दूसरी सभा आयोजित की गयी थी। आज 'बुधभूषणम्' काव्य-ग्रन्थ के दूसरे अध्याय का विषय था—'राजनीति'। यही अध्याय ग्रन्थ का मध्यभाग और निचोड़ था।

धूपदानी से सुगन्धि के वलय उठ रहे थे और पूरे कक्ष में घूम रहे थे। वातावरण शान्त और नीरव था।

परशुरामपन्त ने एक कोरा काग़ज़ लिया, जिसके नीचे कपड़े का अस्तर लगाया हुआ था। उस काग़ज़ पर वे लिखने लगे :

'द्वितीयो ऽध्याय

राजनीतिः'

"पण्डित जी, राजा के लिए कौन से गुण आवश्यक माने गये हैं? एक श्रेष्ठ राजा के लक्षण तो बतलाइए।" सम्भाजी ने उमाजीपन्त से प्रश्न किया।

उमाजी ने सामने की तिपाई पर रखे कामन्दकीय नीतिसार के पन्नों को कुछ देर तक उलट-पलटकर देखा और फिर बोले, "राजा वह है जो क्रोध, भय, लोभ, द्रोह आदि भावों पर संयम रख सकता हो, जो ज्ञानप्राप्ति के लिए वृद्धजनों का हितोपदेश सुनता हो तथा जो अनेक हितकारी गुणों को स्वयं अर्जित करता हो।"

सम्भाजी के सामने तिपाई पर कई ग्रन्थ रखे थे। वे उनके पन्नों को उलट-पलटकर देखने लगे। फिर परशुरामपन्त के कानों में पहनी बाली की ओर देखते हुए सम्भाजी राजलक्षण-रूपी

https://t.me/Sahityajunction

पुष्प काव्य देवी पर अर्पित करने लगे :

"मेधावी, यतिमान्, दक्षः, क्षमावान्, ऋजुः—

(मेधावी, बुद्धिमान्, जागरूकं, क्षमाशील और सरल-मृदु अन्तःकरणवाला)

"धर्मात्मा अपि न असूयकः—

(जो धर्मात्मा हो और ईर्ष्या-द्वेष से रहित हो)

"स्मरत्युपकृतं, वृद्धोपसेवीयः—

(उपकारों का स्मरण रखनेवाला, कृतज्ञ तथा वृद्धों से पथप्रदर्शन पानेवाला)

"शूरो न व्यसनी—

(शूरवीर हो, परन्तु व्यसनाधीन न हो)

"अविसंवादी, दीर्घदर्शी, जितक्रोधो, जितेन्द्रियः—

(सत्य एवं निष्कपट बुद्धिवाला, दूरदर्शी, क्रोध को जीतनेवाला तथा जितेन्द्रिय)

"कविराज, ऐसे आदर्श राजा का राज्य तथा स्वभाव कैसा होना चाहिए, इस विषय में विष्णु-पुराण का यह श्लोक कितना सुन्दर है, तनिक सुनिए।" सम्भाजी बीच में ही ठहर गये और फिर वे एक श्लोक स्वयं ही पढ़ने लगे, जो उन्हें बहुत भा गया था :

"नातिदण्डो न निर्दण्डः—

(राजा सदैव दण्ड देनेवाला भी न हो और एकदम शिथिल अथवा दण्डरहित भी न हो)

"व्यहारे समः प्राप्ते पुत्रेण रिपुणा सह—

(शत्रु हो अथवा अपना निजी पुत्र हो—व्यवहार में, न्याय में दोनों से समान आचरण करनेवाला)।"

इस श्लोक के साथ ही सम्भाजी को महाराज की याद आ गयी। उनका हृदय अभिमान से भर उठा। वे अभिभूत होकर लक्षणों का वर्णन फिर करने लगे :

"लोकाचारः दुष्परिग्रह—

(जो प्रजा का आधार हो तथा दुर्जेय हो)।"

"वाह-वाह!"

"अति उत्तम!"

कवि कुलेश, केशव पण्डित तथा उमाजीपन्त राजा के इन वर्णित लक्षणों को सुनकर प्रशंसा किये बिना न रह सके।

सम्भाजी का मुख पूनम के चन्द्रमा-सा समुज्ज्वल बन गया तथा नेत्र अपने कुल के अभिमान से पूरित हो उठे। वे अभी राजा के शेष लक्षण कहने ही जा रहे थे कि पिलाजी कक्ष में प्रविष्ट हुए।

"युवराज बाहर की सभागृह में कुछ किसान प्रजाजन खड़े हैं। आपसे मिलना चाहते हैं। कुछ शिकायत लेकर आये हैं।" पिलाजी ने काव्यसभा में थोड़ी बाधा उत्पन्न करने का साहस किया था, क्योंकि वे जानते थे कि यह सभा शीघ्र समाप्त नहीं होगी। सभा का काव्यमय वातावरण टूट

https://t.me/Sahityajunction

गया। एकदम विचित्र-सी शान्ति छा गयी।

"ठीक है, हम सभागृह में आ रहे हैं, मामाजी[1], उन लोगों को सूचना भिजवा दीजिए।" सम्भाजी मन-ही-मन मुस्करा उठे। मुख से ये शब्द गुनगुना रहे थे—"लोकाधारः लोकाधारः। पण्डितगण, हम अभी आते हैं।" सम्भाजी उस काव्यरस में रँगी सभा को छोड़कर सभागृह की ओर बढ़ चले। रायाजी, अन्तोजी और खण्डोजी बल्लाल बाहर अदब से खड़े थे, वे उनके साथ हो लिये।

ज्योंही युवराज सभागृह में आये, वहाँ खड़े दस-बीस लंगोटधारी कुनबियों ने उन्हें मुजरे किये। सम्भाजी बैठक पर बैठ गये और रायाजी, अन्तोजी और खण्डोजी बैठक में दोनों ओर अदब से खड़े हो गये।

सम्भाजी ने एक बार उन कुनबी प्रजाननों को देखा। उन्हें आशा थी कि वे कुछ बोलेंगे, परन्तु वे सब सिर नीचे झुकाये खड़े थे। प्रतीत होता था कि वे माटी के लाल किसी भयानक काली छाया से त्रस्त हैं।

सम्भाजी ने खण्डोजी बल्लाल की ओर देखा। वह युवराज का इशारा समझ गया और आगे बढ़कर उन कुनबियों से बोला, "अरे भैया, कोई एक जना आगे बढ़ो। जो कुछ भी तुम्हारी शिकायत है, युवराज साहब के सामने पेश करो।"

उस समूह में सफ़ेद-सफ़ेद गलमुच्छोंवाला एक बूढ़ा था। वह हिम्मत करके आगे बढ़ा और बोला, "पर हमें न्याय मिलेगा क्या?"

"तुम कहो तो सही," खण्डोजी ने उसे दिलासा दिया।

"सरकार, हम धरती माँ के पूत हैं। आप हमारे पिता हैं। इस साल धरती माँ रूठ गयी है, खेतों में कुछ उगा ही नहीं। सरकार का लगान हम कहाँ से दें? गाँव के पटवारी से कहा, तो वह कान बन्द करके बैठ गया। हम क़िले में सुरनीस के पास गये तो वे कहते हैं, यह सरकारी लगान है, कोई मज़ाक नहीं है। तुम चाहो तो उसमें थोड़ी छूट माँग लो, पर लगान तो भरना ही पड़ेगा। मालिक, हमारे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं, लगान भरना ही पड़ेगा तो हमें खेती के बैल-मवेशी बेचने पड़ेंगे। ढोर डंगर तो किसान को बाल-बच्चों के बराबर हैं। अब सरकार, हम क्या करें? हम बीस कोस से आपके चरणों में आसरा पाने आये हैं। महाराज यहाँ हैं नहीं, अब आप हमारे माई-बाप हैं। सरकार, इस साल लगान माफ़ करा दें, यही अर्ज़ी है।" बूढ़े की आँखों के कोने गीले हो उठे थे।

'लोकाधारः, लोकाधारः!' सम्भाजी के मन में कोई हज़ार मुखों से चिल्ला रहा था। उनकी कवि की कोमलता क्षणभर में बदल गयी और राजा का तेज मुख पर छा गया। सुननेवाला भयभीत हो उठे, ऐसी करारी आवाज़ में वे कहने लगे, "खण्डोजी, इन सब लोगों का पूरा लगान हम माफ़ करते हैं। इनके जैसे और भी जितने लोग हैं, उन सबका भी लगान माफ़ किया जाता है। इस आज्ञा के पालन के लिए आज्ञापत्र तैयार करो और हस्ताक्षरों के लिए हमारे पास भेजो। ख़ास हरकारे भेजकर ऐसे आज्ञापत्र गाँव-गाँव में भेज दो।"

"जी, जो आज्ञा।" खण्डोजी ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।

"अच्छा भैया, तुम लोग जाओ, अब तुम्हारा लगान माफ़ कर दिया गया है। और भी कुछ

https://t.me/Sahityajunction

कठिनाई आये, तो संकोच मत करना। हमसे ज़रूर मिलना। हमारे दरवाज़े सदा खुले हैं।"

सम्भाजी बैठक से उठे। सन्तुष्ट कुनबी कमर तक झुक गये। अब उनके मुख की काली छाया दूर हो चुकी थी।

सम्भाजी फिर से बैठकवाले कक्ष की ओर लौट चले, परन्तु उनकी आँखों के आगे सुरनीस सचिव अण्णाजी का चेहरा नाच रहा था—'यह आदमी हमें अवश्य बहुत कष्ट देगा।' एक आशंका कौडिल्ला पक्षी बनकर उड़ी और उनके मन-रूपी गंगासागर में गोता लगा गयी। वहाँ एक मछली का शिकार करके लम्बी चोंच साफ करती हुई वह आशंका भाग्य की आम्रशाखा पर जा बैठी।

सम्भाजी पुनः पण्डित-मण्डली में आ बैठे। हाथ में पकड़ी गुलाब की कली को उन्होंने गद्दी पर दूर रख दिया। यद्यपि वे अन्यमनस्क थे, तथापि प्रतीक्षा में बैठे परशुरामपन्त को उन्होंने मत्स्यपुराण का एक चुना हुआ श्लोक बतलाया :

"यद्यपि अल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
पुरुषेण सहायेन किमु राज्यं महोदयम्?"

(चाहे कितना भी छोटा-सा कार्य क्यों न हो, फिर भी अकेले व्यक्ति के लिए वह दुष्कर ही होता है। पुरुषार्थी पुरुष के सहयोग से छोटा राज्य भी बड़ा क्यों नहीं बन सकता?)

सम्भाजी की एकाग्रता खण्डित हो चुकी थी, विविध भावनाएँ मन में कोलाहल मचा रही थीं। पण्डितगण भी हड़बड़ा-से गये थे। इनमें किसी को क्या पता था कि ठीक इसी समय छत्रपति शिवाजी महाराज कुतुबशाही राज्य की राजधानी भागानगर में प्रवेश कर रहे हैं—उनके स्वागत में तुर्रियाँ और नगाड़े बज रहे हैं, तोपें दनदना रही हैं तथा झूल पहनाये विविध अलंकारों से अलंकृत अग्रगामी हाथी पर भगवा ध्वज फहरा रहा है और उनके पीछे शिवाजी महाराज सफ़ेद रंग के 'विजय' नामक घोड़े पर आरूढ़ होकर भागानगर में प्रवेश कर रहे हैं। हज़ारों की मावली सेना उनके पीछे-पीछे चली आ रही है।

कुतुबशाह की रिआया हवेली के छज्जों में एकत्रित हो आयी थी और मराठों के सर्जा राजा के दर्शन कर रही थी।

इधर शृंगारपूर में 'बुधभूषणम्' का द्वितीय अध्याय समाप्त हो रहा था और उधर भागानगर में महाराज के जीवन-काव्य के 'शिवभूषणम्' के अन्तिम अध्याय का प्रारम्भ हो गया था।

'बुधभूषणम्' काव्यग्रन्थ का 'मिश्रकनीति' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ। बैठक विसर्जित हो गयी और सब पण्डितगण विनम्र भाव से बाहर जा रहे थे, परन्तु अकेले केशव पण्डित कोई मन की बात कहने में हिचकिचाते हुए वहीं खड़े रहे।

"कहिए, केशव पण्डितजी, क्या कहना चाहते हैं आप?" सम्भाजी ताड़ गये थे कि पण्डितजी कुछ कहना चाहते हैं।

"युवराज के चरणों में एक निवेदन करना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो कहूँ?" केशव पण्डित अटक-अटककर कह गये।

"कहिए न!"

"यहाँ शृंगारपूर में काली माता के एक शिवयोगी भक्त हैं। वे युवराज के दर्शन पाना चाहते

https://t.me/Sahityajunction

हैं। आज्ञा हो, तो...”

“हाँ, हाँ, अवश्य ले आइए उन्हें,” सम्भाजी ने हँसकर सम्मति दी।

एक दिन केशव पण्डित काली माता के शिवयोगी भक्त को और उसके शिष्य गणेश भट्ट जाम्भेकर को साथ लेकर हवेली में आये। शिवयोगी ने कफ़नी पहनी हुई थी। जटाओं को रुद्राक्षमाला से बाँधा हुआ था। भुजा तथा कपाल पर भस्म की रेखाएँ अंकित थीं।

केशवपन्त जैसे ही शिवयोगी को बैठक में लेकर आये, सम्भाजी ने आगे बढ़कर उनके चरण छुए। ‘जय भद्रकाली’ कहते हुए उस कालीभक्त ने सम्भाजी के राजटोपधारी मस्तक पर आशीर्वाद का हाथ रखा। शिवयोगी के लिए विशेष रूप से व्याघ्रचर्म मण्डित एक आसन तैयार किया गया था। सम्भाजी ने शिवयोगी को हाथ पकड़कर ले जाते हुए व्याघ्रासन पर आदरपूर्वक बैठाया।

“जी, आज्ञा कीजिए।” सम्भाजी ने नम्रतापूर्वक अनुमोदन किया।

“इस राजभवन में माता भद्रकाली की मूर्ति की स्थापना हो तथा आप अपनी पराक्रमी बाहुओं से उसे भोग लगावें।”

“जी, जैसी आपकी आज्ञा हो,” सम्भाजी ने शिवयोगी के सामने सिर झुका कर कहा।

शिवयोगी और गणेशभट्ट अतीव सन्तुष्ट मन से हवेली के बाहर चले गये।

शिर्के की हवेली में काली माता की प्रतिष्ठापना की तैयारियाँ होने लगीं। मामा पिलाजीराव, गणोजी और स्वयं सम्भाजी ने इन सारी तैयारियों की देख-रेख की। शृंगारपूर के कुशल शिल्पकार ने एक कृष्णवर्णीय शिला का चुनाव करके काली माता की एक मूर्ति घड़ ली। यह मूर्ति पूरी मानवाकार थी तथा रूप ऐसा भयानक कि मानो आक्रमण करने को उद्यत हो।

शिवयोगी ने शुभमुहूर्त भी खोज निकाला था। इसी मुहूर्त में यह मूर्ति बाजे-गाजे के साथ बड़ी धूमधाम से हवेली में लायी गयी। इस मूर्ति के वस्त्र भी लाल रंग के थे। राणू दीदी, येसूबाई, दुर्गाबाई, राजकुँवरबाई आदि ने अपने कंगन-भरे हाथों से भद्रकाली की कोंछ भरी।

शिवयोगी ने थाल में रखी हुई एक तलवार सम्भाजी के हाथ में दी। भद्रकाली के नेत्रों में दृष्टि गड़ाये हुए सम्भाजी विमोहित के समान आगे को बढ़े। उन्होंने कालीमाता के सम्मुख भूमि पर घुटने टिकाकर सिर नवाया और फिर सिर ऊपर उठाकर तलवार मस्तक से छुवायी। इसके बाद तलवार बायें हाथ में थामकर उन्होंने ‘जय भद्रकाली’ की पुकार लगायी और अपने दाहिने हाथ का अँगूठा उस तलवार की चमकदार धार से दबाकर खींचा! अँगूठे से भोसले-वंश के उष्ण रक्त की धार टपकने लगी। युवराज ने अँगूठा भद्रकाली के चरणों के निकट ले जाकर उसे राजरक्त का भोग लगाया। इस प्रकार भद्रकाली की प्रतिष्ठापना हुई।

सम्भाजी को अपने टपकते अँगूठे की ओर देखकर ‘उस’ विजयादशमी की स्मृति हो आयी कि जिस दिन राजाराम तलवार पर अँगूठा लगाने से हिचकिचा रहे थे। इस स्मृति के पीछे-पीछे रायगढ़ की अनेक घटनाओं का उनके मन में ताँता-सा लग गया।

उधर रायगढ़ में एक भिन्न प्रकार का कुचक्र रचा जा रहा था। सचिव अण्णाजी महारानी

https://t.me/Sahityajunction

सोयराबाई के महल से बाहर निकले और उन्होंने अपने एक विश्वासपात्र भेदिये के हाथ एक ख़लीता महाराज को भेजा। लिखा था : 'लगान के मामलों में युवराज अकारण ही हस्तक्षेप करते हैं। यदि एक आदेश से सारे किसानों का लगान इस प्रकार माफ़ किया जाता रहा, तो सरकारी कोष किस प्रकार समृद्ध बन पाएगा?'

उधर भागानगर में महाराज इन सब बातों से अनजान थे। उन्होंने कुतुबशाह से मिलकर अपनी राजनीतिक योजनाओं के अनुरूप व्यवस्था कर ली थी, एक दूसरे पर आक्रमण न करने के विषय में समझौता कर लिया था और उससे विदा के सम्मानपूर्ण बीड़े लेकर वे भागानगर से बाहर निकल रहे थे। त्रिकालदर्शी भद्रकाली माता अपने विस्फारित नेत्रों से यह देख पा रही थी कि बीजापुर के आदिलशाही की अब कुशल नहीं है।

सम्भाजी ने शृंगारपूर में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक काली की प्रतिष्ठापना की और रायगढ़ में सुरनीस अण्णाजी और महारानी सोयराबाई के मन में 'क' का अवतार हो चुका था!!

---

1. महाराष्ट्र का वह लम्बा पर्वतीय प्रदेश जो समुद्र के किनारे-किनारे बम्बई से गोवा तक चला गया है, 'कोंकण' कहलाता है!
1. महाराज के बुल्ढाऊ ज़िले का एक गाँव।
1. महाराष्ट्र में श्वसुर को मामाजी कहकर सम्बोधित करने की सामान्य प्रथा है।

https://t.me/Sahityajunction

पाँच

आज सारा शृंगारपूर ही ग्रामदेवी भावेश्वरी के मन्दिर के सामने के प्रांगण में उमड़ आया था। युवराज सम्भाजी के लिए वहाँ एक चबूतरा बनाया गया था, जो देवी के ठीक सामने था। इस चबूतरे को गद्दे और गावतकिये आदि से सजाकर अच्छी-ख़ासी बैठक बनायी गयी थी। सम्भाजी गावतकिये से पीठ टेक कर बैठे थे। उनके पीछे पिलाजी मामा गणोजी, कान्होजी आदि शिर्के परिवार के पुरुष बैठे थे। उनकी बायीं ओर केशव पण्डित, उमाजी पण्डित, कवि कुलेश, ऊधो, योगदेव, महादेव यमाजी, परशुराम खण्डोजी, रायाजी, अन्तोजी आदि लोग पंक्तिबद्ध खड़े थे। सम्भाजी की दायीं ओर महिलाओं के लिए एक बैठक बनायी गयी थी, इस पर येसूबाई की माता, येसूबाई, राजकुँवरबाई, राणू दीदी, दुर्गाबाई आदि शिर्के और भोसले-वंश की महिलाएँ उपस्थित थीं। महिलाओं के पीछे खड़ी थी धाराऊ—आज तक घटित 'सभी-कुछ' को मन में दुहराती हुई।

आज होली का पर्व था। भावेश्वरी के ठीक सामने खुली भूमि पर आम्र पल्लवों तथा नारियलों से सजा हुआ होली का स्तम्भ था। बीचोबीच सेमल वृक्ष का एक मोटा तना मुख्य-स्तम्भ के रूप में गाड़ा हुआ था और उसके चारों ओर छोटी-बड़ी लकड़ियों का एक विशाल ढेर जमाया हुआ था। फिर उपलों से उन लकड़ियों को चारों ओर से ढाँप दिया गया था।

"छोटे मालिक ऽ, आज के दिन को मान दें। इस होली में आग दें।" होली के त्यौहार का सम्मान पाने का अधिकारी था शृंगारपूर के शिव मन्दिर का एक अब्राह्मण पुजारी, उसने आगे आकर सम्भाजी से प्रार्थना की। अपने हाथ की मशाल ऊँची उठाकर वह खड़ा हो गया।

युवराज आसन पर से उठे। जूते उतारकर उन्होंने ग्राम पुजारी के हाथ की मशाल अपने हाथों में ले ली।

"जयऽ भवानीऽ!" भवानी देवी के पावन नाम का उच्चारण करके उन्होंने होली में आग दी। होली जल उठी। दूध की-सी सफ़ेद उस चाँदनी में लपटों के लाल-पीले पक्षी ऊपर उड़ने लगे। कुछ ही देर में होली ज़ोर से धधकने लगी। अब होली की आग से खेल खेलनेवाले साहसी खिलाड़ी आगे बढ़े। सम्भाजी होली की ओर पीठ न फेरकर पीछे हटते हुए बैठक पर आ बैठे।

ग्राम पुजारी ने होली के चक्कर लगाकर चारों दिशाओं से उस धधकती होली में नारियल फेंके। होली के खिलाड़ियों के लिए यह एक आह्वान था कि वे जलती होली में से, धधकते-फटते

https://t.me/Sahityajunction

हुए अंगारों में से नारियल निकाल लें। वे आगे बढ़े।

अब सारा शृंगारपूर आँखें फाड़-फाड़कर होली के खिलाड़ियों का साहस देख रहा था। आधी घड़ी बीत गयी फिर भी कोई खिलाड़ी सम्मानदायक श्रीफल उस धधकते ढेर में से निकालने में सफल नहीं हुआ। कइयों के हाथ झुलस गये। घबराये हुए ग्राम पुजारी ने देखा, पहले फेंके हुए नारियलों के जलकर कोयले हो गये हैं। तब उसने 'हे माता, सन्तान के अपराध क्षमा कर, कृपा कर, कृपा कर,' कहकर दूसरी बार नारियल होली में फेंके। खिलाड़ियों की पहली टोली थक चुकी थी। अब दूसरी आगे बढ़ी। देखनेवाले साँस रोके देख रहे थे। नयी टोली नयी शक्ति से आग से हाथापाई करने लगी। चन्द्रमा अब छिपने की दिशा में झुकने लगा था। आधी रात बीत चुकी थी। खिलाड़ियों की तीन टोलियाँ आग से जूझकर हार मान चुकी थीं। परन्तु अभी तक वह सम्मान-फल अंगारों से बाहर नहीं आ सका था। शृंगारपूर के निवासी अब भयभीत होकर आपस में खुसपुसाने लगे थे।

गावतकिये पर पीठ टेककर बैठे हुए सम्भाजी अब सीधे तनकर बैठ गये थे और उनकी नज़रें अब अंगारों को धमकाने लगी थीं।

रायाजी और अन्तोजी, यहाँ तक कि गाँव की इज़्ज़त बचाने के लिए पिलाजी के पुत्र गणोजी भी आगे बढ़े। परन्तु उन्हें भी ख़ाली हाथ लौटना पड़ा।

सम्भाजी ने एक बार एकत्रित जनसमूह पर दृष्टि दौड़ायी। सब गरदन नीची झुकाये खड़े थे। होली धधकती हुई जल रही थी और सम्भाजी के मन में चिनगारियाँ छिटकने लगी थीं।

'भृशत्-बालान्वय सिन्धु सुधाकरः' (सिन्धु सुधाकर के समान बलशाली राजा शहाजी)—

यस्यानेक वसुन्धरा परिवृतः प्रोत्तुंग चूड़ामणेः ।
पुत्रत्वं समुपागतः 'शिव' इति ख्यातः पुराणो विभुः ।।

"लोकप्रिय महान नेता, पुरुषश्रेष्ठ राजा शिवाजी, तस्यात्मजः शम्भुरिति ('उन महान शिवाजी का पुत्र सम्भाजी')"—मन में गूँजती इस ध्वनि के कारण सम्भाजी झटके से उठकर खड़े हो गये। ढलने जा रहा चन्द्रमा ठिठक गया। काँपती हुई चाँदनी भी स्थिर हो गयी। नीचे झुकी हुई गरदनें ऊपर उठीं। अब सम्भाजी की आँखें भी जैसे सामने की धधकती होली का ढेर ही बन गयी थीं। "अब हम...हम ही निकालेंगे यह सम्मान-फल बाहर। आशीर्वाद दो माता।" सम्भाजी तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए होली के पास आये। बेसुध होकर उन्होंने होली की एक प्रदक्षिणा की। "जय भवानी!"—युवराज के कण्ठ से निकले इस जयघोष से सबको रोमांच हो आया। अगले ही क्षण शिव के पुत्र उस रुद्र का हाथ होली के भीतर था। आग की लपट से कलाई में पहनी उनकी पहुँची भी झुलस गयी—अब राजपुत्र और अग्निदेव का संघर्ष छिड़ गया था। आग की लपटों का अनुमान करते हुए सम्भाजी आग में हाथ डालते थे। उनका हाथ और अधिक भड़की हुई उत्साह की भावना के कारण हर क्षण तेज़ी से घूम रहा था। देखते-ही-देखते सम्भाजी ने अपने हाथ से जलता हुआ वह गर्म गोला आखिर पकड़ ही लिया और पलक झपकने से पहले 'जय भवाऽनी' की पुकार लगाकर वह नारियल ज़मीन पर दे मारा। उस श्रीफल के टुकड़े सर्वत्र बिखर गये।

"माता भावेश्वरी की जय हो!" कहते हुए वह ग्राम पुजारी उस ग्राम देवी के चरणों में सीधा लेट गया—दण्डवत् करने लगा। सारे वातावरण में 'जय भवानी' का उत्साहपूर्ण कोलाहल भर

https://t.me/Sahityajunction

उठा। कवि कुलेश, रायाजी, अन्तोजी, आदि लोग युवराज का हाथ पकड़ने के लिए आगे बढ़े, परन्तु युंवराज ने किसी को अपना हाथ छूने भी नहीं दिया। हाथ अपनी पीठ की ओर करके दहकती आँखों से उन्होंने एक बार महिलाओं की बैठक की ओर देखा। येसूबाई आदि समस्त स्त्री वर्ग भौचक खड़ा था।

येसूबाई की ओर देखते ही सम्भाजी की सारी जलन शीतल हो गयी और होठों पर चाँदनी की शीतलता फैल गयी। परन्तु वह हँसी येसूबाई देख नहीं पायीं, आँसुओं का झीना परदा जो बीच में आ गया था।

युवराज सम्भाजी हवेली के छज्जे में खड़े हुए हरे-भरे जंगलों की कविता सुनने में तल्लीन थे। उनका 'बुधभूषणम्' काव्य पूर्ण हो चुका था। हवेली में प्रतिदिन काली माता की यथाविधि पूजा होने लगी थी।

'महाराज साहब, यदि इन दिनों अपने राज्य में कहीं होते तो हम इस कृति को उनके चरणों में रखकर कह पाते—'आपकी आज्ञा के अनुसार हमने राजनीति विषय पर ग्रन्थ की रचना कर ली है। कृपया इसे स्वीकार करें'।' यह सोचते हुए सम्भाजी छज्जे में ही टहलने लगे।

"क्षमा हो युवराज! आज चैत्र मास की पूर्णिमा है, रामभक्त हनुमान जी का जन्मदिन है। आज मध्यरात्रि के समय बाल हनुमान को पालना झुलाने की विधि सम्पन्न होगी। आपको सूचित करने आया था।" शिर्के-परिवार के कुल-पुरोहित के इन वचनों से सम्भाजी की विचार-तन्द्रा भंग हुई।

"हनुमान," सम्भाजी को याद आयी अपने बचपन में सुनी हुई रामायण की वे अनेक कथाएँ, जो भगवान राम के उस अनन्य भक्त के बारे में थीं। समर्थगुरु की शिवथर घाटी में हनुमान की वह सिन्दूर-मण्डित भव्यमूर्ति उनकी आँखों के आगे तैर गयी।

"पुरोहित, हम स्वयं रामभक्त के जन्मोत्सव के अवसर पर अवश्य उपस्थित रहेंगे।" सम्भाजी ने कहा।

पूर्णिमा की रात्रि का समय था। हवेली के निकट वाला हनुमान का मन्दिर मिट्टी के छोटे-छोटे दीपकों के प्रकाश में जगमगा उठा था। हनुमान की मूर्ति पर सिन्दूर का गाढ़ा लेप किया गया था। मन्दिर के सामने के प्रांगण में फूलों की मालाओं से सजा एक पालना रखा था। मन्दिर की सीढ़ियों पर प्रसादी के रूप में बाँटा जानेवाला सोंठौरा पीतल की थालियों में भरा रखा था। वहीं पर एक कोने में चौकी पर एक गंगाल रखा था, जिसमें घटिकापात्र तैर रहा था।

सारा शृंगारपूर जैसे वहाँ उमड़ आया था। सबके हाथों में रुई के फूलों की बँटी हुई मालाएँ थीं। मध्यरात्रि का समय निकट आ रहा था, पिलाजी की हवेली से सम्भाजी गणोजी, कान्होजी, कवि कुलेश तथा पण्डित मण्डल सहित गाजे-बाजे के साथ बाहर निकले। इन विशिष्ट जनों के पीछे दान के रूप में दिये जानेवाले होनों की थालियाँ लिये कई दासियाँ चल रही थीं और इनके पीछे येसूबाई, राजकुँवरबाई, दुर्गाबाई, राणू दीदी आदि राज्ञीवर्ग चल रहा था। जैसे ही राजपरिवार मन्दिर तक आया, सब लोग उनके सम्मान में खड़े हो गये। सिंगे बजने लगे। कुलपुरोहित जी स्वागतार्थ सामने बढ़ आये और उन्होंने सबके हाथ में रुई की मालाएँ दीं।

https://t.me/Sahityajunction

मध्यरात्रि का समय हो गया। रात ने अगले दिन में पग रखा। मन्दिर पर लहरा रही तिकोनी भगवी ध्वजा चैत्र मास की मन्द-मन्द वायु में डोल रही थी। सबकी आँखें गंगाल में तैर रहे घटिकापात्र की ओर लगी थीं। परन्तु सम्भाजी खड़े-खड़े गर्भ-गृह में सिन्दूरमण्डित पवनपुत्र की मूर्ति को देखने में मग्न थे—'यह पवनतनय जन्मते ही सूर्यलोक पर विजय पाने निकल पड़ा था। हमारी बड़ी आऊसाहिबा हमेशा कहती थीं—बल मिले हनुमान के समान। महाराज साहब भी सदा कहते हैं—स्वामी के प्रति निष्ठा हो बजरंग बली के समान, जिसने अपनी छाती फाड़कर दिखला दी। समर्थगुरु ने कहा था—मनुष्य ब्रह्मचारी बने मारुति के समान।' सम्भाजी सुध-बुध भूलकर मारुति की मूर्ति निहार रहे थे।

घटिकापात्र गंगाल में डूब गया। मुहूर्त का समय हो गया। कुलपुरोहितजी ने अपना उत्तरीय सँभालते हुए उत्साह से आदेश दिया, "हाँ, पालने में रख दीजिए।" येसूबाई अपनी अंजलि में एक श्रीफल और पान-सुपारी का बीड़ा रखे खड़ी थीं...इसे उन्होंने 'अंजनीपुत्र' के रूप में पालने में रख दिया।

सिंगे और नगाड़े बज उठे। 'बजरंग बली की जय' के नारों से आकाश गूँजने लगा। ऊखली पटाखे दनदना उठे। आकाश भी अपनी चन्द्ररूपी परात में भरा हुआ चाँदनी का सोंठौरा शृंगारपूर को जी-भर बाँट रहा था। भक्तगण रुई की मालाएँ मूर्ति पर चढ़ाने लगे। उपस्थित सुहागिनों ने पालने को झोंका दिया—पवन-पुत्र बाल हनुमान झूलने लगे। इस झूले की लय के साथ गीतों के मधुर स्वर भी मिल गये—

सो जा रे ऐ बालक तू, अंजनी के सुत प्यारे।
हे मारुति, हे पवनतनय तू सो जा रे तू सो जा।।

कुलपुरोहित की दी हुई प्रसादी का सोंठौरा सम्भाजी ने हथेली में लिया और खाया। प्रसादी में शक्कर कम और सोंठ अधिक होने से उनका मुँह चुनचुना उठा परन्तु मन तो रामायण में भ्रमण कर रहा था। हवेली की ओर लौटते हुए वे मन में सोच रहे थे—'हनुमानजी, चिरंजीव क्यों हुए? उनके हृदय के भीतर भगवान श्रीराम गहरे तक समाये हुए थे, इसीलिए ना? यह नितान्त सत्य है कि समर्पण कभी व्यर्थ नहीं जाता। सच्ची निष्ठा मनुष्य को अमर बना देती है।'

सम्भाजी के मन में आखेट की इच्छा उत्पन्न हुई थी, इसलिए उन्होंने हँकवैयों को हाँका लगाने के लिए जंगल में भेज दिया था। उन्होंने साथ में रायाजी, अन्तोजी और खण्डोजी जैसे शिकारी-साथी ले जाने की भी सोच रखी थी।

खण्डोजी ने बैठक में एक पलीतेवाली बन्दूक़ लाकर सम्भाजी को दी। कहने लगा, "युवराज, इस बन्दूक़ का निशाना बड़ा सच्चा है।"

यह बन्दूक़ फिरंगी बनावट की थी। तेल लगाकर उसे तैयार किया हुआ था। सम्भाजी ने बन्दूक़ अपने कन्धे से लगाकर बायीं आँख मींचकर नली के सामने वाली मक्खी पर से निशाना साधकर देखा। संयोग की बात कि उनके निशाने के सामने येसूबाई की बुँदकीदार ज़रतारी साड़ी ही आ गयी। साड़ी धूप में लटकायी हुई थी। सम्भाजी ने उस साड़ी के ज़र की एक बुँदकी पर निशाना साधा और उनकी स्वयं ही हँसी फूट गयी।

https://t.me/Sahityajunction

“ठीक है खण्डोजी। तैयारी करो। धूप ज़रा उतर जाए, तभी हम निकलेंगे।” सम्भाजी वह धुएँवाली बन्दूक़ हाथ में लेकर हवेली में घुसे! सोचा था कि शिकार करने जाने से पहले येसूबाई को बताकर जाएँ। दिन का तीसरा पहर बीतने को था। हवेली के छज्जे में येसूबाई और दुर्गाबाई खड़ी थीं। उन्होंने सम्भाजी को आता देखा, तो सँवरकर खड़ी हो गयीं।

“हम आज जंगल में हाँका लगवाने जा रहे हैं।” सम्भाजी ने कुछ इस ढंग से कहा कि न जाने वे येसूबाई से कह रहे थे या दुर्गाबाई से।

कुछ देर शान्ति रही। फिर येसूबाई ने अपने आँचल का छोर धीरे से अपने गले के चारों ओर लपेटते हुए कहा, “आज अन्धड़ और वर्षा आने का डर है!” वे कहना चाहती थीं—‘आज आप शिकार करने न जाएँ, तो ठीक रहेगा।’ परन्तु सम्भाजी बोले, “अरे, आँधी-वर्षा को झेलते हुए शिकार करने में ही तो सच्चा आनन्द है।” इतने में पिलाजी का एक कर्मचारी छज्जे में आया और उसने सूचना दी, “कोई घुड़सवार हरकारा आया है। कहता है, युवराज से ही मिलना है।”

सम्भाजी के मन में सैकड़ों प्रश्न उठ खड़े हुए और वे बिना कुछ बोले उस कर्मचारी के पीछे चल दिये। येसूबाई और दुर्गाबाई अपने ‘श्रीमान्‌जी’ की पीठ को देखती हुई सोच रही थीं—‘अच्छा, हम चलते हैं’ कहे बिना ‘श्रीमान्’ कभी जाते नहीं। आज अचानक कैसे चले गये? सम्भाजी ने आदेश दिया कि उस घुड़सवार को सभागृह में पेश किया जाय। सम्भाजी के सभागृह में आते ही वह घुड़सवार उनके सामने आया और उसने झुककर तसलीम की।

“क्या बात है?” सम्भाजी ने डपटते हुए पूछा।

“गुस्ताख़ी मुआफ़ हो हुजूर। मुझे हुक्म हुआ है कि आपसे ख़िलवतख़ाने में अकेले मिला जाय।” घुड़सवार ने विनम्रता से कहा।

सम्भाजी ने दायें-बायें गर्दन घुमाकर देखा। सभागृह में उपस्थित कर्मचारी, परशुरामपन्त, खण्डोजी आदि ने उनका संकेत समझ लिया और वे सभागृह से बाहर चले गये।

“हाँ, कहो। यही हमारा ख़िलवतख़ाना है।” सम्भाजी ने घुड़सवार से दृढ़तापूर्वक कहा।

सवार का कलाबत्तू वाला जामा चमचमा उठा। उसने जामे के भीतर छिपाया हुआ थैली में बन्द ख़लीता बाहर निकाला और हलके क़दमों से चलते हुए उसने ख़लीता सम्भाजी को दे दिया। वह ख़लीता भेजा था मुगलिया सरदार दिलेर ख़ाँ ने। औरंगज़ेब के दक्खिन देश की मुहिम पर नियुक्त सरदार दिलेर ख़ाँ ने अकलूज नगर की छावनी से यह ख़लीता भेजा था जिसमें उसने सम्भाजी को सुझाया था कि वे मराठों का साथ छोड़कर मुग़ल सेना से आ मिलें।

उस ख़लीते को पढ़ते समय सम्भाजी का सिर भन्ना उठा। हाथ थरथराने लगे। ‘कैसी विचित्र बात है? हम मुग़ली दल से जा मिलें! उससे मिलकर दक्खिन देश जीत लें? छिः!’ युवराज की साँस गर्म हो उठी।

सम्भाजी ने एक बन्द दरवाज़े की ओर देखकर ज़ोर से ताली बजायी। परशुरामपन्त भीतर आये।

“पन्त, ख़लीता लिखने के लिए एक क़लमदानी लाओ”

“जी,” परशुरामपन्त ने अपनी लिपिक की बैठक पर रखी क़लमदानी उठायी तथा एक कोरा गोल लिपटा काग़ज़ भी युवराज को दिया। “ठीक है, अब जाओ तुम।” परशुरामपन्त को आदेश

https://t.me/Sahityajunction

मिला और वे बाहर निकल गये।

सम्भाजी ने क़लम दावात में डुबायी और कुछ देर सोचते रहे। पत्र का विषय मन में निश्चित होते ही स्वयं युवराज अपने हाथों से ख़लीता लिखने लगे :

'मशहुरल अनाम, दाम दौलत हु, लश्करे सालार दिलेरं ख़ाँ सूबे-दक्खन बजानिब राजमान्य राजश्री युवराज शम्भू—

आगे विशेष यह है कि तुम्हारा ख़लीता मिला। इस समय हमारे महाराज साहब राज्य से बहुत दूर मुहिम पर गये हुए हैं और उनकी गैरहाज़िरी में राज्य की सारी ज़िम्मेदारी उन्होंने हम पर सौंपी है। तुमने इसे मौक़ा समझा है और यह ख़लीता भेजा है। मग़र हमें अपने पिता और कुल पर अभिमान है, हमारी शपथ और निष्ठा है, तो उनके प्रति ही। हम तुमसे आ मिलेंगे, यह बात भी तुमने कैसे सोची? ऐसा कभी भी सम्भव नहीं, यह अच्छी तरह समझ लो।'

दहकती आँखों से और समाधान भरे हृदय से सम्भाजी ने एक बार वह ख़लीता पढ़ा। उस पर मुलायम रेत फैलायी और फिर ख़लीते को गोल करके बन्दोंवाली थैली में डाल दिया। उन्होंने बैठक से ही वह थैली उस मुग़ली घुड़सवार की ओर फेंकी। अपने मालिक के उस ताबेदार ने वह थैली झेल ली और तसलीम करके वह बाहर निकल गया।

सम्भाजी बैठक से उठे। उन्होंने सभागृह के कोने में रखी धुएँदार बन्दूक़ उठा तो ली, परन्तु अब उनके मन का सारा उत्साह मारा गया था। वे दरवाज़ा खोलकर बाहर आये, तो खण्डोजी ने मुजरा किया। युवराज ने बन्दूक़ उसके हाथों में दे दी और बोले, "खण्डोजी, हम शिकार करने नहीं जाएँगे अब। हँकवैयों को सूचना भिजवा दो।" खण्डोजी भौचक्का होकर अपने छोटे मालिक की ओर देखने लगा।

बाहर बेमौसमी तेज़ वर्षा की धाराएँ बरस रही थीं। ऐसी मुसलाधार वर्षा में भी वह मुग़ल घुड़सवार शिर्के की हवेली से बाहर निकला। दुआरी के बाहर बाँधे हुए घोड़े को उसने खोला। घोड़ा उस तेज़ बरसात से बिदक रहा था—आगे बढ़ने को तैयार न था। सवार ने उसके कूल्हे पर एक ज़ोर का तमाचा लगाया और गाली देता हुआ बोला, "इसकी माँ का...!" वह मुग़लिया सवार पूर्व दिशा की ओर दौड़ा जा रहा था। इधर शृंगारपूर तेज़ अन्धड़वाली वर्षा की मार से व्याकुल हो रहा था।

मुग़लिया सवार के पीछे-पीछे ही एक मावली मराठा घुड़सवार भी दौड़ पड़ा। अगले सवार के घोड़े का वह पीछा कर रहा था। यह सवार था विश्वनाथ—यह वह विश्वासपात्र सेवक था, जिसे महाराज ने ही शृंगारपूर में नियुक्त किया था। विश्वनाथ यह भेद पाने जा रहा था कि यह मुग़ल घुड़सवार कौन-सी छावनी से आया है। आँधी-पानी और कड़कती बिजलियों की परवाह न करके उसे यह काम पूरा करना था और रायगढ़ जाकर यह ख़बर सुरनीस अण्णाजी तक पहुँचानी थी।

येसूबाई हवेली के छज्जे में खड़ी हुई प्रकृति के भीषण और क्रुद्ध रूप को देख रही थीं। अपनी पीठ पीछे खड़ी दुर्गाबाई से बोलीं, "हमने 'श्रीमान्‌जी' से कहा भी था कि आज शिकार करने न जाएँ, अन्धड़ बारिश की आशंका है। ऐसी बरसात में बिजली कहाँ कब गिर पड़े, इसका भला क्या भरोसा है, परन्तु वे हमारी बात सुनें तो सही। देख लेना, वे अवश्य शिकार के लिए जाएँगे ही।"

https://t.me/Sahityajunction

“युवराज, वो विश्वनाथ शृंगारपूर से अचानक गायब हो गया है। पता नहीं कहाँ गया?” कवि कुलेश ने सम्भाजी से झुककर कहा।

सम्भाजी बैठक-कक्ष में बैठे थे। समाचार सुनते ही ऐसा चौके जैसे जलती लकड़ी छू गयी हो। वे हाथ से पकड़ा सुवर्णचम्पा का फूल घुमाने लगे और इधर-उधर चहलकदमी करने लगे।

“कौन है उधर?” युवराज की कड़कती आवाज़ दरवाज़े की ओर गयी। द्वार पर नियुक्त सशस्त्र प्रहरी भीतर आ उपस्थित हुआ। “खण्डोजी को बुलाओ।” उसे आज्ञा मिली। सम्भाजी फिर सोचते-विचारते टहलने लगे। कवि कुलेश असमंजस में डूब गये थे। थोड़ी देर में खण्डोजी कक्ष में आया।

“क्या आज्ञा है स्वामी?” मुजरा करके उसने पूछा।

“खण्डोजी, रायाजी और अन्तोजी को तुरन्त हमारे पास भेजो। दो विश्वासपात्र घुड़सवारों को भी तैयार रहने को कहो। ज़िम्मेदारी और ख़तरों से भरा एक काम करना है।

“जी,” कहकर खण्डोजी जिस तेज़ी से आया था, उसी तेज़ी से लौट गया।

“कविराज, तुम्हें याद है, हमने महाभारत के एक श्लोक को ‘बुधभूषणम्’ में समाविष्ट करने का विशेष आग्रह किया था—‘मनुष्य अन्यों से जिस प्रकार का व्यवहार करता है, अन्य जन भी उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। यह धर्मानुसार ही है। छली-कपटी को उसका छल-कपट ही ले डूबता है। सत्य की रक्षा सत्य ही करता है।’ कुछ इसी प्रकार का आशय था उस श्लोक का।”

कवि कुलेश ने सिर हिलाकर अनुमोदन किया। वह श्लोक उन्हें कण्ठस्थ था—वे कहने लगे :

“यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधूना प्रत्युपेयः ।”

“वाह, वाह! कविराज! बस, हमने अब यही करने की ठान ली है।” सम्भाजी कहते-कहते कवि कुलेश के सामने आये और अपने हाथ का सुनहरी चम्पा का फूल उन्होंने कुलेश के हाथ पर रख दिया।

“अच्छा, अब आप जा सकते हैं, कविराज!” सम्भाजी के मन में कोई योजना आकार धारण कर रही थी।

इस समय सम्भाजी के मन में विश्वनाथ, अण्णाजो दत्तो और माँ सोयराबाई की आकृतियाँ बार-बार घूम रही थीं—‘मनुष्य अन्यों से जिस प्रकार व्यवहार करता है, अन्य जन भी उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं,’ युवराज ने अब कोई बात निश्चित कर ली थी।

“छोटे मालिक, मुजरा,” रायाजी और अन्तोजी जैसे दूध-भाइयों को, निष्ठा की उन साक्षात् प्रतिमाओं को आया देखकर सम्भाजी ही जैसे खिंचे हुए से दरवाज़े तक आ गये। उन दोनों के कन्धे पर हाथ रखकर कुछ देर तक वे उनकी ओर देखते ही रह गये। धाराऊ के वे तगड़े-बाँके जवान बेटे और वे दो दूधभाई आज उन्हें सगे से लग रहे थे।

“दरवाज़ा बन्द कर लो,” सम्भाजी ने प्रहरी से कहा।

“सयाजी, अन्तोजी, हम पर घोर-घने बादल मँडराते दिखाई देते हैं। रायगढ़ में अवश्य हमारे विरुद्ध कुछ षड्यन्त्र रचा जा रहा है। तुम दोनों तो हमारे अपने ही हो। दोनों इसी दम रायगढ़

https://t.me/Sahityajunction

रवाना हो जाओ। खण्डोजी दो घुड़सवारों को तुम्हारे साथ भेज रहे हैं। रायगढ़ जाकर तुम वहाँ सचिव अण्णाजी और बड़ी माँजी पर नज़र रखो। वहाँ हमारे से सम्बन्धित जो भी समाचार सुनो, उसे तुरन्त हमें बतलाओ। यहाँ से जाते समय यह अफ़वाह फैला दो कि तुम खेती-बाड़ी के कामों के लिए अपने गाँव कापूरहोल को जा रहे हो। जाते समय धाराऊ को सब बताकर जाओ।" सम्भाजी ने दोनों भाइयों के कन्धे थपथपाये और फिर उन्हें गले से लगा लिया। 'गाडे' कुलनामधारी उन भाइयों ने भी मन-ही-मन सारी बातें सोच-समझ लीं और वे कक्ष से बाहर चले गये।

उस दिन दुपहरी बीतने के बाद शिर्के की हवेली से चार सवार बाहर निकले। ग्रामदेवी भावेश्वरी के मन्दिर तक अर्थात् नगर-द्वार तक वे ऐसे आराम से चलते हुए गये, मानो तीर्थयात्रा के लिए निकले हों। नगर-द्वार से बाहर निकलते ही उनके घोड़े जैसे हवा से बातें करने लगे।

इस प्रकार अब रायगढ़ के राजघराने में दाँव का उत्तर काट से दिया जाने लगा। भाग्य के मन में शायद यही था। प्रतापगढ़ और तुलजापुर की अष्टभुजा वह 'श्री' मौन रहकर यह सब दाँव-पेंच देख रही थी।

शृंगारपूर में एक के बाद एक शुभ-समाचार पहुँच रहे थे—महाराज के अभियान की सफलता के।

'महाराज ने क़िलेदार नासिर मुहम्मद को अपनी ओर मिलाकर जिंजी स्थान का क़िला जीत लिया है।'...'सोमोत्तर पेरुमल्लम् नामक स्थान में जिन मन्दिरों की मस्जिदें बना दी गयी थीं, उन्हें महाराज ने फिर से मन्दिरों के रूप में बदल दिया है।'...'शिव-मन्दिरों में पुनः शिवलिंग की स्थापना की।'...'महाराज ने वेलोर, तिरुवाडी पर आक्रमण किया।'...'महाराज ने वालदूर और तेवेनापट्टम दुर्गों पर विजय पायी।'

हर एक आनन्ददायी समाचार के आते ही शिर्के की हवेली की नौबत बज उठती थी। खेतों में जुताई-बुबाई के कामों में मग्न कुनबी लोग थोड़ी देर को काम बन्द करके एक-दूसरे की ओर देखते थे और पुकार उठते थे, "माँ भवानी की जय हो, देवी भावेश्वरी का उदय हो!" और पुनः आनन्दपूर्वक नये उत्साह से मिट्टी से गुँथ पड़ते थे।

प्रत्येक शुभ समाचार की सफलता एवं विशिष्टता के आधार पर सम्भाजी प्रत्येक हरकारे को कभी होनों से भरी थैली, कभी सोने का कड़ा, घोड़ा, हथियार पहनावा आदि भेंट देते थे। फिर तुरन्त अन्तःपुर में जाकर वह समाचार राणू दीदी, येसूबाई, दुर्गाबाई को स्वयं सुनाते थे। अनेक बार झरोखे में से दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए उनके मन में अभिलाषा उत्पन्न होती थी—'महाराज साहब, इस मुहिम में हम आपके साथ रहते, तो कितना अच्छा होता!' बाहर बरसाती वर्षा-धाराएँ उनके मन में महाराज साहब की अनेक स्मृतियों को जगा रही थीं। वे उद्विग्न होकर अन्तःपुर से बैठक-कक्ष में आते थे और पण्डित-मण्डली के साथ साहित्य-काव्य की चर्चा द्वारा अथवा काली माता की पूजा द्वारा अपना मन बहलाने का प्रयत्न करते थे।

बरसात अब पूरे ज़ोरों पर थी। एक दिन खण्डोजी ने दो मावले सैनिकों को सम्भाजी के महल में ला छोड़ा और वह बाहर लौट गया। ये दोनों सैनिक सिर से पाँव तक पूरे भीग गये थे। ये

https://t.me/Sahityajunction

दो सैनिक थे—रायाजी-अन्तोजी, जो रायगढ़ से लौटकर आये थे। उनकी गीली पगड़ियों से बूँदें टपक-टपककर महल के बहुमूल्य ग़लीचे पर गिर रही थीं।

दोनों ने युवराज को मुजरा किया। युवराज स्वयं ही सब जानने को उत्सुक थे। वे उनके निकट आये और बोले, "हाँ, कहो, क्या समाचार लाये हो?"

"मालिक, रायगढ़ के सातमहल में इतनी कठोर व्यवस्था है कि पंछी भी पर न मार सके। सुरनीस अण्णाजी के राजकार्यालय पर सशस्त्र पहरा लगा है। बड़े महल में सुरनीसजी का आना-जाना बहुत बढ़ गया है।" अन्तोजी जितना कुछ जान पाया था, कह गया।

"हर रोज़ पौ फटने से पहले एक हरकारा रायगढ़ से महाराज साहब के नाम कोई ख़लीता लेकर कर्नाटक की ओर भेजा जाता है।" रायाजी ने भी अपने भाई की बात में एक बात जोड़ दी।

"ऊपर सातमहल में क्या चल रहा है, यह तो कुछ पता लगा नहीं, परन्तु...पर..." अन्तोजी कहते-कहते रुक गया।

"परन्तु क्या? बता अन्ता, क्या बात है?" सम्भाजी ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा।

"गढ़ के नौकर-चाकरों में एक ख़बर फैली हुई है..."

"कैसी ख़बर?" सम्भाजी ने उसका कन्धा कसकर पकड़ लिया।

"आप...छोटे मालिक, आप दुश्मन दिलेर ख़ाँ के दल से जाकर मिलनेवाले हैं।" अन्तोजी की गरदन नीचे को झुक गयी।

"अन्तोजी!" सम्भाजी के मुख से बिजली-सी कड़कती हुई वाणी निकली जिसमें दोनों भाइयों के गीले शरीरों में भी रोमांच हो आया। सम्भाजी घायल शेर के समान असीम मानसिक घुटन से विह्वल होकर महल में ही चक्कर लगाने लगे। वे रायाजी और अन्तोजी से यह कहना भी भूल गये कि 'अब तुम जाओ।'

वर्षाऋतु के समाप्त होते ही शीतऋतु ने अपने दलबल सहित शृंगारपूर में डेरा डाल दिया। दशहरा बीत गया। किसान लीप-पोतकर साफ किये खलिहानों में दँवरी के कामों से निपट गये। किसानों ने भात, मँडुवा, साँवाँ आदि धान्यों से घरों में रखे कठुले और बखारों को भर लिया। फिरते योगी नादिया बैल को लेकर ढोल बजाकर 'गुबु-गुबु' की आवाज़ गुँजाते हुए गाँवों-बस्तियों में चक्कर लगाने लगे। वासुदेव नामक जाति के व्यक्ति मोरपंख का ऊँचा मुकुट सिर पर धारण किये गाँव-गाँव में घूमकर बड़े सवेरे ही लोगों को जगाते घूमने लगे। दीवाली भी बीत गयी। दिन हाथ भर ऊपर चढ़ आता था, तो भी इतना घना कुहरा फैला रहता था कि दस हाथ दूर का भी दिखाई न दे।

पिलाजी की हवेली में शाम की नौबत बजी और उसकी ध्वनि चारों ओर के घने झाड़ी-झुरमुटों में खो गयी। येसूबाई चाँदी की थाली में एक कटोरा रखे सम्भाजी के शयनगृह में आयीं। वह कटोरा कुलथी की गरम-गरम कढ़ी से भरा था। येसूबाई ने ज्योंही थाली चौकी पर रखी, उनके सुनहरे हाथों में पहनी हुई हरी-हरी चूड़ियों की खनक हुई। पहनी हुई ज़रतारी साड़ी के

https://t.me/Sahityajunction

बेलबूटे महल के दीवटों के प्रकाश में झिलमिला उठे।

सम्भाजी के लम्बे-घुँघराले बाल उनके गले पर झूल आये थे। वे एक शॉल लपेटे हुए घूम रहे थे। येसूबाई को आया देखकर वे उनके निकट आये। येसूबाई कुछ बोलीं नहीं, बस कटोरा उठाया और अपने 'श्रीमान्‌जी' के हाथ में दे दिया। सामने येसूबाई क्या खड़ी थीं, कविता की सरस पंक्ति ही खड़ी थी। सम्भाजी उन्हें देखते ही रह गये।

येसूबाई लज्जा-संकोचवश नीचे सिर झुकाये पैरों तले पड़े फर्श के प्रकाश को ही पाँव के अँगूठे से कुरेदने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थीं। पतंगे बलात् महल में घुसकर दीपक की ज्योति पर टूट पड़ते थे। इस मोहक शान्ति को भंग करते हुए येसूबाई कहने लगीं, "हाथों का कटोरा यूँ ही रुका हुआ है।"

"कटोरा ही क्यों, हम भी कभी के रुके हुए हैं।" धीरे से मुस्कराते हुए सम्भाजी ने कटोरा होठों से लगाया और कढ़ी का एक चुसका लिया। येसूबाई को सन्तोष हुआ और उन्होंने चुपके से आँख के कोने से सम्भाजी की ओर देखा। जब देखा कि कुलथी का एक कण सम्भाजी की मूँछों में अटका हुआ है, तो वे एकदम आँचल का कोर मुँह में ठूँसकर हँसी रोकने का प्रयत्न करने लगीं।

सम्भाजी कढ़ी पीते हुए महल में चहलकदमी करने लगे। बहुत प्रयत्न करने पर भी येसूबाई की बिखरे बालोंवाली द्रौपदी की-सी वह मुखमुद्रा उनकी आँखों के आगे से हटती ही न थी। उनके बिखरे केशों में सम्भाजी को सुनहरे कमल खिले हुए दिखलाई देने लगे। फिर मन की किसी अज्ञात पुकार पर वे येसूबाई के सामने आ खड़े हुए और अपना कटोरा आगे बढ़ाकर कहने लगे, "लो, तुम भी तनिक पीकर देखो न कि तुम्हारी बनायी कढ़ी कैसी बनी है?"

येसूबाई संकोचवश यूँ ही खड़ी रहीं।

"लो, पीकर देखो न! हमारे होठों से छूने के कारण ये कड़वी थोड़े ही हो गयी है!" सम्भाजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

येसूबाई एक झटके से आगे बढ़ीं और कटोरा हाथ में लेकर उन्होंने मुँह से लगाया। एक ही दम में पूरा खाली कर दिया और खाली कटोरा चाँदी की थाली में रख दिया। फिर उन्होंने थाली उठायी और वे तेज़ी से लपककर महल के बाहर निकल गयीं।

सम्भाजी अपने आप पर ही ख़ुश थे। उन्होंने ओढ़ा हुआ दुशाला फिर एक बार झटककर ठीक से ओढ़ा और वे बैठक कक्ष में आये। कवि कुलेश वहाँ बैठे कुछ लिख रहे थे। वे सम्भाजी को देखते ही उठकर खड़े हो गये।

"क्या लिख रहे हैं कविराज?"

"जी, संस्कृत भाषा के समान ही हिन्दी भाषा में कविता की समस्यापूर्ति करने का प्रयत्न कर रहा था।" कविजी ने उत्तर दिया।

बैठक-कक्ष की दीवार से लगे कुछ झाबे वहाँ एक पंक्ति में रखे थे। ये झाबे किसानों ने हवेली में भेजे थे। इनमें भरी थी कुँदरू की सब्ज़ी। ये सब्ज़ी रसोई घर में भेजी जानी थी, थोड़ी देर के लिए यहीं पर एक किनारे रख दी गयी थी। सम्भाजी ने एक मोटा, कुछ-कुछ पका हुआ कुँदरूफल उठाया और वे बैठक पर जा बैठे।

https://t.me/Sahityajunction

“कविराज, एक समस्यापूर्ति करेंगे क्या?” सम्भाजी ने हँसकर पूछा।

“जी, अवश्य प्रयत्न करेंगे।” कविराज हाथ जोड़े खड़े थे।

“इस फल को आप क्या कहते हैं?”

कुलेशजी ने उसे थोड़ी देर देखा, कुछ विचार किया और फिर कहने लगे, “हिन्दी में इसे कुँदरू या बिम्बफल कहते हैं, युवराज! यह पका हुआ फल उदित होते हुए सूर्य के बिम्ब के समान लाल दिखाई देता है।”

सम्भाजी सिर हिलाते हुए बोले, “नहीं, नहीं, कविराज, हमें तो कुछ अन्य ही कारण प्रतीत होता है। हमारी भाषा में इसे ‘तोंडल’ कहते हैं।” सम्भाजी मुस्कंराते हुए उठे और भोजन के लिए चले गये।

शुभ्र चाँदनी हवेली में बिछी हुई थी। वह साथ में सर्दी को भी ले आयी थी। आधी रात का घण्टा बज चुका था, परन्तु सम्भाजी की आँखों में आज नींद नहीं थी। वे शॉल लपेटे अपने शयनकक्ष में ही घूम रहे थे। घूम-घूमकर भी अन्त में उनका जी उचट गया। फिर उन्होंने मन-ही-मन कुछ तय किया। वे शयनकक्ष से बाहर निकले और उनके पग बढ़ चले रनिवास की ओर। प्रहरियों द्वारा किये जा रहे मुजरों की ओर भी उनका ध्यान नहीं था।

ये बढ़ते कदम येसूबाई के शयनगृह के सामने रुक गये। पहरे पर नियुक्त सेविका वहाँ बैठी ऊँघ रही थी—सम्भाजी को आया देखकर हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और अपना आँचल सँवारने लगी।

“भीतर जाकर कह, हम आये हैं।” सम्भाजी के नेत्रों में चाँदी की-सी चमक आ गयी थी।

“जी,” सेविका दौड़ती हुई भीतर गयी और लपकती हुई बाहर आयी, बोली, “जी, वे जाग रही हैं, सोयी नहीं हैं।”

सम्भाजी महल में आये। दरवाज़े को भीतर से अर्गला लगाकर बन्द कर लिया। फिर वह तगड़ा बाँका राजपुत्र धीरे-धीरे पग बढ़ाता हुआ येसूबाई की शय्या के निकट आया। येसूबाई वहाँ खड़ी थीं। सम्भाजी शय्या पर बैठ गये। छाती ऐसे ऊपर-नीचे हो रही थी, जैसे धौंकनी हो। कौड़ियों की माला भी नीचे-ऊपर को उठती-काँपती थी। सम्भाजी ने वह कौड़ियों की माला उतारकर एक तबक़ में रख दी। येसूबाई शय्या की चौखट के निकट खड़ी थीं—ग्रीवा सलज्ज थी। मुखड़ा घूँघट से आधा छिपा हुआ था—रूप ऐसा मोहक था मानो अष्टमी की चन्द्रलेखा पर भवानी की हल्दी-रोली चढ़ायी गयी हो। येसूबाई को आज इस बात पर विश्वास ही नहीं हो रहा था कि आधी रात के समय ‘श्रीमान्‌जी’ सीधा उनके महल में ही आये हैं। वे आश्चर्य के कारण पूरी तरह हड़बड़ा गयी थीं।

इसी दुविधा में कुछ काल बीता। फिर सम्भाजी कुछ घरघराती-सी आवाज़ में कहने लगे, “हमारा एक काम करोगी?”

“जी,” सिर का कुलीन आँचल धीरे-से हिला।

“काम आसान नहीं है।”

“आप कहें तो सही, हम पूरी कोशिश करेंगी।” उत्तर दिया गया।

“काम यह है कि बस यह कुँदरूफल तोड़ना है।”

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी ने अपनी मुट्ठी में पकड़ा हुआ वह लाल-लाल कुँदरूफल येसूबाई के सामने किया।

"हँ, हँ ऽ," येसूबाई को सन्देह हुआ—'श्रीमान्‌जी' उससे मज़ाक तो नहीं कर रहे? वे हँसकर कहने लगीं, "ओहो, काम तो बहुत कठिन है, परन्तु हम यह पूरा कर दिखाएँगी।"

"सोच लो, फिर बात बदल तो न दोगी?" सम्भाजी की आँखों में शरारत झाँक रही थी।

"भावेश्वरी देवी की सन्तान ने कभी बात बदलना सीखा ही नहीं।" येसूबाई ने दृढ़ता से शपथ लेकर कहा।

"अच्छा, ठीक है। यह कुँदरूफल तोड़कर दिखाओ। हाँ, एक शर्त है। इसे हाथ से या किसी हथियार से नहीं तोड़ना। यह बहुत कोमल फल है—इसे नारी का-सा सुकोमल फल कहते हैं।" सम्भाजी हँस पड़े।

"हाँ, हाँ, स्वीकार है हमें। भला इस फल को तोड़ने के लिए हाथ या हथियार की आवश्यकता ही क्या है?" येसूबाई जाल में फँसती जा रही थी—सहज ही कह गयीं।

"हम जानते थे कि तुम पीछे नहीं हटोगी।" कहते हुए सम्भाजी एक बार हँसे। "अच्छा, देखें भला भावेश्वरी देवी की सन्तान का निश्चय कितना पक्का है!" कहते हुए सम्भाजी ने अपने हाथ में पकड़ा हुआ वह कुँदरूफल झट से दाँतों में पकड़ लिया और 'हँ' कहकर येसूबाई की ओर देखा। इतने पर भी येसूबाई सम्भाजी की चालाकी पहचान न पायीं। वे नितान्त भोलेपन से आगे को बढ़ीं। और कुँदरूफल तोड़ने के लिए स्वभावतः उनके हाथ ही पहले उठे, पर दूसरे ही क्षण उनके मसलते हुए हाथ नीचे आ गये। अब येसूबाई असमंजस में पड़ गयीं—इतनी सीधी-सी बात 'कुँदरूफल तोड़ना है' हाथ से नहीं, हथियार से छूना नहीं—पर आख़िर कैसे? अब उनके मुख पर विविध भावनाओं की रंगपंचमी खिल उठी।

सम्भाजी ने दाँतों में पकड़ा हुआ वह फल बाहर निकाला और खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले, "हमने कहा न था, काम आसान नहीं है!"

इस वाक्य ने येसूबाई को एकदम भड़का दिया। वे शरमायीं, फिर दीपक की ज्योति की ओर देखकर सोचने लगीं कि कुँदरूफल क्योंकर तोड़ा जाय! इतने में उनका ध्यान गया उन पतंगों की ओर, जो दीपक की लौ से मिल रहे थे। उन्हें कुछ उपाय सूझा, परन्तु हृदय की धड़कन तेज़ी से बढ़ गयी और शरीर पुलकित हो उठा। 'हाय, कैसे ढीठ हैं ये!' कृत्रिम क्रोध-भरी दृष्टि से उन्होंने सम्भाजी की ओर देखा। लाज के मारे सारी देह पर, मुख पर, मोरपंख की-सी विविध रंगों की छटा छा गयी।

फिर अकस्मात् उनकी आँखों में निश्चय झलकने लगा। सम्भाजी फल को दाँतों में पकड़े आँखों ही आँखों में मुस्करा रहे थे। येसूबाई का मुखचन्द्र धीरे-धीरे कुँदरू की ओर बढ़ने लगा। एक निराले लोक में पहुँच जाने की अनुभूति से उस कुलस्त्री के नेत्र अपने आप बन्द हो गये। येसूबाई ने अपनी कुन्दकली के—से दाँतों से फल को पकड़ा और उस 'कपटी' फल को ज़ोर से दबाकर दो टुकड़े कर डाले। गुँजाफल के ममान लाल-लाल ताज़ा रस बह निकला और उससे वे चारों होठ नहा गये।

https://t.me/Sahityajunction

दिन और रात ने कोई साँठ-गाँठ करके सर्दी को दूर भगा दिया। पौष मास आ गया। सम्भाजी ने बैठक में पण्डितगण सहित काव्यशास्त्र, राजनीति, लगान आदि विषयों की चर्चा समाप्त की तथा वे राज्य के समाचार जानने के लिए सभागृह में आये। परशुरामपन्त विनयभाव से उठ खड़े हुए। खण्डोजी बल्लाल, रायाजी-अन्तोजी सभागृह के दो ओर खड़े हो गये।

"कहो चिटनीस," सभागृह की बैठक पर बैठते हुए सम्भाजी ने पूछा।

"युवराज, अपने सूबे में रांगणा, विशालगढ़, कोटहापुर भाग आदि का सारा लगान वसूल किया जा चुका है। केवल कुछ भाग ऐसे हैं, जहाँ अतिवृष्टि के कारण फसलें मारी गयी हैं। वे किसान लगान की माफी की अर्ज़ी भेज रहे हैं।" परशुराम ने राजकार्यालय का कार्यवृत्तान्त सामने रखा।

"उस भाग का निरीक्षण करवाओ और पूरी जाँच-पड़ताल करने के बाद ही उनका लगान माफ़ करो।" सम्भाजी ने निर्णय कह सुनाया।

"कर्नाटक से ये हरकारे आये हैं। वे महाराज की कई विजयों के समाचार लाये हैं।" परशुरामपन्त ने हरकारों की ओर देखा।

सम्भाजी मसनद से टेक लगाये बैठे थे। एकदम आगे होकर सीधे बैठ गये।

"सरकार, बड़े मालिक ने होदेगिरी के जंगलों में स्वर्गीय शहाजी महाराज की समाधि के दर्शन किये और वहाँ बहुत दान-पुण्य किया।" एक हरकारे ने मुजरा करते हुए समाचार कह सुनाया।

'भृशत बलान्वय सिन्धुसुधाकरः (सिन्धु के समान बलशाली राजा शहाजी)'—सम्भाजी को 'बुधभूषणम्' का श्लोक याद आ गया। उनकी दृष्टि दूर का वह दृश्य देख पा रही थी कि आबासाहब उस समाधि के सामने घुटने टेककर माथा झुकाये हुए हैं। 'आबासाहब, इस विजय-अभियान में यदि हम भी आपके साथ होते, तो हमें भी यह सौभाग्य प्राप्त होता कि हम उस समाधि के आगे माथा नवाते।' मुख से एक गहरी उसाँस निकल गयी।

"बड़े मालिक कोलार, अरणी, तोरगल, गदग आदि कर्नाटक के कई नगरों को जीतकर बेलवाड़ी तक पहुँच गये। वहाँ की गढ़ी की रानी है—मल्लम्मा देसाई। उसने जमकर मुकाबला किया। उसका पति ईश्वरप्रभु देसाई तो मर चुका है। उस विधवा रानी ने पूरे तीन सप्ताह तक हमारी सेना से टक्कर ली। परन्तु अन्त में अपने एक सरदार, सखूजीराव ने उस गढ़ी को जीत ही लिया। पर..." हरकारा बात कहते-कहते अटक गया।

"पर...पर क्या हुआ?" सम्भाजी की उत्सुकता बढ़ गयी थी।

"पर सखूजी संयम नहीं रख पाया। उसने उस विधवा स्त्री के शीलभंग का प्रयत्न किया। तब बड़े मालिक ने सारी छावनी के सामने गर्म सलाखों से सखूजी राव की आँखें जलाने की सज़ा दी।" समाचार सुनकर सारी सभा में स्तब्धता छा गयी।

"फिर बेलबाड़ी की रानी मल्लम्मा को महाराज के सामने लाया गया। वह गोद में अपने इकलौते बेटे को लिये हुए आयी थी। वह स्त्री बड़ी साहसी थी—सीधा चलकर महाराज की बैठक तक पहुँची और बच्चे को महाराज फी गोदी में देती हुई बोली—'गढ़ी तो जीत ली तुमने, इस गढ़ी के उत्तराधिकारी को भी सँभालो। हमारी मुश्कें कसकर हमें बन्दीघर में डाल दो।'

https://t.me/Sahityajunction

उसकी बातें सुनकर महाराज की आँखों से आँसू झरने लगे। मालिक बोले—'देवी, तुम महान हो। हमारी बहन जैसी हो। यह गढ़ी हम तुम्हें—अपनी बहन को, फिर से लौटा रहे हैं। भाई द्वारा बहन को दी गयी 'साड़ी-चोली' का उपहार समझो इसे।' इस प्रकार महाराज ने मल्लम्मा को मुक्त कर दिया।" हरकारे की आवाज़ भारी हो आयी थी।

"जगदम्बे, हे जगदम्बे!" सम्भाजी की पलकें भी गीली हो गयी थीं।

"चिटनीस, वह बच्चा सचमुच बड़ा भाग्यशाली है, जो महाराज साहब की गोद में बैठा था। इस हरकारे को एक पहनावा उपहार के रूप में दो।" सम्भाजी ने हरकारे को सम्मानित किया और वे सभागृह से जाने के लिए उठ खड़े हुए। इतने ही में उनके चिटनीस-लिपिक परशुरामपन्त ज़रा दबी हुई-सी आवाज़ में कहने लगे, "मुग़लाई से कोई हरकारा आया है। आपसे मिलना चाहता है।"

सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये। आँखें ग़ुस्से से भर आयीं। फिर भी वे शान्त रहकर कहने लगे, "आने दो।"

मुग़लिया पहनावा पहने एक हरकारा सभागृह में आया। तसलीम करके बोला, "हुज़ूर, मुझे हुक्म है कि आपसे ख़िलवतख़ाने में अकेले में मिलूँ!"

"ख़ामोश। हम किसी ऐरे-ग़ैरे से ख़िलवतख़ाने में नहीं मिलते हैं। क्या काम है तेरा, यहीं पर पेश कर।" सम्भाजी की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

"जो हुक्म," हरकारे ने काँपते हाथों से अपने जामे के भीतर से एक मखमली थैली निकाली, और सम्भाजी के पैरों के पास रख दी। थैली का बन्द खोलकर सम्भाजी ने गोल लिपटा ख़लीता बाहर निकाला। वे ख़लीता पढ़ने लगे—वही पुराना सम्बोधन—'मशहुरल अनाम दामदौलतहु जंगेबहादुर शहज़ादा शम्भु...' बात भी वही पुरानी—'हमसे आ मिलो। तुम्हारा सम्मान करेंगे।' ख़लीता दिलेर ख़ाँ ने भेजा था। सम्भाजी झटके से उठ खड़े हुए। वह ख़लीता उन्होंने हरकारे की ओर फेंक दिया और बिजली की-सी कड़कती आवाज़ में बोले, "ख़ान हमें समझता क्या है? हमने पिछले ख़लीते का जवाब भेज दिया था, इस ख़लीते का भी वही जवाब है। इससे पहले कि तू बेइज़्ज़त हो, यहाँ से निकल भाग।"

सम्भाजी लपककर सभागृह से बाहर निकल गये और सीधे अपने महल में आ गये। वे बेचैन होकर इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। काफी देर तक घूमते रहने पर भी उनके ध्यान में यह बात न आ सकी कि येसूबाई कमरे में झरोखे के पास खड़ी हैं।

जब ध्यान गया, तब उन्होंने उनके पास जाकर धीमे से पूछा, "अरे, तुम कब से खड़ी हो यहाँ?"

"काफी देर हो गयी। परन्तु आज आप काफी क्रोधित दिखाई देते हैं। क्या बात है?"

येसूबाई की साड़ी आज गहरे हरे रंग की थी, चोली भी हरी और चूड़ियाँ भी हरी, उनके हल्दी के से गोरे रंग पर यह हरापन ख़ूब फब रहा था।

"भला कुछ सुनें तो सही, ये हरे-भरे वन का साज-सिंगार क्यों पहन रखा है आज तुमने?" सम्भाजी ने हँसते हुए पूछा।

"अजी, यह वन का साज-सिंगार नहीं है। यह 'चोरी की कोंछ भराई' है। हमारी माँ ने हमें

https://t.me/Sahityajunction

यह साड़ी-चोली पहनायी है आज चुपके-चुपके।"

"क्या मतलब?" सम्भाजी 'चोरी की कोंछ भराई' का अर्थ नहीं समझ पाये थे।

"अजी किसी बाहरी स्त्री को बताये बिना जब एक माँ अपनी बेटी को चुपके-चुपके 'साड़ी-चोली' भेंट देती है न, उसे 'चोरी की कोंछ भराई' कहते हैं।" येसूबाई मुस्कराकर मुड़ गयीं। मुड़ते समय सम्भाजी का ध्यान गया उनके पैरों की ओर—। हरी साड़ी चोली, माँ द्वारा चुपके से कोंछ भराई और ये पाँव भारी होना—सब मिलाकर अब सम्भाजी समझ पाये थे कि मामला क्या है!

शृंगारपूर में नदी-तट पर जो मठ था, उसमें शिवयोगी व्याघ्रचर्म से मण्डित ऊँचे आसन पर बैठे थे और सम्भाजी उनके निकट एक सीढ़ी पर बैठे थे। केशव पण्डित और गणेशभट्ट जाम्भेकर उनके दोनों ओर खड़े थे। कोने में रखी हुई पत्थर की धूपदानी से धूप की तीखी गन्ध सर्वत्र फैल रही थी।

"युवराज, आपने हवेली में काली माता की स्थापना की, यह तो उचित हुआ। वहाँ नियमित रूप से पूजा-अर्चा भी हो रही है। परन्तु युवराज, यह काली माता रणचण्डी है, इसकी यथोचित शान्ति-विधि होनी ही चाहिए।" शिवयोगी ने गम्भीर वाणी में कहा।

"आप आज्ञा करें स्वामीजी, हम अवश्य आपके कहे अनुसार काली माता की शान्ति-विधि सम्पन्न करेंगे।"

"युवराज, बात यह है कि मनुष्य चाहे कितना भी पराक्रमी क्यों न हो, उसके लिए दैवीय शक्ति की कृपा आवश्यक होती है। आप देवी का 'कलशाभिषेक' करें और उससे शक्ति की प्रार्थना करें। आपको तन्त्रसिद्धि अवश्य प्राप्त होगी। इससे आपका और आनेवाली सन्तान का अरिष्ट नष्ट होगा।" जपमाला फिराते हुए शिवयोगी बोले।

"जैसा आप कहें। परन्तु हम तन्त्रसिद्धि का अर्थ नहीं समझ पाये।"

"उसे ठीक से समझ लीजिए। और उसी श्रद्धाभक्ति से अभिषेक कीजिए। तन्त्रसिद्धि का अर्थ है—कुल के प्रधान पुरुष द्वारा अपने परिवार के लालन-पालन के लिए संचित किया हुआ पुण्य। इस प्रयोजन की प्राप्ति के लिए काली माता का कलशाभिषेक ही एक उपाय है। हमारी इच्छा है कि आप यह विधि अवश्य करें।"

"जी," सम्भाजी सोच-विचार में डूब गये। थोड़ी देर में बोले, "ठीक है, आप कलशाभिषेक की पूरी विधि का विवरण तथा मुहूर्त्त निश्चित कर लें और केशव पण्डित और गणेशभट्ट जी को बता दें।"

सारे सूबे में यह समाचार फैल गया कि युवराज कलशाभिषेक कर रहे हैं। भला यह समाचार रायगढ़ कैसे न पहुँचता! सुरनीस अण्णाजी ने ज्योंही यह समाचार सुना, वे तुरन्त सोयराबाई के सामने जा खड़े हुए और इस विधि के बारे में अपनी आशंका उन्होंने महारानी जी को बतायी, "हमें तो दाल में कुछ काला नज़र आता है। हमें तुरन्त शृंगारपूर को अपने जासूस भेजने पड़ेंगे तथा पता लगाना होगा कि यह 'कलशाभिषेक' क्या है?" सोयराबाई इस सलाह के अनुसार दाँव-पेंच चलाने लगीं। उनके कई भेदिये बैरागी साधु या गाने-बजानेवालों की टोली बनाकर

https://t.me/Sahityajunction

शृंगारपूर के आस-पास घूमने लगे।

पौष शुद्ध एकादशी के पहले दिन सम्भाजी ने उपवास किया। अभिषेक का निश्चित दिन उदित हुआ और हवेली पर चौघड़े, नगाड़े बजने लगे।

शिवयोगी के पौरोहित्य में कलशाभिषेक विधि प्रारम्भ हुई। कलश को भावेश्वरी देवी के मन्दिर से गाजे-बाजे के साथ हवेली में लाया गया। कलश जब हवेली की देहली के सामने आया तब एक बकरे की बलि चढ़ायी गयी। काली माता की मूर्ति के सम्मुख चावलों से चौक पूरा गया था। यहीं पर कलश की स्थापना की गयी। सम्भाजी मूर्ति के सम्मुख एक पीढ़े पर बैठ गये। आज उनका उत्तरीय और अधोवस्त्र भी रक्त के समान लाल वर्ण के थे। शिवयोगी उन्हें अभिषेक की विधियाँ बता रहे थे। आगामी राज-सन्तान के हर अमंगल का निराकरण करने की दृष्टि से केशवभट्ट और गणेशभट्ट मन्त्रपाठ कर रहे थे। सम्भाजी प्रसन्नचित्त होकर आम्र पल्लवों और कुशाओं द्वारा पवित्र नदियों के जल से, मधुर रसों से और दूध से कलश पर सिंचन कर रहे थे।

"युवराज, अब केवल अन्तिम अभिषेक करना है।" शिवयोगी ने कहा।

"कौन-सा?" सम्भाजी ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा।

"आपके पवित्र रक्त से, राजवंश के रक्त से अभिषेक करना है।" शिवयोगी ने गणेशभट्ट की ओर देखा। वे गये और थाल में रखी एक नंगी तलवार लेकर आये।

"हाँ, कहिए, 'जय भद्रकाली' तथा अपने पावन रक्त से अभिषेक कीजिए।" शिवयोगी ने नेत्र बन्द किये और वे स्वयं ही मन्त्रपाठ करने लगे।

'जय भद्रकाली,' का जयघोष करके सम्भाजी ने दाहिने हाथ का अँगूठा तलवार की धार पर से फिराया और उष्ण रक्त से अभिषेक किया। हाथ जोड़कर आँखें बन्द कर लीं। इस ध्यानावस्था में उनके सामने साक्षात् काली माता उपस्थित हो गयी थी और वे मग्न होकर उसके दर्शन पा रहे थे।

कलशाभिषेक की विधियाँ समाप्त हुईं। चिपलूण, संगमेश्वर, करवीर आदि स्थानों से जो ब्राह्मण पधारे थे, उन्हें दान-दक्षिणा दी गयी। गोदान किया गया।

इस कलशाभिषेक का प्रयोजन तो यह समझा गया था कि इस विधि के पुण्य के कारण युवराज सम्भाजी के कुल में जन्म लेनेवाली आगामी सन्तान का अनिष्ट दूर हो—परन्तु युवराज नहीं जानते थे कि इस विधि के कारण स्वयं वे ही अनिष्ट के गर्त में ढकेल दिये जानेवाले हैं। रायगढ़ दुर्ग के सीधे उतार से उतरकर एक थैलीवाला सवार कर्नाटक की दिशा में दौड़ पड़ा था। उसकी कमर में बँधा था एक ख़लीता।—जो महारानी सोयराबाई ने दिया था। उसमें लिखा था —'आगे एक विशेष वार्ता है—युवराज के बारे में। उन्होने शृंगारपूर में कलशाभिषेक किया है। हेतु यह कि उनके जन्मदाता पिताजी यथाशीघ्र स्वर्ग सिधार जाएँ! तथा फिर सारे राज्य के वे एकमात्र अधिपति बन जाएँ।'

मृगशिरा नक्षत्र के साथ वर्षाऋतु का आगमन हुआ। शृंगारपूर में नये उत्साह-उमंग की लहरें दौड़ गयीं। शृंगारपूर वासियों को इससे भी बढ़कर उत्साह यह वार्ता सुनकर हुआ कि 'छत्रपति महाराज ने कर्नाटक प्रदेश की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व रघुनाथपन्त हणमन्ते को सौंप दिया है। दिग्विजयी छत्रपति शिवाजी महाराज कर्नाटक प्रदेश में जिंजी नगर से लेकर गदग और

https://t.me/Sahityajunction

तोरगुल नगरों तक एक नया विशाल राज्य स्थापित करके पूरे पौने दो वर्ष बाद लौटकर आ रहे हैं।'

युवराज सम्भाजी ने यह वार्ता सुनी और वे अत्यन्त उत्साह से हवेलो के सभागृह में पधारे। उन्होंने लिपिक परशुरामपन्त तथा खण्डोजी को बुलावा भेजा। कई आदेश लिखवाये, 'खण्डोजी, नगर की दक्षिण दिशा की ओर आम्रतोरणों का एक द्वार बनवाओ। वहाँ छोटे-बड़े नगाड़े रखवाओ। परशुरामपन्त, आबासाहब के लौटने के मार्ग की ओर ख़लीता लेकर एक सवार भेजो। लिखो, हम आपके स्वागत के लिए, आपकी चरणधूलि पाने के लिए यहाँ शृंगारपूर में आपके रास्ते पर आँखें बिछाये बैठे हैं। खण्डोजी, राजकीय पहनावे पहनाकर कुछ घुड़सवारों को तैयार रखो। उन्हें हमारे साथ-साथ दौड़ना होगा। तुम भी हमारे साथ रहो। इन बताये गये कामों में कोई कमी न रह जाय। स्वयं आबासाहब लौटकर आ रहे हैं।'

सम्भाजी ने अनुमान से निश्चित किया कि महाराज कौन से दिन यहाँ पहुँचेंगे। सम्भाजी के आदेशानुसार नगर के दक्षिण भाग में आम्रतोरणों से सजा एक द्वार बनाया गया था। उसमें श्रीफल लटकाये गये थे। निकट ही चौघड़े नगाड़े तैयार थे। उस दिन चैत्र शुद्ध प्रतिपदा को मनाया जानेवाला—'गुढ़ी-पाडवा' त्यौहार नहीं था, फिर भी किसानों-प्रजाजनों ने हर घर पर ऊँचे बाँसों पर नवीन वस्त्रादि से सुशोभित धार्मिक-ध्वजाएँ खड़ी की हुई थीं। भावेश्वरी मन्दिर के शिखर पर तिकोनी भगवी ध्वजा लहरा रही थी। हवेली में राणू दीदी, येसूबाई और दुर्गाबाई ने विशेष अवसरों के लिए सुरक्षित रखे वस्त्रालंकारों से साज-सिंगार किया था। आज धाराऊ ने भी कई दिनों बाद नयी साड़ी पहनी थी। केसरी रंग का राजटोप, ज़रतारी अँगरखा, बुँदकीदार, चुन्नटदार घुटन्ना पहने सम्भाजी ने अत्यन्त प्रसन्न मन से राणू दीदी के साथ येसूबाई की माताजी को प्रणाम किया तथा वे हवेली से बाहर निकले। बाहर खण्डोजी ने तेज़ दौड़नेवाले घोड़े और कुशल घुड़सवार तैयार रखे थे ही।

'जय भवानी।' की गर्जना के साथ सम्भाजी घोड़े पर सवार हो गये। इनके साथ ही पिलाजी, गणोजी और खण्डोजी घोड़ों पर सवार हो गये। इन लोगों के पीछे थी उमाजी पण्डित, केशवभट्ट, कवि कुलेश आदि पण्डित-मण्डली। सब से पीछे सौ घुड़सवार पंक्तिबद्ध होकर अनुशासन में खड़े थे।

सम्भाजी के इशारा करते ही कहारों ने वह फूलों की मालाओं से सजी पालकी कन्धों पर उठा ली, जो उस दल के सबसे आगे रखी थी। यह पालकी छत्रपति महाराज की सवारी के लिए ले जायी जा रही थी। सारा दल निकल पड़ा। सम्भाजी अपने दिग्विजयी पिता के स्वागत के लिए नगर-द्वार से निकलकर कोस भर दूर तक आगे बढ़ आये। घोड़े की चाल के साथ-साथ उनकी कौड़ियों की माला झूल रही थी—मन भी अनेक स्मृतियों में झूल रहा था—'पूरे पौने दो वर्ष की विजय-यात्रा, धूप-वर्षा से भरी मुहिम, आबासाहब अब बहुत थक गये होंगे। फिर भी हमें अगवानी करने आया देखकर वे कहेंगे—तुमने यह कष्ट क्यों उठाया? तुम कोई पराये थोड़े ही हो! हमारी बहू रानी कैसी हैं? इस प्रश्न का उत्तर हम भला सबके सामने कैसे दे पाएँगे? फिर वे मामा से पूछेंगे—क्यों पिलाजी, कैसी है हमारी बेटी? एक-एक शब्द कैसा भिन्न भाव लिये होता है आबासाहब का! हमारे आबासाहब बोल रहे हों, तो जी चाहता है, वे बोलते ही रहें।'

नगर-द्वार पीछे छूट गया। दल एक कोस आगे तक बढ़ आया था। यहाँ पालकी और दल

https://t.me/Sahityajunction

रुक गया। सब लोग घोड़ों से उतर पड़े। घुड़सवारों ने तलवारें म्यान से बाहर निकालकर हाथों में थाम ली थीं। खण्डोजी ने इन्हें अनुशासन में खड़ा किया। स्वयं खण्डोजी के हाथ में सोने की मुहरों से भरी थैली थी। सबकी आँखें उस रास्ते पर लगी थीं, जो अम्बा घाट से शृंगारपूर की ओर आता था।

एक पहर बीत गया। सूर्य आकाश में धीरे-धीरे ऊँचा चढ़ता जा रहा था। पालकी की छत तपकर तवा हो रही थी। पुष्पमालाएँ मुरझाने लगीं—हर आँख कड़ुआ गयी। सूचना लाने के लिए जो हरकारे घाट के रास्ते में आगे भेजे गये थे, उनमें से एक सवार दूर से आता दिखलाई दिया। आशाएँ अंकुरित हो उठीं। सवार दल के निकट आया। सम्भाजी झट लपककर आगे बढ़े और पूछा, "कहाँ तक आये हैं?"

"मालिक, अपना थैलीवाला सवार पीछे आ रहा है।"

अब सारे उसकी प्रतीक्षा करने लगे। दुपहरी बीत चुकी थी। सब लोगों के मन मुरझाने लगे थे। काफी देर बाद थैलीवाला एक सवार क़दमों को खींचता हुआ-सा धीरे-धीरे वहाँ आया। उसे देखते ही सम्भाजी कूदकर घोड़े पर सवार हो गये और आगे लपककर उस सवार तक जा पहुँचे। "कहाँ तक आये हैं महाराज साहब?" सम्भाजी ने उतावला होकर पूछा।

वह सवार जैसे-तैसे नीचे उतरा। मुजरा करके उसने गरदन हिलायी और कमर में बँधी थैली सम्भाजी के हाथ में दे दी। सम्भाजी ने जल्दी से उसे खोला—उसमें एक ख़लीता था।

"क्या मतलब?" सम्भाजी के माथे की त्यौरियाँ चढ़ गयीं।

"मालिक से भेंट नहीं हो पायी। वे...सामानगढ़, कोलापुर और सातारा होकर वरन्दा घाट से पुणे की ओर चले गये।"

"वरन्दा घाट से पुणे की ओर चले गये?" सम्भाजी की मुखमुद्रा बदल गयी।

'क्या आबासाहब हमें भूल गये? या हमसे नाराज़ हो गये हैं? या फिर रायगढ़ में ही कुछ उलटा-सीधा हो गया है?' अनेक शंका-कुशंकाओं के कारण सम्भाजी का दिल धड़कने लगा।

"चलो, लौट चलें," एक बूढ़े ने अपना कड़ाधारी हाथ सम्भाजी के कन्धे पर रखा। आज तक के अदब-संकोच को दूर करके पिलाजी ने अपने जामाता की व्यथा जानने के कारण उनके कन्धे को थपथपाया था।

दल लौट पड़ा। आम्रपल्लवों से सजे तोरण-द्वार को शाम के धुँधलके ने घेर लिया था। किसानों ने खड़ी की हुई धार्मिक ध्वजाएँ नीचे उतार ली थीं।

सम्भाजी की किसी से भी बात करने की इच्छा न होती थी। वे चुपचाप अपने महल में घुसे। आज पहला अवसर था कि उनके साले गणोजी उनके पीछे-पीछे महल में चले आये थे। सम्भाजी ने उन्हें देखा नहीं था। महल में दीवट जल रहे थे। सम्भाजी ने टोप सिर से उतारकर चौकी पर रखे तबक़ में रख दिया।

"युवराज...!" गणोजी की आवाज़ सुनकर सम्भाजी एकदम चौंक उठे। फिर सँभलकर बोले, "कहो!"

"युवराज, तुम सचमुच अपने नाम के अनुसार शम्भु महादेव के समान 'भोला शंकर' ही हो।"

https://t.me/Sahityajunction

“क्या मतलब?” सम्भाजी के बाल गले पर लटके झूल रहे थे।

“हम बताते हैं तुम्हें कि क्या-क्या हुआ है। छत्रपति इधर के रास्ते को टाल कर पुणे की ओर चले गये, जानते हैं क्यों? रायगढ़ में यह अफ़वाह फैली हुई है कि युवराज ने कलशाभिषेक इस कारण किया है कि छत्रपति महाराज स्वर्गवासी हो जाएँ और युवराज राजगद्दी पर बैठ सकें।”

“बस करो...गणोऽ जी!” दोनों कानों पर हाथ रखकर सम्भाजी ज़ोर से चीख उठे।

“आप सँभलकर रहा करें, इतना ही कहना है हमें।” गणोजी चले गये।

सम्भाजी का हृदय जैसे किसी ने चीर दिया था। रह-रहकर उनकी आँखों के सामने अण्णाजी और माँजी सोयराबाई के मुख नाच रहे थे।

“क्या हुआ?” येसूबाई को कमरे में आये काफी देर हो चुकी थी।

सम्भाजी ने उनकी बात का उत्तर नहीं दिया। वे झरोखे के पास आये और बाहर फैले घने अँधेरे को देखने लगे। उन्हें आभास हुआ—मानो उस गहन अन्धकार में से शुभ्र वस्त्र धारण किये एक आकृति उनकी ओर ही बढ़ी आ रही है। वह आकृति थी ठीक बड़ी आऊ साहिबा, जिजाऊ के समान। उनके होठों से शब्द प्रकट हुए—‘अच्छा हुआ, जो आज तुम जीवित नहीं हो।’

फिर वे पीठ-पीछे खड़ी येसूबाई की ओर मुड़े। अपने गले में पहनी हुई कौड़ियों की माला उन्होंने उतारी और उसे येसूबाई के हाथ में रखते हुए उदासी भरे स्वर में कहने लगे, “हम अपने आप को इस बहुमूल्य अलंकार को धारण करने योग्य सिद्ध कर सकेंगे अथवा नहीं, इस विषय में हमें सन्देह होने लगा है। इस अलंकार को तुम ही अधिक सावधानी से सँभाल पाओगी।”

सजे-धजे शृंगारपूर में दिनभर रौनक छायी हुई थी। अब यह नगरी रात्रि की काली गोद में समा चुकी थी। उदासी और खिन्नता में डूबे युवराज सम्भाजी के क़दम दुर्गाबाई के शयनागार की ओर बढ़ रहे थे।

रायगढ़ में छत्रपति के ख़ासमहल के सभागृह में मन्त्रियों की सभा आयोजित की गयी थी। दक्षिण-विजय के पश्चात् रायगढ़ लौटकर आये महाराज सब विभागों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर रहे थे। बाहर आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा-धाराएँ बरस रही थीं। सभागृह में मोरोपन्त पिंगले, अण्णाजी दत्तो, रावजी सोमनाथ, प्रह्लाद निराजी, बालाजी आवजी, गंगाधरपन्त हणमन्ते, हम्बीरराव मोहिते आदि विशेष सचिव, अधिकारी आदि उपस्थित थे।

“महाराज, मोरोपन्त ने शत्रु के नासिक-त्र्यम्बकेश्वर आदि प्रदेशों में बहुत लूटपाट मचायी।” अण्णाजी दत्तो ने प्रधानमन्त्री मोरोपन्त पिंगले के पराक्रम की जानकारी प्रस्तुत की।

इसके बाद बालाजी आवजी ने कुतुबशाह तथा अँग्रेज़ों के दरबार से आये हुए कुछ पत्रों का विवरण प्रस्तुत किया।

न्यायाधीश प्रह्लाद निराजी ने जिन विवादों का निर्णय किया था, उनका वृत्तान्त महाराज के सम्मुख रखा।

राजसभा की कार्यवाही शाही अस्तबल, राजकोष, शस्त्रागार आदि से होती हुई लगान की वसूली तक आ पहुँची। लगान विभाग के प्रधान अण्णाजी थे। उन्होंने अपने विभाग का वृत्तान्त

https://t.me/Sahityajunction

प्रस्तुत करते हुए युवराज सम्भाजी के बारे में शिकायत की, "महाराज, युवराज लगान के मामले में हस्तक्षेप करते हैं। हमने महाराज को उसी समय सूचना भेज दी थी।"

"युवराज किस प्रकार हस्तक्षेप करते हैं, अण्णाजी?" महाराज ने पूछा।

"वे प्रजाजनों को इच्छानुसार छूट दे देते हैं।"

"वे स्वयं प्रजा के पास जाते हैं या प्रजा छूट माँगने उनके पास आती है?" छत्रपति ने अण्णाजी को घेरे में फँसा लिया।

"वे क्यों जाएँगे प्रजा के पास? प्रजा ही आती है उनके पास।" महाराज हँसने लगे। अण्णाजी का दिल न दुखाते हुए उन्होंने अण्णाजी की भूल अण्णाजी की झोली में डाल दी। फिर स्नेहभरी वाणी से कहने लगे, "अण्णाजी, लगान विभाग के तुम प्रधान हो। प्रजाजनों की यदि कुछ शिकायत हो, कोई कठिनाई हो तो उन्हें तुम्हारे पास आना चाहिए। प्रजा युवराज के पास क्यों जाती है, यह बात कुछ समझ नहीं आती हमारे।"

अब अण्णाजी चौंके! चुप हो गये। फिर महाराज ने ही उन्हें सँभालने-सँवारने का प्रयत्न किया, "अण्णाजी, प्रजा तो हमारी देवता है। वही हमें सैनिक देती है, वही हमारे भण्डारों को धन-धान्य से भरती है। शत्रुओं के आक्रमण होने पर यही प्रजा घोड़ों की टापों तले रगड़ी जाती है। उसके सुख-दुःख को जानना-समझना हमारा कर्तव्य है। समय पड़ने पर हमें प्रजा को दिलासा भी देना पड़ता है, समझाना-बुझाना पड़ता है। युवराज ने अगर प्रजा के पास जाकर सुख-दुःख जानने का प्रयत्न किया हो, तो कुछ अनुचित हुआ है, ऐसा हम नहीं मानते। फिर भी हम स्वयं इस बारे में जाँच करेंगे।"

"जी, आप जो कहते हैं, वह उचित ही है। परन्तु जब युवराज शत्रु को ख़लीते भेजकर उससे साँठ-गाँठ करते हैं, शाक्तपन्थीय योगियों के भुलावे में आकर स्वयं छत्रपति के अनिष्ट के लिए जब वे कलशाभिषेक करवाते हैं, तब सन्देह होना स्वाभाविक है। हमारा कर्तव्य है कि एक स्वामिभक्त सेवक के नाते समस्त वृत्तान्त आपके सम्मुख कहें।" अण्णाजी ने अपने अन्तस्तल की कालिमा को सुन्दर भाषा में प्रस्तुत किया।

महाराज सुनते ही गम्भीर हो गये। वे भी समझ न पाये कि क्या कहें। सारी सभा में हलचल मच गयी थी।

"इन बातों की पूरी जाँच-पड़ताल कर ली है तुमने, अण्णाजी?" छत्रपति ने सावधान होकर पूछा।

"जी हाँ, स्वामी ने हम पर जो भार सौंपा है, उसमें हम टालमटोल कैसे कर सकते हैं?"

सारी सभा में शान्ति छा गयी। कोई भी समझ न पाता था कि क्या कहा जाय। आख़िर हम्बीरराव ने साहस करके एक उपाय प्रस्तुत किया, "अण्णाजी ने जो जाँच-पड़ताल की है, वह ठीक ही होगी परन्तु फिर भी हमारा सुझाव है कि महाराज युवराज को सामने बुलावें और सच-झूठ का फैसला करें।"

सभा में उपस्थित जनों में से अनेकों को यह सुझाव पसन्द आया और वे गरदन हिलाने लगे। परन्तु छत्रपति बोले, "हम्बीरराव, तुम्हारा सुझाव है तो ठीक, परन्तु...परन्तु क्या तुम समझते हो कि यदि यह आरोप सत्य हुआ, तो युवराज हमारे सामने इसे स्वीकार करेंगे? और यदि आरोप

https://t.me/Sahityajunction

असत्य सिद्ध हुआ, तो हमारे बारे में उनका क्या मत बनेगा? हमने नेताजीराव और प्रतापराव—इन दो सेनापतियों के मामलों में यह भली प्रकार अनुभव कर लिया है कि लोग हमारे कहने का अनुचित अर्थ निकालते हैं और हमसे रूठकर दूर चले जाते हैं। अब तक दो बार हमारे हाथ जल चुके हैं, फिर तीसरी बार हाथ भला कैसे जला लें? और स्वयं युवराज के मामले में? नहीं, ऐसा करना सम्भव नहीं।" छत्रपति अत्यन्त व्याकुल हो गये थे। जब दूसरा कोई कुछ नहीं बोला, तो वे ही कहने लगे, "हम कलशाभिषेक से नहीं डरते। मिर्ज़ा राजा जयसिंह भी तो अपनी कुलदेवी चण्डी का लाख बार अभिषेक करके हमें मिटाने आया था। हमारे प्राणों का जो भी भला-बुरा होना है, वह किसी की चाह या प्रार्थना से नहीं होनेवाला। वह होगा, तो केवल जगदम्बा की इच्छा से। हमें चिन्ता अपने प्राणों की नहीं, राज्य की है। युवराज के मन में सिंहासन पाने की लालसा उत्पन्न हुई है और इसके लिए वे दिलेर ख़ाँ जैसे कट्टर शत्रु के साथ साँठ-गाँठ कर रहे हैं, इस बात के निश्चित होते ही हमें ख़ून का रिश्ता भुलाकर उनसे कठोरता से व्यवहार करना पड़ेगा। परन्तु ऐसा करने के पूर्व हम उन्हें एक अवसर अवश्य देना चाहेंगे। आज तक माँ भवानी ने ही प्रत्येक अवसर पर हमें बुद्धि दी है, वह जैसी प्रेरणा देगी, वैसा की करेंगे।" छत्रपति ठहर गये। उनकी कठोरता देखकर अण्णाजी की आँखों में चमक पैदा हो गयी। राज्यसभा भंग कर दी गयी। सभी दरबारी बाहर चले गये। अण्णाजी दत्तो भी राजकर्मचारियों सहित अपनी कोठी की ओर चल दिये। रास्ते में प्रहरी, सैनिक आदि उन्हें मुजरे कर रहे थे, परन्तु उन मुजरों की ओर अण्णाजी का ध्यान नहीं था। वे मन-ही-मन यही अनुमान लगा रहे थे—'महाराज युवराज को एक अवसर देनेवाले हैं? क्या होगा वह अवसर? छत्रपति का विचार कौन-सा होगा?'

धूप के सुनहरे चमकीले श्रीफल से और वर्षा के जलबिन्दु-रूपी तण्डुलकणों से प्रकृति-नारी श्रावण मास की शोभा देवी की गोद भरने लगी। युवराज्ञी येसूबाई के दोहद के निमित्त प्रीति-भोज दिया गया। कोंछ भरी गयी। इस दोहद-भोज की विधि के अवसर पर रायगढ़ से वस्त्रालंकारों से भरे दो थाल भेजे गये थे। एक थाल था छत्रपति महाराज का और दूसरा था रानी पुतलाबाई का भेजा हुआ। पुतलाबाई ने सन्देश भिजवाया था : 'हमारे मन में तो आने की तीव्र इच्छा थी, परन्तु सम्भव नहीं हो सका। कुछ भ्रम-सन्देह मत करना। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।'

धाराऊ तो अब येसूबाई की छाया बनकर साथ रहने लगी। वह येसूबाई का इतना ध्यान रखती थी कि कोई अपनी आँख की पुतली का भी क्या रखेगा! श्रीकृष्ण जन्माष्टमी बीत गयी और श्रावणकृष्ण एकादशी का दिन उदित हुआ। शिर्के की हवेली के प्रसूता-कक्ष में आज एक शिशु की बोली सुनाई दे रही थी।

"कन्या ने जन्म लिया है। भावेश्वरी देवी की कृपा हुई है।" दाई ने सबको सुवार्ता सुनायी।

येसूबाई आज 'माँ' बन गयीं। सम्भाजी 'आबा' बन गये। राजकुल में पहली पौत्री ने जन्म लिया। हवेली के द्वार पर नगाड़े, चौघड़े गड़गड़ाने लगे, ऊखली पटाखों के धमाके होने लगे। पिलाजी शिर्के अब 'नानाजी' बन गये थे—वे हवेली के सभागृह में बैठे हुए प्रजाजनों को परात में से लेकर शक्कर बाँट रहे थे। हँसते हुए कह रहे थे, "अरे भैया, अब हम बूढ़े हो गये। नातिन का जनम जो हो गया है।"

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी ने यह शुभ समाचार ज्योंही सुना, उनके मन का तार झनझना उठा—'आज बड़ी आऊ साहिबा जिजाऊ होतीं, तो भागकर हमारे पास आतीं। न जाने क्या-क्या कहकर वे हमें चिढ़ातीं।...और हमारी जन्मदात्री माता सईबाई साहिबा—उनका तो चेहरा भी हमें याद नहीं आता। लोग कहते हैं कि वे साँवली थीं। ये धाराऊ, हमारी धाय माँ, गोरी हैं। उसकी छाया देखते ही हमें अपनी जननी की स्मृति हो आती है। आज हम आबा हो गये! यह सत्य भी मन को व्याकुल बना देता है? यह सत्य है अथवा स्वप्न?...हमारे आबासाहब 'दादाजी' बन गये! आबासाहब दक्षिण के विजय-अभियान के कारण बहुत थक चुके होंगे। यह समाचार सुनकर उन्हें कितनी प्रसन्नता होगी! वे अवश्य ही अपनी नातिन का मुँह देखने दौड़े चले आएँगे। हम उन्हें आदर से प्रणाम करेंगे। कितने दिन हो गये, हमें उनके दर्शन ही नहीं हुए। हम अपने मन की व्यथा यहाँ किससे कहें? कैसे बताएँ?'

"युवराज, क्या आज्ञा है?" परशुरामपन्त युवराज का बुलावा सुनकर चले आये थे।

"पन्त, फलटण, सिंदखेड, रायगढ़ आदि नगरों को हरकारे भेजो। समाचार भिजवाओ कि हमने कन्यारत्न पाया है। आबासाहब को लिखो—आप 'दादाजी' बन गये हैं। आपकी नातिन आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रही है।"

शिशु के नामकरण संस्कार का—बरही का—दिन आ गया। पिलाजी की हवेली में आनन्द-उछाह का समुद्र हिलोरें ले रहा था। परिवार का हर छोटा-बड़ा व्यक्ति नूतन वस्त्रों से सजधज कर प्रफुल्लित था। शहनाई और ढोल में होड़ लगी हुई थी। नाते-रिश्ते के लोग दूर-दूर से पहुँच रहे थे—पहलौठी के लिए वस्त्रालंकार, पान के बीड़े, और भेंट-उपहार लेकर। युवराज सम्भाजी बैठक में बैठकर ब्राह्मण, पुजारी, भिक्षुक, गोसाईं, बैरागी, साधु आदि को दान दे रहे थे।

नामकरण-संस्कार की विधि का प्रारम्भ होने को था। नवजात बालिका को पालने में सुलाने का मुहूर्त ज्यों-ज्यों निकट आता जा रहा था, त्यों-त्यों सम्भाजी की बेचैनी बढ़ रही थी। इतने ही में खण्डोजी दौड़ता हुआ आया और बोला, "रायगढ़ से भेजा गया 'पहलौठी का भेंट थाल' आ गया है मालिक।"

सम्भाजी की आँखें चमक उठीं—'रायगढ़ से 'पहलौठी का भेंट-थाल' आ गया? आबासाहब आ गये? चलो, उनके स्वागत के लिए जाना चाहिए। सम्भाजी बैठक से उठ खड़े हुए और आज्ञा देने लगे, "खण्डोजी, झटपट सारी तैयारियाँ करो। हमें अगवानी करने के लिए जाना है।"

खण्डोजी समझ गया कि युवराज को ग़लतफ़हमी हो गयी है। सिर नीचे झुकाकर कहने लगा, "महाराज नहीं आये।"

टक्-टक्-टक्-टक् शंका-सन्देह का कठफोड़वा पक्षी उनके हृदय में टोंट मारने लगा। मुँह फक पड़ गया।

"...नहीं आये...!" उनके मुख से अनजाने में ये शब्द निकल गये।

रायगढ़ से भेजे गये 'भेंट थाल' गाते-बजाते हवेली में लाये गये। जो सवार ये थाल लेकर आये थे, वे सम्भाजी को मुजरा करने लगे। वस्त्र से ढँके दो थाल उन्होंने सभागृह में रख दिये और सिर झुकाकर वे रायगढ़ से भेजा गया सन्देश बतलाने लगे : "मालिक की तबीयत ख़राब है। उन्होंने ये 'भेंट-थाल' भिजवाये हैं। कहलवाया है कि बच्चे का नाम 'भवानी बाई' रखा जाय।"

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी सन्न-से रह गये। वह सभागृह से उठे और अपने महल की ओर चल पड़े।

गंगाल में मुहूर्तपात्र ज्योंही डूबा, राजकुँवरबाई ने अपनी भानजी को पालने में सुला दिया और उसके कान में उसका नाम पुकारकर तीन बार कहा, "भवानी! भवानी!! भवानी!!!"

फिर राजकुँवरबाई ने पालने से पीठ लगायी और एक झोंका दिया। 'भवानी' का झूला हिलने लगा। इस समारोह में दुर्गाबाई सम्मिलित नहीं थीं। वे वमन और मतली के कारण व्याकुल थीं, अपने महल में आराम कर रही थीं।

दशहरा बीत गया। प्रत्येक वर्ष दशहरे की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा थी—राजा या राजपुत्र को कचनार के पत्तों का ढेर तलवार से फोड़ना होता था। परन्तु सम्भाजी इस बार दशहरे के मैदान में नहीं गये। वे आजकल किसी से भी बातें नहीं करते थे—अपने महल में अकेले पड़े रहते थे। मन-ही-मन अपने से ही बातचीत करते रहते थे। उन्हें इस मानसिक उलझन से बाहर निकलने का रास्ता नहीं सूझता था। उनका अभिमानी मन ऐसी गुत्थियों में फँस गया था कि सुलझन नहीं सूझती थी। असह्य एवं भीषण एकान्त ने उन्हें पूरी तरह घेर लिया था। हवेली में सभी तो थे...ससुराल के लोग थे, सगी बहन राणू दीदी थीं, अर्धांगिनी येसूबाई और दुर्गाबाई थीं, खण्डोजी, रायाजी और अन्तोजी जैसे विश्वासपात्र साथी थे, उमाजी पण्डित, केशव पण्डित और कवि कुलेश जैसे काव्यशास्त्र के विद्वान् थे, पिलाजी जैसे अनुभवी वृद्ध थे, परन्तु इनमें से कोई भी उन्हें अब 'अपना' नहीं लगता था। नवजात पुत्री का स्नेह भी अब ढल-सा गया था। मन घिसटा-रगड़ा जा रहा था। शंका-कुशंकाओं की मशालें नाच रही थीं—'क्यों हो रहा है ऐसा? हम विश्वास से सोना हाथ में लेते हैं, उसकी मिट्टी ही क्यों बन जाती है? यदि स्वयं आबासाहब के मन में हमारे बारे में सन्देह उत्पन्न हो गया हो तो शेष सब कुछ मिला भी तो क्या! न जाने हमारे विषय में उनके मन में किसने और क्या-क्या विचार भर दिये हैं? क्यों किया है उन्होंने ऐसा? उन माँजी का भला हमने क्या बिगाड़ा है? हमने अण्णाजी महोदय को भी कौन-सा कष्ट दिया है?

'महाराज कर्नाटक की मुहिम पर जाते हैं और जाते समय हमें शृंगारपूर में 'क़ैद' कर जाते हैं। हम उनके साथ होते, तो उनकी दिग्विजय में कलंक लगने की सम्भावना होती, यही सोचकर हमने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। परन्तु वापस लौटते समय भी उनके मन में हमसे मिलने की इच्छा नहीं हुई। हमारी पुत्री का, अपनी ही नातिन का मुख देखने भी वे नहीं आये। यह सब क्या है? कौन-से अपराध का दण्ड दिया जा रहा है हमें? क्या हम राजा के बड़े बेटे हैं, यही हमारा अपराध है? युवराज के रूप में हमारा अभिषेक हुआ, क्या यही हमारा अपराध है? अभी हमने आँख भी न खोली थी कि हमारी जननी हमें छोड़ गयी, यह भी क्या हमारा अपराध है? जब बड़ी आऊसाहिबा के प्यार की हमें सबसे अधिक आवश्यकता थी, ठीक उसी समय वे जिजाऊ हमें अनाथ बना गयीं, यह भी क्या हमारा ही अपराध है?

'अवश्य ही आबासाहब के मन में हमारे बारे में कुछ भ्रम-संशय है। कौन है जो रायगढ़ में इस संशय का निवारण करे? कौन हमारी ओर से सफाई देगा? यह भी नहीं समझ आता कि हमें ही रायगढ़ क्यों नहीं बुलाया जाता? या आबासाहब चाहते हैं कि हम जीवन-भर यहीं ससुराल में पड़े रहें? हम पौने दो साल से यहाँ हैं। अब यहाँ से जी ऊब गया है। पर जाएँ तो जाएँ कहाँ? कैसे

https://t.me/Sahityajunction

जाएँ?' वे आगे कुछ सोच-समझ नहीं सके।

"युवराज, रायगढ़ से थैली लेकर एक सवार आया है। थैली में विशेष पत्र है, इस कारण वह सवार आपसे मिलने के लिए काफी देर से सभागृह में खड़ा है।" परशुरामपन्त ने महल में आकर सूचना दी।

'थैली? सवार? रायगढ़ से? अवश्य ही आबासाहब ने हमें बुलाया होगा।' क्षण-भर पहले सम्भाजी के मुखमण्डल पर जो कालिमा छायी थी, वह धुल गयी। वे लपकते हुए सभागृह में आये। रायगढ़ का हरकारा अदब से आगे बढ़ा और कमर में खोंसी हुई भगवी थैली उसने युवराज के हाथों में दी। सम्भाजी ने जल्दी से बन्द खींचा, गोल लिपटा काग़ज़ बाहर निकाला और पढ़ने लगे :

'श्रिया विराजित अखण्डलक्ष्मी अलंकृत युवराज शम्भूराजा के प्रति—अनेक उत्तम आशीर्वाद; आगे विशेष यह...

सौभाग्यवती येसूबाई, हमारी बहूरानी, पुत्री की माता बनीं। समाचार सुनकर अतीव प्रसन्नता हुई। आगे विशेष बात यह कि यह पत्र मिलते ही तुम सज्जनगढ़ की ओर प्रस्थान करो। वहाँ समर्थगुरु रामदास की सेवा में उपस्थित होओ। वहाँ तुम्हारे चित्त को शान्ति प्राप्त हो, ऐसा आचरण-व्यवहार करो। समर्थगुरु जो भी उपदेश दें, उसे सावधान होकर ग्रहण करो। अपने मन के सद्भाव-दुर्भावों को समर्थगुरु के चरणों में निवेदित करो। विशेष क्या लिखें। तुम्हें ज्ञात हो।'

ख़लीते के एक-एक शब्द को पढ़ते हुए सम्भाजी की बायीं भौंह कमान की तरह टेढ़ी होने लगी। मोटी-विशाल आँखें और अधिक फैल गयीं। अँगरखा छाती में कसने लगा। मन में अनेक विचारों-शंकाओं ने हुड़दंग मचा दिया, 'अब यह निश्चित हो गया कि आबासाहब के मन में हमारे विषय में अवश्य कोई संशय छिपा हुआ है। कहा है—हम सज्जनगढ़ के मठ में समर्थगुरु रामदास के चरणों में जाएँ। उनका उपदेश सुनें? क्यों?—ताकि मन के भाव-दुर्भाव दूर हों! परन्तु हमारे मन में कौन-सा दुर्भाव है? हमने यहाँ रहकर प्रभानवल्ली सूबे की व्यवस्था की, यह क्या पाप किया? कठिनाई में फँसी प्रजा का लगान माफ़ किया, यह क्या बुरा किया? सन्तान के अनिष्ट निवारण के लिए कलशाभिषेक किया, इसे क्या दुर्भाव कहते हैं? आबासाहब, यह कैसी आज्ञा दे डाली है आपने? हमें उपदेश की आवश्यकता नहीं, हमें तो केवल आपके चरणों के दर्शनों की कामना है। रायगढ़ के चरणों की शरण चाहते हैं हम। क्यों जाएँ हम सज्जनगढ़? भला क्यों?'

ख़लीता वैसे ही हाथ में पकड़े सम्भाजी सभागृह से बाहर निकल गये और सीधे येसूबाई के प्रसूता-कक्ष में पहुँचे। ख़लीते को ऊपर उठाकर हिलाते हुए बोले, "सुना तुमने? रायगढ़ से ख़लीता भेजा है आबासाहब ने। आज्ञा दी है कि हम सज्जनगढ़ में उपस्थित हों। वहाँ समर्थगुरु के चरणों में मन के भाव-दुर्भाव को रख दें। तुम्हीं बताओ, क्यों जाएँ हम सज्जनगढ़?"

येसूबाई दो मास की बालिका भवानी को दूध पिला रही थीं। दूध पिलाना बन्द करके वे मुस्कराती हुई कहने लगीं, "तो इसमें इतना क्रोध करने की क्या बात है? सज्जनगढ़ तो अत्यन्त पवित्र धर्मस्थान है। हमारी बात मानिए, आप आदेश के अनुसार सज्जनगढ़ चले जाइए। हम यहाँ इस अवस्था के कारण विवश हैं, अन्यथा हम भी अवश्य चलतीं आपके साथ समर्थगुरु जी के दर्शन पाने।"

https://t.me/Sahityajunction

येसूबाई के शान्त उत्तर को सुनकर सम्भाजी अचम्भे में पड़ गये। हाथ पीठ पर बाँधे अपने आप ही कुछ सोचते-विचारते घूमने लगे। फिर थोड़ी देर बाद कक्ष से बाहर निकलने से पूर्व शान्त वाणी से कह उठे, "ठीक है, हम जाएँगे सज्जनगढ़।"

सज्जनगढ़ के लिए रवाना होने का दिन आ गया। खण्डोजी ने तीन सौ घुड़सवारों को चुनकर हवेली के बाहर तैयार रखा था। कहारों ने झीने परदों से बन्द एक डोली तैयार कर रखी थी। इसमें बैठकर राणू दीदी और दुर्गाबाई भी समर्थगुरु रामदास के दर्शनों के लिए साथ जानेवाली थीं। गर्भवती दुर्गाबाई के मुख पर निराला तेज छाया हुआ था।

सम्भाजी ने श्वसुर पिलाजी और अपनी सासजी से चरण छूकर विदा ली और फिर वे येसूबाई से विदा लेने के लिए उनके कक्ष में गये। येसूबाई उन्हें आया देखकर सोते से उठ बैठीं। नन्ही भवानी आराम से सोयी हुई थी। पालने के पास धाराऊ खड़ी थी।

"अच्छा, हम चलते हैं, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।" सम्भाजी येसूबाई की आँखों की ओर न देखते हुए ही भर्रायी हुई आवाज़ में कह रहे थे। फिर वे पालने के पास गये और उन्होंने सोयी हुई बच्ची के गालों का चुम्बन लिया। भवानी क्षण-भर के लिए हिली-डुली और फिर शान्ति से सो गयी। धाराऊ ने पालने को धीरे से झुलाना शुरू कर दिया।

"आप अभी क्रोध में हैं, परन्तु सज्जनगढ़ के दर्शन करके यह क्रोध अवश्य शान्त हो जाएगा। हमें पूरा विश्वास है कि आप वहाँ से लौटेंगे, तो पूरा काव्य-ग्रन्थ रचकर लाएँगे।" येसूबाई ने सम्भाजी को प्रसन्न करना चाहा। सम्भाजी ने सदा की भाँति हँसकर इस कथन का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। केवल उनके दुःखी हृदय से बोल फूट पड़े, "काव्य से अब हम दूर, बहुत दूर जा पड़े हैं।"

कुछ काल के लिए कक्ष में पूर्ण शान्ति रही। फिर येसूबाई कहने लगीं, "आप समर्थजी के दर्शनों को जा रहे हैं। उन्हें हमारा दण्डवत् कहिएगा। गुरु महाराज ने यदि आपको कुछ कठोर वचन कह भी दिया, तो उसका बुरा मत मानिएगा। हमारा विश्वास है कि भावेश्वरी देवी की कृपा से सब ठीक-ठाक हो जाएगा।"

सम्भाजी इस बात को सुनकर कुछ विचित्र-सी हँसी हँस पड़े। धाराऊ से बोले, "आऊ, हम चलते हैं। इनका ध्यान रखना।"

"सुनिए, लौटते हुए बेटी भवानी के लिए समर्थगुरु जी के हाथ से मन्त्रित गण्डा अवश्य लाइएगा। कहीं भूल मत जाइएगा।" येसूबाई झूले की ओर प्यार भरी दृष्टि से देखती हुई कहने लगीं। प्रसूता का मुख स्वास्थ्य के निराले तेज से दमक रहा था। येसूबाई पलँग पर हाथ टेककर धीरे से उठ बैठीं और दीवार के आले की ओर जाकर उन्होंने एक लकड़ी की पेटी बाहर निकाली। इस पेटी को खोलकर उन्होंने उसमें रखी कपर्दिकमाला बाहर निकाली। फिर वे धीरे-धीरे सम्भाजी के पास आयीं और माला को अंजलि में रखकर कहने लगीं, "यह अलंकार अनमोल है। इसके बिना आपकी छाती नंगी-बूची दिखाई देती है। हममें शक्ति नहीं है कि इस अलंकार को सँभालें। लीजिए, पहनिए। हमारी छोटी बहन दुर्गाबाई का खयाल रखिएगा।"

सम्भाजी की आँखें छलछला आयी थीं। बहुत देर तक वे अपनी सखी को देखते ही रहे। फिर

https://t.me/Sahityajunction

उन्होंने अंजलि में से माला उठायी और गले में पहन ली। येसूबाई ने आँचल का छोर हाथ में पकड़कर अपने 'सुहाग के सिन्दूर' को तीन बार नमस्कार किया।

"अच्छा, हम चलते हैं," सम्भाजी मुड़ पड़े। मुड़ते समय भवानी के झूले से उनका हाथ टकरा गया। इतने से धक्के से ही उस बच्ची की नींद खुल गयी। हाथ-पाँव ज़ोर से हिला-हिलाकर वह रोने लगी। सम्भाजी, येसूबाई, धाराऊ सब एक-दूसरे की ओर देखते ही रह गये। धाराऊ आगे बढ़ी और उसने बालिका को उठाकर थपथपाया। कुछ देर में बालिका चुप होकर सो गयी।

इसके बाद सम्भाजी ने कमरे में पीछे मुड़कर नहीं देखा। वे सीधे कमरे से बाहर हो गये। राणू दीदी और दुर्गाबाई भी सबसे विदा होकर डोली में आ बैठी थीं। सम्भाजी एक सफ़ेद रंग के घोड़े पर सवार हो गये। पिलाजी, गणोजी, पण्डितवर्ग, खण्डोजी, रायाजी, अन्तोजी, आदि लोग उन्हें विदा करने नगरद्वार तक आये। मार्ग में ही भावेश्वरी का मन्दिर पड़ता था, वहाँ उतरकर सम्भाजी ने दर्शन किये। नगर का उत्तरी द्वार आया। पिलाजी से गले मिलकर सम्भाजी बोले, "आप यहाँ हैं अतः हमें इधर की कोई चिन्ता नहीं रहेगी।"

"बिल्कुल निश्चिन्त रहो। गुरु महाराज से मिलकर लौट आओ। हम तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।" पिलाजी स्नेहभाव से बोले। सबसे विदा होकर सम्भाजी शृंगारपूर से दूर चल दिये। डोली के चारों ओर घेरा डाले घुड़सवारों का दल और सारा समूह कोयना के पर्वतीय घाट की दिशा में मन्द गति से चल पड़ा।

सायंकाल को सारा दल सज्जनगढ़ पहुँचा। गढ़ की तलभूमि में सज्जनगढ़ का क़िलेदार जिजोजी काटकर युवराज की अगवानी के लिए उपस्थित था। सम्भाजी जिजोजी को साथ लेकर राणू दीदी और दुर्गाबाई सहित समर्थगुरु रामदास के निवासस्थान सज्जनगढ़ की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। एक-एक सीढ़ी को पीछे छोड़ते समय सम्भाजी का मन भी भूतकाल में पहुँच गया था। उन्हें याद आया वह दिन, जिस दिन शिवथर घाटी में समर्थगुरुजी से भेंट हुई थी। उनकी दाढ़ीधारी तेजस्वी मुखाकृति आँखों के आगे आ गयी। घण्टानाद के समान गुरुगम्भीर वचन कानों में गूँजने लगे : 'हम तो बैरागी साधू हैं। तुम्हारे राज्याभिषेक के अवसर पर भेंट देने योग्य उपहार हमारे पास अन्य क्या है? यह कोदण्ड हमें प्राणों से भी प्यारा है, यही तुम्हें प्रदान करते हैं।'

बड़ी आऊ साहिबा ने पाचाड़ में मृत्युशय्या पर पड़े हुए यही अन्तिम अभिलाषा प्रकट की थी—"हमें समर्थगुरु का उपदेश सुनने की इच्छा है।" समई के प्रकाश में केशव पण्डित ने स्वर्ग के पन्थ के उस यात्री को समर्थजी का यही उपदेश सुनाया था :

प्राणों से तुम प्राण मिलाओ—आत्मा परमात्मा में—

'हमारी बड़ी आऊसाहिबा परलोक सिधार गयीं—केवल स्मृतियाँ शेष रह गयीं।'

सम्भाजी सज्जनगढ़ दुर्ग में पहुँचे। वहाँ के मठ में सब ओर उनके आने का समाचार फैल गया। सम्भाजी ने प्रवेशद्वार में जूते उतार दिये और पाँव धो लिये। फिर वे राणूदीदी और दुर्गाबाई के साथ पवनपुत्र हनुमान के मन्दिर में गये। वहाँ सारे मण्डप में समर्थगुरु के शिष्यों की भीड़ थी। उन्हीं के बीच समर्थ जी के पट्टशिष्य कल्याणस्वामी खड़े थे। सम्भाजी ने उन्हें भक्तिभाव से प्रणाम किया और बोले, "साधु महाराज की कृपा रहे।"

https://t.me/Sahityajunction

“जय जय रघुवीर समर्थ,” कहते हुए कल्याणस्वामी ने सम्भाजी को कन्धों से उठाया। राणूदीदी और दुर्गाबाई ने भी आँचल का छोर हाथ में पकड़कर उन्हें प्रणाम किया।

“युवराज, हम चरणामृत और प्रसाद पाकर अभी आते हैं। तब तक आप मठ के ओसारे में विश्राम करें।” कल्याणस्वामी ने ममता-भरे स्वर में कहा।

सम्भाजी ‘जी’ कहकर ओसारे की ओर चल पड़े। मण्डप में जितने भी शिष्य बैठे थे, वे युवराज को जी भर देख रहे थे।

ओसारे में बिछाये हुए बिछावन पर सम्भाजी बैठ गये। राणूदीदी और दुर्गाबाई समर्थगुरुजी की शिष्याओं के साथ मठ के भीतरी भाग में चली गयीं। थोड़ी देर बाद कल्याणस्वामी एक हाथ में प्रसाद-भरा दोना और दूसरे में चरणामृत की झारी लेकर ओसारे में आये। हँसते हुए वे सम्भाजी से कहने लगे, “लीजिए ‘श्री’ का प्रसाद!” सम्भाजी कुछ देर हिचकिचाये, फिर बोले, “पहले...पहले हम समर्थगुरुजी के दर्शन कर लें, फिर प्रसाद...”

शान्तिपूर्ण हास्य करते हुए कल्याणस्वामी ने उत्तर दिया, “गुरुदेव यहाँ दुर्ग में नहीं हैं। वे परिव्रज्या के लिए बाहर गये हुए हैं। आप प्रसाद लें...” उन्होंने भिगोई हुई दाल का प्रसाद युवराज की अंजलि में रख दिया। परन्तु युवराज को उसे खाने की सुध-बुध भी नहीं रही थी।

“प्रसाद पाइए न।” कल्याणस्वामी ने उन्हें स्मरण कराया। युवराज ने प्रसाद खा लिया और चरणामृत पी लिया।

उस रात युवराज ने मठ में भोजन नहीं किया। पता नहीं यह स्थान परिवर्तन के कारण हो अथवा अन्य कोई कारण रहा हो, परन्तु उन्हें उस रात नींद भी नहीं आयी। सारी रात करवटें बदलते ही बीती।

सम्भाजी सज्जनगढ़ के पत्थरों से बने मुँडेरे पर हथेलियाँ रखे रायगढ़ की ओर एकटक देख रहे थे। आँखें दुखने लगी थीं और हृदय व्यथित हो रहा था। उन्हें यहाँ आये एक सप्ताह बीत चुका था। व्याकुलता की अधिकता के कारण वे मुँडेरे से हट गये और चार सशस्त्र सैनिकों के साथ वहाँ अदब से खड़े क़िलेदार जिजोजी से कहने लगे, “क़िलेदार, रायगढ़ को ख़लीता भेजो। लिखो कि समर्थगुरुजी यहाँ नहीं हैं। हम अगले आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आदेश मिले।”

“जी,” जिजोजी ने युवराज की आज्ञा सुनी। सम्भाजी उसे साथ लिये गढ़ के सभागृह की ओर जाने लगे। वहाँ खड़े प्रहरी ने उन्हें मुजरा किया। जिजोजी ने लिपिक को बुलाने के लिए एक सैनिक को भेजा। कुछ देर में लिपिक आया और रायगढ़ भेजा जानेवाला ख़लीता लिखने लगा।

“छोटे मालिक, गोसाईं सदानन्दजी आपसे मिलना चाहते हैं। क्या उन्हें आने दें?” जिजोजी ने बैठक पर बैठे युवराज को सूचना देते हुए पूछा।

सुनते ही सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये। हथेलियाँ यूँ ही मसनद पर घूमने लगीं। फिर अत्यन्त धीरे से वे बोले, “ठीक है। आने दो।”

सदानन्द गोसाईं भीतर आये। मंगलश्लोक का उच्चारण करते हुए उन्होंने युवराज को नमस्कार किया। कन्धे पर लटक रही झोली को ठीक-ठाक करके और हाथ के टेके को हिलाते

https://t.me/Sahityajunction

हुए वे कहने लगे, “युवराज, हम एक विवाद आपके सम्मुख लेकर आये हैं।”

सम्भाजी मसनद छोड़कर आगे बढ़ आये। उस भगवी कफ़नी पहने गोसाईं को देखते हुए वे कहना चाहते थे—‘बाबाजी, शिकायतें तो हमारी भी बहुत-सी हैं, परन्तु हम किसके सामने पेश करें? एक न्याय-प्रार्थी दूसरे न्याय-प्रार्थी के विवाद में भला क्या निर्णय कर सकेगा?’ फिर भी उन्होंने अपने को सँभाला और गोसाईं को धीरज बँधाने की दृष्टि से कहने लगे, “हाँ, कहो।”

“हमारी इनाम की जागीर को दीवान के कार्यालय ने रद्द कर दिया है। हमारी इनाम की जागीर हमें वापस दिला दी जाय।” सदानन्द गोसाईं ने दृढ़ता से कहा।

शिकायत सुनते ही सम्भाजी को समर्थगुरु रामदास की याद आ गयी। एक ओर समर्थजी हैं, जो राज्याभिषेक उत्सव के निमन्त्रण को भी ठुकरा देते हैं और एक ओर ये हैं उनके शिष्य सदानन्द गोसाईं! गोसाईं को भी इनाम का लालच सताता है! अन्ततः सत्य यही है कि ऊँचाई में आकाश से भी केवल सागौन और अगुरु के गगनस्पर्शी वृक्ष ही होड़ ले सकते हैं। चरागाह की घास में वह सामर्थ्य कहाँ से आएगा? समर्थगुरु रामदास ही सच्चे गोसाईं हैं। समर्थगुरु के समान तो केवल समर्थगुरु ही हैं।

“किसने रद्द की है तुम्हारी इनाम की जागीर?” सम्भाजी ने अर्ज़ी पर विचार करना प्रारम्भ किया।

“सुरनीस अण्णाजी ने।” सदानन्द गोसाईं ने उत्तर दिया।

सुनते ही सम्भाजी उद्विग्न हो उठे। सोच रहे थे कि भाग्य भी कैसे-कैसे खेल दिखाया करता है। फिर भी अपने को सँभालकर धीरे से कह उठे, “वह बात तो उनके ही अधिकार के अन्तर्गत है। फिर भी हम तुम्हारी शिकायत उन तक पहुँचा देंगे। अब तुम जा सकते हो।”

सदानन्द गोसाईं श्लोक पाठ करते हुए सभागृह से चले गये। सम्भाजी ने लिपिक को आदेश दिया, “एक और ख़लीता लिखो—सुरनीस अण्णाजी को। लिखो कि सदानन्द गोसाईं की इनाम की जागीर वर्तमान में रद्द कर दी गयी है। उस मामले में हमारा कुछ अधिकार नहीं है। तुम जैसा उचित समझो, मामले को सुलझा दो।”

दोनों ख़लीते तैयार हो गये। सम्भाजी ने उन पर अपने हस्ताक्षरों की मुहर लगायी। एक हरकारा ख़लीते लेकर रायगढ़ को निकल पड़ा। आज सभागृह की बैठक से उठते समय सम्भाजी का मन निरन्तर ही अनुभव कर रहा था—‘आज हमने सदानन्द गोसाईं के मामले में सुरनीस अण्णाजी को जो पत्र लिखा है, उसे पढ़कर स्वयं अण्णाजी भी समझ जाएँगे कि यह भाषा किसी युवराज की नहीं हैं, यह तो कार्यालयों की सामान्य भाषा है। इस भाषा में ‘राजापन’ नहीं है। सच है, आजकल हम ‘राजा’ नहीं, केवल कार्यालयीन अधिकारी मात्र रह गये हैं।’

पौष मास का शुक्ल पक्ष था। आकाश में कलानिधि चन्द्रमा एक-एक कला से बढ़ रहा था। सज्जनगढ़ में मनुष्यों की कमी न थी, परन्तु इनके बीच रहकर भी सम्भाजी शरीर से और मन से भी अकेले रह गये थे। उनके मन में एक विचार—केवल एक ही विचार घुस बैठा था—हमें इस गढ़ को छोड़ना है। पर जाएँ कहाँ? फिर शृंगारपूर में जाएँ? छिः! उससे अच्छा है, कहीं भी भटकते हुए निकल पड़ें।

https://t.me/Sahityajunction

एक दिन सायंकाल को वे भगवान के दर्शन करके अपने कक्ष की ओर लौट रहे थे। साथ में जिजोजी और कुछ सैनिक थे। वे समर्थगुरु के मठ के सामने आये। सूर्य अस्त हो रहा था। अकस्मात् सम्भाजी रुक गये—जैसे पाँव में किसी ने बेड़ियाँ पहना दी हों। 'काँव-काँव-काँव'—मठ के सामने पत्थर के चबूतरे के बीचोंबीच जो पीपल का वृक्ष था, उस पर अनगिनत कौवे जमा थे। क्षणभर को सम्भाजी ने अनुभव किया कि उनका मन भी एक हरा-भरा पीपल का वृक्ष बन गया है। उस मन-तरु पर काले-कलूटे, कर्कश ध्वनि से चीखनेवाले अनगिनत कौवे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं—'छोड़ दो यह गढ़। निकल भागो यहाँ से। कहाँ जाएँ?...कहीं भी जाओ। लव और कुश ने अश्वमेध के अश्व को रोका, वे राजपूत थे—इसी बल पर न। उनका जन्म इसलिए नहीं हुआ था कि वे जंगलों में मारे-मारे फिरें। हम भी जाएँगे—चाहे जहाँ निकल जाएँगे।' सम्भाजी बौराये-से हतबुद्धि-से होकर देख रहे थे। पीपल के वृक्ष पर कौवों ने धावा बोल दिया था।

बाहर पूरी तरह अँधेरा छा जाने पर युवराज अपने कक्ष में लौट आये। दीवटों से सारा भीतरी कक्ष प्रकाशित हो उठा था। वे बेचैन से इधर-उधर चहलकदमी करने लगे। कुछ देर बाद एक प्रहरी भीतर आया और कहने लगा, "मठ के गोसाईंजी आये हैं।"

सम्भाजी रुक गये और कहा, "आने दो उन्हें।"

गोसाईं कल्याणस्वामी का एक शिष्य भीतर आया। वह स्वामीजी का एक सन्देश देने आया था। बोला, "स्वामीजी महाराज ने युवराज को सन्देश भिजवाया है।"

"कहो!"

"कहा है कि दो दिनों बाद एक शुभ योग है। इस शुभ मुहूर्त में कृष्णा और वेण्णा नदियों के संगम में स्नान करके दानधर्म करना बहुत पुण्यकार्य है।"

आज युवराज को सामने खड़े उस गोसाईं-शिष्य की आवाज़ भी उन काले पक्षियों की-सी प्रतीत हो रही थी! 'पर्व! शुभयोग!' इसी गूँज में उनकी अपनी आवाज़ भी मिलती जा रही थी—'हमें इस गढ़ को छोड़ना है। कहीं भी भटकते हुए निकल जाएँगे।' मन के भीतर कोलाहल मच रहा था, फिर भी युवराज ने बाहर से शान्त रूप धारण करके कहा, "ठीक है, स्वामीजी महाराज से कहो, हम इस शुभ योग से अवश्य लाभ उठाएँगे।"

शिष्य सन्तुष्ट होकर चला गया। परन्तु वह जाते समय सम्भाजी के मन-मन्दिर में ज़ोर-ज़ोर का घण्टानाद गुँजा गया। वे हाथ पीठ पर बाँधे घायल बाघ के समान कमरे में ही चक्कर लगाने लगे। उनके जीवन-पट पर उनके अपने ही अनेक रूप काली-साँवली छायाएँ बनकर मँडराने लगे। गुत्थियाँ, विवशता, असह्य कष्ट और मन की उलझनों के तीव्र सुर आपस में मिलने लगे। मन की भावनाएँ पटा, तेग-तलवार, बरछे-भाले बन गयीं और आपस में टकराने लगीं। इस भीड़-भड़क्के में उनका 'युवराज' पैरों तले रौंदा जाने लगा :

'जिस दिन हमारी बड़ी आऊसाहिबा स्वर्ग सिधारीं, उसी दिन हमारा 'युवराजपन' अनाथ हो गया। हमारी माँजी महारानी बन गयीं और उनकी आँखों में हमारा युवराज-पद खटकने लगा। उन्हीं की करनी का फल यह हुआ कि हमें भरे दरबार में एक अभियुक्त बनकर खड़ा होना पड़ा। एक सौभाग्यवती ब्राह्मणी की आत्महत्या का पाप हमारे सिर पर मढ़ा गया। इन्हीं माँजी ने यह हृदय-विदारक आरोप भी हमारे माथे जड़ दिया कि हमने ही अपने महाराज साहब को विष दिया

https://t.me/Sahityajunction

है। उन्होंने हमें भाई राजाराम से अलग करने में कोई कसर न उठा रखी। जब महाराज कर्नाटक की मुहिम पर निकले थे, उस समय हमें रायगढ़ से उठाकर शृंगारपूर में ला पटकने की ज़िद भी इन्हीं माँजी की ही तो थी। हमने ग़रीब किसानों का लगान माफ़ कर दिया, इन्हीं माँजी ने अण्णाजी को खिलौना बनाकर इस बात का बतंगड़ बना दिया और उसका बिलकुल बेतुका अर्थ महाराज को बताया। हमने कलशाभिषेक किया था किस अर्थ से—और उसका कैसा अनर्थ बनाकर कर्नाटक पहुँचाया गया? कैसा विचित्र—बीभत्स हो गया है यह सब!

'आज तक क्या-क्या नहीं कर दिखाया हमने? मिर्ज़ा राजा की छावनी में ज़ामिन बनकर रहे? शहज़ादे मुअज़्ज़म से मिलने औरंगाबाद तक गये, आगरा में महाराज के क़दमों पर क़दम रखकर सिर ऊँचा तानकर दरबार से बाहर आ गये, बड़ों के साथ बदन में कफ़नी पहनकर भटकते फिरे! आज क्या फल मिला है इन सबका हमें?

'आबासाहब कर्नाटक की विजय के पश्चात् शृंगारपूर नहीं आये, भरी गोद की अपनी प्यारी बहू को दर्शन देने की अथवा आशीर्वाद देने की भी आवश्यकता उन्हें अनुभव नहीं हुई, शायद इसका कारण हम ही हैं। दादाजी के रूप में भवानीबाई को प्यार करने की इच्छा उनके मन में अवश्य उत्पन्न हुई होगी पर इसे भी उन्होंने रोक लिया, शायद हमारे कारण ही। रायगढ़ की सयानी महारानी साहिबा और सुरनीस अण्णाजी ने उनके मन में यह सन्देह उत्पन्न करवा दिया कि हम राज्यपद के लोभी हैं और आबासाहब ने हमें भेज दिया सज्जनगढ़ के मठ की ओर।

'क्या आबासाहब हमारा मुँह नहीं देखना चाहते? यदि ऐसा है, तो फिर ये युवराजपद के वस्त्र भी हमारे लिए भारभूत ही हैं। क्यों ढोये फिरें इन वस्त्रों को हम? आख़िर कितने दिनों तक यह सहन करते रहें? क्यों सहन करें?' उनके हृदय में गहरी टीस उठी और वे पलँग पर बैठ गये। उन्हें लगने लगा कि जैसे अब सिर फट जाएगा। दोनों हाथों से सिर को कसकर दबाते हुए उन्होंने आँखें मींच लीं।

'घन—घन—घन' अकस्मात् पाचाड़ का घण्टानाद उनके मस्तिष्क में बज उठा। उन्हें दिखाई देने लगी—एक अँगुलिमात्र आकृति सभागृह के चबूतरे पर खड़ी है—देखते-ही-देखते वह आकृति ऊँची-ऊँची होती गयी और कई बित्ते ऊँची होकर रायगढ़ की मीनारों के जितनी ऊँची हो गयी। ये थीं बड़ी आऊसाहिबा, जिजाऊ—बड़े प्यार भरे स्वर में वे पुकार रही थीं—'शम्भू बेटे।' केतकी वर्ण का एक काँपता-थरथराता हाथ उनकी पीठ थपथपाने को आगे बढ़ता आ रहा था। इस हाथ को देखते ही युवराज की पूरी देह में बिजली-सी दौड़ गयी। सारी देह जैसे ऐंठ गयी। पसीने से नहा उठी। सारी अनुभूति जब असह्य हो उठी, तो आसमन्त फैली शून्यता में वे पुकार उठे, "बड़ी आऊसाहिबा?" इस पुकार से और भय के कारण उनकी आँखें खुल गयीं। उन्हें आभास हुआ—कक्ष में फैला हुआ मन्द प्रकाश भी शायद उनकी हँसी उड़ा रहा है। व्याकुल होकर वे पलँग से उठ खड़े हुए। उनके मन को उनके मन ने ही दाँव-पेंचों में उलझा रखा था—इस पकड़ से वे निकलते तो कैसे?

"बड़ी आऊसाहिबा, तुम्हारे जाने के बाद इस जीवन में यदि कुछ जमा-पूँजी बची है, तो वह है युवराज्ञी येसू!" उनके होठों से शब्द निकले। आँखें देखने लगीं कि येसूबाई पलँग पर लेटी हुई हैं, पास ही बालिका सोयी हुई है। वे आँखें मींचकर कह रही थीं—'भावेश्वरी की कृपा से सब ठीक-ठाक हो जाएगा।'

https://t.me/Sahityajunction

युवराज का उफनता हुआ मन इस बात का उत्तर देने लगा—'होली के त्यौहार के दिन हमने जलती होली में हाथ डालकर सम्मानवाला श्रीफल बाहर खींच निकाला, परन्तु तुम्हारा मुखड़ा देखते ही हम हाथ की जलन भी भूल गये थे। परन्तु आज हमारा यह अभिमानी मन ही वेदनाओं की होली में झुलसा जा रहा है। हमारा जी नहीं चाहता कि कोई इसे बाहर खींच निकाले। इस देह ने कई ठोकरें खायी हैं, कई आघात सहन किये हैं, बिना किसी कारण के, बिना किसी अपराध के। जी चाहता है—अब यह अपना मुँह किसी को भी न दिखाएँ। हाँ युवराज्ञी—तुम्हें भी यह मुँह दिखाने की इच्छा नहीं है आज।'

सम्भाजी को येसूबाई की याद आयी और उनके साथ बातें करते हुए 'चोरी की कोंछ भराई' शब्द याद आया। हरे रंग की चोली, चुपके-चुपके! हरा पीपल का वृक्ष! इसके साथ ही उनके मन में एक विचित्र—अपरिचित हरा-सा विचार चक्कर लगा गया। जैसे कपड़े का जलता गोला कहीं से उड़ता हुआ आये और बारूद के कोठार पर आ गिरे, इसी प्रकार कहीं छिपी हुई हरे रंग की एक थैली-बन्दों से बँधा एक हरा ख़लीता, उनके सुलगते हुए मन के निकट आ गया। जैसे साँप रेंगता हुआ बाँबी से बाहर निकले, उसी प्रकार उस थैली में से एक ख़लीता बाहर निकल आया—वह हरा साँप फुफकार कर कहने लगा :

'मशहुरल अनाम, दाम दौलतहु, जंगे बहादुर शहज़ादा शम्भू—हम अमुक मुक़ाम पर अगवानी करने के लिए तुम्हारी बाट देख रहे हैं!' इस फुफकार को सुनते ही क्षणभर के लिए सम्भाजी का रोम-रोम काँप उठा। गला सूख गया, आँखों के आगे तारे चमकने लगे। वे लपकते हुए चौकी के पास पहुँचे और गड़ुआ उठाकर गटागट पानी पी गये। तौलिये से माथे पर आया पसीना पोंछा। फिर वे याद करने का प्रयत्न करने लगे—कैसा दिखता है वह दिलेरख़ाँ! उन्होंने उसे बचपन में केवल एक बार मिर्ज़ा राजा जयसिंह की छावनी में देखा था। इस समय सम्भाजी के मुख का रूप दूसरा ही हो गया था—मन की धार भोथरी हो चुकी थी।

'अब सारे सहारे टूट चुके हैं। बची-खुची डोरियों को हम काट फेंकनेवाले हैं। स्वयं अपने हाथों से—हाँ!' वे अपने आपको समझाते हुए गुनगुना रहे थे—'हाँ, हमने दिलेर ख़ाँ पठान के दल से जा मिलने का निश्चय कर लिया है! वहाँ हम न किसी के पुत्र होंगे, न पति, न भाई और न ही युवराज! वहाँ हम होंगे अपनी भुजाओं के बल पर अपना पराक्रम दिखलानेवाले सम्भाजी भोसले।'

गद्दे पर झुककर युवराज सम्भाजी भोसले मुगल सिपहसालार दिलेर ख़ाँ को अपने हाथ से पत्र लिखने लगे : 'मशहुरल अनाम, दामदौलतहु, लश्करे-सालार दिलेर ख़ाँ सूबे-दक्खन के प्रति राजमान्य राजश्री सम्भाजी भोसले यह सूचित करते हैं कि तीर्थ क्षेत्र माहुली से कूच करके हम स्वयं आपसे मुलाकात के लिए आ रहे हैं। पूरे सरंजाम के साथ हमारी अगवानी की जाय और हमारा सम्मान किया जाय। बाक़ी बातें मुलाकात के समय होंगी। तुम्हें मालूम रहे।'

बाहर सज्जनगढ़ के पहरेदार पुकार लगा-लगाकर सबको होशियार रहने का इशारा कर रहे थे—'पहरेदार होऽशियार।' मठ में, मण्डप में समर्थगुरु के शिष्यगण सोने से पूर्व सम्मिलित रूप से कविता पाठ कर रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

पौष शुद्ध दशमी का दिन निकला। यह दिन था शुक्ल पक्ष का, परन्तु मराठा साम्राज्य के इतिहास का वह सबसे काला दिन था।

सम्भाजी द्वारा चुने हुए दो सौ सशस्त्र सैनिक उस दिन सुवर्ण-होनों से भरे पिटारे लेकर सज्जनगढ़ से नीचे उतरे।

सम्भाजी ने आज अपनी युवराजवाली वेशभूषा उतार दी थी और सादे वस्त्र धारण कर लिये थे। कौड़ियों की माला पहनी जाय या नहीं, इस दुविधा में वे बहुत देर तक माला को हाथ में ही मसलते रहे। "कहीं भी क्यों न रहें, आख़िर हम हैं तो भोसले ही। अब माँ भवानी के अतिरिक्त हमारा रखवाला कौन है?" धीरे से कहते हुए उन्होंने वह भवानी माला गले में पहन ली।

"सुना है कि तुम कृष्णा-वेण्णा के संगम में स्नान करने तीर्थ माहुली को जा रहे हो?" राणूदीदी की आवाज़ से सम्भाजी की तन्द्रा टूटी।

वे बोले, "जी हाँ!"

"हम भी आना चाहती हैं संगम में स्नान करने।" राणूदीदी ने हँसकर अपनी इच्छा प्रकट की।

सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये। वे दीदी की ओर देखते ही रह गये। सोचने लगे कि क्या उत्तर दिया जाय। कुछ देर बाद निश्चयपूर्ण स्वर में कहने लगे, "जैसी आपकी इच्छा। हम डोली रखने को कहते हैं। आप तैयार हो जाएँ।"

"हम अकेली ही नहीं आनेवाली हैं। दुर्गाबाई भी हमारे साथ हैं।" राणूदीदी अतिशय प्रसन्न होकर कह रही थीं।

"जैसी आपकी इच्छा," सम्भाजी और कहते भी क्या!

डोली लायी गयी। सम्भाजी ने मठ में जाकर हनुमान जी के दर्शन किये। फिर कल्याणस्वामी के चरणों में प्रणाम करके बोले, "आपकी कृपा हो!"

"जय जय रघुवीर समर्थ!" कल्याणस्वामी ने उन्हें ऊपर उठाया और उन्हें भगवान का चरणामृत दिया।

सम्भाजी ने एक बार रायगढ़ की दिशा में दूर तक भयभीत दृष्टि दौड़ायी। मठ के सामने के पीपल के वृक्ष को एक बार देखा और कहारों को वह डोली उठाने का इशारा किया, जिसमें राणूदीदी और दुर्गाबाई बैठी थीं। डोली सम्भा जी के आगे थी और जिजोजी काटकर तथा उसका सैनिकदल पीछे-पीछे आ रहा था। सब लोग समर्थगुरु रामदास के सज्जनगढ़ की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। आज सम्भाजी एक-एक पत्थर की सीढ़ी नीचे नहीं उतर रहे थे, बल्कि जीवन की भी एक-एक सीढ़ी उतर रहे थे। हर उतरते कदम के साथ-साथ भीतर से कोई कहता था—'आगे जाऊँ या लौट जाऊँ? लौट जाऊँ, पर किसलिए? क्या बचा है पीछे, जो लौटा जाय?'

'हम पठानों के दल से जा मिले हैं, यह जानकर आबासाहब पर क्या बीतेगी? छिः-छिः—यह भाग जाना ठीक नहीं। पर लौटने के बाद क्या करें? शृंगारपूर जाकर पिलाजी के पाहुने बनकर सोया करें? या फिर पण्डितों की संगत में बैठकर काव्य पर वादविवाद किया करें? छिःऽ अब यह सब नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता। हमने जो भी ठान लिया है, वह पत्थर की लकीर है।

'हम शत्रु से जा मिले हैं, यह सुनकर सारा मराठा साम्राज्य दहल जाएगा। बस चैन की बंसी बजाएँगे तो केवल दो लोग—एक तो साम्राज्य की चतुर अनुभवी महारानीजी और दूसरे अक़्ल

https://t.me/Sahityajunction

के धनी, ईमानदार चाकर सुरनीस अण्णाजी।

'परन्तु हमारा यह सोचना भी ग़लत है कि हमारे जाने से मराठा साम्राज्य दहल उठेगा! प्रजा चाहती है राजा, केवल एक राजा। आबासाहब न रहेंगे, तो राजाराम राजा बन जाएँगे। हम...हम अपना राज्य बनाएँगे, शम्भू का राज्य बनाएँगे, इन बाहुओं के बल पर। उस राज्य में कोई न होगा, जो हमें रोक-टोक सकेगा। आबासाहब का भी अपना राज्य कहाँ था? हम भी उन्हीं के तो पुत्र हैं। अब हमारे लिए दिलेर ख़ाँ से साँठ-गाँठ करने के सिवा और कोई रास्ता नहीं। हम जानते हैं, यह काँटों से भरा रास्ता है, पर रुके हुए बन्द रास्तों से यह रास्ता क्या अच्छा नहीं है?

'हमारे जाने से युवराज्ञी क्या सोचेंगी? हमारे नाम से माथे पर कुंकुम-टीका लगाते समय उन्हें लज्जा आएगी। हाँ, अवश्य ही वे लज्जित होंगी। पर वे क्या जानें कि 'नाम का युवराज' बनकर व्यर्थ ही राजटोप सिर पर ढोये फिरने में कितना कष्ट है? उनके उस कुंकुम के टीके से वह टोप हज़ार गुना अधिक दाहक है। आज हमें रोक लेने की शक्ति केवल एक ही व्यक्ति में थी—हमारी बड़ी आऊसाहिबा में। पर...पर यह भी सोचना व्यर्थ है, क्योंकि यदि वे आज होतीं तो हम पर यह नौबत ही न आती।

'आबासाहब, आज हमारा मन पहली बार ही यह प्रश्न पूछना चाहता है। यदि हमारी जगह आप होते तो? महारानी सोयराबाई जैसी एक नारी आपकी माँजी होतीं तो? आप साफ-साफ उनके मुँह पर कह देते कि 'आप महारानी हैं, तो हम भी युवराज हैं। कल के होनेवाले राजा हैं। ज़रा अदब से बातें कीजिए!'

'दौड़ती हुई नदी पीछे छूटनेवाले घाटों और कगारों से बिछोह का दुःख नहीं मनाया करती। मार्ग में आनेवाली घाटियों और कगारों से भयभीत होने से उसका काम नहीं चलता। अब हमें सहारा है तो हमारी कमर में बँधी तलवार का, या फिर अपनी धमनियों में बह रहे गर्म ख़ून का। हम राजा के सपूत हैं, किसी की छाया में, आसरे में रहकर, लाचार होकर पलने के लिए नहीं जन्मे हैं हम। आबासाहब भी हमारे दादाजी से दूर ही रहते थे। दादाजी कर्नाटक में थे, और आबासाहब पुणे में। हम भी अपने आबासाहब से दूर जाएँगे—परन्तु क्या हम आबासाहब से कभी दूर जा सकते हैं? नहीं, नहीं, हम चाहे जहाँ रहें, उन्हें कभी न भुला पाएँगे।...मगर...मगर इस राज्य में नहीं रह पाएँगे। बस अब जाना ही है। जिधर को मुँह घूम जाएगा, उधर ही आगे बढ़ते जाना है। मथुरा में आबासाहब हमें पीछे छोड़ आये थे, आज हम उन्हें पीछे छोड़ जाएँगे। राजनीति के एक दाँव के रूप में आबासाहब ने राजगढ़ में यह अफ़वाह फैलायी थी कि 'बालशम्भू को काल ने छीन लिया।' यही नहीं, उस अफ़वाह को लोग सच समझें, इस कारण हमारे मृतककर्म भी पूरे किये गये। आज हम स्वयं ही इस बात का उत्तर दे रहे हैं—आबासाहब, हम सचमुच ही मौत का शिकार बन चुके हैं, यह मानकर आप अब सचमुच ही हमारे मृतककर्म मनाइए। भूल जाइए कि हम आपके पुत्र हैं। हम यह कोई राजनीति की बात नहीं कह रहे, मन की पूरी सच्चाई से कह रहे हैं—आज हमारे पाँव यदि पीछे लौटना चाहते हैं, तो बस, अरी धाराऊ माँ; तेरे कारण ही। तूने हमें आज तक दिल का सच्चा प्यार ही बाँटा है, केवल भोली ममता-भरा प्यार। आज हम अगर बेईमानी कर रहे हैं, तो केवल तेरे साथ। पर हम भी क्या करें धाराऊ? दूध तो तेरा पिया है हमने, पर ख़ून तो भोसले कुल का है। आज 'भोसले' का ख़ून जीत गया, तेरे 'गाडे' कुल के दूध की हार हो गयी। माया-ममता-भरा हृदय पराजित हो गया, अभिमानी मन

https://t.me/Sahityajunction

जीत गया है। आज एक ही बात मन में आ रही है—काश, हम भी रायाजी और अन्तोजी के समान तेरी ही कोख से जन्म लेते! अगर ऐसा होता, तो हम अवश्य ही एक खरा मावला-सैनिक बनकर आबासाहब की हर कसौटी पर खरे उतरते। यदि हो सके, तो धाराऊ, तू इस शम्भू भोसले की बेईमानी को अपने कुनबी आँचल में समा लेना।'

सज्जनगढ़ की हर सीढ़ी उतरते समय सम्भाजी के मन की दुर्दशा ऐसी थी, जैसे दौड़ते हुए घोड़े के पैरों से बँधे हुए किसी दण्डित क़ैदी की होती है। गढ़ की तलभूमि पर पहुँचकर उन्होंने सज्जनगढ़ के गगनचुम्बी शिखर को एक बार सिर उठाकर देखा। माथे पर झलक आये पसीने को वस्त्र से पोंछा।

"चलो," कहारों को आदेश दिया गया। दल चल पड़ा। पौष मास की धूप काफी तेज़ हो गयी थी।

कृष्णा और वेण्णा नदियों के संगम पर बसा तीर्थक्षेत्र माहुली आ गया। पत्थर से बनी सीढ़ियों वाले विशाल घाटों पर यात्रियों की भीड़ लगी थी। एक विशाल डौलदार वृक्ष के नीचे लगाये गये डेरे में दल ठहर गया। घाटों में समाचार फैल गया कि युवराज स्नान के लिए पधारे हैं। लोगों ने घाट का उत्तरी भाग राजकुल के लिए स्वयमेव खाली कर दिया। जिजोजी ने एक तरफ परदे लगाकर स्त्रियों के स्नान की व्यवस्था की थी।

सम्भाजी ने अपने वस्त्र और राजटोप उतारा तथा जाँघिया पहन लिया। बदन को छिपाने के लिए वे एक शॉल लपेटकर डेरे के बाहर आये और घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगे। उनकी अस्थायी सेना के मावले-सैनिक उनसे पहले ही वहाँ पहुँचे खड़े थे, वे मुजरे करने लगे।

सम्भाजी पानी में डूबी पहली सीढ़ी तक आये और उन्होंने शॉल उतारकर दूर फेंक दी। पौष मास की धूप में उनका सुडौल, सुनहरा बदन क्षण-भर को चमक उठा। घाट पर आये सभी लोग इस दृश्य को एकटक निहार रहे थे। अगले ही क्षण वह सुनहरा बदन कृष्णा-वेण्णा के श्वेत-नील जल में घुस गया। युवराज तैर रहे थे। जल का स्पर्श पाते ही उनके मन के विचारों की आँधी भी थोड़ी देर के लिए थम गयी। तेज़ी से हाथ चलाते हुए युवराज ने नदी में दो गोल चक्कर लगा लिये।

उधर बन्द स्नानगृह में राणूदीदी और दुर्गाबाई ने भी स्नान कर लिया था। सम्भाजी संगम से बाहर आये। भीगे बदन ही एक बार उन्होंने सूर्यदेव के दर्शन किये, फिर शॉल लपेटी और एक पग में दो-दो सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वे फिर डेरे में आ गये। शरीर पोंछकर पुनः राजसी वेशभूषा पहन ली।

राणूदीदी और दुर्गाबाई ने हल्दी-कुंकुम से कृष्णा और वेण्णा नदियों की पूजा की तथा नवीन चोली-वस्त्र और श्रीफल द्वारा नदी माता की कोंछ भरी। फिर वे भी डेरे में लौट आयीं।

जिजोजी ने डेरे के सामने ही युवराज के लिए एक बैठक बना रखी थी। दान देने की वस्तुएँ, मुहरें, धान्य, वस्त्रादि से भरे कई थाल निकट ही रखे हुए थे। युवराज डेरे से बाहर निकले। उनके साथ-साथ दीदी और दुर्गाबाई भी बाहर आयीं और अलग बनायी हुई बैठक पर बैठीं। युवराज के आसन पर बैठते ही दान-विधि प्रारम्भ हुई।

युवराज शान्त और सन्तुष्ट भाव से हँसकर सब को दान दे रहे थे। भट, भिक्षुक, गोसाईं, बैरागी, पिंगले, वासुदेव आदि विविध जाति-सम्प्रदायों के याचकगण दान पाकर युवराज को जी

https://t.me/Sahityajunction

भर आशीर्वाद दे रहे थे। राजपरिवार की स्त्रियों ने वहाँ एकत्रित स्त्रियों को नवीन चोली-वस्त्र तथा श्रीफलों का दान किया।

"जिजोजी, घाट में चक्कर लगाओ। देखो कि कहीं कोई दान पाने वाला रह तो नहीं गया," सम्भाजी ने क़िलेदार से कहा।

"जी," कहकर जिजोजी घाट का चक्कर मारने चला गया। इतने में सम्भाजी ने अपने चुने हुए सैनिकों के नायक को बुलाया और ऐसी आज्ञा दी, जिसका उद्देश्य कोई भी समझ न सका, "अपने सारे घोड़े नावों में चढ़ाकर नदी पार ले जाओ। पिटारे और सारी अस्थायी सेना को भी उस पार ले जाओ। जल्दी करो ऽऽ!"

"जी," नायक ने झुककर मुजरा किया और आज्ञापालन के लिए चल पड़ा।

"चार गोसाईं शेष रहे हैं। पर वे कहते हैं कि हम तो गोसाईं हैं, हमें दान नहीं चाहिए। देना ही तो, तो सीधा दे दो।" जिजोजी ने घाट का वृत्तान्त कह सुनाया।

"ठीक है, सीधा दिलवा दो।" सम्भाजी बैठक से उठे। वे घाट पर आये और वहाँ नदी पार करती हुई नौकाओं को देखने लगे। अन्त में भली प्रकार जाँच कर ली कि सारी अस्थायी सेना, घोड़े और सामान-भरे पिटारे नदी पार पहुँच गये हैं। अब इस पार केवल वे चार-पाँच नौकाएँ डोलती-हिलती खड़ी थीं, जो राजपरिवार के लिए सुरक्षित थीं।

फिर सम्भाजी डेरे में आये और राणूदीदी से बोले, "दीदी, ज़रा संगम तक आओगी क्या?"

"चलो," राणूदीदी कह बैठीं। उन्हें कुछ अनुमान नहीं था।

सम्भाजी राणूदीदी और दुर्गाबाई सहित घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगे। उनके पीछे-पीछे क़िलेदार जिजोजी भी अदब से चला तो जा रहा था, पर उसका मन इसी झमेले में अटका हुआ था कि 'न जाने यह सेना उस पार क्यों ले जायी गयी है?' सब लोग संगम के किनारे तक आये। मल्लाहों ने युवराज को नौका में खड़े होकर ही मुजरे किये, परन्तु आज सम्भाजी का ध्यान उस ओर नहीं था।

सम्भाजी राणूदीदी के चरण छूने लगे। राणूदीदी कुछ भी समझ न सकीं कि यह प्रणाम क्योंकर किया जा रहा है।

सम्भाजी भर्रायी हुई आवाज़ में जैसे-तैसे कहने लगे, "दीदी, अब हम जा रहे हैं। आप 'श्रीमतीजी' को लेकर सज्जनगढ़ लौट जाइए।"

"क्या मतलब?" दीदी ने चौंककर पूछा।

"हमने...हमने दिलेर ख़ाँ पठान के दल से मिल जाने का फैसला कर लिया है।" उत्तर क्या था, गोली-सी छूटी थी।

"शम्भू भैया।" राणूदीदी ऐसे चीख उठीं, जैसे शरीर पर बिजली गिर पड़ी हो। बात सुनकर जिजोजी की आँखों के सामने भरी दुपहरी में भी अँधेरा छा गया। आज शायद दुर्गाबाई ने भी पहली बार ही सिर ऊपर उठाकर चुभती नज़र से अपने 'श्रीमान्‌जी' की ओर देखा। उनकी तनी हुई गरदन और भेदती दृष्टि सम्भाजी से स्पष्टीकरण चाह रही थी।

हवा के तेज़ झोंके से राणूदीदी के सिर का आँचल भी उड़ गया था, पर उन्हें इसका भी होश नहीं था। अपने पीठ के (छोटे) भाई की ओर एकटक दृष्टि गड़ाकर देखते हुए उन्होंने पूछा,

https://t.me/Sahityajunction

“क्या...क्या कह रहे हो तुम? कुछ सोचा-विचारा भी है कि आबासाहब क्या कहेंगे?”

“जी, हमने सब सोच-समझ लिया है। अब हमसे किसी का कोई नाता-रिश्ता नहीं। हम रायगढ़ में, शृंगारपूर में या सज्जनगढ़ में, कहीं भी बँधे रहना नहीं चाहते। किसी के सामने कुछ पाने की आशा में हाथ फैलाना नहीं चाहते। अब हमारा निश्चय दृढ़ हो चुका है। आप लौटकर जा सकती हैं। और जाने से पहले यह भी सुन जाइए कि अगर आप कहें—‘तुम जैसा नालायक भाई होने से तो अच्छा था, हमारी पीठ पर कोई भाई पैदा ही न होता,’ यह सुनने के लिए भी हम तैयार हैं।”

राणूदीदी सम्भाजी की बातों को सुनकर स्तब्ध रह गयी थीं। सिर हिलाते हुए वे कहने लगीं, “शम्भू भैया, कैसी बातें करते हो? हमने आज तक तुम्हारा साथ दिया, वह क्या इसीलिए? जो कोई तुम्हारे रास्ते में रोड़े अटकाता है, उसे उठाकर दूर फेंकने की बजाय तुम पीठ दिखाकर भागे जा रहे हो? तुम्हारे भाग जाने से तो उनकी बन आएगी! कुछ सोचा भी है तुमने? यह भी सोचा है कि तुम्हारी इस गर्भवती पत्नी का तुम्हारे पीछे क्या बनेगा?” दुर्गाबाई की ओर संकेत करते हुए राणूदीदी ने पूछा।

“हमने सब सोच-समझ लिया है दीदी। अब किसकी बन आएगी या किसी का क्या हाल होगा, इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं। हम जा रहे हैं, अतः आप लौट जाइए।”

राणूदीदी की ओर पीठ फेरकर सम्भाजी लपककर नौका में जा चढ़े। मल्लाहों को आदेश दिया, “चलो।”

नौका संगम के जल की लहरों में डोलने लगी और नदी के जल में दो-चार हाथ भीतर तक चली गयी।

“शम्भू भैया, ज़रा ठहरो।” दीदी की भयपूर्ण पुकार सुनकर कृष्णा-वेण्णा को भी रोमांच हो आया। नौका क्षणभर के लिए उसी जगह खड़ी रही। सम्भाजी ने मल्लाहों को नौका वापस घुमाने का इशारा किया। नाव के किनारे पर पहुँचते ही सम्भाजी बोले, “क्या कहना है? जल्दी कहो। हमारे पास समय नहीं है।”

“हम...हम भी आती हैं तुम्हारे साथ।” ममता से आर्द्र, हृदय की वत्सलता में भीगे भर्राये बोल दीदी के मुख से प्रकट हुए।

दुर्गाबाई की छटपटाती दृष्टि भी अपने ‘सुहाग के सिन्दूर’ से यही प्रार्थना कर रही थी।

“आप? आप हमारे साथ चलेंगी? दीदी, हम भगवान का दर्शन करने नहीं जा रहे। क्यों व्यर्थ ही अपने पैरों में बेड़ियाँ डाल रही हो?”

“शम्भू भैया, हम चाहे अपने आप को भी भुला दें, परन्तु अब हम तुम्हें अकेला नहीं छोड़ेंगी। हमने भी दृढ़ निश्चय कर लिया है कि तुम कहीं भी रहो, हम वहीं रहकर तुम्हारा सम्बल बनकर रहेंगी। तुम हमें भी साथ ले चलो। आज तक हमने तुमसे कुछ माँगा नहीं, परन्तु आज माँ भवानी की सौगन्ध देकर यह माँग रही हैं। हमें भी साथ ले चलो।”

सम्भाजी बेसुध-से हो गये थे। बस स्थिर दृष्टि से दीदी को एकटक देखे जा रहे थे। यह ऐसी स्थिति थी, जहाँ पहुँचकर वाणी मूक हो जाती है, शब्द लँगड़े हो जाते हैं।

“ठीक है, जैसी आपकी इच्छा। चलिए।” सम्भाजी नाव से उतर पड़े और उन्होंने हाथ का

https://t.me/Sahityajunction

सहारा देकर दीदी को नाव में चढ़ा लिया। उसके बाद दुर्गाबाई को भी सम्भाजी ने हाथ का सहारा देकर नाव में चढ़ा लिया। फिर सम्भाजी स्वयं नाव में सवार हो गये। घाट सूना-रीता हो गया।

"ना, ना, छोटे मालिक, ऐसा उल्टा-सीधा मत करो।" छत्रपति के स्वामिभक्त सेवक जिजोजी से रहा न गया। वह अन्तस्तल की पूरी गहराई से बड़ी व्याकुलता से प्रार्थना करने लगा।

"क़िलेदार, घाट का सारा सामान सज्जनगढ़ पहुँचा दो।"

"मालिक...छोटे-मालिक..."

"जो आदेश दिया गया है, उसका पालन करो। अपने महाराज से कहना—अब हम लौटेंगे, तो इस सह्याद्रि पर्वत शृंखला को जीतने के लिए ही।" उस भटके-बौराये समय में सम्भाजी के मुख से तेजाब के-से जलते बोल निकले और कृष्णा-वेण्णा के पवित्र जल पर टपक पड़े। नौका बढ़ी जा रही थी अज्ञात दिशा में—अज्ञात भविष्य की ओर। नौका के चलने से पानी में थोड़ी खलबली मच रही थी और जिजोजी पानी में उठनेवाले उन गोल-गोल चक्करों को शून्य दृष्टि से देखता, जड़ बना हुआ खड़ा था।

नाव दूसरे पार पहुँची। वहाँ नायक ने तीन उम्दा घोड़े तैयार रखे थे। सम्भाजी, राणूदीदी और दुर्गाबाई घोड़ों पर सवार हो गये। मराठा युवराज सम्भाजी भोसले का काफ़िला चल दिया—मुग़ल-छावनी की मंज़िल की ओर। लो चल दी भगवी 'ज़री पताका' हरे रंग का आसरा पाने! 'शिव' का पुत्र चल दिया 'अशिव' का आलिंगन करने। अकेला नहीं जा रहा है वह—छत्रपति शिवाजी महाराज की पुत्री को और उनकी गर्भवती पुत्रवधू को भी साथ लिये जा रहा है।

आज युवराज सम्भाजी भोसले छत्रपति शिवाजी महाराज के लिए 'पराये' हो गये।

वे स्वयं आज सही अर्थों में पूर्णतः 'अनाथ' बन गये।

https://t.me/Sahityajunction

छह

मार्ग में सबसे पहली मुग़ल फ़ौजी छावनी 'सुपे' नामक स्थान पर थी। सम्भाजी का दल इस छावनी को छोड़कर धूप और पसीने में नहाता हुआ पेडगाँव-बहादुरगढ़ की दिशा में बढ़ा जा रहा था। सम्भाजी ने एक हरकारा पठान सेनापति दिलेर ख़ाँ की ओर रवाना कर दिया था। उस समय दिलेर ख़ाँ बहादुरगढ़ में छावनी डाले पड़ा था।

दिलेर ख़ाँ ने इख़लास ख़ाँ मियाला और ख़ैरत ख़ाँ नामक अपने दो सरदारों को तीन हज़ार घुड़सवारों के साथ भेजा था कि वे सम्भाजी को लिवा लाएँ। सुपे और पेडगाँव के रास्ते में कहीं पर इख़लास ख़ाँ और सम्भाजी की भेंट हुई और फिर यह मावली और मुग़ली मिली-जुली सेना पेडगाँव की ओर चल पड़ी।

दिलेर ख़ाँ पूरे सरंजाम के साथ पेडगाँव के नगरद्वार पर सम्भाजी की राह देखता खड़ा था। बहुत बरस पहले जब सम्भाजी अभी बालक ही थे, मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने शिवाजी महाराज को सन्धि करने के लिए विवश कर दिया था। इसी सन्धि में शिवाजी ने मुग़ल-बादशाह को कई क़िले वापस लौटा दिये थे। इस सन्धि की एक शर्त यह थी कि शिवाजी अपने पुत्र सम्भाजी को मुग़ल-छावनी में ज़ामिन बनाकर रखें। उस समय राजपूत मिर्ज़ा राजा ने सम्भाजी को एक शाही हाथी भेंट किया था। दिलेर ख़ाँ पठान वहाँ उपस्थित था। हाथी को देखकर दिलेर ख़ाँ ने एक मज़ाक करके सम्भाजी को छेड़ने-चिढ़ाने का प्रयत्न किया था। उसने सम्भाजी से पूछा था—'इतना बड़ा हाथी तुम्हें भेंट किया गया है, मगर इसे साथ कैसे ले जाओगे, सम्भू राजा?' और उस समय शिवा के इस सपूत ने बड़े साहस से उत्तर दिया था—'दिलेर ख़ाँ, यह हाथी झूमता-डोलता क्यों न हो, आख़िर ले जाया तो जा सकता है, पर हमारे महाराजसाहब ने तुम्हें जो क़िले दिये हैं, वे चल नहीं सकते। उन्हें ले जाना असम्भव है।'

आज सम्भाजी की प्रतीक्षा करते समय दिलेर ख़ाँ को सम्भाजी का दिया हुआ उत्तर याद आया, तो उसे हँसी आ गयी। उसके मन ने सम्भाजी के उत्तर का प्रत्युत्तर दिया—'शहज़ादे साहब! तुम्हारी बात ठीक थी कि क़िले नहीं चल सकते। मगर आदमी तो चल सकता है। शहज़ादे तो चलती-फिरती चीज़ हैं। उन्हें हिलाना, अपनी ओर मिला लेना आसान काम है!'

सम्भाजी सरदार इख़लास ख़ाँ के साथ ज्योंही पेडगाँव के नगरद्वार तक पहुँचे, मुग़ल-छावनी

https://t.me/Sahityajunction

में ढोल-नगाड़े बजने लगे। दिलेर ख़ाँ पहनी हुई हरी 'ख़िलअत' पोशाक को ठीक-ठाक करता हुआ दोनों हाथ फैलाकर—"आइए ऽ शम्भूराजा, आइए," कहता हुआ आगे बढ़ आया। पठान की छाती से भोसले की छाती जा मिली। सारी छावनी इस निराले अजूबे को देखने के लिए उमड़ पड़ी थी। वह पठान सेनापति सम्भाजी का हाथ अपने हाथ में लिये सेनापतिवाले खेमे में आया।

सम्भाजी के परिवार की महिलाओं को डोलियों में बिठाकर बहादुरगढ़ भेज दिया गया।

अगले दिन छावनी में एक शानदार बैठक बनायी गयी थी, जिसे शाही बिछावन, मसनद आदि से सजाया गया था। यहाँ सम्भाजी को 'नज़राना' पेश करने का आयोजन किया गया था। दिलेर ख़ाँ ने जान-बूझकर अपने प्रमुख सरदारों, इख़लास ख़ाँ, इरज ख़ाँ आदि को इस कार्यक्रम में उपस्थित रखा था। इन सबके सामने मुग़लिया सल्तनत के दक्खन के सिपहसालार दिलेर ख़ाँ ने सम्भाजी को वह नज़राना पेश किया, जो आलमग़ीर औरंगज़ेब ने दिल्ली से भेजा था। इस नज़राने में एक झूलदार हाथी, तीन अरबी घोड़े, हरी म्यानवाली तलवार, नगाड़े बजने की इज़्ज़त, पूरा शाही असबाब आदि सम्मानदायी वस्तुओं का समावेश था। इसके अतिरिक्त यहीं पर सभी सरदारों और अधिकारियों के सामने यह ऐलान भी किया गया कि सम्भाजी को सात हज़ार सवार तथा बरारख़ान देश की 'मनसब' भी मुग़ल शाही दरबार की ओर से भेंट दी जा रही है। सम्भाजी को जो 'मनसब' या सम्मानपद दिया गया था, उससे क्षेत्र के सभी फ़ौजदार, हवलदार, नायक आदि अधिकारियों को भी परिचित कराया गया।

यही सम्मानपद औरंगज़ेब ने पहले भी सम्भाजी के लिए भेजा था और उस समय महाराज ने उस सम्मान को और 'मनसब' को ठोकर मारकर दूर उड़ा दिया था, परन्तु भाग्य की लीला कि आज बहके हुए, भटके हुए सम्भाजी ने उसे स्वयं स्वीकार कर लिया था।

मराठा साम्राज्य का वह युवराज जो कभी मावले-सैनिकों के मुजरे स्वीकार किया करता था, आज औरंगज़ेब का मनसबदार बनकर मुग़ल-सैनिकों के कोर्निश कुबूल फरमा रहा था। इस प्रकार उस बाँके-वीर भोसले के जीवन-महाकाव्य के 'अन्धकार' पर्व का प्रारम्भ हुआ।

विधि का विधान भी कैसा विचित्र है! सम्भाजी की वंश-परम्परा में परदादा राजा मालोजी को, दादा शहाजी को यहाँ तक कि पिता शिवाजी को भी जीवन में इसी प्रकार के 'अन्धकार' पर्व में से गुज़रना पड़ा था। सम्भाजी को जब मनसब दी जा रही थी, तब केवल एक ही व्यक्ति ऐसा था, जिसका हृदय व्याकुलता और विवशता से छटपटा रहा था—वह था महादजी निम्बालकर। यह महादजी बजाजी निम्बालकर का पुत्र था और छत्रपति शिवाजी का दामाद था। वह एक नाते से सम्भाजी का ममेरा भाई था और दूसरे नाते से उनका साला लगता था।

सम्भाजी नज़राने के कार्यक्रम के बाद अपने डेरे में लौट आये। आते ही उनके मुग़ल पहरेदार ने सूचना दी, "फलटण के निम्बालकर साहब आपसे मिलना चाहते हैं।"

महादजी डेरे में प्रविष्ट हुए। सिर पर तिकोनी ज़रतारी पगड़ी और बदन पर 'ख़िलअत' की पोशाक धारण किये महादजी ने उम्र में बड़े होते हुए भी सम्भाजी के पद का सम्मान करने के लिए उन्हें तसलीम की।

"हम स्वयं तुमसे मिलने आये हैं। युवराज से कुछ ख़ास बातें करनी हैं।" महादजी ने शुरुआत की।

https://t.me/Sahityajunction

“कहिए!”

“युवराज, क्या कर बैठे तुम यह?” महादजी समझ न पाये कि विषय का प्रारम्भ कैसे किया जाए।

“क्यों, क्या हुआ?”

“क्यों चले आये इस गन्दगी में!”

सम्भाजी ने महादजी की ओर घूरकर देखते हुए उन्हीं से उल्टा सवाल पूछा, “बदन को शाही ख़िलअत से ढँककर आप पूछ रहे हैं यह सवाल हमसे? क्या हम पूछें कि आप यहाँ हथियार क्यों भाँज रहे हैं?”

“हमारे हृदय की टीस को कोई क्या जान सकेगा! पहाड़ जैसे ऊँचे, अनुभवी बड़े-बूढ़े तुम्हारी पीठ पर हैं। तुम्हें वह राजमार्ग छोड़कर इस ऊबड़-खाबड़ पगडण्डी पर नहीं चलना चाहिए, शम्भूराजा!”

“बस करो, दाजी साहब। जब सब राजमार्ग बन्द हो जाते हैं, तब सिवाय पगडण्डी के और क्या रास्ता है? हमारे हृदय की कसक को भी शायद कोई कभी नहीं समझ पाएगा। कोई समझ भी सका तो भी इस गड़े हुए काँटे को निकालने का और कोई उपाय नहीं है।”

“शम्भूराजा, अब भी ठण्डे दिमाग से सोच-समझ लो। अब भी समय है। हमें लगता है कि तुम्हें लौट जाना चाहिए। यह ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ कोई अभिषिक्त युवराज रहे।”

“हमने सब सोच-समझ लिया है। हमें युवराज मत कहो।”

डेरे में भीषण शान्ति छा गयी।

“हस निर्णय के कारण तुम्हें बाद में पछताना होगा, इतना ही कहना है हमें। अच्छा, हम चलते हैं।” महादजी बाहर जाने लगे। बाहर जाते समय उनके कानों में सम्भाजी ने ये शब्द सुने, “हमारी बड़ी बहन को हमारा प्रणाम कहें, जीजाजी। एक युवराज का प्रणाम मत कहना, कहना कि तुम्हारे एक अभागे भाई ने प्रणाम कहा है।” अपनी बहन सखूबाई की याद आते ही सम्भाजी अत्यन्त विह्वल हो उठे।

महादजी डेरे से बाहर निकले। बहनोई और साले के इस मिलाप का वृत्तान्त दिलेर ख़ाँ तक पहुँच गया था। महादजी ने ज्योंही अपने डेरे में क़दम रखा, सशस्त्र पठान सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। महादजी नज़रबन्द कर दिये गये।

अब दिलेर ख़ाँ के सितारे पूरी बुलन्दी पर थे। बीजापुर दरबार में राज्य के वज़ीर सिद्दी मसूद और सेनापति सर्जा ख़ाँ में अनबन हो गयी थी। एक समय था कि बीजापुर के बहादुर सेनापति सर्जा ख़ाँ ने मिर्ज़ा राजा जयसिंह, दिलेर ख़ाँ, राजा शिवाजी, और मराठा सेनापति नेताजी पालकर जैसे बलशाली सेनापतियों से बीजापुर की रक्षा की थी। वही वीर सेनापति सर्जा ख़ाँ अब दिलेर ख़ाँ से आ मिला था। दक्खन का एक शहज़ादा और एक सेनापति पाकर अब दिलेर ख़ाँ का पलड़ा बहुत भारी हो गया था।

मुअज़्ज़म उर्फ़ शाहआलम औरंगाबाद में सूबे-दक्खन का सूबेदार था। दिलेर ख़ाँ की यह बढ़ती हुई प्रबलता उसकी आँखों में खटकने लगी थी। उसने ताड़ लिया था कि दिलेर ख़ाँ अब बीजापुर साम्राज्य को निगलना चाहता है। उसे यह श्रेय न मिल पाये, इस उद्देश्य से शाहआलम

https://t.me/Sahityajunction

दिलेर ख़ाँ को मराठा राज्य पर हमला करने की सलाह दे रहा था। दोनों का मतभेद दिनों-दिन बढ़ रहा था।

दिलेर ख़ाँ ने सम्भाजी के साथ बहादुरगढ़ से छावनी हटाकर अकलूज में लगा ली। अकलूज ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान था, जहाँ से आदिलशाही राज्य और मराठा राज्य इन दोनों राज्यों पर हमला करना आसान था। बीजापुर के वजीर मसूद ख़ाँ को डर था कि अब दिलेर ख़ाँ उसके राज्य पर आक्रमण करेगा, इस कारण उसने छत्रपति शिवाजी से समझौते की बातचीत शुरू कर दी। महाराज ने मसूद ख़ाँ को सहायता देने का आश्वासन दिया। इसके दो कारण थे—एक तो महाराज चाहते थे कि बीजापुर राज्य दिलेर ख़ाँ की फ़ौजों के बल पर मुग़ल-साम्राज्य में न शामिल किया जा सके; दूसरा कारण यह था कि वे विविध उपायों द्वारा सम्भाजी को दिलेर ख़ाँ के क़ब्ज़े से निकाल लाना चाहते थे।

सेनापति हम्बीरराव और आनन्दराव के नेतृत्व में मराठा सेना की दो टुकड़ियाँ आदिलशाही राज्य में घुसीं। इसी सेना के कुछ गुप्तचर अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर दिलेर ख़ाँ की छावनी में जा पहुँचे थे और वहाँ सम्भाजी से मिले थे। परन्तु उन्होंने पाया कि युवराज ज़िद पर अड़े हुए हैं। इस कारण वे निराश होकर लौट आये थे।

अब आदिलशाही राज्य पर तीन शक्तियाँ अपना ज़ोर आजमाना चाहती थीं। अकलूज में दिलेर ख़ाँ, सम्भाजी तथा सर्जा ख़ाँ घात लगाये बैठे थे, बीजापुर में वज़ीर मसूद ख़ाँ राज्य की सुरक्षा के लिए चिन्ताग्रस्त बैठा था और युवराज को वापस लौटा लाने की दृष्टि से आदिलशाही राज्य का जितना भी क़ब्ज़े में आ सके, उतना प्रदेश जीतने को मराठा फ़ौजें भी दौड़ लगा रही थीं।

अकलूज की छावनी के अपने डेरे में सम्भाजी बेचैनी से टहल रहे थे। उनका मन अकलूज से बहुत दूर बहादुरगढ़ पहुँचा हुआ था और बीती बातों की स्मृतियों की गुत्थियाँ सुलझाना चाह रहा था।

'किसी-किसी का भाग्य भी क्या ही विचित्र होता है! हम युवराज्ञी येसूबाई के साथ शृंगारपूर में रहे। वहाँ उनका लाड़-प्यार, गर्भिणी के सब रीति-संस्कार आदि उनके मायके में बड़े समारोहपूर्वक हुए, और दूसरी ओर ये हैं...।' दुर्गाबाई की स्मृति आते ही सम्भाजी व्यथित हो उठे।

'युवराज्ञी, तुम सदा कहती हो—हमने तो दोस्ती ठान ली है जंगल की हवाओं से। यह बात सच तो अवश्य है, पर तुम्हारे बारे में नहीं, इन छोटी रानीजी के बारे में सच है। यहाँ शृंगारपूर में हमें विदाई देते समय तुमने कहा था—'हमारी छोटी बहन का ख़याल रखना' परन्तु युवराज्ञी, जहाँ हमारी ही छीछालेदर हो गयी, वहाँ हम इनका ख़याल भला कैसे रखें?' सम्भाजी का मन छटपटाकर इधर-उधर दौड़ने लगा, ठीक उस आदमी की तरह जिसके कपड़ों में आग लगी हो।

'दीदी, ये कैसी बेड़ी अटका दी तुमने हमारे पाँवों में? ये छोटी रानीजी यदि अपने राज्य में होतीं, तो युवराज्ञी आँख की पुतली की तरह प्यार से इनकी देखभाल करतीं।' इन विचारों से पीछा छुड़वाने के लिए सम्भाजी डेरे के बाहर आ गये।

दो घुड़सवार बहादुरगढ़ से यहाँ छावनी में आये थे। वे घोड़े उड़ाते हुए सम्भाजी के डेरे में आये। घोड़ों से उतरकर उन्होंने तसलीम की और फिर एक सवार ने कमर में बँधी थैली सम्भाजी

https://t.me/Sahityajunction

को देते हुए कहा, “बधाई हो। फर्ज़न्द पैदा हुआ है।”

“फर्ज़न्द, सच!” एक बार सम्भाजी की आँखों में चमक आ गयी पर अगले ही क्षण वे अथाह दुख में डूब गये। उस घुड़सवार के हाथों में इनाम की अँगूठी कब रखी और कब वे डेरे में लौट आये, इसकी भी उन्हें सुध नहीं रही थी।

बरार-ख़ानदेश के मनसबदार की छावनी में शक्कर बाँटी जा रही थी। ‘श्री’ के राज्य का पहला पौत्र उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में बाँटी जानेवाली शक्कर से पठानों और मुग़ल-सैनिकों के मुँह मीठे हो रहे थे।

मनुष्य कहाँ जन्म ले, यह क्या उसके वश की बात है? परन्तु यदि ऐसा हो सके, तब ही उचित है, क्योंकि तब आगे जीवन में होनेवाली दुर्दशा का उत्तरदायी कोई उसे तो नहीं कह सकेगा। इस फर्ज़न्द का नाम रखा गया—मदनसिंह।

सम्भाजी ने दिलेर ख़ाँ से महादजी की नज़रबन्दी के बारे में मध्यस्थता की और उनकी नज़रबन्दी रद्द करा दी। अब मुग़ल फ़ौजें एकत्रित हो रही थीं। मुग़ल सेना के बोझ ढोने के काम आनेवाले बैल रसद, घास-चारा आदि जमा करने के लिए मालशिरस, इन्दापुर, वारामती आदि नगरों तक चक्कर लगाने लगे।

ऐसे ही भारवाहक बैलों का एक झुण्ड भूपालगढ़ के आस-पास घूम रहा था कि वहाँ कुछ मराठा-सैनिकों से उनका सामना हो गया। आपस में कुछ ‘तू-तू, मैं-मैं’ हुई। मुग़ल सैनिकों ने यह ख़बर दिलेर ख़ाँ तक पहुँचा दी, “भूपालगढ़ के क़ाफ़िर मरहठे हमें रसद जमा करने से रोकते हैं। हमें रोकते ही नहीं, धमकाते भी हैं।”

बस, हो गया। दिलेर ख़ाँ तो कोई बहाना ढूँढ़ रहा था। बन्दर इसी उम्मीद में बैठा था कि कब मशाल हाथ में आये। इस चाल में उसके दो इरादे छुपे थे। एक तो वह परखना चाहता था कि ये ‘शीवा’ का लड़का सचमुच शाही मनसबदार बना है या यह भी बाप-बेटे की कोई छुपी चाल है? दूसरा फायदा यह था कि मराठा सेना ने बीजापुर को कसकर दबा रखा था, उसकी पकड़ उस पर दूसरी ओर से दबाव डाले बिना ढीली होनेवाली नहीं थी। आख़िर दिलेर ख़ाँ दूर उत्तर से दक्खिन में आया था, तो कोई उर्स या ज़ियारत करने थोड़े ही आया था!

वैशाख शुद्ध प्रतिपदा को दिलेर ख़ाँ ने फ़ौजों को अकलूज की छावनी से कूच करने का आदेश दिया। फ़ौजें छोटी-बड़ी टुकड़ियाँ बनाकर छावनी से निकल रही थीं। तोपख़ाने की गाड़ियाँ खड़खड़ाती हुई रवाना हो गयी थीं—भूपालगढ़ के क़िले की ओर।

उस दिन स्वयं दिलेर ख़ाँ सम्भाजी के डेरे में आया और हँसकर कहने लगा, “चलिए शम्भूराजा, आपके मर्द हाथों का शगुन आज़माना है। भूपालगढ़ पर फतह पानी है और सुनिए—औरंगाबाद के शहज़ादे मुअज़्ज़म को आपकी नीयत पर शक है। इसी बहाने आपको अपनी बहादुरी साबित करने का मौक़ा भी मिल रहा है।”

सम्भाजी भूपालगढ़ का नाम सुनकर चौके, फिर बोले, “लेकिन ख़ानसाहब...”

दिलेर ख़ाँ खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला, “सच है राजा! आपकी हिचकिचाहट बहुत सही

https://t.me/Sahityajunction

है, वाजिब है। लेकिन हम सिर्फ़ आपको ही हुक्म नहीं फरमा रहे, हम ख़ुद भी आपके साथ हैं। भला जंग में कोई अपना-पराया होता है? चलिए, आपको हमारे साथ आना है। अपनी फ़ौज को तैयार कीजिए।"

दिलेर ख़ाँ उमड़ती आँधी के समान डेरे से बाहर चला गया।

सम्भाजी ने अपनी फ़ौज को आदेश दिया। नगाड़ों की गड़गड़ाहट के बीच बरार-ख़ानदेश की मुग़ल-सेना में कूच करने की तैयारियाँ होने लगीं।

हाथी के हौदे में दिलेर ख़ाँ और सम्भाजी एक साथ बैठे थे। यह हाथी फ़ौज के आगे लाया गया। दिलेर ख़ाँ ने तेग़ म्यान से बाहर निकालकर ऊँची करके हिलायी। पीछे खड़ी सेना ने इसी संकेत को ऊँची ललकार में बदल दिया—"दी ऽ न दी ऽ न!" बिना चप्पू और मल्लाह की कोई नाव जैसे लहरों के थपेड़े खाती हुई उठती-गिरती हुई चाहे जिधर बह जाती है, इसी प्रकार भटके हुए, बहके हुए सम्भाजी भोसले मुग़ल फ़ौज के आगे-आगे और एक पठान सेनापति के कन्धे से कन्धा लगाकर बढ़े जा रहे थे—भूपालगढ़ पर धावा बोलने।

भूपालगढ़ के पंचक्रोशी में बसी भयाक्रान्त मराठा प्रजा ने दौड़कर क़िले में आसरा पाया। गढ़ के द्वार बन्द कर लिये गये।

भूपालगढ़ का गढ़पति था फिरंगोजी नरसाला। चौड़ी छाती में दूना उत्साह भरकर वह सूरमा गढ़पति सामना करने के लिए सन्नद्ध हो गया। क़िले के हर बुर्ज़ और कंगूरे पर उसने मोर्चे लगा लिये। फिरंगोजी शिवाजी महाराज का पुराना और विश्वासपात्र व्यक्ति था। उसने सम्भाजी को बचपन में गोद में खिलाया था। आज वे ही स्वयं उस पर हमला करने आ रहे थे। फिरंगोजी रातभर सो नहीं सका। वह कई बार चहारदीवारी पर आकर नीचे तलहटी में बसी मुग़ल छावनी की ओर देखता था, और उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता था। मन पूछता था—'शम्भू बेटे! क्या कर बैठे तुम यह?' परन्तु उसका यह प्रश्न नीचे दूर पर बसी तलहटी तक पहुँचता तो कैसे? और पहुँच भी जाता, तो भी लाभ क्या था?

अभी वैशाख शुक्ल की तृतीया की भोर भी नहीं हुई थी कि दिलेर ख़ाँ की तोपें भूपालगढ़ पर आग उगलने लगीं। युद्ध छिड़ गया। फिरंगोजी के सैनिक ऊँचे क़िले से बाण और शिला-पत्थर फेंकने-लुढ़काने लगे।

दिन काफी ऊपर चढ़ आया। मुग़ल-तोपखाना आग बरसा रहा था। मुग़ल सैनिकों की टोलियाँ क़िले की दीवार के निकट पहुँचना चाहती थीं। फिरंगोजी तो जैसे तेज़ हवा के समान सब ओर घूम-घूमकर मोर्चे पक्के कर रहा था। दिलेर ख़ाँ ने शिवाजी के पुरन्धर जैसे सुदृढ़ दुर्ग को भी जीत लिया था, पर वही हठी सेनापति आज पस्त हो गया था। दोपहर में जब वैशाख की तेज धूप से चमड़ी जलने लगी, तो दिलेर ख़ाँ ने अपने तोपचियों को गोलाबारी रोकने का हुक्म दिया। माँजरा नामक उस ऊजड़-पथरीले पठारी प्रदेश में दोपहर को शान्ति छा गयी।

दिलेर ख़ाँ माथे का पसीना पोंछता हुआ अपने खेमे में आया। ख़ानसामे ने भोजन की थाली उसके सामने रखी। थाली के सगौती के कटोरे में रोटी का टुकड़ा डुबाते हुए उसने आज्ञा दी, "शम्भूराजा को बुलाओ। यह क़िला ज़रूर सर किया जाना चाहिए, आज ही।"

सम्भाजी दिलेर ख़ाँ के खेमे में आये। सुबह से दोपहर तक जैसे कुछ भी नहीं हो सका है,

https://t.me/Sahityajunction

ऐसा भाव जताते हुए दिलेर ख़ाँ कहने लगा, “राजा साहब, आप रहोगे सेना के अगाड़ी?”

“हाँ ज़रूर,” सम्भाजी ने स्वीकार कर लिया।

“देख लीजिए, क़िला बहुत मज़बूत है। कहीं आप हिम्मत न हार बैठें।” सम्भाजी इस बात को सुनकर केवल हँस पड़े।

दोपहर ढलते ही दिलेर ख़ाँ ने अपना ख़ास तरीका खोज निकाला। उसने अपना हाथी सम्भाजी को दे दिया। सिर्फ़ उस हाथी का हौदा उसने हटवा दिया था और उस पर छोटी मसनदोंवाली बैठक लगायी गयी थी, जिसे ऊँटनी सवार ऊँटनी पर कसते हैं।

सम्भाजी अपनी फ़ौज के साथ हरावल में आये। ऊपर क़िले के विश्वासपात्र सैनिकों ने तीर-कमान सँभाले और सेना के उनकी पहुँच के भीतर तक आने की प्रतीक्षा में बैठ गये। बन्दूक़चियों ने बन्दूक़ें साध लीं। फिरंगोजी बुर्ज़ों पर घूम-घूमकर देखभाल कर रहा था कि उसे हाथी पर सवार सम्भाजी दीख पड़े। अपने साथियों को वह पुकार कर कहने लगा, “साथियो, मारे गये। पठान बाज़ी मार ले गया। उसने हमारे छोटे मालिक को ही आगे कर दिया है। हाथ रोक लो, भैया।”

ममता ने कर्तव्य पर विजय पायी। लड़ाई का रंग बदल गया। सम्भाजी की फ़ौज बिलकुल क़िले की चहारदीवारी से आ लगी। फिरंगोजी ने परकोटे पर रस्सी की सीढ़ी लटका दी और ऊपर सफ़ेद झण्डा फहरा दिया। एक सैनिक रस्सी से उतरकर सम्भाजी के पास पहुँचा और उनका सन्देश सुनाने लगा : “क़िलेदार कहते हैं, हम आप पर हथियार नहीं उठा सकते। आप जैसे आये हो, वैसे ही लौट जाओ, तो ठीक है।”

सम्भाजी उस सैनिक से कड़कते हुए गरजकर बोले, “क़िलेदार से कहो कि हम क़िला जीते बग़ैर पीछे नहीं हटेंगे। या तो हम ही रहेंगे या फिर यह क़िला ही रहेगा।”

सैनिक द्वारा प्राप्त उत्तर सुनकर फिरंगोजी चकरा गया। लड़ाई जारी रखी जाय, तो छोटे मालिक पर हथियार उठाना पड़ता है। हथियार नीचे रख दें, तो क़िला छोड़कर जाना पड़ेगा। फिरंगोजी ने गढ़ के सबनीस विट्ठल भालेराव से सलाह की और अन्त में यह तय हुआ कि सम्भाजी से सब लोगों के लिए अभयदान माँगा जाय और क़िला उनके हवाले कर दिया जाय। चहारदीवारी पर एक सफ़ेद झण्डा दायें-बायें को हिलाया जाने लगा। इसे देखते ही सारी मुग़ल-छावनी में ढोल-नगाड़े बजने लगे। विजय के उपलक्ष्य में तोपें दाग़ी गयीं। फिरंगोजी और विट्ठल भालेराव अभयदान पाते ही क़िले के द्वार पर आये और द्वार खोलकर वे नीचे सिर झुकाकर खड़े हो गये। आज फिरंगोजी का जी नहीं चाहता था कि वे सिर उठाकर सम्भाजी की ओर देखें।

फिरंगोजी ने विट्ठल भालेराव और अपने मावला सैनिकों की सेना के साथ भूपालगढ़ खाली कर दिया। क़िले पर अब चाँद-तारेवाला हरा झण्डा फहराने लगा। सम्भाजी क़िले के उपरिकोट में चले गये। दिलेर ख़ाँ तलभूमि की छावनी में ही रहा।

रात हो गयी। माँजरा के उस पठारी मैदान में पड़े मुग़ल-पड़ाव में जगह-जगह मशालें जल रही थीं। अलाप सुलग रहे थे। दिलेर ख़ाँ के खेमे के सामने सात सौ मराठा प्रजाजन एक बड़ी रस्सी में ढोरों की तरह बाँध दिये गये थे। वे बिचारे ग़रीब लोग घबराकर क़िले में आसरा पाने चले गये थे। पकड़े जाने पर नीची गरदन झुकाये खड़े थे वे सब। अब उनकी क़िस्मत का फैसला पठान दिलेर ख़ाँ के हाथों में था।

https://t.me/Sahityajunction

दिलेर ख़ाँ ने इस्पहानी शराब के घूँट पिये और उस पर पेट भर रसा और रोटी ठूँसकर वह अपने खेमे से बाहर निकला। क़ैदखाने के अधिकारी ने कोर्निश करके पूछा, "इनका क्या किया जाय हुज़ूर?"

दिलेर ख़ाँ ने एक नज़र उस समूह पर दौड़ायी फिर एक इनायत-भरा हुक्म फ़रमाया, "सबका एक हाथ काट डालो!"

माँजरा के उस पठारी मैदान में जल्लादों ने एक लकड़ी का शिकंजा लाकर रखा। फिर बलिश्त भर चौड़ा तेज़ खाण्डा हाथ में लेकर एक-एक 'काफ़िर' का हाथ शिकंजे में कसने से पहले वे बड़े घिनौने ढगं से पूछते थे, "कौन से हाथ से पत्थर गिराये थे तूने, कमीने?"

एक जल्लाद थक जाता था, तो दूसरे के हाथ में खाण्डा थमाकर घृणाभरी आवाज़ से कहता था, "क्या पैदाइश पायी है कम्बख़्तों ने! किले की दीवार से फेंक देते इन्हें, तो हमें इतनी तकलीफ तो न होती।"

चीख़ों और कराहों की आवाज़ से सारा पठार काँप उठा था। ये चीख़-पुकारें भूपालगढ़ के उपरिकोट तक पहुँच ही नहीं सकती थीं। और पहुँचतीं भी तो क्या? उन दुखियों का रखवाला वहाँ था ही कौन?

महाराज ने भूपालगढ़ की रक्षा के लिए सोलह हज़ार सैनिकों की विशाल सेना भेजी थी, परन्तु उस सेना ने जब वहाँ पहुँचकर क़िले पर बदला हुआ झण्डा फहराता देखा, तो वह लौट पड़ी। दिलेर ख़ाँ ने उन महत्त्वपूर्ण जगहों को, जहाँ से क़िले पर हमला किया जा सकता था, पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

अब बरसात निकट आ रही थी। दिलेरखां और सम्भाजी ने क़िले को अधिक दृढ़ और सुरक्षित बनाया तथा वे बहादुरगढ़ की तरफ़ निकल पड़े। सम्भाजी के मन को यह घटना निरन्तर पीड़ा दे रही थी कि ख़ान ने निरपराध मराठी प्रजा के हाथ कटवा डाले। वे इसे सोच-सोचकर सदा उद्विग्न बने रहते थे।

एक बार हाथी के हौदे में बैठे हुए उन्होंने ख़ान से पूछा, "ख़ानसाहब, आपने उन बेक़सूरों के हाथ क़लम करने का हुक्म दिया, यह अच्छा नहीं किया।"

ख़ान ने बेरुख़ी से उत्तर दिया, "शुक्र मनाओ राजा साहब कि हमने उनके हाथ ही कटवाये, उन्हें मौत के घाट नहीं उतारा। जानते हैं कि इस नाचीज़ मिट्टी के ढेर पर फतह पाने के लिए हमारे कितने फ़ौजी काम आये हैं?"

सम्भाजी की ज़ुबान तो बन्द हो गयी, पर हृदय में काँटे चुभते ही रहे।

बहादुरगढ़ आ गया। अपनी फ़ौज की सारी व्यवस्था पूरी करके सम्भाजी अपने परिवार के निवास-स्थान में आये। भीतरी कमरे में राणूदीदी और दुर्गाबाई की कुछ बातचीत हो रही थी। सम्भाजी को देखते ही उन्होंने एकदम बात बन्द कर दी। वहाँ कमीज़-सलवार पहने और महीन ओढ़नी सिर पर लपेटे जो बाँदियाँ खड़ी थीं, वे उन्हें देखकर कमरे से बाहर हो गयीं।

सम्भाजी ने आगे बढ़कर दीदी के चरण छुए पर दीदी ने उनके प्रणाम का कोई उत्तर नहीं

https://t.me/Sahityajunction

दिया। वे मुँह फेरकर खड़ी हो गयीं। फिर काँपते शब्द उनके मुख से प्रकट हुए, "गढ़ जीत आये तुम? तुम्हारी आरती कैसे उतारें, कुछ समझ नहीं आता।" सम्भाजी सन्न रह गये। लज्जा के कारण उनका चमकता मुख भी फक पड़ गया और सिर नीचे झुक गया, "दीदी, हमारी बात सुनो..."

"क्या सुनें तुम्हारी बात? तुम मराठा राज्य का एक क़िला जीत आये हो, यह सुनकर आबासाहब क्या सोचेंगे? क्या यही करने तुम इस रास्ते पर आये थे? माहुली संगम क्षेत्र में तुमने हमें उलझन में फँसा दिया, और अब भूपालगढ़ में फिरंगोजी को पेंच में अटका दिया। शृंगारपूर में येसूबाई ये सब सुन-सुनकर मन में क्या कहती होंगी? आबासाहब की क्या अवस्था हुई होगी? हम तुमसे नाता जोड़े बैठी हैं, इसका मतलब यह नहीं कि तुम अपनी मनमानी किया करो। शम्भू भैया, सुन लो, हमसे अब यह सहन नहीं होगा।"

"दीदी, हमसे भूल हो गयी," सम्भाजी अब कमरे में खड़े भी न रह सके। वे बाहर निकल गये।

बरसाती बादल आकाश में घिर आये थे। वर्षा थमने का नाम न लेती थी। पशु-वैद्यों ने घायल और बीमार घोड़ों का उपचार प्रारम्भ कर दिया था। वर्षा ऋतु के आते ही मराठा फ़ौजें आदिलशाही राज्य से पीछे हट आयी थीं और अब वे अपने राज्य की सीमाओं पर पड़ाव डाले पड़ी थीं।

बरसात के मौसम को एक उचित अवसर जानकर दिलेर ख़ाँ मन-ही-मन एक दूर की योजना बना रहा था। इसी समय उसे औरंगाबाद से शाह आलम का एक आदेश पत्र मिला। दिलेर ख़ाँ ने सम्भाजी, इख़लास ख़ाँ, ख़ैरत ख़ाँ, इरज ख़ाँ आदि को सलाह-मशविरे के लिए बहादुरगढ़ के दरबार-महल में बुलाया। "शहज़ादे ने औरंगाबाद से फरमान भेजा है।" दिलेर ख़ाँ ने विषय पर चर्चा प्रारम्भ की। लिखा है, "इस बारिश में पन्हाला क़िले पर हमला किया जाय।" बैठक में उपस्थित लोगों की प्रतिक्रिया जानने के लिए ख़ान थोड़ी देर ठहरा। सर्जा ख़ाँ और सम्भाजी ने एक-दूसरे की ओर देखा।

"यह निरा पागलपन होगा, सिपहसालार। मराठों ने अपने राज्य की सरहदें पूरी तरह मज़बूत कर रखी हैं।" सर्जा ख़ाँ ने स्पष्ट बात कह दी। परन्तु असली बात यह थी कि वह बीजापुर पर हमला करने के पक्ष में था, ताकि बीजापुर से अपनी पुरानी अदावत का बदला चुका सके।

सम्भाजी ने भी सर्जा ख़ाँ की सलाह का समर्थन किया, परन्तु इसका कारण कुछ और ही था। वे बोले, "अब आगे से हमारे लिए सम्भव न होगा कि हम मराठा-राज्य पर हमला करें। आप चाहें तो हम अपनी तलवार और मनसब के वस्त्र यहीं उतारने को तैयार हैं।"

"लेकिन यह शाही फरमान है, इसकी हुक्म-उदूली कैसे की जा सकती है!" दिलेर ख़ाँ दो-दो शक्तियों का एक साथ मुकाबला नहीं कर सकता था। उसकी क़िस्मत का पासा अब उसके हक़ में था, उसे भला वह कैसे पलटने देता!

"सिपहसालार, औरंगाबाद ख़लीता भेज दो। लिखो कि इस समय बीजापुर की हालत कमज़ोर है, उस पर हमला जारी रखने में ही फायदा है और हम लोग शहज़ादे का जवाब आने से

https://t.me/Sahityajunction

पहले ही आदिलशाही की ओर रवाना हो जाएँगे।" सर्जा ख़ाँ ने अपने मन का गुप्त हेतु प्रकट किया।

होशियार दिलेर ख़ाँ ने ताड़ लिया कि अब मामले को और अधिक बढ़ाया गया, तो यह चर्चा टूट ही जाएगी। उसने बीजापुर पर हमला बोलने की योजना घोषित कर दी। सब सरदारों को बीड़े दिये गये।

अब घनघोर वर्षा की परवाह न करते हुए सम्भाजी, दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ की फ़ैजें पूरी तैयारियों में जुट गयीं। विदा होने से पहले सम्भाजी राणूदीदी से मिलने गये। दीदी फैसला कर चुकी थीं कि वे अब सम्भाजी को छोड़कर अलग नहीं रहेंगी। इसी निश्चय को बतलाते हुए वे कहने लगीं, "अब हमने तय कर लिया है कि तुम चाहे युद्ध के मैदान में रहो या घर में, हम तुम्हारे साथ ही रहेंगी। तुम भावावेश में कुछ कर बैठते हो और फिर उससे बाहर नहीं निकल पाते हो। हम भी आ रही हैं तुम्हारे साथ।"

"ठीक है, जैसी आपकी आज्ञा," सम्भाजी इसके अतिरिक्त कुछ न कह सके।

दुर्गाबाई पाँच महीने के मदनसिंह को छाती से लगाये हुए डोली में जा बैठीं, राणूदीदी भी डोली में बैठ गयीं। दिलेर ख़ाँ, सम्भाजी और सर्जा ख़ाँ की सम्मिलित सेना बीजापुर पर हमला करने चल पड़ी। धोलगढ़ के पास सेना ने नौकाओं में बैठकर भिवरा नदी पार की और धूलखेड में पड़ाव डाला। सावन का महीना था—धूप और वर्षा में आँखमिचौनी हो रही थी।

"पण्डितजी, आप तो इतने धैर्यशाली व्यक्ति हैं। आप भी यदि इस प्रकार हाथ-पाँव हारकर बैठ गये, तो हम जैसी नारियाँ क्या करेंगी? हम आजकल जो कुछ सुन रही हैं, उसे सुनना भी असह्य हो उठता है। इसीलिए तो आप लोगों को बुलाया है। व्यथा के कारण हम तो क्षण-भर को भी सो नहीं पाती हैं।" येसूबाई अपने हृदय की व्यथा को शब्दों में ढालने का प्रयत्न कर रही थीं। शृंगारपूर में पिलाजी की हवेली के स्त्री-कक्ष में कवि कुलेश, केशव पण्डित, उमाजीपन्त, परशुरामपन्त, रायाजी, अन्तोजी आदि लोग युवराज्ञी के सम्मुख सिर नीचा झुकाये खड़े थे।

"श्रीमान्‌जी हमें छोड़ गये और ऐसे दल से जा मिले, जहाँ जाने की बात सोचना भी बुरा है। फिर अकेले ही नहीं गये, साथ हमारी ननदजी को और छोटी रानी जी को भी ले गये। इतना ही नहीं, अपने ही राज्य पर वे हथियार उठाकर चढ़ दौड़े। भूपालगढ़ को जीत लिया। अब हम लोग और किस बात की प्रतीक्षा करते बैठे हैं? अब तो छोटी रानी जी का लड़का भी हो गया है। उन्हें ऐसी दुर्गति में कब तक घिसटता हुआ देखेंगे हम? श्रीमान्‌जी की हमें उतनी चिन्ता नहीं, परन्तु उन दो बेचारियों की दुर्दशा सोच-सोचकर ही हृदय फटा जा रहा है। ऊँचे कुल की उन महिलाओं के आँचल आज सुलग रहे हैं और वे मुग़ल-छावनी में भागी-दौड़ी फिर रही हैं। और कुछ सोचें या न सोचें, पर उनकी हालत सोच-सोचकर हमारा तो बुरा हाल हो रहा है।"

येसूबाई के ये शब्द दहकते अंगारे बनकर सबके कानों में पड़ रहे थे। सभी श्रेष्ठ दार्शनिक एवं विद्वान् थे फिर भी वे अत्यधिक व्याकुल हो उठे थे।

"हम अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे, परन्तु मालिक को वापस लाये बिना नहीं लौटेंगे।" अन्तोजी ने येसूबाई को धीरज बँधाना चाहा।

https://t.me/Sahityajunction

“कैसे कर पाओगे अन्तोजी यह सब?”

“चाहे जो भी हो, हम ख़ान की छावनी में घुस पड़ेंगे।” रायाजी ने अपना निश्चय कह सुनाया।

“और हम तुम्हें भी खो बैठेंगे, यही न?” येसूबाई ने उसाँस भरी।

“युवराज्ञी, महाराज ने सब प्रकार से प्रयत्न किये हैं कि युवराज को समझाया-बुझाया जाय, परन्तु सफलता नहीं मिली। हम एक ख़लीता लिख रहे हैं। आप उस पर अपनी मुहर लगाएँ। भावेश्वरी ने चाहा तो सम्भवतः अच्छा फल निकल आये।” परशुराम ने सुझाव दिया।

“अब भी यदि युवराज के विचार नहीं बदले, तो हमें अपना रूप बदलना पड़ेगा। हम स्वयं घोड़े पर बैठकर आपको खोजने निकलेंगे, साफ-साफ लिखो यह।” येसूबाई हृदय के विक्षोभ के कारण, हाथ ऊँचा उठाकर कहने लगीं। फिर बोलीं, “अच्छा, आप सब अब जा सकते हैं।”

रायगढ़ की मीनारों के निकट छत्रपति शिवाजी का एक प्रस्तर निर्मित मन्त्रणा-गृह था। इस मन्त्रणा-गृह में जो सभा आज हो रही थी, वह मुरझायी-सी थी। महाराज के मुख पर चिन्ता के बादल छाये हुए थे और वे मनसद से टेका लगाये बैठे थे। उनके आसपास हम्बीरराव, मोरोपन्त, अण्णाजी, आनन्दराव, प्रह्लादपन्त आदि श्रेष्ठ जन खड़े थे। आज छत्रपति का चेहरा खिंचा-खिंचा-सा था। कनपटी के पास काले बालों के जो गल-गुच्छे थे, उनमें अब दो-चार सफ़ेद बाल झाँकने लगे थे। “हम्बीरराव, दिलेर ख़ाँ बीजापुर की ओर बढ़ रहा है। उसके मन में कई बरस से यह लोभ समाया हुआ है कि बीजापुर को निगल ले। हमें उसे रोकना ही होगा।” महाराज रुक गये। उनके मन में यह बात भी आ रही थी कि पहले यह ख़ान हमें समाप्त करना चाहता था, परन्तु उसमें बेचारा सफल नहीं हो सका। अब हमारे युवराज को क़ाबू में करके वह अपने उद्देश्य में सफल हो गया है। परन्तु उन्होंने यह बात कही नहीं, मन में ही दबा ली।

“जी, इस दिलेर ख़ाँ को एक बार पूरी तरह मज़ा चखाना ही चाहिए। छोटे मालिक को अपने कब्ज़े में लेकर ही वह यह दौड़ लगा रहा है।” हम्बीरराव को सम्भाजी के बारे में चिन्ता थी, उसे उन्होंने दूसरे ढंग से कहा।

“इसमें उसकी क्या ग़लती है, सेनापति! हम भी यदि उसके स्थान पर होते तो यही करते। शत्रु के क़िले का द्वार खुला देखकर उसमें सरपट दौड़कर न जा घुसे, तो वह राजनीतिज्ञ कैसे कहलाएगा?”

“परन्तु इस द्वार को जैसे भी हो, बन्द करना ही होगा, महाराज!” हम्बीरराव अपनी बात पर अड़े हुए थे।

“उसका कोई लाभ नहीं होगा, हम्बीरराव। हमने युवराज को फिर से पाने के हर तरह से प्रयत्न किये हैं, परन्तु सफल नहीं हो पाये। हमें लगता है कि हमारे समझाने-बुझाने से युवराज की आँखें नहीं खुलेंगी। उनकी आँखें यदि खुलेंगी तो ख़ान की ठोकर खाकर ही खुलेंगी। हमें युवराज से कोई भय नहीं है, हाँ, उनके बारे में एक चिन्ता अवश्य सता रही है।”

“हम आपकी बात समझ नहीं पाये।”

“हम्बीरराव, युवराज जब तक दिलेर ख़ाँ के क़ब्जे में हैं, तब तक ही उनकी कुशल समझो।

https://t.me/Sahityajunction

अगर औरंगज़ेब ने उन्हें किसी बहाने आगरा बुलवा लिया, तो उनकी ख़ैर नहीं। हमारे नेताजी के साथ क्या किया औरंगज़ेब ने? स्वयं हमारी ही क्या अवस्था होनेवाली थी? सोचो तो सही!" छत्रपति विह्वल हो उठे।

अगले ही क्षण उन्हें राणूबाई और दुर्गाबाई की स्मृति हो आयी। नाक को उँगलियों की चिकोटी में पकड़कर और आँखें बन्द कर वे कुछ देर बैठे रहे। उनकी बन्द आँखों के आगे वृद्धा जिजाऊ की मूर्ति खड़ी थी और काँपते होठों से कह रही थीं—भोसले कुल की स्त्रियों को आँचल में अंगारे भर लेना भी सीखना होता है, केवल माथे पर कुंकुम लगाना ही पर्याप्त नहीं है।"

फिर एक साँवली आकृति उनकी आँखों के आगे आ खड़ी हुई। वह कह रही थी—'यह अकेली सन्तान आपको सौंप कर जा रही हूँ। अब आप ही इसके 'आबा' और आप ही इसकी 'आऊ' हैं।' छत्रपति ने गरदन झटककर मन की व्यथा को भी झटक देना चाहा। फिर वे दृढ़ स्वर से कहने लगे, "मोरोपन्त, तुम सेना लेकर बीजापुर की ओर रवाना हो जाओ। बारह हज़ार सैनिक साथ लो। हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे आदिलशाही राज्य में घुस जाएँगे। हम्बीरराव, तुम वरन्दा घाट के निकट के मुग़लिया प्रदेश को दबाये रखो। प्रह्लादपन्त, बीजापुर के वज़ीर सिद्दी मसूद को लिखो कि आदिलशाही की रक्षा करना हमारा कर्तव्य ही है।" छत्रपति ने सामने रखे तबक़ में से एक-एक बीड़ा उठाकर सब को दिया। मन्त्रणा-सभा समाप्त हो गयी। सब मन्त्री-अधिकारीगण बाहर चले गये। केवल हम्बीरराव जान-बूझकर पीछे रह गये। फिर वे विह्वल होकर महाराज से कहने लगे, "महाराज, एक बात कहना चाहते हैं हम।"

"कहो!"

"आपका स्वास्थ्य कुछ ढलता-सा दिखाई देता है। आप यहीं रायगढ़ में विश्राम कीजिए, दिलेर ख़ाँ की मस्ती झाड़ने के लिए हम ही काफी हैं।"

"विश्राम! हम्बीरराव, अब तो हमें विश्राम एक बार ही मिलेगा। बिल्कुल अन्तिम बार।" महाराज के वचन हम्बीरराव को पिघले हुए सीसे के समान अनुभव हुए।

अण्णाजी मन्त्रणा-सभा से बाहर निकले और उनके क़दम सातमहल की ओर बढ़ चले। वे महारानी सोयराबाई के सामने उपस्थित हुए और विवरण देने लगे, "महाराज युवराज को पाने के लिए स्वयं आदिलशाही राज्य की ओर कूच कर रहे हैं।"

सुनकर सोयराबाई बड़े कड़वे स्वर में कहने लगीं, "तो श्रीमान्‌जी का हृदय अब भी प्यार से उमड़ा जा रहा है! हमें तो लगता है कि यदि सम्भाजी मुसलमान भी बन गये तो भी हमारे श्रीमान्‌जी नेताजी पालकर के समान उनकी शुद्धि भी अवश्य कर डालेंगे!"

इस उत्तर से स्वयं अण्णाजी भी चौंक उठे। फिर इस विषय को टालने के लिए उन्होंने दूसरी एक ख़बर महारानीजी को बतायी, "युवराज मुग़ल-छावनी में पुत्र के पिता बन गये हैं। पुत्र का नाम रखा गया है—मदनसिंह।"

'विशाल हृदया' उस महारानी ने अपने गले को और आँचल को एक झटका देकर मुरककर कहा, "अण्णाजी, नाम ठीक तरह नहीं सुना होगा तुमने? मदन ख़ाँ नाम रखा होगा, फिर से पता लगाओ।"

सम्भाजी की छावनी धूलखेड़ से उठी सेना ने आदिलशाही राज्य के मंगलवेढे नगर को जीता

https://t.me/Sahityajunction

और वह बीजापुर की ओर बढ़ते-बढ़ते हलसंगी गाँव के निकट पहुँची। इसी समय मोरोपन्त बारह हज़ार की मावला सेना लेकर आदिलशाही में घुस आये। मराठा सेना ने बीजापुर की सहायता के लिए एक रक्षा-पंक्ति बना ली। उनके पीछे-पीछे स्वयं महाराज, हम्बीरराव और आनन्दराव को साथ लेकर सोलह हज़ार सैनिकों सहित मोरोपन्त की सहायता के लिए आ गये।

अब तक वज़ीर मसूद ने घबराकर दिलेर ख़ाँ से समझौते की बातचीत शुरू कर दी थी। मराठा सेना की कुमक के पहुँचते ही यह समझौता-वार्ता टूट गयी। बीजापुर हथियाने की ज़िद पर अड़े हुए दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ हलसंगी से रवाना होकर बहमनहल्ली पर डेरा डालकर बैठ गये। सम्भाजी पीछे रह गये थे, क्योंकि दिलेर ख़ाँ ने उनको रसद पहुँचाने की ज़िम्मेदारी सौंपी थी।

एक-एक पड़ाव तेजी से चलते हुए शिवाजी महाराज बीजापुर के पास बसे शिवापुर नामक गाँव तक आ पहुँचे थे। उन्होंने अपना दूत वज़ीर मसूद के पास भेजा और सन्देश भिजवाया कि 'हमें सेनासहित बीजापुर के क़िले में आने दो।' परन्तु मसूद के सलाहकार ने उसे चेतावनी दी, 'ऐसा करना ख़तरे की बात है। पठान दिलेर ख़ाँ तो दूर ही रह जाएगा, मराठे ही क़िले पर क़ब्ज़ा कर बैठेंगे।' मसूद ने महाराज को सन्देशा कहला भेजा : 'आप चार-पाँच सौ सैनिक लेकर बीजापुर के क़िले में आ सकते हैं।'

परन्तु उसकी यह शर्त महाराज के लिए महँगी पड़ती थी। वास्तव में गुप्त बात तो यही थी कि दिलेर ख़ाँ को अधर में लटकाकर स्वयं महाराज ही बीजापुर को दबा लेना चाहते थे, परन्तु सिद्दी मसूद अब सावधान हो गया था। महाराज ने उसकी सहायता का जो मुखौटा लगाया हुआ था, वह अब उतार फेंका। उन्होंने मोरोपन्त को आदेश दिया, "लूट लो सारा आदिलशाही राज्य। जितने भी प्रदेश पर क़ब्ज़ा कर सको, क़ब्ज़ा कर लो और उसे अपने राज्य में मिला लो।"

महाराज ने मराठा सेना के दो दल बनाये। मोरोपन्त की सेना आदिलशाही में लूटमार मचाने लगी और स्वयं महाराज हम्बीरराव और आनन्दराव को अपने साथ लेकर मुग़ल प्रदेश में धरणगाँव, जालना की ओर चल पड़े।

सम्भाजी अनाज के बोरे, चारे की बैलगाड़ियाँ आदि रसद का सामान लेकर दिलेर ख़ाँ तक पहुँचाने निकले। वे सपरिवार और सेनासहित हलसंगी से रवाना हुए। इन्दी-तेरगल नगरों के बीच के रास्ते में साबाजी घाटगे नामक एक आदिलशाही सरदार के साथ अचानक उनकी मुठभेड़ हो गयी। साबाजी घाटगे दिलेर ख़ाँ की रसद काटने के लिए ही सम्भाजी पर चढ़ दौड़ा था। ज़ोरदार लड़ाई छिड़ गयी। साबाजी घाटगे और सम्भाजी दोनों मराठावंशीय सरदार थे, पर एक हथियार चला रहा था आदिलशाह के लिए और दूसरा पराक्रम दिखला रहा था मुग़ल सल्तनत के लिए।

इस मुठभेड़ में साबाजी घायल हो गया। वह जिस तेज़ी से आया था, उसी तरह भाग गया। अन्त में रसद का वह क़ाफिला बहमनहल्ली पहुँच ही गया।

दिलेर ख़ाँ वर्षा की बूँदाबाँदी बन्द होने की प्रतीक्षा कर रहा था। चारों ओर से उसकी सेनाएँ इकट्ठी हो रही थीं। उसके दिल में अरमान थे कि सर्जा ख़ाँ और सम्भाजी की सहायता से वह मुग़ल सल्तनत की ताक़त का करिश्मा दिखलाये। उसकी तथा कई मराठा-सरदारों की बीच-बीच में कई जगहों पर मुठभेड़ें होती रहती थीं। इतने में उसने मुग़लाई प्रदेश से आयी धक्का देनेवाली पहली ख़बर सुनी : "धरण गाँव लूट लिया गया है।"

https://t.me/Sahityajunction

बरसात कूच कर गयी, सर्दी ने डेरा लगा लिया। सम्भाजी बहमनहल्ली के पड़ाव में उस डेरे में शॉल ओढ़े एक खाट पर बैठे थे। यह डेरा उनके ज़नाने के लिए सुरक्षित था। सम्भाजी की दृष्टि चिराग़दान की ओर लगी हुई थी। सारी छावनी रात्रि की गोद में शान्त सोयी हुई थी। केवल पठान पहरेदारों की आवाज़ें बीच-बीच में सुनाई देती थीं। राणूदीदी का डेरा निकट ही था। उस डेरे में शिशु मदनसिंह को साथ लिये दीदी सो रही थीं। आज सम्भाजी के मन में रह-रहकर येसूबाई की याद आ रही थी और उस जलते चिराग़दान की लौ में उन्हें येसूबाई के अनेक रूप दिखलाई दे रहे थे। वे अपने आप को भूले हुए ज्योति की ओर अपलक दृष्टि से देखे जा रहे थे।

इतने में अन्तःपुर के दरवाज़े का झीना परदा हिल उठा और एक तबक़ हाथ में लिये हुए दुर्गाबाई भीतर आयीं। वे ठिठककर कुछ देर सोचती खड़ी रहीं कि अपनी उपस्थिति का भान 'श्रीमान्‌जी' को कैसे कराया जाय। फिर मन्द गति से चलती हुई सम्भाजी के सामने आ खड़ी हुईं। उन्हें देखते ही सम्भाजी के मन में एक भाव बार-बार टक्कर मारने लगा—'इन्हें साथ नहीं लाना चाहिए था। कितनी दुर्दशा हो रही है इनकी!'

"तुम! तुम हमेशा बिल्कुल मौन रहकर हमारे पीछे चली आती हो। हम बहुत लज्जित हैं कि तुम्हारी किसी चाह-उमंग को पूरा नहीं कर सके।"

दुर्गाबाई धीरे से हँस पड़ीं। हाथ में पकड़े तबक़ में जो कटोरा रखा था, उसकी भाप की ओर देखकर वे कहने लगीं, "हमने सब कुछ पा लिया है। आपके चरणों की सेवा करने के सौभाग्य से बढ़कर हमारी और कोई रुचि या चाह नहीं है, परन्तु...परन्तु"

"परन्तु क्या? स्पष्ट कहो।"

"ये पठानों के साथ भागते-दौड़ते, मारे-मारे फिरना अच्छा नहीं लगता। बड़ी रानीजी की याद आते ही हमारा जी कसकने लगता है।" दुर्गाबाई ने अपने मन की कसक कुछ भिन्न रीति से कह सुनायी।

सम्भाजी बेचैन हो उठे। फिर विषय टालने की दृष्टि से बोले, "यह क्या लायी हो?"

दुर्गाबाई तब़क आगे बढ़ाकर बोलीं, "कुलथी की कढ़ी है। गरम-गरम पी लीजिए, नहीं तो ठण्डी हो जाएगी।"

सम्भाजी ने एक बार कटोरे से उठनेवाली भाप की ओर देखा और फिर दुर्गाबाई को एकटक देखने लगे। उनकी आँखें इस समय डबडबा आयी थीं। इस समय दुर्गाबाई उन्हें येसूबाई ही दिखलाई दे रही थी। "लीजिए न!" वह हँसी भी बिल्कुल येसूबाई के समान थी। सम्भाजी के कटोरा उठाया और दुर्गाबाई के मुख की ओर ले जाते हुए वे कहने लगे, "लो, तुम भी पीकर देखो, बहुत अच्छी बनी है।" दुर्गाबाई हड़बड़ा गयी थीं। पूछ बैठीं, "पर आपने तो अभी कढ़ी पी ही नहीं, फिर अच्छी स्वादिष्ट बनी है, यह आपने कैसे जाना?"

"अजी हम जान गये हैं। तुम पीकर तो देखो।"

दुर्गाबाई ने कढ़ी की एक चुसकी ली। सम्भाजी ने कटोरा उनके मुँह से हटाकर अपने होठों से लगाया। कढ़ी पीते समय उनके मन में आ रहा था कि अब यह सामने खड़ी सुन्दरी कहे—'लीजिए न, हमारे होठों से छूने के कारण यह कड़वी नहीं हो गयी है।'

"आओ, बैठो यहाँ।"

https://t.me/Sahityajunction

दुर्गाबाई ने तबक़ चौकी पर रख दिया और वे सम्भाजी के पास बैठ गयीं। दो राजमनों से उठी प्रेम की तरंगें हिलोरें लेने लगीं।

कड़ाके की सर्दी के कारण छाये हुए कोहरे को छेदते हुए पठान फ़ौजें बीजापुर की ओर चल पड़ीं। सेना के आगेवाले हाथी पर सेनापति दिलेर ख़ाँ, सम्भाजी तथा सर्जा ख़ाँ सवार थे।

राणूबाई और दुर्गाबाई अन्य पठान स्त्रियों के साथ डोलियों में सवार होकर चल रही थीं। सशस्त्र पठान-सैनिकों के बीच ये डोलियाँ आगे बढ़ रही थीं। मुग़ल फ़ौजें बीजापुर से पाँच कोस की दूरी तक पहुँच गयीं और उन्होंने वहाँ डेरा डाल दिया। मराठों की टोलियाँ बीच-बीच में झपट्टे मारकर मुग़ल-सेना को परेशान किये थीं। उधर बीजापुर में तूफ़ान आ गया था। सब समझ बैठे थे—अब आदिलशाही के दिन पूरे हो गये। पठान सेनापति बीजापुर की मौत बनकर आया है।

दिलेर ख़ाँ शान्त रहकर बीजापुर को घेरने की योजनाएँ बना रहा था। औरंगाबाद से शाहआलम के भेजे ख़लीते भी उसे एक के बाद एक मिल रहे थे—'शीवा मुग़लाई में घुस आया है। फ़ौज को तुरन्त लौटाकर अपने मुल्क की रखवाली करो।' परन्तु दिलेर ख़ाँ इन सब ख़लीतों को सन्दूक में बन्द कर देता था। बीजापुर उसके होठों तक आ चुका था, उसे वह सीधी तरह से भला कैसे छोड़ देता!

उसने बीजापुर के वज़ीर मसूद को एक अन्तिम ख़लीता भेजा। अब उसकी सेनाएँ उत्तर की प्रतीक्षा में तैयार खड़ी थीं और किसी दम भी उनके बीजापुर पर टूट पड़ने की सम्भावना थी। दिलेर ख़ाँ मन-ही-मन ख़ुश था और औरंगज़ेब के सामने यह साबित कर दिखाना चाहता था कि दक्खिन की सूबेदारी का सही हकदार वही है और शहज़ादे को उत्तर भारत में नियुक्त किया जाना चाहिए। परन्तु शिवाजी महाराज ने उसके सपने हवा कर दिये। उन्होंने औरंगाबाद से केवल पाँच पड़ावों की दूरी पर बसी जालना नामक एक दृढ़ मुग़ल सैनिक-छावनी को दिन-दहाड़े लूट लिया। पूरा जालना धधक रहा था। शाहआलम ने दिल्ली दरबार को ख़लीता भेजा और इस अपमान की सारी ज़िम्मेदारी दिलेर ख़ाँ के मत्थे मढ़ दी।

परिणाम यह हुआ कि दिल्ली से दिलेर ख़ाँ के नाम एक फरमान आया, जिसमें उसे डाँट पिलायी गयी थी। हुक्म था : 'क़ाफिर का हमला रोको। पीछे हट जाओ!'

दिलेर ख़ाँ जल-भुनकर रह गया। फरमान के काग़ज़ को तोड़ता-मरोड़ता हुआ वह भुनभुनाने लगा, "इस शहज़ादे और शीवा ने सब मिट्टी में मिला दिया।"

फ़ौज की छावनी लम्बे समय की दृष्टि से मज़बूती से बनायी गयी थी, पर दिलेर ख़ाँ ने हुक्म दिया, "उखाड़ दो डेरे और शामियाने। मिरज़ की ओर लौटो और वहाँ मोर्चा लगाओ। पूरे आदिलशाही राज को लूट-पाटकर तबाह कर डालो।"

आदेश पाते ही पठानों की टोलियाँ आग लगाती हुई, लूट-पाट मचाती हुई मिरज की ओर चल पड़ीं। इख़लास ख़ाँ, इरज ख़ाँ और ख़ैरत ख़ाँ सेना के आगे थे।

दिलेर ख़ाँ, सम्भाजी और सर्जा ख़ाँ के बे-लगाम दौड़ते घोड़ों की टापों के नीचे गाँव-के-गाँव तहस-नहस हो रहे थे। माखनापुर, जालगिरि, होनवाड, तेलंग आदि गाँवों को बुरी तरह लूटा गया। हर गाँव में दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ निरपराध हिन्दुओं को पकड़ लेते थे और मोटी-मोटी

https://t.me/Sahityajunction

रस्सियों में ढोरों की तरह उन्हें बाँधकर बेइज़्जती करते हुए रास्तों में जुलूस निकालते थे और बड़ी दुर्गत बनाते थे। सम्भाजी यह सब खुली आँखों से देखते थे, पर दिल मसोसकर रह जाते थे। सब रास्ते बन्द हो चुके थे, इसलिए वे अपने आप ही चिढ़ते-कुढ़ते थे। पीछे पठानों के जनानख़ाने के साथ दीदी भी यह सब देखती-सुनती थीं और रोष तथा सन्ताप से झुलस रही थीं। पर वहाँ था ही कौन जिसे अपना कहा जाए? बेचारी विवश होकर मन की आग को मन में ही दबा रखती थीं।

बीच में तिकोटा नामक गाँव आया। दिलेर ख़ाँ के पागल बने सैनिकों ने हर घर में घुसकर लूट मचानी शुरू की। पूरा गाँव दिन-दहाड़े जल रहा था—धधक रहा था। सर्जा ख़ाँ के सैनिक आज उस हद से आगे बढ़ आये थे, जहाँ से आगे वे अब तक नहीं बढ़े थे। उन्होंने बेघर और बेआसरा हिन्दू स्त्रियों की इज़्ज़त लूटनी शुरू कर दी। पठान और मुग़ल सैनिक भी 'लौंडी, रण्डी' कहते हुए पगलाये हुए के समान गलियों-कूचों में दौड़ रहे थे। वे खोजते फिरते थे कि कोई हिन्दू औरत मिल जाय। इस भीषण आक्रमण से घबराकर तीन सौ स्त्रियाँ 'बचाओ-बचाओ' रोती-चिल्लाती हुई कुओं-बावड़ियों में कूद पड़ीं। आकाश का हृदय भी फट गया था। उस शाम को सूर्य के लाल बिम्ब से जो लाल प्रकाश फैल रहा था, वह भी शायद ख़ून के आँसू रो रहा था।

दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ पर तो लूटपाट, अत्याचार और भाग-दौड़ की धुन सवार थी। वे तिकोटा गाँव से चलकर अथणी नामक गाँव की ओर आगे बढ़ गये। सम्भाजी पीछे-पीछे अपनी फ़ौज साथ लिये अथणी की ओर बढ़े जा रहे थे, परन्तु उनका सिर सन्ताप और क्रोध से फटा जा रहा था—जैसे कोई भीतर से घन चला रहा हो। इसी क्षोभ के कारण अचानक घोड़े को ज़ोरदार एड़ लगती थी और वह जानवर हिनहिनाकर चारों पाँवों से दौड़ने लगता था।

सम्भाजी अथणी नगर पहुँचे। पूरा शहर जल रहा था। सम्भाजी ने हाथ उठाकर पीछे की सेना को ठहर जाने का संकेत किया। अथणी की वह आग अब उनकी आँखों में उतर आयी थी और सारे तन-मन में फैल रही थी। 'भोसले' की धमनियों का ख़ून खौलने लगा था।

सम्भाजी ने पीछे मुड़े बिना ही अपनी सेना के एक-एक सरदार को नाम लेकर पुकारा और उन्हें सामने बुला लिया। सबको दहकती आँखों से देखते हुए उनकी ज़ुबान से चाबुक की फटकार की-सी तेज़ आवाज़ निकली, "ख़बरदार अगर किसी ने गाँव में क़दम रखा तो। फ़ौज को यहीं रोके रखो।"

फिर शक्तिशाली पच्चीस सैनिकों को चुनकर सम्भाजी ने अलग किया और गरजकर बोले, "चलो, आओ हमारे पीछे।" फिर वे लगाम खींचते हुए तेज़ी से घोड़ा दौड़ाते हुए अथणी में घुसे। उस जलते हुए अथणी नगर में से वह 'भोसला' वीर तीर के समान चला जा रहा था। उनका आज का रूप कुछ और ही था।

सारे नगर को राख बनाकर दिलेर ख़ाँ, सर्जा ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ एक वृक्ष के नीचे घोड़े पर सवार, ठहरे हुए थे। कुछ पठान सैनिक उनके सामने लूट का माल अलग-अलग करके रख रहे थे। सम्भाजी झपटते हुए आये और सीधे दिलेर ख़ाँ के सामने जा खड़े हुए।

"आइए, राजाऽ!" पठान हँसता हुआ घोड़े से उतर पड़ा।

"ख़ान, हम पूछते हैं कि ये सब क्या हो रहा है?" सम्भाजी की अचानक बदली हुई आवाज़ और धमकी-भरे स्वर से सभी आश्चर्यचकित हो उठे। सर्जा ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ भी घोड़े से

https://t.me/Sahityajunction

उतर पड़े।

"क्यों, क्या हुआ?" भौंहें तानकर दिलेर ख़ाँ गुर्राया।

"हमारी आँखों के आगे हमारी रियाया कुत्ते की मौत मारी जा रही है। औरतों की इज़्ज़त लूटी जा रही है। क्या है ये?"

"किसकी रियाआ? तुम्हारी?" पठान गरदन पीछे झुकाकर ठहाका मारकर हँसने लगा।

"पठान! हम तुमसे क़ैफ़ियत पूछ रहे हैं।" सम्भाजी की तेज़ फटकार से दिलेर ख़ाँ की बे-लगाम हँसी एकदम रुक गयी।

"क़ैफ़ियत? हमें क़ैफ़ियत तलब करने की आदत है, देने की नहीं। अपनी हैसियत समझकर बात करो।" पठान की गरदन साँप के फन के समान तन गयी थी।

"कैसी हैसियत? तुम्हारी पठानी औरतों की इसी तरह बेइज़्ज़ती की जाय, तो...?"

"ज़बान सँभालो राजा। पठानों के ज़नानख़ाने को क़ाफ़िरों का ज़नानख़ाना मत समझो। बहादुर पठान अपने ताक़तवर हाथों से ज़नानख़ाने की रखवाली करते हैं। यह मत भूलो कि तुम एक मामूली सात-हज़ारी मनसबदार हो और हम हैं सालारे-दक्खन। क्या भूल गये हो कि तुम्हारा ज़नानख़ाना इस वक़्त हमारे क़ब्जे में है? होश में आओ।"

"खाऽमोश।" सम्भाजी क्रोध से काँपते हुए तलवार म्यान से निकालकर सीधा दिलेर ख़ाँ की ओर दौड़े। दिलेर ख़ाँ ने बातें ही ऐसी कही थीं, जो उनके हृदय को चीर गयी थीं।

"होश में आओ। सँभालो।" कहते हुए सर्जा ख़ाँ लपककर आगे बढ़ा और उसने सम्भाजी का हाथ पकड़ लिया। इसी दम इख़लास ख़ाँ, ख़ैरत ख़ाँ और इरज ख़ाँ की पठानी तेग़ें भी म्यान से बाहर आ गयी थीं, दिलेर ख़ाँ ने इशारा करके सबको तेग़ नीची करने का आदेश दिया।

फिर दिलेर ख़ाँ अत्यन्त शान्त और गम्भीर स्वर में कहने लगा, "सुना था कि तुम्हारे अब्बाजान ने शहंशाह के दरबार में अपना गर्म मिजाज दिखलाया था। वाकई तुम उसके ही सच्चे फर्ज़न्द मालूम पड़ते हो।"

ख़ुद दिलेर ख़ाँ के मुख से अपने आबासाहब का उल्लेख सुनकर, सम्भाजी का रोम-रोम काँप उठा। मन का संयम ढलने लगा—अपमान, सन्ताप, चिढ़, ग्लानि, खेद और विवशता के विविध भाव उनके भावों पर छा गये। अब दिलेर ख़ाँ के सामने खड़ा रहना भी उनके लिए असम्भव हो गया। वे एकदम घूम पड़े और चीते की तरह झपटकर घोड़े पर सवार हो गये। घोड़ा सरपट भागने लगा। उनका पीछा करने की दृष्टि से इख़लास ख़ाँ, ख़ैरत ख़ाँ और इरज ख़ाँ भी कूदकर घोड़ों पर सवार हो गये, पर दिलेर ख़ाँ ने उन्हें रोक लिया। बोला, "अभी जवाँ मर्द है, ज़ुबान चलाना जानता है। थोड़ी देर में ख़ुद ठण्डा हो जाएगा।"

शाम होते ही दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ की फ़ौजें ऐनापुर की ओर रवाना हो गयीं। उस रात अथणी के निकट की एक पहाड़ी तलहटी में सम्भाजी का पड़ाव था। ख़िदमतगारों ने सम्भाजी के लिए एक डेरा बना दिया था। वे उसी में बड़ी बेचैनी से चक्कर काट रहे थे। अथणी नगर की राख भी अब रात के काले अँधेरे में खो गयी थी।

एक-एक विचार मानो हाथ में कोड़ा लेकर आ रहा था और सम्भाजी पर बड़ी निर्दयता से प्रहार कर रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

‘तुम एक मामूली मनसबदार हो! किसकी रियाया? इसे क़ाफ़िरों का ज़नानख़ाना मत समझो...। दिलेरख़ाँ—दिलेर ख़ाँ पठान—कौन दिलेरख़ाँ? कहाँ का? किस देश का?’ माँजरा के पठार पर छटपटाते हुए सैकड़ों हाथ! तिकोटा गाँव के कुओं में तैर रही सैकड़ों फूली हुई लाशें!... जलकर राख बनी घर-झोंपड़ियाँ!...तड़पते...चीखते हुए लोग! ‘मर गये’, ‘बचाओ’ की आवाज़ें —‘युवराज, क्यों आ गये इस गन्दगी में?’ प्यार से पूछनेवाली वह तिकोनी पगड़ी!...एक दिन पछताना पड़ेगा!...तुम एक मामूली मनसबदार हो!...होश में आओ...तुम्हारा ज़नानख़ाना हमारे क़ब्ज़े में है!...गढ़ जीत आये तुम? कैसे उतारें तुम्हारी आरती, कुछ समझ नहीं आता।...तुम भावावेश में कुछ का कुछ कर बैठते हो, फिर उससे बाहर नहीं निकल पाते हो...दीदी...‘हम आप पर हथियार नहीं उठा सकते।’...ममता और विनम्रता से भरा यह उत्तर...फिरंगोजी नरसाला...‘हम क़िला जीते बग़ैर पीछे नहीं हटेंगे।’

‘नहीं चाहिए हमें यह मनसब! ये जकड़ देनेवाले ‘ख़िलअत’ के वस्त्र भी नहीं चाहिए हमें। यहाँ से निकल जाएँ...पर जाएँ कहाँ? अपने देश में—? हाँ, ठीक है। वहाँ हमें कोई मामूली मनसबदार तो नहीं कहेगा। तो...जाएँ? पर कौन-सा मुँह लेकर जाएँ? इन अपने हाथों से ख़ुद हमने ही सारे सहारे तोड़ डाले हैं...हम उस महापुरुष से विदा हुए...बड़े जोश से कहा था—हम लौटेंगे सह्याद्रि पर्वत-शृंखला को जीतने के लिए।’

‘...आज समझ आया कि जो लोग सह्याद्रि को जीतने का दम भरते हैं, वे मुँह की खाते हैं और जो उसकी शरण में आते हैं, उन्हें यह सह्याद्रि पर्वत निराश नहीं लौटाता। पर...कौन-सा मुँह लेकर जाएँ? ओह, आज हमने जीवन की पूरी पराजय भोग ली। क्या...क्या कर बैठे भला हम यह?’ भन्नाते हुए सिर को हाथों में दबाकर सम्भाजी खाट पर बैठ गये। चारों पैरों में दंदानेदार शिकंजा कसे हुए हाथी की जो हालत होती है, वैसी ही हालत सम्भाजी के रास्ता भूले हुए मन की हो रही थी।

“युवराज...” डेरे के दरवाज़े से कातर स्वर में किसी ने पुकारा। सम्भाजी ने सिर उठाकर देखा, महादजी दरवाज़े में खड़े थे।

“कृपा करके आप इस समय यहाँ से चले जाओ। हमें अकेला रहने दो। हमारे घावों पर नमक छिड़कने का प्रयत्न मत करो।” सम्भाजी झल्लाकर बोले।

महादजी दबी आवाज़ से कहने लगे, “अब हम तुम्हें अकेला छोड़ ही नहीं सकते। सुनो, हम तुम्हारे ज़ख़्मों पर नमक छिड़कने नहीं आये हैं, खाये हुए नमक का कर्तव्य पूरा करने आये हैं।”

“क्या मतलब?”

महादजी की दबी हुई आवाज़ अब खुसफुसाहट में बदल गयी थी। वे एकदम निकट आकर कहने लगे, “युवराज, तुम्हारे साथ धोखा हुआ है। पठान को दिल्ली-दरबार से हुक्म मिला है कि तुम्हारी मुश्कें कसकर तुम्हें दिल्ली भेजा जाय। अब यह पठान-सेनापति तुम्हारे झगड़े का बहाना बनाकर किसी भी पल तुम्हें क़ैद कर लेगा। ठण्डे दिमाग़ से काम लो। जो कुछ भी तुम्हें करना हो, अत्यन्त सावधानी और शीघ्रता से करो। आज की रात ही छावनी से निकल भागो। चाहे जहाँ जाओ, पर यहाँ से निकल जाओ। अच्छा, हम चलते हैं।” महादजी जाने लगे।

“जीजाजी!” सम्भाजी व्यथित होकर धीरे से कहने लगे, “हमने अपने बोलों से आपका दिल दुखाया है। हम लज्जित हैं।”

https://t.me/Sahityajunction

“उसका विचार मत करो। सावधान रहो।” महादजी बाहर के अँधेरे में ग़ायब हो गये।

अब सम्भाजी के मन में दूसरा ही विचार-चक्र घूमने लगा। वे बार-बार डेरे के दरवाज़े तक आकर देख रहे थे कि दीदी और दुर्गाबाई की डोलियाँ कहाँ तक आयी हैं। ख़ानसामे ने खाने की थाली चौकी पर ला रखी थी, पर वह थाली भी यूँ ही रखी हुई थी। तभी सम्भाजी को कोई विचार सूझा। उन्होंने बाहर पहरा दे रहे पठान पहरेदार को बुलाया और कहा, “नायक, तुम अपने फ़ौजियों को आराम करने दो। अगले पहरे के लोग हम तय करेंगे।”

“जी हुज़ूर,” नायक ने डेरे के चारों ओर सर्दी में पहरा दे रहे पठानों को आराम करने के लिए जाने दिया।

सम्भाजी के साथ सज्जनगढ़ से जो मावले-सैनिक आये थे, उनमें से कुछ सैनिक चुनकर सम्भाजी ने अपने डेरे के पहरे पर नियुक्त कर दिये। सर्दी काफी पड़ रही थी, इसलिए पठान झुण्ड बनाकर जगह-जगह पर अलाव जलाकर ताप रहे थे।

रात का पहला पहर बीत गया। हाँफते हुए कहारों ने राणूदीदी और दुर्गाबाई की डोली लाकर डेरे के पास रोक दी। राणूदीदी और छः महीने के नन्हे मदनसिंह को छाती से लगाये दुर्गाबाई डोली से उतरीं। मावले सैनिकों के मुजरों की ओर आज दीदी का ध्यान नहीं था। वे जल्दी-जल्दी चलकर डेरे में चली गयीं।

वहाँ सम्भाजी शॉल ओढ़े हुए खाट पर बैठे थे। उनके बाल बिखरे हुए थे। बिजली की गरज के समान भयदायक बोलों से वह डेरा गूँज उठा, “शम्भू, तुम्हारी करनी देख-सुनकर हमें शर्म आती है।”

“दीदी—तुम?”

“हाँ, हम ही हैं। हम आज तुम्हें अन्तिम रूप से जताने आयी हैं। हमने तुम्हारी सेनाओं का तिकोटी गाँव वाला पराक्रम अपनी आँखों से देखा है। अच्छी तरह सुन लो कि तुम्हारे ऐसे पराक्रम का साथ निभाना अब हमारे लिए सम्भव नहीं होगा।” जाड़ा पड़ रहा था, फिर भी दीदी क्रोध से सन्तप्त हो उठी थीं।

सम्भाजी उनके पास आये। सिर नीचा करके कहने लगे, “दीदी, तिकोटी का पराक्रम सर्जा ख़ाँ ने दिखाया है। दीदी, हम पूरी तरह भटक गये हैं, धोखा खा गये हैं। अब बस यह आज की रात ही हमारे हाथ में है।”

दीदी का क्रोध तुरन्त चिन्ता में बदल गया।

“क्या मतलब? तुम्हारी बात नहीं समझ सकीं हम।”

“दीदी, दिलेर ख़ाँ अब किसी भी समय हमें गिरफ़्तार करके दिल्ली भेज सकता है। उसे बादशाह का लिखित आदेश मिला है।”

“शम्भू भैया।” भय के कारण दीदी ज़ोर से चीख़ भी नहीं सकीं।

“शान्त होओ दीदी। हमें अपनी करनी का फल मिला, तो भी कोई बात नहीं। परन्तु हमें तो केवल आपकी चिन्ता है। अब आपको जैसे भी बने, इस छावनी से निकलना है। दिन निकलने से पहले ही निकल जाना होगा।”

दीदी स्तब्ध रह गयीं। उन्होंने एक नज़र अपने पीछे खड़ी लड़कौरी दुर्गाबाई की ओर देखा

https://t.me/Sahityajunction

और व्यथा-भरे स्वर में कहने लगीं, “तुम यह क्या कर बैठे शम्भू भैया?”

“दीदी, तुम दूर की यात्रा करके आयी हो, थक गयी होगी। अब जाकर आराम करो। हम देखते हैं कि क्या किया जाय!” सम्भाजी किसी आकस्मिक साहस से कह गये। इसके बाद उस डेरे में ऐसी भीषण शान्ति छा गयी कि जिसमें तीनों के हृदय भयाक्रान्त हो उठे।

दीदी और दुर्गाबाई खाट पर बैठ गयीं। दुर्गाबाई ने मदनसिंह को सुला दिया। तीनों सोच-चिचार में डूब गये थे, कुछ सूझता नहीं था कि क्या किया जाय। रात धीरे-धीरे बीत रही थी। तीन निराश प्राणियों की दृष्टि कभी एक-दूसरे की ओर देखती थी और फिर कहीं शून्य में जा टिकती थी। इसी अवस्था में आधी रात का समय हो आया। प्रहरी भीतर आया और कहने लगा, “मालिक, अपने देश से एक हरकारा आया है, अन्दर भेजूँ क्या?”

“हाँ, भेज दो!”

अर्जोजी यादव की टुकढ़ी का एक जासूस सम्भाजी के सम्मुख उपस्थित हुआ। सम्भाजी को तीन बार मुजरा करके उसने दो ख़लीते पेश किये। एक छत्रपति महाराज का भेजा हुआ था और दूसरा उनकी पुत्रवधू येसूबाई साहिबा का था।

छत्रपति ने लिखा था : ‘मुग़लाई में, आदिलशाही राज्य में या कुतुबशाही राज्य में तुम्हारा मनचाहा कभी नहीं हो पाएगा। यह पत्र पाते ही अपने देश आ जाओ। तुम्हारा यथायोग्य आदर-सम्मान किया जाएगा।’

येसूबाई ने लिखा था : ‘हम जो कुछ सुन पा रही हैं, इसे सुनना भी अब असह्य हो उठा है। आप तुरन्त इधर लौट आवें। यदि आप नहीं आये, तो हमें ही घोड़े पर बैठकर आपके दर्शन पाने आना पड़ेगा। आप अपना सोच-विचार करें या न करें, परन्तु साथ के स्त्री वर्ग का तनिक विचार करें।’

“किसने भेजे हैं?” दीदी ने धीमे स्वर से पूछा।

शॉल से पलकों के कोने पोंछते हुए सम्भाजी ने वे ख़लीते ही दीदी के हाथ में दे दिये। बोले, “अपने देश से आये हैं। एक आबासाहब का है, दूसरा युवराज्ञी ने भेजा है। लिखा है, वापस लौट आओ।”

जासूस ने देखा कि युवराज द्रवित हो उठे हैं, तो उसकी आशाएँ पल्लवित हो उठीं। साहस बटोरकर वह कहने लगा, “मालिक, हम तो चाकर लोग हैं फिर भी कहे बिना रहा नहीं जाता। आप अब महाराज को और अधिक कष्ट न दें। गाँव के सीमाद्वार के बाहर अपनी टोली डेरा लगाये पड़ी है, अगर आप निकलना चाहते हैं, तो...”

“वही करना चाहते हैं हम! तू झटपट टोली में वापस चला जा और हमारा सन्देश कह! कहना कि पौ फटने से पहले ही हम परिवार सहित वहाँ पहुँच जाएँगे। हमारी प्रतीक्षा करना। सँभलकर जा तू।”

“जी मालिक!” आज जासूस के कान धन्य हो गये थे। वह तेज़ी से बाहर चला गया।

रात बीतती जा रही थी। सम्भाजी ने बाहर पहरा दे रहे प्रहरी को आदेश देते हुए कहा, “जितने भी मावली सैनिक हैं, सबको तैयार रहने को कहो। हमारा आदेश पाते ही सबको कूच करना होगा।” सम्भाजी ने शॉल उतार दी। मनसबदारी के सब वस्त्र उन्होंने उतारकर ताक पर

https://t.me/Sahityajunction

रख दिये और सादे कपड़े पहन लिये। फिर डेरे के भीतरी कमरे की ओर इशारा करते हुए वे दीदी से बोले, "दीदी, भीतर पिटारे में रखी मर्दानी वेशभूषा पहन लो। स्त्री-वेश में इस छावनी से निकल पाना कठिन होगा।"

दीदी और दुर्गाबाई भीतर चली गयीं। दोनों ने ज़नानी वेशभूषा उतारकर मर्दाने पहनावे पहन लिये थे।

सम्भाजी ने एक बार बाहर आकर वहाँ की परिस्थिति का निरीक्षण किया। डेरे के पास ही तीन सौ मावले-सैनिक इकट्ठे थे। उनमें से सम्भाजी ने दस-बारह सैनिकों को चुन लिया और आदेश दिया, "हमारे निकलते ही तुम्हें हमारे पीछे-पीछे आना है। बाक़ी सब लोग यहीं ठहरेंगे और बाद में सूचना मिलते ही छावनी से निकलकर हमसे आ मिलेंगे।"

रात का चौथा पहर हो आया था। जाड़े की सुबह की बदन को काटनेवाली ठण्डी हवा बह रही थी। पठान यहाँ-वहाँ रावटियों में आराम से सोये पड़े थे।

सम्भाजी ने गले की भवानी माला का स्पर्श करके धीरे से एक बार 'जगदम्बे, हे जगदम्बे' का उच्चारण किया।

"चलो!" डेरे में से तीन पुरुष बाहर निकले। उनमें से एक की छाती पर दोहरा दुपट्टा बँधा हुआ था। चुने हुए सैनिकों ने डोली उठायी। सम्भाजी तेज़ी से चले जा रहे थे और उनके साथ ही दो और पुरुष भी लपकते हुए चले जा रहे थे। सब लोग ग्रामद्वार के निकटवर्ती मन्दिर तक आ पहुँचे।

अर्जोजी यादव की टोली का नायक तुरन्त आगे बढ़ आया और मुजरा करके बोला, "चल दें क्या?"

"ज़रा ठहरो," सम्भाजी ने डोलीवालों को सामने बुलाया।

"दीदी, डोली में बैठो।" डोली का परदा एक ओर को हटा। मर्दाना वेश पहने दीदी और दुर्गाबाई आगे बढ़ आयीं। सम्भाजी ने ज्यों ही झुककर दीदी के चरण हुए, 'भैया' कहते हुए राणूदीदी ने उन्हें उठाकर एकदम गले से लगा लिया। उनका गला भर आया था। सम्भाजी ने दुर्गाबाई की गोद में सोये हुए बालक 'मदन' के गालों को एक बार चूमा और बोले, "सँभलकर रहना।"

पुरुष वेशधारी वे दो राजस्त्रियाँ डोली में बैठ गयीं। चार सैनिकों ने डोली, उठायी। अन्य सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया और वह डोली चल पड़ी पन्हाला क़िले की ओर।

प्रातःकाल के मन्द प्रकाश में सम्भाजी न जाने कितनी देर तक उस दूर जाती हुई डोली को एकटक देखते रहे। छावनी में सूचना भेज दी गयी और इस सूचना के मिलते ही शेष मावले-सैनिक भी छावनी से छू-मन्तर हो गये और सम्भाजी से आ मिले। अब सम्भाजी तीन सौ सैनिकों को साथ लेकर सुबह की ठण्डी हवा को चीरते हुए दौड़े जा रहे थे बीजापुर की ओर। हाँ, बीजापुर की ओर ही जा रहे थे वे। छत्रपति महाराज को मुँह दिखाने का भी अब उनमें साहस नहीं था। उन्होंने सोचा था—बीजापुर के वज़ीर मसूद को मध्यस्थ बनाकर अपने देश में वापस लौटा जाय।

https://t.me/Sahityajunction

बीजापुर के नगर-द्वार के बाहर ही सम्भाजी ने अपनी अस्थायी घुड़सवार सेना को रोक लिया। घोड़े दो दिन तक लगातार दौड़ते रहे थे।

सम्भाजी ने अपनी टोली के एक जासूस को बुलाया। अपनी उँगली से अँगूठी उतारकर उन्होंने उसके हाथ में रखी और कहने लगे, "ये निशानी क़िले के पहरेदार को दिखा और वज़ीर मसूद ख़ाँ के सामने पेश होकर उनसे हमारा सन्देश कह। कहना कि हम स्वयं आये हैं और एक विशेष हेतु से उनसे मुलाकात करना चाहते हैं।"

"जी," जासूस मुट्ठी में अँगूठी दबाकर घोड़ा दौड़ाता हुआ बीजापुर में घुस गया।

सम्भाजी खड़े-खड़े बीजापुर को देख रहे थे और इस नगर को देखकर उन्हें अपने दादा शहाजी महाराज की याद आ रही थी। उनके जीवन के अन्तिम कई वर्ष इसी राज्य की सेवा में बीते थे। सम्भाजी को उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाया था।

जो जासूस नगर में गया था, वह सिद्दी मसूद का उत्तर ले आया था। वज़ीर ने उस जासूस के साथ अपने दस-बीस सैनिक भेज दिये थे और उत्तर भिजवाया था : 'तुरन्त चले आइए।'

सम्भाजी अपनी अस्थायी सेना के साथ बीजापुर के क़िले की ओर चल पड़े। घढ़े हुए बड़े-बड़े पत्थरों से बना, उस क़िले का परकोटा बहुत दृढ़ था। परकोटे के बुर्ज़ों पर सशस्त्र सैनिक हाथ में नंगी तलवार थामे हुए पहरा दे रहे थे।

सिद्दी मसूद ख़ाँ तक जब सम्भाजी के आने की सूचना पहुँची, तो वह अगवानी करने आगे आया। वह सम्भाजी के काले-काले बालोंवाली दाढ़ी को, भरे हुए तेजस्वी चेहरे को काफी देर तक देखता रहा—शायद वह शिवाजी के रूप का कुछ अनुमान करना चाहता था।

"आइए, शहज़ादे!" कहते हुए वज़ीर मसूद सम्भाजी से गले मिला और फिर हाथ पकड़कर उन्हें अपने महल की बैठक में उसने बड़े सम्मान से बैठाया।

"वज़ीर साहब, हमारी और पठान की अनबन हो गयी है। हम मुग़लाई छोड़ आये हैं।" सम्भाजी ने चर्चा प्रारम्भ की।

"ये हमने पहले ही सुन लिया है शहज़ादे और यही वजह है कि हम आपको इस क़िले में ले आये हैं। हम एक सुझाव आपके सामने रखना चाहते हैं। सुनेंगे आप?"

"ज़रूर सुनेंगे। कहिए।" सम्भाजी मसूद के चेहरे की ओर देखकर बात का कुछ अन्दाज़ लगाना चाहते थे।

"आप जल्द-से-जल्द अपने अब्बाजान के पास लौट जाइए। हमें ख़बर मिली है कि दिलेर ख़ाँ का एक दूत अब्दुल रज़ाक बड़ी फ़ौज लेकर यहाँ आ रहा है—आपको क़ैद करने के लिए। आपका यहाँ रहना ख़तरे से खाली नहीं है, और आपको यहाँ रखना ख़ुद हमारे तख़्त के लिए भी धोखे की बात है। अब सोच लीजिए आप।"

इसी सिद्दी मसूद के राज्य को कुछ दिन पहले शिवाजी महाराज ने लूटा था और स्वयं सम्भाजी ने दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ के साथ मिलकर इसे रगड़ मारा था। वही मसूद आज सावधानी की सलाह दे रहा था।

पर सच बात यह थी कि वह सम्भाजी को आश्रय देकर दिलेर ख़ाँ और शिवाजी जैसे दो-दो बलशाली शत्रुओं को अपने राज्य पर आक्रमण करने का अवसर नहीं देना चाहता था। इसी तरह

https://t.me/Sahityajunction

ख़ुद ही जाल में आ फँसे सम्भाजी को धोखे से गिरफ़्तार करके वह उन दोनों के क्रोध का निशाना भी बनना नहीं चाहता था। इसीलिए उसे सामने बैठे सम्भाजी 'सोने की कटार' के समान दिखाई दे रहे थे। यह कटार थी तो मोहक और तेज़ परन्तु फिर भी छाती से लगा लेने योग्य नहीं थी।

मसूद की सलाह सुनकर सम्भाजी सोच में पड़ गये। अब समय व्यर्थ गँवाने का अर्थ था—अब्दुल रज़ाक से भिड़न्त। उनके सभी रास्ते बन्द हो चुके थे। उनके पास इतना भी समय नहीं था कि मसूद की मार्फ़त महाराज से बातचीत की जाय। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। फिर उन्होंने मन-ही-मन कुछ तय कर लिया और बैठक से उठते हुए बोले, "तो ठीक है वज़ीर साहब! हमें विदाई के बीड़े दीजिए, हम चलते हैं।"

वज़ीर मसूद ने सन्तोष की साँस ली। आगे बढ़कर सम्भाजी का हाथ अपने हाथ में लेकर वह कहने लगा, "यह शाही महल है, शहज़ादे। यहाँ आपके एहतिमाम में कोई कमी नहीं होगी।"

मसूद ने ताली बजायी और एक कर्मचारी हाज़िर हुआ। मसूद ने उसके कानों में फुसफुसाकर कुछ कहा। वह कर्मचारी बाहर चला गया।

थोड़ी देर में वस्त्र से ढँके तबक़ लेकर कुछ ख़िदमतगार महल में हाज़िर हुए। उन तबक़ों की ओर देखकर वज़ीर मसूद बोला, "ये नज़राना है हमारी ओर से राजा शिवाजी के फर्ज़न्द की ख़िदमत में। अपने कुछ सैनिक भी हम आपके साथ भेज रहे हैं।"

पोशाक, बिछावन आदि भेंट की वस्तुओं से तबक़ भरे हुए थे। सम्भाजी जब स्वीकार करने की प्रथा के अनुसार उन तबक़ों को हाथ से छूने लगे, तो उन्हें जैसे काठ मार गया...क्योंकि वज़ीर को देने के लिए सम्भाजी के पास नज़राने की चीज़ें थीं ही नहीं। अब तो वे सातहज़ारी मुग़ल-मनसबदार भी नहीं थे। ख़ैर, सम्भाजी ने सिद्दी मसूद से विदा ली और वे क़िले से बाहर निकल पड़े। अब वे हज़ार-डेढ़ हज़ार की सेना के साथ पन्हाला क़िले की दिशा में दौड़े जा रहे थे।

घोड़ा दौड़ रहा था। उसके खुरों से होनेवाली खड़खड़ाहट की आवाज़ में सम्भाजी का राजमन भी बार-बार लड़खड़ा रहा था। मराठा राज को छोड़ देना भी उनके लिए आसान काम नहीं था, पर उससे भी कठिन काम लग रहा था—उस राज में वापस लौट जाना। घोड़े की दौड़ के साथ-साथ सैकड़ों विचार भी सम्भाजी के मन की लगाम फटकारते हुए चाबुक का प्रहार कर रहे थे :

'अब आबासाहब हमें कौन-सी सज़ा देंगे? घोड़े के पैरों से बाँधकर घसीटे जाने की? या फिर पैरों में बेड़ियाँ पहनाकर ज़िन्दगी भर क़ैदखाने में पटक देने की? क्या वे हमारे हाथ कटवा देंगे? या टकमक नामक ऊँचे पहाड़ी कगार पर से गहरी घाटी में ढकेल देने की सज़ा देंगे? या हमें तोप के मुँह से बाँधकर हमारे टुकड़े-टुकड़े उड़ा दिये जाएँगे?

'अब दण्ड चाहे कोई भी हो, हम उसे उनका प्रसाद मानकर माथे पर चढ़ाएँगे। हमारी यह देह, जो मुग़ली ख़िलअत पहनकर भ्रष्ट हो चुकी है, अब यदि पवित्र हो सकेगी, तो उस दण्ड से ही पवित्र हो पाएगी। हमारी केवल एक ही इच्छा है—महाराज साहब हमें कोई भी दण्ड क्यों न दें, बस एक बार ये आँखें उनके दर्शन पा जाएँ। आज पूरे तीन साल हो गये, हमारे नेत्र तरस कर रह गये हैं उनके पावन चरणों के दर्शनों के लिए।

https://t.me/Sahityajunction

'हमसे जो भी अयोग्य व्यवहार हो चुका है, उसके बारे में हमें कोई सफाई नहीं देनी है। हमारे कान प्यासे हैं एक बार 'शम्भू बेटे' की प्यार-भरी पुकार सुनने को। हृदय उमड़ा आता है।

'बस, यही एक आस मन में लिये हम पन्हाला जा रहे हैं। शेष सारी आशाएँ चूर-चूर हो चुकी हैं। 'शम्भु'—इस नाम की पवित्रता पर हमने अपने इन अपावन हाथों से कालिख पोत दी है। इस बहके हुए व्यवहार से हमने सारी सुव्यवस्था ही पानी में बहा दी है। ओह, हमने महाराज साहब के परिवार में जन्म लेकर भी उन्हें ऐसी अपार मर्मान्तक पीड़ा दी है कि जैसी नेताजीराव या प्रतापराव ने भी नहीं दे होगी। अब भला हम किस मुँह से उनसे अभयदान माँगें? पर अभयदान की तो बात सोचना भी व्यर्थ है।

'पर...परन्तु क्या आबासाहब हम जैसे कलमुँहे से मिलना चाहेंगे? क्या वे हमारा यह अभागा मुँह फूटी आँख भी देखना चाहेंगे? या फिर इस बार भी हमारा दुर्भाग्य ही सदा के समान बाज़ी मार ले जाएगा? नहीं, नहीं। हम किसी के मनसबदार नहीं हैं। युवराज भी नहीं हैं। हम बस एक मनुष्य हैं, एक 'भोसला' हैं। अपने मुँह पर ताला लगाकर और सिर नीचा करके ही क्यों न हो, हमें अपने जन्मदाता के दर्शन करने का अधिकार अवश्य है। हम अपने प्राण देकर भी इस अधिकार को प्राप्त करेंगे। इतने पर भी महाराज साहब नहीं मिले, तो हम भीतर ही घुट-घुटकर मर जाएँगे।'

जैसे जगंल में आग लगने पर आग की लपटों से और धुएँ के बादलों से व्याकुल होता हुआ चीता यहाँ-वहाँ दौड़ता फिरता है, इसी प्रकार सम्भाजी के मन की अवस्था हो गयी थी। विचारों और शंकाओं की दावाग्नि से बाहर निकलने का मार्ग ही न सूझ पाता था। ऊपर सवार सुन्न और चेतनाशून्य बना हुआ था, और उधर एड़ खा-खाकर घोड़े के मुँह से झाग निकल रही थी।

घनी झाड़ियों से घिरी हुई पन्हाला क़िले की तलभूमि आयी। सम्भाजी ने अस्थायी सेना को वहीं रोक दिया और एक सैनिक को ऊपर क़िले में सूचना देने के लिए भेजा।

समाचार सुनकर सारा दुर्ग थर्रा उठा। 'युवराज लौट आये'—यह समाचार जगंल की आग की तरह चारों ओर फैल गया। लोगों के ठट-के-ठट क़िले के चौ-दरवाज़े की ओर जाने लगे।

क़िलेदार, विट्ठल त्र्यम्बक महाडकर, हवलदार बहिर्जी इंगले, हिरोजी, फर्ज़न्द, कृष्णाजी और सोमाजी बंकी आदि लोगों को साथ लिये चौ-दरवाज़े की ओर चल पड़े। विट्ठलपन्त ने नीचे सन्देश भिजवाया : 'संकोच न करें। पूरी सेना के साथ ऊपर चले आइए।'

सम्भाजी अपनी सेना के साथ पन्हालगढ़ चढ़ने लगे और चार बड़ी-बड़ी कमानोंवाले इस चौ-दरवाज़े के पास आये। नेताजी पालकर जब लौट आये थे, तब रायगढ़ के लोग उन्हें देखकर बहुत चकरा गये थे, हड़बड़ा उठे थे, परन्तु आज सम्भाजी को देखकर पन्हालगढ़ के लोग तो पूरी तरह से सकपका गये थे। वे आँखें फाड़-फाड़कर देखे जा रहे थे।

क़िलेदार विट्ठलपन्त आगे बढ़े, परन्तु कुछ देर असमंजस में पड़े रहे—'मुजरा किया जाय या नहीं?' पर अगले क्षण ही उन्होंने निश्चय कर लिया और 'युवराज का स्वागत है,' कहते हुए उन्होंने तीन बार मुजरा किया। क़िलेदार द्वारा मुजरा करने पर भीड़ के शेष लोगों को भी अब होश आया और वे भी मुजरा करने लगे। केवल हिरोजी फर्ज़न्द चुपचाप खड़ा था। सम्भाजीक़िलेदार के पीछे चलकर उपरिकोट में आये। किसी विशेष राज-अतिथि के आने पर हमेशा नौबत बजने की प्रथा थी पर वह नौबत आज नहीं बजी थी।

https://t.me/Sahityajunction

उपरिकोट का बैठक महल आया। सम्भाजी जूते उतारकर महल में प्रविष्ट हुए। धीमी आवाज़ में विट्ठलपन्त से कहने लगे, "क़िलेदार, रायगढ़ को एक ख़लीता भेजो। लिखो कि हम परिवार सहित पन्हालगढ़ में आ गये हैं।"

विट्ठलपन्त अब तक तो सिर उठाकर बात कर रहे थे, पर अब सम्भाजी की आज्ञा सुनकर उन्होंने गरदन नीचे झुका ली। उन्होंने सम्भाजी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उनके इस आचरण पर सम्भाजी का ध्यान गया और वे आवाज़ ऊँची करके फिर कहने लगे, "हमने जो कहा, वह तुमने सुना या नहीं? तुरन्त ख़लीता भेजो।"

"जी, ख़लीता तो भेजेंगे परन्तु..." विट्ठलपन्त की आवाज़ गिर गयी थी।

"परन्तु क्या?"

"कैसे कहें, हमारी जीभ अटकी जाती है। युवराज, हम तो चाकर लोग हैं, राजकुल की कोई भली-बुरी ख़बर राजाओं को बताने में जी काँप उठता है।"

"बात क्या है? साफ-साफ कहो पन्त।"

"युवराज, आपका...आपका परिवार पठान दिलेर ख़ाँ के क़ब्ज़े में है। दीदी जी और छोटी युवराज्ञी जी, दोनों पकड़ ली गयी हैं। बहुत बुरा हुआ है, युवराज।"

"पऽन्त!" सम्भाजी के पाँवों तले की धरती खिसक गयी। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उन्हें सारा पन्हालगढ़ घूमता-सा, उलट-पुलट होता हुआ-सा दिखाई देने लगा। जैसे नदी के प्रवाह में बहते हुए दीपक की अवस्था होती है, वैसे ही उनका मन भी चकराने लगा। उन चक्करों में से लहरें उठ-उठकर पूछ रही थीं—'तुम ये क्या कर बैठे, शम्भू भैया?'

"हम एकान्त चाहते हैं, विट्ठलपन्त," सम्भाजी ने विट्ठलपन्त की ओर पीठ फेर ली।

पन्त जैसे ही बाहर गये, सम्भाजी पाँवों पर खड़े भी नहीं रह सके। वे महल के पलँग पर जा गिरे। आँखों के आगे दिलेर ख़ाँ पठान नाच रहा था—हाथ में कोड़ा लेकर गरदन पीछे की ओर झुकाकर वह ठहाके मारकर हँस रहा था और सम्भाजी भोसले नामक मुग़ल-मनसबदार को निर्दयता से फटकार कर गरज रहा था—'होश में आओ। तुम्हारा ज़नानख़ाना इस वक़्त हमारे क़ब्ज़े में है।'

"दीदी—दीदी!" भोसले का जी टूक-टूक हुआ जा रहा था।

'बड़ी रानीजी की याद आते ही हमारा जी कसकने लगता है।' नन्हे मदनसिंह को छाती से चिपकाये, हाथ में कढ़ी का कटोरा थामे दुर्गाबाई उनसे कह रही थीं—'ये पठानों के साथ भागते-दौड़ते फिरना अच्छा नहीं लगता।' सम्भाजी पूरी तरह टूट चुके थे। होठ दाँतों में दबाकर वे असहाय होकर बड़बड़ाने लगे, "आबासाहब, हमारी करनी की सज़ा आप से भी पहले अगर ये पठान हमें दे दें, तो ही ठीक होगा।"

रायगढ़ के देवमहल में छत्रपति शिवाजी ने स्फटिक निर्मित शिवलिंग पर बिल्व-पत्र चढ़ाये। शिवपूजा के पश्चात् उन्होंने भवानी की मूर्ति के चरणों में चुटकी भर हल्दी-रोली अर्पित की तथा 'हे जगदम्बे' कहते हुए नेत्र बन्द कर लिये। सम्भाजी लौटकर पन्हालगढ़ आये थे, उस घटना को

https://t.me/Sahityajunction

हुए आज एक पखवाड़ा बीत चुका था। छत्रपति आज उनसे मिलने के लिए रायगढ़ से निकलनेवाले थे। महाराज के मुखमण्डल पर चिन्ता और मानसिक तनाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

उनकी बन्द आँखों के सामने भी सम्भाजी के कई रूप एक-एक कर आ-जा रहे थे। बचपन में सम्भाजी के ढेलवाँस से फेंके हुए एक पत्थर से एक किसान घायल हो चुका था, तब इसी राजपुत्र ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था और टोप उतारकर वह निडर राजपुत्र पिता से कह रहा था—'हमें अपराध का दण्ड दिया जाय।' महाराज साहब से यह पूछनेवाला बालक—'आप निकाल सकेंगे नारियल होली से बाहर?'...हाथ में देवी की वस्त्र-ज्योति लेकर बेसुध होकर नृत्य करनेवाला भक्त बालक।...मिर्ज़ा राजा की छावनी में ज़ामिन बनकर रहनेवाला साहसी बालक। ...मथुरा में यह वचन देनेवाला आज्ञापालक बालक—'हम आपकी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही आचरण करेंगे।' ...आरोपी के रूप में उपस्थित होकर भी निर्भयता से कहनेवाला युवराज—'हमने उस स्त्री को क़ैद किया है।' बड़ी आऊसाहिबा के देहावसान के समय फूट-फूटकर रोनेवाला वह भावुक युवराज।...वही बालक आज कितना बदल गया है! क्यों बन गया वह ऐसा? किसलिए किया उसने ऐसा?

चारों ओर से घेरे जाने के कारण इसका दम घुट रहा था! किसने इसका दम घोंटा था? किसने इसे घेरे में—उलझन में डाला था? क्या हमने? महारानीजी ने? महारानी...? हमारी माँ साहिबा में मनुष्यों का निर्माण करने की असाधारण योग्यता थी। उन्हें इस कार्य में कभी असफलता नहीं मिली। परन्तु इन महारानीजी के बारे में तो वे भी हार खा गयीं। ये महारानीजी उस मछली की तरह हैं, जो नदी में रहकर भी प्यासी ही बनी रहती हैं। ये आज तक भी सीख-समझ नहीं पायीं कि ममता से ममता बढ़ती है, वैर से वैरभाव बढ़ता है...

'हमारे युवराज तो कितने शीघ्रकोपी हैं! वे समझते हैं—उन्हें चारों ओर से घेर लिया गया था। हमें तो इनको या किसी को घेर लेने का विचार करने की भी फुरसत नहीं मिली आज तक। अपने लोगों पर नाराज़ होने का या उन पर गुस्सा करने का तो समय भी नहीं मिला हमें। हमें समझ भी नहीं आया कि हमारे जीवन का दिन कब ढलने की ओर बढ़ने लगा। किसे दिखाएँ हम यह पीड़ा? कैसे कहें यह हृदय की व्यथा-कथा?'

अतीव व्याकुल होकर छत्रपति देवमहल से बाहर निकले और ख़ासमहल की बैठक में आये। एक सेविका आ उपस्थित हुई। उसने आकर सूचना दी, "महारानीजी पधार रही हैं।" सूचना सुनकर महाराज के माथे पर बल पड़ गये। 'ये महारानीजी भला असमय में क्यों आती होंगी?' प्रस्थान का समय निकट आ चुका था।

"सुना है कि आप पन्हाला जा रहे हैं, हमसे रहा नहीं गया, इसलिए मिलने चली आयी हैं हम।" सोयराबाई कक्ष में आकर बनावटी परन्तु अत्यन्त मोहक हँसी बिखेरती हुई कहने लगीं।

"हाँ!"

"हम ये कहने आयी हैं कि आप वहाँ तनिक शान्ति से काम लें।" सोयराबाई जानबूझकर ठहर गयीं।

महाराज ने चौंककर उनकी ओर देखा। परन्तु सोयराबाई ने उन्हें अधिक देर तक पहेली न बुझाकर तुरन्त आगे कहना शुरू किया :

https://t.me/Sahityajunction

“आपका स्वभाव बड़ा कठोर है। पता नहीं क्या का क्या हो जाए? राँझा गाँव के पटेल ने शासन के नियमों को भंग किया था, तो आपने उसके हाथ-पाँव कटवा डाले थे। खण्डोजी खोपडे ने शत्रु को यहाँ के भेद बता दिये थे, तो आपने उसके भी हाथ-पाँव काट देने का आदेश दिया था, फिरंगोजी ने भूपालगढ़ खाली करके क़िले को शत्रु के हवाले कर दिया था, इस अपराध के कारण आपने उसे तोप से उड़ा देने का दण्ड लगभग दे ही डाला था। सम्भाजी का अपराध तो कितना भयानक है—सीधे दुश्मन से जा मिलना! इस अपराध को आप बिल्कुल क्षमा नहीं करेंगे और हमें भय है कि आप कहीं अत्यन्त कठोर दण्ड न दे बैठें। इसलिए यह कहे बिना रहा नहीं जाता कि इस मामले में आप ज़रा धीरज से काम लें।”

सोयराबाई का प्रत्येक शब्द व्यंग्यपूर्ण था। उनकी बातों के पीछे व्यंगार्थ छुपा हुआ था कि ‘साधारण से अपराधों के लिए भी कठोर दण्ड देनेवाले छत्रपति अब इस भीषण अपराध का कौन-सा दण्ड देते हैं, यही देखना चाहती हैं हम।’ महाराज भला उनके इस ताने को कैसे न समझते? सोयराबाई के मुख पर दृष्टि गड़ाकर शान्त वाणी से महाराज कहने लगे, “महारानीजी, आज अगर युवराज के स्थान पर राजाराम होते, तो तुम हमें आज रायगढ़ से उतरने भी नहीं देतीं। रानी साहिबा, कामकाज के मामलों में ज़नानियों की सलाह लेना हमने कभी ज़रूरी नहीं समझा। हम जो उचित समझेंगे, युवराज को वही दण्ड देंगे। आप जा सकती हैं।” महाराज ने सोयराबाई को लगभग खदेड़ ही दिया था।

हम्बीरराव, सूर्याजी भालुसरे, जोत्याजी केसरकर आदि चुनिन्दा लोगों को साथ लेकर छत्रपति रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आये। वहाँ उन्होंने जिजाऊ की समाधि के दर्शन किये। हवेली के सामने ही एक सजी हुई पालकी और कई सशस्त्र सैनिक तैयार खड़े थे। इस बार छत्रपति पुरन्धर, सातार और बत्तीस शिराला के रास्ते होकर पन्हाला जानेवाले थे।

जिजाऊ के स्वर्गवास के बाद से रानी पुतलाबाई पाचाड़ की हवेली में ही रहती थीं। महाराज उनसे मिलने अन्तःपुर में गये।

“हम पन्हाला जा रहे हैं।” महाराज ने पुतलाबाई से शान्ति से कहा।

“जी, इसी कारण हम आपके चरणों के दर्शन पाने की आशा में यहाँ बैठी हैं।” ऐसा कहते समय पुतलाबाई के नेत्रों में जो भय-आशंका समायी हुई थी, वह महाराज से छुपी न रह सकी। अकस्मात् पुतलाबाई आगे को बढ़ीं और दोनों हथेलियाँ महाराज के चरणों पर रखकर रुँधे कण्ठ से कहने लगीं, “आज तक आपसे कुछ नहीं माँगा, पर आज आपके चरणों में प्रार्थना करना चाहती हैं। बच्चे ने अवश्य ही बड़ी भूल की है, फिर भी वह अपना ही है। आप उसे शरण में ले लें। युवराज को अभयदान दें, उन्हें समझा-बुझा लें।”

महाराज को क्षण-भर के लिए प्रतीत हुआ मानो सईबाई ही शरीर धारण कर आयी हैं और पैरों के पास बैठी हैं। आज सईबाई की साँवली स्मृति के कारण महाराज की आँखें गीली हो आयीं।

“उठो,” महाराज ने पुतलाबाई को धीरज बँधाते हुए कहा।

“हमें जिसे भी जो कुछ देना है, वह तो हम अवश्य देंगे ही। परन्तु...पुतलाबाई, अकेली तुम ही ऐसी हो, जिसे देने योग्य हमारे पास सचमुच कुछ भी नहीं है।” पुतलाबाई के वात्सल्यभाव से महाराज के प्राण छटपटा उठे थे। वे उनसे विदा होकर हवेली से बाहर निकले। चबूतरे पर माँ

https://t.me/Sahityajunction

साहिबा की स्मृति जगानेवाला घड़ियाल लटक रहा था। भक्तिपूर्ण हृदय से उसके दर्शन करके महाराज पालकी में सवार हो गये। पालकी पुरन्धर-सातारा के रास्ते पन्हालगढ़ की ओर चल पड़ी।

पन्हालगढ़ के चौ-दरवाज़े के नगाड़े बजने लगे। रनसिंगों की ऊँची आवाज़ गूँजने लगी। छत्रपति पालकी से उतरकर खड़े थे। क़िलेदार विट्ठलपन्त अगवानी के लिए आगे बढ़े। महाराज ने वहाँ उपस्थित जनसमूह पर एक बार दृष्टि दौड़ायी, पर उनमें युवराज उन्हें कहीं न दिखाई दिये।

"पन्त, युवराज नहीं दिखाई देते?"

"जी वे सज्जा-कोठी में हैं।" क़िलेदार ने वृत्तान्त कह सुनाया।

"चलो," सन्तोष से दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए महाराज हम्बीरराव, हिरोजी, फर्ज़न्द, सोमाजी बंकी, जोत्याजी केसरकर आदि के साथ उपरिकोट की ओर चल पड़े!

सरोवर के किनारे स्थित सोमेश्वर के दर्शन करके सब श्रेष्ठजन उपरिकोट में आये। महाराज ने वहाँ विट्ठलपन्त के साथ रंग-रूपी शिवपिण्डी के दर्शन किये और वे ख़ासमहल में प्रविष्ट हुए। दिन काफी चढ़ आया था, फिर भी पूरे दुर्ग पर कुहासे का मटमैला आवरण फैला हुआ था।

महाराज महल के सभागृह में बैठकर क़िलेदार से क़िले का विवरण प्राप्त करने लगे। उन्होंने क़िलेदार को आदेश दिया कि कोल्हापुर प्रान्त के अधिकारी जनार्दनपन्त तथा कोंकण सूबे के सूबेदार रावजी पण्डित को पन्हाला बुला लिया जाय। शासन-व्यवस्था के अन्य कई छोटे-मोटे मामलों को समाप्त करके महाराज ने मुख्य विषय छेड़ा, "पन्त, युवराज को कहला भेजो कि हम सज्जा-कोठी में आ रहे हैं।" महाराज समझ चुके थे कि संकोच और लज्जा के कारण युवराज स्वयं हमसे मिलने नहीं आएँगे।

"जी," विट्ठलपन्त ने सूचना भिजवा दी।

"हम्बीरराव नहीं दिखाई देते!" महाराज ने सभागृह में उपस्थित लोगों की ओर दृष्टि घुमाते हुए पूछा।

"सेनापति सज्जा-कोठी की ओर गये हैं!" पन्त ने जानकारी दी।

उस अवस्था में भी महाराज के मन में यह भाव उठे बिना न रहे—'हम्बीरराव महारानी सोयराबाई के सगे भाई हैं। बहन है कि युवराज को हमेशा नीचा देखती है और भाई है कि सदा युवराज को सँभालने-सँवारने का प्रयत्न करता है।'

"चलो," कहते हुए महाराज सभागृह की बैठक से उठ खड़े हुए। वे सज्जा-कोठी की ओर पैदल ही चल पड़े और क़िले की चहारदीवारी के ऊँचे किनारे पर बनी हुई सज्जा-कोठी तक पहुँचे। हम्बीरराव ने महाराज को आते देखा तो वे जल्दी-जल्दी नीचे उतरे और नीचे आकर छत्रपति को मुजरा करने के लिए झुके।

"हम्बीरराव, तुमने कभी एक सुझाव प्रस्तुत किया था, उसकी पूर्ति हम आज कर पा रहे हैं। हम युवराज से मिलने जा रहे हैं।"

"जी, मालिक के सामने कुछ कहने-सुझाने की हमारी योग्यता नहीं है, परन्तु फिर भी इतना हम अवश्य कहना चाहेंगे कि युवराज अब निकट आ ही गये हैं, अतः उन्हें चतुराई से और अधिक

https://t.me/Sahityajunction

निकट ले आने में, उनकी शक्ति का सदुपयोग करने में ही भलाई है। युवराज अपने किये पर पछता रहे हैं। अब तो उनका जीवन आपके हाथों में है।"

महाराज फीकी हँसी हँसे। वे हम्बीरराव से कहना चाहते थे—'जहाँ स्वयं हमारा जीवन ही हमारे हाथों में नहीं है, वहाँ उनके जीवन के बारे में कुछ निर्णय करना हमारे लिए कैसे सम्भव होगा?' परन्तु वे मौन ही रहे। छत्रपति ने हाथ के संकेत से विट्ठलपन्त को कोठी के नीचे ही ठहर जाने को कहा और वे स्वयं कोठी के सँकरे ज़ीने पर चढ़ने लगे। चढ़ते समय वे सोच रहे थे—'अच्छा हो, यदि यह ज़ीना कभी समाप्त ही न हो। अन्तिम साँस तक हम यूँ ही चलते रहें—अकेले।'

महाराज ज़ीना चढ़कर पहली मंज़िल के खुले बैठक कक्ष में आये। उसी कक्ष के एक झरोखे में से सम्भाजी दूर तक फैले हुए पठारी प्रदेश की ओर देख रहे थे। महाराज ने ज्योंही उन्हें देखा, उनके पैर वहीं जकड़े रह गये। छाती में विचित्र-सी खलबली मचने लगी। पूरे तीन साल की अवधि के बाद पिता-पुत्र का यह मिलन हो रहा था। सम्भाजी ऐसे दिखलाई देते थे, जैसे किसी डौलदार भरे-पूरे सागौर के वृक्ष को काँटेदार बेल-पत्रों ने घेर लिया हो।

आज जीवन में पहली बार ही छत्रपति शिवाजी महाराज को यह अनुभव हुआ कि वे सिर पर छत्र धारण करनेवाले केवल एक राजा नहीं हैं—वे एक अभागे पिता भी हैं। ऐसा पिता जो हृदय-रूपी दुर्ग ही गँवा बैठा हो।

सम्भाजी उनके सामने सिर नीचा झुकाये खड़े थे। उन्हें इस अवस्था में देखकर शिवाजी महाराज को आज ऐसा गहरा खेद हो रहा था कि जैसा शायद तब भी न हुआ होगा, जब उन्हें मिर्ज़ा राजा के सामने हथियार डालकर और सिर झुकाकर खड़ा होना पड़ा था।

सम्भाजी के मुख से कुछ सोचते हुए ही एक गहरी उसाँस निकल गयी और वे झरोखे से एक ओर हट आये। ज्योंही उन्होंने दरवाज़े में खड़े महाराज को देखा, उनके हृदय में गहरी टीस उठी—'हैं! ये आबासाहब ही हैं क्या? कितने थके-माँदे दिखाई दे रहे हैं?' हृदय की टीस आँसू बनकर आँखों में उतर आयी। वे एकदम आगे को लपके और महाराज के पैरों पर अपना सिर रख दिया।

इस स्पर्श के कारण महाराज की आँखें स्वयमेव बन्द हो गयीं। फिर भी उन्होंने अपने विचलित हो रहे मन को सँभाला। वे सदा ही चरणों में झुके हुए सम्भाजी को ऊपर उठा लेते थे, परन्तु आज उन्होंने ऐसा नहीं किया। रूखे स्वर में इतना ही कहा, "उठो।" महराज कक्ष के भीतर आये और हाथ पीछे की ओर बाँधे कुछ देर तक यूँ ही घूमते रहे। वैसे छत्रपति का स्वभाव था कि वे समय व्यर्थ न गँवाते हुए किसी भी विषय को तुरन्त प्रारम्भ कर देते थे, परन्तु आज वे भी इस असमंजस में फँसे थे कि क्या बोला जाय? कैसे कहा जाय? मन में विभिन्न विचारों-भावों की आँधी उठ रही थी। थोड़ी देर के लिए तो वे यह भी भूल गये कि सम्भाजी कक्ष में ही खड़े हैं।

लज्जित सम्भाजी पत्थर की दीवार से सटकर सिर नीचा झुकाये खड़े थे। वे आबासाहब की असीम व्यथा और छटपटाहट को समझ पा रहे थे और अब यह स्थिति उनके लिए असह्य हो उठी थी।

अकस्मात् महाराज के घूमते कदम थम गये। घड़ियाल के नाद के समान उनके बोल गूँज उठे, "जीत लिया तुमने सह्याद्रि पर्वत? बना लिया क्या तुमने अपना राज्य? मुग़लाई में तुम्हारे

https://t.me/Sahityajunction

मनोरथ पूरे हो गये क्या? इस साम्राज्य के तुम युवराज हो, और कल के छत्रपति राजा भी तुम्हीं हो। ऐसा होते हुए भी पठान के दल से जा मिले! जो हाथ कभी मुजरा किया करते थे, माँजरा के पठार पर उन्हीं हाथों को कटता हुआ देख आये तुम निर्लज्ज होकर? तुम्हारे आतंक के कारण ही तीन सौ बहू-बेटियों ने तिकोटा के कुओं में कूदकर प्राण दे दिये। स्वयं तुम्हारे परिवार को भी पठान ने क़ैद कर लिया। तुम्हें अपना पुत्र कहने में भी हमें लज्जा आती है। अरे, इतनी नन्ही-सी पलक भी ज़रा से तिनके के आक्रमण का डटकर विरोध करती है और तुम तो कमर में तलवार बाँधकर घूमनेवाले बलशाली युवक हो। युवराज होकर भी ऐन जवानी की उम्र में तुम ये कैसी हार खा बैठे? हमें तुमसे कितनी आशाएँ थीं। तुम समझे, यह राज्य हमारा अकेले का है। बड़ी भूल कर बैठे तुम यह। अरे, यह राज्य हमारी या भोसलों की बपौती नहीं है। यह राज्य है देवताओं का। धर्म का राज्य है यह, निर्धन-कंगाल जनता-जनार्दन का राज्य है यह। तुम पहले इस राज्य के युवराज हो, हमारे पुत्र का नाता इस नाते के बाद आता है। तुम्हारा और हमारा अधिकार है—केवल इस छाती पर धारण की हुई भवानी माला पर। रायगढ़ का सिंहासन उत्तराधिकार का नहीं है तुम्हारा। तुम और हम केवल राजा नहीं हैं। पहले हम हैं सेनापति। हम सबसे आगे चलनेवाले सेनापति हैं। अन्तिम योद्धा भी हमें ही बनना है और सबसे अन्त में हम हैं राजा।

"तुम युवराज होकर भी मुग़ल सेना से जा मिले, सेनासहित अपने ही राज्य के भूपालगढ़ पर चढ़ दौड़े, यही नहीं, पिता के समान वन्दनीय फिरंगोजी का ऐंठ में आकर तुम अपमान कर बैठे। मैं पूछता हूँ, ऐसा करते समय लाज बेच खायी थी तुमने? ध्यान रखो, पहले मनुष्य का शरीर नहीं, मन मरता है। मन के मारे जाने पर शरीर के मरने का महत्व ही क्या है?" क्रोधावेग के कारण छत्रपति को खाँसी की ढाँस आ गयी। वे छाती पर हाथ फिराकर ढाँस को कम करने का प्रयत्न करने लगे। सम्भाजी ने उन्हें ऐसा करते देखा और व्याकुलता के कारण उनका हृदय छटपटा उठा। उनके मुख से इस समय एक शब्द भी निकल नहीं पाता था और आबासाहब का शारीरिक कष्ट आँखों से देखना भी उनके लिए असह्य हो उठा था।

"एक अलग राज्य की स्थापना करने निकले थे तुम और अपना परिवार भी खो आये! राणूबाई पराये घर का धन थी, उसे भी गँवा आये। यदि अब कोई हमसे पूछे कि 'जो राजा अपनी रानी और बहू-बेटियों की भी रक्षा न कर पाता हो, वह अपनी प्रजा की रक्षा कैसे करेगा?' क्या उत्तर दें हम इस बात का? मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने हमारे राज्य को तहस-नहस किया और विवश होकर हमें उसकी शरण में जाना पड़ा। परन्तु अन्ततः हम उस चक्रव्यूह से भी बाहर निकल आये। परन्तु तुमने आज हमारी सारी आशा-आकांक्षाओं में आग लगाकर हमें जैसा विवश बना दिया है, उस विवशता के भँवर से सम्भवतः हम कभी भी उबर नहीं पाएँगे। यह तो ख़ैर हुई कि दिलेर ख़ाँ ने चंगुल में फँसाकर तुम्हें दिल्ली नहीं भेज दिया। यदि दिल्ली पहुँच जाते, तो नेताजी पालकर जैसी तुम्हारी भी अवस्था होती और वैसी अवस्था में तुम्हें देखने की अपेक्षा हम विष खाकर मरना ही श्रेयस्कर समझते। ज़बान पर मुहर क्यों लग गयी है? हम तुमसे ही पूछ रहे हैं, उत्तर दो।" महाराज सीधा सम्भाजी के आगे आ खड़े हुए। सम्भाजी सिर नीचा किये खड़े थे। आत्मा का आवेग अश्रु बनकर दाढ़ी से लुढ़ककर ग़लीचे पर गिर रहा था।

"ज़रा इस बात की चिन्ता करो कि शत्रु सिद्दी क़ासिम जंजीरा के समुद्री क़िले में पैर जमाकर

https://t.me/Sahityajunction

बैठा हुआ है और समुद्र-तट पर बसे पूरे कोंकण प्रदेश को हड़पना चाहता है। समुद्र के किनारे के निकटवर्ती खाँदेरी द्वीप में हम अपना जलदुर्ग बनाना चाहते हैं, पर अँग्रेज़ इस काम में अड़ंगा लगाते हैं, कभी इसके बारे में भी सोचा है तुमने? आज या कुछ दिनों बाद स्वयं औरंगज़ेब ही पूरी फ़ौज के साथ दक्खिन पर हमला कर सकता है, इसका कभी ख़याल किया है तुमने? वह यदि दक्खिन में उतर आया, तो आदिलशाह, कुतुबशाह के राज्य के साथ-साथ 'श्री' के राज्य को भी नेस्तनाबूद करने के लिए पूरा ज़ोर लगाएगा वह, इस बारे में तनिक सोचा-समझा करो। यह सब करने से पहले मावला बनो, सच्चा मनुष्य बनो। हमसे रूठकर चले जाना सरल है, पर भाग्य जितने खेल दिखलाएगा, उनका सामना करना बहुत कठिन है।

"जिन्हें हम दूसरी माँ साहिबा मानते आये हैं, वह हमारी बहूरानी येसूबाई तुम पर क्योंकर अभिमान कर पाएगी? तुम्हारे रक्त से उत्पन्न तुम्हारी सन्तान क्या सिर ऊँचा उठाकर तुम्हारा नाम ले सकेगी? मावले-सैनिकों के सामने तुमने कौन-सा आदर्श रखा है जिसके कारण वे तुम्हारे लिए या तुम्हारे राज्य के लिए अपने प्राण न्यौछावर करें?

"मान-अपमान का बहुत विचार करते हो तुम। पर भूल जाते हो कि देवताओं को भी अपमान सहन करना पड़ा है, वनवास में दुख भोगना पड़ा है। तुम्हें बस सिंहासन का मोहक रूप ही दिखाई देता है, उस पर बिछे काँटे तुम्हारी आँखें देख नहीं पाती हैं। दूसरों के दोष तुम झट पहचान लेते हो, पर अपने दोष तुम्हें कभी दिखाई नहीं देते। राजा को कभी भावुक नहीं होना चाहिए, यह तथ्य तुम भूल जाते हो।" छत्रपति की आवाज़ अब काँपने लगी थी। पिघले हुए सीसे के समान तप्त बोलों से सम्भाजी के मन के दुर्भाव मूलसहित जलकर भस्म हो रहे थे।

"अष्टप्रधान-मण्डल में सचिव अण्णाजी के साथ तुम्हारी बनती नहीं। महारानीजी से तुम्हारी पटती नहीं। अण्णाजी तो राज्य के सेवक हैं, उन्हें भूल-भटक जाने पर सही रास्ते पर लाने में तुम असफल रहे हो। हमने तो मुरार बाजी, बाजीप्रभु जैसे प्रतिकूल लोगों को, जो हम पर हथियार लेकर दौड़े चले आ रहे थे, कुशलता से अनुकूल बना लिया। तुम यह सब काम कैसे कर पाओगे?

"हमारे जीवन में अफ़जल खाँ से भेंट और आगरा के बन्दीवास जैसे कठिन परीक्षाओं के क्षण आये, तुम यदि ऐसे संकटों में डूबने लगो, तो कैसे पार उतरोगे तुम?

"हमारी लाज का विचार न सही, जिस महान नारी ने तुम्हें छोटे से बड़ा किया है, उन बड़ी आऊसाहिबा के नाम का तो कुछ विचार किया होता? यह तो ठीक ही हुआ कि वे आज जीवित नहीं हैं। अन्यथा यदि वे सुनतीं कि उनकी गोद में सिर रखकर सोनेवाले तुम, हमारे पेट में कटार मारकर पठान से जा मिले हो, तो वे..."

"बस कीजिए, आबासाहब, और कुछ न कहिए।" विक्षुब्ध होकर सम्भाजी आबासाहब के पैरों से लिपट गये और फफक-फफककर रोने लगे। उनके अवरुद्ध कण्ठ के पश्चात्ताप से दग्ध ये वचन-मुक्ताफल बिखर पड़े, "हमसे बड़ी भूल हुई—आबासाहब। हमें युवराज पद का लोभ नहीं—हमें तो चाह है केवल इन चरणों की। हम मोटा-झोटा खाएँगे, और इन्हीं चरणों में पड़े रहेंगे। हम बहुत लज्जित हैं अपने किये पर। आप जो चाहें, सो दण्ड दें हमें, पर...पर अब आपके एक शब्द की मार भी हम झेल नहीं पाएँगे। आबाऽऽ, आबा ऽ!"

छत्रपति नाक को चिकोटी में दबाकर, आँखें कसकर बन्द किये खड़े थे। उनके मन-मन्दिर में कहीं दूर से घाण्टा-ध्वनि सुनाई दे रही थी—'यह एक नन्हा-सा जीव आपके हवाले करके जा रही

https://t.me/Sahityajunction

हूँ। अब आप ही इसके 'आबा' और आप ही इसकी 'आऊ' हैं।' सईबाई की याद आते ही छत्रपति के मुख से एक लम्बी उसाँस निकल गयी।

'बच्चे ने अवश्य ही बड़ी भूल की है, फिर भी वह अपना ही है।' पुतलाबाई की प्रार्थना उनके मन में कुछ कह गयी।

'युवराज अब निकट आ ही गये हैं, तब उन्हें चतुराई से और अधिक निकट ले आने में ही भलाई है।' सेनापति हम्बीरराव की मावली बोली आकर मुजरा कर गयी।

'आबासाहब, क्या आप निकाल सकेंगे नारियल होली से बाहर?' एक अबोध बालक हाथ उठाकर पूछ रहा था। आज स्वयं वही बालक मार्ग से भूल-भटक जाने के कारण पश्चात्ताप की अग्नि में जला जा रहा था।

महाराज शिवाजी का स्वाभिमानी छत्रपतिपद अब द्रवित हो उठा। राजा की उग्रता का स्थान अब अगाध करुणा ने ले लिया। आँखों के कोर आर्द्र हो उठे। महाराज लपककर नीचे झुके और उन्होंने अपने कलेजे के टुकड़े के कन्धों को हाथों से पकड़कर उठाया। फिर काफी देर तक वे अपने अश्रुपूर्ण नयनों से पुत्र की आँसूभरी आँखों में देखते रहे और दो आँसूभरी आँखें जाने क्या-क्या कहती रहीं। अगले ही क्षण उस सर्जा राजा के भर्राये गले से प्यार-ममता में सने ये बोल फूट पड़े, "हाथ, मेरे बच्चेऽ, कहाँ चला गया था तू? क्यों भटक गया था रे तू मेरे लाल?"

बिछोह से रातभर व्याकुल रही पूर्व दिशा जैसे पौ फटते ही सूर्य के गोल बिम्ब को प्यार से अपनी गोद में समा लेती है, इसी प्रकार छत्रपति शिवाजी ने अपने 'शम्भू बेटे' को छाती से लगा लिया। दो 'भोसले' वंशोत्पन्न बली वीरों के वक्ष दृढ़ आलिंगन में बँध गये। उन वक्षों में बसा हुआ हृदय मौन रहकर भी एक दूसरे से बहुत कुछ कह गया। राज्याभिषेक से पावन छत्रपति के नयनों का तीर्थ-जल सम्भाजी के राजटोप पर टपक रहा था।

आज पन्हालगढ़ ने इन दो मनों के पावन मिलन का समारोह देखा और वह कृतकृत्य हो उठा था।

https://t.me/Sahityajunction

सात

पन्हालगढ़ के उपरिकोट के सभागृह की बैठक पर महाराज विराजमान थें। उनके चरणों के निकट ही नीचे की बिछावन पर युवराज सम्भाजी बैठे थे। क़िलेदार विट्ठलपन्त, हम्बीरराव, हिरोजी फर्जन्द सोनाजी बंकी, कृष्णाजी बंकी, बहिर्जी इंगले, बाबाजी ढमढेरे आदि सरदार विनम्रतापूर्वक खड़े थे। कोल्हापुर से आये हुए जनार्दनपन्त सुमन्त और कोंकण सूबे के सूबेदार रावजी पण्डित भी एक ओर खड़े यही सोच रहे थे कि जाने छत्रपति महाराज ने उन्हें क्यों बुलाया होगा? उनके निकट ही उमाजी पण्डित भी खड़े थे।

"जनार्दनपन्त, ज़रा सामने आइए।" महाराज ने जनार्दनपन्त से कहा।

"जी," कहते हुए वे हाथ जोड़कर बैठक के सामने आ गये।

"युवराज, ये कोल्हापुर विभाग के अधिकारी हैं श्री जनार्दनपन्त। आज से तुम्हें इसी पन्हाला में रहकर इसी विभाग की देखरेख करनी होगी। कोंकण सूबे के सूबेदार रावजी पण्डित भी तुम्हारी सहायता करेंगे।" छत्रपति ने रावजी पण्डित की ओर संकेत करते हुए कहा।

"जो आज्ञा स्वामिन," कहते हुए रावजी ने बैठक के सामने आकर नमस्कार करते हुए कहा।

"स्वामी, एक समस्या है। यदि आज्ञा हो, तो..." रावजी ने अपने सूबे का एक मामला उपस्थित किया।

"हाँ, कहो।"

"राजापुर के बन्दरगाह में विदेशियों के कुछ जहाज़ लंगर डाले पड़े हैं। इस कारण उस ओर कोई जाता नहीं। वे लोग भी अपने जहाज़ दूसरी जगह ले नहीं जाते। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय? क्या उन जहाज़ों को घेरकर पकड़ लिया जाय?"

"बोलो युवराज। यह तुम्हारे अधिकार के अन्तर्गत आनेवाला मामला है। कोंकण के सूबेदार को बताओ कि वे इस स्थिति में क्या करें?" महाराज ने मुस्कराते हुए सम्भाजी को चर्चा में सम्मिलित कर लिया। सम्भाजी कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उन्होंने रावजी से प्रश्न पूछा, "वे जहाज़ किसके हैं? पुर्तगालियों के, अँग्रेज़ों के, डच लोगों के या फ्रांसीसियों के? कुछ बतला सकते हो?"

https://t.me/Sahityajunction

“जी हाँ, जहाज़ फ्रांसीसियों के हैं।” रावजी ने विवरण प्रस्तुत किया।

“तो उन जहाजों पर अपने नाविक भेजो और ठीक तरह पता लगाओ कि क्या वे केवल व्यापार करने की दृष्टि से ही वहाँ आये हुए हैं? यदि ऐसा है तो हमें उनसे मित्रता बढ़ानी पड़ेगी, क्योंकि वे हमें हथियारों की रसद पहुँचाते हैं।”

“बिलकुल ठीक।” महाराज सन्तोष से मुस्करा दिये।

“युवराज, तुम्हें रावजी की सहायता से समुद्रतट से लगे लम्बे भूप्रदेश कोंकण प्रदेश की और वहाँ के समुद्री बेड़े की भी देखरेख करनी होगी।” छत्रपति के मुख पर प्रसन्नता झलक रही थी।

“ये सोनाजी बंकी, बाबाजी ढमढेरे और काव्यशास्त्र के तुम्हारे गुरु उमाजी पण्डित यहाँ पन्हाला में तुम्हारे साथ रहेंगे। हमारा अगला आदेश मिलने तक तुम्हें यहीं पन्हालगढ़ में ही रहना है। सावधान होकर रहना क्योंकि दिलेर ख़ाँ और सर्जा ख़ाँ की सेनाएँ कब इस विभाग की ओर कूच कर दें, इसका कोई भरोसा नहीं।”

सभागृह में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति महाराज की बातों को सुन रहा था। परन्तु सब यह भी अनुभव कर रहे थे कि आज छत्रपति जी की आवाज़ सदा की भाँति उत्साह-उमंग से भरी हुई नहीं है। चेहरे पर फीकापन है। उनकी नाक की नोक सिकुड़कर ऊपर की ओर खिंच आयी थी।

“विट्ठलपन्त, सबको बीड़े दो। युवराज, चलो, शिवलिंग के दर्शन कर आएँ।” महाराज बैठक से उठ खड़े हुए।

महाराज सम्भाजी को साथ लिये उपरिकोट के द्वार से बाहर निकले। विट्ठलपन्त, हम्बीरराव, रावजी आदि हमेशा की तरह उनके पीछे-पीछे चलने लगे, परन्तु आज महाराज ने उन सबको हाथ का संकेत करके वहीं रुक जाने को कहा।

साँझ होने को थी। गढ़ के जामुन, आम, चम्पक आदि वृक्षों-झुरमुटों पर पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड चहचहाते हुए आ-आकर बैठ रहे थे। ऊँचे नक्कारख़ाने से नौबत की आवाज़ उठ रही थी जो पन्हालगढ़ के नीचे के वनों में खो जाती थी। सम्भाजी ने इतना तो अवश्य जान लिया था कि चूँकि महाराजसाहब ने आज किसी को भी साथ नहीं लिया, इस कारण अवश्य ही वे आज कोई मन की बात कहने पहुँच रहे हैं। परन्तु वह बात कौन-सी है, इस बारे में वे कुछ भी अनुमान नहीं कर पा रहे थे।

वे शिवमन्दिर तक पहुँचे। मन्दिर का पुजारी नमस्कार करके सम्मुख आ गया। मन्दिर आने तक यह बात छत्रपति के ध्यान में नहीं आयी थी कि वहाँ पुजारी भी होगा। अब यह समस्या आ खड़ी हुई थी कि इस पुजारी को यहाँ से कैसे दूर भेजा जाय!

“पुजारीजी, हम सोमेश्वर सरोवर के निकटवर्ती शिवमन्दिर में दर्शन करने जा रहे हैं। तुम उस मन्दिर में जाओ और वहाँ हमारी प्रतीक्षा करो।”

“जी,” कहता हुआ पुजारी उपरिकोट की दिशा में चला गया।

पिता-पुत्र ने मन्दिर के बाहर पादत्राण उतार दिये। सूर्य अस्त होने जा रहा था। महाराज ने उस प्रकाशस्वरूप देवता के नारंगी और पीले रंग के बिम्ब को एक बार जी भर निहारा और हाथ

https://t.me/Sahityajunction

जोड़कर सूर्यदेव को नमस्कार किया। "अन्दर आओ," सम्भाजी से यह कहकर महाराज झुककर उस मन्दिर के छोटे द्वार में प्रविष्ट हुए। द्वार की पत्थर की बनी चौखट से टोप कहीं टकरा न जाय, इस भय से उन दोनों को काफी झुककर भीतर जाना पड़ा।

भीतर दीवटों का मन्द प्रकाश फैला हुआ था। पिण्डी बेल-पत्रों से आच्छादित थी और जलहरी से टपकती हुई जलधारा से उसका अभिषेक हो रहा था। पिता-पुत्र ने पहले घुटने टेककर उसके सम्मुख मस्तक नवाया। फिर उठकर हाथ जोड़कर नमस्कार किये।

"शम्भू, यह रंग-रूपी पिण्डी है। यह सदा हमें यह सन्देश देती रही है कि मानव-जीवन के भी अनेक रूप होते हैं—कुछ सुख से भरे, कुछ दुःख में डूबे।" महाराज कुछ देर तक भूले हुए-से पिण्डी को ही देखते रहे।

"इसे साक्षी बनाकर आज हम तुमसे कुछ कहने जा रहे हैं। ध्यान देकर सुनो। यह पिण्डी भी अरघे में स्थापित है, एकरूप बनी हुई है, अभिन्न है, इसी कारण इसकी शोभा है। तुम और राजाराम भी हमारे लिए इसी प्रकार एक हो। हमने कभी तुम दोनों को दो माना ही नहीं। तुम दोनों हमारी दो आँखें ही हो। हमारी ही नहीं, तुम दोनों प्रजा की भी दो आँखें हो। परन्तु वह राजाराम अभी अबोध है, तुम युवा हो।

"अब हमारे स्वास्थ्य का कोई भरोसा नहीं है। इस कारण हम एक ऐसा कार्य करने जा रहे हैं, जिसे हमने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। हम जानते हैं कि तुम्हारा और महारानी जी का मनमुटाव कभी समाप्त नहीं होनेवाला। तुम उन पर क्रोध करके जो व्यवहार कर बैठे थे, वैसा ही कोई काम यदि तुम हमारे जाने के बाद कर बैठोगे, तो जान लो कि कोई तुम्हें सँभालेगा नहीं, तुम्हारा स्पष्टीकरण कोई सुनेगा नहीं। इसी कारण...इसी कारण हमने 'श्री' के इस राज्य का बँटवारा करने का निश्चय किया है।"

"आबासाहऽब, हम सौगन्ध खाकर आपको वचन देते हैं कि हमें कुछ नहीं चाहिए—कुछ भी नहीं। हमें चाहिए केवल आपका प्यार, पर आज आप जीवन के अन्तिम अंकवाले संवाद क्यों बोल रहे हैं? विश्वास रखें, हम कभी भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। हम चाहे जहाँ भी रहें, भाई राजाराम का साथ नहीं छोड़ेंगे। सदा छाया के समान उनके साथ रहेंगे। परन्तु आबासाहब, आपके स्वास्थ्य की अवस्था देखकर हमारा दिल डूबा जाता है। कुछ सूझता नहीं कि क्या करें!"

"इन बातों को छोड़ो। हमारे पास इतना समय ही कहाँ है कि स्वास्थ्य की ओर ध्यान दें। ठीक है, तुम कहते हो कि तुम्हें राज्य का लोभ नहीं, परन्तु तुम्हारे न चाहने से वह ज़िम्मेदारी टल थोड़े ही जाएगी। वास्तव में देखा जाए तो सम्पूर्ण राज्य के सच्चे उत्तराधिकारी तुम ही हो, परन्तु महारानी जी उसे तुम्हें पूर्ण रूप से पाने ही नहीं देंगी। तुम बहककर जैसा आचरण कर बैठे हो, उसके कारण मन्त्रिगणों का विश्वास भी तुम खो बैठे हो। इसलिए हमने निश्चय किया है कि कर्नाटक विभाग के तुंगभद्रा नदी से लेकर कावेरी नदी तक फैले जिंजी प्रदेश पर तुम्हारा अधिकार रहे और गोदावरी से तुंगभद्रा तक के सम्पूर्ण उत्तर विभाग पर राजाराम का अधिकार रहे। बालक राजाराम जब तक सयाने नहीं हो जाते, तब तक अष्टप्रधान मण्डल उस राज्य की व्यवस्था करेगा। इस निर्णय का लाभ यह होगा कि तुम्हारे और महारानीजी के बीच मतभेद उत्पन्न होने के जो मूल कारण हैं, उनका भी निराकरण हो जाएगा। 'आँख ओट, पहाड़ ओट'

https://t.me/Sahityajunction

वाली बात ही सत्य है। बोलो, इस बारे में तुम्हारा क्या विचार है?"

"आबासाहब, हम अपने शब्दों का मूल्य स्वयं अपने हाथों नष्ट कर बैठे हैं। अब क्या कहें हम? परन्तु आपके चरणों की सौगन्ध खाकर इतना ही कहते हैं कि हमारे लिए यह राज्य तिनके के समान तुच्छ है। हमने राजाराम को कभी पराया नहीं समझा। हमने आपको जो मानसिक क्लेश दिया है, उसका खेद और पश्चात्ताप हमें जीवन भर जलाने को काफी है। बस, आप स्वास्थ्य का ख़याल रखें। आप केवल हमारे ही पिता नहीं हैं, हज़ारों-लाखों लोग आपको पितृतुल्य मानते हैं। हमारी केवल एक ही प्रार्थना..."

"कहो!"

"आपको विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता है। आप अपनी इच्छानुसार किसी भी शान्त स्थान में जाकर विश्राम करें। रायगढ़ में आपको आराम कदापि नहीं मिल पाएगा।"

"शम्भूराजा, अब रायगढ़ छोड़कर हमें कहाँ आराम मिलेगा? वहीं पर हमारी माँ साहिबा की समाधि है। अब तुम्हें हमारे विषय में अधिक काल तक चिन्तित नहीं रहना पड़ेगा। परन्तु पन्हालगढ़ में जाते समय हम तुम्हारे विषय में चिन्तित हो रहे हैं। हमारी एक बात मानोगे?"

"आज्ञा कीजिए आबासाहब।" सम्भाजी टक लगाकर महाराज की ओर देख रहे थे। सामान्यतः आबासाहब जब कुछ कहते-बोलते थे, तो सम्भाजी का मन करता था कि महाराज साहब बस इसी प्रकार निरन्तर बोलते ही रहें, पर आज न जाने क्यों उन्हें लग रहा था कि आज महाराज की वाणी किसी गहरे दुःख से और व्यथा से भरी थी।

"शम्भू बेटे, हमारी इस बात को जागते-सोते याद रखना। तुम एक बलशाली शत्रु के शिकंजे से सकुशल छूट आये हो। पुनः कभी उसके चंगुल में फँसने की भूल मत कर बैठना। अब जब तक हम न कहें, इस पन्हाला विभाग को छोड़कर कहीं मत जाना। माता जगदम्बा तुम्हारा हित करने में सर्वथा समर्थ हैं। चलो।"

सम्भाजी उस छोटे शिवालय से बाहर जाने को हुए कि महाराज ने शान्ति से कहा, "शिवलिंग की प्रदक्षिणा करना भूल गये तुम! प्रदक्षिणा पूरी कर लो, फिर बाहर आओ।"

प्रदक्षिणा पूरी होने के बाद शिवाजी महाराज ने झुककर शिवपिण्डी पर चढ़ाये बिल्व दल को उठाया और सम्भाजी की हथेली पर रखते हुए कहने लगे, "तुम्हारे जन्म के समय ज्योतिषी ने तुम्हारी जन्म कुण्डली बनायी थी। उसने भविष्यवाणी की थी कि तुम साक्षात् रुद्र के अवतार हो। तुम ऊँचे गढ़-दुर्गों पर निवास करोगे और प्रलय मचा दोगे। परन्तु...परन्तु..."

"परन्तु क्या महाराज साहब?"

"परन्तु उस रुद्र ने भी आत्मीय जनों से ही धोखा खाया था। ज्योतिषी ने कहा था—तुम्हारी कुण्डली में भी वही योग है!

"तुम जब दो वर्ष के थे, तब आत्मीय जनों से तुमने पहली बार धोखा खाया था। तुम्हारी जन्मदात्री माता तुम्हें छोड़कर संसार से विदा हो गयीं। तुम युवराज बने और तुम्हें अपनी बड़ी आऊसाहिबा के प्यार से वंचित होना पड़ा। कौन कह सकता है कि कभी हम भी तुम्हें धोखा दे दें या शायद कोई कठोर दण्ड दे बैठें! परन्तु हमें विश्वास है कि तुम रुद्र के अवतार होने के कारण वह विष भी नितान्त धैर्यपूर्वक पचा लोगे।"

https://t.me/Sahityajunction

आबासाहब की बातों में छिपी हुई गम्भीरता को सम्भाजी ठीक-ठीक समझ नहीं पाये। वे पिता-पुत्र जब शिवालय से बाहर निकले, तब सारा पन्हालगढ़ कोहरे के बादलों से ढँका हुआ था।

कहारों ने चौक-दरवाज़े पर पालकी तैयार रखी हुई थी। आज महाराज पन्हालगढ़ से उतरकर कोयना-घाट और सातारा के रास्ते सज्जनगढ़ जानेवाले थे। वे समर्थगुरु सन्त रामदास के दर्शनों के लिए वहाँ जा रहे थे। युवराज सम्भाजी, विट्ठलपन्त, हम्बीरराव, रावजी, हिरोजी फर्जन्द, उमाजीपन्त आदि श्रेष्ठजनों के साथ महाराज उपरिकोट से निकले और रंगरूपी पिण्डी, सोमेश्वर सरोवर, कोंकण दरवाज़ा, सदोबा का तालाब आदि अपने प्रिय मनोरम स्थानों के दर्शन करते हुए वे विशाल चौ-दरवाज़े तक आये।

यहाँ युवराज सम्भाजी आगे बढ़कर महाराज के भगवे पादत्राणों की धूलि लेने को झुके। महाराज ने उन्हें ऊपर उठाया और गले से लगा लिया। इस समय वे अधिक कुछ बोले नहीं। सम्भाजी की पीठ थपथपाते हुए वह श्रीमन्त राजयोगी इतना ही कह पाया, “शम्भूराजा, हम जा रहे हैं, सावधान रहना।”

“आबासाहब, स्वास्थ्य की उपेक्षा न करें...” सम्भाजी से कहे बिना रहा नहीं गया। महाराज ने सम्भाजी की बात बीच में ही काट दी और उन्हें विदा करने को आये अन्य लोगों की ओर मुड़े। आज यह पहला ही अवसर था जबकि उन्होंने उन सब लोगों को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। फिर कहने लगे, “हम जाते हैं।”

छत्रपति ने सबकी ओर पीठ घुमा ली और वे पालकी में बैठने के लिए आगे बढ़े। इसी समय पन्हालगढ़ की तेज़ हवा का एक झोंका आया। उस झोंके से पालकी के निकट खड़े महाराज का अँगरखा हवा में फड़फड़ाने लगा। उनके राजटोप में गरुड़ के पंखों का जो गुच्छा था, उसमें से एक पंख इस प्रबल झोंके के कारण ढीला होकर निकल आया। और जब वह शुभशकुनों का सूचक पंख उड़कर हवा में हिचकोले खाता हुआ क़िले की गहरी खाई में गिरने लगा, तो सम्भाजी एकदम सहम गये। हाथ गले में पहनी हुई भवानीमाला की ओर गया और मुख से शब्द निकले, “जगदम्बे, हे जगदम्बे।”

कहारों ने पालकी उठायी। सम्भाजी के अनुभवी, विज्ञ महाराज साहब आँखों से दूर जा रहे थे। हम्बीरराव और हिरोजी फर्जन्द घोड़े पर बैठे उस पालकी के दोनों ओर धीमी गति से चल रहे थे। चौ-दरवाज़े पर आये कई लोग अब तक वापस भी लौट गये थे, पर सम्भाजी पालकी के आँखों से ओझल होने तक वहीं खड़े रहे। उनके पैर वहाँ से हिलते ही नहीं थे।

उमाजी पण्डित भी वहाँ से कैसे जा सकते थे? उनका मन तो सम्भाजी में रमा हुआ था। सम्भाजी ने जैसे ही उन्हें देखा, कहने लगे, “पण्डितजी, चलिए। आपसे कुछ बातें करनी हैं।”

उमाजीपन्त को साथ लिये वे सज्जा-कोठी में आये। पण्डितजी को बैठक पर बैठने का संकेत करते हुए उन्होंने कहा, “पण्डितजी, आपने हमें शृंगारपूर का वृत्तान्त अब तक नहीं सुनाया।”

पण्डितजी मौन बैठे रहे।

https://t.me/Sahityajunction

“हमारी बेटी भवानीबाई कैसी है?”

“जी, सकुशल हैं...”

“और युवराज्ञी का क्या समाचार है?”

अब पण्डितजी फिर मौन हो गये। वे सोच में डूबे थे कि क्या कहा जाय।

“बताओ न पण्डितजी, कैसी हैं वे?”

“युवराज की छोटी रानीजी को पठानों ने गिरफ्तार कर लिया है, यह समाचार सुनकर उनका बुरा हाल हो गया है। किसी से मिलती-जुलती भी नहीं हैं। अपने आप ही वे बन्दी-सी बनकर अकेली पड़ी रहती हैं।” उमाजीपन्त सिर भी ऊपर नहीं उठा पा रहे थे और सम्भाजी झरोखे में से दूर-दूर तक फैले उस असीम पठारी प्रदेश की ओर शून्य दृष्टि से देख रहे थे।

रायगढ़ के ख़ासमहल में आयोजित राजसभा अभी-अभी समाप्त हुई थी। महाराज ने मोरोपन्त, अण्णाजी, हम्बीरराव, बालाजी, येसाजी आदि सचिवों-सरदारों को विदाई के बीड़े दिये थे। केवल लिपिक बालाजी से कहा था, “बालाजी, तुम हमारे महल में आकर हमसे मिलो।”

सभी अधिकारी, सरदार आदि बाहर चले गये, परन्तु हम्बीरराव सभागृह में ही खड़े रहे और धीरे से महाराज के निकट आये।

“क्या बात है सेनापति?”

“हमारे कहने-सुझाने का कुछ लाभ नहीं होता; परन्तु फिर भी कहे बिना मन नहीं मानता। मालिक, आप औरंगाबाद की कोई चिन्ता न करें। ऐसे-ऐसे दस बादशाह एक साथ हमला करें, तो भी हमें कोई चिन्ता नहीं, हमारी धरती वीरों से खाली नहीं हो गयी है। परन्तु हमें केवल चिन्ता है तो आपके स्वास्थ्य की। चाहे जो करें, पर आप अपना स्वास्थ्य न बिगड़ने दें। आपके स्वास्थ्य की हर क़ीमत पर रक्षा की जानी चाहिए।”

महाराज निर्विकार दृष्टि से हम्बीरराव की ओर देखते रह गये। हम्बीरराव का निष्कपट शुद्ध प्रेम देखकर उनका हृदय द्रवित हो रहा था। फिर भी स्वयं को सँवारकर महाराज फीकी हँसी हँसकर कहने लगे, “इम्बीरराव, तुम सेनापति हो, पर तुम्हारी ये बातें सेनापतियों की-सी नहीं हैं। हम समझते हैं कि हम माँ भवानी की कृपा से स्वस्थ-सानन्द हैं। तुम्हें यदि चिन्ता करनी ही हो, तो एक दूसरे विषय में कुछ सोच-विचार करो।”

“किस बारे में?” सेनापति पूछने लगे।

“युवराज के बारे में। तुम्हारा झुकाव उनकी ओर है। कठिन अवसर आ पड़ने पर हमसे भी बढ़कर तुम ही उन्हें कोई अचूक उपाय बता सकते हो। तुम उनका ध्यान रखो, इतना ही कहना है हमें।”

“जी, मालिक, आप उस बारे में बिलकुल निश्चिन्त रहें।” आज न जाने ऐसा क्यों हो रहा था कि हम्बीरराव के मन में महाराज की चरण-धूलि सिर पर लगाने की तीव्र चाह उत्पन्न हो उठी थी। वे एकदम झुके और महाराज के पैर छूने लगे। महाराज की आँखें एकदम बन्द हो गयीं। वे मौन रहकर ही उस स्पर्श से उत्पन्न रोमांच का अनुभव कर रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

छत्रपति सभागृह से निकलकर अपने महल में आये। अब यहाँ एकान्त में आने के बाद उन्हें शरीर में घुसकर बैठे हुए ज्वर की अनुभूति होने लगी। दरवाज़े पर नियुक्त प्रहरी ने आकर सूचना दी, "चिटनीस आये हैं।"

"उन्हें अन्दर भेज दें।" महाराज इधर-उधर टहलने लगे।

बालाजी आवजी महल में आ उपस्थित हुए।

"बालाजी, युवराज के नाम एक ख़लीता पन्हालगढ़ की ओर रवाना करो। लिखो कि राजाराम के मंगल कार्य के अवसर पर तुम्हें निमन्त्रण नहीं भेजा, इस बात का बुरा मत मानना। हम फिर कभी मिलने पर उस बारे में विशेष कहेंगे। परन्तु इधर ताज़ा समाचार यह है कि बादशाह आलमगीर ख़ुद दक्खिन में आ रहा है। उसे रोकने के लिए तुम अपनी सेना को पूरी तरह तैनात रखो। हम समय पड़ने पर तुम्हें बुला भेजेंगे। तुम्हें अपने साथ रखेंगे।"

"जी," बालाजी ने पत्र का विषय ध्यानपूर्वक सुनकर सिर हिलाते हुए कहा।

"यह ख़लीता लिखकर तैयार करो और हमारे हस्ताक्षर के लिए भेजो; और ऐसी व्यवस्था करो कि यह ख़लीता आज ही पन्हालगढ़ रवाना हो जाए।" छत्रपति ने हाथ उठाकर कहा और फिर बालाजी की ओर पीठ फेर ली। किसी गहरे सोच-विचार में डूबे हुए वे कभी नीचे फर्श की ओर और कभी महल की छत की ओर देखते हुए धीरे-धीरे चहलक़दमी करने लगे।

सज्जा-कोठी के बैठक-कक्ष में बैठे सम्भाजी तपाक से उठ खड़े हुए थे। उनका सिर भन्ना रहा था, माथा फटा-सा जा रहा था। उनके सामने पाचाड़ के अस्तबल के दो हरकारे सिर नीचा किये खड़े थे। उनमें से एक हरकारा युवराज के नाम पुतलाबाई का विशेष सन्देश लेकर आया था। पुतलाबाई ने सन्देश भेजा था : 'रायगढ़ के सब दरवाज़े बन्द कर दिये गये हैं। कोई नहीं जानता, क्यों? क़िले में सबके लिए आने-जाने की मनाही कर दी गयी है। हम यहाँ पाचाड़ में धड़कता हृदय लिये बैठी हैं। सुना है कि श्रीमानजी बहुत बीमार हैं। बिस्तर से उठ नहीं पाते। ऊपर रायगढ़ में न जाने कैसा गड़बड़-झमेला चल रहा है। हमें तो कुछ नहीं सूझता कि क्या करें।'

समाचार सुनकर सम्भाजी भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। एक विचार आया कि इसी दम सज्जा-कोठी से उतरें और घोड़े पर बैठकर रायगढ़ की ओर दौड़ पड़ें। परन्तु अगले ही क्षण महाराज के शब्दों ने उनके पैर जकड़ दिये : 'अब जब तक हम न कहें, इस पन्हाला विभाग को छोड़कर कहीं मत जाना।'

'नहीं, नहीं। अब हमें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, अथवा एक भी शब्द हमारे मुख से ऐसा नहीं निकलना चाहिए, जिससे महाराज का दिल दुखे।' दुविधा में पड़े हुए सम्भाजी इधर-उधर घूमने लगे। पन्हालगढ़ से विदा होते हुए महाराज का वेदनापूर्ण मुख रह-रहकर उनकी आँखों के आगे नाच रहा था।

"रायाजी, अन्तोजी, तुम अभी घोड़े उड़ाते हुए रायगढ़ पहुँचो और वहाँ जो भी सुन पाओ, तुरन्त हमें आकर बतलाओ।" सम्भाजी ने दोनों को हाथ का संकेत करते हुए कहा और वे फिर अकेलेपन में डूब गये।

https://t.me/Sahityajunction

वे छत्रपति महाराज, जिन्होंने सूरत से लेकर दक्षिण में जिंजी और पेड्डापोल तक का विशाल प्रदेश घोड़ों की टापों तले रगड़ मारा था, अब दुर्ग के पूर्ण रूप से बन्द कर दिये जाने के कारण अपनी प्रजा से, मावले-सैनिकों से सम्पर्क खो बैठे थे। रायगढ़ के सब महलों पर महारानी सोयराबाई का नियन्त्रण था और उन्होंने कुछ ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि महाराज दुर्ग के किसी भी निवासी से मिल नहीं पाते थे।

सायंकाल का समय था। 'दीया-बत्ती' के समय का नमस्कार करने के लिए राजाराम महाराज के महल में आये थे। साथ ही उनकी माता सोयराबाई भी थीं ही। इन दिनों महाराज के महल पर खण्डोजी नाईक, कान्होजी भाँडवलकर, गणोजी कावला, आदि कुछ ऐसे अधिकारियों का हथियारबन्द पहरा लगा हुआ था, जो सोयराबाई के 'ख़ास अपने' लोग थे। इन पहरा देनेवाले अधिकारियों को भी मालूम न था कि इस समय महारानी के मन में कुछ अभद्र-अमंगल समाया हुआ है।

राजाराम ने महाराज को नमस्कार किया और उनके पास ही पलँग पर बैठ गये। एक सेवक धूपदानी लेकर आया और कक्ष में एक चक्कर लगा गया। कन्नौजी धूप के गोल-गोल छल्ले कमरे में उड़ने लगे।

"आबासाहब, यह कलशाभिषेक क्या होता है?" राजाराम ने महाराज से पूछा।"

"क्यों? तुम क्यों जानना चाहते हो?" महाराज ने एक करवट लेकर राजाराम की ओर मुँह किया।

"हमने सुना है कि शम्भूदादा ने कलशाभिषेक किया है। कहते हैं, कलशाभिषेक इसलिए किया है कि आप इसी तरह बिस्तर पर पड़े रहें।"

राजाराम की बाँह झकझोरते हुए छत्रपति ने पूछा, "किसने कहा ये तुमसे?"

बालक राजाराम झट घूमकर अपनी माँ की ओर देखने लगा।

धुएँ के छल्लों से घिरा हुआ सोयराबाई का मुख उस समय महाराज को बड़ा कुरूप-डरावना लग रहा था। उनकी ओर से एकदम नज़र हटाते हुए महाराज राजाराम से कहने लगे, "ऐसे कलशाभिषेक करने से यदि किसी को मटियामेट किया जा सके, तो हम भी औरंगज़ेब को मिटा डालने के लिए महान कलशाभिषेक समारोह कर डालते। जिस किसी ने भी तुमसे ये बात कही है न, उसे यह ज़रूर बतला देना बेटे।" पाँवों की ओर रखी हुई शॉल को ओढ़ने का प्रयत्न करते हुए महाराज ने कहा।

छत्रपति ने राजाराम की पीठ थपथपायी, और आँखें मींच लीं। सोयराबाई ने झरोखे के किवाड़ धीरे से बन्द किये और वे धीरे-धीरे चलती हुई पलँग के निकट आयीं।

"रानी साहिबा, एक काम करोगी हमारा?"

"ऐसा क्यों कहते हैं? आप कहिए तो सही, हम अवश्य करेंगी।" सोयराबाई की उत्सुकता कानों में सिमट आयी थी।

"कल ही एक हरकारा पन्हालगढ़ भेजी और युवराज को बुलवा लो। पाचाड़ की रानीजी को भी यहाँ बुलवा लो। चिटनीस बालाजी से कहो कि हम्बीरराव, मोरोपन्त, अण्णाजी आदि को तुरन्त ख़लीते भेजी और हमारी बीमारी का समाचार बतलाओ। हमें उन सबसे काफी बातें करनी

https://t.me/Sahityajunction

हैं।" इतना बोलने के कारण छत्रपति थकावट अनुभव करने लगे थे।

"बस, इतनी-सी बात है न! हम अवश्य करा देंगी। आप आराम से लेटे रहिए। हम बालाजी को ही इधर भेज देती हैं।"

राजाराम को लेकर सोयराबाई महल के बाहर चली गयीं। छत्रपति दीवट की लौ की ओर एकटक देखते हुए किसी गहरे सोच में डूब गये।

"विट्ठलपन्त, रायगढ़ से कोई ख़लीता आया है क्या?..." चिन्ताग्रस्त सम्भाजी पन्हालगढ़ के निरीक्षणार्थ चक्कर लगा रहे थे। एकदम रुककर विट्ठलपन्त से पूछने लगे।

"कुछ नहीं आया युवराज। हम भी उसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" विट्ठलपन्त ने पगड़ी हिलाते हुए उत्तर दिया।

सामने ही क़िले का कोंकण दरवाज़ा था। उसकी पत्थर से बनी सीढ़ियों पर चढ़ने से पहले सम्भाजी अचानक ठहर गये, "पण्डितजी, आपका क्या मत है? आबासाहब हमें रायगढ़ क्यों नहीं बुला लेते? या फिर उस बन्द क़िले से कोई भी आदमी नीचे उतरने ही नहीं दिया जाता?"

सम्भाजी ने अपने पीछे चल रहे उमाजीपन्त से पूछा।

उमाजीपन्त पीछे खड़े बहिर्जी इंगले और कृष्णाजी बंकी से कुछ बात कर रहे थे। वे 'जी' कहते हुए झट आगे बढ़ आये। विनयपूर्वक कहने लगे, "हमारा मत इससे भिन्न है, युवराज। रायगढ़ में बालाजी चिटनीस हैं। वे डाक भेजने में कभी भी आलस्य या टालमटोल नहीं कर सकते। शायद ऐसा भी हुआ हो कि छत्रपति महाराज का स्वास्थ्य अब तक ठीक हो चुका हो। लोग व्यर्थ ही उनके स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित हो उठते हैं, यह सोचकर छत्रपतिजी ने ही ख़लीते भेजने से मना किया होगा।"

"तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। भगवान करे, ऐसा ही हो। परन्तु मन के समान चतुर खिलाड़ी कौन है इस संसार में? यह मन जाने कैसी-कैसी शंकाओं-आशंकाओं में डूबता-उतराता रहता है। हमें तो इन दिनों रायगढ़ के अतिरिक्त कुछ भी सूझता ही नहीं। जब तक उधर की कुशलक्षेम की वार्ता न मिल जाए, हमें चैन नहीं मिलेगी।"

सम्भाजी भारी क़दमों से कोंकण दरवाज़े की एक-एक सीढ़ी चढ़कर ऊपर छत पर आये।

"विट्ठलपन्त, शृंगारपूर को सन्देसा भेजकर हमारे चिटनीस परशुरामपन्त को बुलाओ।" सम्भाजी ने मन में कोई बात निश्चित करने के बाद कहा।

"वैसे यदि कुछ लिखने का ही कोई काम-धाम हो, तो इस गढ़ के चिटनीस भी यहाँ हैं। इसलिए..." विट्ठलपन्त मन ही मन चौंक उठे थे और बार-बार इसी बात को दुहराये जा रहे थे।

"हमने जो कहा है, वही काम करो। दो दिन के भीतर परशुरामपन्त यहाँ पहुँच जाने चाहिए। सुन लिया तुमने?" कठोर दृष्टि से विट्ठलपन्त की ओर घूरते हुए सम्भाजी ने कहा। विट्ठलपन्त उस दृष्टि की तीव्रता को सहन नहीं कर पाये और 'जी' कहते हुए उस चक्कर में से छूट निकले।

"पण्डितजी, जब तक रायाजी और अन्तोजी लौटकर नहीं आते, तब तक हमें यूँ ही अधर में लटकते रहना पड़ेगा।" छत के किनारेवाली पत्थर की चहारदीवारी पर हाथ रखे सम्भाजी

https://t.me/Sahityajunction

रायगढ़ की दिशा में कुछ देख पाने का प्रयत्न करने लगे।

"युवराज, धीरज रखें। भावेश्वरी देवी की कृपा से सब कुशल-मंगल ही होगा।" उमाजी के मुख से भावेश्वरी का उल्लेख सुनते ही सम्भाजी को अनुभव होने लगा मानो शृंगारपूर की हवेली क्षितिज की रेखा पर आ खड़ी हुई है। इसी क्षण एक चुभता हुआ विचार उनके हृदय में घुस आया :

'कैसी विचित्र स्थिति है यह! कैसी विवशता है यह! शृंगारपूर में युवराज्ञी ने स्वयं को एकान्त में क़ैद कर रखा है। व्याधिग्रस्त आबासाहब रायगढ़ के दरवाज़ों के भीतर हैं। हमारी राणूदीदी और दुर्गाबाई अहमदनगर के क़िले में बन्द कर दी गयी हैं। और यहाँ पन्हालगढ़ में हम बैठे हैं, किसी के लिए कुछ भी न कर पानेवाली विवशता की मूर्ति बनकर। छत्रपति के शब्दों से जकड़े हुए और सबकी चिन्ता में झुलसते हुए एक बन्दी के समान यहाँ बैठे हैं हम। तो क्या किया जाए? क्या आबासाहब की आज्ञा तोड़ दी जाए? जी करता है कि पन्हालगढ़ से उड़कर जा पहुँचें रायगढ़। आबासाहब ख़ूब खरी-खोटी सुनाएँगे हमें, पर वह भी सही। इसी बहाने उनके दर्शन तो हो पाएँगे। मगर...ना, ना। ऐसा सोचना भी ठीक नहीं। हमें आया देखकर आबासाहब को व्यथा ही होगी। माथे पर बल पड़ जाएँगे उनके। उनकी चढ़ी हुई त्यौरियाँ देखना हमें असह्य हो उठेगा।'

उधर रायगढ़ में चिटनीस बालाजी के लिए भी महाराज के माथे पर उभर आयी त्यौरियाँ देखना असह्य हो रहा था। महाराज को तीव्र ज्वर था, आँखें लाल हो आयी थीं, और वे लिपिक बालाजी से पूछ रहे थे, "क्या चिटनीस के पद का काम ऐसे ही किया है तुमने जीवनभर? हमने तुम्हें आदेश दिया था कि युवराज, मोरोपन्त, सेनापति आदि को ख़लीते लिखो। शरीर बुख़ार से जल रहा था, फिर भी तुम्हें पत्र का विषय, शीर्षक आदि हमने स्वयं लिखवाये थे। पर यह क्या बात है कि एक भी ख़लीते का उत्तर नहीं आया? ये सब अधिकारी अब मुँहज़ोर हो गये हैं या तुम ही कामचोर हो गये हो?"

बालाजी भय से थरथर काँप रहे थे। वे स्वयं भी चकरा गये थे। अपने कुल-देवता की शपथ लेकर वे कहने लगे, "आप विश्वास करें स्वामिन्। हमने स्वयं अपने हाथ से ख़लीते लिखकर घुड़सवार हरकारों को सौंपे हैं। उन्हें सारी सूचनाएँ स्वयं समझायी हैं।"

"फिर किसी का उत्तर क्यों नहीं आता? कोई भी हमसे मिलने कैसे नहीं आया अब तक?"

चिटनीस बुरी तरह सकपका गये थे। वे इस प्रश्न का क्या उत्तर देते! यह सच्चाई थी कि वे इस प्रश्न का उत्तर दे भी नहीं सकते थे।

हुआ यह था कि सोयराबाई ने अपने लोग क़िले के चित्त दरवाज़ा, पालकी दरवाज़ा, नाणे दरवाज़ा आदि सभी दरवाज़ों पर तैनात कर दिये थे। इन आदमियों ने थैलीवाहक सवारों से ख़लीते वाली थैलियाँ वहीं छीन ली थीं। क़िले से नीचे ख़लीते नहीं, केवल सवार उतरे थे और वे सवार अपने-अपने गाँवों की ओर चले गये थे। वे सभी सवार तलबीड विभाग के थे और यह तलबीड गाँव महारानी सोयराबाई का पीहर था। बालाजी ने जो ख़लीते तैयार किये थे, वे थैलियोंसहित सोयराबाई के महल में तालों में बन्द कर दिये गये थे।

सोयराबाई कृत्रिम सहानुभूति जतलाती हुई आगे बढ़ीं और बालाजी को बचाने का दाँव चलने लगीं, "इस बारे में बालाजी का क्या अपराध है? श्रीमान्‌जी! युवराज से क्यों आशा लगाये बैठे हैं कि वे आएँगे या वहाँ से कोई पत्र आएगा? यदि उन्हें आपसे ऐसी ही प्रीति होती, तो वे

https://t.me/Sahityajunction

सबको धता बताकर शत्रु से क्यों जा मिलते? पेशवा मोरोपन्त और सेनापति हम्बीरराव को तो आपने ही दूर-दूर की मुहिमों पर भेजा है। उनकी छावनियाँ न जाने कहाँ हैं? वे सब आएँगे, आप तनिक धीरज रखिए। ये बाल-राजा राजाराम भी कब से पूछ रहे हैं—हमारे दादाभैया कहाँ हैं? क्या बताएँ हम इन्हें?" सोयराबाई ने राजाराम को अपने निकट खींच लिया और फिर महाराज के सामने ला खड़ा किया।

महाराज ने महारानीजी को आड़े आते देखा, तो उनकी ख़बर लेते हुए उन्होंने फिर प्रश्न किया, "ओ हो। ठीक है, सब नहीं आ सकते। पर पाचाड़ की रानी जी तो किसी मुहिम पर नहीं गयी हैं? या वे भी शत्रु से जा मिली हैं? हमने तुमसे कहा था कि उन्हें बुला लो।"

"हमने आदमी पाचाड़ भेजे थे। परन्तु पता चला कि जब से छोटी रानीजी ने सुना है कि 'श्रीमान्‌जी' खाट से लगे हैं, तब से वे भी बहुत बीमार हो गयी हैं।" सोयराबाई ने सफ़ेद झूठ कह डाला।

छत्रपति निराश होकर, नाक चिकोटी में पकड़कर 'जगदम्बे, हे जगदम्बे' कहते हुए पलँग पर लेट गये।

रायगढ़ के रंगमंच पर एक भयानक छल-नाटक होने जा रहा था। उस छल-नाटक की सूत्रधार थीं स्वयं महारानी सोयराबाई। लक्ष्य थे—महाराज और युवराज सम्भाजी। फलप्राप्ति थी—रायगढ़ का सिंहासन। मोरोपन्त, अण्णाजी और बालाजी—ये स्वामिभक्त और सेवादक्ष पात्र भी अब केवल कठपुतली मात्र रह जानेवाले थे।

मराठा-साम्राज्य के भवन को छत्रपति ने हजारों के मन की एकता द्वारा, असीम कष्ट सहन करके और न जाने कितने ही प्राणप्रिय व्यक्तियों के बलिदान द्वारा बनाया था। अब सोयराबाई अपने चालबाज हाथों से और काइयाँ मन से उसे ढहाने की तिकड़म लगा रही थीं।

सज्जा-कोठी में ख़ानसामे ने चौकी पर भोजन की थाली लाकर रख दी, परन्तु सम्भाजी ने थाली को हाथ से दूर हटा दिया और उठ खड़े हुए। पिछले दो दिनों में भी उन्होंने ऐसा ही किया था। महाराज की स्मृति के कारण उनकी भूख मारी गयी थी।

उन्होंने व्यथा-भरी दृष्टि से रायाजी और अन्तोजी की ओर देखा। ये दो भाई पाचाड़ में चार दिन तक डेरा डाले पड़े रहे थे। दोनों ने रायगढ़ का समाचार जानने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था, परन्तु रायगढ़ में घुस सकते थे तो केवल हवा और प्रकाश या फिर जंगल के पंछी।

नागपुर से साबाजी भोसले महाराज का कुशल-क्षेम जानने के लिए आये हुए थे, परन्तु उन्हें भी पाचाड़ में ही अटककर रह जाना पड़ा था।

"चिटनीस, कुछ समझ नहीं आता कि महाराज ने ये क़िले के दरवाजे बन्द करने की आज्ञा क्यों दी है? शायद उन्हें भय सताता होगा कि हम रायगढ़ चले आएँगे।" सम्भाजी शृंगारपूर से आये हुए परशुरामपन्त से अत्यन्त चिन्तित हो कर कह रहे थे।

"हमें नहीं लगता कि महाराज ने ऐसी कोई आज्ञा दी होगी।"

https://t.me/Sahityajunction

“तो और किसकी हिम्मत है कि राजधानी के खुले दरवाज़े बन्द करवा दे?”

“कहना तो नहीं चाहिए, परन्तु...परन्तु महारानीजी ऐसा दुस्साहस अवश्य कर सकती हैं?” परशुरामपन्त ने काफी सोच-समझकर अनुमान लगाया था।

“क्या कह रहे हो तुम? महाराज साहब के स्वयं रायगढ़ में रहने पर भी वे ऐसा साहस कर पाएँगी?”

“महाराज तो शय्या पर पड़े हैं।”

“फिर भी वे महाराज हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं उन्हें।”

“परन्तु युवराज, आप भूल रहे हैं कि महाराज-महाराज हैं, तो महारानीजी भी महारानी हैं।”

“छिः-छिः। पन्त, आज कोई अनजानी आशंका, एक अपरिचित चिन्ता प्राणों को मरोड़े डालती है। आज हनुमान जयन्ती है। चलो, जाकर उस रामभक्त के दर्शन करें।”

व्याकुलचित्त सम्भाजी परशुरामपन्त को साथ लेकर सज्जा-कोठी से उतरे और उपरिकोट की उत्तर दिशा में स्थित, महाराज द्वारा प्रतिष्ठापित हनुमान-मन्दिर के पास आये। मूर्ति पर सिन्दूर का ताज़ा लेप किया गया था। मूर्ति को देखकर सम्भाजी को लगा कि उस पवित्र लेप पर हथेली फिराकर अपने सारे माथे पर लेप लगा लिया जाय और उस पवन-पुत्र से पूछा जाय—‘हे पवनपुत्र हनुमानजी, आपमें उड़ान करने की अद्‌भुत शक्ति है। आज तो आपका जन्मदिन है। आज आप ऊँचे आकाश में सूर्य की ओर न जाकर क्या रायगढ़ जा सकेंगे? हमारे आबासाहब के स्वास्थ्य का सुसमाचार क्या आप हम तक पहुँचा सकेंगे?’

इधर सम्भाजी मन की समस्त करुणा और वेदना के आवेग से व्यथित होकर उस पवनपुत्र से मूक भाषा में निवेदन कर रहे थे और उधर पूर्णिमा की उस रात्रि में भी गहरी काली काल-अमावस्या ने रायगढ़ को निगल लिया था। दो दिनों से रायगढ़ के रसोईघर में चूल्हे भी नहीं जल पाये थे।

https://t.me/Sahityajunction

आठ

आज सूर्योदय के समय ही एक समाचार वज्र बनकर पन्हालगढ़ पर आ टूटा था। रायगढ़ द्वारा पूरी सावधानी बरती गयी थी, फिर भी पाचाड़ में पुतलाबाई ने और कराड विभाग में तलबीड के पासवाले पड़ाव में सेनापति हम्बीरराव ने वह समाचार पा ही लिया था और यहाँ पन्हालगढ़ में खबर भिजवायी थी।

पुतलाबाई ने विशेष हरकारा भेजकर सूचित किया था : 'आज भरी दोपहरी में अमावस हो गयी। हमारा सुहाग लुट गया। हमको और तुमको अनाथ बनाकर श्रीमान्‌जी सदा के लिए सो गये। गढ़ में सब गड़बड़-झमेला मचा हुआ है। अन्त समय 'श्रीमान्‌जी' का मन्त्रोच्चार सहित अन्त्येष्टि संस्कार भी नहीं हुआ। केवल अमन्त्रक अग्नि से उनका दाह-संस्कार कर दिया गया। प्रसंग बहुत कठिन आ पड़ा है। धैर्य से काम लेना। जो कुछ भी करो, सावधान रहकर, सोच-विचार कर करना। आदमियों को पूरी तरह पहचान कर और कसौटी पर कसकर ही अपना बनाना। हम तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। माँ भवानी की इच्छा के सम्मुख किसका वश चलता है? और भी बहुत कुछ कहना है, भेंट होने पर ही हम कहेंगी!'

हम्बीरराव ने सूचना भिजवाई थी : 'मालिक साम्राज्य को अनाथ बना गये। हम रायगढ़ जा रहे हैं। हिम्मत न हारो। हम तुम्हारे साथ हैं।'

यद्यपि एक आत्मीय व्यक्ति ने कहा था कि 'हिम्मत न हारो,' तथापि वह समय ही ऐसा आ पड़ा था कि हिम्मत के धनी भी धीर खो बैठें।

सम्भाजी को अभी तक विश्वास नहीं हो रहा था कि बोलते-फिरते, हास्यपूर्ण बदनवाले उनके आबासाहब अब संसार में नहीं रहे। जिस प्रकार नदी किनारे की रेत में कितना भी उलीचा जाए, पानी बना ही रहता है, इसी प्रकार स्मृतियों की भीड़ सम्भाजी के मन से हटती ही नहीं थी। कभी-कभी ऐसे क्षण भी आये है, जब मनुष्य को अपना जीवन व्यर्थ, खोखला प्रतीत होता है। आज सम्भाजी इसी मनोदशा में पहुँच गये थे। आज भाग्य ने उन पर सबसे भीषण आघात किया था। उनका विक्षुब्ध मन अनियन्त्रित होकर चाहे जिधर दौड़ता फिर रहा था। शोक, पश्चात्ताप, विवशता, सन्ताप, उपेक्षा, अपमान, उद्वेग आदि भावों की आँधी में उनका मत तितर-बितर हो उठा।

https://t.me/Sahityajunction

'चले गयेऽ...आबासाहब चले गये? हमसे कुछ बोले बिना चल दिये? क्या हमारे व्यवहार का दुख ही उन्हें खा गया? पर्वत के समान धैर्यशाली उस महापुरुष का कलेजा हमारी करनी के कारण फट गया। आबासाहब, अपने होकर भी आप हमें धोखा दे गये! क्यों चले गये आप? कैसे चले गये आप? 'हम लज्जित हैं तुम्हारी करनी देखकर'—कम-से-कम ये कठोर बात सुनाने के लिए तो आप एक बार हमें दर्शन दे जाते!

'दुर्ग के द्वार बन्द करनेवाले, अरे सयाने लोगो! दुर्ग में आग लगाना ही क्यों भूल गये भले आदमियो? हमारे आबासाहब सिद्दी जौहर का घेरा तोड़कर निकल गये थे, आगरा के बन्दीगृह से चुपके से ग़ायब हो गये थे, उन्हें तुम बन्दी बनाकर रख पाओगे? वे तुम्हें भी चकमा देकर निकल जाएँगे, यह बात तुम्हारे ख़याल में कैसे नहीं आयी? यह कैसा 'पुण्य' कमा बैठे तुम?

'हाय, अब कौन पुकारेगा हमें 'शम्भूबेटा' के प्यार-भरे स्वर से? 'जगदम्बे, हे जगदम्बे' का वह महामन्त्र हमें अब कौन सुनाएगा? आबासाहब के मुख से इस मन्त्र को सुनकर ही वह अष्टभुजा भवानी हमारी आँखों के आगे उपस्थित हो जाती थी। अब किसकी चरणधूलि हम सिर में लगाएँ? उस मावल माची पर किसके साथ खड़े होकर पाचाड़ के चबूतरे का दर्शन करें? अब रायगढ़ में भी हमारे लिए क्या रह गया है? क्यों जाएँ वहाँ? सिंहासन पाने? उस मिट्टी-पत्थर के राज का राजा बनने? छिः-छिः, ऐसा कभी नहीं हो सकेगा हमसे।

'रायगढ़ में कैसे विचित्र लोग जमा हो गये हैं? अरे, जिन आबासाहब ने 'हर हर महादेव'—यह मृत्युंजय मन्त्र तुम्हें दिया, उन्हें तुमने अन्त में मन्त्राग्नि भी नहीं दी? अरे, तुमने जिस अमन्त्रक अग्नि से उनकी देह का दाह कर डाला, वह अमन्त्रक अग्नि यहाँ हमारे हृदय में हमें भी जलाये डाल रही है। हम यदि रायगढ़ लौटे भी, तो बस इसी एक बात का हिसाब चुकता करने के लिए ही आएँगे!

'मराठा-साम्राज्य के छत्रपति को तुमने बच्चों का खेल समझ लिया है क्या? कि कोई ऐरा-ग़ैरा 'पैदल' या 'वज़ीर' आये और 'बादशाह' को घेर ले? वह स्वामिभक्त रायगढ़ भी आठ-आठ आँसू रो दिया होगा तुम्हारी करनी देखकर।

'हम आबासाहब से नाराज़ हो गये थे, परन्तु वह नाराज़गी बिलकुल साफ-साफ थी, सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट थी। हमारे बुरे समय ने हमें बहका दिया था, फिर भी उस अनुभवी महापुरुष ने हमें छाती से लगा लिया। हमने अपने आचरण से उन्हें जो मानसिक यातनाएँ दीं, उनके पश्चात्ताप से हम अभी मुक्त भी नहीं हो पाये थे कि हमारे आबासाहब को तुमने हमसे छीन लिया। हमें गहरी खाई में ढकेल दिया तुमने! अरे, इन करमों के भोग से कैसे बच पाओगे?

'उन कर्मों का दण्ड क्या हो, इसका नमूना तो हम ही दिखाएँगे उन कम्बख्तों को। भला हम क्यों जनमे हैं युवराज बनकर? इसीलिए कि मुँह में कपड़ा ठूँसकर कोई हमें मुक्के-थप्पड़ जमाता रहे? क्या इसीलिए कि अपने जन्मदाता के अन्तिम क्षणों में उनके पास खड़े भी न रह पाएँ?

'बड़ी आऊसाहिबा, यदि आज आप होतीं, तो हम अपना यह अभागा सिर आपकी गोदी में तो रख पाते। परन्तु...यदि वे होतीं, तो हमें ही उन्हें समझाने का और धीर बँधाने का काम करना पड़ता।...नहीं, नहींऽ, हमारी बड़ी आऊसाहिबा गयी नहीं हैं। पाषाणहृदय वह यमराज भी उन्हें हमसे छीनकर नहीं ले जा सकता। हमें स्पष्ट सुनाई दे रहे हैं उनके बोल—'शम्भू बेटेऽ, युवराज, शान्त होओ। धीरज रखो।' उनके अदृश्य हाथ आज भी हमारी पीठ सहला रहे हैं। देखो, स्वयं

https://t.me/Sahityajunction

आबासाहब ही हमारी कमर में प्यारी भवानी तलवार बाँध रहे हैं। वह देखो, हँसती हुई बड़ी आऊसाहिबा हमारे माथे पर शिवतिलक लगा रही हैं। हथेली पर दही का थक्का रख रही हैं। नहींऽ, नहींऽ अब हम दुःखी नहीं होंगे। अपने को कभी अनाथ या निराश्रित नहीं समझेंगे। अगणित वीरों ने 'श्री' के जिस राज्य को अपने ख़ून से सींचा है, उस राज्य को हम भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ेंगे। इस राज्य को संकीर्ण मन और कुटिल बुद्धिवाले धूर्तों के हाथ में नहीं जाने देंगे। पाचाड़ की आऊसाहिबा, हम अब सावधान हो गये हैं। आबासाहब की भगवी ज़रीपताका अब हमने अपने हाथों में उठा ली है। हमें सौगन्ध है आबासाहब की और उस माँ भवानी की।

'हमने आबासाहब को जो प्राणघातक, हृदयविदारक दुःख दिया है, उसका अब हम परिशोध करेंगे, चाहे हमें अपने प्राणों से ही हाथ क्यों न धोना पड़े। कौन है वह सिद्दी कासिम, कहाँ का है वह अँग्रेज़ और उस औरंगज़ेब में भी कितना दमखम है, यह भी हम देखेंगे ही।'

छाती पर पड़ी भवानीमाला उनकी मुट्ठी में कसकर दबी जा रही थी।

दृढ़ मन से और अत्यन्त शान्तिपूर्वक उन्होंने दरवाज़े की अगड़ी हटायी और किवाड़ खोल दिये। जंगल की ताज़ी हवा का एक झोंका भीतर घुस आया।

बाहर खड़े घबराये हुए लोग युवराज की सूजी हुई आँखों को देखते ही रह गये। अब उन दो आँखों की थाह नापना किसी के भी वश की बात नहीं थी। रायगढ़ से लुप्त हुआ 'शिवत्व' इन दो नेत्रों की गहराई में शनैः-शनै उतर आया था।

"चिटनीस, चन्द्रमा के चारों ओर चन्द्रमण्डल घिर आता है, वह महापुरुषों के लिए अनिष्टकारी होता है, ऐसा कहते हैं परन्तु हम समझते हैं कि वह चन्द्रमण्डल महापुरुषों के स्वप्नों-महत्त्वाकांक्षाओं को भी खा लेता है?" सम्भाजी ने कुछ ऐसी बात कही जिसका आशय परशुरामपन्त समझ नहीं सके।

"रायाजी, अन्तोजी, आज सायंकाल की नौबत बजी थी क्या?"

"नहीं," गड़बड़ी से उत्तर दिया गया।

"आज नौबत नहीं बजी, इसका मतलब है कि क़िलेदार विट्ठलपन्त को महाराज साहब की मृत्यु का समाचार मिल गया है। फिर भी वे आकर हमें बताते नहीं हैं। उन पर ज़रा नज़र रखो।"

सब लोग सम्भाजी की ओर देखे जा रहे थे। ठीक इसी समय उपरिकीट में विट्ठलपन्त रायगढ़ से आये हुए हिरोजी फर्जन्द और सोमाजी बंकी से कुछ कानाफूसी कर रहे थे। सोयराबाई ने रायगढ़ की व्यवस्था का काम कान्होजी भाँडवलकर और शहाजी भोसला सरनोबत को सौंपा था। भूषण, भण्डार, वस्त्रागार, दफ्तरों पर मोहर लगा दी गयी थी। सोयराबाई ने हिरोजी फर्जन्द और सोमाजी बंकी को रायगढ़ से पन्हालगढ़ भेजा था और उनके हाथ क़िलेदार विट्ठलपन्त के कान फूँकनेवाला कोई मन्त्र भी भिजवाया था।

अब शतरंज की बाज़ी शुरू हो गयी थी—पन्हालगढ़ में सम्भाजी नामक युवराज एक खिलाड़ी थे और रायगढ़ का सारा कारोबार अपने हाथ में लेनेवाली महारानी सोयराबाई तथा उनके पिट्ठू दूसरी ओर थे।

https://t.me/Sahityajunction

शिवाजी महाराज के अस्थि-संचय की विधि पूरी होने के अगले ही दिन कोंकण की ओर गये हुए अण्णाजी दत्तो रायगढ़ पहुँच गये और आते ही वे शोकातुर महारानी को ढाढस बँधाने के लिए सातमहल वाले उनके महल में पहुँच गये। पहले कुछ रीति-रिवाज वाली बातें हुईं और फिर सोयराबाई ने सीधे मतलब की बात छेड़ दी, "श्रीमान्‌जी तो चले गये। अब आगे का कारोबार कैसे चलेगा, हमें तो यही चिन्ता सता रही है।"

"इसी कारण हम एक ही दम में दौड़ते हुए चले आये हैं रानीसाहिबा की सेवा के लिए। आप जो भी कहेंगी, हम उसका समर्थन करेंगे। आप धैर्य रखिए।" अण्णाजी सिर झुकाते हुए बोले।

"तुम पर हमें पूरा भरोसा है पर दूसरों के बारे में क्या कहा जा सकता हे? अब पन्हालगढ़ भी सिर उठा सकता है। मोरोपन्त हैं, प्रह्लाद निराजी हैं, राहुजी हैं, इनका क्या भरोसा? और सबसे बढ़कर यह कि उन सेनापति जी का भरोसा कैसे किया जाय?"

"सेनापति तो आपके भाई ही हैं। हमें पूरा विश्वास है कि वे बाल-राजा के मामा होने के नाते अवश्य उनकी पीठ पर हाथ फेरेंगे। शेष लोगों को हम समझा-बुझा लेंगे। युवराज यहाँ रायगढ़ में राजा बन जाएँ, यह बहुत ख़तरे की बात है। इसलिए जो कुछ भी करना हो, झटपट और छुपाकर करना होगा। हमारा विचार है कि आप बाल-राजा को 'मंचक' पर बिठा दें और शासन का कारोबार अपने हाथ में ले लें। इसके बिना राज्य का भला नहीं होगा। इस समय आपको बहुत दृढ़ रहकर धीरज से काम लेना होगा।"

"हम तो दृढ़ हैं ही। तुम सब लोग भी बाल-राजा की पीठ पर रहो, तो ही काम बन पाएगा।"

"हम अपने कुलदेवता की शपथ लेकर वचन देते हैं कि आपका साथ देंगे। आप निश्चिन्त रहें।"

इस प्रकार सोयराबाई की कँटिया में अण्णाजी दत्तो के रूप में मन्त्रिमण्डल की सबसे चतुर और चंचल मछली आ फँसी। यह मछली केवल स्वयं जाल में फँसनेवाली ही नहीं थी, यह अपने बुद्धिचातुर्य से जाल फैलाना भी जानती थी। छत्रपति का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते सम्भाजी राजगद्दी के हक़दार थे, परन्तु उन्हें अपदस्थ करने का कुचक्र अण्णाजी क्यों कर रहे थे? इसके कई कारण थे। एक तो यह कि उनका दृढ़ मत था कि उनकी एक सम्बन्धी सुहागिन स्त्री सम्भाजी के कारण ही व्यर्थ में मारी गयी है। युवराज उनके लगान वसूली के अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं, यह भी उनके रोष का एक कारण था। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण कारण कुछ और ही था। उन्हें भय था कि सम्भाजी यदि राजा बन गये, तो वे उन्हें सुरनीस अर्थात पन्त-सचिव पद से हटा देंगे। यदि हटाया भी नहीं, तो कम-से-कम सुरनीस-पद को अण्णाजी पूरे अधिकारसहित नहीं चला पाएँगे। हाँ, यदि राजाराम राजा बन जायँ, तो अण्णाजी निश्चय ही महारानीजी के प्रधान सलाहकार बन जाएँगे।

सोयराबाई तो महाराज के राज्याभिषेक के बाद से ही हाथ धोकर सम्भाजी के पीछे पड़ गयी थीं। 'शत्रु का जो शत्रु हो, वह अपना मित्र होता है' इस न्याय के अनुसार सोयराबाई और सुरनीस अण्णाजी में साँठ-गाँठ हो जाय, यह नितान्त स्वाभाविक बात थी।

उसी दिन शाम को प्रधानमन्त्री अर्थात् पेशवा मोरोपन्त नासिक से चलकर रायगढ़ आ पहुँचे थे। वे भी महारानी से मिलने सातमहल में गये। आज उपरिकोट उन्हें महाराज के बिना सूना-सूना लग रहा था और दिल भर आता था। सान्त्वना के दो बोल भी उनके मुख से नहीं निकल पा रहे

https://t.me/Sahityajunction

थे। वे मुख पर उत्तरीय रखकर बालक के समान फफक-फफककर रोने लगे। जब उनका शोकावेग कुछ कम हुआ, तो सोयराबाई कहने लगीं, "तुम ही जब ऐसा धीरज खो बैठोगे, तो भला हमें किसका सहारा होगा? इन बाल-राजा की पीठ कौन थपथपाएगा? हम तो लुट गयी हैं। क्या करें, कुछ भी समझ नहीं आता," सोयराबाई के प्रत्येक शब्द से मोरोपन्त का दुख दूना हो रहा था। वे आँखें मींचकर सिर झुकाकर शान्त वाणी से कहने लगे, "आप दुःखी न हों। हम आपके साथ हैं।"

"यही तो सबसे बड़ी सन्तोष की बात है। हमें तुमसे यही आशा है। तुम अण्णाजी से जाकर मिलो। जो कुछ भी करना हो, वे और तुम एकमत से करो। हम भला क्या कह सकती हैं?" इस प्रकार सोयराबाई ने चतुराई से शब्दों पर मुलम्मा चढ़ाकर वह सब कुछ कह डाला, जो उन्हें कहना था। एकमत तो पहले ही हो चुका था—सोयराबाई और अण्णाजी का, पर प्रधानमन्त्री मोरोपन्त को अत्यन्त चतुराई से एकमत में शामिल किये बिना एक भी क़दम आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था।

उदास रायगढ़ पर खिन्नतापूर्ण रात्रि छायी हुई थी। सुलगती हुई मशालें उस उदासी के अन्धकार को दूर करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थीं। मन्त्रियों की बस्ती में, अण्णाजी की हवेली में मोरोपन्त और अण्णाजी के बीच रात बड़ी देर तक चर्चा चलती रही थी। मोरोपन्त द्विधा-मन थे, कोई अन्तिम निर्णय नहीं कर पाते थे। अण्णाजी अपनी बुद्धि की समस्त चतुराई दाँव पर चढ़ाकर उन्हें समझाने का प्रयत्न कर रहे थे कि राजाराम का पक्ष ही न्यायसंगत है। मोरोपन्त ने यद्यपि अभी तक अपनी अन्तिम स्वीकृति नहीं दी थी, तथापि उनका झुकाव अब राजाराम की ओर हो चला था।

कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि को हम्बीरराव पौ फटने के साथ ही रायगढ़ आ गये। रात उन्होंने पाचाड़ की हवेली में बितायी थी और वहाँ वे पुतलाबाई से मिलना नहीं भूले थे। पुतलाबाई से हुई भेंट में हम्बीरराव ने घटनाओं का समस्त विवरण प्राप्त कर लिया था। उन्हें महाराज की मृत्यु से अपार दुःख हुआ था। परन्तु उससे भी अधिक दुःख उन्हें यह जानकर हुआ कि महारानी की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है और कई विश्वासपात्र लोग भी आँख मूँदकर उनके पीछे चले जा रहे हैं।

रायगढ़ पहुँचते ही हम्बीरराव महारानी से मिलने सातमहल में गये। उन्हें देखते ही सोयराबाई फूट-फूटकर रोने लगीं। महाराज की याद आते ही हम्बीरराव की आँखें भी छलछला आयीं। राजाराम को अपने पास लेती हुईं सोयराबाई भर्रायी आवाज से कहने लगीं, "हमारी बात छोड़ो, पर तुम्हारे इस भानजे को अब कौन धीरज बँधाएगा? यह तो ठीक हुआ कि तुम रायगढ़ आ गये। अब चिन्ता थोड़ी तो कम होगी ही। नहीं तो इतने बड़े साम्राज्य का उत्तरदायित्व ये बाल-राजा किसके सहारे सँभाल पाते?" सोयराबाई ने हम्बीरराव का दिल टटोलकर देखा।

हम्बीरराव ने कभी नहीं सोचा था कि महारानीजी छत्रपति के श्राद्ध-सम्बन्धी सब विधियों के पूरे होने से पहले ही साम्राज्य के विषय में कुछ कहेंगी। वास्तव में स्वयं उनके मन में कई प्रश्न रह-रहकर उठ रहे थे और वे क़िले में रहनेवाले लोगों से पूछना चाह रहे थे—दुर्ग के दरवाज़े क्यों बन्द थे? महाराज की बीमारी की कोई भी ख़बर हम तक क्यों नहीं भेजी गयी? छत्रपति का अमन्त्रक अग्नि से दाहकर्म क्यों किया गया? परन्तु यह सब पूछने का यह समय नहीं है, इतना व्यावहारिक ज्ञान उन्हें जीवन के अनुभवों ने सिखाया था।

https://t.me/Sahityajunction

हम्बीरराव ने राजाराम को अपने पास कर लिया और उसके कन्धों को थपथपाते हुए उन्होंने सोयराबाई को समय और असमय की बात की समझ इन शब्दों में कह समझायी, "ये बाल-राजा और युवराज तो महाराज की दो आँखों के समान थे। युवराज को भी पन्हालगढ़ से यहाँ बुला लेंगे। उसके बाद जो कुछ करना होगा, वह युवराज, पेशवा, सुरनीस, न्यायाधीश, येसाजी, हम और तुम मिलकर सोच लेंगे। अब महाराज की मृत्यु का समाचार जानकर शत्रु चारों ओर सिर उठाएँगे। धर्मशास्त्र के अनुसार की जो भी विधियाँ होनी हैं, वे पूरी होने दो, फिर सब लोग मिलकर तय करेंगे।"

सोयराबाई ने रायगढ़ के रनिवास में बैठकर कुछ अक्ल की पूँजी कमायी होगी, पर हम्बीरराव ने भी धूप में बाल सफ़ेद नहीं किये थे। उन्होंने भी राज्य के लिए जान हथेली पर लेकर शहरों-जंगलों में दौड़धूप की थी। उनके बोल स्वामिभक्तिपूर्ण और बिलकुल खरे थे।

सोयराबाई ने जैसे ही उनका मत सुना, वे सावधान हो गयीं। ताड़ गयीं कि उनके कुचक्र में हम्बीरराव सम्मिलित नहीं होनेवाले। इतना ही नहीं, वे यह सोचकर दहल उठीं कि कहीं ये हम्बीरराव अपने जाल में फँसे अण्णाजी और मोरोपन्त को भी भगा न ले जाएँ। इस कारण वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि हम्बीरराव को रायगढ़ से दूर कैसे फेंक दिया जाय! परन्तु कहने यह लगीं, "हम तुम्हारा कहा कैसे टाल सकती हैं? जो कुछ भी करना होगा, तुम्हारी सलाह से ही करेंगी। बाल-राजा, मामाजी को प्रणाम करो। आज तुम इनके भानजे हो, ये तुम्हारे मामा हैं। कल अगर तुम कहीं ऊँचे पर जा बैठे, तो इन मामा सेनापतिजी को प्रणाम नहीं कर पाओगे। सो आज ही प्रणाम कर लो।" सोयराबाई ने अन्तिम प्रयत्न के रूप में ख़ून के रिश्ते का उल्लेख करके हम्बीरराव को फिर एक बार परखना चाहा।

राजाराम उनके पैरों में झुकना चाहते थे कि हम्बीरराव ने उन्हें बीच ही में रोक लिया और बोले, "ना, ना ऐसा मत करो। तुम जिस दिन बाल-राजा बनकर महाराज के वंश में पैदा हुए, उसी दिन से हम तुम्हारे सेवक बन गये। ख़ून का रिश्ता उसी दिन समाप्त हो गया। इसलिए तुम हमारा मुजरा पाने के अधिकारी हो गये हो। भला हमें प्रणाम क्यों करते हो?" इतना कहकर हम्बीरराव ने महारानी और राजाराम को मुज़रा किया और वे बाहर जाने लगे। उनकी चौड़ी पीठ को सोयराबाई मशाल की-सी दृष्टि से देख रही थीं। इस लपट ने ख़ून के रिश्ते का अंकुर जला डाला। सोयराबाई ने अपने सलाहकारों की सूची में से हम्बीरराव का नाम पोंछ डाला।

सोयराबाई ने अण्णाजी को बुलवा लिया और मीठी-मोहक वाणी से कहने लगीं, "सेनापति अपना साथ नहीं देंगे। श्राद्ध आदि विधियों के पूर्ण होते ही हम उन्हें कराड विभाग की ओर कूच करने का आदेश दे रही हैं परन्तु तुम उनसे ज़रा बचकर रहना।"

सुनकर अण्णाजी चिन्ता में डूब गये। वे हम्बीरराव और सेनाओं पर उनके प्रभाव को अच्छी तरह जानते थे। फिर भी उन्हें विश्वास था कि एक बार यदि राजाराम का 'मंच-आरोहण' हो जाय, तो फिर हम्बीरराव भी अनुकूल बन जाएँगे। इसी भरोसे पर वे सोयराबाई से कहने लगे, "हम उन्हें अनुकूल बनाने की पूरी कोशिश करेंगे। महारानीजी निश्चिन्त रहें। आप इतना अवश्य करें कि श्राद्ध-विधियाँ समाप्त होने के बाद उन्हें कराड विभाग की ओर रवाना कर दें और कोई ऐसा काम दें कि वे उसी ओर अटके रहें।"

अण्णाजी ने अपने कुचक्र के साथियों को भी बता दिया कि हम्बीरराव अपने उद्देश्य में

https://t.me/Sahityajunction

सहभागी नहीं होंगे। इस कारण मोरोपन्त, प्रह्लाद निराजी, राहुजी आदि लोग हम्बीरराव से मिलने पर केवल इधर-उधर की कुछ बातें करते थे और उनसे चौकन्ने रहते थे।

चैत्र कृष्ण द्वादशी को महाराज के श्राद्धकर्म प्रारम्भ हुए। राजपुरोहित गढ़ के काला हौज़ के पास खड़े राजाराम की प्रतीक्षा कर रहे थे। साबाजी और परसोजी भोसले राजाराम को लेकर वहाँ आये और राजाराम के हाथों पिण्डदान किया गया। आस-पास के करंज-वृक्षों पर कौवे काँव-काँव का कोलाहल मचा रहे थे, परन्तु उनमें से एक भी कौआ पिण्ड को छूने नीचे नहीं उतरा।

श्राद्ध दिवस के अगले दिन पहले पहर में ही हम्बीरराव को सातमहल से बुलावा आ गया। वे जब महारानी के सम्मुख उपस्थित हुए, उस समय येसाजी कंक, आनन्दराव, मोरोपन्त, अण्णाजी पहले से उपस्थित थे। सोयराबाई हम्बीरराव के मुजरे को स्वीकार करते हुए दरबारी भाषा में कहने लगीं, "आओ सेनापति, सब लोग तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"जी!"

"एक विशेष हेतु से तुम्हें याद किया है हमने। तुमने जो कहा था, वही विचार हमें अब बेचैन किये है। अब भय है कि कहीं हमारे शत्रु चारों ओर से सिर न उठाने लगें। तुम जो पुराने, अनुभवी लोग हो, उन्हें अब अपने-अपने नियुक्त विभाग में जाकर पड़ाव डालना पड़ेगा। आनन्दराव, रूपाजी, तुम सातारा पर रहो। येसाजी, तुम दस हज़ार की फ़ौज लेकर पाचाड़ में तैयार रहो। सेनापति, तुम तुरन्त कराड की ओर रवाना हो जाओ और इधर-उधर बिखरी हुई सारी सेना इकट्ठी कर लो। मोरोपन्त और अण्णाजी, तुम भी अपने-अपने स्थानों पर जाकर डेरा डाल दो।" एक-एक पगड़ी महारानी का एक-एक हुक्म पाकर झुक रही थी।

हम्बीरराव ने गरदन ऊँची उठाकर मन की बात प्रकट करनी चाही..."परन्तु यहाँ का कारोबार कैसे चलेगा? सम्पत्ति व साम्राज्य अति विशाल है, इसलिए जो कुछ किया जाय, भविष्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।"

"वह सब तुम सब लोगों की सलाह से ही बाद में आराम से करेंगे। इस समय तो राज्य की रक्षा करना ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसलिए तुम सब आज ही रवाना हो जाओ।"

"जी," हम्बीरराव सहित सभी ने स्वीकृतिसूचक हुंकार भरी। सोयराबाई बैठक से उठ खड़ी हुईं। सब को बीड़े दिये गये। इस राजसभा का प्रयोजन एक ही था—हम्बीरराव और आनन्दराव को रायगढ़ से दूर रखना। अण्णाजी और मोरोपन्त के कहीं जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। वे रायगढ़ में ही रहनेवाले थे।

हम्बीरराव और आनन्दराव रायगढ़ से उतरकर कराड और सातारा की ओर कूच कर गये। हम्बीरराव रायगढ़ से उतर गये और उनके साथ ही 'सुविचारशील अनुभवी मन्त्रणा' भी रायगढ़ से विदा हो गयी। शेष रहे केवल षड्यन्त्र और छल-कपट।

उधर सम्भाजी ने भी पन्हालगढ़ में शिवाजी महाराज के श्राद्ध-कर्म किये और सोमेश्वर सरोवर के निकट पिण्डदान किया। चावल, पायस के उस पिण्डे के सम्मुख उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'आबासाहब, जो कुछ भूल-चूक हुई हो, वह हमारी समझिए। हम आपकी कोई इच्छा

https://t.me/Sahityajunction

अधूरी नहीं रहने देंगे।' सम्भाजी ने दिवंगत आत्मा के प्रति मन-ही-मन यह आश्वासन दिया ही था कि आस-पास के वृक्षों पर बैठे कौओं के झुण्ड उस पिण्डे पर टूट पड़े और देखते ही पिण्डा समाप्त भी हो गया।

अन्त्य-विधियों के समाप्त होते ही सम्भाजी अब अत्यन्त शीघ्रता से सूत्रों का संचालन करने लगे, क्योंकि वे जान गये थे कि हवा का रुख़ क्या है। सज्जा-कोठी में उनके सामने बैठे परशुरामपन्त को उन्होंने कोंकण प्रदेश के सूबेदार रावजी पण्डित के नाम एक ख़लीता लिखवाया : 'राजमान्य राजश्री रावजी पण्डित, सूबेदार कोंकण, राजापुर विभाग को नमस्कार। आगे विशेष यह कि...

'राजापुर विभाग में सरकारी दीवान में जो भी रसद, कर आदि जमा हो, जितना अन्न-धान्य और आवश्यक वस्तुएँ हों, उन्हें तुरन्त ही पन्हालगढ़ की ओर रवाना कर दो। यह पत्र मिलते ही तुम भी तुरन्त हमसे पन्हालगढ़ आकर मिलो।'

परशुरामपन्त ने पत्र पर बालू छिड़की और गीली स्याही सुखाकर उस पत्र को एक ओर रख दिया।

सज्जा-कोठी के नीचे बहुत-से मावला-सैनिक जमा हो गये थे। उनका अस्पष्ट कोलाहल ऊपर तक सुनाई दे रहा था। उसकी ओर थोड़ा ध्यान देने के बाद सम्भाजी इधर-उधर टहलते हुए ही अगला पत्र लिखवाने लगे :

'राजश्रियाविराजित, सेना धुरन्धर, सकलगुणालंकृत सेनापति हम्बीरराव मोहिते मामाजी के चरणों में युवराज शम्भुराजा का दण्डवत् प्रणाम हो।...आगे विशेष यह कि...

'रायगढ़ में तीर्थरूप आबासाहब का स्वर्गवास हुए एक पखवाड़ा बीत गया है। धर्मशास्त्र के अनुसार जो कुछ अन्त्य-विधियाँ हैं, वे हमने यहाँ पन्हालगढ़ में पूरी की हैं। सुने हुए समाचारों के अनुसार उधर रायगढ़ में कुछ लोगों की साँठ-गाँठ हो रही है। सारा प्रधानमण्डल एकमत हो गया है। महारानी माँजी साँठ-गाँठ के लोगों का नेतृत्व कर रही हैं। वे राजाराम का 'मंचकारोहण' करना चाहती हैं और हमें पराया समझकर दूर ढकेलना चाहती हैं। भय है कि कहीं हमारे प्राण-संकट में न पड़ जाएँ। अब तुम्हारे अतिरिक्त हमारा समर्थक कौन है? तुम तो आबासाहब के समय से सदा विश्वासपात्र रहे हो। हम महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं, राज्य को शत्रुओं ने घेर रखा है, ऐसी अवस्था में हमें एक ओर हटाना क्या उचित है? तुम्हें कुलदेवता की शपथ है कि अपने ईमान को डिगने मत देना। हमारी सहायता करना। महाराज के रहते जैसा व्यवहार किया है, वैसा ही अब भी करो। हम तुम्हें आबासाहब के समान पूजनीय मानते आये हैं। अन्य क्या लिखें, ज्ञात हो।'

शृंगारपूर के मामासाहब पिलाजी के नाम भी उन्होंने ख़लीता लिखवाया : 'संकट की घड़ी आ पहुँची है। आप प्रधानवल्ली सूबे की सेना को एकत्र कर लें और सदा सन्नद्ध रहें।'

महाराज की मृत्यु का समाचार सुनकर कोल्हापुर, राजापुर, मलकापुर, विशालगढ़ आदि विभागों से प्रतिदिन मावला-सैनिकों की टोलियाँ पन्हालगढ़ पहुँच रही थीं और युवराज को मुजरा कर रही थीं।

सैनिकों के इस बड़े जमाव को देखकर हिरोजी फर्जन्द चौकन्ना हो गया था और वह कोंकण

https://t.me/Sahityajunction

विभाग की ओर सरक गया था।

एकत्रित मावला-सैनिकों में से सम्भाजी ने कुछ सैनिकों को चुना और उन्होंने क़िलेदार विट्ठलपन्त, बहिर्जी इंगला, सोमाजी बंकी और कृष्णाजी बंकी पर सशस्त्र पहरा लगवा दिया। इस प्रकार उन्हें बन्दी बनाकर सम्भाजी ने पन्हालगढ़ को अपने कब्ज़े में कर लिया था।

अक्षय तृतीया की रात आयी, परन्तु यह सोचती हुई आयी कि—कल क्या होगा?

रायगढ़ के रानी महल में कुचक्र-मण्डली की सभा हो रही थी। उन्हें कुछ अता-पता न था कि उधर पन्हालगढ़ में क्या-क्या हो गुज़रा है। रानी-कक्ष का दरवाज़ा बन्द था और उसके बाहर कान्होजी भाँडवलकर के सशस्त्र सैनिकों का कड़ा पहरा लगा था। भीतर सोयराबाई बैठी थीं और बैठक के सामने अण्णाजी दत्तो, मोरोपन्त, प्रह्लाद निराजी और राहुजी सोमनाथ आदि मन्त्री खड़े थे। इन्हीं के निकट हवलदार कान्होजी भाँडवलकर, गुप्तचर विभाग का नायक खण्डोजी, गणोजी कावला, शाहजी भोसला आदि कुचक्र के साथी गोल घेरा बनाकर खड़े हुए थे।

“कल अक्षय-तृतीया है। बहुत शुभ मुहूर्त है। यही दिन बाल-राजा राजाराम के ‘मंचकारोहण’ के लिए शुभ है।” अण्णाजी ने मन्त्रणा का प्रारम्भ किया।

जिसे मंच पर बिठाने के लिए यह सारी कुमन्त्रणा हो रही थी, वह बालक राजाराम अपने शयनकक्ष में शान्ति से सो रहा था।

“परन्तु अण्णाजी, इस मन्त्रणा में यदि सेनापति उपस्थित रहते, तो बहुत उचित होता।” मोरोपन्त ने अपने मन की चिन्ता प्रकट कर दी।

“इस समय वे नहीं हैं, तो क्या हुआ! वे राज्याभिषेक के समय उपस्थित रहें, ऐसी व्यवस्था हम करेंगी।” सोयराबाई दूर का सपना देख रही थीं और वे किसी भी क़ीमत पर इस मन्त्रणा-सभा को भंग होने देना नहीं चाहती थीं।

“युवराज महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं। कल यदि उनकी ज्येष्ठता का समर्थन करके कोई विरोध कर बैठे, तो हम क्या करेंगे? स्वयं सेनापति ही विरोधी प्रतीत होते हैं।” मोरोपन्त वही कुछ कह रहे थे, जिसके होने का उन्हें भय था।

“युवराज चाहे ज्येष्ठ पुत्र हों, परन्तु स्वयं महाराज के जीवित रहते वे दिलेर ख़ाँ से जा मिलते हैं, तब महाराज के न रहने पर वे क्या कर बैठेंगे, यह कौन बता सकता है? युवराज बहुत क्रोधी और मनमौजी हैं। शासन का कारोबार सँभालना और अधिकारियों-प्रजाजनों का मेल-मिलाप कराना उनके बस की बात नहीं।” अण्णाजी ने जाल बिछाया।

“परन्तु बाल-राजा अभी अवयस्क हैं और इस राज्य का विस्तार तो बहुत बड़ा है।” न्यायाधीश प्रह्लादजी ने न्यायपूर्ण विचार प्रस्तुत किया।

“और फिर हमारा राज्य चारों ओर शत्रुओं से घिरा है।” राहुजी ने उनके सुर में सुर मिलाकर कहा।

“बाल-राजा अवयस्क हैं, यह तो बिलकुल स्पष्ट ही है। परन्तु उनकी ओर से जो मुहर-मुद्रा का उपयोग करेंगी, वे महारानीजी तो अनुभवी हैं। हमारे स्वर्गवासी महाराज ने भी तो अनुभवी

https://t.me/Sahityajunction

बड़ी माँ साहिबा का मार्गदर्शन पाकर अपना राज्य छोटी आयु में ही खड़ा कर दिखाया था।" अण्णाजी ने सोयराबाई को जिजाऊ के समकक्ष कर दिखाया।

"परन्तु जब तक यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि स्वर्गवासी महाराज की इच्छा क्या थी, तब तक हमारे कृत्य को प्रजा कैसे मान्यता देगी?" मोरोपन्त ने तह तक पहुँचनेवाला प्रश्न किया।

"हमारे बाल-राजा के मंगल कार्य पर श्रीमान्‌जी ने पन्हालगढ़ निमन्त्रण नहीं भेजा था, क्या इससे ही उनकी इच्छा प्रकट नहीं होती?" सोयराबाई दूर की कौड़ी ले आयीं।

"महाराज ने कितने ख़लीते भेजे, परन्तु युवराज छत्रपति से मिलने तक नहीं आये, इससे युवराज की नीयत क्या समझ नहीं आती है?" अण्णाजी ने उस कौड़ी में एक अपनी कौड़ी मिला दी।

"परन्तु यदि हम युवराज को यहाँ बुला लें और उनके सामने ये सब बातें रखें, तो हो सकता है कि वे समझदारी से काम लें।" मोरोपन्त अटकते-अटकते कह गये।

"क्या कह रहे हो पेशवा तुम? युवराज को यहाँ बुलाने का अर्थ है, अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना। यदि आप यही चाहते हो, तो...हम सुरनीस-पद के ये वस्त्र उतारकर सेवा से मुक्त हो जाना चाहेंगे।" अण्णाजी ने एकदम आग लगा दी।

"और हम भी यह महारानी-पद छोड़कर अपने गाँव तलबीड चली जाएँगी," सोयराबाई ने उस आग में घी डाल दिया।

"हम साफ-साफ कहे देते हैं कि युवराज राजगद्दी पर बैठने के लिए अयोग्य हैं। उनके राजा बनने का अर्थ है, राज्य पर घोर संकट का टूट पड़ना। हमने महाराज का नमक खाया है। उनके राज्य को मिट्टी में मिलाने का पाप हमसे नहीं होगा। राजाराम के राजा बनने में ही राज्य का हित है।" अण्णाजी ने दुविधा में डूबे मोरोपन्त को पूरी तरह जाल में उलझा लिया।

"वैसे तुम्हारी बात ठीक है, परन्तु तुम यह क्यों समझ बैठे हो कि युवराज वहाँ पन्हालगढ़ में बैठे-बैठे ही ये सब शान्त रीति से देखते रहेंगे? वे हमारे निर्णय को सिर झुकाकर मान लेंगे, यह कैसे समझ बैठे हो तुम अण्णाजी?" मोरोपन्त ने पते की बात कही।

"सही देखा जाय तो हमें यही अचरज होता है कि राजद्रोह करके शत्रु से जा मिलनेवाले युवराज को श्रीमान्‌जी ने क्षमा ही कैसे कर दिया?" सोयराबाई ने व्यंग्योक्ति द्वारा यही सूचित किया कि युवराज राज्य के उत्तराधिकारी तो हैं ही नहीं, वे तो दण्ड के पात्र हैं।

"पन्त, जो काम वत्सलता के कारण महाराज नहीं कर पाये, वही काम हम सब को कठोर होकर करना पड़ेगा। अन्तिम समय में यदि महाराज से तुम्हारी और हमारी भेंट हुई होती, तो वे हमें जो आज्ञा देते, वही काम हमें अब करना पड़ेगा।" जिस प्रकार कोई मस्त जंगली भैंसा हमला करने से पहले खुरों से मिट्टी उछालता है, इसी प्रकार अण्णाजी ने कुछ शब्द बुद्धि की गहराई से खोद निकाले।

"क्या मतलब? सुरनीस, हम तुम्हारे कहने का मतलब नहीं समझे।" मोरोपन्त ने हड़बड़ाते हुए कहा।

"राजाराम का मंचकारोहण होते ही फ़ौज ले जाकर पन्हालगढ़ को घेरना पड़ेगा और युवराज को मुश्कें कसकर यहाँ लाना पड़ेगा।" अण्णाजी ने अपने दिल में धीरे-धीरे जमा हुआ

https://t.me/Sahityajunction

सारा विष एक साथ उगल दिया।

"सुर ऽ नी ऽ स..." मोरोपन्त सिर से पाँव तक सिहरकर एकदम चिल्ला उठे।

"हाँ, हाँ, हम फिर वही बात कहते हैं—युवराज को मुश्कें कसकर यहाँ लाना पड़ेगा। पन्त, एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। राजाराम को गद्दी पर बिठाकर तुम अगर युवराज को खुला छोड़ दोगे, तो वे तुम्हें-हमें तो छोड़ो, स्वयं राजाराम को भी चैन की साँस नहीं लेने देंगे। सबसे अधिक धोखा तो महारानी और राजाराम के साथ ही होगा। हम युवराज को अच्छी तरह जानते हैं।" अण्णाजी की बातों से मोरोपन्त और उपस्थित सभी लोग सन्न-से रह गये। अभी तक सबने छन्द के पहले चरण का ही विचार किया था। अण्णाजी के मुख से इस दुष्ट छन्द का दूसरा चरण सुनते ही सब भौचक रह गये। भीषण गम्भीरता छा गयी।

"महाराज के राज्य की भलाई के लिए यदि राजाराम का मंचकारोहण करना आवश्यक है, तो यह दूसरा कार्य करना भी अनिवार्य है। यदि ऐसा करने की हिम्मत न हो, तो फिर इस झंझट में न पड़कर सब लोग राज्य की नौका को भाग्य के भरोसे बह जाने दें, यही ठीक होगा।" अण्णाजी ने सबको कर्तव्य का स्मरण कराया।

मोरोपन्त अब समझ गये थे कि वे दलदलवाले सँकरे मार्ग पर आधे रास्ते तक आ पहुँचे हैं। यहाँ से लौट पाना मुश्किल है। क्योंकि जो लोग युवराज को क़ैद करने की बातें करते हैं, वे पेशवा को अन्धेरी कोठी में फेंक देने में भला क्यों हिचकेंगे? इस घपले में पड़कर यदि वे युवराज की ओर जावें, तो बदनामी होती है। बस, एक ही उपाय है, ये पेशवापद के वस्त्र उतारकर मुक्त हो जाया जाय। परन्तु...इस संकट की घड़ी में महाराज के राज्य को बीच मँझधार छोड़कर भाग निकलना क्या स्वामिभक्ति होगी? मोरोपन्त बुरी तरह हड़बड़ा गये। अब इस दलदल-भरे रास्ते पर क़दम बढ़ाते चलने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं था। काफ़ी सोच-विचार करके वे बोले, "ठीक है, अण्णाजी। हम इस मन्त्रणा से सहमत हैं।" सोयराबाई ने यह सुना और उनका चेहरा खिल उठा।

मोरोपन्त द्वारा सहमति दिखलाते ही जैसे तने के कटते ही शाखाएँ आप से आप नीचे आ जाती हैं, इस प्रकार प्रह्लाद निराजी, राहुजी, कान्होजी आदि सब लोग इस दुस्साहसपूर्ण षड्यन्त्र के अपने आप भागीदार बन गये।

एकत्रित साथियों के ईमान की परीक्षा लेने के लिए महारानी की ओर से माँ भवानी की चँगेरी सबके सामने फिरायी गयी और सबने उसमें से हल्दी-रोली उठाकर माथे पर लगायी। षड्यन्त्र की सभा बरख़ास्त हुई। कान्होजी भाँडवलकर बाहर जा रहे थे, तब महारानी ने उनसे कहा, "कान्होजी, बालाजी से कहो, हमने तुरन्त याद किया है।"

"जी!"

थोड़ी देर में चिटनीस बालाजी महारानी के सामने खड़े थे।

"चिटनीस, हम जिस प्रकार के पत्र लिखने को कहेंगी, वैसे पत्र लिखकर कल पौ फटते ही रवाना कर दो। एक खलीता पन्हालगढ़ को हमारे विश्वासपात्र जासूस खण्डोजी नाईक के हाथ भिजवाओ और दूसरा ख़लीता गणोजी कावला के हाथ कोल्हापुर को रवाना करो।"

"जी," महारानी किस प्रकार के पत्र लिखाना चाहती हैं, बालाजी कुछ अन्दाज़ नहीं लगा

https://t.me/Sahityajunction

पाये थे।

"पन्हालगढ़ के क़िलेदार विट्ठल, हवलदार बहिर्जी इंगला, हिरोजी फर्जन्द और सोमाजी बंकी को ख़लीता लिखो कि :

'यहाँ मन्त्रणा निश्चित हुई है कि युवराज को क़ैद करके तुम बहुत होशियारी से रहो। श्रीमान्‌जी की मृत्यु का समाचार फैलने न पावे।'

"कोल्हापुर के अधिकारी जनार्दनपन्त सुमन्त और पाराजीपन्त पेडगावकर को लिखो :

'पन्हालगढ़ के मामले में विट्ठलपन्त की पूरी सहायता करो और सावधान रहो।'

"एक ख़लीता युवराज के नाम भी लिखो :

'श्रीमान्‌जी का स्वास्थ्य अब ठीक है। शीघ्र ही वे पूर्ण स्वस्थ हो जाएँगे। आजकल बहुत-सी सच्ची-झूठी अफवाहें फैली हुई हैं, उनपर भरोसा मत करना'।"

बालाजी सोयराबाई का यह अनदेखा-अनजाना रूप आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। उनकी जीभ को मानो लकवा मार गया था।

"चिटनीस, हम तुमसे ही कह रही हैं। ये ख़लीते तैयार करके अपनी मुहर लगाकर और हस्ताक्षर करके हमारे पास भेज दो।" सोयराबाई ने कड़ककर कहा।

बालाजी का सिर नीचे झुक गया। फिर किसी प्रकार हिम्मत बाँधकर वे कहने लगे, "हम राज्य के चाकर हैं। युवराज इस राजगद्दी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। उन्हें हम अपने हाथों इस प्रकार के ख़लीते कैसे लिख सकते हैं? यह काम हमसे नहीं होगा।"

"क्या कहा तुमने? तुम्हारी मुहर के बिना ख़लीते अधिकृत आदेश पत्र नहीं माने जाते, इसी कारण हम तुम्हारा आदर कर रही हैं। भूल रहे हो कि हम महारानी हैं।"

"हमें ग़लत मत समझिए। हमारे पुत्र आवजी हमारे घर में हैं, उन्हें हम मुहर लेकर आपके पास भेज देते हैं। आपको उनसे जो भी सेवा करानी हो, करा लीजिए। प्रार्थना इतनी ही है कि हमें इस जंजाल में मत उलझाइए।"

सोयराबाई तड़पकर रह गयीं। परन्तु कैसे भी क्यों न हो, उन्हें तो मुहर से मतलब था। उन्हें तो साँप मारना था, लाठी चाहे किसी की भी हो।

"अच्छा, भेज दो उन्हें। तुम जाओ।" उन्होंने बालाजी को आज्ञा दी। बालाजी गये और उनके पुत्र हाज़िर हो गये।

आवजी ने महारानी के कहे अनुसार ख़लीते तैयार किये और थैलियों में बन्द करके महारानी के हवाले किये। आवजी के जाते ही सोयराबाई ने खण्डोजी नाईक और गणोजी कावला, इन दो विश्वासपात्र सेवकों को बुलवा लिया। उन्हें ख़लीते देकर सावधानी बरतने की और भी कई सूचनाएँ दीं।

खण्डोजी और गणोजी ये झूठे ख़लीते लेकर सातमहल से निकले। रायगढ़ झींगुरों की कर्कश 'किर्र-किर्र' ध्वनियों में डूबता जा रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

पन्हाला दुर्ग के कोंकण-दरवाज़ा, चौ-दरवाज़ा, राज-दुआरी, आदि द्वारों से भारवाहक बैल रसद और धान्यादि के बोरे लादकर चारों दिशाओं से आ रहे थे। कोठारी पन्हालगढ़ के 'गंगा', 'यमुना' नामक कोठारों में उन बोरों के ढेर लगाने में व्यस्त थे। क़िले की चहारदीवारी के निकट कुनबी घास के ढेर के ढेर जमा कर रहे थे। लोहारख़ाने में भट्ठियों में दहकते अंगारों पर लोहे की छड़ें लाल की जा रही थीं। शाही घुड़साल में पशुवैद्य वृक्षों-वनस्पतियों के पत्तों के रस से पशुओं का उपचार कर रहे थे।

पन्हालगढ़ क़िले की दृढ़ता और सुरक्षा अब काफी समुचित हो चली थी। उन कामों के निरीक्षण के लिए क़िले का चक्कर लगाकर सम्भाजी रायाजी और अन्तोजी के साथ सज्जा-कोठी की छत पर आये। वहाँ से 'जोतिबा' पर्वत का ऊँचा शिखर दिखाई दे रहा था। नीचे के सर्पगति के समान चक्करदार मार्गों की ओर उनका ध्यान गया। अक्षयतृतीया के मंगल-मुहूर्त पर विवाहादि शुभ-कार्य सम्पन्न करके सवारियों से लदी बैलगाड़ियाँ अपने-अपने गाँव को लौट रही थीं। सूर्य पश्चिम दिशा की ओर झुक आया था और पर्वत-शिखरों की छायाएँ नीचे फैले पठारी-प्रदेश पर फैल रही थीं।

अकस्मात् सम्भाजी कोठी के मुँडेरे पर झुके और आँखें फैलाकर वे चौ-दरवाज़े की ओर आनेवाले चक्करदार रास्ते की ओर देखने लगे। अकस्मात् उनकी दायीं भौंह ऊपर की ओर तन गयी। नीचे के चक्करदार रास्ते पर दो घुड़सवार चौ-दरवाज़े की ओर चले आ रहे थे। सम्भाजी ने इतनी ऊँचाई से भी पहचान लिया कि वे घोड़े पाचाड़ की शाही घुड़साल के थे।

सम्भाजी बिजली की तेज़ी से मुड़े और कोठी के ज़ीने की ओर लपकते हुए वे बोले, "रायाजी, अन्तोजी, हमारे पीछे आओ।" और बहुत तेज़ी से दो-दो सीढ़ियाँ एक साथ लाँघते हुए वे कोठी से नीचे भूमि पर आ गये। उन्होंने साईस को इशारे से ही घोड़े लाने का आदेश दिया। घोड़ों के आते ही बागडोर हाथ में लेते हुए वे कूदकर घोड़े पर सवार हुए और उसी दम घोड़े को एड़ लगायी। घोड़ा अगले पैर उछालकर ज़ोर से हिनहिनाया और बाण के समान चौ-दरवाज़े की ओर दौड़ पड़ा। हड़बड़ाये हुए रायाजी, अन्तोजी भी उनके क़दमों पर घोड़े दौड़ाने लगे।

चौ-दरवाज़े पर पहुँचते ही सम्भाजी घोड़े से उतर पड़े। द्वारपाल के मुजरे की ओर भी उनका ध्यान नहीं था। उनकी दृष्टि तो सामने के रास्ते पर टिकी हुई थी।

एक मोड़ से आगे बढ़कर वे दो घुड़सवार चौ-दरवाज़े में आये और जैसे ही उन्होंने सम्भाजी को ही सामने खड़े पाया, उनके हाथ-पाँव फूल गये, बागडोर वाले हाथ एकदम अकड़-से गये। उन्हें घोड़े से उतरने का भी होश नहीं रहा।

ये दो घुड़सवार थे खण्डोजी नाईक और गणोजी कावला—सोयराबाई के विश्वासपात्र जासूस। दोनों थरथर काँप रहे थे।

"कहाँ से आये हो?" चौ-दरवाज़े से चाबुक की-सी फटकार सुनाई दी।

खण्डोजी घोड़े से जैसे-तैसे उतरा और मुजरा करके बोला, "कोल्हापुर से।"

"क्या मतलब?" सम्भाजी घोड़ों के चारजामे की ओर ध्यान से देखते हुए गरजकर बोले।

"जी नहीं, कोल्हापुर से नहीं। रायगढ़ से कोल्हापुर गये थे। कोल्हापुर से यहाँ आये हैं।" गणोजी ने प्रसंग देखकर खण्डोजी का कहा सुधार दिया।

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी ने टोप पहना हुआ था, फिर भी मुण्डन किया हुआ उनका सिर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मुण्डित-केश सम्भाजी को देखते ही खण्डोजी और गणोजी चौंक उठे।

"रायगढ़ से क्या समाचार लाये हो?" सम्भाजी के प्रश्न का कोई उत्तर न देकर गणोजी-खण्डोजी एक-दूसरे की ओर देखने लगे। वे थरथर काँप रहे थे।

"अरे मुँह क्या ताक रहे हो? कुछ बोलो न?"

जासूस बुरी तरह सकपका गये थे, उनकी ज़ुबान ही नहीं खुल पा रही थी।

"रायाजीऽ, कोड़े लगाकर हरामज़ादों की चमड़ी उधेड़ो। अभी खुल जाएगी इनकी ज़ुबान।"

इस आदेश को सुनते ही भय से खण्डोजी-गणोजी के रोंगटे खड़े हो गये।

"ना, ना मालिक। हमें अभय दिया जाय।" कहते हुए खण्डोजी एकदम सम्भाजी के पैरों में लेट गया। उसकी देखादेखी गणोजी भी भूमि पर लम्बा हो गया।

"उठो, हम अभय देते हैं तुम्हें। पर बताओ कि क्या मामला है?"

खण्डोजी ने बारह बन्दोंवाली कुरती के नीचे छाती में छिपायी हुई थैली, जो उस क़िलेदार और हवलदार को देनी थी, उनके पाँवों पर रख दी। दोनों जासूस हथेलियों में मुँह छिपाये सिसकने लगे। सम्भाजी ने खण्डोजी की थैली उठायी और थैली में से ख़लीते का गोल लिपटा काग़ज़ निकालकर वे पढ़ने लगे। एक-एक शब्द पढ़ते समय उनके नथुने फड़कने लगे और छाती धौंकनी के समान ऊपर-नीचे होने लगी। आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं।

'युवराज को क़ैद करके तुम बहुत होशियारी से रहो।' यह आदेश पढ़ते ही सम्भाजी ख़लीते को मुट्ठियों में मसलते हुए इतनी ज़ोर से गरज उठे कि रायाजी और अन्तोजी भी चौंक गये। "किसकी माँ ने पूत जना है, जो हमें पकड़ सके? कम्बख्तों की इतनी मज़ाल?"

दूसरे ख़लीते का समाचार 'शीघ्र ही वे पूर्ण स्वस्थ हो जाएँगे,' पढ़कर तो महाराज की स्मृति के कारण सम्भाजी के होठ थरथरा उठे। उनकी आँखें डबडबा आयीं। उस पुण्यशील महापुरुष को स्वर्ग सिधारे एक पखवाड़ा बीत गया है, और ये निर्दयी लोग अपने स्वार्थ हेतु लिख रहे हैं, 'स्वस्थ हो जाएँगे।' आबासाहब, भला आपके नाम को कोई और अधिक क्या कलंकित कर सकेगा? सन्ताप, दया, घृणा, शोक आदि भावनाओं की लहरों से उनका मन उद्वेलित हो उठा। फिर भी 'हम युवराज हैं और यहाँ चौ-दरवाज़े में खड़े हैं।' यह बात उन्होंने भुलायी नहीं और सब क्रोध पीकर सम्भाजी ने बड़ी कठिनाई से मन के उबाल को मन ही में दबा लिया।

फिर मन को कठोर बनाकर सम्भाजी ने आज्ञा दी, "अन्तोजी, उस क़िलेदार विट्ठलपन्त और हवलदार सोमाजी को यहाँ ले आओ। उनको ज़रा अपनी करनी अपनी आँखों देखने दो। रायाजी, ज़रा परशुरामपन्त को भी बुला लाओ।"

"कोल्हापुर क्यों गये थे तुम?" युवराज ने जानकारी पाने की दृष्टि से सामने खड़े खण्डोजी और गणोजी से पूछा।

"इसी तरह के ख़लीते हम जनार्दनपन्त और पेडगावकर को भी देकर आये हैं।" खण्डोजी ने सब सच-सच कह दिया। सुनते ही सम्भाजी की आँखों के सामने जनार्दनपन्त और पेडगावकर के मुख नाचने लगे।

विट्ठलपन्त महाडकर, बहिर्जी इंगला, सोमाजी बंकी, सोमाजी का पुत्र बापूजी, सूर्याजी

https://t.me/Sahityajunction

काले, इन नज़रबन्द लोगों को अन्तोजी सशस्त्र सैनिकों के पहरे के बीच उपरिकोट की दिशा से ले आया। रायाजी भी सज्जा-कोठी की ओर से परशुरामपन्त और उमाजी पण्डित को बुला लाया था। उनके मुख पर आश्चर्य का भाव छाया हुआ था।

"आओ, क़िलेदार। आइए हवलदारजी। आपकी ईमानदारी के प्रति सम्मान करने के लिए हम सब यहाँ कितनी देर से खड़े हैं।" सम्भाजी व्यंग्य-भरे स्वर में बोले। हाथ में पकड़ी हुई थैलियों को चिटनीस के हाथ में देते हुए सम्भाजी बोले, "पन्त, रायगढ़ से महारानीजी के भेजे हुए और चिटनीस के मुहरवाले ये ख़लीते ज़रा हमारे इन सहायक चाकरों को पढ़कर सुनाओ।"

परशुरामपन्त ने एक बार गला खँखारा और हवलदार तथा क़िलेदार के नाम आये उन ख़लीतों को ज़ोर से पढ़ने लगे।

षड्यन्त्र के वे भागीदार पहले ही गर्दन झुकाये खड़े थे। अब ख़लीते सुनकर तो वे पूरी तरह ज़मीन में गड़ गये।

सम्भाजी विट्ठलपन्त के सामने आये और अपनी दोनों कलाइयों को उनके मुख के सामने लाकर वक्रभाव से कहने लगे, "क्यों? करोगे हमें क़ैद? बाँधोगे हाथों में रस्सियाँ!"

विट्ठलपन्त अतीव लज्जित होकर सिर नीचा झुका गर्दन हिलाने लगे। आँसू उनकी आँखों से टप-टप टपक रहे थे।

बिजली की कड़क के समान कड़कती हुई आवाज़ में सम्भाजी ने सैनिकों को आज्ञा दी, "इन नमकहरामों को हमारे सामने से दूर ले जाओ। रस्सियों में बाँधकर फेंक दो इन्हें कोठरी के भीतर।" सैनिक उन बन्दियों को ले जाने लगे। बन्दियों की पीठ की ओर देखते ही सम्भाजी का क्रोध इतना भड़क उठा कि वे खड़े भी न रह पाये। उनका तन-मन क्रोध से काँप रहा था। कुछ देर बाद वे अकेले ही सज्जा-कोठी की ओर चल दिये।

इसके थोड़ी देर बाद डेढ़ हज़ार घुड़सवारों की सेना पन्हालगढ़ के चौ-दरवाज़े से बाहर निकलकर दौड़ पड़ी कोल्हापुर की ओर। वहाँ जनार्दनपन्त सुमन्त और पेडगावकर का भी इसी प्रकार से आदर-सम्मान किया जाना था।

उधर रायगढ़ में राजाराम का 'मंच-आरोहण' समारोह अक्षय तृतीया के शुभ मुहूर्त पर ही सम्पन्न हो चुका था। अण्णाजी, मोरोपन्त, प्रह्लाद निराजी और महारानी जी ने राजाराम को 'छत्रपति' घोषित कर दिया था और वे सब बाट जोह रहे थे पन्हालगढ़ से आनेवाली इस ख़ुशख़बर की—'सम्भाजी को क़ैद कर लिया गया है।'

पन्हालगढ़ में जो घटनाएँ हुई थीं, उनका विवरण सुनकर रायगढ़ दहल उठा था। पासा पलट गया था। अब एक क्षण भी व्यर्थ गँवाना मूर्खता थी। इसीलिए अण्णाजी मोरोपन्त और प्रह्लाद निराजी के साथ महारानी से मिलने आये। अब मन्त्रणा बड़ी भद्दी और घिनौनी स्थिति में पहुँच गयी थी।

"पन्हाला हाथ से निकल गया और युवराज की चपेट में आ गया। वहाँ की सैनिक शक्ति आये दिन बढ़ती जा रही है। उस जमाव को फोड़े बिना अपनी कुशल नहीं है। अब हमें ही पन्हाला कूच करना होगा। उसके बिना नैया किनारे नहीं लगेगी।" अण्णाजी का आत्मविश्वास

https://t.me/Sahityajunction

अभी तक अटूट बना हुआ था।

"हम भी वही कहना चाहती हैं। तुम और मोरोपन्त पाचाड़ के सेना-समूह को लेकर जल्दी-से-जल्दी पन्हालगढ़ को घेर लो। इसमें थोड़ी भी देर या चूक हुई, तो सारा खेल बिगड़ा ही समझो।" सोयराबाई का आत्मविश्वास तो राजकुल के अनुरूप ही था।

"हमारा मत है कि पहले कराड विभाग में जाएँ। वहाँ हर सम्भव युक्ति-प्रयुक्ति से सेनापति को अपने गुट में मिलाना ही होगा। अन्यथा पन्हालगढ़ हमारे हाथ नहीं आ पाएगा।" अण्णाजी जैसे भी थे, पर राजनीति के अखाड़े के कुशल मल्ल तो थे ही।

"महारानी साहिबा, आप हमें सेनापति के नाम एक ख़लीता दें। हमें विश्वास है कि वह उपयोगी सिद्ध होगा।" मोरोपन्त ने सुझाव दिया।

"तुम और अण्णाजी सेनापति से यूँ ही आस लगाये बैठे हो। हम ख़लीता तो दिये देती हैं, परन्तु उसका कोई उपयोग होगा, ऐसा हमारा मत नहीं है। इस समय यदि सेनापति तटस्थ भी बने रहे, तो भी उनकी कृपा हुई समझो। हमें तो भरोसा है केवल तुम दोनों की शक्ति और युक्ति का।" सोयराबाई भली प्रकार जानती थीं कि हम्बीरराव किस धातु के बने हैं। सोयराबाई जैसी भी थीं, परन्तु वे और हम्बीरराव आख़िर एक ही ख़ून से बने थे।

"अच्छा, हम चलते हैं।" अण्णाजी, मोरोपन्त, प्रह्लाद निराजी और राहुजी महारानी को मुजरा करने के लिए झुके।

"ठीक है। जाओ। वह माँ भवानी तुम्हें सफलता देने में समर्थ है।" महारानी ने हाथ उठाकर ठीक-ठीक जिजाऊ के समान आशीर्वाद दिया।

हम्बीरराव के नाम दिया हुआ ख़लीता लेकर कुचक्र के वे भागीदार रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आये। दस हज़ार सशस्त्र सैनिक और बलशाली घुड़सवार-सेना को साथ लेकर वे पाचाड़ से आगे चल पड़े।

लो चल दिये ये अगाध स्वामिभक्ति के पुतले! छत्रपति को गये अभी एक मास भी नहीं बीता था कि उनके द्वारा स्थापित राज्य के अनन्य सेवक सुरनीस, पेशवा और न्यायाधीश एक विशाल सेना लेकर निकल पड़े। इसलिए कि युवराज को गिरफ़्तार किया जाय, उसी युवराज को कि जिसका अभिषेक स्वयं उनको साक्षी बनाकर हुआ था। मराठा राज्य का बायाँ हाथ आज उठ रहा था, अपने ही दायें हाथ को काट डालने के लिए। पन्हालगढ़ की ओर दौड़नेवाले घोड़ों की टापों से उड़ती हुई धूल आज बैठ रही थी जिजाऊ की समाधि पर और महाराज के प्यारे रायगढ़ पर। अण्णाजी-मोरोपन्त की यह सेना कई पड़ावों के बाद कराड तक आ पहुँची। कराड नगर के बाहर ऊसर-बंजर मैदान में सेना ने घेरा डाल दिया। अण्णाजी और मोरोपन्त के लिए खेमे लगा दिये गये। वैशाख मास की तेज़ धूप से सारा कराड विभाग झुलसा जा रहा था।

इस पड़ाव के निकट ही केवल एक कोस की दूरी पर सेनापति हम्बीरराव का गाँव था—तलबीड। वहाँ मराठा सेना के पन्द्रह हज़ार बाँके वीर जवानों सहित हम्बीरराव का मुक़ाम था। हम्बीरराव ने यह भनक पा ली थी कि अण्णाजी और मोरोपन्त की सेना पन्हालगढ़ जा रही है। इस कारण उन्होंने सातारा विभाग के सरदार आनन्दराव निम्बालकर, रूपाजी भोसले, महादजी भापोलकर आदि को उनकी सेना के साथ तलबीड बुलवा लिया था और अपनी सेना को अधिक

https://t.me/Sahityajunction

शक्तिशाली बना लिया था। अण्णाजी इस बात से अनजान थे। उन्होंने एक विश्वासपात्र हरकारे के हाथों महारानी का ख़लीता हम्बीरराव की ओर रवाना किया और इस उम्मीद में पागल बने बैठे रहे कि हम्बीरराव मिलने आएँगे।

ख़लीता पाते ही हम्बीरराव ने अपनी कोठी के विशेष-कक्ष में अपने सलाहकारों की बैठक बुलायी। बिछाये हुए कम्बल पर आनन्दराव, रूपाजी, महादजी गुजर, हम्बीरराव के भाई शंकराजी और हरीफराव गोल घेरा बनाकर बैठे थे। चिटनीस ने ख़लीता पढ़कर सुनाया : 'पेशवा और सुरनीस जो सलाह देंगे उसके अनुसार कार्य करो। अपनी सेना सहित उनका समर्थन करो और 'बालराजा' की भलाई के लिए कार्य करो। तुम तो घर के आदमी हो। हम भविष्य में हर प्रकार से तुम्हें सुखी-सम्पन्न बनाएँगे। ज्ञात हो।'

सबने पत्र सुना, परन्तु सब मौन ही बने रहे। तब हम्बीरराव ही कहने लगे, "चलो, अब तो रानीसाहिबा को हमारी याद आयी। उन्हें बालराजा को मंच पर बिठाना था, इस काम में अड़ंगा न लगे, यह सोचकर उन्होंने हमें रायगढ़ से दूर भेज दिया। उस समय वे कहती थीं—'तुम्हारी सलाह से सब कुछ करेंगी।' अब हुक्म हुआ है, 'पेशवा और सुरनीस से मिलकर सलाह करो।' तो भाई, बोलो, क्या करें?" हम्बीरराव ने अपने लोगों का रुझान जानना चाहा।

"जाने में क्या हर्ज़ है? पता तो लगेगा कि सलाह क्या है?" आनन्दराव ने सुझाया। रूपाजी भोसले ने भी पगड़ी हिलाकर समर्थन किया। हम्बीरराव ने उन दोनों का मत सुना और अपने गलमुच्छों के नीचे उल्टी मुट्ठी फिराते हुए वे देखने लगे कि कोई और भी कुछ बोलता है या नहीं।

"अब राजाराम को गद्दी पर बिठा ही दिया है। इसलिए रानी साहिबा का जो हुक्म है वह राजा का ही हुक्म समझना चाहिए न।" शंकराजी मोहिते ने यह कहा अवश्य, परन्तु उनका गुप्त उद्देश्य यही था कि वे अपनी बहन सोयराबाई का पक्ष बलवान् करना चाहते थे।

"पर यह भी तो कोई ठीक बात नहीं हुई कि सबने मिलकर युवराज को एक ओर ढकेल दिया है।" महादजी भापोलकर ने कहा।

इन लोगों की बातें सुनकर हम्बीरराव ताड़ गये कि ये लोग तो मैदान जीतनेवाले भोले-भाले लड़ाका लोग हैं। ये लोग राजनीति की चर्चा में बिदके हुए साँड की तरह चाहे जिधर भागते-दौड़ते फिरेंगे। इसलिए गला खँखारकर स्पष्ट शब्दों में वे कहने लगे, "अरे भैया, ये अण्णाजी-मोरोपन्त की सेना जोतिबा देवस्थान की तीर्थ-यात्रा करने नहीं जा रही है। यह सेना जा रही है पन्हालगढ़, युवराज को क़ैद करने के लिए। तुम्हें कुछ पता भी है?"

इस बात को सुनते ही कई लोग मुँह बाये देखने लगे; कइयों की गरदनें तन गयीं। ऐसी अनहोनी बात सुनने की किसी को भी आदत नहीं थी। सारी बैठक में हलचल मच गयी। कोई एक बोल उठा, "बाप रे, यह तो हद हो गयी।"

उसकी बात को काटते हुए हम्बीरराव कहने लगे, "हुई नहीं, पर अभी होनी है, बोलो, हम लोग इस चक्कर में फँसना चाहते हैं क्या? अरे बाबा, हमारी जात है वीरों की—चाहे देह छूट जाए, पर हम सदा स्वामी का हित ही सोचते हैं। बोलो, जिसका नमक खाया है, उससे बेईमानी करोगे? चाहे जैसे भी हैं, पर युवराज बड़े हैं। धर्म से, परम्परा से गद्दी के हक़दार हैं। राजाराम से चाहे हमारा ख़ून का रिश्ता है, पर है तो राजाराम छोटा ही। वह गद्दी का अधिकारी कैसे बन सकता है? फिर इस सलाह की सभा में हम कैसे सम्मिलित हों?"

https://t.me/Sahityajunction

“नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं जाना चाहिए।” दो-चार आवाज़ें आयीं।

“केवल नहीं कहने से काम नहीं बनेगा। स्वयं युवराज को क़ैद करने की बात तो दूर रही, हम किसी को उन्हें हाथ भी लगाने नहीं देंगे। इस बिखराव को हमें कहीं-न-कहीं रोकना ही पड़ेगा।”

“पर कैसे रोकेंगे इसे?” रूपाजी को कोई उपाय नहीं सूझा।

“अण्णाजी और मोरोपन्त को इधर बुला लें। उन्हें समझाने-बुझाने का प्रयत्न करें।” अनुभवी हम्बीरराव ने मार्ग सुझाया। सबको यह सुझाव पसन्द आया।

हम्बीरराव के चिटनीस ने अण्णाजी के हरकारे के हाथ ही वापसी सन्देश भेजा : ‘आप दोनों मिलने आओ। मिल-बैठकर ही विस्तार से हित की चार बातें करेंगे।’

इस सन्देश को सुनकर मोरोपन्त अण्णाजी से बोले, “हम तो बहुत पहले से यही कह रहे थे। चलो, हम ही जाएँ सेनापति से मिलने।”

अण्णाजी उनकी बात काटते हुए बोले, “पन्त, भूल करते हो तुम। हमसे मेल-मिलाप करना होता, तो सेनापति हमसे यहाँ छावनी में आकर मिलते। हमारा विचार है कि इस समय तलबीड जाना समझदारी की बात नहीं होगी। हमें भरोसा था कि वे नाते-रिश्ते का कुछ विचार करेंगे। राजाज्ञा मान लेंगे। परन्तु अब उनका विश्वास करना ठीक नहीं होगा। हमें अब अपनी अगली चाल स्वयं ही सोच-समझकर चलनी होगी।”

मोरोपन्त एकदम गम्भीर हो गये। अब वे जान गये थे कि किस दुष्ट-चक्र में उलझ गये हैं। वे बहुत खिन्न हो गये।

“हमारा विचार है कि इस समय हमें युवराज के साथ समझौते की बातचीत करनी चाहिए।” प्रह्लादपन्त वास्तव में अण्णाजी के कुचक्र में इच्छा न होते हुए भी फँस गये थे।

“इस समय समझौता? आप क्या समझते हैं कि युवराज समझौते को मानेंगे?” अण्णाजी ने उनकी भी बात काट दी।

यह मत सुनकर प्रह्लादपन्त अण्णाजी के डेरे से बाहर निकले और अपने डेरे में आये। वहाँ आकर उन्होंने स्वयं ही सन्धि का एक पत्र लिखा और युवराज की ओर रवाना कर दिया।

शाम ढल चुकी थी। हम्बीरराव उधर तलबीड में अण्णाजी और मोरोपन्त के आने की प्रतीक्षा करके ऊब गये थे। आज तक जो सुरनीस और पेशवा कन्धे-से-कन्धा मिलाकर हरदम हर-घड़ी साथ रहे हैं, वे हमारी बात का इतना भी सम्मान नहीं करते, यह सोचकर वे अत्यन्त खीज उठे। उन्होंने मन-ही-मन कुछ तय किया और आनन्दराव-रूपाजी और अपने दो भाई शंकराजी और हरीफराव को एक साथ बुलाकर उन्होंने आज्ञा दी, “झटपट घोड़ों पर सवार होओ और कराड की फ़ौज में घुस जाओ। जितने भी सैनिकों को फुसलाकर अपनी ओर मिला सको, मिला लो। चलो, दौड़ पड़ो।”

उस रात हम्बीरराव के आदमी अण्णाजी-मोरोपन्त की सेना में घुस गये और नाते-रिश्ते ढूँढ़ते-जोड़ते हुए वे एक-एक गुट को तलबीड भेजने लगे।

अण्णाजी ने यह ख़बर सुनी और वे भड़क उठे। वे मोरोपन्त को साथ लेकर घोड़े पर बैठकर सारी छावनी में चक्कर लगा-लगाकर अपने आदमियों को रोकने का प्रयत्न करने लगे। हम्बीरराव उनके सैनिकों को फुसलाकर भगा ले जा रहे हैं, इसका अर्थ अण्णाजी भलीभाँति

https://t.me/Sahityajunction

जान चुके थे। फ़ौज को दुर्बल बनाकर सेनापति उन पर हमला करनेवाले हैं, यह बात ध्यान में आते ही वे भी सोचने लगे कि क्या अब सेना के और अधिक दुर्बल होने की प्रतीक्षा किये बिना हम्बीरराव पर आक्रमण करना अनिवार्य है?

अण्णाजी और मोरोपन्त ने रात-भर इस बारे में ख़ूब सोच-विचार किया और अन्त में यह तय पाया गया कि हम्बीरराव पर हमला बोल दिया जाय! षड्यन्त्र अब भटकता-बहकता जा रहा था। दिन निकलते ही अण्णाजी, मोरोपन्त ने बची-खुची सेना समेटकर तलबीड पर हमला बोल दिया।

हम्बीरराव तो तैयार बैठे थे। उनकी सैनिक-शक्ति भी बहुत दृढ़ थी। पल झपकते ही उनके पन्द्रह हज़ार मावला-सैनिकों ने अण्णाजी और मोरोपन्त सहित पूरी फ़ौज को ही घेर लिया। बाज़ी उलट गयी है, यह जानकर मोरोपन्त ने हथियार डाल दिये। मोरोपन्त को देखकर अण्णाजी का हाथ भी निकम्मा हो गया।

कुछ चुने हुए आदमियों को साथ लेकर हम्बीरराव सीधे अण्णाजी और मोरोपन्त के सामने आ खड़े हुए। घोड़े पर सवार रहकर ही उन्होंने हाथ को झोंके देकर तीन बार माथे से लगाया और तीखेपन से कहने लगे, "पेशवा! सुरनीस! मुजरा करते हैं हम तुम्हारी ईमानदारी और तुम्हारे सयानेपन को! अरे, जिन हाथों से तुम्हें सम्मान-वस्त्र और उपहार पाने चाहिए थे, उन हाथों को रस्सियों से बाँधने निकले हो? जिस मस्तक के ऊपर तुम्हें अपने हाथ में छत्र पकड़कर खड़े होना चाहिए था, उस पर तलवार का वार करने जा रहे थे तुम? महाराज को गये अभी महीना भी नहीं बीता और तुम उनके ही लाल को लूटने निकल पड़े! महाराज यदि आज होते, तो क्या तुम्हारी यह हिम्मत हो पाती?" हम्बीरराव की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं और पेशवा तथा सुरनीस की झुकी हुई पगड़ियों पर बरस रही थीं।

"आनन्दराव, रूपाजी! आदमी की मुश्कें कसने के बाद उसे कैसा लगता है, ज़रा इन्हें उसका नमूना दिखलाओ। बाँध डालो इन्हें मोटी-मोटी रस्सियों से। इन भलेमानसों ने आज यह कैसा दिन दिखलाया है?" हम्बीरराव को अपने आप पर ही खीज-सी हुई और उन्होंने घोड़े को ज़ोरदार एड़ लगायी। घोड़ा तलबीड की ओर दौड़ पड़ा। उसके पीछे चालीस-पचास दूसरे घोड़े भी सरपट दौड़ने लगे। अण्णाजी और मोरोपन्त के साथ-साथ प्रह्लाद निराजी और राहुजी सोमनाथ भी क़ैद कर लिये गये।

मोरोपन्त की बाँहों को एक सैनिक रस्सी से बाँध रहा था। अपने जिन हाथों से वह आज तक पेशवा को मुजरा करता आया था, उन्हीं हाथों से आज प्रधानमन्त्री के हाथ रस्सी से बाँधते हुए उस सैनिक का दिल भर आया, उससे रहा नहीं गया। बोला, "भला क्यों पड़े इस फन्दे में तुम?"

सैनिक के शब्द सुनकर मोरोपन्त के आँसू, जो आँखों के कोने में रुके हुए थे, अब भूमि पर टपकने लगे और कराड प्रदेश की भूमि में समा गये।

युवराज सम्भाजी पन्हालगढ़ में थे, राजाराम रायगढ़ में थे, और मराठा-साम्राज्य के छत्रपति-पद का निर्णय हो रहा था दूर कराड के ऊसर मैदान में—हम्बीरराव के हाथों।

स्वर्गवासी महाराज सदा ही कहते थे—'जैसी 'श्री' की इच्छा।' सचमुच यही बात सत्य है। और कहा भी क्या जा सकता है?

https://t.me/Sahityajunction

पन्हालगढ़ के चौ-दरवाज़े में सम्भाजी हम्बीरराव की अगवानी करने के लिए उपस्थित थे। उनके पीछे कापशी गाँव से आये म्हलोजी घोरपडे, उनके दो पुत्र सन्ताजी और बहिर्जी, कोंकण के सूबेदार रावजी पण्डित, उमाजी पण्डित, परशुरामपन्त, रायाजी, अन्तोजी आदि सरदार और अधिकारी खड़े थे।

सम्भाजी ने देखा—दूर सामने से हम्बीरराव चले आ रहे हैं। आनन्दराव, शंकराजी, रूपाजी आदि की भीड़ के बीच गोल चेहरेवाले हट्टे-कट्टे शरीर वाले हम्बीरराव एक शानदार घोड़े पर बैठकर चले आ रहे थे। उन्हें देखकर सम्भाजी के मन में अजीब-सी खलबली मच गयी। उनके हृदय में आज तक ऐसी खलबली केवल तभी मचती थी, जब वे अपने आबासाहब को देखते थे। सम्भाजी खिंचे हुए के समान दस-बारह क़दम आगे बढ़ आये। उन्हें देखकर हम्बीरराव ने भी घोड़े की चाल तेज़ कर दी और पास पहुँचते ही वे क़ूदकर घोड़े से उतर गये।

वे मुजरा करने के लिए झुकना चाहते हैं, यह देखते ही सम्भाजी व्याकुल हो उठे। झपटते हुए आगे बढ़कर उन्होंने हम्बीरराव का हाथ अपने हाथ में पकड़ा और उन्हें बीच ही में रोककर, आँखों में आँखें डालकर, काँपते होठों से भर्राये शब्दों में बोले, "मामाजीऽ..." और अगले ही क्षण भोसले ने मोहिते को छाती से लगा लिया। हम्बीरराव की दयानतदारी देखकर सम्भाजी की आँखें छलछला आयी थीं। हम्बीरराव ने धीरे से उनका कन्धा थपकाया। सम्भाजी को याद आया—आज से चार महीने पहले आबासाहब ने इसी प्रकार उनके कन्धे थपथपाये थे। इस अनुभूति का स्मरण होते ही सम्भाजी ने अनुभव किया—'हम आज भी अकेले नहीं हैं। पितृहीन बालक नहीं हैं।'

सारा समुदाय जब चौ-दरवाज़े में प्रविष्ट हुआ, तो आज न जाने कितने दिनों बाद क़िले की नौबत बजने लगी।

हम्बीरराव की विशाल सेना षड्यन्त्रकारी क़ैदियों को साथ लेकर पन्हालगढ़ में आ गयी। अण्णाजी आज इस चौ-दरवाज़े से गुज़र रहे थे, उनके हाथ रस्सियों से बँधे हुए थे। परन्तु एक दिन वह भी था कि सात साल पहले इन्हीं अण्णाजी ने इसी पन्हालगढ़ को कोण्डाजी फर्जन्द की सहायता से जीता था और 'गुढ़ी-पाडवा' के त्यौहार पर जब छत्रपति शिवाजी महाराज क़िला देखने के लिए आये थे, तब अण्णाजी ने इसी चौ-दरवाज़े में खड़े होकर अंजलि में सुवर्णपुष्प भरकर उन पर सुवर्ण-पुष्प-वृष्टि की थी। आज भी अण्णाजी इसी चौ-दरवाज़े से गुज़र रहे थे, परन्तु हाथ फूलों से भरे नहीं थे, रस्सियों से बँधे हुए थे। मनुष्य की अक़्ल मारी जाय, तो भाग फूट जाता है। अन्ततः यही बात सत्य है।

रंग-रूपी शिवपिण्डी के दर्शन करके हम्बीरराव सहित सम्भाजी उपरिकोट में आये। अपने मामाजी हम्बीरराव मोहिते को आदरपूर्वक बैठक पर बैठाते हुए सम्भाजी कहने लगे, "मामाजी, अब आगे की व्यवस्था क्या की जाय? हम आपकी सम्मति के बिना कुछ भी नहीं करेंगे।"

हम्बीरराव ताड़ गये कि सम्भाजी क़ैदियों का मुँह भी देखना नहीं चाहते। इसलिए बोले, "वह सब तो होगा ही। परन्तु इन पकड़कर लाये हुए ख़तरे के पुतलों को तो पहले अपने अधिकार में ले लो।"

सम्भाजी बेचैन हो उठे, क्योंकि बार-बार वही विषय सामने आ रहा था, जिसे वे टालना चाहते थे।

https://t.me/Sahityajunction

“आपका दर्शन पाने के बाद हमें उनके मुँह देखने की भी इच्छा नहीं है।” सम्भाजी ने झल्लाकर कहा।

“ऐसा कहने से कैसे बात बनेगी? जब करनेवाले करने में नहीं लजाये, तो उनको सीधे रास्ते पर लानेवाला यदि शरमाएगा, तो कैसे काम बनेगा? रूपाजी, उन ईमानदारों को सामने पेश करो।”

चार-चार सिपाहियों द्वारा घिरे हुए, मुश्कें बँधे हुए अण्णाजो, मोरोपन्त, प्रह्लादपन्त और राहुजी, सम्भाजी के सामने लाये गये। सबकी गरदनें नीचे झुकी हुई थीं।

अण्णाजी सबके आगे थे। उन्हें देखते ही सम्भाजी एक झटके से उठ खड़े हुए। सारे शरीर में आग-सी लग गयी। कान की लौ लाल हो उठी। आँखों की कोरों में ख़ून उतर आया। माथे की नसें उभर आयीं। नथुने फैल गये और होठ थरथराने लगे। वे कुछ कहना चाहते थे, परन्तु अत्यधिक क्रोध के कारण वे बोल भी नहीं पा रहे थे। अण्णाजी को तो सामने आया हुआ देखना भी वे सहन नहीं कर सके। इसलिए वे तेज़ी से घूमे और पीठ फिराकर गरज उठे, “जाओ, ले जाओ इन्हें। फिर कभी इन्हें हमारे सामने मत लाना। हमारी सारी आशाओं पर इन्होंने ही पानी फेरा है। इन्हें उठाकर फेंक दो काल कोठरी में।” क्रोध के कारण काँप रहे सम्भाजी की ओर हम्बीरराव देखते ही रह गये। कभी किसी अप्रिय व्यक्ति के सामने आने पर शिवाजी महाराज की प्रतिक्रिया कैसी होती थी, यह भी उन्होंने देखा था, पर सम्भाजी का आज का रूप तो एकदम विरला ही था।

सैनिक क़ैदियों को ले जाने लगे। तभी सम्भाजी को ध्यान आया कि उन क़ैदियों में मोरोपन्त भी हैं। तुरन्त बोले, “ठहरो।” आदेश सुनते ही सब क़ैदी सिर से पाँव तक सिहर उठे।

मन्द गति से चलकर सम्भाजी मोरोपन्त के सामने आये और बोले, “तुम! पन्त, तुम भी हमें गिरफ़्तार करने निकले थे? क्या यही हमारी योग्यता की परीक्षा की है तुमने? पन्त, यदि तुम बुलावा भेजते, तो भी हम हाथ बाँधे चले आते तुमसे मिलने। तुम आबासाहब की छाया बनकर जीवनभर साथ रहे हो। उनके जाने के बाद प्रधानमन्त्री का यह कौन-सा रूप दिखाया है तुमने? आज तुम्हें रस्सियों में बँधा हुआ देखकर हमें जितना दुःख हो रहा है, उतना तो शायद तब भी न होता, यदि हम पकड़ लिये जाते।” सम्भाजी का मन क्रोध की बजाय दुःख से अधिक भर आया था।

लज्जा तथा घोर पश्चात्ताप में मोरोपन्त की गोल घेरदार पगड़ी इधर-उधर हिल रही थी। उनकी भुजाएँ जिस दम रस्सियों से बाँध डाली गयी थीं, उसी क्षण वह स्वाभिमानी पुरुष मन से मरा-सा हो गया था। बस मौन ही बना रहा था। उनका मन अभी तक इतना भोथरा नहीं हुआ था कि अपने दुर्व्यवहार का उन्हें पश्चात्ताप ही न हो। मन को व्यथित करनेवाली भावनाएँ आँसू बनकर टपकने लगी थीं।

“पन्त, ये हमारे सुरनीस ऐसे चतुर-सयाने हैं कि पैर के अँगूठे से भी गाँठ मार दें, तो कोई हाथ से भी न खोल सके। इस सयाने के चक्कर में कैसे फँस गये तुम पन्त?”

फिर सम्भाजी अण्णाजी के सामने आये। उनके स्थूल शरीर पर ऊपर से नीचे तक तीखी नज़र फिराकर वे कड़ककर कहने लगे, “क्यों, गरदन क्यों लटका ली है सुरनीस अण्णाजी दत्तो? या गरदन नीचे झुकाकर जिस भूमि पर खड़े हो उसके विरुद्ध भी कोई षड्यन्त्र रच रहे हो?

https://t.me/Sahityajunction

बोलो! पुराने-बासे बैर मन में दबाकर रखा करते हो। हमें क़ैद करके रायगढ़ ले जाकर क्या करना चाहते थे? हमें 'पहाड़ी-कगार' से खाई में ढकेल देना चाहते थे या तोप से उड़ाना चाहते थे? जवाब दो।" चाबुक की फटकार के समान युवराज गरजकर कह रहे थे।

अण्णाजी पूरी तरह समझ गये थे कि अब मृत्यु ही उनका भविष्य है। इसलिए अब अन्तिम बार धीरज समेटकर कहने लगे, "आपको दण्ड देना हमारा अधिकार नहीं है। हमने तो महाराज के उत्तराधिकारी की ही 'मंच-आरोहण' विधि की है। इस साम्राज्य की दृष्टि से वही करना उचित था, यही हमारा मत था और आज भी वही मत है। हमें क़ैद कर लिया गया है, फिर भी हमें अपने किये पर पश्चात्ताप नहीं है। आज यदि महाराज होते, तो वे भी यही करते।"

"ख़ामोश ऽऽ! पश्चात्ताप के लिए भी लाज-शर्म की आवश्यकता होती है। तुम्हारे पास वह है ही नहीं। हम यह नहीं पूछते कि तुमने बाल-राजा का 'मंच-आरोहण' क्यों किया। हमारे आबासाहब क्या करते, यह भी हम तुमसे सुनना नहीं चाहते, वह हम तुम से अच्छी तरह जानते हैं। वे कम-से-कम बड़े भाई को रस्सियों में जकड़कर छोटे भाई के लिए उपहार के रूप में न ले जाते। तुम्हें अपनी कृतघ्नता पर तनिक भी लज्जा कैसे नहीं आती?"

ये नोकदार शब्द अण्णाजी के कलेजे में चुभ गये। वे सिर उठाकर बड़े कड़वे स्वर से कहने लगे, "क्यों लजाएँ हम? हमने कोई चोरी या सीनाज़ोरी नहीं की, या हम साम्राज्य से विद्रोह करके शत्रु के दल से भी नहीं जा मिले।"

"अण्णाऽ जी।" हम्बीरराव बैठक पर से तोप के गोले के समान उछलकर खड़े हो गये। वे झपटकर अण्णाजी के सामने आ खड़े हुए और कड़ककर बोले, "ज़बान सँभालो, नहीं तो काटकर हाथ में रख दूँगा।"

हम्बीरराव के गलमुच्छों वाले विकराल रूप को देखकर अण्णाजी की गरदन नीचे झुक गयी।

सम्भाजी की अवस्था ऐसी हो गयी थी मानो पौधे को जड़ से उखाड़ फेंका गया हो। उनकी आँखों के कोनों में अश्रुबिन्दु झलकने लगे थे। अब उनके लिए वहाँ खड़ा रहना भी असह्य हो उठा था। वे बैठक से उठे और तेज़ी से बैठक से निकलकर अन्तःपुर की ओर चले गये।

"ले जाओ इनको और डाल दो कोठरी में।" हम्बीरराव की थरथराहट अब तक भी कम नहीं हुई थी। आदेश देकर वे भी सभागृह से चले गये। सैनिक क़ैदियों को लेकर कोठरी की ओर चले गये। पन्हालगढ़ में वैशाख मास की धूप अब और तेज़ होने लगी थी।

पन्हालगढ़ के राजकार्यालय से मावला-सैनिकों के दल-के-दल अतीव हर्षित होकर बाहर निकल रहे थे। सम्भाजी के आदेशानुसार हर एक को दो महीने का वेतन अग्रिम रूप से दिया गया था।

युवराज ने चिटनीस परशुरामपन्त को उस पत्र का विषय बतलाया जो श्रृंगारपूर के पिलाजी को भेजा जाना था। पत्र का आशय यह था : 'जितने भी मावला-सैनिक मिल सकें, उन सबको इकट्ठा करके बहुत सावधानी से रायगढ़ की ओर निकलिए। सब क़िलों पर पहले जो चौकियाँ और प्रहरी थे, उन सबको हटा दीजिए और नयी चौकियाँ स्थापित कीजिए।' हम्बीरराव, रावजी पण्डित, और म्हलोजीबाबा सब बातें ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

अब पन्हाला सम्भाजी की दृढ़ छावनी बन गया था। आस-पास के सूबेदार और हवलदार अब प्रतिदिन पन्हालगढ़ आ रहे थे। और सम्भाजी को 'राजा' मानकर मुजरा करने लगे थे।

"स्वामी, अँग्रेज़ अपने इनाम की रक़म का तगादा कर रहे हैं। क्या किया जाय इस बारे में?" रावजी पण्डित राजापुर से आये हुए थे। उन्होंने अँग्रेज़ व्यापारियों का भुनभुनाना सम्भाजी को बतलाया। बहुत पहले महाराज ने राजापुर के गोदाम लूट लिये थे और उसकी क्षतिपूर्ति इनाम के रूप में अँग्रेज़ों को दी जाती थी।

"रावजी, उन्हें सूचित करो कि इस समय हमें फुरसत नहीं है। हम फिर कभी उनका हिसाब देखकर इस बारे में फैसला करेंगे।"

"जी!"

"तुमने बहुत बड़ी कर्त्तव्यनिष्ठा दिखलायी है, रावजी। तुमने सन्देश मिलते ही राजापुर से लेकर कारवार प्रदेश तक की सारी असैनिक जमा राशि तुरन्त पन्हाला भेज दी। हमें उससे बहुत लाभ हुआ।"

"गोवा के पुर्तगाली वायसराय ने स्वर्गवासी महाराज के देहावसान के विषय में शोक-सन्देश भेजा है।" परशुरामपन्त ने ख़लीता पढ़कर सुनाया।

"पन्त, पत्रोत्तर में लिखो—दुर्भाग्य से हमारे आबासाहब का स्वर्गवास हो गया है। अब हम राज्य के स्वामी हैं। हम तुमसे पहले के समान ही सम्बन्ध रखेंगे। यह ख़लीता रामजी नाईक ठाकुर के हाथ पुर्तगाली दरबार को रवाना कर दो।"

"जी," कहकर चिटनीस गोवा के वायसराय अन्तोनियो पायस-द-साँदे को ख़लीता लिखने लगे।

"मामाजी, रायगढ़ से एक ख़बर आयी है।" सम्भाजी अपने पास बैठे हुए हम्बीरराव से कहने लगे।

"क्या ख़बर है?"

"उधर रायगढ़ में येसाजी कंक ने सरदार नायकवाड़ी की सहायता से कई लोगों को गिरफ़्तार कर लिया है। उन क़ैदियों में कान्होजी भाँडवलकर, शहाजी भोसला, और मोरोपन्त के पुत्र निलोपन्त भी हैं।"

"बहुत ठीक किया है येसाजी ने।" हम्बीरराव सन्तुष्ट होकर बोले।

"अब रायगढ़ के लिए कूच करने से पहले हमने एक इरादा पूरा करने की बात सोची है।" सम्भाजी हँसकर कह रहे थे, इसलिए हम्बीरराव उत्सुकतावश गड़बड़ा-से गये।

"आप हुक्म दें। हम आपका हर इरादा हर संकट झेलकर भी पूरा कर दिखाएँगे।" हम्बीरराव सोच में डूब गये।

"हाँ, हाँ। आप देखिए तो सही।" कहते हुए सम्भाजी ने राजकर्मचारी की ओर देखा।

वस्त्राच्छादित थाल लेकर एक के बाद एक सेवक आने लगे और बैठक के सामने रखकर जाने लगे। उनमें से जो थाल सबसे बड़ा था, उस पर ढँका वस्त्र सम्भाजी ने हटाया और उसे अपना हस्त-स्पर्श देते हुए वे राजकर्मचारियों से बोले, "इन उपहारों से मामाजी का भला क्या

https://t.me/Sahityajunction

सम्मान हो पाएगा? यह तो केवल प्रथा मात्र है। वह थाल मामाजी को दो।" उस थाल में ज़रीदार पगड़ी, कमरबन्द और तलवार, ये उपहार योग्य वस्तुएँ रखी थीं।

"अरे, अरे, क्या कर रहे हैं ये?" कहते हुए हम्बीरराव हड़बड़ी से उठ खड़े हुए।

"लीजिए मामाजी, स्वीकार कीजिए। हमसे सम्भव हो पाता, तो आपके स्वागत-सम्मान के लिए गढ़ की तल-भूमि से लेकर चौ-दरवाज़े तक ग़लीचे बिछवा देते हम।" सम्भाजी ने उन्हें कुछ कहने का अवसर नहीं दिया। राजकर्मचारी वह थाल थामकर हम्बीरराव के आगे खड़ा था। उस थाल को हाथ से छूते हुए हम्बीरराव बोले, "अच्छा, तो यह इरादा था तुम्हारा!"

सम्भाजी द्वारा दिया गया एक दूसरा तबक़ म्हलोजी घोरपड़े के सामने रखा गया।

"म्हलोजी बाबा, आज से पन्हाला प्रदेश का सेनापति-पद हम तुम्हें सौंप रहे हैं। हमें पूरा विश्वास है कि तुम इस उत्तरदायित्व को अच्छी तरह निभाओगे।"

"जी," म्हलोजी और उनके दो पुत्र सन्ताजी और बहिर्जी भी मुजरा करने को झुक पड़े।

इसी प्रकार किसी को अस्त्र-शस्त्र, किसी को सोने के कड़े या तोड़े देकर सम्भाजी ने रावजी पण्डित, आनन्दराव, रूपाजी, जोत्याजी, अन्तोजी आदि सब वीरों का यथायोग्य सम्मानसहित सत्कार किया। उन्होंने पन्हालगढ़ में नये क़िलेदार और हवलदार की नियुक्ति की। सब उपस्थित लोग यह दृश्य देखकर अनुभव कर रहे थे मानो वे इस समय रायगढ़ में हैं।

"चलो। फौज की व्यवस्था का एक बार निरीक्षण कर लें।" सबको साथ लिये सम्भाजी सभागृह से निकल पड़े। इन दिनों सारा पन्हालगढ़ सैनिकों की भीड़ से खिल उठा था।

सम्भाजी सब सरदारोंसहित एक-एक सैनिक गुट की व्यवस्था देखते हुए चले जा रहे थे। हर क़दम पर उन्हें मुजरे किये जा रहे थे, इतने कि उन्हें अपना हाथ नीचे झुकाने के लिए भी अवकाश नहीं मिल पाता था। पश्चिमी परकोटे पर चलते हुए वे सबके साथ कोंकण-दरवाज़े तक आये। दूर का 'मसाई' का पठारी प्रदेश अब काला-सा दिखाई दे रहा था। वृक्ष और झाड़ियाँ ज़ोर-ज़ोर से हिल रही थीं। थोड़ी दूर पर चक्करदार हवा के कारण उठते हुए धूल के बादल ऊँचे तक चढ़े हुए दिखाई दे रहे थे। कुछ ही पलों के बाद काले-काले बादलों का छप्पर आसमान में छा गया और कोंकण-दरवाज़े तक आ पहुँचा। वर्षा की मोटी-मोटी बूँदें ऊपर से टपकने लगीं। हम्बीरराव ने आँखें फैलाकर आकाश की ओर देखते हुए कहा, "चलिए। चक्करदार आँधी और तेज़ बरसात आनेवाली है।"

"मामाजी, मृगनक्षत्र के उदय से पहले ही हमें पन्हालगढ़ से निकल जाना चाहिए। अब अपनी सेना भी पर्याप्त शक्तिशाली बन चुकी है।"

"हाँ, हम भी वही कहना चाहते हैं। एक बार बादलों ने आकाश पर क़ब्ज़ा कर लिया, तो हमें यहीं अटककर रह जाना पड़ेगा।" सम्भाजी के पीछे सीढ़ियाँ उतरते हुए हम्बीरराव ने सलाह दी। ऊपर वर्षा की झड़ियों ने आकाश और बादलों की क़ैद से अपने को छुड़ा लिया था और वे कोंकण-दरवाज़े पर तड़ातड़ बरसने लगी थीं।

"म्हलोजी बाबा, सावधानी से गढ़ की रक्षा करना। हमारा सन्देश मिलते ही क़ैदियों को हथियार-

https://t.me/Sahityajunction

बन्द पहरे के बीच रायगढ़ भेज देना। अच्छा, हम चलते हैं।" सम्भाजी ने म्हलोजी को छाती से लगा लिया।

पन्हालगढ़ का चौ-दरवाज़ा नगाड़ों-धौंसों की आवाज़ों से गूँज उठा। सींगे बज उठे। सम्भाजी ने हाथ छाती पर लाकर पन्हालगढ़ का अभिवादन किया और वे रकाबी में पैर रखकर एक ही कूद में अपने 'चन्द्रावत' नामक घोड़े पर सवार हो गये। उनका 'चन्द्रावत' अपने नाम के अनुरूप ही था—चाँदनी के रंग का-सा उजला-सफ़ेद।

बीस हज़ार रणबाँकुरे जवानों के साथ सम्भाजी पन्हालगढ़ के चौ-दरवाज़े से निकले और हम्बीरराव के साथ धीमे क़दमों से गढ़ में उतरने लगे। उनका लक्ष्य था रायगढ़, पूरे साढ़े तीन साल बाद वे रायगढ़ जा रहे थे। इन साढ़े तीन बरसों में क्या-क्या नहीं हो गुज़रा था!

स्वर्गवासी आबासाहब के बोल उन्हें हिला गये : 'जंजिरा पर हबशी पाँव जमाये बैठा है, उन्देरीं द्वीप में अँग्रेज़ हमें जलदुर्ग बनाने नहीं देते। आज हो या कल, आलमगीर औरंगज़ेब स्वयं दक्खिन पर आ टूटेगा, इन बातों की ज़रा चिन्ता किया करो। इन सब कामों के लिए पहले मावला-सैनिक बनो।'

'ये ऐसी दूरदर्शिता की बातें हमने केवल दो मुखों से ही सुनी हैं। आबासाहब के मुख से या फिर बड़ी आऊसाहिबा के मुख से।'

'कहाँ हैं वे दोनों? क्या चले गये? नहीं, नहीं...!'

दुर्ग की प्रबल वायु ने उनके कानों में कहा, 'वह माँ भवानी तुम्हारा हित करने में सर्वथा समर्थ हैं।'

'जी, हम अब मावला-सैनिक ही बन गये हैं।' किसी अज्ञात शक्ति से सम्भाजी का हृदय लबालब भर गया। उन्होंने हथेली उठाकर पूरी शक्ति से एड़ लगायी और चन्द्रावत हिनहिनाकर चारों पाँवों से उड़ने लगा। वारणा नदी पार करके बत्तीस शिराला के मार्ग से होकर सम्भाजी की सेना कराड विभाग में आयी। यहाँ सेना का पहला पड़ाव लगा। डेरे शामियाने खड़े किये गये। रसोइयों ने पत्थर के चूल्हे-भट्ठियाँ बनायीं और उन पर बड़े-बड़े पतीले-कड़ाहियाँ चढ़ा दी गयीं।

सम्भाजी छावनी का निरीक्षण करके वापस लौट रहे थे तो हम्बीरराव अपने कुनबी निश्चल प्रेम से कहने लगे, "युवराज, एक प्रार्थना है। आज्ञा हो, तो निवेदन करूँ।"

"मामाजी, आप ऐसी कार्यालयीन भाषा में क्यों बात कर रहे हैं? कहिए न, क्या बात है?"

"हम तो सेवक हैं आपके। संकोच होता है, कहें या न कहें। बात यह है कि यहाँ से एक पड़ाव की दूरी पर हमारा गाँव है। आपकी इच्छा हो, तो वहाँ चलकर हमारी कुलदेवी वागेश्वरी का दर्शन कर लें। इसी बहाने सेवक के घर का रूखा-सूखा स्वीकार करें।"

हम्बीरराव के देहाती निर्मल वात्सल्य को देखकर सम्भाजी गद्गद हो उठे। उनके सामने आकर कहने लगे, "क्षमा कीजिए मामाजी, हमें ही आपसे कहना चाहिए था कि हम अपने सेनापति की कुलदेवी के दर्शन करना चाहते हैं। वैसे एक बार हमारे मन में यह विचार उठा भी था, परन्तु फिर यह सोचकर कि तलबीड मातुश्री सोयराबाई का मायका है, हम संकोच कर गये। परन्तु...अब हम अवश्य आएँगे आपके घर का प्रसाद पाने।"

हम्बीरराव का चेहरा खिल उठा। वे तैयारी करने के लिए चल दिये।

https://t.me/Sahityajunction

सायंकाल पचास घोड़ों का दल तलबीड़ की ओर जा रहा था। सम्भाजी ने मोहिते की हवेली में प्रवेश करने से पहले बाहर बनी हुई हम्बीरराव के पिता धारोजी मोहिते की समाधि के सामने माथा झुकाया और फिर वे मोहिते की हवेली में प्रविष्ट हुए। घर के देवमन्दिर में जाकर कुलदेवी वागेश्वरी के दर्शन किये और देवी को नूतन 'साड़ी-चोली' की भेंट चढ़ायी।

उस रात हम्बीरराव की हवेली के भीतरी कक्ष में सम्भाजी, हम्बीरराव आनन्दराव, रूपाजी, शंकराजी आदि ने सम्मिलित रूप से भोजन किया।

प्रातःकाल होते ही सब लोग तलबीड से चलकर छावनी आये। सम्भाजी ने दस-बारह मावले-सैनिकों को चुना और उनके साथ वे कृष्णा और वेण्णा नदियों के संगम में स्नानार्थ गये।

स्नान से लौटकर वे घोड़े से उतरकर अपने डेरे में जाना ही चाहते थे कि कफ़नी पहने एक गोसाईं नमस्कार करके सामने आ गया। बोला, 'हम ग्राम कोरटी से आये हैं। वहाँ गोसाईं मल्हार बाबा का मठ है। वहीं से हम आपसे मिलने आये है।"

"हाँ, हमने भी मल्हार बाबा की ख्याति सुनी है। कहो, कैसे हैं वे?"

"जी, वे तो कुशल से हैं। बाबाजी ने युवराज को एक विशेष सन्देश कहलवा भेजा है।"

"कैसा सन्देश?"

"बाबाजी के मठ के माऊल विभाग का 'नाडोली' नामक गाँव राज्य की ओर से मठ को पुरस्कार में मिला है। फिर भी उस गाँव को राज्य ने ज़ब्त कर लिया है। इस कारण मठ पर संकट आ पड़ा है। इसलिए..."

"गाँव को ज़ब्त क्यों किया गया है?" सम्भाजी ने कारण जानना चाहा।

"स्वर्गवासी महाराज का एक पत्र बाबाजी को मिला था। उसमें आदेश था कि मठ को गाँव इनाम देने की कोई रीत नहीं है। इसलिए गाँव ज़ब्त कर लिया गया था।"

"क्या कह रहे हो तुम गोसाईं? हमारे आवासाहब तो मन्दिरों, धार्मिक-स्थानों के विषय में बहुत उदार थे। गोसाईं, इस मामले में कुछ घोटाला दिखाई देता है। तुम थोड़ा ठहरो। हम स्वयं ही बाबाजी के दर्शनों को चलते हैं। हम मठ की समस्या हल कर देगे, चिन्ता न करो।" सम्भाजी ने हाथ उठाकर गोसाईं को विदा किया।

दोपहर के भोजन के बाद छावनी उठा दी गयी और सेना ने अगले पड़ाव के लिए कूच कर दिया। सम्भाजी हम्बीरराव तथा एक छोटी सेना के साथ कोरटी गाँव की ओर चल पड़े। कोरटी गाँव के बाद वे अगले पड़ाव पर जाकर सेना से मिलनेवाले थे।

कोरटी ग्राम घनी झाड़ियों और ऊँचे वृक्षों से घिरा हुआ एक रमणीय स्थान था। वहीं एक नाले के किनारे पर मल्हार बाबा का मठ था। मठ के पास पहुँचकर सम्भाजी घोड़े से उतर पड़े और पैदल चलने लगे।

मठ के चारों ओर जंगली झाड़ियों की दृढ़ बाढ़ बनायी हुई थी। दाढ़ी-जटाधारी प्रसन्न बदन मल्हारबाबा शिष्यगण सहित मठ के द्वार पर ही खड़े थे। सम्भाजी ने उन्हें प्रणाम किया और बोले, "आशीर्वाद दीजिए बाबाजी।"

"उठिए युवराज..." छत्रपति महाराज की स्मृति के कारण गोसाईं बाबाजी का भी हृदय भर आया था। उन्होंने अपना थरथराता हुआ हाथ युवराज के मस्तक पर रखकर आशीर्वाद दिया।

https://t.me/Sahityajunction

फिर सम्भाजी बाबाजी के साथ मठ के भीतर गये और वहाँ बाबाजी के चरणों में बैंठे रहे।

"युवराज, छत्रपति तो यह जग छोड़ गये। हम बैरागी हैं। सब जानते-समझते हैं कि जो आया है, उसे एक दिन जाना है, परन्तु फिर भी छत्रपति के चल बसने से हम दुःखी होते हैं। तुम तो उनके सुपुत्र हो। तुम्हें तो अतीब दुःख होना नितान्त स्वाभाविक है। परन्तु सोचकर देखो—सृष्टि ने जीवित लोगों को स्व-कर्तव्य का स्मरण दिलाने का साधन बनाया है मृत्यु को। छत्रपति जैसे महान व्यक्ति की मृत्यु तो एक-दो नहीं, कई पीढ़ियों को स्व-कर्तव्य का स्मरण दिलाती रहती है। तुम भी उनकी रीति-परम्परा निभाते हुए चलो। राज्य की रक्षा करो—मनुष्यों को संगठित करो। मन में निश्चय करो कि तुम्हें छत्रपति से भी बढ़कर श्रेष्ठ कार्य कर दिखाना है।" मठ के निकट बहनेवाला जलस्रोत ही मानो गोसाईं बाबा के मुख से बह निकला था।

आज कई दिनों के बाद ये बैरागी, संन्यासी वाले वचन सम्भाजी के कानों ने सुने थे। उनके मन को अपार शान्ति प्राप्त हुई। कहने लगे, "बाबाजी, हम पूरे सामर्थ्य से राज्य की रक्षा करेंगे। मनुष्यों को संगठित-एकत्रित करेंगे। परन्तु...परन्तु हमारे आबासाहब ने जो कुछ कर दिखाया है, वह हम नहीं कर पाएँगे। ठीक है कि हम उनके पुत्र हैं, परन्तु फिर भी हम अपनी मर्यादाओं को जानते हैं। बस, आपका आशीर्वाद बना रहे।"

इस प्रकार मल्हार बाबा से आत्मीयतापूर्ण चर्चा करके सम्भाजी कोरटी के मठ से विदा हुए। उनके मन में आज बहुत समाधान एवं सन्तोष की अनुभूति हो रही थी। दुलकी चाल से घोड़ा दौड़ाते हुए हम्बीरराव से कहने लगे, "मामाजी, चिटनीस को कहिएगा कि कराड विभाग के देशाधिकारी भानजी गोपाल को पत्र लिख दें। लिखें कि 'हमने' गोसाईं बाबा के दर्शन किये। उनसे चर्चा की है। बाबाजी व्रती, सत्यनिष्ठ एवं ईश्वर भक्त हैं। ग्राम नाडोली उनके मठ को पहले से ही उपहार में दिया गया है। वह व्यवस्था चालू रखी जाय। इसमें किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय।'"

"जी," हम्बीरराव को भी यह निर्णय सुनकर सन्तोष हुआ था। अब चन्द्रावत सेना से जा मिलने के लिए एक छोटे रास्ते से होता हुआ वाई नगर की ओर दौड़ा जा रहा था।

सम्भाजी पड़ाव पर पहुँचे। वहाँ सेना ने एक दिन और मुक़ाम किया तथा अगले दिन सेना वाई की दिशा में बढ़ चली। वह सेना महाबलेश्वर के रास्ते और 'रडतोंडी' नामक पहाड़ी घाट से होती प्रतापगढ़ तक आ पहुँची।

प्रतापगढ़ के मुख्य दुर्ग के नीचे ही 'जनी के टीले' पर अफ़ज़ल ख़ाँ की क़बर बनी हुई थी। क़बर देखते ही सम्भाजी के हाथ की बागडोर अपने आप खिंच गयी। युवराज उस सफ़ेद क़बर को आँखें गड़ाकर देखते हुए हम्बीरराव से कहने लगे, "मामाजी, आबासाहब के हाथों मृत्यु पानेवाला अफज़ल ख़ाँ भी वास्तव में भाग्यवान ही था। यदि वह जीवन में आगे भी बीजापुर-दरबार की ही चाकरी करता रहता या कहीं युद्ध में मारा जाता, तो क्या कभी उसका इतना भव्य स्मारक बन पाता?"

"जी, युवराज, सच है। हम भी इतने बरसों तक महाराज के साथ रहे, परन्तु उनके व्यक्तित्व की ऊँचाई को हम भी कभी नाप नहीं सके। मनुष्य तो क्या, बरसाती बौछार के समान आते-जाते रहते हैं, परन्तु महाराज तो बस महाराज ही थे।" महाराज की स्मृति से हम्बीरराव का कण्ठ गद्गद हो आया।

https://t.me/Sahityajunction

प्रतापगढ़ का क़िलेदार अगवानी के लिए उपस्थित था। उसके साथ दुर्ग की सुघड़ सीढ़ियाँ चढ़कर सम्भाजी दुर्ग के ऊपरी भाग में आये। केदारेश्वर का दर्शन करके वे जब उपरिकोट की ओर जा रहे थे, तब उन्होंने क़िलेदार से कहा, "माँ भवानी की पूजा की तैयारी कराओ। हम अभी यहाँ थोड़ी देर तक ठहरेंगे। फिर कभी समय निकालकर प्रतापगढ़ आएँगे।"

"जी," कहकर क़िलेदार पुजारी को ढूँढ़ने चला गया। दुपहरी ढल चुकी थी। सम्भाजी हाथ-पैर धोकर उपरिकोट से बाहर निकले और क़िले की चहारदीवारी पर जाकर अकेले ही उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। दूर क्षितिज के किनारे-किनारे कई पर्वतों के शिखर दिखाई दे रहे थे। उन शिखरों को पहचानते हुए रायगढ़ का शिखर देखते ही सम्भाजी की दृष्टि वहाँ अटक कर रह गयी। 'रायगढ़! रायगढ़!' विक्षुब्ध मन से बस एक ही शब्द बार-बार हिलोरें लेकर ऊपर आने लगा। आज पूरे साढ़े तीन साल बाद उन्हें रायगढ़ के दर्शन हुए थे—दूर से ही सही। पर आज वे रायगढ़ को जिस स्थिति में देख रहे थे, उससे उनका दिल भर आया था और डबडबायी आँखें रायगढ़ के शिखर को ठीक से देख नहीं पा रही थीं।

"मन्दिर जाना है न! पूजा की सारी तैयारी हो चुकी है।" हम्बीरराव ने कहा।

"चलो।"

युवराज सेनापति के साथ भवानी देवी के मन्दिर में आये। वहाँ उन्होंने देवी की पूजा करके चरणामृत तथा प्रसाद पाया। फिर पूरे गढ़ का एक चक्कर लगाकर वे हल्दी-रोली से भरा हुआ माथा लिये प्रतापगढ़ से उतरे। अब उनके मन में एक ही आस थी—रायगढ़ पहुँचने की।

उनकी सेना पारघाट में ठहरी हुई थी। उस सेना से मिलकर सम्भाजी महाड आये और वहाँ मृगशिरा नक्षत्र की वर्षा ने लगातार झड़ी लगा दी। बीस हज़ार की पूरी सेना जलधाराओं की चपेट में आ गयी। सेना को रुक जाना पड़ा।

पिलाजी प्रत्येक दुर्ग, वहाँ की चौकियों और पहरेदारों की व्यवस्था के कार्य से निपटकर सम्भाजी से जा मिले। वर्षा की झड़ी के थमते ही हम्बीरराव और पिलाजी सहित सम्भाजी की सेना ने गीली पगड़ियों से टपकती धाराओं को झटका और अब यह मावला-सेना की बाढ़ रायगढ़ की दिशा में बढ़ने लगी। जब सेना पाचाड़ के नगर-द्वार के निकट पहुँची, नगाड़े और सिंगों की आवाज़ों से आकाश गूँज उठा। पाचाड़ ही ऐसा स्थान था जहाँ षड्यन्त्रकारियों के समर्थकों से मुठभेड़ होने की थोड़ी-बहुत सम्भावना थी।

इसलिए सम्भाजी सेना के आगे हो लिये और तलवार म्यान से निकालकर आकाश में लहराते हुए उन्होंने वीर गर्जना की 'हर हरऽऽ महादेव' और उनके पीछे खड़ी हज़ारों की मावला-सेना ने रणघोष लगाया—'हर हर ऽऽ महादेव'! मृग नक्षत्र के बादल भी उस गर्जना से काँप उठे होंगे।

जैसे कोई मस्त हाथी ऊँचे-मोटे वृक्षों को गिराता हुआ, चिंघाड़ता हुआ दौड़ा आ रहा हो, और सियारों का झुण्ड 'हुआँ-हुआँ' करता हुआ उसे रोकने उसके सामने आ जाए, ऐसे ही मालसावन्त नामक एक सरदार पाचाड़ के नगर-द्वार पर ही अपनी सेना सहित सम्भाजी की सेना के सामने आ गया। सम्भाजी की आँखों में ख़ून उतर आया था। वे घोड़ा दौड़ाकर स्वयं आगे आ गये और स्वयं ही मालसावन्त से जा भिड़े। तलवार के दो-चार वारों में ही सम्भाजी ने उसे ढेर कर दिया और वह घोड़े पर से नीचे कीचड़ में जा गिरा। अब रहा-सहा अड़ंगा भी दूर हो गया। जैसे

https://t.me/Sahityajunction

बाँध फूटते ही पानी का भीषण प्रवाह गरजता हुआ बह निकलता है, इसी प्रकार युवराज और सेनापति की सेना पाचाड़ में घुस गयी।

"मामाजी, आप यहाँ न रुकते हुए सीधा रायगढ़ चले जाइए और येसाजी काका से मिलिए। पूरे दूर्ग की चौकियों की व्यवस्था की एक बार जाँच कर लीजिए।" सम्भाजी ने तलवार की नोक रायगढ़ की दिशा में करके पिलाजी मामा से कहा। पिलाजी अपने दल के साथ रायगढ़ चल दिये।

हम्बीरराव और आनन्दराव के साथ सम्भाजी बड़ी आऊसाहिबा जिजाऊ की समाधि के निकट आये और घोड़े से उतर पड़े। फिर जूते बाहर उतारकर भीगे वस्त्रोंवाले युवराज मृग नक्षत्र की वर्षा से धुली हुई उस समाधि तक गये। समाधि के चरणों में जब उन्होंने माथा नवाया तो वहाँ से सिर ऊपर उठाने की इच्छा ही नहीं होती थी। 'वर्षा की छुटपुट झड़ियों के बहाने बड़ी आऊसाहिबा ही आज हमारी पीठ पर हाथ फिरा रही हैं!' यह सोचकर वे रोमांचित हो उठे। फिर मन कठोर बनाकर उन्होंने सिर ऊपर उठाया और पैदल ही ख़ासमहल की ओर चल दिये—माँ पुतलाबाई के दर्शन करने।

हवेली के सभागृह के बाहर टँगे हुए घण्टे को देखकर तो वे कुछ देर विमोहित से खड़े रहे। फिर भारी क़दमों से, मानो कोई पुतला ही चला जा रहा हो, वे निवास की ओर चल पड़े। कक्ष की पत्थर से बनी देहली पार करने से पहले उन्होंने अपने मन को पुनः संयमित और दृढ़ बना लिया। कक्ष के भीतर पुतलाबाई एक झरोखे के पास खड़ी हुई बाहर की ओर देख रही थीं। उनकी पीठ दरवाज़े की ओर थी। श्वेत वस्त्र परिधान धारण किये हुए पुतलाबाई आज बिल्कुल जिजाऊ ही प्रतीत हो रही थीं।

"माँजीऽऽऽ, हम आये हैं..." कक्ष को भी सम्भाजी की आवाज़ से रोमांच हो आया था।

पुतलाबाई उसी तरह पीठ फेरकर खड़ी रहीं और हथेलियों से अपना मुँह छुपाकर वे रो उठीं। सारा शरीर हिलने-काँपने लगा। अत्यधिक शोकावेग के कारण उनका कण्ठ और हृदय गद्गद हो उठे थे। यही सोचकर उनका दम घुटा जा रहा था—'इतने वर्षों बाद सम्भाजी मिल रहे हैं। अपना ये कुंकुमरहित सूना भाल उन्हें कैसे दिखाएँ?' वे जैसी खड़ी थीं, वैसी ही खड़ी रहीं।

युवराज को आज इसकी भी सुध नहीं थी कि उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। वे आगे बढ़कर पुतलाबाई के निकट जाकर अत्यन्त व्यथित होकर बोले, "हम...हम आ गये हैं माँजी।"

आँचल से आँखें पोंछती हुई पुतलाबाई घूम गयीं। उनका केतकी वर्ण, उजला कुंकुम रहित मस्तक देखकर सम्भाजी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी ने तलवार की तेज़ नोक को ही उनकी छाती पर फिरा दिया हो। कुछ देर पूर्व उन्होंने मन को दृढ़ बनाया था, वह दृढ़ता अब बह गयी। 'आबासाहब गये और अपने साथ न जाने कितना कुछ अनमोल ले गये?' इस विचार के मन में आते ही अपने सूनेपन की भावना से वे और भी विह्वल हो उठे।

युवराज प्रणाम करने के लिए झुक ही रहे थे कि पुतलाबाई ने उन्हें रोककर प्रेम से गले लगा लिया और सिसकती हुई कहने लगीं, "यह क्या हो गया युवराज? श्रीमान्जी तुमसे या हमसे मिले बिना ही कैसे चले गये? हमारा तो जन्म ही व्यर्थ हो गया। अब तो प्राण शिथिल हो चुके हैं।"

उस ममता के आलिंगन में समाये हुए सम्भाजी के मन में विचार आ रहा था—'काश! हम

https://t.me/Sahityajunction

तुम्हारी कोख से उत्पन्न हुए होते!'

अकस्मात् पुतलाबाई ने किसी विचार के आते ही अपने शोकावेग को रोक लिया और सम्भाजी के कन्धों को पकड़कर अपने सामने कर लिया। युवराज सिर नीचा झुकाये खड़े थे। दृढ़ स्वर से पुतलाबाई कहने लगीं, "सिर ऊपर उठाओ।"

सम्भाजी ने सिर ऊपर उठाकर माँजी की आँखों की ओर देखा। एक पल पहले ही भरे हुए आकाश के समान डबडबायी हुई उनकी आँखें अब बिलकुल निखर चुकी थीं। अब उनकी आँखों में मानो दो सूर्य के बिम्ब ही उदित हो आये थे। वे अब पहलेवाली माँजी नहीं लग रही थीं। मुख का भाव और रूप बदल चुका था। सम्भाजी हड़बड़ा गये, कुछ समझ ही नहीं पाये। बस, एकटक देखते ही रह गये।

"तुम हमें 'माँजी' कहते हो। हमारी एक प्रार्थना सुनोगे?" इस आवाज़ में ठीक-ठीक महाराज का स्वर उतर आया था।

"जी, प्रार्थना क्यों कहती हैं आप? आज्ञा कीजिए।" सम्भाजी को आगे का कुछ अनुमान न था। वे विनयवश कह बैठे।

"तो फिर यह हमारी पहली और अन्तिम आज्ञा समझो। माता भवानी की माला पर हाथ रखकर कहो कि इसे मानोगे।"

"जी हाँ, हम अवश्य पालन करेंगे।" सम्भाजी ने भवानी माला पर हाथ रखकर कहा।

"शम्भू बेटे, अब श्रीमान्‌जी तो रहे नहीं। हमें भी अब जीवन भार लगता है। हम इसे उतार फेंकना चाहती हैं। हम अग्नि-प्रवेश करना चाहती हैं। सती होना चाहती हैं। सब तैयारी करवाओ।" कक्ष की शून्यता को शून्य दृष्टि से देखती हुई पुतलाबाई मूर्ति के समान दिखाई दे रही थीं—बिल्कुल प्रतापगढ़ के मन्दिर की मूर्ति के समान स्थिर और दृढ़निश्चयी।

सुनकर सम्भाजी एकदम ढहकर नीचे भूमि पर बैठ गये और पुतलाबाई के पैरों से लिपटकर फफक-फफककर रोने लगे, "यह क्या कह दिया माँजी आपने? यह कैसी आज्ञा दी आज आपने?" ऊपर खड़ी इस नारी की मूर्ति केवल सम्भाजी के कन्धों पर हाथ रखे खड़ी थी। सम्भाजी द्वारा कहा गया एक भी शब्द उसने सुना ही नहीं था।

"दुर्ग की व्यवस्था पूरी हो चुकी है। आप तुरन्त चले आएँ।" रायगढ़ से येसाजी कंक और पिलाजी मामा का सन्देश मिलते ही सम्भाजी जी हम्बीरराव के साथ पाचाड़ से निकले और रायगढ़ के ऊँचे पर्वतीय मार्ग पर चल पड़े। पीछे-पीछे पाँच हज़ार मावला सैनिक भी गढ़ चढ़ते हुए आ रहे थे।

रायगढ़ के चित्त दरवाज़े के सामने आते ही युवराज अकस्मात् थम गये। 'हम जब यहाँ से गये थे तो महाराज साहब थे और आज...' काँपते हुए हाथ से उन्होंने दरवाजे की देहली को हाथ लगाया और फिर भीतर प्रवेश किया।

युवराज आज पैदल ही वह पहाड़ी गढ़ चढ़ रहे थे। वर्षा की बौछार के आते ही कहार पालकी उनके पास ले आते थे परन्तु युवराज हाथ हिलाकर इनकार कर देते थे और किसी

https://t.me/Sahityajunction

पहाड़ी कगार पर या पहाड़ी वृक्ष पर ठहर जाते थे। बौछार के थमते ही वे फिर गढ़ चढ़ना शुरू कर देते थे। पीछे-पीछे मावले सैनिक कमली की घोघी बनाकर बरसात की परवाह किये बिना गढ़ चढ़ रहे थे। गढ़ का लहाना दरवाज़ा आया। यहाँ से रायगढ़ की सामनेवाली मीनारें दिखाई दे रही थीं।

लबालब भरे गंगासागर को एक बार जी-भर देखकर सम्भाजी मीनारों तक आये। यहाँ गढ़ के अट्ठारहों कारख़ानों के लोगों की भीड़ जमा थी। इनके बीच से गलमुच्छोंवाले येसाजी कंक आगे बढ़ आये। वे मुजरा करने के लिए झुक ही रहे थे कि सम्भाजी लपककर आगे बढ़े और उनके चरणों में प्रणाम करते हुए कहने लगे, "येसाजी काका, आपको तो हमें आशीर्वाद देना चाहिए।" येसाजी काका ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया। बूढ़े बाबा भर्रायी आवाज़ से कहने लगे, "कितनी देर लगा दी तुमने? इस गढ़ का तो सारा रंग-रूप ही बिगड़ गया है। अच्छा ही हुआ कि तुम आ तो गये। यहाँ जितने भी बन्दर-कूद मचानेवाले थे, सबको हमने कोठरियों में बन्द कर दिया है। यह लो, गढ़ अब अपने क़ब्ज़े में लो और ठीक ढंग से कामकाज करो।"

"काम-काज करो मत कहिए, येसाजी काका, कहिए कि काम-काज करें हम सब। भला हम अकेले क्या कर पाएँगे?"

फिर सम्भाजी आबाजी सोनदेव, येसाजी कंक, हम्बीरराव, पिलाजी मामा, आनन्दराव, रूपाजी मदारी, चांगोजी, काटकर, जोत्याजी केसरकर आदि बहादुरों के साथ गढ़ के देवता जगदीश्वर के दर्शनार्थ निकल पड़े।

"युवराज गढ़ में आ पहुँचे हैं।" यह समाचार सुनकर लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड चले आये थे और इस समय रास्ते के दोनों ओर खड़े थे। बरसात की बौछारों को और प्रजाजनों के मुजरों को स्वीकार करते हुए सम्भाजी जगदीश्वर मन्दिर के द्वार तक आये। वहाँ शिवलिंग के दर्शन करके वे होली के मैदान से होकर महादरवाज़े तक आये ही थे कि नक्कारख़ाने के दगदगे से आकाश गूँज उठा। आज पूरे तीन महीने बाद नक्कारख़ाने का दगदगा सुनाई दिया था।

सामने सिंहासन था—'श्री' का सिंहासन। पर आज वह खाली था। स्वामी बिना अनाथ दिखाई दे रहा था।

सम्भाजी एक-एक क़दम बढ़ाते हुए ऐसे चले आ रहे थे, जैसे किसी के क़दमों पर क़दम रखते हुए चल रहे हों। वे सिंहासन के सामने के खुले भाग में आये। एक दिन वे उसी दरबार में हाथ पीछे बाँधकर 'आरोपी' बनकर लाये गये थे। उस स्थान पर पहुँचते ही वे ठिठककर रह गये।

'आबासाहब, हम आज भी इसी स्थान पर हाथ पीठ पर बाँधे खड़े रहने को तैयार हैं। और आप जो दण्ड देंगे उसे स्वीकार करने को तैयार हैं। बस, एक बार, केवल एक बार आप इस सिंहासन पर आ विराजो, और हमें डपटकर सुनाओ—तुम्हारे स्पष्टीकरण में कुछ दम नहीं है।' सम्भाजी की अस्त-व्यस्त दृष्टि सारे दरबार में घूम रही थी। कोमल झीने परदे और झालरें वायु से हिल रही थीं।

वे उसी प्रकार आगे बढ़ते हुए सिंहासन की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। हम्बीरराव, आनन्दराव, मदारी, येसाजी आदि सभी लोग साँस रोककर उनकी ओर देख रहे थे, क्योंकि आज तक खुले भाग की सीढ़ियों से होकर कोई भी सिंहासन तक नहीं चढ़ा था।

https://t.me/Sahityajunction

जिस सीढ़ी पर युवराज के रूप में वे कभी बैठा करते थे वहाँ आते ही सम्भाजी रुक गये। उन्हें दिखाई दे रहा था अपना ही एक रूप जो आज भी वहाँ बैठा है।

और भी आगे बढ़ते हुए सम्भाजी एकदम सिंहासन के सामने ही जा खड़े हुए। राजसभागृह में उपस्थित सब लोग बेचैन हो उठे और भौचक्के होकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। वे सोच रहे थे—क्या युवराज पुरानी प्रथा-परम्परा का विचार न करके सीधा सिंहासन पर ही जा बैठेंगे? वे दम साधकर देखते रह गये।

वह सुनहरा सिंहासन आज अलंकारविहीन, नीरस और उदास दिखाई दे रहा था। उसकी भुजाओं के अग्रभाग में बने हुए सिंह भी निष्प्राण प्रतीत हो रहे थे। ऊपर का छत्र डगमगाता हुआ-सा प्रतीत होता था।

इस क्षण सम्भाजी को गहरी अनुभूति होने लगी थी कि सचमुच आबासाहब आज इस संसार में नहीं रहे।

सम्भाजी ने कमर में बँधी तलवार का रेशमी बन्द खोला और म्यान को मस्तक से लगाकर उन्होंने तलवार सिंहासन के पादासन पर रख दी। फिर मानो वे साक्षात् महाराज के चरणों में ही प्रणाम कर रहे हों, इस निष्ठापूर्ण पद्धति से उन्होंने चरणासन में माथा नवाया। इस समय हृदय भर आया उनका।

नेत्र बन्द करके मूकवाणी से ही वे प्रार्थना कर रहे थे—'महाराजसाहब, अब आशीर्वाद का बल तो हमें प्राप्त नहीं होगा। आपकी चरणधूलि का प्रभाव हमें शक्ति दे, यही प्रार्थना है। हम आज अकेले हैं।'

राजसभागृह मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ था। सभी इस हृदयस्पर्शी दृश्य को देख रहे थे। उनमें से कई लोगों ने अपनी कल्पना द्वारा सम्भाजी को उस सिंहासन पर बैठा भी दिया था।

यही युवराज सम्भाजी कभी दिलेर ख़ाँ के गुट से जा मिले थे, यह कटु सत्य अब अनेकों ने मन की गहराइयों से पूरी तरह निकाल दिया था। जिस छत्रपति ने इस युवराज को क्षमा कर पुनः आशीष दिया, उस छत्रपति के वे स्वामिभक्त सेवक हैं, यह सत्य उपस्थित जनों ने सिद्ध कर दिखाने की ठान ली। उन्हें चाहिए था एक राजा, उस उच्चासन पर विराजनेवाला। ठीक वैसा राजा, जैसा कि युवराज सम्भाजी थे—बलशाली, युवा, सूरमा, सेवा का सम्मान करनेवाला और छत्रपति की आन-बान को निभाने के लिए प्राणों का बलिदान देनेवाला और उस भव्य सिंहासन की भव्यता का रक्षक, छत्रपति शिवाजी का रक्त ही जिसकी धमनियों में बह रहा हो ऐसा राजा चाहती थी प्रजा। सम्भाजी बड़ी देर तक उस चरणासन पर माथा टेके रहे। इस मस्तक ने क्या-क्या नहीं भोगा था, कहाँ-कहाँ जाकर यह माथा टकराया नहीं था। आज उस मस्तक को असीम मानसिक शक्ति प्राप्त हो रही थी। उपस्थित अधिकारी एवं प्रजाजन इस भावपूर्ण दृश्य को देखकर सम्भाजी के व्यक्तित्व से आज अभिभूत हो उठे थे। तीन मास तक सूने बने हुए उस दरबार भवन में आज प्राणों का संचार हो उठा था। सोया हुआ राजसभागृह आज जाग उठा था।

मावले-सैनिकों को व्याधिग्रस्त महाराज के दर्शन नहीं हो पाये थे। राजाराम की 'मंच-आरोहण' विधि को किसी ने देखा नहीं था। परन्तु आज वे उनके साथ चलकर आया एक राजपुरुष सिंहासन के निकट खड़ा हुआ अपनी आँखों देख रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

महारानी सोयराबाई तथा उनके साथियों में शेष सब बातों को समझ पाने की बुद्धि आवश्यकता से अधिक थी। केवल वे इतनी-सी बात नहीं समझ पाये थे कि राजा प्रजा का और प्रजा के लिए होता है, केवल ढेर-की-ढेर गुपचुप मन्त्रणाएँ करना ही राजा का काम नहीं है।

सम्भाजी को आज इस बात की सुध नहीं थी कि सैकड़ों भावपूर्ण आँखें उन पर ही लगी हुई हैं। वे सिंहासन के चबूतरे के पीछे के द्वार से निकलकर ख़ासमहल की ओर चल पड़े।

वे ख़ासमहल के सभागृह में आये। वहाँ बैठक पर ही महाराज का अँगरखा, राजटोप, चुन्नटदार घुटन्ना, शस्त्रादि एक तबक़ में सँजोये हुए रखे थे। सम्भाजी टक लगाकर उन वस्तुओं को देखते रहे। उन्हें लगा कि अभी उन वस्तुओं में से जीते-जागते महाराज ही उठ खड़े होंगे और दोनों हाथ फैलाकर उनके कन्धे पर रखते हुए कहेंगे—'बेटा, कहाँ गया था तू? कैसे भूल गया तू हमें?'

उन स्मृति-चिह्नों से सुशोभित बैठक को नमस्कार करके सम्भाजी बैठक पर जा विराजे।

राजसभागृह में उपस्थित लोग पालकी-दरवाज़े से होकर एक-एक करके इस महल के सभागृह में आ रहे थे। सम्भाजी ने चांगोजी काटकर से कहा, "चांगोजी, नज़राने की वस्तुओं से एक तबक़ तैयार करो।"

"जी," कहकर चांगोची चला गया।

"आपने किन-किन भलेमानसों को गिरफ़्तार किया है?" युवराज ने येसाजी काका और पिलाजी मामा की ओर देखकर पूछा।

"बापूजी माली, सूर्याजी निमकर, भाँडवलकर और घाटगे को हमने क़ैद किया है।" पिलाजी मामा ने उत्तर दिया।

"चिटनीस बालाजी, उसका पुत्र आवजी और हिरोजी फर्जन्द को उनके निवास-स्थानों में ही नज़रबन्द करके पहरे बिठा दिये हैं।" येसाजी बोले।

"ठीक हुआ येसाजी काका। तुमने समय पर बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया, नहीं तो...। हम तो बिल्कुल तंग आ चुके थे उनकी टेढ़ी-तिरछी चालों से। भले आदमी कभी गढ़ के दरवाज़े बन्द करते थे, तो कभी महाराज के महल पर ही पहरा बिठा देते थे। हमारे साथ भी इतने लोगों की शक्ति है, पर हमसे किसी ने एक बार भी नहीं पूछा कि क्या किया जाय, कैसे किया जाय।"

"काका, तुम्हें तो वे अपने रास्ते का रोड़ा समझते थे। उन्हें भले आदमियों का साथ भला कैसे प्रिय होता?" सम्भाजी चांगोजी काटकर के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इतने में चांगोजी एक तबक़ सजाकर भूषण-भण्डार की ओर से आता हुआ दिखाई दिया। तब सम्भाजी ने हम्बीरराव से कहा, "चलिए मामाजी, हमारे साथ आइए।"

सम्भाजी सभागृह से निकलकर बाहर आये और सातमहल की ओर जाने लगे। हम्बीरराव, चांगोजी और तबक़धारी सैनिक पीछे-पीछे चल रहे थे।

युवराज को आता देखकर सातमहल की दासियों में खलबली मच गयी।

महारानी सोयराबाई के महल का द्वार तो चरमरा कर बन्द हो गया। सम्भाजी उस बन्द द्वार तक आये और फिर हम्बीरराव की ओर देखने लगे। हम्बीरराव उनकी दृष्टि का आशय समझ गये और आगे बढ़े।

https://t.me/Sahityajunction

“दरवाज़ा खोलोऽ।” हम्बीरराव दरवाज़े पर थाप मारने लगे। उनके हाथ में पहना हुआ चाँदी का कड़ा भी दरवाज़े से टकरा रहा था। एक के बाद एक कई थापें उस दरवाज़े पर पड़ीं। भीतर कुछ खुसफुसाहट-सी हो रही थी। दरवाज़े के बाहर बस ये कुछ शब्द ही सुनाई दे पाये :

“...हमारी सौगन्ध हैं तुम्हें। मत जाओ ऽ।” एक आवाज़।

“छोड़ो, छोड़ो न हमें।” दूसरी आवाज़।

काफ़ी देर बाद दरवाज़ा खुला। सामने ही राजाराम खड़े थे। मुखमुद्रा रो-रोकर लाल हो उठी थी। आज तक वे जिस प्यार से पुकारते थे, उसी प्यार-भरे स्वर में वे पुकार उठे, “दादा भैया।”

सम्भाजी झपटते हुए उनके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करना चाह रहे राजाराम को उन्होंने ‘बाल-राजा’ कहकर अपने आलिंगन में भर लिया। फिर बोले, “घबराओ नहीं भाई, सिर ऊपर उठाओ।”

कलकलाई आँखों से अपने ऊँचे-तगड़े दादा भैया की ओर देखते हुए दबी-सी, घबरायी-सी आवाज़ में राजाराम के मुख से ये टूटे-फूटे शब्द फूट पड़े, “तुम...दादा तुम, हमारी माँजी को मारने आये हो?”

ये शब्द सुनकर अत्यधिक शोक के कारण सम्भाजी के शरीर में रोमांच हो आया और उन्होंने राजाराम को अपने शरीर से और अधिक कसकर चिपका लिया। अनचाहे बोल सुनकर उन्हें जैसे काठ मार गया था। राजाराम की पीठ पर फिर रहा उनका हाथ ही कह रहा था—‘कैसी भी क्यों न हो, आख़िर वे हमारी माता हैं। तुम यदि हमसे ज्येष्ठ होते, सयाने होते, तो हम ही आज उनकी इच्छापूर्ति के लिए स्वयं रस्सियों में बाँधे जाकर यहाँ उपस्थित हो जाते।’

बालक राजाराम सिसक रहा था। उसकी पीठ थपककर सम्भाजी कहने लगे, “शान्त होओ। धीरज रखो। अपने दादा भैया का लाया हुआ यह नज़राना स्वीकार करो।” राजाराम ने तबक़ को हाथ लगाया और फिर मामा हम्बीरराव के चरणों में प्रणाम किया। हम्बीरराव इस समय आँखों में छलक आये आँसू पोंछ रहे थे।

फिर राजाराम को साथ लेकर युवराज सम्भाजी माता सकवारबाई के महल की ओर जाने लगे। उधर सोयराबाई अपने महल के देवमन्दिर में कुलदेवी वागेश्वरी के सम्मुख माथा टेककर सिसक रही थीं। शोक, कि वे वागेश्वरी देवी को समझ नहीं सकी थीं। सम्भाजी की बात तो दूर रही, बालक राजाराम को भी वे पूरी तरह कहाँ जान पायी थीं।

‘टन ऽ टन ऽ टन’ प्रातःकालीन मन्द वायु के साथ आये घण्टानाद के स्वर सम्भाजी के कानों में पड़े। इसी नाद में पक्षियों का कलरव भी मिल रहा था। इस समय जगदीश्वर के मन्दिर में प्रातःकालीन ‘काकड’ आरती हो रही थी। युवराज सम्भाजी ने छाती से हाथ लगाकर उस आरती की वन्दना की। सुबह उठते ही उन्होंने अपनी हथेलियों का दर्शन किया और फिर वे शरीर पर ओढ़ी हुई शॉल को दूर हटाकर उठ बैठे। ख़ासमहल के शयनकक्ष में वे रात काफी देर तक व्याकुलता के कारण करवटें बदलते हुए पड़े रहे थे। शायद तीसरे पहर उनकी आँख लगी थी।

उन्हें कुछ याद आया और उन्होंने पहरेदार को आवाज़ दी, “कौन है उधर?”

https://t.me/Sahityajunction

एक सैनिक आ उपस्थित हुआ। स्नान-गृह की ओर जाते हुए सम्भाजी ने उसे आज्ञा दी, “ज़रा चांगोजी को बुला लाओ।”

थोड़ी ही देर में उपरने से हाथ-मुँह पोंछता हुआ चांगोजी वहाँ आ गया। ‘भला दिन निकलते ही हमें क्यों बुलाया होगा?’ यह सोचकर वह सम्भ्रम में डूबा हुआ था।

“चांगोजी, पाचाड़ के सभागृह का घड़ियाल प्रथा के अनुसार बजता है या नहीं?”

चांगोजी की रही-सही नींद भी उड़ गयी।

“जी!” वह सकपका गया।

“क्यों? सकपकाते क्यों हो?”

“जी, बड़े महाराज बीमार पड़ गये और उस भाग-दौड़ में किसी का ख्याल भी नहीं गया कि वह प्रथा कब बन्द हो गयी।” चांगोजी ने सब सच कह दिया।

“वाह! यहाँ तक हिम्मत बढ़ गयी थी इन लोगों की? चांगोजी, कुल-परम्पराएँ इतनी सरलता से बन्द नहीं की जातीं। वह घड़ियाल बजता रहे, तो प्रतीत होता है कि हमारी बड़ी आऊसाहिबा आज भी रायगढ़ की पंचक्रोशी में विचर रही हैं। तुम आज ही उतरकर पाचाड़ पहुँचो और उस परम्परा को प्रारम्भ कराओ।”

“जी!” चांगोजी झुककर जाने लगा।

“और देखो। जाते समय सशस्त्र प्रहरी और एक डोली साथ ले जाओ। पाचाड़ की माँजी को सुरक्षापूर्वक यहाँ रायगढ़ ले आओ।”

“जी!” चांगोजी चला गया। सम्भाजी बड़ी देर तक झरोखे में से पाचाड़ की दिशा में देखते रहे। बाहर वर्षा की झड़ियाँ लगी हुई थीं, दूर का कुछ दिखाई नहीं देता था।

एक दासी तबक़ में कुछ लिये आयी, जिसमें से भाप उठ रही थी। दासी ने तबक़ चौकी पर रख दिया और बोली, “बाहर शिर्के मामासाहब खड़े हैं।”

“भेज दो उन्हें।” सम्भाजी ने रखा कटोरा उठाया। उसमें थी कुलथी की गरम-गरम कढ़ी। दरवाज़े में खड़े थे पिलाजी मामा। सम्भाजी ने हाथ का कटोरा बिना पिये ही रख दिया और ‘आइए’ कहकर वे आगे बढ़ आये। आज पिलाजी को प्रणाम करते हुए उनके मन में येसूबाई की स्मृतियाँ जाग उठी थीं।

“युवराज, आपके परिवार के बारे में क्या किया जाय? हमारी बच्ची तो घुलकर आधी रह गयी है। सवा बरस हुए, आपके दर्शन ही नहीं पाये उसने।”

“मामाजी, भाग्य के फेरे से हमारे पाँव किसी एक जगह टिक ही नहीं पाये, आज ही रायगढ़ पहुँचकर इन्हें कुछ आराम मिला है। यह आप देख ही रहे हैं। आप शृंगारपूर को आदमी भेजकर युवराज्ञी को यहाँ बुला लें। केशव पण्डित, ऊधो योगदेव तथा कवि कुलेश को भी बुलवा लें।”

“जी,” पिलाजी के मुख पर आज कई दिनों बाद हँसी दिखाई दी।

“यह कटोरा क्यों रख दिया है? पीजिए न।” तबक़ में रखे कटोरे की ओर संकेत करके पिलाजी ने स्नेहपूर्वक कहा।

“जी, वह कटोरा...” सम्भाजी उलझन में क्या कहें, कैसे बताएँ?

https://t.me/Sahityajunction

“अच्छा, हम चलते हैं। आज ही शृंगारपूर को आदमी भेजे देते हैं।” पिलाजी चले गये।

सम्भाजी कटोरे से उठनेवाली भाप को देख रहे थे। उसमें उन्हें एक नन्हा-सा मुख दिखाई दे रहा था—भवानीबाई का मुख। ‘भला कितनी बड़ी हो गयी होगी हमारी बेटी? और युवराज्ञी? मामाजी उनकी तबीयत के बारे में बता रहे थे। हाँ, हाँ येसू, तुम जो कहती हो, वही ठीक है। तुमने जंगल की हवाओं का सेहरा अपने माथे पर बाँध रखा है। परन्तु तुम अकेली ने ही वैसा वनवास नहीं भोगा है—छोटी रानी ने भी बहुत कुछ भोगा है। कम-से-कम तुम अपने घर में तो हो, पर वे...।’ अहमदनगर के किले में क़ैद दुर्गाबाई और मदनसिंह की याद से सम्भाजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। हाथ पीठ पीछे बाँधे वे भीषण एकान्तवास की अनुभूति से व्यथित होकर इधर-उधर घूमने लगे। कटोरे में भरी हुई कड़ी ठण्डी होती जा रही थी।

स्नानादि से निवृत्त होकर तथा देवमन्दिर में माँ भवानी के दर्शन करके वे महल के सभागृह में आये। वहाँ एकत्रित दरबारियों ने उन्हें मुजरा किया। युवराज आसन पर जा विराजे।

“मुग़ल प्रदेश के औरंगाबाद की ओर से ख़बर आयी है, युवराज! यदि आज्ञा हो तो...” कार्यालयाध्यक्ष राघो स्वानन्द ने कहा। सम्भाजी ने हाथ उठाकर अनुमति दी। सब दरबारी ख़बर सुनने को उत्सुक थे।

“मुग़ल दरबार ने दक्खन के सूबेदार शाहआलम को वापस बुला लिया है और उसके स्थान पर ख़ानजहाँ—बहादुर कोकलताश को नियुक्त किया है। ख़ान औरंगाबाद में आकर फ़ौज जमा कर रहा है।”

सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये और वे चिन्तातुर हो गये। महाराज की मृत्यु के बाद तुरन्त होनेवाला यह परिवर्तन महत्त्वपूर्ण था। शाहआलम जब तक औरंगाबाद में रहा था, औरंगाबाद शहर से कभी बाहर नहीं गया था।

“कार्यालयाध्यक्ष, हमारे जो क़िले मुगलाई प्रदेश से लगे हुए हैं, उन्हें इस परिवर्तन की सूचना दो और सभी चौकियों-छावनियों को अधिक मज़बूत बनाकर जागरूक रहने को लिखो।”

“जी,” राघो स्वानन्द झुकते हुए बोले।

“मामाजी, पन्हालगढ़ को हरकारे भेजिये और म्हलोजी को सन्देश भिजवाइए कि क़ैदियों को इधर भेज दें।” सम्भाजी ने हम्बीरराव से कहा।

“जी, भूषण-भण्डार, वस्त्रागार, रत्न-भण्डार आदि सभी पर मुहरें लगी हुई हैं। जब तक मुहरें टूटती नहीं, तब तक किले के व्यवहार पूर्ववत् चालू नहीं हो सकते।” हम्बीरराव ने लोगों की अड़चन कह सुनायी।

दुर्ग की ऐसी पक्की नाकाबन्दी कर दी गयी थी, यह जानकर सम्भाजी क्षण भर को अत्यन्त दुःखी हुए। फिर हम्बीरराव से दृढ़तापूर्वक बोले, “सेनापतिजी, आप ही कारख़ानों के प्रमुख अधिकारियों के सम्मुख वे मुहरें तुड़वा दें। अधिकारियों से समस्त वस्तुओं की विवरणसहित सूची तैयार करने को कहें। और हाँ, आबाजी, तुम सुरनीस के कार्यालय का काम, पत्र-व्यवहार आदि के कार्य की समस्त व्यवस्था किया करो।”

“एक और अर्ज़ी है, स्वामी।” राघो स्वानन्द ने दूसरा मामला पेश किया।

“किसकी है?”

https://t.me/Sahityajunction

“बेलहोंगल विभाग के मुरगोड गाँव के देसाई माणको रुद्रप्पा की अर्ज़ी है।”

“क्या कहते हैं माणकोजी? हमने उन्हें पन्हालगढ़ से पत्र लिखा था कि मालगुजारी के बारे में महाराज साहब ने जो सुलह की है, उसे हम उसी प्रकार आगे भी चालू रखेंगे।”

“उनकी शिकायत उस विषय में नहीं है। माणकोजी मालगुजारी की किस्त वसूल करके बेलगाँव विभाग के कटोरगढ़ की इमारतों की देखरेख के लिए देते हैं। परन्तु आजकल अपने अधिकारी विट्ठल हरि उस भाग की मालगुजारी स्वयं वसूल कर रहे हैं! इस कारण कटोरगढ़ के ख़जाने को हानि हो रही है।” राघोपन्त ने विवरण बतलाया।

“कार्यालयाध्यक्ष, उस विट्ठल हरि को कठोर चेतावनी दो। लिखो कि, ‘मालगुजारी वसूल करने का अधिकार तुम्हारा नहीं है। फिर कभी यदि तुमने मुरगोड़ विभाग की मालगुजारी जमा की तो क्षमा नहीं किया जाएगा।’ माणकोजी को भी लिखो : ‘तुम पहले की भाँति ही कटोरगढ़ की व्यवस्था के लिए किस्त जमा करते रहो। उस कार्य में किसी प्रकार की कमी या अड़चन पैदा मत होने देना’।”

“जी!”

सभागृह में उपस्थित लोग सम्भाजी की बुद्धिमत्तापूर्ण, त्वरित एवं अचूक निर्णयों को सुनकर मन-ही-मन सन्तुष्ट हो रहे थे।

“पाचाड़ की माँजी की डोली मीनारों के पास आ गयी है।” चांगोजी के एक सैनिक ने आकर सूचना दी।

सम्भाजी बैठक से उठ खड़े हुए और अनेक श्रेष्ठजनों सहित मीनारों की ओर चल पड़े।

सम्भाजी को आता देखकर पुतलाबाई डोली से उतर पड़ीं। सम्भाजी ने उन्हें प्रणाम किया। हम्बीरराव, राघोपन्त, येसाजी, आनन्दराव आदि ने उन्हें मुजरे किये।

“चलिए, माँजी।” सम्भाजी ने सातमहल की ओर हाथ से संकेत करते हुए कहा। पुतलाबाई चल रही थीं, मानो जीवन का सर्वस्व गंगासागर में समर्पित कर आयी हों।

रानी सकवारबाई के महल में आते ही वे बोलीं, “युवराज, ज़रा राजपुरोहित को बुला लो। श्रीमान्‌जी के जो भी श्राद्ध-कर्म धर्मशास्त्रानुसार करने शेष रहे हों वे श्राद्ध-कर्म हम आज उनकी सम्मति के अनुसार करना चाहती हैं।” उनकी आवाज़ जैसे दूर आकाश से उतरकर आ रही थी।

सम्भाजी ने राजपुरोहित बालम्भट्ट को बुलावा भेजा।

“शास्त्रीजी,” सकवारबाई के महल में बैठी हुई पुतलाबाई राजपुरोहित से कह रही थीं, “श्रीमान्‌जी की कौन-कौन-सी श्राद्ध-विधियाँ शेष रही हैं।”

“महाराज का अन्त्य-संस्कार अमन्त्रक अग्नि से हुआ है। उनका मौंजी-बन्धन हो चुका था अतः उनका अन्त्योष्टि-संस्कार भी मन्त्राग्नि द्वारा किया जाना चाहिए था।”

“तुम्हारे होते हुए भी अमन्त्रक अग्नि से उनकी देह को भस्म कर दिया गया। क्यों हुआ ऐसा? इसका क्या अर्थ समझें हम?” पुतलाबाई के नेत्रों में सात्त्विक रोष चमकने लगा था।

राजपुरोहित चौंककर शीघ्रता से कहने लगे, “हमारे होने का क्या उपयोग था? महाराज के ज्येष्ठ पुत्र के नाते मन्त्राग्नि देने के लिए युवराज का यहाँ होना आवश्यक था।”

https://t.me/Sahityajunction

“तो अब क्या किया जाय? शास्त्र की इस विषय में क्या आज्ञा है?” सम्भाजी मन-ही-मन पछताते हुए पूछ बैठे।

“अब भी महाराज की अनुमोदित विधियाँ सम्पन्न की जा सकती हैं।”

“कैसे?” सुनकर सम्भाजी को बहुत दिलासा मिला।

“महाराज की काष्ठ प्रतिमा बनानी होगी। उसे युवराज के हाथों मन्त्राग्नि दिलायी जाए और पुनः पिण्डदान किया जाय।”

“ठीक है, शास्त्रीजी आप इसकी तैयारियाँ कर लें।” पुतलाबाई ने निश्चयपूर्वक कहा।

“जी!” राजपुरोहित जाने लगे।

“और देखिए, हमारे लिए भी कोई शुभमुहूर्त्त खोज निकालिए। हम...हम अग्नि-प्रवेश करना चाहती हैं।”

“माँजीऽऽ...” सम्भाजी छटपटाकर कुछ कहना ही चाहते थे कि हाथ ऊपर उठाकर मना करती हुई पुतलाबाई कहने लगीं, “ना, ना युवराज। तुमने हमें वचन दिया है। अब कोई ऐसी बात मत कहो, जो हमारे मार्ग में बाधा बने।” अत्यन्त शान्त, मन्द गति से पुतलाबाई अपने निवास में चली गयीं।

सम्भाजी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे हताश होकर पुतलाबाई की पीठ पर दृष्टि गड़ाकर मन में ही कह उठे—‘आबासाहब, तुम्हारी वाणी में जितना बल था, वैसा हम कहाँ से पाएँ? आपने सती होने जा रही माँ जिजाऊ को विनय-प्रार्थना करके रोक लिया था और हम...?’

सम्भाजी शून्य मन से अपने महल में टहल रहे थे।

“मालिकऽ,” भीतर आया रायाजी कुछ कहते-कहते रुक गया।

“क्या बात है?”

“शृंगारपूर की डोली रायगढ़ आ पहुँची है।”

सम्भाजी स्तब्ध रह गये। स्मृतियों के गंगासागर में ज्वार आ गया। एक ही क्षण में येसूबाई के सैकड़ों रूप उनकी आँखों के आगे फिर गये।

“चलो,” सम्भाजी झटपट मीनारों की ओर चल दिये। वे मीनार की दूसरी मंज़िल पर चढ़ गये और नाणे दरवाज़े की ओर से आनेवाले रास्ते पर आँखें गड़ाये खड़े रहे।

केशव पण्डित, ऊधो योगदेव, चांगोजी, कवि कुलेश, पिलाजी आदि से घिरी हुई बन्द परदोंवाली एक डोली मीनारों के पास आकर रुक गयी। उस डोली में से डेढ़ वर्ष की नन्ही भवानीबाई को छाती से लगाये हुए धाराऊ पहले उतरी। बालिका भवानी ऊँची-ऊँची मीनारों को टुकुर-टुकुर देख रही थी।

येसूबाई ने मीनारों की पत्थरों से बनी देहली को हाथ से छूकर हाथ छाती से लगाया और वे उपरिकोट में आयीं। सम्भाजी भी मीनार से उतर आये।

येसूबाई सातमहल की ओर चली गयीं। सब सासों को प्रणाम कर उनकी चरणधूलि माथे से लगाने के लिए पुतलाबाई, सकवारबाई के महल में तो गयी हीं—सोयराबाई के महल में जाना भी वे भूलीं नहीं।

https://t.me/Sahityajunction

भवानीबाई को लिये हुए धाराऊ महल में आयी। सम्भाजी ने नन्ही बालिका को धाराऊ से अपनी बाँहों में ले लिया और जैसे ही उन्होंने झुककर धाराऊ को प्रणाम किया, वृद्धा की आँखों का बाँध फूट पड़ा। उसने ममतावश युवराज को पास खींच लिया और उनकी बलैयाँ लेती हुई वह कह उठी, "कितना दुबला हो गया है मेरा लाल! क्या हो गया यह सब बेटे? कैसे हो गया?"

सम्भाजी जब बेटी भवानी के गालों को प्यार से चूमने लगे, तब तो धाराऊ की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

"दादा भैया।" दरवाज़े की ओर से एक प्यार-भरी पुकार आयी। राजाराम के कन्धों पर हाथ रखे येसूबाई आ रही थीं मानो वसन्त ऋतु की सुहावनी सुबह ही पूर्व दिशा के उदित होते हुए बाल सूर्य को साथ लेकर चली आ रही हो। शान्त और धीर गम्भीर उस आकृति में जिजाऊ की चाल-ढाल समायी हुई थी और नेत्रों में था पुतलाबाई का दृढ़ निश्चय।

अपने पतिदेव के सम्मुख आते ही उन्होंने आँचल को हाथों से पकड़कर झुककर तीन बार प्रणाम किया।

विविध भावों के भार से दबा भर्राया हुआ, केवल एक शब्द ही सम्भाजी के मुख से जैसे-तैसे बाहर निकल पाया, "येसूऽ..."

इस एक शब्द को सुनते ही हाथ के आँचल से होठों को दबाती हुई और मुख को बायीं भुजा से लगाये हुई येसूबाई सिर से पाँव तक थरथराने लगीं मानो प्रबल वायु से ध्वज-स्तम्भ काँप रहा हो। दोनों हृदयों ने क्या-क्या कहने की नहीं सोची थी, पर सामने आते ही सारे शब्द जैसे कहीं खो गये थे।

बेटी भवानीबाई की पीठ पर से सम्भाजी का हाथ फिर रहा था—मन भी न जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा था।

आकाश बादलों से घिरा हुआ था। इन्हीं बादलों के बीच से आषाढ़ी एकादशी का वह मुरझाया हुआ-सा दिन बड़ी कठिनाई से ऊपर चढ़ रहा था। रामगढ़ की पंचक्रोशी से लोगों के झुण्ड के झुण्ड आज रायगढ़ चले आ रहे थे। इतने लोग आ रहे थे, पर सब मौन थे। कोई आपस में बात भी नहीं कर रहा था। ऊपर आकाश में छाये हुए बादलों के समान नीचे मनुष्यों के मुख भी कुन्द-बन्द से थे।

उस दिन ब्राह्म मुहूर्त में ही स्नानादि से निवृत्त होकर, जगदीश्वर के तथा माता भवानी के दर्शन करके पुतलाबाई सातमहल के सभागृह के चबूतरे पर सजाई गयी बैठक पर विराजमान थीं। उन्होंने आज सौभाग्यवती स्त्रियों वाली हरे रंग की बहुमूल्य रेशमी साड़ी धारण की हुई थी। गले में सुहागिन का चिह्न, काले मणियों का मंगलसूत्र पहना हुआ था और उनके माथे पर कुंकुम की दो मोटी मोटी आड़ी रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। उनके पीछे येसूबाई, सकवारबाई, धाराऊ आदि नारी समूह उपस्थित था। सामने सम्भाजी, राजाराम, पिलाजी मामा, हम्बीरराव, येसाजी, आनन्दराव, केशव पण्डित आदि श्रेष्ठ जन सिर झुकाये खड़े थे। राजपुरोहित बालम्भट्ट उच्च स्वर से मन्त्रपाठ कर रहे थे। साथ ही निकट रखे हुए गंगाजल में तैर रहे ताम्रनिर्मित घटी-पात्र की ओर भी देखते जाते थे।

https://t.me/Sahityajunction

नासिक और त्र्यम्बकेश्वर से आये हुए ब्राह्मणों का मन्त्रघोष भी उस मन्त्रपाठ में मिल रहा था। पुतलाबाई के निकट कई पंक्तियों में अनेक छाज, चँगेरी, डलिया और थाल रखे थे। इनमें रखा हुआ 'सती का बाना' उठा-उठाकर येसूबाई पुतलाबाई को दे रही थीं और अपने कंगन-चूड़ियों से भरे हाथों से पुतलाबाई उस बाने को सुहागिनों को बाँट रही थीं। एक-एक सुहागिन आकर पुतलाबाई से वह बाना लेती थी और अपना कुंकुम भरा माथा उनके चरणों में नवाती थी। फिर वे उस राजस्त्री के मुख से आशीर्वाद पाती थी : "आयुष्मती होओ। सदा सुहागिन रहो।" सुहागिनों के प्रणाम स्वीकार कर-करके पुतलाबाई के चरण भी कुंकुममय हो गये थे। उनके मुख पर आज इतना असीम तेज कौंध रहा था कि आँखें चौंधिया जाती थीं। उनकी आँखों में मानो माँ जगदम्बा की दो वस्त्र-ज्योतियाँ ही उतर आयी थीं।

राजपुरोहित ने एक स्वर्ण निर्मित थाल उनके सामने रखा। इस थाल में वे भगवे रंग के ज़रतारी पादत्राण रखे थे, जिन्हें महाराज की सेवा में पावन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पुतलाबाई ने इन पादत्राणों की गन्ध-द्रव्य, हल्दी-कुंकुम आदि से पूजा की और फिर राजपुरोहित द्वारा दिये गये अंजलिभर श्वेत पुष्प उन पादत्राणों पर चढ़ाये। प्रज्वलित पाँच नीराजनों वाली पूजा की थाली से और दो तेजमय नेत्रों से पुतलाबाई देख रही थीं और सोच रही थीं मानो उनके 'श्रीमान्‌जी' स्वयं आ उपस्थित होंगे और हास्यपूर्ण मुख से कहेंगे—'पुतला, कितनी देर लगा दी तुमने? यहाँ इस लोक में चन्द्र-सूर्य तथा नक्षत्रादि के असंख्य दीप प्रज्वलित हैं, परन्तु...परन्तु, तुम्हारे बिना ये दीप कितने मन्द हैं। शीघ्र आ जाओ यहाँ।'

"माताजी, हाथ जोड़िए। जलसिंचन किया जा रहा है।" बालम्भट्ट ने मन्त्रपाठ रोककर रुद्ध कण्ठ से कहा।

पुतलाबाई ने हाथ जोड़कर नेत्र बन्द कर लिये। मन्त्रघोष के बीच पवित्र नदियों के शीतल जल से उनके मस्तक का सिंचन होने लगा। राजपुरोहित ने देखा कि घटी-पात्र अब आधे से अधिक भर चुका है, तब वे बोले, "चलिए...।" चार मावलों ने घटी-पात्र वाला गंगाल उठा लिया।

पुतलाबाई उठ खड़ी हुईं। येसूबाई उनके पैरों से लिपटकर सिसकती हुई कह रही थीं, "माँजीऽ।"

उनके सिर पर हाथ रखकर निर्विकार पुतलाबाई ने आशीर्वाद दिया, "सौभाग्यवती होओ। हमारे युवराज का, हमारे बाल-राजा का ध्यान रखना। श्रीमान् जी के प्यारे सैनिकों का भी ध्यान रखना।"

सातमहल के अन्त में एक किनारे पर बना हुआ था पत्थरों का एक खम्भा। यह था 'सती का खम्भा'। रायगढ़ दुर्ग के शिल्पकारों ने राजपूती प्रथा के अनुसार इस 'सती-स्तम्भ' का निर्माण किया था। आज इसकी पहली बार ही पूजा हो रही थी। पुतलाबाई ने इस स्तम्भ पर गन्ध-द्रव्य और फूल चढ़ाये। इस स्तम्भ के साथ एक प्रथा जुड़ी हुई थी। वह यह कि सती होने जा रही स्त्री जब निश्चयपूर्वक अपने माथे का कुंकुम-तिलक इस स्तम्भ पर लगा देती थी तब समझा जाता था कि चिता की ओर उसकी यात्रा प्रारम्भ हो गयी। फिर लौट आने का कोई प्रश्न ही नहीं था।

पुतलाबाई ने उस स्तम्भ को एक बार आँख भर देखा। अपने माथे के कुंकुम-तिलक को उस स्तम्भ पर लगाने के लिए उठा हुआ उनका हाथ क्षणभर को थम गया। उनका जो मन युवराज

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी की माया-ममता में अटका हुआ था, वह इस काल चीख-पुकार मचा रहा था। फिर अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक उन्होंने उस चलायमान मन को स्थिर बनाया और कुंकुम से भरा हुआ वह माथा सम्मान के प्रतीक उस स्तम्भ से लगा दिया। वह स्तम्भ अपने निर्माणकाल से आज तक शायद इसी सम्मान की प्रतीक्षा करता खड़ा था।

जलसिंचन से पवित्र हुई स्नाता पुतलाबाई ने अब अपने गौर वर्ण हाथों की अंजलि बनायी। राजपुरोहित ने उस अंजलि में मुट्ठीभर कर्पूर की टिकियाँ रख दीं और फिर फिर प्रज्वलित नीराजन से उसे जलाया। जलती हुई कर्पूर-ज्योति के प्रकाश में पुतलाबाई के नेत्र एक निराले तेज से दीप्त हो उठे। यह एक प्रथा थी, जो सती को इस तथ्य की सूचना देती थी कि अभी कुछ ही क्षणों के पश्चात् इस ज्योति से भी अधिक भीषण लपटें सारे शरीर को अपना भक्ष्य बना लेंगी।

अब जा रही थीं पुतलाबाई—। एक-एक बढ़ते पग से नातों-रिश्तों के पाश तोड़-तोड़कर रायगढ़ को सौंपती हुई वे चली जा रही थीं। कर्पूर-ज्योति अंजलि में लिये हुए वह अग्नि मूर्ति अपने पतिदेव के मार्ग पर अग्रसर हो रही थी। अनन्त तेज की नित्य संगति पाने के लिए हृदय एवं हाथ में तेज धारण किये वह कुलीन ज्योतिशिखा चली जा रही थी।

व्याकुल हृदय सम्भाजी को यह भी ध्यान नहीं रहा कि उनके हाथ से भाई राजाराम का हाथ कब छूट गया! अब तो उनके लिए एक पग बढ़ाना भी कठिन हो रहा था। वे भारी कदमों से लौट पड़े ख़ासमहल की ओर—एकदम वापस लौट पड़े वे।

"आऊसाहिबा, माँ साहिबा," कह-कहकर अगणित लोग पुतलाबाई के चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। बादलों को चीरते हुए जैसे विद्युल्लता आगे बढ़ती है तथैव पुतलाबाई सुध-बुध भूली हुई भीड़ के बीच से चलती हुई काला-हौज़ के पास आयीं। सारा मैदान मनुष्यों की भीड़ से ठसाठस भरा हुआ था। अपने सिर की पगड़ी मुँडासे आदि उतारकर बगल में दबाये हुए असंख्य लोग सती के प्रति आदर प्रदर्शित करते खड़े थे।

मैदान के बीचोंबीच चन्दन-निर्मित एक ऊँची चिता रची गयी थी। पुतलाबाई वहाँ आकर ठहर गयीं। ऊँची चिता पर चढ़ने के लिए चारों ओर से सीढ़ियाँ लगायी गयी थीं। घटी-पात्र अब गले तक डूब चुका था। इसे देखकर राजपुरोहितजी ने ब्राह्मण वृन्द को संकेत करके मन्त्रपाठ रोक देने को कहा। फिर वे सती के निकट आकर हाथ जोड़कर कहने लगे, "माताजी, मुहूर्त आ गया है। आप किसके हाथों से अग्नि-कर्म कराना चाहती हैं?"

"युवराज के हाथों से..." चिता की ओर ही टक लगाकर देखते हुए एक दृढ़ निश्चयपूर्ण स्वर उठा।

राजपुरोहित जी सिर हिलाते हुए भर्राये गले से कहने लगे, "क्षमा कीजिए, युवराज यहाँ नहीं हैं?"

"क्यों? उन्हें सूचना भिजवाओ। कहो कि तुम युवराज हो, तो हम रानी हैं। हम आज्ञा देते हैं कि युवराज यहाँ आकर अग्नि-कर्म करें।" किसी विलक्षण तेज से उनके नेत्र प्रदीप्त हो उठे थे।

"जी," राजपुरोहितजी ने आज्ञा की पूर्ति करने के लिए एक सेवक को दौड़ाया। उसने सम्भाजी के सम्मुख पूरा सन्देश पुतलाबाई के शब्दों में ही कह सुनाया।

आँसू पोंछकर और चित्त को स्थिर बनाकर सम्भाजी 'काला-हौज़' पर चले आये और

https://t.me/Sahityajunction

पुतलाबाई के चरणों पर मस्तक रखकर कहने लगे, “हम आ गये हैं माँजी!”

“आयुष्मान होओ। विजयी बनो।” पुतलाबाई ने अन्तिम आशीर्वाद दिया। “हमें अग्नि दो।”

“जी!”

“अच्छा, अब हम जा रही हैं। बालराजा और हमारी बहूरानी को सँभालना। कभी कोई विकट अवसर आ पड़े, तो हमारे इस रूप का ध्यान कर लिया करना। तुम हमारे पुत्र हो। हे जगदम्बे।” पुतलाबाई अत्यन्त शान्तिपूर्वक सीढ़ी से होती हुई चिता पर चढ़ गयीं और पूर्वाभिमुख होकर चिता पर बैठ गयीं। महाराज के पादत्राण उनके सम्मुख रख दिये गये।

चिता के चारों ओर से लोग सीढ़ियों द्वारा ऊपर चढ़े और उन्होंने चन्दन की लकड़ियाँ सती के गले तक रचा दीं। सम्भाजी भी ऊपर चढ़े। एक-एक पैर उठाना उन्हें इस समय भारी हो रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पैरों में मन-मन भर के पत्थर बाँध दिये गये हों।

रची हुई लकड़ियों में से जलने के कारण हस्तांजलि ही दिखाई दे रही थी। उसमें जलती हुई कर्पूर-ज्योति भी मानो सम्भाजी से कह रही थी—‘हमारे इस रूप का ध्यान कर लिया करना। तुम हमारे पुत्र हो।’

राजपुरोहितजी अपने हृदय के आवेग को फूट पड़ने से बचाने के लिए होठों को दाँतों में दबाकर और हाथ में कर्पूरवटिकाओं से भरी थाली लेकर ऊपर चढ़े। सम्भाजी ने उस थाली में से कर्पूर की वटिकाएँ मुट्ठी में भर लीं और आँसू बहाते हुए वे वटिकाएँ सती की अंजलि में डालने लगे। एक के बाद अनेक मुट्ठियाँ उस अंजलि में गिरती रहीं। सती ने अपने कुलदीपक के हाथों अग्नि पायी। चन्दन की उस चिता से अब ज्वाला-रूपी पक्षी उड़कर आकाश की ओर लपकने लगे।

भरी हुई मुट्ठी वैसे ही लेकर व्यग्र सम्भाजी सीढ़ी से उतरे और किसी की ओर न देखते हुए सीधे उपरिकोट की ओर चल दिये। सती के सम्मान में रायगढ़ की तोपें इतनी ज़ोर से गरज रही थीं कि कानों के परदे फटे जाते थे। जिस दिन महाराज इस संसार से विदा हुए, उस दिन ही रायगढ़ अन्धा हो गया था। आज उसके कान भी बहरे हुए जाते थे।

सम्भाजी सातमहल के निकटवर्ती ‘सती स्तम्भ’ तक आये और असीम वेदना से फटा जा रहा अपना माथा उन्होंने नितान्त असहाय होकर उस स्तम्भ पर टिका दिया। परन्तु ज्योंही उनके माथे के शिवतिलक से उस स्तम्भ पर लगे हुए कुंकुम का स्पर्श हुआ, सम्भाजी सिर से पाँव तक सिहर उठे। हाथ में पकड़ी हुई कर्पूर वटिकाएँ नीचे गिर पड़ीं। उन्होंने अब तक शोक के आवेग को प्रयत्नपूर्वक रोका हुआ था, परन्तु आवेग अब बाँध तोड़कर बह निकला। उनका मूक मन अग्नि के दाह से भी अधिक तीव्रता से जल रहा था और पुकार-पुकार उठता था, “माँजी, माँजी।” न जाने कितनी देर तक वे इसी प्रकार स्तम्भ से माथा लगाकर जड़ बने खड़े रहे।

“श्रीमान्‌जी ही इतना धीरज खो बैठेंगे, तो दूसरे लोगों का क्या होगा?” उनके पीछे येसूबाई कब आकर खड़ी हो गयीं इसे भी सम्भाजी जान नहीं पाये थे।

खम्भे से माथा हटाकर और पैरों के पास बिखरी पड़ी कर्पूरवटिकाओं को देखकर सम्भाजी कहने लगे, “नहीं येसू, तुम हमारी पत्नी हो, फिर भी तुम हमारे मन की वेदना नहीं समझ सकतीं। जिन हाथों ने आज तक हमारे रायगढ़ से विदा होते समय प्रत्येक बार दही का थक्का

https://t.me/Sahityajunction

हमारे हाथों पर रखा था, आज उन्हीं हाथों में हम कर्पूर की टिकियाँ डालकर आ रहे हैं!! ये हाथ बड़े ही हतभागी हैं।...हमें अकेला ही रहने दो।" सम्भाजी अपनी अपराधी हथेलियों को देखते हुए अपने महल की ओर जाने लगे।

जाते-जाते उनकी दृष्टि सोयराबाई के महल की ओर गयी। उस महल के दरवाज़े और झरोखे भी बन्द थे। इसे देखकर सम्भाजी के हृदय में एक गहरी टीस उठी—'आबासाहब के चरणों की निकटता सदा न पानेवाली एक हमारी माँ महाराज के पादत्राण लेकर चिता में भस्म हो रही हैं और महाराज के निकट बैठकर 'पट्टमहिषी' पद का अभिषेक करनेवाली ये माँजी अपने महल में विश्राम पा रही हैं। कैसी विचित्र है जगदम्बा की यह लीला!' सम्भाजी के इस प्रश्न का उत्तर स्वयं जगदम्बा के पास भी नहीं था।

आषाढ़ मास की एकादशी को धार्मिक जन व्रत-उपवास रखते हैं, परन्तु आषाढ़ी एकादशी का वह दिन पुतलाबाई को अपना आहार बनाकर अस्त हो रहा था।

अवयस्क राजाराम को फुसला-बहकाकर कोई किसी प्रकार के कुचक्र का भागी न बना ले इस आशंका से सम्भाजी ने बड़े महल पर पहरा बिठा दिया। परन्तु इस व्यवस्था के कारण सोयराबाई के दिल को भारी ठेस पहुँची। जब भी कोई उनसे मिलने-जुलने आता था तो वे कहा करती थीं, "हम महारानी नहीं हैं, हम तो क़ैदी हैं।"

सम्भाजी के कानों तक यह बात पहुँची तो उन्होंने येसाजी दामाडे को बुला भेजा। येसाजी दामाडे राजाराम के निजी व्यवस्थापक सरदार थे। उन्हें समझाने की दृष्टि से युवराज ने कहा, "येसाजी, बड़े महल पर जो पहरा बैठाया गया है उससे हमें प्रसन्नता नहीं है। वह निर्णय करते समय हमारे दिल पर क्या बीती यह हम ही जानते हैं। बालराजा अभी अबोध बालक हैं। हम तुम्हें पूर्ववत् उनकी विशेष देखरेख के लिए नियुक्त करते हैं। तुम उनके कुशाल-क्षेम का सदा ध्यान रखा करो।"

"जी! हम उन्हें किसी दुष्ट के फन्दे में फँसने नहीं देंगे। आप निश्चिन्त रहें।" येसाजी चले गये।

थोड़ी देर बाद हम्बीरराव, कवि कुलेश, केशव पण्डित, ऊधो योगदेव और खण्डोजी बल्लाल महल में आ उपस्थित हुए। मुजरा कर रहे खण्डोजी को देखकर शम्भूराजा के माथे पर त्योरियाँ चढ़ गयीं। खण्डोजी इस रोष का आशय समझ गये और सिर झुकाकर तुरन्त कहने लगे, "स्वामी, आप हमें ग़लत न समझें। हम अपने पिता बालाजी या भाई आवजी की तरफ़दारी करने नहीं आये हैं। आजकल की स्थिति असाधारण है। इस स्थिति में भी यह सेवक आपके चरणों की सेवा के लिए तत्पर है, यही कहने आये हैं हम।"

ये स्पष्ट वचन सुनकर सम्भाजी की आँखों में चमक आ गयी। खण्डोजी के सामने आकर अपना हाथ उनके कन्धे पर रखकर वे कहने लगे, "हमें तुमसे यही आशा थी। तुम हो या हम हों, सभी को इन मामाजी से अभी बहुत कुछ सीखना है। यह भी सीखना है कि नाते-रिश्ते राज्य की सेवा में बाधा नहीं बनने चाहिए।" सम्भाजी ने हम्बीरराव का उल्लेख करते हुए उनका गौरव-गान किया।

सम्भाजी की बात को आगे बढ़ाते हुए हम्बीरराव ने अपनी और गढ़ के अन्य लोगों की एक

https://t.me/Sahityajunction

अभिलाषा की प्रस्तावना की। वे बोले, “केवल नाते-रिश्ते की ही बात नहीं, महाराज के इस राज्य के हित की दृष्टि से हमें सभी बाधाओं को दूर हटाना पड़ेगा। अब आप ही इस बारे में कोई निर्णय करें।”

“कैसा निर्णय सेनापति?” सम्भाजी कुछ अनुमान नहीं कर पाये।

“स्वामी के बिना राज्य की ऐसी स्थिति कितने दिनों तक चलती रहेगी? अब आपको राज-काज का भार और मुद्रा कटार का अधिकार अपने हाथ में ले लेना चाहिए।” इन शब्दों द्वारा हम्बीरराव ने अनेकों की इच्छा और कारोबार की कठिनाई का मामला सामने रख दिया।

“सेनापति की मन्त्रणा उचित है। जब तक युवराज की मंच-आरोहण विधि न हो तब तक राज-काज कैसे चलेगा?” कवि कुलेश ने समर्थन किया।

वास्तव में यह समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। क्योंकि राजाराम के हाथों सत्ता सौंपना असम्भव ही था। सोयराबाई उन्हें खिलौना बनाकर न जाने क्या-क्या गुल खिला बैठतीं। दूसरी कठिनाई यह थी कि सम्भाजी भली भाँति जानते थे कि महाराज के सिंहासन के सम्मुख नतमस्तक होना सरल था, परन्तु उस पर आरूढ़ होना सरल कार्य नहीं था। वे एकदम गम्भीर हो गये, फिर बोले, “हमें इस बारे में सोच-विचार करने दो। ऊधो योगदेव, प्रधानमन्त्री के कार्यालय का काम रुका पड़ा है। तुम उस काम को हाथ में लो और कार्यालयीन काम-काज प्रारम्भ करो।”

“जी,” ऊधो योगदेव हाथ जोड़कर झुक पड़े।

“मामाजी, अब पन्हाला से क़ैदी यहाँ आ रहे हैं। उनके बारे में आपकी क्या सलाह है?” सम्भाजी ने अपने मन की समस्या प्रस्तुत की।

“उनके बारे में जाँच-पड़ताल करके युवराज ही उसका निर्णय करें।”

“हमने जाँच कर ली है। हमारा दृढ़ मत है कि इस चक्रवात में प्रह्लाद निराजी और राहुजी सोमनाथ व्यर्थ ही फँस गये हैं। हम उन दोनों को निर्दोष जानकर मुक्त करना चाहते हैं।”

“जैसी आपकी इच्छा।” हम्बीरराव को भी वास्तव में कुछ सान्त्वना मिली।

“चलिए कविजी, जगदीश्वर के दर्शन कर आएँ।”

कवि कुलेश और केशव पण्डित को साथ लेकर सम्भाजी उपरिकोट से बाहर निकले। श्रावण मास के सूर्य की तीव्र और पीतवर्ण किरणें सारे दुर्ग में फैली हुई थीं। वर्षा से धुलकर पत्ता-पत्ता स्वच्छ हो चुका था और धूप में पत्तों की हरियाली झिलमिला रही थी।

“शृंगारपूर के शिवयोगी और उनका मठ कैसा है?” सम्भाजी ने पूछा।

“जी, सब ठीक है। गणेशभट्ट जाम्भेकर अति सुन्दर रीति से मठ की व्यवस्था कर रहे हैं।” केशव पण्डित ने शिवयोगी के कुशल-क्षेम का समाचार बताया।

सब जगदीश्वर के मन्दिर तक आये। सम्भाजी ने पादत्राण उतारकर कवि कुलेश एवं अन्य पण्डितों सहित मन्दिर के भीतर जाने के लिए पग बढ़ाये। उनका पैर पत्थर के बने कछुए पर पड़ा ही चाहता था कि उन्होंने झट से पैर दूसरी ओर हटा लिया। फिर काफी देर तक उस कछुए की ओर देखते हुए वे किसी गहरे सोच-विचार में डूबे रहे।

“पण्डितजी, कहिए तो सही कि हम हिन्दुओं के मन्दिरों में ये पत्थर के कछुए का निर्माण

https://t.me/Sahityajunction

किस हेतु से किया गया होगा?”

“वह भगवान के कूर्मावतार का प्रतीक होगा स्वामिन्।” केशव पण्डित ने उत्तर दिया।

“बिलकुल यही उत्तर मोरोपन्त ने आबासाहब को दिया था। उस समय आबासाहब ने अपने मतानुसार कछुए के निर्माण का कोई निराला ही अर्थ बतलाया था।

“पण्डितजी! कविजी! हम भी मन्दिर के प्रांगण में इस कच्छप के समान हैं। और हमारे आबासाहब सामने मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित मूर्ति के सदृश हैं। यह कछुआ कभी भी गर्भगृह में जा नहीं सकता। दर्शनार्थ आनेवाले भक्तगण भीतर की मूर्ति के चरणों में ही नमस्कार करते हैं, वह तो उचित ही है। और...और जाने-अनजाने ही क्यों न हो, भक्तगण पैर रखते हैं इस कछुए की पीठ पर!”

सम्भाजी के वचन सुनकर केशव पण्डित और कविजी अत्यन्त विह्वल हो उठे। उन्हें युवराज की आँखों में एक ऐसी तीव्र वेदना दिखलाई दे रही थी, जिसका आशय पूर्णतः समझ पाना भी असम्भव था।

उस कछुए को आँख भर देखते हुए सम्भाजी कम्पित वाणी से फिर कहने लगे, “हमें कभी इस बात से पीड़ा नहीं हुई कि पाँव हमारी पीठ पर पड़ते हैं। लोग हमारी पूजा करें, इतनी योग्यता हममें नहीं है। परन्तु दुःख केवल यही सोचकर होता है कि इस प्रांगण के कछुए की दृष्टि रात-दिन निरन्तर गर्भगृह की मूर्ति की ओर लगी रहती है। इस सत्य को जानने-समझने वाला एक भी बुद्धिमान इस राज्य में नहीं है। हमारे हृदय में आबासाहब के प्रति कितनी असीम श्रद्धा है, दुख है कि इस सच्चाई को परखने-बूझने की किसी को आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई।” एक लम्बी, गहरी उसाँस मन्दिर के प्रांगण में फैलकर खो गयी।

“चलिए।” कहकर सम्भाजी गर्भगृह में गये। शिवपिण्डी पर बेलपुष्प चढ़ाकर और चरणामृत लेकर वे मन्दिर से बाहर निकल आये।

वे ख़ासमहल में आये ही थे कि सभागृह में खड़े हुए गिर्जोजी यादव और अर्जोजी यादव नामक दो भाइयों ने उन्हें मुजरा किया।

“कब आये गिर्जोजी?”

“अभी-अभी गढ़ चढ़कर आये हैं। अहमदनगर में कुछ ख़बर मिली और हम इधर चले आये।”

“क्या ख़बर लाये हो? कहो।”

गिर्जोजी पहले थोड़ा हिचकिचाया, फिर टूटे-फूटे शब्दों में अटक-अटककर उसने ख़बर सुनायी, “अहमदनगर की कोठी...” सम्भाजी सिर से पाँव तक सिहर उठे। एक झटके में उठते हुए वे पूछने लगे, “क्या हुआ? क्या हुआ उनका?”

“जी, वैसे कोई धोखा-धड़ी या संकट की बात नहीं। पर उन्हें लड़का हुआ है। सुना है कि उन्होंने उसका नाम रखा है—उद्धवसिंह।”

सम्भाजी कविजी और पण्डितजी की ओर एकटक देखते ही रह गये। उनकी दृष्टि मानो पूछ रही थी—अब कहो, हमारी स्थिति उस पत्थर के कछुए जैसी है या नहीं? कितने लोगों के पैर इस पीठ पर नहीं पड़ रहे? हम यहाँ ‘मंचारोहण’ की चर्चा में मग्न हैं और हमारा वह नन्हा अंकुर—

https://t.me/Sahityajunction

आबासाहब का पौत्र—वहाँ मुग़लों की क़ैद में अहमदनगर की कोठी में जन्म ले रहा है।

धर्माचार्यों द्वारा निश्चित किया गया मंचारोहण का दिन उदित हुआ। सम्भाजी ने बहुत सोच-समझकर ही मंचारोहण करने का निश्चय किया था। उस दिन विधिपूर्वक स्नान के पश्चात् आफ़ताबधारी एवं गदाधारी सैनिकों, अनेक शास्त्राचार्यों तथा पण्डितों के साथ सम्भाजी विशेष राजद्वार से जब सिंहासन के चबूतरे पर आये, तो राजसभागृह में उपस्थित सभी सरदार-सामन्त उनके सम्मान में मुजरा करने को झुक पड़े।

आज प्रधान मण्डल या मन्त्रियों के निमित्त बनाये गये सुवर्ण स्तम्भों के पास कोई भी व्यक्ति खड़ा नहीं था। कारण यह कि आज का समारोह राज्याभिषेक का समारोह नहीं था। यह तो एक पारम्परिक विधि थी, जिसके अनुसार भावी राजा मंच पर आरूढ़ होकर राज्य का शासनसूत्र अपने हाथों में ले लेता था। निर्धारित मुहूर्त पर मन्त्रों के उच्च स्वरों के बीच विनम्रतापूर्वक सिंहासन की वन्दना करके सम्भाजी उस राजासन पर विराजमान हो गये।

पहले क्षण ही उन्हें कुछ विचित्र अनुभूति हुई। वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि यह अकस्मात् हृदय की धड़कन बैठ क्यों गयी है? एक रहस्यमय अननुभूत प्रबल विक्षोभ आज क्यों मच रहा है? यह कनपटी का भाग लाल क्यों हो उठा है? रीढ़ की हड्डी में से कोई वस्त्र-ज्योति तेजी से घूमती सी क्यों प्रतीत हो रही है? यह ग्रीवा अकस्मात् साँप के फन के समान तन क्यों गयी है?

सामने राजसभागृह में खड़े हुए हम्बीरराव, आनन्दराव, येसाजी काका, केशव पण्डित, कवि कुलेश, राघोपन्त, खण्डोजी आदि लोग खड़े थे। ये वे लोग थे, जो सदा ही सम्भाजी के आगे-पीछे रहते थे, पर आज राजसिंहासन पर बैठते ही ये लोग उन्हें कुछ दूसरे ही प्रतीत हो रहे थे। जैसे कोई अपने शरीर के हाथ, पैर आदि अवयवों को देखता है, इसी भाव से सम्भाजी आज दरबार में उपस्थित श्रेष्ठजनों को देख रहे थे। हम्बीरराव, येसाजी कंक तो सम्भाजी के लिए वयोवृद्ध समादरणीय व्यक्ति थे, पर आज वे भी सम्भाजी को बेटी भवानीबाई के समान सन्तानवत् प्रतीत हो रहे थे। इस सिंहासन पर बैठकर आज वे कई तत्त्व जान पाये थे—कि हम्बीरराव बोलते समय बार-बार अपनी उलटी मुट्ठी मूँछों के नीचे फिराते हैं; येसाजी कंक जब कोई मन की बात कहना चाहते हैं, तो उनके सफ़ेद गलमुच्छे हिलने लगते हैं। कवि कुलेश को आदत है कि बोलते समय अपने हाथों की सीधी लम्बी उँगलियों की ओर देखते रहते हैं; खण्डोजी बारहबन्दी कुरते के बन्द इतने खींचकर बाँधते हैं कि अब टूटे, अब टूटे; केशव पण्डित के मस्तक का गन्ध-द्रव्य-तिलक माथे की सिलवटों पर सिकुड़ता है; सयाजी—अन्तोजी बोलते समय कभी गरदन ऊपर उठाते ही नहीं—कई अनुभव आज वे जान पाये थे।

सिंहासन की दाहिनी ओर बनी हुई सुवर्णतुला पर दृष्टि जाते ही शम्भूराजा को अपना ही वह रूप दिखाई दे गया, जब वे आरोपी बनकर इसी दरबार में खड़े थे। वे आज ही यह समझ सके कि 'आबासाहब इस सिंहासन पर बैठे थे, इस कारण, केवल इसी एक कारण से ही हम उस दिन सही-सलामत बच गये।'

फिर इन सभी विचारों को उस तराजू के दोनों समान पलड़ों को समर्पित करके सम्भाजी ने अपना दायाँ हाथ शान्त रीति से उठाया और अपने सामने लाये मुद्रा तथा कटारवाले तबक़ का

https://t.me/Sahityajunction

'राजा' के रूप में हस्तस्पर्श किया। अभिमन्त्रित राजदण्ड के प्राप्त होने तक सुनहरे मत्स्य मोरछल को हाथों में धारण किया।

दरबार के सम्मान योग्य अधिकारियों को दिये जानेवाले तबक़ों को वे आज से हस्तस्पर्श देने लगे।

रायगढ़ की तोपें अपने राजा को सलामी दे रही थीं और दूसरी ओर राज्य के निकटवर्ती अन्य राज्यों को अँग्रेज़, सिद्दी कासिम, पुर्तगाली, मुग़ल, कुतुबशाही और आदिलशाही राज्यों की वे तोपें गरज-गरजकर चेतावनी दे रही थीं :

'सावधान! मराठा-साम्राज्य का 'शिव' खो गया, परन्तु उस सिंहासन पर अब 'रुद्र' आ बैठा है।'

"सेनापति, दक्खन के सूबेदार कोकल खाँ ने अपने हाथ-पैर फैलाना शुरू कर दिया है। उसने हमारे अहिवन्त गढ़ पर अचानक हमला किया है। आज ही उस दुर्ग के कार्यालयाध्यक्ष शामजी केशव का दूत ख़ानदेश से आया है।" अस्त्रागार, धान्यभण्डार, बारूद के गोदाम आदि का निरीक्षण करके लौट रहे सम्भाजी ने हम्बीरराव से कहा।

"उस क़िले का क्या..." सेनापति चिन्ताग्रस्त हो उठे।

"नहीं, क़िले का कुछ नहीं बिगड़ा। क़िला मज़बूती से पाँव जमाये खड़ा है। अपने क़िलेदार ने बड़ी शूरता दिखलायी और ख़ान को निराश लौट जाना पड़ा।"

"शामजी को पत्र लिखकर अहिवन्त गढ़ के क़िलेदार को सम्मान-वस्त्र का उपहार भेजना चाहिए मामाजी।"

"जी। परन्तु सागर के खन्देरी द्वीप से एक बुरी ख़बर आयी है स्वामी।"

"होगी उसी घमण्डी सिद्दी कासिम की।"

"जी हाँ। अपनी समुद्री सेना का एक सूरमा योद्धा मारा गया। मायनाक भण्डारी का पुत्र आया है। उसने लगभग पन्द्रह दिन पूर्व तीन सौ योद्धा लेकर सिद्दी कासिम के उन्देरी द्वीप के जलदुर्ग पर रात को ही छापा मारा। घनी अँधियारी रात थी, जगह अनजानी थी, उस बेचारे का छापा असफल हो गया। मुँहज़ोर सिद्दी ने चौबीस सैनिकों को और मायनाक भण्डारी के उस वीर पुत्र को पकड़ लिया और उनके सिर काटकर वह घमण्डी सिद्दी मुम्बई ले गया है।" हम्बीरराव की आँखों के आगे वे कटे हुए सिर ही नाचने लगे। उनका गला भर आया।

भयानक समाचार सुनकर सम्भाजी सन्न से रह गये। उन्होंने समुद्री दुर्गों के विषय में अब तक जो भी जानकारी पायी थी, उससे वे इतना समझ गये थे कि समुद्री प्रदेश के खन्देरी और उन्देरी, ये दो जलदुर्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। इनमें से खन्देरी द्वीप को शिवाजी महाराज ने घोर संघर्ष करके जीत लिया था और उस द्वीप पर जलदुर्ग बाँधने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सागर के दक्षिणी प्रदेश में मालवण नगर के निकटवर्ती सिन्धुदुर्ग का जो महत्त्व था, समुद्र के उत्तरी किनारे पर बसे खन्देरी के जलदुर्ग का भी वही महत्त्व था। खन्देरी के जलदुर्ग से लाभ यह था कि मुम्बई जैसे समुद्री बन्दरगाह पर नियन्त्रण और दबाव रखना सम्भव था। इस खन्देरी द्वीप पर तीन समुद्री सत्ताधीशों की आँखें लगी हुई थीं। जंजिरा का अधिपति सिद्दी कासिम, सूरत का मुग़ल सूबेदार और मुम्बई के व्यापारी अँग्रेज़—तीनों ही खन्देरी द्वीपों पर क़ब्ज़ा करने का भी प्रयत्न

https://t.me/Sahityajunction

कर चुके थे। और इस प्रयत्न में सिद्दी कासिम बाज़ी मार ले गया था। उसने सूरत के मुग़ल सूबेदार के सामने भी कुछ ऐसा कपट जाल फैलाया था कि 'मैं उन्देरी द्वीप में बैठा हूँ, तो समझिए कि आप ही यहाँ बैठे हैं।' और मुग़ल सूबेदार की इस मित्रता के बल पर सिद्दी कासिम मुम्बई के अँग्रेज़ों को भी चाहे जैसा नचा रहा था। वह समुद्र में डकैतियाँ डालता फिरता था, मराठों के समुद्र तटवर्ती प्रदेश में लूटमार मचाता रहता था और फिर भागकर मुम्बई में जा छिपता था। अँग्रेज़ उसे आसरा देते थे क्योंकि वह सिद्दी कासिम अँग्रेज़ों का काम ही तो कर रहा था। अँग्रेज़ स्वयं तो कुछ कर नहीं सकते थे, वे सिद्दी के माध्यम से सब कर रहे थे। चतुर अँग्रेज़ पाहुने की लाठी से साँप मारना चाहते थे।

जिस प्रकार मराठों के आधिपत्य में आया हुआ खन्देरी जलदुर्ग अँग्रेज़, मुग़ल और सिद्दी की आँख की किरकिरी बना हुआ था, उसी प्रकार मराठी साम्राज्य की भी नीति थी कि सिद्दी की उन्देरी द्वीप की सत्ता को मौका मिलते ही मिट्टी में मिला दिया जाय। इस प्रकार समुद्री प्रदेश को बगल में दबाने का एक तीव्र संघर्ष चल रहा था। इस खींचातानी में सिद्दी ज़िद्दी था, अँग्रेज़ क्रोधी थे, तो मराठे तीखे थे।

"सेनापति, मायनाक को सान्त्वनापूर्ण पत्र लिखो। लिखो कि तुम्हारा पुत्र खो गया, मानो हमारे राज्यरूपी शिवलिंग पर चढ़ाया हुआ फूल ही मुरझा गया। चिन्ता न करो। हम तुम्हारा सब प्रकार से कुशल-क्षेम निबाहेंगे।" सिद्दी की बात सोचकर राजा सम्भाजी मौन हो गये।

"वो हब्शी सिद्दी तो हमारे राज्य को कुतर-कुतर कर खानेवाला चूहा है। जो कुछ हाथ लग जाय, उसे झपटकर वह जंजिरा के अपने बिल में जा छुपता है। इसको एक बार ठिकाने लगाना ही पड़ेगा।" हम्बीरराव क्रोध में भरकर कह रहे थे।

"वहाँ, मामाजी, इस सिद्दी ने हमारे आबासाहब को भी बहुत सताया था, यह हम जानते हैं। हम मायनाक दौलत ख़ाँ कान्होजी, गोविन्दजी काटे—इन नाविक-सरदारों को एक बार बुलाकर कोई योजना बनाएँगे ही। सिद्दी ने समुद्र में जो पाँव जमाये हुए हैं, उसे वहाँ से खदेड़े बिना समुद्र हमारे अनुकूल नहीं बन सकता।"

महाराज इसी प्रकार बातें करते-करते महादरवाज़े तक आये थे कि चांगोजी ने आकर सूचना दी, "पन्हाला के क़ैदी रायगढ़ आ गये हैं।"

राजा सम्भाजी ने एक बार हम्बीरराव की ओर देखा और कुछ सोच-विचार में डूब गये। फिर कोई निश्चय करके उन्होंने आज्ञा दी, "चांगोजी, उन बन्दियों में से प्रह्लाद निराजी और राहुजी को मुक्त करके हमसे मिलने भेजो।"

"जी..." चांगोजी आगे भी कोई आज्ञा पाने की आशा से थोड़ी देर वहीं खड़ा रहा।

"जाओ।" महाराज ने उस मामले को वहीं समाप्त कर दिया। यूँ उनका मन भीतर ही भीतर मोरोपन्त के प्रति करुणा से छटपटा रहा था, परन्तु फिर उन्होंने उस व्याकुलता को भी मन में दबा दिया।

राजा सम्भाजी ख़ासमहल के सभागृह में आये ही थे कि राघो स्वानन्द हाथों में कई गोल-लिपटे कागज़ों के पुलिन्दे लिये वहाँ आ गये।

"स्वामिन्, सब कारख़ानों एवं भण्डारों की वस्तुओं की सूची पूर्ण की जा चुकी है। केवल

https://t.me/Sahityajunction

रत्नशाला की मुहर तोड़ना अत्यन्त ज़िम्मेदारी और ख़तरे की बात है, इस कारण सबकी इच्छा है कि मुहर आपके सम्मुख ही तोड़ी जाय।" राघोपन्त काग़ज़ों को खोलते हुए कहने लगे।

"ठीक है कार्यालयाध्यक्ष, हम स्वयं ही सब भण्डारों के विवरण-हिसाब आदि की जाँच करेंगे। सब लोगों को सूचना भिजवा दो।" राघोपन्त जाते-जाते अटक से गये, फिर जाने से पहले महाराज को बताना ही चाहिए, यह सोचकर वे धीरे से बोले, "राजापुर से अँग्रेज़ों का दूत आया है और वह क्षतिपूर्ति के रूप में बख़्शीश की माँग कर रहा है।"

सम्भाजी के मुख का भाव एकदम बदल गया। उनकी आवाज़ कठोर बन गयी। उन्होंने राघोपन्त को कठोरता से कहा, "उन्हें स्पष्ट बतला दो। कहो कि पहले अपने बिल में छुपाये हुए उस सिद्दी को मुम्बई से खदेड़ो और फिर बख्शीश माँगने आओ। उस दूत को हमारे सामने मत लाओ।"

"जी," पुलिन्दे को सँभालते हुए राघोपन्त जाने लगे। जाते समय उनको एक और आज्ञा मिली, "और सुनो, उस दूत को तुरन्त विदा के बीड़े दो और गढ़ से बाहर भेजो उसे। उसे यहाँ रुकने मते दो।"

राजा सम्भाजी हम्बीरराव से कुछ कहना ही चाहते थे कि एक प्रहरी ने सूचना दी, "प्रह्लादपन्त आये हैं।"

"आने दो उन्हें।" सम्भाजी ने हाथ उठाकर अनुमति दी, परन्तु मुख पर अनेक स्मृतियों की छाया झलक आयी। प्रह्लादपन्त तथा राहुजी ने तीन बार मुजरा किया और सिर नीचा कर खड़े हो गये। सभागृह में विचित्र-सी शान्ति छा गयी।

राजा सम्भाजी बैठक से उठकर प्रह्लादपन्त के सामने आकर शान्ति से कहने लगे, "चिन्तित न हो न्यायाधीश, हम आरोपों की सूची तुम्हें नहीं सुनाएँगे। आबासाहब के देहावसान से लेकर तुम्हारे पन्हालगढ़ की ओर कूच करने तक की तुम्हारी गतिविधियों की, तुम्हारे पूरे आचरण की हमने जानकारी पा ली है। तुमने जो सन्धि का पत्र भेजा था, वह भी हमें पन्हालगढ़ में काफी दिनों बाद मिला। तुम न्यायाधीश हो। हमने तुम्हें यहाँ बुला भेजा है, ताकि हम अपने मन में निवास कर रहे न्यायाधीश का स्वरूप भी तुम्हारे सम्मुख रख सकें। खरी-खोटी सुनाने के लिए नहीं बुलाया हमने तुम्हें।"

सम्भाजी के नेत्रों में वही तेज उतर आया था, जो सिंहासन पर बैठते समय चमक रहा था। उनके मुख से निकलनेवाला प्रत्येक शब्द प्रह्लादपन्त के हृदय को मथे डालता था।

"राजमुद्राधारी आबासाहब के निधन के बाद सुरनीस अण्णाजी और पेशवा मोरोपन्त ने जब कुचक्र रचना प्रारम्भ किया, उस समय तुमसे आशा थी कि तुम हमें सहारा दोगे। तुम न्यायाधीश थे। न्यायी को न्याय देना और अन्यायी से जवाब-तलब करना तुम्हारा काम था, पर तुमने तो यह किया नहीं। तुम्हारा काम किया तो इन सेनापति मोहिते मामाजी ने। कैसी विचित्र स्थिति है कि हमें न्याय मिला तो सेनापति से और वह भी रणक्षेत्र में।

"पर्वतीय प्रदेश में ऊँचे पर्वत शिखरों का जो स्थान है, वही स्थान किसी राज्य में न्यायाधीश का हुआ करता है। वायु के झोंके से यदि वृक्ष-झाड़ियाँ हिल उठें, तो बात समझ आती है। परन्तु यदि ऊँचे गिरिशिखर ही डगमगाने लगें तो पन्त, भय लगता है कि कहीं आकाश ही सिर पर न

https://t.me/Sahityajunction

गिर पड़े।

"न्यायाधीश यदि किसी विवाद में न्याय न कर पाये, तो भी ठीक है, परन्तु कम से कम उसे जाने-अनजाने भी अन्याय का साथ तो नहीं देना चाहिए।" प्रह्लादपन्त, राहुजी, हम्बीरराव आदि सभी इस भ्रम में डूबे थे कि ये साक्षात् शिवाजी महाराज ही तो नहीं बोल रहे!

हाथ पीठ पीछे बाँधे सम्भाजी अपने ही विचारों में खोये हुए मन की बात स्पष्ट कहे जा रहे थे, "पन्त, ध्यान रखो। प्रत्येक मनुष्य की तीन माताएँ होती हैं। एक तो वह जो अपनी कोख से जन्म देती है। दूसरी वह धरती माता जो पालती-पोसती है और अन्त में अपनी ही गोद में सुला लेती है। तीसरी माता है, न्याय माता जो मानव के समस्त जीवन को अपनी बन्द आँखों से देखती है।

"पहली जन्मदात्री माता के नेत्र तो प्यार-वात्सल्य से भरे रहते हैं। इस कारण उसे अपनी सन्तान की कोई भूल या अपराध दिखाई ही नहीं देता। दूसरी धरती माता नेत्रहीन होती है। तीसरी न्यायमाता की आँखें तो होती हैं, परन्तु उसे वे बन्द रखनी पड़ती हैं। इस कारण से कि हाथ में पकड़ी हुई तराजू से तोलते समय भावना में बहकर कोई भूल-चूक न हो जाय। पन्त, तुमने न्यायाधीश होते हुए भी अपनी आँखों पर बँधी पट्टी खोल दी। फलस्वरूप तुम्हारी दृष्टि बहक गयी और हाथ में पकड़ी हुई न्यायतुला पटककर तुम उसके एक पलड़े में स्वयं जा बैठे। तुम्हारे इस व्यवहार से हमारे मन पर जो आघात लगे हैं, उन्हें भुलाकर हम तुम्हें उस पलड़े में से सम्मान सहित बाहर निकाल लेते हैं और वह न्यायतुला फिर से तुम्हारे हाथों में सौंपते हैं। सँभालो इसे पन्त, और समझ लो कि फिर से ऐसी भूल हो गयी, तो हम सहन नहीं कर पाएँगे। स्वयं न्यायाधीश को ही अपराधी के रूप में सामने खड़ा देखकर हमारे मन पर क्या बीत रही है, इसका वर्णन करना भी असम्भव है। फिर कभी ऐसा कटु अवसर मत आने देना पन्त।"

प्रह्लादपन्त की आँखों की कोरों में अश्रुबिन्दु छलक आये थे। वे हाथ जोड़कर पगड़ी इधर-उधर हिलाते हुए हृदय से कह उठे, "स्वामिन्, क्षमा कीजिए। हमें अपने दुर्व्यवहार के प्रति पश्चात्ताप है..." आगे वे कुछ कह ही नहीं सके।

"प्रह्लादपन्त, पश्चात्ताप की भावना ही सूचित करती है कि तुम न्यायाधीश हो। कल से न्यायविभाग का उत्तरदायित्व सँभालो और न्यायदान का कर्तव्य निभाओ।" सम्भाजी की वाणी में इस समय राजा की कठोरता के साथ-साथ कवि का भावुक स्वर भी मिल गया था।

"राहुजी, तुम रायगढ़ के सरकारी कामकाज के सूबेदार रहे हो। राजा कौन हो, इसकी अपेक्षा तुम राजधानी अधिक सुन्दर कैसे बन पाये, इसका ध्यान रखा करो। जाओ, तुम भी अपने सूबेदार के पद का कार्य सँभालो।"

"जी," राहुजी और प्रह्लादपन्त मुजरा करके जाने लगे। छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्यकाल में प्रह्लादपन्त पर ऐसी स्थिति नहीं आयी थी कभी परन्तु यदि कभी ऐसी नौबत आती तो...? प्रह्लादपन्त यह सोचकर बेचैन हो उठे। उनसे रहा नहीं गया। वे तुरन्त लौट पड़े और तेजी से चलकर राजा सम्भाजी के पाँव छूने के लिए झुकने लगे।

राजा सम्भाजी झट से पीछे हट गये और उन्होंने उन्हें रोक दिया। पन्त को ऊपर उठाकर छाती से लगाते हुए वे इतना ही कह पाये, "पन्त, बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है तुम्हारे-हमारे कन्धों पर। आशा है, सदा हमारा साथ दोगे।"

https://t.me/Sahityajunction

प्रह्लादपन्त निराजी सन्तुष्ट मन से चल दिये। हम्बीरराव भी भाव-विह्वल हो उठे थे। वे भी अनुमति लेकर विदा हुए। सम्भाजी सोच में खोये हुए ही अन्तःपुर के भीतरी कक्ष में आये। वहाँ येसूबाई भवानीबाई को दोनों हाथों में थामकर खड़ी हुई थीं और धाराऊ भवानी के सिर पर ज़री के बेलबूटोंवाली चौतनी पहना रही थीं।

"आऽबा, आऽबा," किलकारी मारकर भवानीबाई सम्भाजी की ओर लपक रही थी। येसूबाई ने उसे उसके 'आबा' को देते हुए कहा, "श्रीमान्‌जी ने सुन ही लिया होगा। छोटी रानीजी को लड़का हुआ है।"

दुर्गाबाई की स्मृति ने उन दोनों को व्याकुल बना दिया।

सब कारखानों एवं भण्डारों की धन-दौलत तथा माल-असबाब की सूची के अनुसार स्वयं जाँच करने के लिए राजा सम्भाजी ख़ासमहल से बाहर निकले। परन्तु उनके साथ प्रह्लाद निराजी, हम्बीरराव, येसाजी, रघुनाथ नारायण, कवि कुलेश, राहुजी, आबाजी, सोनदेव, चांगोजी आदि श्रेष्ठजनों की मण्डली थी।

वर्षा से भीगी हुई पथरीली दीवारों पर इस समय श्रावण मास की धूप पड़ रही थी और दीवारों से सफ़ेद भाप की तरंगें उठ रही थीं। दूर पाचाड़ में घड़ियाल बज उठा। राजा सम्भाजी ने उस घण्टानाद के प्रति छाती पर हाथ रखकर सम्मान प्रकट किया। उस समय राजा सम्भाजी के हाथ में लकड़ी की एक नक्काशीदार सन्दूक़ची थी।

रत्नशाला आयी। राजा के सम्मुख रत्नशाला की मुहर तोड़ी गयी। सूची पढ़ी जाने लगी और कारिन्दे वस्तुओं की गिनती करने लगे :

"पाँच सौ रत्ती हीरे, दो सौ रत्ती लाल, एक हज़ार तोले मोती..." एक-एक शीर्षक के अनुसार सब वस्तुओं को गिनकर अलमारियों में बन्द किया जाने लगा। वह सूची पूरी हुई।

फिर दुबारा मुहर लगाने के लिए रत्नशाला के प्रधान अधिकारी बहिर्जी घाटगे अलमारी बन्द करने लगे।

"ठहरो बहिर्जी। ये सबसे मूल्यवान नग भी अन्दर रख दो। इस नग के बिना यह रत्नशाला अधूरी ही रहेगी।"

सम्भाजी ने अपने हाथ में पकड़ी हुई सन्दूकची को खोला और उसमें से वह भवानीमाला निकाली, जिसे आबासाहब सदा धारण करते थे। इस भवानीमाला को उन्होंने मस्तक से छुवाया और फिर उसे अलमारी में रख दिया। इस प्रकार कौड़ियों की माला ने हीरे, लाल और जवाहरों को भी शोभा प्रदान की।

इसके बाद सम्भाजी गढ़ के अत्यन्त व्यस्त विभाग में, अर्थात् कोषागार में गये। कारिन्दे नौ करोड़ रुपये के मूल्य के चलनसार सिक्कों को तराजू में तोलने लगे। उस कोषागार में पाँच लाख रुपये मूल्य के तो सोने के 'होन' नामक सिक्के थे। अनगढ़ सोने का वज़न था नौ खण्डी[1] और चाँदी थी अढ़ाई खण्डी। इन सब वस्तुओं का श्रेणी के अनुसार वज़न किया गया। सम्भाजी ने होन सिक्कों के ढेर की ओर देखते हुए राघोपन्त को आज्ञा दी, "कार्यालयाध्यक्ष, प्रति वर्ष

https://t.me/Sahityajunction

प्रतापगढ़ के भवानी-मन्दिर को दस हजार होन तथा तुलजापुर के भवानी-मन्दिर को बीस हज़ार होन वार्षिक वर्षाशन तथा वार्षिक वृत्ति के रूप में भिजवाया करो।"

फिर जिसकी शक्ति से राज्य स्थापित होता है और फलता-फूलता है, सम्भाजी उस शस्त्रागार में पधारे। सन की रस्सियों से पाँच-पाँच के पूलों में बँधे हुए शस्त्रास्त्रों की गिनती की जाने लगी—तीस हज़ार एकधारी तलवारें, पचास हज़ार दुधारी तलवारें, चालीस हज़ार भाले, साठ हज़ार ढालें, चालीस हज़ार धनुष और अट्ठारह लाख बाण।—इतनी विशाल संख्या थी वहाँ एकत्रित शस्त्रास्त्रों की।

तेज़ धारवाले और चकाचौंध पैदा करनेवाले उन शस्त्रों को देखकर राजा सम्भाजी गम्भीर हो गये। यह शस्त्रों की राशि आबासाहब की दूरदृष्टि का प्रमाण थी। अस्त्र-शस्त्र भरपूर थे, उन्हें चलाने वाले हाथों को संगठित करना था। यह राशि उस छत्रपति की तत्परता को प्रकट कर रही थी और आनेवाले कल के हर आक्रमण का सामना करने की सूचक थी।

"सेनापतिजी, कंक काका, वर्षाऋतु के समाप्त होते ही सेना की नये सिरे से रचना करनी होगी और इन शस्त्रों की परीक्षा का अवसर लाना होगा। राज्य के सब विभागों के सूबेदारों और हवलदारों को इस सम्बन्ध में सूचना भिजवा दीजिए।" ऐसा कहते समय राजा सम्भाजी के नेत्र भी धार-धार बन गये।

फिर सब उस धान्य-भण्डार में पहुँचे जिसके बल पर सेनाएँ दौड़ लगाती हैं। यहाँ पत्थरों के बने बड़े-बड़े गोदाम थे जिनमें बोरों के ढेर के ढेर लगे हुए थे। स्थान-स्थान पर चूहों तथा घूसों से बचाव के लिए चूहेदानियाँ लगायी हुई थीं।

बोरियों के ढेरों के बीच से घूमते हुए धान्य कोठारों का कोठारी उनका विवरण बताता जा रहा था, "यह चावलों का कोठार है। इसमें सत्रह हज़ार खण्डी चावल भरा है। जीरा दो हज़ार खण्डी है।"

इसी प्रकार दाल, द्विदलधान्य, शक्कर, तम्बाकू आदि के गोदामों को देखते हुए घूम रहे राजा को आबासाहब के शब्द याद आ रहे थे—'पहले सेनापति भी तुम और हम हैं और अन्तिम सैनिक भी हम ही हैं। एक सच्चा मावला बनो शम्भू राजा।'

अब वस्त्रागार आया। वहाँ रखे हुए वस्त्रों को श्रेणी के अनुसार दिखाते हुए प्रमुख-अधिकारी कहने लगा, "इस आगार में जालना और अहमदाबादी कपड़े के एक लाख थान हैं। इसमें चार हज़ार सफ़ेद कपड़े के थान और बुरहानपुर के एक हज़ार थान हैं। तीन हज़ार थान सादा कपड़ा तथा चार हज़ार थान हैं पैठणी कपड़े के।"

सारी धन-सम्पत्ति का निरीक्षण करके सम्भाजी घास-चोर के अटालों के पास आये जहाँ मोटी जंजीरों से बँधे हुए गजराज मस्ती से झूलते खड़े थे। इन्हें देखकर सम्भाजी के मन में यह विचार आने लगा—'हमारे महाराज साहब ने ये हाथी, यह समस्त सम्पत्ति क्यों जमा की थी? क्या अपने लिए! नहीं। वे जानते थे कि यहाँ की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति है, यहाँ का मनुष्य, यहाँ का प्रजाजन। उसे जीना चाहिए गरदन ऊँची उठाकर, चलना चाहिए सीना तानकर। इसीलिए तो महाराज ने अपने को हल्दी-रोली बनाकर समर्पित किया था।'

राजा सम्भाजी विचार-प्रवाह में खोये हुए चले जा रहे थे। उस समय रघुनाथ नारायण

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी से विनयपूर्वक कहने लगे, “कुडाल विभाग के देशाधिकारी गणोराम का पत्र आया है स्वामी।”

“क्या कहते हैं वे?”

“वहाँ के योगी नामदेवभट्ट बाकरे की मृत्यु हो गयी है। उनका एक पुत्र है, जो उनका उत्तराधिकारी है। गणोराम कहते हैं कि उस पुत्र की जीविका की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।”

राजा सम्भाजी चलते-चलते रुक गये और बोले, “पन्त, योगी बाकरे के पुत्र को एक घोड़ा और अन्य योग्य भेंट भिजवा दो तथा उनकी जीविका सुयोग्य रीति से चलती रहे, ऐसा एक दानपत्र तैयार करा लो। उस दानपत्र पर हमारे हस्ताक्षर कराकर कुडाल नगर को भिजवा दो। आबाजी, तुम यह दानपत्र एक बार पढ़कर जाँचकर देख लो और उस पर सिक्का लगा दो।”

“जी,” रघुनाथजी को निर्णय सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई।

फिर सम्भाजी को कुछ याद आया और उन्होंने रघुनाथ पन्त को दूसरा आदेश दिया, “पुणे से वहाँ के सूबेदार दामाजी रघुनाथ का एक राजकर्मचारी यहाँ आया था। देहू तीर्थक्षेत्र में सन्त तुकाराम महाराज के पुत्र महादोबा रहते हैं। दामाजी और महादोबा की भेंट हो चुकी है। सन्त तुकाराम महाराज के पुत्र को प्रतिवर्ष एक खण्डी जवार, वर्षाशन कर रूप में और एक बादशाही होन वार्षिक वृत्ति के रूप में निश्चित कर दिया जाय।”

“जैसी स्वामी की आज्ञा।” राजा सम्भाजी धार्मिक स्थानों तथा सन्त-महात्माओं के कुशल-क्षेम का इतना ध्यान रख रहे हैं, इसे देखकर उपस्थित सभी जन अतीव सन्तुष्ट हो उठे थे।

समुद्र तट के निकट एक बन्दरगाह थी, दाभोल। वहाँ के सूबेदार नेकाजी निमदेव का भेजा हुआ एक राजकर्मचारी सायंकाल राजा सम्भाजी के सभागृह में आया। कन्धे पर तबक़ उठाये एक सेवक उसके पीछे खड़ा था।

“हम दाभोल से आये हैं। दाभोल सूबे में कुछ दिनों पूर्व मोतियों की वर्षा हुई है। सूबेदार की आज्ञानुसार हम उन मोतियों का नमूना आपकी सेवा में दिखलाने लाये हैं।” राजकर्मचारी ने कहा।

राजकर्मचारी ने तबक़ पर ढँका हुआ वस्त्र हटाया। राजा सम्भाजी ने अंजलि भर मोती उसमें से उठाये और उन्हें देखते हुए कवि कुलेश से कहने लगे, “कैसा चमत्कार है कवि जी! कभी-कभी आकाश से भी इतनी मोहक कविता उतर आती है धरती पर।”

“जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। ये मोती क्या हैं, गगनसुन्दरी का मोती-कण्ठा ही भूमि पर उतर आया है।” कविजी भी उस दुग्धवत श्वेत सौन्दर्य को आश्चर्य से निहार रहे थे।

“कविराज, अथवा यदि कहा जाय कि धरित्री नायिका के विरह के कारण व्याकुल उस नायक आकाश के नेत्रों से टपकनेवाले अश्रुबिन्दु ही हैं ये, तो यह उपमा कैसी रहेगी?” सम्भाजी को अंजलि में भरे हुए मोतियों की आभा में दुर्गाबाई का मुख झलकता दिखलाई दे रहा था।

“स्वामी, बाकरे का दान-पत्र लिखा जा चुका है। आप अपनी सम्पति के रूप में कृपया इस पर हस्ताक्षर करें।” रघुनाथपन्त ने दानपत्र उनके सम्मुख रखा। सम्भाजी ने अंजलि में भरे हुए मोतियों को पुनः तबक़ में छोड़ दिया। फिर लेखनी हाथ में लेकर उन्होंने दान-पत्र पढ़ा। उसके

https://t.me/Sahityajunction

नीचे अपने हाथ से मोती के समान सुन्दर अक्षर अंकित किये—'मतं मे श्री शिवराज पुत्रस्य श्री शम्भु राज छत्रपतेः यदभोपरि लेखितम् ।। छः श्री ।।'

इसके पश्चात् राजा सम्भाजी ख़ान कोकलताश के नाम पत्र लिखने लगे :

'ख़ान जहाँ बहादुर जाफरजंग कोकलताश सूबा-ए-दक्खन के प्रति राजा शम्भू, आगे विशेष यह...' प्रह्लादपन्त ने पत्र का शीर्षक लिख दिया।

ख़ान कोकलताश अहिपन्तगढ़ में हार खाकर अब बागलाण प्रदेश के साल्हेर नामक दुर्ग का घेरा लगाकर बैठ गया था। उस ख़ान के नाम चेतावनी से भरा ख़लीता सम्भाजी लिखा रहे थे, "इन दिनों तुम बागलाण प्रदेश में जो ऊधम मचा रहे हो, वह हमने सुन लिया है। हम केवल प्रतीक्षा कर रहे हैं उस वर्षाऋतु के समाप्त होने की। अब हम ही ख़ुद बागलाण के खुले मैदान में उतरकर आएँगे और देखेंगे कि तुम्हारी तलवार में कितना पानी है?"

प्रह्लादपन्त ने ख़लीते को लपेटकर थैली में बन्द कर दिया।

"फिरंगी पुर्तगालियों के नामसराय का खलील आया है स्वामी। उनकी शिकायत है कि अपने डिचोली नगर के सूबेदार मोरो दादाजी ने सुलह की शर्तों को तोड़ा है।" प्रह्लादपन्त ने महाराज को समाचार कह सुनाया।

"क्या किया है मोरो दादाजी ने?"

"बारदेश प्रान्त के सिओलिम भाग में हमारे सूबेदार ने छापा मारकर कुछ लोगों को गिरफ़्तार कर लिया है। डिचोली से हीरे-जवाहरात लेकर जानेवाले एक पुर्तगाली व्यापारी को भी उन्होंने पकड़ लिया है।"

राजा सम्भाजी सोचते हुए घूमने लगे। स्वर्गवासी महाराज ने पुर्तगालियों से सन्धि की थी। उस सन्धि की एक शर्त यह थी कि दोनों एक-दूसरे के प्रदेश पर आक्रमण न करें। इसी प्रकार दोनों प्रदेशों के बीच निर्विघ्न रूप से व्यापार चलता रहे, यह भी सन्धि की शर्त थी।

"पन्त, मोरो दादाजी को लिखो कि गिरफ़्तार लोगों को तुरन्त रिहा करें। उन्हें कठोर चेतावनी देते हुए लिखो कि फिर कभी सन्धि की शर्तों को न तोड़ा जाय।"

"जी," एक ही समय में कोकल ख़ाँ को धमकी देनेवाला राजा और उसी समय चूक करनेवाले अपने अधिकारी को फटकार सुनानेवाला राजा—सम्भाजी के ये दो रूप देखकर प्रह्लादपन्त सिर डुलाने लगे थे।

"कुडाल विभाग के देशाधिकारी आये हैं।" प्रहरी ने आकर सूचना दी। सम्भाजी ने हाथ उठाकर अनुमति दी। कुडाल के देशाधिकारी गणोराम भीतर आये।

"कब आये गणोराम?" सम्भाजी ने उसका कुशल-क्षेम जानना चाहा।

"अभी-अभी गढ़ में पहुँचे हैं स्वामी। एक विशेष वार्ता आपकी सेवा में कहने आये हैं।

"कहो।" राजा सम्भाजी की दृष्टि उनकी पगड़ी पर फिर रही थी।

"पाट गाँव में एक मौनी बाबा रहते हैं। वे महान् आस्तिक भक्त हैं। महाराज ने भी मौनी बाबा के दर्शन किये थे। बड़े महाराज उनके लिए कुछ करना भी चाहते थे परन्तु तभी महाराज का स्वर्गवास हो गया। इस कारण..."

https://t.me/Sahityajunction

“सूबेदार, हमने भी मौनी बाबा के विषय में काफी सुना है। हम उनकी प्रगति के लिए अवश्य ही कुछ-न-कुछ करेंगे।”

राजा सम्भाजी ने गणोराम को विश्वास दिलाया। वे सन्तुष्ट होकर मुजरा करके चले गये।

“पन्त, एक आज्ञा-पत्र तैयार करो। लिखो कि मौनी बाबा के मठ के लिए वाद्यसमूह तथा वादकों के लिए वार्षिक एक सौ पच्चीस होन वार्षिक वृत्ति के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं। यह भी लिखो कि बाबाजी के मठ की सम्पत्ति का जो भी राज्यकर हो, वह माफ़ किया जाता है। यह दानपत्र मठ के ज्येष्ठ शिष्य तुरुत गिरि को अवश्य मिले, ऐसी व्यवस्था करो।” राजा सम्भाजी ने तुरन्त निर्णय कर दिया।

“शिर्के और महाड़ीक दुर्ग में आ रहे हैं।” अन्तोजी ने भीतर आकर सूचना दी।

वैसे अभी राजकार्यालय के बहुत से काम शेष थे, तथापि राजा सम्भाजी प्रह्लादपन्त से कहने लगे, “चलो। हमें उनकी अगवानी करने के लिए जाना होगा।” प्रह्लाद निराजी, अन्तोजी तथा कुछ सैनिकों के साथ चले आ रहे थे। राजा सम्भाजी झट से आगे बढ़े और सबसे गले मिले। हरजी राजा सम्भाजी के बहनोई थे। सम्भाजी की बड़ी बहन अम्बिकाबाई के वे पति थे। एक ओर अपने साले गणोजी तथा दूसरी ओर अपने बहनोई हरजी को साथ लेकर राजा सम्भाजी सातमहल की ओर जाने लगे। साले-बहनोई येसूबाई के महल में पहुँचे। उनसे तथा रानी सकवारबाई से मिलकर सब परिवारीय जन राजा सम्भाजी के ख़ासमहल की बैठकवाले कक्ष में पधारे।

हम्बीरराव, येसाजी कंक, आनन्दराव, रूपाजी, जोत्याजी केसरकर, तुकोजी पालकर, त्र्यम्बक बाजी आदि लोगों को समाचार मिल चुका था कि राजा सम्भाजी के सम्बन्धी पधारे हैं। वे भी बैठक कक्ष में उनसे मिलने आ पहुँचे।

पहले कुशल समाचार की कुछ बातचीत हुई और फिर हरजीराजा ने विशेष प्रयोजन की बात प्रारम्भ की। कहने लगे, “सेनापतिजी, राजा सम्भाजी का मंच-आरोहण हुआ, यह तो ठीक हुआ परन्तु क्या यहीं तक रुककर भविष्य की सारी शासन-व्यवस्था होती रहेगी?”

“हमारा भी यही मत है। पाँच महीने हुए, राजगद्दी खाली पड़ी है।” हम्बीरराव ने हरजी का समर्थन किया।

“राजन्, आप अपना राज्याभिषेक कब करवा रहे हैं?” हरजी ने एकदम सीधे ही प्रश्न पूछ लिया।

“उसके बिना कई महत्त्वपूर्ण मामलों में कोई फ़ैसला ही नहीं किया जा सकता।” गणोजी ने यह कहा तो अवश्य परन्तु उनके कहने का प्रयोजन किसी के भी ध्यान में नहीं आया।

“हम तुम सबकी सद्भावनाओं का आदर करते हैं तथा हम अपना राज्याभिषेक करवानेवाले भी हैं। परन्तु उस समारोह के लिए जो आवश्यक तैयारियाँ हैं उनके लिए वर्षा-ऋतु समाप्त होने तक प्रतीक्षा करनी होगी। यह अभिषेक हमारा व्यक्तिगत नहीं है, यह गौरव है महाराज की राजगद्दी का। इसलिए उस समारोह को उतनी ही धूम-धाम से करना होगा। अपने पड़ोसी राज्य भी उस समारोह के प्रति उत्सुक हैं। यह कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसे उतावलेपन से और जल्दबाज़ी से किया जाय।” सम्भाजी ने अत्यन्त शान्त रीति से उत्तर दिया। इसे सुनकर

https://t.me/Sahityajunction

सब सन्तुष्ट हुए।

इतने में भोजन के लिए बुलावा आया, अतः राजा सम्भाजी सबके साथ उठ खड़े हुए। वे कक्ष के बाहर आये ही थे कि बाहर भवन निर्माण विभाग का प्रमुख अधिकारी हिरोजी इन्दुलकर उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था; मुजरा करके बोला, "मालिक, हमें क्यों बुला भेजा है?"

उसे देखते ही सम्भाजी का मुख एकदम म्लान हो गया। वे अपनी हथेलियों की ओर देखते हुए कहने लगे, "हिरोजी, महादरवाज़े के सामने एक शान्त-एकान्त स्थान देखकर वहाँ सती माँ का चौरा बनवाओ। वे आज इस संसार में नहीं हैं, परन्तु आते-जाते उनका चौरा तो हमारी आँखें देख पाएँगी।" पुतलाबाई की स्मृति से सबके चेहरों पर दुःख छा गया।

सायंकाल को हरजी राजा, अमलोजी राजा तथा गणोजी के साथ राजा सम्भाजी पूरे दुर्ग का एक चक्कर लगाकर जगदीश्वर के मन्दिर में आये। वहाँ आकर सम्भाजी हरजी से बोले, "हरजी, तुम्हें एक बड़ी जिम्मेदारी सौंपने का विचार है हमारा। आशा है कि तुम उसे अवश्य निभाओगे।"

"जी हाँ, अवश्य। हम तो घर के ही आदमी हैं। आप जो भी काम सौंपेंगे, उसे अवश्य पूरा कर दिखाएँगे हम।" हरजी ने उन्हें विश्वास दिलाया।

सम्भाजी ने पिण्डी पर चढ़ायी गयी एक बेलपत्री उठाकर हरजी महाड़ीक के हाथ में दी और हरजी ने जिम्मेदारी के बारे में कोई जानकारी न होते हुए भी बेलपत्ती हाथ में लेकर स्वीकृति दे दी। परन्तु दूसरी ओर गणोजी को घोर निराशा हुई, क्योंकि वे बड़ी उत्सुकता से सुनना चाहते थे कि जिम्मेदारी क्या है।

दुर्ग को रात के अँधेरे ने घेर लिया। सम्भाजी अपने शयनकक्ष में शय्या पर लेटे हुए थे और येसूबाई उनके पैताने की ओर बैठकर पैर दबा रही थीं। अकस्मात् वे रुक गयीं और आँचल सँवारकर दृढ़ परन्तु नम्रता भरे शब्दों में कहने लगीं, "एक बात मानेंगे हमारी?"

"कहो न।"

"आज तक हमने कभी कुछ नहीं माँगा, परन्तु आज आपके चरणों में एक प्रार्थना करना चाहते हैं।" इतनी-सी देर में ही येसूबाई की आवाज़ मन्द हो आयी थी।

सम्भाजी बाँह माथे पर रखे लेटे हुए थे। वे तुरन्त उठ बैठे और कहने लगे, "ऐसा क्यों कहती हो येसू? जो कुछ मन में हो, साफ-साफ कहो। तुमने एक बार शृंगारपूर से सज्जनगढ़ जाते समय हमसे माँग की थी कि समर्थगुरु से भवानीबाई के लिए मन्त्रित गण्डा लावें, हम वह तो ला नहीं सके। लाये तो तुम्हारे लिए मुसीबतों का पहाड़ ले आये।" सम्भाजी की आवाज़ वेदना से भर उठी थी।

"ऐसा न कहें। जो भी संकट आये थे, भावेश्वरी की कृपा से टल गये हैं। हम भविष्य का विचार करके आपसे कुछ माँगने जा रही हैं।"

"निर्भय होकर कहो येसू। कितना भी कठिन कार्य क्यों न हो, हम अवश्य तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे।"

इस आश्वासन को सुनकर येसूबाई का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उनके थमे हुए हाथ अपने आप फिर से सम्भाजी के पाँव दबाने लगे। बात कैसे कही जाय, उसे सोचती हुई वे थोड़ा हिचकिचायीं। फिर अमावस की अँधियारी रात में जैसे लाख तारे झिलमिला उठते हैं, ऐसे प्यारे

https://t.me/Sahityajunction

लुभावने बोल उनके मुख से प्रकट हो उठे, “बैठाये गये पहरे आप उठवा दें। ये वे लोग हैं, जो जीवन भर आबासाहब के दायें हाथ बनकर रहे हैं। यदि उन्होंने भूल की भी है, तो भी वे अपने ही हैं। श्रीमान् जी उन्हें अभयदान दें। उन्हें शरण में ले लें।”

“येसू ऽऽ,” जिस विषय को सम्भाजी टालना चाहते थे, वही येसूबाई ने सामने ला दिया था। सम्भाजी सम्भ्रम में डूब गये।

“आज यदि आबासाहब होते, तो भी हम उनके पैर पकड़कर यही प्रार्थना करतीं। ऐसे गुणी, निपुण लोग बनाने से नहीं बनते। नदी की बाढ़ कभी-कभी गाँव में भी घुस आती है, परन्तु इस कारण कोई नदी को अपने गाँव की सीमाओं से दूर नहीं हटा देता। अपने लोग यदि भूल-चूक कर बैठें, तो किससे कहा जाय? किसके सामने शिकायत की जाय? वे सभी लोग ज्येष्ठ हैं। बड़ों की भूलें भी बड़ी होती हैं। इसलिए उन्हें क्षमा करने के लिए मन भी उतना ही विशाल बनाना पड़ता है। श्रीमान्जी, मन विशाल और उदार बनाएँ, यही हमारी प्रार्थना है। स्वयं आपके बारे में भी आबासाहब ने कभी ऐसी ही विशाल हृदयता दिखायी थी।” महाराज की स्मृति के कारण येसूबाई का गला भर आया।

सम्भाजी को भ्रम होने लगा कि ये सामने येसूबाई खड़ी हैं अथवा पाचाड़ की माँ जिजाऊ ही उपस्थित हैं।

अपनी अर्धांगिनी का हाथ अपने हाथ में लेकर थपकते हुए सम्भाजी कहने लगे, “हम इस विषय में कोई निर्णय नहीं कर पा रहे थे, दुविधा में पड़े थे, तुमने हमें आज प्रेरणा दी है। जैसा तुम चाहती हो, वैसा ही होगा येसू।”

“परन्तु वह शीघ्र ही होना चाहिए। पेशवा मोरोपन्त...पेशवा, ज्वर से ग्रस्त हैं। बिस्तर पर पड़े हैं।” येसूबाई की आवाज़ में कम्पन आ गया था।

“क्या कहती हो?” राजा सम्भाजी ने मानो स्वयं से ही प्रश्न पूछा। इस प्रश्न का उत्तर येसूबाई के पास तो था ही नहीं, स्वयं राजा सम्भाजी के पास भी नहीं था।

“जगदम्बे, हे जगदम्बे।” कहते हुए सम्भाजी लेट गये। येसूबाई उनके पाँव दबाने लगीं। दीवट अब मन्द-मन्द जल रहे थे।

इसके साथ ही हरजी राजा और गणोजी राजा भी बार-बार यही आग्रह कर रहे थे, “राजा सिंहासन पर बैठे और प्रधान मण्डल के घेरों पर पहरा लगा हो, यह उचित नहीं।”

राजा सम्भाजी ने चांगोजी को बुलावा भेजा और आदेश दिया, “बन्दियों के घरों पर बिठाये गये पहरे उठा दो और...और...पेशवा की हवेली में राजवैद्य को भेज दो।”

आदेशानुसार अण्णाजी, मोरोपन्त, हिरोजी और बालाजी पर लगाये गये पहरे उठा लिये गये। इसी प्रकार कोल्हापुर और पन्हालगढ़ में भी जो बन्दी थे, उन्हें मुक्त करने का आदेश दिया गया।

औषधियों की पोटली लिये हुए राजवैद्य मन्त्रियों के मोहल्ले में आये और सीधे मोरोपन्त की हवेली में पहुँचे। बुखार से मोरोपन्त का शरीर तवे-सा तप रहा था। उन्होंने मौन रहकर केवल हाथ हिलाकर यह जताया कि वे उपचार कराने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं।

https://t.me/Sahityajunction

इसी अवस्था में दो दिन बीत गये। राज्य के ज्येष्ठतम सेवक मोरोपन्त अब अपने स्वामी के समान ही व्याधि की उन्माद अवस्था में पहुँच चुके थे।

उनके पुत्र निलोपन्त तथा अण्णाजी, प्रह्लादपन्त, राहुजी, राघो स्वानन्द और हम्बीरराव—इन चिन्तित, व्यग्र लोगों को मोरोपन्त के जीवन की कोई आशा नहीं रही थी।

अकस्मात् पन्त की शय्या के निकट उपस्थित लोगों में खलबली-सी मच गयी। बीमार मोरोपन्त को सँभालने के लिए पुत्र निलोपन्त तथा कुछ व्यक्तिगत कर्मचारी ही शय्या के निकट खड़े रहे। शेष सब लोग पीछे हटकर खड़े हो गये। कक्ष में फुसफुसाहट फैल रही थी, "युवराज्ञी आ रही हैं।"

अपने व्यक्तिगत राजकर्मचारी तथा सेविकाओं के बीच येसूबाई मन्त्रियों के मोहल्ले की सीढ़ियाँ चढ़कर चली आ रही थीं। शायद यह पहला ही अवसर था कि छत्रपति की स्नुषा मन्त्रियों के मोहल्ले में पधार रही हो।

मोरोपन्त उन्माद अवस्था में पहुँच चुके थे। कक्ष में प्रविष्ट हो रही येसूबाई को वे जिजाऊ ही समझ बैठे। उनके होठ धीमे से हिले, "माँ साहिबा।" वे उस व्याधिग्रस्त दशा में भी मुजरा करने के लिए उठने का असम्भव प्रयत्न करने लगे।

येसूबाई लपककर आगे बढ़ीं और उनके होठों से शब्द निकला, "पन्त काका!" परन्तु पन्त ने सम्भवतः कुछ सुना ही नहीं। वे सुनने-समझने की स्थिति से दूर जा चुके थे। "श्रीमान्‌जी आपसे मिलने आ रहे हैं, पन्त काका।" येसूबाई के लिए अब कुछ कह पाना भी असम्भव हो उठा था। मराठा साम्राज्य के भूतपूर्व पेशवा को सामने लेटे हुए देखकर उनके मन में विचार उठा—'क्या मराठा-साम्राज्य के छत्रपति की भी जीवन के अन्तिम क्षणों में ऐसी ही अवस्था हुई होगी?' आँखें भर आने के कारण वे पन्त को ठीक से देख भी नहीं पा रही थीं।

आस-पास खड़े हुए लोग मुजरा करने के लिए झुक रहे हैं, यह देखकर येसूबाई ने अपने आँचल के कोर से आँखें पोंछते हुए पीछे की ओर देखा। हरजी राजा के साथ राजा सम्भाजी कक्ष में पधार रहे थे। उनकी दृष्टि शय्या पर लेटे हुए मोरोपन्त पर टिकी हुई थी और बहुत विचित्र-सा भाव दिखाई दे रहा था उन आँखों में। काले पत्थरों से बनी मीनारों की कालिमा उन आँखों में छायी हुई थी।

सम्भाजी के सिर पर पहने हुए राजटोप को देखकर मोरोपन्त की आँखों में पहले एक चमक-सी उत्पन्न हो गयी और फिर उनकी आँखें पूरी तरह डबडबा आयीं। उनकी दृष्टि पूरे कक्ष में घूम रही थी और हर चेहरा उन्हें टोपधारी छत्रपति के समान दिखलाई दे रहा था। होठों से निरन्तर अस्पष्ट ध्वनि निकल रही थी, "जी, स्वामीऽ..." और हाथ बार-बार छाती की ओर उठ रहा था।

"प ऽ न्त।" सम्भाजी गद्‌गद कण्ठ से पुकार उठे। उपस्थित जनों में से केवल येसूबाई ही समझ पायी थीं कि श्रीमान्‌जी की यह आवाज़ बिलकुल उसी प्रकार की है जिस आवाज़ में वे अपने आबासाहब को पुकारते थे, अथवा फिर ऐसी ममता भरी पुकार से वे माँ साहिबा को बुलाते थे।

पन्त शून्य और भावरहित दृष्टि से राजा सम्भाजी की ओर देखे जा रहे थे। उनके होठ जो

https://t.me/Sahityajunction

कुछ भी बोले जा रहे थे, उनका सम्बन्ध इस चलायमान जगत से अथवा किसी जीवित व्यक्ति से भी नहीं था। उनका सम्बन्ध था स्वर्गवासी छत्रपति से। उनके अस्पष्ट बोलों का आशय सबके लिए एक पहेली ही थी।

"ये दो वस्तुएँ हम लाये हैं, स्वामिन्।...शेष सब क्षेम-कुशल है। हमें आपकी सेवा में प्रस्तुत होने में विलम्ब हुआ, क्षमा करें..." कहते-कहते पन्त की आँखें बन्द हो गयीं और हाथ बार-बार तकिये की ओर जाने लगे, जैसे कुछ खोज रहे हों। सम्भाजी ने आँखों के इशारे से ही निलोपन्त से पूछा, "तकिये के नीचे क्या है? क्या खोज रहे हैं पन्त?"

निलोपन्त ने अपने पिता के तकिये के नीचे से दो वस्तुएँ निकालीं और उन्हें खोलकर युवराज को दिखाया।

एक डिब्बे में पेशवा प्रधानमन्त्री का सिक्का और मुद्रा थी और दूसरी छोटी-सी डिबिया में एक मोती की बाली थी।

सिक्के और मुद्रा से जो भाव मोरोपन्त प्रकट करना चाहते थे, वह तो सम्भाजी सहित सभी उपस्थित लोग समझ गये थे, परन्तु बाली का तात्पर्य तो उन्मादग्रस्त मोरोपन्त के अतिरिक्त अन्य कौन बता सकता था!

मोरोपन्त छत्रपति शिवाजी के शासनकाल में महाराज के साथ सूरत शहर पर दूसरी बार आक्रमण करके लौटे थे। तब एक दिन वे महाराज के सामने उपस्थित हुए। उन्होंने उस समय कानों में जो बालियाँ पहनी हुई थीं, उनकी ओर महाराज का ध्यान गया। महाराज उस समय बोले कुछ नहीं थे, केवल थोड़ा-सा मुस्करा दिये थे।

महाराज कहीं कुछ अन्य न समझ बैठें, इस भय से मोरोपन्त ने तुरन्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था, "ये बालियाँ हमें मथुरा से आये हमारे कुछ सम्बन्धियों ने भेंट दी हैं, स्वामी।"

"ये बालियाँ तुम्हारे कानों में ख़ूब फबती हैं, पन्त। इस बारे में हमें कुछ भी ग़लतफ़हमी नहीं है परन्तु..."

"परन्तु क्या महाराज...?" पेशवा ने उत्सुकता से प्रश्न पूछा था।

"पन्त, हमारे ये हाथ कितने निर्बल हैं! हमने दो बार सूरत शहर पर चढ़ाई की है। इस चढ़ाई में सैकड़ों-हज़ारों सैनिकों ने हमारा साथ दिया है। मन करता है कि काश! हम भी इतनी सुन्दर बालियाँ हर सैनिक को भेंट दे पाते!" महाराज की इस उच्च भावना को सुनकर उस समय मोरोपन्त अवाक् हो उठे थे।

अगले दिन जब मोरोपन्त महाराज के सामने उपस्थित हुए थे, तब उनके कानों में वे सुन्दर बालियाँ नहीं थीं। वे उन्होंने उतार फेंकी थीं। उन्हें इस रूप में देखकर महाराज अत्यन्त दुःखी हुए थे।

कर्नाटक की मुहिम से लौटते समय महाराज ने रघुनाथपन्त हणमन्ते से कहकर विशेष दक्षिणी गढ़न की एक मोती-बाली बनवा ली थी। छत्रपति महाराज के अन्तिम समय में मोरोपन्त तो थे नहीं, परन्तु उनका मन मोरोपन्त से मिलने के लिए छटपटा रहा था। अन्ततः छत्रपतिजी ने

https://t.me/Sahityajunction

वह बाली चांगोजी के हाथ सौंपी थी और आज्ञा दी थी, "यह हमारी भेंट मोरोपन्त को दे देना।" छत्रपति द्वारा प्रदत्त इस अनमोल उपहार को देखकर मोरोपन्त फूट-फूटकर रो उठे थे। वह बाली वे कभी कानों में पहन ही नहीं सके। कुल-देवता की भभूत के सदृश पूज्य मानकर वे उस बाली को सदैव अपने कमरबन्द में सँभालकर रखते थे। उन्माद-अवस्था में पहुँचने से पूर्व उन्होंने अपने पुत्र निलोपन्त को बुलाकर कहा था, "हमारे शरीर के साथ इस मुद्रा और उपहार का भी दहन कर देना। भूलना नहीं।"

सम्भाजी अत्यन्त उदास होकर मन्त्रियों के मोहल्ले से बाहर निकले। उसी दिन सायंकाल मन्त्रियों के मोहल्ले में रुदन का कोलाहल मच रहा था। मोरोपन्त की जीवन-यात्रा अन्तिम पड़ाव तक पहुँच चुकी थी। मराठा-साम्राज्य के कानों की वह सबसे प्राचीन और अनुभवी बाली आज कहीं गिरकर खो गयी थी।

उसी दिन राजा सम्भाजी ने लिपिक प्रह्लादपन्त को बुलाया था और उदासी-भरे स्वर से आदेश दिया था, "प्रधानमन्त्री, पेशवा के मृतक-कर्म पूरे होते ही उनके पुत्र निलोपन्त को पेशवाई के अधिकृत वस्त्र एवं मुद्रा-करण्ड सौंप देना।" और आगे कुछ भी न बोलते हुए वे भारी क़दमों से येसूबाई के महल की ओर जा रहे थे, उन्हें अपना यह निर्णय बताने के लिए।

"प्रह्लादपन्त, सब विभागों के सूबेदार, सर-सूबेदार और सेना-नायकों को पत्र भेजो। लिखो कि वे दशहरा बीतते ही अपने समूचे दल-बल सहित तुरन्त रायगढ़ की ओर रवाना हो जाएँ। अपने अधिकार के अन्तर्गत जितना क्षेत्र है, जितने दुर्ग आदि हैं, उनकी रक्षा के लिए आवश्यक सेना को वहाँ रखा जाय और अपने नियन्त्रण में जितनी भी शेष सेना हो, जितने भी घुड़सवार सैनिक हों और पैदल योद्धा हों—सबको एकत्रित करके यहाँ रायगढ़ आने के लिए लिखो। सबको स्पष्ट सूचना दो कि इस आदेश में किसी प्रकार की ढील अथवा उपेक्षा क्षमा-योग्य नहीं मानी जाएगी।" सम्भाजी के मन में निहित कोई निश्चित उद्देश्य था और आज ये आदेश लिखाते समय उनके मुख पर एक निराला तेज झलक रहा था।

सिंहासन वाले राजसभागृह में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति उनके बोलों को ध्यान देकर सुन रहा था; और सौंपी गयी ज़िम्मेदारी को किस प्रकार पूर्ण किया जाय, इसके विषय में मन-ही-मन सोच-विचार कर रहा था।

"सेनापति, अपने गुप्तचर विभाग के नायक बहिर्जी, विश्वास मुसेखोरकर, कर्माजी, महादेव आदि चुने हुए गुप्तचरों को रायगढ़ पहुँच जाने के आदेश भिजवाओ।"

आज्ञा सुनकर हम्बीरराव हर्षित हो उठे। वे भली प्रकार समझ गये थे कि राजा सम्भाजी के मन में क्या है। बोले, "चिन्ता न करें स्वामी, सात दिनों में ही सब गुप्तचर आपके सामने होंगे।"

"केशव पण्डित, तुम चिटनीस की सहायता से आचार्य गागाभट्ट से मिलने अपना एक दूत काशी भेजो। उन्हें लिखो : 'आपके पवित्र हाथों से हमारा अभिषेक हो, यह मनीषा है। आपने जैसे आबासाहब को उपकृत किया है, उसी प्रकार हमें भी कृतकृत्य बनाकर शुभकार्य सम्पन्न करें।' नासिक के आचार्य अनन्तभट्ट कावले को भी इसी आशय का निमन्त्रण पत्र भेजो।"

सारा राजसभागृह राजा सम्भाजी के मन में उठ रही योजनाओं का स्वरूप अब कुछ-कुछ

https://t.me/Sahityajunction

समझ पा रहा था।

"सन्ताजी, यमाजी, तुम बारहों मावल-खण्डों में तथा समुद्रतटवर्ती प्रदेश कोंकण में पहुँचो और जितने सैनिक एकत्रित कर पाओ, एकत्रित कर लो। राघोपन्त, चिमणगावकर, राजापुर के देवाजी विट्ठल, दाभोल नगर के वेंकाजी निमदेव आदि समुद्रतटवर्ती सूबों के जितने भी सूबेदार हैं, हरकारे भेजकर उन्हें सूचित करो कि राजापुर नागोठणे, दाभोल, थल आदि अपनी सभी नौसेना की छावनियों में सैनिकों को तैयार रखें।" जैसे कोई कुशल मछियारा विशाल जाल फेंकने से पहले पानी की गहराई आदि का अन्दाज़ लगाता है और उस समय उसके मुख पर जो भाव छाये रहते हैं, कुछ ऐसे ही भाव राजा सम्भाजी के मुख पर इस समय छाये हुए थे।

अपने ही विचारों में खोये हुए वे बैठक से उठकर नीचे सभागृह में आये और हर एक व्यक्ति के सामने आकर उसे देखते हुए आगे बढ़ने लगे। मूक भाषा में ही वे सबसे कहते जा रहे थे—'हमने जो कुछ कहा है, उसे सही-सही ढंग से पूरा करना होगा।'

"प्रह्लादपन्त, समुद्री सेना के नायक दौलत ख़ाँ मायनाक और कान्होजी आंग्रे को लिखो कि कार्तिक मास के बाद हमसे आकर मिलें।"

सम्भाजी जब आबाजी सोनदेव के सामने आये, तो उन्हें समर्थगुरु के शिष्य दिवाकर गोस्वामी की याद आ गयी। उनकी आवाज़ में एकदम मृदुता और नम्रता आ गयी। वे कहने लगे, "आबाजी, समर्थगुरु के शिष्य श्री दिवाकर गोसाईं हमसे कुछ दिन पूर्व मिले थे। समर्थगुरु के मठों के अधिकारपत्रों के नवीकरण की बात उन्होंने कही थी, परन्तु हम गत कुछ दिनों की व्यस्तता और दौड़-धूप में वह काम कर नहीं पाये।"

"जी!"

"तुम जावली प्रदेश के काशी रंगनाथ, सातारा विभाग के कोनेर रंगनाथ, कई नगर के येसाजी मल्हार—इन सूबेदारों को लिखकर सूचित करो कि समर्थगुरु रामदासजी के चाफल, शिंगणवाड़ी, सज्जनगढ़ और महाबलेश्वर के मठों के अधिकारपत्र उसी रूप में वैध माने जाएँ, जैसे कि महाराज साहब ने उन्हें प्रदान किये थे।"

"जी!"

फिर राजा सम्भाजी चलते-चलते रघुनाथपन्त हणमन्ते के सामने आये। अन्य दिनों की भाँति ही उन्हें देखते ही सम्भाजी के माथे पर बल पड़ गये। फिर भी अपने रोष को छिपाते हुए उन्होंने रघुनाथपन्त से कहा, "रघुनाथपन्त, तुम तुरन्त कर्नाटक प्रान्त को रवाना हो जाओ।"

"जी!" रघुनाथपन्त हणमन्ते चौंक गये। परन्तु राजा सम्भाजी ने उन्हें कुछ कहने का अवसर नहीं दिया। अपनी बात को शान्त वाणी से कहते हुए वे बोले, "कर्नाटक हमारा इतना विशाल सूबा है पर कितनी दूरी पर है। इसे भला तुम जैसे अनुभवी और निपुण अधिकारी के सिवाय और कौन सँभाल पाएगा?"

"जैसी आपकी आज्ञा हो।" रघुनाथपन्त के मुख से एक लम्बी आह निकल गयी, परन्तु उन्होंने उसे छिपाने का प्रयत्न किया।

फिर भी उनकी उसाँस राजा सम्भाजी से छिपी नहीं रही। सम्भाजी के विरुद्ध रचे गये षड्यन्त्र में रघुनाथपन्त भी शामिल थे। यह गुप्त सूचना सम्भाजी को बाद में मिल पायी थी।

https://t.me/Sahityajunction

परिणाम यह होना था कि रघुनाथपन्त इस नवीन आदेश के अनुसार जैसे ही कर्नाटक पहुँचते, वैसे ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जाना था।

राजा सम्भाजी ने सबको विदा के बीड़े दिये। सब लोगों के साथ-साथ कवि कुलेश भी बाहर जा रहे थे, परन्तु न जाने सम्भाजी के मन में क्या था, उन्होंने कवि कुलेश से कहा, "आप थोड़ा ठहरिए कविराज।"

सम्भाजी ने बिलकुल सहज भाव से यह सब कहा था। इसे सुनकर कई अधिकारियों के मन में कवि कुलेश के बारे में कुढ़न और चिढ़ उत्पन्न हुई होगी, यह बात सम्भाजी के ध्यान में भी नहीं आयी। कई अधिकारियों ने सोचा था—'यह कनौजिया चार दिन पहले आया है, और हमसे आगे बढ़ा जाता है। हम गुड़ रह गये, यह शक्कर हुआ जाता है।'

कुलेश के साथ सम्भाजी रनिवास में येसूबाई से मिलने आये। उन्होंने एक आज्ञा अन्य किसी को भी नहीं दी थी। वह आज्ञा उन्होंने अब येसूबाई को दी, "तुम गढ़ की व्यवस्था की देखभाल करना।"

अपने निश्चय को और स्पष्ट करते हुए सम्भाजी आगे कहने लगे, "हम कविराज को साथ लेकर मुस्लिम सन्त औलिया याकूत बाबा के दर्शनों के लिए केलशी गाँव जा रहे हैं। आबा साहब ने उनके बसने की सारी व्यवस्था की थी। हमें याकूत बाबा की संगत में बहुत आत्मिक सन्तोष प्राप्त होगा। हमारी इच्छा है कि कुछ दिन वहाँ रह आएँ।"

"जी, आप निश्चिन्त रहें।" येसूबाई ने कहा तो अवश्य परन्तु वे सम्भाजी को उस चर्चा का विवरण बताना चाहती थीं, जो उनके तथा उनके बड़े भाई गणोजी के बीच हुई थी, परन्तु उस समय कवि कुलेशजी सम्भाजी के साथ थे अतः उन्होंने वे सारी बातें मन में ही दबा रखीं।

उसी दिन शाम को कवि कुलेश और पचास सशस्त्र सैनिकों को साथ लेकर सम्भाजी रायगढ़ से उतर रहे थे। मार्ग के दोनों ओर धान के गहरे-गहरे खेत थे, जिनमें अब बालियाँ फूटने लगी थीं। इन्हें देखते हुए राजा सम्भाजी केलशी गाँव की ओर जा रहे थे।

केलशी में सम्भाजी पाँच दिन रहे। वहाँ याकूत बाबा के दर्शनों से उनका चित्त अतीव प्रसन्न हो उठा था। जब वे रायगढ़ वापस लौटे, तब तक हिरोजी इन्दुलकर ने 'सती का चौरा' तथा 'छत्रपति शिवाजी महाराज की समाधि' का निर्माण पूर्ण कर लिया था। 'चौरे' तथा 'समाधि' के दर्शन पाकर सम्भाजी को अतिशय प्रसन्नता एवं सन्तोष हुआ।

अब वर्षाऋतु समाप्त हो चुकी थी। रायगढ़ के पास बहनेवाली काल और गान्धारी नामक नदियाँ अब दो किनारों के बीच बहने लगी थीं। धान के खेतों में बालियाँ डोलने लगी थीं। आकाश में छायी आश्विन मास की पीली धूप में नीचे भूमि के हरे-भरे जंगल लहलहा रहे थे। वृक्षों के निखरे हुए हरे नीले पत्रसमूह में परेवा घुग्घी आदि पक्षी घुघुआने लगे थे। विविध रंग और जाति की चिड़ियों के झुण्ड-के-झुण्ड दूर-दूर से आकर वृक्षों पर आसरा लेने लगे थे।

विजयादशमी का पर्व आया। तेज़ धारवाली रक्त की प्यासी तलवारों को सूरमाओं ने अपनी कमरों से बाँध लिया। दशहरा होने के बाद मावलों की सेनाएँ चारों दिशाओं से आ-आकर पाचाड़ में जमा होने लगीं। कुल मिलाकर पचहत्तर हज़ार सैनिक पाचाड़ की छावनी आ पहुँचे थे।

मानाजी मोरे, तुकोजी पालकर, सन्ताजी खोरपड़े और बहिर्जी घोरपड़े, धनाजी जाधव,

https://t.me/Sahityajunction

केसो त्रिमल, सर्जेराव जेधे, सन्ताजी जगताप, दादाजी और तिमाजी काकड़े, दादाजी नरसप्रभु आदि वीर सेनानायक ऊपर चढ़कर पाचाड़ से रायगढ़ आये।

राजा सम्भाजी ने मुग़लाई प्रदेश के बागलाण, जव्हार, बरार, आदि जिन-जिन प्रदेशों में अपने गुप्तचर भेजे थे, वे बहिर्जी, विश्वास, कर्माजी आदि चतुर गुप्तचर अब उन प्रदेशों की पूरी जानकारी पाकर रायगढ़ लौट आये थे।

सिंहासन वाले राजसभागृह में एक बड़ी मुहिम की सभा आयोजित की गयी। जब राजा सम्भाजी सेनापति हम्बीरराव, प्रह्लादपन्त, आनन्दराव, निलोपन्त, कवि कुलेश आदि के साथ राजसभागृह में पधारे, तब एकत्रित सरदारों-बहादुरों ने उन्हें प्रथा के अनुसार अभिवादन किया।

सम्भाजी ने पहले उपस्थित सूबेदार, सरदार आदि से पूरी आत्मीयता के साथ कुशल-क्षेम की बातचीत की। उपस्थित सरदारों-वीरों की ओर दृष्टि दौड़ाते समय सम्भाजी के हृदय में अपार विश्वास जाग उठा। इस समय भी वे मन-ही-मन अनेक छोटी-मोटी बातों पर विचार कर रहे थे। और हाथ कौड़ियों की माला पर घूम रहा था। आगामी सैनिक-अभियान की अपनी विशाल योजना को स्पष्ट करते हुए वे वीरतापूर्ण शब्दों में कहने लगे, "आप सब रणक्षेत्र के सूरमा अपनी समस्त सेना सहित यहाँ इकट्ठे हुए हैं। हमें बहुत सन्तोष हुआ। 'श्री' की कृपा से आबासाहब ने इस राज्य की स्थापना की है, इसे बढ़ाया-सँवारा है। उसी 'श्री' के सामर्थ्य से हमें इस राज्य को उन्नति के शिखर तक पहुँचाना है। आज आबासाहब नहीं हैं, ऐसा न सोचें। वे हैं और यहीं हम सबके बीच ही हैं। हम तो केवल उनके पैरों की धूल हैं। आप सभी इतने बड़े साहसी लड़ाका वीर हैं कि चारों दिशाओं के शत्रुओं को परास्त करने में हम सबको कुछ भी देर नहीं लगेगी। आप सबकी शक्ति के बल पर ही हमने एक साथ तीन मोर्चों पर कूच करने की विशाल योजना बनायी है।" राजा सम्भाजी उस बड़ी मुहिम का विवरण देने से पहले कुछ देर रुक गये।

"रूपाजी, तुम मानाजी और सन्ताजी को तथा सात हज़ार सेना को साथ लेकर नासिक की ओर कूच करो। वहाँ साल्हेर दुर्ग के हंसाजी, त्रिम्बकगढ़ और सोनगढ़ की दो छावनियाँ तुम्हारी सहायता करेंगी। तुम्हारी सेना बहुत पराक्रमी है। उस सेना को किसी भी क्षण आदेश दिया जा सकता है और तब उसे नासिक के पूर्व की ओर स्थित ख़ानदेश[1] और बरार[2] की ओर चढ़ दौड़ना होगा। अथवा कभी पश्चिम दिशा में जव्हार प्रदेश की सहायता के लिए भी दौड़ जाना होगा, यह ध्यान रहे। पूर्व या पश्चिम किसी भी दिशा में सेना दौड़ाते समय अफ़वाह यही फैलाओ कि जैसे तुम्हारी सेना सूरत शहर पर हमला करने जा रही है।"

"जी," रूपाजी भोसले ने इस ज़िम्मेदारी को सहर्ष स्वीकार किया।

"निलोपन्त, तुम जव्हार, मनोर, गणेशगाँव आदि भागों में रहो और रूपाजी की सेना की एक दिशा की रक्षा के लिए तैनात रहो।

"दादाजी प्रभु, तुकोजी, तुम दोनों को सुधागढ़ से लेकर कल्याण तक देख-रेख रखनी होगी और उधर समुद्री किनारे पर यदि सिद्दी कासिम सिर उठाने का प्रयत्न करे, तो उसे दबाये रखना होगा। म्हलोजी, तुम कराड विभाग के अधिकारी वेंकाजी कद्र तथा सातारा के अम्बाजी मोरदेव के साथ रहो और बड़ी सावधानी से आदिलशाही की मिरज छावनी पर ध्यान देते रहो।"

"जी," सब आज्ञाओं को मुजरा करनेवाले हाथों ने सहर्ष स्वीकार किया।

https://t.me/Sahityajunction

“सेनापति, तुम आनन्दराव, केसो त्रिमल, नागोजी बल्लाल, धनाजी आदि चुनिन्दा सरदार और तीस हज़ार घुड़सवार सैनिक साथ लेकर मुग़लों के बरार और ख़ानदेश प्रदेशों पर धावे बोल दो। अफ़वाह यह फैलाओ कि तुम सेनासहित औरंगाबाद पर हमला करने जा रहे हो। ऐसा होने पर बुरहानपुर में मुग़लों की सेना पर धावा बोल देना। हम स्वयं बागलाण प्रदेश पर हमला करेंगे और वहीं से तुम्हारे साथ मिलकर बुरहानपुर को अपने घोड़ों की टापों तले रौंद डालेंगे।”

बुरहानपुर एक ऐसी दृढ़ मुग़ल छावनी थी, जो मुग़ल बादशाह का ‘दक्खिन का दरवाज़ा’ मानी जाती थी। छत्रपति शिवाजी ने एक समय मुग़ल बादशाहत के सूरत शहर को ‘बे-सूरत’ बना दिया था। अब उनके पुत्र कूच कर रहे थे—बुरहानपुर को ‘बीरानपुर’ बनाने के लिए।

सब दरबारियों को ‘सम्मान-वस्त्र’ तथा विदा के बीड़े भेंट किये गये। बहिर्जी कर्माजी आदि गुप्तचर विभाग के प्रमुख अधिकारी बरार की दिशा में चले गये, क्योंकि वहाँ उन्हें गुप्तचरों का जाल बिछाना था। गुप्तचर-अधिकारी विश्वास इसी उद्देश्य से बागलाण की ओर रवाना हो गया था।

घोड़ों की टापों से नाल जड़ने का काम पूरा किया जा चुका था और अब सारी आवश्यक सैनिक रसद से सुसज्जित होकर मराठा-सेनाएँ पूरी तरह तैयार हो चुकी थीं।

राजा सम्भाजी रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आये और मुहिम के लिए कूच करनेवाले सरदारों को उन्होंने गले लगाकर विदाई दी। हम्बीरराव से गले मिलते हुए वे बोले, “जब तुम बरार प्रदेश को मुट्ठी में दबा लोगे, तो हमें सूचना भिजवाना। हम तुम्हारे सन्देश की प्रतीक्षा करेंगे।”

“जी,” हम्बीरराव घोड़े पर सवार हो गये। नगर-द्वार से बाहर निकलते ही उन्होंने हथेली ऊँची फैलाकर नारा लगाया, “हर हर महादेव।” जयघोष से आकाश गुँजाती हुई यह मराठा वीरों की वाहिनी रायगढ़ की ‘ज़रीपताका’ के सम्मान को बढ़ाने के लिए निकल पड़ी थी। जैसे लाल चींटियों की सेना बिल से निकलकर चारों दिशाओं में दौड़ पड़ती है, कुछ ऐसा ही विशाल दृश्य था वह जब मराठा-सेनाएँ पाचाड़ की छावनी से चारों दिशाओं में फैलने लगी थीं। साम्राज्य के पराक्रमी सेनापति बरार और ख़ानदेश पर धावा बोलने निकल पड़े थे।

इधर रायगढ़ में राज्याभिषेक-समारोह की तैयारियाँ प्रारम्भ की जा चुकी थीं। कारीगरों ने राज-दरबार भवन, गढ़ के देवालय आदि भवनों की लिपाई-पुताई प्रारम्भ कर दी थी। सुखाने और चुनने-बीनने के लिए अनाज की बोरियाँ गोदामों से बाहर निकाली जा रही थीं। राजपुरोहित बालम्भट्ट नासिक के ब्राह्मणों को साथ लेकर पवित्र नदियों से जल लाने के लिए प्रस्थान कर चुके थे।

आठ दिन बाद कर्नाटक से ख़बर आयी : ‘रघुनाथपन्त हणमन्ते जिंजी नगर पहुँच गये हैं।’

यह समाचार सुनकर राजा सम्भाजी हरजी से कहने लगे, “ये रघुनाथपन्त हणमन्ते कोल्हापुर के सूबेदार अपने भाई जनार्दनपन्त से मिलकर हमें पन्हालगढ़ में गिरफ़्तार करना चाहते थे। हरजी, हमने जो तुम्हें एक ज़िम्मेदारी सौंपने की बात कही थी, वह यही है कि तुम कर्नाटक सूबे की सूबेदारी सँभालो। हमारी इच्छा है कि तुम जैसा कोई घर का आदमी, कोई अपना आदमी ही इस कर्नाटक सूबे का सूबेदार बने। रघुनाथपन्त हणमन्ते वहाँ कर्नाटक पहुँचकर गिरफ़्तार कर लिये जानेवाले हैं।”

https://t.me/Sahityajunction

हरजी ने 'जैसी आज्ञा' कह तो दिया, परन्तु तनिक सोच में डूब गये। फिर उन्होंने अपना मत स्पष्ट रूप से कह दिया, "आप हमें जो भी उत्तरदायित्व सौंपेंगे, हम सँभालने के लिए तैयार हैं। परन्तु सोच इसी बात का है कि रघुनाथपन्त इस साम्राज्य के लेखाध्यक्ष हैं। लेखा और हिसाब का वह विभाग खाली रखकर भला काम कैसे चल पाएगा?"

सम्भाजी ने हँसकर निलोपन्त की ओर देखा और आँखों के संकेत से ही कुछ आदेश दिया। निलोपन्त उस संकेत का आशय समझकर बाहर चले गये। तब सम्भाजी ने हरजी से कहा, "लेखा-विभाग की व्यवस्था के बारे में हमने कुछ निश्चित कर लिया है। आशा है कि तुम भी उसे पसन्द करोगे।"

परन्तु हरजी कुछ अन्दाज़ नहीं लगा पाये।

थोड़ी देर बाद निलोपन्त अण्णाजी दत्तो और बालाजी आवजी को लेकर राजा सम्भाजी के सम्मुख उपस्थित हुए।

अण्णाजी का सिर ऊँचा उठता ही नहीं था तथा बालाजी इस भय से हड़बड़ाये हुए थे कि जाने अब उन पर क्या बीतेगी?

"अण्णाजी!" सम्भाजी उनके सामने आकर ठहर गये, "सिर ऊपर उठाओ, अण्णाजी। हम चाहते हैं कि हमारे राज्य के लेखाध्यक्ष हमेशा गरदन और सीना तानकर रहें।"

क्षणभर के लिए अण्णाजी को प्रतीत हुआ कि वे सपना देख रहे हैं। वे कुछ कहना चाहते थे, पर जैसे वाणी मूक हो गयी थी।

"तुम्हारा स्वभाव नाप-तोल करने का है। प्रवृत्ति से तुम मितव्ययी हो, इस कारण तुम लेखाध्यक्ष पद के लिए एक योग्य अधिकारी हो। इस पद पर कार्य करते समय लगान की छूट देने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता और इसलिए यह भी सवाल अपने आप ख़त्म हो जाता है कि हम तुम्हारे अधिकार में हस्तक्षेप करेंगे। तुम्हारी योग्यता को परखकर ही हम बहुत सोच-समझकर ही यह लेखाध्यक्ष की ज़िम्मेदारी तुम्हें पूरे सम्मान सहित सौंपते हैं। हमें तुमसे कोई वैर नहीं है अथवा तुम्हारे बारे में हमारे मन में रोष की भावना भी नहीं है। तुमने हमारे सामने जो कुछ सीधा-साफ कहा था, वह बिल्कुल सही था। आबासाहब के सुरनीस को, सचिव, को इसी ढंग से बात करनी चाहिए।" आँखों में व्यथा भर आने के कारण सम्भाजी कुछ देर ठहर गये।

"हम दुर्व्यवहार कर बैठे थे, भटककर चले गये थे पठान के दल में। तुमने हमें उसके बारे में याद दिलाया, वह उचित ही किया। हमने शपथ ली है कि हम कुछ ऐसा कर दिखाएँगे कि जिससे लोग हमारी भूल को भूल जाएँ। तुमने आबासाहब के शासनकाल में लगान और राज्यकर के नियम अति उत्तम रीति से बनाये थे। अब लेखाध्यक्ष के राजकार्यालय का भी समुचित रीति से संचालन करो। हमें विश्वास है कि तुम यह काम पूरी ईमानदारी से करोगे।"

अण्णाजी तो यहाँ मौत के लिए तैयार होकर आये थे, और उन्हें मिला सम्मानपूर्ण पद। वे उस सम्मान देनेवाले राजा के सामने क्या कहें, यही समझ नहीं पा रहे थे। "बस, इतना ही ध्यान रखो अण्णाजी, कि लेखे का सम्बन्ध राज्य की साधन-सम्पत्ति से है। उसमें हमारे या राजाराम के सम्बन्ध के घटा-जोड़ का हिसाब कतई नहीं आना चाहिए। इतनी सावधानी अवश्य बरतना।"

इसी प्रकार राजा सम्भाजी अब बालाजी के सामने आये। इस समय न जाने क्यों सम्भाजी

https://t.me/Sahityajunction

के मन में खण्डोजी और चिटनीस पद का मिला-जुला रूप अचानक दिखाई देने लगा था।

"चिटनीस, तुम्हारी सुन्दर लिखावट को देखकर आबासाहब ने तुम्हें नियुक्त किया था। तुमने अपनी पूरी योग्यता एवं सामर्थ्य से लेखनी द्वारा राज्य की सेवा की। तुम वयोवृद्ध हो, अनुभवी हो। हमारे नाम पन्हालगढ़ को जो ख़लीता भेजा जानेवाला था, उसे लिखने से तुमने इनकार कर दिया था, परन्तु उसी काम के लिए तुमने अपने पुत्र आवजी को चिटनीस का सिक्का और मुहर देकर माँजी के पास भेज दिया। इस मामले में तुम तीन त्रुटियाँ कर बैठे।

"पहली चूक यह है कि तुमने चिटनीस पद की मुहर दूसरे के हाथ में दी। जिस काम को करने के लिए तुम्हारा हृदय गवाही नहीं देता था, वही काम दूसरा निभा लेगा, तुम्हारा यह सोचना दूसरी चूक थी। तीसरी यह कि तुमने ऐसी युक्ति ढूँढ़ निकाली कि जो न तो स्वीकृति थी, न ही अस्वीकृति थी। और फिर भी तुम इस भ्रम में रहे कि तुमने बहुत चतुराई से काम लिया।

"चिटनीस, किसी भी राज्य में दो बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं, क़लम और तलवार की। इन दोनों में यथायोग्य सहयोग बना रहे तभी राज्य चलता है। राजा अपनी तलवार को दूसरे के हाथ सौंपकर युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकता, तथैव कोई चिटनीस यदि अपनी लेखनी दूसरे को सौंप दे, तो राज्य कैसे चल पाएगा? याद रखो, तुम्हारे हाथ में जो लेखनी है, वह एक शक्तिशाली शस्त्र है। उसे ऐसा सँभालकर पकड़ो कि कहीं अपना ही हाथ घायल न हो जाए। हम आज तुम्हारा चिटनीस का पद तुम्हें सम्मानसहित फिर से प्रदान करते हैं।"

"जी, जैसी आज्ञा," बालाजी को बड़े महाराज की सेवा करते समय ऐसी बातें सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

चिटनीस और लेखाध्यक्ष चले गये।

इसके बाद बड़ी देर तक सभागृह में नीरवता छायी रही। कुछ देर बाद निलोपन्त ने इस शान्ति को भंग करते हुए कहा, "करहा के पठारों में मोरेश्वर गोसाईं रहते हैं। उन्होंने एक शिकायत लिख भेजी है, स्वामी!"

"क्या शिकायत है उनकी?"

"वे कहते हैं कि हमारी सेनाओं के सैनिकों ने उनके सेवकों को सताया है तथा उनकी खेती-बाड़ी को नुकसान पहुँचाया है।"

राजा सम्भाजी की मुखमुद्रा पर कठोरता छा गयी। उन्होंने जानकारी पाने के लिए पूछा, "उस पठारी प्रदेश का हवलदार कौन है, पन्त?"

"जिवाजी नारायण!"

"जिवाजी को कड़ी चेतावनी दो। लिखो कि गोसाईं बाबा के लोगों को खेतीबाड़ी को या उनके मवेशियों को किसी प्रकार ही हानि न पहुँचे। यदि फिर दुबारा ऐसी शिकायत आयी, तो क्षमा नहीं किया जाएगा।"

इसी समय राजा सम्भाजी को एक समाचार की याद आ गयी। समाचार यह था कि सोलापुर के क़िले से शत्रु की पच्चीस तोपें किसी अन्य स्थान पर ले जायी जा रही थीं। और मावला-सैनिकों ने वे पच्चीस तोपें बीच में ही छीन ली थीं। उन्होंने कहा, "निलोपन्त, सेनापति हम्बीरराव का भेजा कोई हरकारा आएगा। उसकी ओर ध्यान रखो। हम सोलापुर और साँगोला नगरों की

https://t.me/Sahityajunction

ओर कूच कर रहे हैं, शीघ्र ही लौट आएँगे।"

राजा सम्भाजी रायगढ़ से उतरे। सोलापुर के निकटवर्ती प्रदेश में एक बार घूमकर और उन तोपों की व्यवस्था करके वे चार दिन बाद ही रायगढ़ लौट ओये।

पश्चिमी समुद्र के किनारे पर सिद्दी की उपद्रवी कार्यवाहियाँ हमेशा चलती ही रहती थीं। इन्हें क़ाबू में रखने के लिए मुम्बई के अँग्रेज़ों को वश में रखना ज़रूरी था। क्योंकि सिद्दी समुद्री प्रदेश में जो ऊधम मचाता था, वह अँग्रेज़ों के बलबूते पर ही। चतुर अँग्रेज़ों ने सिद्दी के बारे में आँखों पर पट्टी बाँध कर बैठने में ही चतुराई दिखलायी थी। और उनकी यह कपट-नीति तब तक बदलनेवाली नहीं थी जब तक कि उनके भी कान न उमेठे जाएँ। राजा सम्भाजी ने इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर यह निर्णय किया कि मुम्बई से अँग्रेज़ों के चाइल्ड तथा बार्ड इन दो अँग्रेज़ अधिकारियों को बुलाकर आख़िरी बार चेतावनी दी जाय। इस काम के लिए उन्होंने आवजी चिटनीस को बुलवा भेजा।

"आवजी, तुम गोरों के दरबार में जाओ और उन्हें स्पष्ट व साफ-साफ कह सुनाओ।" सम्भाजी आवजी को दूत कर्म की आवश्यक सूचनाएँ विस्तारसहित देने लगे, "उनसे कहो कि तुमने आबासाहब से जो समझौता किया है, उसके अनुसार सिद्दी को क़ाबू में रखना तुम्हारी ज़िम्मेदारी है। उस ज़िम्मेदारी को निभाने में अगर कोई उपेक्षा हुई, तो स्वयं हम ही मुम्बई पर हमला कर देंगे और फिर मुम्बई की ईंट-से-ईंट बजा देंगे। हब्शी सिद्दी को क़ाबू में रखने के लिए हमें दस हज़ार पैदल सिपाहियों को समुद्री किनारे पर तैनात रखना पड़ता है, यह हमारे लिए महँगा सौदा है। तुम सिद्दी को उसके पूरे समुद्री बेड़े के साथ मुम्बई बन्दरगाह से बाहर भगा दो, अन्यथा हमें मुम्बई पर हमला करना ही पड़ेगा। साफ-साफ बतला दो यह अँग्रेज़ों को।" सिद्दी का काँटा सम्भाजी के दिल में चुभकर कितना कष्ट दे रहा था, यह बात इस समय सम्भाजी की मुखमुद्रा से साफ प्रकट हो रही थी।

"और सुनो, तुम यह चेतावनी देने के बाद वहाँ मुम्बई में ही रुके रहो और इस बात पर नज़र रखो कि अँग्रेज़ हमारी इन सूचनाओं का कहाँ तक पालन करते हैं। तुम प्रह्लादपन्त से दूत के अधिकार-पत्र प्राप्त कर लो और आज ही इस काम के लिए रवाना हो जाओ।"

"जी, जैसी आज्ञा!" आवजी समझ गये कि यह दूतकर्म हमारी कसौटी ही है। सम्भाजी ने भी उन्हें यह दूतकर्म इसी उद्देश्य से सौंपा था कि वे आवजी की योग्यता परखना चाहते थे।

आवजी को गये अभी चार दिन ही हुए थे कि जासूसों ने मुग़लाई के सूरत शहर से मिला एक अद्भुत समाचार राजा सम्भाजी को सुनाया। यह अजीब कारनामा था मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब के बारे में। समाचार यह था कि बादशाह ने अपने को इस्लाम का सच्चा नेक बन्दा सिद्ध करने के लिए आगरा के चौक में सुन्दर अछै कलात्मक चित्रों का तथा लकड़ी की मोहक मूर्तियों का ढेर लगाकर उन्हें जलवा दिया था। इन वस्तुओं का मूल्य लगभग तीन लाख रुपये था और ये सुन्दर शिल्पकृतियाँ उसकी ही मिल्कियत थीं। फिर भी उसने इन्हें जलवा डाला। उन ललित कला की चित्रमूर्ति आदि वस्तुओं पर आरोप यह लगाया गया था कि वे कुरान शरीफ़ के विरुद्ध हैं।

यह सुनकर राजा सम्भाजी ने मन में सोचा कि कोई नेक बन्दा यदि औरंगज़ेब को उस समय यह सुझा देता कि 'जलाना' तो इस्लाम की प्रथा नहीं है, तो अवश्य ही औरंगज़ेब हज़ारों मज़दूर लगाकर अपनी ज़िद पर आकर उन वस्तुओं को दफ़न भी करा देता।

https://t.me/Sahityajunction

सम्भाजी ने उस औरंगज़ेब का चेहरा याद करने का प्रयत्न किया जिसे उन्होंने बचपन में आगरा के दरबार में और दूर ऊँचे तख़्त पर बैठे हुए देखा था, परन्तु उन्हें वह चेहरा ठीक से याद नहीं आ रहा था।

निलोपन्त नासिक से आये हुए आचार्य अनन्तभट्ट, केशव पण्डित, उमाजी पन्त, कवि कुलेश आदि सहित सम्भाजी से मिलने आये। अनन्तभट्ट ने सामने खोलकर रखे हुए पंचांग पर अन्तिम बार दृष्टि दौड़ायी और बोले, "आगामी माघ शुद्ध सप्तमी का दिन राज्याभिषेक के लिए सर्वथा शुभदायी है, स्वामिन्। पंचमी से विधियों का प्रारम्भ किया जा सकता है।"

"ठीक है। निलोपन्त, इस शुभ मुहूर्त की सूचना तथा निमन्त्रण सब को भिजवा दो।"

"जी। फोंडा प्रान्त के भीमगढ़ के हवलदार नागोजी इंगले ने एक सिफ़ारिश की है, स्वामिन्।" निलोपन्त ने राजकार्यालय से सम्बन्धित एक मामला पेश किया।

"किस बारे में सिफ़ारिश की है उन्होंने?"

"भीमगढ़ विभाग में कोई नामोजी नाईक सरदेसाई रहते हैं। उन्होंने विदेशियों के आक्रमण के समय भीमगढ़ के आस-पास के गाँवों की रक्षा के लिए बड़ी वीरता दिखलायी थी। इस वीरता के फलस्वरूप नागोजी नाईक को अंगुज भाग के हेमाड़ बार से चन्द्रवाड़ी आदि गाँवों का 'सरदेशमुख'[1] पद पुरस्कार रूप में दिया जाय, ऐसी सिफ़ारिश की है भीमगढ़ के हवलदार ने।"

"पन्त, उस हमले का पूरा वृत्तान्त प्राप्त करो। फोंडा प्रान्त के मुद्राधिकारी धर्माजी नागनाथ की सलाह लेकर घटना की सच्चाई जान लो और उसके बाद ही नाईक को 'सरदेशमुख' पद देना।"

"जैसी आज्ञा स्वामी।" निलोपन्त मुजरा करके सबके साथ चले गये। अब खाली बैठक में सम्भाजी ही अकेले रह गये। वे चहलकदमी कर रहे थे। एक-एक क़दम पर पीड़ादायी स्मृतियों के काँटे उनके मन को छील रहे थे। 'लिंगाणा दुर्ग से नीचे गहरी खाई में कूदनेवाली गोदावरी, चिता पर आरोहण करनेवाली दृढ़ निश्चयी सती माँ, अहमदनगर के क़िले की कोठरी में बन्द दुर्गा—कैसा है यह स्त्री का जीवन? कैसी-कैसी कठोर परीक्षाओं से गुज़रना पड़ता है इसे?'

राजा सम्भाजी का मन द्रवित हो उठा। मन को मरोड़नेवाली निराशा गहरी होती हुई धीरे-धीरे तीव्र रोष में बदलने लगी। मन के द्वार को खटखटाकर कोई कह रहा था—'चलो, अहमदनगर चलो।'

इतने में प्रहरी ने सूचना दी, "दिवाकर गोसाईं पधारे हैं।" सम्भाजी का टहलना थम गया और हाथ ने अपने आप उठकर स्वीकृति दे दी।

धर्मादा विभाग के अधिकारी मोरेश्वर पण्डितराव कफ़नीधारी दिवाकर गोसाईं सहित भीतर प्रविष्ट हुए। सम्भाजी ने गोसाईंजी से उनके कुशल-समाचार जाने और फिर समर्थगुरु के विषय में जानना चाहा। "समर्थगुरु आजकल किस देश को पवित्र कर रहे हैं? कैसे हैं वे?"

"सद्गुरु रामदासजी सज्जनगढ़ में हैं। जब से छत्रपति महाराज परलोक सिधारे हैं, सद्गुरु उदास दिखलाई देते हैं।" दिवाकर गोसाईं ने उत्तर दिया।

"गोसाईंजी, जब आप सज्जनगढ़ वापस जाएँगे, तब हमारे प्रतिनिधि राघो अनन्त भी समर्थगुरु के दर्शनार्थ आपके साथ आएँगे। सद्गुरु महाराज को हमारा दण्डवत् प्रणाम कहना

https://t.me/Sahityajunction

और निवेदन करना कि माघ शुद्ध सप्तमी को हमारा राज्याभिषेक सम्पन्न हो रहा है। उनका कृपामय करों का आशीष पाकर हम धन्य हो उठेंगे। अब उनके अतिरिक्त हमारे लिए और कौन इतना वन्दनीय है, जो हमें आशीर्वाद दे सके।" राजा सम्भाजी के मुख पर वेदना फैल गयी थी। दिवाकर गोसाईं ने भी उनकी इस वेदना को ताड़ लिया था। इस कारण वे आग्रह करते हुए बोले, "राजन् यदि आप ही स्वयं सज्जनगढ़ आकर..."

"हमने यही सोचा था। परन्तु अब अवसर ऐसा है कि हमें किसी भी क्षण रायगढ़ से बरार की ओर कूच कर देना होगा। यह कृपया जाते ही समर्थगुरु की सेवा में निवेदन कर देना। कृपया जाते समय राघो अनन्त को साथ ले जाएँ। पण्डितराव, समर्थगुरु जी के नाम एक निमन्त्रण-पत्र लिखवाकर भेजने की व्यवस्था करें। समर्थगुरु जी के लिए सम्मान-वस्त्र तथा भगवान की पूजा के लिए वस्त्र-अलंकार आदि भेजने की व्यवस्था कीजिए।"

दिवाकर गोसाईं जब नमस्कार करके जाने लगे, तब सम्भाजी के मन में एक विचित्र-सी रहस्यमयी कल्पना उदित हुई—'समर्थगुरु रामदास अपनी युवावस्था में विवाह की वेदी से भाग निकले थे। फिर उन्होंने घोर तपस्या की। अपने तप की शक्ति से उन्होंने अनेक मठों की स्थापना की, सैकड़ों शिष्यों को दीक्षा दी। 'दासबोध' जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की। इस प्रकार वे जड़ सांसारिक इच्छाओं के प्रति अत्यन्त निष्काम, निरपेक्ष बने रहे हैं। परन्तु क्या उस महान् सन्त को भी कभी अपनी उस वधू की स्मृति आयी होगी?'

इस कल्पना के साथ ही तुरन्त दूसरा विचार उठ खड़ा हुआ—दुर्गाबाई के विषय में। इस मर्मस्थल की चोट का इलाज था केवल यही कि अहमदनगर पर हमला बोल दिया जाय।

इसके दो दिन बाद की बात है कि बरार से समाचार लेकर हम्बीरराव का भेजा हुआ हरकारा आ पहुँचा। समाचार था : 'हमने बरार को चंगुल में फँसा लिया है। आप इधर आ जावें।'

येसूबाई से विदा होकर राजा सम्भाजी खण्डोजी बल्लाज, कृष्णाजी कंक, जानराव, हिम्मतराव आदि चुनिन्दा सरदारों सहित रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आये। वहाँ की अश्वशाला से दस हज़ार ज़ीन कसे हुए घोड़े निकले और उनकी टापों से उठती धूल से आकाश में बवण्डर-सा आ गया।

रायगढ़ से यह घुड़सवार सेना पुणे, चाकण, खड़े, नारायणगाँव, संगमनेर, अहिवन्तगढ़ में पड़ाव डालती हुई, भीमा, घोड़, प्रवरा तथा गोदावरी नदियों के जल से घोड़ों की प्यास बुझाती हुई बागलाण प्रदेश तक पहुँची। यहाँ रूपाजी भोसले के जासूसों ने बुरहानपुर की ख़बर सुनायी : 'बुरहानपुर के क़िले में केवल पाँच सौ सैनिक हैं। शेष सैनिक बरार की दिशा में जा चुके हैं।'

राजा सम्भाजी ने विश्राम करने के उद्देश्य से फ़ौज को पड़ाव डालने की आज्ञा दी और हम्बीरराव को सूचना भिजवायी : 'अब तुम बरार से हट जाओ और तेज़ी से लपककर धरणगाँव और चोपड़ा नगरों तक पहुँचो।'

हम्बीरराव ने आज्ञा का पालन किया और शत्रु को झाँसा देकर बरार प्रदेश के बाहर निकल गये। मुग़ल सेनापति बहादुर ख़ाँ यह समझ ही नहीं पाया कि ऊधम मचानेवाले मराठे आये किधर से थे और यकायक ग़ायब कहाँ हो गये। वह आख़िर औरंगाबाद पहुँच गया और उस छावनी को मज़बूत बनाकर वहीं बैठ गया।

https://t.me/Sahityajunction

हम्बीरराव की सेना बरार से निकलकर जालना, फर्दापुर, एरण्डोल आदि मुग़ल-छावनियों को भभकी देकर धरणगाँव और चोपड़ा नगरों तक पहुँच गयी। यहाँ बागलाण से निकली सम्भाजी की सेना उनकी सेना से आ मिली। बरार में अब भी दस हज़ार मराठा फ़ौज मौजूद थी ही। दो सेनाओं की संख्या मिलाकर कुल तीस हज़ार तक पहुँच गयी।

यह सेना की बाढ़ बुरहानपुर की ओर बढ़ चली। बुरहानपुर क्या था, मानो, स्वादिष्ट मिष्टान्नों से भरा एक थाल ही था। उस क़िले में दृढ़ चहारदीवारी से सुरक्षित एक उपरिकोट था और उसके चारों ओर समुद्र की व्यापारी मण्डी के सत्रह पुरे थे। ये पुरे उपरिकोट से बाहर थे और पूर्णतः असुरक्षित थे।

मुग़ल साम्राज्य के इस 'दक्खिन दरवाज़े' का सूबेदार था ख़ाने जमाँ। जैसा कि हमेशा होता था, ख़ान साहब इस समय भी छावनी में नहीं थे। उनका सहायक सूबेदार काकड़ ख़ाँ ही कार्य पूरा करता था। अब काकड़ ख़ाँ पर यह मुसीबत आयी थी कि उसने आज तक जितना भी जजिया कर वसूल किया था, उसे ब्याज सहित वह सब चुकाना पड़ रहा था।

'हर हर ऽ महादेव' रणगर्जना करते हुए मराठा सेनाओं ने बुरहानपुर को घेर लिया। कड़ाके की सर्दी के कारण काकड़ ख़ाँ पहले से ही अकड़ा हुआ था, अब दिल दहला देनेवाली सेना के हमले से पूरी तरह जम गया था। उसने एक सीधा-सरल उपाय ढूँढ़ निकाला। जितने भी आदमी थे, उन्हें क़िले में बन्द करके क़िले के दरवाज़े ही बन्द करवा दिये और क़िले से बाहर के धनी व्यापारियों को मौत के भरोसे छोड़ दिया। हम्बीरराव, नागोजी और केसो त्रिमल ने इन व्यापारियों को क़ब्ज़े में कर लिया।

नवाबपुरा, ख़ुर्रमपुरा, शाहगंज, शाहजहाँपुरा, हसनपुरा आदि व्यापारी पुरों के सर्राफों की और व्यापारियों की दुकानें लूट ली गयीं। सोने, चाँदी, मोती और नक़द रुपये-पैसों के सिक्कों के ढेर राजा सम्भाजी के सामने श्रेणी के अनुसार लगाये जाने लगे। उन वस्तुओं की गिनती करके उन्हें वहीं पर बोरों में भरकर मुहर लगा दी जाती थी।

कुछ मावला-सैनिक उपरिकोट की चहारदीवारी से सीढ़ियाँ लगाकर चढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु चहारदीवारी काफी ऊँची और मज़बूत थी, इसलिए वे सफल नहीं हो पा रहे थे। हम्बीरराव तो बिजली बने हुए शहर के चारों ओर घोड़ा दौड़ाते हुए सैनिकों में जोश भर रहे थे।

जो धन-दौलत ऊपर थी, उसे प्राप्त करने में पहला दिन बीत गया। अगले दो दिन ज़मीन में गढ़े हुए धन को खोदकर निकालने में खर्च हो गये। इन तीनों दिनों तक बुरहानपुर की ये व्यापारी-मण्डियाँ आग में धधक रही थीं। मावलों ने लाखों की सम्पत्ति बोरों में भरकर उस 'दक्खिन दरवाज़े' से बाहर निकाल ली थी।

राजा सम्भाजी और सेनापति हम्बीरराव इन तीनों दिनों तक इस आक्रमण को अपनी जागरूक दृष्टि से देखते हुए यहाँ से वहाँ दौड़ते फिरते थे। इसी बीच बरार प्रदेश से आये जासूसों ने यह समाचार दिया कि 'औरंगाबाद का मुग़ल सेनापति बहादुर ख़ाँ ताक़तवर फ़ौज के साथ बुरहानपुर की कुमक के लिए बढ़ा आ रहा है।'

मावलों की सेना जंगली हवाओं की तरह झपटते हुए आयी थी और उसी चपलता से मराठे लूट का अनगिनत माल समेटकर बुरहानपुर को सुलगता छोड़कर भाग गये थे। बुरहानपुर में मावली सेना को बहुमूल्य कपड़ों के थान, काँच की कलात्मक वस्तुएँ आदि भी मिली थीं, परन्तु

https://t.me/Sahityajunction

उन्हें ले जाने के लिए कोई वाहन नहीं था। इस कारण ऐसी कई चीज़ों को वे पीछे छोड़ आये।

अब सेना को दो विभागों में बाँट दिया गया। जिस फ़ौज के पास लूट का माल था, उसका नेतृत्व सम्भाजी कर रहे थे। वे चोपड़ा और धरणगाँव के रास्ते फिर बागलाण की ओर मुड़े तथा हम्बीरराव और नागोजी की दूसरी सेना फिर पलटकर बरार प्रदेश में घुस गयी।

सम्भाजी ने बागलाण प्रदेश के साल्हेरी नगर में एक दिन पड़ाव डाला और वहाँ सीमा पर स्थित गाज़ियापुर नामक छावनी को भी उन्होंने तहस-नहस किया और इस प्रकार अगणित सम्पत्ति समेटकर वे अहिवन्तगढ़, रामसेज और पहाड़गढ़ में मुकाम करते हुए रायगढ़ की ओर आगे बढ़ने लगे।

राजा सम्भाजी तो दूर बसे नगर, बुरहानपुर में सैनिक कार्यवाहियों में व्यस्त थे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति में पीछे रायगढ़ में जो एक छोटी-सी घटना हुई, उसका पता भला उन्हें कैसे चलता? हुआ यह था कि राजा सम्भाजी के नये लेखाध्यक्ष अण्णाजी को सोयराबाई ने 'स्वास्थ्य' के विषय में पूछताछ करने के लिए बुलाया था।

उन्हें अपने महल से विदा करते समय सोयराबाई ने बड़े भोलेपन से कहा था, "अण्णाजी, लगता है, लेखाध्यक्ष का पद तुम्हें बहुत रास आ रहा है।" सोयराबाई आख़िर सोयराबाई ही थीं, वे कोई दुर्गाबाई नहीं थीं कि पहरे में क़ैद होकर जैसे-तैसे जीवन के दिन काट लें। फिर सोयराबाई तो थीं महारानी। वे भला रायगढ़ में ही पहरे की चौकियों में बन्द रहना क्योंकर बर्दाश्त कर पातीं!

राजा सम्भाजी जब वापस लौटे, तो उन्हें दो अप्रिय समाचार सुनने पड़े। केशव पण्डित ने पहला समाचार उन्हें बतलाया : 'काशी के आचार्य गागाभट्ट राज्याभिषेक-समारोह के समय उपस्थित रहने में असमर्थ हैं। उन्होंने राज्याभिषेक सम्बन्धी एक धार्मिक-ग्रन्थ लिखा है। आचार्य महोदय ने वह ग्रन्थ भिजवाया है और कहलवाया है कि इस ग्रन्थ के अनुसार अभिषेक-समारोह सम्पन्न कर लिया जाय। राजा सम्भाजी इस ग्रन्थ-रूपी उपहार को स्वीकार करें।'

आचार्य गागाभट्ट ने धार्मिक विधि-विधानों से सम्बन्धित 'समनयन' नामक ग्रन्थ लिखवाया था और वह उन्होंने राजा सम्भाजी के लिए भिजवाया था। दूसरा अप्रिय समाचार वह था, जिसे राघो अनन्त ने बतलाया। राघो अनन्त समर्थगुरु रामदास से मिलने सज्जनगढ़ गये थे। समर्थगुरु ने सन्देश भिजवाया था : 'हम आने में असमर्थ हैं। हमने छत्रपति महाराज को जो शूर कोदण्ड भेंट दिया है, उसे धारण कर आप सिंहासन पर आरूढ़ हों।'

निष्काम-निरपेक्ष वृत्ति समर्थगुरुजी का स्वभाव था। वे छत्रपति महाराज के राज्याभिषेक के अवसर पर भी उपस्थित नहीं हुए थे। आचार्य गागाभट्ट के लिए दूरी एक बहुत बड़ी बाधा थी। सब ओर अभिषेक-समारोह के निमन्त्रण-पत्र भेजे जा चुके थे। अब रायगढ़ में दूसरे महान् राज्याभिषेक-समारम्भ की तैयारियाँ पूरे ज़ोर से प्रारम्भ की जा चुकी थीं। गढ़ के बारहों महलों और अट्ठारहों कारख़ानों की लिपाई-पुताई तथा साज-सजावटों का काम भी शुरू किया जा चुका था।

रामजी दत्तो नामक शिल्पकार ने कुलदेवता भवानी के लिए सुवर्ण-छत्र बनाया था। इस सम्मान-छत्र को पालकी में रखकर राजा सम्भाजी कवि कुलेश, खण्डोजी और उमाजी पण्डित

https://t.me/Sahityajunction

के साथ रायगढ़ से उतरे। वे इसे अपनी कुलदेवी को अर्पण करने के लिए और देवी की विशेष नैमित्तिक पूजा करने के लिए प्रतापगढ़ पहुँचे।

वहाँ देवी भवानी की षोडशोपचार पूजा करके और उसे सम्मान-छत्र समर्पित करके राजा सम्भाजी ने नेत्र बन्द कर तथा हाथ जोड़कर उस माँ जगदम्बा से आशीर्वाद माँगा, "यह सिंहासन महान् है, हम तुच्छ हैं। तेरे आशीर्वाद से ही हम यह कर्तव्य पूर्ण कर पाएँगे। देवी, हमारे आबासाहब की पीठ पर हाथ फेरकर उन्हें प्रेरणा देनेवाले कई आत्मीय जन थे, पर हम अभागे हैं कि हमारी पीठ पर हाथ फिरानेवाला कोई वयोवृद्ध वन्दनीय जन आज नहीं है। यदि है, तो बस एक तू ही। हमें अपनी शरण में ले ले माँ, और हमें उद्देश्य को पूर्ण करने की शक्ति दे। अपने इस उपासक की लाज निभाना अब तो तेरे ही हाथ है।"

उस रात्रि को सम्भाजी ने माँ भवानी के सम्मुख एक गीत-नृत्यात्मक पूजा का आयोजन भी कराया। फिर अगले दिन वे रायगढ़ लौट आये। अब लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड रायगढ़ चले आ रहे थे। वासुदेव, पिंगले, बैरागी, फ़कीर, गोसाईं आदि विविध पन्थों-सम्प्रदायों के श्रावकगण प्रभूत दान की आशा लेकर चले आये थे। नासिक, कराड़, करवीर, आलन्दी आदि धार्मिक तीर्थ क्षेत्रों से आकर ब्राह्मण वृन्द भी विशाल संख्या में एकत्रित हो गये थे।

उस पर्वतीय दुर्ग के ऊपरी विस्तृत मैदानों में जहाँ-तहाँ रवटियाँ, डेरे, शामियाने आदि लगे हुए थे। सिंदखेड़, फलटण, शृंगारपूर, जिंजी, तलबीड आदि स्थानों से राजकुल सम्बन्धी जन भी आ चुके थे और रायगढ़ की सभी इमारतों में अब सब ओर कोलाहल और धूमधाम मची हुई थी।

बरार और ख़ानदेश के मोर्चे का नियन्त्रण नागोजी और केसो त्रिमल के हाथों में सौंपकर सेनापति हम्बीरराव और आनन्दराव रायगढ़ चले आये। बागलाण प्रदेश के रूपाजी भोसले, सन्ताजी गायकवाड़ और मानाजी मोरे आदि युद्धरत सरदार लौट आये थे। कोल्हापुर सूबे से विदेश-सचिव जनार्दन पन्त हणमन्ते, म्हलोजी घोरपड़े, सन्ताजी, बहिर्जी घोरपड़े आदि अधिकारी पधारे। समुद्रतटवर्ती कोंकण प्रदेश से दादाजी, रघुनाथ, मोरो दादाजी, नौ-सेनाधिकारी दौलत ख़ाँ, कान्होजी, गोविन्दजी काटे, मायनाक आदि जलसेना के प्रमुख अधिकारी भी आ पहुँचे थे। सम्भाजी के श्वसुर पिलाजी शिर्के, उनके पुत्र गणोजी शिर्के, हरजीराजा तथा अमलोजी राजा महाड़ीक भी शृंगारपूर से आये थे और इनके साथ येसूबाई की माताजी भी इस समारोह के लिए विशेष रूप से पधारी थीं।

समर्थगुरु रामदास जी के शिष्य-दिवाकर गोसाईं तथा समर्थगुरु द्वारा चिंचवड, पाटगाँव, कुरटे आदि नगरों में स्थापित मठों से समर्थगुरु के शिष्यगण भी पधारे थे। तुलजापुर, प्रतापगढ़, माहूर आदि तीर्थस्थानों में देवी भवानी के विशेष मन्दिर हैं, वहाँ की गायिकाएँ भी आ चुकी थीं। दूर-दूर के प्रदेशों से अनेक चारण, गायक, नर्तक तथा कवि जनों से रायगढ़ सुशोभित हो उठा था। इस प्रकार लगभग पचास हज़ार लोग रायगढ़ आ चुके थे। स्थान-स्थान पर रसोई के मण्डप लगे हुए थे। बड़े-बड़े चूल्हों पर रसोई के लिए देगचे और कड़ाहियाँ चढ़ी हुई थीं। रायगढ़ के चित्त दरवाज़ा, छोटा दरवाज़ा, महादरवाज़ा आदि द्वारों पर तथा जगदीश्वर एवं शिर्काई देवी के मन्दिरों के द्वारों पर सुवर्णपत्र से मढ़े हुए नारियल लटकाये गये थे। देवालयों के शिखरों पर तिकोनी भगवी ध्वजाएँ लहरा रही थीं। महादरवाज़े के ऊपर बने हुए नक्कारख़ाने के शिखर पर था एक ऊँचा ध्वज स्तम्भ और स्तम्भ पर फहरा रहा था एक ज़रतारी विशाल भगवा ध्वज—मावलदेश

https://t.me/Sahityajunction

के स्वाभिमान और आन-बान का प्रतीक भगवाध्वज—'ज़री-पताका।'

माघ शुद्ध पंचमी मंगलवार का मंगल दिवस मंगल कलश लेकर उदित हुआ। अभिषेक की विधियाँ आज से प्रारम्भ हो गयीं। स्नानादि से निवृत्त होकर विशेष समारोह के लिए सुरक्षित महीन और सुकोमल वस्त्रों को धारण करके राजा सम्भाजी और येसूबाई उपरिकोट से बाहर निकले। उनके साथ था अष्टप्रधानों का मण्डल। इस अष्टप्रधान मण्डल के सदस्य थे पेशवा अर्थात् प्रधानमन्त्री निलोपन्त पिंगले, सुरवीर अर्थात पन्त-सचिव आवाजी, सोनदेव, मुजूमदार—लेखाध्यक्ष अण्णाजी दत्तो, न्यायाधीश प्रह्लाद निराजी, 'सर-नौवत'—प्रधान सेनापति हम्बीरराव तथा येसाजी कंक, उबीर अर्थात् विदेश सचिव जनार्दन पन्त हणमन्ते—दानाध्यक्ष—धर्माधिकारी मोरेश्वर पण्डित राव, वाकनीस—रामचन्द्र दत्तो त्रिमल।

इन सबके आगे-आगे राजपुरोहित बालम्भट्ट, नासिक के आचार्य अनन्तभट्ट कावले तथा अन्य विद्वान् ब्राह्मण चल रहे थे। कवि कुलेश, पण्डित तभा उमाजीपन्त भी इस समूह में सम्मिलित थे।

धाराऊ को अब बुढ़ापे ने घेर लिया था। वह बूढ़ी निर्बल धाराऊ येसूबाई के साथ डोली में बैठ गयी। इस डोली के पीछे नंगे पाँव चलते हुए राजा सम्भाजी मीनारों से बाहर निकले। वहाँ हज़ारों लोग उनके दर्शनों के लिए खड़े थे। यह राज परिवार रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ की ओर जा रहा था।

पाचाड़ पहुँचकर सब लोग राजमाता जिजाऊ की समाधि की ओर जाने लगे। वहाँ पहुँचकर राजपुरोहित ने तथा आचार्य अनन्तभट्ट ने माँ साहिबा की समाधि का विधिपूर्वक अर्चन किया। सम्भाजी और येसूबाई ने मिलकर उस समाधि पर बने हुए चिह्नों पर वेलपुष्पों की भेंट चढ़ायी और मिलकर ही समाधि की सीढ़ी पर माथा टेका। अनन्त भावों के कारण इस समय दोनों के हृदय भर आये थे।

वह प्रस्तर निर्मित समाधि अभिषेक पानेवाले उस दम्पती को मूक रहकर ही आशीष दे रही थी—'आयुष्मान होओ। विजयी बनो। दूधों नहाओ, पूतों फलो।'

जिजाऊ का आशीर्वाद पाकर वह राजपरिवार पुनः रायगढ़ लौट आया। शिल्पकार हिरोजी इन्दुलकर ने जगदीश्वर के मन्दिर के निकट छत्रपति शिवाजी महाराज की जो समाधि बनायी थी, उसकी पूजा की गयी। दम्पती ने आबासाहब के पद-चिह्नों पर बेलपत्र और हल्दी-रोली चढ़ायी तथा अत्यन्त विनम्र भाव से उस समाधि के सम्मुख माथा नवाया।

अपने पराक्रम तथा कीर्ति से एक नूतन संवत् का प्रारम्भ करनेवाला वह चक्रवर्ती राजा आज उन पत्थरों के पीछे से अपनी धीर-गम्भीर वाणी से आशीर्वाद दे रहा था :

'धैर्यशाली बनो। तुम पहले सेवक हो, बाद में राजा हो, सदा स्मरण रहे यह। चिरंजीव बनो।'

इसके पश्चात् सम्भाजी सती माँ का चौरा, गढ़ के देवता जगदीश्वर तथा शिर्काई देवी के दर्शन करके उपरिकोट में वापस लौटे।

यहाँ आने के बाद विविध प्रकार के शान्ति-होम का प्रारम्भ हुआ। पहला शान्ति होम किया गया उस विघ्नहर्ता गणेश की कृपा-याचना के निमित्त। राज-दम्पती ने विधिपूर्वक गणेशजी की वन्दना की। इस पूजा में गणेशजी को इक्कीस प्रकार के पकवानों का भोग लगाया गया। अथर्व

https://t.me/Sahityajunction

शीर्ष के पावन मन्त्रों से सारा उपरिकोट गूँज उठा था : "ॐ नमस्ते गणपतयो त्वमेव केवलं कर्तासि, त्वमेव केवलं धर्तासि त्वमेव केवलं हर्तासि त्वं ब्रह्मासि । त्वं गुणमयातीतः कालत्रयातीतः । गं गणपतये नमः ।"

विनायक शान्ति-यज्ञ के पश्चात् पुरन्दर-शक्ति होम, ऐन्द्रय शान्ति होम, देवक शान्ति-होम, मृत्युंजय आदि शान्ति-कर्म किये गये। होम कुण्ड में पड़नेवाली दूध, घी, मधु, समिधा आदि की आहुतियों की सुगन्धि से दुर्ग का सम्पूर्ण ऊपरी भाग महक उठा था। पवित्रता तथा प्रेरणा का निराला वातावरण बन गया था।

इस प्रकार अनिष्ट-निवारण के निमित्त, विविध होमों से देवताओं की पूजा तथा इष्ट सिद्धि के लिए प्रार्थना करने का माघ शुद्ध पंचमी का वह दिन अस्त हो गया। षष्ठी तिथि की प्रमुख विधि थी—दान-पुण्य! उस दिन बुधवार था। उपरिकोट के विशाल मैदान में एक चबूतरा बनाकर उस पर एक विशाल तुला बनायी गयी थी जिसे आम्रपत्रों तथा श्रीफलों से सुशोभित किया गया था। तुलादान से पूर्व इस तुला की पूजा की गयी।

मंगल स्नान करके यह राज-युगल अष्टप्रधान, ब्राह्मणगण एवं पण्डितवर्ग के साथ उस तुला के चबूतरे के निकट आया। राजा सम्भाजी के सिर पर आज भगवे रंग का ज़रतारी टोप चमचमा रहा था। उनके महीन और कोमल अँगरखे का रंग दूध-सा सफ़ेद था जिस पर कलाबत्तू के बेलबूटे बने हुए थे। कलाइयों में सोने के तारों से बनी पहुँचियाँ, कानों में सोने के चौकड़े, गले में मोतियों का हार तथा उँगलियों में पहनी हुई हीरे की अँगूठियाँ आज दृष्टि को मोह रही थीं।

गंगाल में तैर रहा घटी-पात्र अब डूबने लगा था। तुलादान का मुहूर्त आ गया था। सम्भाजी ने जूते उतारे और वे चबूतरे पर चढ़ गये। राजपुरोहित ने हाथ के संकेत द्वारा सूचित किया कि वे तुला के दायें पलड़े में बैठ जाएँ। मन्त्रों का पवित्र नाद सब ओर गूँज रहा था। राजा सम्भाजी पलड़े के निकट आये। परन्तु फिर न जाने उनके मन में क्या आया कि उन्होंने कौड़ियों की माला गले से उतारी और राजपुरोहित के हाथ में दे दी। माला उतारकर वे दायें पलड़े में वीरासन लगाकर बैठ गये। बायाँ पलड़ा जब खनखनाती हुई मुहरों से भर गया, तब धीरे-धीरे भूमि से ऊपर उठने लगा। इस समय राजा सम्भाजी को दो तुलादान समारोहों की स्मृति आ रही थी—महाबलेश्वर में सम्पन्न राजमाता जिजाऊ का तुलादान तथा राज्याभिषेक के अवसर पर हुआ अपने आबासाहब का तुलादान।

राजा सम्भाजी का सोने का तुलादान पूर्ण हुआ। इसके पश्चात् चाँदी, पीतल, ताँबा, लोहा, शक्कर, मसाले, तेल—इन वस्तुओं से अट्ठारह प्रकार के धान्य, कपास, नारियल, नमक, गुड़, सुपारी से उनका तुलादान किया गया। महारानी-पद पर अभिषिक्त होने जा रही येसूबाई का भी तुलादान किया गया। एक तुला सम्भाजी की धाय-माँ धाराऊ की भी की गयी।

राजदम्पती ने तुली हुई उन वस्तुओं को हस्तस्पर्श दिया। धर्माधिकारी मोरेश्वर पण्डितराव के निरीक्षण में वस्तुएँ पण्डे-पुजारी, भिक्षुक, गोसाईं, बैरागी आदि को दान दी गयीं। इन वस्तुओं के अतिरिक्त वस्त्र, धान्य, गौ आदि वस्तुओं का भी दान किया गया। षष्ठी तिथि के उस दिन ने दान से सन्तुष्ट हुई आत्माओं के आशीर्वाद पाये और वह दिन भी सन्तुष्ट होकर अस्ताचल में डूब गया।

माघ शुद्ध सप्तमी की प्रातःकाल की वेला आ गयी। उस दिन गुरुवार था। यही दिन अभिषेक के लिए निश्चित किया गया था। सौभाग्यवती नारियों ने गढ़ के प्रत्येक भवन के आँगन को गोबर

https://t.me/Sahityajunction

से लीप दिया था और उसे रंग-बिरंगी रंगोलियों से चित्रित किया था। दीपकों की ज्योति से व्यापार-हाठ, उपरिकोट, जगदीश्वर और शिर्काई देवी के मन्दिर, इतना ही नहीं, उस पर्वतीय दुर्ग का समस्त ऊपरी भाग झिलमिल-झिलमिल चमक रहा था। पौ फटते ही अभिषेक की विधियाँ प्रारम्भ हो गयीं। नक्कारख़ाने से नगाड़ों-धौंसों की 'दुड़-दुड़-दुड़' आवाज़ प्रातःकाल के मन्द पवन की शीतलता में मिलकर सब ओर फैल रही थी। सम्भाजी तथा येसूबाई ने आज उपवास किया था। वे दोनों सभी प्रधानों एवं अधिकारियों सहित उपरिकोट के ख़ासमहल से बाहर निकले तथा अभिमन्त्रित धागों से घिरे हुए उस चौकोन अभिषेक-क्षेत्र तक आये, जिस पर कई सुवर्ण-कुम्भ रखे हुए थे।

उस रेखित चतुष्कोण अभिषेक क्षेत्र की पूर्वदिशा में घृतपूरित सुवर्ण-कलश लेकर प्रधानमन्त्री निलोपन्त पिंगले खड़े थे। पश्चिम दिशा में खड़े थे लेखाध्यक्ष अण्णाजी दत्तो—दही से भरा ताम्र-कलश लिये हुए। उत्तर दिशा में मधु से पूरित सुवर्ण-कलश धारण किये हुए उपस्थित थे धर्माधिकारी मोरेश्वर पण्डितराव तथा दक्षिण दिशा में दूध से भरा रौप्य-कलश लिये हुए सेनापति हम्बीरराव खड़े थे। ईशान दिशा में खड़े थे न्याय की प्रतीकरूपिणी एक सुवर्ण निर्मित तुला हाथ में लिये न्यायाधीश प्रह्लाद निराजी, आग्नेय दिशा में मोतियों की झालरोंवाला सुवर्ण छत्र उठाकर खड़े थे पन्त सचिव आबाजी सोनदेव। नैऋत्य दिशा में सोने की मूठवाला पंखा धारण किये हुए विदेश-सचिव जनार्दनपन्त हणमन्ते उपस्थित थे तथा वायव्य दिशा में सुनहरा मोरछल हाथ में धारण किये हुए मन्त्री रामचन्द्र दत्ताजी त्रिमल खड़े हुए थे। ये अष्टप्रधान आठ दिग्गजों के समान दिशाओं की शोभा बढ़ा रहे थे। इनके साथ ही बालाजी आवजी, कुलेश, केशव पण्डित, उमाजीपन्त तथा येसाजी कंक आदि प्रतिष्ठित जन भी वहाँ उपस्थित थे।

अभिषेक के चौकोने क्षेत्र में सोने के दो पीढ़े रखे हुए थे। दायें पीढ़े पर राजा सम्भाजी तथा बायें पीढ़े पर येसूबाई पूर्वाभिमुख बैठ गये।

ब्राह्मणवृन्द अभिषेक के अवसर पर विहित मन्त्रों का पाठ करने लगा। मुहूर्त का समय होते ही सबसे पहले राजदम्पती को पंचामृत से स्नान कराया गया। दूध, घी, दही, मधु आदि पुष्टिदायक रसों से स्नान करने के बाद सात पवित्र नदियों से लाये गये पावन जल से सम्भाजी और येसूबाई के मस्तक का अभिषेक किया जाने लगा। मन्त्रों का उच्च स्वर वातावरण को पावन बना रहा था।

अभिषेक की समाप्ति के बाद राजदम्पती ने घी से लबालब भरी हुई काँसे की एक परात में अपने मुख देखे।

उधर सिंहासनवाला राजसभागृह लोगों की भीड़ से खचाखच भरा हुआ था। अपने राजा का दर्शन पाने के लिए प्रजाजनों की भीड़ वहाँ एकत्रित होकर आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी।

सम्भाजी ख़ासमहल में आये। येसूबाई अपने महल में चली गयीं। राजा सम्भाजी ने अब वह वेशभूषा धारण कर ली थी, जो सिंहासन पर आरूढ़ होते समय पहनी जानी थी। इसके बाद उन्होंने समर्थगुरु द्वारा प्रदत्त पुष्पमालाओं से सुसज्जित कोदण्ड अपने कन्धे पर लटका लिया। बाणों से भरा तूणीर उनकी पीठ पर बाँध दिया गया था। उनकी कमर में 'भवानी-तलवार' पहले से ही बँधी हुई थी।

जोत्याजी केसरकर उनके सामने दर्पण पकड़कर खड़ा हो गया। आज सम्भाजी को दर्पण में

https://t.me/Sahityajunction

देखते समय अपना ही रूप निराला-सा प्रतीत होने लगा। उनके सामने सिर पर केसरी राजटोप धारण किये, शरीर पर चुन्नटदार बाँहोंवाला महीन सफ़ेद अँगरखा, उस पर ज़री की किनारी, पीताम्बर के समान पीला उत्तरीय, गले में रत्नजटित हार एवं मोतियों की माला और इन दो मालाओं के ऊपर उन्हें घेरकर झूल रही भवानी माला, कानों में चौकड़े, बुँदकीदार और चुन्नटदार तंग मोहरी का घुटन्ना, कन्धों पर धनुष, कमर में भवानी तलवार, घनी दाढ़ी, मूँछोंवाली कमान के समान बाँकी भौंहोंवाली, पुखराज के समान तेजमय नेत्रोंवाली एक आकृति दर्पण में खड़ी थी। वह आकृति उनसे ही शान्त रीति से पूछ रही थी—'राजा सम्भाजी भोसले, हमें ठीक से पहचान लो। हम मराठा साम्राज्य के अभिषिक्त छत्रपति हैं। नूतन संवत् के उस महान् संस्थापक के हम उत्तराधिकारी हैं। अपने और हमारे बीच, कभी भ्रम से भी नाते-रिश्तों को मत लाना। याद रखना, ये दो रूप भिन्न हैं—एक व्यक्ति है और दूसरा छत्रपति है।'

आज जीवन में पहली बार ही सम्भाजी के मुख पर एक धीरता-गम्भीरता से परिपूर्ण राजसी भाव उभर आया था। सामने से येसूबाई चली आ रही थीं, गाढ़े जामनी रंग की सुनहरे बेल-बूटोंवाली बहुमूल्य रेशमी साड़ी पहने हुए, कमरे में सोने की कमरपट्टी पहने, नाक में मोतीवाली नथ पहने, माथे पर कुंकुम की आड़ी रेखाएँ धारण किये हुए येसूबाई दासियों से घिरी हुई चली आ रही थीं। आज येसूबाई का रूप उन्हें बिलकुल भिन्न ही प्रतीत हो रहा था।

सामने सूर्य-पंखाधारी तथा गदाधारी सैनिक असाबरदार तथा चँवर ढुलानेवाले सैनिक तथा स्तुति-गायक चल रहे थे। अष्ट प्रधान तथा ब्राह्मणवृन्द के साथ सम्भाजी और येसूबाई ख़ासमहल से बाहर निकलकर सिंहासन की वेदी की ओर जानेवाले मार्ग पर चले जा रहे थे।

सिंहासन-वेदी पर पहुँचकर आठों प्रधानों ने अपने-अपने निर्धारित सुवर्ण-स्तम्भों के निकट स्थान ग्रहण किया। येसूबाई राज्ञीवर्ग के लिए सुरक्षित परदों से बन्द एक कक्ष में चली गयीं। सिंहासनारोहण का मुहूर्त होते ही राजपुरोहित एवं अनन्तभट्ट जी ने राजा सम्भाजी को हाथ के संकेत द्वारा सूचित किया—'राजासन को सुशोभित कीजिए।'

धनुर्धारी राजा सम्भाजी दायाँ पैर उठाकर उस सुवर्णमय सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बैठ गये। परन्तु बैठते समय सिंहासन से कहीं पाँवों का स्पर्श न हो, ऐसी सावधानी उन्होंने रखी थी। सिंहासन वेदी मन्त्रों के नाद से नहा उठी थी। प्रधानमन्त्री निलोपन्त अंजलि में सोने की मुहरें भरकर राजदण्डधारी उस नरपति को सुवर्ण-स्नान करा रहे थे। आचार्य अनन्तभट्ट ने मोतियों की झूलती हुई लड़ियोंवाले उस छत्र को 'हस्तस्पर्श' दिया। सम्भाजी ने हाथ उठाया, जो इस भाव का सूचक था कि उन्होंने छत्रपति पद को स्वीकार कर लिया है। हाथ के उठते ही सारे दरबारी प्रथा के अनुसार राजा को सम्मान देने के लिए झुक पड़े।

असाबरदारों ने अपने हाथों में पकड़े हुए गदामय उस सुनहरे दण्ड को तीन बार भूमि पर पटका और ऊँची ललकार गुँजायी, "राजश्रिया विराजित, सकलराजलक्ष्मी अलंकृत, गौ ब्राह्मण प्रतिपालक, हिन्दुपद पादशाह, श्रीमन्महाराज सम्भाजी पधार रहे हैं।"

दुर्ग की तोपें, बन्दूक़ें और ऊखली पटाखे भी गरज-गरजकर मराठा-साम्राज्य के दूसरे छत्रपति राजा को सम्मानपूर्वक मुजरा कर रहे थे।

इसके पश्चात् उस राजसभागृह में दूर-दूर के देशों से आये हुए चारणों, कठ-खैतों तथा कवियों ने महाराज सम्भाजी की प्रशंसा से पूर्ण कविताओं का गान प्रारम्भ किया। एक के बाद

https://t.me/Sahityajunction

दूसरा कवि आता था और यह श्रृंखला टूटती ही नहीं थी। दूसरी ओर पण्डितगण विद्वत्-सभाओं में जीवन तथा दर्शन के विषय में चर्चा कर रहे थे। कहीं नर्तकियाँ अपनी नृत्यकला से मन मोह लेती थीं। सारे राजसभागृह में विविध प्रकार के कार्यक्रमों के कारण आनन्द और उछाह का सागर उमड़ा पड़ता था।

न्यायाधीश प्रह्लादपन्त ने महाराज सम्भाजी के सम्मुख वह थाल ला रखा, जिसमें नूतन राजमुद्रा रखी थी। महाराज सम्भाजी ने उस मुद्रा को हाथ लगाया और उसे स्वीकृति दी। उस राजमुद्रा पर ये शब्द अंकित थे :

'श्री शम्भोः शिवजातस्य मुद्रा द्यौरिव राजते ।
यदंकसेविनो लेखा वर्तते कस्य नोपरि ।।'

महाराज सम्भाजी ने अपने आठ मन्त्रियों को सम्मान-वस्त्रों से भरे हुए कई तबक़ भेंट किये। महाराज ने कवि कुलेश को भी राजासन के सम्मुख आमन्त्रित किया तथा उनके कन्धे पर सम्मान-वस्त्र रखकर उन्होंने कवि कुलेश को एक नूतन उपाधि से अलंकृत किया —'छन्दोगामात्य।' महाराज सम्भाजी ने एक और तबक़ को भी हस्तस्पर्श दिया। यह तबक़ था रनिवास-कक्ष में विराज रही महारानी येसूबाई के लिए। इस तबक़ में येसूबाई को महारानी का पद एवं अधिकार प्रदान करनेवाली एक मुद्रा थी। आज सम्भाजी की पत्नी तथा जीवनसाथी येसूबाई ने एक नया नाता जोड़ लिया। महाराज सम्भाजी की महारानी बन गयीं वे। उस अधिकार-मुद्रा पर ये शब्द खुदे हुए थे—'श्री सखी राज्ञी जयति।'

महाराज ने उपस्थित कलाकारों को सम्मान प्रदान करने के लिए वस्त्र, होन, अलंकार आदि वस्तुएँ उपहार में दीं। गोलकुण्डा के कुतुबशाह, बीजापुर के आदिलशाह, पुर्तगाली, फ्रांस, डच आदि राज्यों से आये दूतों एवं प्रतिनिधियों ने महाराज सम्भाजी को नज़राने पेश किये। महाराज की ओर से इन प्रतिनिधियों को भी उपहार दिये गये :

सिंहासनाधिष्ठित सम्भाजी महाराज रायगढ़ के स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए पूर्व दिशा में पर्वतशिखरों के पीछे उदित हो रहे सूर्य के बिम्ब को निहार रहे थे। उस बिम्ब में मानो राजमुद्रा में अंकित अक्षर ही सुनहरा रूप धारण कर चमक उठे थे—'श्री शम्भोः शिवजातस्य मुद्रा (शिव के पुत्र शम्भू की यह राजमुद्रा) द्यौरिव राजते (द्युलोक के समान शोभायमान है।) यदंक सेविनो लेखा (इस अधिकारमुद्रा की सत्ता) वर्तते कस्य नोपरि (किस पर नहीं छायी हुई?)'

पूरे राजसी ठाठ-बाट से यह दूसरा अभिषेक-समारोह आज रायगढ़ में उत्साह और उल्लास से मनाया जा रहा था। केवल सोयराबाई राजाराम के साथ अपने महल में ही बैठी रहीं। मूक रहकर और महल में बन्द होकर उन्होंने इस समारोह का बहिष्कार किया हुआ था। इतना ही नहीं, उन्होंने राजाराम को भी अभिषेक की किसी भी विधि में सम्मिलित होने से रोक दिया था।

महाराज सम्भाजी सिंहासन पर बैठे थे। सामने उदीयमान सूर्य के रूप में आज मानो एक प्रश्न ही उपस्थित था और वह उनसे बार-बार पूछ रहा था—'अपना यह अभिषिक्त मस्तक अब तुम किस आदरणीय वृद्धजन के चरणों में नवाओगे? तुम्हारे कुल में आज ऐसा बुजुर्ग है ही कौन?'

आठ दिन बीत गये। महाराज सम्भाजी आज मन ही मन दो समाचारों के बारे में सोच-विचार

https://t.me/Sahityajunction

कर रहे थे। दोनों समाचार उत्तर प्रदेश से आये थे। पहला समाचार यह था कि औरंगज़ेब के चौथे बेटे अकबर ने, जो राजस्थान का सूबेदार था, स्वयं को 'आज़ाद बादशाह' घोषित कर दिया था। औरंगज़ेब को सन्देह था कि उसकी अविवाहिता पुत्री जुबुन्निसा ने इस स्वतन्त्र राज्य की स्थापना में अपने भाई अकबर की सहायता की है। इसलिए उसने जेबुन्निसा को सलीमगढ़ के क़िले में बन्द कर दिया था। यह दूसरा समाचार था।

कवि कुलेश कुछ कह रहे थे, परन्तु महाराज का उस ओर ध्यान नहीं था। कविजी के अतिरिक्त वहाँ प्रह्लाद निराजी तथा केशव पण्डित भी खड़े थे। इतने में जोत्याजी केसरकर ने सभागृह में आकर सूचना दी : "समर्थगुरु के शिष्य दिवाकर गोसाईं पधारे हैं। वे समर्थगुरु का कोई पत्र अपने साथ लाये हैं।"

"उन्हें ले आओ।" महाराज के हाथ में घूम रहा गुलाब का फूल एकदम रुक गया।

जोत्याजी दिवाकर गोसाईं को लेकर भीतर आया। गोसाईं ने मंगल-श्लोक का पाठ करके झोली में से एक थैली बाहर निकाली और महाराज को दे दी। महाराज ने अत्यन्त आदरसहित उसे माथे से लगाया और प्रह्लाद निराजी को देते हुए वे कहने लगे, "न्यायाधीश, आप पढ़िए। समर्थगुरुजी ने हमें क्या आशीर्वाद लिख भेजा है, वह हम सुनना चाहते हैं।"

प्रह्लादपन्त ने आगे बढ़कर वह थैली ली और उसमें रखे हुए गोल लिपटे काग़ज़ को मस्तक से लगाकर वे स्पष्ट वाणी से समर्थगुरु के वचनों का पाठ करने लगे :

सतत निरन्तर सावधान हो। असावधान चंचल-चित ना हो।
युक्ति, योजना बनाये राजा। बैठ किसी एकान्त स्थान में।।
छोड़ो तुम अति उग्रभाव को। सौम्यभाव कुछ धारण कर लो।
सदा रहे चिन्ता परार्थ की। मन के भीतर, तन के भीतर।।
अधिकारी जो भूले, भटके। क्षमा करो अपराध पुराने।
उसे बना अपना हितकारी। सुखी बनाकर काम सौंप दो।।

प्रह्लादपन्त ने ये पंक्तियाँ पड़ीं और उनका गला सूख-सा गया। उन्होंने एक बार अपने सूखते होठों पर से जीभ फिरायी और लम्बी साँस खींची। फिर वे सावधान होकर एक-एक शब्द आगे पढ़ने लगे। महाराज सम्भाजी अब मसनद से हटकर आगे झुक आये थे और आँखें बन्द करके वे महान् संन्यासी के शब्द स्थिर चित्त होकर सुनने लगे।

खेती की नाली में बाधा हो, तो पानी रुक जाता है।
जनता के मन की बाधा यों, राजा जाने, दूर हटाए।।
प्रजाजनों, सेवक जन का भी, चले प्रवाह, बहती हो धारा।
भला नहीं यदि स्थान-स्थान पर, प्रजाजनों को कठिनाई हो।।
श्रेष्ठ जनों ने राज्य कमाया, कीर्ति और धन पाया अगणित।
हो यदि कलह परस्पर तुममें, बैरी की तब बन आएगी।।
ऐसी अनुचित नीति मत करो, दो में कलह, तीसरे की जय।
धैर्यभाव से श्रेष्ठ कर्म बहु करो, उच्चता का विचार कर।।
रखो प्रजा को सुखी शान्त नित, फिर बहुकर्म करो तुम सत्वर।

https://t.me/Sahityajunction

प्रजाजनों का सुख दुख जानो, सदा रहे वह समाधान से।।
हो यदि शंका आरम्भ में ही, कार्य पूर्ण कैसे होगा तब।
अतः करो प्रारम्भ कार्य का, सोच-समझकर, अन्त जानकर।।
अपनों का तुम करो संगठन, वैरी को तुम कुचल-मसल दो।
करो कर्म, फैले दिगन्त में, कीर्ति तुम्हारी, राज्य तुम्हारा।।
भीषण करो प्रहार बिठा दो, धाक तुम्हारी भू-मण्डल में।
यदि न होगी धाक तुम्हारी, समझो शत्रु राज्य पर टूटा।।
पहचानो तुम प्रसंग, अवसर, शान्त रखो तुम क्रोध, रोष को।
आये भी यदि क्रोध दबा लो, प्रकट मत करो जन-समाज में।।
प्रजाजनों को, अधिकारी को, मित्र बनाओ, नाता जोड़ो।
न हो प्रजा को, सेवक गण को, भय तुमसे, समझें सब अपना।।
बहुजन को तुम करो संगठित, एक विचार, एक गति मति हो।
दिखा पराक्रम करो नष्ट तुम, म्लेच्छराज्य को, नीच जनों को।।
जितने जन हैं साथ, सहायक, उन्हें सँवारो और बढ़ाओ।
महाराष्ट्र का हो प्रसार अब, यत्र, तत्र, सर्वत्र भूमि में।।
लोग बनें साहस के पुतले, यज्ञ करो बहु, इसी हेतु तुम।
तभी फलो, फूलोगे राजा, पाओगे पदवी अति महती।।

प्रह्लादपन्त ने उत्तरीय से मुँह का पसीना पोंछा। उनकी गम्भीर भावों-विचारों में खोयी हुई आँखें शब्द-रूपी मोतियों की अर्थ-रूपी आभा को समझने का प्रयत्न कर रही थीं। श्रीराम के दास के मुख से निकले हुए उन समर्थ भावपूर्ण शब्दों को सुनकर राजप्रासाद की पत्थर की दीवारें भी आज गद्‌गद हो उठी थीं।

स्मरण करो शिवराज भूप का, जीवन को तृणवत् तुम जानो।
मृत्युलोक को, स्वर्गलोक को, तर जाओ यश की नौका से।।
स्मरण करो वह तेज शिवा का, भूमण्डल में फैल रहा जो।।
याद करो शिवराज भूप का, था आचार, बोल थे कैसे।
भूप शिवा ने मैत्री जोड़ी, जानो, उसकी रीति-नीति तुम।।
त्याग सुखों को, सुविधाओं को, प्राप्त करो वह लक्ष्य श्रेष्ठतम।
राज्य बढ़ाने-फैलाने को, वैसा ही तुम करो आचरण।।
उनसे भी आगे बढ़ जाओ, तभी कहाओगे पुरुषार्थी।
है पर्याप्त हितवचन इतना, अधिक लिखें क्या, यही बहुत है।।

महाराज की आँखों की कोरों में आँसू की कुछ बूँदें छलछला आयी थीं। परन्तु आसपास खड़े हुए किसी भी व्यक्ति को वे बूँदें दिखलाई नहीं दीं। महाराज ने हाथ उठाकर प्रह्लादपन्त को आज्ञा दी तथा उस उपदेशात्मक पत्र को पुनः एक बार पढ़वाकर सुना।

कविता के प्रत्येक शब्द को सुनकर महाराज के मन में एक गहरी टीस उठ रही थी क्योंकि उन्हें अपने जीवन का वह अशुभ कालखण्ड याद आ रहा था, जिसमें भाग्य का फेर उन्हें कहीं से कहीं ले गया था। उनका मन छटपटाकर कह रहा था—'समर्थगुरुजी, सज्जनगढ़ में यदि हम

https://t.me/Sahityajunction

आपके दर्शन पा जाते तो हमारे जीवन-पट पर सबसे काला धब्बा न लग पाता।' आज जैसे किसी ने उनके मन को बाह्य जगत से घुमाकर अन्तर्मुख कर दिया था। वे आज आत्मपरीक्षण कर रहे थे—'समर्थजी ने कहा है, 'छोड़ो तुम अति उग्रभाव को। सौम्य भाव कुछ धारण कर लो'। क्या सचमुच ही हमारा स्वभाव उग्र है? अथवा भ्रमवश सब वैसा समझते हैं? क्या समर्थगुरु भी हमें उग्रस्वभावी ही मानते हैं? ठीक तो है, इसमें उनका दोष ही क्या है? जो कुछ लोगों ने उन्हें बतलाया, उसे सुनकर ही उन्होंने हमें उपदेश दिया है। यह सत्य है कि हमने षड्यन्त्रकारियों को गिरफ़्तार किया है। समर्थगुरु जी ही क्यों, स्वयं राजाराम ही क्या नहीं समझ बैठे थे कि हम माँ सोयराबाई पर हथियार उठाएँगे? परन्तु समर्थगुरु क्या जानें कि रायगढ़ से जो ख़लीते पन्हालगढ़ गये थे, उनमें कैसा कपट भरा था। यदि हम क़ैद कर लिये जाते तो...तो भला समर्थगुरु भी हमें यह पत्र क्यों और कैसे लिख पाते?

'अधिकारी जो भूले, भटके। क्षमा करो अपराध पुराने। सुखी बनाकर काम सौंप दो।' गुरुदेव, आपका यह उपदेश हम पहले ही पूर्ण कर चुके हैं। हमने जिन कर्मचारियों को पुनः काम सौंपा है, वे हमारे हाथों को सहारा देंगे या लूले बनाएँगे, यह तो अभी सिद्ध होना है। हम धैर्यपूर्वक इसकी प्रतीक्षा करेंगे।

'खेती की नाली में आयी बाधा को दूर करने के लिए हमने पानी में हाथ डाले ही हैं। हमारे हाथ दो ही हैं और यह काम बहुत बड़ा है, यह हम जानते हैं। पानी की नाली में उत्पन्न हुए अटकाव को दूर हटाने के लिए तथा सारे खेत में पानी का निरन्तर प्रवाह चालू रखने के लिए यदि हमें इन दो हाथों से जीवनभर भी जूझना पड़ा तो भी हम सन्नद्ध हैं। हम प्रयत्नशील हैं कि सन्त-महात्मा, योद्धा, सैनिक, लेखक, राजकर्मचारी आदि सभी को प्रसन्न और सन्तुष्ट रख सकें। हमारे राज्य पर आँख लगाये बैठे हैं कई शत्रु, हम इस बारे में भी जागरूक हैं। एक बात अवश्य सत्य है कि कुछ अनुचित और विपरीत हो जाय, तो हम सहन नहीं कर पाते। हमारा स्वभाव है कि हम अपने मन का ग़ुस्सा सबके सामने साफ-साफ कह देते हैं।

'यह महाराष्ट्र राज्य दूर-दूर तक फैले, इसके लिए तो हमने अपने जीवन को ही दाँव पर लगाया है। हम अपने को छत्रपति नहीं, इस राज्य का एक अनन्य सेवक मात्र मानते हैं।

'आबासाहब का रूप, उनकी वाणी, उनका आचरण, और उनकी राज्य के प्रति निष्ठा तो रात-दिन हमारी धमनियों में ख़ून बनकर बह रही है। एक भी दिन ऐसा नहीं बीतता, कि जिस दिन हम अपने मन की आँखों से उनके, बड़ी आऊसाहिबा के अथवा सती माँ के दर्शन नहीं करते। हम यथाशक्ति सब कुछ करेंगे, परन्तु आबासाहब से बढ़कर 'कुछ अधिक' कर दिखाना हमारे बूते से बाहर है। हम ही क्यों, कोई भी आदमी उनकी ऊँचाई तक पहुँच नहीं सकता। हम आबासाहब नहीं हैं, केवल उनकी छाया मात्र हैं। छाया भला शरीर कैसे बन पाएगी? आबासाहब ने अपनी बंजर जागीर को राज्य के रूप में बदलकर दिखा दिया। वह कीर्ति तथा सामर्थ्य बस उनके बस की बात है। हम यदि इस राज्य की सुरक्षा एवं वृद्धि भी कर सके, तो स्वयं को धन्य समझेंगे। इस राज्य की रक्षा एवं कीर्ति के कार्य में यदि हमें मौत भी आ जाय तो सिंहगढ़ के तानाजी मालुसरे, पावन खिंड के वीर बाजीप्रभु देशपाण्डे, मुरारजी काका और सेनापति प्रतापराव गुजर, इन सूर्यलोक के निवासी बलिदानी वीरों के समान हम भी अपने जीवन को कृतकृत्य मानेंगे।

https://t.me/Sahityajunction

'समर्थगुरुजी, आपने महाराष्ट्र में सर्वत्र भ्रमण कर ग्यारह स्थानों पर मारुति के मन्दिरों की स्थापना की है। क्या इन ग्यारह मारुति मन्दिरों को आपके जाने के बाद आप-से कोई दूसरे 'समर्थगुरु' देख पाएँगे? कौन कह सकता है कि 'समर्थगुरु' के उतने ही 'समर्थ शिष्य' बन भी पाएँगे अथवा नहीं? विधाता की बनाई यह सृष्टि आपके समान तथा आबासाहब के समतुल्य महान सन्तानों को रोज़-रोज़ जन्म नहीं देती है। हमारे लिए तो इतना भी पर्याप्त है कि हम आपकी पीढ़ी के पदचिह्नों पर जीवन के अन्तिम क्षणों तक चल सकें। आपने कविता के रूप में जो भी आशीर्वाद हमें दिये हैं, उन्हें हम शिरोधार्य करते है।'

मन में विचारों की इतनी खलबली मच रही थी कि महाराज बैठक से उठ खड़े हुए। "प्रह्लादपन्त, गोसाईं बाबा की निवासादि की समुचित व्यवस्था करो," कहकर उन्होंने प्रह्लादपन्त से वह अनमोल पत्र वापस ले लिया। फिर मौन रहकर ही वे अन्तःपुर की ओर चल पड़े और येसूबाई के महल में आये।

महल के भीतर पिलाजी मामा, गणोजी, कान्होजी तथा येसूबाई बैठी थीं। महाराज को आया देखकर पिलाजी मामा ने कहा, "हमारा इरादा है कि अब हम शृंगारपूर लौट जाएँ।"

"क्यों? क्या रायगढ़ से जी ऊब गया है?" महाराज ने हँसकर पूछा।

"ऐसी बात नहीं। अब राज्याभिषेक हो चुका, हमारे साथ परिवार है—इस कारण!"

"हमारे मामले में यदि महाराज निर्णय कर दें, तो हम सम्बन्धित राजपत्र लेकर ही रायगढ़ से जा सकेंगे।" गणोजी ने वह विषय महाराज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया, जिसकी चर्चा महाराज के आने से पहले वहाँ की जा रही थी।

"कौन-सा मामला गणोजी?" महाराज के माथे पर बल पड़ गये।

"बड़े महाराज ने आपके और हमारे विवाह के समय वचन दिया था कि वे शिरकाण प्रदेश की जागीर हमारे नाम कर देंगे।"

"क्या कह रहे हो गणोजी तुम? आबासाहब तो नयी जागीरें देने की नीति के बहुत विरोधी थे!" महाराज के मुख पर गम्भीरता छा गयी थी।

"बड़े महाराज ने कहा था," पिलाजी पुराना सन्दर्भ बतलाने लगे, "तुम्हारी पुत्रवधू को जब पुत्र होगा, तो हम शृंगारपूर जागीर तुम्हारे नाम कर देंगे। बड़े महाराज की इच्छा थी कि अपनी विवाहिता पुत्री को अर्थात् हमारी पुत्रवधू को यह जागीर 'चोली-साड़ी' के उपहार के रूप में दे दी जाय। अब हमारा पुत्र गणोजी का बेटा हो गया है, इस कारण..."

"मामाजी, गणोजी जैसे आबासाहब के दामाद हैं, उसी प्रकार महादजी हरजीराजा भी उनके दामाद ही हैं। यदि आपके समान ये सभी दामाद भी ज़ागीरें माँगने लगे, तो क्या होगा? आप तो अपने आदमी हैं। आप इस बात को तनिक गम्भीरता से सोचें। आपके पुत्र गणोजी और कान्होजी को हम इस राज्य की सेवा में कोई ऐसा विशेष पद देंगे, जो उनकी योग्यता तथा सम्मान के अनुरूप हो। इसलिए कृपया नयी जागीर का आग्रह न करें। इससे और कई कठिनाइयाँ उभर आएँगी।"

"महारानीजी का क्या मत है?" येसूबाई अवश्य अपने ख़ून के रिश्ते का समर्थन करेंगी इस हेतु से गणोजी ने उन्हें इस मामले में खींच लिया।

https://t.me/Sahityajunction

“हम समझती हैं कि श्रीमान्‌जी का मत ही उचित है। नयी जागीर माँगना ठीक नहीं है; फिर घर के अपने ही लोगों के लिए तो वह प्रथा के सर्वथा विपरीत बात होगी। आज यदि आबासाहब होते, तो वे भी यही निर्णय करते।”

येसूबाई का उत्तर सुनकर गणोजी तिलमिला उठे और कटुता-भरे स्वर में बोले, “तो फिर क्या हम यह समझें कि भोसलों ने अपना वचन भंग कर दिया?”

“गणोजीऽ!!” सम्भाजी के नेत्रों का भाव एकदम परिवर्तित हो गया था। पर दूसरे ही क्षण उन्हें समर्थगुरु के पत्र की वे पंक्तियाँ याद आ गयीं—‘आये भी यदि क्रोध, दबा लो। प्रकट मत करो जन-समाज में।’ अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक उन्होंने अपने आप को वश में किया।

“हम सब समझ गये। ठीक है, हम चलते हैं। आबा, चलिए। अब हम यहाँ एक घूँट पानी भी पीना नहीं चाहते।” और गणोजी सीधे बाहर चले गये। उनके पीछे-पीछे पिलाजी मामा और कान्होजी भी दरवाज़े के बाहर हो गये।

येसूबाई और महाराज खिन्न होकर उस खुले हुए दरवाज़े की ओर देखते रह गये।

‘समर्थगुरुजी, कहिए, ऐसी स्थिति में नाली में अटकी हुई बाधा कैसे दूर की जाय? पानी की धारा खेत में सब ओर शान्ति से कैसे बहती रहे? घर की नींव के पत्थर ही यदि घर को पराया मानने लगे, तो घर कैसे टिक सकेगा?’ सम्भा जी सुन्न-से होकर हाथ में पकड़े हुए पत्र की ओर देखते ही जा रहे थे। कुछ सोच ही नहीं पा रहे थे वे।

“एक प्रार्थना है हमारी। यदि आज्ञा हो तो पेश...” महाराज पहनावा पहनकर तैयार हो चुके थे। उस समय उनके हाथ में म्यान में बन्द कटार देती हुई येसूबाई कह रही थीं।

“हमें समझ नहीं आता कि तुम तथा हम्बीरराव मामाजी, हमसे इस प्रकार राजदरबारवाली बोली में ही क्यों बात करते हो? निवेदन करो, क्या आज्ञा है?” महाराज ने बात कहकर भी स्वयं अपनी बात हँसते हुए उसी दरबारवाली बोली में ही कही।

“अब सब कार्य निर्विघ्न रीति से सम्पन्न हो चुके हैं। अब इच्छा है कि पाचाड़ में महाराज द्वारा एक मन्दिर बनवाया जाय। पाचाड़ की बस्ती में कोई मन्दिर नहीं है अब तक।”

महाराज को उस राजमुद्रा के शब्द याद आ गये, जो स्वयं उन्होंने ही येसूबाई को दी थी—‘श्रीसखी राज्ञी जयति।’

उन्होंने दरबान को बुलाकर आदेश दिया कि शिल्पकार हिरोजी इन्दुलकर को बुला लाये। हिरोजी के आने पर उन्होंने उसे आज्ञा दी कि पाचाड़ में कोई अच्छा-सा स्थान देखकर राज-मन्दिर की नींव डाली जाय तथा उसका निर्माण घड़े हुए सुन्दर प्रस्तरों से किया जाय।

हिरोजी महल से निकलते समय ही अपने मन में उस मन्दिर की रूप-रेखा बनाता जा रहा था।

महल से बाहर जोत्याजी, रायाजी, अन्तोजी आदि खड़े थे। महाराज उनके साथ ख़ासमहल में सभागृह में आये। सभागृह में आठों मन्त्री ‘अष्टप्रधान’, कवि कुलेश, हरजी राजा, शामजी नाईक आदि श्रेष्ठ जन उपस्थित थे। महाराज ने सबके कुशल समाचार जाने। हम्बीरराव तथा आनन्दराव वहाँ नहीं थे। वे बरार और ख़ानदेश के मुग़ली इलाकों में चौथाई वसूल करने के लिए तथा शत्रु प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए गये हुए थे।

https://t.me/Sahityajunction

“डिचोली से मोरो दादाजी का हरकारा आया है। मोरो दादाजी ने समाचार भिजवाया है कि गोवा के पुर्तगालियों ने अपने राज्य के साथ सारे सम्बन्ध तोड़ दिये हैं।” निलोपन्त ने एक महत्त्वपूर्ण समाचार से महाराज को सूचित किया।

“पन्त, मोरो दादाजी ने पुर्तगालियों के उन गिरफ़्तार लोगों को और उस क़ैद किये हुए पुर्तगाली व्यापारी को छोड़ दिया है या नहीं?” महाराज ने पुर्तगालियों से संघर्ष उत्पन्न होने का मूल कारण जानना चाहा।

“जी नहीं। इसी कारण से पुर्तगाली वायसराय नाराज़ हो गया है।”

“क्या मतलब? हमने बहुत दिन पहले ही सूबेदार मोरो दादाजी को आदेश दिया था कि उन गिरफ़्तार पुर्तगालियों को छोड़ दो। मोरो दादाजी अपने आपको सूबे का सर्वाधिकारी मानते हैं क्या? उन्हें लिखो कि अब हम स्वयं ही डिचोली आनेवाले हैं।”

“जी, पुर्तगाली दरबार में एक और भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है स्वामी। पहले वायसराय अन्तोनियों की बदली हो गयी है और उसके स्थान पर कोंदिद आलवोर की नियुक्ति की गयी है। परन्तु अभी तक वह नया वायसराय गोवा में आया नहीं है।”

“अपने प्रतिनिधि रायाजी पण्डित गोवा में हैं। उन्हें लिखो कि नये वायसराय के आते ही हमें सूचना भिजवाएँ।” इसके साथ ही महाराज के मन में गोवा और समुद्रतट सम्बन्धी कई विचार उठ खड़े हुए। वे सोच में थे—कल हो या चार दिन बाद, परन्तु हमें पुर्तगालियों से और हबशी सिद्दी से दो-दो हाथ करने ही होंगे। उसके लिए आवश्यक है कि कुड़ाल, डिचोली आदि स्थानों में गोला-बारूद के कारख़ाने बनाये जाएँ। उसके सिवाय समस्या हल नहीं हो सकेगी। इसी समय निलोपन्त ने एक दूसरा समाचार कह सुनाया।

“बादशाह औरंगज़ेब ने सूरत शहर में अपनी मुसलमान प्रजा पर भी कर लगा दिया है। बुरहानपुर के सूबेदार के रूप में इरज ख़ाँ की नियुक्ति की है।”

इस समाचार को सुनकर महाराज गम्भीर हो गये। औरंगज़ेब उस समय राजस्थान में था तथा बुरहानपुर की लूट-पाट की ख़बर उस तक पहुँच चुकी थी। बुरहानपुर के निवासियों ने बादशाह सलामत के सामने यह आशंका प्रकट की थी कि कहीं शहर में अब जुम्मे की नमाज़ पढ़ना भी दुश्वार न हो जाय। इस कारण औरंगज़ेब ने उस शहर के चारों ओर मज़बूत चहारदीवारी बाँधने की आज्ञा दी थी। औरंगज़ेब राजस्थान आया था—अपने विद्रोही बेटे अकबर का ख़ात्मा करने के लिए। वह इस काम के लिए वहाँ उलझा हुआ था, पर यह बात साफ थी कि वह वहीं पर ख़ामोशी से बैठा नहीं रहेगा।

“पन्त, अपने जो क़िले मुग़लिया प्रदेश की सीमाओं पर बसे हैं, उनके क़िलेदारों को सूचित करो कि वे अपनी छावनी को रसद से भरकर हमेशा सावधान रहें। सब विभागों के सूबेदारों को लिखो कि वे नये सिरे से सेना का संगठन करें। सेनापति को सूचित करो कि बरार-ख़ानदेश में जितनी लूटपाट मचायी जा सके, मचाते रहें। उन्हें यह भी लिखो कि आबासाहब के वार्षिक श्राद्धकर्म के तुरन्त बाद हम पन्हालगढ़ और राजापुर की ओर जा रहे हैं।”

चारों दिशाओं में शत्रुओं के मोर्चों का विचार ही महाराज के मन में इस समय घूम रहा था।

“चेऊल के सूबेदार तिमाजी व्यंकटेश ने समाचार भेजा है स्वामी।” निलोपन्त ने हबशी सिद्दी

https://t.me/Sahityajunction

की खुराफ़ातों का मामला छेड़ दिया।

"क्या कहते हैं तिमाजी?" महाराज के माथे के शिवतिलक में सिकुड़न आ गयी।

"मुम्बई की ओर जा रहे हमारे दो जलपोतों को और उन जलपोतों के चार नाविकों को सिद्दी ने क़ैद कर लिया था। तिमाजी ने मुम्बई के अँग्रेज़-दरबार को यह चेतावनी दी कि 'इम इस मामले की ख़बर अपने महाराज को भिजवा रहे हैं। याद रखें कि महाराज आपको अब क्षमा नहीं करेंगे।'

"इस डाँट-डपट का लाभ यह हुआ कि अँग्रेज़ों ने उन जलपोतों और नाविकों को सिद्दी की क़ैद से छुड़वा लिया और मुम्बई के अपने दूत आवजी की मध्यस्थता द्वारा उन्हें फिर से अपने हवाले कर दिया है।"

इस वार्ता को सुनकर महाराज के मुखमण्डल पर विविध प्रकार के भाव आने-जाने लगे। कभी सिद्दी कासिम के प्रति रोष का भाव, तो कभी अँग्रेज़ों की नित नयी चाल के प्रति खीज, कभी तिमाजी की कार्य के प्रति तत्परता के लिए प्रशंसा और कभी आवजी के दूतकर्म के प्रति आनन्द, इस प्रकार उनके मुख पर विविध घटाएँ छा रही थीं।

"पेशवा, चिमाजी को सन्तोषपूर्ण भाव से पत्र लिखो। आवजी को भी लिखो कि वे मुम्बई में रहकर ही हबशी सिद्दी की गतिविधियों पर दृष्टि रखें।" इस समय महाराज की आँखें दक्षिण में बेंगुली और मालवण से लेकर उत्तर में मुम्बई तक फैले हुए सारे लम्बे समुद्री किनारे को देख रही थीं। उस चार-पाँच सौ मील लम्बे समुद्री तट एवं समुद्री प्रदेश में बैठे अँग्रेज़, हबशी और पुर्तगाली—ये तीन चालोंवाली तीन शक्तियों का उन्हें मुकाबला करना था। फिर ऐसी चतुर युक्ति से काम लेना था कि ये तीन समुद्री सत्ताएँ कहीं एक न हो जाएँ। इसके लिए रास्ता यही था कि समुद्री किनारे पर जलदुर्ग बनाये जाएँ। अरबों के साथ मित्रता रखी जाय तथा पूरे लम्बे समुद्री किनारे पर गोला-बारूद के कारख़ाने खड़े किये जाएँ। हबशी सिद्दी की समुद्री डकैती का सामना करने के लिए अरब के समुद्री डकैतों को दोस्त बनाकर रखा जाय। इस दृष्टि से महाराज ने निलोपन्त को योजना बतलायी, "पन्त, दक्षिण में राजापुर से लेकर उत्तर में खन्देरी तक अपनी जितनी भी समुद्री चौकियाँ हैं, उन चौकियों के नाविक-नायकों को लिखो कि सावधानी से जमकर बैठे रहें और अरब मल्लाहों से जितना हो सके, उतनी दोस्ती बढ़ाते रहें।"

महाराज बैठक से उठे और हरजी राजा के साथ सभागृह से बाहर चले गये। बाहर कुछ गरीब किसान प्रजाजन खड़े थे। चांगोजी ने उनकी ओर संकेत करके उन्हें आगे बुलाया और कहने लगे, "ये लोग प्रचण्डगढ़ के मछुआरे हैं। कुछ चौकीदार भी हैं। ये महाराज से मिलने आये हैं।"

वे दीन जन कम्बल से बने कुरते और लँगोट पहने हुए थे। वे अत्यन्त दीनभाव से महाराज को मुजरा करने लगे।

"कहो भाई, क्यों आये हो गढ़ में?" महाराज की जिज्ञासु दृष्टि उन लोगों के चारों ओर फिर रही थी।

अब तो वे मछुआरे और चौकीदार और भी हड़बड़ा गये थे। सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

https://t.me/Sahityajunction

“घबराओ मत। बोलो, क्यों आये हो?” छत्रपति ने उन्हें ढाढस बँधाया।

उनमें से एक आदमी हिम्मत करके बोला, “हममें से कुछ लोग गढ़ की नौकरी करते हैं। सरकार ने हम ग़रीबों की गौओं पर और मकानों पर भी कर लगाया है। हम ग़रीबों के पास ढोर-डंगरों के अलावा और है ही क्या? मालिक, अर्ज़ी इतनी ही है कि हमारा कर माफ़ कर दिया जाय।” वह आदमी आगे बढ़ा और सीधा छत्रपति के पैरों में गिर पड़ा।

“उठो, उठो,” महाराज ने कन्धों को सहारा देकर उसे उठाया। फिर उनके चेहरे पर एक असाधारण निश्चय झलकने लगा।

“चांगोजी, ज़रा कार्यालयाध्यक्ष चिमनगावकर को बुलाओ।” राजाज्ञा हुई।

चांगोजी राजकार्यालय में जाकर कार्यालयाध्यक्ष को बुला लाया। महाराज ने वहीं उसी स्थान पर खड़े-खड़े तुरन्त निर्णय कह सुनाया, “कार्यालयाध्यक्ष, प्रचण्डगढ़ के मुद्राधिकारी रहोजी अहिरराव को शीघ्र सन्देश भेजो। उन्हें लिखो कि इन मच्छिमारों और चौकीदार लोगों का कर माफ़ किया जाता है। गढ़ में जो हवलदार, नायक, राजपूत-सैनिक हैं उन्हें भी दो गौओं के कर से मुक्त रखा जाता है। दो गौ-भैंसों से ज्यादा आगे जितने पशु हों उन पर ही केवल कर लगाया जाय। इन लोगों को मकानों के कर से मुक्त किया गया है, यह भी लिखो।”

“जी,” कार्यालयाध्यक्ष ने आज्ञा को ध्यानपूर्वक सुना।

“सुनो भाई, आज तुम लोग यहीं गढ़ में रहो। चांगोजी, इन लोगों के भोजन का प्रबन्ध करो।” वे सन्तुष्ट और आनन्दित दीन प्रजाजन सम्भाजी को मुजरा करके कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे। महाराज सम्भाजी का मन इस समय समर्थगुरु रामदास के पत्र की पंक्तियों को बार-बार दुहरा रहा था :

रखो प्रजा को सुखी, शान्त नित। फिर बहु कर्म करो तुम सत्वर।
अपनों का तुम करो संगठन। वैरी को तुम कुचल-मसल दो।।

चैत्र मास की पूर्णिमा आ गयी। महाराज सम्भाजी रायगढ़ से उतरकर नीचे तलहटी में बह रही काल नामक नदी के तट पर आये। केवल पीताम्बर धारण कर वे नदी के जल में खड़े हो गये तथा आज से ठीक एक वर्ष पूर्व स्वर्गवासी हुए अपने आबासाहब की आत्मा के प्रति वे वार्षिक श्राद्ध के निमित्त जलांजलि देकर तर्पण करने लगे। नदी के तट पर बालम्भट्ट, कवि कुलेश, ऊधो योगदेव, केशव पण्डित तथा उमाजी पण्डित खड़े थे।

जल में खड़े हुए महाराज का मन भी आज आबासाहब के प्रति स्मृतियों की एक-एक अंजलि समर्पित कर रहा था—‘एक बरस बीत गया! अब भी मन नहीं मानता कि हमारे आबासाहब इस संसार में नहीं रहे। परन्तु यह तो नितान्त सत्य है। जब वे मृत्युशय्या पर पड़े थे, तब वहाँ उपस्थित लोगों से उन्होंने कहा था—‘यह संसार तो मृत्युलोक है। यहाँ जो भी आये, वे गये।’ यह तो जग की रीत ही है। वास्तव में यह संसार पवित्र होता है, आबासाहब के समान महान आत्माओं के आगमन से और अनाथ बन जाता है उनके प्रयाण से। हमारे एक आदेश पर लोग अपने प्राणों की तर्पण-अंजलि भी चढ़ा देते हैं, ऐसा दृश्य देखने का सौभाग्य किसी-किसी

https://t.me/Sahityajunction

भाग्यवान् को ही प्राप्त होता है। आबासाहब का भाग्य ऐसा महान था। उन्होंने शिवनेरी के दुर्ग में जन्म पाया और रायगढ़ में उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई। कुल मिलाकर पचास वर्ष का जीवन पाया उन्होंने। परन्तु अपने जादू-भरे हाथों से उन्होंने सामान्य जनों का और देश की भूमि का चित्र ही बदल डाला। हम उन्हें कितना भी जानना-समझना चाहें, उनके व्यक्तित्व की गहनता को हम कभी भी समझ न पाएँगे। इसका नाम है जीवन। वास्तव में देखा जाय तो ऐसे व्यक्तित्व को श्राद्धकर्म अथवा तर्पण की भी क्या आवश्यकता है?

'आबासाहब, हमारे जीवन के कुछ क्षण ऐसे भी आये, जब हम बहककर पठान की सेना से जा मिले थे। हमारी उस नादानी से आपके हृदय को जो पीड़ा हुई, उसका निवारण भला हम कैसे करें? इस प्रकार नदी के जल में खड़े होकर हम जीवनभर भी आपके प्रति तर्पण करते रहें, तो भी उस दोष को हम मिटा नहीं सकते। हम इस शल्य को मन से निकाल फेंकना चाहते हैं, पर यह गड़ा काँटा निकलता ही नहीं है। आबासाहब, सच देखा जाय तो आपको जलांजलि समर्पित करने की भी हमारी योग्यता नहीं है। सच्चा समर्पण तो वह है, जो पाचाड़ की माँ साहिबा ने किया, जो पेशवा मोरोपन्त ने किया। आपने जो राज्य बनाया है, हमें उसका प्रलोभन नहीं है। हमने जो यह राजमुद्रा हाथ में धारण की है, वह इस कारण कि हम अपने माथे पर लगे कलंक को धो सकें। आबासाहब, हमें शक्ति दो ताकि हम सिद्ध कर सकें कि हमारी नसों में आपका ही ख़ून बह रहा है। हमारे हाथों में सामर्थ्य और कीर्ति भर दो। उदार होकर हमें आशीर्वाद दो। हमारी भूल-चूक को क्षमा करो।'

श्राद्धकर्म के बाद महाराज रायगढ़ लौट आये। उन्होंने निलोपन्त को आज्ञा देकर सिंहासन वाले राजसभागृह में राजसभा आयोजित करने का आदेश दिया। इस राजसभा में हरजीराजा, शामजी नाईक, पुँडे, दादाजी काकडे तथा जैताजी काटकर को सम्मान के बीड़े देकर विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था।

भरी राजसभा के सम्मुख महाराज ने हरजीराजा को म्यान में बन्द एक खड्ग, अलंकार, सम्मान-वस्त्र एवं सिरपेंच से भरा एक तबक़ भेंट दिया। फिर उनके कन्धे पर हाथ रखकर उनकी दृष्टि से दृष्टि मिलाकर महाराज अत्यन्त विश्वासपूर्वक कहने लगे, "हरजीराजा, हम कर्नाटक प्रान्त के शासन का पूर्ण अधिकार तुम्हें सौंप रहे हैं। इस प्रान्त के अन्तर्गत बंगलोर, जिंजी होसकोट, कोलार, वेलूर, दोड्डुवालापुर, चिक्कबालापुर आदि प्रदेश आते हैं। इस प्रान्त के चारों ओर मदुरा, मैसूर, इक्केरी, रामनाड़ आदि प्रदेश हैं जिनपर छोटे-बड़े नायकों का शासन है। तंजौर में हमारे चाचा एकोजी हैं ही। तुम उनकी सहायता से प्रान्त का विकास करो। कर्नाटक प्रान्त हमारे साम्राज्य का दृढ़ मोर्चा है। तुम आस-पास के नायकों के राज्यों पर दबाव डालकर अपने राज्य को दृढ़ बनाये रखो। तुम्हारी सहायता के लिए हम शामजी, जैताजी और काकडे को दे रहे हैं। तुम उधर कर्नाटक में रहोगे, तो हम आश्वस्त रहेंगे कि मानो हम ही वहाँ हैं। आवश्यकता पड़ने पर हमारी ओर हरकारा भेज देना। हम स्वयं तुम्हारी कुमक के लिए आएँगे। तुम आज ही रवाना हो जाओ। माँ जगदम्बा तुम्हें सफल बनाने में समर्थ है।" महाराज ने हरजी को स्नेहपूर्वक गले से लगा लिया। हरजी ने भी महाराज को आश्वासन दिया, "हम स्वामी के कार्य में तनिक भी शिथिलता नहीं बरतेंगे। छत्रपति निश्चिन्त रहें।"

इसी प्रकार शामजी, जैताजी और भीमाजी काकडे को भी सम्मान-वस्त्र देकर सम्मानित

https://t.me/Sahityajunction

किया गया।

महाराज हरजीराजा के साथ ही रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आये। वहाँ से पन्द्रह हज़ार सैनिक तथा चुने हुए सरदारों को लेकर हरजी पाचाड़ से चल पड़े। कर्नाटक प्रान्त के पूर्ण शासनाधिकारी बनकर हरजीराजा महाड़ीक पाचाड़ से कूच कर रहे थे।

महाराज पाचाड़ के नगरद्वार पर खड़े-खड़े हरजी की कूच करती हुई सेना की ओर देख रहे थे। इसी समय उनके मन में अपने बहनोई गणोजी की मुखाकृति घूम गयी। एक बहनोई ये हरजी भी हैं, जो राज्य की ख़ातिर हर प्रकार के भय-संकट का सामना करने के लिए दूर देश को जा रहे हैं और एक बहनोई वे भी हैं, जो जागीर न मिलने के कारण रूठकर, पीठ फिराकर शृंगारपूर चले गये हैं।

महाराज रायगढ़ लौट आये थे और सभागृह में बैठे हुए थे। थोड़ी ही देर बाद गुप्तचर बहिर्जी भीतर आया। उसने मुग़ल सैनिकों जैसी वेशभूषा पहनी हुई थी। उसने छँटी हुई नोकदार नकली दाढ़ी लगायी हुई थी, इसलिए उसे जल्दी पहचान पाना सम्भव नहीं था। उसने उसी वेश में महाराज को जुहार की।

महाराज उसे एक बन्द कमरे में ले गये। बहिर्जी आगरा, बुरहानपुर, बागलाण आदि प्रदेशों में घूम-फिरकर आया था और उसने बाज़ जैसी तेज़ नज़रों से और चीते जैसे तेज़ कानों से कई ख़बरें जान ली थीं। खुसफुसाती हुई आवाज़ से वह महाराज को बता रहा था,"मालिक, राजपूताने की एक ख़बर है। बादशाह औरंगज़ेब ने अपने बेटे अकबर को अजमेर के मैदान में देखते ही देखते चकमा दे दिया। शहज़ादा अकबर ने राजपूतों की सेना की सहायता लेकर अपने बाप पर हमला कर दिया, पर दाँव उलटा पड़ा। बादशाह ने अकबर के नाम कुछ बनावटी पत्र भेजे जिनमें लिखा था कि 'शाबाश, तूने यह बड़ी चालाकी दिखलायी, जो राजपूतों को फुसलाकर मेरे सामने ले आया है। अब एक ओर से तू और दूसरी ओर से हम मिलकर राजपूतों को गाजर-मूली की तरह काट डालेंगे।' बादशाह ने कुछ चतुराई और दिखलायी तथा कुछ ऐसी व्यवस्था की कि ये बनावटी पत्र राजपूत सरदारों के हाथ लग जाएँ। परिणाम वही हुआ, जो औरंगज़ेब चाहता था। राजपूतों ने वे पत्र पढ़े और वे एकदम भड़क उठे। उसी रात वे अकबर की छावनी छोड़कर दूर निकल गये। पहले साठ हज़ार राजपूत वहाँ थे, इस भागा-दौड़ी में एक समय पर बीस हज़ार सैनिक भी नहीं रहे। अकबर की सारी हिम्मत टूट गयी और अब वह भयभीत होकर जंगलों-पठारों में मारा-मारा फिर रहा है। सुना जाता है कि वह हमारे राज्य में घुसनेवाला है।"

महाराज ने बहिर्जी का प्रत्येक शब्द बड़े ध्यान से सुना और वे किसी सोच में डूब गये। उन्होंने बहिर्जी से एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया, "नायक, अब बादशाह की अगली चाल क्या होगी, कुछ अनुमान है क्या?"

"उधर मुग़लिया इलाके में यह ख़बर फैली हुई है कि वह अब दक्खिन की ओर कूच करनेवाला है। बुरहानपुर और औरंगाबाद में उसके स्वागत की ज़ोरदार तैयारियाँ की जा रही हैं।" महाराज की चिन्ताक्रान्त दृष्टि बहिर्जी की कटी-छँटी दाढ़ी पर फिर रही थी।

https://t.me/Sahityajunction

“ठीक है, नायक। तुम चार दिन आराम करो। उसके बाद अपने काम पर रवाना हो जाओ तथा अपने चुनिन्दा गुप्तचरों को बुरहानपुर और औरंगाबाद में जहाँ-तहाँ फैला दो। जो कुछ भी ख़बर पाओ, हमें तुरन्त बतलाते रहो।” महाराज जब उस कक्ष से बाहर निकले, तब वे मन में उस औरंगज़ेब के बारे में ही सोच रहे थे, जो पहले कभी अपने बाप के पीछे पड़ा था और अब अपने बेटे को परेशान करने निकला था।

उन्होंने चांगोजी को बुलाकर एक आदेश दिया। इस आदेश का उद्देश्य था कि रायगढ़ में सब दृष्टियों से मुक्त वातावरण बन जाए। “चांगोजी, बड़ी माँ जी के बड़े महल पर लगाये गये पहरे अब हटा दो। महल को मुक्त रहने दो।” परन्तु ऐसा करते समय महाराज को यह तनिक भी अनुमान न था कि इसी एक आदेश के कारण भविष्य में कोई झंझट-बखेड़ा हो जाएगा।

औरंगज़ेब का पुत्र अकबर नर्मदा नदी पार करके महेश्वर नामक स्थान पर पहुँचा था। वहाँ से उसने सम्भाजी महाराज को फारसी में एक पत्र लिखा था। प्रह्लादपन्त ने कवि कुलेश की सहायता से उस पत्र का मराठी अनुवाद तैयार किया। फिर वे कवि कुलेश के साथ महाराज से मिलने आये।

“शहज़ादे द्वारा भेजे गये पत्र का मराठी अनुवाद तैयार हो गया है, महाराज।” प्रह्लादपन्त ने अपने हाथ में पकड़े हुए गोल लिपटे काग़ज़ को दिखाते हुए कहा।

“पढ़ो, प्रह्लादपन्त। सुने तो शहज़ादे अकबर का इरादा क्या है?” महाराज ने आज्ञा दी। प्रह्लाद निराजी पत्र पढ़ने लगे :

‘महाराजाधिराज शम्भूराजा के प्रति—हमारी असीम कृपा की आशा लेकर आप यह जान लो कि सब हिन्दुओं का सत्यानाश करना ही हमारे अब्बाजान आलमगीर के राज्य का उद्देश्य पहले से ही था और आज भी यही उद्देश्य है। महाराज जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद तो इस उद्देश्य को सब स्पष्ट रूप से जान चुके हैं। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आलमगीर ने उदयपुर के राणा राजसिंह पर भी आक्रमण किया है।

‘सब मनुष्य उसी ख़ुदाताला की सन्तान हैं। वही सबका रक्षक है। इसी प्रकार यहाँ के ज़मींदारों तथा रिआया की यह हिन्दुस्तान ही मातृभूमि है। तब उनका ही नाश करना सर्वथा अन्याय है। आलमगीर ने इस सीधी-सी बात का भी खयाल नहीं रखा है। यदि इसी तरह हिन्द के लोगों का नाश होता रहा, तो एक दिन ऐसा आएगा, जब हमारे ख़ानदान को हिन्दुस्तान की बादशाहत से वंचित होना पड़ेगा। इसलिए दुर्गादास राठौर तथा राणा राजसिंह की प्रार्थना के कारण हमने अजमेर पर हमला बोल देने का फैसला कर लिया था। हम आलमगीर की छावनी से केवल दो कोस दूर रह गये थे। परन्तु आलमगीर की कुटिल भेद-नीति के कारण राठौर राजपूतों को यह भ्रम हो गया कि हम उन्हें मौत के गढ़े में ढकेलने लाये हैं। इस संशय के कारण वे रातों-रात अपने घरों को चल दिये। इस पर हमारे सैनिकों की हिम्मत भी जाती रही और वे भी भाग गये। हम अपने कुछ निजी नौकर साथ लेकर मारवाड़ की ओर चले गये। शाहजहाँबाद, लाहौर, एलगढ़, बागलाण आदि के रास्ते होते हुए हमने भैसवाड़ के पास नर्मदा नदी पार की है। हमारे साथ दुर्गादास राठौर भी हैं। अल्लाह की दया से जब दिल्ली का राज्य हमारे क़ब्ज़े में आ जाएगा, तब मैं केवल नाम मात्र के लिए राजा कहलाऊँगा। वह सारा राज्य आपका ही होगा। इसलिए आइए, आपके और हमारे बारे में आलमगीर के मन में जो दुश्मनी घुसी बैठी है, उसका विचार

https://t.me/Sahityajunction

करके हम दोनों एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मिलकर प्रयत्न करें।

'संसार में सदा एक-सी परिस्थिति नहीं रहती। यदि चिरस्थायी होता है तो केवल मनुष्य का यश और उसके सत्-कार्य। एक सच्चा योद्धा केवल इन्हीं बातों की आशा रखता है। हमने तुम्हारी वीरता और असाधारण साहस के बारे में सुना है, इसीलिए हमने तुम्हारे राज्य में प्रवेश करने का निश्चय किया है। अधिक क्या लिखें? अक्लमन्द को इशारा काफी होता है।'

एक बेटे द्वारा अपने पिता का चित्रित यह चित्र वास्तव में अपनी कहानी आप था। पत्र सुनकर महाराज विचारमग्न हो गये। एक दिन ऐसी ही अवस्था उन पर भी आ बनी थी और बीजापुर दरबार के वज़ीर मसूद ख़ाँ ने स्वयं उन्हें ही 'सुनहरी कटार' समझा था। आज महाराज सम्भाजी को यह शहज़ादा भी 'सोने की कटार' ही दिखाई दे रहा था। बात थी भी सही, क्योंकि कुछ भी हो वह था तो औरंगज़ेब का बेटा ही। पहरे की चौकी में बैठा एक साधारण चौकीदार भी चिलम पीते समय यदि जलता अंगारा उठाता है, तो पहले उसे दस बार हिलाता-झटकता है। फिर अकबर तो शाही अंगारा था। उसकी उपेक्षा करना भी उचित न था और उसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना भी बुद्धिमानी नहीं थी। अकबर अपनी पिटती हुई बाज़ी लेकर दौड़ता-भागता हुआ चला आ रहा था।

"कविजी, इस शहज़ादे के बारे में तुम्हारी क्या सलाह है?"

"अकबर बादशाह का बेटा है। स्वामी, हमारा मत है कि हमें उससे अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहिए।" कुलेश ने सलाह दी।

"तुम भूलते हो कविजी। यह शहज़ादा उस मात्रा के समान है, जो आकर कविता के छन्द का भंग कर देती है। हम उसे अधिक महत्त्व नहीं देंगे। वह जितना लाभदायक सिद्ध होगा, उसकी अपेक्षा वह हानिकारक अधिक सिद्ध हो सकता है। प्रह्लादपन्त, जब तक उसके विषय में पूरी तरह जानकारी न मिल पाये, तब तक उसके पत्र का उत्तर मत दो। उसके आसपास और रास्ते में अपने जासूसों का जाल फैला दो।" महाराज ने इस विषय में निर्णय कर लिया था।

आवजी मुम्बई के अँग्रेज़ दरबार से रायगढ़ लौट आये थे। निलोपन्त उन्हें साथ लेकर महाराज से मिलने आये। आवजी ने अँग्रेज़ दरबार द्वारा भेजा गया डेढ़ सौ रुपये का नज़राना उन्हें पेश किया। महाराज ने उस तबक़ को हाथ से छूकर राजदूत आवणी से राजदूत के कार्यों का विवरण जानने के लिए पूछा, "अँग्रेज़ हबशी को आसरा देते हैं या उसे डाँटते-डपटते हैं?"

"हमारे जाने के एक महीने के भीतर ही अँग्रेज़ साहब ने गैरी तथा शॉर्विन नामक वकीलों को हबशी सिद्दी से बातचीत करने के लिए जंजीरा भेजा था। गोरे लोगों ने सिद्दी को चेतावनी दे दी है कि नागोठाणे, आपटे तथा पेण भागों में हबशी जो लूटमार मचाता है, उसे वह सब बन्द करना होगा, अन्यथा उसे मुम्बई बन्दरगाह में आने नहीं दिया जाएगा। अँग्रेज़ हबशी के साथ यथायोग्य रीति से बर्ताव कर रहे हैं। हमने महाराज का सन्देश गोरे साहब को बता दिया था, इसलिए अँग्रेज़ों ने अब हबशी को आड़े हाथों लिया है।"

"अब हबशी कहाँ है?" महाराज के मुख पर सन्तोष झलक रहा था।

"वह अपने जहाज़ी बेड़े के साथ सूरत बन्दरगाह की ओर गया है।" आवजी ने मुम्बई में रहकर सिद्दी की गतिविधियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा था।

https://t.me/Sahityajunction

“ठीक है।” कहते हुए महाराज बैठक से उठने लगे। परन्तु कुलेश ने एक ऐसा विषय छेड़ दिया, जो उन्हें बहुत दिनों से सता रहा था।

“महाराज, आपका तो राज्याभिषेक हो गया, परन्तु उस समय आपका कोई पुत्र नहीं था। इसलिए आपके राज्याभिषेक के साथ-साथ जो युवराज पद का भी अभिषेक होना चाहिए था, वह नहीं हो पाया। इसलिए...”

“तुम्हारे मन में क्या है छन्दोगामात्य?” महाराज समझ नहीं पाये थे कि कविजी के मन में क्या है।

“यदि एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया जाए, तो...” कविजी ने एक आत्मीयतापूर्ण विषय प्रस्तुत किया।

महाराज ने इस प्रस्ताव को हँसकर स्वीकृति दे दी। “तुम्हें ‘छन्दोगामात्य’ कहा जाता है, सो उचित ही है कविराज! जीवन भी तो एक ऐसा काव्य है जिसमें विविध छन्दों का प्रयोग होता है। यह यज्ञ भी यदि इसी जीवन-काव्य का एक भाग हो, तो उसकी भी उपेक्षा क्यों की जाय? आप राजकर्मचारियों की सहायता लेकर इस यज्ञ की तैयारी कीजिए।” छत्रपति बैठक से उठ खड़े हुए।

“कविराज, हमारे साथ मावल-माची तक चलिए। वहाँ से माँ साहिबा की हवेली के दर्शन कर लें।” महाराज ने जाते-जाते कवि कुलेश से कहा।

कविजी और जोत्याजी सहित महाराज मावल-माची की ओर जाने लगे। कवि कुलेश उनके पीछे चल रहे थे। इस समय महाराज ने एक बात की ओर कवि कुलेश का ध्यान खींचा।

“छन्दोगामात्य, हम आपको जैसे ‘कविजी’ कहकर पुकारते हैं, वैसे हमारे मावलदेस के ये साधारण प्रजाजन और सैनिक बोल नहीं पाते। इसलिए वे आपको ‘कबजी’ कहकर पुकारते हैं। इसी तरह उनके लिए ‘कुलेश’ शब्द का उच्चारण कठिन है, इसलिए वे आपको ‘कलुशा’ कहते हैं। आप इससे नाराज़ तो नहीं होते?” छत्रपति जब यह कह रहे थे तब उन्हें यह भी याद आ रहा था कि उनका उल्लेख भी मुग़ल, आदिलशाह, कुतुबशाह, अँग्रेज़ और पुर्तगाली दरबारों में सम्भाजी नहीं ‘सम्बा’ के रूप में किया जाता है।

“हम इससे नाराज़ नहीं हैं, स्वामी।” कवि कुलेश ने हँसते हुए उत्तर दिया।

माची से पाचाड़ की हवेली के सभागृह का दर्शन करते समय महाराज के मन में केवल एक ही शब्द बार-बार घण्टानाद के समान गूँज रहा था—‘पुत्रेष्टि यज्ञ।’

‘हमारे दो पुत्र शत्रु की क़ैद में बन्द हैं। फिर भी क्या यह कार्य किया जाय? हमने कविजी से कहा कि जीवन भी एक काव्य है, परन्तु वह मुक्तक काव्य नहीं, खण्डकाव्य है। इस खण्डकाव्य को पढ़ना भी एक कला है। अन्तःकरण पीड़ा से सुलगता हो, परन्तु उसे छिपाकर होठों पर मुस्कराहट बिखेरकर ही इस खण्डकाव्य को पढ़ना पड़ता है, इसका अनुभव करना पड़ता है।’

रायगढ़ में ‘पुत्रेष्टि यज्ञ’ यथाविधि सम्पन्न हुआ। महाराज ने नासिक तक आ पहुँचे अकबर को पाली प्रदेश के सुधागढ़ पर पहुँचाने की ज़िम्मेदारी चिटनीस बालाजी आवजी और बहिर्जी

https://t.me/Sahityajunction

भोसले को सौंपी और वे डिचोली नगर की ओर जाने के लिए रायगढ़ से उतरे। उन्होंने खण्डोजी बल्लाल, येसाजी गम्भीरराव, कविजी आदि को अपने साथ लिया। पोलादपुर और महाड के रास्ते कोयना के पहाड़ी घाट को पार करके जावली और मलकापुर के देशाधिकारियों को साथ लेकर वे पन्हालगढ़ आ पहुँचे। आज लगभग एक साल बाद वे पन्हालगढ़ आये थे।

क़िले की ऊँची प्राचीर से उतरकर खण्डोजी आ उपस्थित हुए और मुजरा करके बोले, "दमण भाग में अपनी एक छोटी सेना ने पुर्तगालियों के कई घर जला दिये हैं और कुछ आदमियों को ज़िन्दा जला डाला है। इस अत्याचार का बदला हमारी सेना ने दमण भाग में लिया है।"

छत्रपति कुछ कहना ही चाहते थे कि सेनानायक म्हलोजी बाबा भीतर प्रविष्ट हुए और झुककर कहने लगे, "डच लोगों की ओर से कोई साहब आया है। मालिक से मिलना चाहता है।"

महाराज ने हाथ उठाकर अनुमति दी। ऊँचे क़द का, एकदम गोरा-चिट्टा डच वकील लेफेबर अपने दुभाषिये के साथ भीतर प्रविष्ट हुआ। उसने किरमिजी रंग का गोल झोलदार अँगरखा पहन रखा था। उसके ढीले-ढाले पाजामे के दोनों ओर लड़ियोंवाली झालरें झूल रही थीं। लेफेबर ने महाराज के सामने बिछे हुए ग़लीचे पर घुटने टेककर सिर झुकाया और सफ़ेद पंखोंवाली अपनी गोल चौड़ी टोपी उसने हाथ में ले ली। उस टोपी को अपने दाहिने हाथ से हवा में हिलाते हुए उसने महाराज को अभिवादन किया। यह डच राजदूत पाण्डिचेरी से आया था। उसके दुभाषिये ने डच दरबार की अर्ज़ी छत्रपति के सामने पेश की।

"महाराज, डच दरबार की यह प्रार्थना है कि उन्हें पाण्डिचेरी भाग में व्यापार करने की सुविधाएँ दी जाएँ तथा सिक्के ढालने की भी अनुमति दी जाय।"

आबासाहब के काल से ही डच तथा मराठा साम्राज्य के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहे थे। महाराज ने दुभाषिये के सामने एक शर्त रखी, "हम यह प्रार्थना स्वीकार करेंगे, परन्तु एक शर्त है। शर्त यह है कि डच लोग हमें बन्दूक़ें तथा तोपें दिया करें।"

दुभाषिये ने यह शर्त लेफेबर को बतलायी। शर्त सुनकर उसने बड़े आदर सहित गरदन हिलायी। महाराज ने इस काम की पूर्ति का उत्तरदायित्व कविजी को सौंपा तथा डच राजदूत को बीड़े देकर सम्मानपूर्वक विदा किया।

येसाजी गम्भीर, म्हलोजी बाबा, काशी रंगनाथ, खण्डोजी आदि के साथ महाराज उपरिकोट से बाहर निकले। रंगरूपी शिवपिण्डी के दर्शन करके वे परकोटे पर बनी हुई सज्जा-कोठी में आये। उन्हें वे क्षण याद आये, जब इसी कोठी में आबासाहब से उनकी मुलाकात हुई थी। कोठी में सनसनाती हुई हवा उनके कानों में कह रही थी—'इतनी नन्ही-सी पलकें भी आँख में एक तिनके को भी सहन नहीं कर पाती हैं।—स्वयं औरंगज़ेब पूरी फ़ौज के साथ दक्खिन पर हमला कर सकता है, इसका कभी ख़याल किया है तुमने?—याद रखो—पहले मनुष्य का शरीर नहीं मन मरता है। हम और तुम पहले सेनापति, अन्तिम योद्धा और सबसे अन्त में राजा हैं।' दो राज-दुआरी, तीन दरवाज़ा आदि स्थानों का एक चक्कर लगाकर महाराज उपरिकोट में आये।

दोपहर के भोजन के बाद उन्होंने गढ़ के चिटनीस को बुलाया तथा राजापुर, कुड़ाल, डिचोली भागों को भेजे जानेवाले ख़लीतों के विषय बतलाये। उन्होंने चिटनीस को यह भी आदेश दिया कि येसूबाई के नाम एक ख़लीता रायगढ़ भेजा जाय, जिसमें हमारे पन्हालगढ़ पहुँच जाने

https://t.me/Sahityajunction

की सूचना हो। लिपिक के चले जाने के बाद महाराज महल में अकेले ही टहलने लगे। म्हलोजी भीतर आकर खड़े हो गये, परन्तु उनकी ओर भी महाराज का ध्यान नहीं था। म्हलोजी खड़े-खड़े सोचने लगे कि खड़े रहें या चले जाएँ। उनके जाने की आहट से महाराज का ध्यान उनकी ओर गया। उन्हें रोकते हुए छत्रपति ने पूछा, "क्या है म्हलोजी बाबा? क्यों आये थे? क्या बात है? बोलो, संकोच मत करो।"

"एक गड़रिया आया है। नाम है धाकलू। उसे बहुत समझाया, पर मानता नहीं है। कहता है, मालिक से मिलना है।"

"क्यों मिलना चाहता है?"

"कहता है, आपको कुछ भेंट देने आया है।"

"हमें देने आया है? म्हलोजी बाबा, अच्छी तरह पूछताछ करो। वह कुछ भेंट पाने आया होगा।"

"दस बार पूछा है मालिक। कहता है, देने आया हूँ।"

"अच्छा, तो ले आओ उसे।" महाराज की उत्सुकता बहुत बढ़ गयी थी।

धाकलू गड़रिया भीतर आया। रूप था ऐसा कि वह कन्धे पर काली कमली डाले हुए था, शरीर में कपड़े के छोर के सूतों से कसा हुआ कम्बल का कुरता पहने था, सिर पर लाल मुँडासा पहने था, कमर में बँधे हुए लकड़ी के खाँचे में एक तेज़ धार वाली दराँती रखे हुए था और लँगोट पहने था। म्हलोजी ने उसे संकेत करके बार-बार सुझाना चाहा कि महाराज को झुककर मुजरा करे, पर वह फक्कड़ धाकलू दरबारी रिवाज कहाँ जानता था? वह यूँ ही खड़ा रहा।

महाराज ने उस देहाती गड़रिये से पूछा, "कौन हो बाबा तुम? कहाँ से आये हो? क्या काम है?"

उसने अपने कन्धे पर रखी कमली को ठीक-ठाक किया और फिर अपनी ठेठ गड़रियोंवाली बोली में धाकलू कहने लगा, "जी, मैं धाकलू हूँ। गड़रिया हूँ, गड़रिया। म्हसाई देवी की घाटी में रहता हूँ। तुममें से राजा कौन है?" निर्भय धाकलू सीधे राजा से ही पूछ रहा था कि 'राजा कौन है!'

छत्रपति के सामने खड़ा वह गड़रिया अरबी घोड़े के समान शानदार दिखलाई दे रहा था। उसे ढाढस बँधाने के लिए सम्भाजी बोले, "हम ही हैं राजा।"

"बिरोबा की जै-जैकार।" वह गड़रिया अपनी जाति की प्रथा के अनुसार अभिवादन करने के लिए भूमि पर लेटकर दण्डवत् करने लगा।

"यह भेंट है इस गड़रिये की।" कहकर धाकलू ने अपनी लँगोटी की गाँठ खोलकर उसमें से चूने की डली जैसा सफ़ेद एक टुकड़ा बाहर निकाला और महाराज के पैरों में रख दिया।

महाराज ने झुककर उस टुकड़े को उठाया और पूछा, "यह क्या है धाकलू बाबा?"

"ये पपड़िया पत्थर है। शरीर पर खुरण्डों या पपड़ियों के जैसा खुरदरे बदनवाला एक बिलाव होता है हमारे जंगल में। उसकी पीठ पर से कुरेदकर निकाला जाता है ये पपड़िया पत्थर।"

https://t.me/Sahityajunction

“हमें क्यों दे रहे हो यह?”

“यह बहुत गुणकारी पत्थर है राजा। बड़ी मुश्किल से मिलता है। पपड़िया जंगली बिलाव अगर ज़िन्दा मिल जाय, तो उसकी पीठ पर चूना थापकर रात-भर चूने को रगड़ना-गूँथना पड़ता है। सुबह होने तक उस चूने का ऐसा एक पपड़िया पत्थर बन जाता है। इतना सफ़ेद, जैसी भेड़ की ऊन होती है। फिर उस पत्थर को कुरेदकर निकाल लेते हैं। ये जंगल की दौलत है राजा। घड़ाभर सोना भी दो तो भी नहीं मिलेगा ऐसा नग।”

“पर इसका लाभ क्या है?” महाराज की उत्सुकता चरम सीमा तक पहुँच गयी थी।

“ज़हर का दुश्मन है यह नग। अरे राजा, इसे अँगूठी में जड़वा ले और उँगली में पहन ले तू। इस नग के आस-पास कहीं भी ज़हर आया कि इस नग का सफ़ेद रंग बदलकर झट हरा-नीला हो जाता है। यह पपड़िया नग भोजन के समय तेरा रखवाला ही है, समझ।” वह गड़रिया भी आख़िर जंगल का राजा ही तो था, सो महाराज को भी ‘अरे, और तू’ कहकर पुकार रहा था।

हाथ में पकड़े हुए उस नग को देखकर महाराज की मुखमुद्रा में एक निराली चमक आ गयी। वे आगे बढ़े और धाकलू के कन्धे पर हाथ रखकर थपकते हुए कहने लगे, “धाकलू बाबा, हमें बहुत अनमोल देन दी है तुमने। बोलो, क्या इनाम दें तुम्हें? जो माँगोगे, वही मिलेगा। ज़मीन, पशु, धान्य, हथियार, कपड़े, सोना जो भी चाहे माँग लो।”

जैसे जंगल की नदी ही कलकल ध्वनि से बहती जा रही हो, ऐसा निर्मल तेज धाकलू की आँखों से प्रवाहित होने लगा। मुँडासा हिलाते हुए वह बोला, “राजा, तू तो हमारा बिरोबा देव है, भैरव देव है, तूने हमारे कन्धे पर हाथ रखा बस हमारी देह सोना बन गयी। कुछ नहीं चाहिए हमें। बोलो, बिरोबा की जै-जैकार।” खड़ा हुआ वह गड़रिया एकदम भूमि पर आड़ा होकर लेट गया। उसने अपना मुँडासा छत्रपति के पाँवों पर रख दिया और दण्डवत् प्रणाम करने लगा। महाराज ने उसे ऊपर उठाया। उनका भी हृदय गद्गद हो उठा।

जंगल की हवा का एक झोंका जैसे कहीं से आता है और कहीं खो जाता है, यों धाकलू महल से बाहर निकला और म्हसाई की पहाड़ी घाटी के मार्ग पर चल पड़ा।

सम्भाजी हाथ में पकड़े हुए उस नग को देख रहे थे, पर उन्हें क्या पता था कि रायगढ़ में क्या हो रहा है। रायगढ़ में सोयराबाई के महल से विशेष ‘दीक्षा’ लेकर अण्णाजी मन्त्रियों की बस्ती में लौटे थे और वहाँ एक गुप्त षड्यन्त्र रचा जा रहा था। राधो वासुदेव बापूमाली, सूर्या निकाम, हिरोजी फर्जन्द, अण्णाजी का भाई सोमाजी दत्तो और त्र्यम्बक, नासिक से लौटकर आये हुए चिटनीस, बालाजी आवजी, ये लोग दबी-दबी-सी आवाज़ में अण्णाजी से बातें कर रहे थे। एक भयानक कुचक्र रचा जा रहा था वहाँ।

सुधागढ़ से सूबेदार जिवाजी हरि का हरकारा सन्देश लेकर आया, “शहज़ादा अकबर पाली के निकटवर्ती स्थान धोंडशी तक पहुँच गया है। महाराज से मिलने की उसकी तीव्र इच्छा है। उसके साथ चार सौ के लगभग घोड़े, दो ऊँट, और एक छोटी-सी पैदल सेना है। वह सैनिक सामग्री की सहायता माँग रहा है। क्या किया जाय? हुक्म मिले।”

महाराज ने निलोपन्त के नाम रायगढ़ एक पत्र भेजा और वहाँ से हिरोजी फर्जन्द को पन्हालगढ़ बुलवा लिया। महाराज ने उसे इसलिए बुलाया था कि वह कुछ दिन आगरा में रहकर

https://t.me/Sahityajunction

मुग़ल दरबार देख आया था और उसे ही अकबर से मिलने के लिए भेजना महाराज को उचित प्रतीत हुआ।

हिरोजी, अण्णाजी की हवेली में हुई षड्यन्त्र-सभा का एक सदस्य था। महाराज के सामने वह उपस्थित तो अवश्य हुआ परन्तु अपने मन में छिपा हुआ कुचक्र उसने कतई प्रकट नहीं होने दिया। वह नम्रता की मूर्ति बनकर महाराज के सम्मुख उपस्थित हुआ। महाराज ने उसे आज्ञा दी, "फर्जन्द, तुम अति योग्य व्यक्ति हो, इसीलिए हम तुम्हें शहज़ादे से मिलने पाली भेज रहे हैं। तुम जाते समय नज़राने के रूप में एक हज़ार रुपये, हीरे-जवाहरातों से जड़ा मोती-कण्ठा और हीरा-जड़ा एक तुर्रा—ये वस्तुएँ साथ ले जाओ। सूबेदार जिवाजी से कहो कि शहज़ादे के लिए रसद दी जाय। हमने अकबर के नाम एक ख़लीता लिखकर तैयार किया है, उसे कविजी से प्राप्त कर लो। शहज़ादे से मिलो, तो अपनी पूरी शान और प्रतिष्ठा बनाये रखकर ही मिलना।"

"जी," हिरोजी के मन में तो मैल भरा हुआ था, परन्तु शरीर से वह महाराज को मुजरा कर रहा था।

महाराज ने जब शहज़ादे को दिये जानेवाले नज़राने के तबक़ को हाथ लगाया, उस समय उन्होंने दायें हाथ की तर्जनी में पपड़िया नग वाली अँगूठी पहनी हुई है, इस तथ्य को भला हिरोजी क्यों जानता? उसका इस ओर ध्यान भी नहीं गया। वह मुजरा करके बाहर चला गया। इसके बाद बत्तीस शिराला गाँव के कृष्णाजी भास्कर महाराज से मिलने आये। उन्होंने प्रार्थना की, "शिराला में सैनिक-सामग्री सहित सेना का आयोजन, संचय किया जा रहा है। महाराज एक बार उस व्यवस्था को देख लें, तो ठीक हो।"

शाम होते ही महाराज कृष्णाजी भास्कर, बापूजी त्र्यम्बक, खण्डोजी और कविजी के साथ पन्हाला से उतरे और शिराला की ओर चल पड़े। वारणा नदी पार करके वे शिराला पहुँच गये। वहाँ एक मैदानी क़िला था। उसके सामने के मैदान में ही सेना और सैनिक सामग्री जमा की जा रही थी। महाराज ने इस सेना के मावले जवानों से भेंट की और एक दिन शिराला में विश्राम करके वे मलकापुर आ पहुँचे।

मलकापुर में बापूजी त्र्यम्बक की हवेली के सभागृह में महाराज बैठक पर विराजमान थे। बापूजी ने उन्हें सूचना दी, "तुलाजी देसाई निकम आपसे मिलने आये हैं।"

तुलाजी के चेहरे पर चिढ़ और चिन्ता दिखलाई दे रही थी। उसने महाराज को मुजरा किया और खीझ-भरे स्वर से बोला, "मालिक, हम मुग़लाई प्रदेश में रहते हैं या आपकी छत्रछाया में?"

"क्या हुआ है देसाई? ज़रा शान्त होकर बताओ।" महाराज ने उसका क्रोध थोड़ा शान्त किया।

"बिलाशी विभाग के बारह गाँवों के देशमुख पद का अधिकारी हमें मिला हुआ है। वे बारह गाँव शिराला तहसील में आते हैं, परन्तु अब वे बारह गाँव वारणा-नदी की घाटी में मिलाकर हमें बड़े संकट में फँसा दिया है, मालिक।"

"किसने किया है ऐसा?" छत्रपति की मुखमुद्रा कठोर हो गयी।

"वारणा-घाटी के देशमुख सोमाजी बाँदल ने।"

"ये देसाई क्या कहते हैं? बाँदल ने तहसील के बारह गाँव उस तहसील से निकालकर दूसरी

https://t.me/Sahityajunction

तहसील में मिला दिये हैं? क्या यह सही है?" महाराज ने बापूजी और कृष्णाजी की ओर देखते हुए पूछा।

"जी, तुलाजी निकम का गाँव शिराला तहसील में आता है, यह बात सच है।" कृष्णाजी भास्कर ने वस्तुस्थिति बतला दी।

"हमने बाँदल को कई बार कहा है कि यह अन्याय है। ऐसा मत करो। पर वे हमारी बात मानते ही नहीं।" बापूजी ने कहा।

महाराज का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने अत्यन्त कठोर शब्दों में तुलाजी के विवाद का निर्णय सुनाया। निर्णय ऐसा कठोर था कि सुनकर बाँदल को छठी का दूध याद आ जाता। छत्रपति बापूजी त्र्यम्बक और कृष्णाजी भास्कर से बोले, "हम तुम्हारे नाम आज्ञापत्र देंगे। इस देसाई के गाँवों को शिराला तहसील में मिलाकर ही कामकाज किया करो ताकि दूसरे की ज़मीन-जायदाद को हड़पनेवाले सोमाजी बाँदल को ज़रा पता लगे कि उन पर वैसी गुज़रे, तो कैसा दम घुटता है। कविजी, बाँदल का वारणा-घाटी का 'देशमुख' पद ज़ब्त करके सरकारी अदालत में अमानत के रूप में जमा कर दो।"

तुलाजी देसाई के मुख पर सन्तोष झलकने लगा। बापूजी, कृष्णाजी, कविजी आदि सभी उपस्थित जन अच्छी तरह जान गये कि महाराज न केवल न्याय का ही पक्ष लेते हैं, बल्कि साथ ही वे अन्याय को रोकने का कार्य भी उतनी ही दृढ़ता के साथ करते हैं।

मलकापुर से पन्हालगढ़ आकर महाराज ने वहाँ दो दिन मुक़ाम किया। फिर म्हलोजी से विदा होकर तथा जावली और मलकापुर के सूबेदारों को अपने-अपने सूबों की ओर वापस भेजकर, महाराज पन्हालगढ़ के कोंकण-दरवाज़े से बाहर निकले। वे खण्डोजी, येसाजी गम्भीर और कविजी के साथ राजापुर और कुड़ाल नगरों की दिशा में दौड़ते हुए जा रहे थे। हिरोजी को काम सौंपा गया था शहज़ादे से मिलने के लिए पाली जाने का, पर वह किसी-से मिलने-जुलने का बहाना बनाकर पन्हालगढ़ में ही घूमता रहा।

महाराज ने राजापुर पहुँचकर वहाँ के सूबेदार देवाजी विट्ठल को मध्यस्थ बनाकर अँग्रेज़ों की कोठियों में जो गोला-बारूद बनानेवाले कारीगर थे, उन्हें अपनी ओर मिला लिया और फिर महाराज कुड़ाल होते हुए डिचोली आ पहुँचे। वहाँ पुर्तगाली दरबार का राजदूत नारायण शेणवी महाराज से मिलने आया। उसने नज़राना पेश करके डिचोली के मराठा सूबेदार मोरो दादाजी के बारे में शिकायत की : "सूबेदार मोरो दादाजी पुर्तगालियों से मेल-जोल बनाकर नहीं रहते।"

महाराज ने मोरो दादाजी को कठोर चेतावनी देते हुए कहा, "इस सूबे में हमें गोला-बारूद के कारख़ाने बनाने हैं। जब तक पुर्तगालियों से हमारे सम्बन्ध मित्रता-पूर्ण न रहेंगे, वे कारख़ाने कैसे बन पाएँगे? कारख़ानों के लिए शोरा, गन्धक आदि वस्तुएँ कारवार प्रदेश से समुद्री मार्ग द्वारा ही आती हैं। ये सब वस्तुएँ हमें पुर्तगाली प्रदेश से होकर ही प्राप्त होती हैं। तुम अब भविष्य में पुर्तगालियों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर सकी तो ठीक है, अन्यथा हमें तुम्हारी सूबेदारी ही छीन लेनी पड़ेगी।"

नारायण शेणवी ने एक और महत्त्वपूर्ण बात भी महाराज के सम्मुख प्रस्तुत की, "पन्हालगढ़ से आये हुए आपके राजदूत रामजी ठाकुर को आपके ही आदेश से क़ैद कर लिया गया है। पुर्तगाली दरबार में मराठा दरबार के राजदूत का पद खाली हो गया है। इसलिए नये राजदूत की

https://t.me/Sahityajunction

नियुक्ति की जाय।" सम्भाजी के विरोध में जो पहला षड्यन्त्र रचा गया था, उसमें रामजी ठाकुर भी शामिल था। इस कारण सम्भाजी ने पुर्तगालियों को लिखा था कि वे रामजी ठाकुर को क़ैद कर लें।

छत्रपति कुछ देर सोचते रहे। फिर कुछ निश्चित करके उन्होंने नारायण शेणवी को निर्णय सुना दिया, "येसाजी गम्भीर हमारे राजदूत बनकर तुम्हारे साथ आएँगे।"

फिर महाराज ने गोवा के पुर्तगाली वायसराय के नाम एक पत्र लिखकर प्रार्थना की कि कारवार प्रदेश से शोरा और गन्धक समुद्री रास्ते होकर मराठा राज्य में आने दिया जाय। येसाजी गम्भीर यह ख़लीता और नज़राना लेकर गोवा की ओर रवाना हो गये। महाराज ने डिचोली में उन स्थानों का निरीक्षण किया जहाँ गोला-बारूद के कारख़ाने बनाये जा सकते थे। इसके बाद कुड़ाल के धर्माजी नागनाथ और मोरो दादाजी से विदा होकर महाराज डिचोली से निकल पड़े।

अब वे पुनः पन्हालगढ़ की दिशा में दौड़े जा रहे थे। इस समय एक बात का विचार उन्हें विशेष रूप से सता रहा था कि उनके कुड़ाल तथा डिचोली के दौरे में कुड़ाल के खेम सावन्त नामक सरदार और फोंडा के सरदार दलवी उनसे मिलने नहीं आये थे।

पन्हाला के पुसाटी बुर्ज़ पर खड़े होकर पश्चिम दिशा की ओर दूर पर दिखलाई दे रहे कोंकण प्रदेश की ओर छत्रपति देख रहे थे। मृग-नक्षत्र का उदय वर्षा के प्रारम्भ का सूचक है परन्तु मृग-नक्षत्र भी इस बार बिन बरसे ही बीत गया था। इस कारण आकाश अभी निरभ्र और स्वच्छ था।

महाराज ने कुछ दिन पूर्व ही एक हरकारा नागोठणे भेजा था और अपनी जल सेना के प्रमुख नायकों तथा नाविक सरदारों को नागोठणे में एकत्रित होने का आदेश दिया था।

सामने पश्चिम दिशा के आकाश में बादल केसरी, नारंगी, गुलाबी, नीले रंगों की रंग-पंचमी मना रहे थे। महाराज इस लुभावने दृश्य को देख रहे थे, परन्तु उनके मन में एक ही शब्द बार-बार थाप दे रहा था—'जंजिरा-जंजिरा-जंजिरा!' शाम का धुँधलका छा गया। पन्हालगढ़ के नीचे बहनेवाली कासारी नामक नदी की धारा अब दीखनी बन्द हो गयी थी। महाराज बुर्ज़ से नीचे उतर आये।

महाराज ध्यान में डूबे हुए चले जा रहे थे। उनकी उँगलियाँ दाहिने हाथ की तर्जनी में पहनी हुई पपड़िया नग की अँगूठी को बार-बार सहला रही थीं। म्हलोजी, खण्डोजी, कविजी सब साथ थे परन्तु आज महाराज का ध्यान कहीं और था। जैसे किसी विशाल सरोवर में चारों दिशाओं से पानी की धाराएँ उनके मन में आ-आकर जमा हो रही थीं—'अपने पिता पर ही हथियार उठाकर दौड़ने वाला धोखा खाकर दक्खिन में आया हुआ अकबर। उसका पीछा करनेवाला उसका पिता औरंगज़ेब जिसे हमने कभी दूर से देखा था। और वो गोवा का वायसराय, जिसका मुख हमने आज तक नहीं देखा, जंजिरा में छिपा हुआ हबशी सिद्दी, भागानगर गोलकुण्डा का कुतुबशाह, बीजापुर का नाबालिग़ बादशाह सिकन्दर, मुम्बई के अंग्रेज़—ये सब लोग क्या अपना निजी खेल खेल रहे हैं अथवा कोई अज्ञात शक्ति इन सबको मोहरे बनाकर शतरंज खेल रही है? हम भी क्यों खेल रहे हैं यह खेल? यदि हम अपनी बारी भाई राजाराम, बड़ी माँजी और अण्णाजी को सौंप देते और पन्हाला के सूबेदार बनकर चैन की बंसी बजाते बैठते, तो क्या बिगड़ जाता? क्यों जी

https://t.me/Sahityajunction

करता है कि यह खेल खेला जाय? वह कौन-सी शक्ति है, जो हमें ढकेलकर इस मैदान में ला उतारती है? अथवा हमने जन्म ही इस कारण पाया है कि यह सब करते रहें? उस गड़रिये ने हमें 'विरोबा' देवता कहा था। बुरहानपुर की ख़बर सुनकर बादशाह ने हमें 'शैतान' कहा होगा। सती माँजी ने हमें 'पुत्र' कहा था, रायगढ़ की बड़ी माँजी हमें 'शत्रु' मानती हैं। शहज़ादा अकबर हमें 'साहसी' समझता है। समर्थगुरु हमें 'उग्रस्वभावी' मानते हैं।

'लिंगाणा की चहारदीवारी से गहरी खाई में कूद जानेवाली गोदावरी ने हमारे विषय में क्या सोचा होगा? उन्मादग्रस्त मोरोपन्त हमें क्या समझते होंगे? अन्त समय में हमसे मिलने के लिए छटपटाते रहे आबासाहब ने हमें क्या माना होगा? और...और...अहमदनगर की कोठरी में दिन गिननेवाली हमारी वह अर्धांगिनी क्या सोचती होगी हमारे बारे में?' व्यग्र चित्त होकर महाराज पन्हालगढ़ के उपरिकोट में आ गये।

अगले दिन नागोठणे से प्रत्युत्तर आया : 'चुनिन्दा नौ-सेनानायक और नाविक नागोठणे में एकत्रित हो चुके हैं।'

नागोठणे के सूबेदार की हवेली में 'मन्त्रणा-सभा' आयोजित की गयी थी। इस मन्त्रणा-सभा में दादाजी प्रभु मायनाक और दौलत ख़ाँ, गोविन्दजी आंग्रे, नागोजी कोंड़ाजी तथा जागोजी फर्ज़न्द, सन्ताजी पावला, मुहम्मद कावजी, नागोजी वाघमारे, सुन्दर बाजी आदि वीर नाविक सेनानायक उपस्थित थे। महाराज ने एक बार सब पर अपनी दृष्टि फिरायी और निश्चय बतलाया :

"हबशी के जंजिरा और उन्देरी द्वीप हमारी समुद्री सत्ता के पाँवों में पड़ी हुई जंजीरें हैं। तुम सब तो समन्दर के सपूत हो। इतने हिम्मतवर बहादुरों के होते जंजीर टूटती नहीं है, यह कैसा चमत्कार है? जब तक जंजिरा द्वीप हमारे क़ब्ज़े में नहीं आता, तब तक तुमने और हमने आबासाहब के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि दी है, यह सिद्ध नहीं होगा। तुम सब लोगों के बल पर हम यह समुद्री-अभियान प्रारम्भ कर रहे हैं, तुममें से जो भी सूरमा जंजिरा और उन्देरी द्वीपों पर विजय पा लेगा, उसे हम दो सेर सोना और सिरपेंच देंगे तथा उसे पालकी में बैठनेवाला सरदार बनाकर उसका और भी सत्कार करेंगे।"

छत्रपति ने सब पर दृष्टि फिराकर देखा। प्रत्येक सेनानायक को सम्मान का बीड़ा दिया गया। तीन हज़ार नौ-सैनिकों को छः महीने का आगाऊ वेतन दिया गया। नागोठणे, पेण और आपटे भागों का निरीक्षण करके महाराज पन्हालगढ़ लौट आये। नित्य नियम के अनुसार उन्होंने रंगरूपी शिवपिण्डी के दर्शन किये और वे उपरिकोट में आये। हम्बीरराव बरार प्रदेश में सफल हमले करके लौटे थे। महाराज ने उनसे समाचार जाने और बागलाण, खानदेश, गोवा और मुम्बई की ओर रवाना किये जानेवाले ख़लीतों के विषय चिटनीस को बतलाये।

मध्याह्न का समय था। भोजन की सूचना आने के कारण महाराज सभागृह से चले गये। बाहर आर्द्रा नक्षत्र के मेघों ने आकाश में छप्पर-सा तान दिया था।

सेवक ने छत्रपति के हाथों पर पानी डाला और हाथ धोकर अँगोछे से हाथ पोंछकर महाराज घर के भीतरी कक्ष में रखी हुई चौकी पर जा बैठे। कक्ष के बाहर सशस्त्र प्रहरी तैनात थे। बाहर खण्डोजी तथा म्हलोजी बाबा जंजिरा के अभियान के बारे में बातचीत कर रहे थे। छत के मुँडेरे से सटकर खड़े हुए कवि कुलेश बादलों से भरे आकाश को निहारने में मग्न थे।

एक सेवक वस्त्र से ढँकी भोजन की थाली लेकर भोजन कक्ष में आया। उसने भोजन की

https://t.me/Sahityajunction

थाली चौकी पर रख दी, परन्तु ढँका हुआ वस्त्र हटाते समय उसका हाथ किंचित् काँप-सा गया। थाली के बीच में चावल परोसा हुआ था तथा चारों ओर कटोरे रखे थे, जिनमें से गर्म भाप निकल रही थी। महाराज ने हर एक कटोरे को हाथ लगाकर सेवक से प्रत्येक पदार्थ के नाम पूछे। सेवक ने अत्यन्त नम्रता से सब भोज्य पदार्थों के नाम बताये। महाराज को जो-जो पदार्थ रुचा नहीं, उस कटोरे को उन्होंने थाली से बाहर रख दिया। थाली में अब चार कटोरे रह गये थे और वह सेवक उन शेष चार कटोरों की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था।

जब महाराज को अनुभव हुआ कि थाली में उनकी रुचि के पदार्थ रह गये हैं, तब उन्होंने सेवक को हाथ के संकेत से जाने का आदेश दिया।

प्रत्येक पदार्थ में से थोड़ा-थोड़ा भाग लेकर महाराज ने थाली के बाहर रखा और गड़वे की धार थाली के चारों ओर फिराकर 'चित्राहुति' दी। फिर उस अन्नरूप ब्रह्म को नमस्कार कर उन्होंने अपने अँगरखे की बाँहों को ऊपर सरकाकर थाली को हाथ लगाया।

उन्होंने चावलों को फैलाकर उस पर सालन का कटोरा उलट दिया तथा वे चावल मिलाने लगे। इस समय भी उनके मन में अगणित विचार घूम रहे थे।

पहला ग्रास खाने से पहले सहज ही उनकी दृष्टि अपने हाथ की ओर गयी। जैसे आँधी के कारण आकाश में घिरे हुए बादल इधर-उधर छितरा जाते हैं, उसी प्रकार उनके मन में घूम रहे विचार एक ही क्षण में ग़ायब हो गये। आँखों पर ज़ोर डालकर उन्होंने अपनी तर्जनी में पहनी हुई अँगूठी की ओर देखा। देखा कि पपड़िया पत्थर की वह अँगूठी हरी-नीली हो गयी है। उनकी दायीं भौंह कमान की तरह टेढ़ी हो गयी। आँखें फटी-सी रह गयीं। नथुने फैल गये। सारे शरीर का ख़ून जैसे गर्म हो उठा। और कान की लौ भी लाल हो गयी। माथे की नस फूलकर फड़कने लगी।

उन्होंने एक बार अपना हाथ थाली से दूर हटाया और निश्चय कर लेना चाहा। थाली से दूर होते ही वह अँगूठी सफ़ेद हो जाती थी और थाली में जाते ही फिर से हरी-नीली हो जाती थी।

उस रंग बदल रही अँगूठी के साथ-साथ अब छत्रपति की आँखों के रंग भी बदलने लगे। रोष एवं सन्ताप के कारण उनकी सारी देह थरथराने लगी। माथे पर पसीने की बूँदें छलक आयी थीं।

उन्होंने हाथ झटककर थाली को आगे ढकेला छत्रपति बिजली की कड़क के समान इतनी ज़ोर से गरज उठे कि बाहर खड़े लोगों को पसीना छूट गया, 'म्हलोजी उस नमक-हराम को यह खाना खिलाओ। ले आओ उसे हमारे सामने।"

म्हलोजी, खण्डोजी, कविजी, राजकर्मचारी त्रिम्बकजी बुरी तरह घबराये हुए भीतर दौड़े आये। उन हड़बड़ाये हुए लोगों को यही समझ नहीं आ रहा था कि माजरा क्या है? महाराज थाली की ओर ऐसे देख रहे थे जैसे किसी विषैले साँप की ओर देख रहे हों। उनके होठ काँप रहे थे और क्रोध के कारण मुँह से बोल भी नहीं निकल पा रहे थे।

म्हलोजी, खण्डोजी और कविजी, कभी थाली की ओर, कभी महाराज की ओर देखते जा रहे थे, पर समझ कुछ भी नहीं पा रहे थे। "जिसने यह थाली परोसी है, उस हरामख़ोर को पहले हमारे सामने लाओ। बदमाश धोखेबाज़ कहीं का..." राजाज्ञा हुई, जैसे तोप दनदना उठी हो।

सशस्त्र पहरेदार दौड़कर गये और भाले की नोक उस सेवक की पीठ में चुभोकर वे उसे छत्रपति के सामने ले आये। वह सेवक अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर भागने की तैयारी कर रहा

https://t.me/Sahityajunction

था।

“इस चावल के दो-चार ग्रास बाहर ले जाकर कुत्ते के सामने डालो।” महाराज ने थाली की ओर संकेत करते हुए पहरेदार को आज्ञा दी। हवलदार ‘जी’ कहकर और थाली का थोड़ा-सा खाना लेकर बाहर गया। बाहर जाकर उसने एक कुत्ते को पुचकार कर बुलाया और उसके सामने वह खाना डाल दिया।

वह सेवक पत्ते की तरह काँप रहा था। छत्रपति उसके सामने जाकर बोले, “यह खाना पचाने की शक्ति हमारी अँतड़ियों में नहीं है। तू अवश्य पचा लेगा इसे। ले, खा यह खाना सबके सामने।” महाराज ने थाली की ओर उँगली दिखाते हुए कहा। उनकी आँखों से चिनगारियाँ बरस रही थीं इस समय।

“ना, ना, महाराज नाऽ,” सेवक ऐसा गिड़गिड़ाकर कह रहा था कि देखनेवालों के रोयें खड़े हो गये। सेवक रोता-सिसकता हुआ महाराज के पाँवों में लोटने लगा।

“ख़ाऽमोऽश।” छत्रपति की उँगली थाली की ओर ही तनी हुई थी। सेवक काँपता-गिड़गिड़ाता हुआ महाराज के पैरों से लिपट गया। महाराज ने उसे एक ठोकर से दूर ढकेल दिया और सैनिकों को आज्ञा दी, “वह अमृत इसके मुँह में भरो।”

जब चारों ओर से भालों की तेज़ नोकें चुभने लगीं, तो सेवक चुपचाप उठा और आँखों से टपकनेवाले आँसुओं के जल में मिलाकर वह खाना उसने चुपचाप निगल लिया।

कक्ष में उपस्थित सभी लोग उसकी ओर आँखें गड़ाकर देख रहे थे। सामने जो कुछ हो रहा था उसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने के सिवाय और रास्ता भी क्या था? थोड़ी ही देर में उस सेवक की आँखें सफ़ेद होती हुई एकदम चक्कर-सी खाने लगीं। मुँह से झाग निकलने लगी और शरीर काला-नीला पड़ने लगा। वह बैठा हुआ था। फिर एकदम भूमि पर लुढ़क पड़ा तथा उसकी हिचकियाँ बँध गयीं। उसकी हिचकियों की आवाज़ में बाहर असह्य पीड़ा के कारण तड़प रहे कुत्ते की कराहने की आवाज़ भी मिल रही थी।

म्हलोजी ने झट से आगे बढ़कर उसके कुरते को कसकर पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से हिलाते हुए पूछा, “अरे, किसके बहकाने से किया है यह पाप तूने? बोल। अरे बता।” परन्तु सेवक के होठों से शब्द नहीं, केवल झाग के तार निकल रहे थे।

“म्हलोजी बाबा, इसकी बोटी-बोटी नोच देते, तो भी यह नहीं बताता कुछ। पूरी तैयारी करके ही वह इस खाई में कूदा है।”

सम्भाजी की आँखों के आगे पहले कुचक्र के भागीदारों के चेहरे एक-एक करके नाच रहे थे।

एक लम्बी दुभखरी आह भरकर छत्रपति उस कक्ष से बाहर निकले। उन्होंने हवलदार को आदेश दिया, “बाहर मरे पड़े कुत्ते को कहीं फेंकना नहीं, उसे गढ़ा खोदकर कहीं गाड़ देना। वह ज़हरीला है। और इस ईमानदार चाकर को अन्धे कुएँ के पास जला देना।”

महाराज परकोटे की दिशा में जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों के आगे उपस्थित धाकलू गड़रिये की आकृति हिलाये नहीं हिलती थी। कानों में समर्थगुरु की वाणी गूँज रही थी।
महाराज ने विष देने के इस कुचक्र का पता लगाने के लिए पन्हालगढ़ में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया, परन्तु हाथ कुछ भी नहीं आया। सबूत के बिना किसी को दोषी ठहराना कठिन

https://t.me/Sahityajunction

था। ऐसा अशुभ समय आया था कि उनके प्राणों पर ही बन आयी थी। महाराज को इस घटना से मर्मान्तक पीड़ा हुई थी।

महाराज वर्षा की निरन्तर लगी झड़ी के कम होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यथाशीघ्र रायगढ़ पहुँचना अत्यावश्यक था और वहाँ अफ़वाहों के फैलने की रोकथाम करना भी आवश्यक था।

महाराज उपरिकोट की दूसरी मंज़िल पर एक कक्ष में झरोखे के पास खड़े थे और बाहर आर्द्रा नक्षत्र की बरसनेवाली जलधारा को देख रहे थे। सन्देह मनुष्य के मन को सतानेवाला सबसे बड़ा अत्याचारी वैरी है, वह खरगोश की तरह चुपके-चुपके मन में घुस जाता है और घुसकर हाथी जैसे अपने भारी-भरकम पाँवों से मन को रौंदने लगता है। मन यदि एक बार सन्देहशील बन जाए, तो मनुष्य को अपनी छाया भी हत्यारिन लगती है।

मन में जो सन्देह बार-बार उफनकर आ रहा था, महाराज उसे दूर हटाने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु इस सन्देह को मन से निकाल फेंकना अति कठिन कार्य था। सन्देह मन में आने का रास्ता तो जानता है, परन्तु बाहर जाने का नहीं। बाहर जाने का रास्ता तो उसे दिखलाना पड़ता है। सन्देह के उपस्थित होने पर दो ही मार्ग हैं, या तो उससे हार मान लो या उसे पूरी तरह मन से उखाड़ फेंको। सन्देह से समझौता नहीं किया जा सकता। उससे हार मान लेने में मनुष्य की मनुष्यता खो जाने का भय रहता है और उसे खोदकर निकाल फेंकने के लिए पक्के सबूत की आवश्यकता होती है। विविध प्रकार के शंकाओं से, तर्क-वितर्क से महाराज अत्यन्त व्याकुल-विह्वल हो उठे। बाहर गिर रही जलधाराएँ उनके मन को भी बहाये ले जा रही थीं। कोई मार्ग सूझता नहीं था।

“मालिक, धोंड़शी गाँव से शहज़ादे के दो आदमी आये हैं। मुसलमान हैं दोनों। कहते हैं कि आपसे तुरन्त और अकेले में मिलना है।” म्हलोजी ने आकर महाराज की विचारधारा भंग कर दी।

महाराज की मुखमुद्रा पर इसे सुनकर खीज दिखलाई देने लगी। अकबर के आदमी हैं, तो अवश्य कोई माँग पेश करने आये होंगे। पहले तो उन्होंने सोचा कि कह दें कि हम मिलना नहीं चाहते। परन्तु फिर यह सोचकर कि बेचारे वर्षा में भीगते हुए आये हैं, उन्होंने म्हलोजी से कहा, “ले आओ उन्हें।”

कुछ देर बाद म्हलोजी शहज़ादे के विशेष विश्वासपात्र सरदार मिर्ज़ा यहुद्दीन शुजाई तथा दूत अब्दुल हमीद को ले आये। उन दोनों को भीतर छोड़कर म्हलोजी बाहर जाकर खड़े हो गये।

“अस्सलाम वालेकुम,” मिर्ज़ा शुजाई और अब्दुल हमीद झुककर महाराज को तसलीम करने लगे।

हाथ उठाकर उनकी तसलीम को स्वीकार करते हुए महाराज ने पूछा, “कहो, क्या बात हे?”

दोनों ने पूरे कमरे में एक बार नज़र दौड़ाकर यह निश्चित कर लिया कि कमरे में कोई नहीं है।

“राजासाहब की ख़ैर हो। हम शहंशाह की ख़िदमत लेकर आये हैं।” शुजाई ने अकबर को शहज़ादा न कहकर शहंशाह कहा था।

“ठीक है।” महाराज ने उसे अधिक महत्त्व नहीं दिया।

“आला हज़रत की ओर से राजासाहब के नाम एक गुप्त ख़लीता लेकर आये हैं हम।”

https://t.me/Sahityajunction

शुजाई ने अब्दुल की ओर देखा। अब्दुल ने अपने 'ख़िलअती' वस्त्रों के नीचे छुपायी हुई एक गहरे हरे रंग की थैली बाहर निकाली, और आगे बढ़कर महाराज के हाथ में रख दी।

महाराज ने थैली के बन्दों को खोलकर उसमें से तीन लिपटे काग़ज़ बाहर निकाले। अकबर के भेजे हुए पत्र की मुग़लिया बनावट साफ नज़र आती थी। महाराज ने पहले उसे ही खोला। वह पत्र 'मोड़ी' लिपि में लिखा हुआ था। लिखा था : 'महाराजाओं के अग्रणी राजा सम्भाजी के प्रति। हम आपसे मिलने के लिए उत्सुक हैं। इस पत्र के साथ ही मैं दो पत्र और भेज रहा हूँ जो हमें आपकी राजधानी से भेजे गये हैं। उन पत्रों को शान्ति से पढ़िए और आप ही स्वयं निर्णय कीजिए। हम पर पूरा भरोसा रखिए।'

अचम्भे में डूबे छत्रपति ने दूसरा काग़ज़ खोला। रायगढ़ के राजकार्यालय के सिक्के की छाप इस पत्र पर थी और चिटनीस बालाजी ने अपनी प्यारी लिखावट से उसे लिखा था। पत्र लिखे गये थे अकबर के नाम—भेजे थे सोयराबाई ने।

उन पत्रों को पढ़कर तो महाराज का सिर भन्ना गया। उन्होंने वे दोनों पत्र जल्दी-जल्दी पढ़ लिये। वे पत्रों की ओर ऐसे देख रहे थे मानो वे पत्र नहीं जलते अंगारे हों। वास्तव में वे पत्र थे भी नहीं, वह तो था मराठा-साम्राज्य की जड़ खोदने वाले कुछ बेईमान और संकुचित मनवाले मराठा षड्यन्त्रकारियों द्वारा घोषित किया गया घोषणा-पत्र।

महाराज के रायगढ़ में न होने का फ़ायदा उठाते हुए सोयराबाई, अण्णाजी, बालाजी, हिरोजी, सोमाजी आदि लोगों ने एक ऐसा कपटपूर्ण चक्र चलाया था, जिसे सुनकर भी उन पर दया आती थी। षड्यन्त्र यह था कि सम्भाजी को मौत के घाट उतारकर अकबर से जा मिलें। इस समझौते के बदले में अकबर को मराठा-साम्राज्य का कुछ प्रदेश दे दिया जाय। इस पत्र में षड्यन्त्र के प्रमुख नेता का नाम तो बिलकुल स्पष्ट ही लिखा था। उस पत्र को अपने ही हाथों से लिखकर बालाजी ने अपनी आज तक की समस्त राजसेवा पर अपने हाथों पानी फेर दिया था। हिरोजी ने पहले कभी आगरा में बड़े छत्रपति महाराज के स्थान पर वेश बदलकर और लेटकर राज्य की सेवा की थी और इस बार ये पत्र पहुँचाने का महान स्वामिभक्तिपूर्ण कर्तव्य उसने ही निभाया था। छत्रपति ने जिन वयोवृद्ध अनुभवी और बुजुर्ग लोगों को एक बार सकुशल बरी कर दिया था, उन्होंने फिर एक बार यही सिद्ध कर दिखाया था कि वे साँप के कुल में जन्मे हैं, मनुष्य नहीं रहे थे, भूत बन गये थे।

महाराज के हाथ में पकड़े हुए वे पत्र थरथरा रहे थे। महाराज की आँखों में ख़ून उतर आया था फिर भी उन्होंने बहुत कठिनाई से ग़ुस्से को पी लिया।

"ठीक है, हम देखते हैं कि क्या किया जाय।" कहकर उन्होंने अकबर के प्रतिनिधियों को विदा किया।

महाराज को ऐसा लग रहा था मानो सारा उपरिकोट ही उनके चारों ओर घूम रहा है। षड्यन्त्र का उद्देश्य जानकर तो वे आग-बबूला हो उठे थे। सम्भाजी को विष देना इस षड्यन्त्र का पूर्वार्ध था, और अकबर से जा मिलना इस कपट नाटक का उत्तरार्ध था। पूर्वार्ध काला था और उत्तरार्ध काला-कलूटा था।

"कौन है?" छत्रपति ने कड़ककर प्रहरी को बुलाया।

https://t.me/Sahityajunction

“त्रिम्बकजी को कलम-काग़ज़ लेकर आने को कहो,” आज्ञा हुई। महाराज के निजी राजकर्मचारी त्रिम्बकजी महाराज के सम्मुख आ उपस्थित हुए। आहत और सन्तप्त मन से महाराज ने आदेश दिये, “चिटनीस, आज ही कुड़ाल और डिचोली के सूबेदार धर्मा जी और मोरो दादाजी को आज्ञा-पत्र भेजो। लिखो कि वह लेखाध्यक्ष अण्णाजी जहाँ भी हो, उसे तुरन्त गिरफ़्तार करो और हमारे सामने हाज़िर करो। सुधागढ़ के सूबेदार जिवाजी हरि को लिखो कि वह हिरोजी फर्ज़न्द भागकर न जाने पाये। उसकी मुश्कें कसकर हमारे पास भेजो। रायगढ़ के निलोपन्त को सूचित करो कि बालाजी आवजी तथा सोमाजी दत्तो को क़ैद कर लो और बड़े महल पर पहरा बैठा दो।”

सब ओर आज्ञापत्र रवाना कर दिये गये। अकबर के प्रतिनिधियों के हाथ महाराज ने एक सन्तोषपूर्ण पत्र भेजा और सूचित किया, ‘हम आपसे मिलने आएँगे।’ इसके दो दिन बाद छत्रपति पन्हालगढ़ से निकल पड़े। बरसात थमने का नाम न लेती थी, परन्तु इसकी चिन्ता न करते हुए, उफनते नदी-नालों को नौकाओं से पार करते हुए महाराज रायगढ़ की दिशा में आगे बढ़ते जा रहे थे।

रायगढ़ पहुँचकर महाराज को यह रहस्य समझ आया कि श्रीमान् अण्णाजी राजाज्ञा के न होते हुए भी डिचोली भाग की ओर क्यों गये हैं! वह अण्णाजी की कपट नीति का एक दाँव था। वे दूर गये थे, ताकि वे दिखा सकें कि षड्यन्त्र से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। महाराज ने ही बालाजी को अकबर से मिलने भेजा था ताकि वे अकबर को त्र्यम्बक से पाली ले आएँ, परन्तु बालाजी ने किया यह कि वे अकबर से दूसरी तरह का मेल-जोल बढ़ा आये? तो अब षड्यन्त्र का पूरा चित्र यों स्पष्ट हो गया था कि रायगढ़ में दस-बीस लोगों को जाल में फँसाकर सोयराबाई बैठी थीं। अण्णाजी डिचोली में थे। पाली में अकबर के साथ मेल-जोल बढ़ा रहे थे—बालाजी, सोमाजी दत्तो तथा बालाजी का पुत्र आवजी और इधर-उधर की यात्रा कर रहा था हिरोजी! इस प्रकार के षड्यन्त्र की शृंखला तैयार हो चुकी थी। इन षड्यन्त्रकारियों ने इस षड्यन्त्र के डोरे सुदूर कर्नाटक तक फैला दिये थे और वहाँ शामजी नाईक को यह प्रलोभन दिया था कि पूरा कर्नाटक सूबा उन्हें बख़्शीश रूप में दे दिया जाएगा।

इस समय छत्रपति को सबसे अधिक आवश्यकता थी हम्बीरराव की। वे रायगढ़ में नहीं थे। इस षड्यन्त्र को समूल नष्ट किये बिना महाराज भला चैन से कैसे बैठ सकते थे?

पेशवा निलोपन्त, प्रह्लादपन्त, आवजी, खण्डोजी बल्लाल आदि के साथ महाराज से मिलने आये। उन्होंने उन्देरी द्वीप की ख़बर सुनायी : “महाराज, चार दिन पहले हमारे नाविक सेनानायकों ने बड़े तड़के ही उन्देरी के समुद्री टापू पर धावा बोल दिया। समुद्र में पूरे आठ घण्टों तक घमासान लड़ाई हुई, परन्तु हमारे सेनानायकों को सफलता नहीं मिली। हबशी ने पूरी दृढ़ता से हमारा हमला बेकार कर दिया। हमारे बहुत-से नौसैनिक काम आये हैं महाराज।” समाचार सुनकर महाराज अत्यन्त व्यथित हो उठे। शायद यह काल ही ऐसा था कि जब कोई अच्छी ख़बर नहीं मिलनी थी।

महाराज धीरे-धीरे चलकर आवजी के पास आये। आवजी को परखने की दृष्टि से उन्होंने

https://t.me/Sahityajunction

उनके कन्धे पर हाथ रखा और बोले, “आवजी, एक सलाह दोगे हमें?”

“जी,” आवजी छत्रपति के प्रश्न का उद्देश्य समझ नहीं पाये थे।

“हमें विष देकर मार डालने का और अकबर से समझौता करने का एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया है। यदि वह षड्यन्त्र पूरे-पक्के सबूत देकर सिद्ध कर दिया जाय तो अपराधियों को क्या दण्ड देना चाहिए? कुछ बता सकते हो?” आवजी सिर से पैर तक काँप उठे।

“मृत्युदण्ड!” खण्डोजी क्रोधपूर्वक बीच ही में बोल पड़े। उन्हें क्या पता था कि ऐसे लोगों में उनके पिताजी भी हैं।

महाराज कुछ नहीं बोले। उन्होंने खण्डोजी के कन्धे थपके और एक चुभता-सा प्रश्न पूछा, “और यदि उस षड्यन्त्र में हमारी रानीजी और हम्बीरराव भी सम्मिलित हों तो?”

“परन्तु यह...यह कैसे सम्भव है, महाराज?” खण्डोजी ने हड़बड़ाकर कहा।

“सब कुछ सम्भव है, खण्डोजी। यह समय ही ऐसा है कि इसमें सूर्य को भी दीमक लग सकती है। तुम तनिक सोच-विचारकर अपनी सलाह हमें बतलाना।”

खण्डोजी ने अनुभव किया—‘कहीं स्वामी को हमारे विषय में ही सन्देह तो नहीं हो गया?’ इस कारण बड़ी दृढ़ता से कहने लगे, “चाहे कोई भी हो, हम ही क्यों न हों, इस अपराध के लिए तो मृत्युदण्ड ही योग्य है।”

खण्डोजी महाराज की कसौटी पर खरे सिद्ध हो चुके थे।

“तुम्हारा क्या मत है निलोपन्त और न्यायाधीश?” महाराज ने आज प्रह्लादपन्त को जान-बूझकर ‘न्यायाधीश’ कहकर पुकारा था।

“खण्डोजी जो कहते हैं, वही उचित है।” पेशवा न्यायाधीश खण्डोजी आदि सभी अब यह पूरी तरह जान गये थे कि इस मामले में जिन-जिनका हाथ है, उनकी अब ख़ैर नहीं।

“तब ठीक है। खण्डोजी, ज़रा राजाराम के निजी राजकर्मचारी येसाजी दामाडे को बुला लाओ।”

निलोपन्त और प्रह्लादपन्त निराजी ने समझा कि इस मामले में सबसे पहला शिकार राजाराम को ही होना पड़ेगा।

महाराज ने सबको जाने के लिए कहा और अकेले ही उँगलियों को परस्पर गूँथकर टहलने लगे। एक-एक क़दम पर वे विचारों के चक्र में फँसते जा रहे थे। ‘क्या हम मृत्यु से भयभीत हैं? नहीं। तो फिर यह हृदय चीर देनेवाली वेदना कैसी है? यह वेदना मृत्यु की नहीं। मृत्यु से भी अधिक भयानक वेदना तब होती है, जब भलाई और ईमानदारी मर जाती है। निष्ठा और भलाई यदि समाप्त हो गयीं तो जीवन में शेष ही क्या रहा? यह वेदना इस निष्ठा की, इस भलाई की मृत्यु को देखकर हो रही है हमें।

‘राजा तो एक ही होता है, परन्तु उसके सिर के छत्र को सँभालनेवाले हाथ अनेक होते हैं। यदि ये हाथ ही विद्रोह कर बैठे तो?

‘यदि हो कलह परस्पर तुममें, वैरी की तब बन आएगी। समर्थगुरुजी, बैरी को तलवार के घाट उतारा जा सकता है परन्तु आस्तीन के साँप तो मन की शान्ति को मिट्टी में मिला देते हैं।’

https://t.me/Sahityajunction

येसाजी दामाडे आये। चेहरे पर घबराहट छायी हुई थी। उन्हें देखते ही महाराज ने कहा, "येसाजी, ज़रा हमारे साथ आओ।" भ्रम, संशय में डूबे हुए येसाजी को समझ नहीं आया कि कहाँ जाना है। फिर भी वे 'जी' कहते हुए महाराज के पीछे-पीछे जाने लगे।

अपने आने की कोई अग्रिम सूचना न देकर ही आज महाराज 'बड़े महल' की ओर जा रहे थे। जिस बात को वे आज तक निश्चयपूर्वक टालते आये थे, आज उसी बात का फैसला करने की उन्होंने ठान ली थी।

सोयराबाई के महल पर बैठाये हुए पहरे के प्रहरी सैनिक उन्हें मुजरा कर रहे थे, पर आज महाराज का ध्यान उस ओर नहीं था। महाराज सीधे बड़े महल में घुस गये। उन्हें आया देखकर दासियाँ इधर-उधर तितर-बितर हो गयीं। महाराज उसी तेज़ चाल से बड़े महल के भीतरी कक्ष में घुस गये। उन्हें आता हुआ देखकर हड़बड़ाये हुए राजाराम आगे आकर कहने लगे, "महाराज साहब!" महाराज ने उन्हें धीरे से अपने पास कर लिया और उनका कन्धा थपकते हुए राजाराम की ग़लती सुधारकर बोले, "महाराज साहब नहीं, हमें दादा भैया कहो।" एक अजीब-सी शान्ति महल में छा गयी थी।

छत्रपति को देखकर सोयराबाई शयनकक्ष की ओर जाने लगी थीं, परन्तु महाराज के 'ठहरिए' शब्द को सुनकर उनके पैर वहीं ठिठक गये। इस शब्द में आज एक राजा की आज्ञा का स्वर था। दबदबा था। आज सोयराबाई को 'सम्मान का मुजरा' भी नहीं मिल सका।

"काफी सह चुके हैं हम। अब आप अगर ख़ामोश रह सकें, तो बड़ी कृपा होगी। यही कहने आये हैं हम।" छत्रपति ने माँजी के आगे हाथ जोड़ दिये।

"हम बदनाम नहीं हो सकते, हम क़ैद भी नहीं हो सकते, और ज़हर भी हमें मार नहीं सकता है, यह बात अब अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है।" छत्रपति को हृदय का उबाल असह्य हो उठा, अतः वे रुक गये।

"हमारे...हमारे मरने से यदि आपको चैन मिलता हो और इसी में यदि राज्य का भला हो, तो...तो राजाराम को साक्षी बनाकर आप हमें ज़हर का प्याला दे दें, हम उसे चुपचाप पी डालेंगे।"

सामने खड़ी उस नारी ने जीवन में आज तक ऐसे खरे बोल कभी नहीं सुने थे। वह नारी उबल उठी। अपनी ओर आये हुए शब्दों को ढकेलकर लौटाती हुई एक स्त्री-वाणी गूँज उठी, "येसाजी, मराठों के छत्रपति राजा सबूत के बिना किसी पैदल सिपाही पर भी दोष नहीं लगाते। फिर एक राजस्त्री की तो बात ही दूर है। तनिक छत्रपति को यह समझाकर बतला दो।"

"ख़ामोऽश! माँ समझकर हमने ज़रा विनम्रता से बात की है, इसका उलटा अर्थ मत निकालो। तुम्हारे हस्ताक्षर से पवित्र बने हुए वे पत्र स्वयं शहज़ादे ने ही हमारे पास भेज दिये हैं। यदि इच्छा हो तो दर्पण दिखाया जाय?

"तुम भाई राजाराम की माता हो, तुम्हारे माथे का सुहाग रहे हैं हमारे आबासाहब, इस कारण, केवल इसी कारण से हम तुम्हें अन्तिम चेतावनी देने आये हैं। अपनी बहकी हुई इच्छाओं को अब बस में कर लो, तो ही ठीक है।"

जैसे पूँछ पर पैर पड़ते ही नागिन फुफकार उठती है, यूँ वह सामने खड़ी राजकुल की

https://t.me/Sahityajunction

मानिनी स्त्री भड़क उठी। नागिन फुत्कार करती हुई कहने लगी, "येसाजी, कोई हमसे व्यर्थ की कड़वी-तीखी बात न करें, ज़रा बतला दो यह अपने छत्रपति को। हम अपराधी हैं, अगर इस बात का विश्वास हो गया हो तुम्हारे छत्रपति को तो वे मनचाही सज़ा सुना सकते हैं।"

बात सुनकर महाराज स्तब्ध रह गये। घबराये हुए राजाराम उनसे लिपटे हुए थे। महाराज ने धीरे-से उनके हाथों को हटाकर कक्ष से बाहर जाने से पहले ये खरे बोल सुनाये, "येसाजी, कभी जो महारानी रही हैं, उन महोदया को ज़रा यह भी बतला दो कि अपनी माँ को सजा देने वाले नालायक छत्रपति मराठों की इस राजगद्दी पर न कभी बैठे, न कभी बैठ पाएँगे। भोसले कुल की रानियाँ सज़ा माँगती नहीं हैं, स्वयं अपने लिए चुन लेती हैं। उनसे कोई अक्षम्य अपराध हुआ है, यदि महारानी जी को यह भरोसा हो गया हो, तो वे अपनी सज़ा स्वयं निश्चित कर सकती हैं।" विक्षुब्ध मन से महाराज जल्दी-जल्दी महल से बाहर निकल गये।

सावन की रात सारे रायगढ़ पर छायी हुई थी। महाराज भोजन के बाद शयनकक्ष में खड़े हुए थे। ज़री की बुँदकियों वाली गहरी पीली साड़ी पहने हुए येसूबाई कक्ष में आयीं। महाराज उस समय मन में षड्यन्त्रकारियों के बारे में ही सोच रहे थे। येसूबाई को देखते ही महाराज ने सोचा —'अब हमें इनसे इन्हीं की शैली में यह प्रार्थना करनी चाहिए। इस बार जो कुचक्र रचा गया है, उसके निर्णय के बारे में अब तुम कुछ भी मत कहना। इन्होंने यदि वैसी प्रार्थना कर ही दी तो हमारे लिए उसकी उपेक्षा करना कठिन हो जाएगा।—और फिर अब तो ये केवल पहले जैसी युवराज्ञी नहीं हैं। अभिषिक्त महारानी हैं।'

"एक बात सुनेंगे हमारी?" येसूबाई ने कक्ष में फैली हुई शान्ति को भंग करते हुए पूछा।

"परन्तु उससे पहले हम ही कुछ प्रार्थना करना चाहते हैं।" महाराज अब सावधान हो चुके थे।

"सुनिए तो सही। पन्हालगढ़ में जो कुचक्र रचा गया है उसकी सारी जानकारी हमें मिल गयी है। हम उसके बारे में यह कहना चाहती हैं कि..."

"रानीजी..."

"कहना चाहती हैं कि जाँच-पड़ताल पूरी होते ही श्रीमान्‌जी अपराधियों को दण्ड अवश्य दें। अब किसी को क्षमा न किया जाय। बरसाती बाढ़ में नदी पूरी तरह भरकर बहती हो, यह तो स्वाभाविक ही है। परन्तु यदि नदी अपना पाट बदलकर गाँव में ही घुसने लगे तो उसे वहीं पर रोक देना ही उचित है।"

येसूबाई के इन विचारों को सुनकर महाराज वास्तव में आश्चर्यचकित हो उठे थे, परन्तु उन्होंने इस आश्चर्य को प्रकट नहीं होने दिया और अपनी 'श्रीसखी' के मत का ही समर्थन करते हुए बात को यों आगे बढ़ाया, "और यदि इस कुचक्र में तुम्हारे भाई गणोजी भी फँसे हुए हों तो?"

येसूबाई जान गयी थीं कि महाराज परीक्षा ले रहे हैं। उन्होंने तपाक से उत्तर दिया, "तो श्रीमान्‌जी निर्णय करने का काम हम पर सौंप दें और फिर हमारा निर्णय भी देख लें।"

उत्तर सुनकर महाराज अतीव हर्षित हो उठे। उन्होंने राजटोप उतारकर येसूबाई के हाथ में दे दिया और येसूबाई उस टोप को तबक़ में रखने के लिए जाने लगीं।

जाती हुई येसूबाई को एकटक देखते समय महाराज को आज संस्कृत काव्य-शास्त्र में वर्णित

https://t.me/Sahityajunction

'स्वकीया नायिका' की स्मृति आ गयी। येसूबाई टोप नीचे रखने के लिए झुकीं। उनकी साड़ी की सुनहरी बुँदकियाँ दीपकों के प्रकाश में झिलमिला रही थीं। महाराज को अनुभव हुआ मानो अपनी चारों ओर तारों की कमान धारण किये हुए आकाश की विद्युल्लता ही झुकी हुई है।

टोप नीचे रखकर वह विद्युल्लता ऊपर उठा ही चाहती थी कि छत्रपति की शक्तिशाली भुजाओं-रूपी आकाश ने उसे कब अपने आलिंगन में कस लिया, यह भी वह जान न पायी। सिर से पाँव तक 'श्रीसखी' का शरीर पुलकित हो उठा। जिस प्रकार श्रावण मास की कोई तिरछी उष्म सूर्य किरण रायगढ़ की ऊँची दो मीनारों में जाकर विश्राम करती है उसी प्रकार दो शक्तिशाली बाहुओं के आलिंगन में 'श्रीसखी' समा गयी।

गोवा से येसाजी गम्भीर का भेजा आदमी आया था। येसाजी ने सूचित किया था : 'डिचोली के मोरो दादाजी से पुर्तगाली दरबार बहुत नाराज़ है। उन्होंने पुर्तगालियों के दो जलपोत बिना किसी कारण के ही पकड़कर डिचोली में अटका रखे हैं।'

महाराज ने निलोपन्त को बुलाकर इस बारे में अपना निर्णय सुनाया, "पन्त, अब मोरो दादाजी की बरख़ास्तगी का आदेश दो। उनके स्थान पर विनायक उमाजी को नियुक्त करो।"

"जी। सुधागढ़ से जिवाजी हरि ने जो सूचना भेजी है, उस विषय में क्या किया जाय महाराज? जिवाजी ने सूचना भेजी है कि शहज़ादा अकबर सेना इकट्ठी कर रहा है।" निलोपन्त ने अकबर की गतिविधियों की ओर छत्रपति का ध्यान दिलाया।

"पन्त, हमने इसी काम के लिए नेताजी काका को आज बुला भेजा है।" महाराज ने मन-ही-मन कुछ निश्चित कर लिया था।

नेताजी काफी दिनों तक उत्तर देश में रहे थे, इस बात का विचार करके महाराज नेताजी से कहने लगे, "काका, तुम बीस हज़ार होनों का ख़ज़ाना लेकर और चुने हुए शस्त्रधारियों के साथ पाली जाओ और वहाँ शहज़ादे से मिलो। उसे साफ-साफ बता दो कि तुम्हें इस राज्य में रहना है, तो तुम सेना बढ़ा नहीं सकते। जैसे तुम अपने को अपने मुल्क का शहंशाह मानते हो, वैसे ही इस राज्य के राजा हम हैं। तुम इस राज्य के नियमों को भंग मत करो, हम तुम्हारी मेहमाननवाज़ी में किसी तरह की कमी नहीं आने देंगे। काका, यदि शहज़ादे को ज़रूरत हो, तो उसे होन देकर उसकी सहायता करो, परन्तु उसे अपनी सैनिक शक्ति की सहायता बिलकुल मत देना।"

"जी, हम शहज़ादे पर सावधानी से नज़र रखेंगे।" नेताजी ने ज़िम्मेदारी को सहर्ष स्वीकार कर लिया। महाराज ने उन्हें विदा किया।

निलोपन्त कुछ कहना चाहते हैं, पर सकुचा रहे हैं, यह ताड़कर महाराज ने उनसे कहा, "कहो, कहो निलोपन्त। संकोच मत करो।"

पन्त ने एक बार अपने ख़ुश्क होते हुए होठों पर से जीभ फिरायी फिर अटक-अटक कर ही उन्होंने यह वृत्तान्त कहा, "जिवाजी हरि ने एक दूसरा समाचार भी भेजा है, स्वामी?"

"क्या समाचार भेजा है?"

"लेखाध्यक्ष अण्णाजी पन्त चिटनीस, बालाजीपन्त, उनके सुपुत्र आवजी, और सोमाजी दत्तो

https://t.me/Sahityajunction

को गिरफ़्तार करके पाली के निकटवर्ती परली की सैनिक चौकी में ले आया गया है।"

महाराज झटके से उठ खड़े हुए। बोले, "बस, इसी समाचार की तो हम प्रतीक्षा कर रहे थे, पेशवा तुमने उन लोगों के नाम के साथ लेखाध्यक्ष और चिटनीस पद क्यों जोड़ दिया? उनके नाम के साथ 'पन्त' यह आदरसूचक शब्द क्यों जोड़ दिया तुमने? उन महत्त्वपूर्ण तथा उत्तरदायित्त्वपूर्ण पदों के नाम पर इन लोगों ने अपनी काली करतूतों से कालिख़ पोत दी है। जिवाजी हरि को लिखो कि हम स्वयं परली आ रहे हैं।"

"जी," निलोपन्त तुरन्त झुक गये। वे समझ गये थे कि अब परली के क़ैदियों की शामत आ गयी है।

येसाजी कंक और चांगोजी को साथ लेकर महाराज उपरिकोट से बाहर निकले। उनके क़दम अब क़ैदखाने की ओर बढ़ रहे थे। इन कोठरियों में बापूमाली सूर्या निकम, राघो वासुदेव आदि षड्यन्त्र के बीस कुचक्री लोग बन्द थे। उनमें से किसी की भी गरदन छत्रपति के सामने उठती ही नहीं थी।

उन सबको कठोर दृष्टि से देखते हुए महाराज तीख़ेपन से कहने लगे, "ज़रा आँखें फाड़-फाड़कर देख लो हमें एक बार। हम छत्रपति ही यहाँ सामने खड़े हैं तुम्हारे, हमारा भूत नहीं है यह। तुमने जो असीम स्वामिभक्ति दिखलायी है, उसके लिए तुम्हारा यथायोग्य सत्कार करने के लिए ही जगदम्बा ने हमें जीवित रखा है। येसाजी काका, हम जो आज्ञा देंगे, उसके अनुसार इन सबका अवश्य आदर-सत्कार करना।" महाराज ने उनकी ओर पीठ फेर ली।

रायगढ़ की शासन-व्यवस्था येसूबाई और निलोपन्त को सौंपकर महाराज दो दिन बाद रायगढ़ से निकल पड़े। उनके साथ जोत्याजी, रायाजी, अन्तोजी आदि चुनिन्दा पाँच सौ मावला सैनिक थे।

श्रावण का महीना था। परली की दिशा में आगे बढ़ रहे महाराज के मन में विचारों की धूप-छाँव का खेल चल रहा था—'इस समय हमारी जगह आबासाहब होते, तो क्या करते? राँझा गाँव के पटेल ने शासन के नियमों का भंग किया था, तो आबासाहब ने उसके हाथ कटवा डाले थे। चुग़लख़ोरी करने के कारण खण्डोजी खोपड़े के उन्होंने हाथ-पाँव कटवा दिये थे। बाजी घोपड़े, चन्द्रराव मोरे को उन्होंने धूल में मिला दिया था। सेनापति गुजर को डपटकर आदेश दिया था—ख़ान को नेस्तनाबूद करो, तभी हमें मुँह दिखाओ। सेनापति नेताजी को उन्होंने पदच्युत कर दिया था, अपने भाई एकोजी को भी उन्होंने स्पष्ट कह दिया था—तुम हमसे आयु में तो छोटे हो ही, बुद्धि भी तुमने छोटी ही पायी है। इतना ही नहीं, स्वयं हमें भी आरोपी बनाकर उन्होंने दरबार में खड़ा किया था। ऐसे हमारे आबासाहब आज जैसी स्थिति में कैसा आचरण करते?' आज तक कभी अनुभव न किया हुआ राजशक्ति का बल सम्भाजी के मन में संचित हो रहा था। महाराज परली पहुँच गये, जिवाजी वहाँ अगवानी करने आये थे। महाराज उनके साथ सरकारी कोठी में आये। दोपहर के भोजन के बाद और थोड़ा विश्राम करके तीसरे पहर उन्होंने जिवाजी को आदेश दिया, "क़ैदियों को हाज़िर करो।"

परली की सरकारी कोठी के सभागृह में मुश्कें कसे हुए अण्णाजी, बालाजी, आवजी, हिरोजी, सोमाजी—ये विशेष क़ैदी महाराज के सामने लाये गये। सबके चेहरों पर मुर्दनी छायी हुई थी। उन्हें देखते ही अपार दुःख और बेहद ग़ुस्से के कारण महाराज का मन खौल उठा और वे

https://t.me/Sahityajunction

उठ खड़े हुए।

अण्णाजी की तो सूरत से भी उन्हें नफ़रत हो रही थी। 'कैसा हृदयहीन और काइयाँ आदमी है यह! लेखाध्यक्ष बनकर जिन हाथों से मुजरा करता था, उन्हीं हाथों से हमारी पीठ में खंजर भोंकना चाहता था। यह है बालाजी, जिस लेखनी से इसने हमारे राज्याभिषेक समारोह के निमन्त्रण-पत्र लिखे, उसी लेखनी से अकबर को भी पत्र लिखे, और यह है हिरोजी, आबासाहब को आगरा के बन्दीगृह की कोठरी से बाहर निकल जाने में सहायता की है इसने स्वयं उनके पलँग पर सोकर और आज यह निकला था हमें चिता पर सुलाने। ये वे ही आदमी हैं या उनके डरावने बदशक्ल भूत हैं?'

उस समय आहत एवं विक्षुब्ध मन वाले छत्रपति के मुख से निकले अति कठोर शब्दों से सब के दिल दहल रहे थे।

"ईमानदार सेवको, अच्छी तरह से देख लो। हम जिन्दा हैं। हम मराठों के छत्रपति राजा ही हैं, शहज़ादा अकबर नहीं। हमने एक बार तुम्हें क्षमा किया और कई उत्तरदायित्वपूर्ण पद तुम्हें एक बार फिर सौंपे थे। परन्तु वाह! तुमने भी हमारी आशाओं को क्या ही सुकर ढंग से पूरा किया है। हमें शर्म आती है यह कहते कि तुम हमारे सेवक हो।" छत्रपति के होठ काँप रहे थे।

"बोलो, तुम्हारी करतूतों के बदले में कौन-सी सज़ा दी जाय तुम्हें? कौन-सी सज़ा पसन्द है तुम्हें?" चाबुक की फटकार के समान एक तीखा सवाल छत्रपति ने पूछा।

सब क़ैदी सिर नीचा झुकाये मौन खड़े थे। वह निर्लज्जतापूर्ण मौन भी छत्रपति को असह्य हो उठा था।

छत्रपति अण्णाजी के सामने गये और उसके कन्धों को ज़ोर-ज़ोर से झकझोरते हुए वे गरज उठे, "क्या जुबान नहीं है मुँह में? बोल, तेरी बहादुरी का कैसे सम्मान करें हम?" अण्णाजी भीतर से बुरी तरह तिलमिला उठे थे, परन्तु फिर भी सिर झुकाकर चुपचाप खड़े थे।

"अब बुरा समय आया है, इसलिए दाँत क्यों बैठ गये तेरे? बोल, क्या सजा दी जाय तुझे?" महाराज की आँखें अण्णाजी पर अंगारे बरसा रही थीं।

अब अण्णाजी ने हिम्मत करके गर्दन उठायी और धीरे से बोले, "वही सज़ा दी जाय, जो महारानी को दी जाएगी। हमसे यदि अपराध हुआ भी है, तो यही कि हमने महारानीजी की आज्ञा का पालन किया।"

"ख़ाऽमोऽश!" अण्णाजी के अचूक और मर्मभेदी उत्तर से क्षणभर के लिए छत्रपति स्तब्ध रह गये। बेहद ग़ुस्से के कारण उनका सारा शरीर काँपने लगा। अण्णाजी ने अपने उत्तर से छत्रपति के अधिकार को ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला था।

अब आवश्यक हो उठा था कि अण्णाजी को ठीक तरह से समझाया जाय कि जो स्त्री औरों के लिए केवल महारानी है, वह छत्रपति की माता भी है। छत्रपति केवल राजदण्ड ही धारण नहीं करते, उनके गले में कुल की परम्परा को निभानेवाली भवानी माला भी पड़ी होती है।

"जिवाजी, ज़रा बेंत लाना।" महाराज के बोल सभागृह में क्या गूँज रहे थे मानो अंगारे ही बरस रहे थे।

छत्रपति का रूप देखकर जिवाजी दौड़कर तुरन्त भीतर गये, अँगूठे जितनी मोटी और पाँच

https://t.me/Sahityajunction

हाथ लम्बी एक बेंत महाराज के हाथों में देकर सुन्न होकर एक ओर खड़े हो गये। आसपास खड़े प्रहरी भी साँस रोके हुए थे।

सभागृह में भीषण शान्ति फैली हुई थी। छत्रपति का सारा शरीर थरथरा रहा था। गरजते हुए वे बोल उठे, "यह बेंत सीधी पकड़ी जाय, तो दण्ड कहलाती है, आड़ी पकड़ी जाय, तो लाठी कहलाती है। इसे जो जैसा देखे, वैसी ही लगती है यह। इसी तरह रायगढ़ की महारानीजी तेरे लिए महारानी हैं, परन्तु हमारी माँ हैं वे। हम उन्हें तो सज़ा नहीं दे सकते, पर तुझे खाली छोड़ नहीं सकते...हरामख़ोर..." अण्णाजी के शरीर पर एक बेंत तड़ाक से लगा और फिर 'नालायक हरामज़ादे दगाबाज़,' शब्दों के साथ-साथ सात-आठ बेंत लगे। एक-एक मार से अण्णाजी कराहते हुए टेढ़े-मेढ़े हुए जा रहे थे।

महाराज का सारा माथा पसीने से तर-ब-तर हो गया था। काँपते हुए हाथ में पकड़ी बेंत को फेंकते हुए उन्होंने कठोर आदेश दिया, "जिवाजी, इन सबको घोड़ों पर लादकर रायगढ़ भेजो। निलोपन्त को हमारा हुक्म सुनाओ कि इनको और इनके पिट्ठुओं को रस्सियों से बाँधकर मुँह काला करके पूरे रायगढ़ में शानदार जुलूस निकाला जाय। डौंडी पिटवाकर सब लोगों को जमा करो और सबके सामने इन 'विशेषाधिकारियों' को हाथी के पैरों तले कुचलवा दो। इनके पिट्ठुओं को 'टकमक' नामक पहाड़ी कगार के किनारे से गहरी खाई में ढकेल दो। ले जाओ इन्हें।" क्रोध से जलते हुए छत्रपति सभागृह से चले गये, जैसे एक लपलपाती, लपटोंवाली मशाल ही चली गयी हो।

महाराज ने आठ दिनों तक समुद्र तटीय प्रदेशों का निरीक्षण किया। फिर पन्हाला लौटकर सोलापूर, पेड़गाँव, औरंगाबाद आदि दूर के विभागों में सेनानायक म्हलोजी के साथ सेनाओं की नयी छावनियाँ बनाने का कार्य पूर्ण करके महाराज रायगढ़ लौट आये। उनकी आज्ञा के अनुसार निलोपन्त पेशवा खण्डेराव पानसंबल तथा खण्डोजी के साथ आकर उपस्थित हुए।

षड्यन्त्रकारियों को आदेश के अनुसार दण्ड दिया जा चुका था। सारे रायगढ़ में अजीब-सा वातावरण बना हुआ था। कोई भी कुछ समझ न पाता था। यहाँ तक कि महाराज भी असहाय से होकर स्थिति को देख रहे थे।

छत्रपति के सामने खण्डोजी खड़े थे। उनका मन जड़वत बना हुआ था। सिर झुकाये हुए वे सामने खड़े हुए थे। छत्रपति उनके निकट गये। धीर-गम्भीर वाणी से कहने लगे, "खण्डोजी, कभी-कभी हमारा जी करता है कि ये राजसी वस्त्र उतारकर रख दें। इन कपड़ों के बोझ से मन दबा जाता है। जी करता है कि उतार डालें ये राजवस्त्र और किसी को सौंप दें। परन्तु आबासाहब द्वारा प्रदत्त इन राजवस्त्रों को हम उतार भी नहीं सकते। तुम्हारे ख़ून की हर बूँद में चिटनीस पद का लेखन-कार्य पीढ़ियों से चला आया है, क्या तुम इस लेखनी को हमेशा के लिए छोड़ सकते हो? याद रखो, तुम्हारा और हमारा कोई सम्बन्धी नहीं है। हमारा एक ही नाता है, जो राजसिंहासन की सेवा के साथ जुड़ा है। हम अब तुम्हें ही तुम्हारी पिता बालाजी के स्थान पर चिटनीस पद पर नियुक्त करना चाहते हैं। कहो, तुम्हारा क्या मत है?"

खण्डोजी को कतई आशा नहीं थी कि उन्हें ऐसा कुछ सुनने को मिलेगा। उनकी आँखें

https://t.me/Sahityajunction

छलछला आयीं। यह पद उनके लिए सबसे बड़ी कसौटी था। विधि ने उनके सामने इस रूप में निष्ठा और स्वामिभक्ति का एक अवसर ला उपस्थित किया था। खण्डोजी ने एक क्षण की भी देरी नहीं की। छत्रपति के चरणों में प्रणाम करते हुए वे गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे, "हम आपके चरणों में राजसिंहासन की सीढ़ी के सेवक हैं। हम अत्यन्त निष्ठापूर्वक लेखनी द्वारा सेवा करने को प्रस्तुत हैं।" महाराज ने सन्तुष्ट होकर उन्हें ऊपर उठाया, तो स्वयं उनके नेत्र भी डबडबाये हुए थे। फिर उन्होंने खण्डेराव पानसंबल से कहा, "पानसंबल, तुम गोमाजी के उत्तराधिकारी हो। उन्होंने बड़ी आऊसाहिबा की सेवा की थी; और इस प्रकार मानो सब की सेवा की थी। हम लेखाध्यक्ष पद पर तुम्हारी नियुक्ति कर रहे हैं।"

महाराज ने खण्डोजी और खण्डेराव को सम्मान-वस्त्र, सिक्के एवं राजमुद्रा प्रदान करने का निर्णय कर लिया था। पेशवा निलोपन्त यह सुनकर अतीव हर्षित हो उठे। इसी सम्मान-दरबार में प्रधानमन्त्री निलोपन्त को एक आज्ञा भी सुननी पड़ी, "पन्त, जिंजी प्रदेश में निवास कर रहे हरजीराजा को आज्ञा भिजवाओ। लिखो कि वह श्यामजी, नाईक जहाँ भी हो, उसे गिरफ़्तार करो।"

निलोपन्त ने सिर झुकाकर आदेश के प्रति सम्मान प्रकट किया और वे सबके साथ बाहर गये। आश्विन मास का आकाश बादलों से घिर आया था, सभागृह के भीतर महाराज के मन में भी विविध भावनाओं की बदली छायी हुई थी—'कितना कठोर है यह राजव्रत जिसका पालन करते समय मनोव्यथा को वाणी से किसी को सुनाया नहीं जाता। हाथी के पाँवों तले कुचले जाते समय बालाजी, अण्णाजी को कैसी पीड़ा हुई होगी! क्या हम उस छटपटाहट को देख पाते? हम अपनी बड़ी माँ को कोई दण्ड क्यों नहीं दे पाये? क्या हम कठोर हैं? या दुर्बल हैं? या हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं? अथवा क्या इन सब बातों से अलिप्त हैं? अपनी इस अलिप्तता की गहराई खोजने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु थाह नहीं पा सकते इसकी। मन की यह अलिप्तता किसी को खोलकर दिखलायी भी तो नहीं जा सकती? लोग क्या जानें कि हमारे मन में जो राजा रहता है, वह तो अलिप्तता में डूबा रहता है। वही हमारी सब शक्तियों का उपयोग कराता है। हममें जो मन है, एक मनुष्य का मन वह इस अलिप्तता के पीछे चला जाता है।'

'हम...यदि हम बालाजी और अण्णाजी के स्थान पर होते, तब कैसा लगता हमें?' मनुष्य के मन ने छत्रपति से पूछा। सम्भाजी के भीतर बस रहे मनुष्य और छत्रपति के बीच यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व न जाने और भी कितनी देर तक चलता रहा।

सम्भाजी को अपने सामने एक ऐसा भयावह कल्पना चित्र दिखाई दे रहा था कि उसका राजसी वस्त्रों को परिधान किया हुआ शरीर हाथी के पाँवों तले रौंदा जा रहा है। और छत्रपति देख रहे थे कि उस कुचले जाते हुए शरीर से ख़ून के फव्वारे नहीं, शरीर में फैल रहे विष की पिचकारियाँ दूर-दूर उड़ रही हैं।

उस शरीर के भीतर बसा आदमी चीख़ना-चिल्लाना चाहता था और उस शरीर के भीतर छत्रपति ने हाथ से दबाकर उस आदमी का मुँह ही बन्द कर दिया था। सम्भाजी ने लम्बी उसाँस भरी और इस सम्पूर्ण मानसिक दृश्य को उन्होंने झटककर दूर फेंक दिया।

दशहरे के, नवरात्र के दिन आ गये थे। महाराज ने पाचाड़ में यज्ञ किया और दशहरा होते ही वे रायगढ़ से निकल पड़े। चुनिन्दा सरदारों सहित वे रायगढ़ से पन्हालगढ़ की ओर जा रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

इस समय उनके मन में एक विशाल अभियान की योजना बन रही थी। वर्षाऋतु के समाप्त होते ही इस अभियान का प्रारम्भ किया जाना था।

इस बार जब वे पन्हालगढ़ चढ़ रहे थे, तो उन्हें लग रहा था—'इस गढ़ के साथ हमारा कैसा अटूट नाता है? आबासाहब से हमारी अन्तिम भेंट यहीं हुई थी। हमारे विरुद्ध दो बार षड्यन्त्र रचे गये। वे दोनों षड्यन्त्र विफल हो गये और दोनों बार हम इसी पन्हालगढ़ में थे। यह गढ़ हमें सदा ही ऐसा प्यारा और अपना लगता आया है, जैसे पंछी को अपना बसेरा।'

पन्हालगढ़ को इस समय शिशिर ऋतु के गहरे कोहरे ने घेर रखा था। छत्रपति को पन्हाला आये हुए एक सप्ताह हो चुका था। फिर महाराज ने एक ऐसी खौफनाक ख़बर सुनी कि जिसे सुनकर बाहर छाया हुआ गहरा कोहरा उनके मन में आकर जम गया। महाराज के विश्वास नामक गुप्तचर ने यह ख़बर मुग़लाई प्रदेश में सुनी थी। वह मुग़लाई प्रदेश में घूम-घामकर लौटा था। और वहीं उसने यह सारा भेद पाया था। वह भयानक ख़बर यही थी कि हरे रंग का एक डरावना तूफ़ान राज्य की ओर बढ़ता आ रहा है : "औरंगज़ेब अजमेर से दक्खिन की मुहिम पर रवाना हो चुका है। तीन लाख पैदल सिपाही, लगभग उतने ही घुड़सवार सिपाही, और एक विशाल तोपख़ाना साथ लेकर निकला है वह। तेरह करोड़ रुपयों का ख़जाना उसके साथ है। शहज़ादा मुअज़्ज़म, कामबख्श, बेदारबख़्त, मुहीउद्दीन, बख्शी रुहुल्ला ख़ाँ, असद ख़ाँ, रणमस्त ख़ाँ, एरनिकाद ख़ाँ, दाऊद ख़ाँ, शहाबुद्दीन ख़ाँ, मुहम्मद अमीन, हसन अली ख़ाँ, लुत्फुल्ला ख़ाँ, मातबर ख़ाँ, बहादुर ख़ाँ, मुराद ख़ाँ, तरबीयत ख़ाँ, राव दलपत बुन्देला आदि चुनिन्दा सेनापति सरदारों का समूह उसके साथ है। वह दक्खिन की ओर बढ़ा आ रहा है। बुरहानपुर तथा औरंगाबाद की मुग़लाई सैनिक-छावनियों में उसके स्वागत की धूम मची हुई है।

तो आख़िर वह घड़ी आ पहुँची थी, जिसका अनुमान स्वर्गवासी महाराज ने बहुत पहले ही लगा लिया था। अब सबके सामने एक निर्णायक ज़ोरदार लड़ाई मुँह बाये खड़ी थी। इस लड़ाई में सामने था एक धूर्त और पाशविक शत्रु, जिसने पच्चीस साल बाद दक्खिन की ओर मुँह मोड़ा था। अपनी तसबीह में अति लोभी महत्त्वाकांक्षाएँ बाँधे हुए आलमगीर ने इस बार दक्खिन देस की ओर कदम बढ़ाये थे। इस महत्त्वाकांक्षा के लम्बे हाथों ने कन्याकुमारी से लेकर काबुल तक फैली हुई सल्तनत को घेरा हुआ था। इस महत्त्वाकांक्षा के हाथ में था हथियार, वह सवार थी घोड़ों पर और हाथियों पर और उनके मन में भरे थे दुर्लभ छल-कपट तथा क्रूरता। जिसके हाथ में सामने ढाल थी धर्म की और उस ढाल के पीछे छिपी हुई थी सार्वभौमिक साम्राज्य की चाह। जिसे हरा रंग बेहद प्यारा था, जिसकी निशानी थी चाँद और तारा तथा जिसका नारा था, "दीन, दीन!"

इस आगामी संकट का मुकाबला करने की दृष्टि से दक्षिण राज्यों का एक संयुक्त मोर्चा आवश्यक था। विश्वासपात्र भेदियों के हाथ इस आशय के ख़लीते कुतुबशाह और आदिलशाह की ओर तुरन्त रवाना कर दिये गये। महाराज पन्हाला दुर्ग की दृढ़ता को और अधिक दृढ़ बनाकर वहाँ से कूच करनेवाले थे कि उन्हें मन को सुन्न करनेवाली एक दूसरी ख़बर सुननी पड़ी।

येसूबाई ने जोत्याजी को पन्हालगढ़ भेजा था। जोत्याजी गरदन नीची करके महाराज को सुना रहा था, "बड़े महल की माँ जी चल बसीं। उन्होंने विष पीकर आत्महत्या कर ली!"

https://t.me/Sahityajunction

आश्विन कृष्ण प्रतिपदा का दिन था। सूरज काफी ऊपर तक चढ़ आया था, तो भी रायगढ़ के बड़े महल के अन्तःपुर का द्वार खुला नहीं था। दासियों ने दरवाज़े को सैकड़ों बार थपथपाया, परन्तु दरवाज़ा नहीं खुला। घबराकर दासियाँ महारानी के निजी राजकर्मचारियों को बुला लायीं। उन्होंने दरवाज़े पर थाप दी। राजाराम ने भी बहुत पुकारा। परन्तु दरवाज़ा नहीं खुलना था, नहीं खुला। अन्ततः येसूबाई उस बन्द दरवाज़े के सामने आयीं, परन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली। हारकर दरवाज़ा तोड़ देने की आज्ञा दी गयी।

भीतर का दृश्य देखकर देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो गये। एक सुन्दर, प्रौढ़ राजस्त्री शय्या पर शान्त लेटी हुई थी। उससे मित्रता निभानेवाली एक विष की प्याली वहीं चौकी पर लुढ़की हुई पड़ी थी। भोसले वंश की धुन की पक्की एक स्त्री के जीवन का अध्याय समाप्त हो चुका था। आँसूभरी आँखों से येसूबाई ने माँ साहिबा को प्रणाम किया तथा राजाराम को गोद में उठाकर वे महल से बाहर चल दीं। आग्रही सोयराबाई ने जब देखा कि जीवन के सारे पासे उलटे पड़े हैं, तो उन्होंने अकस्मात् ही एक ऐसा खेल खोज निकाला, जिसमें उन्होंने अपने आप ही अपने आप को हरा दिया था। यह ऐसा दण्ड था, जिसे उन्होंने स्वयं चुना था। यह आत्मसमर्पण नहीं था। पुतलाबाई जलता हुआ शरीर लेकर इस लोक को छोड़ गयी थीं और सोयराबाई जलता हुआ दिल लेकर दुनिया से कूच कर गयी थीं।

जड़वत् खड़े हुए महाराज की आँखों से टपकनेवाली आँसुओं की बूँदें दाढ़ी पर टपककर कह रही थीं—'तुमने आख़िर अपने आप को भी धोखा ही दिया। अपने ही विरुद्ध कुचक्र रच लिया तुमने। जब आबासाहब ही तुम्हें समझ नहीं पाये, तब हम क्या समझ पाते? परन्तु यह दण्ड स्वीकार कर तुमने हमारे हृदय पर एक ऐसा प्रहार किया है, जिसका निशान हमारे हृदय पर से कभी मिट नहीं पाएगा। तुमने तो माँ पुतलाबाई के समान नहीं कहा—हमारे इस रूप को याद रखना, परन्तु फिर भी हम तुम्हारे रूप को कभी भुला नहीं पाएँगे। हमने कभी सोचा था—काश, हम सती माँ की कोख से जन्म लेते तो कितना अच्छा होता! पर आज सोचते हैं कि, यदि हम तुम्हारी कोख से पैदा होते, तो कितनी समस्याएँ अपने आप हल हो जातीं। तुम्हारी, हमारी, आबासाहब की, यहीं तक क्यों, सबकी ही सारी समस्याएँ मिट जातीं। काश कि हम तुम्हारे बेटे होते!'

---

1. एक खण्डी बोझ बीस मन के बराबर होता है—आठ सौ सेर।
1. महाराष्ट्र के धुल्लियाँ और जलगाँव ज़िले पहले ख़ानदेश कहलाते थे।
2. महाराष्ट्र के वर्तमान विदर्भ विभाग के अन्तर्गत बुलढाणा, अमरावती आदि ज़िले बरार प्रदेश कहलाते थे।
1. परगने का अधिकारी, जिसके अन्तर्गत पटेल, पटवारी आदि काम करते थे, देशमुख कहलाता था। एक सरदेशमुख के अन्तर्गत कई देशमुख होते थे।

https://t.me/Sahityajunction

नौ

छत्रपति उदासचित्त एवं खिन्न होकर अपने महल में अकेले ही चहलक़दमी कर रहे थे। सोयराबाई की मृत्यु के कारण रायगढ़ में मरणाशौच का काल था। महाराज जब से पन्हालगढ़ से रायगढ़ लौटकर आये थे, तब से आज तक वे येसूबाई से भी नहीं मिले थे। वास्तव में उन दिनों उन्हें किसी से मिलने की इच्छा ही नहीं होती थी। रायगढ़ आकर वे केवल राजाराम से मिले थे और इसी भेंट की एक स्मृति उनके मन को बार-बार कुरेद रही थी। बालक राजाराम ने वैसे अपने दादा भैया से जो कुछ कहा था, वह नितान्त अबोध भाव से कहा था, तथापि उन वचनों से राजाराम के दादामहाराज का हृदय टूक-टूक हो गया था। छत्रपति को आता देखकर बालक राजाराम दौड़ता हुआ आया था और घबराकर छत्रपति के पैरों से लिपटकर कहने लगा था, "दादा भैया, हमें हाथी के पाँव के नीचे कुचलवाना मत। हम अपने लिए दण्ड स्वयं चुन लेंगे, जैसाकि हमारी माँ साहिबा ने चुना है।"

इन बोलों को सुनकर छत्रपति का हृदय खण्ड-खण्ड हो गया था और गला भर आया था। अपने भाई की पीठ थपकते हुए उन्होंने तय कर लिया था कि 'इस भाई के कानों में कोई बात ऐसी नहीं पड़नी चाहिए, जो इसकी आयु के अनुरूप न हो। अभी जो इसने बात कही है, वे क्या इसकी अपनी समझ के बोल हैं? इस कारण अब येसाजी दामाडे के साथ कुछ अन्य विश्वासपात्र व्यक्तियों की भी नियुक्ति करनी होगी। इस बालक को पाटी पढ़ानेवालों से दूर रखना पड़ेगा।'

यह सोचकर महाराज ने कुछ चुने हुए लोगों की बड़े महल पर नियुक्ति कर दी। अयोग्य तथा कुविचारी लोग राजाराम के आस-पास न फटकें, इस दृष्टि से यह व्यवस्था की गयी थी।

परन्तु उनके इस निर्णय की प्रतिक्रिया सारे रायगढ़ में कुछ दूसरे ही रूप में सुनाई देने लगी। चर्चा फैल गयी थी कि : 'राजाराम को नज़रबन्द कर दिया गया है।' महाराज को इस चर्चा का कुछ पता न था। वे औरंगज़ेब की गतिविधियों और आगामी चालों के बारे में सोचते हुए टहल रहे थे। कभी बीच में रुक जाते थे।

"रानीजी आ रही हैं।" प्रहरी ने उनकी विचार-शृंखला तोड़ दी। येसूबाई भीतर आयीं। महाराज उनकी ओर आगे बढ़े। दोनों की आँखें ज्योंही मिलीं, एक गहरी वेदना फूट पड़ी। सोयराबाई के बिछोह से उत्पन्न वेदना थी वह।

https://t.me/Sahityajunction

“हमने जो सुना है, वह सच है क्या?” श्रीसखी ने सीधे ही प्रश्न पूछा।

“क्या सुना है तुमने?” येसूबाई की मुखमुद्रा देखकर ही छत्रपति असमंजस में डूब गये।

“श्रीमान्‌जी ने राजाराम को नज़रबन्द करा दिया है, ऐसा सुना है हमने। अभी तो मरणाशौच का काल भी समाप्त नहीं हुआ और...” आज मानो शृंगारपूर की भावेश्वरी देवी ही आँखें तरेरकर छत्रपति से पूछ रही थीं।

“क्याऽ कहती हो—तुमऽ?” कुछ अस्पष्ट शब्द धीरे से निकले। छत्रपति पर आग की लपट से जले हुए के समान व्याकुलता छा गयी। येसूबाई की ओर पीठ फेरकर छत्रपति ने इतना ही कहा, जो प्रश्न का उत्तर भी था और प्रश्न भी था, “और तुमने इस सुने हुए को सच मान लिया?”

अब तक दृढ़ निश्चय के कारण येसूबाई की गरदन तनी हुई थी, परन्तु उत्तर सुनकर गरदन झुक गयी। मुख से शब्द निकले, “हमसे भूल हो गयी।” दोनों राजमनों पर ऐसी विचित्र शान्ति छा गयी थी, जो दोनों को खाने को दौड़ी आती थी।

“हमने बड़े महल पर अपने विशेष विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त किया है, यह सच है। परन्तु राजाराम नज़रबन्द नहीं हैं, वे हमारे विश्वास के बन्धनों में सुरक्षित हैं। हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि सेनापति हम्बीरराव बरार से कब लौटते हैं। हमारी इच्छा है कि उनकी पुत्री से राजाराम का विवाह कर दिया जाय। हमने बचपन में माँ को खोकर जो कुछ भोगा है, उसे ये सहन नहीं कर पाएँगे, यह बात हम भली भाँति जानते हैं।” महाराज सीधा झपटकर भीतरी कक्ष में चले गये। उनके जाते हुए क़दमों को देखती हुई येसूबाई सोच रहीं थीं—‘हमने आज जाना कि जंगल की वायु की गतियों-प्रवाहों को कोई समझ नहीं सकता। अपने बस में है तो इतना ही कि उस वायु के साथ-साथ दौड़ते रहें।’

मरणाशौच का काल समाप्त हुआ। कई दिनों से छत्रपति के मन में गड़ा हुआ एक काँटा रह-रहकर कसकता था। उसे निकाल फेंकने की दृष्टि से महाराज येसाजी कंक के साथ रायगढ़ से उतरे और पाचाड़ आये। वहाँ पन्द्रह हज़ार घुड़सवार तैयार खड़े थे। इसके अतिरिक्त येसाजी के दस हज़ार पैदल सिपाही तोपख़ाने के साथ पहले ही रवाना हो चुके थे।

गिर्जोजी यादव, खण्डेराव पानसंबल, बाजीराव जेधे, येसाजी कंक जैसे विशिष्ट वीरों के साथ महाराज ने सारी सेना का निरीक्षण किया। फिर जिजाऊ की समाधि के दर्शन करके वे सेना के आगे खड़े हुए ‘चन्द्रावत’ घोड़े पर सवार हो गये। कूच का डंका बचने लगा। झण्डाधारी सैनिकों ने झण्डे आकाश में ऊँचे उठा लिये। छत्रपति ने हाथ उठाकर इशारा किया और उनके पीछे खड़ी घुड़सवार सेना उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगी। स्वयं छत्रपति महाराज आज चढ़ दौड़े थे—लक्ष्य था अहमदनगर। मुग़लों की क़ैद में पड़ी हुई दुर्गाबाई और राणूदीदी को मुक्त कराने के साहसपूर्ण उद्देश्य को सामने रखकर छत्रपति आज निकल पड़े थे।

पुणे तथा कोरगाँव में पड़ाव डालते हुए, कुकड़ी नदी पार करके वह घुड़सवार सेना अपनी पैदल सेना से जा मिली। पारनेर नगर को धमकाते हुए पूरे पच्चीस हज़ार सैनिकों की वह विशाल सेना अहमदनगर की सीमा में घुस गयी।

अहमदनगर में एक मैदानी क़िला था। इस क़िले का मुग़ल क़िलेदार था मुकीम ख़ाँ। उसने

https://t.me/Sahityajunction

चतुराई दिखायी और उस क़िले का बड़ा दरवाज़ा बन्द कर लिया। क़िले के चारों ओर एक चौड़ी खाई थी, जिसकी गहराई थी तीन पुरसों तक। यह गहरी चौड़ी खाई पानी से पूरी तरह भरी हुई थी। मुकीम ख़ाँ इसके भीतर सुरक्षित होकर बैठ गया। खन्दक के कारण मराठे सैनिक क़िले के परकोटे तक पहुँच ही नहीं पाते थे। इसलिए अब क़िले के दरवाज़े को तोड़ने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं था।

मराठों ने लगातार तीन दिनों तक उस क़िले को जीतने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया। प्रतिदिन मारे जानेवाले सैनिकों की संख्या बढ़ती जा रही थी, परन्तु क़िला ज्यों-का-त्यों बना रहा। अन्त में निराश होकर छत्रपति ने तीसरे दिन शाम को सेना को पीछे लौट आने का आदेश दिया। अहमदनगर के नगरद्वार से बाहर निकल रहे छत्रपति के चेहरे पर असीम दुःख छाया हुआ था। गरदन नीचे झुकाकर, उदास मुख लेकर वे चले जा रहे थे। आँखों के आगे नाच रही थीं दुर्गाबाई और राणूदीदी की आकृतियाँ, जो क़िले में सींकचों के अन्दर बन्द थीं।

आबासाहब के बोल कहीं से आ—आकर हृदय से टकरा रहे थे : 'सह्याद्रि जीतने निकले थे और परिवार खो आये। हमें शर्म आती है तुम पर।'

स्वाभिमानी छत्रपति का पराजित मन अपने आपको फटकार रहा था। कह रहा था—'आबासाहब, आपको तो हम पर शर्म आयी ही होगी, परन्तु आज हम स्वयं अपने पर ही लज्जित हैं।'

अहमदनगर की कोठरी में क़ैद दुर्गाबाई और राणूदीदी के बारे में जानकारी पाने की दृष्टि से महाराज ने गिर्जोजी यादव को नियुक्त किया और येसाजी कंक को अहमदनगर के आसपास के प्रदेश में रहने की आज्ञा देकर विषण्णमना महाराज रायगढ़ लौट आये। अहमदनगर का अभियान असफल हो गया।

कार्तिक मास के जाड़े के कारण खेतों की फसलों पर ओस की बूँदें झलकने लगी थीं। शहज़ादा अकबर को मराठा राज्य में आये छः महीने हो चुके थे। छत्रपति ने उससे मिलने का निश्चय कर लिया था, इसलिए उन्होंने कवि कुलेश को बुला भेजा। अपना निश्चय उन्हें बतलाते हुए वे कहने लगे, "कविजी, सुधागढ़ के क़िलेदार जिवाजी हरि को सूचित करो कि हम शहज़ादे से मिलने आ रहे हैं। एकान्त में मिलने की व्यवस्था करने के लिए कहो उनसे।"

"जो आज्ञा," कवि को सन्तोष हुआ कि इतने दिनों के बाद क्यों न हो, आख़िर यह भेंट हो रही है।

अकबर से मिलना अब महाराज के लिए एक अनिवार्य बात हो गयी थी। प्रबल आक्रमणकारी औरंगज़ेब का सामना करने के लिए हर छोटी-बड़ी सैनिक-शक्ति का संगठन करना आवश्यक था। फिर अभी इस बात की भी परीक्षा होनी थी कि क्या अक़बर सचमुच ही अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है? सुधागढ़ को ख़लीते रवाना कर दिये गये।

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में कविजी, प्रह्लाद निराजी तथा चुने हुए सैनिकों, वीरों के साथ छत्रपति रायगढ़ से निकले। निज़ामपुर, रोहा आदि शहरों से होते हुए वे बाली नगर के नगरद्वार पर पहुँचे। वहाँ जिवाजी हरि अपने सैनिकों सहित उपस्थित थे। सिर पर केसरी रंग का साफ़ा

https://t.me/Sahityajunction

बाँधे हुए, हृष्ट-पुष्ट देह वाला अधेड़ आयु का एक राजपूत भी उनके साथ वहाँ स्वागतार्थ खड़ा था। वह टक लगाकर मराठों के छत्रपति की ओर देख रहा था।

महाराज घोड़े से उतर पड़े। जिवाजी के अभिवादन को स्वीकार करके वे आगे बढ़े। जब वे उस बहादुर राजपूत की ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए उसके सामने पहुँचे, तो उस वीर ने अत्यन्त नम्रता से घुटने भूमि पर टेककर और सिर झुकाकर राजपूती शैली से उनका अभिवादन किया। जिवाजी ने तुरन्त उसका परिचय कराया, "महाराज, ये हैं दुर्गादास राठौर। शहज़ादे की मित्रता बनाये रखने के लिए राजस्थान से यहाँ दक्षिण देश में आये हैं।"

"भगवान् एकलिंग की जय हो। मराठों के देश के छत्रपति महाराज की सेवा में नमस्कार हो।" दुर्गादास ने पुनः सिर झुकाया। छत्रपति ने उन्हें आदरपूर्वक ऊपर उठाया और गले से लगा लिया। फिर महाराज सबके साथ सुधागढ़ की ख़ास हवेली में आये।

भोजन एवं विश्राम के पश्चात् दोपहर ढल जाने पर महाराज कविजी, नेताजी पालकर तथा प्रह्लादपन्त के साथ बैठक-कक्ष में आये। जिवाजी ने महँगे गावतकियों, मसनदों और गिरदों से सजाकर और ग़लीचे बिछाकर उस बैठक कक्ष को बड़ी उत्तमता से सजाया था। छत्रपति बैठक पर विराजमान हो गये।

शहज़ादा अकबर पाली विभाग के एक छोटे से गाँव घोंडशी में एक साधारण से खपरैल वाले घर में रहता था। उसके सैनिक और साथी खुले पठारी मैदान में खेमे गाड़कर रह रहे थे। जिवाजी अकबर को लिवा लाने के लिए उसके पड़ाव की ओर गये हुए थे।

"कविजी, आज कौन-सी तिथि है?" महाराज ने अपने पीछे खड़े हुए कवि कुलेश से पूछा।

"आज कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की तेरहवीं तिथि है, महाराज।" कविजी ने उत्तर दिया। महाराज ने बैठक पर रखे तबक़ में से एक गुलाब का फूल उठाया और उसे उँगलियों से घुमाते हुए वे किसी बात के बारे में सोचते हुए मसनद से पीठ टेककर बैठ गये।

उन्हें याद आ रहे थे तीन साल पहले के वे जाड़े के दिन। वह माहुली तीर्थक्षेत्र, कृष्णा-वेण्णा नदियों का संगम, पानी को चीरती हुई बढ़ रही नौकाएँ...पठान-सरदार की छावनी,...हट्टा-कट्टा, घमण्डी दिलेरख़ाँ। वह एक साल...जिसका प्रत्येक क्षण बहका हुआ था और जिसका हर क्षण उनके मुख पर कालिख़ पोतकर चला गया था—अब यह अकबर भी हमसे मिलने आ रहा है; हम भी कभी गये थे दिलेर ख़ाँ से मिलने। इन दोनों अवस्थाओं में क्या अन्तर है? अकबर अपने जन्मदाता के विरुद्ध विद्रोह करके यहाँ आया है। क्या हमने भी आबासाहब के विरुद्ध विद्रोह किया था? अकबर को दिल्ली के तख्त का लोभ है, क्या हम भी रायगढ़ के सिंहासन की आस लगाये बैठे थे? नहीं, कदापि नहीं, फिर हमारा विद्रोह किसके विरुद्ध था? वास्तव में वह हमारा विद्रोह था हमारे अपने ही हृदय के विरुद्ध—असावधानी और मूर्खतापूर्ण विद्रोह।

'हमारे विद्रोह की मनःस्थिति को समझने की क्षमता थी केवल आबासाहब में, इसी कारण तो हम लौट सके। अन्यथा क्या होता? सोचकर ही दिल काँप उठता है। यदि यह शहज़ादा चाहे भी, तो क्या लौट सकेगा यह अपने पिता की ओर? और लौटा भी, तो क्या औरंगज़ेब इसे पिता का प्यार देकर छाती से लगाएगा? और तो और—यदि अकबर की किस्मत ने साथ दिया और कल यह दिल्ली का बादशाह बन बैठा, तो यह भी अपने बाप के साथ कैसा सलूक करेगा, कौन बता सकता है? क्या हमारे मन ने आबासाहब के विरुद्ध कभी कुछ भला-बुरा सोचा था? बस,

https://t.me/Sahityajunction

यही...यही फर्क है इन दो स्थितियों में। मुग़ल बादशाह तख्त को ख़ून के रिश्ते से भी अधिक जानता और मानता है और मराठा राजकुल रक्त के पवित्र सम्बन्ध को सिंहासन से भी ऊँचा मानता है।'

इतने में जिवाजी शीघ्रता से भीतर आये। तीन बार मुजरा करके दरवाज़े की ओर इशारा करते हुए कहने लगे, "शहज़ादा अकबर आ रहे हैं।"

छत्रपति बैठक से उठ खड़े हुए। ज़रदोज़ी के अम्बियोंवाले बेल-बूटों से सुशोभित सफ़ेद और महीन अँगरखा पहने हुए, पुखराज जड़ी हुई गहरे रंग की मुग़लिया पगड़ी सिर पर पहने हुए, चुन्नटदार महीन कपड़े का ढीला-ढाला पाजामा पहने हुए हट्टा-कट्टा नौजवान शहज़ादा भीतर आया। उसकी छाती पर वही मोतियों का कण्ठा झूल रहा था, जो छत्रपति ने उसे भेंट दिया था। उसकी दाढ़ी साफ कँटी-छँटी और गहरे लाल रंग की थी।

शहज़ादे के क़दम एक क्षण के लिए दरवाज़े पर ही ठिठककर रह गये। वह खड़ा-खड़ा सामने खड़े हुए बहादुर मर्द को देख रहा था। वीर पुरुष था यह जिसने बुरहानपुर को वीरानपुर बना दिया था। इस समय उसके मन में एक ही विचार आ रहा था—'यह मर्द ऐसा बाँका है, तो इसके अब्बाजान कैसे रहे होंगे?'

शानदार शाही मुस्कराहट बिखेरते हुए और बाँहें फैलाकर शहज़ादा अकबर तेज़ी से आगे की ओर बढ़ा। पहले दोनों गले मिले और फिर शहज़ादे का हाथ अपने हाथ में लेकर छत्रपति ने उसे आदरपूर्वक बैठक पर ला बिठाया। शहज़ादे के विश्वासपात्र हमीद और दुर्गादास राठौर उसके निकट ही एक ओर अदब से खड़े हो गये।

पहले दोनों ने रिवाज के मुताबिक एक-दूसरे को नज़राने पेश किये। छत्रपति ने अपने हाथ में पकड़ा हुआ गुलाब का फूल शहज़ादे को देते हुए कहा, "यह आपके देश का गुलाब है। यह हमारा पहला मेहमान है। हमें बहुत पसन्द है।"

महाराज कविता लिखते हैं, यह जानकर शहज़ादा दिल खोलकर हँसा, "ये आपकी शायरी भी बहुत प्यारी चीज़ है राजासाहब। उम्मीद है कि हम भी आपको पसन्द आएँगे।" उसने भेंट दिया हुआ फूल नाक के पास ले जाते हुए उत्तर दिया।

महाराज ने एकान्त पाने की दृष्टि से अपने लोगों को हाथ से इशारा किया। सब लोग बाहर चले गये। केवल कवि कुलेश पहले से प्राप्त आदेश के अनुसार वहीं खड़े रहे। इसी प्रकार अकबर ने भी दुर्गादास राठौर के अतिरिक्त अन्य सभी अपने आदमियों को बाहर भेज दिया।

छत्रपति ने सतर्कता और सावधानी से भेंट के विषय का प्रारम्भ किया, "हमारे दक्खिन देश की जलवायु क्या आपको ठीक लगेगी शहज़ादे?"

"शाही हवा से ये पहाड़ी दर्रों की जर्रोंवाली हवा कम ख़तरनाक है राजासाहब।" महाराज के प्रश्न का गुप्त आशय पहचानते हुए शहज़ादे ने ऐसा उत्तर दिया था, जिससे उसने पिता के बारे में अपनी नाराज़गी भी प्रकट कर दी थी। अब एक-दूसरे के दिल की बातों का अन्दाज़ लगाते हुए बातचीत कुछ खुलकर होने लगी थी।

"हमारे विरुद्ध जो षड्यन्त्र हो रहा था, उसके काग़ज़ात आपने हमारे पास भेज दिये। यह आपने बहुत अच्छा किया शहज़ादे।" महाराज अकबर के उस उपकार को भला कैसे भुला

https://t.me/Sahityajunction

सकते थे?

"वो करामात तो इन्होंने दिखायी थी।" अकबर ने दुर्गादास की ओर इशारा करते हुए कहा। वह बलशाली राजपूत नम्रता से झुक पड़ा।

"हम कुछ समझे नहीं?" महाराज ने दुर्गादास की ओर देखते हुए कहा।

"वो नेक सलाह इनकी थी राजासाहब। बड़े ईमानदार आदमी हैं ये दुर्गादासजी।" दुर्गादास के बारे में महाराज का मत पहले से ही अच्छा था, परन्तु इस पहली मुलाकात से वह और अधिक अच्छा बन गया। इसी तरह अकबर के बारे में भी—जो अपने सहायकों की प्रशंसा करना जानता था—महाराज का मन काफी अनुकूल होता जा रहा था।

"अब आपका अगला इशारा क्या है शहज़ादे?" छत्रपति ने मूल विषय को प्रारम्भ किया।

असंख्य चुभन-भरी यादों के कारण अकबर का चेहरा और भी लाल हो उठा था। उसके मुँह से अपने जन्मदाता पिता के बारे में तीखे और कड़वे बोल निकलने लगे, "आलमगीर हिन्दुस्तान को बर्बाद कर देगा राजासाहब। सल्तनत का यह कोई तरीक़ा है क्या कि सारी रिआया हैरान हो? जजिया कर लगाना, बुतों को तोड़ना-फोड़ना, बेहद जुल्म और क़त्लेआम कराना। मुग़लिया शाही ख़ानदान पर लोगों का भरोसा कैसे रह पाएगा? आलमगीर ख़ुद को और सारे शाही ख़ानदान को ख़तरे में डाल रहा है। जान की क़ीमत देकर भी इन सबको रोकना पड़ेगा।" बेचैनी के कारण शहज़ादे की फूली हुई छाती धौंकनी की तरह ऊपर-नीचे हो रही थी। उसका कहा प्रत्येक शब्द सच था, पर कितना मुश्किल था! शहज़ादे ने अपने पिता के दोष अच्छी तरह पहचान लिये थे, परन्तु पिता की ताक़त का अन्दाज़ा लगाने में वह ग़लती खा बैठा था।

"तुम्हारा कहना सही है शहज़ादे, परन्तु हमें आलमगीर की फ़ौजी ताक़त का भी ध्यान रखना होगा। जिससे तुम्हारे दादा बादशाह शाहजहाँ, तुम्हारे चाचा दारा शिकोह और मुराद भी मात खा बैठे, उस औरंगज़ेब के ख़िलाफ़ यह लड़ाई छेड़नी है। इस बारे में तुमने क्या सोचा है?" महाराज ने अत्यन्त शान्ति से और कुशल रीति से अकबर को याद दिला दी कि आलमगीर ने आज तक अपने रिश्तेदारों से कैसा व्यवहार किया है। शहज़ादा अकबर दारा शिकोह का दामाद था और उसके स्वभाव तथा विचार पर उसका काफी प्रभाव था। सीधी-सादी चाल सामान्य सीधी-सादी दुनिया के लिए ठीक है, परन्तु राजनीति में वह चाल काम नहीं देती। फिर औरंगज़ेब जैसे कारस्तानी और शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी के सामने होने पर तो सीधी चाल कतई बेकार हो जाती है। छत्रपति इस सत्य को जानते थे। वे आगरा की कोठरी में घटित घटनाओं को भला क्योंकर भूल सकते थे!

अकबर थोड़ी देर तक शान्त रहकर मोतियों के कण्ठे पर उँगलियाँ फेरता रहा और फिर उसने औरंगज़ेब को पराजित करने के सम्बन्ध में अपनी नीतियों को यों स्पष्ट किया, "आपका कहना बिलकुल दुरुस्त है राजासाहब। अब जब कि आलमगीर दक्खिन की ओर बढ़ा आ रहा है, हम राजस्थान लौट जाना चाहते हैं। हिन्दुस्तान में दो ही ताक़तें ऐसी हैं जो आलमगीर का मुक़ाबला कर सकती हैं—राजपूत और मराठे। मिर्ज़ा राजा जयसिंह का बेटा जयपुर का राजा कुँवर रामसिंह आलमगीर से ख़फा है। आलमगीर ने मिर्ज़ा राजा जयसिंह को धोखे से ज़हर देकर मरवा डाला है। कुँवर रामसिंह अपने पिता का बदला लेना चाहता है। हमें उम्मीद है कि हम दुर्गादासजी और कुँवर रामसिंह की मदद से राजपूतों को एक कर पाएँगे। हमने ईरान और फारस

https://t.me/Sahityajunction

के शाहों को भी मदद करने के लिए लिखा है...

"राजासाहब, इस वक़्त अगर आप साथ दें, तो आलमगीर का नामोनिशाँ मिटा देंगे हम।" अकबर की आँखों में इस समय जो चमक आ गयी थी, उससे उसका मुख्य उद्देश्य स्पष्ट हो गया था।

"हम आपका किस बारे में साथ दें?" महाराज ने शान्ति से पूछा।

"आप हमें पच्चीस हज़ार बहादुर मराठे दें। इसी वक़्त हम जंग में अपनी ताकत आज़माना चाहते हैं।" अकबर महाराज की स्वीकृति सुनने के लिए बेकरार हो उठा था। वह अपनी आँखों में उम्मीद भरकर महाराज की आँखों में झाँक रहा था।

छत्रपति ने दुर्गादास की ओर देखा। छत्रपति ने इन दोनों के बारे में जितना कुछ भी सुना था, उसके कारण उन्हें दुर्गादास ही अधिक अविश्वसनीय प्रतीत होता था। वे जानते थे कि अकबर आज इसीलिए खड़ा है, क्योंकि उसे दुर्गादास का सहारा प्राप्त है।

"दुर्गादासजी, आपकी क्या सलाह है?" छत्रपति को राठौर की नेकनीयती पर भरोसा था, इसलिए उन्होंने उससे पूछा।

"राजासाहब, आलमगीर पहले मराठों को ही अपना निशाना बनानेवाला है। आदिलशाही और कुतुबशाही राज्य तो मुग़ल सल्तनत के अधीन राज्य हैं। मराठे अधीन नहीं हैं। इस समय दक्खिन के मोर्चे पर लड़ाई जारी रखना सिर्फ़ आप पर निर्भर है। आपको यह लड़ाई ऐसे लड़नी होगी कि सवाल आलमगीर करेगा और आप उसका जवाब देंगे। इस जंग में आप आलमगीर को और उसकी फ़ौज को दक्खिन में उलझाकर रखेंगे और ठीक इसी मौक़े पर उत्तर देश में राजपूत हमला बोल देंगे। अब आप ही सोच-समझकर कुछ फैसला कीजिए राजासाहब।" अनुभवी दुर्गादास ने वही कुछ कहा था, जो महाराज के मन में था।

"बिलकुल सही है दुर्गादासजी। शहज़ादे, हमें दुर्गादासजी की सलाह पसन्द है। औरंगज़ेब अगर दक्खिन में उलझ गया, तो ही आपके विद्रोह के लिए हम अपने सैनिकों की सहायता दे पाएँगे। एक प्रबल शत्रु हमारे सिर पर मँडरा रहा है, ऐसी हालत में अपनी पूरी या थोड़ी सेना को कहीं दूर भेजना हमारे लिए असम्भव है।" छत्रपति ने अकबर को निर्णय बतला दिया।

उत्तर सुनकर अकबर मन ही मन बहुत खीझ उठा था। वह हाथ में गुलाब का फूल घुमा रहा था। उँगलियों से मसले जाने के कारण उस फूल की पंखुड़ियाँ नीचे बैठक के आसन पर कब गिर पड़ी हैं, यह शायद अकबर नहीं जान पाया होगा, पर छत्रपति से यह बात छिप नहीं पायी।

वाणी में धैर्य और समझदारी का सुर मिलाकर अकबर को समझाने और शान्त करने की दृष्टि से महाराज ने उसके हाथ को थपकते हुए कहा, "शहज़ादे, तुम्हारी कसक को हम जानते हैं, परन्तु मन की भावनाओं में बहकर राजनीति के दाँव नहीं लगाये जाते। तुम हमारे मेहमान हो और हमारे राज में ख़ैरियत से हो। भरोसा रखो, समय आते ही तुम्हारे इरादे अवश्य पूरे होंगे। धीरज रखो। जयपुर के राजा रामसिंह को हम पत्र लिखेंगे, तुम भी लिखो। तुम्हारी-हमारी इस भेंट का परिणाम क्या निकलेगा, यह तो समय ही बतलाएगा।"

"ठीक है राजासाहब। हम आपके राज में ही रुके रहेंगे। लेकिन याद रखिएगा, जब तक हम आपके मुल्क में हैं, आलमगीर आपको चैन की नींद नहीं सोने देगा।"

https://t.me/Sahityajunction

अकबर की बातें सुनकर महाराज कहना चाहते थे—'यूँ भी हमें चैन की नींद आजतक भी मिली ही कहाँ है?' परन्तु होठों पर हँसी लाते हुए वे कह रहे थे, "यह जानते हैं हम। जब आलमगीर ख़ुद अपने बेटे की ही नींद हराम कर रहा है, तो हमारी नींद हराम करने का तो उसे अधिकार अवश्य ही प्राप्त है।"

सबको विदाई के बीड़े दिये गये। अकबर बीड़ा हाथ में लेकर बैठक से उठ खड़ा हुआ। महाराज ने सामने रखे हुए तबक़ में से एक गुलाब का ताज़ा फूल उठाकर उसे भेंट दिया और केवल मुस्करा दिये। अकबर ने भावभीनी आँखों से देखते हुए छत्रपति को गले से लगा लिया। फिर शहज़ादा अपने लोगों के साथ पड़ाव की ओर चल पड़ा। महाराज प्रथा के अनुसार उसके साथ पाँच क़दम चले और फिर रुक गये। उसके पीछे खड़े हुए महाराज उसके लौट रहे क़दमों की ओर देख रहे थे। महाराज के मन में इस समय कई विचार आ रहे थे—'इन अभागे पैरों के भाग्य में कितना वनवास भोगना लिखा है, कौन जाने? औरंगज़ेब! किस मिट्टी का बना है वह? कैसे विचित्र सम्बन्ध हैं ये?' उनके विचारों की उलझन और भी न जाने कितनी उलझती जाती, परन्तु महाराज ने इस शृंखला को बीच में ही तोड़ दिया और वे कवि कुलेश से कहने लगे, "कविजी, आप शहज़ादे के साथ यहीं रहिए। उसके ऊपर नज़र रखिए। इसलिए नहीं कि यह कोई राजनीतिक आवश्यकता है, केवल इसलिए उस पर नज़र रखिए कि कहीं वह बहककर या आवेश में आकर कुछ का कुछ न कर बैठे। इसे सँभालकर शान्त और संयमी रखना होगा।"

"जी हाँ।" कुलेश ने राजा की आज्ञा स्वीकृत की। महाराज सोचते-विचारते हुए टहलने लगे। इस समय उनके मन में तथा धोंडशी गाँव में बैठे हुए अकबर के मन में केवल एक ही डुगडुगी बज रही थी—'आलमगीर, आलमगीर।'

और ठीक इसी दिन शाही सवारी के सजे हुए हाथी की अम्बारी में बैठकर ढोल-नगाड़ों के ऊँचे कोलाहल के बीच औरंगज़ेब एक विशाल सेना के साथ बुरहानपुर के शहर-दरवाज़े से शहर में प्रविष्ट हो रहा था। उसकी चतुर दृष्टि हौदे में बैठे-बैठे यह देख रही थी कि बुरहानपुर के चारों ओर चहारदीवारी काफी मज़बूती से बनायी गयी है या नहीं। फ़कीर, मुल्ला-मौलवी उससे ख़ैरात पाकर हाथ उठा-उठाकर उसे जी-भर दुआ दे रहे थे।—चौदह करोड़ रुपयों का ख़जाना, तीन लाख घुड़सवार, चार लाख पैदल सिपाही साथ लेकर आलमगीर औरंगज़ेब गाज़ी दक्खिन में आया था। मराठा और कुतुबशाह राज्यों को नेस्तनाबूद करने के लिए रुहुल्ला ख़ाँ, हसन अली ख़ाँ, रणमस्त खाँ पत्री, बहादुर ख़ाँ, मातबर खाँ, लुत्फुल्ला खाँ, तरबीयत खाँ, दलपतराव बुँदेला आदि लड़ाके सरदार-सेनापति वह साथ लाया था। सभी मुहिमों पर अपने ख़ास लोगों की नज़र रहे, इसलिए वह अपने शाही ख़ानदान के मुअज़्ज़म, कामबख्श, बेदार बख़्त, मुइज़ुद्दीन आदि अपने नाती या बेटों को भी साथ लाया था। शाही दरबार के हुक्मों की झटपट तामील करायी जा सके, इस काम के लिए वह अपने विश्वासपात्र वज़ीर असद ख़ाँ को भी साथ लाया था।

महाराज पाला से रायगढ़ लौट आये थे। रायगढ़ की दक्षिण दिशा में जो गोला-बारूद के गोदाम थे, उनके सामने ही कुछ तोपें रखी हुई थीं। उन्हें देखते हुए महाराज निलोपन्त से कहने लगे, "फ्रांसीसियों के राजदूत ने अपना वायदा पूरा किया है क्या?"

https://t.me/Sahityajunction

“जी हाँ, उन्होंने वे सारी वस्तुएँ यहाँ पहुँचा भी दी हैं।” निलोपन्त ने अधिक जानकारी प्रस्तुत की।

फ्रांसीसी सरकार का राजदूत लेफेबर पन्हाला में महाराज से मिलकर गया था और उसने अपनी सरकार से सिफ़ारिश करके तोपें और गोला-बारूद रायगढ़ भिजवाने का प्रबन्ध किया था।

“कोई अच्छा-सा मुहूर्त ढूँढ़कर इन तोपों की पूजा कराओ निलोपन्त।” गम्भीरता से कुछ सोचते हुए महाराज एक तोप पर हाथ से थपकी दे रहे थे, जैसे किसी घोड़े की पीठ थपक रहे हों। बारूद के गोदामों की व्यवस्था का निरीक्षण करके वे निलोपन्त, जोत्याजी केसरकर तथा येसाजी कंक के साथ उपरिकोट में आये। निलोपन्त उनके पीछे-पीछे आ रहे थे। उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण सूचना महाराज को बतायी, “स्वामी, कर्नाटक से हरजीराजा का हरकारा आया है। प्रान्त की व्यवस्था के लिए उन्हें क़दम-क़दम पर रघुनाथपन्त हणमन्ते की सलाह की आवश्यकता होती है, परन्तु हणमन्ते को राजाज्ञा के अनुसार क़ैद करके कोठरी में बन्द कर दिया गया है इसलिए...” निलोपन्त बीच में ही रुक गये।

चलते हुए छत्रपति भी रुक गये। बोले, “हरजीपन्त ने इस विषय में कोई सुझाव दिया है क्या?”

पेशवा ने हरजीपन्त का सुझाव शीघ्रता से महाराज के सम्मुख रखा, “वे कहते हैं कि हणमन्ते के कार्यालय में जो काग़ज़ात हैं, उन्हें जब्त कर लेने का हुक्म दिया जाय।”

महाराज सोचने लगे। वैसे रघुनाथपन्त का शासकीय काम-काज बहुत उत्तम था। उनका अपराध यही था कि षड्यन्त्र की उन घड़ियों में उन्होंने दृढ़ता से काम नहीं लिया था। वे उस सारी स्थिति में डाँवाडोल बने रहे थे। क़ैद किये जाने के कारण उन्हें अब तक काफी सज़ा मिल चुकी थी। और अधिक दण्ड देने की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए इस विषय में महाराज ने अपना निर्णय कह सुनाया, “पन्त, हरजी को सूचित करो कि रघुनाथपन्त को छोड़ दिया जाय तथा कर्नाटक प्रान्त के लेखाध्यक्ष की ज़िम्मेदारी उन्हें फिर से सौंप दी जाय। सरकारी आदेश-पत्रों और काग़ज़ातों में शक्ति तभी आती है, जब उस लेखनी को धारण करनेवाला उसका स्वामी शक्तिशाली हो। लिखो कि सरकारी काग़ज़ात का कामकाज पूर्ववत् चलता रहे। लोग भूल कर बैठते हैं, परन्तु उन्हें सही रास्ते पर लानेवाला भी यदि भूल कर बैठे, तो बात पूरी तरह बिगड़ जाती है।”

निलोपन्त को आशा न थी कि उन्हें ऐसा निर्णय सुनने को मिलेगा। वे भौचक्के होकर अपने उत्तरीय को सँवारकर बोले, “जो आज्ञा!”

“कंक काका, हम्बीरराव बरार से कब लौट रहे हैं? हम बड़ी बेचैनी से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।” राजाराम के विवाह के विषय में सोच रहे छत्रपति ने येसाजी से चलते-चलते ही पूछा।

“जी, वे वापस आ रहे हैं। सम्भवतः चार-आठ दिनों में ही रायगढ़ पहुँच जाएँगे।”

आठ दिन बीत गये। उस दिन रायगढ़ की मीनारों के पास की पर्वतीय गुहा में बने हुए मन्त्रणागृह के आलों में मशालें जल रही थीं। मशालों के लाल-पीले प्रकाश में तीन आकृतियाँ चमक रही थीं।

https://t.me/Sahityajunction

मन्त्रणागृह के बाहर बला की सर्दी के कारण रात ठिठुरी जाती थी।

"सेनापति, हबशी अब काबू से बाहर जा रहा है।" बैठक पर बैठे महाराज चिन्तित होकर हम्बीरराव से कह रहे थे। उनके सामने वीरासन लगाकर हम्बीरराव बैठे थे, जो बरार की मुहिम से लौटकर आये थे। वहाँ कोंडाजी फर्जन्द भी बैठे थे। कोंडाजी कल्याण-भिवण्डी प्रदेश में किसी सैनिक-अभियान के लिए गये थे और महाराज ने उन्हें विशेष रूप से कोई गुप्त मन्त्रणा करने के लिए यहाँ बुलाया था।

"हबशी ने अपने आपटा नामक गाँव को जलाकर राख बना दिया। हबशी इतना उद्दण्ड हो गया है कि उसने गाँव के हमारे जिन प्रजाजनों को पकड़ लिया था उनकी नाक काट दी। उसके जंजिरा और जलदुर्ग को समुद्र के पानी में डुबाये बिना हमें चैन नहीं मिलेगा..." महाराज की आँखें ही जैसे दो मशालें बन गयी थीं।

महाराज की बातें सुनकर हम्बीरराव के गलमुच्छे भी ऐंठ गये। अत्यन्त रोष से भरकर हम्बीरराव कहने लगे, "बस आप आज्ञा करें महाराज। हम अभी जंजिरा को टक्कर मारकर पानी में मिलाये देते हैं। जैसे हमने बरार प्रान्त की दुर्दशा की है, वैसी ही गत यदि हमने जंजिरा की न बना दी, तो आपको फिर मुँह नहीं दिखलाएँगे।"

"नहीं मामाजी, इस समुद्री डाकू के शिकार के लिए हम इस समय तुम्हें मुग़लाई के मोर्चे से दूर नहीं हटा सकते। हमने इस काम के लिए कोंडाजी को बुलाया है।" छत्रपति की दृष्टि कोंडाजी की ओर घूम गयी।

कोंडाजी की आँखों के सामने जंजिरा का जलदुर्ग नाच रहा था। वे सावधान होकर आगे की बात सुनने लगे। "कोंडाजी, तुम विशेष निपुण हो। तुमने आबासाहब के काल में ऐसी चतुराई दिखलायी थी कि केवल साठ सहायकों को साथ लेकर पन्हालग़ढ़ जीत लिया था। हम तुम्हें जो काम सौंप रहे हैं, वह तो पन्हालगढ़ की विजय की अपेक्षा कठिन है। पन्हाला तो पर्वतीय दुर्ग है, यह जंजिरा जलदुर्ग है। हबशी सागर की लहरों के बीच पाँव जमाकर खड़ा है। इतनी सुदृढ़ सुरक्षा-व्यवस्था है कि कहीं सींग समाने के लिए भी जगह नहीं है।" महाराज रुक गये। उनकी आँखें कोंडाजी की गोल घेरेदार पगड़ी पर गड़ी हुई थीं।

जलती हुई मशाल से जैसे चिनगारी फूट निकलती है, इस प्रकार कोंडाजी एकदम वीरासन छोड़कर खड़े हो गये और महाराज को तीन बार मुजरा करके फटी हुई और ठेठ आवाज़ में ज़ोर देकर कहने लगे, "समझ लो महाराज कि हमने बीड़ा उठा लिया इस जलदुर्ग की विजय का। हमें अपने देवता खण्डोबा की सौगन्ध है महाराज। भरोसा रखिए कि इस खण्डाजी के पैर हबशी के सिर को दबाकर रख देंगे। अब उसके बारूद के कोठारों को उड़ाकर और जंजिरा की भस्म से सागर-देवता की पूजा करके ही हम आपकी चरण-धूलि लेने आएँगे।" दमकती हुई आँखोंवाले कोंडाजी ने झुककर महाराज के पैर छू लिये।

"शाबास फर्जन्द, हमें तुमसे यही आशा थी।"

कोंडाजी को सम्मान-वस्त्रों का तबक़ भेंट दिया गया। उस मन्त्रणा-सभा से उठते समय हम्बीरराव ने कोंडाजी को यह अनुभवपूर्ण सलाह दी, "जिन-जिनको तुम अपनी कूटयुक्ति में साथ लोगे, वे पूरे भरोसा करने योग्य ईमानदार लोग हैं या नहीं, इसका भरोसा पहले कर लेना। ऐसे साथियों को चुनना, जो समुद्र के जल में भी आसानी से तैरना जानते हों।"

https://t.me/Sahityajunction

कोंडाजी हम्बीरराव की इस आत्मीयतापूर्ण सलाह को सुनकर केवल हँस भर दिये। मन्त्रणा सभा समाप्त हुई।

पर्वतीय गुहा में निर्मित उस मन्त्रणा-गृह का शिलामय द्वार ज्योंही हटाया गया, बाहर की ठण्डी हवा का एक ऐसा झोंका आया कि महाराज को कुछ देर वहीं खड़े रह जाना पड़ा। उनके मन में हबशी के बारे में जो विचार-शृंखला चल रही थी, वह टूट गयी और उसका स्थान ले लिया घरेलू नाते-रिश्ते की बातों ने। शिलामय द्वार से बाहर आते ही महाराज हम्बीरराव से स्नेहमयी वाणी से बोले, "हम तुम्हें जो ज़िम्मेदारी सौंपना चाहते हैं, वह थोड़ी भिन्न रूप की है।"

"कहिए न..." हम्बीरराव ने उत्साहपूर्वक कहा। कोंडाजी उन दोनों को बोलने का अवसर देने के लिए वहाँ से चले गये थे। "मामाजी, हमारी बड़ी माँजी चली गयीं। खेद यही है कि उन्होंने अप्रिय मार्ग चुना। उनके जाने से हमारे भाई राजाराम बेसहारा हो गये हैं। इसलिए उनके विवाह की दृष्टि से कुछ योजना बनाकर हम केवल तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।"

सोयराबाई की याद के कारण हम्बीरराव का दिल भर आया था। जब वे मौन ही बैठे रहे, तो छत्रपति ने कहा, "कुछ कहा नहीं तुमने?"

"क्या कहें महाराज? उन्होंने यह रास्ता क्यों चुना, कुछ समझ नहीं आता। हम जब बाल राजाराम महाराज से मिले, तो वे हमसे आकर लिपट गये और कहने लगे..."

हम्बीरराव की आँखों के आगे बालक राजाराम का वह रूप ही दिखाई दे रहा था। उनका गला रुँध गया।

"क्या...क्या कहने लगे वे?" महाराज की आवाज़ भी भर्रा गयी थी।

"कहने लगे कि दादा भैया को कहना कि हमें नज़रबन्द न करें।" बुरहानपुर और बरार में अपने पराक्रम की धाक बैठानेवाले वीर हम्बीरराव का भी कण्ठ रुद्ध हो उठा था। उन दोनों वीरों के मन भी जैसे बाहर की सर्दी के कारण जम गये थे। विचित्र-सी नीरवता छा गयी थी।

छत्रपति झटपते हुए सामने सात-आठ क़दम दूर खड़े हुए मशालची के पास गये और उन्होंने उसकी मशाल अपने हाथों में ले ली। फिर हम्बीरराव के पास आकर और मशाल को अपने मुख के निकट लाकर वे अत्यन्त दुखित वाणी से कहने लगे, "मामाजी, देखो तो सही, क्या हमारी आँखों में भाई को क़ैद करने की कुटिलता भरी है? या उसके प्रति प्यार-दुलार की भावना भरी हुई है?"

हम्बीरराव हड़बड़ा गये। वे अपने स्वामी के उग्र और स्पष्टवादी स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे। वे जानते थे कि महाराज के दिल में होता, तो वे राजाराम को क़ैद भी तो कर सकते थे और फिर उसके बारे में वे किसी की बात सुनने को भी तैयार न होते।

मशाल की लपटों की आवाज़ के बीच छत्रपति की भर्रायी हुई आवाज़ हम्बीरराव के कानों में आयी, "आज आबासाहब यदि जीवित होते, तो राजाराम के लिए वे जो काम करते, वही काम हम आज कर रहे हैं। उसी के लिए हम तुमसे एक याचना करना चाहते हैं, मामाजी।"

'याचना' शब्द सुनकर हम्बीरराव चौंक उठे। सोचने लगे, न जाने अब कौन-सी याचना की जाएगी!

"हमारी बड़ी माँजी के आचरण के कारण जब-जब हमारे सम्मुख कर्तव्य-अकर्तव्य की

https://t.me/Sahityajunction

समस्या उपस्थित हुई, तब-तब आपने ही धैर्यपूर्वक हमें सहारा दिया है। अब जो हम माँग प्रस्तुत कर रहे हैं, वह छत्रपति के रूप में नहीं—बालमहाराज राजाराम के 'दादा-महाराज' के रूप में कर रहे हैं। मामाजी, हमारी इच्छा है कि तुम्हारी लड़की भोसले कुल में आ जाए—राजाराम की दुल्हन बनकर।"

हम्बीरराव ने सोचा भी नहीं था कि ऐसी कोई माँग सामने आएगी। वे अपने स्वामी की ओर टक लगाकर देखने लगे—'कभी जिन्होंने हमारे कन्धे पर प्रधान-सेनापति के सम्मान-वस्त्र रखे थे, ये वे छत्रपति शिवाजी महाराज ही तो हमारे सामने नहीं खड़े हैं?' हम्बीरराव को यही आभास हो रहा था।

उन्हें मौन देखकर महाराज ने तुरन्त अपनी याचना को आश्वासन पाने के रूप में बदल दिया, "हमें वचन दो सेनापति।"

"जी, बागजाई देवी की सौगन्ध लेकर हम आज यह वचन देते हैं कि हम अपनी लाडली बेटी को बाल-महाराज की दुल्हन के रूप में दे रहे हैं।" अपने कुल देवता की शपथ लेकर वचन देते हुए सेनापति हम्बीरराव महाराज के चरण छूने के लिए झुकने लगे, परन्तु छत्रपति ने उन्हें रोक लिया और कहने लगे "अब तुम राजाराम के श्वसुर हो गये हो, परन्तु फिर भी हमारे लिए तुम जैसे आज तक मामाजी बने रहे हो, वैसे ही सदा बने रहना।"

रायगढ़ में राजाराम का शुभ-विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। गाजे-बाजे के बीच हम्बीरराव की पुत्री ताराऊ धान्य से भरे धान्य मापने के पात्र को, जो घर की देहली पर रखा था, अपने पैर से घर के भीतर की ओर ढकेलकर भोसलों के घर में प्रविष्ट हुई। नयी दुल्हन का नाम रखा गया सीताबाई, परन्तु फिर भी लोग उसे ताराऊ, जो उसका पीहर का नाम था, कहकर पुकारने लगे।

यह शुभ कार्य अभी पूर्ण भी नहीं हुआ था कि एक ख़बर रायगढ़ आ पहुँची। महाराज अत्यन्त आतुरता से इस ख़बर की प्रतीक्षा कर रहे थे। जंजिरा प्रदेश में घूमनेवाला भेदिया विश्वास मुसेरखोरकर छत्रपति के सम्मुख उपस्थित हुआ और जुहार करके कहने लगा, "महाराज, कोंडाजी हबशी के जलदुर्ग में घुस गया है। उसके साथ कोई पचास आदमी हैं। कोंडाजी के आदमी बड़ी चतुराई से और दिनदहाड़े जंजिरा में घुस गये हैं। वे हबशी के नौकर बनकर वहाँ घुसे हैं। कोई पत्थर घड़नेवाला कारीगर बनकर, कोई नाव दुरुस्त करनेवाला बढ़ई बनकर, तो कोई चूने की चक्की चलानेवाला मज़दूर बनकर जंज़िरा में घुस बैठे हैं।"

समाचार सुनकर महाराज के मुख पर सन्तोष झलक उठा। बोले, "ये तो नयी दुल्हन ताराऊ के शुभागमन का शुभ परिणाम है।"

विश्वास रामोशी जुहार करके चला गया। अब छत्रपति जंजिरा के विषय में आश्वस्त हो चुके थे। उन्होंने किसी बात को ध्यान में रखकर पेशवा को बुला भेजा।

"पन्त, हमारी रानीजी रायगढ़ से गांगोली जाना चाहती हैं। तुम इस बारे में उचित प्रबन्ध करा लो।" महाराज ने निलोपन्त से कहा।

येसूबाई की तीव्र इच्छा थी कि इस बार वे प्रसूति के लिए गांगोली गाँव की शान्त और एकान्त हवेली में जाकर रहें। वास्तव में बात यह थी कि उन्हें एकान्त की अपेक्षा अपने पीहर की

https://t.me/Sahityajunction

कुलदेवी भावेश्वरी के निकट रहने की अधिक इच्छा थी। परन्तु भावेश्वरी देवी के गाँव शृंगारपूर में तो अब वे जा नहीं सकती थीं। गांगोली स्थान वहाँ से निकट था, इतना ही सन्तोष था उन्हें। 'जी' कहकर निलोपन्त ने छत्रपति की आज्ञा मानी। निलोपन्त आज्ञा सुनकर भी जा नहीं रहे वहीं खड़े हैं, यह देखकर महाराज ने उनसे पूछा, "कहो, क्या बात है?"

"महाराज, अहमदनगर से शहज़ादा आज़म ने सरदार हसन ख़ाँ को सेनासहित हमला करने के लिए भेजा है। हमने सारे पहाड़ी रास्तों और घाटों की पक्की नाकाबन्दी की हुई है, यह देखकर हसन ख़ाँ ने कोंकण प्रदेश पर धावा बोलने का निश्चय बदल दिया और वह सासवड की घाटी में उतर पड़ा है। उस दिशा में हमारे पुरन्दर विभाग का मनसबदार है शेख इब्राहीम। हसन ख़ाँ कोशिश में है कि वह शेख इब्राहीम को फुसला-बहलाकर अपनी ओर मिला ले।"

महाराज व्याकुल हो गये। फिर भी शान्तिपूर्वक बोले, "पन्त, इब्राहीम के आस-पास अपने भेदिये जासूस बिखेर दो।"

"जो आज्ञा। पुणे के निकटवर्ती गाँव में शिवापुर को भी बहादुर ख़ाँ ने लूट लिया है, स्वामी।" निलोपन्त ने दूसरी कटु वार्ता भी कह सुनायी।

"कोई बात नहीं, पेशवा। अपने पुणे सूबे के सूबेदार दामाजी रघुनाथ की ओर एक हरकारा तुरन्त भेजो। उनसे कहो कि शत्रु सबसे पहले पुणे प्रान्त को ही दबोचने वाला है। उन्हें लिखो कि वे रात-दिन घूमकर चारों ओर पक्की सुरक्षा व्यवस्था रखें। सावधानी बरतें ताकि हसन ख़ाँ और बहादुर ख़ाँ की ये दो मुग़ली सेनाएँ आपस में मिल न पाएँ।"

"जी," निलोपन्त अपने स्वामी के ठण्डेपन को देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे।

"स्वामी, पुर्तगाली वायसराय तावेरा ने कोलवल नामक स्थान पर अपने क़िले का निर्माण कार्य पूरा कर लिया है। बड़े छत्रपति महाराज इस कोलवल स्थान को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे।"

महाराज सोच में डूब गये। नया पुर्तगाली वायसराय आकर अपने बड़े दरबार के सामने अपनी कार्यकुशलता दिखलाने के लिए इसी तरह कुछ-न-कुछ करता ही रहेगा, यह महाराज स्पष्ट रूप से समझ गये थे।

"पन्त, कारवार प्रदेश के अपने सूबेदार को आदेश दो कि वह अपनी सारी सेना सहित अंजदीव द्वीप पर धावा बोल दे। हर हालत में अंजदीव द्वीप क़ब्जे में आना चाहिए। पुर्तगाली उस द्वीप पर भी आँख गड़ाये बैठे हैं।"

छत्रपति ने इस आदेश द्वारा बढ़ते हुए पुर्तगालियों के रास्ते में बाधा उत्पन्न करने की नीति अपना ली थी। निलोपन्त इस आदेश को सुनकर सन्तुष्ट हुए। उन्होंने अँग्रेज़ों से सम्बन्धित एक मामला सामने रखा, "मुम्बई के अँग्रेज़ एक बात को लेकर हम से नाराज़ हो गये हैं, स्वामी।"

"क्या कारण है नाराज़ होने का?"

"हमारे सुन्दरजी बाजी ने गोरों की दो नौकाएँ नागोठणे में बन्दरगाह में पकड़ रखी हैं। गोरे लोग नागोठणे के उपद्रव मचानेवाले हबशियों को मदद करते हैं, ऐसा आरोप है सुन्दरजी का। अँग्रेज़ सुन्दरजी के इस क़दम के ख़िलाफ़ बड़ी गड़बड़ मचा रहे हैं।"

"सुन्दरजी को सूचना दो कि अँग्रेज़ों को एक बार चेतावनी दें और उनकी नौकाएँ छोड़ दें।"

https://t.me/Sahityajunction

“जी, कुतुबशाही दरबार ने नज़राना भेजा है स्वामी। चार लाख पगोड़ों से भरे थाल भेजे हैं उन्होंने।”

महाराज हँसते हुए कहने लगे, “पन्त, यह नज़राना नहीं है। यह सहायता भेजी है उन्होंने। इसलिए भेजी है ताकि हम आलमगीर के विरुद्ध जंग छेड़ दें। तुम्हें याद होगा कि कुतुबशाही ने हमारे राज्याभिषेक के समय में भी इतनी बड़ी राशि भेंट नहीं दी थी। इसका नाम ही राजनीति है कि मेहमान की लाठी से साँप मारा जाय। कुतुबशाह को नज़राने के मिलने की सूचना भिजवाओ। उसे सूचित करो कि तुमने जो मित्रता का उपहार भेजा, वह हमें मिल गया है। वक़्त आने पर हमें फ़ौजी सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। हम सब मिलकर दक्खिन को बचा सकेंगे तो सिर्फ़ सैनिकों के बल पर—रुपये या सोने से नहीं।”

इसके चार दिन बाद की बात है। शुभमुहूर्त के अनुसार येसूबाई प्रातःकाल जल्दी उठीं और पूजा की समस्त सामग्री सहित गढ़ की देवी शिर्काई के मन्दिर में जाकर देवी की कोंछ भरकर पूजा कर आयीं।

सातमहल के सामने परदों से बन्द द्वारवाली डोलियाँ सामने के मैदान में तैयार खड़ी थीं। सशस्त्र सैनिक डोलियों के चारों ओर खड़े थे।

येसूबाई ने अपनी सास रानी सकवारबाई को प्रणाम किया और वे राजाराम तथा ताराऊ को साथ लेकर अपने पतिदेव के दर्शनार्थ उनकी बैठकवाले कक्ष में आयीं। उनके साथ थी धाराऊ जिसे बुढ़ापे ने पूरी तरह घेर लिया था। जिसके सिर के सारे बाल चूने के-से सफ़ेद हो गये थे और जिसने सारा जीवन भोसले राजपरिवार की छाया बनकर ही बिताया था। रूपा नामक एक विशेष विश्वासपात्र दासी भी येसूबाई के साथ थी। येसूबाई को आता देखकर महाराज भी पाँच क़दम आगे बढ़ आये। हाथ में आँचल का छोर थामकर अपने सोने के कंगनों वाले हाथों से महारानी येसूबाई ने अपने सुहाग को तीन बार नमस्कार किया। राजाराम छत्रपति को मुजरा करने को झुक ही रहा था कि छत्रपति ने उसे अपने पास खींच लिया। फिर महाराज सोचने लगे कि अब सामने खड़ी हुई सलज्जा येसूबाई से क्या और कैसे बोलें। वे केवल इतना ही कहना चाहते थे कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

परन्तु तब तक येसूबाई ही कह उठीं, “तो हम जाएँ क्या? श्रीमान्‌जी अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें।”

“जी,” आज शायद महाराज के मुख से पहली बार ‘जी’ आदरवाचक स्वीकृतिसूचक शब्द ठीक अनजाने ही निकल पड़ा था। फिर वे यह भी कह बैठे, “हम भी द्वार की मीनारों तक आपके साथ चले चलते हैं।” विचारों की भीड़-भाड़ के कारण वे धाराऊ को प्रणाम करना ही भूल गये थे, सो वे अब उसके चरणों में झुक पड़े। उनके टोप पर अपना आशीष-भरा हाथ रखकर वह वृद्धा कहने लगी, “रहने दे, रहने दे बेटा। अब तेरे कुल में बड़े महाराज ही पैदा होनेवाले हैं, आशीर्वाद है यह मेरा।”

बूढ़ी के आशीर्वाद को सुनकर येसूबाई के गालों और कनपटी पर लाली फैल गयी। वे लपककर कक्ष से बाहर हो गयीं।

https://t.me/Sahityajunction

एक छोटी-सी सेना द्वारा संरक्षित वे डोलियाँ पालकी दरवाज़े से निकलकर मीनारों तक आयीं। वहाँ कुछ देर रुककर डोलियाँ फिर रायगढ़ के पर्वतीय मार्ग से उतरने लगीं।

छत्रपति मीनारों के पास खड़े-खड़े जाती हुई डोलियों को देख रहे थे। इसी समय उनका मन दूर जा रही येसूबाई से पूछ रहा था—'अब तुम जा रही हो, तो अकेली हो पर जब लौटोगी, तब...?'

"मालिकऽऽ..." गुप्तचरों का नायक बहिर्जी छत्रपति के ख़ासमहल के सभागृह में आ उपस्थित हुआ। सिर से पाँव तक पसीने से भीगा हुआ था वह और उसके मुख से प्रयत्न करने पर भी दो शब्द नहीं निकल पा रहे थे। आज उसकी मुखाकृति ही ऐसी विचित्र-सी थी कि वहाँ सभागृह में महाराज की सेवा में उपस्थित निलोपन्त, प्रह्लादपन्त, आवजी, प्रह्लाद पण्डित आदि भी हक्के-बक्के रह गये। फिर वे सब आवश्यक समझकर स्वयं ही पीछे हटकर मुजरा करते हुए सभागृह से बाहर चले गये। अब सभागृह में केवल महाराज और बहिर्जी रह गये थे।

मुँडासा इधर-उधर हिलाते हुए रामोशी जाति का वह गुप्तचर आँसूभरी आँखों से कुछ देर तक महाराज की ओर देखता रहा। फिर उसकी नजर महाराज के पैरों पर जा टिकी।

"नायक..." महाराज भी मन-ही-मन चकित हो उठे थे।

बहिर्जी का सिर फिर इधर-उधर डोलने लगा, मानो वह कोई हृदयभेदी, अति करुणापूर्ण दृश्य अपनी आँखों से अब भी देख रहा हो। उसकी आँखों से चार बूँदें निकलकर भूमि पर टपक पड़ीं। रामोशी जाति की प्रथा के अनुसार एक काला कम्बल उसके कन्धे पर लटका हुआ था, परन्तु आज वह कम्बल भी कन्धे से खिसककर नीचे सरक आया था। मालिक सामने थे, फिर भी कम्बल सँवारने का भी उसे आज होश नहीं था।

"नायक, अरे बोल न कुछ। क्या हुआ?" छत्रपति बैठक से उठ खड़े हुए।

बहिर्जी के होठ काँप रहे थे। फिर उस सभागृह में गुप्तचर के ये बोल जैसे-तैसे बाहर निकले :

"विश्वासघात हुआ मालिक, अपने कोंडाजी मारे गये।" शोकावेग के कारण रामोशी का गला रुँध गया।

छत्रपति का तन-बदन सिहर उठा। "नायक ऽ, ये कैसे हुआ? कैसे हुआ ये?"

दुःख के प्रबल प्रवाह को संयमित करता हुआ राज्य का वह स्वामिभक्त गुप्तचर कहने लगा, "महाराज, कोंडाजी बड़ी होशियारी से हबशी के क़िले की जानकारी पा रहा था, पर अपने ही एक आदमी ने सबके गले काट डाले। सरकार, धोखा दे दिया एक ने..."

"किसने धोखा दिया?" शोक के स्थान पर अब छत्रपति का क्रोध भड़क उठा था।

"उस हरामज़ादे कुमाजी देसाई ने।" बहिर्जी ने स्पष्ट रूप से नाम बतला दिया। सुनकर छत्रपति और भी व्याकुल हो उठे।

"बेईमान देसाई ने हबशी से साँठ-गाँठ करके उसके कान फूँक दिये। कह दिया कि कोंडाजी भेस बदलकर आया हुआ है। मौक़ा पाकर बारूद के गोदामों को उड़ा देना चाहता है। बस, रात

https://t.me/Sahityajunction

ही रात में हबशी ने कोंडाजी को सारे आदमियों सहित गिरफ़्तार कर लिया। कोड़े मार-मारकर उनसे कुछ बुलवाने की कोशिश की। परन्तु कोंडाजी मराठी में न बोलकर कन्नड़ भाषा में बोलता रहा। उसके एक भी आदमी ने भेद प्रकट नहीं होने दिया।"

इस दशा में भी छत्रपति को असीम सन्तोष प्राप्त हुआ।

एक लम्बी आह भरकर नायक ने कोंडाजी के धैर्यपूर्ण बलिदान की कथा का अन्त अपने स्वामी को इस प्रकार सुनाया, "कोंडाजी झुकने को तैयार नहीं है, यह सुनकर स्वयं सिद्दी ख़ैरात पौ फटते ही उन्हें देखने आया। कोंडाजी के सामने आकर उसके मुँह पर थूकते हुए कहने लगा—कुत्ते, तेरा सिर काटके खम्भे पे लटकाएँगे। वहाँ से अपने मालिक को बता देना कि जंजिरा को बुरी नज़र से देखनेवाले का क्या हाल होता है।

"हबशी ने जल्लादों को हुक्म दिया कि सबके सिर उड़ा दिये जाएँ।"

शोक, क्रोध और दुःख के कारण छत्रपति का दम घुटने लगा। फटी हुई आँखें अपलक होकर कहीं शून्य में देख रही थीं।

"महाराज, कोंडाजी ने एक सच्चे सूरमा की तरह मृत्यु का स्वागत किया। पौ फटते ही चार हबशियों ने सबसे पहले कोंडाजी की गरदन एक लकड़ी के ठीहे पर रखी। जल्लाद ने तेज़ धारवाला खाँडा उठाया ही था कि उसी समय कोंडाजी पूरा ज़ोर लगाकर उछलकर खड़ा हो गया। जंजिरा पर जब से वह आया था, तबसे लेकर आज तक वह अपना रूप छिपाये रखने के लिए कन्नड़ भाषा में ही बातचीत करता रहा था। पर आज पहली बार वह अपने मावल देश की ठेठ मराठी बोली में ज़ोर से गरजकर कहने लगा, 'अरे हाँ, हम मराठा राजा के ही आदमी हैं। अरे, हमने मौत को हमेशा अपना दोस्त समझा है। इस ठीहे को ज़रा रायगढ़ की ओर करके तो रखो'।" बहिर्जी को इस समय जैसे कोंडाजी की वह आकृति ही दिखाई दे रही थी। वह आगे बोल भी नहीं पा रहा था। विह्वलमना छत्रपति की आँखें भी गीली हो आयी थीं। उनका हाथ भवानी माला पर घूम रहा था।

अचानक बहिर्जी की नीची झुकी हुई नज़र एक झटके से उठी और छत्रपति की नज़र से जा मिली। भर्राये हुए शब्द छत्रपति के चरणों में अर्पित होने लगे, "मालिक, कोंडाजी मराठी बोल रहे थे और हबशी उसे समझ नहीं पा रहे थे। तब कोंडाजी ने अपने हाथों को झटका दिया और अपने ही हाथों से वह लकड़ी का ठीहा रायगढ़ की दिशा में घुमा लिया। फिर अपनी गरदन को उसी ठीहे पर रखने से पहले उसने रायगढ़ की ओर महाराज को एक बार मुजरा किया और बोला, 'महाराज, हमने अपने ख़ून की 'हल्दी-रोली' चढ़ायी है इस जलकोट पर। कोई भूल-चूक हुई हो, तो माफ़ कर देना। हमारी चाकरी की याद रहने देना...जय भवानी...!'

"सरकार, सुबह होते ही समुद्र में गाड़े हुए खम्भों पर हबशियों ने कोंडाजी और उसके पचास साथियों के सिर लटका दिये। सच मानिए, समुद्र की उन तेज़ हवाओं में झूलते हुए वे सिर अन्त समय में भी रायगढ़ की ओर ही देख रहे थे।"

छत्रपति ने आँखें बन्द कर ली थीं। छाती पर झूल रही भवानी माला पर उनकी आत्मा की करुणा आँसू बनकर टप-टप टपक रही थी।

बहिर्जी का कम्बल कन्धे से खिसककर न जाने कब नीचे भूमि पर गिर पड़ा था। वह उसे

https://t.me/Sahityajunction

उठाकर चुपचाप सभागृह से बाहर चला गया।

आज रायगढ़ का सिंहासन वाला राजसभागृह मशालों से प्रकाशित हो रहा था। बाहर की सर्दी सम्भवतः उन जलती हुई मशालों से भयभीत होकर भीतर आने का साहस नहीं कर पाती थी। राजसभागृह के भीतर और बाहर हथियारबन्द प्रहरियों का पहरा लगा हुआ था। जगदीश्वर के मन्दिर में अभी-अभी सान्ध्य आरती हुई थी। उसका घण्टानाद रायगढ़ की दीवारों से टकराकर अभी-अभी ही नीचे की घाटियों में उतर गया था।

सिंहासन वाले सभागृह में समुद्रतट के सब नौसेनानायक तथा कई लड़ाके वीर एकत्रित थे। महाड के सूबेदार दादाजी रघुनाथ देशपाण्डे, उनके भाई—विशाजी रघुनाथ, मायनाक भण्डारी, दौलत ख़ाँ, गोविन्दजी काटे, सम्भाजी पावला, कावजी मुहम्मद, हाजी साला—उदाजी पड़वल, सुभाना खुराड़े, भिवाजी गुजर, माणको जी आदि विशिष्ट लोग इस सभा में उपस्थित थे। इस सभा में नौसेना के पराक्रमी वे दो वीर भी उपस्थित थे, जो हबशी सिद्दी ख़ैरात से नाराज होकर अब मराठा राज्य की सेवा करने आये थे। उन्होंने पवित्र कुरान शरीफ़ को हाथ में लेकर मराठा साम्राज्य के प्रति निष्ठावान रहने की क़सम खायी थी—इनके नाम थे सिद्दी सम्बूल और सिद्दी मिस्त्री। ये दोनों वीर आज सबसे आगे बैठे थे। सबके मन में एक तीखी चुभन की पीड़ा थी और इसी कारण कोई किसी से बोलता नहीं था।

राजसभागृह की प्रथा के अनुसार हल्दी-रोली की चंगेरी सबके सामने लायी गयी। सबने उसमें से हल्दी-रोली लेकर माथे पर लगायी। सिद्दी सम्बूल और सिद्दी मिस्त्री ने भी थोड़ी हल्दी-रोली दो-चार उँगलियों में लगाकर अपने गले पर रोली की रेखाएँ अंकित कर लीं।

पूर्वाभिमुख सिंहासन पर छत्रपति विराजमान थे। उनकी मुखमुद्रा ऊपर से शान्त दिखाई देती थी, परन्तु उनके मनरूपी सागर में विचारों का जो ज्वार आया हुआ था, उसे कोई भला कैसे पहचान सकता था? छत्रपति के दोनों ओर निलोपन्त, दत्ताजी त्रिमल, खण्डेराव तथा पाली से लौट कर आये हुए कवि कुलेश, प्रह्लादपन्त और येसाजी कंक आदि विशेष व्यक्ति उपस्थित थे।

निलोपन्त ने मन्त्रणा का प्रारम्भ किया। “आज महाराज ने आप सबको किस कारण याद किया है, यह आप जानते हैं। दिल्लीश्वर औरंगज़ेब औरंगाबाद और अहमदनगर तक जा पहुँचा है। उसका एक सरदार याकूत ख़ाँ समुद्र के रास्ते होकर दण्डराज पुरी तक आ पहुँचा है। एक ओर से जंजिरा का हबशी और याकूत ख़ाँ और दूसरे मैदानी इलाक़े से स्वयं औरंगज़ेब बढ़ा आ रहा है। इस प्रकार शत्रु हमारे राज्य को शिकंजे में कसकर गला घोंटने के इरादे से बढ़ा आ रहा है। उसके बल पर ही जंजिरा का हबशी भी सिर उठा रहा है। हबशी सिद्दी ख़ैरात के अत्याचार बहुत बढ़ गये हैं। उसका दिमाग ठिकाने लगाने के लिए ही यह मन्त्रणा-सभा बुलायी गयी है।” निलोपन्त कुछ देर रुक गये।

सबसे पहले वीर मायनाक भण्डारी बोला। यह मायनाक वही व्यक्ति था, जिसके युवा पुत्र का सिर अत्याचारी ख़ैरात ने काट दिया था। हृदय में चुभ रहे उस शल्य को वह पिता भला कैसे भूल पाता? बड़े छत्रपति महाराज ने मायनाक की वीरता पर प्रसन्न होकर उसे ‘पालकी’ नामक एक जलयान पुरस्कार स्वरूप दिया था। मायनाक भड़ककर कहने लगा, “बस, अब हद हो गयी

https://t.me/Sahityajunction

है। कब तक इसी तरह अधर में लटकता रहेगा ये जंजिरा का मामला? हम, दौलत ख़ाँ, सँभल ख़ाँ, आंग्रे आदि मिलकर सारी जलसेना को इकट्ठा करके जंजिरा को एक आख़िरी धक्का देना चाहते हैं अब।"

"नाँदगाँव, मुरुड, माण्डला आदि स्थानों से पैदल सैनिकों की पंक्ति बनाकर पहले स्थल के मार्ग से और फिर नौकाओं द्वारा हम जंजिरा की खाड़ी में जलमार्ग से आगे बढ़ने का पूरा प्रयत्न करेंगे।" दादाजी रघुनाथ ने मायनाक की योजना का समर्थन किया। इन दो अनुभवी जलसेना-नायकों की सलाह के प्रति सभी ने सिर हिलाकर या हाथ उठाकर सम्मति दर्शायी।

परन्तु छत्रपति चुप थे। उनकी आँखों के आगे नाच रही थी पन्हाला की सज्जा-कोठी। उनके कानों में गूँज रहे थे आबासाहब के कहे वे शब्द, जो उन्होंने सज्जा-कोठी में कहे थे। शब्दों से हृदय छिन्न-भिन्न हुआ जा रहा था—'जंजिरा में सिद्दी पाँव जमाकर खड़ा है, उस ओर ज़रा ध्यान दो। मावला-सैनिक बनो।'

महाराज को मौन देखकर मन्त्रणा-सभा के सारे सदस्य भी हड़बड़ा गये और फिर वे सब भी मौन हो बैठे। सभा में बाधा-सी उत्पन्न हो गयी। मन्त्रणा की चर्चा बन्द हो गयी।

छत्रपति का मौन बूढ़े मायनाक को असह्य हो उठा। वह साहस करके और चिढ़ तथा रोषपूर्वक कहने लगा, "महाराज, आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं? हम जो हैं दुश्मन का काम तमाम करने के लिए। हमें बीड़े दीजिए। हम समुद्र पर ऐसा ज़ोरदार हमला करेंगे कि फैसला ही हो जाएगा।"

मायनाक के प्यार-भरे बोलों से छत्रपति का मन, जो कहीं भीतर ही टक्करें खा रहा था, लौटकर फिर मायनाक की ओर आ गया। वे बैठक से उठ खड़े हुए और बोले, "भण्डारी काका, हम...हम स्वयं ही आएँगे जंजिरा के हबशी से निबटने।"

सामने बैठे कई लोग यह सुनकर चौंककर ऊपर देखने लगे। सिद्दी सम्बूल मिस्त्री पुकार उठे, "इंशा-अल्लाहऽ।" नायक बहिर्जी भी एक कोने में कम्बल हाथों में थामे खड़ा था। उसका मुँडासा भी अब अभिमान से डोल रहा था।

छत्रपति की आँखों में रुद्र समा गया था। वे अपने आप से बात करते हुए एक के बाद एक आज्ञाएँ देने लगे, "प्रह्लादपन्त, अरबी जलसेना से दोस्ती बनाये रखने के लिए अपने ईमानदार हरकारों को समुद्र के किनारे पर भेजो। उनके साथ अच्छे-अच्छे नज़राने भी दो, जो अरबी नौ सैना-नायकों को देने होंगे।

"निलोपन्त, तुम अपनी सेना लेकर कल्याण प्रदेश में मोर्चा लगा लो। येसाजी काका, रायगढ़ पाचाड़ और महाड विभागों में जितनी भी तोपें हैं और तोपची हैं, उन्हें इकट्ठा करके तुम समुद्र की दिशा में भेजने की व्यवस्था करो।

"हमारा प्रत्येक सच्चा नौसैनिक वीर आज हमारे आतिथ्य को स्वीकार करे और कल रायगढ़ से उतरकर रवाना हो जाय। प्रत्येक नायक की नौसेना टुकड़ी में जितने भी सीढ़ियों पर और रस्सियों द्वारा दीवारों पर चढ़नेवाले कुशल सैनिक हैं, उन्हें इकट्ठा करो। बन्दूक़चियों को भी साथ लो। सब मिलकर समुद्र के किनारे पर इकट्ठे हो रहो और हमारे अगले आदेश की प्रतीक्षा करो।

https://t.me/Sahityajunction

“दादाजी प्रभु, तुम विसाजी और अन्त्याजी के साथ महाड जाओ। वहाँ चारों ओर की फ़ौज को इकट्ठा करो और हमारे आने का इन्तज़ार करो। निलोपन्त, दरबार में उपस्थित सभी प्रतिष्ठितों को सम्मान के बीड़े तथा वस्त्र प्रदान करो।” महाराज ने हाथ उठाकर कहा और वे बैठक पर बैठ गये। सब प्रतिष्ठित सभागृह से बाहर चले गये।

छत्रपति ने मायनाक भण्डारी, कवि कुलेश तथा बहिर्जी को सभागृह में रुके रहने की आज्ञा दी थी, अतः वे लोग ही इस समय सभागृह में थे। “नायक, रायगढ़, हबसाण, कल्याण आदि प्रदेशों में तुम अपने चुने हुए जासूस यहाँ-वहाँ फैला दो।” बहिर्जी को भी आज्ञा दी गयी। वह मन ही मन में जासूसों को कहाँ-कहाँ फैलाना होगा, इसका सोच-विचार करते हुए बाहर चला गया।

“कविजी, तुम धोंडशी में रह रहे शहज़ादा अकबर को ख़लीता भेजकर सूचित करो कि इस मुहिम में उसे भी हमारे साथ रहना होगा। इसी बहाने यह भी सिद्ध हो जाएगा कि वह कितना खरा या खोटा है। उसकी युद्ध के मैदान की बहादुरी भी हम देख पाएँगे।” छत्रपति ने कवि कुलेश को भी विदा किया।

अब केवल मायनाक ही उनके साथ था। महाराज उससे हँसते हुए कहने लगे, “चलो भण्डारी काका, आज तुम-हम मिलकर भोजन करेंगे।”

छत्रपति मायनाक के साथ भोजन-कक्ष में पधारे। छत्रपति की चौकी के सामने ही एक पाट रखा हुआ था। बूढ़ा मायनाक भण्डारी उस पर बैठने में हिचकिचा रहा था। उसे दिलासा देते हुए महाराज ने कहा, “नाविक-नायक, संकोच मत करो। तुम तो अपने घर के ही आदमी हो। बैठो, पाट पर बैठो।” मायनाक अत्यन्त आदरभाव दिखलाते हुए अपने महाराज के सामने बैठ गया। भोजन परोसा गया। महाराज ने थाली के चारों ओर जल से चित्राहुति दी। परन्तु मायनाक बड़ी उलझन में फँसा था। सोच रहा था कि आज स्वामी ने उसे ही अकेला क्यों रोक रखा है? गुत्थी सुलझ नहीं रही थी।

मायनाक ने जैसे-तैसे एक ग्रास खाया था कि छत्रपति के बोल उसके कानों ने सुने, “भण्डारी काका, तुम तो जन्म से समुद्र के पालने में झूलते आये हो। समुद्र की एक-एक लहर की ऊँचाई-गहराई तुम्हें मालूम है। हबशी के मोर्चे में कमज़ोर जगह कहाँ है, यह तुम अवश्य बता सकते हो। उस जलकोट पर विजय पाने के लिए आस-पास की समुद्री खाड़ी की विस्तृत जानकारी होना आवश्यक है। क्या तुम हमें वह विस्तृत विवरण बता सकते हो?”

बूढ़े भण्डारी की सफेद मूँछें काँप-सी उठीं। अब उसकी समझ में आया कि उसका चुनाव क्यों किया गया था। पीढ़े पर तनिक सँवरकर बैठते हुए वह कहने लगा, “जी, वह जलदुर्ग बहुत दृढ़ है। उसके चारों ओर ऊँची और मज़बूत चहारदीवारी है। खाड़ी ही वह कमज़ोर जगह है, जहाँ से जलदुर्ग तक पहुँचा जा सकता है। ये समुद्री खाड़ी होगी कोई तीस-चालीस वाव[1] लम्बी। क़िले के चारों ओर की इसकी लम्बाई होगी कोई आठ सौ वाव। तट की ओर वाली खाड़ी ही कमज़ोर स्थान है, इसलिए हबशियों ने अपनी तोपों के मुँह भी इसी खाड़ी की ओर ही किये हुए हैं।”

महाराज एक-एक कौर खाते जाते थे और भण्डारी से कुछ पूछते जाते थे। मायनाक जंजिरा जलकोट और उसके आस-पास के सारे प्रदेश की पूरी जानकारी बतलाता जा रहा था।

रायगढ़ पर रात उतर आयी थी और रायगढ़ देख रहा था एक ही जलपूर्ण सपना—जंजिरा।

https://t.me/Sahityajunction

पश्चिमी तट के सागर में ज्वार आया हुआ था। लहरों पर लहरें उठ उठकर जंजिरा की खाड़ी के किनारे पर आकर टकरा रही थीं और झाग फैलाती हुई बिखर जाती थीं। खाड़ी के किनारे पर भी बीस हज़ार मावले-सैनिकों के दल के दल मिलकर छावनी बनाने के कार्य में व्यस्त थे।

छत्रपति सम्भाजी महाराज रायगढ़ से निकलकर महाड में दादाजी तथा विसाजी नरसप्रभु को साथ लेकर आगे बढ़ रहे थे। फिर सुधागढ़ में शहज़ादा अकबर और दुर्गादास राठौर को भी साथ मिलाकर छत्रपति कुल बीस हज़ार सेना सहित घोर रणसंग्राम मचाने के लिए जंजिरा आ पहुँचे।

छत्रपति ने निर्माणाधीन छावनी का निरीक्षण किया और फिर येसाजी द्वारा लगाये गये तोपों के मोर्चे को एकबारगी देखकर वे खाड़ी के मुहाने पर आये।

उनके साथ शहज़ादा अकबर, दुर्गादास, दादाजी और विसाजी, कवि कुलेश, येसाजी आदि श्रेष्ठ जन थे। डूबता हुआ सूरज मावल देश के पर्वतों के शिखर के पीछे झुका हुआ था और शायद धीरे-धीरे जाते हुए वह सूरज भी कल छिड़नेवाली लड़ाई का कुछ अनुमान पाना चाह रहा था। छत्रपति की दृष्टि एक बार उस अस्ताचलगामी भगवान भास्कर की ओर गयी और फिर जल से घिरे हुए, दूर दिखाई दे रहे जंजिरा पर जाकर स्थिर हो गयी।

'तो यह है वो मुँहज़ोर घमण्डी क़िला, जिसने मायनाक के पुत्र कोंडाजी के और भी उनके लोगों के सिर उड़ा दिये हैं। यही है वह जो समुद्रतटवर्ती हमारे गाँवों के निरीह प्रजाजनों को नावों में भरकर भगा ले जाता है और दूर के देशों में ले जाकर उन्हें ग़ुलाम बनाकर बेच डालता है। जिसने आबासाहब की भी नींद हराम कर दी थी, वो तेज़ काँटा यहीं छिपा बैठा है।' और भी न जाने कितनी व्यथाएँ उनके मन को कष्ट दे रही थीं। छत्रपति की जागरूक और दूरदर्शी दृष्टि एक बार पूरी खाड़ी पर घूम गयी। मन में कोई विचार दृढ़ हो गया।

छाती पर हाथ रखकर छत्रपति ने लहराते समुद्र को तथा अस्ताचलगामी सूर्य को नमस्कार किया और वे छावनी में लौट आये। ठीक इसी समय सिद्दी कासिम और सिद्दी ख़ैरात जंजिरा के परकोटे पर खड़े होकर किनारे पर जहाँ-तहाँ बिखरे हुए मावला सेना के विस्तृत फैलाव को आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। उनके मोटे-मोटे और नीचे को झुके हुए होंठ कुछ बोल भी नहीं पाते थे। हबशी दिल में तो बुरी तरह डर गये थे, परन्तु ऊपर से बनावटी धैर्य दिखलाते हुए वे अपने लोगों को हुक्म देते घूम रहे थे।

शाम हो आयी। शीतऋतु की रात्रि के अन्धकार ने आकर मराठा सेना की छावनी से, जंजिरा से और पश्चिमी समुद्र से 'कल क्या होगा?' पूछा और कुछ देर बाद उस रात ने इन सभी को अपने भीतर समेट लिया।

शहज़ादा अकबर शाही शामियाने में बिस्तर पर आराम से सोया हुआ था और छत्रपति व्याकुल होकर वहीं चहलक़दमी कर रहे थे। आँखों से नींद ग़ायब हो चुकी थी। बाहर सागर का जल सुर और ताल में गा रहा था। इसी सुर में रावटियाँ और खेमे ठोंकने की आवाज़ें भी बीच-बीच में सुनाई दे जाती थीं। पहरेदारों की पुकारें भी सागर के सुर में सुर मिलाती थीं। सागर के किनारे बीस हज़ार मावले सैनिकों का वह जनसागर फैला हुआ था, जो किसी भी क्षण अपने आप को जल के सागर पर न्यौछावर करने के लिए तत्पर था।

खेमे में घूमनेवाला वह जनता का नेता आज गांगोली की येसूबाई, नगर की कोठरी में बन्द

https://t.me/Sahityajunction

दुर्गाबाई और राणूदीदी, सबको भूलकर केवल रह-रह कर एक ही बात से क्रुद्ध था। एक ही हठ ठान लिया था उसने। सामने फैली हुई खाड़ी की ओर ही वह बार-बार देख रहा था और सोचता था अपने देश की यह खाड़ी शत्रु के क़ब्ज़े में क्यों फँस गयी है, इस खाड़ी के बन्धन कैसे काटे जाएँ? इस समुद्र पर सवारी कैसे की जाय? इसी विचार से रातभर तड़पते हुए छत्रपति पौ फटते ही बिस्तर से उठ बैठे। प्रातःकालीन नित्यकर्मों से निवृत्त होकर उन्होंने स्फटिकमय शिवलिंग की पूजा की। आबासाहब द्वारा पूजित इस स्फटिकमय शिवलिंग को वे साथ लाना नहीं भूले थे।

शहज़ादा अकबर और दुर्गादास के साथ वे शामियाने से बाहर आये। समुद्र से युद्ध करने के लिए उत्सुक सारी छावनी बाहर तैयार हुई खड़ी थी।

पौ फटने के साथ ही मराठा सेना के ढोल-नगाड़ों, धौंसों और ताशों, रणसिंगों की ऊँची आवाज़ों से चारों ओर कोलाहल मच गया। महाराज शहज़ादा अकबर, दादाजी, विसाजी, येसाजी कंक, कुलेश आदि के साथ सैनिकों के मुजरों को स्वीकार करते हुए खाड़ी के मुहाने पर आये। गोलन्दाज़ों ने जंजिरा के जलदुर्ग की ओर मोहरा करके तोपें रखी हुई थीं। तोपचियों ने तोपों के सामने एक मुर्गे की बलि दी।

जैसे उदीयमान सूर्य की सुनहरी किरण पूर्व दिशा से फूट निकलती है, इसी प्रकार एक निश्चयपूर्ण और दृढ़ तर्जनी जंजिरा जलदुर्ग की ओर आकाश में ऊँची उठी। मानो रुद्र ने त्रिशूल ताना हुआ था जंजिरा पर। दहकती आँखों के नीचे वाले दो तप्त, तथा कम्पायमान होठों ने आज्ञा दी, "सेनापतिऽ, तोपों के पलीते में आग लगाओ। धकेल दो नौकाएँ सागर में।"

'हर हर महादेव।' 'जय भवानी' की रणगर्जना से आकाश फटा जा रहा था। किनारे पर रखी हुई पाँच तोपों की आवाज़ों से सारा समुद्रतट दहल उठा। सवा सेर भारी गोले जंजिरा के किनारे से जा टकराये। बीस-बीस नौकाओं के दल एक के पीछे एक रहकर समुद्र की लहरों पर झूलते हुए आगे बढ़ने लगे। ऐसे कुशल तैराक जो रस्सियों के सहारे या सीढ़ियों से परकोटे पर चढ़ने की कला में माहिर थे, इन नौकाओं में भरे हुए थे।

समुद्र की अन्य दिशाओं से मायनाक, दौलत ख़ाँ, आंग्रे आदि नाविक-नायकों की युद्ध सेनाएँ आदेश के अनुसार जंजिरा की दिशा में बढ़ी आ रही थीं। उनकी सहायता के लिए अरब जलसेना की टुकड़ियाँ भी एक ओर से आगे बढ़ने लगीं।

युद्ध भड़क उठा। एक भीषण जल-संग्राम छिड़ गया। सिद्दी भी सावधान था ही। उसने याकूत ख़ाँ की मुग़ल-जलसेना को बीच समुद्र में ही कहीं पर रोक दिया। उसने खाड़ी में ऐसी छोटी-बड़ी नावें छोड़ दीं, जिनमें हबशी खलासी भरे हुए थे। जंजिरा की तोपों से छूटनेवाले गोले दनदनाते हुए किनारे पर आकर गिरने लगे। जैसे-जैसे दिन ऊपर चढ़ रहा था, मराठी तोपें दुगने-चौगुने जोश से आग उगलने लगी थीं। छत्रपति स्वयं गोलन्दाज़ों को प्रोत्साहित कर रहे थे। जंगली चीते के समान वे खाड़ी के मुहाने पर इधर-से-उधर लपकते हुए नौकाओं के दल समुद्र-जल में भिजवा रहे थे। जंजिरा से आकर किनारे पर गिर रहे गोलों से उड़नेवाले पानी के कारण महाराज और शहज़ादा अकबर भीगकर पूरी तरह गीले हो चुके थे। दुपहर होने पर तोपों की गोलाबारी रोक दी गयी। छावनी को भोजन के अवकाश का आदेश दिया गया।

आशा-भरा हृदय लिये छत्रपति किनारे पर खड़े थे। उन्होंने देखा कि पानी की चमचमाती लहरों पर कुछ काले-काले धब्बे से तैर रहे हैं। ये थीं उलटी हुई खाली नौकाएँ कुछ मराठों की,

https://t.me/Sahityajunction

कुछ हबशियों की। इसके थोड़ी देर बाद कुछ घायल सैनिक हाथ-पैर मारते हुए जैसे-तैसे किनारे से आ लगे। उनके शरीरों के घावों में समुद्र के खारे पानी के कारण असह्य जलन हो रही थी। छावनी के लड़ाके सैनिक उन्हें कन्धों पर उठाकर इलाज के लिए रावटियों में ले जाते थे। छत्रपति को आज खाने का भी ध्यान न था। वे रावटी-छोलमारियों में घूमकर आहतों की पूछताछ कर आये। अब वे जान गये थे कि सिद्दी क़ासिम भी आसानी से हार माननेवाला नही है।

इसी प्रकार सारे दिन गोलाबारी की गाड़ियाँ और तोपें भरी जाती रहीं और खाली होती रहीं। पानी में उतारी गयी नौकाएँ कभी-कभी खाड़ी के पेट में समा जाती थीं। कुछ नौकाएँ या तो इस किनारे या जंजिरा के परकोटे से टकराकर उलट जाती थीं। मराठा तोपों ने जंजिरा जलदुर्ग के परकोटे के कई जगह से टुकड़े उड़ा दिये थे। इससे सिद्दी को काफी घबराहट हो रही थी। दोनों ओर की सेनाओं के कितने ही वीर काम आये थे।

दिन डूब गया, रात हो गयी थी, फिर भी सारी मराठा छावनी जाग रही थी। जंजिरा के परकोटे पर सशस्त्र हबशी नंगी तलवारें तानकर पहरा दे रहे थे। इन दो सेनाओं के बीच में अपनी ही धुन में लरज-गरज रही थी वह खाड़ी, जो असंख्य वीरों को अपना ग्रास बना चुकी थी।

दूसरा-तीसरा दिन भी यों ही बीता और लगातार बारह दिनों तक मराठा तोपें जंजिरा पर दनदनाती हुई गोलाबारी करती रहीं। समुद्र के पक्षी इस भारी कोलाहल से घबराकर दूर चले गये थे। ज़ंजिरा जलदुर्ग का परकोटा अब काफी ध्वस्त हो चुका था। समुद्रतटवर्ती अँग्रेज़ तथा पुर्तगाली व्यापारियों ने अपने दरबारों मुम्बई, गोवा, सूरत आदि शहरों को ख़लीते भेज दिये थे —'अब सिद्दी ख़ैरत की ख़ैर नहीं है! राजा सम्भू जंजिरा को समुद्र में डुबोये बिना पीछे क़दम हटाने वाला नहीं है।'

मराठा छावनी में घायल सैनिकों की संख्या बढ़ती जा रही थी। जो वीर लड़ते-लड़ते मरकर समुद्र के जल में गिरते थे, लहरें उन्हें किनारे पर ले आती थीं। और उनका दाहकर्म किया जा रहा था। अब जंजिरा को एक और केवल एक ही ज़ोरदार धक्के की ज़रूरत थी और जंजिरा सिर झुकाने ही वाला था। गहरे समुद्र में हबशी और मराठा युद्ध नौकाएँ भी एक-दूसरे को पानी में डुबाने को टकराती फिरती थीं। ये शत्रु का ज़ोरदार आक्रमण होने पर पीछे हट जाती थीं और फिर मौका देखकर शत्रु से जा भिड़ती थीं।

युद्ध को प्रारम्भ हुए आज पन्द्रहवाँ दिन था। बख़्तर पहले छत्रपति शहज़ादे के साथ प्रतिदिन के समान शामियाने से बाहर आये। परन्तु आज उनकी मुखमुद्रा कुछ भिन्न ही थी। मानो वे खुद में ही कहीं खोये हुए हों। रात उनकी आँखों में कट गयी थी। वे कई श्रेष्ठ जनों के साथ खाड़ी के किनारे पर आये। वहाँ खड़े कई मराठा वीरों ने उन्हें मुजरा किया। ये वीर अपने स्वामी की आज्ञा पाते ही नावों में सवार होनेवाले थे। छत्रपति ने एक बार उन सब पर नजर दौड़ायी।

"दादाजी, समुद्र में भाटा कब आता है?" छत्रपति ने पूछा। इस समय यह प्रश्न उलझानेवाला था।

"कल से भाटा शुरू हो गया है महाराज। पानी उतरने लगा है।" दादाजी ने उत्तर दिया।

"जगदम्बे, हे जगदम्बे।"

महाराज इस समय आसपास खड़े सरदारों और यहाँ तक कि हबशी को भी भूलकर सुध-

https://t.me/Sahityajunction

बुध खोये हुए खाड़ी को देख रहे थे। रस्सियों से बँधी हुई नौकाएँ लहरों पर डोल रही थीं। एक तेज़ नज़र खाड़ी की सम्पूर्ण स्थिति का अन्दाज़ा लगाने में व्यस्त थी और एक राजा का नहीं एक सेनापति का मन इस समय किसी गहरी सोच में खोया हुआ था।

"महाराज, सैनिकों को नावों में बिठाकर मोर्चे पर भेजने का हुक्म दो।" येसाजी कंक ने आदरपूर्वक कहा।

"नहीं, कंक काका। ये नावों का दल पानी से दूर हटा लो। उन्हें ज़मीन पर ले आओ।" छत्रपति ने ऐसी आज्ञा दी जिसका उद्देश्य कोई भी नहीं समझ पाया।

"जीऽ!" येसाजी भौचक्के हो गये थे।

"जल्दी करो। हटा लो नौकाएँ।" आदेश अब दुबारा दिये जाने के कारण बिलकुल स्पष्ट हो चुका था।

कई हाथों ने नौकाएँ खींचनी शुरू कर दीं। अब नौकाएँ किनारे पर आ गयीं। सारी खाड़ी अब पूरी तरह साफ़ थी। लहरें उछल-उछलकर गरज रही थीं। छत्रपति की आँखें अब ऐसी प्रज्वलित थीं मानो सारी खाड़ी को ही सुखा डालेंगी। दादाजी-विसाजी अपने स्वामी के पीछे दौड़े जा रहे थे। वे बड़े चक्कर में थे। सभी सोच रहे थे कि आज स्वामी ये क्या ग़ज़ब कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, परन्तु कोई भी कुछ समझ नहीं पाता था।

अकस्मात् शम्भु के ऐसे ज़ोरदार, साहसपूर्ण और आदेशपूर्ण बोल सबने सुने कि सब सुनकर हक्के-बक्के रह गये :

"यह खाड़ी अगर हमें रास्ता दे दे, तो पलक झपकते ही जंजिरा का मामला ख़त्म हुआ समझो। सेनापति, छावनी में जितने भी सैनिक हैं, सबको यह काम सौंप दो। आदेश दो कि छोटे-बड़े पत्थर, लकड़ी के लट्ठे और झाड़-झंखाड़, कपड़ा-बोरा जो कुछ भी मिले, सब लेकर समुद्र में ज्वार आने से पहले इस खाड़ी को ही भर दो। जंजिरा को अब छोड़ना नहीं है। जब तक जंजिरा सिर उठाये खड़ा है, न तो आबासाहब की आत्मा को शान्ति मिलेगी, न ही हमें चैन मिलेगा।"

इस समय दोनों वीर एक दूसरे को कट्टर शत्रु के समान घूर रहे थे। खाड़ी के तट पर खड़ा हुआ वह वीर नमकीन खाड़ी को दहकती नज़रों से देख रहा था और खाड़ी भी अपने किनारे खड़े हुए उस वीर पुरुष का आह्वान कर रही थी। अपने स्वामी के स्पष्ट और ज़ोरदार आदेश को सुनकर सैकड़ों सैनिकों की आँखें भी अब समुद्र की लहरों से लड़ाई छेड़ रही थीं।

छत्रपति की हृष्ट-पुष्ट ग्रीवा एक झटके से तनकर घूम पड़ी और पीछे खड़े हुए हज़ारों स्वामिभक्त सैनिकों ने अंगारों के समान दहकते हुए बोल सुने, "भर दो यह खाड़ी। मिटा दो नाम-निशान इसका।"

कभी पुरातन काल में सेनापति जाम्बवान् ने अपने वानर सैनिकों को प्रभु रामचन्द्रजी का नाम लेकर कुछ ऐसा ही आदेश दिया था। आज एक शम्भुराजा अपने आबासाहब का नाम लेकर समुद्र के ही तट पर उसी प्रकार का आदेश दे रहा था अपने मावला सैनिकों को। वहाँ खड़े हज़ारों मावलों के हृदय में वह प्रेरणादायक आदेश सुनकर नवजीवन का संचार हो गया। किसी बहादुर ने ऐसी घोर रणगर्जना गुँजा दी—'हर ऽ हर ऽ महादेव' जिसे सुनकर शेष सभी थर्रा उठे।

https://t.me/Sahityajunction

फिर यही रणघोष हज़ारों के कण्ठ से फूट निकला। वीरों की छातियाँ उत्साह से भर उठीं। हाथों और पैरों में नवप्राण भर गये।

देखते ही देखते मावला सेना ने कई पंक्तियाँ बना लीं। इस देश की धरती पर आज तक कई यज्ञ हुए थे जो अग्नि द्वारा सम्पन्न हुए थे, परन्तु यह यज्ञ तो निराला ही था। यह था साक्षात् 'जल यज्ञ'। बड़े छत्रपति ने समुद्र की छाती पर एक जलदुर्ग बाँधकर दिखाया था—उसका नाम था 'सिन्धुदुर्ग' और छोटे छत्रपति ने आज समुद्र को दूर हटाने का प्रण ठान लिया था। इस 'जल-यज्ञ' में अब तक कई आहुतियाँ दी गयी थीं—असंख्य मावला वीरों के शरीरों की। अब इस यज्ञ में समिधा अर्पित करने के लिए सहस्रों हाथ जुट गये थे। मावला सैनिकों की टुकड़ियों ने ईंट, पत्थर, लकड़ी, झाड़-झंखाड़ जो कुछ भी मिल सके, उसे खाड़ी के खुले हुए मुँह में ठूँसना प्रारम्भ कर दिया था।

ऐसा कोई अजूबा आज तक जिन्होंने नहीं देखा था, ऐसे दो ही व्यक्ति थे वहाँ। वे 'ताज्जुब' करते हुए और भौंहें ऊपर चढ़ाकर यह सारी विशाल भाग-दौड़ बस देखते जा रहे थे—एक था शहज़ादा अकबर और दूसरा व्यक्ति था उसका नेक साथी दुर्गादास। इस प्रकार पन्द्रहवाँ दिन भी बीत गया।

अब रणधीर मावला खाड़ी से पूरी तरह जूझ पड़ा था। 'या तो तू रहे या मैं' कुछ ऐसा हठ ठान लिया था उन्होंने। लगातार दस दिनों से सैकड़ों मन वस्तुएँ ला-लाकर पानी में फेंकी जा रही थीं। खाड़ी का पानी अब किनारे के बाँध को तोड़कर चारों दिशाओं में इधर-उधर हटने लगा था।

सिद्दी ख़ैरात और सिद्दी क़ासिम ने जब देखा कि मराठा तोपें इतने दिनों तक ठण्डी क्यों हो गयी हैं, तो वे क़िले के परकोटे पर घूम-घूमकर मराठों की अगली चाल के बारे में कुछ अन्दाज़ लगाने लगे, परन्तु समझ उन्हें कुछ भी न आया।

पचीसवें दिन शाम ढल रही थी। सिद्दी ख़ैरात के दिमाग़ में मशाल रोशन हो उठी। "या खुदा, तौबा, तौबा।" वह ज़ोर से चीख़-पुकार उठा। तब अपने झूलते होठ कासिम के कानों के पास ले जाकर उसने खुसपुसाकर कुछ कहा।

उस रात को बुरी तरह भयभीत सिद्दी-ख़ैरात और कासिम ने जंजिरा को अपने हबशी सैनिकों के भरोसे छोड़ दिया और वे एक छोटी किश्ती में बैठकर जंजिरा से दूर चल दिये। वे वहाँ से चलकर समुद्र के बीच कुछ दूरी पर स्थित एक पथरीली पहाड़ी पर जाकर टिक गये।

छब्बीसवाँ दिन उदित हुआ और अस्त भी हो गया, परन्तु मराठा छावनी को इन दोनों कालों का पता ही कहाँ था? हज़ारों हाथ पूरे उत्साह से उस खाड़ी रूपी अजगर को अपने हाथों से उठाकर दूर फेंकने में जुटे थे। समुद्र का पानी अब हार मान रहा था। खाड़ी बीच में से बन्द हो गयी थी और पानी उस बन्द बाँध के दो ओर फैला पड़ा था। अब 'विजय का दृश्य' आँखों के निकट ही आ चुका था।

सत्ताईसवाँ दिन आया। आज तो छत्रपति पूरी तरह हठ और निश्चय की मूर्ति बने हुए थे। जैसे कोई मैले अँगरखे को उतार फेंकता है यों वे आज खाड़ी को पूरी तरह फेंकनेवाले थे और फिर मराठा बहादुरों के अब तक थके हुए हाथ हथियार थामकर जंजिरा पर अन्तिम हमला करनेवाले थे। अब यह गड़ा हुआ काँटा निकलना ही चाहता था।

https://t.me/Sahityajunction

हज़ारों हाथ शिलाएँ और पत्थर, लट्ठे और झाड़-झंखाड़ तथा रेत के बोरे उठा-उठाकर समुद्र में फेंक रहे थे। खाड़ी के पानी ने अब उनके लिए रास्ता खोल दिया था। महाराज किनारे की रेत पर पाँव जमाये खड़े थे। दोनों ओर शहज़ादा अकबर, दुर्गादास तथा येसाजी खड़े थे।

दोपहर हो गयी। छत्रपति ने हाथ उठाकर श्रमिक हाथों को संकेत करके विश्राम की आज्ञा दी। थके-माँदे लोग भोजन की प्रतीक्षा करने लगे।

आज छत्रपति ने भी अनुभव किया—'क्यों न आज शहज़ादे के साथ खाना खाया जाए। जंजिरा तो अब कुछ पल का मेहमान है।' वे शामियाने में आये। प्रतिष्ठित जनों के लिए चौकी पर भोजन की थाली परोसी गयी थी। आज छत्रपति ने अपना राजटोप अत्यन्त सन्तोषपूर्वक तबक़ में रखा। हाथ धोकर वे अकबर के साथ चौकी के निकट जा बैठे। बोले, "शहज़ादे, आप हमारे ख़ास मेहमान हैं। हम इस समय ख़ुद ही लड़ाई के मैदान में हैं। इस कारण तुम्हारे सम्मान के अनुरूप खाना तुम्हें नहीं खिला पा रहे। तुम नाराज़ तो नहीं हो?"

औरंगज़ेब का वह पुत्र सामने हो रही समुद्री-लड़ाई को देखकर ही हक्का-बक्का हो गया था। महाराज की बात सुनकर वह आज थोड़ा-सा हँसा। अपने पास बैठे दुर्गादासजी की ओर देखकर वह विशेष हेतु से कहने लगा, "राजा साहब, आप क्या खाते हैं, इसकी कोई क़ीमत नहीं। आप जो कुछ दिखा रहे हैं, वह ख़ास दक्खन की चीज़ है, ख़ास मरहठी चीज़ है।"

उसके उत्तर को सुनकर छत्रपति जी भरकर हँसे। एक बार अभिमान-भरी दृष्टि से खाड़ी की ओर देखकर उन्होंने थाली के चारों ओर चित्राहुति दी। अत्यन्त सन्तोषपूर्वक वे खाना मिलाने ही लगे थे कि स्वयं सेनापति येसाजी कंक ही शामियाने में आ घुसे। उनके मुख पर गहरी उदासी छायी हुई थी। गला ऐसा रुँध आया था, जैसे दम घुटा जाता हो। बड़ी कठिनाई से वे कहने लगे, "महाराज, रायगढ़ से रामचन्द्रपन्त आये हैं...बहुत..." ग्रास छत्रपति के हाथ में ही रुका रह गया।

"कौन? पन्त आये हैं?"

"जी!"

"भीतर ले आओ।" महाराज ने थाली दूर सरका दी। रामचन्द्रपन्त आये। जब उन्होंने नमस्कार किया, तब उनके हाथ थरथरा रहे थे। अगले ही क्षण उन्होंने अपने सिर पर पहनी हुई पगड़ी उतार ली। राजा शम्भु की कम्पित वाणी से निकले बोल सुनकर वह शामियाना भी काँप-सा उठा। छत्रपति घबराकर पूछ रहे थे, "पन्तऽ! क्या हुआ?"

पन्त सिर झुकाये खड़े थे। आँसुओं की बूँदें हाथ में पकड़ी हुई पगड़ी पर टपक रही थीं। टूटे-फूटे, भर्राये हुए उनके अनेक शब्दों के कारण शामियाने में बैठे लोगों का भी दम घुटा जा रहा था।

"स्वाऽमी! माघ कृष्ण नवमी को समर्थजी...समर्थगुरु रामदासजी इहलोक को सूना बना गये, महाराज!"

सतत निरन्तर सावधान हो—
खेती की नाली में बाधा हो तो पानी रुक जाता है।
अपनों को तुम करो संगठित। वैरी को तुम कुचल-मसल दो।
जितने जन हैं साथ सहायक। उन्हें सँवारो और बढ़ाओ।

https://t.me/Sahityajunction

स्मरण करो तुम रूप शिवा का दृढ़ निश्चय राजा शिवाजी का।
उनसे भी आगे बढ़ जाओ। तभी कहाओगे पुरुषार्थी।
है पर्याप्त हितवचन इतना। अधिक लिखें क्या, यही बहुत है।

चिन्ता में डूबे हुए स्वर से पन्त ने एक और समाचार भी कहा, "स्वामीऽ हम आपसे आदेश पाने आये हैं। हसन अली ख़ाँ की शक्तिशाली सेना ने हमारे राज्य के कल्याण और भिवण्डी के प्रदेश को घेर लिया है। उसके साथ लोदी ख़ाँ भी है। हम आपसे आदेश चाहते हैं कि ऐसी स्थिति में हम क्या करें?"

समर्थगुरु के स्वर्गवास के दुःख को कुछ देर के लिए भुलाकर छत्रपति को एक शीघ्र तथा दृढ़ निर्णय करना पड़ा। जंजिरा अभियान दादाजी रघुनाथ प्रभु और विसाजी प्रभु को सौंपकर महाराज उस दिन जब छावनी से निकलने लगे, तब वे उन दोनों से कह रहे थे, "यह मत समझना कि हम यहाँ नहीं हैं। आवश्यकता पड़ने पर हर आवश्यक मूल्य देकर भी जंजिरा पर विजय प्राप्त करो और हमें विजय का समाचार सुनाने आओ।"

छत्रपति ने दोनों का प्रेमालिंगन किया। महाराज ने रामचन्द्रपन्त को आदेश देकर सज्जनगढ़ भेज दिया। आदेश था कि सज्जनगढ़ में समर्थगुरु रामदास की महानता के अनुरूप ही उनकी सुन्दर समाधि बनायी जाय। फिर येसाजी कंक को साथ लेकर छत्रपति ने गांगोली की दिशा में प्रस्थान किया। शहज़ादा अकबर दुर्गादास के साथ शाहपुर की ओर चल दिया। समुद्र तट से विदा हो रहे छत्रपति की पीठ को देखकर जंजिरा-जलदुर्ग ने और जंजिरा-खाड़ी ने भी आज सुख की साँस ली थी।

गांगोली गाँव के किनारे की बस्तियाँ निकट आ चुकी थीं। येसूबाई की हवेली में सूचना पहुँची कि छत्रपति आ रहे हैं। परन्तु बिना किसी अग्रिम सूचना के वे अकस्मात् ही आ रहे थे, इसलिए सारी हवेली जैसे हडबड़ाकर जाग उठी थी। गांगोली के सूबेदार महाराज की अगवानी करने आये। येसाजी तथा सैनिक-दल सहित महाराज गांगोली गाँव में प्रविष्ट हुए।

छत्रपति सैनिकों के मुजरों को स्वीकार करते हुए ज्योंही गांगोली की हवेली में प्रविष्ट हुए, नन्ही भवानीबाई 'आबाऽऽ' कहती हुई उनसे आकर लिपट गयी। महाराज ने बच्ची को प्यार से उठाया परन्तु वे आज सबके साथ जैसे विवश होकर अनिच्छापूर्वक ही बातचीत कर रहे थे। कोई भी देखकर यह जान सकता था कि उनका मन कहीं खोया हुआ है।

हाथ-पाँव धोकर महाराज ने दासियों द्वारा अपने आने की सूचना रनिवास में भिजवायी और उन्होंने रनिवास में प्रवेश किया। कक्ष के भीतर येसूबाई, धाराऊ और रूपा दासी थीं। महाराज को आया देखकर रूपा बाहर चली गयी। धाराऊ की कमर अब झुक चुकी थी। वह सहारा पाने के लिए अपने एक हाथ का कमर पर टेका देकर धीरे-धीरे चलती हुई आगे आयी। महाराज ने उसकी पगधूलि अपने माथे से लगाते हुए पूछा, "क्यों धाराऊ, तबीयत कैसी है?"

"कितने दिन बाद तेरा मुखड़ा देख रही हूँ बेटा। समुद्र की ओर से रोज़-रोज़ ख़बरें मिलती थीं और हर बार हृदय काँप-काँप उठता था।" बूढ़ी माँ ने बड़ी चतुराई से अपनी कुशलता को छिपाया और महाराज के विषय में अपने हृदय में उठनेवाली चिन्ताओं-आशंकाओं को ही व्यक्त

https://t.me/Sahityajunction

किया। महाराज ने उसके कन्धे को केवल थपका और वे मौन ही बने रहे।

"समाचार सुना क्या तुमने?..." सामने खड़ी हुई येसूबाई की ओर देखते हुए महाराज ने पूछा।

"जी हाँ। हसन अली ख़ाँ कोंकण प्रदेश की तलहटी में पड़ाव डाले पड़ा है। शहज़ादा आज़म ने पुरन्दर विभाग पर हमला कर दिया है। परन्तु...परन्तु आप अचानक ही इधर..."

"येसू...येऽसू..., समर्थगुरुजी ने सज्जनगढ़ में अपने जीवन महाकाव्य का अन्तिम अध्याय पूर्ण कर दिया है। कल माघ कृष्ण नवमी को उनका स्वर्ग..."

"क्याऽ?" येसूबाई की गरदन झटके से एकदम ऊपर उठ गयी। परन्तु अपने सामने खड़े व्यक्ति की अति दुखभरी मुखमुद्रा देखकर उनकी उठी हुई नज़र फिर नीचे झुक गयी।

धाराऊ को भी यह सुनकर अति दुःख हुआ। "हे मेरे खण्डोबा भगवान।" कहकर माथे से हथेली लगाये वह भी बाहर चली गयी।

अब हवेली में छत्रपति थे, जो हाथ पीठ पीछे बाँध कर धीरे-धीरे टहल रहे थे और दूसरी थीं येसूबाई जो समाचार सुनकर अभी तक स्तब्ध बनी हुई थीं। कुछ क्षण इसी तरह असमंजस में बीते। फिर छत्रपति ही दृढ़ता से कहने लगे, "हम तुमसे एक आशा लगाये बैठे हैं। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी हमारी वह आशा पूर्ण नहीं कर सकता।"

"जी, आप आशा क्यों कहते हैं, आदेश दीजिए। हम अवश्य उसे पूरा करेंगी।"

"जब से माँ साहिबा जिजाऊ स्वर्ग सिधारी हैं, तब से समर्थगुरु जी की लिखी 'दासबोध' पोथी देवमन्दिर में वस्त्र में लिपटी हुई रखी है और फूलों और हल्दी-कुंकुम के द्वारा उसकी प्रतिदिन पूजा भर की जाती है। हमारी इच्छा है कि तुम किसी शुभ मुहूर्त में पूजा सम्पन्न करके उस पोथी को वहाँ से उठा लो और जिस प्रकार बड़ी माँ साहिबा प्रतिदिन उसका पठन-पाठन कराती थीं, वैसे ही तुम भी कराया करो। करोगी क्या यह काम हमारा?"

"जी, अवश्य करेंगी हम। वास्तव में जब हम शृंगारपूर से पाचाड़ गयी थीं, तब बड़ी माँ साहिबा की सूनी बैठक को देखकर ही हमारे मन में यह विचार उठा था। मन चाहता था कि आँचल की झोली फैलाकर उसमें माँ साहिबा की यह अमर स्मृति सँजोकर रखें और तभी रायगढ़ जाएँ। परन्तु हमने आज तक यह इच्छा मन में ही दबा रखी..."

"क्यों भला?" छत्रपति ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"उस समय यदि हमने देवमहल में से वह पोथी उठा ली होती...तो हमारा वास्तविक उद्देश्य न जानकर रायगढ़ में अवश्य ही यह अफवाह फैलायी जाती कि पोते की बहू ददिया सास का अधिकार अभी से अपने हाथ में ले रही है।"

इतने गहरे और दूरदर्शितापूर्ण वचनों को सुनकर सम्भाजी गद्‌गद हो उठे। येसूबाई के निकट आकर ठोड़ी को अपनी तर्जनी से उठाते हुए सम्भाजी बोले, "हमने भरे दरबार में सबको साक्षी बनाकर 'श्रीसखी' उपाधि और मुद्रा तुम्हें दी है। आबासाहब ने तुम्हें 'मुद्रा और कटार' भेंट दी थी। बड़ी माँ साहिबा तुम्हें यह 'दासबोध' दे गयी हैं। हमारी प्रार्थना है कि माँ जगदम्बा तुम्हें इन सब अधिकारों तथा ज्ञान सम्पत्ति को सँभालने—सहेजने की शक्ति दे।" येसूबाई की झुकी हुए पलकें उठाने से भी ऊपर न उठ पाती थीं।

https://t.me/Sahityajunction

गांगोली में दो दिन बिताकर तथा येसूबाई के निवासादि की व्यवस्था के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से देखरेख करके महाराज उनसे विदा हुए। ठीक इसी समय सेनापति हम्बीरराव पन्द्रह हज़ार अश्वारोही सैनिक तथा पाँच हज़ार पदातियों सहित पन्हालगढ़ में रह रहे शहज़ादा आज़म की छावनी पर चढ़ दौड़े। इस चढ़ाई में फिरोज ख़ाँ, किलिया ख़ाँ, हसन अली, अनूपसिंह तथा किलिच ख़ाँ जैसे मुग़ल सरदारों के साथ उनकी ज़ोरदार मुठभेड़ हुई। बन्दूक़ के निशाने से किलिच ख़ाँ घायल हो गया था।

छत्रपति रायगढ़ के ख़ासमहल के सभागृह में राजकर्मचारियों से शासन-व्यवस्था का वृत्तान्त जान रहे थे।

"स्वामी, आपके आदेशानुसार हमारे सैनिकों ने समुद्र के बीच बसे अंजदीव द्वीप पर अधिकार कर लिया है। अब उस द्वीप पर जलदुर्ग बनाने के सम्बन्ध में आदेश दिये जाएँ।" पेशवा निलोपन्त ने अत्यावश्यक मामला पेश किया।

"पेशवा, अर्जोजी यादव को कहो कि द्वीप पर दुर्ग बनाने का विवरण तैयार करके हमें दिखाएँ। कारवार प्रदेश के सूबेदार को लिखो कि दुर्ग के निर्माणार्थ चूना, ईंट, सीसा आदि जितनी वस्तुओं की आवश्यकता हो वे सब अवश्य पहुँचायी जाएँ। समुद्र पर निगरानी करने के लिए जलदुर्ग कितने महत्त्वपूर्ण हैं तथा वे कितने दृढ़ बनाये जाने चाहिए, इसका नमूना हमारे आबासाहब ने एक बार दिखा दिया है सिन्धुदुर्ग के रूप में। और..."

"आज्ञा दीजिए महाराज," पेशवा झुककर कहने लगे।

"हमने अभी-अभी जंजिरा देखा है। उससे स्पष्ट होता है कि जलदुर्ग समुद्र को किस प्रकार वश में कर लेता है। इसलिए एलिफेण्टा द्वीप पर हमारे जलदुर्ग का जो निर्माण-कार्य हो रहा है, उसे पूर्ण करने के लिए अरब नाविकों से मित्रता बनाये रखनी है। यह बात सदा ध्यान में रहे।"

"पुर्तगालियों ने रामनगर प्रान्त में एक विवाद उपस्थित कर दिया है स्वामी! हमने रामनगर प्रान्त को जीत लिया है। वहाँ की रानी को पुर्तगाली पहले चौथाई देते थे। परन्तु अब पुर्तगाली हमें चौथाई कर देने में आनाकानी कर रहे हैं।" खण्डोजी ने शासन-कार्यालय की एक समस्या प्रस्तुत की।

"क्या मतलब? साफ-साफ कहो।"

"स्वामी, पुर्तगाली दरबार ने हमें एक ख़लीता भेजा है। वह लिखता है कि तुम पहले रामनगर प्रान्त में पूर्ण रीति से स्वामी बन जाओ और फिर हमसे चौथाई वसूल करना।"

सुनते ही महाराज बैठक से उठ खड़े हुए। खण्डोजी की ओर देखते हुए उनके मुख से जलते अंगारों के से शब्द प्रकट हुए, "इस पुर्तगाली को एक बार अच्छी तरह जताना ही होगा कि वह प्रान्त हमारा ही है। हमें अब उसके चौथाई कर की तो ज़रूरत है ही नहीं, उसका उस प्रदेश के आस-पास टिकना भी हमें मंजूर नहीं है। वह कभी चौल विभाग में सिद्दी को बढ़ावा देता है तो कभी क़िला बाँधने के लिए अवसर देता है। स्वयं तो पीछे छिपा रहता है और हमारे पुराने शत्रु को हमारे सिर पर सवार कराना चाहता है। चौल के सूबेदार बहिरो त्रिमल की ओर हरकारे भेजकर उससे कहो कि वह वहाँ बन रहे हबशियों के दुर्ग पर ध्यान रखे।"

https://t.me/Sahityajunction

“मुम्बई के अँग्रेज़ों ने हमारी आवश्यकता के अनुसार—शस्त्रास्त्र तथा गोला-बारूद पहुँचा दिया है महाराज।” प्रह्लादपन्त ने अपने विभाग का वृत्तान्त प्रस्तुत किया।

“ठीक हुआ प्रह्लादपन्त। अँग्रेज़ हो या पुर्तगाली हो, या फिर हबशी हो, ये सब ऐसे हैं कि नाक दाबे बिना इनका मुँह ही नहीं खुलता। सभी ऐसे चालाक हैं कि भीतर से एक-दूसरे की सहायता करते हैं और जब हम चढ़ाई कर बैठते हैं, तो नाक रगड़कर कहते हैं, हम तो आपके ही हैं।” अब मन्त्री समझ गये थे कि महाराज की आगामी नीति क्या होगी।

“हसन अली ख़ाँ लोदी ख़ाँ के साथ कोंकण की तलहटी के प्रदेश से हटकर नासिक की ओर चला गया है, स्वामी! तुकोजी पालकर और रूपाजी भोसले की छोटी-छोटी सेनाओं ने ‘चन्द्रावली’ दर्रे में उसकी असावधान फ़ौज पर कई छापे मारे। स्वयं हसन ख़ाँ ज़ख्मी हो गया है। राजपूत बुँदेला महासिंह, जदुराय आदि राजपूत सरदार घायल हो गये। लोदी ख़ाँ का लड़का मुहम्मद इस लड़ाई में मारा गया है।” निलोपन्त ने एक आशा विकसित करनेवाली वार्ता सुनायी।

“पन्त, तुकोजी और रूपाजी जहाँ भी हों, उन्हें सम्मान-वस्त्रों का तबक़ भेजो। उनसे हमारा सन्देश कहो—हमें इस बार के पराक्रम से भी बढ़कर अधिक पराक्रम की आशा है तुमसे।” महाराज सन्तुष्ट होकर आसन पर पुनः बैठ गये।

“हम्बीरराव कराड़ प्रान्त से बरार की ओर रवाना हो गये थे। वहाँ उन्होंने खकोला और कारंजा नगरों को मुट्ठी में कस लिया है, सरकार। उन्होंने मुग़लों के मलकापुर विभाग में खण्डनी वसूल करने की धूम मचायी हुई है। मुग़ल सरदार रुहल्ला ख़ाँ उनकी इन कार्यवाहियों से परेशान हो गया है। इसलिए उन दोनों के बीच समय-समय पर झड़पें होती रहती हैं। नान्देड़ विभाग हरज ख़ाँ और अब्दुल बेग के साथ सेनापति की ज़ोरदार मुठभेड़ हुई। इस तरह सारे बरार प्रदेश में सेनापति शत्रु को चकमा देते हुए तहलका मचा रहे हैं।” निलोपन्त ने सेनापति के पराक्रम की कथा महाराज को बतलायी। सुनकर एक ओर तो महाराज का मन प्रसन्नता से भर उठा, परन्तु साथ ही बरार प्रदेश से लगे हुए नगर बुरहानपुर में पड़ाव डाले पड़े हुए औरंगज़ेब का ख़याल आते ही उनके मन को चिन्ता ने घेर लिया। इस दर्द और चिन्ता की शृंखला को तोड़ते हुए महाराज ने पेशवा से कहा :

“पन्त, दो ही दिन बाद हम रायगढ़ से उतरकर गांगोली जाएँगे। गांगोली के देशाधिकारी को आदेश दो कि तोपों को तैयार रखा जाय। हमारे जाने का प्रबन्ध करवाओ।” महाराज ने हाथ उठाकर बैठक समाप्त होने का संकेत किया।

महाराज येसाजी कंक को जंजिरा से अपने साथ ले आये थे। अब उन्होंने येसाजी को पुनः जंजिरा में स्थित सेना की सहायता के लिए भेज दिया। इसके दो दिन बाद वे रायगढ़ से निकल पड़े। महाराज इस बार गांगोली क्यों जा रहे हैं, यह रहस्य कोई भी नहीं जान पाया।

ठीक इसी समय बादशाह औरंगज़ेब ने बरार में नियुक्त अपने सरदार इरज ख़ाँ को बुरहानपुर बुला लिया था, अपने शाही महल में बुलाकर, हाथ में तसबीह माला फिराते हुए उसने इरज ख़ाँ को आड़े हाथों लिया था, “हमारे मुग़लाई इलाके में मरहट्टे दिन-दहाड़े कर वसूल करते फिरते हैं और तुम हो कि शाही ‘ख़िलअत’ पहनकर भी उनसे मार खाते फिरते हो। यह कैसा बन्दोबस्त है तुम्हारा? लईम कहीं के!”

https://t.me/Sahityajunction

धड़ाड़-धुम्म—तोपों के धमाके से गांगोली के ग्रामद्वार का बाहरी प्रदेश गूँज रहा था। बाहर के पथरीले मैदान में तोप गाड़ियों पर रखी हुई चार तोपें झटका खाकर पीछे हटती थीं और पौने चार मन के गोले उगल रही थीं। दृढ़ जंजीरों से बँधे होने के कारण वे झटका खाकर रुक जाती थीं।

छत्रपति ने गांगोली आकर कुडाल-डिचोली नगरों के कारख़ानों में तैयार किये गये बारूद के नमूने मँगवा लिये थे और इस गोला-बारूद की संहारक शक्ति की परीक्षा वे स्वयं करना चाहते थे। जब महाराज ने देखा कि ये नमूने पर्याप्त प्रभावशाली हैं, तब वे अतीव सन्तुष्ट होकर गांगोली के सूबेदार से बोले, "जगदम्बा की शपथ लेकर कहते हैं कि हमें आज अतीव सन्तोष हो रहा है। सन्तोष इस बात का कि आबासाहब का गोला-बारूद के उत्पादन का स्वप्न हम पूरा कर पाये हैं। अब इन तोपों को यहीं गांगोली में रहने दो। यहाँ हमारा परिवार है ही।"

महाराज सूबेदार के साथ गांगोली की हवेली में आये। उन्होंने चिटनीस को आदेश दिया और कुडाल, डिचोली आदि स्थानों के कारख़ानों के प्रबन्धकों को यह सूचना भिजवायी, "हम कारख़ानों का निरीक्षण करने स्वयं आ रहे हैं।" राजकार्यालय से सम्बन्धित अन्य कई कार्यों से निबटकर महाराज अगले दिन कुडाल की दिशा में चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उन कारख़ानों को देखा जहाँ मनों बारूद बनायी जा रही थी। महाराज ने कुशल श्रमिकों के नाम आदि पूछकर सबका व्यक्तिगत परिचय प्राप्त किया और उन्हें शाबाशी दी। फिर वे कुडाल-डिचोली से चलकर कोयना घाट से होते हुए सातारा आ पहुँचे। उनके साथ पाँच हज़ार घुड़सवार सैनिक थे। इस सेना को महाराज ने सातारा में ही रहने दिया और स्वयं जोत्याजी केसरकर, रायाजी, अन्तोजी, कवि कुलेश आदि सहित सज्जनगढ़ की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

हर सीढ़ी उनके मन का एक-एक पृष्ठ खोलती जा रही थी—'सज्जनगढ़ जाकर समर्थगुरु के चरणों की सेवा करो,' आबासाहब का कहा हुआ यह उपदेश उन्हें याद आया। उन्हें याद आयी माँ साहिबा की, जिन्होंने अन्तकाल के क्षणों में समर्थगुरु के दासबोध का उपदेश सुनना चाहा था। समर्थगुरु ने ही तो सम्भाजी को अत्यन्त स्नेहपूर्वक लिखा था—'उनसे भी आगे बढ़ जाओ।' धर्म के साथ-साथ राजनीति को निभानेवाले समर्थगुरु रामदास, राजनीति के माध्यम से धर्म दृढ़ता का उद्देश्य प्राप्त करनेवाले आबासाहब, धर्म तथा राजनीति, दोनों द्वारा समस्त मराठा-राज्य को एक विशाल परिवार के रूप में हँसता-खेलता हुआ देखनेवाली जिजाऊ आऊसाहिबा! मृत्यु का भी उपहास करनेवाले कैसे सामर्थ्यशाली व्यक्ति थे ये सब! इन तीनों को ही हमने अपने जीवन की कुछ बहकी-भटकी हुई घड़ियों में अत्यन्त व्यथा दी है। क्या हम अपने हाथों से उसका प्रायश्चित्त कर पाएँगे?

रामचन्द्रपन्त ने सज्जनगढ़ में समर्थगुरु की समाधि का निर्माण पूर्ण करा लिया था। उस समाधि पर बनी चन्दन निर्मित वेदी में समर्थगुरुजी की पादुकाओं की स्थापना की गयी थी। रामचन्द्रपन्त महाराज के स्वागतार्थ उपस्थित थे। कल्याण स्वामी, दिवाकर गोसाईं और रामचन्द्रपन्त सहित महाराज ने समाधि के दर्शन किये। पादुकाओं पर माथा टेका। फिर समर्थगुरु द्वारा स्थापित मठ की कठिनाइयाँ पूछी-जानीं। कल्याण स्वामी द्वारा दिया गया चरणामृत एवं प्रसादी पायी तथा वे सज्जनगढ़ से उतरने लगे। कवि कुलेश को उन्होंने कोंकण प्रदेश की ओर रवाना किया तथा वे रायगढ़ की दिशा में चल पड़े।

https://t.me/Sahityajunction

रायगढ़ पहुँचते ही उन्होंने धर्माधिकारी मोरेश्वर पण्डितराव को बुलाया और आज्ञा दी, "धर्माधिकारी, सज्जनगढ़ के समर्थगुरु द्वारा स्थापित मन्दिर और मठ का समुचित प्रबन्ध कराने की व्यवस्था कराओ। चाफल में समर्थजी का जो मठ है, वहाँ प्रतिवर्ष रामनवमी के दिन बड़ा मेला लगता है। उस समय मठ को वस्त्र, अन्न-धान्यादि प्रतिवर्ष मिलते रहें, ऐसी राजाज्ञा प्रसारित करो।"

"स्वाऽमीऽ," निलोपन्त के शब्द से महाराज का ध्यान भंग हुआ।

"कहो पेशवा, क्या बात है?"

"इलाहाबाद से कोई उत्तरदेशीय व्यक्ति आया है। नाम है गंगाराम। वह आपसे मिलना चाहता है।" महाराज कुछ कहना चाहते थे कि इतने में प्रहरी ने भीतर आकर सूचना दी, "गुप्तचरों के नायक बहिर्जी आये हैं।" महाराज ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। मुग़ल वेशभूषा धारण किया हुआ बहिर्जी भीतर प्रविष्ट हुआ।

"बादशाह औरंगाबाद की छावनी में आ पहुँचा है, महाराज। कल नवमी के दिन की बात है यह। वहाँ गोलकुण्डा के कुतुबशाह और बीजापुर के आदिलशाह के बड़े-बड़े सरदार उससे मिलकर गये हैं। औरंगज़ेब ने बीजापुर के नाबालिग बादशाह को नौ लाख रुपये की भेंट भेजी है। इस रक़म से सेना का गठन किया जाना है। बीजापुर का सेनापति सर्जा ख़ाँ भी औरंगाबाद आकर बादशाह से मिलकर गया है।"

महाराज पीठ टेककर बैठे थे। समाचार सुनकर वे तनकर बैठ गये। फिर वे एकदम खड़े होकर हाथ पीछे बाँधकर इधर-उधर घूमने लगे। बहिर्जी समाचार सुनाकर बाहर जा चुका था।

निलोपन्त ने भी बहिर्जी द्वारा बताये गये समाचार सुने थे। वे चिन्तातुर होकर बाहर जाने लगे।

"निलोपन्त, तुमने कहा था कि कोई आदमी मिलने आया है। बुला लो उसे।"

निलोपन्त बाहर चले गये। पहले सुवर्ण-होनों से भरे कुछ थाल आये, जो गंगाराम ने नज़राने के रूप में भेजे थे। इसके पश्चात् प्रधानमन्त्री निलोपन्त हिन्दुस्तानी सरदार गंगाराम को लेकर भीतर आये।

गंगाराम कुछ क्षण के लिए तो मन्त्रमुग्ध-सा होकर अपने सामने बैठे राज-सौन्दर्य को निहारता रहा। फिर अपने को संयमित करके वह दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा, "जै सियाराम जी की, महानरेश।"

महाराज ने भी परम्परा के अनुसार हाथ-जोड़कर नमस्कार किया।

"कहो।" महाराज ने मुख्य कारण जानना चाहा।

"मैं कुछ आशंकाएँ लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ, महाराज। मैं पहले उत्तर देश में बहादुर ख़ाँ की फ़ौज में था। वहाँ तंग आ गया मैं। कितना अत्याचार मचा है वहाँ। मन्दिरों, ग्रामों और नगरों का विनाश हो रहा है। स्त्रियों की दुर्दशा तो देखी नहीं जाती।"

"ठीक है, परन्तु तुम अपना प्रयोजन बताओ।" महाराज सतर्क हो चुके थे।

"बादशाह औरंगज़ेब दक्खिन देश में उतर आया है। हमारा इरादा है कि इस समय जान की बाज़ी लगाकर बंगाल और बिहार में विद्रोह कर दें।"

https://t.me/Sahityajunction

महाराज सोच में डूब गये। शायद यह भी हो जाय कि उत्तर देश में जाटों ने तथा गंगाराम जैसे कई सरदारों ने विद्रोह कर दिया, तो उत्तर देश की रखवाली के लिए औरंगज़ेब फिर उत्तर की ओर लौट जाय। क्या कहा जा सकता है?

"तुम्हारा कुल-देवता कौन है?" गंगाराम महाराज की तेजमय और घूरती हुई दृष्टि के भाव कुछ समझ ही नहीं पाया। उस दृष्टि ने जैसे उसे मोहित कर लिया था।

"जी, वाराणसी के विश्वनाथजी हमारे आराध्य देवता हैं।"

"पन्त, तनिक स्फटिकमय शिवलिंग ले आओ।" निलोपन्त ने ऐसी आज्ञा सुनी, जिसकी उन्हें इस समय बिलकुल आशा न थी। वे देवमन्दिर में गये और थोड़ी ही देर में सोने की थाली में शिवलिंग रखकर ले आये। महाराज ने वह थाली उनके हाथ से ली और गंगाराम के सामने वह थाली पकड़कर और गंगाराम की आँखों में अपनी तीव्र दृष्टि गड़ाकर वे स्पष्ट वाणी में कह उठे, "इस पर हाथ रखकर शपथ लो कि वचन और ईमान सच्चा रखोगे।"

गंगाराम ने एक बार उस थाली की ओर देखा और फिर झट से अपने दाहिने हाथ से उसने थाली में रखा हुआ बेलपत्र उठाया और माथे से लगाकर विश्वास दिलाता हुआ कहने लगा, "प्राणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, कि प्राण चाहे जाते रहें, ईमान कभी नहीं टूटेगा।"

महाराज ने उत्तर देश के उस हृष्ट-पुष्ट बदन के वीर को सिर से पाँव तक देखा और मन में ही कुछ ठान लिया।

"यह वह शिवलिंग है, जिसकी हमारे पिताजी पूजा करते थे।"

"हमारा परम सौभाग्य है यह।" गंगाराम पूजा की थाली में रखे उस तेजपूर्ण शिवलिंग को टक लगाकर निहार रहा था।

फिर थाली निलोपन्त को देते हुए महाराज ने गंगाराम से कहा, "ठीक है। हम तुम्हारे विषय में बाद में कोई निर्णय करेंगे।" उन्होंने हाथ उठाकर विदाई का संकेत किया।

गंगाराम और निलोपन्त नमस्कार करके जाने लगे।

"पेशवा, इन्हें दो दिन यहीं पन्हालगढ़ में विश्राम करने दो। तुम इनके निवासादि की व्यवस्था 'स्वयं' करना।" महाराज ने 'स्वयं' शब्द पर जो बल दिया था, उसका आशय निलोपन्त अच्छी तरह समझ गये थे।

"क्यों, तुम्हारी जुबान क्यों बन्द है, गिर्जोजी? हमारे परिवार के बारे में कोई भली-बुरी ख़बर है क्या?" गिर्जोजी यादव महाराज के सामने बहुत देर से खड़ा था, पर चुप था। इसलिए महाराज ने उसके कन्धों को पकड़कर उसे झिंझोड़ते हुए पूछा। गुप्तचर गिर्जोजी को दुर्गाबाई और राणूदीदी के आस-पास के प्रदेश में रहकर उनके विषय की जानकारी पाने का काम सौंपा गया था। वह अहमदनगर, अशीरगढ़, दौलताबाद आदि स्थानों का भ्रमण कर यहाँ आया था, अकेला...।

उसने एकदम चौंककर सिर ऊपर उठाया और भर्राये गले से कहने लगा, "नहीं, नहीं, परिवार तो ठीक है, परन्तु..." फिर गिर्जोजी की गरदन लटक गयी, जैसे फूल की डण्ठल टूट गयी हो। उसका कण्ठ गद्गद हो उठा।

https://t.me/Sahityajunction

“तो फिर बताते क्यों नहीं हो कि क्या हुआ है?” छत्रपति के मन में कई आशंकाएँ-चिन्ताएँ ऊधम मचा रही थीं। वे गिर्जोजी की ओर पीठ फेरकर झरोखे से बाहर की ओर देखने लगे। गिर्जोजी अब भी चुप खड़ा था। अगले ही क्षण छत्रपति कड़ककर बोले, “बताओ, क्या बात है, नहीं तो दूर हो जाओ हमारे सामने से।”

गिर्जोजी सिर से पाँव तक सिहर उठा। वह कुनबी गुप्तचर अपने मन को काबू में लाते समय रो पड़ा। कहने लगा, “मालिक, रानीजी और दीदीजी को कड़े पहरे के बीच नगर से अशीरगढ़ की कोठी में भेज दिया गया था। हमने अशीरगढ़ तक उनका पीछा किया।”

“यह हमें पता है। अब दीदी कहाँ हैं, यह बताओ।”

“जी, अब वे दौलताबाद की कोठी में हैं। बादशाह ने उनके ख़र्चे के लिए रोज़ाना दो रुपये मंज़ूर किये हैं।” कहते समय गिर्जोजी तड़पकर रह गया।

“क्या? दो रुपये? दौलताबाद?”

“जी हाँ, सरकार। रानीजी को औरंगाबाद के पासवाले पक्के क़िले में ले आया गया है।”

महाराज व्यथित हो उठे। “क्यों? ले जाने का क्या उद्देश्य है?”

“वहाँ वे कुशलतापूर्वक रह सकें इसलिए।” गिर्जोजी की साँस फूल उठी थी। आँखों से टपकते अश्रुबिन्दुओं से उसका बारहबन्दी कुरता गीला हो रहा था।

“क्या मतलब?” छत्रपति एकदम उसके सामने आ गये और उन्होंने उसकी झुकी हुई गरदन को ऊपर उठाया। गिर्जोजी की बन्द आँखों से भी आँसुओं की धारा बहकर मूँछों में समाती जा रही थी। इस धारा को देखकर तो महाराज एकदम चौंक ही उठे।

“गिर्जोऽजी,” जैसे कोई बन्द दरवाज़े को खुलवाने के लिए थपकी मारता हो, यों महाराज उसे कुछ बुलवाने के लिए करुणा-भरे स्वर से पुकार रहे थे, “बोलो, बोलो गिर्जोजी, तुम्हें वागजाई देवी की सौगन्ध है। कुछ बोलो तो सही।” अब अवश्य ही कोई अति अप्रिय वार्ता सुननी पड़ेगी, इस विचार के आते ही महाराज गिर्जोजी को खड़ा छोड़कर बैठक पर जा बैठे।

उनकी आँखें बन्द थीं, पर कान चौकस थे। दूसरी ओर गिर्जोजी की यह हिम्मत ही न होती थी कि कुछ कहे। शान्ति और चुप्पी काट खाने को दौड़ती थी। महाराज ने जब अकस्मात् आँखें खोलकर तेज़ नज़र से गिर्जोजी को देखा, तो वह तेज़ नज़र उसका हृदय छेद गयी। वह जैसे-तैसे अटक-अटककर कुछ शब्द कहने लगा, जैसे कि कोई उसे वश में करके उससे बुलवा रहा हो।

“कैसे कहूँ मालिक मैं? मुझे लज्जा आती है कहने में भी। बादशाह ने अशीरगढ़ के क़िलेदार इब्राहीम ख़ाँ को शहर के आम-चौक में खम्भे से बाँधकर पचास कोड़े मारने की सज़ा दी। मैंने बदले हुए भेस में अपनी इन आँखों से वह दृश्य देखा था।”

“सज़ा मिली उसे और तुम बेचैन हो रहे हो। अजीब बात है।” जैसे केंचुली वाले साँप को चींटियाँ चारों ओर से घेर लेती है यों अब छत्रपति को असंख्य आशंकाओं ने घेर लिया था।

“उस हरामज़ादे इब्राहीम ख़ाँ ने ऐसी हरकत की थी कि जिसे सुनना भी बुरा है।...” गिर्जोजी की गरदन फिर झुक गयी।

“हरकत? कैसी हरकत?”

https://t.me/Sahityajunction

“महाराऽज।” जैसे कोई बुर्ज़ ढह पड़ता है। इस प्रकार सामने खड़े हुए गिर्जोजी यादव ने अचानक गिरकर छत्रपति के पैरों पर सिर रख दिया। उसका पूरा शरीर हिल रहा था और सिर दायें-बायें को डोल रहा था। पगड़ी सिर से खिसककर नीचे गिर पड़ी थी।

“महाराज...उस इब्राहीम ने...इब्राहीम ने कोठी में घुसकर छोटी रानीजी की इज़्ज़त लूटने की कोशिश की थी...!!”

“ख़ाऽमोश!” गिर्जोजी की कनपटी पर राजा का ऐसा ज़ोरदार तमाचा लगा कि उसकी आवाज़ से सारा कमरा गूँज उठा। गिर्जोजी की गीली आँखों के आगे तारे दिखाई देने लगे। छत्रपति की अवस्था ऐसी हो गयी थी जैसे बिजली गिर पड़ी हो। वे सुन्न, स्तब्ध खड़े थे। क्रोध के कारण सारा शरीर काँप रहा था। जैसे किसी अपराधी को ऊँचे पहाड़ी कगार पर से खाई में ढकेल दिया जाय और उसका शरीर कगारों, चट्टानों से टकराता हुआ गहरी खाई में जा गिरे, उस प्रकार महाराज के मन की दशा हो गयी थी। अतिशय क्रोध के कारण उनकी कनपटी लाल हो उठी थी। कान में पहने हुए चौकड़े भी थर्रा रहे थे। माथे की नस उभरकर ज़ोर-ज़ोर से फड़क रही थी और पसीने की बूँदों से सारा माथा भर आया था।

‘सह्याद्रि जीतने गये और परिवार गँवा बैठे!! दुर्गा-दुर्गा...’ गूँजती आवाज़ों से कान बहरे हो रहे थे। सारा कमरा जैसे गोल-गोल घूम रहा था। बन्द मुट्ठियों को भींचते हुए वे झपटकर कमरे से बाहर चले गये। वे कहाँ थे, क्या थे, सब कुछ जैसे वे भूल गये थे। घायल शेर की तरह झपटकर वे बाहर चले गये। आँखों में छलक आये आँसुओं के परदे के कारण गिर्जोजी अपने महाराज को ठीक से देख भी नहीं पाया। उनकी व्यथा भरी दशा को देखकर उसका मन चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—‘कैसे दिन आये हैं ये? एक दीपक सूरज को निगलना चाहता है।’ अपना मुँह हथेलियों में छिपाकर वह फफक-फफककर रोने लगा।

चार दिन बीत गये। महाराज अपनी पत्नी के विषय में सुनी हुई अशुभ वार्ता के कारण इतने विह्वल हो उठे थे कि किसी से मिलना-जुलना भी उन्होंने बन्द कर दिया था। उनके महल में भेजी जानेवाली भोजन की थालियाँ वैसे ही वापस आ जाती थीं। बस, थोड़ा-सा चावल बिखरा हुआ होता था। और कटोरे भरे हुए होते थे। क्या कुछ हो गुज़रा है, इसकी जानकारी गिर्जोजी तथा महाराज के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नही थी। राजकार्यालय का सारा कामकाज ठप्प पड़ा था। किसी का भी साहस न होता था, कि ख़ासमहल में जाए। अन्त में प्रह्लादपन्त से विचार-विमर्श करके निलोपन्त साहस करके महाराज से मिलने गये।

“कर्नाटक से हरजीराजा का भेजा हुआ साँडनी-सवार आया है, महाराज। एक ख़लीता लाया है वह।” छत्रपति के बाल बिखरे हुए थे। हाथों को छाती पर बाँधकर वे पीठ फेरकर खड़े थे। निलोपन्त ने उन्हें मुजरा किया। यद्यपि छत्रपति ने कोई उत्तर नहीं दिया, फिर भी निलोपन्त ने सूचना कह ही दी।

“हरजी ने कर्नाटक में बहुत चतुर राजनीति दिखलायी है, महाराज। मैसूर के सेनापति कुमारय्या ने मदुरा के नायक चोक्कानाथ की राजधानी त्रिचनापल्ली पर ज़ोरदार हमला किया था। उसके दुर्ग को घेर लिया कुमारय्या ने। चोक्कानाथ ने घबराकर हरजीराजा और जिंजी के

https://t.me/Sahityajunction

अपने चाचाजी से सहायता माँगी। हरजी जैतजी काटकर तथा दादाजी काकड़े को साथ लेकर झटपट त्रिचनापल्ली जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मैसूर के सेनापति को तो क़ैद कर ही लिया, साथ-ही-साथ मदुरा राज्य का भी जितना भाग जीता जा सकता था, उसे जीत लिया।"

महाराज धीरे से मुड़े। निद्रा के अभाव से तथा निरन्तर विचारों में डूबे रहने के कारण उनकी मुखमुद्रा में खिंचाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मन्द गति से चलकर वे निलोपन्त के निकट आये, "पन्त, हरजीराजा को ख़लीता भेजो। हमारी प्रसन्नता और सन्तोष के बारे में उन्हें सूचित करो। पन्त, तुम ज़रा हमारे साथ आओ।" कहते हुए उन्होंने प्रहरी की ओर देखा। प्रहरी उनकी दृष्टि का आशय तुरन्त समझ गया और कक्ष के भीतर जाकर टोपवाला तबक़ ले आया। महाराज ने टोप पहना और वे ख़ासमहल में आये। फिर वहाँ की सीढ़ियाँ उतरकर वे मीनारों की ओर चल पड़े। निलोपन्त पीछे-पीछे आ रहे थे। मराठा सेनाएँ बरार में जो पराक्रम दिखा रही थीं, उसकी जानकारी वे चलते-चलते ही देते जा रहे थे।

"नागोजी बल्लाल ने बारह हज़ार सैनिकों के साथ बीदर शहर को घेर लिया। वहाँ उनका मुक़र्रम ख़ाँ से जमकर मुकाबला हुआ। फिर नागोजी ने उसे चकमा दिया और वे बीदर से खोलपुर जा पहुँचे। खोलपुर को जीतकर वे अब उसी प्रदेश में तहलका मचा रहे हैं।"

"हम्बीरराव मामाजी का क्या समाचार है?" महाराज ने पूछा।

"जी, क़िले कासिम के पास उनके और इरज ख़ाँ के बीच भिड़न्त हुई। जब मुकर्रम ख़ाँ इरज ख़ाँ की सहायता करने आया, तो सेनापति उसे दूर रखकर सीधे बरार के अकोला शहर तक जा टकराये।"

"हे जगदम्बे।" महाराज मीनार से पश्चिम दिशा की ओर दिखलाई देनेवाली माँ साहिबा की पाचाड़वाली हवेली की ओर एकटक देख रहे थे। नित्य-नियमानुसार वहाँ का घड़ियाल इस समय बज रहा था।

"बरार की ओर तो स्थिति सन्तोषजनक है महाराज, परन्तु पुर्तगालियों ने समुद्र के पश्चिमी तट पर सिर उठाना शुरू कर दिया है। हमारे नायक जिवाजी विनायक ने चोरो द्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया है, इस कारण पुर्तगाली नाराज़ हो उठे हैं। अब वे जैसी चालें चल रहे हैं, उनका उद्देश्य कुछ समझ में नहीं आता।"

"अपने कुलाबा और अंजदीव द्वीपों के जलदुर्ग का काम कहाँ तक पूरा हुआ है?" महाराज पाचाड़ की हवेली के शिखर की ओर अभी तक देख रहे थे।

"कुलाबा के जलदुर्ग का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो चुका है, स्वामी। अंजदीव द्वीप पर हमारे कारीगर अभी उतरे ही हैं। शीघ्र ही वहाँ का काम भी प्रारम्भ हो जाएगा।"

"दादाजी जंजिरा से आ गये क्या?"

"जी, आपकी आज्ञानुसार उन्हें बुलाया गया है। जंजिरा-अभियान के मुख्य लिपिक ने उनके विरुद्ध कई शिकायतें लिख भेजी हैं, महाराज।"

"दादाजी को हमसे मिलने के लिए भेजो।" पाचाड़ की पश्चिम दिशा में दूर-दूर तक फैले हुए तथा पर्वत-श्रेणियों से घिरे हुए लम्बे भू-भाग को इस समय महाराज नज़र दौड़ाकर देख रहे थे। फिर मन की किसी बात से प्रेरित होकर वे अचानक पूछ बैठे, "रूपाजी भोसले और मानाजी

https://t.me/Sahityajunction

मोरे आजकल कहाँ हैं?”

“वे हसन अली का पीछा करते हुए नासिक के आस-पास घूम रहे हैं।”

“उन्हें लिखो कि पत्र पाते ही जालना पहुँचें।” महाराज के दोनों हाथों की उँगलियाँ आपस में गुँथी जा रही थीं। फिर मीनार की सीढ़ियों से जल्दी-जल्दी उतरते हुए वे निलोपन्त से कह रहे थे।

“अँग्रेज़ों की युद्ध नौकाएँ दिनदहाड़े हमारे समुद्री प्रदेश में घुस जाती हैं। उन्हें एक ख़लीता भेजकर चेतावनी दो।”

“जी, और गंगाराम के बारे में क्या किया जाय, स्वामी?”

“उसे हमसे मिलने भेजो।” महाराज मीनार से नीचे उतरे और पालकी-दरवाज़े से उपरिकोट में आये। “पाचाड़ की घुड़साल को सूचित करो कि घोड़ों पर चारजामे कसकर तैयार रहे।” महाराज ने अन्तिम आज्ञा दी।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार निलोपन्त उस दिन सायंकाल को गंगाराम हिन्दुस्तानी को लेकर सिंहासनवाले राजसभागृह में उपस्थित हुए। महाराज के दोनों ओर खण्डेराव पानसंबल तथा सुरनीस रामचन्द्र नीलकण्ठ खड़े थे। खण्डोजी बालाजी चिटनीसवाले आसन पर बैठे थे।

गंगाराम आँखें फाड़-फाड़कर सिंहासन को देखता हुआ भीतर आया। उसने महाराज को नमस्कार किया। महाराज सिंहासन से उठकर खड़े हो गये। “लेखाध्यक्ष, हिन्दुस्तानी को सम्मान-वस्त्र भेंट दो।” उन्होंने खण्डेराव की ओर देखा। खण्डेराव के पास खड़ा हुआ तबक़धारी सेवक आगे बढ़ा। महाराज ने उस तबक़ को हाथ लगाया और गंगाराम ने उस तबक़ को हाथ लगाकर उसे स्वीकार किया। आज दरबार आयोजित नहीं था, इस कारण राजसभागृह खाली ही था। एक बार उस खाली सभागृह को देखकर महाराज ने गंगाराम से कहा, “हिन्दुस्तानी, हम अपने चुने हुए दस हज़ार बहादुर सैनिक तुम्हारी सहायता के लिए दे रहे हैं। हमारे सैनिकों के लिए वह देश पराया है। हमारे सैनिकों का पूरा-पूरा ध्यान रखना तुम। माता जगदम्बा तुम्हें सफल बनाये।” महाराज ने हाथ उठाकर कहा और फिर वे सिंहासन पर बैठ गये।

“सियाराम की कृपा हो महाराज।” गंगाराम ने कमर में बँधी तलवार की मूठ पर हाथ रखकर, झुककर कहा और फिर वह उसी प्रकार पीछे हटता गया।

महाराज ने उत्तर देश में विद्रोह मचाने की दृष्टि से अपनी सेना देने का निर्णय कर लिया था।

“खण्डोजी, उत्तर देश की मथुरा नगरी में त्रिमलजी रहते हैं। उन्हें तथा राजा रायसिंह को पत्र लिखकर प्रार्थना करो कि वे गंगाराम को सहयोग दें।”

“दादाजी आये हैं।” गंगाराम को विदा करके निलोपन्त ने दादाजी का मामला पेश किया, जिसमें बहुत गम्भीर बातों पर विचार किया जाना था।

“उन्हें भीतर ले आओ।” आज्ञा हुई।

विशाल वक्ष और विशालकाय दादाजी रघुनाथ मुजरा करते हुए भीतर प्रविष्ट हुए।

“क्यों दादाजी, जंजिरा के घेरे में अभी तक सफलता क्यों नहीं मिल रही?”

“जी, हमने इस काम में कोई शिथिलता नहीं बरती—कभी ढील-ढाल करेंगे भी नहीं हम।”

https://t.me/Sahityajunction

दादाजी काफी दृढ़ता से कह रहे थे।

“तो फिर जंजिरा अभी तक क्यों नहीं जीता जा सका? सेना चार महीने से वहाँ डेरा डाले पड़ी है।” महाराज बैठे हुए थे। अब डपटकर पूछते समय वे खड़े हो गये।

“जी, मुख्यलिपिक हमें आवश्यक सहयोग नहीं दे रहे।”

“क्या मतलब?”

“कवि कुलेश ने हमें वचन दिया था कि यदि जंजिरा की मुहिम में सफलता मिली, तो वे महाराज से सिफारिश करके राज्य का ‘सुरनीस’ पद हमें दिलवा देंगे। हमें भी पूर्ण विश्वास है कि यदि जंजिरा में हमने सफलता पायी, तो महाराज हमें इस सचिव-पद से भी बढ़कर सम्मान प्रदान करेंगे। परन्तु हम पद के प्रलोभन के कारण इस अभियान में भाग नहीं ले रहे हैं, महाराज।” दादाजी शान्ति से कह रहे थे।

“तुमने बिना किसी कारण के पुर्तगालियों के गाँव राजापुरवाड़ी पर धावा क्यों बोला? सरकारी ख़जाने का ऐसा अपव्यय तुमने किस कारण किया? बता सकते हो?” छत्रपति ने कठोरता से पूछा।

“महाराऽज..।” दादाजी बोलते-बोलते अटक गये।

“जानते हो, तुम्हारे इस कृत्य का क्या परिणाम होगा? मुख्यलिपिक रोज तुम्हारे विरुद्ध शिकायतें लिखकर भेज रहे हैं। बोलो, क्या स्पष्टीकरण देना है तुम्हें इस मामले में?”

“महाराज...कैसे कहें हम? हम तो आपके सेवक हैं, आपके आसरे रहते हैं। हम कोई सफाई देना नहीं चाहते, पर अपने हृदय की टीस आपको अवश्य बतलाना चाहते हैं। परन्तु सबके सामने नहीं, अकेले में, केवल आपको ही बता सकते हैं हम।” दादाजी ने महाराज के निकट खड़े हुए श्रेष्ठजनों की ओर देखा और उनके मुख पर उदासी छा गयी।

छत्रपति ने हाथ उठाकर खण्डोजी, खण्डेराव, रामचन्द्रपन्त, निलोपन्त आदि को बाहर जाने का संकेत किया। अब राजसभागृह में कोई नहीं था।

“हाँ, तो कहो।” कहकर महाराज विचारमग्न हो गये।

“क्या कहें स्वामी? हबशी हमसे ख़ार खाये बैठा है। उसने हमसे दुश्मनी ठानकर हमारे आपटा गाँव को दिन-दहाड़े लूट लिया। और...हमें कहते लज्जा आती है, महाराज...। हम कहीं दूसरी ओर लड़ाई में उलझे हुए हैं, यह देखकर कम्बख़्त ने हमारे दिल को चीरकर ख़ून ही पी डाला है।”

दादाजी ने अपना मुख हथेलियों में छिपा लिया। उन्हें इस दशा में देखकर महाराज भी चकित हो उठे।

“दादाजी, शान्त होओ। साफ-साफ बतलाओ, क्या हुआ?”

“स्वामीऽ, हरामज़ादे हमारे घर में घुसकर हमारी पत्नी को ही भगा ले गये! इससे चिढ़कर ही हमने उनके गाँव पर हमला किया। एक बार नहीं, अनेक बार हमने हमला किया है। आशा थी कि कभी-न-कभी तो उसे पकड़ पाएँगे और पुराना हिसाब चुकता कर पाएँगे।...नियमों का भंग अवश्य किया है हमने, महाराज। अब आप चाहें तो यहीं सिंहासन के सामने अपने हाथों से हमारी गरदन उड़ा दें।” क्रोध, शोक, विवशता आदि विविध भावों के कारण दादाजी का सारा

https://t.me/Sahityajunction

शरीर थरथरा रहा था।

महाराज विचित्र-सी दृष्टि से दादाजी की ओर बस एकटक देखते जा रहे थे। अब उन्हें सामने खड़ी उस आकृति में दादाजी नहीं दिखाई दे रहे थे, दिखाई दे रहे थे स्वयं श्रीमन्महाराज सम्भाजी राजा भोसले। सारा राजसभागृह चीख-चिल्लाकर कह रहा था—'दुर्गाऽ...दुर्गाऽ!'

महाराज सिंहासन से उठे और सीढ़ियाँ उतरकर वे दादाजी के सामने आ गये। महाराज के जूतों को देखते ही सिर झुकाकर खड़े दादाजी एकदम महाराज के पैर पकड़कर सिसक-सिसककर कहने लगे, "इस लज्जा के कारण ही हमें रायगढ़ आने का भी साहस नहीं हो पाता था। आपको मुँह दिखाने की हिम्मत नहीं होती थी हमारी!"

महाराज झट से नीचे झुके और उन्होंने दादाजी को छाती से लगा लिया। उनकी आँखों में आँखें डालकर राजा के मुख से ये दृढ़ बोल प्रकट हुए, "चाहे जितना ख़र्च करो, चाहे सारा ख़जाना खाली कर दो, पर उस पानी के काले दैत्य को समुद्र में डुबाकर ही दम लेना तुम। दादाजी, आज ही रायगढ़ से रवाना हो जाओ और पहुँचो समुद्र तट पर।" महाराज उन्हें छोड़कर एकदम मुड़ पड़े और देखते-ही-देखते आँखों से ओझल हो गये। दादाजी वहाँ आये थे हर दण्ड को स्वीकार करने की आशंका मन में लिये, परन्तु यहाँ उन्होंने जो पाया, वह उन्हें सपने की बात लग रही थी। वे सामने के खाली सिंहासन को नमस्कार करके सभागृह से बाहर चल दिये। जंजिरा-अभियान यथावत आगे चलता रहा।

बालम्भट्ट, अनन्तभट्ट और धर्माधिकारी मोरेश्वर पण्डितराव के मार्गदर्शन के अनुसार स्वर्गवासी आबासाहब का दूसरा वार्षिक श्राद्ध विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। अगले दिन महाराज रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आ गये। वहाँ पाचाड़ की अश्वशाला के दस हज़ार घोड़े मैदान में पंक्तिबद्ध खड़े थे। कुशल घुड़सवार उनकी लगाम पकड़े खड़े थे। सन्ताजी जगताप, जानराव जानोजी, हिम्मतराव आदि विशिष्ट वीरों को महाराज ने इस अवसर पर यहाँ बुला लिया था। उनके साथ महाराज भी अब घोड़े पर सवार हो गये। ज्योंही महाराज ने कूच का संकेत किया, सींगों और धौंसों की गड़गड़ाहट गूँजी और घोड़ों की टापों से धूल के बादल उठने लगे।

वरन्दा घाट से होती हुई सेना पुणे पहुँची और वहाँ पहला पड़ाव डाला गया। पुणे के सूबेदार दामाजी रघुनाथ महाराज के स्वागतार्थ आये हुए थे। उनसे पुरन्धर और सासवड विभागों की जानकारी प्राप्त कर महाराज कोरेगाँव, श्रीगोंदे, अण्टी और पाथर्डी होते हुए तीन दिनों में ही जालना की सीमा तक जा पहुँचे। जालना वह शहर था, जो मुग़लों की सैनिक छावनी औरंगाबाद से केवल पचास कोस की दूरी पर स्थित था। यहीं पर नासिक और बागलाण की ओर से आये हुए रूपाजी भोसले और मानाजी मोरे अपनी मराठा सेना से आ मिले। दौड़ते घोड़ों की टापों ने जालना को घेर लिया। जालना के कई निवासी घबराकर खान जान मुहम्मद नामक एक मुस्लिम दरवेश की मस्जिद में घुस गये। मुहम्मद ने मस्जिद के दरवाजे बन्द कर लिये। जालना शहर में लूटपाट मच गयी।

रूपाजी घोड़ा दौड़ाते हुए महाराज के सामने आये और बागडोर खींचकर एकदम उनके सामने रुक गये। महाराज नगरद्वार के बाहर खड़े थे। रूपाजी अपनी ठेठ मावली बोली में कहने

https://t.me/Sahityajunction

लगे, “मालिक, रिआया के कई लोग, कई फ़ौजी सिपाही और भी कई बड़े-बड़े लोग मस्जिद में घुसे बैठे हैं। फ़कीर दरवाज़ा खोलता नहीं है। हम क्या करें, मालिक?”

“उसे चेतावनी दो। कहो कि किसी के धार्मिक स्थान का अपमान करने की हमारी नीति नहीं है। तुमने जितने लोगों को छिपा रखा है, उन्हें चुपचाप बाहर भेज दो।” रूपाजी उसी दम घोड़ा दौड़ाते हुए मस्जिद तक जा पहुँचे और उन्होंने पुकारकर चेतावनी दी, परन्तु अन्दर से कोई उत्तर नहीं आया। यह सुनते ही महाराज क्रोध से कड़ककर बोले, “फकीर होकर भी राजनीति के दाँव चलाता है। उसे अच्छी तरह सबक सिखाओ। दरवाजा उखाड़ दो और छिपे हुए शत्रु को बाहर खींच निकालो। ध्यान रखो, फकीर को और धार्मिक स्थल को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे।”

मावले सैनिकों ने ख़ान मुहम्मद के आसरे में छिपे हुए कई लोगों को बाहर निकाला और उनकी मुश्कें कसकर वे उनके दलों को महाराज के सामने ले जाने के काम में व्यस्त ही थे कि इतने में रणसिंगों से संकट की सूचना देने वाली आवाज आने लगी। ख़बर मिली थी कि बादशाह से शाही फटकार खाया हुआ सरदार इरज ख़ाँ जालना की सहायता के लिए आ रहा है। गिरफ्तार कैदियों को वैसे ही छोड़कर मराठे जैसे आये थे, वैसे ही पलक झपकते ग़ायब भी हो गये।

इसी समय औरंगाबाद की शाही कोठी में आलमगीर औरंगज़ेब नासिक से बुलाये हुए अपने सरदार हसनअली ख़ाँ के कन्धों पर हरे रंग की ‘ख़िलअत’ रखते हुए कह रहा था, “तुम्हें उन्नीस हज़ार सिपाही दे रहे हैं हम। अब देखना है तुम्हारा करिश्मा!”

रूपाजी और मानाजी बागलाण की ओर कूच कर गये। महाराज रायगढ़ लौट आये। जालना के छापे के कारण औरंगज़ेब बुरी तरह बौखला उठा था। वह जब दक्षिण देश की ओर आया था, तभी उसने मन में ठान रखा था कि मराठों के राज्य में सबसे पहले हाथ-पाँव फैलाये जाएँ। अब इस दृष्टि से उसकी ज़ोरदार कार्यवाहियाँ शुरू हो चुकी थीं।

औरंगाबाद में आलमगीर का बड़ा दरबार लगा हुआ था। वजीर असद ख़ाँ ने अपने आलमपनाह की इच्छा से सारे दरबार को सूचित किया, “आका अली ख़ान शहाबुद्दीन को एक ख़ास मुहिम के लिए नामजद करते हैं। ख़ान, तुम्हें हर हिकमत और तरक़ीब से मराठों के क़िले रामसेज को मिट्टी में मिलाना होगा।”

“जो हुक्म, जहाँपनाह!” कमर तक झुकते हुए बादशाह को तसलीम करते हुए शहाबुद्दीन ख़ाँ ने अपनी नयी नामजदगी को स्वीकार किया।

बीस हज़ार सिपाही, चुनिन्दा पठान और तुर्क सैनिक तथा तोपखाने की गाड़ियाँ लेकर ख़ान चल पड़ा रामसेज की ओर। उसके साथ सरदार दलपत बुँदेला भी था। निकलने से पहले उसने औरंगाबाद की मस्जिद में तीन बार नमाज़ पढ़ी।

तो अब भिड़न्त हो ही गयी। केवल महाराज ने ही नहीं, जिस बात का अन्दाज़ा हर छोटे-बड़े ने लगा लिया था, वही बात होने जा रही थी। एक लम्बे और भीषण युद्ध का श्रीगणेश अन्ततः हो ही गया।

इस समय रायगढ़ में दो अप्रिय समाचार आ पहुँचे थे। पहला समाचार यह था कि अंजदीव द्वीप पर मराठों के जो कारीगर जलदुर्ग का निर्माण करने के लिए उतरे थे, उन पर पुर्तगाली

https://t.me/Sahityajunction

कैप्टन परेरा ने अचानक हमला कर दिया। तोपों की भारी मार से उसने मराठों को उस द्वीप से भगा दिया था। उसने वहाँ के एक मन्दिर को तोड़कर उस जगह ऊँचे चौकोने शिखरवाला एक चर्च खड़ा कर दिया था।

दूसरा अप्रिय समाचार यह था कि महाराज के खरगगढ़ का ज़मींदार चिमणा जी किसी स्वार्थवश मुग़लों से जा मिला था। इसी प्रकार हणमन्तगढ़ का गिरफ़्तार किया गया मुग़ली क़िलेदार सैयद निजावत मराठों की क़ैद से निकल भागा था।

रायगढ़ के लिपिक-कार्यालय की बैठक पर चिटनीस खण्डोजी लेखनी द्वारा सेवा करने के लिए उपस्थित थे। इधर-उधर घूमते हुए, विचारों के प्रवाह में खोये हुए और हथेलियों को रगड़ते हुए महाराज चिटनीस को कुछ ख़लीतों का विषय लिखवा रहे थे।

"राजपूत कुलावतंस सूर्यवंशी अम्बर नराधिप राजा रामसिंह के प्रति हिन्दूपदपादशाह क्षत्रियकुलावतंस राजा शम्भू का निवेदन इस प्रकार है कि..." पत्र का शीर्षक लिखकर खण्डोजी आगे कुछ सुनने के लिए ध्यान दे रहे थे। उनके कान धीर-गम्भीर राजा के बोल सुन रहे थे और वे उन्हें काग़ज पर लिखते जा रहे थे, "इस काल उत्तराधिप आलमगीर पूरी सेना और बड़े ख़जाने को साथ लिये हमारे राज्य से आ टकराया है। उसका शहज़ादा अकबर उससे नाराज़ होकर हमारे पास आया था। हमने उसे आश्रय दिया है तथा उससे हमारी चर्चा-मन्त्रणा हुई है। इस समय यदि तुम उत्तर में युद्ध प्रारम्भ कर दो तो इस प्रकार हमारा इरादा है कि शहज़ादे को दिल्ली के तख़्त पर बैठाएँ। ईरान के शाह ने शहज़ादे को लिखकर सूचित किया है कि वह भी शहज़ादे का साथ देगा। यदि शहज़ादा अकबर दिल्ली के तख़्त पर बैठता है, तो फिर भी ठीक ही है, क्योंकि पत्थर से तो ईंट कम सख्त होती है। इसलिए तुम अवश्य ही अपने इरादों से हमें सूचित करना..." खण्डोजी ने जो पत्र लिखकर तैयार किया था, उस पर महाराज ने हस्ताक्षर कर दिये।

छत्रपति राजकार्यालय से बाहर आ रहे थे कि जोत्याजी केसरकर अदब करके कहने लगा, "नासिक विभाग में गणेश गाँव के पहाड़ी दर्रे में रूपाजी और मानाजी ने शहाबुद्दीन ख़ाँ को घेर लिया। दोनों में ज़ोरदार मुठभेड़ हुई। ख़ान रामसेज की ओर आगे बढ़ गया है।"

"हम जगदीश्वर के दर्शनों को जा रहे हैं। पेशवा को तुरन्त उधर ही भेज दो।" महाराज ने चलते-चलते कहा।

महाराज जब जगदीश्वर के मन्दिर में आये, तो पुजारी आगे बढ़ आया। उसने थाली में रखे बेलपत्र और सफ़ेद फूलों की अंजलि महाराज के हाथों में दी। महाराज मन्दिर के गर्भगृह में गये और शिवलिंग पर पुष्पपत्र समर्पित करके घुटने झुकाकर उन्होंने अरघे पर माथा टेका। मन्दिर के बाहरी आँगन में किसी ने घण्टे की टंकोर दी, जिसे सुनकर महाराज के मन में ये 'शिव-बोल' गूँज उठे—'याद रखो, आज हो या कुछ समय बाद, औरंगज़ेब दक्खिन देश में आएगा। इसके लिए सच्चा मावला सैनिक बनो।' सिर उठाकर उन्होंने पिण्डी पर से एक बिल्वदल उठाया और उसे माथे से लगाकर कमरबन्द में खोंस लिया। गर्भगृह से बाहर आते ही निलोपन्त सामने आये। महाराज ने उनसे कहा, "तुम दर्शन कर आओ। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

निलोपन्त भीतर जाकर दर्शन कर आये। शिवालय के आँगन में ही महाराज विचारों में डूबे हुए उनसे पूछने लगे, "मुग़लों के मुल्देर क़िले का क़िलेदार कौन है पन्त?"

"जी, राजपूत राजा देवी सिंह है।"

https://t.me/Sahityajunction

“ठीक है। मुल्हेर के पास ही अपना क़िला साल्हेर है। वहाँ के क़िलेदार जोशी को लिखो कि पाँव जमाकर मजबूती से खड़ा रहे और सावधान रहे। रामसेज क़िले को घिरा हुआ देखकर साल्हेर का क़िलेदार जोशी उसकी सहायता को दौड़ पड़ेगा और अपना साल्हेर क़िला भी कठिनाई में फँस जाएगा।”

“जी, अच्छा। आज ही हम हरकारा भेज देते हैं।” निलोपन्त आगे कुछ कहना ही चाहते थे कि रायगढ़ के नौबतख़ाने में नौबत बजने लगी। महाराज के माथे में सिकुड़न आ गयी।

“हरजीराजा आ गये हैं क्या, पन्त? यह नौबत क्यों बज रही है?” नौबत की आवाज़ की दिशा में देखते हुए महाराज कह रहे थे।

कुछ क्षणों बाद ही मोड़ की दिशा में दौड़ते हुए कदमों की आवाज़ सुनाई देने लगी। रायाजी के नेत्रों से प्रफुल्लता फूट रही थी। वह हाँफता-हाँफता मन्दिर के निकट आया। पैरों के जूतों को बाहर ही दायें-बायें फेंककर वह मन्दिर के प्रांगण में बड़ी तेजी से घुसा और शीघ्रता से कहने लगा, “खण्डोवा देवता की जय हो महाराज! बालकृष्ण का अवतार हुआ है। गांगोली में महारानीजी ने नन्हे शिशु-राजा को जन्म दिया है।”

महाराज ने एकदम मुड़कर शिवलिंग की ओर मुख किया। अतीव सन्तुष्ट मन से, नेत्र बन्द कर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर माथे के शिवतिलक से लगाये और होठों से शब्द निकले, “जगदम्बे! हे जगदम्बे!”

गांगोली की ख़ास हवेली आज आम्र-तोरणों से सज-धजकर डोल रही थी। सभागृह के बाजू में मधुर मंगल वाद्यों के सुर ताशे की ताल से मिल रहे थे। हवेली के बड़े द्वार को दोनों ओर हरे-हरे ताजे केले के पौधों से सजाया गया था। दरवाज़े की कमान से एक नारियल लटक रहा था, जिस पर सोने का पत्तर चढ़ाया हुआ था। सिंदखेड़, फलटण, कागल, कर्नाटक आदि नगरों-प्रदेशों से अनेक रिश्तेदार आये हुए थे और सारी हवेली में अतिथियों के आने से धूम मची थी।

पुत्र-जन्म के बाद का बारहवाँ दिन था। इस दिन तेरहवीं तिथि थी और भगवान शिव का शिवंकर दिन था—सोमवार। हवेली के ख़ास सभागृह में गिरदे, गावतकिये रखे थे और नीचे ग़लीचे बिछाये गये थे। महाराज विशेष सुन्दर वस्त्रों को धारण कर बैठक पर विराजे हुए थे। उनकी दायीं ओर राजाराम बैठे थे। रायगढ़ के मन्त्रीगण भी यहाँ दोनों ओर विनम्र भाव से खड़े थे। हवेली में आनेवाले प्रत्येक अतिथि और रिश्तेदार की, आनेवाले सरदारों और अधिकारियों की सूचना महाराज को दी जा रही थी। विशेष माननीय व्यक्ति के आते ही महाराज बैठक से उठकर नीचे आते थे और उसके सामने जाकर प्रेमालिंगन करते थे। गाँव के बाहरी मैदान में रखी हुई तोपें थोड़ी-थोड़ी देर बाद दनदनाती हुई गरज उठती थीं।

घर के भीतर देवमन्दिर में सुहागिनों ने पत्थर से बना लोढा पालने के नीचे से और ऊपर से गोल घुमाया। धाराऊ ने अपने हाथों में शिशु को लेकर पालने में सुला दिया। फिर पालने से पीठ लगाकर उसने तीन बार झोंका दिया। इसके बाद धाराऊ ने अपना मुख शिशु के कानों के पास ले जाकर शिशु को उसका नाम बतलाया, “शिवाजी राजा!”

रणसिंगों, चौघड़ों और नगाड़ों की ध्वनि सब ओर सुनाई दे रही थी। तोपों की गड़गड़ाहट हो

https://t.me/Sahityajunction

रही थी। मुट्ठियाँ भर-भरकर शक्कर बाँटी जाने लगी। सारा गांगोली गाँव आनन्द-उल्लास से झूम उठा था। सभागृह में विराजमान महाराज वस्त्र, धान्य, धन आदि का दान कर रहे थे।

दिन डूबने को आया, फिर भी हवेली की भीड़-भाड़ कम नहीं होती थी। आखिरकार धाराऊ कमर पर हाथ टेककर घर के भीतर से बाहर आयी और महाराज से कहने लगी, "अरे, हमारे नाती का मुँह भी देखोगे या नहीं? क्या यहीं बैठे रहोगे?"

"अरे बाप रे, यह काम तो हम भूल ही गये," कहते हुए महाराज उठे। धाराऊ ने जो कुछ कहा था, वह बात थी तो महाराज के मन में भी। वे जब सभागृह से प्रसूता कक्ष की ओर जाने लगे, तो उन्होंने विशेष आशयपूर्ण दृष्टि से रायाजी की ओर देखा। रायाजी तुरन्त भीतर गया। रायगढ़ से माता एवं शिशु के लिए जो सम्मान-वस्त्र तथा राजसी साज-सिंगार के उपहार की वस्तुएँ भेजी गयी थीं, उनसे भरा तबक लेकर रायाजी महाराज के पीछे-पीछे चलने लगा।

महाराज येसूबाई के कक्ष में आये। येसूबाई पलँग से उठीं और उन्होंने सोये हुए 'बालराजा' शिशु को धीरे से उठाकर महाराज को दिया। 'शम्भू' के नेत्र 'शिव-मुख' निरखने लगे। 'शम्भू'स्वयं को भी जैसे भूल गया था। तन-मन की सुध भूलकर पुत्र का मुख देख रहे सम्भाजी को देखकर येसूबाई को अतीव सन्तोष हुआ। परन्तु उसी क्षण उन्हें आबासाहब की तथा जिजाऊ माँ साहिबा की भी स्मृति हो आयी। उनकी काजल-भरी पलकें कुछ देर जल्दी-जल्दी झपकीं और फिर स्मृति के कारण पलकों के कोरों पर कुछ बूँदें छलछला आयी। उस स्मृति के पृष्ठ को प्रयत्नपूर्वक पलटकर वे कहने लगीं, "इन बालराजा का नाम वही रखा है, जो इनके दादाजी का था।"

"हाँ, हमने भी सुना है यह। आबासाहब ने अपने जीवन में इतनी बार विजय पायी कि जितने आकाश के तारे हैं। इस बालराजा का जन्मकाल का नक्षत्र है 'शततारका'। हमारी अभिलाषा है कि ये भी अपने दादाजी की भाँति देदीप्यमान यश पाएँ।" बालराजा को येसूबाई के हाथों में सौंपते हुए महाराज ने कहा। उन्होंने रायाजी की ओर देखा। रायाजी सम्मानदायक वस्त्र-उपहारादि से भरा थाल लेकर आगे बढ़ आया। येसूबाई ने बालराजा को पलँग पर सुला दिया और जब उस थाल से येसूबाई ने बालराजा के हाथ का स्पर्श कराया, तब उस थाल को लेकर रायाजी बाहर जाने लगा।

"रायाजी, ज़रा ठहरो।" महाराज आगे बढ़े और उन्होंने थाल में रखी हुई एक कलापूर्ण नक्काशीदार लकड़ी की डिबिया उठा ली। फिर उसे येसूबाई को देते हुए वे बोले, "यह तुम्हारे लिए विशेष उपहार है।"

येसूबाई ने जब उस 'लकड़ी' की डिबिया को देखा, तो उनसे हँसी रोकी न गयी।

"क्यों? हँसती क्यों हो?" महाराज जान गये कि येसूबाई को अवश्य ही भ्रम हुआ है और इसीलिए वे हँसी हैं।

"नहीं—नहीं। यूँ ही हँस पड़ी हैं हम। हमें यह डिबिया बहुत पसन्द आयी।" महारानी ने अपने मन की बात को छिपाते हुए कहा।

"यह ऊपर का आवरण या डिब्बा ही लकड़ी का है। तुम्हारे लिए जो विशेष भेंट है, वह कुंकुम का सिन्दोरा तो इसके भीतर है।" महाराज ने रहस्य स्पष्ट कह दिया।

https://t.me/Sahityajunction

येसूबाई की हँसी अब ग़ायब हो गयी थी। उन्होंने बड़े उतावलेपन से वह डिबिया खोली। उसमें रखी थी चमचमाते हुए सुवर्ण की एक बड़ी अँगूठी। यह अँगूठी मछली की आकृति के समान थी। मछली की दो आँखों के स्थान पर दो माणिक जड़े हुए थे। इस अँगूठी को देखकर येसूबाई फिर हँसने लगीं। बोलीं, "ये सुनार की भूल है या कोई जादू-टोना है। आपने तो कहा था कि लकड़ी की डिबिया में सिन्दोरा है, पर सिन्दोरे की अँगूठी कैसे बन गयी?"

इस पर महाराज कुछ बोले नहीं। उन्होंने डिबिया में रखी हुई अँगूठी को उठाया। दीवटों के प्रकाश में उसके लाल-लाल माणिक चमक उठे। महाराज ने उस अँगूठी को दो ओर से अपनी चुटकियों में ज्योंही दबाया, मछली का समतल पृष्ठभाग दो कपाटों के रूप में खुल गया। उसके भीतर भरा हुआ कुंकुम का लाल रंग माणिक के समान झिलमिला उठा। अब लजाने की बारी येसूबाई की थी। उनकी हँसी ग़ायब हो चुकी थी और दृष्टि पाँव की उँगलियों को देख रही थी।

"क्यों? हमारी श्रीसखी को सिन्दोरा पसन्द आया क्या?" येसूबाई के उत्तर की प्रतीक्षा न करके महाराज ने वह अँगूठी येसूबाई की तर्जनी में पहना दी।

येसूबाई ने उस सिन्दोरे में थोड़ा कुंकुम लेकर माथे पर लगाया और इस प्रकार उन्होंने मूक रहकर ही दिखला दिया कि उपहार उन्हें बहुत भाया है।

अगले दिन दोपहर को धाराऊ महाराज से मिलने आयी। अपने सिर के आँचल की किनारी को उँगलियों की चिमटी से पीछे हटाती हुई वह कहने लगी, "बेटे, एक विनती करती हूँ। मानेगा?"

उसकी चरणधूलि माथे से लगाकर और उसे हाथ का सहारा देकर महाराज उसे बैठक-कक्ष के बीच ले आते हुए कहने लगे, "आऊ, हम क्या पराये हैं तुम्हारे लिए? विनती क्यों कहती हो, तुम्हारा तो अधिकार है हम पर।"

"हाँ बेटे, अधिकार तो है ही। इसलिए तो प्राण बेचैन हो रहे हैं। अब इस बूढ़ी माँ की एक बात मान ले।"

"तुम कहो तो सही। तुम जो कहोगी, वही होगा।" महाराज को कुछ अनुमान न था कि विनती क्या होगी।

"अब मैं बहुत बूढ़ी हुई। देह थक चुकी है। जी करता है कि अब अपने गाँव जाकर रहूँ। मुझे अपने गाँव कापूरहोल जाने दे अब।" कमर से झुकी हुई बूढ़ी बड़े प्रयत्नपूर्वक सीधी खड़ी हो गयी और महाराज के मुख की ओर देखने लगी।

"आऽ ऊ..." कहते हुए महाराज ने मुँह फेर लिया। उनका युवा और भावपूर्ण हृदय धाराऊ की स्नेहार्द्र स्मृतियों से भर आया।

"इतना सुख-चैन भोग लिया है बेटे, तेरे यहाँ कि कभी सपने में भी नहीं सोचा था। कापूरहोल गाँव के एक कोने की देहातिन हूँ मैं। तुम लोगों के पैर की धूल की भी बराबरी नहीं थी मेरी। पर बेटे, बहुत प्यार दिया है तूने इस बूढ़ी को।"

धाराऊ के हृदयविदारक वचन, ये प्यार-भरे निष्पाप कुनबी बोल भी महाराज के लिए असह्य हो उठे थे। वे एकदम मुड़कर शीघ्रता से धाराऊ के निकट गये और उसके झुर्रियों-भरे होठों पर हथेली रखते हुए कह उठे, "तुझे खण्डोबा की सौगन्ध है, जो अब एक शब्द भी बोले तू।" आज

https://t.me/Sahityajunction

महाराज ने धाराऊ को पहली बार ही 'तू' सर्वनाम से सम्बोधित किया था।

"बस एक ही आस थी मेरे लाल, बहू के आँचल के नीचे अपने नाती को दूध पीता देखूँ। खण्डोबा देवता ने वह आस भी पूरी कर दी है।" वृद्धा ने प्यार से महाराज का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा।

"हमसे क्या इतनी ऊब गयी हो आऊ? तुम दिखाई दे जाती थीं, इसलिए हमें बड़ी आऊसाहिबा का अभाव कभी खला नहीं। तुम हमें बेसहारा बनाकर मत जाओ, आऊ।"

"तू अब भी छोटा बच्चा ही है। कैसे समझ पाएगा तू इस बुढ़िया के मन की अवस्था को। जिस जगह मनुष्य ने जीवन बिताया हो, जहाँ गृहस्थी के बेटी-बेटे पैदा हुए हों, उसी जगह अगर मनुष्य की देह फूटे, तो जीवन धन्य हो जाता है। इसलिए बेटे, इतनी इच्छा पूरी कर मेरी। मुझे अपने गाँव जाने दे।" वृद्धा का रूप वर्षाऋतु की सायंकाल के समान दिखाई दे रहा था। महाराज के लिए यह असम्भव हो उठा था कि उनकी बातें सुन सकें। वे चुपचाप बाहर चले गये। बूढ़ी को रोक लेना अब किसी के बस की बात नहीं थी।

वह डोली, जिसमें बैठकर धाराऊ कापूरहोल जानेवाली थी, तैयार खड़ी थी। उस डोली के दोनों ओर रायाजी और अन्तोजी खड़े थे। वस्त्र-पहनावा, सुवर्ण-होन आदि देकर महाराज ने वृद्धा को सम्मानित किया। येसूबाई ने धाराऊ के चरणों में प्रणाम किया और ऊपर उठते ही वे उससे एकदम लिपट ही गयीं। धाराऊ अपने थके-माँदे हाथों से उनकी पीठ सहलाकर शोक के आवेग को कम करने का प्रयत्न कर रही थी। जैसे शिवलिंग पर दूध की धारा का अभिषेक हो रहा हो, इस प्रकार के स्नेहपूर्ण बोल येसूबाई के कानों ने सुने। धाराऊ उनसे कह रही थी, "चुप रह बेटी, चुप रह। मैं जानती हूँ तेरा दुःख। राज के सब ओर से ढेरों उपहार के थाल आये हैं इस समय, पर अपनी बेटी के नाम एक चीथड़ा भी नहीं भेजा तेरे मायके वालों ने।" यह सुनकर पहले से ही व्याकुल हो रही येसूबाई को एकदम छाती से लगाकर धाराऊ ने पाचाड़ की हवेली के घण्टानाद के समान सान्त्वनापूर्ण बोलों से कहा, "दुःखी मत हो बेटी। स्त्री को आकाश की आँच को और ज़मीन के पत्थर-काँटों को अपना समझकर ही चलना पड़ता है। अपनी सासों की सेवा किया कर।" बूढ़ी ने पालने के पास जाकर बालराजा को उठा लिया और बार-बार, कई बार उसे चूमने लगी। फिर उसने शिशु को पालने में सुला दिया। इसके बाद छत्रपति ने कापूरहोल गाँव की धाराऊ उपनाम 'गाडे', नहीं-नहीं, गाडे नहीं अब भोसले बन गयी उस वृद्धा के चरणों में प्रणाम किया।

डोली चल पड़ी। हिन्दुपदपादशाह छत्रपति सम्भाजी उस जाती हुई डोली को आँखों से ओझल होने तक देखते जा रहे थे। मन में एक ही विचार बार-बार गूँज रहा था—'तुमने जो दूध पिलाया है हमें और जो प्यार-ममता लुटायी है हमारे लिए, धाराऊ, यदि हम अपने शरीर के खून की एक-एक बूँद भी तुम्हारे चरणों में चढ़ा दें, तो भी तुम्हारे उपकारों से उऋण कभी न हो सकेंगे हम।'

महाराज गांगोली से रायगढ़ लौट आये थे। इस समय उनके मन में केवल एक ही विचार था—रामसेज का क़िला।

https://t.me/Sahityajunction

स्फटिकमय शिवलिंग की तथा भवानी देवी की पूजा करके महाराज अपने महल के सभागृह में आये। पुर्तगाली दरबार के राजपूत के साथ आये हुए येसाजी आगे आये, "पुर्तगाली दरबार ने नज़राना और ख़लीता भेजा है, महाराज। पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर नज़राना भेजा है दरबार ने।" राजदूत की ओर संकेत करते हुए येसाजी कह रहे थे। पुर्तगाली राजदूत ने नज़राना पेश किया। महाराज ने उसे हाथ से छुआ।

"ख़लीता किस बारे में है?" महाराज ने येसाजी से पूछा।

"जी, उन्होंने अपने बारूद के कारख़ानों के लिए कच्चा माल उनके प्रदेश से होकर लाने की अनुमति दी है। यह भी कहा है कि वे हबशी से दूर-दूर ही रहेंगे।"

आशयपूर्ण हँसी महाराज के होठों पर फैल गयी। पुर्तगाली वकील को बदले में उपहार दिया गया और उसे विदा किया गया।

"बादशाह का आदेश पाकर रुहुल्ला ख़ाँ अहमदनगर की ओर से आगे बढ़ा आ रहा है, महाराज।" निलोपन्त ने आज मुख्य समाचार बतलाया।

महाराज देख रहे थे कि मराठा साम्राज्य को शत्रुओं ने चारों ओर से घेर लिया है। अकस्मात् उन्हें इससे मिलता-जुलता वह दृश्य याद आया कि जब आबासाहब और वे आगरा में मुग़लों की कैद में बन्द थे। मराठा राज्य का गला घोंटने के लिए अब औरंगज़ेब ज़मीन-आसमान एक कर देगा, यह बात अब बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी थी। इसलिए उन्होंने दूसरे शत्रुओं की स्थिति के बारे में सोचना जरूरी समझा।

"अँग्रेज़ों की युद्ध-नौकाएँ आजकल हमारे समुद्र प्रदेश में घुस जाती हैं। उन्हें मुम्बई में ही ठूँसे रखने के लिए सिद्दी सम्बूल और सिद्दी मिस्त्री क्या कर रहे हैं, पन्त?"

"सम्बूल और मिस्त्री ने उन नौकाओं पर कई बार छापे मारे हैं और उन्हें फिर से मुम्बई खदेड़ दिया है।"

"पन्त, औरंगज़ेब केवल भूमि पर ही नहीं, समुद्र के मार्ग से भी आगे बढ़ेगा और वह सहायक बनाएगा अँग्रेज़ों और पुर्तगालियों को। इसलिए एक ओर तो हमें समुद्र में तीन मोर्चों पर सामना करना पड़ेगा और साथ ही ज़मीन पर भी। जहाँ कहीं भी औरंगज़ेब को हम कठिनाई में फँसा पाएँगे, वहीं उसे धर दबाएँगे।"

"समुद्र में तीन मोर्चे?" प्रह्लादपन्त के मुख से शब्द निकल पड़े।

"हाँ, तीन मोर्चे। हमारी पहली सुरक्षा-पंक्ति होगी वह, जो दाभोल, कुडाल और डिचोली में रहकर चौल तथा गोवा के पुर्तगालियों को दबा रखेगी। इसमें हमारे आंगरे, काटे आदि नौ-सेनानायक रहेंगे। दूसरी सुरक्षा-पंक्ति होंगी वह, जिसमें मायनाक, दादाजी प्रभु, पावला, पडवल आदि नौ-सेनानायक होंगे। ये लोग जंजिरा के हबशी को उसके क़िले में ही बन्द कर रखेंगे। तीसरी सुरक्षा-पंक्ति होगी जिवाजी विनायक, सुन्दरजी बाजी, सम्बूल, मिस्त्री आदि की, यह सैनिक-पंक्ति मुम्बई के आस-पास देखरेख करती हुई घूमती फिरती रहेगी और अँग्रेज़ों को क़ाबू में रखेगी।" महाराज की आँखें इस समय उन गुप्त समुद्री मार्गों को देख रही थीं, जिनसे होकर औरंगज़ेब मराठा-राज्य में घुस सकता था। सभा में उपस्थित सभी लोग आँखों में ध्यान भरकर और कानों में मन को केन्द्रित करके छत्रपति की योजनाएँ सुन रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

“पन्त, अब येसाजी काका को सूचना दो कि दण्डराजपुरी में हमारी जो पैदल सेना है, उसे वहाँ से हटा लें। उस सेना की आवश्यकता अब यहाँ अधिक है, क्योंकि एक बलवान् शत्रु इसी दिशा से बढ़ा आ रहा है।” महाराज की उँगलियाँ मोतियों की माला को मरोड़ रही थीं।

“जी। महाराज, समाचार मिला है कि बादशाह औरंगज़ेब ने अपने भतीजे मुहम्मद शिकोह को प्रतिनिधि बनाकर और नज़राना देकर गोलकुण्डा के कुतुबशाही दरबार की ओर भेजा है। गोलकुण्डावालों ने भी उसका ज़ोरदार स्वागत किया है और उस मुग़ल-प्रतिनिधि को ढाई लाख रुपयों की भेंट दी है।” निलोपन्त एक-एक करके औरंगज़ेब की चालों की जानकारी दे रहे थे।

“बिलकुल साफ बात है, पन्त। जो दरबार औरंगज़ेब के औरंगाबाद में पहुँचते ही उनके स्वागत के लिए अपने सरदारों को भेजते हैं, उन्होंने कुछ सोच-समझकर ही ऐसा किया होगा। कुतुबशाही दरबार हो या आदिलशाही हो, दोनों इस भ्रम में हैं कि धर्म के नाम पर वे आक्रमणकारी के मन की धार्मिकता या मानवता को जगा सकेंगे। वे दोनों दरबार इसी निष्फल आशा पर जिये जा रहे हैं।”

“आज्ञा हो, तो हम कुछ कहें स्वामी?” प्रह्लादपन्त ने हाथ जोड़कर पूछा।

“अवश्य कहो।” महाराज ने उनकी ओर दृष्टि फेरी।

“स्वर्गवासी महाराज की राजनीति यह थी कि दक्षिण देश के तीन राज्यों की शक्ति को संगठित किया जाय और तीन शक्तियों का सम्मिलित मोर्चा लगाया जाय। इसलिए...”

“रुक क्यों गये पन्त? तुम्हारा क्या मत है पन्त? आज यदि आबासाहब होते, तो उनकी राजनीति क्या होती? उन्होंने उस समय राजपूत मिर्ज़ा राजा के साथ जैसी सुलह की थी, क्या वे इस समय औरंगज़ेब से वैसी सुलह करते? और वे सुलह करते भी, तो क्या औरंगज़ेब तैयार हो जाता? पन्त, याद रखो, दक्षिण का कोई भी राज्य बवण्डर वाली आँधी के सामने जलता दीया हाथ में लेकर जाने का साहस नहीं करेगा। आदिलशाह हो या कुतुबशाह हो, ये ऊपर से हमसे मित्रता दिखाएँगे और औरंगज़ेब के सामने ये दोनों दुम दबा लेंगे। दूसरी ओर अँग्रेज़, हबशी और पुर्तगाली भी मौक़ा पड़ने पर उसका साथ देंगे और अपनी-अपनी समुद्री गुफाओं को और दृढ़ बनाएँगे। इस बार की लड़ाई तो हमें अकेले ही लड़नी पड़ेगी। यदि कोई साथ भी देगा तो केवल अरबी नौसैनिक।”

सब अपने महाराज की निश्चयपूर्ण मुद्रा देख रहे थे।

छत्रपति पाचाड़ गये थे। वहाँ जाकर उन्होंने साईसों को आदेश दिये कि उमदा घोड़ों को पूरी तरह तैयार रखा जाय। फिर छत्रपति रायगढ़ आकर अपने राजकार्यालय में पधारे। धर्माधिकारी पण्डित राव मोरेश्वर सम्मुख आ उपस्थित हुए। अपने हाथ में पकड़े हुए काग़ज़ के पुलिन्दे को दिखाकर कहने लगे, “महाराज, सज्जनगढ़ के मठ में समर्थगुरु के जो शिष्यगण हैं, उनके बीच मतभेद बहुत बढ़ गया है।”

“मठ में?” महाराज को सुनकर बहुत विचित्र-सा लगा।

“जी हाँ।” समर्थगुरु ने यह इच्छा प्रकट की थी कि उनके बाद मठ का प्रबन्ध और देखरेख

https://t.me/Sahityajunction

दिवाकर गोसाईं करें। सज्जनगढ़ में जो साधु-सन्त रहते हैं, उनकी व्यवस्था का उत्तरदायित्व भानजी और रामजी गोसाईं का रहेगा। समर्थजी ने यह आदेश दिया था। दिवाकर गोसाईं इस आदेश के अनुसार ही चल रहे थे, परन्तु उद्धव गोसाईं ने बीच में ही बखेड़ा खड़ा कर दिया। सज्जनगढ़ के क़िलेदार जिजोजी काटकर ने भी उनका ही पक्ष लिया और अनावश्यक हस्तक्षेप कर डाला है, महाराज।"

"जिजोजी ने किया ऐसा? क्या किया उन्होंने?" महाराज बखेड़े की पूरी जानकारी पाना चाहते थे।

"क़िलेदार जिजोजी ने भानजी और रामजी के द्रव्य-पात्र तथा मठ-वस्त्रादि वस्तुएँ छीनकर उद्धव गोसाईं के हवाले कर दीं।"

"क्या अधिकार था क़िलेदार को ऐसा करने का?" महाराज की आँखों में क्रोध की चमक आ गयी थी। "धर्माधिकारी, जिजोजी काटकर को आज्ञापत्र दो। समर्थगुरु ने अपने जीवनकाल में जो आज्ञाएँ दीं, वे ही अन्तिम मानी जाएँ। उद्धव गोसाईं द्रव्य-लोभ के कारण बखेड़ा खड़ा कर रहे हैं। तुम्हें क्या अधिकार था कि भानजी और रामजी के मठ-वस्त्रों को छीनकर दूसरे को दिया जाय? द्रव्य, पात्र, वस्त्रादि सब पूर्ववत् भानजी और रामजी को दे दो। दिवाकर गोसाईं हमसे भेंट होने पर जो कुछ चर्चा करेंगे, तद्नुसार बाद में कामकाज होगा। तुम क़िलेदार हो, तुम्हें इस झंझट में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।" मोरेश्वर आज्ञापत्र लिखकर लाने चले गये। महाराज के मन में विचार-चक्र घूमने लगा—'समर्थगुरु की 'जय जय रघुवीर समर्थ,' नान्दी के स्वर अभी पूरी तरह शून्य में खोये भी नहीं हैं और मठ में तथा शिष्यों के बीच अभी से यह छीना-झपटी शुरू हो गयी। बोनेवाले के हाथ कितने ही पुण्यशाली, सगुनी क्यों न हों, पर यदि बीज ही सड़ा-गला निकले, तो कोई क्या करे?'

जंजिरा-अभियान से लौटकर आये येसाजी, हिम्मतराव और नारुजी त्रिम्बक के साथ महाराज रायगढ़ से उतरे। गर्मी के दिन थे। मृगनक्षत्र अभी उदित नहीं हुआ था। महाराज पाचाड़ से चल पड़े और खेड, चाकण आदि नगरों में मुक़ाम करते हुए वे नासिक विभाग के पट्टागढ़ तक आ पहुँचे। यहाँ रामसेज के हमले में मदद करने के लिए मुग़ल सरदार मुजफ्फ़र ख़ाँ, रणमस्त ख़ाँ और मुहर्रम सिंह की सेना पड़ाव डाले पड़ी थी। मराठा सेना ने इसी छावनी पर धावा बोल दिया।

महाराज सम्भाजी पट्टागढ़ के आस-पास आ पहुँचे हैं, यह सूचना पाकर रूपाजी और मानाजी मोरे एक दिन सुबह कुछ चुने हुए घुड़सवारों सहित महाराज से मिलने उनकी छावनी में आये। महाराज उनसे अत्यन्त उत्साह से गले मिले और बोले, "रूपाजी, तुमने अपने नाम के अनुरूप ही बहादुरी दिखलायी है, और अब भी दिखा रहे हो। रूपाजी, हमें बहुत सन्तोष है।"

"इन्हें शत्रु की छावनी में 'रूपा-मोज़दा' कहते हैं। 'रूपा-मोज़दा' अर्थात् 'शैतान का बच्चा'।" मानाजी रूपाजी की ओर देखकर हँसते हुए कह रहे थे।

"बिलकुल ठीक है मानाजी, शैतान की चालों का जवाब शैतान की चालों से ही देना चाहिए। सज्जनों की चाल वहाँ व्यर्थ हो जाती है।" महाराज ने भी हँसकर मानाजी के कथन की पुष्टि की। रूपाजी और मानाजी का यथोचित सम्मान करके महाराज ने उनके साथ ही त्रिम्बकगढ़, बागलाण आदि प्रदेशों का स्वयं निरीक्षण किया। रामसेज दुर्ग की सुरक्षा के लिए नियुक्त दौड़ती-फिरती छावनी का भी निरीक्षण किया।

https://t.me/Sahityajunction

रूपाजी को यह आश्वासन देकर कि उन्हें सैनिक सहायता, हथियार, गोला-बारूद और रसद भेजी जाएगी, महाराज रायगढ़ लौट आये। महाराज ने जैसा अनुमान किया था, वही हुआ। औरंगज़ेब ने बरसात शुरू होने से पहले चार दिशाओं में अपने पंजे फैला लिये थे।

औरंगज़ेब ने मीर मुहम्मद मोमिन नामक सरदार को छः हजार तुर्क सैनिक देकर सूरत बन्दरगाह की ओर भेज दिया।

फिर उसने गोवा के पुर्तगाली वायसराय की ओर अपना विशेष प्रतिनिधि भेजा। उस प्रतिनिधि के साथ जो ख़लीता भेजा गया था, उसका आशय था : 'क़ाफ़िर सम्भा को आप मदद न दें। आपको उनके विरुद्ध जिस तरह की मदद की जरूरत हो, वह तुरन्त भिजवायी जाएगी।'

उसके पंजे का सबसे ज़हरीला नाख़ून वह पत्र था, जो उसने रुहुल्ला ख़ाँ को अहमदनगर की छावनी में भेजा था। उस लड़ाके सरदार को आलमगीर का नेक हुक्म मिला था : 'जितने भी मराठा देशमुख, हवलदार, जमींदार, क़िलेदार वगैरह को बहलाया-फुसलाया जा सके, उन्हें सब तरह की मनसब, ख़िलअत, बख्श करके शाही चाकरी में शामिल कर लो।'

औरंगाबाद में लगे हुए शाही दरबार में अनुरोध सिंह और किशोर सिंह नामक कट्टर राजपूत वीरों को सहायक बनाकर औरंगज़ेब ने अपने बेटे आज़मशाह को नियुक्त किया। नियुक्ति का उद्देश्य था कि ये लोग सम्भाजी का पीछा करें। इस दरबार में ही शाही फरमान को शाही दुआ से मज़बूत बनाने के लिए औरंगज़ेब तख़्त छोड़कर फर्श पर उतर आया था। आज़म के महीन अँगरखे का कोर उठाकर उसे चूमकर उसने ज़ोर से कहा था—'अहमदुल्लिल्लाह।'

संकट सिर पर आ ही गया था। इसलिए अब सम्भाजी ने दृढ़ता से उसका सामना करने का पूरा संकल्प कर लिया था। इसके लिए बरसात के मौसम का लाभ उठाकर प्रान्तों-विभागों में घूमकर नयी और उत्साहपूर्ण सेना का संगठन करना आवश्यक था। चिटनीस खण्डोजी, कार्यालयाध्यक्ष चिमणगाँवकर की सहायता से इस सम्बन्ध में पत्र लिखकर महाराज के हस्ताक्षरों के लिए ला रहे थे। दाभोल के गंगाजी दादाजी, पुणे के दामाजी रघुनाथ, सातारा के अम्बाजी मोरदेव, कराड के तेंकाजी रुद्र, फोंडा के धर्माजी नागनाथ आदि चारों ओर के सूबेदार अपने इलाक़े की छोटी-बड़ी बस्तियों में जाकर तगड़े नौजवानों को सेना में भर्ती कर रहे थे।

औरंगज़ेब को दक्खिन देश में गया हुआ देखकर उत्तर देश में सुलतान तारा उसके विरुद्ध विद्रोह कर बैठा था। उसे जाँचने-परखने की दृष्टि से महाराज ने खण्डोजी को एकान्त में बुलाकर सुलतान के नाम भी एक पत्र लिखवाया।

वर्षा ऋतु शुरू होने को थी, इसलिए बरार प्रदेश से हम्बीरराव, कोंकण से कवि कुलेश, सोलापुर से आनन्दराव, रायगढ़ लौट आये थे। मराठा युद्ध-नौकाओं ने कई मुठभेड़ों में अँग्रेजों के कई जहाज़ लूट लिये थे। पेण विभाग में सिद्दी कासिम को क़ाबू में रखने के लिए मराठा नौ-सेनानायक मायनाक और सिद्दी सम्बूल की अस्सी नौकाएँ समुद्र में पहरा दे रही थीं। दादाजी रघुनाथ ने जंजिरा का घेरा पूरी दृढ़ता से लगाया हुआ था। थल प्रदेश में मराठों के खन्देरी जलदुर्ग की सुरक्षा के लिए पाँच हज़ार जल-सेना पूरी चौकस बनी हुई थी।

मृग नक्षत्र के आते ही वर्षा की झड़ियाँ प्रारम्भ हो गयीं। शहाबुद्दीन ख़ाँ रामसेज क़िले की

https://t.me/Sahityajunction

तलहटी में पड़ाव डाले पड़ा था। बादशाह ने ख़ान बहादुर कोकलताश, कासिम ख़ाँ, दलपत बुन्देला, और करणसिंह को शहाबुद्दीन ख़ाँ की सहायता के लिए भेजा था। ये सेनाएँ बरसात के कारण नासिक में ही डेरा डालकर रुक गयीं।

महाराज राजकार्यालय के झरोखे में से बाहर की झड़ियाँ देखते हुए खण्डोजी को वे पत्र लिखवा रहे थे, जो आदिलशाह और कुतुबशाह को भेजे जाने थे। इस शृंखला को तोड़ते हुए एक प्रहरी ने भीतर आकर सूचना दी, "बहिर्जी आये हैं।" महाराज ने दरवाज़े की ओर देखा और रुक गये। कम्बल लपेटे हुए था बहिर्जी। वह पूरी तरह भीगा हुआ था और सर्दी से काँप रहा था। सर्दी से बजते हुए दाँतों को प्रयत्नपूर्वक रोकता हुआ वह कहने लगा, "औरंगाबाद से ख़बरों का आनेवाला प्रवाह रुक गया है, मालिक। अपने निपुण और अनुभवी दस जासूस दुश्मन के हाथ लग गये। औरंगाबाद में कोतवाली चबूतरे पर हरामज़ादों ने हमारे उन दस के दस जासूसों के सिर काट डाले।"

किसी राज्य के दस जासूस अर्थात् दस चलते-बोलते क़िले ही होते हैं। समाचार सुनकर महाराज भी डाँवाडोल हो गये। वे समझ नहीं पा रहे थे कि जासूसों के प्रधान-अधिकारी को इस समय क्या कहकर दिलासा दें। वे चलते हुए बहिर्जी के सामने आये। उसके कन्धे पर राजा ने हाथ रखे और मुख से टूटे-फूटे शब्द निकल पाये, "तुम भीग गये हो, बहिर्जी। कपड़े बदलकर अलाव पर जाकर अच्छी तरह ताप लो।"

अब रायगढ़ के लोहारख़ाने में रातदिन बनते हथियारों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। सिकलीगर घूमते हुए चक्के पर उन हथियारों को माँजकर तेज़ कर रहे थे। बहिर्जी को रायगढ़ आये अभी दो ही दिन बीते थे कि रामसेज विभाग की ओर से सम्भाजी जगताप का भेजा हरकारा रायगढ़ आ पहुँचा। उसने ऐसी भयानक ख़बर सुनायी कि जो बहिर्जी द्वारा सुनायी गयी ख़बर से भी अधिक भीषण थी। हरकारा सिर झुकाकर महाराज से कह रहा था, "राजपूत करणसिंह की छावनी पर रूपाजी ने धावा बोल दिया था। उस धावे में रूपाजी घायल हो गये हैं। उनके घावों पर पट्टियाँ बाँधकर उन्हें त्रिम्बकगढ़ की छावनी में ले जाया गया है।" इस ख़बर को सुनकर महाराज को लगा, मानो उनका दाहिना हाथ ही जाता रहा है।

कर्नाटक से हरजीराजा का भेजा हुआ प्रतिनिधि जैतजी काटकर रायगढ़ आया था। लेखाध्यक्ष खण्डेराव पानसंबल उसे साथ लेकर महाराज के सामने उपस्थित हुए। इस बीच कर्नाटक प्रान्त में भी बहुत से परिवर्तन हो गये थे, हरजीराजा अत्यन्त कुशलतापूर्वक कर्नाटक राज्य की सुरक्षा और वृद्धि के कार्य में लगे हुए थे।

"कविजी आ रहे हैं।" कुलेश का राजकर्मचारी भीतर आकर सूचना दे गया। कन्नौजी ढंग की, गुलाबी रंग की पगड़ी पहने हुए कुलेशजी उत्तरीय का छोर हाथ में पकड़े हुए नमस्कार करते हुए कक्ष में आये।

"कविजी, कोंकण विभाग में शहज़ादे की क्या गतिविधियाँ हैं?" महाराज ने आते ही कुलेश से पूछा।

"जी, शहज़ादे ने राजा रामसिंह को पत्र लिखा है।"

https://t.me/Sahityajunction

“हमने भी उन्हें पत्र लिखा है और उनके उत्तर की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु कविजी, मिर्ज़ा राजा जयसिंह का जो सामर्थ्य और योग्यता थी, वैसी हमें उनके इस पुत्र में दिखलाई नहीं देती!”

“जी, बात यह है कि मिर्ज़ा राजा रणक्षेत्र के सूरमा थे, रामसिंह कोठी में बैठना जानते हैं।”

महाराज इसी तरह कवि कुलेश से बड़ी देर तक राजनीति के बारे में चर्चा करते रहे। बाहर जाते समय कुलेशजी ने चौल विभाग की एक घटना से महाराज को सूचित किया, “चौल में जिवाजी विनायक ने पुर्तगालियों का एक जहाज़ पकड़ लिया है। इस जहाज़ में खम्बायत के एक व्यापारी का माल है। जहाज़ उस व्यापारी का नहीं है। पुर्तगाली अपना जहाज़ वापस माँग रहे हैं।”

“ठीक है। परन्तु ऐसी माँग करनेवाले पुर्तगाली हमें ये क्यों लिखते हैं कि हमारी और अरबों की मित्रता उन्हें पसन्द नहीं है? उनका सम्बन्ध ही क्या है इस बात से?” महाराज की क्रोधपूर्ण मुद्रा देखकर कवि कुलेश वहाँ से चुपचाप विदा हुए।

इस घटना को समाप्त करने की दृष्टि से महाराज ने पेशवा निलोपन्त को बुला भेजा और उन्हें आज्ञा दी, “जिवाजी को आदेश दो कि चौल विभाग में पकड़ा हुआ जहाज़ पुर्तगालियों को वापस दें और अपने चुने हुए विश्वासपात्र आदमियों को छोटे-छोटे दल बनाकर चौल के जलकोट के आस-पास फैला दें।”

पहला आदेश तो स्पष्ट ही था, परन्तु दूसरे का उद्देश्य निलोपन्त समझ नहीं पाये।

महाराज चहलक़दमी कर रहे थे। जंजिरा का गड़ा हुआ काँटा निकल ही नहीं रहा था। जंजिरा सँकरे मुँह के गढ़े में पड़ी हुई उस वस्तु के समान था कि जो दिखाई तो दे रही हो, पर जिसे हाथ डालकर निकाला न जा सके। रामसेज दुर्ग तो दुश्मन के घेरे में बन्द था ही।

“रामसेज का क्या समाचार है पन्त?” महाराज अपने ही विचारों में खोये हुए थे।

“शहाबुद्दीन ख़ाँ और कासिम ख़ाँ ने बरसात होते हुए भी उस क़िले पर तीन बार हमला किया, परन्तु अपने क़िलेदार ने उन तीनों हमलों को नाकाम कर दिया।”

“पन्त, उस गढ़ के घेरे को तितर-बितर करने के लिए आज ही एक हज़ार घुड़सवारों को रामसेज भेजो।”

“जी, स्वामी। सरदार सलावत ख़ाँ दो सौ मन बारूद के बोरे भरकर रामसेज की सहायता के लिए रवाना हो चुका है। हमारा शत्रु इसी कुमक के बल पर ज़ोर लगा रहा है।”

“कुडाल और डिचोली के बारूद के कारख़ानों के प्रबन्धक गणोराम और मोरो दादाजी को लिखो कि जितना भी सम्भव हो, उतना बारूद का भण्डार जल्दी-से-जल्दी त्रिम्बकगढ़ के केसो त्रिमल तक पहुँचाओ, ताकि वह रामसेज के अपने क़िलेदार की सहायता कर सके।”

जैसे कोई कुलीन नारी अपने हाथ में पकड़े हुए कुंकुम के सिन्दोरे को हर प्रकार से गिरने से बचाती है, तथैव महाराज इस समय रामसेज को बचाने का दृढ़ निश्चय ठाने बैठे थे। रामसेज के क़िलेदार को जब शत्रु के आक्रमण की आहट मिलती थी, तो वह ऊँचे पहाड़ी क़िले से भारी-विशाल शिलाओं-पत्थरों को या गीली लकड़ी के लट्ठों को उतारकर ढकेल देता था। ऊपर आकाश से बरसात की मार से और क़िले से इन पत्थरों की मार से शहाबुद्दीन ख़ाँ पूरी तरह हैरान

https://t.me/Sahityajunction

हो गया था। उसने गढ़ के परकोटे में बारूद की कुछ सुरंगें लगवायी थीं, परन्तु वे सुरंगें बेवक़्त फट पड़ीं और उसके अपने कई आदमी इस धमा चौकड़ी में मारे गये। ऊँचा रामसेज दुर्ग ऐसा तनकर खड़ा था, जैसे पवनपुत्र हनुमान आकाश में उड़ना चाहते हों।

---

1. पाँच हाथ या छह फीट का अन्तर।

https://t.me/Sahityajunction

दस

"हबशी, हबशी, हबशी!!!" क्षुब्ध और व्याकुल होकर मुट्ठियाँ भींचकर छत्रपति जैसे अब अपने आपसे ही लड़-भिड़ रहे थे। कवि कुलेश, प्रह्लादपन्त, निलोपन्त, खण्डेराव, आदि उपस्थित जन भी दादाजी द्वारा भेजी गयी ख़बर से सन्त-से रह गये थे। दादाजी ने दण्डराजपुरी से एक हरकारे द्वारा यह ख़बर भिजवायी थी। ख़बर थी कि सिद्दी ख़ैरत दिनदहाड़े नागोठणे बन्दरगाह में घुस गया था और उसने शहर के चौक के बीच रिआया के कई लोगों की नाक काट डाली थी।

"जंजिरा के घेरे से हमने येसाजी कंक की पैदल—सेना को हटा लिया था, इसी से हबशी की उतनी हिम्मत हुई है।" प्रह्लादपन्त का सुझाव था कि जंजिरा के घेरे को और अधिक मज़बूत बनाया जाय।

महाराज भी सोच में डूब गये थे। जंजिरा के घेरे के कारण सरकारी ख़जाने पर बोझ बहुत बढ़ गया था।

"निलोपन्त, दादाजी को लिखित सूचना भिजवाओ। लिखो कि वे जलदुर्ग की सेनाओं को वहाँ से हटाकर महाड़ आकर रुक जाएँ। दौलत ख़ाँ, मायनाक और जिवाजी को लिखो कि अपनी-अपनी समुद्री छावनियों में, जलयानों में, हर सैनिक के साथ जागरूक बने रहें।" महाराज ने इस बारे में निर्णय कर दिया।

महाराज ने सोचा कि ये हबशी जिसके बल पर उछल-कूद मचा रहे हैं, क्यों न उन कुटिल शक्तियों को ही सीधा किया जाय। उन्होंने निलोपन्त को एक और आज्ञा दी, "चौल और गोवा प्रदेश के पुर्तगालियों तथा मुम्बई के अँग्रेज़ों को कड़ी चेतावनी दो कि तुम जो उल्टा-सीधा दाँव-पेंच चला रहे हो, उन्हें हम अच्छी तरह जानते-समझते हैं।"

"कोल्हापुर से हम्बीरराव ने सन्देश भेजा है, स्वामी। समाचार मिला है कि आदिलशाही का सेनापति सर्जा ख़ाँ बीस हज़ार सेना लेकर मिरज की छावनी तक आ पहुँचा है। उसकी अगली चाल क्या होगी, कुछ पता नहीं चलता।" खण्डेराव पानसंबल ने चिन्तित होकर कहा।

"पेशवा, तुम मामा हम्बीरराव को लिखो कि इस कठिन अवसर पर हमें बीजापुर के आदिलशाह से मित्रता बनाये रखनी पड़ेगी। तुम सर्जा ख़ाँ की गतिविधियों पर नज़र रखो। उसकी अगली चाल स्पष्ट होने तक पन्हाला, कोल्हापुर और कराड के प्रदेशों की सावधान रहकर

https://t.me/Sahityajunction

रक्षा करते रहो। आजमशाह को भी अपनी धाक में रखो।"

"कासिम ख़ाँ ने बालकुण्ड घाटी की ओर से रामसेज पर हमला किया था, पर हमारे क़िलेदार ने पत्थर लुढ़काकर हमलावरों को पीछे हटा दिया। ख़बर है कि बादशाह ने कासिम ख़ाँ को आज्ञा दी है कि वह कोंकण प्रदेश की तलहटी के प्रदेश में उत्तर दिशा से उतरे और राणोजी दक्षिण दिशा से उस तलहटी में उतरें।" निलोपन्त ने बादशाह की कुटिल चाल की जानकारी दी।

"पन्त, औरंगज़ेब के जितने भी सैनिक कोंकण प्रदेश की तलहटी में उतर आएँ, उतना ही अच्छा है। यही वह प्रदेश है कि जहाँ हमारे तुकोजी, रूपाजी, मानाजी आदि सेनानी उनकी वैसी ही दुर्गत बनाएँगे, जैसी कि हसन ख़ाँ की उन्होंने बनायी थी।" औरंगज़ेब की हरेक चाल को सुनकर भी महाराज थोड़ा भी विचलित नहीं होते थे। भय-आशंका उनके मन को कँपाती नहीं थी। हर दिन उनके मन में अनजाना दूना-चौगुना उत्साह समाता जा रहा था।

"कंकड क़िले का थानेदार शाह अलील ख़ाँ हमारी क़ैद में था। वह हमारी क़ैद से भागकर बहादुर ख़ाँ की नासिकवाली छावनी से जा मिला है।" खण्डोजी ने कहा।

समाचार सुनकर महाराज के माथे पर बल पड़ गये।

"चिटनीस, गिरफ़्तार क़ैदी भाग जाते हैं, सो चालाकी से या झाँसा देकर नहीं भागते—वे भागते हैं कुछ भेंट देकर। हर क़िलेदार को आज्ञापत्र लिखकर सूचित करो कि अब आगे से कभी ऐसा हुआ, तो क़िलेदार को क्षमा नहीं किया जाएगा।"

कहने को तो महाराज यह कह गये, परन्तु उनके मन में कहीं गहरे में छिपकर कोई चीख़-चीख़कर पूछ रहा था—'शिर्के और निम्बालकर जैसे आपके अपने सम्बन्धी ही हर रोज़ भागकर शत्रु से मिल रहे हैं। आप छत्रपति जी महाराज उनके विषय में क्या कुछ कर पाये हैं?' फिर इस अन्धकार को मन से दूर हटाकर उन्होंने सब अधिकारियों को जाने को कहा, पर केवल कवि कुलेश को रोक लिया।

"कविराज, शहज़ादा अकबर को सूचना भेजो कि हम उससे चर्चा-मन्त्रणा करने स्वयं आ रहे हैं।" कवि कुलेश को आज्ञा दी गयी।

"जी हाँ।" कवि कुलेश ने आज्ञा स्वीकार की। वास्तव में इस समय कवि कुलेश कुछ कहना चाहते थे। क्योंकि महाराज ने अभी-अभी उन्हें अकेले को ठहरने के लिए कहा था और बाहर जानेवाले सचिवों और अधिकारियों के मुख पर छायी हुई नाराज़गी कवि कुलेश ने स्पष्ट रूप से देखी थी। परन्तु जब उन्होंने महाराज को ही सोच-विचार में डूबा हुआ पाया, तो वे बात को मन में दबाकर रह गये। आजकल कोई भी मन्त्री कवि कुलेश द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर भी उनके घर भोजन के लिए नहीं जाता था। कवि कुलेश महाराज के इतने निकटवर्ती बनें, यह बात मन्त्रियों को पसन्द नहीं थी।

दो दिन बाद ही महाराज कवि कुलेश के साथ वर्षा की झड़ियों की परवाह न करते हुए रायगढ़ से निकल पड़े। वे महाड और महाबलेश्वर की चढ़ाई पर चढ़ते-उतरते हुए, चिपलूण, संगमेश्वर में पड़ाव डालते हुए राजापुर पहुँचे। वहाँ अकबर डेरा डाले पड़ा था। उनके साथ केवल चुनिन्दा घुड़सवार थे। डेरे के पास पहुँचते ही शहज़ादा अकबर ने दुर्गादास राठौर के साथ उनकी अगवानी की और आदरपूर्वक उन्हें बैठक पर बिठाया। महाराज और अकबर की यह दूसरी

https://t.me/Sahityajunction

मुलाक़ात थी। महाराज के लिए जो नज़राना लाया गया, उसे हाथ लगाकर उन्होंने स्वीकृत किया। बैठक में चर्चा प्रारम्भ हो गयी।

"राजासाहब, हम तो तंग आ गये हैं इस हालत से। शेर होकर भी घास खानी पड़ रही है। किस पाप की सज़ा है यह?" अकबर ने बेचैनी से कहा।

"यही कहते हैं हम। शेर को अपना भोजन ढूँढ़ना पड़ता है, सारे जंगल को छानना पड़ता है। यहाँ गुफा में बन्द रहकर आप कैसे कामयाब होंगे?" महाराज ने कहा।

"आपकी क्या राय है राजासाहब?" समुद्र के तटवर्ती प्रदेश कोंकण में रहकर भी अकबर अभी तक दिल्ली के तख़्त की उम्मीद लगाये बैठा था। महाराज तो अकबर को केवल साधन के रूप में उपयोग में लाना चाहते थे।

"तुम्हारी क्या सलाह है राठौरजी?" महाराज ने राठौर को चर्चा में सम्मिलित कर लिया।

"हम सोचते हैं कि औरंगज़ेब अब दक्खिन देश में उलझा हुआ है। अब वो यहाँ से हिलेगा नहीं। इसलिए हम शहज़ादे के साथ राजस्थान लौट जाएँगे। वहाँ राजपूतों को इकट्ठा करेंगे।"

"बिलकुल ठीक सोचा है आपने। हम आपकी इस योजना में क्या सहायता कर सकते हैं?" महाराज ने गलमुच्छेवाले राजपूत को ठीक से देखते हुए पूछा। उन्होंने सोचा, अब यह राजपूत सेना माँग बैठेगा।

"आप सिर्फ़ हमारे जाने का इन्तज़ाम कीजिए।" महाराज आज की स्थिति में सेना देने में असमर्थ हैं, यह सोचकर राठौर ने समझदारी की बात कही।

"क्या मतलब?" रास्ते में जगह-जगह पर शत्रु की छावनियाँ हैं। ऐसा होते हुए भी तुम शहज़ादे को उत्तर देश में ले जाओगे? क्या तुम जानते हो, औरंगाबाद से ही शाही फरमान निकले हैं कि शहज़ादा अकबर को क़ैद करके ले आया जाय।"

"अजी वो क्या ख़ाक क़ैद करेगा हमको? हम उसके ही बेटे हैं। हम समुन्दर के रास्ते उड़ जाएँगे। कहिए, आप हमारी मदद करेंगे?" अकबर चिढ़कर परन्तु दृढ़ता से कह रहा था।

महाराज ने कवि कुलेश की ओर विशेष आशय से देखा और अपना निर्णय बतलाया, "ठीक है। हम तुम्हें हथियारबन्द पहरेदार और सिपाही देंगे। दुर्गादासजी, माता जगदम्बा, आपको सफल बनाएँ।"

महाराज उठे। अकबर से विदा होकर वे राजापुर से निकले। अकबर के लिए यह समझदारी की बात न थी कि वह एक जगह पर डेरा डाले पड़ा रहे। इसलिए वह भी डेरा हटाकर तिकोना जैतापुर की ओर रवाना हो गया।

रायगढ़ के ख़ासमहल में महाराज कवि कुलेश के साथ इस चर्चा में मग्न थे कि शहज़ादा अकबर के बारे में अगला क़दम क्या हो? कक्ष के बाहर पूरुषा नामक विशेष सेवक तथा जोत्याजी केसरकर पहरा दे रहे थे। मावल देश में इन दिनों ख़ूब जाड़ा पड़ रहा था, इसलिए छत्रपति ने कन्धे के चारों ओर दुशाला लपेटा हुआ था।

"कविराज, शहज़ादे के बारे में तुमने जाँच-पड़ताल कर ली है क्या? वह सचमुच ही गुजरात

https://t.me/Sahityajunction

जाने के लिए तैयार है? क्या उसमें इतनी शक्ति है कि वह राजपूतों के सहयोग से हिन्दुस्तान को संगठित और शक्तिसम्पन्न बना सके?" औरंगज़ेब की शह को उलटी मात देने के बारे में सोचते हुए महाराज एक के बाद दूसरा सवाल पूछते जा रहे थे। उनकी योजना बहुत दूर की थी। आकाश को भी बाँध लेने की सोची थी उन्होंने। इस दृष्टि से उन्होंने उत्साही दुर्गादास राठौर को बुलाया था। महाराज का विचार था कि उनके साथ अपनी दस हज़ार फ़ौज दी जाए और अकबर को गुजरात भेज दिया जाय। औरंगज़ेब यदि उसे गिरफ़्तार करने के लिए तथा उत्तर देश की रक्षा के लिए उत्तर की ओर बढ़े, तो अकबर को अम्बर-नरेश राजा रामसिंह की सहायता देकर औरंगज़ेब को ही क़ैद कर लिया जाय। पत्थर से ईंट कोमल ही होती है, इस तथ्य को जानकर अकबर को दिल्ली के तख़्त पर बैठाया जाय।

"जी हाँ, हमने शहज़ादे से बातचीत की है। वह सब कुछ करने के लिए तैयार है।" कवि कुलेश ने कहा।

"हम जानते हैं कविजी, यह अकबर सोने की कटार है। कटार कितनी भी प्यारी क्यों न हो, फिर भी कोई उसे छाती में छिपाकर थोड़े ही रख सकता है। अकबर शाही घराने का आदमी है। हमें उससे हर सम्भव लाभ उठाना चाहिए।"

"सशस्त्र सैनिकों को उनके साथ देकर उसे अपने राज्य से बाहर भेज देना ही हमारे लिए हितावह है। इस दृष्टि से हम अपने किसी ऐसे चतुर सेनानी को खोज रहे हैं, जो अपनी सेना पर कुशलता से नियन्त्रण रख सके।"

अब कुलेश भी अकबर के बारे में सोचने लगे थे। वे कन्नौजी शैली से नमस्कार करके बाहर चले गये। कक्ष में महाराज अकेले ही घूमने लगे। उन्हें हर जगह, जहाँ-तहाँ औरंगज़ेब के चेहरे नाचते दिखाई दे रहे थे।

"पेशवा आये हैं।" पूरुषा सेवक की सूचना से महाराज विचारों की दुनिया से लौट आए।

"स्वामी, दो विशेष व्यक्ति रायगढ़ आये हैं। एक हैं धनाजी जाधव, जिन्हें सेनापति हम्बीरराव ने मिरज-अकोला की ओर से भेजा है और दूसरे हैं शहज़ादे के सहायक दुर्गादास।" पेशवा ने भीतर आते ही कहा।

"अच्छा। कल सुबह दोनों को मिलकर आने के लिए कहो। हमें उनसे काफी बातें करनी हैं। तुम स्वयं सेना लेकर कल्याण प्रदेश की ओर कूच करो।"

"जी, महाराज..." निलोपन्त कहते-कहते संकोचवश बीच में ही रुक गये।

"क्यों पेशवा, रुक क्यों गये? कहो।"

"सिद्दी कासिम हमारे कई नाविकों को पकड़कर मुम्बई ले गया था। वहाँ जो नाविक धर्म बदलने को राज़ी नहीं हुए, उनको मार डाला गया और..."

"क्या? और क्या हुआ पेशवा?"

"सुना है कि अपने घायल नौ-सेनानायक सिद्दी मिस्त्री को भी मुम्बई ले जाया गया है।"

चिटनीस खण्डोजी लेखनी से लिख रहे थे और महाराज उन्हें राजा रामसिंह के नाम एक ख़लीता

https://t.me/Sahityajunction

लिखवा रहे थे : 'दक्खिन में आये हुए शहजादे को और दुर्गादास को हम सेना के साथ अहमदाबाद के रास्ते गुजरात भेज रहे हैं। हमारा कोई वीर सेनापति उस सेना का नेतृत्व करेगा। तुम स्वयं बुद्धिमान हो। इस समय सबके लिए आवश्यक है कि मिलकर औरंगज़ेब की चालों का काटपेंच से सामना करें। आपके बुज़ुर्गों ने मुग़ल-दरबार की आजीवन सेवा की थी। उसका क्या अन्त हुआ, इसे ध्यान में रखकर ख़ूब सोच-समझकर आचरण कीजिए... यदि औरंगज़ेब दक्खिन से उत्तर की ओर लौट ही पड़े, तब उसे क़ैद करने की भी योजना बनानी चाहिए।..." कुछ ऐसा आशय था उस ख़लीते का।

खण्डोजी ने ख़लीते पर चिकोटीभर कोमल रेत फैला दी।

"चिटनीस, यह ख़लीता किसी साहसी और विश्वासपात्र गुप्तचर के हाथ दो। बहुत दूर जाना है इसे।" ख़लीते के गोल लिपटे काग़ज़ की ओर देखते हुए महाराज ने कहा।

आबाजी सोनदेव का देहावसान होने के कारण सुरनीस, सचिव-पद, रिक्त हो गया था। महाराज ने एक दरबार आयोजित करके रामचन्द्र नीलकण्ठ भादणेकर को 'सुरनीस' पद की मुद्रा तथा सम्मान-वस्त्र प्रदान किये। कुडाल से लेकर तुंगभद्रा नदी तक फैले हुए विशाल प्रदेश का अधिकार उन्हें दिया गया।

महाराज को अब निरन्तर यह बात कचोट रही थी कि खण्डोजी बल्लाल रणक्षेत्र में पराक्रम दिखाने की असामान्य योग्यता रखते हैं, फिर भी यहाँ राजकार्यालय में लेखनी पकड़कर बैठे हुए हैं। उन्हें उनकी योग्यता के अनुरूप रणक्षेत्र में शूरता दिखलाने का अवसर दिया जाना चाहिए। लेखनी के साथ-साथ उन्हें खड्ग भी चलाना चाहिए।

खण्डोजी, रायगढ़ के क़िलेदार चांगोजी, कुलेश, रायाजी, अन्तोजी के साथ महाराज रायगढ़ से उतरकर पाचाड़ आये। वहाँ धनाजी जाधव और दुर्गादास उनकी अगवानी करने आये। पाचाड़ की अश्वशाला के सामने बीस हज़ार घुड़सवार और पैदल सिपाही अनुशासन में खड़े थे। महाराज ने इन सबको प्रथा के अनुसार विदा किया।

फिर महाराज पाचाड़ के सभागृह में आये। वहाँ चारों ओर से आये हुए जासूस उनके सामने पेश हुए। महाराज बैठक पर बैठे हुए ख़बरें सुन रहे थे। जैसे मीठे, नमकीन, खट्टे-तीखे भोज्य पदार्थों से भरा थाल सामने रखा हो, इस प्रकार जासूसों द्वारा लायी गयी ख़बरें भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं।

"पुरन्धर क़िले की तलभूमि में बादशाह के नाती मुईजुद्दीन के साथ हुई लड़ाई में मराठा-सरदार माणकोजी बल्लाल काम आये।"

समाचार सुनकर खण्डोजी बल्लाल की गरदन एक झटके से ऊपर उठी, परन्तु अगले ही क्षण महाराज के प्रति शिष्टाचारवश उन्होंने फिर गरदन नीचे झुका ली। परन्तु उनकी आँखों में छलक आये आँसू महाराज से छिपे नहीं रह सके। माणकोजी बल्लाल खण्डोजी के भाई थे। समाचार सुनकर वे स्तब्ध रह गये। खण्डोजी के निकट आकर उनके कन्धे को थपकी देकर वे भर्राये गले से कहने लगे, "माणकोजी हमारे राजटोप के माणिक थे। हमने उन्हें खो दिया। तुम्हारे लिए तो वे तुम्हारी लेखनी से भी बढ़कर थे। चिटनीस, तुम तो अपनी लेखनी ही गँवा बैठे हो। भला हम तुम्हें समझाने का साहस कैसे करें कि तुम धीरज रखो, शान्त होओ।"

https://t.me/Sahityajunction

रायगढ़ की तलभूमि में बिखाड़ी बस्ती की नदी के किनारे अर्जोजी यादव, अण्णाजी मलकरे, और हिरोजी इन्दुलकर ने एक शानदार शामियाना खड़ा किया था। महाराज से मिलने के लिए कर्नाटक प्रान्त से आ रहे रघुनाथपन्त हणमन्ते के लिए यह शामियाना खड़ा किया गया था। यह भेंट थी मराठा-राज्य के ही दो भागों कर्नाटक प्रदेश की और मराठा प्रदेश की। रघुनाथपन्त कुछ विशिष्ट जनों सहित आये थे और वहाँ से एक पड़ाव की दूरी पर आकर ठहरे हुए थे।

भेंट का निश्चित दिन आ गया। महाराज जैसे ही छावनी में पहुँचे, सारी छावनी में उत्साह छा गया। आस-पास खड़े लोग अतीव उत्सुकता से देख रहे थे कि अब यहाँ न जाने क्या होगा? सब जानते थे कि महाराज ने हरजीराजा को आदेश दिया था कि कर्नाटक में रघुनाथपन्त को गिरफ़्तार कर लिया जाय। सारे रायगढ़ में यह अफ़वाह फैली हुई थी कि रघुनाथपन्त ने महाराज के नाम एक लम्बा-चौड़ा ख़लीता लिखा है और 'हम स्वयं मिलने आ रहे हैं,' यह सन्देश भिजवाया है। इस कारण अफवाहों का बाज़ार गर्म था और लोग इस भेंट की बात को लेकर उलटी-सीधी बातें कर रहे थे।

महाराज जैसे ही छावनी में पहुँचे, सिंगों और नगाड़ों की ऊँची आवाज़ें गूँजने लगीं। रघुनाथपन्त अकेले आगे बढ़े। उन्हें देखते ही महाराज के मन में पुरानी स्मृतियों का बाँध फूट पड़ा। वे भी झटपट चलते हुए रघुनाथपन्त के सामने आये। रघुनाथपन्त राजकीय प्रथा के अनुसार हथेली माथे से लगाकर मुजरा करने के लिए झुकना चाहते हैं, यह देखते ही महाराज झट से आगे बढ़े और उन्होंने उनका हाथ अपने हाथों में ले लिया। फिर स्वयं महाराज ही रघुनाथपन्त के चरणों में प्रणाम करने के लिए झुकने लगे। वास्तव में अब ऐसा पूजनीय व्यक्ति रहा ही कौन था, जो महाराज को आशीर्वाद दे सके। महाराज को चरणों में झुकता देखकर रघुनाथपन्त एकदम पीछे हट गये और उन्होंने महाराज को ऊपर उठाया। दोनों ने एक दूसरे की आँखों में देखा। दोनों ही आँखें बहुत गम्भीर आशय प्रगट कर रही थीं। छत्रपति ने आज रघुनाथपन्त को गले से लगा लिया। पन्त ने भी बड़े स्नेहपूर्वक उनकी पीठ थपथपायी। प्रौढ़ और अनुभवी 'वृद्धत्व' से उत्कृष्ट युवा 'नृपत्व' मिल रहा था।

रघुनाथपन्त का हाथ अपने हाथ में लेकर महाराज उन्हें शामियाने के भीतर ले गये। भीतर सभागृह के समान बैठक की व्यवस्था की हुई थी। शामियानों के बीचोंबीच गिरदोंवाली दो ख़ास बैठकें बनायी गयी थीं। इन दोनों बैठकों पर महाराज और रघुनाथपन्त बैठ गये। उनके प्रति शिष्टाचार का पालन करते हुए शेष सब लोग भी यथास्थान बैठ गये।

पहले रघुनाथपन्त ने कर्नाटक से लाये हुए चालीस लाख होनों से भरे कई तबक़ पेश किये। महाराज ने उन्हें हस्तस्पर्श दिया और फिर निलोपन्त की ओर देखा। पेशवा ने वे तबक़ सामने ला रखे, जो रघुनाथपन्त के लिए थे तथा जिनमें उनके लिए सम्मान-वस्त्र, ढाल-तलवार आदि उपहार रखे हुए थे। पन्त ने उन तबक़ों को हाथ से छूकर उन वस्तुओं को स्वीकार किया। इसके बाद माँ जगदम्बा की हल्दी-रोली से भरी चँगेरी सबके सामने लायी गयी। सबने उसमें से थोड़ी हल्दी-रोली लेकर अपने माथे पर रेखाएँ अंकित कर लीं।

महाराज ने रघुनाथपन्त से पूछा, "पन्त, कर्नाटक का हालचाल कैसा है?"

"सब ठीक है, महाराज। हरजीराजा नीति और शक्ति से अपने प्रान्त की रक्षा करने में तल्लीन हैं। उस विषय में आप कोई चिन्ता न करें। यदि सम्भव हो, तो आप स्वयं ही एक बार

https://t.me/Sahityajunction

कर्नाटक का दौरा कर लें।"

"तुम्हारे साथ हरजीराजा का व्यवहार कैसा है?" महाराज ने इस बारे में बहुत-कुछ सुना था और इस मामले को वे टाल नहीं सकते थे। इसीलिए उतावलेपन से वे पूछ ही बैठे।

"जी, हमसे उनका सम्बन्ध बिलकुल घर के आदमी का-सा है। वे हमें पिता समान पूजनीय मानते हैं। हम इसीलिए मन में कुछ सोचकर, कुछ तय करके ही यहाँ आये हैं। हथियार चलाते हमारा जन्म बीत गया। अब अपनेपन की, घनिष्ठतापूर्ण हित की कुछ कहना चाहते हैं हम। यदि आज्ञा हो, तो..." पन्त ने जीवन में बहुत देखा-भाला था, बहुत सुख-दुःख झेला था। उनकी निर्भय दृष्टि इस समय जाकर महाराज की आँखों में गड़ गयी थी। सारी सभा में उनकी इस निर्भयता के कारण थोड़ी खलबली-सी मच गयी।

"पन्त, स्पष्ट कहो। संकोच मत करो। अब कोई ऐसा बुज़ुर्ग, कोई ऐसा वन्दनीय व्यक्ति नहीं रहा इस संसार में, जिससे हम कुछ मार्गदर्शन पाएँ या जिसे कुछ दिल की कह सुनाएँ। आबासाहब, बड़ी आऊसाहिबा, समर्थगुरु सब वन्दनीय जन भगवान के घर जा बसे हैं।" महाराज के व्याकुलतापूर्ण वचनों को सुनकर सारी सभा का वातावरण गम्भीर हो गया। सब लोग यह भी जान गये कि अब वन्दनीय जनों के अभाव में हर-एक की ज़िम्मेदारी कितनी बढ़ गयी है।

कुछ कहने से पहले पन्त कुछ देर रुके। उन्हें जो कुछ कहना था, वह तो उन्होंने छावनी में ही निश्चित कर लिया था—परन्तु उन विचारों को शब्दों में बाँधना अब उनके लिए कठिन सिद्ध हो रहा था। मुख से कोई अनावश्यक-अशिष्ट शब्द न निकल जाए, इसके लिए वे शब्दों की रचना करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने एक बार छत्रपति के मस्तक की ओर देखा, जिस पर हल्दी-रोली की अँगुलि-रेखाएँ अंकित थीं। फिर पन्त मन के विचारों को पूरी स्पष्टता और निडरता से कहने लगे :

"बड़े महाराज के स्वर्गवास को अभी थोड़े ही दिन बीते हैं। इतने थोड़े समय में ही उनका यह राज्य उजाड़ क्यों होता जा रहा है? जहाँ-तहाँ उपद्रवी और बाग़ी क्यों सिर उठा रहे हैं? लोग बहलाये-फुसलाये जाकर क्यों भागे जा रहे हैं? भेद और फूट की क्यों बन आयी है?" पन्त ने वही प्रश्न किया था, जो महाराज को सदा व्याकुल किये रहता था। महाराज का मन भीतर से मथित हो उठा था, परन्तु ऊपर से वे शान्त दिखाई दे रहे थे। मन पूरी गहराई में उतरकर कुछ खोज रहा था।

"सहायक, सरदार और मन्त्री यदि विद्रोह और अन्याय का पक्ष ले रहे थे, तो उन्हें मृत्युदण्ड देना उचित ही था। परन्तु उन्हें एकान्त स्थान में ले जाकर मारना चाहिए थे। सबके सामने बुरी तरह क्यों मरवाया गया उन्हें?" पन्त ने पूछा।

अब तो सारी सभा में खलबली मच गयी। सब भयभीत और आतंकित हो उठे। कइयों को लगा—अब महाराज एकदम उठकर खड़े हो जाएँगे। कौन जाने, वे आज्ञा भी दे बैठें कि पन्त को गिरफ़्तार कर लिया जाय।

इस सभा में हम्बीरराव भी बैठे थे। उनकी प्रतिष्ठा और योग्यता भी रघुनाथ पन्त के समान थी। उनसे रहा नहीं गया। बोल उठे, "पन्त, उन अपराधी लोगों ने क्या-क्या किया था, इस बारे में पूरी जाँच-पड़ताल की जा चुकी थी। स्वर्गवासी महाराज ने भी बेलवाड़ी गाँव में सारी छावनी के सामने सखूजी गायकवाड़ की आँखें नहीं निकलवायी थीं क्या? जो लोग अपने राजा की ही जान

https://t.me/Sahityajunction

के गाहक बन रहे हों, उन सेवकों को सम्मानित किया जाना चाहिए क्या?"

सारी सभा आतंकित होकर सोच रही थी—अब सेनापति और पन्त के बीच कहा-सुनी होनेवाली है।

"सेनापति, शान्त रहो। पन्त को कहने दो। उन्हें अधिकार है सब कुछ कहने का।" छत्रपति ने हाथ उठाकर हम्बीरराव को बीच में ही रोक दिया।

राजा के इन वचनों को सुनकर पन्त अब पूरी तरह निर्भय हो गये। कहने लगे, "हमारा क्या है, हम तो सूखा पत्ता हैं और डाल से अटके हुए हैं। आज हैं, कल रहें, न रहें। इतना प्रबल शत्रु अपनी सीमाओं पर आ डटा है, इस बारे में क्या कुछ सोचा है तुमने सेनापति?"

उनके उस सीधे सवाल के कारण अब महाराज को ही बोलना पड़ा, "पन्त, व्यथाकारी बात पूछी है तुमने। शत्रु सीमाओं पर आ डटा है, इसके लिए हम क्या-क्या कर रहे हैं, यह हम ही जानते हैं। राज्य उजाड़ हो रहा है, उसका कारण है औरंगज़ेब के आक्रमण। तीस हज़ार सैनिकों की नयी सेना तैयार की गयी है। स्थान-स्थान पर हमारी सेनाओं और मुग़ल फ़ौजों के बीच मुठभेड़ें हो रही हैं। इन सबके बोझ के कारण सरकारी ख़ज़ाने पर दबाव बढ़ता जा रहा है। एक ओर औरंगज़ेब की फ़ौज़ें सीमाओं में घुस आयी हैं और इस अवसर का लाभ उठाकर समुद्र में पुर्तगाली और हबशी भी सिर उठा रहे हैं। बीजापुर का आदिलशाह और गोलकुण्डा का कुतुबशाह हाथ-पैर समेटकर घर में चुपचाप पड़े हैं। आज यदि आबासाहब होते, तो ऐसी स्थिति में क्या करते? पन्त, तुम्हारी बातों से हम नाराज़ नहीं हुए। हरजी को सूचित करो कि वे कर्नाटक प्रान्त की व्यवस्था सुचारु रूप से करते रहें। और तुम...तुम अब लौटकर कर्नाटक मत जाओ।"

कुछ सोचते हुए महाराज रुक गये। फिर वे खड़े हो गये। सारी सभा के सदस्य भी उठ खड़े हुए। प्रत्येक व्यक्ति किसी सोच-विचार में डूबकर बाहर जा रहा था।

दोपहर को रघुनाथपन्त द्वारा आयोजित भोजन में सम्मिलित होकर महाराज रायगढ़ लौट आये। मृगनक्षत्र का आकाश ज्यों बादलों से घिर आता है उसी प्रकार उनके मन में विचारों की भीड़ लगी हुई थी। वे मौन थे। किसी से भी कुछ बोलते नहीं थे।

उस रात को येसूबाई महाराज के शयनकक्ष में कुलथी की कढ़ी से भरा कटोरा लेकर आयीं। महाराज को विचारमग्न देखकर बोलीं, "क्यों? स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या?"

महाराज ने उनकी ओर देखा। उन्हें याद आयी वह मुद्रा और कटार जो आबासाहब ने येसूबाई को दी थी। साथ ही उस मुद्रा की भी उन्हें याद आयी, 'श्री सखी राज्ञी जयती' जो उन्होंने स्वयं उन्हें दी थी। रघुनाथपन्त के साथ हुई सारी बातचीत इस समय उनके मन में घूमने लगी। उसका विवरण येसूबाई को बताते हुए महाराज ने पूछा, "पन्त के बारे में तुम्हारी क्या सलाह है?"

येसूबाई सोचने लगीं। फिर निश्चयपूर्ण स्वर से बोलीं, "हमें लगता है..."

"क्या लगता है, कहो।"

"पन्त को ही लेखा विभाग की ज़िम्मेदारी सौंपी जाय।"

"...परन्तु लेखाध्यक्ष पद पर खण्डेराव नियुक्त हैं। उनका क्या किया जाय?"

"उन्हें आप अकेले में बुलाकर समझाइए।"

https://t.me/Sahityajunction

हुआ भी येसूबाई की इच्छानुसार ही। रघुनाथपन्त को पूरे सम्मान के साथ लेखाध्यक्ष पद के सम्मान-वस्त्र प्रदान किये गये। कर्नाटक प्रान्त के लेखाध्यक्ष पद पर रघुनाथपन्त के सुपुत्र तिमाजी रघुनाथ को नियुक्त किया गया। खण्डेराव को समझा-बुझाकर और उनकी सम्मति से ही यह सब हो पाया।

महाराज सिंहासन के चबूतरे पर ही चहलक़दमी कर रहे थे। उनके चारों ओर निलोपन्त, प्रह्लादपन्त, खण्डेराव और रघुनाथपन्त सिर झुकाये चिन्ताग्रस्त खड़े हुए थे। अचानक चहलक़दमी बन्द करके महाराज ने प्रह्लादपन्त से पूछा, "पन्त, तुम अँग्रेज़ों के दरबार से आये हो। गोरों की क्या नीति है?"

"जी, वे इस बात के लिए तैयार हैं कि अब वे हबशी को आश्रय नहीं देंगे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि अब मुग़लों की युद्धनौकाएँ उनके समुद्र से नहीं गुज़रेंगी।" गोरों का प्रतिनिधि हेनरी स्मिथ वहाँ उपस्थित था। उसकी ओर संकेत करते हुए प्रह्लादपन्त ने कहा, "य उनके राजदूत हैं, हेनरी स्मिथ।" हेनरी घुटनों के बल भूमि पर बैठ गया और सिर की ऊँची तथा पंखोंवाली टोपी उतारकर उसने ऊपर-नीचे को हिलायी।

उस प्रतिनिधि के पास कोई नज़राना नहीं है, यह अनुभव करते हुए प्रह्लादपन्त जल्दी से कहने लगे, "स्वामी, अँग्रेज़ दरबार ने इनके साथ नज़राना भेजा था, परन्तु..."

"वह हमारे सामने पेश न करके इन्होंने बीच में ही दबा लिया है, यही कहना चाहते हो न पन्त?"

"क्षमा कीजिए। ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि ये और हम रायगढ़ आने के लिए मुम्बई से करंजा होते हुए निकले। परन्तु चार हबशी जलयानों ने हमारा रास्ता रोक लिया। ये और हम अपने जलयान में ही छिप कर बैठे रहे। कहते हुए शर्म आती है कि इनके पास जो नज़राना था, वह नज़राना और हमारा सामान हबशियों ने लूट लिया और उन्देरी की ओर भाग गये।"

यह सुनकर महाराज क्रोध से भड़क उठेंगे, ऐसा सोचकर प्रह्लादपन्त सिर नीचा करके खड़े हो गये। महाराज से यह बात छिपी न रही। वे उनके पास आकर कहने लगे, "न्यायाधीश, नज़राना लूट लिया गया, इस बात से दुःखी मत होओ। तुम सकुशल लौट आये हो, हमारे लिए यही सन्तोषजनक उपहार है।" फिर गोरों के प्रतिनिधि की ओर इशारा करते हुए महाराज कहने लगे, "इनका यथायोग्य प्रबन्ध कर दो।" साथ ही हेनरी को नज़राना देना भी महाराज भूले नहीं।

हेनरी फिर झुक पड़ा। वह उठकर जाने लगा। दरबार में जो भी बातें हुई थीं, उन्हें वह बिलकुल समझ नहीं पाया था। महाराज की पौरुषपूर्ण सुन्दर आकृति को देखकर ही वह सन्तुष्ट प्रतीत हो रहा था। पन्त और हेनरी चले गये।

कवि कुलेश अकबर के वकील अब्दुल हमीद को साथ लेकर महाराज से मिलने आये।

"स्वामी, शहज़ादा हिन्दुस्तान पहुँचने में सफल नहीं हुआ। ख़ान रुहुल्ला ख़ाँ ने उनके सब रास्ते रोक लिये। शहज़ादा साहब बड़ी कठिनाई से वापस लौट आये हैं।" औरंगज़ेब द्वारा अपने ही बेटे की की गयी नाकेबन्दी की जानकारी कुलेश ने कह सुनायी। महाराज के माथे पर बल पड़ गये। उन्होंने तुरन्त प्रश्न किया, "हमारे धनाजी जाधव उनके साथ थे। वे कहाँ हैं अब?"

https://t.me/Sahityajunction

“जी, धनाजी गुजरात पहुँच गये हैं। वहाँ उन्होंने भड़ौच शहर को तहस-नहस कर दिया है। दुर्गादास भी उनके साथ हैं।”

“तुमने शहज़ादे के पीछे लौट आने की बात तो बतला दी, कुलेश। और भी कुछ बता सकते हो उसके बारे में?” धनाजी जाधव के पराक्रम की घटना सुनकर महाराज को इस दुःख की घड़ियों में भी सुख की किंचित् अनुभूति हो पायी। उस दुःख और सुख को मन में छिपाकर वे कुलेश से पूछने लगे।

“हम आपकी बात समझे नहीं?” कुलेश भी महाराज के प्रश्न से चकरा गये थे।

“कविराज, तुम्हें याद होगा, हमने नेताजी के साथ एक नज़राना भेजा था शहज़ादे को। उस नज़राने में मोतियों का एक कण्ठा भी भेजा था। दिल्ली का बादशाह बनने के स्वप्न देखनेवाले शहज़ादे को हमने वह कण्ठा आदर के प्रतीक के रूप में दिया था। उस कण्ठे का आगे क्या हुआ, कुछ सुना है क्या तुमने?”

कुलेश ने चौंककर अकबर के वकील की ओर देखा। यह साधारण-सी बात इस व्यस्तता-चिन्ता के बीच भी महाराज ने कैसे जान ली, यह प्रश्न निहित था उस दृष्टि में।

“आकाअली ने वो कण्ठा एक लौंडी को बख्श दिया है, हुज़ूर।” अब्दुल हमीद ने बेफिक्री से कहा। वह भूल गया कि वह इस समय अकबर के नहीं, महाराज के सामने खड़ा है।

“ख़ाऽमोऽश।” छत्रपति क्रोध से गरज उठे। उनके नथुने फैल गये और साँस तेज़ी से चलने लगी। उँगलियाँ कौड़ियों की माला से जा लगी। उनके क्रोध का कारण यह तो था ही कि अकबर ने कण्ठे को ‘मामूली’ समझा, परन्तु वे ग़ुस्से से खौल उठे थे इसलिए कि वकील ने एक देशी स्त्री को ‘लौंडी’ कहा था।

“कुलेश, शहज़ादे से इस बात का जवाब-तलब करो।” महाराज तेज़ी से बाहर चले गये। अब्दुल हमीद शर्म से गरदन झुकाये खड़ा था।

बारूद के गोदाम और शस्त्रागार का निरीक्षण करके महाराज सिंहासनवाले सभागृह में आये ही थे कि खण्डोजी बल्लाल उत्तर हिन्दुस्तान से आये हुए गंगाराम को साथ लेकर उपस्थित हुए।

“कहो हिन्दुस्तानी,” नमस्कार कर रहे गंगाराम से महाराज ने पूछा। वे उसके कारनामे सुनने के लिए उत्सुक थे।

“हमने बिहार में मुंगेर शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया है। आपके सैनिक बहुत फुर्तीले और वीर हैं।” गंगाराम गर्व से कह रहा था।

“गंगाराम ने पटना पर भी हमला किया था, परन्तु...” छत्रपति को गंगाराम के सब कार्यों की जानकारी देने की दृष्टि से खण्डोजी बीच में ही कहने लगे।

“कहो, रुक क्यों गये, चिटनीस?”

“वहाँ के मुग़ल सूबेदार ने एक बलशाली सेना के साथ इनका ज़ोरदार सामना किया। विवश होकर इन्हें पीछे हटना पड़ा। ये आपसे पुनः सहायता की आशा लेकर आये हैं।”

“खण्डोजी, इन्हें नज़राना दो। उत्तर देश की जलवायु जो सहन कर सकें, ऐसे पैदल सैनिक

https://t.me/Sahityajunction

और घोड़े भी इन्हें दो।"

फिर गंगाराम की ओर देखते हुए महाराज बोले, "हिन्दुस्तानी, दो दिन तुम यहीं ठहरो। दूर देश से आये हो, तनिक विश्राम करो।"

"जै सियाराम जी की।" नमस्कार करके गंगाराम चला गया।

कल्याण और भिवण्डी प्रदेशों की ओर से लगातार समाचार आ रहे थे कि वहाँ रणमस्त ख़ाँ और बहादुर ख़ाँ ने बहुत उपद्रव मचाया हुआ है। महाराज ने इन उपद्रवों को शान्त करने की दृष्टि से सेनापति हम्बीरराव, मानाजी, रूपाजी, केसोपन्त और तुकोजी पालकर को बुला लिया और इन सबके साथ वे कल्याण पहुँचे। कल्याण में एक छोटा-सा दुर्ग भी था।

इस दुर्ग की सुरक्षा के लिए महाराज दिनभर इधर-उधर घोड़ा दौड़ाकर देखरेख करते रहे। इसी तरह एक दिन थके-माँदे वे शाम को छावनी में लौटे ही थे कि सेना के इस मोर्चे के सरदार रूपाजी, केसोपन्त और निलोपन्त वहाँ आये। आज इन लोगों के साथ हम्बीरराव नहीं थे, क्योंकि वे युद्ध में घायल हो गये थे। कुछ देर तक सोचकर महाराज बोले, "तुकोजी को बुलाना पड़ेगा यहाँ। उनके आये बिना क़िले का घेरा टूटेगा नहीं।" महाराज की यह बात सुनकर उपस्थित सरदारों के सिर नीचे झुक गये।

"क्या बात हो गयी पेशवा?" महाराज ने चौंककर पूछा।

"तुकोजी ने युद्ध में वीरगति पायी स्वामी।" पेशवा के साथ-साथ सभी के मुख से एक लम्बी आह निकल गयी। छत्रपति का हाथ भवानी माला से जा लगा।

चौल, गोवा और बरार प्रदेशों से समाचार आ रहे थे। महाराज के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे कल्याण के अभियान में ही उलझे रहें। तुकोजी की पूरे सम्मान से अन्त्येष्टि करके तथा यह अभियान हम्बीरराव और निलोपन्त को सौंपकर महाराज रायगढ़ लौट आये।

रायगढ़ पहुँचकर महाराज को कई ख़बरें मिलीं, जिन्हें सुनकर उन्हें किंचित् सन्तोष और हर्ष हुआ। ख़बर थी कि मावले सैनिकों ने ख़ानदेश के बेसूर भाग में ज़ोरदार हमला किया और ख़ूब लूट-पाट मचाकर उन्होंने अपने ख़जाने में काफी वृद्धि की थी। इसी प्रकार सैनिकों ने बीदर में भरपूर चौथ वसूल की थी। नलदुर्ग विभाग में मराठा सरदार भीकूलाल और कासिम ख़ाँ के बीच ज़ोरदार मुठभेड़ हुई थी। इस मुठभेड़ में कासिम ख़ाँ का दीवान मीर आबिद मारा गया था।

गोवा से आये हुए येसाजी गम्भीर महाराज से एकान्त में मिलने आये। गोवा में पुर्तगालियों ने जो ऊधम मचा रखा था, उसका वृत्तान्त सुनाते हुए वे कह रहे थे, "स्वामी, पुर्तगालियों की हरकतें अब हद से गुज़र गयी हैं। वे पनजी से निकलकर आस-पास के अंत्रुज, सालसेत, बारदेश आदि भागों में सुबह-सुबह घुस आते हैं। उनके पास कर्नाटकी सैनिक और नये ढंग की बन्दूकें हैं। यही हालत बनी रही तो..." आगे की बातें कैसे कही जाएँ, यह सोचकर येसाजी संकोचवश रुक गये। उनका उत्तरीय कन्धे से खिसककर मुट्ठी में आ गया था और वे क्रोध के कारण मुट्ठियों से उत्तरीय को कसते जा रहे थे।

"तो क्या होगा, कहो येसाजी।" महाराज का सिर झटके से ऊपर उठा।

https://t.me/Sahityajunction

“स्वामी, फिरंगी केवल हमारे गाँव को लूटते ही नहीं हैं बल्कि जो लोग ईसाई होने को राजी नहीं होते, उन्हें वे बाँधकर गाँव के चौक में लाते हैं और लकड़ियों के ढेर पर रखकर ज़िन्दा जला देते हैं। घर का प्रमुख व्यक्ति यदि मर जाए, तो डोमचाण्डालों की तरह उसकी सारी सम्पत्ति सरकारी ख़जाने में जमा करा देते हैं। कुओं-बावड़ियों में डबलरोटी डाल देते हैं और फिर वे ऐसी अफवाह फैला देते हैं कि पानी पीनेवालों का धर्म भ्रष्ट हो गया। नौजवान लड़कियों को धर्म भ्रष्ट करके उन्हें भिक्षुणी बनाकर अपने मन्दिर में ले जाते हैं। उन्हें लम्बे सफ़ेद चोगे पहनाकर दिनभर अपने धर्म का प्रचार करने को उकसाते हैं और रात को...” येसाजी का सिर झुक गया। आँखों की पलकों में आँसू छलक आये। उत्तरीय को कसती हुई मुट्ठियाँ एकदम रुक गयीं।

येसाजी के वचन क्या थे, जैसे पिघला हुआ सीसा ही कानों में डाल दिया गया हो। महाराज उन वचनों से अति व्यथित हो उठे। घायल सिंह के समान वे इधर-उधर घूमने लगे। पुर्तगालियों की करतूतों के प्रति रोष, चारों ओर से आ रही मुग़ल फ़ौजों का बढ़ता हुआ दबाव, हबशी और अँग्रेज़ों की रंग बदलनेवाली चालें, ऐसे न जाने कितने विचारों ने उस ‘भोसले’ राजा के मन में हो-हल्ला मचाया हुआ था।

“...यदि यही अवस्था रही, तो पूरा पुर्तगाली प्रदेश एक दिन ईसाई बन जाएगा महाराज। पुर्तगाली प्रदेश के लोग जैसे उनसे बन पाता है वैसे प्रदेश छोड़कर कारवार, बेलगाँव और दूसरे मैदानी प्रदेशों में भागते जा रहे हैं। जो वहीं रह रहे हैं, वे बस जैसे-तैसे जान बचाकर वहाँ रहते हैं।” येसाजी की आँखों से दो बूँदें निकलकर उनके दुपट्टे पर टपक पड़ीं।

जैसे पूजा की थाली में बिखरी हुई हल्दी-रोली को जगदम्बा का कोई उपासक पुनः एक स्थान पर इकट्ठा कर ले, यों महाराज ने मन-ही-मन कोई निश्चय ठान लिया।

अकबर की गतिविधियों का वृत्तान्त बतलाने के लिए कवि कुलेश महाराज से मिलने आये। महाराज ने कण्ठे के बारे में जो स्पष्टीकरण चाहा था, अकबर ने उसका बहुत गुस्ताख़ी से भरा उत्तर दिया था। कहा था, “हम शहंशाह हैं। हम जो जी चाहेगा, करेंगे।” उसका यह उत्तर सुनकर छत्रपति ने उसकी सहायता के लिए जो पैदल और घुड़सवार सिपाही दिये थे, उन्हें वापस बुलवा लिया। इतना ही नहीं, उसे जो पेशगी की रक़म दी जाती थी, वह भी बन्द कर दी गयी। इससे नाराज़ होकर अकबर ने अपने डेरों को आग लगा दी थी और छावनी के साथ वह गोवा की ओर जाने के लिए बाँदा गाँव तक जा पहुँचा था।

अकबर की नाराज़गी बतलाकर कुलेश आगे कहने लगे, “सुनते हैं कि अकबर पुर्तगाली इलाक़े में चला गया है।”

महाराज कुछ सोचने लगे। वास्तव में वे उसका यथासम्भव साधन रूप में उपयोग करना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि अकबर हाथ से निकल जाए।

“कुलेश, ख़ूब चौकस रहकर शहज़ादे की गतिविधियों को देखते रहो। देखो कि कहीं वह पुर्तगालियों से न जा मिले। सम्भव हो तो तुम ही पुर्तगालियों के विरुद्ध उसका उपयोग करो।” महाराज की नीति पर विचार करते हुए कुलेश चले गये। पुर्तगालियों की भयानक करतूतों को सुनकर व्याकुलचित्त हुए महाराज रायाजी, और अन्तोजी के साथ मीनारों की दिशा में चल पड़े।

https://t.me/Sahityajunction

इन ऊँची पाँच मंज़िल वाली मीनारों पर चढ़कर वहाँ की तेज़ हवाओं के बीच खड़े होकर प्रायः महाराज गम्भीर मामलों के बारे में निर्णय किया करते थे।

खण्डोजी महाराज को ढूँढ़ने के लिए राजकार्यालय, राजसभागृह, ख़ासमहल आदि स्थानों में घूम आये थे। फिर वे महाराज को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मीनार पर चढ़कर ऊपर आये। उन्हें देखते ही महाराज ने पहले अपने मन की बात ही उनसे कह दी, "चिटनीस, चेऊल विभाग के सूबेदार को लिखो कि पुर्तगालियों के क़िले को घेर लें।"

"जी," खण्डोजी जो बातें बताने आये थे, उन्हें बताने में वे हिचकिचाने लगे।

"कहो, कहो। क्या बात है?" महाराज उनकी कठिनाई जान गये थे।

"स्वामी, समुद्र में भूम के अपने समुद्री थाने के पास शत्रु की बाईस युद्धनौकाएँ और सौ के लगभग छोटी नौकाएँ इकट्ठी हो गयी हैं।"

समाचार सुनकर महाराज ने आदेश दिया, "अपने नौ-सेनानायकों को आज्ञा भिजवाओ कि अपनी सौ युद्धनौकाओं को पूरी रसद के साथ और मल्लाहों के साथ भूम के आसपास तैयार रखें। पुणे के सूबेदार दामाजी रघुनाथ को लिखो कि नये आक्रमण की दृष्टि से राजगढ़, पुरन्दर और शिवापुर में सेना का नये सिरे से निर्माण करके तैयार रहें।"

"जी, औरंगाबाद से भेजा हुआ औरंगज़ेब का वकील शेख़ मुहम्मद गोवा के वायसराय से मिलने पनजी पहुँच गया है। उसने पुर्तगालियों को प्रलोभन दिया है ताकि वे मराठा-राज्य के विरुद्ध मुग़लों का साथ दें। उसने वायसराय को इस बात के लिए भी विवश कर दिया है कि वह हमारे बारूद के कारख़ानों को भेजा जानेवाला कच्चा माल अपने समुद्री प्रदेश से होकर गुज़रने न दें।" खण्डोजी ने औरंगज़ेब की कुटिल चालों की जानकारी दी।

"खण्डोजी, मंगलवेढ़ा विभाग में आदिलशाही दरबार के मियाँ ख़ाँ, सय्यद ख़ाँ, हसन ख़ाँ आदि प्रसिद्ध लड़ाके सरदार सिर्फ़ छावनी लगाये आराम से बैठे हैं। उन्हें लिखो कि इस समय हमारा साथ दें। उन्हें साफ-साफ बतला दो कि औरंगज़ेब दक्खिन में आया है, तो केवल मराठों को मिटाने ही नहीं आया। कल हो या कुछ समय बाद, वह दक्खिन के सारे राज्यों को निगल जानेवाला है। और..." खण्डोजी के शरीर को सिर से पैर तक निहारकर महाराज कहने लगे, "हमारे मन में एक विशाल अभियान की योजना बन रही है। उस अभियान में हम तुम्हें भी साथ लेना चाहते हैं। तुम तैयार रहो।" खण्डोजी और महाराज मीनार से उतरने लगे।

ठीक इसी समय शहज़ादा अकबर पनजी के क़िले में पुर्तगाली वायसराय से मिल रहा था। पुर्तगालियों ने अकबर की सहायता देने का वचन दिया था। यह सहायता सेना की नहीं थी, यह सहायता थी ऐसे जहाज़ के रूप में, जो अकबर को मक्का शरीफ़ ले जा सके। परन्तु...

औरंगज़ेब का वकील शेख मुहम्मद वायसराय से ज्योंही मिला, वायसराय ने अपनी बात बदल दी। वह वायदे से मुकर गया। बेचारा अकबर अटक गया। वह बाँदा में ही रुका रहा।

अब कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी थी। सारे रायगढ़ दुर्ग पर रात के तीसरे पहर से ही गहरा कोहरा छाया रहने लगा। इसी तरह की सर्दी का एक दिन था। येसाजी गम्भीर महाराज से विदा होकर

https://t.me/Sahityajunction

रायगढ़ से पनजी आये और वहाँ पुर्तगाली वायसराय के दरबार में पहुँचे।

पुर्तगाली वायसराय कोंद-दि-आल्वोर पुर्तगाली सिलाईवाला गर्म कोट पहनकर ऊँची-सी लकड़ी की बैठक पर बैठा था। अन्य पुर्तगाली दरबारी भी लकड़ी की छोटी-छोटी कुर्सियों पर बैठे थे। येसाजी ने दुभाषिये शेणवी के माध्यम से वायसराय से सीधा सवाल पूछा, "पुर्तगाली मुग़लों से मेल-समझौता बनाकर क्यों रहते हैं आजकल?"

यह प्रश्न महाराज का ही पूछा हुआ था। येसाजी यही सवाल वायसराय से पूछ रहे थे।

पुर्तगालियों के मैदानी प्रदेश के चौल और तारापुर के दो मैदानी क़िले महाराज ने जीत लिये थे। इसी विजय और धाक के बल पर येसाजी वायसराय से सीधे पूछ रहे थे, "औरंगज़ेब के वकील शेख़ मुहम्मद से पुर्तगाली दरबार की कैसी बातचीत चल रही है? मुग़ल जहाज़ समुद्री मार्ग से आते-जाते रहते हैं। पुर्तगाली दरबार उन्हें इजाज़त क्यों देता है?"

दुभाषिये ने जैसे ही ये प्रश्न वायसराय को बताये, वह ग़ुस्से में आ गया। उसने अपने राज्य की चालों का उत्तर न देकर येसाजी से ही उलटा सवाल किया, "इनसे पूछो, इनके पास मराठा-राजा का दिया कोई परिचय-पत्र है क्या?"

"परिचय-पत्र नहीं है..." यह सुनते ही उसने येसाजी को बाहर निकल जाने का हुक्म दिया। येसाजी ने एक हरकारा भेजकर इस अपमानपूर्ण घटना की सूचना महाराज को दी।

येसाजी गम्भीर के अपमान की घटना सुनकर महाराज ने अपने जहाज़ी बेड़ों को हुक्म दिया, "पुर्तगालियों के जहाज़ जहाँ भी दिखाई पड़ें, उन्हें तुरन्त पकड़ लिया जाय।" इस काम में अरब नौसेना की सहायता लेने की सूचना भी मराठा नौ-सेना को दी गयी।

अब कवि कुलेश भी चार हज़ार सैनिकों के साथ कल्याण आ गये थे। इज़्ज़त ख़ाँ तथा राजपूत पद्मसिंह की मिली-जुली सेना के साथ उनकी मुठभेड़ हुई थी। हम्बीरराव और निलोपन्त ने अब पूरी तरह कमर कस ली थी कि चाहे जो भी हो, कल्याण को औरंगज़ेब के जबड़े में नहीं जाने देना। दूसरी ओर औरंगज़ेब ने रामसेज को घेर रखा था। दीर्घकाल होने पर भी यह घेरा ज्यों-का-त्यों लगा हुआ था।

इस समय महाराज यही सोचने में मग्न थे कि कौन-सा दाँव चलाया जाय कि इस पुर्तगाली की अकल ठिकाने आ जाय। यही सोचते हुए वे ख़ासमहल में टहल रहे थे। सुरनीस रामचन्द्रपन्त हाथ में एक ख़लीता लिये हुए उनसे मिलने आये। वह ख़लीता पुर्तगाली दरबार, पनजी से भेजा गया था।

महाराज को नमस्कार करके और ख़लीते की जानकारी देकर रामचन्द्रपन्त ख़लीता पढ़ने लगे : "तुम्हारे दरबार ने वेंगुर्ला बन्दरगाह में हमारे जिन जहाज़ों को पकड़ रखा है, उन्हें अभी तक छोड़ा नहीं है। हमारे पुर्तगाली इलाक़े में तुम्हारी फ़ौजों ने कई गाँवों को जला दिया है। उसका हरजाना अभी तक तुमने नहीं दिया है। तुम्हारे प्रतिनिधि के पास परिचयपत्र भी नहीं है। ऐसी दशा में हम तुमसे मित्रता नहीं निभा सकते। तुम जो कुछ भी समझौता करना चाहते हो, उस बारे में निर्णय करके शीघ्र हमें सूचित करो। अन्यथा इस दरबार के सामने इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं रहेगा कि हम मुग़लों से समझौता कर लें।"

सही देखा जाय, तो यह दरबार की प्रथा के अनुसार भेजा जाने वाला दरबारी ख़लीता नहीं

https://t.me/Sahityajunction

था। वास्तव में पुर्तगाली वायसराय ने मराठा दरबार को इस रूप में गुप्त रूप से धमकी ही दी थी। 'अन्यथा' शब्द सुनकर तो महाराज के माथे का शिवतिलक फड़क उठा। "पन्त, इस ख़लीते का उत्तर भेजने की भी ज़रूरत नहीं है। अब तो इस पुर्तगाली को कुछ करके ही दिखाएँगे हम।" महाराज ने निर्णय कर लिया।

"...परन्तु स्वामी, जबकि औरंगज़ेब की सेनाएँ सारी सीमाओं पर छायी हुई हैं, ऐसी दशा में...?" रामचन्द्रपन्त से बोले बिना रहा नहीं गया।

"उस बारे में भी हमने सोच रखा है, पन्त। पुर्तगाली का यह ख़लीता मित्रता का पत्र है ही नहीं। यह पुर्तगाली अब हर हालत में औरंगज़ेब का ही साथ देगा। उन दोनों का पूरा मेल-मिलाप होने से पहले ही हमें पुर्तगाली को अलग-थलग कर देना होगा। अन्यथा आज पुर्तगाली इलाक़े में ऊधम मचानेवाला यह पुर्तगाली कल आस-पास के हमारे प्रदेश को और परसों हमारे सारे कोंकण के मैदानी इलाक़े को भी धीरे-धीरे कुतर-कुतरकर खा जाएगा और हम इस भ्रम में रहेंगे कि उससे हमारा समझौता है।"

"जी," वह ख़लीता वास्तव में था भी ऐसा कुटिल कि जिससे रामचन्द्रपन्त की ही क्या, किसी की भी बुद्धि चकरा जाय।

"पन्त, चांगोजी से कहो कि हम आज ही रायगढ़ से उतरकर गांगोली जाएँगे।"

"गांगोली क्यों जा रहे हैं?" पन्त पूछना चाहते थे, परन्तु फिर उन्होंने अपने आपको रोक लिया।

क़िलेदार चांगोजी ने महाराज के आने की सारी तैयारी कर ली। रायगढ़ से पाचाड़ आकर वहाँ की पैदल सेना को साथ लेकर महाराज पादशाहपुर तक आये और उन्होंने उस दिन वहाँ पड़ाव डाला। रात्रि का समय था।

मुम्बई के अँग्रेज़ों का राजदूत प्रह्लादपन्त के साथ मुम्बई की ओर वापस जा रहा था। उस रात उसका मुक़ाम भी पादशाहपुर में ही था। अँग्रेज़ी राजदूत हेनरी स्मिथ रात को ही महाराज से मिलने आया। उसके साथ दुभाषिया राम शेणवी भी था।

शेणवी कहने लगा, "प्रह्लादपन्त ने मुम्बई जाकर अँग्रेज़ दरबार से बातचीत की थी। उस भेंट में दोनों दरबारों के बीच जो क़रार किये गये हैं, उन क़रारों के इकरारनामे इस अँग्रेज़ राजदूत के हाथ ही दे दिये जाएँ महाराज।"

शेणवी की बातें सुनकर महाराज बहुत क्रोधित हो उठे। पहली बात तो यह कि एक राजा अपनी राजधानी के निकट पड़ाव डाले पड़ा है, फिर समय रात का है और यह शेणवी दुभाषिया राजा से कहता है कि इक़रारनामा यहीं दे दिया जाय। वे ग़ुस्से से बोले, "क़ारनामे के काग़ज़ कहीं उड़ तो नहीं जाएँगे, शेणवी। तुम्हारा अँग्रेज़ दरबार तो शिष्टाचार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। फिर यह राजदूत तुम्हें साथ लेकर ऐसे अनुचित स्थान में और ऐसे कुसमय में यहाँ कैसे चला आया?"

शेणवी के पाँव काँपने लगे। वह हड़बड़ाकर जैसे-तैसे सफाई पेश करने लगा, "हम ही उसे ले आये हैं। हमें क्षमा करें। वह चला जाएगा, हम यहाँ पीछे रह जाएँगे। महाराज जब कहेंगे, तब हम उपस्थित हो जाएँगे।"

"तुम्हारे रहने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जो कुछ भी काग़ज़ या इक़रारनामे मिलने

https://t.me/Sahityajunction

हैं, वे रायगढ़ के राजकार्यालय से प्रह्लादपन्त के हाथ भिजवा दिये जाएँगे।" महाराज ने शेणजी का अन्तिम सूत्र भी तोड़ दिया।

उसी रात पादशाहपुर से निकलकर महाराज कल्याण के निकटवर्ती मढगढ़ी के रास्ते होकर गांगोली आये। उनके साथ दो हज़ार घुड़सवार और दो-सौ पैदल सिपाही थे। गांगोली में रावटियों-खेमों में इनकी व्यवस्था की गयी। इससे पहले महाराज तब गांगोली आये थे, जब येसूबाई ने पुत्र को जन्म दिया था।

हवेली के सभागृह में महाराज प्रह्लादपन्त से आगामी कार्यवाहियों के विषय में बातचीत कर रहे थे। "न्यायाधीश, बहिर्जी को सूचना भेजो कि चुने हुए कुशल गुप्तचरों को वे पुर्तगालियों के चौल-तारापुर विभाग में फैला दें। वहाँ से जो भी ख़बर मिले, वह तुरन्त हम तक पहुँचायी जाय।"

"जी। एक आनन्ददायी समाचार है, स्वामी। बीड प्रदेश के धारूर नामक स्थान के क़िले पर अपनी सेनाओं ने अधिकार कर लिया है, महाराज।" प्रह्लादपन्त ने कहा।

धारूर का क़िला! इसी क़िले में मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने नेताजी पालकर काका को क़ैद कर रखा था। हम आबासाहब के साथ आगरा के कारागृह से सकुशल निकल आये थे, इस बात से चिढ़कर औरंगज़ेब ने क़ैद किये हुए हमारे सेनापति पालकर काका को ही धारूर के क़िले से हटाया। उनकी मुश्कें बाँधकर और ऊँट की पीठ पर लादकर दिल्ली भेजा जाय, यह आदेश मिर्ज़ाराजा को दिया गया था। फिर जब नेताजी पालकर दिल्ली पहुँचे थे, तो दिल्ली के आमचौक में उनकी सुन्नत करायी गयी थी।

नेताजी पालकर की स्मृति ने महाराज को व्याकुल बना दिया। सन्तोष था तो केवल इसी बात का कि अब धारूर का वह क़िला 'स्वराज्य' का भाग बन गया था।

पन्हाला के समान ही गांगोली गाँव से भी महाराज की कई स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। यहाँ की नदी में एक बड़ा दह था। गांगोली के सूबेदार ने इस जलाशय में ऐसी सुविधा उपलब्ध करवायी थी कि कभी-कभार राजपरिवार के लोग इधर आ ही जाएँ तो जलाशय में नौका-विहार कर सकें।

गांगोली में दो दिन बीत गये थे। महाराज के मन में औरंगज़ेब, पुर्तगाली सिद्दी, अँग्रेज़—इन सबके विरुद्ध मोर्चे, मुठभेड़ आदि की ही बातें रह-रहकर घूम रही थीं। वे प्रह्लादपन्त से बोले, "चलो न्यायाधीश, जलाशय में एक चक्कर तो लगा आएँ।"

गांगोली के सूबेदार ने बँधी हुई नावों को खोल दिया। महाराज और प्रह्लादपन्त नाव में बैठ गये। साथ में दस-बारह सशस्त्र सैनिक भी थे। दोनों में राजनीति-विषयक चर्चा चल रही थी। नाव मन्द गति से आगे बढ़ रही थी। बीच-बीच में चप्पुओं की चुबुक-चुबुक ध्वनि आ रही थी। उस मन्द आवाज़ में अकस्मात् किसी की ऊँची आवाज़ भी आ मिली। दह के किनारे पर खड़ा हुआ कोई व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर से महाराज को पुकार रहा था।

"साहब, ऽसरऽकार, महाराज!" कोई अत्यन्त उद्विग्न होकर और हाथ हिलाकर महाराज को बुला रहा था। नाव में बैठे सभी लोग चौंककर किनारे की ओर देखने लगे।

https://t.me/Sahityajunction

सबके समान महाराज भी आश्चर्यचकित हो उठे थे। महाराज का संकेत पाकर नावें झटपट किनारे की ओर बढ़ चलीं। महाराज जैसे ही किनारे पर उतरे, भगवी कफ़नी पहने हुए एक व्यक्ति महाराज के सामने आया और दण्डवत् करता हुआ सीधा भूमि पर लेट गया। उसके भर्राये कण्ठ से मन को व्यथितमथित करनेवाले शब्द निकल रहे थे :

"महाराज, आप महान हैं, स्वयं शास्त्रादि के ज्ञाता हैं। आपका निर्णय ऐसा अचूक होता है कि बुद्धिमान लोग भी आपके निर्णयों की प्रशंसा करते हैं, फिर मेरे ही विवाद के विषय में आज तक निर्णय क्यों नहीं लिया जाता?" उस व्यक्ति का नाम था कृष्णाजीपन्त। यह चिपलूण नगर का निवासी था।

महाराज ने उसे झुककर ऊपर उठाया। बोले, "शान्त होओ, बाबाजी। हम यहाँ एकान्त में हैं। स्पष्ट कहो कि तुम्हारा दुःख क्या है? हम अवश्य उसका निवारण करेंगे।"

कृष्णाजीपन्त अपनी दुःख की गाथा विस्तारपूर्वक कहने लगा। वह चिपलूण नगर का पटवारी था। राहुजी सोमनाथ महाराज की राजसभा के एक प्रतिष्ठित सदस्य थे। इस पद से लाभ उठाकर उन्होंने कृष्णाजीपन्त का पटवारी पद हज़म कर लिया था। कृष्णाजीपन्त की कहानी सुनकर महाराज ने न्यायाधीश की ओर देखा।

"महाराज, कृष्णाजी जो कह रहा है, वह सत्य है। बड़े महाराज ने भी ऐसा कभी नहीं किया था कि पटवारी का पद छीनकर दूसरे को दिया हो। राहुजी सोमनाथ आपके निकटवर्ती हैं। अतः उससे लाभ उठाकर उन्होंने आपको ग़लत जानकारी दी है। इसीलिए ऐसा हुआ है।"

"न्यायाधीश, तुम स्वयं रामचन्द्रपन्त और कुलेश को साथ लेकर एक बैठक आयोजित करो और कृष्णाजीपन्त का विभागीय पटवारी पद उसे पुनः दिया जाय, उस सम्बन्ध में राजपत्र तैयार करवाओ। और...और...राहुजी को लिखो कि वे आबासाहब के समय से राज्य की सेवा में तत्पर हैं, फिर इस विषय में उन्होंने मन कच्चा क्यों कर लिया? कृष्णाजीपन्त का पद और जागीर उन्हें पुनः वापस दे दी जाय।"

महाराज ने जलाशय के किनारे खड़े-खड़े ही निर्णय सुना दिया। कृष्णाजीपन्त का हृदय इस निर्णय को सुनकर सन्तोष से भर उठा।

औरंगज़ेब औरंगाबाद वाले अपने शाही महल में बड़ी बेचैनी में इधर-उधर घूम रहा था। उसने मराठा राज्य के रामसेज, कल्याण, भिवण्डी, कोल्हापुर, पन्हाला आदि दिशाओं में फ़ौजें फैला रखी थीं। परन्तु कहीं से एक भी ऐसी ख़बर नहीं आ रही थी, जिसे सुनकर वह खुश हो। अब झुँझलाहट, खीज और सन्देह उसके स्वभाव की विशेषताएँ बनते जा रहे थे। रणमस्त ख़ाँ, बहादुर ख़ाँ, मामूर ख़ाँ, शाबदी ख़ाँ, इरज ख़ाँ, इज़्जत ख़ाँ आदि उसके पैंतीस बलवान सेनापति जगह-जगह पर विशाल छावनियाँ डाले हुए पड़े थे। उसके दो शहज़ादे—आज़म और कामबख्श तथा उसका नाती मुइज़ुद्दीन भी विशाल सेना सहित सारे पहाड़ी प्रदेशों में जहाँ-तहाँ फैले हुए थे। परन्तु कोई भी नाबकार एक भी ऐसी ख़बर नहीं भेज रहा था, जो उसे तसल्ली दे। उलटे हरेक सरदार नयी फ़ौजी कुमक की, तोपों की, घोड़ों-ऊँटों की और रसद की माँगें पेश कर रहा था। हाँ, एक सरदार रुहुल्ला ख़ाँ अवश्य ऐसा था, जिसने सौंपी गयी ज़िम्मेदारी को असामान्य रूप में

https://t.me/Sahityajunction

सफल कर दिखलाया था। जैसे, कोल्हू के बैल के सामने हरी-हरी घास का पूला दिखाया जाता है तो वह बैल उसे देखकर आगे-ही-आगे बढ़ता रहता है फिर भी वह पूला उसके हाथ कभी नहीं आ पाता, कुछ ऐसा ही कारनामा कर दिखाया था रुहुल्ला ख़ाँ ने। उसने कई जगह के मराठे सरदारों को विविध प्रलोभन दिखाकर मुग़ल सल्तनत की चाकरी में शामिल कर लिया था। और वे 'कोल्हू के बैल' चारों ओर से अपने ही राज्य को घेरकर घूम रहे थे।

औरंगज़ेब बेचैन होकर तेज़ी से टहल रहा था और उसके क़दमों के नीचे-पीछे घूम रहा वज़ीर असद ख़ाँ 'जी, आका अली', 'जो हुक्म हज़रत पनाह', 'बिलकुल दुरुस्त हज़रत' कहता-कहता घूम रहा था। घुड़सवार, ऊँटनी-सवार और जासूस न जाने कितने शाही फरमान लेकर रोज़ औरंगाबाद के नगरद्वारों से बाहर जा रहे थे।

मराठों ने अब ग़जब ढा दिया था। वे जालना, अहमदनगर, पेड़गाँव, बरार, ख़ानदेश, सोलापुर आदि विभागों में दौड़-दौड़कर सीधे बादशाही फ़ौजों की छावनियों पर धावे बोल रहे थे।

दूसरी ओर तारापुर के क़िले में छिपे बैठे पुर्तगालियों की तो पाँव तले की धरती खिसक गयी थी। स्वयं सम्भाजी महाराज एक हज़ार घुड़सवार और दो सौ पैदल सिपाहियों सहित गांगोली से तारापुर आ पहुँचे थे। उनके साथ प्रह्लादपन्त थे। 'हरऽ-हरऽ महादेव' के रणघोष से पुर्तगालियों के दिल दहल उठे। दमण, वसई आदि प्रदेशों में मराठा सेना की जो छोटी-छोटी टुकड़ियाँ इधर-उधर फैली हुई थीं, वे भी इस समय महाराज की सेना से आ मिलीं। सारा तारापुर शहर दिन दहाड़े लूट-पाट और आग की लपटों की चपेट में आ गया। पुर्तगालियों के कर्नाटकी सिपाही और पुर्तगाली जान बचाने के लिए दौड़कर खेतों और जंगलों में जा छिपे। जो हालत बुरहानपुर और औरंगाबाद की हुई थी, वही दुर्गत अब तारापुर की हो रही थी।

महाराज की इस विजयी सेना की कई टुकड़ियाँ दमण और वसई प्रदेश के असेरीय, उहाणू, सैवाना आदि गाँवों पर भी टूट पड़ी। इन गाँवों में भी ख़ूब लूटपाट मची।

तारापुर के मैदान में महाराज का पड़ाव था। महाराज प्रह्लादपन्त के साथ पुर्तगाली और मुग़लों की चालों के बारे में बातचीत कर रहे थे। पड़ोसी आदिलशाही और कुतुबशाही राज्य इस समय चुप्पी साधे बैठे थे। उनके विषय में भी चर्चा हो रही थी। इसी समय एक प्रहरी भीतर आकर सूचना दे गया, "दमण के हरि शिवदेव आये हैं। उनके साथ रस्सियों में बँधा हुआ सफ़ेद चोगेवाला एक क़ैदी भी है।"

महाराज ने हाथ उठाकर आने का इशारा किया। हरि शिवदेव एक रस्सियों से बँधे क़ैदी को लेकर आये। वह था एक पुर्तगाली पादरी।

मुज़रा करके हरि शिवदेव कहने लगे, "लूट का माल होता, तो हम बोरियों में भरकर क़िले के वस्तुभण्डार में भेज देते, पर इन अनुपयोगी चोगेवालों का क्या किया जाय, महाराज?"

महाराज ने एक बार उस पादरी को सिर से पाँव तक देखा, फिर वे बैठक से उठ खड़े हुए। वे क़ैदी पादरी के सामने आये। पादरी का शरीर लाल-लाल था और दाढ़ी थी किरमिज के रंग की। उसने पहले तो ऐसी बोली में कुछ कहा, जो बड़ी अजीब-सी थी। फिर आकाश की ओर देखते हुए उसने अपने दायें हाथ से पहले माथे को और छाती को, फिर दायें-बायें कन्धों को छुआ। उसकी आँखों में भय समाया हुआ था। उसका चोगा थरथर काँप रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज जब उसके सामने आकर उसकी नीली-कंजी आँखों में दृष्टि गड़ाकर देखने लगे। तब सबसे पहले उन्हें याद आयीं वे कथाएँ, जो येसाजी गम्भीर द्वारा कही गयी थीं—ईसाई पादरियों के अत्याचारों की कथाएँ। फिर न जाने क्यों, उस पुर्तगाली पादरी को देखते हुए उन्हें समर्थगुरु के वचनों की याद आ गयी :

अधिकारी जो भूले-भटके,
क्षमा करो अपराध पुराने,
तभी फलो-फूलोगे राजा,
पाओगे पदवी अति महती।
अपनों का तुम करो संगठन,
बैरी को तुम कुचल-मसल दो।।

महाराज काफी देर तक पादरी की ओर देखते ही रहे। वह पत्ते की तरह काँप रहा था। उसने महाराज के विषय में बहुत-कुछ सुना रखा था। उसने सोचा, अब उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।

महाराज पादरी के पास से दूर हटकर फिर बैठक पर आ गये और प्रह्लादपन्त से बोले, "क्यों न्यायाधीश, इस ईसाई पादरी का क्या किया जाय?"

"जी, हमें लगता है—उसे छोड़ देना चाहिए। वह कोई लड़ाका सैनिक तो है नहीं।" प्रह्लादपन्त ने अपना मत प्रकट करते हुए आगामी आशंकाएँ भी प्रकट कर दीं, "फिर अपने येसाजी गम्भीर पुर्तगाली दरबार में राजदूत हैं। यदि हमने इसका कुछ टेढ़ा-बाँका कर दिया, तो पुर्तगाली हमारे राजदूत को कष्ट दिये बिना नहीं रहेंगे।"

महाराज सोचने लगे—'पहले मनुष्य का मन मरता है, फिर तन मरता है। ये पुर्तगालियों के प्रचारक पहले हमारे मावल देश के लोगों के मन कमज़ोर बनाने का काम करते हैं। क्या किया जाय इसका? क्या छोड़ दें इसे? कदापि नहीं। तो क्या इसे मार डालें? परन्तु यह तो राजनीति के विपरीत आचरण होगा।'

फिर हरि शिवदेव की ओर देखते हुए महाराज ने फैसला सुनाया :

"इसे इसी तरह रायगढ़ भेज दो, हरिजी। वहाँ इसे क़ैद कर रखने के लिए कहो। घटना को सुनकर पुर्तगाली क्या करते हैं, यह देखना है। पुर्तगाली मित्रतापूर्ण समझौते की बातें करते हैं। यह भी पता लगेगा कि उनकी वे बातें दिखावा हैं या सही हैं।"

रायगढ़ लौटकर महाराज दो गम्भीर मामलों के बारे में सोच-विचार कर रहे थे। वे चाहे शस्त्रागार में हों, या धान्यभण्डारों का निरीक्षण कर रहे हों, दो गम्भीर बातें छाया की तरह उनका पीछा करती थीं। इस समय गर्मी का मौसम था। तेज़ गर्मी पड़ रही थी।

दो मामलों में से एक यह था कि बेलवड नगर में रघुनाथपन्त हणमन्ते का देहान्त हो गया था। महाराज ने रघुनाथपन्त को बड़ी आशाएँ लेकर कर्नाटक से बुलाया था और उन्हें लेखाध्यक्ष के महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया था। महाराज को बिखड़ी की छावनी में रघुनाथपन्त से हुई

https://t.me/Sahityajunction

अपनी भेंट की सारी बातें एक-एक कर याद आ रही थीं। कितना निर्भय व्यक्ति था रघुनाथपन्त!

अन्त में इस मामले में उन्हें अपने मन से पूछकर ही निर्णय करना पड़ा। महाराज ने लेखाध्यक्ष की ज़िम्मेदारी रघुनाथपन्त के पुत्र नारायण रघुनाथ को सौंपने का निश्चय कर लिया।

दूसरा गम्भीर मामला यह था कि पुर्तगालियों ने येसाजी गम्भीर को क़ैद कर लिया था। येसाजी को बन्दी बनाने का समाचार सुनते ही महाराज समझ गये कि पुर्तगाली दरबार की आगामी नीति क्या होगी? यह लगभग निश्चित था कि अब पुर्तगाली दरबार औरंगज़ेब के गले का हार बन जाएगा।

राजस्थान में बैठा मिर्ज़ा राजा का पुत्र, अम्बर का राजा रामसिंह अभी तक महाराज का साथ देने में शिथिलता ही बरत रहा था। महाराज ने खण्डोजी को बुलाया और रामसिंह को दूसरा लम्बा ख़लीता लिखवाया।

'पुर्तगाली! पुर्तगाली!!' शस्त्रागार, बारूद के गोदाम आदि का चक्कर लगाते समय महाराज के मन में यह शब्द रह-रहकर घूमता था। वे रात-दिन इन स्थानों के निरीक्षण, व्यवस्थादि में इतने तल्लीन रहते थे कि महारानी येसूबाई, बालराजा, भवानी बाई से दो प्यार के बोल बोलने का भी उन्हें समय नहीं मिल पाता था।

इसी तरह एक दिन वे पेशवा, खण्डोजी, रायाजी आदि के साथ पाचाड़ की राजकीय अश्वशाला का निरीक्षण करते हुए घूम रहे थे। कभी वे बीच में ही किसी शानदार बढ़िया घोड़े को देख पाते, तो रुककर उसकी पीठ पर थपकियाँ देते थे। वह घोड़ा भी हिनहिनाकर और कान फटफटाकर उनकी थपकी का उत्तर देता था।

"खण्डोजी, हम कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं, परन्तु अम्बर का राजा रामसिंह हमारी योजनाओं की आशाओं के अनुरूप साथ नहीं दे रहा। परन्तु इन मूक प्राणियों को तो देखो, प्यार-दुलार का कितना शीघ्र उत्तर देते हैं ये।" महाराज के कथन से राजनीति के प्रति उनका आवेग प्रकट हो रहा था।

"जी हाँ, घोड़ा और दूसरे चौपाये प्राणी सामने देखते हैं, बस केवल सामने; पर मनुष्य की दृष्टि चारों ओर घूमा करती है। वह दृष्टि कहाँ और क्यों जा टिकेगी, यह भला कोई क्या बता सकता है?" खण्डोजी ने दो टूक बात कही।

महाराज का ध्यान आकृष्ट करने की दृष्टि से एक गुप्तचर बड़ी तेज़ी से घुड़साल के दरवाज़े में घुसा। महाराज को जुहार करके वह वहीं दूर से बोल पड़ा, "जय हो महाराज, मुग़लों ने अपना कल्याण-भिवण्डी का घेरा स्वयं ही हटा लिया है। रणमस्त ख़ाँ, बहादुर ख़ाँ, रुहुल्ला ख़ाँ और जाने कितने मुग़ल-सरदार अब औरंगाबाद लौटे जा रहे हैं। अपने रूपाजी, सेनापति, तानाजी आदि सरदार पहाड़ी घाटों में, सँकरे रास्तों में उन पर छापे मारकर उन्हें हैरान किये हैं।"

महाराज के चारों ओर खड़े सभी लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमक उठे। 'हे जगदम्बे' कहते हुए महाराज का हाथ भवानीमाला से जा लगा था और उन्होंने आँखें मींच ली थीं।

जिस उद्देश्य से महाराज ने तारापूर और दमण की ओर हमला किया था, उस उद्देश्य को अब पूर्ण किया जा सकता था। परन्तु औरंगज़ेब ने कल्याण-भिवण्डी से अपनी सेनाएँ पीछे क्यों हटा लीं? इसके पीछे उसकी क्या चाल होगी? महाराज सोचने लगे।

https://t.me/Sahityajunction

औरंगज़ेब ने कल्याण-भिवण्डी पर क़ब्जा करने के लिए कितने हाथ-पैर मारे थे पर आख़िर हाथ कुछ नहीं आया था। उसकी नीति शायद यह थी कि मुम्बई के अँग्रेज़ों से, पनजी के पुर्तगालियों से और जंजिरा के हबशी से मिलकर सारे लम्बे समुद्रतटवर्ती कोंकण भू-भाग को निगल लिया जाय और यों महाराज के समुद्री मार्ग पर क़ाबू पा लिया जाय। फिर एक तरफ भूमि की दिशा से और दूसरी ओर समुद्र की तरफ से दबाते हुए मराठा राज्य को अपनी हथेलियों में रगड़ दिया जाय। उस क़ाफ़िर और दग़ाबाज़ 'शीवा' के पहाड़ी राज्य की धूपदानी बनाकर उसकी पाक ख़ुशबू में नमाज़ पढ़ी जाय।

रणमस्त ख़ाँ और बहादुर ख़ाँ कल्याण-भिवण्डी में हारकर लौट रहे थे। औरंगज़ेब उन्हें ख़ूब डाँट-फटकार सुनाएगा, यह बात तय थी। हाँ, वह बख्शी रुहुल्ला ख़ाँ को नगीना जड़ा खंजीर और घोड़ा जरूर बख्शनेवाला था। ख़ान ने काम ही ऐसा शानदार किया था। भवानी-माला की एक-एक कौड़ी चुन-चुनकर उसने औरंगज़ेब की तसबीह में पिरो दी थी। कई मराठा विद्रोहियों को उसने अपनी सेना में शामिल कर लिया था।

मृगनक्षत्र के आते ही बरसात की झड़ियाँ लग गयीं। जगह-जगह पर मुग़लों की जो छावनियाँ थीं, वे बरसात की मार से परेशान हो रही थीं। रामसेज का क़िलेदार अभी तक पूरी दृढ़ता से पाँव जमाकर घेरे का सामना कर रहा था।

कोंकण के मैदानी इलाक़े में जैसे ही औरंगज़ेब की फ़ौजों का दबाव कम हुआ, महाराज ने अवसर से लाभ उठाने की सोची। वे येसूबाई से विदा होकर तथा जिजाऊ और आबासाहब की समाधि के दर्शन करके भरी बरसात में राजापुर जा पहुँचे। उनके साथ आठ हज़ार अश्वारोहियों की सेना थी।

चेऊल तथा खेदण्डा प्रदेश के अधिकारी राघो विश्वनाथ, दमण के हरि शिवदेव, दाभोल के वेंकाजी निमदेव आदि को पहले से ही ख़लीते भेजे जा चुके थे।

बरसात की बौछारों के बीच महाराज के ख़ास डेरे में कोंकण के मैदानी इलाक़े के विशेष सरदारों की बैठक हो रही थी। सब प्रतिष्ठित वीरों को प्रयोजन बताते हुए महाराज कहने लगे, "शत्रु कल्याण-भिवण्डी से दूर चला गया है। यही उचित अवसर है कि उस शत्रु के बल पर सिर उठानेवाले पुर्तगाली को ऐसा सबक सिखाया जाए कि उसे सदा याद रहे। हम स्वयं खेदण्डा पर धावा बोलेंगे। तुम सब अपने-अपने स्थानों में सावधान रहो और आवश्यकता पड़ने पर रसद और कुमक पहुँचाने के लिए तैयार रहो। राघो विश्वनाथ, तुम खेदण्डा के निवासी हो। उस प्रदेश की विस्तृत जानकारी दे सकते हो?" महाराज ने राघो से पूछा।

"जी। पुर्तगालियों के खेदण्डा दुर्ग में दोम फ्रांसिस नामक सेनापति है। उसके पास तोपख़ाना भी है। परन्तु वह तोपख़ाना इस बरसात में काम नहीं आएगा। इसलिए पूरी शक्ति लगाकर अभी घेरा डालना चाहिए।" महाराज की योजना का राघो विश्वनाथ ने समर्थन किया।

"तो तय पाया गया कि खेदण्डा पर हमला किया जाय।" सबको बीड़े दिये गये। वर्षा की तनिक भी परवाह न करते हुए जासूस खेदण्डा और दमण प्रदेशों की ओर रवाना हो गये। इस प्रकार पुर्तगालियों के विरुद्ध 'स्वराज्य' का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। ऐन बरसात में युद्ध की

https://t.me/Sahityajunction

चिनगारियाँ बरसने लगीं। लक्ष्य था खेदण्डा। कोरलाई तथा अंजोर के क़िलों को घेरकर आगे बढ़ते हुए मराठा सेनाएँ पुर्तगाली प्रदेश में घुस पड़ीं।

खेदण्डा पर विजय प्राप्त करने के लिए रस्सियों पर चढ़नेवाले कुशल सैनिकों ने तेज़ बरसात के बीच क़िले के परकोटे से सीढ़ियाँ लगा ही दीं। दोम फ्रांसिस ने भी परकोटे से पत्थर और बाण बरसाने शुरू कर दिये। स्वयं दोम भी बन्दूक़ से रस्सीवाले सैनिकों पर गोलियाँ चला रहा था। जैसे भूतकाल में कभी सिद्दी जौहर ने पन्हाला के क़िले पर घेरा डाल दिया था और आबासाहब को घेर लिया था, इसी प्रकार महाराज सम्भाजी ने दोम फ्रांसिस के क़िले को घेर लिया था। हर दिन क़िले का घेरा परकोटे के निकट जाते-जाते छोटा होता जा रहा था। इस समाचार को सुनकर पनजी में बैठा हुआ वायसराय कोंद-दि-आलवोर उलझन में फँस गया। उसने याकूब ख़ाँ और हबशी ख़ैरत से सहायता पाने के लिए अपने दूत समुद्र के रास्ते सूरत की ओर भेजे।

महाराज प्रतिदिन घोड़े पर बैठकर घेरे का निरीक्षण करते थे। सीढ़ियों से गिरकर या पत्थरों-बाणों से घायल होनेवाले सैनिकों को धीरज बँधाते थे। रोज़ वर्षा में भीगकर शाम को डेरे में लौट आते थे। एक दिन शाम को सूबेदार राघो विश्वनाथ उनसे मिलने आये। रुँधे हुए गले से कहने लगे, “महाराज, समाचार मिला है कि कोल्हापुर-पन्हाला प्रदेश की अत्यन्त कुशलता से रक्षा करनेवाले अपने विदेश-सचिव जनार्दनपन्त हणमन्ते का स्वर्गवास हो गया है।”

राघो विश्वनाथ ने जब अपने स्वामी के मुख पर छायी व्यथा को देखा, तो वे असमंजस में पड़ गये कि अगले समाचार क्योंकर सुनाएँ! फिर भी मन को दृढ़ बनाकर अन्ततः कहने लगे, “काज़ी हैदर, जो बड़े महाराज के काल से अपने राज्य में मुंशी के रूप में सेवा करता था, औरंगाबाद जाकर शत्रु से जा मिला है। बादशाह ने उसे दस हज़ार रूपये बख्शीश के रूप में दिये हैं, और उसे दो हजारी मनसबदार बना दिया है।”

अब महाराज कुछ कहें भी तो किससे कहें? गणोजी शिर्के और कान्होजी शिर्के जब येसूबाई से रूठकर दूर चले गये थे, उस समय येसूबाई को जैसा लगा होगा, कुछ ऐसा ही अनुभव महाराज को काज़ी हैदर के जाने से हुआ। काफी देर तक यूँ ही सोच-विचार कर महाराज राघो विश्वनाथ से बोले, “आज ही एक ख़लीता रायगढ़ भेजो। आज्ञापत्र लिखो कि विदेश सचिव पद पर जनार्दनपन्त के चिरंजीव वासुदेवपन्त को नियुक्त किया जाय।”

खेदण्डा पर घेरा लगाये हुए डेढ़ महीना बीत गया। दोम फ्रांसिस मज़बूती से पाँव जमाकर लड़ रहा था और उधर महाराज भी पीछे हटने को तैयार न थे।

कल्याण-भिवण्डी, मलकापुर, पन्हाला, कोल्हापुर, रामरोज, बरार, ख़ानदेश, रायगढ़ आदि चारों दिशाओं से निरन्तर समाचार आ रहे थे। हम्बीरराव, केसो त्रिमल, नारुजी, सन्ताजी जगताप, कुलेश और विविध स्थानों पर नियुक्त लड़ाके वीर बरसात होते हुए भी अपने-अपने मोर्चों पर जमे हुए थे। बहिर्जी के गुप्तचर सब मुठभेड़ों की, विद्रोहों की और अन्य छोटी-बड़ी घटनाओं की पूरी-पूरी जानकारी खेदण्डा पहुँचा रहे थे। नदी-नालों को पार करके ये गुप्तचर दूर-दूर के प्रदेशों से खेदण्डा आ रहे थे।

उस रात मुसलाधार बारिश हुई थी। खेदण्डा के थके-माँदे पुर्तगाली घरों में आराम कर रहे

https://t.me/Sahityajunction

थे। भीषण बरसात के कारण पहले से ही तंग आये पुर्तगाली सुबह-सुबह पहरे बदल रहे थे। अभी पौ भी फटी न थी कि सम्भाजी ने तलवार की नोक खेदण्डा की दिशा में उठाते हुए मावले सैनिकों को भीषण और निर्णायक आक्रमण करने के लिए रणघोष गुँजाते हुए पुकारा, 'हरऽ-हरऽऽ महादेव।" सावन की वह सुबह भी इस रणघोष से थर्रा उठी। मावलों की सेना क़िले पर टूट पड़ी। उस सुबह तीन दिशाओं से एकसाथ हमला किया गया—खेदण्डा का मेरी चर्च, खेदण्डा दुर्ग और मोराव दुर्ग।

चर्च के पुर्तगाली रक्षक डोमिंगो गोम्स ने कर्नाटकी तोपचियों को बरसात और कीचड़ में ही काम करने को मजबूर किया और चर्च की ऊँची मीनारों पर ही तोपें चढ़वा लीं।

बादलों से भरे आकाशवाला वह दिन धीरे-धीरे चढ़ रहा था! तीनों मोर्चों पर मावले सैनिक सीढ़ियाँ लगाते हुए, तोप के गोलों, बाणों और पत्थरों को झेलते हुए जी-जान से लड़ रहे थे। पुर्तगाली अब बुरी तरह घबरा गये थे। वैसे देखा जाय तो बरसात के कारण मावलों को भी आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिल रही थी। इस क़िले को जीतने से महाराज को यह लाभ था कि वे वेंगुर्ला से लेकर दाभोल, नागोठणे और खेदण्डा तक अपनी सेना की एक समुद्री रक्षा-पंक्ति बना सकते थे और फिर मुम्बई के अँग्रजों से मित्रतापूर्ण सन्धि बनाये रखना सम्भव हो पाता। इस क़िले को जीतने से अरब-नौसैनिकों से भी सहायता प्राप्त करना महाराज के लिए सम्भव था। वे हर हालत में पुर्तगालियों और मुग़लों की साँठ-गाँठ समाप्त करना चाहते थे।

मराठा सेनाएँ खेदण्डा के अतिरिक्त पुर्तगालियों के दमण और वसई प्रदेशों में भी घुस गयी थीं। इन सेनाओं के आक्रमणों से त्रस्त होकर पुर्तगाली वायसराय ने न केवल सेनाओं को, बल्कि प्रजाजनों और पादरियों को भी चेतावनी दे डाली थी, "सम्भाजी आगे बढ़ा आ रहा है। जो भी हथियार मिल सके प्राप्त करो और लड़ने के लिए तैयार रहो।"

इसी समय औरंगज़ेब कल्याण-भिवण्डी में हार खाकर लौटे हुए अपने सेनापति रणमस्त ख़ाँ को 'बहादुर ख़ाँ' पदवी देकर सम्मानित किया था। सम्मान का कारण यह था कि बहादुर ख़ाँ को अब बीजापुर के आदिलशाही राज्य पर धावा बोलने का काम सौंपा गया था।

रमज़ान का महीना था। बादशाह औरंगज़ेब अपने दौलतख़ाने में बैठा था। उसने रोज़ा रखा हुआ था। ऐसा कठोर उपवास था यह कि जिसमें थूक भी निगलना नहीं चाहिए। फिर भी सूखता गला और भूखा पेट होते हुए भी वह ख़लीता लिखवा रहा था। यह ख़लीता लिखा जा रहा था बीजापुर के सिकन्दर आदिलशाह को और ख़लीता लिखनेवाली थी स्वयं उसकी बहू।

'कहीं आलीजाह को हमारे बारे में ही कोई शक तो पैदा नहीं हो गया।' इस आशंका से धड़कता दिल लेकर उसकी पुत्रवधू ख़लीता लिख रही थी। आज औरंगज़ेब ने अपनी राजनीति के कारनामों में अपनी पुत्रवधू को भी पहली बार सम्मिलित कर लिया था, चाहे क़लम के द्वारा ही क्यों न हो।

वर्षा ऋतु जब समाप्त होने को थी, तब खिलाड़ियों में शतरंज का तिहरा खेल ज़ोरों से शुरू हो गया। खिलाड़ी थे—मुग़ल, पुर्तगाली और मराठे।

महाराज को खेदण्डा से रायगढ़ लौट आना पड़ा। कारण यह हुआ कि पनजी में पुर्तगाली

https://t.me/Sahityajunction

वायसराय पुर्तगाली प्रदेश के मैदानी इलाके में हथियार और सेनाएँ इकट्ठी कर रहा था। विश्वसनीय ख़बर थी कि वह अब मराठा राज्य पर आक्रमण की ज़ोरदार तैयारियाँ कर रहा है और सात समन्दर पार पुर्तगाल से युद्ध-सामग्री से भरे दो जहाज पनजी आ पहुँचे हैं।

औरंगज़ेब ने कल्याण-भिवण्डी से अपनी सेनाएँ हटा ली थीं। इसका कारण महाराज ने जो सोचा था, वही निकला। औरंगज़ेब की झाँसा देनेवाली एक चाल थी यह।

बाहर रिमझिम वर्षा हो रही थी। महाराज ने निलोपन्त को खासमहल में बुला लिया था और उनसे कह रहे थे, "पेशवा, अकबर डिचोली में ठहरा हुआ है। उसे लिखो कि वह दुर्गादास को साथ लेकर कारवार जाकर डच लोगों से मिले। शहज़ादे के माध्यम से हमें डच लोगों से हर सम्भव सहायता प्राप्त करनी चाहिए। इस दृष्टि से एक अच्छा ख़ासा नज़राना डिचोली की ओर भेज दो। पर...परन्तु देखो, उस नज़राने में कण्ठा मत रखना इस बार।"

"जी! खेदण्डा क़िले का घेरा सेनानायक के बिना अधूरा पड़ा है। इसलिए..." निलोपन्त ने एक महत्त्वपूर्ण विषय प्रस्तुत किया, "पेशवा, हमें अत्यन्त विवश होकर उस घेरे को छोड़कर यहाँ आना पड़ा। हमने ऊपरी पुर्तगाली प्रदेश में पुर्तगालियों को दबाया हुआ है। इसलिए वह अब हमारे कोंकण के मैदानी इलाक़े पर दबाव डालेगा। विश्वसनीय समाचार मिला है कि औरंगज़ेब भी बेलगाँव होते हुए रामघाट के रास्ते आकर पुर्तगालियों की सहायता करनेवाला है। औरंगज़ेब का हेतु यह है कि अपने को 'दिल्ली के तख्त का बादशाह' कहलानेवाले शहज़ादा अकबर को वह गिरफ़्तार करना चाहता है। इसी बहाने उसे हमारे राज्य में घुसने का भी मौक़ा मिल जाएगा।"

"पुर्तगालियों और मुग़लों का यदि मेल-मिलाप हो गया, तो औरंगज़ेब हमारे कोंकण प्रदेश के मैदानी और पहाड़ी इलाके बड़ी आसानी से निगल लेगा, महाराज।" निलोपन्त ने अपने राजा के मन की बात कही थी।

"इसीलिए हमने सोचा है कि ऊपरी पुर्तगाली प्रदेश में खेदण्डा का घेरा तुम्हारी देख-रेख में चले।"

"जैसी आपकी आज्ञा। हम पूरी सैनिक तैयारी करके खेदण्डा अवश्य जाएँगे।" निश्चयानुसार महाराज पेशवा के साथ रायगढ़ से उतरे। उन्होंने भरी बरसात में आठ हज़ार सेना के साथ पेशवा निलोपन्त को पाचाड़ से विदा किया।

जैसा कि महाराज ने अनुमान लगाया था, औरंगाबाद में वही हो रहा था। औरंगज़ेब के लाडले बेटे शहज़ादा शाहआलम ने घुटने टेककर अपने अब्बाजान के अँगरखे को चूमा और वह औरंगाबाद के नगरद्वार से गाजे-बाजे के साथ बाहर निकल पड़ा। उसके साथ तुर्क, पठान, मुग़ल, और विद्रोही सिपाहियों की कुल मिलाकर पैंतालीस हज़ार फ़ौज थी। तोपख़ाने का दारोग़ा आतिश ख़ाँ भी साथ था। लुत्फुल्ला ख़ाँ, इखलास ख़ाँ, जाँ निसार, सादत ख़ाँ जैसे नेक सरदार भी साथ थे ही।

इनके सिवाय एक और भी आदमी था शाहआलम के साथ। नाम था 'जानू', जो एक मराठा सरदार था। इसे पहाड़ों और पठारों की, घाटियों और दर्रों की पूरी-पूरी जानकारी थी और वह पूरी ईमानदारी से यह जानकारी देने के लिए साथ चल रहा था। सूरत से समुद्री रास्ते होकर धान्य, शस्त्रादि पनजी को भेजे जाने की बात भी तय हो चुकी थी।

https://t.me/Sahityajunction

रवाना होने से पहले जब शहज़ादा शाहआलम औरंगज़ेब से मिलने गया था, तब औरंगज़ेब ने उसके कान में धीरे से कहा था, "बाग़ी अकबर बाँदा, डिचोली, पनजी के आसपास घूम रहा है। उसे जहाँ भी देख पाओ, कत्ल कर दो।"

यों भाई के हाथों भाई का ख़ात्मा कराने की बात कह रहा था दोनों का बाप, बड़ी ख़ामोशी के साथ। शतरंज की तिहरी बाज़ी चल रही थी।

बरसात का मौसम समाप्त हो गया था। अब पुर्तगालियों की जो गतिविधियाँ हो रही थीं, उनसे उनका उद्देश्य स्पष्ट हो चुका था। वे पनजी की खाड़ी को लाँघकर रात-बेरात पास के गाँवों में घुस आते थे। लोगों को क़ैद करके ज़बरदस्ती धर्मपरिवर्तन करा रहे थे। प्रतिदिन रायगढ़ में समाचार पहुँच रहे थे कि वहाँ की प्रजा अत्यन्त भयाक्रान्त हो उठी है।

निलोपन्त पुर्तगालियों के प्रदेश में, खेदण्डा पर, घेरा लगाये बैठे थे। जब उन्होंने ये ख़बरें सुनीं, तो उन्होंने खेदण्डा के साथ-साथ दमण, वसई के लम्बे प्रदेश को भी अपने हमले का निशाना बनाया। परिणाम यह हुआ कि चार हज़ार पुर्तगाली घबराकर मुम्बई भाग गये और अँग्रेज़ों की गोद में जा बैठे।

महाराज ने पनजी के वायसराय के आक्रमण का अनुमान लगा लिया था। इसी दृष्टि से उन्होंने येसाजी कंक और कोंडा प्रान्त के सूबेदार धर्माजी नागनाथ को रायगढ़ बुलाया था। येसाजी और धर्माजी जब महाराज से मिलने आये, उस समय येसाजी के साथ उनका हृष्ट-पुष्ट, नवयुवक पुत्र कृष्णाजी भी था। महाराज ने उसे देखा, तो उन्हें धनाजी जाधव की याद आ गयी। कृष्णाजी हट्टा-कट्टा मलखम्भ के समान सुडौल अंगोंवाला नवयुवक था। "कंक काका, पुर्तगाली कुछ ही दिनों में हमारे फोंडा दुर्ग की ओर बढ़नेवाला है। हम चाहते हैं कि तुम और धर्माजी मिलकर फोंडा का मोर्चा सँभालो।"

"आपने हमें काम सौंपा, हम धन्य हो गये। आप चिन्ता न करें महाराज, हम फोंडा की पूरी रखवाली करेंगे। हम इस अपने तगड़े बेटे को इसीलिए साथ लाये है।" येसाजी की उमर अब काफी ढल चुकी थी, परन्तु आवाज की गम्भीरता व दृढ़ता पूर्ववत् ही थी।

फिर महाराज ने धर्माजी नागनाथ की सैनिक रसद, कुमक और पुर्तगालियों की युद्ध-नीति के बारे में विस्तार से जानकारी दी। धर्माजी, येसाजी और कृष्णा जी रायगढ़ में एक दिन रहकर अगले दिन फोंडा रवाना हो गये।

महाराज रायगढ़ की 'हिरकणी' माची पर खड़े हुए अस्त होते हुए सूर्य के बिम्ब को देख रहे थे। उनके दायें-बायें मुघोजी, चांगोजी, खण्डोजी आदि खड़े थे। सभी मौन थे।

इतने में जोत्याजी केसरकर जल्दी-जल्दी चढ़ता हुआ माची पर आ गया। वहाँ जब उसने महाराज को विचारमग्न देखा, तो वह समाचार बताने में हिचकिचाकर रह गया। कुछ देर बाद जब महाराज ही अपने आप मुड़े, तो जोत्याजी सामने आ खड़ा हुआ।

"मालिक, दिलेर ख़ाँ की एक ख़बर है..." वह सकुचाकर रुक गया।

"जोत्याजीऽ, उसका नाम भी मत लो हमारे सामने।" महाराज के मन की वह पुरानी टीस,

https://t.me/Sahityajunction

जब वे दिलेर ख़ाँ से जा मिले थे, अचानक जाग उठी थी।

"जी, अब उसका नाम लेने की नौबत ही नहीं आएगी। दिलेर ख़ाँ ने अपने डेरे में हीरा चाटकर आत्महत्या कर ली है, महाराज!!"

"क्या ऽ? क्या कहा जोत्याजी?" आज पहली बार महाराज के भी रोंगटे खड़े हो गये थे।

"हाँ, सच है महाराज। बादशाह ने उसे सब लोगों के सामने बहुत डाँटा-फटकारा। कहा कि तुम जैसे सिपहसालार के होते हुए भी फ़तह क्यों नहीं हासिल होती? नमकहराम हो तुम। इस बेइज़्ज़ती से ख़ान इतना दुःखी हुआ कि उसने अपने डेरे में लौटकर..."

दिलेर ख़ाँ! बड़ी माँजी सोयराबाई!! गोदावरी!! सामने डूब रहे बिम्ब के समान दहकने-जलानेवाले विचारों की भीड़ महाराज के मन को भी व्यथित करने लगी। 'लो राजासाहब, हमारी शिकस्त हुई, आप जीते।' कहकर दिलेर ख़ाँ ने अपनी अँगूठी निकालकर कभी सम्भाजी को भेंट की थी। भीमा नदी के किनारे पड़ाव डालकर रह रहे सूरमा दिलेर ख़ाँ की आकृति इस समय रह-रहकर सम्भाजी की आँखों के आगे नाच रही थी।

एक ओर तो महाराज की आज्ञा पाकर मराठों की छोटी-छोटी सेनाएँ राजापुर चली आ रही थीं और दूसरी ओर ऐसी ख़बरें भी मिल रही थीं कि पुर्तगाली फोंडा क़िले का घेरा दिन-ब-दिन मज़बूत बनाते जा रहे हैं। अब राजापुर मराठा सेनाओं की एक विशाल छावनी ही दिखाई दे रहा था। अब वहाँ तीस हज़ार मावले-सैनिक इकट्ठे हो चुके थे। धर्माजी नागनाथ, हम्बीरराव और खण्डोजी उस छावनी की देख-रेख, प्रबन्धादि करने में व्यस्त थे।

महाराज ने धर्माजी को बुलाकर कहा, "सूबेदार, तुम फ्रांसीसियों की कोठियों में जाकर फ्रांसीसी वायसराय से मिलो। उसे साफ-साफ बतला दो कि वह यहाँ से पुर्तगालियों की किसी प्रकार की मदद न करें। यहाँ की हमारी छावनी का ख़र्च बहुत बढ़ गया है। उससे यह माँग करो कि अत्यावश्यक ख़र्चे के लिए वह हमें डेढ़ हज़ार पगोड़े कर्ज़ के रूप में दे।"

"जी। अपने फोंडा दुर्ग की हालत बहुत बुरी है, महाराज। यह दुर्ग अब कुछेक दिनों का साथी है। आठ दिन हो गये, येसाजी कुमक आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर भी वे पूरी दृढ़ता से क़िले की सुरक्षा के लिए जूझ रहे हैं।"

धर्माजी फोंडा के सूबेदार थे, इसलिए उन्होंने उस प्रदेश की एक गम्भीर समस्या महाराज के सामने रखी।

महाराज अभी धर्माजी की बात का उत्तर देना चाह ही रहे थे कि बाहर से किसी के हो-हल्ला मचाने की और ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने-पुकारने की आवाज़ आने लगी।

महाराज ने चौंककर धर्माजी की ओर देखा। कुछ क्षणों बाद ही खण्डोजी एक आदमी को बाँहों से पकड़कर भीतर लाये। उसे महाराज के सामने लाकर कहने लगे, "यह आदमी फोंडा के क़िले का नायकवड़ी[1] है। कहता है कि इसकी कोई शिकायत है। हमने बहुत पूछा कि क्या शिकायत है, पर यह बताता ही नहीं है। इसलिए इसे आपके सामने लाना पड़ा।" खण्डोजी काफी चिढ़े हुए-से थे।

https://t.me/Sahityajunction

धर्माजी ने अपने सूबे के 'नायकवड़ी' को पहचान लिया। वे उसके पास गये और उसकी बाँह को खण्डोजी से छुड़वाते हुए कहने लगे, "खण्डोजी, यहाँ कोंकण के मैदानों में शिकायत करनेवालों के साथ इसी तरह व्यवहार किया जाता है? छोड़ दो उसका हाथ। उसने कोई अशिष्टता नहीं की है।"

महाराज नायकवड़ी के पास आये। उसके कन्धे पर उन्होंने हाथ रखा ही था कि नायकवड़ी एकदम नीचे झुका और महाराज के पैरों पर सिर रखकर भूमि पर दण्डवत् करने लगा। महाराज ने झट से झुककर उसे उठाया और बोले, "कहो, बिलकुल निर्भयता से कहो। क्या शिकायत है तुम्हारी?"

"मेरे अकेले की शिकायत नहीं है महाराज," नायकवड़ी अब ज़रा सँभल चुका था, "सारे प्रदेश की शिकायत है। महाराज यहाँ क्यों अटके पड़े हैं? उधर हमारा फोंडा का क़िला तो हाथ से निकल ही जाएगा, आसपास का सारा प्रदेश पुर्तगाली के पेट में समा जाएगा। जो कुछ भी करना हो, आज ही करना चाहिए।"

नायकवड़ी ने महाराज के मन की बात ही कह दी थी। मुड़कर उन्होंने पूछा, "और कोई शिकायत है तुम्हारी?"

"आज फोंडा के चारों तरफ पुर्तगालियों की काफी हलचल हो रही है। निश्चय ही वे आज रात को ही क़िले पर ज़ोरदार धावा बोलनेवाले हैं।"

"खण्डोजी, हम्बीरराव मामा को बुला लो। धर्माजी, पाँच हज़ार चुने हुए घुड़सवार तैयार रखो। जितने भी पैदल सैनिकों को भेजा जा सके, फोंडा की दिशा में रवाना करो। हम स्वयं फोंडा की सहायता करने जाएँगे।" महाराज ने दृढ़ता से कहा।

नायकवड़ी सन्तुष्ट होकर डेरे से बाहर निकला। कुछ सेवक भीतर आये और महाराज को ज़िरह-बख्तर पहनाकर, ढाल और तलवार देकर सज्जित करने लगे।

हम्बीरराव आये। महाराज उनसे कहने लगे, "सेनापति, हम फोंडा की सहायता के लिए राजापुर से जा रहे हैं। जब तुम्हें सन्देश मिले, तब पूरी फ़ौज के साथ हमसे आकर मिलना। अब हमें अकेले फोंडा को ही नहीं, पूरे पुर्तगाली प्रदेश को ही घेरना पड़ेगा।"

"हम भी साथ आते, तो..." महाराज को अकेला जाने देना हम्बीरराव को अनुचित प्रतीत हो रहा था।

"नहीं, पूरी छावनी को यहाँ से हटाने में समय लगेगा। तुम यहाँ पीछे रहो, तो ही ठीक है।"

वीरों की वेशभूषा से सुसज्जित होकर महाराज डेरे से बाहर आये। उन्होंने धर्माजी, खण्डोजी और हम्बीरराव को राजापुर की आरक्षित सेना पर नियन्त्रण रखने के लिए पीछे छोड़ दिया और सजे हुए चन्द्रावत पर वे सवार हो गये।

"जय भवाऽनी!" जयघोष करके सबसे विदा होते समय उन्होंने घोड़े को एड़ लगायी। चन्द्रावत उछलकर सरपट दौड़ पड़ा। उसके अगले खुरों में पहनाये हुए चाँदी के कड़े धूप में चमचमा रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

उधर फोंडा के क़िले की दीवार में दरार पड़ चुकी थी। पुर्तगाली वायसराय अब आख़िरी हमला करके फ़ौज को क़िले में घुसाने के लिए पंक्तियाँ बनाकर तैयार खड़ा था। सेना का उत्साह बढ़ाने के लिए पुर्तगाली ढंग के बाजे और ढोल बज रहे थे। विचित्र-सी पुकारें और आवाज़ें सुनाई दे रही थीं।

व्याकुल चित्त येसाजी और कृष्णाजी ऊपर क़िले के परकोटे से नीचे देख कर अपने सैनिकों को धीरज बँधाते हुए परकोटे पर तेज़ी से इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। अब फोंडा की पराजय कुछ क्षणों की ही बात थी। थोड़ा समय और बीतना था कि...

इतने में 'हर हर महाऽदेव' की ललकार से आकाश गूँज उठा। येसाजी और कृष्णाजी ने देखा—दूर पर उठ रहे धूल के बादलों के बीच भगवा झण्डा आगे बढ़ा आ रहा है। सारे क़िले में नये प्राणों का संचार हो गया। इस ओर से ललकार उठी, "हर हर महाऽदेव!" उस दिशा ने उत्तर दिया, "हर हर महाऽदेव" पुर्तगाली बीच में फँस गये थे। वे घबराकर पीछे देखने लगे और आपस में खुसफुसाकर कहने लगे, "भागो, भागो। राजा आ गया।" कुछ ही क्षणों में पुर्तगाली सेना की सारी पंक्तियाँ तितर-बितर हो गयीं।

ऊपर क़िले में मावले ख़ुशी से पागल हुए जाते थे और हर्ष-ध्वनि कर रहे थे। पैदल सेना को बीच में करके और पाँच हज़ार घुड़सवारों को पैदलों के आगे-पीछे रखकर सम्भाजी फोंडा क़िले की तलहटी में आ पहुँचे। अब घेरे का रंग ही बदल गया था।

दूर पर खड़ी पुर्तगाली सेना के एक भी सैनिक को हथियार थामने की हिम्मत नहीं हुई। महाराज के लिए तो यह अभियान शत्रु सेना पर आक्रमण था ही नहीं। वे राजापुर से आये और सदा की भाँति सीधे फोंडा दुर्ग पर चढ़ने लगे। अब फोंडा दुर्ग में नगाड़े बज रहे थे।

येसाजी ने आज पूरे आठ दिन बाद क़िले का दरवाज़ा खोला था। दरवाज़ा खोलते ही वृद्ध सेनानी ने बड़े महाराज के उस अंश को, उस युवक नरेश को ज्यों ही देखा, अनेक स्मृतियों के कारण उसकी आँखें डबडबा आयीं। वह अनुभवी वृद्ध सेनानी मुजरा करने के लिए झुकना ही चाहता था कि महाराज झट से आगे बढ़े। एक सजीला नौजवान राजा और प्रौढ़ावस्था में प्रविष्ट एक सेनानी स्नेहालिंगन में बँध गये।

"कंक काका, क़िले के सभी सिपाहियों को तुरन्त इकट्ठा कर लो। अब पुर्तगाली पीछे हटेंगे। हमें उनका पीछा करना है।"

"जी," येसाजी और कृष्णाजी आनन्दातिरेक से सिर हिला रहे थे। राजा के सोचे अनुसार ही हुआ। वायसराय ने ज्योंही वापसी का हुक्म दिया, फ़ौज ऐसे ही लौट पड़ी, मानो उस हुक्म की प्रतीक्षा ही कर रही हो। पुर्तगाली पैदल सिपाहियों को आगे रखकर चल रहे थे। पीछे से बन्दूक़ची उनकी रक्षा कर रहे थे। बीच-बीच में आम के या ताड़ के वृक्षों को गिराकर वे मोर्चे बाँध लेते थे।

मावले घुड़सवारों ने दुभटि नामक स्थान पर उन्हें पकड़ लिया। पुर्तगाली मोर्चे बाँधकर बैठे थे। उनकी बन्दूकें दनदनाने लगीं। इन बन्दूक़ों की ज़ोरदार आवाज़ों से मावल देश के घोड़े बिदकने लगे और मुँह फिराने लगे। ऐसी अवस्था को देखकर येसाजी का पुत्र कृष्णाजी बिगड़ उठा। उसने आकाश की ओर देखकर एक बार ऊँचे स्वर से ललकार लगायी, "हर हर महाऽऽदेवऽ!" और इस एक ललकार से उसने सारी मराठा घुड़सवार सेना को जैसे वश में कर लिया। उसने हाथ में भाले-बरछे ताने हुए घुड़सवारों की कई पंक्तियाँ बना लीं। उस काल ऐसी

https://t.me/Sahityajunction

धुन समा गयी थी उसमें कि वह येसाजी और महाराज की ओर भी नहीं देख रहा था।

जैसे ही उसने भाले की नोक सामने की ओर उठायी, धुन के धनी घुड़सवार भाले तानकर आगे को दौड़ पड़े। जैसे ही वे वृक्ष के पीछे छिपा हुआ पुर्तगाली मोर्चा देखते, घोड़े की पीठ से शरीर सटाकर वे घोड़ों और भालों से बन्दूक़ची पर चढ़ दौड़ते थे। अब यह लड़ाई घोड़ों पर दौड़कर आते हुए मावलों के तथा पक्के मोर्चे बनाकर जमे हुए पुर्तगाली बन्दूक़चियों के बीच हो रही थी।

पुर्तगाली मोर्चे अब तितर-बितर हो गये थे। दौड़ते हुए मराठे-बरछैतों के बरछे से वायसराय दो बार बाल-बाल बच गया था, शायद उसका भाग्य प्रबल था। कितने ही पुर्तगाली नदी में तैर कर भागे जा रहे थे। कई बेचारे कमर तक के पानी में खड़े होकर प्राणों की भीख माँग रहे थे। वायसराय अपनी आँखों से अपने ही लोगों की दुर्दशा देख रहा था।

...और यह हुआ कि ख़ून से लथपथ, पसीने से तर-बतर कृष्णाजी चक्कर आने के कारण घोड़े से गिर पड़ा। जिस स्थान पर आहत येसाजी को लिटाया हुआ था, वहीं पर मावले सैनिकों ने कृष्णाजी को लाकर एक कम्बल पर सुला दिया।

अब दोनों ओर की सेनाओं के हमले कुछ ठण्डे हो गये थे। कितने ही पुर्तगाली और मावले सैनिक रण में खेत रहे थे। शाम होने के कारण हथियार भी रुक गये थे।

महाराज मावलों की भीड़ के साथ येसाजी और कृष्णाजी के पास आये। उन्हें देखकर मन्द वाणी में बूढ़ा सेनानी कहने लगा, “कुशल से हैं न आप?” इसका महाराज भला क्या उत्तर देते? वे कृष्णाजी के पास आये। कम्बल पूरा ख़ून से भरा हुआ था। कृष्णाजी ने निर्बल हुए नेत्रों को झपकाने का प्रयत्न किया। महाराज पंजों के बल भूमि पर बैठ गये और उसके घायल शरीर पर एक माता के समान प्यार-भरा हाथ फिराने लगे।

“ऐसा अकेला क्यों दौड़ पड़ा तू?” राजा के मुख से दो शब्द और आँखों से दो आँसू टपक पड़े। फिर झट से खड़े होकर उन्होंने आस-पास खड़े लोगों को आज्ञा दी, “इन पिता-पुत्र को तुरन्त डोली में बिठाकर कराड प्रान्त में उनके गाँव पहुँचा दो।”

यह वीरतापूर्ण पराक्रम था ही ऐसा कि महाराज को नेसरी के प्रतापराव गुजर, पुरन्दर के मुरारबाजी, पावनखिंड के बाजीप्रभु देशपाण्डे और जंजिरा के फर्जन्द आदि बलिदानी वीरों की शौर्यगाथाओं की याद आ गयी।

महाराज की सेनाएँ तीन दिशाओं से गोवा में घुसने के लिए आगे बढ़ रही थीं। महाराज और खण्डोजी ने जुवे नामक टापू पर आक्रमण किया और पहले हमले में ही उस पर क़ब्जा कर लिया।

हम्बीरराव ने सालसेत ओर बारदेश पर धावा बोल दिया था और धर्माजी नागनाथ दुभटि-आगाशी के रास्ते गोवा में घुस पड़े।

मराठों द्वारा जुवे द्वीप पर क़ब्ज़ा किये जाते ही वायसराय घबरा गया। क्योंकि इस द्वीप से आगेवाली खाड़ी को पार करते ही मराठे गोवा में घुस सकते थे। भयभीत पुर्तगाली पादरियों ने

https://t.me/Sahityajunction

अपने वायसराय के आदेश से संकट की सूचना देने के लिए चर्च के घण्टे ही बजाने शुरू कर दिये।

डिचोली से आया हुआ शहज़ादा अकबर इस मुहिम में महाराज के साथ था। उसने एक बार राजा का वह रूप भी देखा था कि जब वे समुद्र की खाड़ी को ही पाट डालने निकले थे। अब उसे पूरा विश्वास हो गया था कि अब गोवा की ख़ैर नहीं है।

मराठों द्वारा जुवे द्वीप पर अधिकार किये जाने की घटना के दूसरे दिन वायसराय चार सौ सैनिकों सहित सुबह-सुबह ही खाड़ी पार करके द्वीप के किनारे आ गया। महाराज ऊपर की पहाड़ी पर खड़े थे। वे काफी देर तक चुपचाप खड़े रहे और वायसराय को पहाड़ी चढ़कर आता देखते रहे। जैसे ही वायसराय और उसके सैनिक मार के भीतर आये, महाराज और उनके सैनिक छोटे-बड़े गोल पत्थरों की वर्षा करते हुए पहाड़ी से उतरने लगे।

"भागोऽ, भागोऽ!" का कोलाहल मच गया। ऊपर चढ़ रहे पुर्तगालियों ने अपनी घोड़ियों को घुमा लिया। पर वे पुर्तगाली घोड़ियाँ जल्दी-जल्दी पहाड़ी उतर भी नहीं पा रही थीं। इसलिए वे उन घोड़ियों को वैसे ही छोड़कर भागने लगे।

इसी समय द्वीप के एक कोने से तीन सौ मावलों की कुमक महाराज से आ मिली।

जुवे द्वीप के आसपास की पहाड़ियों पर खड़े पुर्तगाली आज एक अजीब नज़ारा देख रहे थे। पहाड़ी के उतार पर अपने वायसराय के साथ आगे-आगे जा रहे थे पुर्तगाली और पीछे तलवारें ताने हुए उनका पीछा कर रहे थे मावले सैनिक। जब चार मावलों ने दौड़कर वायसराय के घोड़े को ही घेर लिया, तब तो पुर्तगालियों के दिल काँप उठे। दोम रोद्रिगो घोड़ा दौड़ाता हुआ वहाँ आ पहुँचा, इसीलिए वायसराय बच गया फिर भी उसकी बगल पर मावले सैनिक की तलवार का एक हलका वार लग ही गया। रोद्रिगो ने चीखकर उससे कहा, "भागिए। खाड़ी में घुसिए।"

ख़ून से लथपथ भयभीत वायसराय खाड़ी की ओर घोड़ा दौड़ाने लगा। महाराज का ध्यान उसकी ओर भी था और वे पुर्तगाली सैनिकों से लड़ भी रहे थे। फिर अकस्मात् महाराज ने चतुराई दिखाकर सैनिकों की भिड़न्त से 'चन्द्रावत' को बाहर निकाल लिया और घोड़ा सरपट दौड़ाते हुए वे वायसराय की ओर लपके।

पहाड़ी पर खड़े हुए तमाशबीनों को आज एक अजूबा देखने को मिल रहा था। आगे-आगे घायल वायसराय कोंद-दि-आलवोर अपनी जान बचाने के लिए भागा जा रहा है और तलवार उठाये हुए उसे पकड़ने के लिए दौड़ा जा रहा है 'सम्बा'।

महाराज अकेले ही वायसराय के पीछे दौड़ रहे हैं, यह देखकर खण्डोजी ने लड़ते हुए सैनिकों से अपने घोड़े को दूर हटाया और वे महाराज की ओर बढ़ चले।

समुद्र में ऊँची-ऊँची झागदार लहरें टकरा-टकराकर गरज रही थीं। खाड़ी में ज्वार आया हुआ था। घबराये हुए वायसराय ने इसी खाड़ी में अपना घोड़ा घुसा दिया। बुरी तरह हड़बड़ाया हुआ वायसराय इस समय पूरी शक्ति से प्रयत्न कर रहा था कि खारे पानी की उस खाड़ी को तैरकर जैसे-तैसे वह नाव तक पहुँच जाय। नाव भी अब उसकी ओर बढ़ने लगी थी।

महाराज चन्द्रावत पर बैठे हुए खाड़ी के किनारे-किनारे दौड़ रहे थे और बहुत बेचैनी से पुकार-पुकारकर कह रहे थे, "छोड़ो मत उसे। गाँवों को जलाता है—लोगों को धर्मभ्रष्ट करता है

https://t.me/Sahityajunction

यह।”

और फिर अकस्मात् यह हुआ कि क्रोधावेग के कारण आत्मनियन्त्रण खोकर महाराज किसी अनिवार्य प्रेरणावश चन्द्रावत को लेकर स्वयं ही खाड़ी में घुस पड़े। खारा पानी चारों ओर उछला। चन्द्रावत अभी पानी में दस हाथ गया होगा कि समुद्र के ज्वार की चपेट में आ गया और लहरों में बहने लगा।

उधर वायसराय जैसे-तैसे किश्ती तक पहुँच गया था और उधर उसे मारने आने वाला ‘सम्बा’ अपने घोड़े के साथ ज्वार के खिंचाव में बहता जा रहा था। पहाड़ी पर खड़े पुर्तगाली तमाशबीन इन दोनों घटनाओं से हर्षित होकर तालियाँ बजाने लगे।

महाराज प्रयत्न कर रहे थे कि उनका रक़ाब में अड़ा हुआ पैर निकल जाए। काफी प्रयत्न के बाद पैर रक़ाब से बाहर निकल आया। महाराज एक हाथ से बहते जा रहे चन्द्रावत को सँभालना चाह रहे थे और दूसरे हाथ से वे तैरने का प्रयत्न कर रहे थे। परिणामस्वरूप दोनों ही लहरों में बहने लगे। अब तो पहाड़ी पर खड़े लोग तालियाँ बजा-बजाकर ख़ुशी से चिल्लाने लगे।

उस एक क्षण में ही महाराज की आँखों के सामने सारा जीवनचित्र घूम गया। मराठों का राज्य ही खारे पानी में बहा जा रहा था।

...और अकस्मात् न जाने क्या हुआ कि तमाशबीनों की सारी ख़ुशी हवा हो गयी। उन्होंने देखा कि तन-मन की सम्पूर्ण शक्ति लगाकर एक घुड़सवार पानी में घुस पड़ा। जल्दी-जल्दी पानी को काटता हुआ वह पलक झपकने से भी पहले ‘सम्बा’ के पास पहुँच गया। उसने बहते जा रहे ‘सम्बा’ को अपने हाथों का सहारा दिया और वह तैरकर किनारे की ओर बढ़ने लगा। सवार के हाथों से बागडोर छूट जाने के बाद चन्द्रावत भी तैरकर किनारे आ लगा।

घोड़े पर बैठकर पानी में कूदने वाला, झपट्टा मारनेवाला यह पानीदार साहसी वीर था—खण्डोजी बल्लाल।

महाराज और चिटनीस किनारे पर आ पहुँचे। महाराज काफी देर तक खण्डोजी की ओर टक लगाकर देखते रहे और फिर भावुकतावश उन्होंने खण्डोजी को एकदम गले लगा लिया।

अब हम्बीरराव की सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए महाराज सालसेत और बारदेश प्रान्त में पहुँचे। यह वही भाग था, जहाँ पुर्तगालियों के धार्मिक अत्याचार चरम सीमा पर पहुँचे हुए थे।

इस प्रदेश में पुर्तगाली लोग निर्धन मछुओं की नौजवान लड़कियों को बलात् धर्मान्तरित कर रहे थे। दिन में उनसे धर्म का प्रचार कराते थे और रात को उनके शरीरों को भोग-विलास का साधन बनाते थे। मावले सैनिकों ने ऐसी ईसाई-भिक्षुणियों के तीन मठों पर छापे मारकर उन्हें मुक्त कर दिया। राचोलिका भिक्षुणी-मठ सबसे बड़ा था। इस मठ के दरवाज़े खुलने की देर थी कि जैसे रस्सी तुड़ाकर सफ़ेद गौवें बेतहाशा भागने-दौड़ने लगें, इस प्रकार सफ़ेद चोगे पहनी हुई, मछुआ जाति की भिक्षुणी बनी हुई स्त्रियाँ जिधर राह सूझे, उधर भागने लगीं। कन्धे पर रखे जुए को उतार फेंककर वे स्त्रियाँ मुक्त होकर जा रही थीं और उन्हें स्वतन्त्र हुआ देखकर महाराज हम्बीरराव से कह रहे थे, “मामाजी, यह दृश्य देखने के लिए यदि आज हमारी बड़ी आऊसाहिबा

https://t.me/Sahityajunction

होतीं, तो कितना अच्छा होता।”

परन्तु इसी समय उनके मन में छुपा हुआ कोई व्यक्ति बार-बार एक कटु परन्तु सत्य प्रश्न पूछ रहा था—‘काश, तुम्हारे इन हाथों को राणूदीदी और दुर्गाबाई को मुक्त कराने का सौभाग्य भी प्राप्त हो पाता!’ जैसा दृश्य महाराज आज देख रहे थे, वैसा दृश्य बारदेश प्रान्त के आकाश ने कभी देखा नहीं होगा। सोलापुर और पण्ढरपुर के प्रदेश में जैसे पाँच-सात बैलों को एक ही रस्सी में बाँधकर किसान सामूहिक खेती के काम में लाते हैं, इसी प्रकार मावले सैनिकों का एक दल सात पादरियों को एक रस्सी में बाँधकर ले आया।

“इनका क्या करें मालिक? मछुओं के जाल की तरह इन्हें भी समुद्र में फेंक दें क्या?” दलनायक ने पूछा।

सब पादरियों की गरदनें झुकी हुई थीं। सिर कटी हुई डण्ठलवाले फूल की तरह लटके हुए थे। महाराज उन्हें ध्यानपूर्वक देखने लगे—‘ये भी धर्मोपदेशक कहलाते हैं? परन्तु इनमें से एक की भी मुखमुद्रा, समर्थगुरु की बात तो दूर, दिवाकर गोसाईं के समान भी नहीं है। समर्थगुरु को देखकर अनुभव होता था, मानो धर्म उनके पदचिह्नों का अनुकरण कर रहा है; और इन्हें देखकर कैसा लगता है? लगता है, जैसे ये धर्म को पैरों तले कुचल रहे हैं। जो दूसरों के अधिकार छीनता है, दूसरों को कुचलता-रौंदता है, उसे भला धर्म क्योंकर कहा जा सकता है? ये लोग हमारे कब्ज़े में हैं, परन्तु फिर भी हमारे मन में यह इच्छा क्यों नहीं होती कि हम इनका धर्मपरिवर्तन करा दें? इन्हें धर्मभ्रष्ट बना दें? परन्तु भ्रष्ट किसे किया जाता है? मन को? नहीं, नहीं, भ्रष्ट तो शरीर होते हैं। मन को भला कौन भ्रष्ट कर पाएगा?’

“आज्ञा दें महाराज।” नायक ने उतावला होकर पूछा।

“ये भी तो बैल ही हैं। धर्म के कोल्हू में जुते हुए हैं और अत्याचार-रूपी तेल निकालते हैं। इनकी पीठ पर कोड़े लगाओ और इनका अपमान भरा, थुक्का-फज़ीहत वाला जुलूस निकालो।” महाराज ने क्रोध से कड़ककर कहा।

उधर पनजी के पुराने प्रार्थना स्थान में भयभीत पुर्तगाली इकट्ठे हो गये थे। हाथों को सिर और कन्धों से लगा-लगाकर आकाश स्थित पिता की करुणा की याचना कर रहे थे। आज पहली बार वायसराय कोंद-दि-आलवोर ने उस ताबूत का ढक्कन खोला था, जिसमें सेण्ट जेवियर का शव रखा था। उस शव के हाथ का स्वर्णदण्ड अपने हाथों में लेकर वह बार-बार उसे आकाश की ओर उठाकर धीरे-धीरे कह रहा था, “रक्षा कर। गोवा की लाज तेरे हाथ है। जैसे भी हो, ये ‘सम्बा’ वापस चला जाय। चाहे वह गोवा ले ले, पर हमारे प्राण न ले।”

पनजी के समुद्र में कई पुर्तगाली जहाज पुर्तगाल जाने के लिए तैयार खड़े थे। इन जहाज़ों में पुर्तगाली स्त्रियाँ और बालक भी बैठ गये थे। आज वायसराय ने सेण्ट जेवियर के प्रति यह अन्तिम प्रार्थना की थी। इसके बाद प्रार्थना-स्थल को खाली करके वह उस ताबूत को भी जेवियर के शव के साथ पुर्तगाल ले जानेवाला था। चर्च के घण्टे ‘टन-टन-टन’ बज रहे थे।

दुभटि, जुवे, अंत्रुज, बारदेश आदि भागों में फैली हुई मावल-सेना अब एक स्थान पर इकट्ठी हो रही थी। यह सम्मिलित सेना अब महाराज का आदेश पाते ही गोवा में घुसनेवाली थी।

https://t.me/Sahityajunction

इस दृष्टि से सैकड़ों नौकाओं को समुद्र में एकत्रित कर लिया गया था। महाराज, हम्बीरराव, खण्डोजी और धर्माजी समुद्र तट पर खड़े हुए उन नौकाओं को उत्साहपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। परन्तु...

अन्ततः यह 'परन्तु' बीच में आ ही टपका। मुँह तक आये हुए कौर में मक्खी गिर ही पड़ी। कवि कुलेश द्वारा भेजा हुआ एक गुप्तचर महाराज को ढूँढ़ता हुआ, हाँफता-हाँफता वहाँ आया। सूचना थी कि शाहआलम एक लाख फ़ौज के साथ रामघाट के रास्ते बढ़ा आ रहा है। पूरे पहाड़ी घाट में लम्बी कतारें ही कतारें हैं फ़ौज की।

"क्या?" महाराज आँखें फाड़कर देख रहे थे। वे लगभग चीख़ उठे थे। फिर वही बात हुई कि 'बात बनती हुई हो और फिर बिगड़ जाय।' अब महाराज के पास इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था कि उत्तर में शाहआलम और पश्चिम में वायसराय इन दो शिकंजों के बीच फँसने से पहले वे सेना सहित पुर्तगाली प्रदेश से बाहर निकल जाएँ।

पुर्तगाली सन्धि के लिए तैयार हो चुके थे। महाराज ने यह ज़िम्मेदारी कवि कुलेश और अकबर को सौंपी और वे स्वयं रायगढ़ लौट आये। रायगढ़ लौटकर दो समस्याएँ उनके मन को निरन्तर व्याकुल किये थीं। एक थी शाहआलम का कोंकण प्रदेश में प्रवेश और दूसरी समस्या थी मुम्बई के अँग्रेज़। पहले एक बार पुर्तगालियों ने यह आक्षेप किया था कि येसाजी गम्भीर के पास मराठा-राज्य का परिचय-पत्र नहीं है, इसलिए महाराज ने इस बार गोवा से लौटते समय सन्धि-वार्ता के लिए कवि कुलेश को 'कुल-इख्तियार' बनाकर सब अधिकार प्रदान कर दिये थे। वास्तव में महाराज ने कवि कुलेश को केवल राजनीति के तात्कालिक उद्देश्य से ही 'सर्वाधिकारी' बनाया था, परन्तु उनकी नियुक्ति कई अधिकारियों को खटक गयी। "पहले 'छन्दोगामात्य' बनाया, अब 'कुल-इख़्तियार'—ये कनौजिया अब सिर का बोझ बना जा रहा है।" ऐसी खुसपुसाहट फैल रही थी।

आदेश के अनुसार कवि कुलेश और अकबर फोंडा और भीमगढ़ जाकर पुर्तगाली राजपूतों से समझौते की बातचीत करने लगे।

याकूत ख़ाँ का विशाल मुग़ल जंगी जहाज़ी बेड़ा सूरत से मुम्बई आ पहुँचा था। जैसे कभी महाराज सम्भाजी के सामने यह समस्या उपस्थित हुई थी कि वे शहज़ादा अकबर को आश्रय दें या नहीं, उसी प्रकार अब अँग्रेज़ों के सामने भी यह उलझन आ पड़ी थी कि याकूत ख़ाँ के बारे में क्या किया जाय!

महाराज अब जान गये थे कि अँग्रेज़ों का मुम्बई में टिका रहना स्वराज्य की दृष्टि से घातक सिद्ध होनेवाला है। अँग्रेज़ों के कारंजा और एलिफेंटा द्वीप, और माहिम, दन्तोरा, सारगाँव तथा कोबला नामक थानों पर मराठों ने अधिकार कर लिया।

अब मुम्बई पर हमला करने की दृष्टि से जावली कराड और पुणे पन्हाला आदि विभागों में नये सिरे से सेनाओं का संचयन शुरू कर दिया गया।

पुर्तगालियों से समझौते की जो बातचीत हो रही थी, उस सम्बन्ध में एक बार शहज़ादा अकबर रायगढ़ आकर महाराज से मिला। वह बार-बार पिता के विरुद्ध सैनिक सहायता की माँग

https://t.me/Sahityajunction

कर रहा था और अब निराश हो चला था। कहता था, “मुझे ईरान जाने दो।” परन्तु महाराज उसे समझा-बुझाकर पुर्तगालियों के साथ हो रही सन्धि-वार्ता में मध्यस्थ बने रहने को कह रहे थे।

ख़बर यह थी कि औरंगज़ेब शाहआलम की सेना को दक्षिणी कोंकण में सब जगह फैलाकर स्वयं बीजापुर के आदिलशाही राज्य पर हमला करनेवाला है। कुडाल, बाँदा और डिचोली के प्रदेश में जहाँ-तहाँ घूम रहे शाहआलम की अब बुरी हालत हो रही थी। समुद्र के रास्ते उसे जो रसद मिलनेवाली थी, उसे मराठों ने बीच में ही लूट लिया था। मराठों ने आस-पास के पानी के गढ़े और तालाबों में विष मिला दिया था, इसलिए शाहआलम के घोड़ों को पानी मिलना भी मुश्किल हो गया था।

कभी आबासाहब ने आदिलशाही राज की रक्षा की थी, आज भी यह ज़रूरी हो गया था कि सम्भाजी उस राज्य की रक्षा करें। उन्होंने इस दृष्टि से हम्बीरराव और पेशवा निलोपन्त को बुलवा लिया था।

“पेशवा, औरंगज़ेब का इरादा दिखलाई देता है कि वह बीजापुर पर हमला करेगा। हम यदि उस राज्य को सहयोग दें तो वह राज्य लम्बे समय तक मुक़ाबला कर सकेगा।” महाराज जैसे अपने आपसे ही बातचीत कर रहे थे।

“जी। हम ही जाएँगे आदिलशाही राज की ओर।” हम्बीरराव को भी महाराज का सुझाव पसन्द आया।

“हम तुम्हें ही भेजेंगे मामाजी, पर अभी नहीं। उचित अवसर आने पर भेजेंगे। निलोपन्त, तुम नयी सेना के अट्ठारह हज़ार लड़ाकों को बीजापुर की दिशा में कूच करने का आदेश दो।” महाराज औरंगज़ेब के बारे में सोच रहे थे।

इतने में दक्षिण कोंकण से घोड़ा उड़ाता हुआ गुप्तचर विश्वास महाराज से मिलने गया। उसने जो ख़बर सुनायी, उससे महाराज के मस्तिष्क की नसों का तनाव थोड़ा कम हो गया।

“शाहआलम मार खाते-खाते बेचैन हो उठा है। अब वह वापसी के रास्ते पर है। वह एक लाख सेना लेकर आया था, अब केवल चालीस या पैंतालीस हज़ार सिपाही बचे हैं उसके पास। उनके हाथों में भी हथियार चलाने की ताक़त नहीं बची है। शाहआलम ने अपने बाप को अहमदनगर सन्देश भेजा है—‘मुझे घोड़े और खच्चर दिये जाएँ, नहीं तो मेरी यहीं पहाड़ों में मौत हो जाएगी’।”

समाचार सुनकर महाराज हम्बीरराव से शान्तिपूर्वक कहने लगे, “सेनापति, अब तुम और हम मिलकर ही जाएँगे मुम्बई की ओर।”

उसी समय निलोपन्त ने एक ऐसी ख़बर सुनायी कि महाराज का आगे बोलना अपने आप बन्द हो गया, “कराड प्रान्त में फोंडा से लौटे हुए येसाजी कंक का स्वास्थ्य सुधर रहा है, परन्तु... परन्तु कृष्णाजी घावों के कारण चल बसे, स्वामी।”

“कृष्णाजी!” नौजवान की ख़ून से लथपथ आकृति ही महाराज की आँखों के आगे आ गयी। मन खिन्नता से भर उठा। कुछ क्षणों तक वे कृष्णाजी के बारे में ही सोचते रहे। महाराज जानते थे कि कृष्णाजी के पीछे उसकी पत्नी और तीन वर्ष का एक लड़का है। उस विचार से वे पेशवा से बोले, “कृष्णाजी को सालाना एक हज़ार होन और येसाजी को भी सालाना एक हजार

https://t.me/Sahityajunction

होन पहुँचाने का प्रबन्ध करो। और देखो, खण्डोजी बल्लाल को भी एक हज़ार होन दिये जाएँ और एक पालकी दी जाय। उन्हें अब से पालकी में बैठकर चलनेवाले अधिकारी का सम्मान प्रदान किया जाता है।"

औरंगज़ेब ने आदिलशाह को लिखा था कि 'सम्बा' को किसी भी तरह की मदद न दी जाय। दक्षिणी कोंकण में मराठा, मुग़ल और पुर्तगाली सेनाओं के बार-बार के संचालन के कारण अकाल-सा पड़ गया।

मुम्बई के केजविन ने अपनी दुर्दशा का वर्णन करते हुए लन्दन के राजा चार्ल्स को एक पत्र लिखा था। उसने लिखा था कि 'अपनी सीमाओं के निकटवर्ती एक शक्तिशाली राजा 'शम्भुजी' ने पुर्तगालियों का चालीस मील लम्बा प्रदेश बर्बाद कर डाला है। उसकी तीस हज़ार सेना मुम्बई की ओर मोहरा करके चारों ओर तैयार खड़ी है। हमारे पास तो केवल डेढ़-दो सौ अँग्रेज़ सिपाही और दो सौ काले सिपाही हैं। शम्भुजी ने हमसे साठ तोपें, चार सौ पीपे गोला-बारूद, काँसा, बड़े जहाज और कपड़ों की माँग की है। उसने धमकी दी है कि अगर ये माँगें पूरी नहीं की गयीं, तो वह मुम्बई पर हमला कर देगा। इस हालत में हम क्या करें? हमारा विचार है कि पुर्तगालियों के अनुभव को देखते हुए उससे सुलह कर ली जाय।'

कारंजा और एलिफेंटा का एक चक्कर लगाकर महाराज रायगढ़ लौट आये। इस बार उन्होंने सोचा हुआ था कि मुम्बई के अँग्रेज़ों और बसई के पुर्तगालियों के साथ एक साथ ही लड़ाई छेड़ी जाय।

उस रात जब वे सिंहासन वाले राजसभागृह में बैठे थे, तभी उन्हें सूचना मिली : 'पनजी से आये हुए कुछ पुर्तगाली प्रतिनिधि तथा 'कुल-इख्तियार' कुलेश मिलने आ रहे हैं।' कुलेश मौनी बाबा के दर्शनों के लिए कटगाँव गये थे। वहीं से पुर्तगाली राजदूत-मण्डली के साथ वे रायगढ़ आ गये थे। फ्रायर, कॉन्सिको, थेमुडो, पादरी ऑगस्टीन और अल्बुकर्की—ये प्रतिनिधि उनके साथ थे।

राजदूत-मण्डली ने महाराज को नज़राना दिया। इस बार वे बड़े भय-संकोच और अत्यन्त विनम्रता से पेश आ रहे थे। अल्बुकर्की से कुलेश और अकबर की जो बातें हुई थीं, दुभाषिया राम नाईक उन बातों का विवरण महाराज को बता रहा था। वैसे पुर्तगालियों से सन्धि करने की बात महाराज के मन में थी ही नहीं। इसीलिए महाराज ने कोई न कोई कारण दिखलाते हुए पुर्तगाली-प्रतिनिधियों को तीन रात वहीं अटकाये रखा।

तंग आकर तीसरी रात को अल्बुकर्की ने समझौते के बारे में अपना मत प्रकट किया : "हम अंजदीव द्वीप से नहीं हटेंगे। मराठा राजा हमसे जो बख्शीश माँगते हैं, वह भी हम नहीं देंगे।"

"क्या मतलब?" महाराज सुनकर बैठक से उठ खड़े हुए। उनका चेहरा तमतमा उठा। "कवि कुलेश, इन पुर्तगालियों से कह दो—हम जो शर्तें कहते हैं, वे यदि इन्हें स्वीकार न हों, तो पुर्तगालियों के प्रदेश में जमे हुए हमारे पेशवा पीछे नहीं हटेंगे। भीमगढ़ के बन्दियों को हम रिहा नहीं करेंगे। बारदेश में उनकी जो तोपें हमने ज़ब्त की हैं, वे भी वापस नहीं मिलेंगी। और आवश्यकता हुई, तो हम स्वयं फिर हमला बोल देंगे।"

https://t.me/Sahityajunction

अल्बुकर्की महाराज के इस रौद्र रूप को देखकर ही थरथर काँपने लगा। पुर्तगाली-प्रतिनिधियों में से केवल फायर ही ऐसा था, जिसके मन में महाराज का यह रूप बस गया था।

महाराज पाचाड़ के निकटवर्ती स्थान बिखाड़ी आये। इस स्थान पर आबासाहब ने एक ख़ास हवेली बनवायी थी। वे कभी-कभार इस हवेली में आकर ठहरते थे।

मुम्बई के गवर्नर केजविन ने लन्दन दरबार को जो पत्र लिखा था, उसका उत्तर आ गया था। इसलिए केजविन ने तुरन्त अपना एक दूत रायगढ़ भेजा था।

"अँग्रेजों की इच्छा है कि उन्हें कर्नाटक में व्यापार की कोठियाँ बनाने दी जाएँ। उनका प्रेसिडेण्ट नामक एक जहाज़ हमारे सैनिकों ने पुर्तगाली जहाज़ समझकर पकड़ लिया है। वह जहाज़ वापस किया जाय, यह भी उनकी माँग है।" अँग्रेज़-प्रतिनिधि गैरी को आगे करके प्रह्लादपन्त ने कहा।

महाराज ने अँग्रेज़-प्रतिनिधि को ऊपर से नीचे तक देखा—'ये अँग्रेज़, पुर्तगाली, डच और फ्राँसीसी कितने दूर देशों के निवासी हैं, समुद्र के किनारे की भूमि पर जहाँ-कहीं थोड़ी-सी जगह मिले, वहीं उस राज्य के तलवे चाटकर जगह-जगह कोठियाँ बना लेते हैं। आज व्यापार के लिए कोठियाँ बना रहे हैं—कल हाथ-पाँव फैलाने शुरू कर देंगे। यह औरंगज़ेब यदि विशाल सेना के साथ स्वयं दक्खिन में न आ जाता तो हम ही इन सबकी ख़ूब ख़बर लेते। परन्तु विवशता है। हम आज की इस विकट परिस्थिति में चारों ओर के लोगों को एक साथ शत्रु भी तो कैसे बना सकते हैं?' राजा के मन में विचार आ रहे थे।

महाराज ने प्रह्लादपन्त के माध्यम से गैरी से शान्तिपूर्वक बातचीत की। गैरी के सहायक के रूप में थॉमस विल्किंस और दुभाषिया राम शेणवी भी था। यह बातचीत बिखाड़ी में पूरे तीन दिन तक चलती रही। महाराज ने सन्धि की शर्तों का ब्यौरा लिखने का काम प्रह्लादपन्त को सौंपा और वे रायगढ़ चले गये।

प्रह्लादपन्त ने आदेशानुसार शर्तों सहित सन्धि पत्र तैयार करके अँग्रेज़ों को दिया, परन्तु वे रायगढ़ नहीं गये। वे चले गये किसी ऐसे एकान्त स्थान में, जहाँ मानाजी मोरे, गंगाधरपन्त, राहुजी सोमनाथ और वासुदेवपन्त के साथ उनकी कोई गुप्त बैठक थी।

इसी समय पुत्र शाहआलम और पिता औरंगज़ेब की अहमदनगर में मुलाक़ात हुई। पिता ने जो घोड़े और खच्चर भेजे थे, उनकी सहायता से शाहआलम ने जैसे-तैसे पहाड़ी घाटों को पार किया था और अहमदनगर तक पहुँचा था। अब उसके पास केवल चालीस हज़ार सैनिक बचे थे।

शहज़ादा अहमदनगर के क़िले में गरदन झुकाकर जब औरंगज़ेब के सामने पेश हुआ तब औरंगज़ेब बेहद नफ़रत से कहने लगा, "वो बागी अकबर गया तो कम से कम अकेला गया। तुम हो कि फ़ौजी सिपाही लेकर गये और उन्हें खोकर आये। तुम्हारी जुर्रत कैसे हुई यह काला मुँह हमें दिखाने की? तुम भी उस बाग़ी के साथ क्यों नहीं चले गये?"

बेचारा शाहआलम क्या जवाब देता? ख़ामोशी से वहाँ से चल दिया।

सम्भाजी के परिवार की दो महिलाएँ खुलदाबाद की कोठरी में थीं, इस कारण मराठे जालना

https://t.me/Sahityajunction

तक आ-आकर छापे मारते थे। औरंगज़ेब इन छापों से तंग आ गया था। इसलिए उसने वज़ीर असद ख़ाँ को बुलाकर कहा, "सम्बा के ज़नानख़ाने की औरतों को बहादुरगढ़ भेज दो। वहाँ भी उन पर कड़ा पहरा लगाओ।"

बादशाह के हुक्म से दुर्गाबाई और राणूदीदी को खुलदाबाद से बहादुरगढ़ पहुँचा दिया गया। जैसे कोई चूना, ईंट या हथियार मिलने की रसीद देता है ऐसे ही पेड़गाँव के फ़ौजदार ने उन दो महिलाओं की रसीद काटकर बादशाह को भेज दी। मृगनक्षत्र के आने में अब कुछ ही दिनों की देर थी। रामसेज, कल्याण भिवण्डी, बागलाण, पुणे आदि प्रान्तों से बहिर्जी, विश्वास, महादेव आदि गुप्तचर विभाग के प्रमुख अधिकारी प्रतिदिन रायगढ़ पहुँच रहे थे। चारों ओर से ख़बरें आ रही थीं। एक महत्त्वपूर्ण ख़बर थी—'औरंगज़ेब ने रामसेज और कोंकण के मैदानी भागों के कुछ क़िलों में छोटी-मोटी सेनाएँ रखी हैं और उसने अपनी शेष सारी सेना पीछे हटा ली है। स्थान-स्थान पर फैले हुए उसके सरदार औरंगाबाद की ओर वापस जा रहे हैं।"

औरंगज़ेब, और पीछे हटना? उसके जीवन में ऐसा कभी हुआ नहीं था। उम्र के चौदहवें बरस से लेकर आज तक वह मुहिम और मोर्चों में ही उलझा रहा था। परन्तु आज तक वह पीछे नहीं हटा था। पिछले तीन बरसों में मराठों के राज पर फ़तह पाने के लिए उसने ज़मीन-आसमान एक कर दिया था परन्तु हाथ कुछ भी नहीं आया था। पूरे तीन साल बस लड़ाइयों, घेरों और ख़ून-ख़राबे में ही बीत गये थे। लौटते-लौटते भी उसने गाजीउद्दीन ख़ाँ को हुक्म दिया था कि वह रायगढ़ पर हमला बोल दे।

"हम्बीरराव, रूपाजी, कुलेश, रामचन्द्रपन्त आदि विशिष्ट जनों को तुरन्त रायगढ़ पहुँचने के आज्ञापत्र भिजवाओ। आये हुए गुप्तचरों के हाथ ही आज्ञापत्र भेज दो।" महाराज तेज़ी से टहलते हुए एक के बाद एक आज्ञा दे रहे थे। वे अपने ही विचारों में खोये हुए थे।

'औरंगज़ेब ने फ़ौजें क्यों पीछे हटा लीं? क्या उद्देश्य होगा उसका? वर्षाऋतु निकट आ गयी है, इसलिए उसने ऐसा किया होगा या फिर बरसात ख़त्म होते ही वह फिर हमारे राज्य पर ज़ोरदार हमला करेगा?'

अब तो महाराज को दम मारने की भी फुरसत नहीं थी। पेशवा निलोपन्त और चिटनीस खण्डोजी प्रतिदिन एक के बाद एक ख़लीते लिख-लिखकर रायगढ़ से रवाना कर रहे थे। राज्य के भिन्न-भिन्न स्थानों को गये हुए मन्त्री, सूबेदार और सरदार पत्र पाते ही रायगढ़ की दिशा में चल पड़े थे। अँग्रेज़ व्यापारी निरन्तर तगादा कर रहे थे—'सिक्के और हस्ताक्षर सहित सन्धि-पत्र शीघ्र भेजिए।' परन्तु महाराज के पास इसके लिए भी अवकाश नहीं था। महाराज ने यह सारा मामला प्रह्लादपन्त के सुपुर्द कर दिया।

हम्बीरराव, रूपाजी, कुलेश, सन्ताजी, गुजरात से लौटे हुए धनाजी, रामचन्द्रपन्त, दौलत ख़ाँ आदि विशिष्ट जनों की राजसभा सिंहासनवाले राजसभागृह में आयोजित थी। ग्रीष्म ऋतु की तीव्रता बहुत बढ़ी हुई थी। राजसभा में चर्चा का प्रारम्भ करते हुए पेशवा निलोपन्त कहने लगे, "इस समय वर्षाऋतु के प्रारम्भ होने के पूर्व शत्रु अपनी सेनाओं को पीछे हटा रहा है। समाचार है कि वह आदिलशाही राज्य पर आक्रमण करने की योजना बना रहा है। उसकी इन चालों का कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। हमें किसी दृष्टि से असावधान नहीं रहना चाहिए, इसी विचार-विमर्श के लिए ही आप सबको निमन्त्रित किया गया है।"

https://t.me/Sahityajunction

सभा में शान्ति छायी रही।

“शाहआलम अहमदनगर से सोलापुर की ओर आगे बढ़ रहा है। सम्भवतः बादशाह का लक्ष्य आदिलशाही राज्य ही है।” रामचन्द्रपन्त ने सुझाया।

“उसे बीच रास्ते में ही रोकना पड़ेगा हमें।” महाराज ने दृढ़ता से कहा।

“पेशवा ने जैसा कहा है कि बादशाह बीजापुर पर हमला करेगा, इसलिए हमें भी असावधान नहीं रहना चाहिए।” हम्बीरराव ने महाराज के मन की बात कही थी।

“सेनापति का कहना बिलकुल ठीक है। इसी दृष्टि से सबको मन्त्रणा के लिए बुलाया गया है। अभी बरसात है, ऐसा समझकर कोई भी निश्चिन्त होकर न बैठे। इस वर्षा ऋतु में ही हमें प्रयत्नपूर्वक नयी सेना का संचयन करना होगा और उस सेना को आदिलशाही राज्य की सहायता के लिए भेजना होगा।”

इसके पश्चात् बहुत देर तक काफी गहरा विचार-विमर्श हुआ। वहाँ एकत्रित सभी विशिष्ट जनों को छोटी-मोटी सूचनाएँ दी गयीं। सबको विदाई के बीड़े दिये गये। न्यायाधीश प्रह्लादपन्त ऐसे अवसरों पर मन्त्रणा सभाओं में हमेशा बोलते थे, पर आज वे बिलकुल चुप बैठे थे। पर यह बात किसी के ध्यान में नहीं आयी। जैसे ही मन्त्रणा-सभा समाप्त हुई, प्रह्लादपन्त, राहुजी सोमनाथ और मानाज़ी मोरे हवेली में एकत्रित होकर बैठे और बड़ी देर तक ये लोग धीरे-धीरे खुसपुसाकर कुछ चर्चा करते रहे।

गगन से वर्षा की धाराएँ बरसने लगीं। पिछले एक साल तक प्रजा अकाल के कारण छटपटा रही थी। इस वर्षा से प्रजा प्रसन्न हो उठी। परन्तु इससे भी अधिक हर्ष प्रजाजनों को इस बात से हुआ कि मुग़ल फ़ौजें उनके प्रदेश से चली गयी थीं। लोग खेती-बाड़ी के कामों में जुट गये।

महाराज उपरिकोट के ख़ासमहल के झरोखे में से लगातार बरस रही धाराओं को देख रहे थे और विचारमग्न खड़े हुए थे।

‘औरंगज़ेब के साथ यह हमारा कैसा निर्णायक युद्ध चल रहा है? क्यों लड़ रहे हैं हम? किसके बल पर लड़ रहे हैं हम? हमारी ससुराल के लोग, शिर्के परिवार के कई लोग और फलटण के हमारे आत्मीय जन भी हमारा साथ क्यों छोड़ गये? पेडगाँव की कोठरी में बन्द राणूदीदी और दुर्गाबाई क्या सोचती होंगी इस समय?’

“महाराज, कोई पठान इस तेज़ बरसात में पहाड़ी गढ़ चढ़कर आया है। आपसे मिलना चाहता है वह।” पूरुषा नामक सेवक ने सूचना दी। कुछ देर बाद वह एक पठान लड़ाके को लेकर आया। उसे देखते ही महाराज सोचने लगे—इसे कहीं न कहीं देखा है। परन्तु कहाँ देखा है यह उन्हें याद नहीं आ रहा था।

“आदाब अर्ज़ करता हूँ ज़िल्ले-सुबहानी, मुल्के मराठा!” पठान ने कोर्निश करके कहा। उसके पठानी कमीज़ पर बने हुए कलाबत्तू के सलमे-सितारे झिलमिला उठे।

“कौन हो तुम? यहाँ किस क़ाम से आये हो?” महाराज उसे देखते हुए अभी तक याद करने का प्रयत्न कर रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

“इस नाचीज़ को पहचाना नहीं क्या राजासाहब?” पठान खुलकर हँस दिया।

“नहीं। तुम्हीं बताओ कि तुम कौन हो।”

“इस नाचीज़ शख्स को मिरबत ख़ाँ कहते हैं।” पठान ने झुकते हुए कहा।

मिरबत ख़ाँ? दिलेर ख़ाँ का भाई; भीमा नदी का किनारा! महाराज एकदम खिंचे हुए के समान आगे बढ़ गये।

“ख़ान, तुम?” कहते हुए महाराज ने उसे गले से लगा लिया। “कहो, क्या हाल है?” महाराज सब जानते थे, फिर भी पूछ रहे थे।

“क्या कहें राजासाहब? वो क्या बादशाह है? वह तो संग-दिल शैतान है। उसने हमारे भाई की बेइज़्ज़ती करके उसे मार डाला है। हम तो उसके जुल्मों से तंग आ गये हैं।” मिरबत ख़ाँ बड़ी बेचैनी से कह रहा था।

“ख़ान, हम सब जानते हैं। तुम यहाँ दो दिन आराम से रहो। तुम्हें किसी तरह की तकलीफ़ नहीं होगी।”

“दो दिन? राजासाहब, हम जो इस बरसात में आये हैं, वो क्या इसलिए कि आपके मेहमान बनें? राजासाहब, हमने तो अपनी ज़िन्दगी आपके क़दमों पर निछावर करने की ठानी है।” कमरबन्द खोलकर पठान ने अपनी पठानी तेग निकाली और घुटने टिकाकर वह तेग छत्रपति के पाँवों में रख दी।

फिर एक बार गले से लगाने के लिए महाराज ने उसे ऊपर उठाया। उसकी तेग उसे सौंपते हुए महाराज के मन में ये विचार आ रहे थे :

‘हम भागकर दिलेर ख़ाँ से जा मिले थे। जब लौटकर आये, तो ‘कहाँ गया था रे बेटा तू?’ कहकर हमें प्यार से गले लगने वाले आबासाहब तो थे। इस बेचारे के लिए कौन है ऐसा?’

महाराज ने मिरबत ख़ाँ को अपनी शरण में ले लिया।

पेशवा निलोपन्त शहज़ादा अकबर का कोंकण से भेजा हुआ पत्र लेकर उपस्थित हुए। महाराज के हाथों में कुलथी की गर्म कढ़ी का कटोरा था, जिसे उनकी ‘श्रीसखी’ अभी-अभी दे गयी थीं।

“शहज़ादा कहते हैं—पुर्तगालियों को समझौते के काग़ज़ात जल्दी भेजे जाएँ।” पेशवा ने अकबर के पत्र का सन्देश कह सुनाया।

“जी, वे कहते हैं...वे कहते हैं कि...” निलोपन्त हिचकिचा गये।

“कहो, कहो।” महाराज को सन्देह हो रहा था कि शहज़ादे की और भी कोई माँग है क्या?

“जी, वे कहते हैं कि कुलेश राजासाहब के सच्चे ईमानदार सेवक हैं। अल्लाह करे कि किसी बेईमान की नज़र न लगे उन्हें।” वास्तव में देखा जाय तो कुलेश की यह प्रशंसा निलोपन्त को भी भायी नहीं थी।

“बस, इतना ही?” महाराज के मुख से एक ऐसी लम्बी उसाँस निकली कि उनकी छाती पर पड़ी कौड़ियों की माला भी ऊपर-नीचे हो उठी। इतने में कवि कुलेश ही वहाँ आ गये। उन्हें देखते ही निलोपन्त महाराज को नमस्कार करके बाहर चले गये।

https://t.me/Sahityajunction

“हमने सब ज़मींदारों को लिखा है कि इस कठिन अवसर पर हमारा साथ दें।” कुलेश ने अपने लिखे पत्रों का विवरण बतलाया।

महाराज कुलेश से कहने लगे, “कुलेश, शहज़ादे को तुम्हारे बारे में बड़ी चिन्ता है।”

“हम उसे लिख भेजेंगे कि वह पहले अपनी चिन्ता करे।” कुलेश ने हँसते हुए कहा।

“कुलेश, शहज़ादा निरन्तर आग्रह कर रहा है कि सन्धि-पत्र भेजा जाय।”

“जी हाँ, जब सन्धि हुई है, तो इकरारनामा तो भेजना ही चाहिए।”

“हम सोचते हैं कि कोंकण के मैदानी और पहाड़ी इलाकों में पुर्तगालियों से जो लड़ाई चल रही है, उसे इस समय रोक दिया जाय। तुम्हारा क्या मत है?”

“जी हाँ, वही उचित होगा।” कुलेश ने समर्थन किया।

“चलो कविजी, सभागृह में जाएँ।” महाराज कुलेश के साथ सिंहासनवाले राजसभागृह की ओर चल पड़े।

“महाराज, औरंगज़ेब ने लौटते-लौटते भी फूट डालनेवाला आघात किया है।” खण्डोजी ने चिन्तित होकर कहा।

“कौन-कौन फँसे उसके फन्दे में?”

“नायब शाह कुली, खण्डूजी, रम्भा, शंकराजी आदि विद्रोही लोगों को बादशाह ने अहमदनगर के क़िले में मनसब देकर सम्मानित किया है।”

यह फूट का समाचार सुनकर चिन्ताग्रस्त महाराज सभागृह के झरोखे के पास आये। उन्होंने देखा, बाहर आकाश से बरसने वाला स्वच्छ-श्वेत जल भी भूमि से मिलकर मटमैला होकर बहा जा रहा था।

“मुग़ल सेनाओं की वापसी का फ़ायदा उठाते हुए पुर्तगालियों ने कारंजा द्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया है, स्वामी।” खण्डोजी ने जलधारा निहार रहे महाराज की विचारधारा भंग की।

“कुलेश, खण्डोजी। हमारी मराठी भाषा में एक कहावत है। न जाने यह कहावत कैसे प्रचलित हो गयी? पर कहावत है बहुत अर्थपूर्ण। कहावत यह है—‘कुरहा डीचा दांडा गोतास काल।’ हिन्दी में इसका अर्थ यह है कि कुल्हाड़ी का डण्डा लकड़ी से बना होता है और वही अपने वंश को काटने में भी सहायक होता है।”

“हम कुछ समझे नहीं?” सीधे-सरल प्रकृति के खण्डोजी के लिए यह कहावत प्रस्तुत समय में एक पहेली ही बन गयी थी। वे व्यंग्यार्थ नहीं समझ पाये। कवि कुलेश को तो वह मराठी कहावत कुछ भी समझ नहीं आयी। वे व्यंग्यार्थ भी समझ नहीं पाये थे।

“कोई विशेष बात नहीं, खण्डोजी। दिलेर ख़ाँ का भाई जब से हमें मिला है, तभी से यह कहावत हमारे मस्तिष्क में गूँज रही है।” महाराज को जो कुछ कहना था, उसे उन्होंने छिपा लिया और इस कहावत का सम्बन्ध मिरबत ख़ाँ वाले दूसरे मामले से जोड़ दिया। बाहर प्रकृति के प्रांगण में श्रावण मास की बौछारों का खेल चल रहा था। इस खेल में राजसभागृह के बाहर का खुला आँगन कभी वर्षा की धाराओं से नहा उठता था, तो कभी धूप से चमचमाने लगता था।

https://t.me/Sahityajunction

नवरात्र के दिन आ गये। आश्विन शुद्ध प्रतिपदा को घट-स्थापन सम्पन्न हुआ। रायगढ़ के देवमन्दिर के सभागृह में जगदम्बा के सम्मुख बनाये गये मिट्टी के ढेर में पाँच धान्यों के जो बीज प्रतिपदा को बोये गये थे, उनमें अब अंकुर फूट चुके थे। फिर दशहरा भी बीत गया और तब भविष्य के गर्भ में राजनीति के नये अंकुर फूटने लगे।

कुछ ही दिनों बाद वही ख़बर रायगढ़ आ पहुँची, जिसका अनुमान रायगढ़ ने बहुत पहले लगा लिया था। बादशाह ने आदिलशाही राज्य के विरुद्ध युद्ध का नगाड़ा बजा दिया था। कुतुबशाही राज और आदिलशाही राज का मेल-मिलाप न हो सके इस दृष्टि से औरंगज़ेब ने कुतुबशाही के राजा हसनअली तानाशाह को घेरा लगाकर गोलकुण्डे के क़िले में ही बन्द कर रखा था और अपने बेटे आज़म को उसने सेनासहित बीजापुर के नाबालिग राजा सिकन्दर की ओर रवाना किया था। अब दोनों राज्यों की आँखें खुलीं। वे हड़बड़ाकर उठ बैठे। यह अब स्पष्ट हो चुका था कि यद्यपि वे दोनों राज्य इस्लामी राज्य थे, परन्तु फिर भी वे थे 'दक्खनी' ही। अब मराठा राज्य के सामने एक बड़ा पेचीदा सवाल खड़ा था कि वह क्या करे? जब औरंगज़ेब ने मराठा राज्य पर हमला किया था, तो ये दोनों राज्य पूँछ दबाकर बैठे रहे थे और चुप बैठे-बैठे मराठों का तमाशा देख रहे थे। तो क्या अब मराठा राज्य भी वही करे, जो उन दोनों ने किया था? यही कठिन प्रश्न उपस्थित हो गया था।

दशहरे के अवसर पर अनेक विशिष्ट जन, अनेक शूरवीर सरदार रायगढ़ आये हुए थे। महाराज ने इस उद्देश्य से उन सबको बुलाकर एक राजसभा आयोजित की। इस बैठक में केवल हम्बीरराव नहीं थे। अष्ट प्रधानों में शेष मन्त्रीगण, पेशवा निलोपन्त, प्रह्लादपन्त, नारायण रघुनाथ, धर्माधिकारी मोरेश्वरपन्त, रामचन्द्रपन्त, कवि कुलेश उपस्थित थे। कर्नाटक से विशेष रूप से आमन्त्रित हरजीराजा भी इस राजसभा में उपस्थित थे।

पेशवा ने सभा का प्रयोजन कह सुनाया, "अहमदनगर से समाचार मिले हैं कि शत्रु आदिलशाही राज्य पर दाँत गड़ाना चाहता है। उसने हमारे राज्य में मार खाकर लगभग सारी छावनियाँ पीछे हटा ली हैं..."

सभी लोग पेशवा का वक्तव्य शान्ति से मन लगाकर सुन रहे थे। सिंहासन पर विराजित महाराज सारी सभा की दृष्टि फेरते हुए देख रहे थे।

"स्वर्गवासी महाराज ने कभी भी यह नहीं सोचा था कि आदिलशाही राज डूबता है, तो डूबने दो। वही स्थिति आज आ गयी है। आप सबको इसी समस्या पर सोच-विचार करने के लिए बुलाया है।" पेशवा निवेदन कर रहे थे। अन्त में यह कहकर कि 'अब अपनी नीति क्या हो?' उन्होंने निवेदन समाप्त किया।

वास्तव में मराठों के लिए यह कितने आराम और शान्ति का काल था। औरंगज़ेब ने अपना मुहरा दूसरी ओर फेर लिया था। इसी बात को ध्यान में रखकर कवि कुलेश कहने लगे, "आदिलशाही राज की चिन्ता यह दरबार क्यों कर रहा है? जब हम संकट में थे, वे चुपचाप बैठे थे।"

"छन्दोगामात्य जो कहते हैं, वह योग्य ही है। हम कर्नाटक में थे, फिर भी प्रतिदिन रायगढ़ का समाचार जानने के लिए हमारा दम छूटा जाता था। हमने रघुनाथपन्त को इसी उद्देश्य से इधर भेजा था।" महाराज के निकट बैठे हुए हरजीराजा ने भी कुलेश की बात का अनुमोदन किया।

https://t.me/Sahityajunction

“हमारा मत है कि अब भावी विद्रोहियों की पूरी तरह छानबीन करनी चाहिए। उनका पता लग जाए, तो भविष्य में हम धोखा तो नहीं खा सकेंगे।” प्रह्लादपन्त काफी देर से चुपचाप बैठे थे। अब वे कह उठे।

“बड़े महाराज द्वारा निर्धारित नीति अपनाते हुए हमें अब आदिलशाही की यथासम्भव सहायता करनी चाहिए। वह राज्य भी कल का नहीं, पुराना है। बादशाह से काफी जमकर लोहा लेगा। फिर उसके पास सर्जा ख़ाँ जैसे बहादुर सेनापति हैं। मराठा सेनापति की सहायता लेकर वे आदिलशाही सरदार औरंगज़ेब से देर तक जूझते रहेंगे।” निलोपन्त की बात बहुत काम की थी।

महाराज सबके सुझाव शान्तिपूर्वक सुन रहे थे। एक राजा मन्त्रियों की मन्त्रणा को अपने विचारों की कसौटी पर कस रहा था। स्वयं उनके मन में भी उल्टे-सीधे विचार आँखमिचौनी खेल रहे थे।

‘आबासाहब ने श्री के जिस राज्य की स्थापना की, वह आदिलशाही प्रदेश को हथियाकर ही तो की। मिर्ज़ाराजा के साथ उन्हें न चाहते हुए भी आदिलशाही की राजधानी पर हमला भी करना पड़ा। फिर भी चाहे उन्होंने गुजरात में सूरत तक दौड़ लगायी हो, परन्तु उन्होंने कभी बीजापुर पर अपने आप आक्रमण नहीं किया था। पन्हाला में जब हमारी उनसे अन्तिम भेंट हुई थी, तब उन्होंने बार-बार कहा था, आज हो या कल, औरंगज़ेब हमारे राज्य पर आक्रमण करेगा, इसके बारे में कुछ सोचो।’ अब मन्त्रणा-सभा के सदस्यों की दृष्टि महाराज पर ही टिकी हुई थी।

“हमें पेशवा की सलाह हितकारी प्रतीत होती है। इस समय हम आदिलशाही राज को बेसहारा नहीं छोड़ सकते। हमें चाहिए कि उसे सहायता देकर औरंगज़ेब से लड़ते-भिड़ते रहने दिया जाय। हमने इसी दृष्टि से सेनापति को बीजापुर भेजा है। सिकन्दरशाह ने उनका स्वागत भी किया है। औरंगज़ेब कब हमारी ओर मुड़ पड़े, यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए हमें देखना है कि वह कहीं दूसरी जगह ही उलझा रहे।” महाराज सामने दिखनेवाले पूर्व दिशा के क्षितिज की ओर देखते हुए निश्चयात्मक स्वर से कह रहे थे।

“हरजी, तुम कर्नाटक की रक्षा कर रहे हो। ध्यान रहे कि मुग़ल फ़ौजें तुम्हारे प्रान्त में भी घुस सकती हैं।” महाराज ने हरजी की ओर देखकर बहुत दूरदृष्टिपूर्ण बात कही थीं।

“जी! आदिलशाही राज्य मुग़लिया वंश का राज्य है। फिर भी औरंगज़ेब आज उस राज्य पर हथियार उठा रहा है। वह कल कर्नाटक और कुतुबशाही राज्यों पर दाँत गड़ाये बिना नहीं रहेगा, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिए हमने कर्नाटक प्रान्त की सुरक्षा व्यवस्था कितनी दृढ़ रूप से की हुई है, यह देखने के लिए महाराज एक बार कर्नाटक अवश्य पधारें।” हरजी ने धैर्यपूर्ण स्वर में कहा।

अन्ततः इस निर्णय के साथ मन्त्रणा-सभा समाप्त हुई कि औरगंज़ेब दूसरी ओर घूम गया है, इसलिए कोई यह न समझे कि बला टल गयी। सब लोग नयी सेना इकट्ठी करें और अपने-अपने क़िलों को पूरी तरह तैयार रखकर जागरूक बने रहें।

निलोपन्त महाराज से मिलने आये। उनके मुख पर गहरी चिन्ता छायी हुई थी। वे काफी देर तक बिना कुछ बोले यूँ ही खड़े रहे।

https://t.me/Sahityajunction

“जो कोई भी बात हो, बता दो निलोपन्त। हमें आजकल सब प्रकार के शुभ-अशुभ समाचार सुनने की आदत हो गयी है। बोलो, और कौन-कौन सरदार हमारा साथ छोड़ गये हैं?” ख़ासमहल के बैठक-कक्ष में महाराज शान्ति से टहल रहे थे। स्थान-स्थान पर खड़े प्रहरियों ने भी नाम सुनने के लिए कान खड़े कर लिये थे।

“विद्रोह की और शत्रु सेना से जा मिलने की घटनाएँ सुनने की तो हमें भी आदत हो गयी है, स्वामी। परन्तु हम जो कहने वाले हैं, वह बात विद्रोह की नहीं है...” पन्त भावावेश के कारण अपने दुपट्टे को मुट्ठी में मसलने लगे।

“क्या कहना है तुम्हें?” महाराज का टहलना थम गया। वे एकदम पेशवा के सामने आ गये और उनकी आँखों की गहराई में झाँकने लगे।

“यह मामला बहुत गम्भीर है महाराज... षड्यन्त्र का मामला...!!” पेशवा का सिर नीचे झुक गया।

महाराज के ऊपर मानो बिजली ही गिर पड़ी। वे सन्न होकर, आँखें फाड़-फाड़कर सूने में देखने लगे। फिर एकदम कड़ककर बोल उठे :

“क्याऽऽ? क्या कह रहे हो तुम, पन्त? औरंगज़ेब, पुर्तगाली, हबशी और अँग्रेज़ ही हमारे लिए क्या कम थे? कौन लोग हैं ये पन्त? क्यों किया है इन्होंने षड्यन्त्र?”

“महाराज, हमें उनका नाम लेते हुए भी लज्जा अनुभव होती है। अपने...अपने...मानाजी मोरे, राहुजी सोमनाथ, गंगाधर पन्त, वासुदेवपन्त...”

“बस... बस करो, पेशवा। अब तो सुना भी नहीं जाता।” महाराज खड़े हुए थे। अब सहारे के लिए कुछ खोजते हुए वे बैठक पर जा बैठे।

“महाराज को पुर्तगालियों के विरुद्ध संघर्ष में उलझा हुआ देखकर इन ईमानदार सेवकों ने अपनी औंधी खोपड़ियों से काम लिया है, महाराज।” पेशवा यह कहते हुए अतीव व्यथित हो गये थे।

“किस हेतु से उन्होंने ऐसा किया?” महाराज अब शान्त होकर सुन रहे थे। यह सम्भाजी महाराज के विरुद्ध तीसरा षड्यन्त्र था।

“राजाराम को राजगद्दी पर बैठाकर राजकाज अपने हाथ में ले लिया जाय, ऐसा उद्देश्य है इन लोगों का। हमने पूरी तरह छान-बीन कर ली है। हमें पूरा भरोसा है कि इस कुचक्र के पीछे कोई बड़ा व्यक्ति है परन्तु वह है कौन, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका।”

“निलोपन्त, तुम जाओ और राजाराम जहाँ भी हों, उन्हें हमारे सामने ले आओ।”

“जो आज्ञा,” कहकर निलोपन्त चले गये।

‘मानाजी मोरे—जो रामसेज और बागलाण प्रदेश में इस राज्य के लिए सिर हथेली पर रखकर घूमे थे? इस कुसमय में वे भला इस कुचक्र के फन्दे में कैसे फँस गये? राहुजी सोमनाथ—कितने वयस्क और अनुभवी! उन्होंने चिपलून के पटवारी पद को हड़प लिया था और हमने वह पद कृष्णाजीपन्त को पुनः वापस करवा दिया था। क्या इसी निर्णय के कारण वे दुखी हो गये? इस निर्णय में हमसे कौन-सी भूल हो गयी?’

राजा का मन मानो अपने आपसे ही बातें कर रहा था। इतने में निलोपन्त येसाजी दाभाडे के

https://t.me/Sahityajunction

साथ राजाराम को लेकर वहाँ आये। राजाराम अब युवावस्था को छू रहे एक कुमार के रूप में दिखलाई दे रहे थे। उस गौरवर्ण तथा सुकोमल कुमार की मसें भीग रही थीं। वे झुककर मुजरा करना ही चाहते थे कि महाराज ने उनका हाथ पकड़ा और अपने साथ ले जाकर उन्हें अपने निकट बैठा लिया।

पहले महाराज ने उनसे ताराऊ के कुशल समाचार पूछे और फिर कुछ ऐसे मन्द स्वर में वे पूछने लगे कि उस स्वर की निर्बलता किसी के भी ध्यान में आ जाती। "राजाराम, हम एक बात पूछें तुमसे? शान्ति से हमारी ये बातें सुनोगे क्या?"

"जी। हमारे दादा महाराज आज इस तरह क्यों पूछ रहे हैं? हम जानते हैं कि आज राज्य पर चारों दिशाओं से संकट है। आपने जैसे हरजीराजा को उत्तरदायित्व सौंपा है वैसा ही कोई विशेष कार्य हमें भी सौंपें आप। अब हम छोटे थोड़े ही हैं।" राजाराम के बोलने का ढंग अपनी माता से काफी मिलता-जुलता था, परन्तु उनका मुखमण्डल तथा वाणी बिलकुल अबोध थी।

"हाँ, हाँ। जब उचित अवसर आएगा, हम तुम्हें भी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य अवश्य देंगे। और हम न देंगे, तो वह जगदम्बा देगी तुम्हें।" महाराज को अब पूरा विश्वास हो गया था कि राजाराम इस कुचक्र से कतई अनजान हैं। कुछ देर तक महाराज अपने से ही झगड़ते रहे।

"येसाजी, हमारे भैया राजाराम को ले जाओ। तुम पर इनकी बड़ी जिम्मेदारी है। अब हम इस कार्य में कुछ और लोगों को भी तुम्हारे साथ दे रहे हैं।" महाराज ने येसाजी दाभाडे से कहा। उनके जाते ही महाराज ने निलोपन्त को आज्ञा दी, "पेशवा, आज्ञापत्र प्रसारित करो कि मानाजी, राहुजी और शेष षड्यन्त्रकारी जहाँ भी हों, उन्हें तुरन्त क़ैद किया जाय। और इस षड्यन्त्र का सूत्रधार कौन है, उसका भी पता लगाओ।" एक लम्बी आह उनके मुख से निकल गयी। मन विविध विचारों के कारण क्षुब्ध हो उठा।

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। फोंडा, भीमगढ़, मर्दनगढ़ आदि प्रदेशों में कई बैठकें आयोजित करने के बाद शहज़ादा अकबर और कुलेश ने पुर्तगालियों से की गयी सन्धि को दृढ़ता प्रदान की।

इस समझौते की कई शर्तें थीं। एक यह थी कि पुर्तगाली मुग़ल जहाज़ों को अपने बन्दरगाहों से होकर जाने की अनुमति न दें। दूसरी शर्त यह थी कि दोनों दरबार एक दूसरे के क़ैदियों को छोड़ दें। तीसरी शर्त थी कि दोनों को एक-दूसरे के राज्य में व्यापार करने की छूट रहेगी। चौथी शर्त थी यह कि मराठा राजा पुर्तगालियों की सीमा के निकट क़िले न बनवाये। ये चार मुख्य शर्तें थीं। मर्दनगढ़ के समझौते की अन्तिम बातचीत हुई थी। महाराजा ने इस समझौते के काग़ज़ात पर राजमुद्रा लगाने के लिए अकबर, राय किशनसिंह और महादजी नाविक को पणजी भेजा। सन्धि दृढ़ हो गयी। पुर्तगाली वायसराय ने शहज़ादा अकबर के साथ महाराज के नाम एक ख़लीता भेजा था। इस बार ख़लीते की भाषा कोमलता से भरी थी। वायसराय ने लिखा था : 'आप समझौते की शर्तों का पालन करें। हम भी पूरी तरह उनका पालन करेंगे। दोनों दरबारों के बीच मुक्त रूप से व्यापार हुआ करे और सबसे बड़ी बात यह कि शान्ति बनी रहे।' फोंडा पर धावा बोलनेवाला वायसराय अब ये बातें लिख रहा था।

https://t.me/Sahityajunction

सन्धि के अनुसार महाराज ने अपनी सेनाओं को वसई से निकाल लिया। वसई के निवासी मराठों की बला से तो छूट गये, परन्तु वे महामारी के झंझट में फँस गये। वसई में प्लेग फैल गया।

प्रह्लादपन्त अँग्रेज़ दरबार से सम्बन्धित कामकाज के अधिकारी थे। महाराज ने उन्हें बुला भेजा। इस समय पन्त कुछ अस्थिर एवं कुछ घबराये हुए थे, फिर भी वे इसे छिपाकर शान्त मुखमुद्रा से महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए।

"न्यायाधीश, अँग्रेज़ों की सन्धि का..."

"जी। वह सन्धिपत्र लिखकर हमने प्रतिनिधि को दे दिया है।"

प्रह्लादपन्त ने पहले एक लम्बी और ठण्डी साँस ली। इसके बाद वे सन्धि की एक-एक शर्त का विवरण बताने लगे, "दो मामलों में सन्धि पूरी की जा चुकी है। वे कर्नाटक प्रान्त में व्यापार की कोठियाँ बनाने की अनुमति माँगते हैं और दूसरा यह कि हमारे राज्य के साथ उनके सम्बन्ध किस रूप के हों।"

न्यायाधीश द्वारा कथित सब शर्तों को महाराज ने शान्ति से सुना। फिर जैसे स्वयं ही कुछ सोचते हुए से वे कहने लगे, "ये अँग्रेज़ इस सन्धि का पालन करेगा क्या, पन्त? तुम्हारा क्या मत है? उसके आश्रय के कारण ही हबशी, मुग़ल और पुर्तगाली मुम्बई में घुसे बैठे रहते हैं।" महाराज सावधानी बरतने की बात सोच रहे थे।

"जी। सन्धिपत्र में ही अँग्रेज़ गवर्नर ने यह स्वीकार किया है कि वे हर शर्त का पालन करेंगे। इसके अतिरिक्त यह समाचार भी सुना गया है कि गवर्नर केजविन अपने राजा को इस सन्धि की एक प्रति दिखलाने अपनी मातृभूमि की ओर जा रहा है। ग्रन्थम नामक कोई साहब उसके स्थान पर आ गये हैं।"

महाराज अँग्रेज़ों के बारे में सोचते-सोचते प्रह्लादपन्त के सामने आये। महाराज के इतना निकट आते ही प्रह्लादपन्त की छाती पर पड़ा हुआ उत्तरीय थोड़ा-सा काँप उठा था।

"न्यायाधीश, क्या बात है, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या? गोरों के प्रतिनिधि से बातचीत करने में तुम्हें काफी कष्ट हुआ है, लगता है।" पन्त काफी देर से अस्थिर हो रहे हैं, यह देखकर महाराज ने उनसे आत्मीयतापूर्वक पूछा।

"जी, वैसे स्वास्थ्य तो ठीक है, परन्तु मुम्बई से वापस लौटते समय हबशियों ने समुद्री रास्ते में हम पर जो हमला किया था, तब से हमें सर्दी कष्ट देती रही है।"

"राजनीति तो प्रतिदिन का कार्य है, पन्त। तुम न्यायाधीश हो। तुमको यदि सर्दी से कष्ट होने लगेगा, तो तुम्हारे द्वारा किये गये निर्णयों से प्रजा को भी कष्ट होने लगेगा। मुग़ल सेनाएँ अब वापस लौट गयी हैं। अब तुम ज़रा विश्राम करो।"

"जी," कहकर प्रह्लादपन्त चले गये। जाते समय वे किसी विचार में गहरे तक डूबे हुए थे।

---

1. पैदल सेना के दस या बीस जवानों का मुखिया।

https://t.me/Sahityajunction

ग्यारह

प्रहरी ने आकर सूचना दी कि मन्त्री-बाड़ी से निलोपन्त की हवेली का व्यक्तिगत सहायक मिलने आया है। यह विशेष बात थी, क्योंकि सामान्यतः राजा से मिलने व्यक्तिगत-सहायक कभी नहीं आते थे। जाने क्या हुआ होगा, इस आशंका से महाराज ने पेशवा के व्यक्तिगत सहायक को ही भीतर बुलवा लिया। वह डरते-डरते बोला, "मालिक आपसे मिलना चाहते हैं, पर वे यहाँ तक नहीं आ सकते, महाराज।"

"क्यों? क्या हुआ है पेशवा को?"

"वे उदर-पीड़ा से बिस्तर पर छटपटा रहे हैं," सहायक ने उत्तर दिया।

"क्याऽऽ?" महाराज के कानों में जैसे तीर घुस गया था।

रायाजी, अन्तोजी, खण्डोजी, पूरुषा, जोत्याजी आदि मण्डली सहित महाराज निलोपन्त के स्वास्थ्य के बारे में पूछ-ताछ करने के लिए मन्त्री-बाड़ी की ओर चल पड़े।

महाराज के आने का समाचार सुनते ही मन्त्रियों की बस्ती हड़बड़ाकर उठ बैठी। इस बस्ती में एक पंक्ति में सुरनीस, विदेश-सचिव, न्यायाधीश, लेखाध्यक्ष आदि की हवेलियाँ बनी हुई थीं। सबके सामने प्रहरी पहरा दे रहे थे।

निलोपन्त के स्वास्थ्य की पूछताछ करने के लिए महाराज ने जैसे ही हवेली की सीढ़ी पर पैर रखा, उनके मने में स्मृतियों का सागर उमड़ आया।

'यही तो थी वह हवेली, जहाँ पेशवा मोरोपन्त ने देह त्यागी थी। जीवन के अन्त समय में उन्होंने अपने चिरंजीव निलोपन्त के हाथ में पेशवा की मुद्रा और एक मोतीवाली बाली के डिबिया रखी थी। मोरोपन्त! जो जीवन भर आबासाहब का दायाँ हाथ बनकर रहे, वे ही हमें क़ैद करने के लिए सेनासहित पन्हाला की ओर क्यों कूच कर बैठे? बिखाड़ी में रघुनाथपन्त ने बैठक में जो कुछ कहा था, काश! उस समय मोरोपन्त वहाँ होते! वे ही रघुनाथपन्त की बात का यथायोग्य उत्तर दे पाते। मोरोपन्त की इस हवेली पर, मोरोपन्त पर हमें सशस्त्र पहरा बिठाना पड़ा। उनकी मृत्यु के बाद हमने यह पेशवा पद निलोपन्त को दे दिया। परन्तु उन्होंने अपने पिता के साथ किये गये व्यवहार के बारे में आज तक कभी कोई शिकायत नहीं की। पूर्वजन्मों के ये कैसे सुकृत हैं? कैसे रहस्यपूर्ण सम्बन्ध हैं ये सब?'

https://t.me/Sahityajunction

निलोपन्त के भाई गंगाधर मोरेश्वर महाराज के स्वागत के लिए आगे आये। उनके साथ महाराज ने हवेली में प्रवेश किया। निलोपन्त उस शारीरिक पीड़ा की दशा में भी नमस्कार करने के लिए उठने का प्रयत्न कर रहे थे। महाराज ने आगे बढ़कर उन्हें पुनः लिटा दिया और उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछने लगे।

पेशवा असह्य वेदना के कारण आँख बन्द करके छटपटा रहे थे। फिर भी जैसे-तैसे कहने लगे, "यह उदर की पीड़ा कितनी असमय में आयी है, स्वामी।"

"पन्त, तुम भले-चंगे होने तक आराम करो। तब तक पेशवाई का कामकाज तुम्हारे भाई गंगाधर पन्त करते रहेंगे।" महाराज की बात सुनकर पेशवा की चिन्ता का बोझ कुछ कम हो गया।

महाराज मन्त्री-बाड़ी से लौटकर महल में आये ही थे कि क़िलेदार चांगोजी काटकर एक व्यक्ति को लेकर उनके सामने आया। वह व्यक्ति कारवार प्रदेश से आया था। नाम था सन्ताजी पावला।

"मालिक, हमने कारवार प्रदेश में विद्रोह मचाने वाले राम दलवी को महाराज की सेना की सहायता लेकर दबा दिया है।" मुजरा करते हुए सन्ताजी ने कहा। समाचार सुनकर महाराज के मुख पर सन्तोष झलक उठा।

गर्मी का मौसम ज़ोरों पर था। इसी गर्मी में औरंगज़ेब ने बीजापुर को चारों ओर से घेर लिया। बीजापुर के क़िले के चारों ओर चौड़ी खाई थी। उस खाई के कारण आदिलशाही सेना क़िले की रक्षा के लिए जूझने लगी। गोलकुण्डा के कुतुबशाही राज ने बीजापुर की सहायता के लिए तीस हज़ार सेना भेजी थी। अब दक्षिण के तीन राज्यों का और दिल्ली की सल्तनत का ध्यान केन्द्रित हो गया था—बीजापुर पर। यही वह बीजापुर शहर था कि जिसमें महाराज सम्भाजी के दादा शहाजी की मुश्कें बाँधकर उन्हें विभिन्न रास्तों पर घुमाया गया था। इसी बीजापुर के दरबार में एक बार अफ़जल ख़ाँ ने बीड़ा उठाया था, "शीवा को ज़िन्दा या मुर्दा पेश करूँगा।" आज उसी आदिलशाही राज्य की रक्षा करने के लिए मराठा-सेनापति हम्बीरराव घुड़सवार सेना के साथ बीजापुर के चारों ओर दौड़कर छापे मार रहे थे।

कवि कुलेश हरसूल गाँव के गंगाधर नागनाथ नामक एक व्यक्ति को लेकर ख़ासमहल में आये। इस आदमी की दाढ़ी मुग़लिया ढंग से कटी-छँटी हुई थी। सभागृह में बैठे हुए महाराज को अपरिचित व्यक्ति का परिचय कराते हुए कुलेश कहने लगे, "नेताजी पालकर को बड़े महाराज ने पवित्र किया था। इस बेचारे को भी पावन किया जाय।"

गंगाधर नागनाथ औरंगाबाद के निकटवर्ती एक गाँव हरसूल का निवासी था। मूलतः वह ब्राह्मण था और मुग़ल सरकार की चाकरी करता था। उसे ज़बर्दस्ती मुसलमान बना दिया गया था। वह बेचारा इतनी दूर से आया था और चाहता था कि उसे शुद्ध करके पुनः हिन्दू बना लिया जाए।

"महाराज, दया कीजिए। मुझे फिर से मनुष्य बना लीजिए।" वह फूट-फूट कर रो पड़ा और महाराज के सामने ही धड़ाम से गिर पड़ा। महाराज ने उसे उठाया और उसे थपकी देकर शान्त

https://t.me/Sahityajunction

करते हुए कुलेश से पूछा :

"इसकी शुद्धि के लिए क्या किया जा सकता है, छन्दोगामात्य?"

"इसे पहले प्रायश्चित्त करना पड़ेगा और फिर इसे विधिपूर्वक धर्म में पुनः प्रविष्ट किया जा सकेगा।"

"प्रायश्चित्त किस प्रकार करना होगा, यह इसे समझाओ। यह मामला धर्म विभाग के अन्तर्गत आता है, अतः मोरेश्वर पण्डित की आज्ञानुसार इसकी शुद्धि की व्यवस्था करो।" महाराज ने गंगाधर को सान्त्वना देने के लिए उसके झुके हुए कन्धों को थपथपाया। इस समय वे मन ही मन में कुछ सोच रहे थे। उन्हें याद आ रहा था कि इसी तरह बरसात में भीगते हुए इसी तरह कटी-छँटी दाढ़ी लेकर नेताजी पालकर भी मुहम्मद कुली ख़ाँ बनकर रायगढ़ आये थे। उस समय आबासाहब जीवित थे। उन्होंने समारोहपूर्वक उन्हें शुद्ध कर लिया था।

'क्यों होता है ऐसा? हमारी प्रजा को ही शुद्ध करने की नौबत क्यों आती है? नेताजी तो प्रधान सेनापति थे, यह बेचारा तो साधारण व्यक्ति है। यह यहाँ तक चला आया, तो इसकी नैया फिर से किनारे लग जाएगी, पर जो आएँगे नहीं, जो आ सकते नहीं या जिनमें आने की हिम्मत नहीं है, उनका क्या हो? हम भी तो मुग़ल, पुर्तगाली, पादरी, अँग्रेज़ और हबशियों को क़ैद कर लेते हैं, पर हमारे मन में यह इच्छा क्यों नहीं होती कि उनका धर्म बदल दिया जाय?' बहुत देर तक महाराज इसी प्रकार के विचारों में उलझे रहे। कुलेश और गंगाधर कब चले गये, यह भी वे जान नहीं सके।

गंगाधर मोरेश्वर को, जिनकी पेशवा पद पर नयी नियुक्ति हुई थी, महाराज ने बुलवा भेजा था। वे चेऊल प्रदेश की प्रजा को दी जानेवाली कुछ सुविधाओं का विवरण लिखवा रहे थे।

हबशी को पूरी तरह से घेरकर नियन्त्रित किया जा सके, इस दृष्टि से वे गंगाधर मोरेश्वर से कहने लगे, "जंजिरा दुर्ग के प्रदेश में नये सिरे से कुछ नियुक्तियाँ करनी हैं, पेशवा। खन्देरी द्वीप पर माणकोजी, सागरगढ़ पर उदाजी पडवल तथा सुभानजी खराडे, कुलावा दुर्ग पर भिवजी गुजर इन शक्तिशाली लोगों की नियुक्ति करो। उन्हें लिखो कि वे आदेश मिलते ही तुरन्त इन नये स्थानों पर पहुँच जाएँ।"

महाराज ने यह ताड़ लिया था कि यद्यपि गंगाधर मोरेश्वर उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे, तथापि वे कोई आवश्यक बात कहना चाहते थे। इसलिए महाराज कहते-कहते रुककर बीच में ही पूछने लगे, "हमारे निलोपन्त की तबीयत कैसी है?"

"जी, कल से वे काफी स्वस्थ हैं। उन्हें कुछ दिन विश्रान्ति की आवश्यकता है। हम कहना चाहते थे..." समाचार बहुत कटु था, अतः गंगाधर रुक गये।

"कहो! कहो, क्या बात है?" महाराज कुछ अनुमान नहीं लगा पाये।

"कर्नाटक की ओर से...तंजौर शहर से समाचार मिला है कि..."

"हाँ, हाँ, कहो," महाराज के माथे का शिवतिलक आकुंचित हो उठा। तंजौर में आबासाहब के चचेरे भाई एकोजी के पुत्र अर्जुनजी रहते थे।

"अर्जुनजी तंजौर से भागकर मुग़लों से जा मिले हैं।"

"हे जगदम्बे," कहते हुए महाराज झपटकर खड़े हो गये। मन सुन्न हो गया। बीजापुर का

https://t.me/Sahityajunction

स्वयं निरीक्षण किया जा सके, इस दृष्टि से औरंगज़ेब अपनी विशाल छावनी को अहमदनगर से हटाकर सोलापुर ले आया। उसने कुतुबशाह की दिलजमई के लिए जो ख़लीता भेजा था, उसमें दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शर्तें थीं। एक शर्त यह थी कि कुतुबशाह पहले पेशकश के रूप में जो बीस लाख पगोड़े दिया करता था, अब वह एक करोड़ बीस लाख पगोड़े पेश करे। दूसरी शर्त यह थी कि कुतुबशाह अपने दरबार के दो हिन्दू मन्त्रियों अक्कण्णा और मादण्णा को तुरन्त बरतर्फ़ करे। सही देखा जाय, तो ये शर्तें थीं ही नहीं, यह तो इस बात की अगाऊ चेतावनी थी कि कल मुग़ल फ़ौजें गोलकुण्डा पर हमला बोलने वाली हैं।

औरंगज़ेब ने मराठों के प्रदेश से अपनी फ़ौजें वापस लेने की एक चाल क्या चली, कि शतरंज का सारा खेल ही बदल गया। बीजापुर का राजा बालक था और वहाँ के सरदारों में फूट पड़ी थी। इन दो बातों से फायदा उठाने के लिए औरंगज़ेब ने कमज़ोर आदिलशाही राज्य को ही दबोच लिया था। उस कमज़ोर को बचाने के लिए कुतुबशाही राज्य और मराठा राज्य पूरी कोशिश कर रहे थे।

कोंकण प्रदेश में कई जागीरदारों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था। सचिव रामचन्द्रपन्त उस विद्रोह को दबाने के कार्य में ही व्यस्त थे। उन्हें रायगढ़ आने की फुरसत नहीं मिल पाती थी। इसलिए महाराज ने शंकराजी नारायण को बुलाकर सचिव पद का उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दिया।

जैसे धर्मपरिवर्तन की समस्या महाराज को व्यथित कर रही थी, इसी प्रकार एक अन्य समस्या भी अति व्यथादायक थी। उनके राज्य में बागलाण प्रदेश से लेकर कारवार प्रदेश तक घाटों-जंगलों में भील, मछुवे, गड़रिये आदि जो भोले-भाले और बेसहारा लोग रहते थे, उन्हें सिद्दी, हबशी और अँग्रेज़ ग़ुलाम के रूप में ख़रीदते थे और उनकी टोलियों की टोलियाँ जहाज़ों में भरकर दूर-दूर बसे देशों में भेजते थे। इन ग़रीबों का जैसे कोई रखवाला ही नहीं था। इस अत्याचार को रोकना आवश्यक था। इस दृष्टि से महाराज ने नूतन 'सुरनीस' सचिव शंकराजी को बुलाया।

"शंकराजी, हबशी और अँग्रेज़ पहाड़ी-घाटों की भोली जनता को ख़रीद लेते हैं और दूर देशों में उन्हें बेच डालते हैं। ये लोग आख़िर जाते कैसे हैं? कुछ बता सकते हो?" शंकराजी के सामने महाराज ने ऐसा मामला रखा, जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी।

"जी, वे लोग प्रति व्यक्ति तीन पगोड़े सीमाशुल्क के रूप में कर भरते हैं और भूखे-कंगाल लोग ग़ुलाम बनकर जाने के लिए तैयार हो जाते हैं।"

"तीन पगोड़े में एक आदमी! शंकराजी, सूबेदारों को आदेश दो कि पहाड़ों में ऐसे जो लोग हैं, उनको समझा-बुझाकर सेना में भर्ती करने का प्रयत्न करें। इतने पर भी यदि कोई सिपाही की अपेक्षा ग़ुलाम बनना ही पसन्द करे तो, ख़रीददार पर प्रतिव्यक्ति बारह पगोड़े सीमा शुक्ल लगा दो।" महाराज ने कठोरता से कहा। शंकराजी उपर्युक्त आदेश की पूर्ति करने के लिए चले गये।

'ग़ुलामी! मनुष्यता के नाम पर कैसा कलंक है यह! ढोर-डंगरों की तरह, ईंधन की तरह मनुष्य बेचे-ख़रीदे जाते हैं। तेली के बैल की तरह पराश्रित जीवन! कहाँ से आये हैं ये हबशी और अँग्रेज़? यहाँ आकर निर्भय होकर आदमी को ख़रीदते हैं। वे बेचारे ग़ुलाम आसरा पाने किसके पास जाएँ? बालाजी इसी तरह दूर देश रवाना किये जा रहे थे और जहाज़ पर सवार हो चुके थे,

https://t.me/Sahityajunction

परन्तु आबासाहब ने उनके लिए दी गयी क़ीमत स्वयं अदा कर दी थी और उन्हें जहाज़ से उतरवा लिया था। यही बालाजी बाद में आबासाहब के चिटनीस बने। यदि आबासाहब बालाजी का उद्धार न करते, तो न जाने बालाजी किस दूर देश में ग़ुलाम बनकर जाते! क्या दुर्दशा हुई होती उनकी? परन्तु उन्हीं बालाजी को बाद में षड्यन्त्र के अपराध के कारण हमने हाथी के पाँवों तले रौंदवा डाला। फिर उन्हीं के पुत्र खण्डोजी ने खाड़ी में बहे जा रहे हमारे घोड़े को बाहर निकाल लिया। कैसी विचित्र है यह जीवन की पहेली? क्या इसकी कोई सुलझन भी है?'

इसी प्रकार विचारों और चिन्ताओं में डूबते-उतराते हुए महाराज महल में चहलक़दमी कर रहे थे। इसी समय जोत्याजी केसरकर बालराजा शिवाजी को लेकर आया। जैसे ही उसने बालराजा को बाँहों से नीचे उतारा, बालक कूदता-उछलता हुआ आया और महाराज के पैरों से लिपट गया। महाराज ने उसे प्यार से ऊपर उठाया और पीठ पर थपकी देकर कहने लगे, "यह ठीक ही हुआ कि तुम किसी के ग़ुलाम नहीं हो।"

बालारामा 'ग़ुलाम' का अर्थ नहीं समझ पाये। वे भौचक्के होकर अपने 'आबा' की ओर देखने लगे।

"क्यों कुछ बोल नहीं रहे हो जोत्याजी?" महाराज का ध्यान गया था कि जोत्याजी काफी देर से मौन खड़ा है, इसलिए उन्होंने पूछा।

"नहीं, ऐसी कोई ख़ास बात तो नहीं है, पर आज सुबह-सुबह एक ख़बर सुनी है।" जोत्याजी रुक-रुककर कहने लगा।

"क्या सुना है?" बालराजा की पीठ पर फिर रहा महाराज का हाथ रुक गया था।

"...कहते हैं कि भागानगर[1] में औरंगज़ेब के बहकाने पर कुतुबशाही सरदारों ने दो हिन्दू मन्त्रियों, अक्कण्णा और मादण्णा को मार डाला है। ऐन आम चौक में उन्हें छुरे घोंपकर मारा गया है।"

महाराज पर जैसे बिजली टूट पड़ी। समाचार सुनकर उन्होंने बालराजा को नीचे भूमि पर छोड़ दिया। ये अक्कण्णा और मादण्णा ही वे दो मन्त्री थे जिनकी मध्यस्थता के कारण मराठा राज्य ने आबासाहब के काल से लेकर आज तक मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे थे। आबासाहब जब भागानगर गये थे, तब अपना 'निजी घर' समझकर अक्कण्णा के घर जाकर उन्होंने भोजन भी किया था।

औरंगज़ेब जैसे हमारे लोगों को फुसलाकर-भगाकर हमें हैरान करता है, वैसे ही वे दो ख़ून कराके उसने कुतुबशाही राज्य को भी ढीला-ढाला कर दिया है।

'औरंगज़ेब! इस आदमी के लालच की क्या कोई हद भी है?' महाराज मन ही मन में कह रहे थे।

मृगनक्षत्र का उदयकाल निकट आ रहा था। जलधाराएँ कब बरसने लगें, यह कहा नहीं जा सकता था। आदिलशाही राज पर औरंगज़ेब की फ़ौजों का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा था। मेलगिरि पण्डित बीजापुर के सर्जा ख़ाँ और सिकन्दरशाह से बातचीत करके रायगढ़ लौट आये

https://t.me/Sahityajunction

थे। वे सेनापति सर्जा ख़ाँ का यह सन्देश लाये थे कि तुरन्त कुमक भेजी जाय।

अब इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था कि महाराज के निजी-निकटवर्ती और राजनीति-कुशल कवि कुलेश को ही मोर्चे पर भेजा जाय। उन्होंने कुलेश को बुलाकर कहा, "छन्दोगामात्य, सैनिकों की सहायता नहीं भेजी गयी, तो आदिलशाही टिक नहीं पाएगी अब।"

"हम सोच रहे हैं, स्वामी, कि हम जाएँगे आदिलशाही राज की सहायता करने।" कुलेश ने अपने आप ही उस बात का प्रस्ताव कर दिया, जिसे महाराज सुझाना चाहते थे।

"तुमने हमारे मन की बात कही है, कुलेश। तुम आज ही रायगढ़ से रवाना हो जाओ और पन्हालगढ़ पहुँचो। वहाँ की सेना को साथ लेकर तुम आदिलशाही की ओर बढ़ो। शहज़ादा आज़म की फ़ौजें तुम्हें मिरज प्रान्त में ही कहीं पर रोकने का प्रयत्न करेंगी।"

"जी, अवश्य। हम आज ही रवाना हो जाएँगे।" कुलेश आज्ञा प्राप्त कर चले गये।

महाराज ने अब आदिलशाही राज्य की रक्षा के लिए मिरज, सोलापुर अकलूज, इन्दापुर, इन नगरों के लम्बे भूभाग में हम्बीरराव और कुलेश की सेनाओं को तैनात कर दिया।

बाहर रायगढ़ पर वर्षा की धाराएँ बरस रही थीं और राजा के मन के भीतर विचारों की धाराएँ बरस रही थीं। इसी समय लन्दन-दरबार का ख़लीता लेकर एक जहाज़ लन्दन से चलकर सूरत बन्दरगाह आया था। उस ख़लीते में अँग्रेज़ दरबार ने गवर्नर को स्पष्ट आदेश दिया था : 'तुम राजा शम्भुजी के साथी बनो और उस युद्ध वीर राजा के साथ घनिष्ठ मित्रता स्थापित करो। फिर तुम्हें मुगल अथवा पुर्तगाली लोगों से भयभीत नहीं होना पड़ेगा। सिद्दी को अथवा मुग़लों को मुम्बई के आसपास भी फटकने मत दो। उस राजा के साथ तुम्हारा जो समझौता हुआ है, उसकी शर्त की पूर्ति के लिए गोला-बारूद और बन्दूक़ें भेजी जा रही हैं। तुम्हें और अधिक गोला-बारूद की आवश्यकता हो, तो अपने मद्रास के जल-दुर्ग से प्राप्त कर लो।'

महाराज सम्भाजी की शक्ति के बारे में सात समन्दर पार अँग्रेज़ दरबार ने भी अनुमान लगा लिया था, परन्तु अपने ही देश में कितने ही ऐसे लोग थे, कितने ही ऐसे रिश्तेदार और मित्र थे, जिन्हें महाराज की शक्ति का अन्दाज़ा ही नहीं था। लन्दन दरबार ने महाराज को 'युद्ध वीर' कह कर सम्बोधित किया था।

निलोपन्त और प्रह्लाद निराजी महाराज से मिलने आये थे। उदर-शूल शान्त होते ही निलोपन्त प्रह्लादपन्त के साथ वानापुर गये थे और वहाँ अँग्रेज़ राजदूत रिचर्ड स्टनले से उनकी बातचीत हुई थी।

महाराज को उस बातचीत का वृत्तान्त बतलाते हुए निलोपन्त कहने लगे, "महाराज, अँग्रेज़-राजदूत की यह शिकायत है कि हमारे सूबेदार अँग्रेज़-व्यापारियों से कर लेते हैं।"

"वह कर तो आयात का शुल्क है। वे लोग यह शिकायत तो हमेशा से करते आये हैं। यह कोई नयी बात नहीं है।"

"जी हाँ, हमने भी गोरों के राजदूत को यह बात समझायी है। वे लोग एक ओर तो भय के कारण अधिक गोदाम बनाने के लिए तैयार नहीं हैं, परन्तु दूसरी ओर मुक्त-व्यापार का निर्धारित

https://t.me/Sahityajunction

कर देने में आनाकानी करते हैं। ऊपर के दरबार से उन्हें अवश्य ही कोई कड़ी चेतावनी मिली है, क्योंकि अँग्रेज़ राजदूत की बोली कोमल एवं विनयपूर्ण थी।"

"तुम्हारी बातचीत का निष्कर्ष क्या निकला पेशवा?"

"अँग्रेज़ों ने यह मान लिया है कि वे हमारा एक राजदूत मुम्बई में रखेंगे। इसी प्रकार उनका एक राजदूत भी हमारे यहाँ रहेगा।" पन्त ने प्रह्लाद निराजी के ओर देखते हुए उत्तर दिया।

"अब हमारे न्यायाधीश को अँग्रेज़ों के दरबार में दूत बनाकर वहाँ व्यस्त रखने से काम नहीं चलेगा। पेशवा, अब किसी अन्य व्यक्ति को दूत बनाकर मुम्बई भेजो। क्यों प्रह्लादपन्त, ठीक है न?" महाराज ने न्यायाधीश का मत जानना चाहा।

"जैसी आपकी आज्ञा हो, स्वामी, यह उचित भी है, क्योंकि अब दूतकर्म करने के लिए नये लोगों को तैयार करना ठीक होगा।" प्रह्लादपन्त के मन में यह आशंका उत्पन्न हो गयी थी कि पिछली बार राजदूत के रूप में उनकी जो दुर्गत बनी थी, उससे शायद महाराज नाराज़ हो गये हैं।

"हमने गोरों के राजदूत के सामने दो बन्दूकें देने की माँग की थी। उसने हमारी माँग मान ली है, स्वामी।"

"बन्दूक़ें तो वे देंगे ही, निलोपन्त। परन्तु वे हबशियों को और मुग़लों को आश्रय देते हैं, इस बारे में उनका क्या कहना है?" महाराज ने मूलभूत समस्या की ओर संकेत किया।

"हबशियों को तो अँग्रेज़ों ने खदेड़ दिया ही है। अँग्रेज़ राजदूत का कहना है कि हबशी अब अपने समुद्री मार्ग से गुज़रता है। उन्देरी द्वीप से होकर गुज़रता है वह। इधर कुछ समय पहले उन्होंने मुग़ल जहाज़ी बेड़े को भी कड़ी चेतावनी दी है।"

महाराज ने देखा कि प्रह्लादपन्त काफी देर से चुप खड़े हैं, इसलिए पूछने लगे, "क्यों न्यायाधीश, चुप क्यों हो? क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है?"

"जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। हम स्वस्थ हैं।" परन्तु यह कहते समय उनका गला सूख गया था और आँखों की पुतलियाँ न जाने क्यों चंचल हो उठी थीं। पेशवा और न्यायाधीश मुजरा करके वहाँ से चल दिये।

विचित्रगढ़ के हवलदार सन्ताजी निम्बालकर का एक ख़लीता आया था। चिटनीस खण्डोजी बल्लाल वह ख़लीता लेकर महाराज से मिलने आये। इस ख़लीते में कारी ग्राम के सर्जेराव जेधे के मामले का वृत्तान्त था। कारी ग्राम का जेधे परिवार आबासाहब के समय में मराठा राज्य के प्रति स्वामिभक्त रहा था। कान्होजी जेधे उस परिवार का पहला स्वामिभक्त सरदार था।

औरंगज़ेब दक्खिन में उतरा और जेधे परिवार के सदस्यों की मति मारी गयी। आपसी लड़ाई के कारण सारा जेधे परिवार खोखला हो गया। सर्जेराव जेधे का भाई शिवाजी जेधे मुग़लों से जा मिला। वह सर्जेराव के मवेशी भी भगा ले गया और सर्जेराव के प्रदेश को ध्वस्त कर गया।

वास्तव में यह विवाद तो मराठा 'स्वराज्य' का आन्तरिक मामला था, परन्तु सर्जेराव मुग़लों के सामने अपनी शिकायत ले गये। शिरवल में जो मुग़लिया अधिकारी था, उसके सामने उसने घरेलू मामले को पेश किया। विचित्रगढ़ के मराठा हवलदार सन्ताजी को मध्यस्थ बनाकर उसने

https://t.me/Sahityajunction

इस घरेलू मामले को निपटाने का प्रयत्न किया। महाराज को जेधे के इस विवाद की पूरी जानकारी थी।

सर्जेराव के बारे में स्पष्टीकरण वाला जो ख़लीता हवलदार सन्ताजी निम्बालकर ने भेजा था, उसे खण्डोजी पढ़ने लगे, "...हम राजमान्य स्वामी के चरणों में निष्ठावान हैं। स्वामी यदि कृपा कर हमारा देशमुख पद और हमारी जागीर हमें दिलवा दें, तो हम सदैव एकनिष्ठ रहकर स्वामी की सेवा में तत्पर रहेंगे!"

महाराज ख़लीते का हर शब्द सुन रहे थे और हर एक शब्द के साथ उनके माथे की नसें फड़कने लगती थीं। वे सर्जेराव जेधे के दुमुँहेपन को अच्छी तरह जान गये थे। तेज़ी से घूमते हुए वे कहने लगे, "चिटनीस, ज़रा कलमदान लो। हम जैसा कहते हैं, ठीक-ठीक उन्हीं शब्दों में पत्र लिखकर तुरन्त रवाना करो।"

खण्डोजी लिखने लगे। महाराज ख़लीता इस तरह लिखवा रहे थे, मानो सर्जेराव जेधे उनके सामने ही खड़े हों।

"...तुमने मुद्राधारी हवलदार सन्ताजी निम्बालकर को पत्र लिखकर अपनी समस्या उपस्थित की है। वह इस प्रकार कि तुम्हारा भाई शिवाजी जेधे हरामख़ोर बन गया है और मुग़लों से जा मिला है। उसने तुम्हारे मवेशी भगा लिये हैं। तुम्हें डर है कि वह आगे भी तुम्हें कष्ट देगा। इसलिए तुम गाँव से भागकर शिरबल आ गये हो। तुम कहते हो कि तुम स्वामी के चरणों के प्रति एकनिष्ठ हो...इस सम्बन्ध में यह आज्ञापत्र तुम्हें लिखा जाता है।

"पहले तो तुमने ही सरासर हरामख़ोरी की है कि हमारे जागीरदार होकर भी तुम ईमानदार नहीं रहे। इतने वर्षों तक तुमने स्वामी का दिया अन्न सेवन किया है। इस अन्न का बदला तुमने इस तरह चुकाया कि तुम्हारी अक़्ल मारी गयी और तुम उन मुग़लों से जा मिले, जिन्हें यहाँ आये अभी दो ही दिन हुए हैं। तुम्हारा भाई शत्रु से जा मिला था तो उससे बचने के लिए तुम स्वामी के सम्मुख उपस्थित होते। तब तुम्हारी एकनिष्ठा और स्वामिभक्ति का हमें भरोसा होता। परन्तु तुमने यह नहीं किया। फिर भी जो हुआ, सो हुआ। अब इसके बाद भी यदि तुम शत्रु के साथ ही रहना चाहो, तो आनन्द से रहो। तुम्हारी हस्ती ही क्या है? यह भी समझ लो कि स्वामी यदि इस क्षण आदेश दें, तो शत्रु के साथ-साथ तुम्हारा भी सफाया हो जाएगा।

"इस कारण यदि तुम स्वामी के चरणों में निष्ठापूर्वक सेवा करना चाहते हो, तो तुम जैसा भी आचरण करना चाहते हो, वैसा हमें लिखकर भेजो। याद रखो, अब से स्वामी के अतिरिक्त किसी दूसरे के पास मत जाना। तुम वास्तव में एकनिष्ठ हो, ऐसा जब स्वामी को भरोसा हो जाएगा, तब वे जो आदेश देंगे, उसके अनुसार आचरण करना।"

खण्डोजी ने चुटकी-भर रेत ख़लीते पर फैला दी और वह ख़लीता थैली में बन्द कर दिया।

"स्वामी, ख़ानदेश के धरणगाँव में अपने पेशवा ने अँग्रेज़ों के गोदाम लूट लिये। उसका बदला लेने के लिए अँग्रेज़ों ने भी अपनी नीति बदल दी है।" खण्डोजी ने दूसरा मामला पेश किया।

"क्या नीति अपनायी है उन्होंने?" महाराज व्यग्र हो उठे।

"वे हमारे समुद्री प्रदेश को हड़पने की कोशिश में हैं। परन्तु अपने नौसैनिक भी पूरी तरह सावधान हैं।" महाराज को सुनकर सन्तोष हुआ।

https://t.me/Sahityajunction

“चेऊल प्रदेश से समाचार आ रहे हैं कि हबशियों ने वहाँ जगह-जगह ऊधम मचाया हुआ है। पिलाजी नामक नाई ने बड़े महाराज की वात-व्याधि का कष्ट औषधि देकर दूर किया था। उसके बेटे बजाजी नाई ने हबशियों के उन्देरी द्वीप पर ज़ोरदार आक्रमण किया था। उससे चिढ़कर हबशी चौल प्रदेश में समूह बनाकर घुस पड़े हैं। उन्होंने उस प्रदेश में कई निवासियों को मार डाला है।”

यह समाचार ही ऐसा था कि इसे कहते हुए खण्डोजी और सुनते हुए महाराज व्यथित हुए बिना नहीं रहे। आबासाहब द्वारा अन्त में कहे हुए वचन महाराज के मन में आज भी टकरा रहे थे — ‘जंजिरा और उन्देरी में हबशी पाँव जमाये बैठा है।’

महाराज को याद हो आयी नाविक सिद्दी मिस्त्री की, जिसे हबशी नौका में डालकर भगाकर मुम्बई ले गये थे और वहाँ उसे मार डाला था। इसी समय उन्हें वह दृश्य भी याद आ रहा था, जब वे जंजिरा की खाड़ी के किनारे खड़े थे और उन्होंने खाड़ी को पाट देने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। हबशी! मराठा राज्य के राजसी वस्त्र को कुतरने वाला चूहा—समुद्री चूहा!!

समर्थगुरु द्वारा स्थापित जो मठ चाफल ग्राम में था, वहाँ धार्मिक मेला जुड़ता था। उस मेले के व्यापारियों द्वारा की गयी कई शिकायतें महाराज के कानों तक पहुँची थीं। इन व्यापारियों से आवश्यकता से कहीं अधिक कर लिया जाता था। इस अन्याय का निवारण होना आवश्यक था। अब, महाराज ने धर्म विभाग के अधिकारी मोरेश्वर पण्डित को और उनके चिटनीस को बुलवा लिया था।

“पण्डित, चाफल मठ के बारे में क्या शिकायतें हैं?” महाराज ने मोरेश्वर से पूछा।

“जी, मठ की देखभाल का मामला अभी तक उलझा हुआ है। उद्धव गोसाईं अपनी मनमानी करते हैं। उनके भड़काये जाने के कारण दीवानी विभाग के अधिकारी व्यापारियों से मनमाना कर वसूल करते हैं।” मोरेश्वर ने चाफल की परिस्थिति कह सुनायी। इस दुःखद परिस्थिति का वर्णन करते समय स्वयं मोरेश्वर पण्डित का मन भी व्याकुल हो उठा था। समर्थगुरु के मठ में आज ये कैसी अव्यवस्था?

महाराज भी चिन्तित हो उठे। चिटनीस से बोले, “लेखनी हाथ में लो। कराड के देशाधिकारी रंगी विश्वनाथ और सातारा के अंगाजी मोरदेव को कठोर आदेश-पत्र लिखो।”

धर्मविभाग के लिपिक को महाराज लिखवाने लगे :

“चाफल मठ के मेले में व्यापारियों को दीवानी विभाग के अधिकारी तंग करते हैं। इस कारण मेला बन्द हो जाने का भय उत्पन्न हो गया है। तुम इस विषय में पूरी देखभाल करो।... दिवाकर गोसाईं ही पूर्ववत् सम्पूर्ण प्रबन्ध किया करें। उद्धव गोसाईं को बीच में बाधा उत्पन्न करने से रोको।...शाहापुर में हनुमानजी का जो मन्दिर है, उसकी आय वाहगाँव का पटेल और पुजारी ही खा रहे हैं, उसे तुरन्त रोका जाय।” मठ के छोटे-बड़े विषय के बारे में महाराज ने निर्णय कर दिया। परन्तु उनका मन समर्थगुरुजी की स्मृतियों में ही उलझा हुआ था।

पिछले तीन-चार वर्षों में फ़ौजें लगातार राज्य के अनेक प्रदेशों में दौड़ती रही थीं और इन रक्षक तथा आक्रमणकारी सेनाओं की भागदौड़ के कारण खेत बंजर हो गये थे। फिर पिछले

https://t.me/Sahityajunction

साल ही भयानक अकाल पड़ा था। गाँवों-बस्तियों के किसान निराश और हतोत्साह हो गये थे। ऐसी दशा में यह आवश्यक था कि किसानों में धैर्य और उत्साह पैदा करके खेती-बाड़ी को फिर से हरा-भरा बनाया जाय। महाराज इस सत्य को भली भाँति जानते थे कि सेनाएँ केवल घोड़ों की टापों पर नहीं दौड़ती हैं, उसके लिए खेतों में अनाज उगाना भी उतना ही आवश्यक होता है। इसलिए महाराज ने सुरनीस शंकराजी को सभागृह में बुलवाया और उन्हें आदेश दिया, "राज्य के सब सूबेदारों को आज्ञापत्र दो कि स्थान-स्थान पर जितने भी जागीरदार और जागीरों के देशमुख हैं, वे कुनबियों की खेती की जुताई-बुवाई के लिए हर प्रकार की सहायता दें।"

बीजापुर के चारों ओर रात-दिन दौड़ रहे हम्बीरराव के भेजे हुए घुड़सवार निरन्तर सन्देशा लेकर आ रहे थे, "कुमक भेजी जाय।"

इसलिए महाराज ने नागोजी बल्लाल को बुलाया और उन्हें सेनासहित बीजापुर की ओर रवाना कर दिया।

बहिर्जी नाईक ने रामघाट में हुई मुठभेड़ की ख़बर सुनायी थी कि कुडाल के खेम सावन्त नामक सरदार पुर्तगालियों से जा मिले थे और पुर्तगालियों के साथ मिलकर आस-पास के मराठा प्रदेश में लूट-पाट मचा रहे थे। इसी तरह सोंदा गाँव का सरदार राम दलवी अपनी पन्द्रह हजार सेनासहित उनकी सहायता कर रहा था। वह सारे कारवार प्रदेश को जलाता-लूटता हुआ फिर रहा था।

इन विद्रोही सरदारों को वश में करने के लिए रामचन्द्रपन्त और धर्माजी नागनाथ जी-जान से जुटे हुए थे। महाराज आदिलशाह को इतनी सहायता दे रहे थे, पर आश्चर्य यह कि आदिलशाही सेनापति सर्जा ख़ाँ ने रायघाट में अपने छः हज़ार फ़ौजियों को छावनी लगाकर बिठा रखा था। ये फ़ौजी और हाथी-घोड़े मिलकर रामचन्द्रपन्त और धर्माजी की सेना को आगे बढ़ने से रोक रहे थे। सर्जा ख़ाँ के इस आचरण का कारण स्पष्ट था। आदिलशाह एक ओर महाराज से सहायता भी चाहता था और दूसरी ओर वह देसाई और दलवी जैसे विद्रोहियों की सहायता से कोंकण प्रदेश को भी हथियाना चाहता था तथा बीजापुर का ख़जाना भरना चाहता था। जैसे भी बने, वह औरंगज़ेब के धक्के से लड़खड़ाना नहीं चाहता था।

महाराज बैठे-बैठे यही सोच रहे थे कि कोंकण के विद्रोहियों का, देसाई और दलवी का उपद्रव कैसे दबाया जाय कि इतने में प्रह्लाद निराजी महाराज से मिलने आये। उनके साथ विठोजी, बापूजी और गोविन्द नारायण नामक दो व्यक्ति थे, जो चेऊल के निवासी थे। उन दोनों ने महाराज को मुजरा किया। दोनों के मुख पर चिढ़ और खीज स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

"इन दोनों के साथ बड़ा अन्याय हुआ है, स्वामी। सूर्याजी विसाजी प्रभु ने डरा-धमकाकर इन ग़रीबों से बयनामा लिखवा लिया है। इनकी भूमि और सम्पत्ति हड़प ली है।" प्रह्लादपन्त ने मामला पेश किया।

विठोजी और गोविन्द हाथ जोड़कर और बार-बार झुककर गिड़गिड़ा रहे थे, "अब आप ही हमारे माँ-बाप हैं। न्याय कीजिए, महाराज। हमें निराश मत कीजिए।"

"न्यायाधीश, चौल में अपना देशाधिकारी कौन है?" महाराज ने पन्त से जानकारी पानी चाही।

https://t.me/Sahityajunction

“येसाजी अनन्त नाम है उनका, महाराज।”

“उनके नाम आज्ञापत्र लिखो। लिखो कि इन बेचारों से बलपूर्वक जो बयनामा लिखवा लिया है, वह रद्द किया जाय। जब यह काग़ज़ लिखवाया गया था, उस समय चौल का देशाधिकारी कौन था?”

“हरि शिवदेव थे, महाराज।” प्रह्लादपन्त ने सोचा भी नहीं था कि महाराज इतनी गहराई में जाकर छानबीन करेंगे।

“उन्हें कठोर आदेश-पत्र लिखो—विठोजी बापूजी और गोविन्द नारायण हमारे सामने पेश हुए हैं। इन पर जो अत्याचार हुआ है, वह हमने सुना। तुम उस प्रदेश के सूबेदार हो। तुम क्या तमाशा देखा करते हो? अपना काम तो करते नहीं और सूर्याजी के बारे में अनावश्यक सिफारिश करते हो। अब हम जान गये हैं कि तुम्हारी व्यवस्था कैसी है! एक की ज़मीन ज़बरदस्ती छीनकर दूसरे की झोली में डालना, यह तुम्हारा कैसा दीवानी कामकाज है?” महाराज ने क्रोधित होकर हरि शिवदेव के नाम पत्र लिखवाया।

एक दृश्य तो यह था कि एक राजा अपनी निरीह प्रजा को न्याय प्राप्त कराने के लिए रात-दिन एक कर रहा था और ठीक इसी समय सोलापुर की औरंगज़ेब की विशाल फ़ौजी छावनी में भी एक घटना घटित हो रही थी। सोलापुर के निकट स्थित तुलजापुर की तुलजा भवानी देवी भी सम्भवतः इस दृश्य को देख रही होगी और देख-देखकर रो रही होगी।

रेशम की रस्सियों से ताना गया एक आलीशान हरा शामियाना सर्दियों की सर्द हवाओं में लहरा रहा था। उस शामियाने पर चाँद-तारे के निशानवाला हरा झण्डा फहरा रहा था। यह शाही शामियाना था बादशाह औरंगज़ेब का। इस शामियाने के बाहर एक नगाड़ा रखा था। एक झण्डा और पहुँचियों से भरा एक तबक़ एक पंक्ति में सजाकर रखा हुआ था। पास ही एक हाथी खड़ा था, जिसके चारों ओर हथियारबन्द सिपाही पहरा दे रहे थे। जंजीरों की खनखनाहट के बीच वह हाथी मस्ती से झूम रहा था।

शामियाने में मुहम्मद आज़म, मुईज़ुद्दीन, बेदारबख्त, रणमस्त ख़ाँ आदि ख़ास लोग अपने क़दमों की ओर नज़र लगाये खड़े थे और बीच में बनी हुई ऊँची बैठक पर बैठा था बादशाह औरंगज़ेब। उसकी बायीं तरफ मौलवियों का समूह बैठा हुआ था।

सामने की ओर से चालीस-पचास घुड़सवारों के बीच दो उमदा क़िस्म के अरबी घोड़ों पर बैठे हुए दो ख़ास आदमी दुलकी चाल से चलते हुए आ रहे थे। वे दो सवार जैसे ही शामियाने के पास आये, पहरेदारों ने उन्हें तसलीम की। दोनों भीतर चले गये। दोनों ने बादशाह को कोर्निश किया। उन दो में से जो हट्टा-कट्टा नौजवान था, उसे औरंगज़ेब बड़े ध्यान से देख रहा था। अब दूसरा प्रौढ़ मनुष्य आगे बढ़ा। उसने अपने ‘ज़िल्ले सुबहानी’ की दायीं ओर रखे हुए तबक़ को उठाया और बादशाह के सामने ले आया। बादशाह ने तसबीह वाले हाथ से उस तबक़ को छुआ। यह तबक़ धारण करनेवाला मनुष्य था वज़ीर असद ख़ाँ। उसने तबक़ में रखे हुए गहरे हरे रंग के ‘ख़िलअत’ को उठाया और उस नौजवान सरदार को भेंट रूप में दिया। उसे हाथी देकर उस नौजवान को भी वास्तव में हाथी की तरह ही जंजीरों से बाँध डाला गया था। यह नौजवान था अचलोजी! शिवाजी महाराज का दामाद। सम्भाजी का बहनोई। तुलजा भवानी के उपासकों का एक वंशज! अचलोजी की वार्ता से हुए घाव अभी भरे भी नहीं थे कि जंजिरा में हबशी कासिम ने

https://t.me/Sahityajunction

फिर से सिर उठाना शुरू कर दिया। उसने चौल और राजापुर में हबशियों की टोलियाँ भेज-भेजकर लोगों की बड़ी निर्दयता से हत्या करवायी। वह जंजिरा से चलकर स्वयं कल्याण तक आ पहुँचा। दाभोल बन्दरगाहों में उसके और मराठा नौसेना नायक गोविन्दजी कान्हो के बीच जो मुठभेड़ हुई थी, उसमें गोविन्दजी मारे गये थे।

आदिलशाह के दृढ़ गढ़ भी एक-एक करके ढह रहे थे। मिरज का मैदानी क़िला कितना मज़बूत क़िला था, परन्तु क़िलेदार असद ख़ाँ ने वह क़िला भी रणमस्त ख़ाँ और रुहुल्ला ख़ाँ के हवाले कर दिया। मिरज हाथ में आते ही पन्हाला और कोल्हापुर प्रदेश में मुग़लों की घुसपैठ होने लगी। अकेले हम्बीरराव ही ऐसे थे जो पश्चिम में पन्हाला से लेकर हुक्केरी तक आदिलशाही राज को बचाने के लिए जी-जान एक कर रहे थे।

लक्ष्मेश्वर के खनगौडा देसाई ने मुग़ल सेना से जमकर लोहा लिया था। महाराज ने उसे पुरस्कारपत्र देने की दृष्टि से पेशवा को बुला भेजा।

निलोपन्त को इस बात की जानकारी नहीं थी कि महाराज ने उन्हें क्यों बुलाया है। इसीलिए वे पुणे से दामाजी ने जो समाचार भेजा था, उसकी जानकारी महाराज को देने लगे, "रुहुल्ला ख़ाँ और रणमस्त ख़ाँ पुणे पर चढ़ आये हैं, महाराज। वे वहाँ के देशमुख, देशपाण्डे आदि अधिकारियों को बहकाकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

विद्रोह की और शत्रु से जा मिलने की घटनाएँ अब इतनी प्रतिदिन की बात हो गयी थीं कि महाराज किस-किसका दुःख मनाते। आज महाराज की इच्छा होती थी कि कोई उन्हें समर्थगुरु के वचन सुनाये, ताकि हृदय को तनिक शान्ति तो मिले।

चारों ओर दुःख और व्यथाकारी घटनाएँ! महाराज का मन इनसे खिन्न हो उठा था। इसी अवस्था में वे अन्तःपुर के कक्ष में आये। उन्हें काफी देर तक मौन बैठा देखकर येसूबाई ने कहा, "पारगाँव से वहाँ के मठ का एक व्यक्ति आया है। सुना है कि मौनी बाबा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है।"

महाराज ने चौंककर येसूबाई की ओर देखा, पर वे मौन ही रहे। पिछले कई वर्षों की भाग-दौड़ में उन्हें मौनी बाबा, मोरया गोसाईं तथा मल्हारबाबा के दर्शन करने का भी अवसर नहीं मिल पाया था। आज इस अनुभूति से उनका जी दुःखी हो उठा। इसी समय बालराजा के साथ रायाजी-अन्तोजी वहाँ आ गये। बालराजा दौड़कर अपनी माँसाहिबा से लिपट गया। माता और पुत्र के इस रूप को देखकर आज महाराज को जिजाऊ साहिबा की याद आ गयी।

महाराज सभागृह में आये ही थे कि म्हलोजी बाबा का युवा पुत्र सन्ताजी घोरपड़े वहाँ आ उपस्थित हुआ। वह पन्हाल प्रदेश से आया था। उस प्रदेश में मराठा सेनापति हम्बीरराव और म्हलोजी बाबा की मुग़ल सेना की रणमस्त ख़ाँ और रुहुल्ला ख़ाँ से ज़ोरदार लड़ाई हुई थी। उस लड़ाई का वर्णन करते हुए सन्ताजी कहने लगा, "दोनों ख़ानों को हमने बेलगाँव की ओर खदेड़ दिया है। सेनापति ने बेलगाँव के क़िलेदार मुराद ख़ाँ को सन्देश भेजा है कि वह जमकर अपने क़िले की रक्षा करें।"

सन्ताजी के उत्साह को देखकर और उसकी कही हुई वीरता की गाथा सुनकर महाराज को बहुत सन्तोष हुआ। वे सन्ताजी के पास आये और उसका कन्धा थपकते हुए पूछने लगे, "हमारे म्हलोजी बाबा कैसे हैं? पन्हालगढ़ की क्या हालत है?"

https://t.me/Sahityajunction

“जी। हमारे आबा तो अपने गाँव कापशी गये हैं; और क़िले की रखवाली तो हम कर ही रहे हैं।”

घनघोर बरसात में कम्बल की घोघी पहनकर एक हरकारा रायगढ़ आया। उसे कुडाल के नील सूबेदार नीलकण्ठ नारायण ने भेजा था। वह जो ख़लीता लाया था, उसमें लिखा था : ‘मुग़ल नौसेनानायक याकूत ख़ाँ ने खेम सावन्त को ख़लीता भेजा था। लिखा था—तुम बादशाह से आ मिलो। हज़रत ने अर्जुनजी और अचलोजी को जैसी इज़्ज़त बख़्शी है, वैसे ही बादशाह सलामत आपको भी सरफ़राज़ करेंगे।’

नीलकण्ठ नारायण कुडाल का देशाधिकारी था। उसने खेम सावन्त और याकूत ख़ाँ के बीच चल रही इस साँठ-गाँठ की पूरी जानकारी चतुराईपूर्वक पा ली थी।

जिस प्रकार अलाव में पड़ा हुआ लकड़ी का लट्ठा धीरे-धीरे सुलगता-धुँधुआता रहता है, उसी प्रकार महाराज का मन भीतर ही भीतर छटपटा रहा था। सूर्य इतना प्रखर अग्निपिण्ड है, परन्तु उसे भी यदि दीमक लग जाए, तो कोई क्या कहे, क्या करे? परन्तु आजकल समय कुछ ऐसा ही आ गया था।

विविध विचारों से महाराज का मन व्यग्र हो रहा था। मन के भीतर कोई खुसपुसाकर कहता था—कोई न कोई अशुभ-अमंगल अवश्य होने वाला है। वे इन दिनों किसी से भी खुले दिल से बात नहीं करते थे। जैसे जंगली भैंसे सिरों से टक्करें मार-मारकर भीषण रण मचा देते हैं, इसी प्रकार अनेक विचार उस भोसले के मन में एक-दूसरे से टकरा रहे थे और बिखर रहे थे।

‘क्या कोई भी यह नहीं सोचता कि यह राज्य ‘श्री’ का है, जगदम्बा का है। सभी लोग औरंगज़ेब के आगे नाक क्यों रगड़ते जा रहे हैं? औरंगज़ेब! जिसने हमसे आगरा में एक बार पूछा था—शीवा का यह बच्चा कुश्ती लड़ेगा क्या?—वह औरंगज़ेब अब इस बुढ़ापे में कैसा दीखता होगा? क्या उसे भी कभी दूर स्थित दिल्ली की याद आती होगी? क्या कभी उसे भी हमारे आबासाहब का अथवा हमारा चेहरा याद आता होगा? क्या उसे कभी अपने पिता शाहजहाँ की या अपने मारे गये भाइयों की याद आती होगी? विष देकर मारे गये मिर्ज़ाराजा को भी क्या कभी वह याद करता होगा? हीरा चाटकर आत्महत्या करनेवाले दिलेर ख़ाँ को याद करके क्या कभी वह दुःखी होता होगा? अपनी बेटी को ही उसने क़ैद कर रखा है, क्या उसका भी कभी उसे ख़्याल आता होगा?’

रायगढ़ में राजसभा आयोजित की गयी थी। श्रावण मास अभी-अभी समाप्त हुआ था। राजसभागृह के परदे और झालरें शीतकालीन मन्द वायु में डोल रहे थे। महाराज पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर विराजमान थे। उनके मुख पर अत्यन्त गम्भीरता छायी हुई थी। प्रधान मण्डल के लिए निर्धारित आठ स्तम्भों के पास ‘अष्ट-प्रधान’ खड़े हुए थे। सिंहासन की निकटवर्ती सीढ़ियों पर बनी एक बैठक पर बालक शिवाजी बैठे थे। उनके निकट छन्दोगामात्य कुलेश खड़े हुए थे। सिंहासन के खुले भाग में ग़लीचे बिछाये गये थे और इन ग़लीचों पर रूपाजी, कृष्णाजी नरसप्रभु, येसाजी, म्हलोजी बाबा, सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव जानराव, बारदमल आदि अनेक सम्मानित सरदार अपने-अपने स्थानों पर खड़े थे। इतने लोग एकत्रित थे वहाँ, परन्तु ऐसी

https://t.me/Sahityajunction

भीषण शान्ति सारे दरबार में छायी हुई थी कि परदों की सरसराहट भी सुनाई दे जाय।

इस शान्ति का कारण भी उतना ही भयानक था। दक्षिण देश के तीन पत्तों में से एक पत्ता आज टूट कर गिर पड़ा था। आदिलशाही राज्य की राजधानी बीजापुर ने घुटने टेक दिये थे। वहाँ का बालक राजा सिकन्दर औरंगज़ेब के हवाले हो गया था। औरंगज़ेब ने सजे हुए शाही हाथी के हौदे में बैठकर बीजापुर शहर में चक्कर लगाया था। चमचमाती नंगी तेगें ताने हुए, दहकती आँखों वाले सिपाही उस हाथी के चारों ओर चल रहे थे। शहर में मुनादी करायी गयी थी : 'बीजापुर की रिआया अब दिल्ली सल्तनत की रिआया है। किसी पर भी ज़ोर-जुल्म नहीं किया जाएगा। सब लोग सल्तनत के वफ़ादार बने रहें।'

दक्खिन में आने के चार बरस बाद औरंगज़ेब को यह पहली फ़तह मिली थी। बीजापुर के पठान-सरदारों में आपसी फूट थी। फूट के कारण आदिलशाही सल्तनत ढह गयी। उस पराजय का समाचार सुनकर महाराज ने अपने जासूस सब ओर भेजे थे और यह दरबार आयोजित किया था। एक महत्त्वपूर्ण और गम्भीर समस्या पर विचार करने के लिए सबको बुलवाया गया था।

सबने सोचा था कि दरबार की नित्य प्रथा के अनुसार निलोपन्त मन्त्रणा का प्रारम्भ करेंगे, परन्तु वैसा नहीं हुआ। सिंहासन की दोनों भुजाओं के सामने बने हुए सिंह के मुख पर अपनी हथेलियाँ दृढ़ता से जमाकर महाराज ने ही कहना प्रारम्भ किया, "आप सब जानते हैं... आदिलशाही राज्य की हार हो गयी।" महाराज का दिल भर आया था। एक गहरी उसाँस छोड़कर महाराज चुप हो गये। कुछ क्षणों तक नीरवता छायी रही। परदे यूँ ही हिलते रहे—सरसराते रहे।

"उस राज्य से हमारा बरसों से नाता था। औरंगज़ेब को उस लड़ाई में उलझाये रखने के लिए और उस राजगद्दी की रक्षा के लिए हमने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया, पर सफलता हाथ नहीं आयी। अब अपने इस राज्य पर ही काली छाया घहराने लगी है। समाचार है कि अब मुग़लिया फ़ौजें गोलकुण्डा की ओर कूच करने वाली हैं। यह अफ़वाह या चकमा देने के लिए फैलायी हुई ख़बर भी हो सकती है। आप सब विशिष्ट जनों को यहाँ इसी निमित्त से आमन्त्रित किया है कि इस राज्य की स्थापना और उन्नति के लिए आबासाहब के काल से लेकर आज तक अगणित वीर काम आ चुके हैं। यह राज्य हमारा अकेले का नहीं है। यह राज्य माता भवानी का है। प्राणों की जोत जलानेवाली जिजाऊ का राज्य है यह, आबासाहब का राज्य है यह। यही नहीं, जंगलों में जूझ रही प्रजा का राज्य है यह और राज्य है उन बहादुरों का जो उत्तर में बरार और ख़ानदेश से लेकर दक्षिण में जिंजी नगर तक शत्रु को नाकों चने चबवा रहे हैं। तुम पर और हम पर यह उत्तरदायित्व है कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी इस साम्राज्य की रक्षा करें।" 'क्या कहा जाय और कैसे कहा जाय'—इस चिन्ता के कारण महाराज उठकर खड़े हो गये। सारा दरबार कानों की अंजलि बनाकर महाराज के वचनों को समेट रहा था।

"कठिन अवसर आ पड़ा है। हमें संकट में फँसा जानकर कोंकण के जागीरदार विद्रोही बनते जा रहे हैं। जिन्हें हम अपना समझते थे, वे पराये बनकर शत्रु की छावनी की ओर भागे जा रहे हैं और 'मनसब' पाने के लिए औरंगज़ेब को कोर्निश कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि आप कोई भी घबराकर अथवा संकोचवश मन की बात छिपाएँगे नहीं।" सम्भाजी की दृष्टि सारे दरबारियों की ओर घूम रही थी। अकस्मात् उन्होंने अनुभव किया कि वे खड़े हुए हैं। वे पुनः सिंहासन पर बैठ

https://t.me/Sahityajunction

गये।

आज सम्भाजी महाराज की आकृति को देखकर हम्बीरराव को शिवाजी महाराज का वह रूप याद आ गया कि जब वे मिर्ज़ा राजा जयसिंह से सन्धि करने राजा जयसिंह की मुग़ल छावनी की ओर जा रहे थे। हम्बीरराव पत्थर से टकराने वाले रम्भे की-सी ऊँची ज़ोरदार आवाज़ से कहने लगे, "महाराज, इतनी चिन्ता न करें। आदिलशाही राज्य की हार नहीं हुई है, पठान सरदारों की आपसी फूट से फायदा उठाकर बादशाह ने उस राज्य को ढहाया है। जब तक हमारे तन में प्राण है, हम बादशाह के पैदल सिपाही को भी अपने राज्य में पैर नहीं रखने देंगे। 'ख़िलअत' पहनने के लिए ये जो निकम्मे बिजूके आज भागे जा रहे हैं, उन्हें कल पता लगेगा कि उनके पाँवों में कैसी बेड़ी पड़ चुकी है। आप निश्चिन्त रहें, हम आपके साथ हैं।" हम्बीरराव की वाणी के रूप में जैसे मावलदेश के ऊँचे पहाड़ों की दृढ़ता ही आकर सब दरबारियों को धैर्य दे गयी।

"कोंकण प्रदेश में जो बाग़ी-उपद्रवी जागीरदार हैं, उन्हें सबक सिखाने के लिए हम काफी हैं, महाराज! चाहे हमारी जान चली जाय, पर हम उन बाग़ियों का और मुग़लों का मिलाप नहीं होने देंगे।" रामचन्द्रपन्त ने भी इस प्रकार सेनापति की बातों का समर्थन किया। धर्माजी नागनाथ ने सिर हिलाकर उनकी बातों का अनुमोदन किया। जो दरबार कुछ देर पहले दबा हुआ-सा चुप्पी साधे खड़ा था, उसमें अब थोड़ी चेतना फैलने लगी थी।

"हमने आज तक साम्राज्य की जो कुछ सेवा की है उससे भी अधिक सेवा के लिए हम तत्पर हैं। इस राज्य के लिए हम कोई भी मोल देने को तैयार हैं।" आज चिटनीस खण्डोजी बल्लाल भी अपने लिपिक वाले आसन पर खड़े होकर घोषणा कर रहे थे।

"शहज़ादा अकबर की सहायता से पुर्तगालियों को चुप बैठाने का काम हम पूरा करेंगे, महाराज। साथ ही जागीरदारों में एकता स्थापित करके उन्हें अपने राज्य के प्रति निष्ठावान बनाये रखने का हम भरसक प्रयत्न करेंगे। पन्हाला, खेलना और मलाकपुर प्रान्त के विषय में आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें।" इस प्रकार कवि कुलेश ने अपनी हिन्दुस्तानी बोली में सहयोग का भाव प्रकट किया। परन्तु उनकी बातों को सुनकर न्यायाधीश प्रह्लादपन्त और अन्य कई मन्त्री बेचैनी से इधर-उधर झाँकने लगे थे।

अब हम्बीरराव से रहा न गया और वे साफ मुँहतोड़ बात कहने लगे, "हम राजनीति तो कुछ नहीं जानते। फिर भी कुछ खरी बातें कहना चाहते हैं। महाराज, हमें क्षमा करें।" हम्बीरराव थोड़ा हिचकिचा रहे थे।

"कहो, कहो, सेनापति। तुम तो पुराने, अनुभवी व्यक्ति हो। घर के आदमी हो। निःसंकोच होकर कहो।"

"क्षमा करें महाराज। इस शहज़ादे का अपने लिए कोई उपयोग नहीं है। उलटे यह डर है कि कहीं इसी बहाने बादशाह हमारे राज्य में ही न घुस बैठे। छन्दोगामात्य अब उसका पीछा छोड़ दें तो ही ठीक होगा। और दूसरी..."

अब सारे दरबारियों का ध्यान हम्बीरराव पर केन्द्रित हो गया था। जो बात कइयों के हृदय में चुभती थी, उस कसक को यदि भरे दरबार में कहने का साहस कोई कर सकता था, तो वे थे हम्बीरराव। उनकी आयु, उनका पद और उनका त्याग था भी इतना महान।

https://t.me/Sahityajunction

“तुम्हारे मन में जो भी बात है, साफ-साफ कहो, मामासाहब।” महाराज ने हम्बीरराव को कहने का अवसर दिया।

बात कहने का प्रारम्भ करने से पहले आज हम्बीरराव शायद पहली बार खँखार उठे थे। यद्यपि यह बात दरबार के शिष्टाचार के विपरीत हो गयी थी, परन्तु बात थी भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण। हम्बीरराव ने निर्भय दृष्टि से एक बार सात स्तम्भों के निकट खड़े सात प्रधानों की ओर देखा और फिर उनकी वही निर्भय दृष्टि छन्दोगामात्य पर आकर स्थिर हो गयी। उनकी यह निरीक्षण दृष्टि इस समय कइयों के हृदयों को छेद गयी थी। सात प्रधान, कवि कुलेश, सारे दरबारी और स्वयं महाराज भी इस समय हम्बीरराव की ओर देख रहे थे।

“यह बात चाहे हमारे अधिकार के अन्तर्गत न आती हो, परन्तु महाराज, इस बात को एक न एक बार कहना आवश्यक है। किसी न किसी को यह बात कहनी ही चाहिए। हम बड़े महाराज के काल से इस राजगद्दी के लिए अपना ख़ून बहाते आये हैं। इसीलिए कहे बिना रहा नहीं जाता। हमने सुना है कि अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों तथा छन्दोगामात्य के बीच कुछ अनबन हो गयी है।”

स्तम्भों के निकट खड़े मन्त्री अब एक-दूसरे की ओर देखने लगे। कुलेश का चेहरा भी एकदम उदास हो गया। उनके मुख पर गहरी वेदना की छाया उभर आयी! गरदन नीचे झुक गयी।

“हमने सुना है, मन्त्री-बाड़ी का कोई भी मन्त्री छन्दोगामात्य को भोजन के लिए नहीं बुलाता है क्योंकि वे ‘कनौजिया’ हैं और कविजी भी किसी के यहाँ जाते नहीं हैं। ‘कविजी’ महाराज के इतने निकट घूमते फिरते हैं, यह बात भी कइयों को पसन्द नहीं है। इस संकटकाल के समय यह भी आवश्यक है कि इस विवाद को हमेशा के लिए नष्ट करके गाड़ दिया जाय।” हम्बीरराव की ये स्पष्ट बातें इतनी तेज़ थीं कि मन्त्रीगण सोच रहे थे—‘हम्बीरराव की तलवार भी शायद इनकी बातों से कम तेज़ होगी।’

अन्ततः कुछ सँभलकर प्रह्लादपन्त ही कहने लगे, “सेनापति जो कह रहे हैं, वह सत्य है। छन्दोगामात्य ही भोजन के लिए किसी के घर नहीं जाते। वे स्वयं को अष्टप्रधानों से ऊँचा मानते हैं। स्वयं को महाराज के विशेष आप्त व्यक्ति मानते हैं। सबको भोजन के लिए अपनी हवेली में बुलाते हैं, पर स्वयं किसी के घर नहीं जाते। इसीलिए उनके निमन्त्रण को पाकर कोई मन्त्री भी उनके घर नहीं जाता!”

इस बात को सुनकर छन्दोगामात्य बौखला उठे। क्रोध से काँपते हुए कहने लगे, “महाराज, न्यायाधीश असत्य कहते हैं। हमारा जन्म कनौज में हुआ, इसमें हमारा क्या अपराध है? हम राजासाहब के प्रति निष्ठावान हैं और अन्तिम दम तक निष्ठावान बने रहेंगे। मन्त्रियों से हमें क्या लेना-देना है?” क्रोध की अधिकता के कारण कवि कुलेश बोल नहीं पा रहे थे।

एक ही क्षण में महाराज के मन में अनेक विचारों की टकराहट होने लगी। ‘हम क्या-क्या बातें सोच रहे हैं, कैसी आकांक्षाएँ-योजनाएँ बना रहे हैं!’ यह सोच-सोचकर वे अत्यधिक विह्वल हो उठे।

“हमें इस बात का गर्व है कि हमारे सेनापति इतने महान हैं।” महाराज ने एक बार हम्बीरराव की ओर देखा और फिर उन्होंने सारे दरबार में एक बार नज़र दौड़ायी।

https://t.me/Sahityajunction

"जिन्हें हम सदा महत्त्वपूर्ण समझते आये हैं, ऐसे ज़िम्मेदार आप सब लोग इस कुसमय में यह मान-सम्मान का कैसा बखेड़ा ले बैठे हैं? हमने कुलेश को जो 'छन्दोगामात्य' पदवी दी तथा पुर्तगालियों से सन्धि करने के लिए उन्हें 'कुल-इख्तियार' बनाया, वह इस कारण कि हमने उनको योग्य समझा था। वे हिन्दुस्तानी बोली भी अच्छी तरह जानते-समझते हैं, यह भी उनकी नियुक्ति का एक कारण था। आज यदि महाकवि भूषण भी हमारे दरबार में होते, तो हम उन्हें भी 'छन्दोगामात्य' उपाधि देकर सम्मानित करते।"

मन्त्री अपने-अपने स्तम्भों के निकट सिर झुकाये मौन खड़े हैं, यह देखकर महाराज का हृदय मथित हो उठा। कटार के समान तीक्ष्ण दृष्टि से कुलेश को देखते हुए महाराज कहने लगे, "कुलेश, यह तुम्हारी भूल है, जो तुम यह कहते हो कि मन्त्रियों से हमें क्या लेना-देना। सेनापति का कहना सर्वथा उचित है। मान-अपमान के भूत को यहीं गाड़ देना ठीक होगा। हम अभी अपने आबासाहब का वह रूप नहीं भूले हैं कि जब उन्होंने ग़रीब रामजी पाँगेरे की फूस के छप्परवाली झोंपड़ी में बैठकर बड़े प्रेम से उस ग़रीब की दी हुई प्याज-रोटी खायी थी। आप लोग भी उनके उस रूप को भुलाइए नहीं। इस प्रकार आपसी मतभेद की घटनाएँ यदि फिर हमने सुनीं, तो छोटा-बड़ा हो या अपना-पराया हो, दण्ड का भागी होगा।" महाराज की नासिका के अग्रभाग पर क्रोधवश ललाई छा गयी थी। उत्तेजनावश वे स्वयं ही खड़े हो गये। सारा दरबार इस समय उनकी ओर एकटक देख रहा था। फिर एक निराले भाव से उनकी मुखमुद्रा चमक उठी। तलवार की धार के समान तीक्ष्ण शब्द उनके मुख से प्रकट होने लगे, "आदिलशाही राज्य ढह चुका है, इस बात का भय अनुभव करने के लिए अथवा इसकी चिन्ता करने का भी हमें अवकाश नहीं है। यहाँ एकत्रित विशिष्ट जनों को हम कठोर शब्दों में अन्तिम चेतावनी दे रहे हैं, हम प्राण तक न्योछावर करके आबासाहब द्वारा स्थापित राज्य की रक्षा करने के लिए सर्वथा कृतप्रतिज्ञ हैं। सब विवेकपूर्वक हमारा साथ दें। अब मान-अपमान अथवा छोटेपन और बड़प्पन के आपसी बखेड़े दूर करके सब लोग केवल इसी विषय का विचार करें कि इस कठिन अवसर का सामना किस प्रकार किया जाय।"

इस गुत्थी को सुलझाते हुए आख़िर हम्बीरराव ही कहने लगे, "अब हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर गोलकुण्डा की रक्षा करनी चाहिए। राज्य की पूर्व दिशा की सीमा पर जो अपनी छावनियाँ या क़िले हैं, उन्हें सदैव सावधान रहना पड़ेगा। हमें अपने अधिक से अधिक घुड़सवार गोलकुण्डे के चारों ओर चक्कर लगाते हुए या छापे मारते हुए ही रखने होंगे।"

"अब औरंगज़ेब के पास केवल मुग़ल फ़ौजें ही नहीं हैं, वह आदिलशाही फ़ौजों को भी साथ लेकर ही अगली चाल चलेगा।" म्हलोजी बाबा पहले आदिलशाही राज्य की सेवा करते थे। उन्हें वहाँ के सरदारों के सामर्थ्य की पर्याप्त जानकारी थी। इसीलिए उन्होंने ऐसा कहा। अब सभा में वास्तविक रूप में मन्त्रणा आरम्भ हो गयी थी।

"बीजापुर का राजा तो बालक था, गोलकुण्डा का हसनशाह उत्साही युवक है। उसका कुतुबशाही राज्य औरंगज़ेब से हार नहीं मानेगा।" निलोपन्त ने सुझाव रखा।

"पेशवा, मुग़ल सेनाएँ कुतुबशाही राज्य की ओर ही बढ़ेंगी, ऐसा अनुमान मात्र है। सम्भव है कि ऐसा न हो। यह भी सम्भव है कि औरंगज़ेब शहज़ादे के बहाने हमारे राज्य पर ही टूट पड़े।" प्रह्लादपन्त भी हम्बीरराव की इस बात से सहमत थे कि शहज़ादा अकबर से चल रही सन्धि-

https://t.me/Sahityajunction

वार्ता अनुचित है।

इसी प्रकार पर्याप्त समय तक अनुकूल-प्रतिकूल मत प्रकट किये गये। इस मन्त्रणा-सभा द्वारा एक बात स्पष्ट हो गयी थी कि सभी के मतानुसार आदिलशाही राज्य का पतन दक्षिण के सभी मोर्चों के लिए एक प्रबल आघात था। यह भी सिद्ध हो गया कि अष्टप्रधान मण्डल और कुलेश के बीच मनमुटाव है। यह भी स्पष्ट हो गया कि हम्बीरराव तथा अनेक सरदारों और मन्त्रियों के मतानुसार शहज़ादा अकबर संकट का कारण बन सकता है।

रामचन्द्रपन्त कोंकण प्रदेश में उलझे हुए थे, इस कारण महाराज ने उनका 'सुरनीस' पद अथवा कार्यालय सचिव का उत्तरदायित्व शंकराजी नारायण को दे दिया था। महाराज को सन्देह था कि कहीं इस परिवर्तन के कारण रामचन्द्रपन्त रुष्ट तो नहीं हो गये। अतः महाराज ने उनसे पूछा, "हमने तुम्हारे स्थान पर कार्यालय सचिव का कामकाज चलाने के लिए शंकराजी को सुरनीस बना दिया है। कहीं तुम इस कारण नाराज़ तो नहीं हो गये हो?"

"जी नहीं। हम तनिक भी रुष्ट नहीं हैं। कोंकण में मच रहे विद्रोह को दबाना भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। इसी कारण तो आपने हमें वह कार्य सौंपा है। परन्तु वह कर्तव्य निभाते समय कई बार हृदय को बहुत कष्ट होता है। हमारी जिह्वा भी उन सत्य बातों को कहने में सकुचाती है।"

"क्या मतलब? रामचन्द्रपन्त, जो भी बात हो, स्पष्ट कहो।"

"महाराज, हमारे गुप्तचरों ने कुडाल के खेम सावन्त के नाम भेजा गया एक ख़लीता उस वाहक घुड़सवार के साथ क़ैद कर लिया है।"

"किसने भेजा है वह ख़लीता?"

"जी...जी..." रामचन्द्रपन्त ने अपने कमरबन्द में लिपटा हुआ वह ख़लीता तो निकाल लिया, परन्तु वे भेजनेवाले का नाम ज़ुबान से नहीं निकाल सके।

महाराज ने वह लिपटा काग़ज़ उनके हाथ से खींच लिया और ख़लीता पढ़ने लगे। परन्तु ज्यों-ज्यों वे ख़लीते की एक-एक पंक्ति पढ़ते जा रहे थे, उनका मुख तमतमाने लगा और माथे पर पसीना झलक आया।

पत्र-लेखक थे, आबासाहब के दामाद और सम्भाजी के बहनोई फलटण के निवासी महादजी नाईक निम्बालकर। उन्होंने पत्र लिखा था, कुडाल के खेम सावन्त के नाम। आदिलशाही राज्य के पतन का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा था : 'दिल्लीश्वर के एक ही धक्के से आदिलशाही यों ढह गयी जैसे मिट्टी का ढूह। सम्भाजी की भी यही दशा होगी। भागानगर की मुहिम पूरी होने के बाद दिल्लीश्वर औरंगज़ेब सम्भाजी की भी ख़बर लेंगे। हम स्वयं तुम्हारी सहायता के लिए दस हज़ार घुड़सवार लेकर आएँगे। रायरी तक तुम्हारे लिए कड़ी फ़ौजी व्यवस्था की जाएगी।'

महाराज के हाथ में पकड़ा हुआ ख़लीता थरथरा रहा था। क्रोध से महाराज के नथुने फैल गये थे। पन्त के हाथ में वह ख़लीता देते हुए उनके मुख से शब्द निकले, "हरामख़ोर कहीं के! नीच, कपटी!"

https://t.me/Sahityajunction

रामचन्द्रपन्त अपना कर्तव्य समझकर एक दूसरा समाचार बताने लगे, “इसी आशय का एक ख़लीता मुग़ल-सरदार शेख़ मुहम्मद बख़्शी ने लिखा है। उसने खेम सावन्त से...”

महाराज की इच्छा होती थी कि दोनों हथेलियों से कान बन्द कर लें। वे मौन रहकर महादरवाज़े से दशहरा-मैदान की ओर चल दिये। रामचन्द्रपन्त, चांगोजी काटकर, खण्डोजी, रायाजी, अन्तोजी उनके पीछे-पीछे जा रहे थे।

परन्तु ज्यों ही उन्होंने देखा कि मोरेश्वर पण्डितराव तथा निलोपन्त महादरवाज़े की ओर लपकते हुए आ रहे हैं, वे वहीं रुक गये।

मोरेश्वर ने भगवी कफ़नी पहने हुए एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा, “ये अभी-अभी रायगढ़ आये हैं। पाटगाँव से आये हैं। ये कहते हैं कि...” पण्डितराव पेशवा की ओर देखने लगे और उन्होंने बात अधूरी ही छोड़ दी। अपने सूखते हुए होठों पर जीभ फिराकर मोरेश्वर चुप हो गये।

“ये पाटगाँव के मठ के एक शिष्य हैं।” निलोपन्त भी रुक गये। बात पूरी वे भी नहीं कह सके।

“पेशवा, भला तुमने इन्हें यहाँ तक आने का कष्ट क्यों दिया? ऊँचा गढ़ चढ़ने के कारण ये पहले ही थक गये होंगे। हम ही सभागृह में आने के बाद इनसे मिल लेते। बोलो बाबाजी, हमारे मौनी बाबा कैसे हैं? उनके दर्शन किये हमें काफी दिन हो गये। कहीं वे इस कारण हमसे रुष्ट तो नहीं हैं?” महाराज ने शिष्य से पूछा।

महाराज की बात सुनते समय शिष्य की आँखों से आँसू टपक-टपककर कफ़नी को गीला कर रहे थे। रोते-सिसकते हुए वह कहने लगा, “बाबा ने इहलोक की लीला समाप्त कर दी है, महाराऽऽज। पाटगाँव में उनका महानिर्वाण हो गया।”

“हे जगदम्बे।” कहते हुए महाराज की उँगलियाँ छाती की माला से जा लगीं और आँखें बन्द हो गयीं। उनकी बन्द आँखों में उस निस्पृह वैरागी मौनी बाबा के सात्त्विक मुखमण्डल की अनेक मुद्राएँ दिखलाई दे रही थीं।

बीजापुर का पतन होते ही मुग़ल फ़ौजें निकटवर्ती नगर पण्ढरपुर सांगोला, मंगलवेढ़ा तथा आस-पास के प्रदेश में फैल गयीं। बीजापुर के सभी सरदार और सिपहसालार सर्जा ख़ाँ भी औरंगज़ेब से जा मिले।

औरंगज़ेब ने अपने कई पठान सरदारों को बीजापुर के चारों ओर नियुक्त किया और नगर को सशस्त्र सैनिकों के हवाले करके औरंगज़ेब वहाँ से निकल पड़ा। अब वह बुरहानपुर की ओर जा रहा था।

कर्नाटक प्रान्त से हरजीराजा के भेजे हुए हरकारे निरन्तर आ रहे थे। महाराज ने अनुमान किया था कि औरंगज़ेब अब कर्नाटक के मराठा-सरदारों को प्रलोभन देकर भगा ले जाने का प्रयत्न करेगा और कर्नाटक की सीमाओं पर अपने ख़ान सरदारों को तैनात करेगा। हुआ भी ठीक यही।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज ने हरजी की सहायता के लिए केसो त्रिमल तथा सन्ताजी घोरपड़े को बुला भेजा। महाराज उनसे कहने लगे, “केसोपन्त, तुम अब सन्ताजी के साथ कर्नाटक जाओ और अपनी सेनासहित हरजी की सहायता करो। रघुनाथपन्त की मृत्यु के बाद से अकेले हरजी ही इतने विशाल कर्नाटक प्रान्त की रक्षा में लगे हुए हैं। जैतजी काटकर और काकडे ही उनके सहायक हैं। तुम हरजी के लिए रघुनाथपन्त के समान आदरणीय हो। तुम और हरजी मिलकर कर्नाटक प्रान्त की रक्षा करो।” महाराज ने केसो त्रिमल और सन्ताजी घोरपड़े को सम्मान-वस्त्र प्रदान किये और उन्हें हरजी की सहायता के लिए विदा किया।

“निलोपन्त, तुम्हारे मुख पर वेदना क्यों छायी हुई है? स्वास्थ्य तो ठीक है न तुम्हारा?” महाराज बात कहते-कहते राज-कार्यालय में पेशवा के सामने ही आ खड़े हुए।

निलोपन्त ने चौंककर ऊपर देखा। उनकी आँखें भर आयी थीं। वे उत्तरीय से आँखों की कोर पोंछने लगे।

“पेशवाऽऽ, क्या बात है?” पूछते हुए महाराज जैसे चीख़ उठे थे। आसपास खड़े हुए प्रहरी भी अब चौंककर देखने लगे थे।

“क्या कहें, हम स्वामी। हम पेशवा हैं, पर अब किसी को मुँह कैसे दिखाएँ हम? वह घमण्डी, मुँहज़ोर हबशी हमारे एक नज़दीकी सम्बन्धी को क़ैद करके और ग़ुलाम बनाकर भगा ले गया है। जब से हमने सुना है, एक पल भी सो नहीं सके हैं हम।” निलोपन्त का गला रुँध गया था।

“पण्डित राव, चेऊल के सूबेदार रायाजी सदर प्रभु की ओर एक हरकारा भेजो।” धर्म-विभाग के प्रधान मोरेश्वर पण्डितराव महाराज का आदेश ध्यान लगाकर सुन रहे थे। मोरेश्वर आश्चर्यचकित हो रहे थे कि इतनी व्यस्तता के होते हुए भी महाराज का ध्यान इतने छोटे से मामले की ओर कैसे गया।

“हरकारा किस हेतु से भेजा जाय, स्वामी?” मोरेश्वर ने पूछा।

“चेऊल की एक निस्सन्तान स्त्री ने यह इच्छा प्रकट की थी कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी भूमि और सारी सम्पत्ति चिंचवड में स्थित मोरया बाबा के मठ को दान दे दी जाय। उस स्त्री का अब देहान्त हो चुका है। उस महिला ने मृत्यु से पूर्व अपनी यह इच्छा प्रकट की थी। एक सन्देशवाहक ने उसकी यह इच्छा हमें आकर बतायी है।” महाराज उस स्त्री का नाम, उसकी भूमि का विवरण आदि मोरेश्वर को बता रहे थे कि अकस्मात् कहते-कहते वे रुक गये। उनके हृदय में उठनेवाले एक विचार ने उन्हें व्याकुल बना दिया। एक महिला, न जाने कौन थी, न जाने कहाँ की निवासिनी थी! उसे न हमने कभी देखा था, न उसने कभी हमें देखा होगा। परन्तु उस महिला ने अपने समस्त अधिकार मोरया बाबा के धार्मिक स्थान के प्रति अर्पित कर दिये—और दूसरी ओर शिर्के परिवार के लोग हैं, अर्जुन जी और अचलोजी जैसे लोग भी हैं, जो औरंगज़ेब से ‘मनसब’ पाने के लिए ‘हाँ जी’, ‘हाँ जी’ करते फिर रहे हैं।

भागानगर से कुतुबशाह का भेजा हुआ राजदूत रायगढ़ आया हुआ था। पेशवा उसे साथ लेकर महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए। उस राजदूत के साथ चार-पाँच ख़िदमतगार भी थे, जो वस्त्रों से ढँके हुए तबक़ लेकर आये थे।

https://t.me/Sahityajunction

“कुतुबशाह के राजदूत आपकी सेवा में उपस्थित हैं महाराज।” निलोपन्त ने सिंहासन पर बैठे हुए महाराज से उस राजदूत का परिचय कराया।

राजदूत कोर्निश करके हज़रत तानाशाह का सन्देश कहने लगा, “हमारे हज़रत ने एक लाख की पेशकश राजासाहब की ख़िदमत में भेजी है।” राजदूत ने अपने ख़िदमतगारों की ओर देखा। ख़िदमतगार वे तबक़ राजा साहब के सामने ले आये, ताकि महाराज उनका स्पर्श करें। महाराज ने एक ऐसी बात कही कि उसे सुनकर राजदूत हक्का-बक्का रह गया। महाराज निलोपन्त से कहने लगे, “निलोपन्त, कुतुबशाह की यह निराली रीत है! उनके मन्त्री अक्कण्णा और मादण्णा रात-दिन इस उद्देश्य के लिए प्रयत्नशील रहते थे कि भागानगर और रायगढ़ के राजनीतिक सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहें, परन्तु बीच बाज़ार उनका ख़ून करा दिया गया। बेचारों का अपराध यह था कि दिल्ली की सल्तनत उन्हें ‘क़ाफ़िर’ जानकर उनसे नाराज़ थी। अब जब कि औरंगज़ेब गोलकुण्डा पर चढ़ दौड़ा है, तो वही कुतुबशाह हमें एक लाख पेशकश नज़र कर रहा है। इस आशा से कि हम संकटकाल में उसका समर्थन करें।”

महाराज की इस स्पष्ट बात का राजदूत के पास कोई उत्तर नहीं था। वह निरुत्तर होकर निलोपन्त की ओर देखने लगा, ताकि वे ही कुछ बोलकर उसे आफ़त से छुटकारा दिलाएँ।

“स्वामी जो कह रहे हैं, वह उचित ही है। कुतुबशाही दरबार को शीघ्र ही पता लग जाएगा कि अक्कण्णा और मादण्णा कितने सुयोग्य मन्त्री थे। हमारा मत है कि कुतुबशाही दरबार के समान टेढ़ी-मेढ़ी राजनीति हमारे राज्य के लिए अनुकूल सिद्ध नहीं होगी।” निलोपन्त ने अनुभव पर आधारित अपना मत प्रकट किया।

“इसी कारण हम पहले से ही गोलकुण्डा के सहायक बने रहे हैं। कुतुबशाही के विषय में आबासाहब की जो नीति रही है, हमारी भी वही नीति रहेगी।” पेशकश के तबक़ों को देखते हुए महाराज ने उन्हें हाथ लगाया। कुतुबशाही राजदूत ने सन्तोष से साँस भरी। तानाशाह को वापसी नज़राना देते हुए महाराज बोले, “अपने हज़रत से कहना कि हम कुतुबशाही की पीठ पर हैं। कहना कि जो भी मुसीबत आयी है, उसका सामना वे पूरी दृढ़ता से करें।” राजदूत को यथोचित सम्मान देकर विदा किया गया।

महाराज इसी विचार में लीन थे कि गोलकुण्डा की मदद के लिए किसे भेजा जाय, इसी समय क़िलेदार चांगोजी काटकर वहाँ आया। बटी हुई रेशमी डोरी में बँधी चाँदी का एक तावीज़ उसने गले में डाला हुआ था। बोलते समय वह तावीज़ झूलने लगता था। चांगोजी सूचना देने लगा, “गोवा से सुन्दरजी बाजी आये हैं।”

महाराज ने हाथ के संकेत द्वारा अनुमति दी। चांगोजी सुन्दरजी को साथ लेकर आया। महाराज समझ बैठे थे कि अब कुछ ऐसे ही अशुभ समाचार सुनने को मिलेंगे कि ‘पुर्तगालियों ने गाँव लूट लिये, बलात् धर्मपरिवर्तन कर दिया, कोंकण के अमुक-अमुक जागीरदार उनसे जा मिले’। उन्होंने अपने मन को ऐसी अशुभवार्ता सुनने के लिए तैयार कर लिया था। फिर भी मुख पर स्वाभाविक कान्ति का भाव लाते हुए उन्होंने अत्यन्त आत्मीयता से सुन्दरजी से कुशल-क्षेम के समाचार पूछे। कुशलता की बातें कहकर सुन्दरजी कहने लगे, “महाराज, हम एक विशेष बात कहने के लिए इतनी दूर से आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।”

“कहो।” महाराज समाचार के विषय में कुछ भी अनुमान नहीं कर पा रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

“इस समय विशेष राजकीय यात्रियों को लेकर जहाज़ पनजी के बन्दरगाह से जा रहे होंगे।”

“कौन से राजकीय यात्री?”

“पुर्तगाली वायसराय कोंद-द-आलवोर और उसके परिवार के लोग।”

“क्या मतलब?” महाराज समझ नहीं सके थे।

“स्वामी ने पुर्तगालियों के गोवा प्रदेश की जो दुर्गति बनायी है, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त पुर्तगाल के बड़े दरबार तक पहुँच गया है। उस बड़े दरबार ने एक ख़लीता भेजा है, जिसमें वायसराय को ख़ूब डाँट-फटकार सुनायी गयी है। उससे जवाब-तलब किया गया है कि उसने मराठों के राज्य पर अनावश्यक रूप से हमला क्यों किया?”

सुन्दरजी बड़े उत्साह से सुना रहे थे और महाराज की आँखों के आगे दिखाई दे रहा था—सूर्यलोक वासी वीर कृष्णाजी कंक—कम्बल पर सुलाया हुआ, ख़ून से लथपथ वह शूरवीर नवयुवक।

“बड़े दरबार ने वायसराय को पुर्तगाल वापस बुला लिया है। उसके स्थान पर गोवा में दोम रोद्रिगो द कोस्त नामक नये वायसराय की नियुक्ति की गयी है।”

महाराज सम्भाजी की दहकती आँखों के आगे नीले-सफ़ेद पानी वाली समुद्री खाड़ी नाच रही थी। वे सुन्दरजी से कहने लगे, “सुन्दरजी, कई दिन हो गये, एक भी समाचार हमें ऐसा नहीं मिला कि जिसे सुनकर तसल्ली मिले। चलो सुन्दरजी, जगदीश्वर के दर्शन कर आएँ।” महाराज सुन्दरजी और चांगोजी के साथ जगदीश्वर के मन्दिर की ओर जाने लगे।

ठीक इसी समय मुग़ल-सरदार नेकनाम ख़ाँ ने मराठों के बागलाण प्रदेश के साल्हेरी क़िले को अपने जाल में फँसा लिया था, परन्तु लड़कर नहीं, फूट और विद्रोह का जाल फैलाकर फँसाया था उसने। साल्हेर और मुल्हेर ये दो दुर्ग सूरत शहर के निकट थे और राजकीय कोष भरने के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक थे। इसी कारण स्वर्गवासी छत्रपति महाराज ने दुर्गों की विशेष रचना की थी। परन्तु साल्हेर दुर्ग आख़िर औरंगज़ेब के शिकंजे में आ ही गया।

उस वर्ष दीवाली आयी और चली भी गयी, पर पुणे, मिरज, सांगली, बेलगाँव, हुबली आदि प्रान्तों में दीवाली के दीये नहीं जले। पिछली वर्षाऋतु में वर्षा ही नहीं हुई थी और चारों ओर सूखा पड़ा था। महाराज इस अकाल और सूखे के भयानक समाचार प्रतिदिन सुनते थे और उनका दिल फटने लगता था। इस समय दोनों ही बातें आवश्यक हो गयी थीं—सेना लड़ती रहे और किसान भूखा न मरे। इस दृष्टि से स्वयं महाराज ही इस व्यवस्था की देखभाल कर रहे थे। रायगढ़ के धान्य-भण्डारों में से अनाज के बोरे भर-भरकर दूर-दूर प्रदेशों में भेजे जा रहे थे। पन्हाला दुर्ग में गंगा-जमुना नामक जो दो धान्यागार थे, उनसे सब ओर अनाज भेजने के काम की देखभाल कुलेश और म्हलोजीबाबा कर रहे थे। पन्हाला से अनाज की बोरियाँ भारवाहक बैलों की पीठ पर लादकर बेलगाँव की ओर भेजी जा रही थीं।

पिछले तीन-चार साल लड़ाई-भिड़न्त में बीते थे। हर क़िला थका-माँदा हो चुका था। आदिलशाही राज ने हथियार डाल दिये थे और जागीरदार जगह-जगह पर सिर उठा रहे थे। शायद यह सब कम था और रही-सही कमी पूरा करने के लिए यह अकाल आ पड़ा था। पिछले तीन-चार वर्षों की सारी घटनाएँ महाराज की आँखों के आगे से सरकती जा रही थीं।

https://t.me/Sahityajunction

दक्खिन में आने की औरंगज़ेब की यह दूसरी बारी थी। वह पहली बार दक्खिन देश में आया था दक्खिन का सूबेदार बनकर और लौटा था बाग़ी शहज़ादा बनकर। अब दूसरी बार दक्खिन आया था, तो दिल्ली का तख़्तनशीं बादशाह बनकर और उसका इरादा था पूरे दक्खिन को निगलने का। उसके शक्तिशाली रेले के आगे आदिलशाही राज तो डगमगा चुका ही था। अब उसने दुमुँही कार्यवाही शुरू की थी। एक ओर गोलकुण्डा को ढहाना था, दूसरी ओर मराठों के कर्नाटक प्रान्त का जितना भी इलाक़ा हाथ लग जाए, पा लेना था। मराठा राज्य को शिथिल बनाने के लिए उसका 'फूट' नामक अस्त्र विशेष प्रभावशाली सिद्ध हो रहा था। प्रलोभन देकर लोग भगा ले जाना भी दूसरा अस्त्र था।

औरंगज़ेब की जो फ़ौजें कर्नाटक में घुस गयी थीं, उन्हें हरजी के दो शूरवीर, गोपाल दादाजी और विट्ठल पिलाजी, थोड़ा भी आगे बढ़ने नहीं देते थे। रोज़ ज़ोरदार मुठभेड़ें हो रही थीं।

सब प्रकार के समाचारों को सुन-सुनकर महाराज मन में कुछ-न-कुछ निश्चय करते जाते थे और राजकार्यालय में खण्डोजी को ख़लीते लिखवाते जा रहे थे। परन्तु विचारों की उलझन कुछ ऐसी अधिक थी कि पत्रों का विषय-आशय निरन्तर प्रवाहमय रूप से नहीं आ पाता था। इतने में गिर्जोजी ने आकर सूचना दी, "पेशवा आ रहे हैं।"

थोड़ी ही देर में निलोपन्त अपने राज्य कर्मचारी के साथ वहाँ पहुँचे।

"जैतापुर की लड़ाई में सिद्दी कासिम बाल-बाल बच गया। वह तो उसका भाग्य ही अनुकूल था, अन्यथा वह बच नहीं पाता।" पेशवा उत्साहपूर्वक कह रहे थे।

"घटना का पूर्ण वृत्तान्त क्या है पेशवा?" महाराज को इस समय जैतापुर की समुद्री खाड़ी दिखलाई दे रही थी।

पेशवा ने विवरण सुनाया। कुछ देर तक शान्ति फैली रही।

"जेधे पुनः आपकी सेवा में उपस्थित होना चाहते हैं, महाराज। उन्होंने पुरन्दर दुर्ग के क़िलेदार बाजी घोलप की मारफ़त अपनी यह इच्छा प्रकट की है।" पेशवा ने सर्जेराव जाधव का विषय प्रस्तुत किया।

"यदि पुनः आना चाहते हैं, तो रुके हुए क्यों हैं? आते क्यों नहीं हैं?" महाराज की मुखमुद्रा खीज से भर उठी।

"जेधे अभयपत्र माँगते हैं महाराज।"

"अभयपत्र? कैसा अभयपत्र?" महाराज खिन्न थे, फिर भी उन्हें हँसी आ गयी।

"पन्त, ये जेधे जब औरंगज़ेब की चाकरी करने गये थे, तो क्या अभयपत्र लेकर ही गये थे? कान्होजी के वंशज ही आज हमसे यह माँग कर रहे हैं, यह विचित्र बात है।"

पेशवा को इस बात का कोई उत्तर नहीं सूझा।

"पेशवा, उन्होंने यदि बुरे दिनों में सन्देह और दुविधा से काम लिया हो, तो हमें ऐसी दुविधा में नहीं पड़ना चाहिए। जेधे से यदि भूल-चूक हुई है, वे चाहे शत्रु से जा मिले हों, फिर भी वे इस राज्य के पुराने सेवक हैं। पेशवा, अभयपत्र लिखकर उनके पास भिजवा दो। उन्हें लिखो कि 'जो हुआ सो हुआ। तुम फिर से हमारी सेवा में आकर कर्तव्य का पालन करो। तुम्हारे कुशल-क्षेम और उन्नति का हम अवश्य ध्यान रखेंगे'।" अभयपत्र लिखवाते समय छत्रपति के मन में

https://t.me/Sahityajunction

समर्थगुरु की वाणी गूँज रही थी—'बहुजन को तुम करो संगठित। तभी फलो-फूलोगे राजा। पाओगे पदवी अति महती।'

अभयपत्र के भावों को सोचते-विचारते हुए निलोपन्त जाने ही लगे थे कि महाराज ने उन्हें रोक लिया। फिर उन्होंने पेशवा को एक ऐसा आदेश दिया, जो बहुत देर से मन को व्याकुल बनाये हुए था, "पन्त, सेनापति हम्बीरराव तथा अन्य जितने भी बड़े-बड़े सरदार हैं, उन सबको मन्त्रणा-सभा के लिए आमन्त्रित करो। तुरन्त हरकारे भेजो।" निलोपन्त वहाँ से चले गये। परन्तु मन में यही उलझन पड़ी थी कि महाराज यह मन्त्रणा-सभा क्यों आयोजित कर रहे हैं। प्रह्लादपन्त के मुख से हलकी-सी उसाँस निकल आयी। वे मन ही मन ख़ुश थे कि इस बार उन्हें मुम्बई में राजदूत बनाकर नहीं भेजा गया।

"हमारा विचार है कि उस दरबार के कामकाज को त्रिम्बक गोपाल समुचित रीति से निभा सकेंगे। वहाँ के दुभाषिये से उनकी घनिष्ठ मित्रता है और फिर वे हमारे साथ एक-दो बार अँग्रेज़ों के दरबार में हो आये हैं।" इसके बाद त्रिम्बक गोपाल के विषय में उन दोनों में बहुत देर तक सूक्ष्मतापूर्वक चर्चा होती रही।

"पन्त, त्रिम्बकजी को राजदूत का परिचयपत्र देने की व्यवस्था करो।" महाराज ने उस विषय में निर्णय कर लिया था।

प्रह्लादपन्त चले गये। महाराज ने सोचा कि शस्त्रागार का निरीक्षण किया जाय। इस दृष्टि से उचित वेशभूषा धारण करने के लिए वे वस्त्रागार में आये। सेवक उन्हें पहनावा पहनाने लगे। एक सेवक ने उनके सिर पर राजटोप रखा। महाराज ने जब दर्पण में देखा, तो आज एक बात की ओर उनका ध्यान गया कि उनका राजटोप आबासाहब के राजटोप से कुछ भिन्न है। आबासाहब का टोप खड़ी-ऊँची बनावट का था, जब कि महाराज का राजटोप थोड़ा दबा हुआ-सा और कुछ मुग़लिया ढगं का है।

"ज़रा आबासाहब का राजटोप संग्रहालय से बाहर निकालो। इस टोप का दर्शन करने को जी चाहता है।" महाराज ने वस्त्रागार के प्रबन्धक से कहा।

"जी," उसने बड़े महाराज का तबक़ में रखा हुआ राजटोप धीरे से सन्दूक से बाहर निकाला और महाराज के सामने ला रखा। एक क्षण के लिए सम्भाजी को आभास हुआ, मानो शरीरधारी आबासाहब उस राजटोप के नीचे आ खड़े हुए हैं। उस समय राजटोप का स्पर्श करके महाराज ने अपने हाथ माथे से लगाये।

छत्रपति इस ध्यान में इतने तन्मय हो गये थे कि कोई उन्हें 'स्वाऽमी, स्वाऽमी' कहकर बुला रहा है, इस ओर भी उनका ध्यान नहीं गया। फिर जब अकस्मात् ध्यान गया, तो एकदम चौंककर उन्होंने मुड़कर देखा। सामने कवि कुलेश और राजापुर के सूबेदार देवाजी विट्ठल उन्हें मुजरा कर रहे थे।

"तुम यहाँ?" कुलेश की ओर आश्चर्य से देखते हुए महाराज ने कहा। अब कुलेश के भी ध्यान में यह बात आयी कि वे जल्दबाज़ी में एकदम सीधे महाराज के वस्त्रागार में ही चले आये हैं। यह व्यवहार प्रचलित राजकीय प्रथा के विरुद्ध था। अतः वे विनम्रता से बोले, "क्षमा करें स्वामी। बात ही कुछ ऐसी थी, जो हमें यहाँ आना पड़ा।"

https://t.me/Sahityajunction

“क्या बात है?” महाराज ने देवाजी विट्ठल की ओर देखते हुए पूछा।

“जी, जो कुछ हमने देखा-जाना है, उसे महाराज से कहने आये, हैं हम। अन्यथा

यदि हम यह जानकारी आपको तुरन्त न देते, तो हमसे अपराध हुआ होता।”

“कहो देवाजी, क्या समाचार लाये हो?” महाराज के माथे पर बल की तीन रेखाएँ उभर आयी थीं। देवाजी ने एक बार कुलेश की ओर देखा। कुलेश ने नेत्रों के संकेत से ही उन्हें समाचार कहने का धीरज बँधाया।

“राजापुर की खाड़ी में एक जहाज़ में सवार होकर शहज़ादा अकबर... शहज़ादा अकबर ईरान चला गया, महाराज।” देवाजी ने अपने आने का उद्देश्य प्रकट कर दिया।

“जियाउद्दीन मुहम्मद शुजाई और पचास आदमी भी उसके साथ हैं।” कुलेश ने अधिक जानकारी दी।

अकबर से हुई पहली मुलाकात से लेकर बाद की कितनी ही घटनाएँ महाराज के मन में एक साथ घूम गयीं।

‘हमारा दिया मोती का कण्ठा एक नर्तकी को दे डालनेवाला अकबर, हमारे और पुर्तगाली दरबार के बीच मध्यस्थ बननेवाला अकबर, अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा उठानेवाला अकबर... आज बिना कुछ बोले, बिना मिले चल दिया ईरान को!

‘अकबर! जाने कैसा लेना-देना था उसका हमसे? उससे हमें क्या लाभ हुआ? हमने उसे क्यों आश्रय दिया? यही सोचकर न कि इसी बहाने राजनीति के दाँव-पेंच चलाये जा सकते हैं! परन्तु औरंगज़ेब को यही एक बहाना मिल गया हमारे राज्य पर हमला करने का। हम यदि अकबर को आश्रय न देते और उसे अपने राज्य से कहीं दूर खदेड़ देते, तब क्या होता? तब क्या औरंगज़ेब आबासाहब के और ‘श्री’ के इस राज्य का पीछा छोड़ देता? कभी नहीं! वह हमला करता और अवश्य करता।’ सम्भाजी के मन में विचारों का ज्वार उठ रहा था। उन्होंने शान्तिपूर्वक देवाजी से पूछा, “सूबेदार, क्या दुर्गादास भी उसके साथ गये हैं?”

“जी नहीं। दुर्गादास अपने आदमियों के साथ रतलाम की ओर चले गये हैं।” सन्तोष-भरी एक उसाँस महाराज के मुख से निकल गयी। दुर्गादास के बारे में महाराज के मन में अत्यन्त आदर था। ‘यदि दुर्गादास भी बहकावे में आकर अकबर के साथ ईरान चले जाते तो!’ महाराज सोचने लगे।

“कविजी, तुम्हारा क्या मत है? क्या ईरान का शाह अब्बास शहज़ादे की मदद करेगा? क्या दोनों मिलकर दिल्ली पर चढ़ाई करेंगे?” महाराज ने कुलेश से पूछा।

“असम्भव है, स्वामी। अब तो ईरान में शहज़ादे की क़ब्र ही बनेगी और उस क़ब्र पर सूर-ए-फ़ातिहा पढ़ने के लिए शाही ख़ानदान का कोई भी नहीं होगा वहाँ।”

यह कथन यद्यपि कटु था, परन्तु था सत्य। महाराज भी इसे सुनकर गहरी सोच में डूब गये।

इसी समय केसो त्रिमल और सन्ताजी घोरपड़े बारह हज़ार सैनिकों सहित जिंजी नगर के उत्तरी सिंहद्वार से नगर में प्रविष्ट हो रहे थे। हरजीराजा के भेजे हुए जैतजी काटकर और गोपाल दादाजी उनकी अगवानी के लिए वहाँ उपस्थित थे और वे सब गले मिलकर एक-दूसरे के प्रति स्नेहभाव प्रकट कर रहे थे। नौबत और नगाड़ों का दमदमा गूँज रहा था। अब कर्नाटक प्रान्त

https://t.me/Sahityajunction

हरजीराजा और केसो त्रिमल की सम्मिलित सेना के साथ औरंगज़ेब से जूझने जा रहा था।

रायगढ़ के मन्त्रणा-गृह में एक सुसज्जित आसन पर महाराज बैठे थे। इस बैठक में कुलेश, रूपाजी, खण्डोजी बल्लाल, निलोपन्त, प्रह्लादपन्त आदि उपस्थित थे। कर्नाटक प्रान्त से विशेष रूप से आमन्त्रित गोपाल पण्डित और धनाजी जाधव भी इस सभा में उपस्थित थे।

निलोपन्त ने मन्त्रणा-चर्चा प्रारम्भ की, "आदिलशाही राज्य का पतन हुआ। उसके सरदारों को साथ लेकर शत्रु ने अब दो ओर से कूच करने की ठानी है। एक ओर वह गोलकुण्डा में घुस रहा है और दूसरी ओर वह अपने राज्य के कर्नाटक प्रान्त में घुसना चाहता है।..."

"इसलिए अब हमने तय किया है कि स्वयं ही सेना के हित में कर्नाटक की दिशा में कूच करें।" महाराज ने चर्चा का सूत्र अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने एक बार सबकी ओर देखा।

"मैसूर के याचप्पा नायक को हमें उसके किये का फल देना है। उसने बीजापुर के हमले में औरंगज़ेब की सहायता की है और इस समय वह बीजापुर में घात लगाये बैठा है। वह कुछ भी टेढ़ा-उलटा कर सकता है। हमने हरजी की सहायता के लिए केसो त्रिमल और सन्ताजी को भेजा है। अब हम भी उनकी सहायता के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। धनाजी, रूपाजी, खण्डोजी, तुम सब हमारे साथ रहोगे। पेशवा निलोपन्त महारानी जी की राजमुद्रा से रायगढ़ और राज्य के प्रबन्ध का कामकाज किया करेंगे।" मन्त्रणा-सभा में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति राजाज्ञा को ध्यानपूर्वक सुन रहा था।

"पेशवा, हरकारा भेजकर हरजी को सूचित करो कि हम जिंजी आ रहे हैं। जो लोग इधर रहेंगे, उन्हें भी अपने-अपने स्थानों में सावधान रहना होगा। औरंगज़ेब की सेनाएँ यदि अपने राज्य में घुसने का प्रयत्न करें, तो तुम उन्हें किसी दुर्गम स्थान में जा पकड़ो और उन्हें छठी का दूध याद करा दो।"

मन्त्रणा-सभा में सम्मिलित मन्त्री एवं अधिकारियों ने सोचा था कि महाराज इस अभियान में कवि कुलेश को भी अपने साथ रखेंगे। परन्तु महाराज ने कुलेश को दूसरी ज़िम्मेदारी सौंप दी।

"कुलेश, शहज़ादे के चले जाने के कारण पुर्तगाली फिर से सिर उठा सकते हैं। तुम्हें उस मोर्चे को सँभालना होगा।"

यह मन्त्रणा पर्याप्त दीर्घकाल तक होती रही। महाराज ने सबको आवश्यक छोटी-बड़ी सूचना दी। पुनः एक बार हल्दी-रोली की चँगेरी सब के सामने घुमायी गयी। मन्त्रणा समाप्त हुई। एक प्रहरी ने मन्त्रणागृह के द्वार पर लगायी गयी शिला को भीतर से ठोका। शिला द्वार से हटा ली गयी और महाराज बाहर प्रकाश और वायु के वातावरण के बीच आ गये। इस समय वे कर्नाटक के विषय में ही विचार कर रहे थे। उन्हें क्या पता था कि ठीक इसी समय जिंजी की ख़ास हवेली में हरजीराजा और केसो त्रिमल के बीच अच्छी-खासी 'तू-तू, मैं-मैं' हो रही होगी। इस कहा-सुनी का कारण क्या था भला?

कारण यह था कि सेण्ट जॉर्ज में अँग्रेज़ों की जो कोठी थी, उस पर निगरानी करने के लिए हरजी ने गोपाल दादाजी को नियुक्त किया हुआ था। केसो त्रिमल ने अपने अधिकार का प्रयोग करके उस पद पर चिमाजी पण्डित को नियुक्त कर दिया। गोपाल दादाजी अत्यन्त कठोर और अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे, अतः वे अँग्रेज़ों के प्रिय नहीं थे। सेण्ट जॉर्ज के कोठीवालों ने केसो

https://t.me/Sahityajunction

त्रिमल को यह प्रलोभन दिखाया कि यदि गोपाल दादाजी की वे बदली कर दें, तो अँग्रेज़ केसोपन्त को इनाम देंगे। जब हरजी तक यह सारा वृत्तान्त पहुँचा, तो उन्होंने क्रोधित होकर केसो त्रिमल को खूब फटकार सुनायी। इस कारण उन दोनों के बीच अच्छी-ख़ासी अनबन हो गयी थी।

कर्नाटक-अभियान की तैयारी की दृष्टि से मोरस, कोडग, मलेय और तिगुड के नायकों की सहायता करने के सम्बन्ध में पत्र भेज दिये गये थे। मैसूर का चिक्कदेवराय हरजी के रास्ते में क़दम-क़दम पर रोड़े अटकाता था। इसीलिए महाराज ने सोचा था कि उस अभियान में चिक्कदेवराय को अच्छा-ख़ासा सबक सिखाया जाय। बीजापुर और गोलकुण्डा के शाहों ने औरंगज़ेब से डरकर मराठों के राजा को नज़राने भेजे थे। इस बात से चिक्कदेवराय उनसे नाराज़ था। वह ऐसा दिखावा करता था, मानो वह बादशाह औरंगज़ेब का अपना निजी आदमी है और इसी धुन में था कि आदिलशाही का जितना भी प्रदेश हथियाया जा सके, हथिया ले।

रायगढ़ में कर्नाटक अभियान की तैयारियाँ होते ही हरजीराजा की ओर दूत रवाना हो गये। इस अभियान में खण्डोजी, रूपाजी, धनाजी, गोपाल पण्डित आदि सरदार महाराज के साथ थे। कूच की तैयारी हो चुकी थी।

विदा होने से पहले महाराज 'श्रीसखी' से मिलने देवमन्दिर में गये। देवमन्दिर चमकदार और चिकने शीशम की लकड़ी का बना हुआ था। वहाँ पहले जगदम्बा की पूजा करके महाराज ने आबासाहब द्वारा पूजित स्फटिक निर्मित शिवलिंग को नमस्कार किया। येसूबाई वहीं मन्दिर के गर्भगृह में बालराजा के साथ खड़ी थीं। उन्होंने भगवान का चरणोदक दिया। उसका पान करके महाराज ने भुजाएँ फैलाकर बालराजा को अपनी ओर खींच लिया और पूछने लगे, "हमारे साथ जिंजी चलोगे क्या?" फिर वे स्वयं हँसते हुए बालक की पीठ थपथपाने लगे।

"बहुत दूर की यात्रा है इस बार। आप स्वास्थ्य का ध्यान रखें।" बालराजा को पुनः अपने पास लेती हुई येसूबाई कहने लगीं।

"आबासाहब भी इसी प्रकार कर्नाटक की मुहिम पर गये थे। विभिन्न स्थानों के बदलते हुए पानी के कारण उन्हें बहुत कष्ट हुआ। फिर वे जब कर्नाटक से लौटकर रायगढ़ आये, तब उन्होंने कुशावर्त सरोवर में कमर तक के पानी में खड़े होकर दान-पुण्य किया था। और... और वे विषम ज्वर से ऐसा ग्रस्त हुए थे कि कई दिन तक बिस्तर से उठ नहीं सके..."

"अभियान की और भागदौड़ की तो अब हमें आदत ही हो गयी है। हमारी चिन्ता मत करो तुम। फिर हम अगर इस बार घोड़ा पानी में घुसाना भी चाहें, तो कर्नाटक में समुद्र भी कहाँ हैं? इसलिए चिन्ता मत करो। हाँ, यहाँ के शासन-प्रबन्ध का तुम्हें अवश्य ध्यान रखना होगा। हमने पेशवा से कह दिया है कि कोई कठिनाई आ पड़े या कोई आवश्यक परिस्थिति ही आ जाय, तो तुम्हारी राजमुद्रा से राज्य का कामकाज चलाएँ। तो फिर हम जाएँ क्या?" महाराज जाने के लिए मुड़ने लगे।

"थोड़ा ठहरें।" येसूबाई ने आगे बढ़कर उन्हें तीन बार प्रणाम किया, "एक प्रार्थना है। श्रीमानजी उसे अवश्य पूरी करें।" येसूबाई ने कहा।

"हाँ, हाँ, अवश्य। श्री सखी कहें तो सही।"

"बहुत दिन से मन में यह आकांक्षा अधूरी पड़ी है। हम तो उसे पूरी नहीं कर सके हैं,

https://t.me/Sahityajunction

श्रीमानजी अवश्य पूर्ण करें उसे।" येसूबाई ने मन्दिर के गर्भगृह की ओर देखते हुए कहा।

"कहो ना, ऐसी कौन-सी अभिलाषा है, जो इतने दिन तक तुम्हें अधूरी रखनी पड़ी?"

"हमने अब तक सुन रखा है कि आबासाहब के पिताजी की समाधि कर्नाटक प्रान्त के होदेगिरि ग्राम के निकट है। कई बार यह इच्छा हुई है कि कभी श्रीमानजी के साथ उस समाधि की पूजा करें। भूलिएगा नहीं।"

महाराज येसूबाई की ओर टक लगाकर देखने लगे। यही इच्छा, बिलकुल यही अभिलाषा उनके मन में भी थी और वे इस बारे में पहले से ही निश्चय कर चुके थे। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि अपने दादा शहाजी महाराज के रूप को याद करें, पर यह सम्भव नहीं हुआ।

"प्रार्थना नहीं, हम तो इसे तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। हम अवश्य स्मरण रखेंगे। वास्तव में हम तुम्हें भी साथ ले चलते, परन्तु..."

महाराज ने आगे कुछ नहीं कहा। वे देवमन्दिर के बाहर चले गये। वहाँ से वे राजाराम की हवेली में गये और उनसे कुशल-क्षेम की बातें करके उन्होंने येसाजी दाभाडे को आवश्यक सूचनाएँ दीं।

तीस हज़ार घुड़सवार और पैदल सिपाहियों की यह सेना महाड़ के पहाड़ी घाट से होती हुई चल पड़ी। सेना ने पहला पड़ाव पन्हाला में डाला। म्हलोजी बाबा और हम्बीरराव यहाँ महाराज की अगवानी के लिए खड़े थे। महाराज 'पाँच दरवाज़ा' पर ही चन्द्रावत से उतर पड़े और म्हलोजी बाबा तथा हम्बीरराव से कहने लगे, "चलो सेनापति, पहले रंगरूपी शिवपिण्डी का दर्शन कर लें।"

"चलिए महाराज।" हम्बीरराव, म्हलोजी, खण्डोजी तथा धनाजी उनके साथ हो लिये।

"मामाजी, अब औरगंज़ेब ने गोलकुण्डा को और हमारे कर्नाटक प्रदेश को अपना लक्ष्य बनाया है। इसीलिए हम स्वयं जिंजी की ओर कूच कर रहे हैं।" महाराज ने चलते-चलते अपना निश्चय बता दिया।

"हाँ, यह हमने भी सुन लिया है। औरंगज़ेब के रणमस्त ख़ाँ और रुहुल्ला ख़ाँ को बड़ा लोभ था कि पन्हाला और बेलगाँव को हड़प लें। परन्तु हमने और म्हलोजी ने मिलकर उन्हें दूर खदेड़ दिया है।"

"हाँ सेनापति, तुम यहाँ हो, इसीलिए हम पन्हाला और कोल्हापुर विभागों के विषय में सदैव निश्चिन्त रहते हैं।"

बातें करते-करते समस्त जन उपरिकोट के प्रवेशद्वार के निकट स्थित रंगरूपी शिवपिण्डी के मन्दिर तक आये और मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हो गये।

पन्हाला में महाराज एक दिन रहे। उन्होंने म्हलोजी और हम्बीरराव को सुरक्षा सम्बन्धी सब सूचनाएँ दीं और वे सेनासहित 'पाँच दरवाज़ा' तक आये। हम्बीरराव उन्हें विदा करने आये थे। जब महाराज ने उनका स्नेहालिंगन किया, तो हम्बीरराव यह पूछे बिना नहीं रह सके, "रायगढ़ का क्या समाचार है, महाराज?"

https://t.me/Sahityajunction

महाराज समझ गये कि हम्बीरराव यह प्रश्न अपनी पुत्री ताराऊ के विषय में जानने की दृष्टि से पूछ रहे हैं। उन्होंने कहा, "सब क्षेम-कुशल है वहाँ। ताराऊ भी स्वस्थ-सानन्द है।"

फिर सबसे विदा होकर महाराज पन्हालगढ़ से चले गये। सेना बेलगाँव, धारवाड़, गदग, चिक्कन हल्ली, चिक्कबालापूर में पड़ाव डालती हुई नन्दीदुर्ग के निकट पहुँची। नन्दीदुर्ग को देखकर आज पुनः एक बार महाराज के मन की स्मृतियों के जलाशय में एक हिलोर उठने लगी। उसी नन्दीदुर्ग पर घेरा डालने के लिए वे कभी आये थे। आये थे दिलेर ख़ाँ के साथ। पर अब उसे सोचने से क्या लाभ? वे स्मृतियाँ अतीत के गर्भ में समा गयी थीं, दिलेर ख़ाँ भी क़ब्र में सो गया था।

दोड्डाबालापुर, तिरुवनमलई के मार्ग से होते हुए महाराज की सेना जिंजी के प्रवेशद्वार तक आयी। हरजी वहाँ स्वागतार्थ उपस्थित थे। उनकी दायीं-बायीं ओर केसो त्रिमल, सन्ताजी, जैतजी काटकर, दादाजी काकडे, तिमाजी हणमन्ते आदि सरदार भी उपस्थित थे।

महाराज ज्यों ही चन्द्रावत से उतरे, कर्नाटक की तोपें उनके सम्मान में गरज उठीं। नगाड़े बजने लगे। महाराज ने आगे बढ़कर हरजी को गले लगा लिया। महाराज पालकी में सवार हो गये। साथ आये सरदारों तथा कर्नाटक के सरदारों के समूह के साथ यह पालकी जिंजी के दुर्ग की ओर जाने लगी। इस समय भी महाराज को रह-रहकर आबासाहब की महानता की याद आ रही थी—कितने दूरदर्शी थे वे! कहाँ तक पहुँच थी उनकी!

कहाँ सह्याद्रि की गोद में बसा रायगढ़, कहाँ कर्नाटक प्रान्त का यह जिंजी नगर। यह विस्तृत साम्राज्य उन्होंने बनाया। वह भी तब, जबकि वे आगरा के बन्दीगृह से सकुशल छूट आये थे। अपना सर्वस्व न्यौछावर करके भी हमें इस राज्य की रखवाली करनी है।

जिंजी के निवासी घरों की अटारियों और छतों पर खड़े होकर 'शिव' के पुत्र का दर्शन कर रहे थे। वे देखना चाह रहे थे उस राजा को जिसने औरंगज़ेब को भी पीछे हटने के लिए विवश किया था। उस युवक राजा के रूप को निहारकर अभिमान से उनकी छाती फूल उठती थी। महाराज जिंजी के दुर्ग में आये।

उपरिकोट में हरजी का जो ख़ासमहल था, उसके प्रांगण में महाराज सम्भाजी की बड़ी बहन अम्बिकाबाई प्रज्वलित नीराजनोंवाली आरती की थाली लेकर उपस्थित थी। उन्होंने पहले तो सोने की मुहरें अपने भैया पर न्यौछावर की और फिर उसकी आरती उतारी। इस समय भाई और बहन की आँखों में एक ही भाव था। नीराजन की ज्योति से आँखों का वह वेदनामय भाव स्पष्ट हो रहा था। फिर वह वेदना दोनों के नेत्रों से अश्रु बनकर बहने लगी। मुग़लों की कोठरी में बन्द राणूदीदी और दुर्गाबाई की स्मृति से उत्पन्न वेदना थी वह।

महाराज ने इस वेदना को प्रयत्नपूर्वक दूर हटाया और वे अपनी बड़ी बहन के चरणों में प्रणाम करने के लिए झुक गये। फिर गद्‌गद कण्ठ से पूछने लगे, "कैसी हो दीदी?"

"हाँ भैया, हम आनन्द से हैं। हमारी भाभी येसू और बालराजा कैसे हैं?" अम्बिकाबाई ने आरती दासी को दे दी और सम्भाजी के कन्धों को पकड़कर ऊपर उठाते हुए वह पूछने लगीं। आज जाने कितने बरसों बाद भाई और बहन की भेंट हो रही थी। दोनों ही अभागे थे क्योंकि आबासाहब के अन्त समय में उनके दर्शन नहीं पा सके थे। दोनों के मन में बहुत कुछ कहने-जानने की इच्छा दबी पड़ी थी।

https://t.me/Sahityajunction

दोपहर के भोजन के पश्चात् महाराज और हरजी हवेली के सभागृह में आये। कर्नाटक और रायगढ़ के विशिष्टजन उनकी दोनों ओर खड़े थे। सभागृह में बहुमूल्य कर्नाटकी ग़लीचे बिछे हुए थे। कर्नाटकी ढंग के पानदान भी वहाँ रखे हुए थे, जिनकी बनावट कछुवे के आकार की थी। दक्षिणी बुनाई से निर्मित महीन परदे दरवाज़ों पर लटके हुए थे।

हरजी ने महाराज से उनकी दूर की यात्रा का वृत्तान्त पूछा। हरजी ने कुछ दिन पूर्व ही कुतुबशाह के उस प्रदेश पर, जो कर्नाटक के अन्तर्गत था, हमला किया था। इस अभियान में उन्होंने अक्केश, सौदीपत्ता, कोतवारा आदि कुतुबशाही प्रदेश जीत लिये थे। हरजी ने अपने इस अभियान का विस्तृत विवरण महाराज को बतलाया।

"महाराज, आपने यह जो शूरवीर नौजवान भेजा है, अत्यन्त पराक्रमी है यह।" हरजी ने सन्ताजी घोरपड़े की ओर संकेत करते हुए कहा।

"और हमने जो केसोपन्त त्रिमल को भेजा है, वे कैसे हैं?" महाराज ने केसोपन्त की ओर देखते हुए पूछा।

हरजी कुछ देर के लिए असमंजस में पड़ गये। फिर उन्होंने पान बनाने के बहाने पानदान अपनी ओर खींच लिया और इस प्रकार महाराज द्वारा पूछे गये प्रश्न को उन्होंने चतुराई से टाल दिया। फिर उस प्रश्न को और भी दूर हटाने की दृष्टि से उन्होंने कोई दूसरा मामला प्रस्तुत किया।

"आदिलशाही राज्य इतना शक्तिशाली था, परन्तु औरंगज़ेब के आगे उसकी एक न चली। अब औरंगज़ेब गोलकुण्डा की ओर बढ़ रहा है। इस बारे में आपकी क्या राय है, महाराज? हमारी अगली चाल क्या होनी चाहिए?"

महाराज ताड़ गये थे कि हरजी ने उनके प्रश्न को टाल दिया है। परन्तु हरजी ने जो मामला प्रस्तुत किया था, वह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण था। इसलिए वे हरजी से कहने लगे, "तुम्हें चाहिए कि आदिलशाह और कुतुबशाह का जितना भी प्रदेश तुम जीत सको, अभी इन्हीं दिनों जीत लो। कल इसी बहाने मुग़ल फ़ौजें तुम्हारे कर्नाटक पर भी चढ़ आएँगी। गोलकुण्डा का आदिलशाही राज्य अधिक काल तक टिक नहीं पाएगा।"

महाराज के कथन को सुनकर सारी सभा स्तब्ध हो उठी। इस स्तब्धता को कुछ कम करने की दृष्टि से हरजी कहने लगे, "काँजीवरम् के निकट बाँदीवाश के मैदान में याचप्पा नायक और हमारे बीच ज़ोरदार मुठभेड़ हुई थी। हमारे साथ ये सन्ताजी थे। मार से घबराकर याचप्पा मैसूर की ओर भाग गया। वहाँ का चिक्कदेव ओडियार हमारी सहायता की याचना कर रहा है। बंगलौर प्रदेश में मुग़ल सरदार कासिम ख़ाँ ऊधम मचाता फिर रहा है। चिक्कदेव का उद्देश्य यह है कि वह उस मुग़ल सरदार को पराजित करे।"

"चिक्कदेव कैसा व्यक्ति है?" महाराज ने हरजी से पूछा।

"मित्र बनाने योग्य नहीं है। वह स्वयं ही आपसे मिलने आनेवाला है। वास्तव में उसके मन में बंगलौर को हथियाने का लोभ समाया हुआ है।"

इस प्रकार कर्नाटक की परिस्थिति पर महाराज और हरजी के बीच बहुत देर तक चर्चा होती रही।

"क्यों हरजीराजा, यहाँ से बंगलौर कितनी दूर है?" छत्रपति ने पूछा।

https://t.me/Sahityajunction

“जी, होगा यही कोई सात-आठ पड़ावों की दूरी पर।” हरजी इस प्रश्न के कारण चकरा गये थे। महाराज के प्रश्न के उद्देश्य को कुछ समझ नहीं पाये वे। इसीलिए पूछ बैठे, “क्यों महाराज, यह किसलिए पूछ रहे हैं?”

“चलो हरजी, जिंजी के क़िले का एक चक्कर लगाकर निरीक्षण कर लें।” महाराज ने चर्चा समाप्त की और वे खड़े हो गये। फिर उन्होंने सब विशिष्ट सरदारों के साथ क़िले का एक-एक बुर्ज देखा-भाला। क़िला बहुत दृढ़ था। उसकी चहारदीवारी भी काफी ऊँची और मज़बूत थी। हरेक बुर्ज़ पर दूर तक प्रहार करने वाली तोपें रखी हुई थीं। निरीक्षण चौकियों का और पहरे का पक्का प्रबन्ध किया हुआ था। हरजी ने इस क़िले को सब तरह से दृढ़ बना रखा था। महाराज ने वहाँ के अस्त्रागार, धान्य भण्डार, कोषागार, बारूद गोदाम आदि को भी देखा और अतीव सन्तुष्ट होकर वे हरजी से कहने लगे, “आबासाहब जब हमसे पन्हाला में अन्तिम बार मिले थे, उस समय उन्होंने कहा था कि जिंजी का क़िला पक्की गाँठ के समान है। तुमने इस गाँठ को कसकर और भी दृढ़ बना दिया है। हमें देखकर बहुत सन्तोष हुआ।”

इसी तरह दो दिन बीत गये। इक्केरी नगर में रानी चन्नम्मा का राज्य था। उसका दूत महाराज से मिलने आया। रानी चन्नम्मा का पति आधा पागल-सा था। इस कारण चन्नम्मा ही उस राज्य का शासन चलाती थी। मैसूर का चिक्कदेवराय रानी चन्नम्मा को हमेशा सताता रहा था। जब से महाराज के चाचा एकोजी अपनी राजधानी बंगलौर से हटाकर तंजौर ले गये थे, तब से चिक्कदेवराय बंगलौर को गिद्ध-दृष्टि से देख रहा था। रानी चनम्मा का दूत यह सन्देश लेकर आया था कि महाराज की आज्ञा से हरजी रानी की सहायता करें। उसने रानी का नज़राना पेश किया और रानी का सन्देश भी महाराज को बतलाया।

चन्नम्मा एक नारी होते हुए भी अत्यन्त साहस के साथ राज्य का शासन और रखवाली कर रही थी। महाराज ने दूत को आश्वासन दिया कि वे अवश्य सहायता करेंगे और रानी को प्रतिदान के रूप में उन्होंने नज़राना भी भेजा।

महाराज ने जिंजी के निकटवर्ती मदुरा, मैसूर, रामनाड आदि प्रदेशों के नायकों के बारे में भी हरजीराजा। से जानकारी प्राप्त की।

मोरगुड, तिगुड, कोडग, मलेय इन स्थानों के नायकों के प्रतिनिधि भी आकर महाराज से मिले। महाराज ने उनका यथायोग्य सम्मान किया और उन दूतों के द्वारा वहाँ के नायकों से प्रार्थना की कि वे लोग आगामी विशाल अभियान में मराठों की सहायता करें।

इन दिनों गर्मी पड़ रही थी। महाराज रात्रि के भोजन के पश्चात् हरजी के ख़ासमहल के कक्ष में बने हुए एक झूले पर बैठे थे।

हरजी अब कुछ-कुछ जान गये थे कि महाराज की आगामी राजनीति क्या होगी। परन्तु महाराज ने बीच में एक बार बंगलौर की दूरी पूछी थी, अतः हरजी उनकी योजना को ठीक प्रकार से समझ नहीं सके थे। हरजी को सन्देह हो रहा था कि कहीं महाराज अचलोजी के विद्रोह के कारण बंगलौर पर ही तो आक्रमण नहीं कर देंगे।

झूला हिल रहा था। लोहे की कड़ियों और सलाख़ों की धीमी आवाज़ हो रही थी। जगह-जगह पर जलती मशालों के नीचे सशस्त्र पहरेदार खड़े पहरा दे रहे थे। महाराज के मन में छिपी योजना जानने के उद्देश्य से हरजी ने पूछा, “महाराज ने एक बार पूछा था कि बंगलौर कितनी दूर

https://t.me/Sahityajunction

है। अचलोजी बंगलौर में रहते हैं। अभी तो वे नौजवान ही हैं, नासमझ हैं। हम सोचते है कि कहीं आप उनके विद्रोह से नाराज़ होकर उन पर ही हमला न कर दें। परन्तु चाचा एकोजी की ओर देखते हुए...”

महाराज ने भूमि पर पैर टिकाकर झूले को रोका और हरजी की बात काटते हुए पूछने लगे, “अब बंगलौर की दूरी नहीं, अब यह बताओ कि श्रीरंगपट्टण यहाँ से कितनी दूर है?”

हरजी का जो अनुमान था, वही सत्य सिद्ध हुआ। हरजी समझ गये कि मैसूर के राजा चिक्कदेवराय का दृढ़ सैनिक-गढ़ श्रीरंगपट्टण अब महाराज का लक्ष्य बनेगा।

“जी, श्रीरंगपट्टण भी यहाँ से सात-आठ मंज़िल दूर होगा।”

“हम स्वयं ही चिक्कदेवराय के इस श्रीरंगपट्टण को घेर लेना चाहते हैं। तुम अपने चुने हुए शूरवीर और सेना हमें दो। मोरस, तिगुड, कोडग और मलेय के नायकों को हरकारे भेजकर सूचित करो कि ज्यों ही हम श्रीरंगपट्टण को घेरें, वे उसपर हमला बोल दें। चिक्कदेव बंगलौर पर आँख गड़ाये बैठा है, पर अब हमें उसकी आँखें खोलनी होंगी।”

“आपका यह कथन सर्वथा उचित है। चिक्कदेव दूसरों की राह का रोड़ा तो है ही, हमें भी वह कम कष्ट नहीं देता है। उसकी मस्ती झाड़ने के लिए हम भी आपके साथ आएँगे।” हरजी ने उत्साहपूर्वक कहा।

“उसकी कोई आवश्यकता नहीं है हरजी! तुम जिंजी की रखवाली करो। कासिम ख़ाँ और रणमस्त ख़ाँ की फ़ौजें अपने इस प्रान्त में यहाँ-वहाँ फैली हुई हैं। तुम कल से ही हमारी मुहिम की तैयारी करो। उन चतुर गुप्तचरों को, जो इस भूप्रदेश की जानकारी रखते हैं, अवश्य हमारे साथ भेजना।”

काफी देर तक महाराज श्रीरंगपट्टण के घेरे के विषय में सोचते रहे। हरजी मन ही मन मुहिम की तैयारियों की रूपरेखा बनाते हुए वहाँ से चले गये।

श्रीरंगपट्टण के चारों ओर ‘हरऽ-हरऽ महादेव’ की रणगर्जना गूँज उठी। सन्ताजी घोरपड़े, त्रिम्बकजी भोसले, केसो त्रिमल, धनाजी जाधव, खण्डोजी जैसे वीर सरदारों के साथ महाराज ने श्रीरंगपट्टण पर धावा बोल दिया था। चिक्कदेवराय के कानों में इस आक्रमण की भनक पहले से ही पड़ गयी थी और वह पूर्व दिशा की ओर भाग गया था।

उसने वहाँ की प्रजा से ज़बरदस्ती खण्डनी वसूल करना शुरू कर दिया था। उसके अत्याचारों से तंग आकर उसकी अपनी प्रजा ने तथा कुछेक मन्त्रियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। प्रजा एक स्थान पर एकत्रित-संघटित हुई और प्रजाजनों ने अपने में से दो वीरों को सेनापति नियुक्त कर दिया। एक सेनापति वैष्णव था और दूसरा शैव। एक सेनापति ने सत्यमंगलम् नगर पर आक्रमण किया और दूसरी सेना ने मैसूर नगर को ही घेर लिया। स्वयं चिक्कदेवराय इस घेरे में फँस गया।

उधर महाराज की सेना ने चिक्कदेवराय के श्रीरंगपट्टण में लूटपाट मचा रखी थी। महाराज की सेना की दो टुकड़ियाँ थीं। एक टुकड़ी कर्नाटक के सैनिकों की थी। इस टुकड़ी ने श्रीरंगपट्टण

https://t.me/Sahityajunction

को घेरा हुआ था। दूसरी टुकड़ी मराठे सैनिकों की थी जो मैसूर राज्य में लूटमार मचाती हुई सब ओर दौड़ती फिर रही थी। चिक्कदेवराय तो मैसूर के क़िले में घिर गया था। वह अब किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया था। अब उसे अपने पड़ोसी की याद आयी। उसने रामनाड के नायक को ख़लीता लिखा, जिसमें सहायता की माँग की थी।

महाराज आक्रमण के समय जिंजी से श्रीरंगपट्टण गये थे। उस समय ही उन्होंने चारों ओर गुप्तचर फैला दिये थे। स्वयं महाराज श्रीरंगपट्टण के घेरे का नेतृत्व कर रहे थे। महाराज सम्भाजी ने गोवा, जंजिरा और बुरहानपुर में जो वरिता दिखलायी थी उसकी कीर्ति-कथा चिक्कदेवराय के कानों तक भी पहुँची थी। अब वह बुरी तरह हड़बड़ा गया था और पूरी तरह जान गया था कि अब श्रीरंगपट्टण तो हाथ से जाएगा ही। श्रीरंगपट्टण के घेरे की ख़बरें सुनकर पास-पड़ोस के नायक भी घबरा गये थे। सन्ताजी, धनाजी और खण्डोजी की फुर्तीली टुकड़ियाँ मैसूर राज्य में सब ओर उपद्रव मचाती घूम रही थीं। श्रीरंगपट्टण का क़िलेदार यद्यपि पाँव जमाकर लड़ रहा था, फिर भी वास्तव में उसके भी हाथ-पाँव फूल चुके थे।

क़िले के बाहर के मैदान में महाराज के लिए एक ख़ास डेरा लगाया गया था। सारे मैसूर राज्य में धूम मचानेवाली मावली टुकड़ियाँ रोज आ-आकर डेरे के सामने लूट के माल का ढेर लगा रही थीं। कई कुशल तैराक प्रतिदिन रस्सियों के सहारे अथवा लोहे की अँकुसी के सहारे क़िले के परकोटे पर चढ़ने का और खाई को पार करने का प्रयत्न कर रहे थे। महाराज चन्द्रावत पर सवार होकर परकोटे के चारों ओर चक्कर लगाकर निरीक्षण करते थे। सब कुछ निश्चित योजना के अनुसार हो रहा था, परन्तु... यह 'परन्तु' ही जीवन भर सम्भाजी की राह में रोड़ा बनता रहा था। एक दिन उनके डेरे में एक भेदिया आया और उसने जो ख़बर सुनायी, वह कर्नाटक प्रान्त की नहीं थी—वह थी मराठा प्रदेश की ख़बर। ख़बर थी :

'औरंगज़ेब पन्हाला क़िले को घेरने बढ़ा आ रहा है।'

पन्हाला! वह दुर्ग जो महाराज को ऐसा प्यारा था, जैसे पंछी को अपना घोंसला! आबासाहब से अन्तिम भेंट भी यहीं हुई थी! हम्बीरराव-म्हलोजी बाबा... महाराज की आँखों के आगे एक-एक चित्र आते रहे—जाते रहे। उन्होंने केसो त्रिमल और सन्ताजी को आज्ञा दी कि सेना को एकत्रित किया जाय।

अब यह आवश्यक हो गया था कि महाराज कर्नाटक से वापस लौट जाएँ। फिर भी उन्होंने हरजी के साथ जिंजी के आस-पास के बाँदीवाश, वृद्धाचलम्, तिरुवनमलई आदि प्रदेशों को एक बार घूमकर देख लिया। वापस लौटने में अब केवल दो ही दिन शेष थे। महाराज हरजी की हवेली की बैठक में बैठे थे और उन्हें प्रान्त की रक्षा के विषय में सूचनाएँ दे रहे थे। उस समय कक्ष में केवल केसो त्रिमल और सन्ताजी ही थे।

महाराज ने सब सूचनाएँ दीं और उसके बाद उन्होंने उस विषय को छेड़ा, जो कई दिन से उनके मन में मँडरा रहा था, "हमें लगता है कि तुम्हारे और केसोपन्त के बीच कुछ अनबन है।" बात सुनकर हरजी और केसो त्रिमल के सिर झुक गये।

"सन्ताजी, इस अनबन का कारण क्या है, बता सकते हो?" महाराज ने सन्ताजी को इस चर्चा में सम्मिलित कर लिया। सन्ताजी ने उसका कारण विस्तृत रूप से बतलाया। सुनकर महाराज अतीव दुखी हुए। कर्नाटक प्रान्त के सर्वाधिकारी हरजी को समझाते हुए महाराज कहने

https://t.me/Sahityajunction

लगे, “हरजीराजा, दुविधा और संशय के कारण मनुष्य को क्या कुछ सहना पड़ता है, यह हम भली भाँति जानते हैं। मनुष्य के मन में फूट और भेदभाव यदि घर कर गये, तो आत्मीयता और घनिष्ठता टूक-टूक हो जाती है। मुख्य लक्ष्य दूर जा पड़ता है और अपने लोगों की सारी शक्ति अयोग्य कारण में ही व्यय होने लगती है। तुम तो अनुभवी हो, विवेकशील हो। समर्थगुरु रामदास ने हमें एक बार जो उपदेश दिया है, वह तुम्हें सुना-भर देते हैं हम। उस उपदेश से क्या सीख लेनी है, इसे तुम स्वयं समझ लो, तो ठीक हो।” महाराज कुछ देर रुके। समर्थगुरु की स्मृति मात्र से उनका हृदय विह्वल हो उठा था। वे हरजी की ओर देखकर जैसे अपने-आप से ही कह रहे थे :

“अधिकारी जो भूले, भटके। क्षमा करो अपराध पुराने।
उसे बना अपना हितकारी। सुखी बनाकर काम सौंप दो।”

महाराज के वचनों को सुनकर हरजी विचारों में खो गये। फिर महाराज केसोपन्त के निकट गये और कहने लगे, “केसोपन्त, आबासाहब ने पहले पेशवा शामराज को कैसा दण्ड दिया था, यह तुमने सुना अवश्य होगा। आबासाहब के सामने खड़े होकर हमें भी कैसी-कैसी बातें सुननी पड़ी हैं, यह सोचकर आज भी हमारा मन बेचैन हो उठता है। जगदम्बा करे कि तुम और हरजी पर वह नौबत न आये। इसलिए समझदारी से काम लो। हरजीराजा से मिलजुलकर एकमत होकर रहो।”

केसोपन्त, हरजी और सन्ताजी गद्‌गद होकर महाराज की ओर देख रहे थे। एक क्षण तो उन्हें ऐसा आभास हुआ कि कहीं बड़े महाराज ही तो सामने खड़े होकर ये वचन नहीं कह रहे।

“कहा-सुना भूलकर अब तुम दोनों गले मिलो, ताकि हम समझ सकें कि तुमने बीती भुला दी है।” महाराज ने अपनी भेदती दृष्टि से हरजी और केसोपन्त की ओर देखा। क्षणभर उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा और भुजाएँ फैलाकर वे गले मिलने लगे। इस दृश्य को देखकर आज महाराज का मन अतीव सन्तुष्ट हुआ, सन्ता जी भी आनन्दित हो उठे।

अगले दो दिन तक महाराज सम्भाजी अपने हरजीराजा और बड़ी बहन अम्बिका बाई के अतिथि बने रहे और फिर वे जिंजी से निकल पड़े। हरजी, सन्ताजी और केसोपन्त उनके साथ-साथ चल रहे थे। इतने में महाराज ने सेना को बंगलौर की दिशा में कूच करने का आदेश दिया। स्वभावतः हरजी फिर आश्चर्यचकित हो उठे।

सोचने लगे कि क्या महाराज फिर बंगलौर पर हमला बोलने जा रहे हैं? महाराज ने उनका भ्रम तुरन्त दूर किया, बोले, “तुम्हें क्या भ्रम हुआ है, सो हम जानते हैं। तुम सोचते हो कि हमारे चचेरे भाई अर्जुनजी, जो मुग़लों से जा मिले हैं, से निबटने के लिए हम बंगलौर पर हमला बोलने जा रहे हैं। हम बंगलौर नहीं, होदेगिरि जा रहे हैं। वहाँ हमारे दादा श्री शहाजी महाराज की समाधि है। हम उस समाधि के चरणों में सिर नवाकर आशीर्वाद पाना चाहते हैं।”

यह सुनकर हरजी ने एक लम्बी साँस भरी।

दो-चार स्थानों पर पड़ाव डालती हुई राजा की सेना बंगलौर के निकटवर्ती स्थान होदेगिरि तक आ पहुँची। महाराज हरजी, खण्डोजी, सन्ताजी आदि चुनिन्दा सरदारों के साथ शहाजी महाराज की समाधि की ओर चल पड़े।

सब लोग समाधि-स्थान तक आ पहुँचे। यहाँ सम्भाजी के चाचा एकोची ने उस समाधि की

https://t.me/Sahityajunction

पूजा की व्यवस्था की हुई थी। एक पुजारी वहाँ नियुक्त था, जो प्रतिदिन पूजा करता था। महाराज घोड़े से उतरकर सब श्रेष्ठजनों के साथ समाधि तक आये। विविध विचारों के कारण उनका हृदय भर आया था। उन्होंने जूते उतारे और पूजारी द्वारा दिये गये फूलों की एक अंजलि अपने दादा जी की समाधि पर समर्पित की। समाधि पर बनी हुई पादुकाओं पर अपना मस्तक रखते हुए उनके मन में अनेक भाव उदित होने लगे :

'जैसे हमें अपनी जननी का मुखमण्डल याद नहीं आता, इसी प्रकार आपका चेहरा भी हमें याद नहीं। सम्भवतः कभी बचपन में आपके चरणों के दर्शन पाने का सौभाग्य मिला हो! आपके ये चरण निज़ामशाही राज्य से लेकर आदिलशाही राज्य तक कहाँ-कहाँ नहीं घूमते फिरे! हमारे आबासाहब ने अभाव में से भाव उत्पन्न कर दिखाया। बागलाण से लेकर जिंजी तक के विशाल साम्राज्य की स्थापना कर दिखायी उन्होंने। हम आज उनके चरणों से पावन इस धरती की रक्षा करने में जी जान से जुटे हुए हैं। हमें शक्ति दो, आशीर्वाद दो।'

महाराजा के बाद शेष जनों ने भी समाधि की पूजा की। फिर हरजी से विदा होते समय महाराज उनसे गले मिले और उनसे यह कहे बिना रहा न गया, "यह कर्नाटक प्रान्त हमारे राज्य का दृढ़ और सुरक्षित गढ़ है। इसकी रक्षा करो, इसे फूलता-फलता बनाये रखो! अच्छा, हम चलते हैं।"

पन्हाला पहुँचकर महाराज को म्हलोजी से यह समाचार मिला कि औरंगज़ेब का इरादा पन्हाला पर हमला करने का नहीं था। वह तो उसने एक झाँसा दिया था। मिरज, कराड और बेलगाँव में उसकी जो फ़ौजें ऊधम मचाती फिर रही थीं, उन्हें रोकने के लिए हम्बीरराव उस ओर गये थे।

पन्हाला में एक दिन रहकर महाराज वहाँ से निकले और महाड घाट से होते हुए रायगढ़ आ पहुँचे। मृग नक्षत्र का उदय काल निकट आ पहुँचा था, अतः वर्षा काल के लिए आवश्यक कार्य तथा झाँप बनाना, धान्य-भण्डारों में अनाज भरना आदि कार्यों को प्रारम्भ किया जा चुका था।

रायगढ़ पहुँचते ही पेशवा निलोपन्त उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उन्होंने गत दिनों का सम्पूर्ण वृत्तान्त महाराज को बतलाया। खेलणा प्रान्त में कुलेश, कोंकण में रामचन्द्रपन्त, राज्य के भीतरी प्रान्त में हम्बीरराव और अन्य स्थानों पर नियुक्त सभी सरदार और अधिकारी वर्षा ऋतु में भी अपने-अपने कर्तव्यों को पूरी तत्परता से निभा रहे थे।

अन्तःपुर में महाराज और येसूबाई का मिलन हुआ। महाराज ने कर्नाटक अभियान का समस्त वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। परन्तु येसूबाई तो उत्सुक थीं समाधि के दर्शन के बारे में जानने को। महाराज ने अन्त में उस घटना का भी विवरण सुना दिया।

कर्नाटक और रायगढ़ के बीच पेन्नर, तुंगभद्रा और कृष्णा जैसी बड़ी-बड़ी नदियाँ थीं। वर्षाऋतु में उफनकर बह रही इन नदियों को पार करके भी हरजी के भेजे हुए हरकारे निरन्तर आ रहे थे और उधर की स्थिति से महाराज को अवगत करा रहे थे।

एक महत्त्वपूर्ण समाचार यह था कि मुग़ल-सरदार कासिम ख़ाँ ने सम्भाजी के चाचा एकोजी राजा का बंगलौर शहर जीत लिया था और उसे तीन लाख रुपये लेकर बेच दिया था। बेचा था मैसूर के चिक्कदेवराय को। एकोजी राजा ने जब तंजौर में यह समाचार सुना, तो उन्हें इतना

https://t.me/Sahityajunction

आघात पहुँचा कि वे इसी दुख में संसार से चल बसे।

श्रावण के दिन थे। कई दिनों से दो बातें रह-रहकर महाराज के मन को व्याकुल बना रही थीं। इन मामलों की सुचारु व्यवस्था करने के लिए महाराज ने धर्म विभाग के अधिकारी मोरेश्वर पण्डितराव को बुलाया था। चिंचवड में मोरया बाबा का जो मठ था वहाँ से एक शिष्ट शिकायत लेकर आया था। शिकायत यह थी कि पुणे प्रान्त के सैनिक-यातायात और संघर्ष के काल में कुछ सैनिक अधिकारियों ने बाबा के मठ में बहुत उपद्रव मचाया था।

"पण्डितराव, पुणे प्रान्त में अपना सूबेदार कौन है?" महाराज ने घूमते-घूमते पूछा।

"जी, विनायक उमाजी हैं।" मोरेश्वर ने उत्तर दिया, परन्तु वे सोचने लगे कि नाम क्यों पूछा गया है।

महाराज ने जैसे ही विनायक का नाम सुना, उन्हें उनके पिता उमाजी का स्मरण हो गया। उमाजी वे व्यक्ति थे, जिन्होंने सम्भाजी को बचपन में धार्मिक पुराण ग्रन्थों का अध्ययन कराया था।

"पण्डितराव, सूबेदार विनायक को आदेश दो कि वे सेना के सेवक, हवलदार, घुड़सवार, वाद्यवादक आदि सभी को तुरन्त आज्ञापत्र भेजें। आज्ञापत्र में लिखें कि...तुम सब लोग मठ की व्यवस्था में हस्तक्षेप क्यों करते हो? वहाँ अव्यवस्था फैलाकर कष्ट क्यों देते हो? चिंचवड का मठ उन मोरया बाबा का है, स्वर्गवासी महाराज भी जिनकी चरणधूलि माथे से लगाते थे। यह भी हमने सुना है कि तुम लोग मठ के निकटवर्ती प्रदेश की प्रजा से मनमानी वस्तुएँ देने की माँग करते हो। यह तुम्हारा आचरण सर्वथा अनुचित है। इस आज्ञापत्र के बाद यदि इस प्रकार के आचरण की कोई शिकायत आयी, तो किसी को क्षमा नहीं किया जाएगा। यह चेतावनी ध्यान रहे और सम्बन्धित लोगों को फिर कभी कष्ट न हो।"

मोरेश्वर पण्डितराव ने आज्ञापत्र का विषय ध्यानपूर्वक सुना और सोचने लगे कि यह महत्त्वपूर्ण आज्ञापत्र किस घुड़सवार वाहक के हाथों भेजा जाय।

महाराज अब भी विचारों में खोये हुए घूम रहे थे। वे अब दूसरे आज्ञापत्र का आशय पण्डितराव को बतलाने लगे :

"इसी आज्ञापत्र के अनुसार ही एक अन्य आज्ञापत्र भी भेजो। वाई प्रान्त के निम्ब नायक ग्राम में जो सदानन्द गोसाईं का मठ है, उसके विषय में यह आज्ञा पत्र भेजा जाना है। वहाँ का सूबेदार उस मठ को राजकीय आर्थिक सहायता देने में आनाकानी करता है। उसे लिखो कि उस मठ में बहुत पहले से ही अन्नछत्र चलता है। अब बीच ही में उस मठ को आर्थिक सहायता देने में यह शिथिलता क्यों? भविष्य में इस विषय में थोड़ा भी आलस्य न किया जाय। जैसे पूर्व काल से आर्थिक अनुदान निर्धारित हो, उसी प्रकार भविष्य में भी दिया जाता रहे, ताकि अन्नछत्र बन्द न हो। धार्मिक कार्य में विघ्न न हो। आज्ञा के पालन में तत्परता बरती जाय।"

पण्डितराव नमस्कार करके तो चले गये, परन्तु महाराज के मन में कितनी ही देर तक समर्थगुरु रामदास और मोरया बाबा के महान व्यक्तित्व सम्बन्धी विचार ही आते रहे।

https://t.me/Sahityajunction

गणेश चतुर्थी के त्यौहार के दिन थे। रायगढ़ के मन्दिरों को शिल्पियों ने रंग-रंगीली सजावट से सजाना प्रारम्भ कर दिया था। बरसात-भर घिरी घटाओं से भरा आकाश अभी-अभी ही कुछ खुला था और सूर्य की किरणें ऊँचे गगन से उस पर्वतीय दुर्ग के ऊपरी समतल भाग पर आ-आकर उतर रही थीं। परन्तु अभी तक रायगढ़ के पर्वतीय मार्गों और पगडण्डियों पर काई जमी हुई थी। ऐसे समय पर मुम्बई से दो अँग्रेज़ प्रतिनिधि दुभाषिये राम शेणवी के साथ रायगढ़ के पर्वतीय दुर्ग पर फिसलते-रपटते हुए चढ़ रहे थे। ये दो अँग्रेज़ थे, जॉर्ज वेल्डन और रॉबर्ट-ग्राहम। महाराज द्वारा नियुक्त नूतन राजदूत त्र्यम्बक गोपाल भी उनके साथ थे।

गोरों के इन प्रतिनिधियों ने सूरत को 'बेसूरत' बनानेवाले राजा शिवाजी की कीर्ति सुन रखी थी। उन्हीं के ये पुत्र कि जिन्होंने गोवा में पुर्तगालियों की दुर्गत बनायी थी, भला कैसे दीखते होंगे, वे हमसे किस प्रकार बातचीत करेंगे आदि बातों पर ही वे विचार कर रहे थे।

प्रह्लादपन्त उन चारों को लेकर महाराज के सम्मुख राजसभागृह में उपस्थित हुए। अँग्रेज़ प्रतिनिधियों ने नज़राने पेश किये। दोनों दूत राजा की ओर टक लगाकर देख रहे थे।

शायद सोच रहे थे कि क्या यही है वह राजा, जिसने गवर्नर केजविन को लन्दन लौट जाने के लिए विवश किया था। दोनों ने घुटने टेककर अँग्रेज़ी शैली से महाराज को अभिवादन किया। त्र्यम्बक गोपाल ने अपने स्वामी से अँग्रेज़ दूतों का परिचय कराया।

"मुम्बई के निकटवर्ती कोर्लास द्वीप के बारे में समझौता करने ये दूत मुम्बई से आये हैं, महाराज।" प्रह्लादपन्त ने उन दोनों के आने का उद्देश्य बतलाया।

"उनके समझौते की शर्तें क्या हैं?" महाराज ने दोनों अँग्रेज़ों की ओर देखते हुए पूछा।

"अँग्रेज़ हबशी के आक्रमण से कोर्लास द्वीप की रक्षा करने के लिए तैयार हैं। इस सुरक्षा के लिए वे उस द्वीप पर अपनी सेना रखने के लिए भी तैयार हैं। परन्तु इसके बदले वे इस राज्य से कुछ आशा करते हैं।" त्र्यम्बकपन्त ने कहा।

"क्या चाहते हैं वे?" महाराज के माथे पर शिकन आ गयी।

"वे कहते हैं कि इस शर्त की पूर्ति के फलस्वरूप उन्हें मराठा दरबार से दो हज़ार थैली चावल और नक़द पचास हज़ार रुपये मिलने चाहिए।"

"बस, इतनी-सी बात?" महाराज सिंहासन से टेक लगाकर बैठते हुए हँसकर कहने लगे। उनके मन में भूख की मारी उस प्रजा का दृश्य दिखाई दे रहा था, जो पिछले दो वर्षों में चावल के एक-एक कण के लिए तड़पती रही थी। वे इस समय अपने राजकोष की उस विशाल राशि को भी देख रहे थे कि जो औरगंज़ेब की फ़ौजों को पीछे हटाने के लिए व्यय की जा चुकी थी। फिर भी उन्होंने प्रह्लादपन्त से पूछा, "तुम्हारा इस विषय में क्या मत है?"

"उस दरबार ने यदि शर्तें रखी हैं, तो उनको मानना हमारे लिए अनिवार्य तो नहीं है। यदि हम थोड़ी-सी कठोरता अपनाएँ, तो अँग्रेज़ भी चावलों की और नक़द रकम की अपनी माँगों को अवश्य ही कुछ घटा देंगे।" प्रह्लादपन्त ने सलाह दी।

"त्र्यम्बकपन्त, इस विषय में तुम्हारा क्या मत है?" महाराज ने अपने राजदूत की परीक्षा लेनी चाही।

इस मामले में महाराज ही कोई निर्णय करेंगे, इस आशा के कारण त्र्यम्बकपन्त ने इस बारे में

https://t.me/Sahityajunction

कुछ सोचा ही नहीं था। वे गड़बड़ा गये। फिर भी कहने लगे, "जी, मुग़ल सेनाओं का दबाव हमारे राज्य पर है। यदि इस द्वीप का मामला आपसी समझौते से हल होता हो, तो समझौता कर लेना ही ठीक रहेगा।"

"त्र्यम्बकपन्त, तुम अभी नये हो, परन्तु सुयोग्य प्रतीत होते हो।" महाराज ने हँसकर कहा। फिर प्रह्लादपन्त से कहने लगे, "न्यायाधीश, यदि समझौता करना ही है, तो फिर खींचा-तानी किसलिए? इनसे कहो, हमें शर्तें स्वीकार हैं। इन्हें चाहिए कि द्वीप की रक्षा के लिए तुरन्त सेना भेज दें।" त्र्यम्बकपन्त और प्रह्लादपन्त ने जब देखा कि इतना शीघ्र निर्णय हो गया, तो वे चकित हो गये और महाराज की ओर टक लगाकर देखने लगे।

ग्राहम और वेल्डन नज़राने पाकर ख़ुश हो गये। वे प्रसन्न थे कि नये गवर्नर को जाकर शुभ समाचार बतलाएँगे कि सन्धि कितनी शीघ्र हो गयी।

एक दिन वह भी था कि जब आबासाहब भागानगर गये थे। उस अवसर पर गोलकुण्डा के शाह अबुल हसन तानाशाह ने उनका स्वागत किया था। उन्हें नज़राने देकर तानाशाह उनसे स्नेहपूर्वक गले मिला था। आज उसी भागानगर ने यह दूसरा दिन भी देखा, जब औरंगाबाद की 'शाही' रस्सियों से उसी तानाशाह की मुश्कें कस दी गयी थीं।

अब स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। बीजापुर और गोलकुण्डा की सेनाओं को साथ लेकर औरंगज़ेब की फ़ौजें किसी पल भी मराठा राज्य में घुस सकती थीं। राजसभा में उपस्थित सभी जन मौन बैठे थे। कोई बोलता भी क्या? सब इसी चिन्ता में मग्न थे कि 'श्री' के इस राज्य की रक्षा किस भाँति की जाए।

"पेशवा, अब तो किसी को एक पल भी फुरसत नहीं है। हमारे पड़ोस के दोनों राज्यों का पतन हो गया। शत्रु तो कब से हमपर आँख गड़ाये बैठा है। बागलाण, ख़ानदेश, कोंकण और राज्य के सब भीतरी प्रदेशों के सूबेदारों और हवलदारों को आदेशपत्र लिखो। उन्हें उन सबके ऊपर आ पड़े महान उत्तरदायित्व का पुनः एक बार ज्ञान कराओ। लिखो कि वे लोग जितने भी नये सैनिक भर्ती कर सकें, करें। हम चौल की संकटग्रस्त प्रजा की कठिनाइयों को दूर करने के लिए चौल जाना चाहते हैं। वहाँ के सूबेदार रायाजी सदर प्रभु को सूचना दो।" राजा के मन में न जाने कितने विचार भर आये थे। आज आबासाहब की स्मृति के कारण तो उनके हृदयरूपी जलाशय का भावभरा जल लबालब भरकर बहने लगा। आबासाहब के राज्य पर, कभी-कभी तो उनके प्राणों पर भी आ बनी थी। आज यदि वें होते, तो ठीक-ठीक क्या करते वे, कौन कह सकता है! नाना विचार 'शम्भु' के मन के किवाड़ों को चारों ओर से खटखटा रहे थे।

अपने आप विचार मग्न होकर ही महाराज ने सावधानी के उपाय के रूप में निलोपन्त से कहा, "पन्त, हरजी को सूचित करो कि कर्नाटक की अपनी सीमाओं पर सेनाएँ तैनात करें। औरंगज़ेब का क्या भरोसा? जाने किस ओर मुँह फेरकर आगे बढ़ने लगे।"

पेशवा भी महाराज की बातों को सुनकर चिन्ताग्रस्त हो गये। आज सभी जन अनुभव कर रहे थे कि 'सेना बढ़ती रहे, राज्य फैलता रहे' यह घोषणा करते हुए उत्साह से राज्य का विस्तार करते जाना सरल है, परन्तु स्थापित राज्य की रक्षा करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

https://t.me/Sahityajunction

“तुम सब अनुभवी हो, राज्य के पुराने सेवक हो, शूरवीर हो। बागलाण से लेकर जिंजी तक फैले हुए इस राज्य की रक्षा करने के लिए आज हम सबको आवश्यकता पड़ने पर प्राणों की भी बलि देनी होगी। यह राज्य अकेले आबासाहब का नहीं था, हमारा भी नहीं है। यह तो प्राणों से भी प्यारा सबका अपना राज्य है। कोई भी निराश न होना। एक बार हम भी आगरा में आबासाहब के साथ इसी औरंगज़ेब की क़ैद में फँस गये थे। आज इस सारे साम्राज्य को ही उसकी क़ैद में फँसने का भय उपस्थित हो गया है। सब लोग इसकी गम्भीरता अच्छी तरह जान लें। सब चलें हमारे साथ, आज मिलकर ही जगदीश्वर के दर्शन करेंगे।” सब लोग समूह रूप में मन्दिर की ओर बढ़ चले। आगे-आगे महाराज चले जाते थे और पीछे खिंचा हुआ-सा श्रेष्ठजनों का समूह जा रहा था। केवल प्रह्लादपन्त ही चुपचाप अकेले राजाराम की हवेली की ओर खिसक गये। वे न्यायाधीश वहाँ न्यायदान सम्बन्धी कौन-सा कार्य करने गये थे, यह तो वे ही जानें!

आज न जाने क्या हो गया था! शीतऋतु समाप्त हो चुकी थी, फिर भी सारे रायगढ़ में ऐसी कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी कि वैसी पहले कभी नहीं पड़ी थी। सूरज आकाश में लगभग सिर पर आ चुका था, फिर भी सब ओर फैला हुआ कोहरा अभी तक फटा नहीं था। महाराज सम्भाजी नित्यकर्मों से निवृत्त होकर जब माथे पर शिवतिलक लगा रहे थे, तब उनकी बायीं आँख फड़फड़ाने लगी। मन में कोई अपरिचित भय समाया हुआ था। मध्याह्न के भोजन के समय उन्होंने श्रीसखी से कहा भी था, “आज समझ नहीं आता कि हृदय में यह कैसी वेदना रह-रहकर उठ रही है। लगता है, कहीं औरंगज़ेब की फ़ौजें तो हरजी के राज्य में नहीं घुस गयीं!” आज भोजन के प्रति भी उनका जी उचट गया था। थाली में परोसे हुए पदार्थ फैलाये हुए या मिलाये हुए ही पड़े रह गये थे।

दिन ढल रहा था। सम्भाजी महाराज रायाजी और अन्तोजी के साथ एक मीनार के ऊपर चढ़े हुए खड़े थे। वहाँ से नीचे की ओर गंगासागर तालाब दिखलाई देता था। महाराज ने देखा कि उस तालाब के ऊपर झूल रही आम्रशाखा पर एक कौडिल्ला पक्षी बैठा है। गरदन पीछे की ओर खींचकर वह आक्रमण की मुद्रा में बैठा हुआ था। महाराज सुध-बुध भूलकर उस शिकारी पक्षी को टक लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् क्या हुआ, पता नहीं। पल झपकने की देर थी कि कौडिल्ला शाखा पर से उड़ा। तीर की तेज़ी से उसने पानी में गोता मारा और जब पानी से बाहर आया, तो उसकी लम्बी-काली चोंच में थी एक छटपटाती मछली। क्षणभर वह मछली सूर्य की तिरछी किरणों में चमकी और दूसरे क्षण वह चोंच के भीतर समा चुकी थी। सम्भाजी को याद आ रहा था...हमने इसी तालाब के किनारे इसी कौडिल्ला पक्षी को कभी देखा था। परन्तु कब देखा था, यह उन्हें ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा था। कौडिल्ला के झपट्टे के कारण गंगासागर में जैसे जललहरियाँ उठी थीं, उसी प्रकार राजा के मन में भी विचारों की ऊर्मियाँ उठीं और मन के तट से टकराकर मन-सागर में ही बिला गयीं। फिर काफी देर तक वे गंगावर्त के शान्त जल को और उसमें पड़ रहे नील गगन के प्रतिबिम्ब को देखते रहे। फिर किसी से बातें न करते हुए वे चुपचाप मीनार की सीढ़ियाँ उतरने लगे। इसी समय उनके कानों ने पाचाड़ की हवेली से आनेवाली घण्टा-ध्वनि सुनी। शाम के झुटपुटे में पंछी किलकिलाते हुए अपने घोंसलों की ओर लौट रहे थे।

महाराज सम्भाजी जगदीश्वर के सायंकालीन दर्शनों के लिए मन्दिर की ओर जा रहे थे कि

https://t.me/Sahityajunction

येसाजी कंक और खण्डोजी उनके सामने ही आ गये। वे कुछ कहना चाहते थे, परन्तु महाराज ने उन्हें हाथ के संकेत से ही रोक दिया और वे ऊपर आकाश में उड़ रहे तोतों के झुण्ड की ओर देखने लगे। उनका 'अगुआ' निर्मल नील गगन में झुण्ड के आगे-आगे उड़ रहा था और पीछे-पीछे थे अनगिनत तोते। 'अगुआ' उच्च ध्वनि से चहचहा उठता था। कभी ऊपर जाता था, तो कभी नीचे को गोता लगाता था और कभी मन्द गति से सामने की ओर उड़ने लगता था। उसके तनिक से संकेत पर अनुयायी सैकड़ों तोते एक लय से, एक साथ उड़ते, मँडराते जा रहे थे। फिर अकस्मात् पल झपकने से भी पहले वह अगुआ अपने अनुयायी पक्षियों की गति और साथ की ओर ध्यान न देता हुआ चहचहाता हुआ अकेला न जाने कहाँ आगे चला गया—दूर चला गया। इतनी दूर कि दिखाई भी न दे सके। येसाजी और खण्डोजी के साथ महाराज जगदीश्वर के मन्दिर की ओर जा रहे थे।

खण्डोजी कहने लगे, "रामसेज, इतने बरसों से जमकर मुक़ाबला करनेवाला अपना रामसेज..."

महाराज चलते-चलते रुक गये। खण्डोजी असमंजस में पड़ गये, बात आगे नहीं कह सके।

"रामसेज शत्रु ने जीत लिया, यही कहना है न तुम्हें, चिटनीस?" महाराज ही उनसे प्रश्न पूछ बैठे।

"जी, लड़कर नहीं जीता है, धोखेबाज़ी से जीता है। फूट और छलकपट से जीता है। अपना इतना दृढ़ दुर्ग रामसेज...स्वामी।" खण्डोजी की गरदन झुक गयी। परन्तु अगले ही क्षण उन्होंने गरदन उठायी और मानो महाराज को धीरज बँधाने के लिए कहने लगे, "हरजी का भेजा घुड़सवार आया है, स्वामी। गोलकुण्डा राज्य का पतन होते ही हरजी ने उस राज्य का काफ़ी प्रदेश इसी बीच हथिया लिया है।"

खण्डोजी द्वारा कहे गये शब्द महाराज के कानों तक अवश्य आते थे, पर मन तक नहीं पहुँच पाते थे। सायंकालीन वायु उन्हें उड़ा ले जाती थी। महाराज के मन में तो रह-रहकर घूम रहे थे कौडिल्ला और तोतों का अगुआ। वे सब के साथ मन्दिर के प्रांगण में आये। आज न जाने ऐसा क्यों हो रहा था—महाराज की दृष्टि शिवलिंग की ओर नहीं गयी, ऊपर लटक रही जलहरी में उलझकर रह गयी। वह अभिषेक पात्र वायु से मन्द-मन्द हिल रहा था—जलधारा आज टूट रही थी।

जगदीश्वर के दर्शन के पश्चात् सब लोग उपरिकोट में आये। सूर्य अस्त हो चुका था। गढ़ के लहाना-दरवाज़े में और महादरवाज़े में शाम की नौबत बज रही थी। रात का अँधेरा आने लगा था। इसलिए द्वाररक्षक नित्यनियम के अनुसार द्वार बन्द कर रहे थे। इतने में तलबीड गाँव का एक सवार पाँच-छः साथियों सहित 'महादरवाज़ा' पार करके उपरिकोट में आया। उसके कपड़े पसीने से पूरी तरह भीगे हुए थे। चेहरा एकदम फीका पड़ चुका था। द्वार-रक्षक उसे रोकना चाहता था। परन्तु उसे हाथ से पीछे हटाते हुए वह सवार जैस-तैसे दरवाज़े पार करके उपरिकोट तक आ पहुँचा।

"महाराज कहाँ हैं?" वह हर किसी मिलनेवाले से हाँफते हुए पूछ रहा था। उसके साथी भी उसके पीछे घिसटते-खिंचते चले आ रहे थे। वह सवार सबके साथ ख़ासमहल में घुसा।

महाराज अभी-अभी मन्दिर से लौटे थे। उन्होंने टोप उतारकर तबक़ में रख दिया था। वे

https://t.me/Sahityajunction

लेखाध्यक्ष हणमन्ते को इस बारे में सूचनाएँ दे रहे थे कि सारे अकाल पीड़ित राज्य में कौन-कौन से गढ़ से किस-किस प्रकार अनाज भेजा जाय। येसाजी और खण्डोजी भी इन सूचनाओं को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

इतने में सभागृह के कक्ष की ओर से आनेवाली एक गहरी व्यथाभरी चीख़ ने जैसे सारे ख़ासमहल को ही दहला दिया।

"महाराज, मारे गये हम, मर गये हम।" दिल दहलाने वाली इस करुणाभरी पुकार से सभागृह काँप उठा। आये हुए सवार ने ज्योंही महाराज को देखा, वह एकदम सीधा भूमि पर ही लेट गया और महाराज के पैरों पर सिर रखकर रोने-सिसकने लगा। यह सवार था—शंकराजी मोहिते, तलबीड गाँव का निवासी।

महाराज के भी सिर से पाँव तक रोंगटे खड़े हो गये थे। शंकराजी के कन्धों को थपकते हुए वे जैसे-तैसे पूछ बैठे, "क्याऽ हुआऽ शंकराजी?"

महाराज के हाथ का स्पर्श पाते ही कुछ देर के लिए शंकराजी की घिग्घी बँध गयी। फिर वे जैसे-तैसे टूटे-फूटे शब्दों में कहने लगे, "हम...हम तो अनाथ ही हो गये...यह सारा राज्य अनाथ हो गया महाराज। महाराज...तुम्हारे...तुम्हारे मामासाहब...सब के प्यारे सेनापति...हमारे भाई..." असह्य दुःख के कारण शंकराजी की ग्रीवा इतनी तेज़ी से दायें-बायें को हिलने लगी कि उनकी पगड़ी सिर से फिसलकर नीचे फर्श पर गिर पड़ी, "सेनापति चल बसे, महाराज!!"

सेनापति हम्बीरराव बाई प्रान्त में घुस आयी मुग़ल फ़ौजों को खदेड़ने के लिए गये थे। वहाँ हुई एक ज़ोरदार मुठभेड़ में तोप का एक भारी गोला उनकी चौड़ी छाती से जा टकराया था। इस गोले ने हम्बीरराव की छाती ही टूक-टूक नहीं की, बड़े महाराज द्वारा स्थापित 'श्री' के राज्य की छाती ही छिन्न-भिन्न कर दी थी। भूमि पर गिरने से पूर्व वह परमवीर प्राणों की सारी शक्ति एकत्रित करके चिल्ला उठा था, "महाराज, हमारी ताराऊ का ध्यान रखना। जय वागजाई देवी!" वाई के रणक्षेत्र में गिरे हुए हम्बीरराव रायगढ़ की ओर मुख करके महाराज के चरणों में अन्तिम अभिवादन समर्पित करना नहीं भूले थे।

नीचे ग़लीचे पर लेटे हुए शंकराजी के 'चल बसे' शब्द सुनते ही महाराज ने अपने दोनों हाथों से कान बन्द कर लिये। उनके बन्द नेत्रों के सम्मुख कभी कौडिल्ला, कभी तोतों का 'अगुआ' तो कभी हम्बीरराव के अनेक रूप रह-रहकर नाचने लगे :

'अपनी लाडली बेटी को हम बाल-महाराज की दुल्हन के रूप में दे रहे हैं।' कहने वाले हम्बीरराव; जब हम दरबार में आरोपी बनकर खड़े थे, उस समय 'उस स्त्री को ही गवाही के लिए बुलाया जाय' कहकर हमें सहारा देनेवाले हम्बीरराव; हमें क़ैद करने के लिए आनेवाले सुरनीस अण्णाजी और मोरोपन्त पेशवा को ही क़ैद कर लेनेवाले हम्बीरराव; बरार और बुरहानपुर में धूम मचानेवाले हम्बीरराव; राज्य के सेवक के रूप में सेनापति, परन्तु हमारे पूर्वजन्मों के सुकृतों से प्राप्त हमारे मामाजी हम्बीरराव; मामाजी नहीं, पिता के समान वन्दनीय हम्बीरराव! जाने ऐसी कितनी ही मुद्राएँ उनकी आँखों के आगे नाचने लगीं।

भूमि पर लेटे हुए शंकराजी को उठाने की भी उन्हें सुध नहीं रही। परन्तु शंकराजी को स्वयं ही उठना पड़े और उपस्थित रायाजी, अन्तोजी, येसाजी, खण्डोजी सभी लोग चकरा जाएँ, महाराज का कुछ ऐसा रूप हो गया। मुख को हथेलियों से छिपाकर महाराज सिसकने लगे।

https://t.me/Sahityajunction

सारा शरीर हिल रहा था, आँसू बहे जा रहे थे। ऐसी दशा में सभी हतप्रभ हो गये, कोई किसी से क्या कहता?

'कहा हैं हमारे मामाजी? हमसे बोले बिना, हमसे मिले बिना क्यों चले गये? अब हम किसकी ओर देखें?' आँखों में आँसू भरकर महाराज जैसे शंकराजी से कुछ पूछ रहे थे।

अब तक यह ख़बर पूरे रायगढ़ में फैल चुकी थी। लोगों की भीड़ ख़ासमहल की ओर चली आ रही थी। इसी समय अल्पवयस्का ताराऊ को लेकर येसूबाई वहाँ आयीं। उसे देखते ही महाराज लपककर ताराऊ के पास गये। कुछ बोल नहीं पाये, बस उसकी पीठ सहलाने लगे और येसूबाई की ओर सूनी दृष्टि से देखते रह गये।

फिर अत्यन्त प्रयत्न करके उन्होंने अश्रुधारा को रोका और शंकराजी से कहने लगे, "चलो, हमारे साथ आओ।" महाराज पालकी में बैठ गये और येसाजी, निलोपन्त और खण्डोजी के साथ रात को ही महाड़ घाट की ओर चल पड़े। पालकी के चारों ओर मशालची चल रहे थे। महाराज सम्भाजी सेनापति हम्बीरराव के अन्तिम दर्शनों के लिए जा रहे थे।

हम्बीरराव की अन्त्येष्टि हुई। मामा हम्बीरराव के जाने से राजा सम्भाजी का मन एक भयानक शून्यता से घिर गया। वे किसी से भी बातचीत नहीं करते थे। स्नानादि, स्फटिक-शिवलिंग-पूजा, राजकार्यालय, गढ़-निरीक्षण, भोजन आदि नित्यकर्म भी अनियमित हो गये। कहीं भी, किसी काम में भी उनका मन ही नहीं लगता था। स्नानगृह में स्नान करते समय सिर पर गिरती हुई जलधाराएँ भी उनके विचारों की ज्वालाओं को भड़काती थीं। मस्तक पर सलाई से शिवतिलक अंकित करते समय उन्हें वह सलाई भी लाल-लाल ख़ून से रँगी हुई दिखाई देने लगी। राजकार्यालय में चिटनीस खण्डोजी को ख़लीतों का विषय बतलाते हुए वे कभी-कभी बीच में ही कह बैठते, "रहने दो चिटनीस। किसी को भी कोई ख़लीता मत लिखी। जो लिख लिये हों, वे फाड़ डालो।" भोजन करने बैठते, तो थाली में रखे भोज्य पदार्थों को हाथ लगाकर ही उठ जाते थे। कहीं भी मन नहीं रमता था, सब ओर से जी उचट गया था।

विचार के बाद विचार! विचारों की मार से सम्भाजी का सिर फटा जाता था। 'श्री' का राज्य—क्या अर्थ है इसका? कौन थे आबासाहब? बड़ी आऊसाहिबा, सती माँ पुतलाबाई, समर्थगुरु, कौन थे ये सब? कोंडाजी, कृष्णाजी, मामा हम्बीरराव कौन थे ये? और वे सैकड़ों-हज़ारों शूरवीर सैनिक, जो रण में खेत रहे, कौन थे वे? उन्हें तो हमने कभी देखा भी नहीं। औरंगज़ेब की शरण में जाकर तसलीम करनेवाले शिर्के, निम्बालकर, अचलोजी, अर्जुनजी? कोंकण के विद्रोही जागीरदार? कैसा विचित्र खेल चल रहा है यह शतरंज का? क्यों खेल रहे हैं हम यह खेल? हम न रहेंगे, तो कौन खेलेगा यह खेल? राजाराम? हमारा बालराजा? जैसे आदिलशाही ढह गयी, कुतुबशाही भी धूल में मिल गयी, उसी तरह क्या यह राज्य...? नहीं, नहीं, कभी नहीं। इसकी रक्षा के लिए ही प्राणों की समिधा बना रखी है हमने। अकेले हमारे द्वारा प्राणों की बाज़ी लगाने से ही कैसे काम बनेगा?

रात-दिन एक विचित्र-से एकाकीपन के कारण महाराज का सिर भन्ना उठता था, मन सिहर उठता था। लोग आते ही थे, प्रतिदिन के समान कुछ निवेदन करना चाहते थे, परन्तु महाराज

https://t.me/Sahityajunction

हाथ उठाकर उन्हें रोक देते थे और दो-चार शब्दों में ही बात समेट लेते थे—'बस करो।'...'जो कुछ कहना है, जल्दी कहो।'...'इस बारे में अमुक अधिकारी से मिलो,' इस प्रकार जैसे हर मामला टाल-सा देते थे वे। सभी लोग विचित्र-सी दुविधा में डूबे हुए थे। जैसे चलते हुए हाथी के पाँवों में जंगली बेल उलझ जाने से हाथी थम जाता है, कुछ ऐसा ही हो गया था। महाराज के निकटवर्ती अनेक जनों को यह स्थिति अप्रिय लग रही थी, परन्तु कोई भी उनसे कुछ कहने का साहस नहीं कर पाता था।

एक दिन महाराज इसी तरह दोपहर को भोजन करने बैठे और जब वे थाली की वस्तुओं को छितराकर उठने लगे, तो येसूबाई से रहा नहीं गया। वे पूछने लगीं, "आजकल श्रीमानजी का किसी भी काम में मन नहीं लगता। यह भोजन करने का कैसा ढंग है? कितने दिन चलेगा यूँ ही?"

जूठे हाथ को फिर थाली से लगाते हुए महाराज कहने लगे, "हमें भी कुछ समझ नहीं आता कि ऐसा क्यों हो रहा है? तुमने एक बार कहा था—हमारे भाई और हमारे पिताजी ही हमसे रूठकर चल दिये। अब हमारे मायके शृंगारपूर से हमारा नाता टूट गया। हमें भी आज ठीक वैसा ही अनुभव हो रहा है—जैसे हमारा हमारा भी सब कुछ कहीं खो गया है।" महाराज चौकी पर बैठे-बैठे झरोखे में से बाहर दूर पर दीखने वाले पर्वत शिखर और पर्वतीय दुर्गों को देखने लगे।

इतनी स्पष्ट और ठेठ बात सुनकर येसूबाई भी चुप हो गयीं। वे कहतीं भी तो क्या? वे स्वयं अनुभव कर रही थीं कि बागलाण से लेकर जिंजी तक फैला हुआ सारा राज्य सेनापति के महाप्रस्थान के कारण सचमुच उजड़ गया है।

महाराज भोजन-कक्ष से बाहर आये और उन्होंने रामचन्द्रपन्त को बुलावा भेजा। रामचन्द्रपन्त शंकराजी के साथ उनसे मिलने आये। शंकराजी अपने प्रदेश का एक मामला कुछ सकुचाते हुए पेश करने लगे, "देवरुख नगर का पिलाजी देसाई रायगढ़ आया है, स्वामी। जागीर के बारे में उसकी कोई शिकायत...।"

"बस करो शंकराजी, तुम ही उसकी शिकायत सुन लो और जो उचित समझो, निर्णय कर दो। हमारे...हमारे सामने मत लाओ किसी को।" महाराज ने बात काटकर मामला वहीं समाप्त किया। पुनः कक्ष में ऐसी शान्ति छा गयी जो सब को व्याकुल करने लगी।

"तुम कोंकण कब जा रहे हो, रामचन्द्रपन्त?" महाराज ने पूछा।

"जी, आज ही रवाना हो रहे हैं हम।" रामचन्द्रपन्त प्रश्न का उद्देश्य समझ नहीं पाये।

"जाते हुए खेलणा होते हुए जाओ। रास्ता थोड़ा लम्बा तो अवश्य पड़ेगा, परन्तु तुम अवश्य जाओ। वहाँ कवि कुलेश हैं, उनसे कहो कि हमने उन्हें अतिशीघ्र बुलाया है।"

"जी, हम स्वयं अवश्य जाएँगे और आपका सन्देश कहेंगे।" रामचन्द्रपन्त सभागृह से बाहर जाते समय सोचते जा रहे थे कि जाने महाराज के मन में कौन-सी राजनीति है। रामचन्द्रपन्त, शंकराजी अथवा स्वयं महाराज को भी यह पता नहीं था कि मराठा सेनापति की मृत्यु का समाचार औरंगज़ेब तक पहुँच चुका है और विजित गोलकुण्डा क़िले में बादशाह ने एक शानदार 'सम्मान-दरबार' भी आयोजित किया है।

कुतुबशाही राज्य पर विजय प्राप्त करने में औरंगज़ेब के मुग़ल-सरदारों ने और बीजापुर के

https://t.me/Sahityajunction

सरदारों ने भी भाग लिया था। औरंगज़ेब ने इस सब सरदारों को 'मनसब' दी तथा उन्हें 'ख़िलअती पोशाक' पहनायी। सबके बाद उसने शहज़ादा मुहम्मद आज़म को भी ख़िलअत पहनायी और सारे दरबारियों के सामने उसने कहा, "शहज़ादे, हम तुम्हें ये ख़िलअत पहना रहे हैं। उम्मीद करते हैं कि तुम उस लईम सम्बा को नेस्तनाबूद करके दिखाओगे। हम बड़ी बेसब्री से तुम्हारी फ़तह का इन्तज़ार करेंगे।"

घुटने टिकाकर अपने अब्बाजान के महीन-मुलायम अँगरखे को चूमते हुए आज़म ने उन्हें दिलासा दिया, "बेफ़िक्र रहिए, अब्बाजान। हम लईम सम्बा को ज़िन्दा या मुर्दा लाकर आपके सामने पेश करेंगे।"

अब औरंगज़ेब की फ़ौजें मराठा प्रदेश की ओर बढ़ने लगीं। बेलगाँव, मिरज, अकलूज आदि पूर्व दिशा के सीमावर्ती नगरों में मुग़ल-छावनियाँ लग गयीं। मातबर ख़ाँ ने पहले ही हमले में पट्टागढ़ क़िला जीत लिया। बादशाह के रुहुल्ला ख़ाँ, रणमस्त ख़ाँ, नेकनाम ख़ाँ आदि लगभग बीस पठान-सरदार जगह-जगह फैल गये। ये सरदार 'ख़िलअत' और 'मनसब' का प्रलोभन दिखाकर गाँवों-बस्तियों में फैले हुए मराठा सरदारों को पुचकारने लगे। रायगढ़ में ऐसी फूट की अथवा शत्रु से जा मिलने की ख़बरें हर दिन आ रही थीं।

आदेश पाकर कवि कुलेश रायगढ़ आ पहुँचे। वे भी यह सोच-सोचकर थक चुके थे कि उनको बुलाने का प्रयोजन क्या होगा। दोपहर को शान्त समय में वे महाराज के सामने उपस्थित हुए।

"सेनापति की मृत्यु का समाचार हमने सुना है, स्वामी। आपका आदेश मिलते ही हम तुरन्त सेवा में उपस्थित हो गये हैं।" हम्बीरराव की स्मृति से कुलेश का दिल भर आया था।

"हमने तुम्हें इसी कारण याद किया है, कविजी। हमें लगता है...लगता है कि..." विचारों में खोये हुए महाराज इधर-उधर घूम रहे थे और हथेलियों को रगड़कर जैसे समस्या का हल पाना चाह रहे थे।

महल के बैठक-कक्ष के बाहर प्रहरी घूम रहे थे। भीतर अन्तःपुर में येसूबाई रूपा दासी को कुछ बतला रही थीं। सूरज बीच आकाश में चढ़ आया था और दुपहरी में खण्डोजी तथा अन्य मन्त्री मन्त्री-बाड़ी में अपनी-अपनी हवेलियों में बैठकर औरंगज़ेब की आगामी चालों के बारे में विचार-विमर्श कर रहे थे।

"कुलेऽश..." काफी देर ठहरकर महाराज ही स्वयं कहने लगे, "हमें लगता है...हमें अनुभव होता है कि कहीं न कहीं कुछ शक्ति का अभाव-सा है। सेना की शक्ति का नहीं, आशीर्वाद की शक्ति का अभाव है।"

सुनकर कुलेश भी विचार-मग्न हो गये। बोले, "स्वामी का क्या आदेश है?"

"मनुष्य के सिर पर किसी दैवी शक्ति का आशीर्वाद होना चाहिए, कुलेश। हम पर अब वैसा ही घोर संकट आ पड़ा है कि जैसा आगरा में आया था। इस स्थिति में तुम्हारी क्या सलाह है?"

"धार्मिक मठों-मन्दिरों की सुव्यवस्था के विषय में तो आप सदैव ध्यान रखते हैं, स्वामी। फिर

https://t.me/Sahityajunction

भी हम सोचते हैं कि आपको किसी कठोर उपासना की आवश्यकता है।"

"कठोर उपासना? कैसी उपासना? हम कोई भी कठोर से कठोर उपासना करने के लिए तत्पर हैं।"

"जी, देवी की उपासना! शाक्त-सम्प्रदाय की आराधना...परन्तु..." कुलेश हिचकिचाने लगे।

"कहो, क्या कठिनाई है?" महाराज ने उसकी कनौजी पगड़ी की ओर देखते हुए पूछा।

"स्वामी, आपका अभिषेक हुआ है। यह गढ़ अभिषेक-स्थान है। आपको इस स्थान को छोड़कर कहीं अन्य स्थान पर जाना पड़ेगा।"

महाराज कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले, "अच्छा, ठीक है। हम गढ़ छोड़कर अन्यत्र जाएँगे। गांगोली जाएँगे अथवा संगमेश्वर चले जाएँगे। परन्तु तुमने जो कठोर उपासना कही है, वह क्या है?"

"स्वामी, इस उपासना में रणचण्डी को प्रसन्न किया जाता है। उसके सामने बलि देनी पड़ती है। उपवास रखना पड़ता है, विविध पूजाएँ करनी पड़ती हैं और..."

"और...क्या? बोलो कुलेश, हम कुछ भी करने को तैयार हैं।"

"चरणोदक पान करना पड़ता है। परन्तु जैसा अन्य देवताओं का चरणोदक होता है, वैसा नहीं। इस उपासना में मद्यपान आवश्यक है, यही चरणोदक है। परन्तु राजासाहब यदि मद्यपान करेंगे, तब तो होहल्ला मच जाएगा इसलिए..."

"कुलेश, तुमने जिस उपासना का वर्णन किया है, हम वह अवश्य करेंगे। तुम्हें शायद मालूम न हो, परन्तु जब हम दिलेर ख़ाँ से जा मिले थे, और जब से हमारी पत्नी और बहन शत्रु की क़ैद में अटक गये हैं, तबसे हम कभी-कभी मद्यपान करते हैं। केवल इस मद्यपान की बात को लेकर ही यदि होहल्ला मचता है, तो कोई बात नहीं। तुम चण्डी की उपासना की तैयारी करो। हम कल ही रायगढ़ से उतरकर गांगोली की ओर रवाना हो जाएँगे।"

"जी, इस उपासना के उपचार और पूजा-अनुष्ठान के विषय में शृंगारपूर के शिवयोगी ही विशेषज्ञ हैं।"

शृंगारपूर का नाम सुनते ही महाराज के माथे पर बल पड़ गये। फिर भी उन्होंने कहा, "उन्हें बुलवा लो। अब मन में इच्छा उत्पन्न हुई ही है, तो उपासना भी पूरी कर ही लेनी चाहिए।"

कुलेश उपासना की तैयारी के लिए चले गये। महाराज की आँखों के आगे जैसे साक्षात् शस्त्रधारिणी रणचण्डी की मूर्ति ही आ खड़ी हुई थी।

हरजी राजा की सेनाएँ कर्नाटक में घुसी हुई मुग़ल सेनाओं के छक्के छुड़ाने में डटी हुई थीं। हरजी के आदेश से सन्ताजी ने बीस हज़ार सैनिक साथ लेकर काँजीवरम् पर धावा बोल दिया। जो मुग़ल सेनाएँ मद्रास के पास तक आ पहुँची थीं, उनके साथ भी हरजी की सेना की स्थान-स्थान पर ज़ोरदार मुठभेड़ें हो रही थीं। बाँदीवाश के युद्ध क्षेत्र में तो दोनों सेनाओं के बीच दूसरी बार बड़ी ज़ोरदार लड़ाई हुई थी।

भागानगर से निकलकर शहज़ादा आज़म बेलगाँव आ पहुँचा। वहाँ के उस मैदानी क़िले को

https://t.me/Sahityajunction

उसने आख़िर जीत ही लिया, जिसकी रक्षा के लिए हम्बीरराव जी-जान लड़ाते रहे थे।

औरंगज़ेब की युद्धनीति अब स्पष्ट हो चुकी थी। वह स्वयं बीजापुर और गोलकुण्डा के प्रदेश में घूम रहा था और उसने अपनी शक्तिशाली सेनाएँ कर्नाटक की ओर भेज दी थीं। मराठा-प्रदेश में आज़म को नियुक्त करके उसके साथ अपने बीस पठान सरदार भी उसने जहाँ-तहाँ फैला दिये थे।

महाराज कवि कुलेश के साथ गांगोली जाने के लिए तैयार हो चुके थे। रायाजी और अन्तोजी ने सोचा था कि सदा की भाँति महाराज उन्हें साथ लेंगे ही, परन्तु महाराज ने उन्हें रायगढ़ में ही रहने की आज्ञा दी। केवल व्यक्तिगत सेवा के लिए पूरुषा नामक सेवक को उन्होंने अपने साथ लिया। इसके अतिरिक्त कुलेश की हवेली के बीस चुनिन्दा सेवक भी उनके साथ थे।

पाचाड़ से निकलने से पूर्व बड़ी आऊसाहिबा की समाधि के दर्शन करके महाराज हवेली के सभागृह में आये। वहाँ उनका ध्यान गया कि वहाँ के घड़ियाल के बीच में हमेशा की तरह लंगर लटका हुआ नहीं है। इसलिए हवेली के प्रबन्धक हिरोजी इन्दुलकर से उन्होंने पूछा, "हिरोजी, यह घड़ियाल खाली क्यों है?"

हिरोजी घड़ियाल की ओर देखते हुए उत्तर देने लगे, "जी, बात यह है कि घड़ियाल चारों ओर से तड़क गया है। वह तड़क ऊपर से दिखलाई नहीं देती। इसलिए वह बीच का लंगर उतारकर रख दिया है।"

महाराज और कुलेश कितनी ही देर तक इस खाली घड़ियाल की ओर ही देखते रह गये। घड़ियाल शान्त लटका हुआ था, परन्तु महाराज के मन में जिजाऊ की स्मृतियों का नाद उच्च स्वर से टनटना रहा था। वे पाचाड़ के लोगों से विदा होकर कुलेश के साथ ग्रामद्वार से बाहर निकल पड़े।

रायगढ़ में रहते समय उन्होंने निलोपन्त, येसाजी, मोरेश्वर, खण्डोजी आदि सभी को अपने-अपने विभागों के सम्बन्ध में आवश्यक आदेश दिये थे, परन्तु वे कहाँ जा रहे हैं, यह उन्होंने किसी को नहीं बताया था। यहाँ तक कि येसूबाई से भी यह बात उन्होंने छिपाये रखी थी। गांगोली के सूबेदार को महाराज के आने की सूचना भेजी जा चुकी थी। उधर कवि कुलेश ने भी शृंगारपूर के शिवयोगी को सन्देश भेज दिया था और सन्देशवाहक के हाथ ही महाराज की 'कठोर उपासना' के संकल्प की भी सूचना भिजवा दी थी। गांगोली गाँव अब दूर पर दिखलाई देने लगा था। गंगोली—बालराजा 'शिवाजी' का जन्मस्थान था, येसूबाई का प्रिय ग्राम था। महाराज के आने का समाचार पाकर वहाँ के नौकरों ने वहाँ की ख़ास हवेली को सुन्दर रीति से सजाया-सँवारा था। शिवयोगी वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे और अब वे शिष्यगण सहित महाराज के स्वागत के लिए उपस्थित थे। उन्होंने हवेली के भीतरी भाग के एक कक्ष में रणचण्डी की मूर्ति की पूर्वाभिमुख स्थापना की थी। उसके सामने ही एक यज्ञकुण्ड का निर्माण किया गया था। यत्र-तत्र व्याघ्र चर्म बिछाये हुए थे।

राजकर्मचारी, शिवयोगी, शिष्य गण और कवि कुलेश के साथ महाराज हवेली में पधारे और सभागृह में विशेष रूप में तैयार की गयी बैठक पर आसीन हो गये। शिवयोगी ने चिपलूण, राजापुर, संगमेश्वर, देवरूख आदि स्थानों से आमन्त्रित शाक्त-सम्प्रदाय के कई तान्त्रिकों का महाराज से परिचय कराया। मेघों ने सब ओर से सूर्य को घेर लिया।

https://t.me/Sahityajunction

महाराज हुंकारी भरते हुए शिवयोगी की बातें सुन रहे थे। परन्तु उनके मन में अभी तक मँडरा रहा था औरंगज़ेब। कभी-कभी येसूबाई और धाराऊ की स्मृति भी आकर झाँक जाती थी। धाराऊ के वचन तो उनके कानों में इस प्रकार गूँज रहे थे, मानो कल ही सुने हों—'तू अब भी छोटा बच्चा ही है। जिस जगह गृहस्थी के बेटी-बेटे पैदा हुए हों, उसी जगह अगर देह छूटे तो जीवन धन्य हो जाता है। इसलिए बेटे, इतनी इच्छा पूरी कर मेरी। मुझे अपने गाँव जाने दे।'

हवेली के राज कर्मचारी ने शिवयोगी के आदेशानुसार पहले से ही उपासना की पूरी तैयारी कर रखी थी। उसने सारी हवेली के चारों ओर नंगी तलवारें ताने घूम रहे प्रहरियों का घेरा लगवा दिया था। अब देर थी शिवयोगी द्वारा घोषित किये जानेवाले 'शुभ मुहूर्त' की। उस 'शुभयोग' पर कठोर उपासना का प्रारम्भ किया जाना था।

इसी बीच कुलेश का एक कर्मचारी उनसे मिलने मलकापुर से गांगोली आ पहुँचा। मलकापुर के तुलाजी देसाई के विरुद्ध कोई शिकायत लेकर आया था वह। कवि कुलेश ने स्वयं ही देसाई के नाम एक कठोर चेतावनी से भरा पत्र लिखा और कर्मचारी को तुरन्त वहाँ से रवाना कर दिया।

पता नहीं, 'आशीर्वाद' की कौन-सी शक्ति कम थी और न जाने वह रणचण्डी उस राजा को किस रूप में 'शक्ति' प्रदान करनेवाली थी! दूर—बहुत दूर स्थित तुलजापुर की माता जगदम्बा भी इस समय गांगोली की ओर देख रही थी—आँखें गड़ाकर।

---

1. गोलकुण्डा के निकटवर्ती हैदराबाद शहर का पुराना नाम।

https://t.me/Sahityajunction

बारह

ग्रीष्मऋतु की तीव्रता बहुत बढ़ी हुई थी। गांगोली के ऊसर पथरीले मैदानों में गर्म हवाएँ बह रही थीं। यहाँ-वहाँ जो आम और बड़ के पेड़ थे, प्यासी गाय-भैंसें उनके बीच आसरा पाने भागी जाती थीं।

शिवयोगी द्वारा खोजे गये मुहूर्त में देवी के सम्मुख शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार 'शक्ति' का आह्वान करनेवाले अनुष्ठान किये गये। यह उपासना कठोर तो थी ही, साथ ही इसके लिए एकान्त की भी आवश्यकता थी। इसलिए हवेली में सब लोगों के लिए प्रवेश की मनाही कर दी गयी थी। इस अनुष्ठान द्वारा उस प्रलयंकर शिव का आह्वान किया जाना था, जिनकी कृपा से शक्ति का वर प्राप्त होना था। शाक्त सम्प्रदाय की तान्त्रिक विधियों से बलि भी दी जानी थी। मन्त्रपाठ के बीच यज्ञ कुण्ड में अग्निदेवता को हवि और समिधा समर्पित की जानी थी।

राजा के लिए यह आवश्यक था कि वे अपने 'राजा' रूप को सर्वथा भुलाकर स्वयं को केवल देवी का उपासक समझें और शान्त तथा स्थिर मन से 'शक्ति' का आह्वान करें। इस उपासना का उद्देश्य यह नहीं था कि धन-सम्पत्ति, गढ़-दुर्ग आदि प्राप्त हों अथवा उनमें वृद्धि हो। उद्देश्य था—युद्ध में अन्ततः विजय की प्राप्ति, अन्तिम निर्णायक युद्ध में सफलता। कालसर्प के समान जो कुछ भी अशुभ-अमंगल था, उसे विधिपूर्वक देवी के चरणों में अर्पित कर देना था।

महाराज ने इस उपासना के निमित्त अपना राजसी पहनावा उतार डाला और भगवे वस्त्र धारण कर लिये। राजटोप भी उतार डाला और बालों को बिखरा हुआ छोड़ दिया। फिर जब उन्होंने दर्पण में अपना यह रूप देखा, तो उन्हें अपने ही बचपन का वह रूप याद आ गया, जब वे केसोपन्त त्रिमल के साथ मथुरा से निकले थे। 'इस बीच कितना समय बीत गया! उस समय औरंगज़ेब के बन्दीख़ाने से निकलने के लिए हमें इस प्रकार की भगवी कफ़नी पहननी पड़ी थी। आज भी वही औरंगज़ेब है, वे ही भगवे वस्त्र हैं।'

महाराज पूजा-अनुष्ठान के लिए बैठे। शिवयोगी के आदेशानुसार उन्होंने सब विधियाँ पूरी कीं। और हाँ—चरणामृत के रूप में मद्य भी पिया। प्रतिदिन हवेली में भिन्न-भिन्न विधियाँ सम्पन्न हो रही थीं। प्रतिदिन उपासना के समाप्त होने पर कुलेश तथा शिवयोगी के साथ महाराज नाव में बैठकर गाँव की सीमा के निकट स्थित एक दह में नौका-विहार करते थे।

https://t.me/Sahityajunction

इस कठोर उपासना के कारण महाराज प्रतिदिन के साथियों और सेवकों से बहुत दूर जा पड़े थे। स्वयं कुलेश भी इस विषय में चौकस थे और किसी को भी महाराज से मिलने नहीं देते थे। इस प्रतिबन्ध में उनका अन्य कोई हेतु नहीं था, तथापि कई जनों को यह अनुभव हो रहा था कि महाराज कुलेश की मुट्ठी में समा गये हैं। शिवयोगी के शिष्य जब बीच-बीच में गांगोली से शृंगारपूर लौटते थे, तब वे महाराज की उपासना के विषय में यहाँ-वहाँ कहते फिरते थे। परिणाम यह था कि वे ख़बरें हवा पर सवार होकर गणोजी शिर्के की कोठी में भी पहुँच रही थीं।

दूब की जड़ें जैसे फैलती हैं, इसी प्रकार चारों ओर अफ़वाहें फैल गयीं—'कवि कुलेश ने राजा को बस में कर लिया है'...'महाराज पूरे पियक्कड़ बन गये हैं'...'कनौजिया ब्राह्मण किसी को महाराज से मिलने भी नहीं देता...'

ग्रीष्म ऋतु में दो-चार बार ज़ोरदार आँधियाँ आयी थीं। एक-दो बार बे-मौसमी तेज़ बरसात भी हो गयी थी। एक दिन इसी तरह वर्षा हुई थी और गीली मिट्टी की मादक सुगन्धि सब ओर फैल गयी थी। महाराज हवेली के सभागृह के निकट बाँधे हुए एक तख्तदार झूले पर बैठे थे। निकट ही कुलेश एक गोल खम्भे से लगे हुए खड़े थे। मिट्टी की वह सोंधी महक जब महाराज की नासिका तक पहुँची, तब वे कवि कुलेश से कहने लगे, "कविराज, इस धरती पर ऐसी न जाने कितनी बरसातें पड़ी होंगी! यह मिट्टी गर्म क्यों होती है? और यह, वर्षा उसकी तपन बुझाने क्यों आ जाती है? यह मदमाती प्यारी महक इस मिट्टी से क्योंकर निकलती है? इन सबका रहस्य या तो यह धरती बता सकती है अथवा वह गगन। हम जिस शक्ति की उपासना कर रहे हैं, क्या वह भी हम पर कृपा की वर्षा करेगी? क्या हमारे जीवन की धरती से भी कभी सोंधी महक उठेगी?"

कुलेश तो कवि थे, दार्शनिक नहीं थे, वे राजा के वचन सुनते ही रह गये। जब उन्हें उन प्रश्नों का उत्तर नहीं सूझा, तो विषय बदलते हुए वे कहने लगे, "स्वामी, हमने सुना है कि लोगों में आपके और हमारे विषय में कुछ सन्देह फैल गया है। प्रजा कहती है—हमने आपको...मुट्ठी में बन्द कर लिया है।"

महाराज के झूले का झोंका एकदम रुक गया। वे आँखें गड़ाकर कुलेश की ओर देखने लगे। फिर झट से कुलेश से ही पूछने लगे, "तुम्हें क्या लगता है? क्या तुम्हारी मुट्ठी में इतना दम है?"

"यह क्या कह रहे हैं आप, स्वामी?"

"जो लोग हमारे और तुम्हारे बारे में ऐसी बातें करते हैं, हमें उन पर तरस आता है। हमारे आबासाहब कितने शक्तिशाली थे, पर जब हमारी उमंग का सोता फूटा, तो हम उनके बाँध को भी फोड़कर बह निकले थे। कितना ताक़तवर था दिलेर ख़ाँ, पर हमें तो वह भी मुट्ठी में नहीं रख सका। हमें मुट्ठी में कर लेने की शक्ति तुममें है, ऐसा जो लोग समझते हैं, उन्हें हम क्या कहें? कुलेश, समुद्रमन्थन से निकले हुए हलाहल को जिस शिवशंकर ने पी लिया, उस 'नीलकण्ठ' को संसार ने कभी समझा ही नहीं। लोग यह क्यों नहीं समझते कि उस विषपायी महादेव के जीवन में भी एक 'पार्वती' थी।"

येसूबाई की स्मृति आने के कारण महाराज फिर से झूले को झोंका देने लगे।

मृगनक्षत्र के आते ही बरसात की झड़ियाँ लग गयीं। यह महाराज का सामान्य नियम था कि वे

https://t.me/Sahityajunction

प्रतिवर्ष वर्षाऋतु के प्रारम्भ में कहीं भी हों, तुरन्त रायगढ़ पहुँच जाते थे। परन्तु इस बार ऐसा नहीं हुआ। अतः यह स्वाभाविक ही था कि येसूबाई, निलोपन्त, येसाजी कंक और चिटनीस खण्डोजी रायगढ़ में बड़ी व्यग्रता से उनकी प्रतीक्षा करें।

कुलेश गांगोली के सभागृह में महाराज के सम्मुख उपस्थित थे। उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य की भावना से उन्होंने निवेदन किया, "स्वामी, वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गयी है। अब रायगढ़ लौटना उचित है। सब लोग आपकी प्रतीक्षा करते होंगे।"

"कविराज, आज लोग हमारा साथ छोड़ते जा रहे हैं, परन्तु यह बरसात हमारा साथ नहीं छोड़ेगी। यह बरसात हमारी साथी बनकर औरंगज़ेब की सेनाओं को जहाँ-तहाँ रोके रखेगी। तुम उपासना के लिए इससे भी अधिक योग्य स्थान की खोज करो।" वास्तव में स्थिति यह थी कि महाराज की रायगढ़ लौटने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। प्रत्येक क्षण बस यही जी चाहता था कि यहीं पर जितनी भी सेना जमा की जा सके, की जाए, और सीधा औरंगज़ेब की छावनी पर टूट पड़ा जाए।

महाराज की बातें सुनकर कुलेश भी चकरा गये। वे सोचते थे—'क्यों यह उपासना की बात सुझायी हमने?' परन्तु अब मार्ग भी क्या था? राजा की इच्छा तो राजा की आज्ञा के समान ही होती है। उन्होंने अपने कुछ लोगों को संगमेश्वर भेज दिया। वे लोग यह जानकारी लाये कि संगमेश्वर में देसाई की हवेली उपासना के लिए योग्य स्थान है।

राजाज्ञा के कारण कुलेश और शिवयोगी संगमेश्वर गये। उन्होंने वहाँ भी शाक्त-सम्प्रदाय की उपासना के लिए व्यवस्था की। अब महाराज बरसात-भर कभी गांगोली, तो कभी संगमेश्वर रहने लगे। शृंगारपूर और शिरकाण प्रदेशों में शिर्के परिवार के लोगों ने यह अफ़वाह फैला दी कि 'कुलेश औरंगज़ेब का आदमी है। वह राजा सम्भाजी के पास रहकर बादशाह की ओर से फूट का जाल फैला रहा है।'

स्वयं कवि कुलेश भी उलझन में फँस गये थे। महाराज अब स्वयं ही अकेले पड़ते जा रहे थे। वे शाक्त-तन्त्रविद्या के अनुसार सब विधियाँ विधिवत् पूर्ण कर रहे थे। वे जिसे चरणोदक समझकर पान कर रहे थे, उस महापान की मात्रा भी बहुत बढ़ गयी थी। मद्य के उस मादक नशे में डूबकर उन्हें वह आवश्यक एकाकीपन मिल जाता था, जिसकी वे खोज में थे। उस अवस्था में उनकी बन्द आँखों के सामने से कितने ही दृश्य सरकते जाते थे। वे किसी को भी अपने सामने ठहरने नहीं देते थे, यहाँ तक कि कुलेश को भी नहीं। वर्षा की अधिकता के कारण नदी-नाले उफनकर बह रहे थे। गांगोली और संगमेश्वर दोनों ही स्थान वर्षाऋतु में अति दुर्गम थे, अतः उन गाँवों का रायगढ़ से सम्पर्क लगभग टूट गया था। रायगढ़ में महारानी और पेशवा की आज्ञा से निर्णय, सूचनाएँ आदि राजकार्यालयीन कामकाज हो रहा था।

सम्भाजी को गांगोली गये दो महीने हो चुके थे। रायगढ़ के लोग अब घबरा उठे थे। राजा की ओर से यदि कोई सन्देशवाहक आता भी था तो वह केवल राजा के कुशाल-क्षेम का समाचार ही लाता था। शिवयोगी और कुलेश भी उनसे निरन्तर रायगढ़ वापस लौटने की प्रार्थना कर-करके थक चुके थे परन्तु महाराज किसी की सुनते ही नहीं थे। किसी से बात भी नहीं करते थे।

उस 'शम्भू' के शरीर में निवास करनेवाली 'भोसले-वंशीय' आत्मा बार-बार उस प्रलयंकर शिव को 'शक्ति' के रूप में पुकार रही थी—स्वयं टेर लगानेवाले को भी अपने जीवन का कोई

https://t.me/Sahityajunction

ओर-छोर नहीं मिल रहा था। आत्मा के भीतर ही भीतर कोई संवाद चल रहा था—एक गूढ़ संवाद। कैसा था वह संवाद?

'पुरन्दर? वह स्थान जहाँ हमने पहली बार इस जगत के दर्शन किये। सासवड नगर के निकट और करहा नदी के तट पर बसा हुआ पुरन्दर। कवि सोपानदेव की समाधि बनी है जहाँ पर। वहाँ हमने जन्म पाया। तब से लेकर यह देह, ये पग कहाँ-कहाँ नहीं घूमे! हमारी जन्मदात्री माता की तो स्मृति हमें है ही नहीं। परन्तु उस जननी के अभाव की पूर्ति करने के लिए आ गयीं बड़ी आऊसाहिबा और धाराऊ। कैसा संयोग है यह? हम आबासाहब और धाराऊ के अन्त समय में उनके दर्शन भी नहीं पा सके। बड़ी आऊसाहिबा ने हमारे सामने पाचाड़ की हवेली में देह त्यागी। सती माँ पुतलाबाई का हमें ही अपने हाथों से अग्निकर्म करना पड़ा। सोचते हैं, यदि हम त्रिमल के साथ मथुरा से राज्य की ओर आते समय मुग़ल पहरेदारों के पंजे में फँस जाते, तो? यदि हमारे विरुद्ध किये गये षड्यन्त्र में हम विष के शिकार हो जाते, तो क्या होता? यह जीवन भी कितनी बार मृत्यु की डरावनी काली छाया से होकर गुज़रा है!

'दुर्गों के स्वामी होने का, शस्त्रागारों का, कोषागार का लोभ समाया हुआ था क्या हमारे मन में? या हमें हवस थी राजसिंहासन पर बैठने की! हम्बीरराव ने अपनी सगी बहन का भी विरोध किया और हमारी पीठ पर रहे, क्यों भला? हमारे एक बार प्रार्थना करते ही उन्होंने अपनी लाडली बिटिया का ब्याह राजाराम से कर दिया, क्यों? शहज़ादा अकबर और मिरबात ख़ाँ हमारे आश्रय में क्यों आये? किसलिए? समर्थगुरु ने कहा था—'उनसे भी आगे बढ़ जाओ।' हमने उनकी बात पर विश्वास किया था? नहीं, बिलकुल नहीं। क्योंकि हम भली भाँति जानते हैं कि आबासाहब थे शरीर, हम तो केवल उनकी छाया मात्र हैं।

'औरंगज़ेब यदि आबासाहब के राज्य करते समय दक्षिण देश में इसी प्रकार विशाल सेना लेकर चढ़ आता, तो क्या आबासाहब उससे हार मानकर उसकी शरण में चले जाते? असम्भव है यह। हमने अपनी प्यारी पत्नी दुर्गाबाई को खो दिया। परन्तु आज भी मन कहता है कि ऐसी नौबत किसी शत्रु पर भी न आये। क्यों लगता है ऐसा?

'क्या वह युद्ध औरंगज़ेब का और आबासाहब का व्यक्तिगत संघर्ष था? क्या हमारा यह युद्ध भी औरंगज़ेब की और हमारी व्यक्तिगत छीना-झपटी है? बिलकुल नहीं। यह संघर्ष है, यह लड़ाई है, दो प्रवृत्तियों के बीच। पर हमें अकेले को ही ऐसा क्यों अनुभव हो रहा है? बड़े-बड़े सूरमा भी इस राज्य को छोड़कर भागे जा रहे हैं और ऐसे मिटते जा रहे हैं, जैसे पानी में मिट्टी के ढेले! क्या वे यह सोचते हैं कि यह राज्य अथवा यह दौलत केवल 'भोसलों' की है? दशहरे के नवरात्र में हमने जगदम्बा के गायक-भक्त को गीतों में उस जगदम्बा को दुहाई देते हुए सुना है—कब तक बाट निहारूँ तेरी—कर स्वीकार माँ, थाली मेरी!

'मनुष्य किसकी शक्ति पाकर जीता है इस जगत में? किसकी प्रेरणा पाकर वह बार-बार गिरता-उठता रहता है? आज इस शक्ति का अभाव हो गया, ऐसा हमें क्यों अनुभव हो रहा है?

'हमारे मामा साहब हम्बीरराव चल बसे, क्या इस कारण? या फिर हमारे राज्य के पड़ोसी दोनों शाहों की पराजय हो गयी, इसलिए? सब एक होकर खड़े हो जाएँ, तो भी शायद औरंगज़ेब को हरा न सकेंगे, ऐसा सोचकर हमारे अपने लोग ही साथ छोड़कर भागे जा रहे हैं। क्यों? क्यों हो रहा है ऐसा?'

https://t.me/Sahityajunction

प्रश्न के बाद प्रश्न-सूत्र टूटता ही नहीं था। उत्तर मिलता नहीं था। बाहर आषाढ़ की वर्षा मावल-खण्ड की मिट्टी को धुन रही थी।

"तुम छन्दोगामात्य हो या 'कुल-इख्तियार' हो, तो हम भी महारानी हैं। पेशवा भी यहाँ हैं। बरसात होते हुए भी शत्रु की सेनाएँ हमारे राज्य में घुड़दौड़ लगा रही हैं। सुरक्षित और दृढ़ दुर्गों को शत्रु ने घेर रखा है। और तुम...तुम हो कि 'श्रीमान्‌जी' को रायगढ़ से भगा ले गये—भोग-विलास करने के लिए? कैसे हुई तुम्हारी ये हिम्मत?" रायगढ़ के अन्तःपुर में अत्यधिक क्रोध और सन्ताप के कारण महारानी का शरीर थरथरा रहा था। दासियों ने आज उनका ऐसा क्रोधी रूप पहली बार ही देखा था। वे भी भय से थर्रा उठी थीं।

महारानी के सामने खड़े हुए कवि कुलेश महारानी की फटकार सुनकर थर-थर काँपने लगे। उन्हें कोई उत्तर नहीं सूझा। वे केवल सिर नीचे झुकाकर खड़े रहे। उनके कन्धे पर पड़ा हुआ गुलाबी किनारी वाला दुपट्टा भी काँप रहा था। येसूबाई ने विशेष हरकारा भेजकर उन्हें संगमेश्वर से बुला लिया था और आते ही उन्हें डाँट-फटकार सुनानी शुरू कर दी थी।

"परन्तु महारानी जी, हमारी सुनिए...हम..." कुलेश कुछ कहना चाहते थे, परन्तु महारानीजी उन्हें बोलने नहीं देती थीं। वे आवेश में आकर जैसे स्वयं ही कहती जा रही थीं, "चण्डी ने दर्शन दिया क्या? मिल गया क्या तुम्हें उसका आशीर्वाद? हमारे आबासाहब ने भी कभी की थी ऐसी उपासना? उन पर ही क्या-क्या संकट नहीं आये थे! तुम अपने आपको 'कवि' कहलाते हो, यह 'असुर' कैसे बन गये तुम?"

जो अफ़वाहें फैली हुई थीं, वे येसूबाई के कानों तक भी पहुँच चुकी थीं। उन्हें सुनकर वे आगबबूला हो उठी थीं। बोलते-बोलते ही वे बीच में रुककर कुलेश की ओर देखती थीं। संशय भरी दृष्टि से कुलेश के भीतर छिपे भाव को खोजना चाहती थीं। 'कुलेश बादशाह का आदमी है'—यह विषैली ख़बर उनके कानों में टिटहरी की कर्कश बोली के समान चुभी थी।

कुलेश भी धीर-गम्भीर व्यक्ति थे, परन्तु महारानीजी का वह रूप देखकर-सुनकर वे भी व्यग्र हो उठे थे। वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि क्या कहें!

"हमने सुनी है तुम्हारी करतूत। हम जानती हैं कि तुम बादशाह के छिपे भेदिये हो और श्रीमान्‌जी को भड़काकर उलटे रास्ते ले जाना चाहते हो। अरे, आज तक तो स्वामी का दिया अन्न खाया है, उसका बदला यों चुकाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आयी? तुम उनके जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हो तो यह भी याद रखो कि तुम्हारा सामना हमसे है।" असह्य क्रोध और बेचैनी के कारण येसूबाई ठीक तरह बोल भी नहीं पा रही थीं।

अब तो कुलेश का सारा शरीर काँप उठा। आँखों से आँसू निकल आये थे। अपनी पगड़ी को जब उन्होंने निषेधात्मक रूप से दायें-बायें हिलाया, तो दो बूँद आँसू टप से भूमि पर टपक पड़े। इस राज्य के लिए क्या-कुछ नहीं किया था उन्होंने? बचपन में सम्भाजी को मथुरा से सकुशल लौटा लाने में उन्होंने अपने प्राण संकट में झोंककर भी बड़े महाराज की सहायता की थी। महाराज सम्भाजी के प्रतिनिधि बनकर अकबर के साथ वे पुर्तगाली दरबार में जाकर समझौता करा आये थे। आदिलशाही राज्य पर संकट छाते ही उन्होंने महाराज की आज्ञा से पन्हाला से

https://t.me/Sahityajunction

बीस हज़ार सैनिकों की कुमक भेजी थी। जाने कितने गाँवों में घूम-घूमकर वे वहाँ के जागीरदारों से मिले थे और उन्हें समझाया था कि इस कठिन समय में वे पूरी निष्ठा से साथ देते रहें। उनके प्राण तिलमिला उठे और उन्होंने झट से आगे बढ़कर महारानीजी के पैर पकड़ लिये। मुँह से बोल भी नहीं फूट रहे थे।

"महारानीजी, आप चाहें तो हमारा सिर काट डालें—हम अपने कुल देवता की सौगन्ध खाकर कहते हैं—हम...हम बेईमान नहीं हैं। आप...आप कुछ करें, महारानीजी। कुछ करें कि हमारे राजासाहब इस संकट से निकल जाएँ—यह राज्य बच जाए।" कुलेश छोटे बालक के समान सिसक-सिसककर रोने लगे।

कुलेश की बातें सुनकर येसूबाई स्तब्ध रह गयीं। नदी बरसात में उफनकर भरभर बहती है, यह उचित ही है। नदी में बाढ़ें आती हैं, इसीलिए अपने गाँव की सीमा से उठाकर उसे कहीं दूर तो नहीं फेंका जा सकता। परन्तु वही नदी यदि अपना मार्ग बदलकर गाँव में ही घुसने लगे, तो? आज ऐसी ही क्रोध-सरिता महारानीजी के हृदयग्राम में घुसना चाहती थी। जो कुछ भी घटित हुआ था, उसमें कुलेश का दोष नहीं था। यदि कुलेश के मन में कोई मैल होता, तो वे महारानी से मिलने ही क्यों आते? यदि वे नहीं आते, तो येसूबाई निलोपन्त और खण्डोजी को भेजक़र उन्हें अवश्य ही क़ैद करवा देतीं।

तो दोषी कौन था? क्या महाराज दोषी थे? बुरहानपुर और पनजी में शौर्य की पराकाष्ठा दिखलानेवाले, औरंगज़ेब को भी पीछे हटने के लिए विवश करनेवाले उस वीर राजा के बारे में ऐसा कहने की हिम्मत भला कौन कर सकता था? यदि सचमुच दोष था ही, तो वह था चारों ओर फैले हुए उन असंख्य संकुचित हृदयों का, कई लोभी मनों का। महाराज की अवस्था आज कुछ ऐसी हो गयी थी कि जैसे किसी को जलती मशाल लेकर भरी बरसात में खड़ा कर दिया जाय और कहा जाय कि मशाल बुझने मत दो। तो फिर यह सब क्यों-कैसे हो गया था? यह सब उस जगदम्बा की ही लीला थी शायद! अन्यथा महाराज के मन में भला यह विचार ही क्यों आता कि —'आशीर्वाद की शक्ति का अभाव-सा हो गया है।' अन्यथा जो छत्रपति चाफल, चिंचवड के मठों को दानपत्र देते रहे हैं, सन्तों-साधुओं के दर्शन पाते रहे हैं, वे क्यों चल पड़े इस सम्प्रदाय के ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर?

येसूबाई ने कुछ कहा नहीं। परन्तु उन्होंने मन ही मन कोई दृढ़ निश्चय कर लिया था। कक्ष से जाते हुए उन्होंने कुलेश से केवल इतना ही कहा, "अब से समझो कि हमारे स्थान पर हम नहीं, तुम ही बैठे हो। श्रीमान्‌जी का साथ कभी मत छोड़ना। छाया के समान सदा साथ रहना। आज ही रायगढ़ से रवाना हो जाओ।"

कुलेश संगमेश्वर आ पहुँचे। आते ही महाराज ने उन्हें आज्ञा दी, "तुम शीघ्र खेलणा प्रदेश में जाओ। गणोजी शिर्के के प्रदेश शिरकाण में कुछ झमेला हो रहा है, उस पर ध्यान रखो। वह मामला हमारे घर का है, हमारे रिश्तेदारों का है। इसलिए हमें ही उसका कोई हल ढूँढ़ना पड़ेगा। आवश्यकता पड़े, तो हमें लिखकर सूचित करो।" महाराज ने वे अफ़वाहें सुन ली थीं, जो उनके ससुराल के 'शिर्के' परिवार ने फैलायी हुई थीं। महाराज ने यह सुना था कि आजकल शिर्के परिवार के लोगों की गतिविधियाँ कुछ सन्देहपूर्ण हैं। शहज़ादा आज़म बेलगाँव का दुर्ग जीतकर अब कोल्हापुर की दिशा में बढ़ रहा था। गणोजी शिर्के और कान्होजी शिर्के का आजकल

https://t.me/Sahityajunction

शहज़ादे से बहुत मेल-जोल बढ़ रहा था। रात-बेरात कितनी ही देर तक उन लोगों के बीच न जाने कैसी 'गुफ़्तगू' होती थी।

यद्यपि कुलेश को महाराज ने आज्ञा दी थी खेलणा जाने की, परन्तु वे महारानी की आज्ञा मानकर महाराज के पास ही रहे।

कभी संगमेश्वर और कभी गांगोली में चल रही महाराज की 'शक्ति की पूजा' कहीं 'मद्य-पूजा' न बन जाए, ऐसा भय उत्पन्न हो गया था। संगमेश्वर के देसाई, गांगोली के राजकर्मचारी, सेवक पूरुषा, इतना ही क्यों, स्वयं शाक्त-सम्प्रदाय के शिवयोगी भी महाराज के सामने कुछ कहने का साहस नहीं कर पाते थे। कुलेश की अवस्था तो सबसे बुरी थी, उनके लिए तो इधर कुआँ था, उधर खाई थी।

महाराज किसी से भी बातचीत नहीं करते थे। अपने निजी एक-दो सेवकों को छोड़कर वे अन्य किसी को अपने पास भी फटकने नहीं देते थे। उनके मन में एक ही समस्या को लेकर वाद-विवाद हो रहा था।

'यह राज्य क्या हमारा अकेले का है? यदि नहीं है, तो फिर ऐसा प्रतीत क्यों हो रहा है?' मन प्रश्न पूछता था परन्तु उत्तर नहीं मिल पाता था।

सम्मुख विराजमान चण्डी माता भी उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में दिखलाई देने लगी। कभी वह जगदम्बा का रूप धारण करती थी, तो कभी बड़ी आऊसाहिबा बन जाती थी। कभी वही धाराऊ बन जाती थी, तो कभी उसके नेत्र रायगढ़ के दो महाद्वारों के समान प्रतीत होते थे कि जिनमें से समर्थगुरु रामदास और आबासाहब बाहर चले आ रहे हैं। कभी उन्हें आभास होता था कि कहीं से एक तोप का गोला आकर उस चण्डी की छाती पर आ गिरा है और उसकी छाती के भी धुर्रे उड़ गये हैं—हम्बीरराव के समान!!

बीती हुई घटनाएँ एक-एक करके अत्यन्त वेगपूर्वक उनके नेत्रों के आगे से दौड़ती जा रही थीं। भूतकाल का वह घटना-चक्र हृदय-विदारक था। परन्तु जैसे कोई कृषक खेत की मेंड़ पर खड़े होकर अपनी फैली हुई खेती को देखता हो, यों महाराज अपने सारे जीवन को तटस्थ बनकर देख रहे थे। बिना डगमगाये, बिना घबराये देख रहे थे वे। बार-बार एक ही आकृति आकर उनकी आँखों के आगे ठहर जाती थी। वह थी आबासाहब की आकृति। पन्हाला के क़िले में हुई अन्तिम भेंट में आबासाहब ने जब भुजाएँ फैलाकर सम्भाजी को अपनी छाती से लगा लिया था। वह आकृति आज भी भुजा फैलाकर कह रही थी—'कहाँ गया था रे तू मेरे लाल?'

जैसे कोई राजा अपने वस्त्र-भूषणागार का निरीक्षण करता है, इसी प्रकार सम्भाजी का मन अपने जीवन का सिंहावलोकन कर रहा था।

'हमने बड़ी जल्दबाज़ी की कि आबासाहब से बिछुड़कर दिलेर ख़ाँ के दल से जा मिले। अवश्य ही आबासाहब हमारे इस व्यवहार के कारण ही ढह गये। आबासाहब, हमारे इस उतावलेपन ने हमारे जीवन पर हमेशा के लिए बट्टा लगा दिया है। क्या कभी यह कलंक धोया जा सकेगा? क्या कभी ऐसा अवसर मिलेगा?' राजा के अन्तर्मन में कैसा विचार-चक्रवात उठ रहा है, यह कुलेश, अथवा शिवयोगी क्या और कैसे जान सकते? नहीं, नहीं, साक्षात् रणचण्डी भी सम्भवतः इसे नहीं जानती होगी।

https://t.me/Sahityajunction

वर्षा ऋतु का ज़ोर कम हो चुका था। धूप-छाँव के साथ श्रावण मास की बौछारों का खेल शुरू था। सम्पूर्ण कोंकण में पीली-हरी घास के मैदान जहाँ-तहाँ चमक रहे थे। इस समय बीजापुर में महामारी फैली हुई थी। दूर भागानगर में गोलकुण्डा का सुन्दर नवयुवक तानाशाह अपने कुछ ईमानदार सरदारों के साथ रस्सियों में बँधा हुआ औरंगज़ेब की काल कोठरी में पड़ा हुआ था।

गुप्तचरों का नायक बहिर्जी रायगढ़ से दौड़ता-भागता, सावन की झड़ियों में भीगता हुआ संगमेश्वर आया और सीधा देसाई की हवेली में घुस गया। वह यह प्रतिज्ञा करके आया था कि राज्य का खोया हुआ तावीज़ फिर से राज्य की भुजा में बाँधेगा। उनके पास महारानी द्वारा दिया हुआ एक नितान्त व्यक्तिगत ख़लीता भी था। किसी की परवाह किये बिना बहिर्जी अपने कन्धे के कम्बल के कोने को मुट्ठी से दबाकर हवेली में घुसा और फिर सीधा चण्डी के पूजा-कक्ष में घुस गया।

वहाँ जब उसने यज्ञकुण्ड के पास भगवे वस्त्र पहनकर बैठे महाराज को देखा, तो एक क्षण के लिए वह भी चौंककर ठिठक गया। राजा का रूप कितना बदल गया था। पास ही खड़े थे कुलेश, शिवयोगी और उसके शिष्य, जो बहिर्जी को ऐसे लगे जैसे वे अपने किसी सम्बन्धी के श्राद्ध-कर्म सम्पन्न कर रहे हों। बहिर्जी ने उनकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया और विवश होकर कहने लगा, "मालिक, आँधी-पानी में भीगता रायगढ़ से आया हूँ। दिल फटा जाता है। महारानीजी ने यह पत्र भेजा है। कहा है, मालिक को साथ लेकर ही लौटना।" उतावलेपन के कारण बहिर्जी जुहार करना भी भूल गया था।

महाराज व्याघ्रचर्म पर से उठे और यज्ञकुण्ड के निकट होकर बहिर्जी की ओर बढ़ने लगे। शिवयोगी, कुलेश, शिष्य और पूरुषा के कलेजे धड़कने लगे। सब सोचते थे—अब इस नायक की ख़ैर नहीं। वैसे सभी जानते थे कि बहिर्जी ने स्वर्गवासी छत्रपति के काल से लेकर आज तक राज्य की कितनी निष्ठा से सेवा की है। इस राज्य के लिए बहिर्जी ने सूरत से लेकर मद्रास तक का चप्पा-चप्पा छान मारा था। गणोजी शिर्के जब से येसूबाई से रूठ कर चले गये थे, तब से वे बहिर्जी को ही अपना सगा भाई मानती थीं। 'भोसलों' की चाकरी में बहिर्जी नाईक के बाल सफ़ेद हो चुके थे। इसी कारण महाराज को आगे बढ़ता हुआ देखकर चाहे औरों के कलेजे धड़क उठे होंगे, परन्तु बहिर्जी स्थिर खड़ा था।

अब महाराज कुछ बोलना चाहते थे कि बहिर्जी ने झुककर उनके चरण छू लिये। अपनी 'रामोशी' जाति की ख़ास ढंग की पगड़ी को डुलाते हुए गद्गद कण्ठ से वह कहने लगे, "तुम्हें विरोबा की सौगन्ध है। बस करो ये शक्ति की पूजा। मालिक ही अगर ऐसे अकेले में पड़े रहेंगे, तो प्रजा और सेवक किसकी ओर देखें? अब इस चण्डी का पीछा छोड़ो। वहाँ तुम्हारी कुलदेवी जगदम्बा तुम्हारी बाट जोह रही है। अब चलो हमारे साथ। और यदि नहीं चलना हो, तो इस बूढ़े को उठाकर फेंक दो इस कुण्ड में।"

महाराज के हाथ से समिधा की पूली नीचे गिर गयी। वे कभी चण्डी की ओर, कभी यज्ञकुण्ड की ओर तो कभी बहिर्जी की ओर देखने लगे। फिर वे झुक पड़े। सबने सोचा, वे पूली उठाने के लिए झुके हैं, परन्तु वे झुके थे अपने दोनों पैरों पर सिर रगड़-रगड़कर रो रहे बहिर्जी की पीठ पर हाथ रखने के लिए। कुछ मन्द, टूटे-फूटे शब्द बहिर्जी के कानों तक पहुँचे, "नायक, हमारे कूच

https://t.me/Sahityajunction

का प्रबन्ध करो। हम तुम्हारे साथ ही रायगढ़ चलेंगे।"

उन्होंने बहिर्जी को कन्धों से उठाया, फिर उसके द्वारा दिये हुए ख़लीते को वे स्वयं ही पढ़ने लगे। उनकी आँखों ने वह लिखावट तुरन्त पहचान ली। 'श्रीसखी' द्वारा 'श्री' के राज्य के हित लिखा हुआ पत्र था वह...

'...चण्डी की अब तक हुई पूजा पर्याप्त है। एक चण्डी 'श्रीमान्‌जी' पर प्रसन्न होकर यदि शक्ति दे, तो क्या लाभ? इधर तो सम्पूर्ण राज्य की शक्ति ही क्षीण हो चुकी है। यह पत्र पाते ही नायक के साथ ही इधर चले आइए।...अन्यथा...अन्यथा हमें स्वयं आना पड़ेगा। आबासाहब द्वारा दी गयी राजमुद्रा और कटार तथा आपके द्वारा प्रदत्त 'श्रीसखी' मुद्रा यज्ञकुण्ड में फेंककर हमें भी रायगढ़ से नाता तोड़कर आपके शाक्त-सम्प्रदाय की दीक्षा लेनी पड़ेगी।'

छत्रपति ने उस पत्र को मुट्ठी में ही दबा दिया। उनकी आज्ञा पाकर सब लोग छावनी हटाने के काम में जुट गये। कुलेश अपने सहायकों सहित खेलणा प्रदेश की ओर चल पड़े। सबने सन्तोष की साँस ली।

इसी समय बीजापुर की शाही मस्जिद में नमाज़ पढ़कर लौटा हुआ औरंगज़ेब वज़ीर असद ख़ाँ से कह रहा था, "हमने आज नमाज़ पढ़ते समय क़ुरान शरीफ़ की क़सम खायी है कि शीवा के बेटे का यह तख़्त जड़ से ही उखाड़ फेंकेंगे। जिस तरह यहाँ बीजापुर में और गोलकुण्डे में चाँद-तारे का झण्डा फहराया है, उसी तरह रायगढ़ पर भी यही झण्डा फहराकर रहेगा। शहज़ादा आज़म को लिखो कि वो सम्भा के पीछे जासूस लगा दे। हरदम उसका पीछा जारी रखे।"

दूसरी ओर हालत यह थी कि महामारी से मरे हुए ग़रीब आदिलशाही रिआया के मुर्दे चुपचाप क़िले के बाहर से क़ब्रिस्तान की ओर ले जाये जा रहे थे।

गांगोली और संगमेश्वर में सम्प्रदाय के धार्मिक केन्द्रों की स्थापना की गयी थी। अब महाराज की आज्ञा से उन मूर्तियों की यथाविधि पूजा करके मूर्तियाँ अन्यत्र ले जायी गयीं। शिवयोगी भी अपने शिष्यों सहित व्याघ्रचर्म लपेटकर और उसे बगल में दबाकर अपने ग्राम लौट गये। उस राजा के जीवन में एक भयानक तूफ़ान लहराता-गरजता हुआ आया था, पर केवल थोड़ा-सा झाँककर ही आगे बढ़ गया। 'शम्भु' के मन में शक्तिमान 'शिव' का जो भाव कुछ काल के लिए जाग्रत हुआ था, उसे वह तूफ़ान यूँ अधूरा छोड़ गया।

रायगढ़ लौटकर महाराज ने निलोपन्त से कई ऐसे समाचार सुने, जिन्हें सुनकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पेशवा ने गरदन झुकाकर कहा था, "हसन अली ख़ाँ ने होनगढ़ दुर्ग जीत लिया है और मातबर ख़ाँ ने त्र्यम्बकगढ़ पर विजय प्राप्त कर ली है।" इस समाचार का अर्थ स्पष्ट था—मुग़ल नासिक तक आ पहुँचे थे।

कुलेश शिर्केवंशियों की रोकथाम करने के लिए खेलणा की ओर गये थे। उस खेलणा और प्रचितगढ़ में नागोजी माने और मुलतफित ख़ाँ डेरा डाले पड़े थे। प्रचितगढ़ के दुर्गरक्षक ने आमने-सामने लड़ाई करके अपने दुर्ग की रक्षा की थी।

एक और स्थान था—माहुली। निजामशाही राज्य के पतन के बाद सम्भाजी के दादा शहाजी राजा निजामशाही छोड़कर आदिलशाही राज्य की ओर जा रहे थे। उस समय इसी माहुली में

https://t.me/Sahityajunction

उन्होंने आसरा पाया था। इस क़िले का क़िलेदार आज 'स्वराज्य' को झाँसा देना चाहता था। माहुली दुर्ग के बाहर घेरा डालकर पड़े हुए मुग़ल-सरदार अब्दुल क़ादिर से उसकी साँठ-गाँठ चल रही थी। मोटी रक़म मिलते ही वह क़िलेदार माहुली क़िला अब्दुल क़ादिर के हवाले करने को तैयार हो गया था।

हर एक समाचार से राजा का मन तिल-तिल करके गल रहा था। यही शायद कुछ कम था कि कुडाल के देशाधिकारी नीलकण्ठ नारायण उन्हें एक बहुत बुरी ख़बर देने चले आये। ख़बर थी कि कुडाल के खेम सावन्त सरदार ने बहादुर ख़ाँ से समझौता कर लिया था। समझौता यह था कि बादशाह खेम सावन्त की जागीर को स्वीकृति दें। इसके बदले कोंकण के ऊपरी प्रदेश का काफी भाग खेम़ सावन्त जीत लेंगे और बादशाह को सौंप देंगे।

रायगढ़ लौटकर अभी तक महाराज की और येसूबाई की भेंट नहीं हुई थी। होती भी कैसे? दोनों के ही मनों में 'सम्प्रदाय' का काँटा चुभ रहा था। बरसात ख़त्म होते ही मुग़ल सेनाओं की गतिविधियाँ बहुत बढ़ गयी थीं। बीजापुर से औरंगज़ेब बार-बार ख़लीते भेज रहा था शहज़ादे आज़म के नाम, जो कोल्हापुर और मिरज प्रदेशों में घूम रहा था। हम्बीरराव के वीर गति पाने के बाद महाराज ने म्हलोजी घोरपड़े को सेनापति नियुक्त किया था। वे पन्हालगढ़ को केन्द्र बनाकर शहज़ादे के उस प्रदेश पर होनेवाले हमलों का मुक़ाबला कर रहे थे।

महाराज खण्डोजी, पेशवा निलोपन्त और अन्य गुप्तचरों द्वारा दिये गये समाचारों के बारे में सोचते हुए बैठे थे कि चांगोजी काटकर ने आकर उनका ध्यान भंग किया। उसने कहा, "कल्याण प्रान्त से सूर्याजी प्रभु और बोपाजी प्रभु आपसे मिलने आये हैं, महाराज।" महाराज ने उन्हें भीतर बुलवा लिया। वे दो भाई साकसे परगना, पंचमहाल और पेण प्रदेश की अपनी भूमि का कोई विवाद लेकर महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए थे। महाराज ने शान्तिपूर्वक उन दोनों का निवेदन सुना और इस मामले में निर्णय करने के लिए न्यायाधीश प्रह्लादपन्त को बुलवा भेजा।

पन्त वहाँ आये। परन्तु उनके चेहरे पर कुछ ऐसी घबराहट-सी छायी हुई थी कि थोड़ा ध्यान से देखने पर कोई भी उस घबराहट को ताड़ सकता था।

"इन भाइयों की क्या अड़चन है न्यायाधीश, ज़रा तुम ही देखो—समझ लो।" महाराज किसी अन्य ही विचार में खोये हुए थे, अतः उन्होंने गौण रूप से कह दिया। न्यायाधीश के मुख से एक गहरी साँस निकल गयी, मानो वे किसी मुसीबत से छुटकारा पा गये हैं।

"आओ, हमारे साथ राजकार्यालय में आओ।" उन भाइयों से ऐसा कहकर न्यायाधीश जाने के लिए मुड़े।

"न्यायाधीश, तुम्हें याद है, हमने तुमसे एक बार कहा था कि 'आँधी-तूफ़ान में झाड़ी-झुरमुट हिल जाएँ, यह तो स्वाभाविक है, परन्तु ऊँचे गिरि-शिखर भी डोल उठें, तो बड़ी विचित्र बात होगी।' उस बात को ध्यान में रखो और निर्णय करो।" महाराज ने उन्हें निर्देश देने की दृष्टि से कहा। न्यायाधीश ने महाराज की बात 'जी' कहकर सुनी तो अवश्य, परन्तु मुड़ते ही उनकी पलकें जाने क्यों फड़कने लगी थीं और आँखों की पुतलियाँ भी जल्दी-जल्दी, गोल-गोल घूम गयी थीं।

फिर महाराज बैठक-कक्ष में टहलने लगे। इस समय वे औरंगज़ेब के सब जगह फैले हुए सरदारों और उनके द्वारा बहकाकर भगा लिये गये मराठा क़िलेदारों के बारे में सोच रहे थे। इतने

https://t.me/Sahityajunction

में दासी रूपा ने आकर सूचना दी, “रानीजी आ रही हैं।”

महाराज के चित्त में उफ़ान-सा आ गया। कितनी ही बातें तो थीं कहने की, किन शब्दों में कही जाएँ? कितने ही आरोप थे कि जिनका स्पष्टीकरण देना था! महाराज जैसे खिंचे हुए से, मन्त्र-मोहित से होकर झरोखे के पास पहुँच गये।

येसूबाई आयीं। आते ही उन्होंने कक्ष में एक बार सब ओर नज़र दौड़ायी। महल के प्रहरी इस दृष्टि का संकेत समझ गये और तुरन्त बाहर चले गये। अब दो मन थे, असीम शान्ति थी। होठों तक आये हुए शब्द पुनः हृदय में लौट जाते थे।

“हम एक बात कहने आयी हैं।” येसूबाई ने भर्रायी हुई आवाज़ से कहा। महाराज घूम पड़े और घूमकर केवल ‘श्रीसखी’ की ओर देखते ही रह गये।

येसूबाई कहने लगीं, “हमारी बात तो सुनिए। हम यह कहने आयी हैं कि शृंगारपूर में श्रीमान्‌जी के विषय में जो अफ़वाहें फैलायी गयी हैं, उन्हें हमने भी सुना है। हम लज्जित हैं कि हमारे मायके के लोग ऐसा कहते हैं।”

“येसू...” जैसे आकाश में अकस्मात् वर्षा का बादल छा जाता है, इसी प्रकार महाराज की आँखें डबडबा आयीं। कुछ देर फिर नीरवता छा गयी। दोनों समझ नहीं पा रहे थे कि क्या कहा जाय, कैसे कहा जाय। दोनों की आँखों के आगे गणोजी शिर्के और पिलाजी शिर्के की आकृतियाँ नाच रही थीं।

“हमारे कारण तुम्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा है। शृंगारपूर के लोग हमारे बारे में चाहे जो कहते फिरें, परन्तु हम एक बार तुमको देख लेते हैं, तो जैसे सब कुछ भूल जाते हैं।” झरोखे में दूर गगन की नीलिमा को निहारते हुए महाराज ने गद्‌गद कण्ठ से कहा।

“श्रीमान्‌जी के बारे में पिलाजी को या हमारे भैया को चाहे जो कहने का क्या अधिकार है? जैसे बीज बोनेवाला किसान बोये खेत को पीछे छोड़कर आगे बढ़ता जाता है, इस प्रकार आप भी बीती को भुला दीजिए और आगे की सुध लीजिए। आज की परिस्थिति तो उस स्थिति से भी भयानक है कि जब आप और आबासाहब आगरा में फँस गये थे। शत्रु ने चारों ओर पैर जमा लिये हैं और अपनों ने पैर तोड़ लिये हैं। विचित्र समय आया है कि सूर्य को भी दीमक लग गयी है।” गला भर आने के कारण येसूबाई आगे नहीं बोल सकीं।

“तुम्हें याद है, हमने तुमसे एक बार कहा था कि तुमने जंगल की तूफ़ानी हवाओं का सेहरा सिर पर बाँधा हुआ है।” महाराज येसूबाई की ओर पीठ करके कह रहे थे। अब तो कक्ष की शान्ति ने पंख और भी अधिक फैला लिये थे।

“कभी हमारे बालराजा राजाराम की हवेली में जाते हैं क्या? उनसे दो प्यार-भरी बातें करते हैं क्या?” प्रस्तुत विषय को टालने की दृष्टि से महाराज ने एक दूसरी ही बात छेड़ दी।

“जी हाँ,” येसूबाई ने हुंकारी भरी। उन्हें याद आ रहा था कि राजाराम, ताराऊ और बालराजा तो त्रिमूर्ति हैं। तीन पत्तों वाली बिल्व-शाखा के समान हैं वे।

इसी तरह येसूबाई और महाराज के बीच काफी देर तक वार्तालाप होता रहा। इसी समय दीवट जलानेवाले सेवक भीतर आये और वे महल के आलों में रखे हुए दीपकों को प्रज्वलित कर गये।

https://t.me/Sahityajunction

इधर दीपक जल रहे थे और उधर कुडाल के मैदानी क़िले की बैठक में मशालें जल रही थीं। गावतकियों और गिरदों के सहारे बैठे थे खेम सावन्त, जलाल ख़ाँ, और दुलबा नाईक। इन सबके बीच कोई गुप्त मन्त्रणा हो रही थी। मन्त्रणा थी कि मराठों के क़िले पारगाँव पर आक्रमण किया जाय।

अब सर्दी पड़ने लगी थी। चारों ओर गिरने-ढहने की ही बातें सुनाई देती थीं, फिर भी महाराज सम्भाजी, चिटनीस खण्डोजी और चिमणगावकर को बुलाकर गाँवों-शहरों में बसे जागीरदारों को निरन्तर ख़लीते भेज रहे थे। जो सरदार और जागीरदार विशेष महत्त्वपूर्ण थे, उनसे वे खण्डोजी, शंकराजी निलोपन्त आदि को साथ लेकर स्वयं मिलने जाते थे। अन्तर्हृदय की सारी तिलमिलाहट समेटकर सबको समझा रहे थे, "ये शत्रु तो दो दिन का है, आया है सो चला भी जाएगा। उसका साथ क्यों देते हो? जैसे हमारा रामसेज दुर्ग शत्रु से जूझता रहा था, उसी दृढ़ता से तुम्हें हर गाँव के कोने-कोने की रक्षा करनी चाहिए।"

येसाजी कंक, रूपाजी भोसले, बारदमल, सन्ताजी जगताप, धनाजी जाधव आदि मराठा सरदार सब ओर फैले हुए थे और दुश्मन से जमकर लोहा ले रहे थे। महाराज इन सब छावनियों में जाकर उनसे मिलते थे। हरजी ने यदि सवार भेज कर उनसे युद्ध नीति की चाल के बारे में कुछ पूछा, तो वे उन्हें भी सलाह देते थे। वे दृढ़ निश्चय कर चुके थे कि औरंगज़ेब की आँधी के सामने मराठा भूमि या कर्नाटक प्रदेश को डगमगाने नहीं देना है। सर्जेराव जेधे पूरी निष्ठा से मराठा राज्य की सेवा में मग्न थे। म्हलोजी, कुलेश और गंगाजी पन्हाला, खेलणा और राजपुर की रक्षा में तत्पर थे। पुणे, पुरन्दर, बाई और सातारा प्रदेशों के अधिकारी अस्त्र-शस्त्रों सहित पूर्णतः जागरूक थे।

इसी तरह की एक जाड़े की रात थी। येसूबाई अपने 'श्रीमान्‌जी' का प्रिय पेय कुलथी की गर्म कढ़ी लेकर महाराज से मिलने आयीं। उन्होंने कटोरा चौकी पर रख दिया। कटोरे से उठनेवाली भाप की ओर देखते हुए महाराज ने कहा, "कितने दिनों बाद यह कढ़ी पी रहे हैं हम?" येसूबाई ने वह कटोरा झट से उठाया और अपने 'श्रीमान्‌जी' के हाथों में देती हुई कहने लगीं, "आजकल तो आप भोजन-पान के बारे में ध्यान ही नहीं देते हैं। ज़रा पीकर तो देखिए कि स्वादिष्ट बनी है या नहीं?" महाराज ने कढ़ी पी और बोले, "वाह, बहुत स्वादिष्ट बनी है।" और फिर वे कटोरे की ओर ही टक लगाकर देखने लगे।

"यह क्या बात है?" येसूबाई नाराज़ हो गयी थीं।

"कुछ नहीं, हम यह सोच रहे थे कि हमारे आबासाहब ने इसी तरह कढ़ी पीते समय कितने अभियानों की योजना बनायी होगी। जैसे तुमने अभी हमें कटोरा दिया है, वैसे ही हमारी माँ भी तो आबासाहब को कटोरा देती होंगी। ऐसे समय वे दोनों जाने कितनी ही आत्मीयतापूर्ण बातें करते होंगे!"

सुनकर येसूबाई अपने पति के मुख की ओर ध्यानपूर्वक देखने लगीं। शायद जानने का प्रयत्न कर रही थीं कि उनकी स्वर्गवासी सास का मुख कैसा रहा होगा। कैसा लुभावना रहा होगा यह दृश्य! कटोरे में अपने आबासाहब की और अपनी माता की मुखमुद्रा देखने का प्रयत्न

https://t.me/Sahityajunction

करनेवाले महाराज सम्भाजी और उन्हें टक लगाकर देखनेवाली महारानी येसूबाई!

इतने में बालराजा कक्ष में आये। दोनों हाथों से रायाजी और अन्तोजी का हाथ पकड़े हुए बालराजा अपने दोनों चाचाओं से कुछ पूछते हुए चले आ रहे थे। आते ही वे शिकायत करने लगे :

"चाचा राजाराम के महल में हम जब भी जाते हैं, तब हर बार न्यायाधीश और दूसरे कोई दो लोग वहाँ होते हैं। हमारे वहाँ पहुँचते ही वे लोग बातचीत क्यों बन्द कर देते हैं? क्या उन्हें हमारा वहाँ आना पसन्द नहीं है?" बालक की शिकायत सुनकर महाराज भी गम्भीर हो गये। 'न्यायाधीश किस कारण जाते होंगे राजाराम की हवेली में? छिः, छिः! इन फूट और विद्रोह के समाचारों ने हमारे मन को कमज़ोर बना दिया है।' मन में उठ रहे संशय को उन्होंने झटका देकर दूर हटा दिया।

बालराजा को अपने पास लेते हुए उनकी पीठ थपथपाकर वे कहने लगे, "तुम बस अपनी चाचीजी से मिला करो। वहाँ इन बड़े लोगों में से कोई नहीं होगा।" ताराऊ का उल्लेख करते ही महाराज के मन में हम्बीरराव की आकृति नाच उठी। मन मानता ही नहीं था कि हम्बीरराव बाई के रणक्षेत्र में खेत रहे हैं। आज भी उनकी आकृति सम्भाजी की आँखों के सामने खड़ी हुई-सी दिखाई दे रही थी। बटदार त्रिकोनी लाल पगड़ी पहने हुए होठों से लेकर कानों तक फैले हुए गलमुच्छों वाले, माथे पर गन्धद्रव्य का तिलक धारण किये हुए, कानों में सेनापति पद के सूचक सोने के चौकड़े पहने हुए, मूलतः लाल वर्ण, परन्तु धूप-आँधी में दौड़ते-फिरने के कारण कोकम्बफल के जैसे गहरे लाल दीखनेवाले शरीर के हम्बीरराव। लगता था...आज भी वही कठोर परन्तु अबोध-सा भाव मुख पर लिये हुए सामने ही खड़े हैं।

महाराज हम्बीरराव की स्मृति में खोये हुए थे। उनकी मोटी और मांसल अँगुलियों को हिला-हिलाकर बालराजा न जाने कितनी देर से कह रहे थे, "महाराज साहब, महाराज साहब, तुम्हें दादाजी बचपन में ले गये थे उत्तर देश में—बहुत दूर है वह उत्तर देश। तुम तो हमें कभी गढ़ से नीचे भी नहीं ले जाते। हमने एक सपना देखा था कि..." परन्तु महाराज का ध्यान उसकी ओर था ही कहाँ?

बालक बोलता जा रहा था। महाराज ने उसे रायाजी और अन्तोजी को देते हुए कहा, "रायाजी, अन्तोजी, तुमने कई बार कहा है कि कापूरहोल गाँव में हमारी धाराऊ माँ की समाधि बन चुकी है। हमने कई बार चाहा कि दर्शन कर आएँ, परन्तु सम्भव ही नहीं हुआ। इच्छा है कि एक बार कापूरहोल जाएँगे। कौन-कौन हैं तुम्हारे घर में?"

"जी, सभी तो हैं। हम दोनों की पत्नियाँ हैं। हमारे बूढ़े पिता हैं, बाल-बच्चे हैं।" धाराऊ की याद के कारण सब अतीव दुःखी हो उठे थे।

कुतुबशाही की राजधानी भागानगर का पतन हुए एक वर्ष बीत चुका था। औरंगज़ेब के बड़े-बड़े सरदार मराठा राज्य के बागलाण, खानदेश, बरार, पुणे, सातारा, पन्हाला आदि प्रमुख प्रदेशों में फैले हुए थे और अब तो उसकी सेना से आदिलशाही का सिपहसालार सर्जा ख़ाँ और कुतुबशाही का सरदार फिराज़ जंग भी आ मिले थे। इतना सब कुछ होते हुए भी उसके जाल में मराठों के

https://t.me/Sahityajunction

थोड़े-से क़िले ही फँस पाये थे। वे भी हथियार के ज़ोर से नहीं, फूट और प्रलोभन के अस्त्र द्वारा जीते गये थे।

महाराज की जलसेना की टुकड़ियों ने पुर्तगालियों, अँग्रेज़ों और हबशियों को दबा रखा था। औरंगज़ेब बख़ूबी जानता था कि जैसे फ़ौज के एक ही रेले से बीजापुर और गोलकुण्डा ढह गये, वैसे यह 'शीवा-सम्भा' का देश घुटने टेकनेवाला नहीं है। यह वास्तविकता तो उसने दो साल पहले ही जान ली थी। इसलिए वह शहज़ादा आज़म को खरी-खोटी सुनाकर बार-बार हुक्म दे रहा था :

"पीछा करो उस सम्भा का। चाहे कितने दीनार ख़र्च हो जाएँ, पर मरहठों के राजा को गिरफ़्तार करो। ज़िन्दा या मुर्दा पेश करो उसे। सिर्फ़ इसी तरीक़े से उसका मुलक बस में किया जा सकता है।"

महाराज भी भली भाँति जानते थे कि औरंगज़ेब की वास्तविक शक्ति फूट और आपसी झगड़े फैलाने में छिपी है। इसीलिए उनके अपने सरदार या सैनिकों का वे तुरन्त सम्मान करते थे और उन्हें प्रसन्न रखते थे, फिर चाहे उसने कोई छोटा पराक्रम दिखलाया हो या विशेष शूरता दिखलायी हो। चारों ओर गाँवों-शहरों में लड़ाई छिड़ी हुई थी। गुप्तचरों की नियमित सूचनाएँ अब नहीं आ पाती थीं, बीच के उपद्रवों से इन गुप्त वार्ताओं की शृंखला टूट-सी गयी थी। फिर भी खण्डोजी और निलोपन्त हर थाने और छावनी की ओर आज्ञापत्र भेज ही रहे थे।

राजाज्ञा पाकर सुरनीस शंकराजी, कोंकण के अधिकारी रामचन्द्रपन्त और लेखाध्यक्ष नारायण रघुनाथ आदि विशिष्ट जन रायगढ़ आ पहुँचे।

महाराज ने रायाजी-अन्तोजी को वचन दिया था कि वे कापूरहोल चलेंगे। तदनुसार अपनी निजी सेना को लेकर महाराज खण्डोजी और नारायण रघुनाथ सहित वरंछा पहाड़ी घाट के रास्ते कापूरहोल के लिए रवाना हो गये। रायाजी और अन्तोजी तो उनके साथ थे ही। उन्होंने पहले ही महाराज के आगमन की सूचना गाँव भिजवा दी थी।

महाराज चन्द्रावत पर सवार होकर धीमी चाल से चल रहे थे। उस समय उन्होंने खण्डोजी से पूछा, "खण्डोजी, पुर्तगाली प्रदेश के आक्रमण के बाद हमने तुम्हें पालकी में बैठने का अधिकार प्रदान किया था। परन्तु हमने तुम्हें कभी पालकी में बैठे हुए नहीं देखा। क्या बात है?"

"जी, बात यह है कि आपने अधिकार तो प्रदान किया है, परन्तु..." खण्डोजी कहते-कहते रुक गये।

"परन्तु क्या?"

"परन्तु हम एक जगह रह ही कहाँ पाते हैं? आज यहाँ—कल वहाँ। और फिर पालकी में बैठने की चाह ही किसे है! यदि अवसर आ पड़ा, तो हम ही किसी की पालकी को कन्धों पर उठाने को तैयार हैं।" खण्डोजी ने हँसकर कहा।

पुरन्धर दुर्ग का पर्वत-शिखर दूर पर दिखाई दे रहा था। रायाजी-अन्तोजी का गाँव कापूरहोल यहीं बसा हुआ था। पुरन्धर से आये हुए बाजी घोलप गाँव की सीमा पर ही महाराज की अगवानी करने के लिए उपस्थित थे। महाराज सबके साथ रायाजी-अन्तोजी के घर की ओर चल दिये। इस समय महाराज के मन में धाराऊ की असंख्य स्मृतियाँ आ-आकर उन्हें विह्वल बनाने लगीं। 'गाडे'

https://t.me/Sahityajunction

कुलनामधारी उन भाइयों के घर के द्वार पर आते ही रायाजी और अन्तोजी की पत्नियाँ भरे घड़े लेकर बाहर आयीं और चन्द्रावत के सोने के तोड़े पहने हुए पैरों पर उन्होंने उन घड़ों का पानी उँडेल दिया। महाराज उतर पड़े। धाराऊ की पुत्रवधुओं ने उनकी आरती उतारी और उनके मस्तक पर कुंकुम का तिलक लगाया।

रायाजी-अन्तोजी आज सब कुछ पा गये थे। डबडबायी आँखों से अपने राजा को देख रहे थे वे। कई दिनों से उन देहाती कुनबी भाइयों के मन में यह चाह छिपी थी जो आज पूरी हो रही थी। दोनों के मन में रह-रहकर टीस भी उठ रही थी—'काश! आज हमारी बूढ़ी माँ यहाँ होती!'

राम-लखन से वे दो भाई मनुष्यों की भीड़ में खड़े हुए थे। महाराज ने बड़े भाई रायाजी को संकेत से बुलाया। रायाजी पहले तो उस संकेत का अर्थ नहीं समझ पाया और पीछे की ओर देखने लगा।

"रायाजीऽऽ!" महाराज ने पुकारा।

"जी," कहकर रायाजी आगे बढ़ गया। "रायाजी, पीठ की ढाल उतारो।" राजा की आज्ञा सुनते ही रायाजी, अन्तोजी और सभी लोग चौंक उठे। केवल नारायण रघुनाथ ही ऐसे व्यक्ति थे, जो चौंके नहीं थे। सब सोच रहे थे—'रायाजी ने कौन-सा ऐसा अपराध किया है कि महाराज उसकी ढाल उतरवाकर उसे सैनिक पद से मुक्त कर रहे हैं?' रायाजी का तनमन काँप उठा था। वह बोला, "मालिक, परन्तु..." उसके हाथ में पकड़ी ढाल भी काँप रही थी।

लोग वहाँ यह देखने के लिए एकत्रित हुए थे कि देखें महाराज रायाजी-अन्तोजी को कितना प्यार-दुलार और सराहना करते हैं, परन्तु अब जो उन्होंने महाराज के विचित्र आचरण को देखा, तो हक्के-बक्के रह गये। कइयों के मन में सन्देह उत्पन्न हो रहा था।

"शिर्के के शिरकाण प्रदेश में जो अफ़वाहें फैली हुई हैं, वे सच दिखलाई देती हैं!!" भयानक सन्नाटा छा गया था। कुछ लोग तो कानों में खुसपुसाकर कह रहे थे—"कविजी की करामात है यह! पट्ठे ने इतने बड़े राजा को भला कैसे बस में कर लिया होगा?"

इतने में महाराज ने मुड़कर नारायण रघुनाथ की ओर देखा। वे एक सवार के साथ आगे बढ़ आये। उस सवार के हाथों में वस्त्र से ढँका एक थाल था। वह सवार यह थाल महाराज की आज्ञा पाकर ही यहाँ लाया था। उसने झुककर वह थाल महाराज के हाथ में दे दिया। महाराज ने जैसे ही थाल पर ढँका कपड़ा हटाया, भीतर भरे हुए सोने के होन धूप में चमचमा उठे। पूरा थाल सोने के होनों से भरा हुआ था। महाराज थकी-बूढ़ी धाराऊ के दर्शन कर रहे थे उस थाल में, मानो वह कह रही थी—'मेरे बेटे, मेरे लाल।'

महाराज ने वह थाल ही रायाजी की ढाल में रख दिया। गद्गद कण्ठ से कहने लगे, "रायाजी, हमारी आऊ की समाधि के निकट एक घण्टा लगवा लो। प्रतिदिन दो समय उस घण्टे से निकलनेवाला नाद वह समाधि सुना करेगी। चलो, समाधि की ओर चलें।"

रायाजी-अन्तोजी अभी तक ढाल में रखे हुए थाल को देख रहे थे। अन्तोजी कुछ आगे बढ़ा और रायाजी को उसने धीरे से कुहनी से धक्का दिया। रायाजी तुरन्त अन्तोजी का आशय समझ गया और शीघ्रता से कहने लगा, "मालिक, इसकी क्या आवश्यकता थी? हमें नहीं चाहिए यह।" होल नामक जो नदी गाँव की सीमा पर बहती थी, उसके समान ही सरल-सीधा मन था रायाजी

https://t.me/Sahityajunction

का। उसने वह ढाल फिर महाराज के आगे कर दी।

महाराज ने उस थाल को फिर से पीछे हटा दिया। उनकी अँगूठी में जड़ा हुआ पुखराज इस समय चमक उठा। इस पुखराज की चमक से अधिक तेजस्वी वचन महाराज के थे। "रायाजी, अन्तोजी, हमारी चमड़ी छीलकर उसके जूते बनाकर यदि धाराऊ के पाँवों में पहनाये जाते, तो भी उसके पिलाये दूध के ऋण से हम उऋण नहीं हो पाते। यह थाल रहने दो अपने पास ही।"

महाराज ने सबके साथ धाराऊ की समाधि के दर्शन किये। उस समाधि पर बनी हुई पादुकाओं पर जब महाराज ने माथा टेका, तो उनका मन न जाने क्यों कहने लगा—'हम पुरन्धर के दुर्ग में पैदा न होकर इस कापूरहोल गाँव में जन्म पाते, तो कितना अच्छा होता!'

रायाजी-अन्तोजी के गाँव में एक दिन रहकर महाराज रायगढ़ वापस आ गये।

"बादशाह अपनी सेनासहित बीजापुर से चल पड़ा है। उसकी सेनाएँ शहज़ादा आज़म को कुमक देने के लिए अकलूज शहर की ओर जा रही हैं।" ख़ासमहल के सभागृह में निलोपन्त ने महाराज को बादशाह की गतिविधियों की जानकारी दी।

"हरजीराजा ने सन्ताजी घोरपड़े को मराठा प्रदेश में भेज दिया है। उन्होंने अब पन्हाला में सेना की छावनी लगा रखी है।" खण्डोजी ने हरजीराजा के विषय में समाचार बतलाये।

दोनों वृत्तान्त सुनकर छत्रपति उस विषय में सोच-विचार करने लगे। वे अनुमान लगा रहे थे कि औरंगज़ेब अकलूज पहुँचकर फिर वहाँ से किस ओर बढ़ेगा! क्या वह शहज़ादा आज़म को साथ लेकर पन्हाला पर हमला बोलेगा? इस विचार के आते ही उन्होंने खण्डोजी से कहा, "चिटनीस, पन्हाला में सेनापति म्हलोजी बाबा हैं। उन्हें सूचित करो कि औरंगज़ेब पन्हाला हथियाने के फेर में है। तुम और सन्ताजी सदैव सावधान रहो।

"पन्त, तुम सोलापुर और अकलूज प्रदेशों में यहाँ-वहाँ अति कुशल गुप्तचर फैला दो। औरंगज़ेब की हर गतिविधि हमें तुरन्त ज्ञात करायी जाय।" पेशवा और खण्डोजी महाराज की बातें ध्यान देकर सुन रहे थे।

येसाजी कंक महाराज से मिलने कल्याण-भिवण्डी प्रदेश से आये हुए थे। अब काफी बूढ़े हो चुके थे वे। महाराज से कहने लगे, "हमें अब कोई नई ज़िम्मेदारी दीजिए।"

येसाजी की ओर देखकर महाराज कहने लगे, "कंक चाचा, वास्तव में तुम्हारी आयु अब आराम करने की है। तुम अब रायगढ़ छोड़कर कहीं भी मत जाओ, यही ठीक रहेगा। आजकल हमें किसी भी पल रायगढ़ से दूर जाना पड़ता है। ऐसी अवस्था में यहाँ तुम्हारे समान अनुभवी और योग्यतम दूसरा है ही कौन?"

बूढ़े कंक चाचा 'जी' कहकर छत्रपति की ओर देखते रहे। उन्हें आज बड़े महाराज की याद आ गयी। येसाजी कंक के वीर सपूत ने तो गोवा के आक्रमण के समय राज्य के लिए प्राण न्यौछावर कर दिये थे। अपने पुत्र की स्मृति को अब येसाजी ने भूतकाल के हवाले कर दिया था। वे महाराज को वचन देते हुए कहने लगे, "आप रायगढ़ की चिन्ता न करें। यदि आवश्यक हुआ तो हम सातारा से धनाजी जाधव को बुलवा लेंगे। आपको आजकल रात-दिन राज्य के कोने-

https://t.me/Sahityajunction

कोने में घूमना-दौड़ना पड़ता है, यह जानते हैं हम।"

"चाचा, जब से हम्बीरराव गये हैं, हम अपने को एकाकी अनुभव करते हैं। उनका कितना सहारा था हमें!" हम्बीरराव की स्मृति के कारण वे दोनों शोकाकुल हो उठे।

"खण्डोबा देवता की इच्छा के आगे किसका बस चलता है? इस बूढ़ी देह ने क्या-क्या नहीं देखा? जाने भाग्य अभी क्या-क्या खेल दिखलाएगा?" येसाजी जैसे अपने-आप से कह रहे थे। फिर वे लोहारख़ाने में बन रहे हथियारों का निरीक्षण करने चल दिये।

"चाचा, तुम पेशवा के साथ राजकार्यालय जाओ। कृष्णाजी के नाम इनामदारी के काग़ज़ात वहाँ तैयार रखे हैं। वे ले आओ और उन्हें हमारी श्रद्धांजलि के रूप में कृष्णाजी की समाधि पर रख दो।" फिर महाराज ने अपनी तर्जनी से पुखराज-जड़ी अँगूठी निकालकर येसाजी के सामने की। देहाती येसाजी गड़बड़ा गये। विवश होकर कहने लगे, "आपकी इच्छा हो, तो हम ये सब समाधि पर रख आते हैं, परन्तु इसकी आवश्यकता ही क्या है? इस अँगूठी को पहननेवाला है कौन? और कोई होता भी, तो उसकी हिम्मत न होती कि इसे पहने।"

विवश होकर महाराज ने वह अँगूठी पुनः अपनी उँगली में पहन ली। येसाजी, निलोपन्त और खण्डोजी वहाँ से चले गये।

विचारमग्न महाराज अन्तःपुर में आये। वहाँ येसूबाई शीशम के पलँग पर बैठी हुई किसी स्त्री के साथ बातचीत कर रही थीं। आहट पाते ही वे सँवरकर खड़ी हो गयीं। वे जिस स्त्री से बातचीत कर रही थीं, वह थी कवि कुलेश की पत्नी। महाराज ने उन दोनों को देखा, तो वे वापस लौट पड़े। येसूबाई उन्हें रोकती हुई कहने लगीं, "ऐसी कोई ख़ास बात नहीं। हम यूँ ही बातें कर रही थीं। श्रीमान्‌जी भीतर आएँ।" फिर भी महाराज कुछ देर तक दुविधा में डूबे रहे। येसूबाई बातचीत का विवरण बतलाते हुए कहने लगीं, "हम इनसे छन्दोगामात्य के क्षेम-कुशल के विषय में ही पूछ रही थीं। वे पन्हाला और खेलणा प्रदेश में घूम-घूमकर शिर्के के शिरकाण प्रदेश की गतिविधियों का भी सूक्ष्मता से निरीक्षण कर रहे हैं।"

महारानी और महाराज के वार्तालाप में बाधा उत्पन्न न हो, ऐसा सोचकर कुलेश की पत्नी येसूबाई से बोली, "अच्छा, हम चलते हैं।" और वह बाहर चली गयी। कुछ देर शान्ति रही।

"कुलेश ने शिरकाण प्रदेश से क्या समाचार भेजे हैं?" महाराज झरोखे में से दूर दिखलाई दे रही पर्वत-शृंखला को देखते हुए पूछने लगे।

"उनकी पत्नी कह रही थी कि छन्दोगामात्य और शिर्के के बीच मनमुटाव पैदा हो गया है।" आज येसूबाई ने अपने मायके के लोगों का उल्लेख 'शिर्के' कहकर किया था। सम्बोधन में आया हुआ यह अन्तर महाराज के ध्यान से छूट नहीं पाया।

"मनमुटाव का कारण क्या है?" महाराज ने अधिक जानकारी पाने के उद्देश्य से पूछा।

"वह तो कुछ पता नहीं।" येसूबाई अनुमान करते हुए कह रही थीं। इस चर्चा को अधूरी छोड़कर महाराज ने एकदम ऐसे पूछा, जैसे उन्हें अचानक ही कुछ याद आ गया हो, "तुम्हारे राजकर्मचारी कहाँ हैं? उन्हें कहो कि जाकर येसाजी दाभाडे को सूचना दें कि हम राजाराम से मिलने आ रहे हैं।" राजाराम का नाम लेते ही दोनों के मनों में हलचल-सी मच गयी।

"श्रीमान्‌जी राजाराम से मिलने क्यों जा रहे हैं? कुछ समझ नहीं पायीं हम!" येसूबाई ने

https://t.me/Sahityajunction

कहा।

महाराज के मन में एक विचित्र-सा भाव उठा—'यदि हम पन्हाला में क़ैद कर लिये जाते तो? राजाराम को यदि राजगद्दी मिल जाती तो? क्या होता?' पर्वत-शृंखला से दृष्टि हटाकर वे येसूबाई की ओर एकटक देखने लगे और उनकी बात का उत्तर न देकर उनसे ही प्रश्न पूछने लगे, "राजाराम के बारे में तुम्हारा क्या मत है?"

"हम आपका मतलब नहीं समझीं।" येसूबाई ने कहा।

"हमारे स्थान पर यदि राजाराम गद्दी पर बैठ जाते, तो क्या होता? हम और तुम पन्हाला के सूबेदार बनकर दो जून रोटी खाते रहते, यही होता ना?"

येसूबाई ने महाराज से इस प्रकार के प्रश्न की कभी आशा नहीं की थी। वे चकरा उठीं। बोली, "श्रीमान्‌जी के मन में आज ये कैसा विचार आ रहा है?"

येसूबाई का निजी कर्मचारी आया। महारानी ने उसे सूचना देने का काम सौंपा और प्रस्तुत विषय को वहीं खण्डित करके वे एक दूसरी ही बात कहने लगीं, "मिरज में बैठा हुआ शहज़ादा एक विशेष जाल फैला रहा है। उसने पन्हाला प्रदेश में अपने कई पठान सरदारों को यहाँ-वहाँ फैला रखा है, उद्देश्य यह है कि ये सरदार श्रीमान्‌जी का पीछा करते रहें और श्रीमान्‌जी का पूरा अता-पता रखें। इसलिए आप जहाँ भी जाएँ, वहाँ अपने जाने-आने की सही जानकारी किसी को न बताएँ। हर स्थान पर अपने गन्तव्य स्थान के बारे में अफ़वाह फैलाना न भूलें।"

येसूबाई की बातें सुनकर महाराज हँसने लगे। बोले, "कितनी चिन्ता करती हो तुम हमारी? इस राज्य की इतनी चिन्ता यदि तुम्हारे बड़े भाई गणोजी शिर्के या फलटण के अपने सम्बन्धी लोग करते, तो... अर्जुनजी और अचलोजी औरंगाबाद का रास्ता छोड़कर रायगढ़ आ जाते, तो...। ठीक है, जाने दो ये बातें। हम राजाराम से मिलने जा रहे हैं।"

महाराज बाहर जा ही रहे थे कि उन्होंने दासी रूपा को भवानीबाई तथा बालराजा को लेकर आते हुए देखा। उन्हें लेते हुए पीठ थपथपाकर वे कहने लगे, "चलो, हमारे साथ काकी से मिलने चलोगे?"

बालराजा ने सिर हिलाकर इच्छा प्रकट की। महाराज उसे साथ लेकर राजाराम की हवेली की ओर चल पड़े। जैसे उनके मन में अनेक विचार घूम रहे थे, वैसे ही उनका हाथ बालराजा की पीठ पर फिर रहा था। अनेक प्रश्न आपस में टकराने लगे—'ये बालराजा बड़े होकर अपने चाचा-चाची से पता नहीं कैसा व्यवहार करेंगे? हमने तो इस बालराजा में और राजाराम में कोई अन्तर कभी माना ही नहीं।'

राजाराम की हवेली में प्रविष्ट होते ही येसाजी दाभाडे महाराज के स्वागतार्थ आगे बढ़ आये। महाराज उनके साथ हवेली के बैठक-कक्ष में आये। राजाराम पलँग पर बैठे थे। अपने दादा-महाराज को आते देखकर वे उठे और आगे आकर उनकी चरण-धूलि मस्तक से लगायी, फिर बालराजा को उन्होंने महाराज से ले लिया। किंचित् लालिमायुक्त गौरवर्णीय राजाराम को देखकर महाराज को उनकी माता सोयराबाई की याद आ गयी। जाने किस जन्म का लेखा-जोखा था? उनके कारण क्या-क्या घटनाएँ नहीं हो गुज़रीं? हमारे मन में तो राजाराम के बारे में कोई अशुभ अभद्र भाव कभी नहीं आया ही नहीं। हम्बीरराव ने अपने इस भानजे को जिस प्यार-आत्मीयता

https://t.me/Sahityajunction

से देखा होगा, क्या हमने कभी उससे भिन्न भाव से राजाराम को देखा है?

"ताराऊ को बुलाओ ज़रा।" बालराजा को थपकियाँ दे रहे राजाराम से छत्रपति ने कहा। उभरती यौवनावस्था में प्रविष्ट राजाराम के कपोलों पर ललाई फैल गयी। उन्होंने येसाजी की ओर देखा और येसाजी अन्तःपुर में जाकर ताराऊ को साथ ले आये। ताराऊ ने महाराज को प्रणाम किया और हम्बीरराव की याद के कारण मुँह से आँचल को दबाकर वे एकदम फफक-फफककर रोने लगीं। कक्ष में दम घोंटनेवाली शान्ति छा गयी।

"शान्त होओ। हम जो स्वयं आये हैं, उसका एक विशेष हेतु है। आजकल अफ़वाहें बहुत फैल रही हैं—उसकी ओर तुम दोनों ध्यान मत देना। यदि अवसर ही आ पड़ा, तो तुम दोनों को और अधिक कष्ट उठाने पड़ेंगे। यदि कुछ अनुचित अप्रिय हो जाए, तो हमारी 'श्रीसखी' से निस्संकोच होकर कहना, पूछते रहना। हमें किस समय रायगढ़ छोड़कर दूर-दूर के प्रदेशों में दौड़ना पड़े इस बात का कोई भरोसा नहीं। शत्रु-सेनाएँ चारों ओर फैली हुई हैं।" वीर-श्रेष्ठ हम्बीरराव की वह भानजी ध्यान देकर दृढ़ मन से महाराज का एक-एक शब्द सुन रही थी।

राजाराम की हवेली से निकलते समय महाराज ने येसाजी को अपने साथ आने का संकेत किया। राजाराम और ताराऊ बालराजा के साथ बाहर जा रहे महाराज की पीठ को कितनी देर तक खड़े देखते रहे।

खेलणा दुर्ग से शिरकाण प्रदेश में प्रविष्ट होकर कुलेश अपनी छोटी सेनासहित शृंगारपूर के नगरद्वार तक आये और उन्होंने अपने निजी सहायक कर्मचारी को चार-पाँच सवारों के साथ गणोजी से मिलने भेजा। कुलेश यहाँ इसलिए आये थे कि राजा के प्रतिनिधि के रूप में शिर्के और सम्भाजी के मनमुटाव को वे दूर कर सकें। आख़िर कुछ भी क्यों न हो, शिर्के कोई पराये थोड़े ही थे। येसूबाई के मायके के लोग थे वे।

कुलेश अपने प्रतिनिधि की प्रतीक्षा करते हुए नगरद्वार पर ही रुके रहे। उन्हें मालूम था कि शिर्के परिवार अब औरंगज़ेब का मनसबदार बन चुका है। फिर भी उन्हें विश्वास था कि वयोवृद्ध पिलाजी अपने पुत्र गणोजी और कान्होजी को समझा-बुझा लेंगे। इस घोर संकटकाल में अब भी कुछ-न-कुछ सोचें-समझेंगे और महाराज का साथ देंगे।

कुलेश के प्रतिनिधि शिर्के की हवेली की बैठक में आये। यह वही बैठक थी जहाँ कभी सुर्वे नामक सरदार रहता था। पन्हाला में जब सिद्दी जौहर ने घेरा डाला था, तब इसी सुर्वे सरदार ने उसकी सहायता की थी। बाद में शिवाजी महाराज ने सुर्वे को हराकर भगा दिया था और उसकी बैठक की मसनद को पैर की ठोकर से उड़ाते हुए कहा था, "बड़े सरदार बनते हैं, हवेलियाँ ब़नाते हैं और हमारे शत्रु से दोस्ती करते हैं!" उस समय सरदार सुर्वे की ओर से पिलाजी ने डटकर लड़ाई की थी। उसकी वीरता देखकर आबासाहब ख़ुश हो गये थे और उन्होंने पिलाजी को अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया था। इतना ही नहीं, उन्होंने पिलाजी की नन्ही बेटी येसूबाई को अपने बेटे की बहू बना लिया था।

शिर्के के कर्मचारी ने भीतर आकर सूचना दी। पिलाजी वहाँ आये। अब वे काफी बूढ़े दिखाई दे रहे थे। कुलेश के प्रतिनिधि ने उन्हें अपना परिचय दिया और अपने आने का प्रयोजन भी

https://t.me/Sahityajunction

बताया।

पिलाजी के मन में एक ही क्षण में सारा भूतकाल घूम गया। येसूबाई की स्मृति के कारण वे भी विह्वल हो उठे। बड़े महाराज की स्मृति उनके मन में जाग उठी—'कैसी जागीर है जिसके लिए हमने यह सब किया। यह भी कोई ईमानदारी है कि कल के आये मुग़लों का साथ दिया जाय? ऐसे कठिन समय में अपनी पुत्री के सुहाग को अकेला छोड़ दें? हम कौन थे भला? और आज ये जो कुछ बन गये हैं, वह किसकी कृपा से?' यह सोचते हुए वे कहने लगे, "कविजी, दरवाजे पर ही क्यों खड़े हैं? यह हवेली उनके लिए परायी थोड़े ही है? जो कुछ मेल-मिलाप की बातचीत करनी हो, यहीं मिल-बैठकर कर लेंगे।"

कुलेश के प्रतिनिधि की आशा पल्लवित हो उठी। वे कहने लगे, "हम अभी जाकर उन्हें साथ लिये आते हैं।" वे लौटने के लिए मुड़े ही थे कि इतने में चौड़ी छातीवाले मध्यमवयीन सरदार गणोजी सैनिकों के मुजरों को स्वीकार करते-करते बैठक में आये। वे आदिलशाही सिलाई के ढंगवाला गहरा हरा अँगरखा पहने हुए थे। उनका चेहरा अपनी बहन येसूबाई से मिलता-जुलता था। अन्तर यदि था तो केवल इतना ही कि येसूबाई मन्दिर के सभागृह में प्रज्वलित नीराजन के समान दिखाई देती थीं, और गणोजी क़िले के बुर्ज़ पर जलनेवाले पलीते के समान दिखलाई देते थे। वे जैसे ही बैठक में आये, एक दबदबा-सा फैल गया।

"क्या बात है आबा, ये किसे बुलाकर लाने की बात कह रहे हैं?" भौंह चढ़ाकर कुलेश के प्रतिनिधि की ओर देखते हुए गणोजी ने पिलाजी से पूछा। शिर्के के कर्मचारी ने उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

"क्या कहा? वह 'कबजी' इस नगर में आया है? उसे इस हवेली में क्यों बुला रहे हो आबा? या उसने तुम पर भी अपना जादू चला दिया है?" गणोजी ग़ुस्से से तमतमाकर कुलेश के प्रतिनिधि को घूरने लगे। बोले, "अपने मालिक से कहना, यह शिरकाण है, संगमेश्वर नहीं है।"

"छन्दोगामात्य राजा की ओर से आये हैं। वे राजा का कोई आवश्यक सन्देश लेकर आये हैं। आप उनकी बात सुन तो लीजिए।" कुलेश के प्रतिनिधि ने विनयपूर्वक कहा। उसकी बात सुनते ही गणोजी एकदम भड़क उठे। कड़ककर कहने लगे, "कौन राजा? जानते नहीं, यह शिरकाण है, यहाँ के राजा शिर्के हैं। यहाँ और किसी का राजापन नहीं चलेगा। जाकर कह दो उस 'कबजी' से। कहना, ख़ैरियत चाहते हो, तो चुपचाप घोड़े घुमाकर भाग जाओ।" ग़ुस्से के कारण गणोजी ठीक से बोल भी नहीं पा रहे थे।

बैठक में उपस्थित गणोजी के नौकर-चाकर भी भौचक्के होकर देख रहे थे। कुलेश के प्रतिनिधि कुछ सोचने लगे, फिर जैसे-तैसे कह उठे, "आप अपने को ही राजा मान रहे हैं, क्या यह उचित है?"

"हाँ, उचित है। आदिलशाही और कुतुबशाही को धूल में मिलानेवाले बादशाह ने हमें राजा बनाया है। उस बादशाह के आगे भोसले की दाल कैसे गलेगी, यह जल्दी ही पता लग जाएगा। तुम्हारा वह 'कबजी' भी भीतर से हमारे बदशाह का ही आदमी है, पर ऊपर से राजा का दूत बनकर हमारा भेद पाने आया है।"

यह सुनकर कुलेश के प्रतिनिधि की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। "हम चलते हैं," कहकर गर्दन झुकाकर वे चल पड़े। पिलाजी ने उन्हें रोकते हुए कहा, "ज़रा ठहरो।"

https://t.me/Sahityajunction

“आबा, उस दिन रायगढ़ में हमारा और तुम्हारा जो अपमान हुआ था, उसे भूल गये हो शायद, इस शिरकाण की जागीर के बारे में ‘भोसलों’ ने क्या उत्तर दिया था, यह तुम भूल गये होगे, पर हम अभी नहीं भूले।” गणोजी ने पिलाजी की बात बीच में ही काट दी।

घर के बड़े-बूढ़े पिलाजी अपनी बुज़ुर्गी के अधिकार से कहने लगे, “भोसले ने क्या कहा था, यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। सोचने की बात तो यह है कि हमने बेटी दी है उस घर में, भला यह कैसे भुलाया जा सकता है?”

“जिसे तुम ‘बेटी-बेटी’ कह रहे हो न आबा, वह तुम्हारी ‘बेटी’ नहीं, राज्य की ‘महारानीजी’ हैं। तुम उन्हें लाड़-प्यार देते होगे, पर वे तो तुम्हें पानी को भी नहीं पूछतीं।”

गणोजी ने पिलाजी का मुँह ही बन्द कर दिया। फिर प्रतिनिधि को फटकारते हुए वे कहने लगे, “ये हमारे शिर्के वंश की रीत नहीं है कि शिरकाण में आये हुए आदमी को क़ैद कर लिया जाय। जाकर कहो उस ‘कबजी’ या तुम्हारे ‘कविजी’ से।” जाते-जाते भी कुलेश के प्रतिनिधि की पीठ पर एक फटकार और पड़ी।

प्रतिनिधि सुन्न होकर जाने लगे। पिलाजी भी निराश होकर और येसूबाई की याद करते हुए ‘देवी वागजाई की जैसी इच्छा’ कहते हुए बैठक से उठे और घर के भीतर चले गये। गणोजी ग़ुस्से से काँपते हुए वहीं घूमने लगे। इसी समय कान्होजी प्रदेश का निरीक्षण करके वहाँ आये। अभी-अभी जो घटना हुई थी, उसकी उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं थी। इसी समय गणोजी के मन में आशंका उत्पन्न हुई कि कहीं कुलेश शृंगारपूर पर धावा तो नहीं बोल देंगे। इसलिए उन्होंने कान्होजी को आदेश दिया, “घुड़साल में जितने भी घोड़े बँधे हैं, सब को बाहर निकालो। वह ‘कबजी’ गाँव के सिवान पर खड़ा है। उसे दूर खदेड़ दो।” और स्वयं गणोजी पैदल सैनिकों को लेकर कान्होजी की सहायता के लिए निकल पड़े।

दोनों शिर्के-भाइयों ने सिवान पर खड़े कुलेश की सेना का पीछा किया और उन्हें शिरकाण से बाहर भगा दिया। कुलेश भागकर खेलणा दुर्ग में आये और वहाँ आते ही उन्होंने तुरन्त चिटनीस को बुलाया। क्रोध, और व्याकुलता-भरे मन से वे पत्र लिखाने लगे :

‘राजश्रिया विराजित स्वामी के चरणों में आज्ञापालक छन्दोगामात्य का दण्डवत। आगे विशेष यह है कि...’

उधर इसी समय दूर रायगढ़ में राज्य की महारानीजी सायंकालीन आरती के समय अपनी कुलदेवी वागजाई को प्रणाम करके प्रार्थना कर रही थीं, “इमारे नैहर के सब लोग सकुशल-सानन्द रहें, देवी। हमारे ‘आबा’ अब बूढ़े हो चुके हैं। एक बार उनके दर्शन करा दे, देवी!”

और इसी समय कोल्हापुर में आज़म की छावनी से शेख निज़ाम दक्खनी और उसका बेटा इख़लास ख़ाँ पन्हाला दुर्ग पर धावा बोलने के लिए निकल रहे थे। ख़बर मिली थी कि—‘मरहठों का राजा मोज़दा सम्भा पनाला में है।’

https://t.me/Sahityajunction

तेरह

खण्डोजी कुलेश का भेजा ख़लीता पढ़ रहे थे।...

"शिरकाण में हुई बातचीत का अन्त संघर्ष में हुआ। शिर्केसेना सहित हमारी छावनी पर धावा बोलने आये। हमें पीछे हटना पड़ा। अब हम खेलणा आकर ठहरे हुए हैं। अधिक कुमक भेजे बिना शिर्के की समस्या सुलझेगी नहीं, और भी बहुत कुछ कहना है। हम यहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

आदिलशाही और कुतुबशाही राज्यों को मिटाकर उन्हीं की फ़ौजों को साथ लेकर औरंगज़ेब की फ़ौजें इस समय सारे मराठा राज्य में जहाँ-तहाँ घुसी हुई थीं। 'इस अवस्था में क्या किया जाय? ऐसे महत्त्वपूर्ण समय में रायगढ़ छोड़कर कहीं जाना क्या समझदारी होगी? परन्तु कुलेश ने जो कुछ लिखा है, वह भी तो उचित ही है। उनकी ही बात नहीं, यदि कोई भी जाए, तो उसकी शिर्के से दो हाथ करने की हिम्मत नहीं होगी। इस आस्तीन के साँप से तो हमें ही निबटना पड़ेगा—हमें ही शिरकाण जाना पड़ेगा।' एक बार महाराज ने उस वीर खण्डोजी की ओर देखा जिन्होंने जान की बाज़ी लगाकर उन्हें खाड़ी में डूबने से बचाया था—विचार आया—'क्या खण्डोजी को भेज दें शिरकाण? नहीं?' वे सभागृह से अन्तःपुर की ओर चल पड़े। सातमहल के निकट ही 'सती का चौरा' था। उसे देखते ही आज उन्हें माँ पुतलाबाई की याद आ गयी। उनके वे वचन कानों में गूँजने लगे—'कभी अवसर आ पड़े, तो हमारा यह रूप याद कर लेना। याद रखो, तुम पुत्र हो हमारे।'

रायाजी-अन्तोजी अन्तःपुर के बाहर ही रुक गये। महाराज भीतर गये, तो देखा कि भवानीबाई घोड़ा बनी हुई हैं और बालराजा उसकी पीठ पर बैठे हैं। महाराज उस दृश्य को देखते रहे। इतने में येसूबाई ने श्रीमान्‌जी को आया हुआ देखा, तो उन्होंने लपककर बालराजा को पीठ से उतार लिया। तब महाराज कहने लगे, "क्यों उतार दिया उन्हें? उस सवारी पर बैठा हुआ बालक कितना प्यारा लग रहा था!" महाराज ने बालराजा को उठा लिया और वे सोचने लगे कि शिर्के की कहानी येसूबाई को किस तरह बतायी जाय।

उनकी कठिनाई को येसूबाई ने तुरन्त ताड़ लिया। कहने लगीं, "खेलणा से जो ख़लीता आया है, उसका ब्यौरा हमने सुन लिया है। इस बारे में श्रीमान्‌जी क्या करना चाहते हैं?"

https://t.me/Sahityajunction

“हम सोचते हैं कि खण्डोजी को भेजा जाय।” महाराज ने अपना निर्णय बतला दिया।

“हमें लगता है...स्वयं श्रीमान्‌जी ही शिरकाण जाएँ। घर का मामला है। खण्डोजी हमारा नाता याद करके डगमगा जाएँगे वहाँ।” येसूबाई ने जो कुछ कहा था, यह वास्तव में महाराज के मन की ही बात थी।

‘श्रीसखी राज्ञी जयति’—राजमुद्रा को सार्थक कर दिखानेवाली येसूबाई की ओर महाराज अपलक नयन से देखते ही रह गये।

पौ फटते ही महाराज रायगढ़ से शिरकाण की ओर कूच करने के लिए तैयार हो गये।

नीचे पाचाड़ की अश्वशाला के पाँच हज़ार घुड़सवार और पैदल सैनिक भी तैयार खड़े थे। पेशवा, रामचन्द्रपन्त, खण्डोजी आदि के साथ महाराज सिंहासन वाले राजसभागृह में आये। इस समय तक वे निश्चय कर चुके थे कि यदि शिर्के से मुठभेड़ होने की आवश्यकता ही आ पड़ी, तो उससे भी पीछे हटना नहीं होगा। वे सिंहासन के सामने आ गये। यही था वह सिंहासन कि जिस पर बैठना सरल था, परन्तु जिस के प्रति कर्तव्यों की पूर्ति करना अत्यन्त कठिन कार्य था। ‘इसी सिंहासन की प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए ही तो आबासाहब ने हमें भी आरोपी के रूप में दरबार में खड़ा किया था। क्या इसकी प्रतिष्ठा को, इसके प्रति उत्तरदायित्वों को हम निभा सकेंगे?’

विचारों के झोंकों के बीच ही उन्होंने सिंहासन के पादासन को हाथ से स्पर्श किया और फिर हाथ अपने माथे से छुआया। तत्पश्चात् येसूबाई से विदा होने के लिए वे ख़ासमहल की ओर चल पड़े। शेष सब लोग राजसभागृह में ही ठहरे रहे।

येसूबाई अभी-अभी देवमन्दिर से लौटी थीं। वहाँ उन्होंने सर्व संकटहारिणी माँ जगदम्बा को श्रद्धापूर्ण हृदय से पुकारा था। सम्भाजी ने आते ही उनसे कहा, “रायगढ़ की व्यवस्था और देखरेख तुम्हें करनी होगी। हम रायगढ़ से दूर जा रहे हैं।”

येसूबाई ने जिजाऊ साहिबा से कई बार सुना था कि घर की फूट और बखेड़े कितना अनर्थ ढाते हैं। आँचल का छोर हथेली में पकड़कर उन्होंने अपने सुहाग को तीन बार प्रणाम किया और वे इतना ही कह सकीं, “अपना ध्यान रखना।” महाराज उनके इन शब्दों को सुनकर किसी सोच-विचार में खो गये और एकटक येसूबाई को देखने लगे। इसी समय अकस्मात् उनका ध्यान येसूबाई के हाथ की ओर गया। आज उनके हाथ में वह पुखराज-जड़ी अँगूठी नहीं थी, जो सम्भाजी ने बालराजा के जन्म के समय येसूबाई को पहनायी थी। येसूबाई को धीरज बँधाने के उद्देश्य से वे कहने लगे, “हमारी चिन्ता बिलकुल मत करो। हम शिर्के के साथ अधिक कठोरता का बर्ताव नहीं करेंगे। परन्तु...परन्तु आज वह अँगूठी नहीं है तुम्हारे हाथ में, जो हमने तुम्हें भेंट दी थी। क्यों, कहाँ गयी वह अँगूठी?”

“उसका पुखराज ढीला हो गया है। सुनार के पास भेज दी है।” येसूबाई ने कहा।

“येसू, आभूषण टूट जाए, तो बनवाया जा सकता है। परन्तु मनुष्य का क्या किया जाय? ख़ैर, जाने दो। तुम यहाँ अत्यन्त सावधानी से रहो। औरंगज़ेब की फ़ौजें चारों ओर फैली पड़ी हैं।” महाराज ने बालराजा की पीठ प्यार से थपथपायी। येसूबाई ने उन्हें देवी भवानी का चरणामृत

https://t.me/Sahityajunction

दिया, तो उसे पीते हुए वे भवानीबाई से कहने लगे, “देखो, तुम्हारा चरणामृत पी रहे हैं हम।” भवानीबाई लजा गयी। येसूबाई ने बालराजा को अपनी बायीं ओर और भवानीबाई को दायीं ओर अपने गले से लगा दिया। फिर राजसभागृह में उपस्थित लोगों के साथ वे रायगढ़ से विदा हुए।

खेलणा दुर्ग के उपरिकोट में कुलेश महाराज को शिरकाण की घटना का विवरण बतला रहे थे, “शिर्के आपकी सत्ता को मानने के लिए तैयार नहीं है, स्वामी।”

“उनका कहना क्या है कविजी?” महाराज के मन में येसूबाई की स्मृति आ रही थी।

“वे अपने को औरंगज़ेब द्वारा नियुक्त ‘राजा’ मानते हैं—शिरकाण के राजा। सुना है कि वे राजाराम को बस में करके विद्रोह करना चाहते हैं।”

“क्याऽऽ?” आठ वर्ष पूर्व कभी इसी समस्या ने सिर उठाया था। आज आठ साल बाद महाराज फिर वही बात सुना रहे थे।

येसूबाई शिर्के के विषय में कभी-कभी कुछ चिन्तित रहती भी थीं, परन्तु शिर्के ने कभी कुछ सोचने-विचारने की आवश्यकता ही नहीं समझी थी।

“शिर्के कुछ भी कर सकते हैं। वे बात-बात में ही क्रोधित हो गये और हम पर हथियार उठाकर दौड़ पड़े। विवश होकर हमें खेलणा लौट आना पड़ा।” कुलेश ने कहा।

“कविजी हम स्वयं ही शिरकाण पर धावा बोलेंगे। हम इसीलिए रायगढ़ से यहाँ आये हैं। तुम स्वयं हमारी सेना की सारी व्यवस्था का निरीक्षण कर लो।” महाराज ने दृढ़तापूर्वक कहा।

महाराज दो दिन तक खेलणा में रहकर सोच-विचार करते रहे। शिर्के ने उनके आने की आहट पा ली थी। गणोजी, कान्होजी तथा शिर्के परिवार के सब सम्बन्धी शिरकाण में मोर्चे लगाकर तैयार बैठे थे। महाराज को पिलाजी की अनेक स्मृतियाँ रह-रहकर याद आ रही थीं।

जिस नगर में दामाद बनकर आदर-सम्मान सहित जाना चाहिए था, उसी शृंगारपूर नगर पर सम्भाजी को विवश होकर तीसरे दिन हमला करना पड़ा। उधर औरंगज़ेब के मित्र बने शिर्के भी तैयार थे ही। ज़ोरदार मुठभेड़ हुई पर अन्त में शिर्के को हार खानी पड़ी। गणोजी और कान्होजी तो अपनी सेना को वहीं छोड़कर कोल्हापुर भाग गये। पिलाजी भी जाने कहाँ लापता हो गये। आबासाहब ने पिलाजी की शूरवीरता से प्रसन्न होकर ही उन्हें अपना बनाया था। शृंगारपूर विभाग उन्हें सौंप दिया था। आबासाहब की मृत्यु के पश्चात् सम्भाजी पन्हाला से रायगढ़ जा रहे थे, उस समय पिलाजी ने उनका साथ दिया था। इन सबसे बढ़कर बात यह थी कि वे येसूबाई के पिता थे। इसी बात को सोच-सोचकर महाराज का दिल डूबा जा रहा था। शिरकाण प्रदेश की व्यवस्था करने के लिए थोड़ी सेना वहाँ छोड़कर वे खेलणा की ओर चल पड़े।

खेलणा आकर महाराज जब कुलेश के साथ क़िले का चक्कर लगा रहे थे, तब उन्होंने अनुभव किया कि शिरकाण प्रदेश पर निगरानी रखने के लिए बनाया गया यह क़िला अब काफी टूट-फूट चुका है।

“इस दुर्ग की मरम्मत करा लो।” महाराज ने राजाज्ञा तो दी, परन्तु... ‘आवश्यकता पड़ने पर दुर्ग की दुरुस्ती तो करायी जा सकती है, परन्तु गणोजी जैसे स्वकीय जनों का सुधार कैसे किया

https://t.me/Sahityajunction

जाय?' मन में आये हुए इस विचार को वे अब कहते भी तो किससे?

"कविजी, तुम यहीं रहकर शिरकाण की ओर ध्यान दो। हम यहाँ से पन्हाला जाते हैं और वहाँ से बत्तीस शिराला, सातारा, वाई होते हुए रायगढ़ चले जाएँगे।" कवि कुलेश से ऐसा कहकर महाराज एक दिन खेलणा में ही रहे और अगले दिन पन्हाला आ पहुँचे।

रंगरूपी शिवपिण्डी के दर्शन करके महाराज उपरिकोट के सभागृह में आये। सभागृह में चहलक़दमी करते हुए पैरों के साथ मन भी स्मृतियों में कहीं घूम रहा था। कभी बीच ही में उन्हें शिर्के के साथ हुए युद्ध की घटनाएँ याद आ जाती थीं। कभी यह सोचकर मन पीड़ित हो उठता था कि हम येसूबाई को कभी इस दुर्ग में नहीं ला सके।

"कृष्णाजी कोन्हेर आपसे मिलने आये हैं।" पन्हाला विभाग के सेनापति म्हलोजी बाबा ने उनसे कहा। महाराज ने चौंककर देखा—म्हलोजी के साथ ही उनके दो जवान बेटे सन्ताजी और बहिरोजी खड़े थे। महाराज ने न्यायाधीश प्रह्लादपन्त को आज़मशाह के विरुद्ध सुरक्षा-व्यवस्था के लिए पन्हाला भेजा था। वे भी साथ आये खड़े थे। वे कहने लगे, "कृष्णाजी की महाजनी के बारे में कोई शिकायत है।"

महाराज ने उन्हें शिकायत कहने के लिए इशारा किया और विस्तारपूर्वक उनकी शिकायत सुनते रहे। फिर कहने लगे, "न्यायाधीश, कृष्णाजी के विवाद का निर्णय तुम्हीं करो। इस निर्णय के लिए पहले उस प्रान्त के देशाधिकारी, नायकवड़ी, देशकुलकर्णी-पटवारी आदि की एक सभा बुलवा लो।"

"प्रह्लादपन्त, चलो, सज्जा-कोठी में चलें।" कुछ सोचकर उन्होंने न्यायाधीश को साथ ले लिया। सभागृह से वे सज्जा-कोठी आ गये।

"पन्त, शिर्के की घटनाओं के कारण हमें बहुत पीड़ा होती है। तुम इस प्रान्त में बहुत दिनों से हो। शिर्के का इरादा क्या है, कुछ बता सकते हो?"

पन्त एकदम चौंक उठे।...गला एकदम सूख गया।

"यह मामला तो घर का भीतरी मामला है, महाराज। हम भला क्या कह सकते हैं?" उन्होंने जैसे-तैसे उत्तर दे डाला।

और उनका कहना था भी ठीक। इस मामले में कोई भी न कुछ बोल सकता था, न कर सकता था। ऊँची सज्जा-कोठी पर चढ़ने के लिए सब लोग ज़ीने पर चढ़ने लगे। सफ़ेद गलमुच्छों वाले म्हलोजी भी महाराज के साथ-साथ जल्दी-जल्दी ज़ीना चढ़ते चले गये।

सज्जा-कोठी की छत से कोल्हापुर ज्योतिबा का सारा विशाल क्षेत्र दिखाई पड़ रहा था। महाराज ने म्हलोजी से पूछा, "कोल्हापुर में कौन मुग़ल-सरदार डेरा डाले पड़ा है?"

"उनका नाम है—शेख निजाम आदिलशाही। बीजापुर का है। बीजापुर जीतने के बाद बादशाह औरंगज़ेब ने उसे 'मुकर्रब ख़ाँ' की पदवी दी है। पन्हाला को बड़ी लालचभरी दृष्टि से देखा करता है वह।" म्हलोजी के सफ़ेद गलमुच्छे गढ़ की तेज़ हवा में फहरा रहे थे।

"कभी अपने इस दुर्ग से भी टकराता है या नहीं।"

"जी हाँ, कभी-कभी झपट्टा मारता है, पर हम जो यहाँ चौकस बैठे हैं।" म्हलोजी गलमुच्छों पर हाथ फिराकर कह रहे थे।

https://t.me/Sahityajunction

परन्तु म्हलोजी और महाराज को इस बात का कोई पता न था कि गणोजी और कान्होजी शिर्के शृंगारपूर से भागकर इसी 'मुकर्रब ख़ाँ' से आकर मिल चुके थे। सायंकाल की प्रबल हवाएँ चलने लगी थीं। महाराज़ का अँगरखा उस हवा में फहरा रहा था। टोप की मोतियों की लड़ियाँ ज़ोर-ज़ोर से हिल रही थीं। इस समय रायगढ़ में शाम की नौबत बजने लगी। महाराज ने हाथ छाती पर ले जाकर उसका वन्दन किया और जाने क्यों उन्हें पाचाड़ की हवेली के घण्टे की याद आ गयी। शाम होने के कारण पन्हालगढ़ के पाँच-दरवाज़ा, तीन-दरवाज़ा आदि सब दरवाज़े बन्द किये जा रहे थे। सज्जा-कोठी की नीचेवाली बड़ी गहरी तलहटी में बसे गाँवों के घर-घर में दीये टिमटिमाने लगे थे। उस नीरव और मादक सन्ध्या काल का आनन्द हृदय में भरकर महाराज सज्जा-कोठी का ज़ीना उतरने के लिए मुड़े ही थे कि पन्हाला का क़िलेदार एक क़दम में दो-दो सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ हाँफता-हाँफता वहाँ आया और जल्दी-जल्दी कहने लगा, "मालिक, रायगढ़ को...शत्रु...एतिकाद ख़ाँ...ने घेर लिया है...मुख्य यातायात वाले मार्ग की दिशा से।"

वह बड़ी कठिनाई से यह कह पाया था और मुजरा करना तो भूल ही गया था। खेत में जैसे गोफन चारों ओर 'गर्रगर्र' घूमता है, इस प्रकार महाराज के मन में विचार तेज़ी से घूमने लगे।

उनकी फैली हुई आँखों के सामने येसूबाई, बालराजा, राजाराम, चांगोजी, जोत्याजी की आकृतियाँ गोल-गोल घूमने लगीं। रायगढ़ का घेरा...वह भी मुख्य मार्ग की ओर से।

जैसे मर्म स्थान में तीर की चोट खाकर कोई प्राणी बीच में आनेवाली झाड़ी झुरमुटों की परवाह न करके दौड़ता जाता है, इसी प्रकार सम्भाजी किसी की ओर भी न देखते हुए लपकते हुए कोठी से उतरने लगे।

थोड़ी देर में ही आपातकालीन शीघ्रगामी सेना तैयार हो गयी। महाराज ने उस सेना को रायगढ़ की दिशा में दौड़ पड़ने का आदेश दिया और स्वयं कुछ विशिष्ट सरदारों के साथ पन्हाला से निकलने से पहले उन्होंने म्हलोजी से कहा, "हिम्मत रखो, म्हलोजी। घबराओ नहीं। तुम्हारी आवश्यकता प्रतीत हुई तो हम हरकारा भेजेंगे। तुरन्त पहुँच जाना।"

म्हलोजी, सन्ताजी और प्रह्लादपन्त के मुजरों को स्वीकार करके पन्हाला की शाम को पीछे छोड़कर और रायगढ़ को मन में समाकर महाराज ने चन्द्रावत को एड़ लगायी। पन्हाला पीछे छूट गया। घोड़े खेलणा की ओर दौड़े जा रहे थे। बत्तीस-शिराला, वाई और महाड़ के रास्ते से रायगढ़ जाना ख़तरे की बात थी। इस मार्ग पर बीच-बीच में औरंगज़ेब की सेना की छावनियाँ लगी हुई थीं। इसलिए खेलणा और संगमेश्वर होकर जाने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं था।

खेलणा के उपरिकोट में बेचैनी से घूमते हुए छत्रपति कुलेश से कहने लगे, "कविजी, हम तुरन्त रायगढ़ रवाना होनेवाले हैं। तुम्हारे प्रान्त के जितने भी सैनिक हैं, उन्हें हम साथ ले जाएँगे। अब कुछ सोचने-विचारने के लिए दो क्षण का भी अवकाश नहीं है हमें।"

दुर्ग के बैठक-कक्ष में कुलेश, क़िलेदार, रायाजी, अन्तोजी—सभी महाराज के सामने चिन्तामग्न खड़े थे। औरंगज़ेब द्वारा रायगढ़ का घेरा—इस वास्तविकता की भीषणता को वे सब भली भाँति जानते थे।

"कोई भी संकट से भरा काम हो, हमें अवश्य आदेश दीजिएगा, स्वामी।" कुलेश ने दृढ़तापूर्वक कहा। परन्तु उनके मन में कोई बात उभर-उभरकर आ रही थी, जिसे वे महाराज को बताना चाहते थे।

https://t.me/Sahityajunction

“एक हरकारे को संगमेश्वर भेजो, कुलेश। कहो, हम आ रहे हैं।”

“जी हाँ,” हामी भरने की आदत के अनुसार कुलेश कह तो गये, परन्तु उनका मन कहीं और अटका हुआ था।

उस दिन खेलणा में ठहरना महाराज के लिए अनिवार्य था। इसलिए वे एक रात रहकर अगले दिन सुबह चुने हुए सैनिकों के साथ संगमेश्वर की ओर चल पड़े। सूर्य पूर्व दिशा के क्षितिज से झाँकते हुए उदित हो रहा था। घोड़े की टापों की आवाज़ के साथ-साथ मन में कई विचार भी टकरा रहे थे। कुलेश महाराज की ओर दौड़ रहे थे। इसी समय प्रातःकाल गणोजी और कान्होजी शिवरात्रि पर्व निकट आने के कारण कोल्हापुर की देवी अम्बाबाई के दर्शन करके मन्दिर से बाहर निकल रहे थे। परन्तु इससे पूर्व उन्होंने एक ‘श्रेष्ठ’ कार्य किया था कि पिछली रात को वे मुकर्रब ख़ाँ की कोल्हापुर की छावनी में गये थे और सम्भाजी इस समय कहाँ हैं, उनके साथ कितने लोग हैं, आदि पूरी-पूरी जानकारी उन्होंने मुकर्रब ख़ाँ को दी थी। परन्तु इस बात का पता न महाराज को था, न कुलेश को, और न ही साथ दौड़ रहे अश्वारोहियों को।

संगमेश्वर का नगरद्वार आ गया। संगमेश्वर में दो नदियों का संगम था और संगम के किनारे पर एक शिवालय था। इस संगम और शिवमन्दिर के कारण गाँव का नाम ‘संगमेश्वर’ पड़ा था, जो सार्थक ही था।

कभी-कभी मनोव्यथा असह्य हो उठती थी, तो महाराज इसी मन्दिर में शान्ति पाने आ जाते थे। आज वे इसी संगमेश्वर की ओर दौड़ते जा रहे थे। घोड़ों का एक समूह पानी पीने संगम पर गया था। इस समूह को साथ लेकर घोड़ों के सेवक घुड़साल की ओर वापस जा रहे थे। महाराज जब नगरद्वार से प्रवेश कर रहे थे, तभी घोड़ों का यह समूह उनके आगे आ गया। वे सेवक राजा और अन्य विशिष्ट जनों को देखकर झटपट उतर पड़े। परन्तु महाराज का ध्यान उनकी ओर नहीं था। उस समूह का एक घोड़ा आज दिन निकलते ही उनके सामने आ गया। महाराज उसे देखते ही चन्द्रावत की बागडोर खींचकर एकदम रुक गये। वह घोड़ा ‘ऐबी’ था, ‘अपशकुनी’ था! गहरे काले रंग के उस घोड़े के सामने के पैरों पर ख़ुरों के पास ही एक सफ़ेद गोल-गोल चकत्ता था।

‘कहीं रायगढ़ में कुछ भला-बुरा...?’ उस असगुनी घोड़े को देखकर महाराज के मन में एक भयपूर्ण आशंका कौंध गयी। वे उसी तरह घोड़े से बिना उतरे सीधे शिवमन्दिर की ओर गये। शिवलिंग के सम्मुख नतमस्तक होकर प्रार्थना करने लगे, “देवाधिदेव महादेव, हमें और हमसे भी बढ़कर आबासाहब का जो प्यारा रहा है, उस रायगढ़ का बाल भी बाँका न हो, उसके लिए चाहे तो हम अपने प्राणों को बेलपत्र बनाकर तुम्हारी पिण्डी पर समर्पित करने को तैयार हैं।”

महाराज छोटी सेना सहित संगमेश्वर के सरदेसाई की कोठी में आये। इस कोठी में संगमेश्वर के पटवारी, सरदेसाई और कराड से आये हुए अर्जोजी यादव उपस्थित थे। सज्जनगढ़ के रंगनाथ स्वामी गोसाईं उस समय संगमेश्वर आये हुए थे। उन्होंने जब सुना कि महाराज संगमेश्वर आये हैं, तो वे भी दोपहर के भोजन के बाद उनसे मिलने चले आये। गोसाईं ने आते ही ‘जय जय रघुवीर समर्थ’ की जयध्वनि की। महाराज बैठक से उठे और उन्होंने उनके चरणों में माथा नवाया।

रंगनाथ स्वामी ने महाराज के राजटोप पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। वे आशीर्वचन वही थे, जो कभी समर्थगुरु रामदास ने सम्भाजी को सम्बोधित करके कहे थे :

https://t.me/Sahityajunction

'खेती की नाली में बाधा हो, तो पानी रुक जाता है।'

"अच्छा, हम चलते हैं राजन, हमें वाघापुरी जाना है।" पुनः जयध्वनि करके रंगनाथ स्वामी खड़ाऊँ खटखटाते हुए बाहर चले गये।

महाराज को अब समर्थगुरु का काव्यमय उपदेश पुनः-पुनः याद आ रहा था : 'अपनों का तुम करो संगठन...?'

'अपनों का संगठन?' कैसे होगा यह? गुरुदेव, भला किस प्रकार सम्भव होगा यह! यहाँ तो ऐसा कुसमय आ पड़ा है कि सूर्य को दीमकें खा रही हैं। लोगों की अभिलाषाएँ भड़क उठी हैं, इतनी कि उनमें नेकी भी जलकर राख हो रही है। फूट और विद्रोह ने शूरवीरों को भी बिजूका बना दिया है। मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक रूप इतने भिन्न हो गये हैं कि उनकी निष्ठा को कोई सही रूप से आज आँक ही नहीं सकता। तुम्हारे जैसे साधु-सन्तों के आज दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। अंजलि-भर धान्य अथवा सीधा पाकर स्वयं पकाकर खानेवाले, मावलदेश की वायु के समान सर्वत्र संचार करनेवाले आप जैसे सन्त-महात्मा आज हैं ही कहाँ? तुमने कहा था 'कीर्ति शेष रहे मानव की' परन्तु कीर्तिरूपी शरीर के रूप में अमर हो जाना क्या अपने वश की बात है? हाँ, आबासाहब आज भी जीवित हैं, कीर्ति के रूप में विद्यमान हैं। वे और आप क्या मानव थे? नहीं, नहीं, आपको तो मनुष्य रूपधारी देवता कहना ही योग्य है। परन्तु हम...हमें जगदीश्वर के मन्दिर के प्रांगण में प्रस्तर निर्मित-कच्छप बनने का सौभाग्य भी क्या कभी प्राप्त हो सकेगा? अथवा क्या केवल मन्दिर में आनेवाले भक्तों के चरणों को अपनी पीठ पर ढोना ही हमारे भाग्य में लिखा है? यह राज्य यदि एकचित्त, एकप्राण नहीं हो पाया, तो क्या होगा? तुमने स्थान-स्थान पर हनुमानजी के ग्यारह मन्दिर बनवाये हैं। यदि वे हनुमान ही एक-दूसरे से रूठकर दस दिशाओं की ओर मुँह फिरा लें, तो क्या होगा?

'समझो शत्रु की बन आएगी' समर्थगुरु के इन वचनों का स्मरण आते ही छत्रपति को अपने चारों ओर मुग़ल फ़ौजें दौड़ती हुई-सी दिखलाई देने लगीं। उन्होंने औरंगज़ेब के चेहरे को याद करना चाहा, परन्तु चेहरा याद नहीं आ रहा था। समर्थगुरु ने बार-बार जिसे 'शत्रु' कहा था, वह शत्रु आख़िर उन्हें दिखलाई नहीं दे रहा था। एक बार उन्होंने खण्डोजी, रायाजी, रामचन्द्रपन्त, कुलेश आदि के मुखों पर दृष्टि फेरी और अनुमान करना चाहा कि क्या उनमें से कोई औरंगज़ेब जैसा दिखाई देता है? परन्तु नहीं, लाख कोशिशें करने पर भी औरंगज़ेब को उनकी दृष्टि देख ही नहीं पा रही थी। अतः मन के इन विचारों को रंगनाथ स्वामी की पादुकाओं के चिह्नों के प्रति समर्पित कर उन्होंने अपने चंचल मन को पुनः शान्त कर लिया।

शिरकाण प्रदेश में मसू नामक एक गाँव था। वहाँ का एक व्यक्ति हरबा देसाई महाराज से मिलने आया था। काफी देर से वह बैठक के बाहर प्रतीक्षा कर रहा था। वह बिठोजी शिर्के की भौजाई काशीबाई के विरुद्ध कोतलुक और मसू नामक गाँवों की माफ़ीदारी का अपना कोई मामला पेश करने आया था। यह गाँव सम्पत्ति के उत्तराधिकार के रूप में हरबा को प्राप्त हुआ था। परन्तु महाराज ने उसकी इस माफ़ीदारी की ज़मीन को रद्द कर दिया था और यह ज़मीन शिर्के को दे दी थी। कारण यह था कि शिर्के हमेशा सैनिक कार्यों में राज्य की सहायता करते थे। इस ज़मीन को पाकर ही शिर्के मुँहज़ोर बन गये थे। शिर्के के आदमी खलिहानों से किसानों का अनाज ज़बरदस्ती उठा ले जाते थे। इन अत्याचारों से तंग आकर देसाई के आदमियों ने शिर्के की

https://t.me/Sahityajunction

घुड़साल ही तोड़-फोड़ डाली थी। हरबा अब यहाँ इसलिए आया था कि उसे मसू गाँव की माफ़ीदारी की ज़मीन सरकारी आज्ञापत्र द्वारा दे दी जाय। कुलेश ने हरबा को महाराज के सामने पेश किया।

"मालिक, हमें मसू गाँव की माफ़ीदारी ज़मीन दिलवा दी जाए। हम तो शिर्के परिवार और उनके आदमियों से तंग आ गये हैं। शिर्के इतने घमण्डी हो गये हैं कि वे आपको भी नहीं मानते, फिर हम उनके लिए किस खेत की मूली हैं? खलिहान से अनाज उठा ले जाते हैं। हमने भी तंग आकर उनकी घुड़साल ही मिट्टी में मिला दी। अब आप हमें माफ़ीदारी का आज्ञापत्र दे दें, बस फिर समझ लीजिए कि हम आपकी ही सेवा में तत्पर हैं।" हरबा मुजरा करके और उँगलियों को गले पर लगाकर क़सम खा रहा था।

महाराज के मन और बुद्धि में तो रायगढ़ की रक्षा की चिन्ता समायी हुई थी—घिरा हुआ रायगढ़ और सामने आया तो एक गाँव की माफ़ीदारी का मामला!! हरबा को सिर से पाँव तक देखते हुए छत्रपति ने पूछा, "उस अस्तबल के रखवाले धर्मा कवठेकर का मामला क्या था?" हरबा इस मर्मभेदी प्रश्न को सुनते ही अचकचा गया। शिर्के के घुड़साल के रखवाले धर्मा को देसाई के आदमियों ने मार डाला था और उसे भूसे के ढेर पर रखकर जला दिया था। धर्मा 'महार' जाति का था।

"जी, उसने घुड़साल में हमारा बड़ा विरोध किया था।" हरबा किसी तरह कह गया। वह जानता था कि बहिर्जी और विश्वास जैसे चतुर जासूस महाराज के गुप्तचर विभाग में हैं।

"ख़ामोश ऽ! उस स्वामिभक्त सेवक की हत्या करके माफ़ीदारी ज़मीन माँगते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती!"

सम्भाजी कड़ककर बोले, "कुलेश, मसू गाँव अमानत बनाकर सरकारी दफ़्तर में जमा करा दो।"

हरबा देसाई ने करारी फटकार खायी और वह पिटे हुए के समान मुँह लटकाकर बाहर चला गया। महाराज को क्रोध से सन्तप्त देखकर कुलेश कुछ देर चुप ही रहे। कुलेश भी रायगढ़ के विषय में चिन्तित थे। वे हिम्मत करके कहने लगे, "रायगढ़ जाने से पहले..."

"कहो कविजी।" महाराज विचारों में खोये हुए थे।

"शिवजी का एक अनुष्ठान किया जाय, तो आगामी अनिष्ट कुछ न कुछ तो दूर होगा। शिवरात्रि निकट आ गयी है, इसलिए..." कुलेश शिवजी के भक्त थे, अतः उन्होंने सुझाया।

"कैसी भागा-भाग में फँस गये हैं हम भी, कविजी। यह भी भूल गये कि शिवरात्रि निकट आ गयी है। आबासाहब ने हर दुर्ग के मुख्यद्वार की दक्षिण दिशा में शिवमन्दिर बनवाया था, ताकि दुर्ग में प्रवेश करते ही शिवलिंग के दर्शन किये जा सकें। आज उन्हीं के रायगढ़ पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं। हमारे हाथों से शिवजी की पूजा सम्पन्न कराओ, पर वह पूजा हमारी ओर से नहीं, आबासाहब की ओर से होगी। हमें भरोसा है कि पाचाड़ की हमारी छावनी हमारे जाने तक मुग़लों को अवश्य रोके रखेगी।" साक्षात् रायगढ़ की रक्षा के लिए जाने का यह प्रथम अवसर था। उनका हृदय किसी शक्ति की कृपा-आशीर्वाद का भूखा था। जैसे भी बने, रायगढ़ पर लगे हुए शत्रु के चक्रव्यूह को भेदना ही था। इस युद्ध में यदि पीछे हटना पड़ा, तो इससे अधिक

https://t.me/Sahityajunction

दुःखदायी और क्या बात होती?

"खेलणा, पन्हाला और विशालगढ़ की सैनिक छावनियों में जितने भी अतिरिक्त पैदल सिपाही हों, उनहें रायगढ़ की दिशा में तुरन्त रवाना करने के ख़लीते भेज दो, कुलेश; और तुम स्वयं शिवजी के अनुष्ठान की तैयारी करो। हमने सुना है कि औरंगज़ेब भी सुबह, दोपहर और शाम को नियमित रूप से नमाज़ पढ़ता है।" महाराज इस समय यद्यपि शान्त और धीर दिखाई दे रहे थे, तथापि भीतर से वे किसी गहनतम, रहस्यमय विचार-सागर में डूबे हुए थे।

संगमेश्वर की कोठी में अब हलचल बढ़ गयी थी। लोग शिवजी के अनुष्ठान के लिए भाग-दौड़ करने लगे। संगमेश्वर में मिलनेवाली दो नदियाँ एक-दूसरे से मिलकर मन्द और शान्त गति से बह रही थीं। संगमेश्वर के भक्ति के ऊँचे पर्वतशिखर सिर उठाकर खड़े थे और उनके चारों ओर फैले हुए कोंकण के हरे-भरे वनों की हरी-हरी झाड़ियों ने उन पर्वत-शिखरों को घेरा हुआ था।

कुलेश ने मलकापुर, खेलणा, संगमेश्वर आदि विभागों से विद्वान् ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया। सरदेसाई की कोठी के बीच के खुले आँगन में एक यज्ञ-कुण्ड बनवाया गया। सरदेसाई के घर के देवमन्दिर में जलहरी से जल की धारा निरन्तर शिवलिंग का अभिषेक करने लगी। मानो उस धारा की हर बूँद पुकार-पुकार कर कह रही थी—'रायगढ़-रायगढ़'। यज्ञ-कुण्ड से उठनेवाले धूम्र से सारी कोठी भर जाती थी। धार्मिक विधियाँ पूर्ण होते ही महाराज सभागृह में आ बैठते थे। अनुष्ठान के दो दिन बीत गये। अगले दिन जब महाराज सभागृह में पधारे तब कुलेश ने उनसे कहा, "अब आपको रायगढ़ की ओर कूच करना है। हम यहाँ रहकर मलकापुर, पन्हाला और संगमेश्वर की रक्षा करेंगे। इसलिए..."

खेलणा दुर्ग के निवास काल को लेकर अब तक कुलेश के मन में जो बात अटकी हुई थी, उसे कहने में वे अब फिर सकपका गये।

"तुम्हें तो हम अपने साथ ही रखनेवाले हैं। अब इस प्रान्त को भूल जाओ, तुम्हें अब उस प्रदेश की निगरानी करनी होगी—रायगढ़ की! यहाँ के प्रदेश पर तो संकट बहुत दिनों से है।" महाराज ने सहज भाव से कह दिया।

"रायगढ़ के बारे में यह कहना ही पड़ेगा अब...कि न्याय ही अन्यायी बन गया है। स्वयं न्यायाधीश...न्यायाधीश ने..." कुलेश फिर हिचकिचाने लगे।

"क्या मतलब?" महाराज का शिवतिलक सिकुड़ गया। चेहरे की हर नस में तनाव-सा आ गया।

"स्वयं न्यायाधीश ने ही महाराज के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा है।"

"कऽविऽजी!" महाराज बैठे थे। एकदम खड़े हुए। जैसे शरीर पर खौलता तेल गिरा हो। शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। क्रोध, एकाकीपन, उलझन आदि विविध भावों के कारण वे खड़े-खड़े ही थरथराने लगे।

"छन्दोगामात्य, किसी पर यूँ ही सन्देह करना उचित नहीं है। सम्भव है, तुम्हें भ्रम हुआ हो—शायद तुम्हारे कुल-इख़्तियार पद ने तुमसे ऐसी बात कहलवायी हो। न्यायाधीश...और षड्यन्त्र

https://t.me/Sahityajunction

करें? बात ऐसी है, जैसे माता ने ही पुत्र को खाई में ढकेल दिया हो। ऐसी बात सुनना भी अनुचित है। तुमने जो कहा है, उसका सबूत क्या है?"

छत्रपति को याद आ गया कि उनके प्रति जो पहला षड्यन्त्र रचा गया था, उससे उन्होंने प्रह्लादपन्त को निर्दोष जानकर बरी कर दिया था। उसी समय उन्हें यह चेतावनी भी दी थी उन्होंने, "फिर से ऐसी भूल न करना। उसे हम सहन नहीं कर पाएँगे।" अपनी भेदती नज़रों से वे कुलेश को घूर रहे थे। कुलेश भी इस तीव्र दृष्टि से घबरा उठे थे।

"कहो, कुल-इख़्तियार सबूत क्या है, तुम्हारे पास?"

कुलेश ने अपने कमर के कनौजी दुपट्टे में से वह ख़लीता खींच निकाला, जो न्यायाधीश प्रह्लादपन्त ने मुग़ल मनसबदार गणोजी शिर्के को लिखा था। काँपते हाथों से वह ख़लीता उन्होंने महाराज के सामने रख दिया। महाराज उसे खोलकर पढ़ने लगे। एक-एक शब्द जैसे पिघले हुए सीसे की बूँद बनकर उनके हृदय पर टपक रहा था। मराठा सेना के साथ अनेक अभियानों में सम्मिलित होकर पराक्रम दिखानेवाले और अँग्रेज़ों के दरबार में दूतकर्म करनेवाले न्यायाधीश आज स्वयं अपराधी बनकर कठघरे में खड़े थे। उन्होंने गणोजी को लिखा था :

'राजाराम अकेले हैं। उन्हें यदि राजगद्दी पर बैठा दिया जाय, तो निश्चित है कि कुल-इख़्तियार पद तुमको ही दिया जाएगा। जाने कौन है, कहाँ का है वह कनौजिया? कल ही तो आया है और हमें सिखाता है कि चीं-चीं मत करो। महाराज तो उसकी सलाह ही मानते हैं। और किसी की सुनते ही नहीं।' कुछ ऐसा आशय था उस ख़लीते का। ख़लीता समाप्त होते ही महाराज ने आँखें मींच लीं। उनकी आँखों के आगे प्रह्लादपन्त के अनेक रूप, कई आकृतियाँ इस समय घूम रही थीं।

आँखें बन्द थीं और क्रोध से वे काँप रहे थे। फिर उन्होंने कुलेश को आज्ञा दी, "यह ख़लीता भेज दो पन्हालगढ़ को। म्हलोजी से कहो कि स्वयं न्यायाधीश ही पढ़ लें यह अभियोगपत्र—जो स्वयं उनके विरुद्ध है और उन्होंने ही लिखा है। वे जहाँ कहीं हों, गिरफ़्तार कर लो उन्हें। और... और अब बन्द कर दो यह अनुष्ठान—रायगढ़ के लिए शिवजी की आराधना अब काफी हो चुकी।"

महाराज ने नीचे सिर झुकाकर खड़े हुए कुलेश की ओर वह ख़लीता फेंक दिया और अपने कक्ष की ओर चले गये। तन और मन से सम्पूर्णतः आहत महाराज महल में चले गये, पूर्णतः एकाकी होने के लिए।

कुलेश को इस बात के लिए बहुत अनुनय-विनय करनी पड़ी कि महाराज पूजा-अनुष्ठान की समाप्ति करके जाएँ। अन्ततः महाराज ने स्वीकृति दे दी। समाप्ति का दिन आ गया। इस दिन संगमेश्वर के सभी निवासी कोठी में आ-आकर यज्ञ-कुण्ड में एक-एक समिधा अर्पित कर गये। सारे गाँव को पूजा समाप्ति के निमित्त भोजन दिया गया। सब अतीव सन्तुष्ट हुए।

दुपहरी ढल चुकी थी। कराड से अर्जोजी यादव वहाँ आये हुए थे। वे महाराज से मिलने आये थे। वे अपना एक मामला महाराज के सामने पेश करना चाहते थे। अर्जोजी भवन-निर्माण विभाग के प्रधान अधिकारी थे। उनके भाई गिर्जोजी ने रानी दुर्गाबाई का अता-पता पाने के लिए बुरहानपुर और खुलदाबाद तक की ख़ाक छानी थी। इन दोनों भाइयों ने राज्य की पूरी तत्परता से सेवा की थी। बड़े महराज ने उन्हें वचन दिया था कि कराड और औंध की जागीरें उन्हें देंगे,

https://t.me/Sahityajunction

परन्तु इसी समय उनका देहान्त हो गया था। यादवों का यह मामला इस कारण पिछले आठ बरसों से अधूरा पड़ा था।

"कराड और औंध की जागीरों के काग़ज़ात हमें अब मिल जाएँ, मालिक। मिरज प्रदेश में शहज़ादे की सेनाएँ विशाल छावनी लगाये पड़ी हैं। हमें जल्दी ही उधर जाना है।" अर्जोजी ने अपना विषय प्रस्तुत किया। येसूबाई की इच्छा पूरी करने के लिए अर्जोजी ने पाचाड़ में एक राजमन्दिर का निर्माण किया था। महाराज उस स्वामिभक्त अर्जोजी को एकटक देख रहे थे।

"अर्जोजी, तुम आबासाहब के समय से ही बिलकुल अपने घर के आदमी हो। परन्तु देखो, हमें इतनी भी फ़ुरसत नहीं मिली कि तुम्हारी ओर ध्यान दें। तुम कहीं नाराज़ तो नहीं हो गये?"

फिर महाराज ने सरदेसाई के चिटनीस को बुलाया और कराड तथा औंध की जागीरों का राजकीय आज्ञापत्र यादवों के नाम लिखने का आदेश दिया। फिर आज्ञापत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर किये और चिटनीस से कहा, "इस पर मुहर लगाकर अर्जोजी को दे दो। और हाँ, अर्जोजी, तुम काग़ज़ात मिलते ही कराड प्रदेश की ओर सेनासहित कूच कर दो।"

यज्ञ एवं अनुष्ठान के लिए समागत ब्राह्मणादि ने कुलेश से यथेष्ट दक्षिणा पायी और राजा को आशीर्वाद देकर वे अपने गाँव लौट गये। आज संगमेश्वर में निवास का अन्तिम दिन था। सरदेसाई की कोठी के निकट ही जो अश्वशाला थी, उसमें सेवक घोड़ों की ज़ीन उतारकर घोड़ों को दाना-पानी देने लगे और खरहरा करने लगे। स्त्रियाँ नदी से पानी भरकर अपने घरों की ओर लौटने लगीं। पंछी अपने-अपने घोंसलों की ओर बढ़ने लगे।

इसी समय गणोजी मुकर्रब ख़ाँ के कान के निकट मुँह ले जाकर दबी-दबी आवाज़ से कह रहा था, "संगमेश्वर में सिर्फ पाँच सौ घोड़े हैं। शहर के चारों ओर खड़ी चढ़ाईवाले पहाड़ हैं। आसपास कहीं भी कोई ऐसी बड़ी छावनी नहीं है कि जहाँ से कुमक आ सके। सिर्फ पन्हाला में जो घोरपड़े बैठा है, उसे ही ज़रा दबाकर रखना पड़ेगा। शत्रु को गिरफ़्तार करने का सुनहरा मौका है यह! और ख़ान साहब, इतना याद रखना कि अगर आपकी फ़तह हुई तो शिरकाण की जागीर के बारे में बादशाह से हमारी सिफ़ारिश ज़रूर कर देना।"

कोल्हापुर की महालक्ष्मी के मन्दिर में सायंकालीन आरती हो रही थी। घण्टानाद में गणोजी के शब्द डूबे जा रहे थे। थोड़ी ही देर में डेढ़ हजार सैनिकों को साथ लेकर मुकर्रब ख़ाँ कोल्हापुर से संगमेश्वर की ओर दौड़ा जा रहा था।

डेढ़ हज़ार हथियारबन्द घुड़सवारों की वह टोली कोल्हापुर से निकल पड़ी। उस टोली के आगे-आगे था मुकर्रब ख़ाँ और उसका बेटा इख़लास ख़ाँ और सबसे छोटा तथा निष्कण्टक मार्ग दिखाने के लिए गणोजी और कान्होजी भी उन बाप-बेटों के दायें-बायें दौड़ रहे थे। घोड़े जब अम्बाघाट की दिशा में दौड़ रहे थे, तो किसी भय-आशंका से घबराये हुए इख़लास ख़ाँ ने ज़ोर से पुकारकर अपने बाप से पूछा, "और अगर क़ाफ़िर हाथ नहीं आया और जंग में अपनी ही जान पर आ बनी, तो क्या होगा अब्बाजान?"

"डरपोक कहीं का! अरे, अगर वैसा हुआ भी, तो आकाजान के नाम पर शहीद कहलाएँगे और फ़तह हुई, तो हज़रत मालामाल कर देंगे हमें।" मुकर्रब ख़ाँ पूरी जान और ताक़त लगाकर दौड़ रहा था। गणोजी, कान्होजी और नागोजी माने उसे 'बायें को...दाहिने हाथ को' कह-कहकर रास्ता बतला रहे थे। छोटे-बड़े नालों को और सँकरे-गहरे रास्तों को पार करता हुआ यह दल तब

https://t.me/Sahityajunction

रुका, जब थोड़ी शाम हो आयी थी। यहाँ मशालें जलायी गयीं। मशालची घुड़सवार अब आगे हो गये और कुछ मशालची दल के बीच-बीच में होकर चलने लगे। जलते हुए ज़िहाद की लपट ही थी, जो सेना के रूप में घोड़ों पर बैठकर दौड़ी जा रही थी।

ऊँचे पन्हाला दुर्ग के और भी ऊँचे कोंकण दरवाज़े पर पहरा देनेवाले प्रहरी ने दूर अँधेरे में भागती जा रही मशालों की पंक्ति को जैसे ही देखा, वह दौड़ता हुआ उपरिकोट में जा पहुँचा। म्हलोजी घोरपड़े से हाँफते-हाँफते कहने लगा, "घोरपड़े बाबा, आफ़त आ गयी। कोल्हापुर की छावनी के सिपाही संगमेश्वर की ओर लपक रहे हैं। पता नहीं चलता कि उनके साथ कितने घोड़े हैं?"

म्हलोजी अपने पुत्र सन्ताजी और बहिर्जी के साथ घुड़साल के सामने आये। तुरन्त आदेश दिये गये और देखते ही देखते पाँच-सौ घुड़सवार तैयार हो गये। म्हलोजी कोंकण दरवाज़ा से होकर पन्हाला दुर्ग से उतरे। विशालगढ़ के रास्ते होकर एक सबसे छोटे उपमार्ग से म्हलोजी की सेना संगमेश्वर की ओर दौड़ने लगी। मराठा राज्य पर ही 'घनघोर संकट' छाने को था, उसे दूर हटाने के लिए बूढ़े म्हलोजी अपने दो वीर पुत्रों के साथ प्राणों की सारी शक्ति समेटकर दौड़े जा रहे थे—दौड़ते ही जा रहे थे।

"आबा, हम संगमेश्वर तक समय रहते पहुँच जाएँगे क्या?" युवक सन्ताजी को सन्देह हो रहा था, इसीलिए पूछ बैठा।

"अरे केवल पहुँचकर ही क्या होगा? समय आ पड़ा, तो राजा शिवाजी के सपूत को बचाने के लिए सिर भी हथेली पर रखना पड़ेगा?" म्हलोजी के सफ़ेद गलमुच्छे हवा में उड़ रहे थे।

एक ओर थी म्हलोजी की सेना, दूसरे रास्ते से दौड़ रही थी मुकर्रब ख़ाँ की सेना—दोनों सेनाएँ दौड़ी जा रही थीं संगमेश्वर की ओर, जैसे दोनों में जल्दी पहुँचने की होड़-सी लगी थी। कोल्हापुर में महालक्ष्मी के मन्दिर में और जोतिबा के मन्दिर में घण्टानाद गूँजकर अन्धकार में खो गया था। वह कालरात्रि एक-एक घड़ी एक-एक पल आगे बढ़ती जा रही थी।

इस समय सारा संगमेश्वर गाँव आराम से सोया था। सरदेसाई की कोठी में सशस्त्र प्रहरी पहरा दे रहे थे। छत्रपति हवेली के शयनकक्ष में पलँग पर लेटे थे और बीच ही में करवटें बदल रहे थे, परन्तु आँखों से नींद ग़ायब थी। रह-रहकर मन में घूम रहे थे—अकलूज में छावनी डाले पड़ा हुआ औरंगज़ेब, विद्रोही सरदार, पुर्तगाली या हबशी। कभी इन्हीं स्मृति-चित्रों में येसूबाई, आबासाहब, जिजाऊ, सती माँ, समर्थगुरु भी सम्मुख आ खड़े होते थे। कभी खुलदाबाद की कोठरी में पड़ी हुई राणूदीदी और दुर्गाबाई की याद आ जाती थी। निकट के अस्तबल में बँधी हुई घोड़ियाँ बीच-बीच में हिनहिना उठती थीं।

आधी रात के बाद महाराज को नींद आ गयी। पल-घड़ियाँ धीरे-धीरे बीत रही थीं। नया प्रभात रात्रि की कोख से बाहर आने का प्रयत्न कर रहा था। रात्रि का उत्तर काल था। कोठी की नीरवता भेदते हुए दो घुड़सवार कोठी के सामने के चौक में घुसे और तीर की तरह कोठी में घुस पड़े। सेवकों से कहने लगे, "कुलेश को जल्दी उठाओ।"

कुलेश महाराज के निकटवर्ती कमरे में सो रहे थे। सेवक ने उन्हें उठाया। किसी भय की आशंका से कुलेश तुरन्त उठकर बाहर आये। उनके सिर पर पगड़ी भी नहीं थी।

https://t.me/Sahityajunction

“क्या है?” मुजरा करनेवाले घुड़सवार से उन्होंने पूछा।

“वैरी जंगलों-नालों के बीच से छोटे रास्ते से संगमेश्वर की ओर दौड़ा आ रहा है। महाराज को झटपट उठाओ। उन्हें यह बात तुरन्त बतलानी है।” एक घुड़सवार घबराते-काँपते हुए इधर-उधर देखकर कहने लगा।

कुलेश झट से महाराज के शयनकक्ष की ओर लपके। भीतर जाकर शय्या के निकट खड़े होकर जल्दी-जल्दी कहने लगे, “स्वामी, स्वामी, उठिए। जल्दी उठिए।”

“कौन ऽ है?” कहते हुए महाराज उठ बैठे। बाहर संगमेश्वर के घरों-झोंपड़ियों में मुर्गे बाँग दे रहे थे।

“बिलकुल समय नहीं है, महाराज। एक फ़ौज जंगल में से दौड़ती आ रही है। आप तुरन्त घोड़े पर चढ़कर संगमेश्वर छोड़कर दूर निकल जाएँ। अब एक पल रुकना भी ख़तरे से खाली नहीं है।”

“यहाँ की घुड़साल में जितने घोड़े हैं, उनसे बहुत ज्यादा घोड़े शत्रु के पास हैं। सामना करना कठिन होगा।” दोनों घुड़सवारों ने एक के बाद एक अपनी बात कह डाली।

महाराज हाथ पीठ पीछे करके शयनकक्ष में ही जल्दी-जल्दी घूमने लगे। घुड़सवार उत्सुक दृष्टि से उन्हें देख रहे थे। आले में जल रही मशाल की ओर देखते हुए महाराज कुलेश से कहने लगे, “ये अवश्य ही शिर्के के सैनिक हैं। शत्रु की दूसरी कोई छावनी तो निकट है नहीं, दूर कोल्हापुर में है। शिर्के की क्या मजाल, जो इतनी रात गये घाटों-नालों को पार करके हमारे प्रदेश के इतना भीतर घुसकर संगमेश्वर पर हमला करे? कुलेश, इन लोगों की व्यवस्था करो।”

सन्देशवाहक घुड़सवारों की ओर देखकर महाराज ने कुलेश से कहा। कुलेश चिन्तित होकर बाहर निकल पड़े और वे सन्देशवाहक भी बेचैन और निराश होकर बाहर निकल गये। महाराज फिर इधर-उधर टहलने लगे और थोड़ी देर बाद पलँग पर लेट गये। परन्तु प्रयत्न करने पर भी नींद आती ही नहीं थी। मन में शिर्के सम्बन्धी विचार आ रहे थे।

‘अब रायगढ़ लौटकर भला ‘श्रीसखी’ को कैसे बतलाएँगे कि तुम्हारे सगे भाइयों को हमें शिरकाण से खदेड़ना पड़ा। शिर्के का और हमारा ये जन्म-जन्म का कैसा लेना-देना था? हमारे नाम से सुहाग का सिन्दूर अपनी माँग में भरकर क्या मिला ‘श्रीसखी’ को?’ मन में विचार आ-जा रहे थे।

महाराज तबक़ में रखे राजटोप की ओर देख रहे थे। मशालों के प्रकाश में उस टोप के कलाबत्तू के बेल-बूटे जगमगा रहे थे। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा कि उनका राजटोप आबासाहब के समान नहीं है। ‘आबासाहब का राजटोप ऊँची बनावट का था। जब कि हमारा...हमारा टोप थोड़ा दबा हुआ-सा मुग़ल-पगड़ी ‘किमॉश’ के जैसा है। हमारे दादा का टोप ही हमारे जैसा ही था। उन्होंने कम से कम इतना तो किया कि आदिलशाही और निजामशाही को दबाये रखा। हम क्या कर पाएँगे यह सब? क्या इस मराठाशाही की रक्षा कर पाएँगे?’

उधर यह घटना हो रही थी कि म्हलोजी बाबा संगमेश्वर के नगरद्वार में घुस गये थे और अपने घुड़सवारों के साथ नगर को चारों ओर से घेरकर वे सुरक्षा के लिए सन्नद्ध हो गये थे। प्राणों की भी परवाह न करके वे एक छोटे रास्ते से, घोड़े उड़ाते हुए आये थे, इसलिए वे बिलकुल ठीक

https://t.me/Sahityajunction

समय पर पहुँच सके थे। उनकी चारों ओर फैलती हुई सेना ने ऊँचा रणघोष गुँजाया कि जिसे सुनकर वह सुबह भी थर्रा उठी। "हर-हर महाऽदेव।" अभी यह रणघोष वायुमण्डल में ही गूँज रहा था कि बेतहाशा दौड़कर आती हुई मुग़ल-सैनिकों की फ़ौज को साथ लिये हुए मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ भी संगमेश्वर के नगरद्वार के भीतर घुस पड़े। प्रातःकाल का प्रकाश धूल के बादलों से ढँक गया। 'दीन...दीन' की गर्जना से संगमेश्वर दहल उठा। सब ओर पुकारें और कोलाहल मच गया था। यह कोलाहल सरदेसाई की कोठी में लेटे हुए महाराज के कानों ने भी सुना और वे झटके से उठ बैठे और दरवाज़े की ओर लपके। बाहर से कुलेश इतने बदहवास होकर भागे जा रहे थे कि महाराज से टकराते-टकराते बचे। रायाजी-अन्तोजी की दशा भी अति-विचित्र थी। वे कुछ कहने-सुनने की अवस्था में थे ही नहीं। आज राज-परम्परा के सारे नियमों को भुलाकर रायाजी ने एकदम छत्रपति की भुजा को पकड़कर झकझोरते हुए कहा, "एक पल भी मत ठहरिए यहाँ। विश्वासघात हुआ है, महाराज। हथियार थामिए और झटपट बाहर निकलिए।"

महाराज झट से मुड़े और राजटोप सिर पर रखकर उन्होंने म्यान से तलवार खींच ली और म्यान वहीं फेंककर उन्होंने बायें हाथ में ढाल ले ली। इस समय तक कुलेश भी ढाल-तलवार लेकर वहाँ आ चुके थे। कोठी का हर आदमी, जो भी हथियार हाथ लगे, लेकर कह रहा था, "चलो, बाहर चलो। शत्रु ने गाँव को घेर लिया है।" सारी कोठी में होहल्ला मचा हुआ था। रायाजी, अन्तोजी, कुलेश, अर्जोजी आदि के साथ महाराज भी दरवाज़े से बाहर निकले। साईसों ने अब तक घोड़े अस्तबल के बाहर निकाल दिये थे और वे बड़ी बेचैनी से दरवाज़े की ओर एकटक देख रहे थे। म्हलोजी की रक्षा-पंक्ति को तोड़कर दस-बीस सिपाही कोठी तक पहुँचे थे। साईस प्रतीक्षा कर रहे थे कि ये बीच में आये हुए दस-बीस मुग़ल सिपाही हथियारों के शिकार हो जाएँ, तो वे घोड़े महाराज को दे दें। एक-एक क्षण भी उन्हें पहाड़ से भी भारी लग रहा था। अन्ततः जब साईसों को यह प्रतीक्षा असह्य हो उठी, तो उन्होंने सोचा 'अपने प्राणों से भी बढ़कर मूल्य इस समय इन घोड़ों का है। और वे उस गुत्थमगुत्थी में घुस पड़े। इतने में इख़लास ख़ाँ जोश और युद्धोन्माद से पागल बने हुए सौ-पाँच सौ सिपाहियों की टुकड़ी साथ लेकर 'दीन-दीन' गरजता हुआ वहाँ आ पहुँचा। नंगी तेग नचाते हुए इख़लास ख़ाँ दरवाज़े तक आ गया परन्तु उधर म्हलोजी बाबा के प्राण भी महाराज से जुड़े हुए थे। वे भी मुकर्रब ख़ाँ की टुकड़ी के वार बचाते हुए सन्ताजी और बहिर्जी को लेकर वहीं आ पहुँचे। अब दरवाज़ा ही कुरुक्षेत्र का रणक्षेत्र बन गया था। महाराज, कुलेश, अर्जोजी, रायाजी और अन्तोजी ने अब तक साईसों से घोड़े ले लिये थे और वे अब घोड़ों पर बैठ चुके थे। म्हलोजी लड़ते-भिड़ते हुए अपना घोड़ा महाराज के पास ले आये थे और घोड़े को लट्टू की तरह महाराज के चारों ओर घुमाते हुए शत्रुओं के वारों को रोकते हुए ज़ोर से पुकारकर कह रहे थे, "रास्ता बनाइए, मालिक। नौका-घाट पहुँचिए। नाव में बैठकर निकल जाइए यहाँ से। हम प्राणों की बाज़ी लगाकर डटे रहेंगे।" म्हलोजी की वाणी के रूप में मानो मराठा-राज्य ही पुकार-पुकारकर कह रहा था। जगह-जगह मावलों के और सिपाहियों के बीच घनघोर लड़ाई हो रही थी। तलवारों की झनझनाहट, चीख़-पुकार, टापों की आवाज़ों और घायल घोड़ों की हिनहिनाहट से सब ओर कोलाहल और हल्ला-गुल्ला मचा हुआ था।

भवानी की वस्त्रज्योति के समान भड़के हुए महाराज तलवार को गोफने की तरह तेज़ी से घुमाते हुए जिधर को रास्ता मिले, उस ओर चन्द्रावत को घुसाते जा रहे थे। म्हलोजी, सन्ताजी,

https://t.me/Sahityajunction

बहिर्जी, अर्जोजी जैसे वीर पटैत महाराज के लिए नौका-घाट की ओर रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ रहे थे। जैसे कोई आँधी में दीपक को जतन से सँभालकर ले जा रहा हो; महाराज का सफ़ेद घोड़ा चन्द्रावत जैसे-जैसे आगे जा रहा था, इख़लास ख़ाँ भी लड़ता-भिड़ता हुआ आड़े आनेवाले मावलों को हटाता हुआ आगे-आगे बढ़ रहा था। अब महाराज नौका-घाट के काफी निकट आ गये थे। अभी सुबह ही थी फिर भी लड़ाके मावले और मुग़ल सिपाही पसीने से नहा रहे थे। एक ओर म्हलोजी और कुलेश, दूसरी ओर मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ पुकारकर-ललकारकर अपने-अपने सैनिकों में जोश भर रहे थे। कुछ मावले भीड़-भड़क्के में से निकलकर नदी किनारे जा पहुँचे थे और वहाँ उन्होंने मल्लाहों और नावों को तैयार रखा था। सशस्त्र मल्लाहों और सैनिकों द्वारा संरक्षित वह नौका लहरों में हिचकोले खा रही थी। शायद वह भी अत्यधिक चिन्तित होकर नदी तट के मैदान पर मच रही झड़पा-झड़पी को देख रही थी।

इख़लास ख़ाँ ने जब देखा कि क़ाफ़िरों के राजा तक पहुँचने में म्हलोजी आड़े आ रहे हैं, तब चिल्लाकर बोला, "घेर लो बुड्ढे को ही।" महाराज के आगे लड़ रहे म्हलोजी के चारों ओर झल्लाये हुए मुग़ल-सिपाहियों की भीड़-सी जमा हो गयी। म्हलोजी अपनी टुकड़ी से अलग जा पड़े। अत्यन्त थकावट के कारण मुँह में झाग आ रहा था, परन्तु वे चिल्लाकर कह रहे थे, "मालिक, नौका, घाट।" कभी सिंहगढ़ पर आक्रमण के समय शेलारमामा भी इसी बहादुरी से लड़े थे। अन्तर यही था कि वीर शेलारमामा की अन्त में जीत हुई और म्हलोजी? म्हलोजी के शरीर पर इतने घाव हो गये थे कि अब घाव होने के लिए जगह ही नहीं बची थी। और इतने में ही एक सिपाही की चौड़ी तेग का घातक बार उनकी छाती पर हुआ!! आह! अन्ततः गिर ही पड़े म्हलोजी! घोड़े से नीचे गिर पड़ा मराठों का वह सरनौबत, वह सेनापति!

महाराज अब तक नौका-घाट पहुँच गये थे। उन्होंने ज्यों ही यह हृदयदाहक समाचार सुना कि 'म्हलोजी बाबा खेत रहे,' उनकी तेग थोड़ी देर के लिए रुक गयी। पास के मुग़ल सिपाहियों के लिए यही उचित अवसर था। एक ने ज्यों ही वार किया, महाराज ने वार बचाने के लिए झट से अपनी गरदन एक ओर झुका ली। इसी समय उनका राजटोप नीचे गिर गया। इस विचित्र घटना से चौंककर महाराज ने किसी रहस्यमयी, गुप्त शक्ति से प्रेरित होकर चन्द्रावत के पेट में इतनी ज़ोर से एड़ मारी कि वह प्राणी नदी तट की दिशा में बिजली की गति से दौड़ पड़ा।

वहाँ वे नदी के पात्र में उतरना चाहते ही थे, कि उन्होंने देखा कि नंगी तेंगें ताने हुए मुग़ल-सिपाहियों ने पूरा किनारा ही रोका हुआ था। छत्रपति ने घोड़ा घुमाया, तो देखा कि सन्ताजी-बहिर्जी उनकी छाया के समान उनके पीछे आये खड़े हैं। उन्हें देखते ही महाराज चिल्लाये, "यहाँ मत रुको। रायगढ़ पहुँचो। जितने भी सैनिक मिल सकें, साथ लो, रायगढ़ को बचाओ। जाओ।" वे दो घोरपड़े भाई और महाराज सिपाहियों के हर हमले को बेकार बना रहे थे। व्यथित सन्ताजी अतीव व्यग्र होकर पुकार उठे, "जो होना है, सो होने दो। हमारे आबा तो चले ही गये, अब मालिक को अकेला पीछे छोड़कर कैसे जाएँ हम?"

"जगदम्बा की शपथ है तुम्हें! यह हमारी आज्ञा है। जाओ, निकल पड़ो यहाँ से।" इतने भयानक रण के बीच भी शत्रु के घेरे में फँसे हुए होकर भी सन्ताजी हथियार घुमाते हुए बोले, "जी, जो आज्ञा," और उन्होंने घोड़ा घुमा लिया। बहिर्ज़ी भी उनके पीछे हो गये।

नौका-घाट के मैदान में जगह-जगह पर मावलों की और सिपाहियों की लाशें बिछी हुई थीं।

https://t.me/Sahityajunction

अचेत पड़े सेनापति म्हलोजी के गलमुच्छे हवा में उड़ रहे थे। खुली हुई आँखें शायद किसी आशा से भरकर नौका-घाट की ओर देख रही थीं। अर्जोजी, रायाजी, अन्तोजी महाराज के अनन्यतम बनकर उनके साथ थे। मन्त्रियों ने 'कनौजिया' कहकर जिनकी जीवन-भर निन्दा-उपेक्षा की थी, वे कवि कुलेश महाराज की दाहिनी ओर खड़े हुए लड़ रहे थे। संगमेश्वर से बाहर जाने के सब रास्ते बन्द हो चुके थे। अब सबके सामने एक ही उपाय था—युद्ध करना, लड़ते जाना। सब इस सचाई को जानते थे और इसीलिए उन्होंने मन को दृढ़ बना लिया था।

चारों ओर से तलवारों के टकराने की आवाज़ें आ रही थीं। इतने ही में कहीं से एक तीर आया और सनसनाता हुआ कुलेश की दाहिनी बाँह में घुस गया। बायें हाथ से अपना दायाँ हाथ पकड़ने का प्रयत्न करते हुए कुलेश घोड़े से गिर पड़े। गिरते हुए, चिल्लाये, "मैं गिर गया, स्वामी।"

उनकी पुकार सुनते ही अपने पर होनेवाले वारों को बचाते हुए छत्रपति उनके पास आये। वे तेज़ी से भूमि की ओर लपके और पलक झपकते कुलेश की बगल में हाथ डालकर उन्हें उठाते हुए कहने लगे, "उठो छन्दोगामात्य, हिम्मत मत हारो। आओ, लड़ते-लड़ते ही मरेंगे। जीवन के काव्य का अन्तिम अध्याय भी सुन्दर लिखेंगे।" कुलेश ने तीर बाँह से निकालकर फेंक दिया था। उनके अँगरखे की दायीं बाँह ख़ून से लथपथ हो गयी थी, फिर भी हाथ से तलवार नहीं छूटी थी। रायाजी-अन्तोजी, अर्जोजी तथा अन्य कई सैनिक भी महाराज के साथ-साथ नीचे उतर पड़े थे और अब महाराज तथा कुलेश पर टूटनेवाले सिपाहियों के रेले को रोकने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील थे। अब लड़ाई ज़मीन पर ही हो रही थी। इख़लास ख़ाँ और मुकर्रब ख़ाँ भी नीचे उतर पड़े थे। सिपाहियों की इतनी भीड़-भाड़ हो गयी थी कि उनमें से कई तो हथियार भी घुमा नहीं पा रहे थे। महाराज के चारों ओर भी इतना भीड़-भड़क्का हो गया था कि कोई भी हथियार नहीं चला पाता था। महाराज के घायल शरीर से भालों की नोकें और तलवारों के फल चारों दिशाओं से आ लगे। महाराज के उठे हुए हाथ में भवानी तलवार ऊपर ही उठी रह गयी। नैवेद्य के गुड़ के ढेले को मकौड़ों ने चारों ओर से घेर लिया। यही दशा रायाजी-अन्तोजी और कुलेश की भी हुई। सिपाहियों की भीड़ को चीरता हुआ मुकर्रब ख़ाँ का जवान बेटा इख़लास ख़ाँ 'श्री' के राज्य के उत्तराधिकारी, बुरहानपुर और औरंगाबाद को ध्वस्त करनेवाले, गोवा के पुर्तगालियों की नींद हराम करनेवाले, जंजिरा के हबशी के होश ठिकाने लगानेवाले और आला-हज़रत को मराठा-भूमि से पीछे हटने के लिए मजबूर करनेवाले उस 'लईम-सम्भा' के सामने आया।

महाराज अपने शरीर के अस्तित्व को तो नौका-घाट की धूलि में ही समर्पित कर आये थे और अब वे खड्ग की धार के समान तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहे थे हाथ में पकड़ी हुई भवानी-तलवार को। जाने कहाँ खोये हुए थे वे?

"फेंक दो हथियार," इख़लास ख़ाँ कड़ककर बोला। उसके शब्द महाराज के कानों से टकराकर यों बिखर गये जैसे किसी तट की दृढ़ चट्टान से टकराकर सागर की लहरें छितरा जाती हैं। वे पूर्ववत् स्थिर बने रहे, कोई अंग भी हिला नहीं।

"क़ाफ़िर, सुनते हो या नहीं? फेंक दो हथियार।" ग़ुस्से से जलता हुआ इख़लास ख़ाँ पवित्र नदियों के जल से अभिषिक्त राजा के उस मस्तक के बालों को झिंझोड़ते हुए गरजकर कह रहा था। उसकी इस बदतमीज़ी के कारण महाराज पुखराज की तीव्र किरणों जैसी दृष्टि से उसे घूरने

https://t.me/Sahityajunction

लगे। ख़ान घबरा गया कि कहीं क़ाफ़िर के हाथ की तलवार गरदन पर ही न आ पड़े। इतने में भीड़ को हटाता हुआ कुछ-कुछ लाल दाढ़ी-मूँछोंवाला मुक़र्रब ख़ाँ वहाँ आया। उसे कोर्निश करते हुए इख़लास ख़ाँ कहने लगा, "क़ाफ़िर हथियार नहीं फेंकता है। मग़रूर है।"

"सब्र से काम लो बेटे! सूरमा कभी ख़ुद हथियार नहीं फेंकता!" अपने बेटे को शान्त करते हुए मुकर्रब ख़ाँ महाराज के सामने आया और उनकी ओर देखता हुआ अपने फ़ौजियों से कहने लगा :

"पहले इसे गिरफ़्तार करो। रस्सी से हाथ बाँध दो और फिर हथियार खींच लो। ले जाओ इसे।"

युद्ध समाप्त हो चुका था। जितने भी मावले सैनिक जीवित बचे थे, उन्हें रस्सियों से जकड़ दिया गया था। महाराज सम्भाजी और कवि कुलेश संगमेश्वर के शिवजी के सम्मुख ही बन्दी बना लिये गये!

दिन निकल आया था। इसी समय साठ हजार सिपाहियोंवाली अकलूज शहर की अपनी फ़ौजी छावनी में मुहीउद्दीन मुहम्मद आलमगीर गाज़ी औरंगज़ेब अपने डेरे में ईरानी क़ालीन पर सब्र की नमाज़ पढ़ रहा था :

"अलहम्दुलिल्लाह—ला इलाह इल्लिल्लाह—मुहम्मद उर्रसूलिल्लाह।"

नमाज़ ख़त्म होते ही अपने शाही डेरे में आकर उसने वज़ीर असद ख़ाँ से पूछा, "मुक़र्रब ख़ाँ की क्या ख़बर है? कोल्हापुर में बैठा हुआ वो उस नाचीज़ सम्भाजी का पीछा कर रहा है या नहीं? या पड़ा है वहीं ऐशो-आराम से?"

संगमेश्वर के निकट के किसी जंगल में कहीं बैठे थे थके-माँदे गणोजी शिर्के और नागोजी माने! मुकर्रब ख़ाँ को संगमेश्वर का रास्ता दिखलाकर वे थक चुके थे और अब घोड़े बाँधकर जंगल में ही नाश्ते के लिए मुट्ठी मारकर प्याज़ फोड़ रहे थे, "प्याज़ फोड़ने से आँखों में पानी आता है। पर उपाय भी क्या है? आख़िर रोटी तो खानी ही होगी न!"

मुकर्रब ख़ाँ के पास अब ठहरने के लिए समय नहीं था। वह जानता था कि यदि वह वहाँ ठहरेगा, तो क़ैद किये गये अपने राजा को छुड़वाने के लिए मावले-सैनिकों की टुकड़ियाँ जगह-जगह छापे मारेंगी और जी-जान एक कर देंगी। उसने अपने मृत सिपाहियों को दफ़न करने के लिए एक दल वहाँ छोड़ा और इख़लास को हुक्म दिया, "पकड़े गये मराठों में से जो लोग इस्लाम क़बूल करने के लिए तैयार हैं, उन्हें रिहा कर दो।" इन क़ैदियों में रायाजी और अन्तोजी भी थे और यह नितान्त असम्भव था कि वे अपने धर्म छोड़ दें। परिणाम बिलकुल स्पष्ट था। अर्जोजी जैसे-तैसे बच निकले थे, परन्तु वे अकेले कुछ कर नहीं सकते थे, इसलिए वे कराड़ चल दिये। सुरक्षित बचे हुए सन्ताजी और बहिर्जी राजा की आज्ञा के अनुसार रायगढ़ की ओर दौड़ लगा रहे थे। सन्ताजी के पास महाराज के घोड़े का ज़ीन था। महारानी येसूबाई को दिखाने के लिए उस गुत्थमगुत्थी के बीच यही एक स्मृतिचिह्न वह साथ ले पाया था।

महाराज जैसे ही चन्द्रावत से उतरे थे, ग़ुस्सैल मुग़ल-सिपाहियों ने चन्द्रावत पर ही वार किये थे। वह इस समय चारों पैर फैलाकर भूमि पर गिर पड़ा था। साँस अभी भी बाक़ी थी। छाती

https://t.me/Sahityajunction

ऊपर-नीचे हो रही थी। पीड़ा के कारण आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। कुछ ही दूरी पर घोरपड़े के सैनिकों की टोली के मृत सैनिकों के बीच म्हलोजी का निर्जीव शरीर पड़ा था। मुट्ठी अभी तक तलवार की मूठ को कसे हुए थी। उनकी पगड़ी भूमि पर उनकी तलवार के पास ही पड़ी हुई थी। इख़लास ख़ाँ और मुकर्रब ख़ाँ बरछैतों द्वारा चारों ओर से बरछे की नोक लगवाकर कुलेश और महाराज को एक जगह ले आये थे। कन्धों पर ओढ़ी हुई 'ख़िलअत' की हरी पोशाक को झटका देता हुआ मुकर्रब ख़ाँ भागता-दौड़ता हुआ अपनी फ़ौज को बार-बार हुक्म दे रहा था, "जल्दी करो, वक़्त नहीं है।" बीच-बीच में अपनी लाल दाढ़ी पर वह हाथ फिरा रहा था। चेहरा उत्साह से लबालब भर उठा था।

बन्दी बनाये गये मावले-सैनिकों को क़त्ल करने के लिए ले जाया जा रहा था। इन्हीं में रायाजी-अन्तोजी भी थे। सिपाहियों द्वारा खींची जा रही रस्सियों के ज़ोर को पूरी शक्ति से रोककर रायाजी-अन्तोजी अश्रुपूर्ण नयनों से और अतीव व्यथित वाणी से पुकार उठे, "मालिकऽऽ"

"मालिक, जीवन-भर तुम्हारी छाया बनकर साथ रहे हैं। अब अन्त समय में ये साथ क्यों छूटा जाता है? हमें भी साथ ले लो, मालिक।" बड़े भाई रायाजी की आँखों से स्वामिभक्तिपूर्ण जल की कुछ बूँदें निकलकर उसके बारहबन्दी कुरते पर टपक पड़ीं।

"दूध के भाई तो बने हो, रक्त देकर भी बन्धुता निभाने दो, मालिक। हमें भी साथ ले लो नऽ मालिक!" छोटे भाई अन्तोजी ने अपने बँधे हुए हाथों से ही मुजरा करने का प्रयत्न किया।

महाराज की आँखें उस समय भी छलछला आयी थीं, जब बड़ी आऊसाहिबा जिजाऊ स्वर्ग सिधारी थीं, जब समर्थगुरु ने इहलीला समाप्त की थी, जब सती माँ पुतलाबाई चिता पर चढ़ी थीं, उस समय भी महाराज की आँखें डबडबा आयी थीं। आज भी नयनों में आँसू छलक आये। उनके आँसुओं के परदे ने दृष्टि को धुँधला बना दिया था। जगदम्बा भवानी ने ही जिनका नाता सम्भाजी से जोड़ा था, उन रायाजी-अन्तोजी से अन्तिम बार मिलने के लिए महाराज सम्भाजी जैसे ही उनकी ओर झपटे, पीछे से सिपाहियों ने रस्सियाँ खींच लीं।

मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज वापसी के लिए तैयार हो चुकी थी। मुकर्रब ख़ाँ ने एक बार सारे इन्तज़ाम की देखरेख की और जब यह पूरा भरोसा हो गया कि ठीक-ठाक है, तो उसने कड़ककर हुक्म दिया, "डाल दो क़ाफ़िरों को घोड़ों पर। रस्सों से कसके जकड़ दो उन्हें! हज़रत के लिए यह तोहफ़ा ले जाना है हमें—एक मरहट्ठों का राजा और दूसरा उसका बम्मन दोस्त। वाह, बहुत ख़ूब! ख़ैर हुई अल्लाह की।"

बरछैतों ने बरछों की नोकें महाराज सम्भाजी की पीठ में चुभायीं। रस्सेवाले रस्से खींचने लगे। महाराज ने मुट्ठियों से रस्सों को पकड़ा और पूरी शक्ति से भूमि में पाँव गाड़कर वे मुकर्रब ख़ाँ की ओर देखकर दृढ़ता से कहने लगे, "ख़ान, जंग आहे हा, दर्शन घेणार आहोत आम्ही आमच्या सरलष्कराचे।"

ख़ान बोली समझ नहीं पाया। चकराकर अपने सैनिकों से पूछने लगा, "क्या कहता है यह?"

उसकी ओर दृष्टि गड़ाकर देखते हुए महाराज ही स्वयं हिन्दुस्तानी में कहने लगे, "ख़ान, यह जंग है। हम लड़ाई में काम आये हुए अपने सिपहसालार को एक बार देखना चाहते हैं।"

https://t.me/Sahityajunction

"हाँ, हाँ, शौक से, शौक से।" गरदन को पीछे की ओर झटका देकर ख़ान इतनी जोर से हँसा कि उसकी आँखों से पानी निकल आया। रस्सीवालों को और बरछैतों को लगभग खींचते हुए महाराज उस दिशा में बढ़ने लगे, जहाँ म्हलोजी भूमि पर गिर पड़े थे। महाराज वीरासन लगाकर नीचे भूमि पर बैठे। म्हलोजी की निष्प्राण देह की छाती को छूकर उन्होंने हाथ अपने माथे से लगाया और इस रीति से उन्होंने उस परमवीर सेनापति को मुजरा किया। कभी पहले 'पावनखिण्ड' नामक पहाड़ी दर्रे में बाजीप्रभु देशपाण्डे ने शिवाजी के लिए ऐसा ही बलिदान किया था। कभी सिंहगढ़ की विजय के समय तानाजी मालुसरे ने इसी प्रकार आबासाहब की इच्छा की पूर्ति के लिए प्राण न्यौछावर किये थे। परन्तु बाजीप्रभु और तानाजी के अन्तिम समय में आबासाहब नहीं थे वहाँ। यदि होते तो क्या करते? आज महाराज सम्भाजी ने वही किया। म्हलोजी भाग्यवान थे कि वीरगति के द्वारा उन्होंने आज मराठा राज्य के छत्रपति से सम्मानपूर्वक मुजरा पाया। इसके लिए अपने प्राणों का मूल्य भी तो चुकाया था उन्होंने।

सिपाहियों ने रस्से खींचे। बरछैतों ने नोक चुभाना शुरू किया। दो तैयार घोड़ों पर महाराज को और कुलेश को लाद दिया गया। मोटी-मोटी रस्सियों से दोनों के हाथ कसकर बाँध डाले गये और फिर दोनों के शरीरों को रस्सों से कसकर बाँधा गया। सम्भाजी के घोड़े की लगाम मुकर्रब ख़ाँ ने अपने हाथ में पकड़ ली और कुलेश के घोड़े की बागडोर इख़लास ख़ाँ ने पकड़ी हुई थी। ये दो घोड़े लगातार दौड़ते रहे, इनके पीछे दो-दो घुड़सवार तैनात किये गये थे ताकि वे घोड़ों के पुट्ठों पर भाले चुभाते रहें। जब छत्रपति को और छन्दोगामात्य को बोरों की तरह घोड़ों पर बाँध दिया गया, तो तेग ऊँची उठाकर मुकर्रब ख़ाँ ज़ोर से पुकार उठा, "दीऽन, दीऽन। चलो।"

मराठा राज्य को रस्सों में बाँध दिया गया, फ़तह मिल गयी। मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज मिरज की ओर दौड़ी जा रही थी। संगमेश्वर, खेलणा, पन्हाला, मलकापुर आदि प्रदेशों के मराठा-सैनिक जो कुछ संगमेश्वर में बीत चुका था, उससे कतई अनजान थे। गर्मी के दिन थे। किसान अपने खेतों की ओर जुताई आदि कृषि-कर्मों के लिए जा रहे थे। सन्ताजी-बहिर्जी पाँच-सात घुड़सवारों सहित दौड़ते जा रहे थे रायगढ़ की ओर, परन्तु उनके प्राण बँधे हुए थे संगमेश्वर की ओर। 'महाराज को शत्रु के चंगुल से छुड़वाना ज़रूरी है, परन्तु किया क्या जाय? हरामज़ादे उन्हें कहाँ ले गये होंगे? उस घपले-झमेले में इतना भी तो समय नहीं मिल पाया कि अपने बलिदानी पिता का अन्तिम संस्कार कर सकें! अब क्या करें?' दौड़ते हुए घोड़ों के साथ विचार भी दौड़ते जा रहे थे।

सरदेसाई की कोठी की दुर्दशा हो गयी थी। कई लड़ाके जवान काम आये थे। जो पकड़े गये थे, वे कत्ल करने के लिए ले जाए जा रहे थे। मराठों के घोड़ों का साथ ले जाना मुकर्रब ख़ाँ के लिए असम्भव काम थां। बिना सवार के घोड़े पूँछ फटकारते हुए नौका-घाट के मैदान में घास चरते फिर रहे थे। पूर्णाहुति के यज्ञ की समिधाएँ अब बुझ चुकी थीं और राख कोठी के आँगन में उड़ रही थी। शिव मन्दिर में जलहरी का जल समाप्त हो चुका था। वह सूखा पात्र जैसे मुँह बाये शिवलिंग की ओर निहार रहा था।

संगमेश्वर के परिसर को घोड़ों की टापों से उठ रही धूल से धुँधला बनाकर विजयी मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज पन्हाला को एक ओर छोड़कर भेउस गाँव और बत्तीसशिराला के रास्ते होकर चली जा रही थी मिरज की ओर। मिरज में एक मैदानी क़िला था, जहाँ मुग़लों की एक मज़बूत फ़ौजी

https://t.me/Sahityajunction

छावनी थी। ऊँचे पहाड़ी दुर्ग पन्हाला के ऊँचे परकोटे पर पहरा दे रहे प्रहरियों ने उस मुग़ल-सेना को देखा भी, परन्तु किसी को भी यह क्या पता था कि यह सेना उन सबके हृदयों का स्पन्दन ही साथ लिये जा रही है। कुछ मावले संगमेश्वर से जैसे-तैसे बच निकले थे। उनका अनुमान था कि मुकर्रब ख़ाँ महाराज को कोल्हापुर ले जाएगा। इसलिए उन्होंने मराठों के विशालगढ़ दुर्ग को सूचित करके सावधान कर दिया था और वे एक छोटे रास्ते होकर कोल्हापुर पहुँचने की शीघ्रता कर रहे थे।

मलकापुर क्षेत्र में से होकर मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज ने वारणा नदी पार की। उस पार बत्तीसशिराला में एक मैदानी क़िला था। यह क़िला पहले आदिलशाही में था पर अब औरंगज़ेब के क़ब्जे में था। यहाँ एक सैनिक थाना था। वारणा नदी के किनारे पर चारों ओर मुग़ल छावनियाँ थीं। अब खान पूरी तरह बेखौफ़ हो गया। निश्चिन्त हो गया। पिछले दो दिनों में उसे रात भर दौड़ लगानी पड़ी, संगमेश्वर की लड़ाई लड़नी पड़ी और अब वापसी के लिए वह जी-जान लगाकर दौड़ता जा रहा था। इस संघर्ष में उसके कई सिपाही काम आये थे, परन्तु आख़िर उसने सफलता पा ही ली थी।

उसने संगमेश्वर से ही हरकारे कोल्हापुर भेज दिये थे और अब वहाँ की सैनिक छावनी से भी फ़ौजी कुमक आ पहुँची थी। अब मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज में इतने सिपाहियों की भीड़ जमा हो गयी थी कि इनके बीच से चींटी भी रास्ता न पा सके। कई सिपाहियों की इच्छा थी कि वे क़ाफ़िर क़ैदियों को देख पाएँ, परन्तु पहरेदार सबको भगा देते थे, इसलिए उनकी यह इच्छा अधूरी रह गयी।

उधर अकलूज की साठ हज़ार सिपाहियों की विशाल फ़ौजी छावनी में सब ओर शोर-गुल और हंगामा मच गया था। संगमेश्वर से मुकर्रब ख़ाँ के भेजे हुए सवार छावनी आ पहुँचे थे। यह ख़बर कि 'शैतान सम्भा गिरफ़्तार हो गया,' कुछ ही देर में साठ हज़ार फ़ौजियों तक पहुँच गयी। सारी छावनी में सिपाही एक-दूसरे से गले मिलकर जोश से कह रहे थे, "तुमने सुना, क़ाफ़िर को क़ब्ज़े में कर लिया गया है।"

वज़ीर असद ख़ाँ ने औरंगज़ेब के शाही डेरे में जाकर बार-बार कोर्निश करके यह खुशख़बर सुनायी। तसबीह को जल्दी-जल्दी घुमाते हुए, हृदय में उमड़ रहे आनन्द को प्रयत्नपूर्वक रोकते हुए शहंशाह आलमगीर ने शान्त रहकर धीरे से हुक्म दिया, "अकलूज से छावनी हटा लो। बहादुरगढ़ चलने का इन्तज़ाम करो। मुकर्रब ख़ाँ को शाही 'ख़िलअत' और मरतबा बख्शो।"

उधर मुकर्रब ख़ाँ बत्तीसशिराला से मिरज के मैदानी क़िले तक आ पहुँचा था। हर सम्भव उपायों द्वारा वह यह प्रयत्न कर रहा था कि गिरफ़्तार किये हुए वे बहुमूल्य क़ैदी ज़िन्दा रहें। उसे भरोसा था कि ये क़ैदी अपनी जान बचाने के लिए इस्लाम क़बूल कर लेंगे। वह सोचता था—कौन जाने यह सूरमा राजा बादशाह की दी हुई 'ख़िलअत' पहनकर दक्खन का सूबेदार बनने को तैयार हो जाय। जिसके सामने बीजापुर के सिकन्दर की और गोलकुण्डा के तानाशाह की भी दाल नहीं गली, उसके सामने इस मामूली सम्भा की हस्ती ही क्या है? यही सोचकर वह पूरी सावधानी बरत रहा था कि क़ैदियों के आस-पास भी कोई हथियार न आ पाये। कहीं ऐसा न हो

https://t.me/Sahityajunction

कि ये आत्महत्या कर लें। वह पूरी कोशिश कर रहा था कि क़ैदी कुछ खा-पी लें। इतनी लम्बी यात्रा में भी महाराज और कुलेश ने अनाज का एक दाना भी नहीं खाया था। संगमेश्वर में यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद उन्होंने जो भोजन किया था, वही उनका अन्तिम भोजन था।

अपनी निजी सेना को साथ लेकर औरंगज़ेब अकलूज छोड़कर पेडगाँव के निकटवर्ती शहर बहादुरगढ़ की ओर चल पड़ा। उसकी आधी छावनी भी उस ओर जा चुकी थी। मुकर्रब ख़ाँ उतावला था कि कब क़ैदियों को बादशाह के सामने पेश करे। वह मिरज से अकलूज पहुँचा। वहाँ छावनी में जितने भी सिपाही बचे थे, वे क़ैदियों को देखने के लिए शोर-शराबा करते हुए, चीख़ते-पुकारते हुए झुण्ड बनाकर चले आ रहे थे। सर्दी का मौसम अब बीत गया था, धूप की गर्मी बढ़ने लगी थी।

रायगढ़ में जैसे भूकम्प आ गया। सन्ताजी-बहिर्जी रायगढ़ आ पहुँचे थे। पाचाड़ की ओर से जानेवाले मुख्य मार्ग को तो एतिकाद ख़ाँ ने बन्द कर रखा था, इसलिए वे उसके घेरे को बचाते हुए चोर दरचाज़े से ऊपर आ गये थे। ख़ास महल में महारानी येसूबाई के सामने खड़े हुए सन्ताजी ने अपने मुख को चन्द्रावत की ज़ीन से छिपा लिया। सारा शरीर थरथरा रहा था। भर्राये गले से कहने लगा, "जगदम्बा का कोप हुआ! माँ साहिबा। किस मुँह से समाचार सुनाएँ हम? मालिक संगमेश्वर में शत्रु के जाल में फँस गये। कोल्हापुर के ख़ान सरदार ने उनको क़ैद कर लिया!!" ज़ीन हाथ में लिये हुए वह शूर युवा सैनिक सन्ताजी भी महारानी के पैरों में गिर पड़ा—फफक-फफककर रोने लगा। येसूबाई ने कान बन्द कर लिये—वे सुन्न रह गयीं मानो बिजली गिर पड़ी हो बदन पर। 'वे श्रीसखी हैं', 'रायगढ़ में हैं', 'राज्य की महारानी हैं'—इन सभी अनुभूतियों को वे एकदम भूल गयीं, "माईऽ वागजाई, क्या हुआ ये?"

दुख की ज्वालाएँ भड़क उठीं, सारे तन-मन को जलाने लगीं। उनकी फैली हुई आँखों के आगे सारा रायगढ़, सारा धरती-आकाश घूमने लगा। वे दौड़ती हुई जगदम्बा की मूर्ति के सम्मुख जा गिरीं और अकेली ही सिसक-सिसककर रोने लगीं। आज उन्हें गोदी में लेकर धीरज बँधाने के लिए वहाँ न तो जिजाऊ थीं, न ही सती माँ पुतलाबाई थीं। यदि थी तो जगदम्बा, केवल जगदम्बा ही।

क्या-क्या भाव मन में चक्कर नहीं काट रहे थे? श्रीमान्‌जी को मुक्त कराने के लिए प्राणों को भी दाँव पर लगाना होगा! परन्तु कैसे हो सकेगी यह मुक्ति? रायगढ़ को तो ख़ान सरदार ने घेरा हुआ है इस समय। उन्हें हम्बीरराव मामाजी का अभाव बहुत खटक रहा था—हृदय चूर-चूर हुआ जाता था। रूपाजी मानाजी जैसे वीर त्र्यम्बक-रामसेज प्रदेश में उलझे हुए थे। निलोपन्त कल्याण-भिवण्डी प्रदेश को छोड़कर हिल नहीं सकते थे। जितने भी समर्थ शूरवीर थे, वे राज्य में जहाँ-तहाँ फैले हुए अपने-अपने प्रदेशों की जी-जान से रखवाली कर रहे थे।

आज येसूबाई सर्वथा एकाकी थीं। आँधी में मोगरे की बेल जैसे हिलती-काँपती है, इसी प्रकार येसूबाई का पूरा बदन हिल-काँप रहा था। एक ही क्षण में उनके जलपूरित नेत्रों के आगे सम्पूर्ण जीवन ही घूम गया। उन्हें जन्म देनेवाला गाँव—शृंगारपूर, पर जागीर के लोभ के कारण नाता तोड़ डाला उसने। वन्दनीय आबासाहब का वह बेटी का-सा प्यार-दुलार-जिसके कारण

https://t.me/Sahityajunction

कभी अनुभव ही नहीं हुआ कि वे इस घर की 'बहू' हैं। बड़ी माँ साहिबा-जिजाऊ, और सती माँ का वात्सल्य भाव, वह अपनापन। जिन्होंने सिंहासन की महत्त्वाकांक्षा के कारण हमें और श्रीमान्‌जी को सदा नीचा ही देखा, वे देवर राजाराम की माँ सोयराबाई। उनके सगे भाई होकर भी हमारे बड़े-बूढ़े बनकर हमें आशीर्वाद देनेवाले हम्बीरराव मामाजी। जिनका हृदय दर्पण-सा निर्मल है, परन्तु कोई अन्यायपूर्ण या अप्रिय बात सामने आते ही जो तपाक से साफ-साफ कह बैठते हैं, वे हमारे श्रीमान्‌जी। ननिहाल के सम्बन्धी लोग होते हुए भी जिन्होंने श्रीमान्‌जी को कभी सुख से सोने नहीं दिया, वे फलटण नगर के सम्बन्धी लोग। यदि यह राज्य ढह गया, तो औरंगजेब हमारे साथ कैसा व्यवहार करेगा? क्या अपने ज़नानख़ाने में...छिःऽ छिःऽ

घृणा से सिर को दायें-बायें झटककर वे एक छोटी बच्ची के समान फफककर रोने लगीं। हृदय में प्राणहारक उलझनों की भीड़ बढ़ जाने के कारण उनकी साँस फूल उठी।

"महारानी जी, धीरज रखें। मन इतना दुर्बल न बनाएँ। इस समय केवल रायगढ़ के लिए ही नहीं, सारे राज्य के लिए आप ही जगदम्बा के समान संकटहारिणी हैं। बड़ी आऊसाहिबा जिजाऊ पर भी आज के समान संकट आया था, जब बड़े महाराज और किशोर आयु के महाराज औरंगजेब की कालकोठरी में फँस गये थे। जब बड़े महाराज पन्हाला में सिद्दी जौहर के घेरे में अटक गये थे, उस समय तो जिजाऊसाहिबा कमर में तलवार बाँधकर उस घेरे को तोड़ने के लिए निकल पड़ी थीं। इन सब बातों का विचार कीजिए। उठिए और अपनी शक्ति से रायगढ़ को भी धैर्य बँधाइए।" खण्डोजी देवमन्दिर में आकर कह रहे थे मानो कोई वृद्धजन ही येसूबाई की पीठ पर हाथ फेरकर दिलासा दे रहा था।

राजा अपने राज्य का उपभोगरहित स्वामी होता है, यह कथन सत्य होगा, परन्तु यह तो उससे भी अधिक सत्य है कि उसकी रानी तो उपभोग से कोसों दूर रहती है, स्वामिनी कभी नहीं बन पाती। यदि स्वामिनी बनती भी है, तो केवल उस समय, जब संकट और उत्तरदायित्व उसके कन्धों पर आ पड़ते हैं। क्यों? क्योंकि रानी तो छाया मात्र है, अकेले राजा की ही नहीं, राज्य के लिए सिर हथेली पर लिये घूम रहे सैकड़ों हज़ारों सैनिकों की—प्राण न्यौछावर करनेवाले प्रजाजनों की भी छाया के समान सदा साथ निभानेवाली होती है वह।

आँचल से आँखों की कोर पोंछते हुए येसूबाई तुरन्त खड़ी हुईं। एक बार जगदम्बा को देखकर दृढ़ स्वर से कहने लगीं, "खण्डोजी, रूपाजी और मानाजी को लिखो कि रामसेज को छोड़ दें और जहाँ से भी जितनी भी सैनिक सहायता मिल सके, साथ लें और रायगढ़ का घेरा तोड़ डालें। येसाजी दाभाडे को कहो कि राजाराम अब से हमारे महल में ही रहा करेंगे। अर्जोजी और गिर्जोजी की ओर हरकारे रवाना करो और उन्हें तुरन्त रायगढ़ चले आने के लिए सूचना दो। तुम अब किसी भी कारण से रायगढ़ छोड़कर कहीं मत जाओ। हमें विश्वास है कि हमारे श्रीमान्‌जी चाहे कट जाएँगे, पर झुकेंगे नहीं। रायगढ़ के बारे में वे कोई भी सन्धि मानने के लिए तैयार नहीं होंगे!! अब से सब लोग राजाराम को ही श्रीमान्‌जी के रूप में देखें और पूरे विवेक से कर्त्तव्यों को निभाएँ।"

खण्डोजी को प्रतीत हुआ—यह येसूबाई नहीं, साक्षात् जगदम्बा मनुष्य देह धारण कर बोल रही है।

https://t.me/Sahityajunction

मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ उन महत्त्वपूर्ण क़ैदियों को लेकर मिरज के क़िले से बाहर निकले और अकलूज पहुँचे। वहाँ की छावनी में आराम करके और रसद लेकर वे बहादुरगढ़ की ओर रवाना हुए। अकलूज की छावनी के पीछे रहे-सहे लोग भी मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज के साथ हो लिये। अब मुकर्रब ख़ाँ की फ़ौज इतनी विशाल दिखाई दे रही थी, जैसे नदी में बाढ़ आ गयी हो। सिर पर आ रही धूप से बचने के लिए सिपाहियों ने गर्दनें नीचे झुका रखी थीं। महाराज को और कुलेश को जिन घोड़ों पर लादा गया था उन घोड़ों की गर्दनों से उन्हें बाँध डाला गया था। चिलचिलाती हुई धूप में वह हज़ारों का क़ाफ़िला ग़र्म और रूखे वीरान इलाक़े से होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। सारी फ़ौज में शायद तीन व्यक्तियों के मन ऐसे थे, जो विचारों की उजाड़ सूखी खाई में जा गिरे थे। मुकर्रब ख़ाँ की ये ख़ुशकिस्मती थी कि वह शहंशाह के दक्खिन में आने के बाद से एक शानदार ज़िन्दा तोहफ़ा शहंशाह को पेश कर रहा था। वह सोचता था—'हज़रत का क्या भरोसा? वे जो जी में आये, सो फ़ैसला कर सकते हैं। अगर कहीं हज़रत ने सम्भा को ही दक्खिन का सूबेदार बना दिया तो?' घोड़े की गर्दन से जिनकी गर्दन बँधी हुई थी, वे राजा सम्भाजी सोच रहे थे—'यदि रायगढ़ की हार हो गयी, तो हमारी श्रीसखी का क्या होगा?' उनके पीछे-पीछे बँधे आ रहे कवि कुलेश सोच रहे थे—'रायगढ़ के मन्त्री कभी भी हमारे साथ भोजन करने नहीं बैठे। यदि इस अन्तिम भोजन में स्वामी का साथ भी नहीं मिला, तब क्या होगा?'

पड़ाव के बाद पड़ाव पीछे छूटते जा रहे थे। धूप से बेचैन हो रहे राजा और कुलेश के पास आकर इख़लास ख़ाँ घोड़े पर बैठे-बैठे ही चिढ़ाने और खिझाने के लिए पूछता था, "क्यों जी, मराठों के शहंशाह और मराठों के वज़ीर, प्यास लग रही है क्या?" और जब कैदी उसकी बात को सुनकर मुँह फेर लेते थे, तो बगल में बँधे हुए परवाल से थोड़ा पानी लेकर वह उन दोनों के मुँह पर मारता था और परवाल अपने मुँह से लगाकर गटागट पानी पीने लगता था। पानी पीकर ठहाका मारकर हँसता हुआ कहता था, "ओह, कितनी गर्मी है! कितना ठण्डा है पानी!"

जब धूप की तेज़ी असह्य हो उठती थी, तो मुग़ल फ़ौजियों और घोड़ों को किसी अमराई की छाँव में ठहरने की आज्ञा दी जाती थी, परन्तु महाराज और कुलेश के घोड़ों को जान बूझकर धूप में ही खड़ा किया जाता था। जब तीसरा पहर होने को था, तब वह फ़ौज बहादुरगढ़ से दो कोस दूरी तक आ पहुँची और वहीं ठहर गयी। मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ किसी की राह देख रहे थे। बार-बार घोड़े फ़ौज की अगाड़ी लाकर हथेलियों को आँखों पर झाँप जैसे लगाकर बहादुरगढ़ की ओर देखते जा रहे थे। काफी देर बाद घुड़सवारों की एक टोली सामने से आती हुई दिखाई दी। इस टोली के साथ दो ऊँट भी थे, परन्तु उन पर सवार कोई नहीं था। टेढ़ी गर्दनें ऊपर-नीचे झुकाते हुए वे अकेले ही टोली के साथ दौड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। धूप के कारण उन बेचारों को भी कम तकलीफ़ नहीं हो रही थी।

इस टोली के सरदार थे सरदार ख़ाँ और हमीदुद्दीन ख़ाँ। ख़ुद बादशाह औरंगज़ेब ने उन्हें फ़तह हासिल करके लौट रहे मुकर्रब ख़ाँ की अगवानी करने के लिए भेजा था। उनके साथ 'ख़िलअत' भी दिये गये थे। उनके पीछे आ रहे ख़िदमतगारों के हाथों में दो तबक़ थे। एक ख़िदमतगार अपने घोड़े पर दो 'तख़्ते-कुलाह' लादकर ला रहा था। 'तख़्ते-कुलाह' ईरानी ढंग से बना हुआ लकड़ी का एक शिकंजा था। सरदार ख़ाँ और हमीदुद्दीन ख़ाँ को आता देखते ही मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ भी घोड़ों से उतर पड़े। अगवानी करने आये हुए दोनों सरदारों ने

https://t.me/Sahityajunction

उन दोनों को कस कर छाती से लगा लिया।

हमीदुद्दीन ख़ाँ मुकर्रब ख़ाँ से कहने लगा, "मुबारक हो ख़ान...। आलमपनाह का हुक्म है कि दोनों क़ैदियों को 'तख्ते-कुलाह' पहना दो। उनके बदन के क़ाफिरों वाले कपड़े उतार डालो और उन्हें ये ख़ास चापलूसों वाले कुर्ते पहना दो। उन्हें ऊँट की पीठ से कसकर बाँधो और ढोल-ढमक्के बजा-बजाकर इनका 'शानदार' जुलूस निकालते हुए बहादुरगढ़ ले जाओ।"

ख़ान के सिपाही झटपट इस काम में जुट गये। उन्होंने राजा सम्भाजी और कुलेश को खोलकर घोड़ों से नीचे उतारा। उनके कपड़े खींच-खींचकर फाड़ डाले। उन्हें विदूषकों वाले ढीले-ढाले कुर्ते पहना दिये गये। कमर में घण्टियों की मालाएँ पहना दीं और किसी काँटेवाली बेल से उनकी कमर कस दी गयी। सिर पर रख दी गयीं लकड़ी की बनी ऊँची-ऊँची विदूषकों जैसी दो टोपियाँ। हाथों में और गले में कस कर बुरी तरह जकड़कर पहनाये गये 'तख़्ते-कुलाह'।

दोनों क़ैदियों ने सरदार ख़ाँ, हमीदुद्दीन ख़ाँ या मुकर्रब ख़ाँ के दिये हुए हुक्मों की तामील करनेवाले ख़िदमतगारों का कोई विरोध नहीं किया।

अब कैसा रूप था उस राजा का? कोई मावला सैनिक यदि उन्हें इस भेस में देख पाता, तो अवश्य ही शत्रु का भेदिया समझकर उन्हें गिरफ्तार ही कर लेता। येसूबाई ने देखा होता, तो अवश्य ही क़िलेदार चांगोजी को बुलाकर कहतीं, "इसकी फूहड़ वेशभूषा से कहीं धोखा मत खा जाना। अवश्य ही यह शत्रु का जासूस है। गिरफ्तार कर लो इसे।" और यदि आज चन्द्रावत जीवित होता, तो अपने स्वामी को इस वेश में देखकर अवश्य ही बुरी तरह बिदककर दौड़ पड़ता।

उसे अब 'राजा' कहा भी कैसे जा सकता था? वह तो था एक 'बलि-पशु' जिसे मसखरोंवाली पोशाक पहनाकर बादशाह के सामने ले जाया जाना था। राजा होने का एकमात्र चिह्न उसके शरीर पर बच गया था, इसलिए कि किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया था। उस चिह्न को उन्होंने 'नाचीज' समझा था, इसलिए रहने दिया था उसे। वह थी भवानी माला, चौंसठ कौड़ियों की वही माला, जिसे आबासाहब अहोरात्र हृदय पर धारण करते थे। इस समय उनका साथी था एक ही मनुष्य—दूर कहीं बसे हुए कन्नौज प्रदेश का निवासी, कन्नौज में उत्पन्न एक कवि—छन्दोगामात्य कुलेश।

सरदार ख़ाँ, हमीदुद्दीन ख़ाँ आदि ने क़ैदियों के चारों ओर सशस्त्र सैनिकों का मज़बूत घेरा लगवा दिया। जिन कैदियों के हाथ रस्सों से बँधे हैं, मुश्कें कसी हुई हैं, उनके चारों ओर हज़ारों सिपाही नंगी चमचमाती तलवारें थामकर पंक्तियों में खड़े कर दिये गये।

शाही तुरहियाँ और ढोल-नगाड़ों की मिली-जुली आवाज़ों में भीड़ की आवाज़ें भी मिलने लगीं। बेसुध और मस्त सिपाही गला फाड़-फाड़कर चिल्ला उठे—"दीऽऽन, दीऽऽन।"

पूरे फ़ौजी इन्तज़ाम के साथ अब शुरू हो गया उन क़ाफ़िर क़ैदियों का 'शानदार जुलूस', औरंगज़ेब ने अपने जीवन में अपने सगे भाइयों से लेकर और भी जाने कितने लोगों की निर्दयता से हत्या की, परन्तु आज उसने 'अपमानपूर्ण नगर भ्रमण' कराने की जो आज्ञा दी थी, वह सम्भवतः पहला अवसर था। उसने ऐसा 'अपमानपूर्ण जुलूस' निकालने का आदेश क्यों दिया

https://t.me/Sahityajunction

होगा? हाँ, केवल एक उद्देश्य से। मराठों के महाराज की बेइज़्ज़ती की ख़बर पहुँचेगी मराठा राज्य के गाँव-गाँव में। इस दुर्गति को सुनकर जीवित मराठे भयभीत होकर अपने आप ही तसलीम करते हुए आएँगे और झुक-झुककर 'मनसब' और ख़िलअत' माँगेंगे। एक बार मराठा राज्य काबू में आ जाएगा, तो कांजीवरम से लेकर काबुल तक की सारी भूमि 'इस्लाम का बन्दा' बन जाएगी और फिर उस अतिविशाल साम्राज्य की राजधानी बना दिया जाएगा दिल्ली को।

साईसों ने कैदियों के रस्सों को इतने ज़ोर से खींचा कि महाराज और कुलेश लड़खड़ा गये। चारों ओर खड़ी हुई भीड़ चुनी हुई, ख़ास-ख़ास गालियाँ देने लगी, "नाबकाऽर, लऽईम, भोजऽदा...कहीं के। खींचो कसके शैतानों को।"

पिछले नौ सालों तक इसी 'शम्भु' रूपी सम्भाजी ने बुरहानपुर, औरंगाबाद, अहमदनगर आदि कई मुग़ल फ़ौजी थानों को तहस-नहस किया था। कितने ही लड़ाकों को तलवार के घाट उतारा था। फ़क़ीरों और मौलवियों को जुम्मे की ही नहीं, रोज़ की नमाज़ें भी पढ़ना नामुमकिन कर दिया था। इसलिए देखनेवालों को इन बातों पर केवल गुस्सा ही नहीं आ रहा था, बल्कि यदि उनके बस में होता, तो वे तलवारों से इन क़ैदियों की बोटी-बोटी काटकर गठरी बाँध देते।

मराठा साम्राज्य के सम्मानित छत्रपति राजा और छन्दोगामात्य आज मुग़ल सिपाहियों की इच्छा के अनुसार सिर झुकाये कभी इधर खिंचते थे और कभी लड़खड़ाते हुए उधर को झुकते हुए चले जा रहे थे। उन्हें देखने के लिए कई लोग भीड़-भड़क्के के बीच से आगे बढ़ते आ रहे थे।

जो पाँव आज तक बिछे हुए गद्दों और ग़लीचों पर गौरवसहित चलते आये थे, आज छत्रपति के वे ही पुष्ट और रक्तिम चरण पेड़गाँव की काली मिट्टी के मैदान में घिसटते जा रहे थे। जिस शरीर ने सोने की झूल पहने हुए सुसज्जित हाथी पर आरूढ़ होकर राजा के रूप में सम्मानपूर्ण यात्रा की थी, आज वही शरीर 'अपमानपूर्ण नगरभ्रमण' का भागी बना हुआ था।

महाराज ने चारों ओर के अतिविचित्र दृश्यों को दूर हटाने के लिए अपनी आँखें ही बन्द कर ली थीं। कुलेश की आँखें अवश्य खुली थीं, परन्तु सम्भवतः वे देख कुछ भी नहीं पा रही थीं। संगमेश्वर के युद्ध में उनकी दाहिनी भुजा में बाण लगने के कारण जो घाव हो गया था, उसका ख़ून बह-बह कर अब सूखकर जम जुका था। आसपास खड़े हुए हज़ारों मुग़ल सिपाहियों में खुशी और जोश का समन्दर ठाठें मार रहा था। इतना हल्ला-गुल्ला मचा हुआ था कि किसी का कोई बोल भी साफ सुनाई नहीं दे रहा था। लोग चिल्ला रहे थे, "खींचो—और ज़ोर से खींचो।"

रस्सी खींचनेवाले ने इस बार तंग आकर हाथ में बँधी हुई रस्सी को इतने ज़ोर से झटका दिया कि राजा सम्भाजी छाती के बल भूमि पर जा गिरे। मानो जगदम्बा के मस्तक पर समर्पित एक फूल लुढ़कता हुआ नीचे आ रहा हो। भीड़ में भी खुशी की लहरें उठने लगीं। महाराज कमर पर ज़ोर देकर उठने ही लगे थे कि इसी समय उन्हें अचानक याद आ गयी भवानीबाई और चिरंजीव बालराजा की। ये बालक बचपन में इसी कमर को ही तो अपनी भुजाओं में भर लेते थे। थोड़े बड़े हो गये, तो कमर से लिपटना छोड़ दिया बच्चों ने। अब वे करने लगे मुजरा! इस देह को कितने लोगों ने मुजरे किये होंगे, इसकी भी क्या कोई गिनती है? क्यों करते हैं लोग मुजरे? वे लाचार थे, विवश थे, इसलिए?

लोग सिर झुकाते हैं...किसके आगे? सत्ता के आगे? भूल है ऐसा समझना। मनुष्य सिर झुकाते हैं उस महामानव के सम्मुख जो मनुष्यता की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों को भी

https://t.me/Sahityajunction

बाती बना दे। आबासाहब ऐसे ही महात्मा थे। वे जा चुके हैं, परन्तु आज भी ऐसा क्यों नहीं अनुभव होता कि वे इस जग में नहीं हैं? यदि वे आज होते, तो आज जैसी परिस्थिति में वे क्या करते?

साँडनी सवारों ने ऊँटों को पुचकारकर नीचे बैठाया। सिपाही रस्से खींचने लगे क्योंकि अब इन ऊँटों पर राजा को और कुलेश को लादना था। परन्तु वे उन बन्दियों को खींच नहीं पाये। दोनों बन्दी भूमि में पाँव गड़ाकर खड़े थे, एक अंगुल भी बढ़ने को तैयार न थे। रस्सेवालों को और कैदियों की इस रस्साकशी को देखकर इखलास ख़ाँ सिपाहियों से कड़ककर कहने लगा, "देखते क्या हो बेवकूफ़ो, दोनों को उठाओ और लाद दो ऊँटों पे।" दस-पाँच हट्टे-कट्टे सिपाही अपनी तेग म्यान में रख कर आगे बढ़े और उन्होंने जैसे लूट के भरे हुए बोरे हों यों दोनों को बलपूर्वक उठाकर ऊँटों पर लाद दिया। अपने टेढ़े-मेढ़े पैरों को और अपनी सब ओर से टेढ़ी कलों को सीधा करने का प्रयत्न करते हुए ऊँट जैसे ही उठने लगे, भीड़ में से 'दीनऽ, दीऽन' का शोर-शराबा भी उठा। ऊँटवालों ने ऊँटों की पूँछ इतनी ज़ोर से मरोड़ी कि उस पीड़ा के कारण ऊँट टेढ़ी-मेढ़ी चाल से दौड़ने लगे। महाराज तथा कुलेश के पैर ऊँट के पेट के चारों ओर कसकर बाँधे गये थे। दोनों के हाथों में बँधी रस्सियों को पकड़कर मुकर्रब ख़ाँ और इखलास ख़ाँ घोड़ों पर बैठकर आगे-आगे चल रहे थे। बाजे बज रहे थे और कानों को बहरा बनानेवाले हल्ले-गुल्ले के बीच एक अभूतपूर्व, बिलकुल निराला 'जुलूस' निकाला जा रहा था।

इस जुलूस के रास्ते में पड़नेवाले छोटे-बड़े गाँवों में रहनेवाली औरंगज़ेब की रिआया मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ पर खोपरे के टुकड़ों की और छुहारों की वर्षा कर रही थी और ख़ुशी से नाच रही थी। वह दिन ईद का दिन हो गया था। रात शबेबारात बननेवाली थी। सारे लम्बे रास्ते में जहाँ-जहाँ भी फ़ौजी पड़ाव थे, उनमें शायद एक भी ऐसा आदमी नहीं था, जिसने इन क़ैदियों को देखकर अपनी आँखें ठण्डी न की होंगी। फ़ौज के हथियारबन्द सिपाही—'ठहरो, पीछे हटो' कहते हुए अपने ही परिवार के बच्चों-बूढ़ों को पीछे हटा रहे थे। फिर भी उनकी नज़र बचाकर कुछ मुग़ल बच्चे ऊँट पर लदे क़ैदियों को ढेले-पत्थर मार रहे थे। 'कुत्ते, शैतान, क़ाफिर'—इस तरह जी भर गालियाँ दे रहे थे और शायद नफ़रत और गुस्से को थूक में मिलाकर पैरों के पास ही बार-बार थूकते जाते थे।

क्षत्रिय कुलावतंस शिवपुत्र राजा सम्भाजी के नेत्र खुले हुए थे और उन नेत्रों में लहरा रहा था अपार तेज का सागर। वे शरीर की अनुभूति से दूर जाकर विदेह से बन चुके थे। आज उनका स्थान इतना उच्च हो चुका था कि सवारी के ऊँट से भी ऊँचा, सिर की लकड़ीवाली टोपी से भी ऊँचा, इतना ही क्यों, रायगढ़ की ऊँची मीनार से भी ऊँचे पहुँचे हुए प्रतीत होते थे वे। इतने कोलाहल के बीच भी वे कुलेश की ओर देखकर अपनी नित्यवत् राजवंशीय वाणी में कहने लगे, "क्यों छन्दोगामात्य, डगमगा तो नहीं गये?"

कुलेश ने झट से अपनी गर्दन थोड़ी-सी झुकाकर उनकी ओर देखते हुए कहा, "जी नहीं। सोचते हैं, यदि ये आँखें ही न होतीं, तो स्वामी का यह हाल देखना तो नहीं पड़ता।"

बीच ही में इख़लास ख़ाँ झल्लाकर बोला, "क्या बकते हो! ख़ुदा का नाम लो।"

सामान्यतः जो दूरी कुछ पलों में कट जाती, वही दूरी पार करने के लिए अच्छे-ख़ासे तीन घण्टे लग गये। देर क्यों न लगी हो, परन्तु सारी छावनी की आँखें तो ठण्डी हो गयीं न! हिन्दुस्तान

https://t.me/Sahityajunction

के शहंशाह आलमगीर की मुराद यही तो थी।

यह 'अपमानपूर्ण जुलूस' बहादुरगढ़ के पहले दरवाज़े पर पहुँचा। यहाँ बहादुर ख़ाँ, रणमस्त ख़ाँ, शाबदी ख़ाँ, हसल अली ख़ाँ, गज़नफ़र ख़ाँ आदि विशिष्ट सरदार उपस्थित थे। ये सब सरदार, जो पहले मराठा राज्य में जगह-जगह पर छावनियाँ लगाये पड़े थे, आज किसी न किसी बहाने बहादुरगढ़ आ पहुँचे थे। 'ख़िलअत' का प्रलोभन दिखाकर जिसने सारे मावल-खण्ड में फूट और विद्रोह के बीज बोये थे, वह सरदार रुहुल्ला ख़ाँ तो झूम-झूमकर सब के बीच घूम रहा था। आख़िर वह भी तो देखना चाहता था उस शैतान सम्भा को कि जिसने दक्खिन में आने के समय से ही उसे परेशान किया हुआ था। खुशी के मौके पर बजाये जानेवाली नौबत के रूप में क़िले में तोपें दागी जा रही थीं।

क़ैदियों की अवस्था यह हो चुकी थी कि शरीर पर विदूषकों का-सा वेश था, ढीले-ढाले कपड़े भी दस जगहों से फटे हुए थे, पसीने से भीगे हुए थे, शरीर पर जगह-जगह घाव हो गये थे। ऐसे राजा सम्भाजी और कुलेश को ऊँटों से उतारा गया। क़िले के लोहारख़ाने से ख़ास चुनकर भेजी गयी जंजीरें और बेड़ियाँ कन्धों पर और छाती पर कस दी गयीं और फिर सँडसी और हथौड़े से उन बेड़ियों को मज़बूती से ठोंक दिया गया। संशयग्रस्त रहना और आवश्यक रूप से चौकस रहना जिसका स्वभाव था, उस औरंगज़ेब के हुक्म से ही ऐसा किया गया था। यदि सम्भव होता, तो वह उस भोसलेवंशीय हृदय को भी बेड़ियाँ पहनाने का हुक्म दे डालता।

बहादुरगढ़ का दीवान-ए-आम खचाखच भरा हुआ था। इस दरबार में सब ओर से आये हुए मुग़ल-सरदार, बीजापुर का आदिलशाही सरदार सर्ज़ा ख़ाँ और कुतुबशाही के सरदार थे। सबके आगे था शहज़ादा शाहआलम। मुअज़्ज़म कामबख्श, मुईजुद्दीन, बेदार बख़्त, आदि बादशाह के रिश्तेदार भी अपने क़दमों पर निगाह रखे हुए पूरे दरबारी रिवाज के अनुसार खड़े थे।

बादशाह की उपाधियों की ललकारें ज्योंही गूँज उठीं, गुर्ज़बरदारों ने गुर्ज़ के डण्डे को तीन बार ज़मीन पर ठोंककर सबको होशियार कर दिया। सब ओर इतनी ख़ामोशी छा गयी कि साँस की आवाज़ भी सुनाई दे जाय। सन्नाटा छा गया सारे दरबार में। शाही तख्त के पीछे से पहले आया वज़ीर असद ख़ाँ और उसके पीछे-पीछे आया हिन्दुस्तान का शहंशाह मुहीउद्दीन मुहम्मद आलमगीर गाज़ी औरंगज़ेब। दाढ़ी के बाल पूरी तरह सफ़ेद हो चुके थे। उम्र काफी ढल चुकी थी, मगर शरीर सीधा तना हुआ था। आँखें तीखी, हरदम कुछ ढूँढ़ती हुई-सीं। उसके आते ही सारा दरबार उसे तसलीम करने के लिए झुक गया।

"पेश करो दरबार के सामने नापाक क़ाफ़िर क़ैदियों को।" वज़ीर असद ख़ाँ ने अपने आला हज़रत का हुक्म मुकर्रब ख़ाँ को सुनाया। मुकर्रब ख़ाँ ने इख़लास ख़ाँ को इशारा किया और पाँच-दस सिपाही दोनों क़ैदियों को घेरकर दरबार के बीच ले आये। ये थे क़ैदी, जिन्होंने दक्खिन में आने के बाद से औरंगज़ेब को निरन्तर चिन्ता में डुबाये रखा था। दोनों क़ैदी तनकर खड़े हुए थे।

आगरा की कोठरी में से झाँसा देकर भागे हुए 'शीवा' के बच्चे 'सम्बा' को और उसके बम्मन 'कुल-इख़्तियार' को तख़्ते-कुलाह में कसा हुआ खड़ा देखकर बूढ़े औरंगज़ेब के मन में ख़ुशी की लहरें इतने ज़ोर-ज़ोर से उठने लगीं कि जैसी शायद उस समय भी न उठी होंगी, जब उसने अपने भाई दाराशिकोह, मुराद और शुजा और अपने अब्बाजान शाहजहाँ की मौत की ख़बरें सुनी होंगी।

https://t.me/Sahityajunction

आज तक उसने दरबार के रीति-रिवाज को कभी भूलकर भी तोड़ा नहीं था परन्तु आज अनजाने ही में वह यह रिवाज तोड़ बैठा। वह एकदम बैठक से उठ खड़ा हुआ। क़ैदी सम्भाजी और कुलेश इतने सिपाहियों के घेरे में भी गरदन सीधी तानकर खड़े थे। आगरा-दरबार के लिए कई बरसों बाद आज वह क्षण आया था कि मराठा साम्राज्य के एक छत्रपति राजा सम्भाजी और दिल्ली के तख्त के शहंशाह औरंगज़ेब की नज़रें एक दूसरे से मिल रही थीं। कितने वर्षों तक यह नज़रों का मिलाप यूँ ही रुका हुआ था। दो दृष्टियाँ यों एक हुईं—जैसे पावन दीपशिखा को प्रबल प्रभंजन देख रहा हो। किसी संघर्षशील जीवनशक्ति को सर्वभक्षी मृत्यु घूर रही हो। मनुष्य के भीतर समायी हुई शूरवीरता को राजनीति का छल-कपट घूर रहा हो! क़ाफ़िर की ज़िन्दादिली को एक तख्तनशीं ग़रूर परखने का प्रयत्न कर रहा हो!

सामान्य दशा में सम्भवतः औरंगज़ेब किसी के निजी मामले में कुछ क्यों सोचता-समझता, परन्तु आज एक अनोखा विचार कहीं से आकर उसके मन में टक्कर मारने लगा—'वह परवरदिगार ऐसे निडर सूरमा आदमी क़ाफ़िरों की कोख से कैसे पैदा कर देता है? एक हमारा कमअक्ल बग़ावतख़ोर बच्चा भी था। क्या नाम रक्खा था हमने उसका पूरे शाही ठाठ-बाट से-अकबर! अपने परदादा की याद ताज़ा रखने के लिए!'

दीर्घकाल तक वन में रहे हुए किसी बच्चे को अचानक किसी राजमहल में राजपुत्र के रंग-बिरंगे और अद्‌भुत खिलौने को पाने से जो ख़ुशी होती है, कुछ उसी तरह की ख़ुशी आज औरंगज़ेब को भी हो रही थी। यों वह ऊपर से शान्त और स्थिरचित्त दिखाई दे रहा था, परन्तु उसके अन्तर्मन में ख़ुशियों के फव्वारे छूट रहे थे। सारे दरबार में उसे एक भी ऐसी हस्ती दिखाई नहीं दी कि जिससे वह दिल की बात कहे। भीतर उफ़न रही इस ख़ुशी को कहीं बाहर निकाल फेंकने के लिए व्याकुल होकर वह शहंशाहे-हिन्दोस्ताँ आज जीवन में पहली बार सिंहासन से उठकर सीढ़ियाँ उतरता हुआ एकदम दरबार के बीच बिछे हुए ग़लीचे पर आ गया! क्षणभर को उसने सारे दरबार पर नज़र फिरायी और फिर मक्के की ओर मुँह करके और आसमान की ओर देखते हुए उसने 'सब्र की नमाज़' पढ़ने के लिए घुटने टेक दिये!!!

क़ुरान-शरीफ़ के आदेशों के अनुसार वह रोज़ाना पाँच वक़्त नमाज़ पढ़ता था। हर छावनी और पड़ावों में भी इस इबादत के लिए एक अलग डेरे में 'नमाज़गाह' बनायी जाती थी। जब वह नमाज़ पढ़ता था, तब दूसरों की तो बात ही क्या, ख़ुद वज़ीर असद ख़ाँ की भी यह मजाल नहीं थी कि भीतर चले जाएँ। और...और आज तो वह भरे दरबार में तहेदिल से नमाज़ पढ़ रहा था। उसकी आँखों में ख़ुशी के आँसू छलछला आये थे! दो बूँदें तसबीह पर टपक पड़ीं। सारा दरबार अचम्भे में डूब कर यह दृश्य देख रहा था। उन देखनेवालों में कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने देखादेखी घुटने टेक दिये थे—कहीं ऐसा न हो कि बाद में बादशाह के सामने 'ग़ुस्ताख़ी' करने का इलज़ाम लगा दिया जाय।

सारे दरबार के साथ-साथ छत्रपति सम्भाजी भी ये नज़ारा देख रहे थे। इतनी जानलेवा छीछालेदर होने पर भी उनके हृदय में बसा हुआ कवि सोया नहीं था। आबासाहब ने भी तो महाकवि भूषण को आश्रय देकर अपने काव्य-प्रेम को व्यक्त किया था। उसी काव्य-प्रेम के उत्तराधिकारी थे छत्रपति सम्भाजी। इस काल उनके भीतर बसा हुआ मराठाकुलीन श्रेष्ठ काव्य-प्रेमी राजा उफनकर बाहर आ गया। वे छन्दोगामात्य कवि कुलेश की ओर देखकर मन्द-शान्त

https://t.me/Sahityajunction

राजवाणी में कहने लगे, "छन्दोगामात्य, तुमने हमारे साथ काव्य के विषय में आज तक कितनी ही बार तो चर्चा की है। अब इस औरंगज़ेब को देखकर तुम्हें कौन-सी कल्पना सूझती है, तनिक कविता तो कर दिखाओ। यह मत कहना कि क़लम नहीं है। तो कहो, क्या सूझ रहा है तुम्हें?" सारा दरबार इन वाक्यों को सुनकर थर्राकर रह गया।

रास्ते भर हुई विडंबना के कारण कवि कुलेश का तन-मन आहत हो चुका था, तथापि स्वामी के इन शब्दों ने उन्हें व्याकुल कर दिया। वे सिर उठाकर महाराज के अधपुँछे शिवतिलक की ओर देखते ही रह गये। और फिर अकस्मात् ही वाग्देवी सरस्वती की काव्यमय उपासना के ये शब्द उनके सामने हाथ जोड़कर अति शीघ्र आ उपस्थित हुए, सम्भवतः औरंगज़ेब के ख़िदमतगार भी इतना शीघ्र उसकी सेवा में उपस्थित नहीं होते होंगे।

होठों से उत्साहपूर्ण काव्य-धारा प्रवाहित हो उठी :

"राजन् तुम हो साँचे, ख़ूब लड़े तुम जंग।
तव तप तेज निहारि के लखत त्यजत औरंग।।"

औरंगज़ेब उन दोनों से काफी दूरी पर था, इसलिए वह इन शब्दों को नहीं सुन पाया, परन्तु सारे दरबार में खलबली मच गयी। जगह-जगह खुसफुसाहट में आवाज़ें उठ रही थीं, "इंशाअल्लाह, सच ही तो है।", "क्या बकता है कुत्ता", "ज़बान काट दो हरामजादे की", "असली शायर है।...क्या शायरी है।", "सब्र से काम लो, ज़बान काट दी जाएगी इसी दरबार में।" बादशाह ने दरबार की इस खुसुर-फुसुर की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। नमाज़ ख़त्म होते ही वह मुकर्रब ख़ाँ से कहने लगा, "ले जाओ इन्हें। डाल दो कोठरी में। हटाओ हमारे सामने से।" औरंगज़ेब के हुक्म को सुनते ही दरबार की सारी कानाफूसी एक पल में बन्द हो गयी। औरंगज़ेब जिस धीमी गति से सीढ़ियाँ उतरा था, उसी मन्द गति से सीढ़ियाँ चढ़कर वह दरबार से बाहर चला गया। दरबार बरख़ास्त हुआ। जंजीरों में जकड़े हुए क़ैदी कोठरी की ओर ले जाये जाने लगे।

आज तक उसे परेशान करनेवाले उन ख़तरनाक क़ैदियों को बहादुरगढ़ जैसे शाही थाने की कोठरी में रखना भी औरंगज़ेब को शायद पसन्द नहीं था। उसके आदेश से अगले ही दिन उन क़ैदियों का फिर 'अपमानपूर्ण जुलूस' निकाला गया और उसी फटे हाल में दोनों क़ैदियों को कोपरगाँव के निकटवर्ती थाना तुलापुर के अन्तर्गत वढू-बुद्रुक नामक एक गाँव में पूरे फ़ौजी बन्दोबस्त के बीच ले आया गया। अकलूज से उठा ली गयी मुग़ल छावनी के साठ हज़ार फ़ौजी सिपाही बहादुरगढ़ के आसपास ही तुलापुर, कोरे गाँव और वढू गाँवों के निकटवर्ती प्रदेश में डेरे लगाकर फैले पड़े थे। वढू गाँवों में था दो पवित्र नदियों का संगम। एक नदी थी इन्द्रायणी, जिसने कभी सन्तश्रेष्ठ कवि ज्ञानेश्वर के काव्यों के 'ओवी' छन्दों को सुना था। दूसरी थी भीमा नदी, जो कभी सन्त तुकाराम के काव्यमय 'अभंगों' को सुनकर पुलकित हुई थी। इसी संगम के किनारे पश्चिम की ओर मुख करके दो मज़बूत खम्भे गाड़े गये थे। दोनों क़ैदियों को सिपाहियों के पहरे के बीच ऊँटों से खींचकर उतारा गया। जो क़ैदी मोटी जंजीरों से और तख्ते-कुलाह से पहले ही बुरी तरह जकड़े गये थे, उन्हें मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ की देख-रेख में मोटे-मोटे रस्से लेकर इन

https://t.me/Sahityajunction

खम्भों से बाँध डाला गया। गले में पहनाये हुए तख़्ते-कुलाह के कारण उनके हाथ पक्षी के पंखों की तरह फैले हुए थे। संगमेश्वर से निकलने से लेकर आज तक भोजन का एक कण भी दोनों के गले से नीचे नहीं उतरा था। चेहरा सूखा और खिंचा अवश्य था दोनों का, परन्तु नेत्रों में तेज और शान्ति थी, जो देह की अपार वेदनाओं को भेदकर भी आँखों में उतर आयी थी। मानो मुख इस समय उन दोनों के मन का ही प्रतिबिम्ब था।

यद्यपि आवश्यकता नहीं थी, तथापि मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ तथा सरदार ख़ाँ और हमीदुद्दीन ख़ाँ नंगी तेगें तानकर क़ैदियों के चारों ओर खड़े हुए पहरेदारों पर निगरानी करते घूम रहे थे। शायद डरते थे कि कौन जाने मरहठे कहीं से भूतों की तरह आ धमकें और कुछ अनहोनी हो जाय। यदि अनहोनी हो गयी तो हज़रत आलमगीर इन खम्भों से उन सरदारों को ही बँधवा देंगे, इस बात का पूरा भरोसा था उन्हें। वे रह-रह कर लगातार बहादुरगढ़ की ओर देख रहे थे। शायद उन्हें किसी के आने का इन्तज़ार था। थोड़ी ही देर में सिपाहियों की भीड़ में खलबली-सी मच गयी। सिपाही चिल्ला रहे थे, "आ गये। आ गये!!"

बहादुरगढ़ की ओर से चार-पाँच सौ पठानों का फ़ौजी दस्ता धूल के बादल उड़ाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। दस्ते का अगुआ था बख़्शी रुहुल्ला ख़ाँ। उसने हाथ उठाकर अपने पीछे दौड़ रहे सिपाहियों को रोक दिया। उसके मालिक आलमगीर गाज़ी ने एकान्त में उसके कान में कोई बात कहकर उसे यहाँ भेजा था। उसने इधर-उधर देखा नहीं, उतरते ही ख़िलअती पोशाक के भीतर बाँधी हुई तेग की मूठ पर हाथ रखकर वह सीधा महाराज और कुलेश के सामने खड़ा हुआ।

उसे देखकर मुकर्रब ख़ाँ अदब से आगे बढ़ आया और बोला, "क्या हुक्म दिया है आलमपनाह ने क़ैदियों के बारे में?"

"चुऽप रहो।" मुकर्रब ख़ाँ को सिर से पैर तक उपेक्षापूर्वक देखते हुए रुहुल्ला ख़ाँ उस पर बरस पड़ा। आख़िर कुछ भी हो, मुकर्रब ख़ाँ 'दक्खनी' था और रुहुल्ला ख़ाँ औरंगज़ेब का एक नेक उत्तर हिन्दुस्तानी 'शिया' सरदार था। उसे एक विशेष काम के लिए नियुक्त किया गया था। इसलिए वह यहाँ आया था। खम्भे से बँधे राजा सम्भाजी के आगे आकर अपनी कमर पर हाथ रखकर और अपनी तीखी निगाहों से राजा को घूरते हुए वह कहने लगा, "सूबेदार, अगर ख़ैर चाहते हो, तो ठीक सोच के जवाब दो। आलमपनाह तुम्हारा बयान चाहते हैं। ख़ुदा की ख़ैर पाने का यह आख़िरी मौक़ा है तुम्हारे सामने। बताओ, तुमने अपना ख़जाना कौन से क़िले में छुपा रखा है?" आज महाराज ने अपने लिए 'सूबेदार' उपाधि का प्रयोग पहली बार ही सुना था। "हुँऽऽ!" गरदन झटककर महाराज ने उसके सवाल को दूर फेंक दिया।

"हम पूछते हैं, ख़ज़ाना कहाँ है?" महाराज की विदूषकों वाली टोपी को झिंझोड़ते हुए उसने फिर पूछा। महाराज ने दहकती हुई आँखों से एक बार देखा। क्रोध के कारण नथुने फैल गये और कसकर बाँधी हुई छाती भी धौंकनी के समान ऊपर-नीचे होने लगी। उन्होंने ख़ूब सोच-विचार कर मन ही मन एक निर्णय कर लिया था—मौन रहने का।

"बोलो, शाही फ़ौज में से कौन-कौन छुपकर तुम्हारा साथ देते थे? कौन थे, जो तुम्हें ख़लीते भेजा करते थे?"

ग़ुस्से से जलता-भुनता रुहुल्ला ख़ाँ अब बुरी तरह ज़िद पर अड़ा हुआ था। महाराज का मुख दायें-बायें को झिंझोड़ता हुआ वह कड़ककर पूछ रहा था। उसके कड़कते बोलों से उसके अपने

https://t.me/Sahityajunction

ही सिपाही चौंक उठे थे।

अपने स्वामी के साथ हो रहे अशिष्ट व्यवहार को देखकर कुलेश जंजीरों और शिकंजे के बीच भी हिलने-डुलने का प्रयत्न कर रहे थे। शिकंजा तोड़ने-फोड़ने के लिए छटपटा रहे थे—परन्तु उनके प्रयत्न निष्फल हो रहे थे।

"बोलो, गूँगे हो गये हो क्या क़ाफ़िर? मामूली बात है—बस, बतला दो और अपनी जान बचा लो।"

महाराज उसे केवल घूरकर देख रहे थे। अब वे प्रश्न और उत्तरों की सीमा से दूर पहुँच चुके थे। कवि कुलेश के अतिरिक्त किसी के भी प्रश्न का उत्तर देना अब उनके लिए असम्भव था—फिर चाहे सवाल प्यार-प्रलोभन से पूछा गया हो या धमकी देकर। उन्हें कुछ बोलने के लिए विवश करने की दृष्टि से रुहुल्ला ख़ाँ घुमा-फिराकर वही सवाल पूछ रहा था—'ख़ज़ाना कहाँ है?'..."कौन-कौन लोग तुमसे मिले हुए थे?...' परन्तु वह पूछ-पूछकर आख़िर थक गया। सिर पर तेज़ धूप तप रही थी और तिस पर इस भाग-दौड़ और चीख़ने-पुकारने के कारण उसका माथा पसीने से भर उठा। तर्जनी उँगली से उस पसीने को हटाता हुआ वह ग़ुस्से से जल-भुनकर गाली-सी देता हुआ गुर्राया, "जानता नहीं है तू कि आलमपनाह गुनाह की क्या सज़ा देते हैं? कुत्ते, तो फिर पा अपने गूँगेपन की सज़ा—सज़ा-ए-मौत।"

रुहुल्ला ख़ाँ ने बहुत हाथ-पाँव मारे कि महाराज कुछ बोलें, परन्तु महाराज सम्भाजी के मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। फिर उसने उसी ढंग से कुलेश को टटोल कर देखा और इस बार अपना ख़ास हथियार 'मनसब का प्रलोभन' झोली से बाहर निकाला। कुलेश से प्यार से लहराते हुए कहने लगा, "यह तो अपनी मौत मरने ही वाला है, तुम तो अक़्लमन्द शख़्स हो। बताओ तो कहाँ छिपाया है वो ख़ज़ाना, जो मुग़ल सल्तनत के बुरहानपुर और औरंगाबाद को लूटकर इसने पाया था? कौन-कौन शाही फ़ौज के कुत्ते इसके साथ शामिल थे? शहंशाह तुमको 'मनसब' तो देंगे ही, मालामाल भी कर देंगे। बतओ, बिलकुल डरी नहीं, बताओ।"

कुलेश ने तख़्ते-कुलाह को और लकड़ी की टोपी को दायें-बायें झटककर ख़ान को ऐसा मुँहतोड़ जवाब दिया, जो ख़ान के लिए ईमानदारी का असली सबक था, "ख़ान, अगर मौक़ा मिलता, तो यही सवाल हम तुमसे पूछते। सारे हिन्दुस्तान का ख़ज़ाना हज़म कर लिया है तुम्हारे शहंशाह ने। याद रक्खो, मनसब के चन्द टुकड़े फेंककर कवि का ईमान ख़रीदा नहीं जा सकता। कुत्ते हम नहीं हैं, कुत्ते हो तुम जो कन्धे पर दूसरे का दिया हुआ 'ख़िलअत' पहनकर बड़े नाज़ से हमारे स्वामी की गर्दन हिला रहे हो!!"

"ख़ामोऽश, लईम, क़ाफ़िर।" ख़ान ऐसा चिल्ला उठा जैसे सिर पर साँप आ गिरा हो। वह लपककर आगे बढ़ा और मराठा राज्य के कुल-इख़्तियार, छन्दोगामात्य की कनपटी पर उसने एक ज़ोरदार तमाचा जड़ दिया। बेहद ग़ुस्से के कारण उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयी थीं और दाढ़ी के बाल तन गये थे।

उसके इस कृत्य को देखकर महाराज का सारा बदन लकड़ी के शिकंजे में ही जैसे ग़ुस्से से उबल उठा। उनके शक्तिशाली झटकों के कारण खम्भा भी जड़ से हिल उठा।

और अन्ततः संयम और मौन का वह बाँध फूट ही पड़ा, जिसे उस राजपुत्र ने बचपन से संस्कार रूप में पाया था। उनके मुख से रोकने से भी न रुक सकने वाले शब्दों की भयानक वर्षा

https://t.me/Sahityajunction

होने लगी। इन शब्दों की लपट से रुहुल्ला ख़ाँ, मुकर्रब ख़ाँ, इख़लास ख़ाँ और सब सिपाहियों के दिल जल-भुन उठे। उनके दिल जैसे मुहर्रम की जलती हुई खाई ही बन गये थे। "हाँ, हाँ। खान, जा कह दे अपने मालिक उस सूबेदार से कि हम हरदम सिर हथेली पर लिये घूमते हैं। हम भोसलों के ख़ानदान ने ऐसा कभी नहीं किया कि अपने जन्मदाता पिता को भी क़ैद कर डालें, उस पिता को बाँधकर उसे लाल महल में फेंक दें, और उसके बूढ़े शरीर पर वैद्यों द्वारा ज़हर की मालिश करवाएँ। हमारे भाई-बिरादर ऐसे कभी न हुए कि तख़्त के लालच से सगे भाई की पीठ में खंजर भोंक दें।"

"ख़ामोऽश! पाबन्द रखो ज़ुबान।" ग़ुस्से से काँपता हुआ ख़ान चिल्लाया। "काट दो इसकी गर्दनऽ। डाल दो इसे हाथी के पैर के नीचे। इस मग़रूर का गोश्त कुत्ते के आगे फेंक दो।" चारों ओर ऐसी दहकती-सुलगती हुई आवाज़ों का शोर मच गया। फिर भी निर्भय होकर, बेसुध से होकर महाराज सम्भाजी कहते ही जा रहे थे :

"अरे, हमारा गोश्त खा भी लिया कुत्तों ने, तो उनकी औलाद भी ईमानदार पैदा होगी, ख़ान। जा, कह दे अपने मालिक से, तूने अपने भाइयों की, अपने जन्मदाता पिता की, जीवनभर चाकरी करनेवाले मिर्ज़ाराजा जयसिंह की और दिलेर ख़ाँ की जो दुर्गति की थी, उससे बढ़कर और हमारा तू कर भी क्या सकेगा। उस दुर्दशा को ख़ुशी-ख़ुशी झेलने के लिए हम तैयार हैं—अभी, इसी दम। परन्तु उसे कह देना, तूने आदिलशाही और कुतुबशाही को निगल लिया होगा, पर याद रख, हम नहीं रहे, तो भी मराठों के इस देश को तू पेट में नहीं डाल पाएगा। यहाँ का हर घर, हर झोंपड़ी पैदा करेगी छोटे-बड़े शिवा या सम्भा को।"

राजा सम्भाजी, आका अली की बेइज़्ज़ती करने से बाज़ नहीं आते हैं, यह देखकर रुहुल्ला ख़ाँ तैश में आकर झटके से आगे बढ़ा। अपने दोनों हाथों को ही सँडसी बनाकर वह सम्भाजी के होठ भींचने का प्रयत्न करने लगा। महाराज ने एक ज़ोरदार झटका देकर होठ छुड़वा लिये और अन्तिम परन्तु मर्मभेदी बाण के समान तीखे वचन कह उठे, "ख़ान, हमें मारकर भी तेरा मालिक सही-सलामत नहीं बच पाएगा। जिस दिल्ली के तख़्त को पाने के लिए वह पापों के ढेर लगा रहा है, उस दिल्ली के आसपास उसे क़ब्र बनाने के लिए दो गज़ ज़मीन भी नहीं मिल पाएगी! तू हमारे बलिदानी मावलों को नहीं जानता, जान हथेली पर लिये फिरते हैं वे। ख़ान, तेरा मालिक अगर उत्तर देश की ओर वापस लौटा भी, तो याद रखना, हमारे वीर मावले इसी मावल-खण्ड में ही उसकी क़ब्र खोदे बिना नहीं रहेंगे। जाओ, कह दो अपने मालिक से, हमने उसके सारे सवाल ठोकर से उड़ा दिये हैं।" क्रोधवश महाराज सिर से पाँव तक काँप रहे थे। घनघोर बादल अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी सूर्य के तेज पुंज बिम्ब को स्थान से हिलाने के लिए प्रबल आघात करते हैं तो भी लाल-लाल सूर्य केवल क्षणभर को किंचित् कम्पायमान हो उठता है—कुछ ऐसा रूप था महाराज सम्भाजी का उस समय। तमाशबीन खड़े-खड़े सोच रहे थे—हमारे आलमपनाह आका अली कितने भी ग़ुस्से में क्यों न हों, पर ऐसा तो नहीं दिखाई देते वे!

रुहुल्ला ख़ाँ ने आज तक ऐसी तेज़-तर्रार बातें कभी सुनी ही नहीं थीं, उसका बदन ग़ुस्से से लाल हो उठा था। "चुऽप, मनहूस कुत्तोऽ!" कहते समय तो उसके गले की नसें फूल उठीं। झपटकर वह आगे बढ़ा और जिन गालों की कभी धाराऊ और जिजाऊ ने बलैयाँ ली थीं, उन्हीं गालों पर उसने कसकर तमाचा मारा। ख़ान क्रोध से तमतमा रहा था। महाराज ने कुछ ऐसी

https://t.me/Sahityajunction

दहकती हुई दृष्टि से उसके हाथ की ओर देखा कि उसकी दाहकता के कारण ख़ान ने अपने झनझनाते हाथ को झटके से दूर खींच लिया, मानो जलती भट्ठी में से हाथ बाहर खींचा हो। आसपास खड़े सिपाही भी थर्रा उठे थे। कुलेश शिकंजे में कसे हुए ही छूटने के लिए छटपटाकर रह गये और अन्त में सिर नीचा कर लिया उन्होंने।

ख़ान ने अपने उद्देश्य में बुरी तरह मार खायी थी। घृणा से ज़मीन पर थूक़ते हुए स्वयं ही बड़बड़ाता हुआ कहने लगा, "मर जाएँगे दोनों नावकार लौंडे। पाक इस्लाम के बन्दे आका अली इन हरामज़ादों की वो हालत करेंगे, जो मुराद और दारा की भी नहीं की थी। इन क़ाफ़िरों की बू भी नहीं रहेगी इस दुनिया में।"

दनादन पैर पटकता हुआ रुहूल्ला ख़ाँ कूदकर घोड़े पर सवार हुआ और क़ैदियों की बदतमीज़ी अपने बादशाह को बतलाने के लिए चला गया। महाराज ने जो कुछ कहा था, उसे उन्हीं के शब्दों में अपने हज़रत के आगे बयान करने की तो उसकी हिम्मत ही नहीं थी। घोड़ा भगाते समय वह यही सोच रहा था कि उन तीख़े शब्दों को फीका बनाकर कैसे पेश किया जाय!

सायंकाल होनेवाली थी। पश्चिम क्षितिज में भगवान भास्कर का प्रखर बिम्ब अब कुछ बड़ा हो चला था। उस बिम्ब के चारों ओर लाल, गुलाबी, केसरी ज्वालाओं का जैसे एक यज्ञकुण्ड ही प्रज्वलित था। महाराज एक ही बात सोचते हुए उस बिम्ब की ओर एकटक निहार रहे थे। सोचते थे—चाहे भी तो क्या कोई तेजमय सूर्य को कभी बन्दी बना सकता है? क्या स्वयं आकाश में भी वह सामर्थ्य है? इसी समय उन्हें स्मरण आया वह सूर्यास्त काल, जब वे रायगढ़ की हिरकणी माची पर खड़े होकर सूर्यदेव के दर्शन कर रहे थे। एक बार परकोटे की माची पर खड़ी हुई श्रीसखी ने उनसे पूछा था, "इस सूर्यदेव को देखकर आप क्या अनुभव करते हैं?" और कुछ देर उत्तर की प्रतीक्षा करके वे स्वयं कह उठी थीं, "इस ऊँची माची पर खड़े होकर यह सूर्यदेव हमें तो आत्मीय जन ही प्रतीत होता है, बिलकुल आबासाहब के समान आत्मीय।"

आबासाहब! कितनी महान आत्मा थी वह भी! जब रायगढ़ में वे मृत्युशय्या पर लेटे हुए थे, उस समय उन्होंने उपस्थित जनों से कहा था, "यह मृत्युलोक है—यहाँ जो भी आये हैं, उन्हें जाना पड़ा है।" मनुष्य क्यों आते हैं इस जगत् में? क्या पाकर चल देते हैं? तुम्हारी और समर्थगुरु की स्मृति हमें आज भी आती है, तो हमारे प्राणों की बुझती वस्त्र-ज्योति को फिर से जला जाती है। हमें तो आज भी नहीं लगता कि आप इस संसार में नहीं रहे। क्यों होता है ऐसा?

वह सूर्य-बिम्ब, जो रायगढ़ की हिरकणी माची पर खड़े होकर गोलाकार दिखलाई देता था, अब खम्भे से बँधे हुए राजा सम्भाजी को ऊसर मैदान के समान समतल-सा दिखलाई दे रहा था। उन्हें इस समय यह भी सुध न थी कि उनके हाथ तख़्ते-कुलाह से बँधे हैं। अपनी बायीं ओर बँधे हुए कुलेश की ओर देखकर वे बोले, "गगन-राज सूर्य अस्त हो रहा है। छन्दोगामात्य, उसे नमस्कार करो।" और उन्होंने अपना हाथ छाती की ओर लाने के लिए खींचा। पर हाथ तख़्ते-कुलाह में अटककर रह गया। हाथ से एक चीरती हुई टीस निकली और उनका मस्तक झन्ना उठा। परन्तु शारीरिक वेदना से भी बढ़कर एक विचार उन्हें मानसिक पीड़ा से विह्वल बना गया—'हमें मुजरा करने के लिए आज तक न जाने कितने हाथ सम्मानपूर्वक झुके होंगे! पर...पर आज हमारा हाथ ही हमारा नहीं रहा, आह! सूर्यदेव को नमस्कार करने में भी वह असमर्थ हो गया है।' मन की इस कसक के कारण नेत्र बन्द कर लिये उन्होंने। फिर भी प्रकाश का वह लाल-

https://t.me/Sahityajunction

लाल गोला उनकी आँखों के आगे से हटता ही न था। ब्राह्मणों द्वारा राज्याभिषेक के अवसर पर उच्चरित वचन उनके कानों में गूँजने लगे—'सिसोदिया वंशज सूर्यकुलोत्पन्न-क्षत्रिय कुलावतंस...'

अब सारी छावनी में शाम की नौबतें बज रही थीं। ख़ानसामों ने ताँबे के बड़े-बड़े देग़ चूल्हों पर चढ़ा दिये—रसोई बनने लगी। कसाइयों द्वारा काटे गये बैलों और बकरों का गोश्त उन देगों में उबल रहा था। छावनी के सारे लोग नमाज़ पढ़ चुके थे और बड़े आकार की गोल-गोल परातों में पाँच-पाँच, दस-दस के झुण्ड बनाकर फ़ौजी सिपाही अब खाना खाने के लिए तैयार हो रहे थे। साठ हज़ार लोगों की उस विशाल छावनी में केवल दो ही मानव ऐसे थे जो अँतड़ियों में भूख दबाये और खुली आँखों से वहाँ अपने कुलदेवता की प्रार्थना कर रहे थे—माँ जगदम्बा की तथा चण्डी माता की। वे दो उपासक थे—छत्रपति और छन्दोगामात्य।

जगह-जगह मशालें जल उठी थीं। उनकी लपटें हवा के झोंकों से फरफरा रही थीं। शाम धीरे-धीरे आ रही थी—काँपती हुई, थरथराती हुई।

अब औरंगज़ेब ने भी बहादुरगढ़ से डेरा हटाया और वह कोपरगाँव की छावनी में लगाये गये शाही खेमे में आकर रहने लगा। दिल्ली से निकलते समय उसकी पहली मुराद यही थी कि 'शीवा' के मराठाशाही राज को इस्लाम के झण्डे के नीचे लाया जाय। इसी कारण उसने 'शीवा' के पहाड़ी राज्य को एक-एक धक्का देकर आज़माया भी था; परन्तु चार साल पहले उसे 'शीवा' के बच्चे के आगे हाथ मसलते हुए पीछे हट आना पड़ा था। आब वही 'सम्भा' उसका क़ैदी था। उसका अन्दाज़ा था कि यदि अत्यधिक यन्त्रणा दे-देकर इस क़ैदी की दुर्गत बनायी जाय और उसको अपने रास्ते से दूर हटा दिया जाय तो इस पहाड़ी इलाक़े के निर्बल और भूखे-नंगे लोगों को हाथों में पकड़ी हुई तसबीह के नीचे बड़ी आसानी से लाया जा सकेगा।

अपने खेमे में उसे एक और ख़याल भी सता रहा था। वह यह सोच रहा था कि बेटा अकबर और दिलेर ख़ाँ का भाई मिरबात ख़ाँ सम्भा से ही क्यों जा मिला होगा? क्या उद्देश्य होगा उनका?

सम्भा ने रुहुल्ला ख़ाँ को जो मुँहतोड़ उत्तर दिये थे, उसकी सूचना उस तक पहुँची थी। उसने फूट और लोभ के बीज बोकर अनेक मराठा सरदार अपने क़ब्ज़े में कर लिये थे। रह-रहकर उसे एक ही ख़याल सता रहा था—'बड़ी मुरादें लेकर दिल्ली से निकले थे हम। अब बुढ़ापा आ पहुँचा है। ख़्वाहिश थी कि कांजीवरम् से काबुल तक फैली सारी ज़मीन के लोग इस्लाम के बन्दे बन जाएँ। क्या हमारी यह ख़्वाहिश पूरी होगी?'

वढ़ू गाँव की छावनी से मुकर्रब ख़ाँ के हरकारे रोज़ आ-आकर ख़बरें दे रहे थे, "क़ैदी कुछ बोलते नहीं, कुछ खाते नहीं।"

बादशाह के साथ-साथ उसकी बेटी ज़ीनतुन्निसा भी पिता की सेवा-शुश्रूषा करने आयी थी। वह अपने अब्बाजान के हर भोजन से पहले कटोरों में भरे खाद्य-पदार्थों को पिता के सामने स्वयं चख-चखकर देखती थी और जब यह भरोसा हो जाता था कि इसमें ज़हर होने का 'ख़तरा नहीं, तब वह अपने अब्बाजान को खाना परोसती थी।

इसी तरह एक दिन भोजन के समय मुकर्रब ख़ाँ का भेजा हुआ हरकारा आया, "ज़िद्दी

https://t.me/Sahityajunction

क़ाफ़िरों ने अब तक कुछ खाया नहीं।" मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ रोज़ मुग़ल ढंग का मसालेदार शाही खाना थाली में परोसकर महाराज के सामने लाता था और शीरख़ुरमे की मीठी रकाबी कवि कुलेश के सामने लायी जाती थी। शायद इस प्रकार क़ैदियों की भूख भड़काने की कोशिश की जाती थी। परन्तु निराशा ही हाथ आती। क़ैदियों को गिरफ़्तार करते समय मुकर्रब ख़ाँ बहुत उत्साहित था, परन्तु अब उत्साह का स्थान भय और आशंका ने ले लिया था।

क़ैदी कुछ खाते नहीं हैं, यह सुनकर औरंगज़ेब थाली छोड़कर खड़ा हुआ और वहीं बेचैनी से टहलने लगा। खुले कटोरे में कहीं मक्खियाँ न गिर जाएँ, इसलिए ज़ीनतुन्निसा उन पर पीतल के ढक्कन रखने लगी। इसे देखकर औरंगज़ेब वहीं ठिठक गया और एक अजीब-सी हँसी उसके होठों पर फैल गयी। ज़ीनतुन्निसा ने सोचा—क्या खाना चखने में कुछ भूल हो गयी मुझसे? कहीं अब्बाजान को शक तो नहीं हो गया। घबराते-घबराते उसने हिम्मत करके पूछा, "क्यों हँस पड़े अब्बाजान?" इस सवाल को सुनकर औरंगज़ेब खिलखिलाकर हँस पड़ा। कहने लगा, "थाली पर मक्खियाँ बैठती हैं, इस वजह से तूने ढक्कन रख दिये बेटी, पर कभी-कभी इन्सान के दिल पर भी मक्खियाँ बैठती हैं। उनके लिए कहाँ से लाओगी ढक्कन? एक तुम्हारा भाई है अकबर, जो तख़्त पाने के लिए और चन्द रोटियों के लिए जाने कहाँ-कहाँ धूल फाँक रहा है और एक यह है शीवा का बच्चा 'सम्भा' भी कि जो थाली को छूता भी नहीं है।" अचम्भे में पड़ी हुई अपनी बेटी की ओर देखकर उसने हुक्म दिया, "ले जाओ यह खाना, हमें नहीं चाहिए।"

फिर वज़ीर असद ख़ाँ को उसने बुलावा भेजा और हुक्म दिया, "हम ख़ुद देखना चाहते हैं, क़ैदी सम्भा को। जाओ, इन्तज़ाम करो।"

औरंगज़ेब के जीवन का यह पहला ही अवसर था कि जब वह स्वयं एक क़ैदी को देखने के लिए इच्छुक था।

क़ैदियों को खम्भों से बँधे हुए इसी तरह तीन दिन बीत गये। दोनों क़ैदी शाही सवालों के आगे झुके नहीं, कोई भी उत्तर उनसे पाया नहीं जा सका। दोनों भूखे थे। कभी-कभी अल्लाह का कोई रहमदिल बन्दा मिन्नतें कर-करके उन्हें केवल पानी भर पिला देता था और जाते समय आँखें मींचकर अपने मन की बात को धीरे से कुड़बुड़ाते हुए कहता था, "कैसी ज़िद पैदा की है अल्लाह ताला ने इनमें! हाथ में अगर हथियार होता, तो ज़रूर ये अपनी ही गर्दन काट लेते। क्या तक़दीर होती है किसी-किसी की? परवरदिगार, इन्हें नेक ख़याल दो।"

बादशाह ने जब रुहुल्ला ख़ाँ से क़ैदियों के मौन का वृत्तान्त सुना, तो उसने तुरन्त मौलवियों की एक मजलिस बुलायी। यह उसकी रीत ही थी कि वह अपने दिल के हर फ़ैसले को हमेशा मुल्ला-मौलवियों के मुँह से कहलवा लेता था। यह उसका हमेशा का तरीक़ा था कि अपने हर फ़ैसले पर इस्लाम धर्म की मुहर ज़रूर लगवा लेता था। उसने इन क़ैदियों के बारे में भी यही किया। "बादशाहत के कई शहरों को लूटने-जलानेवाले, मसजिदों को तहस-नहस करनेवाले, बगावतख़ोर के लिए क़ुरान-शरीफ़ में लिखी है, सजा-ए-मौत।" मौलवियों की मजलिस ने यह फ़ैसला बादशाह के हाथों में ला रखा।

अब शाही खेमे में से बाहर निकल पड़ा शहंशाहे-हिन्दुस्ताँ सजे हुए हाथी पर बैठकर। चाँदी की

https://t.me/Sahityajunction

अम्बारी में सुनहरी छतरी के नीचे बैठा हुआ था वह और ज़मीन पर घूम रही कुछ खोजती हुई-सी उसकी नज़र सारे सरंजाम को जल्दी-जल्दी से देख रही थी। उसके पीछे जो हाथी आ रहा था, उस पर शहज़ादे और नाती-पोते आदि शाही ख़ानदान के लोग थे। ज़ीनतुन्निसा के साथ औरंगज़ेब के शाही ज़नानख़ाने की स्त्रियाँ भी एक अलग हाथी पर सवार थीं। सबके मन में 'शिवा' के बेटे 'सम्भा' क़ैदी को देखने की इतनी उत्सुकता उमड़ रही थी कि स्वयं 'शीवा' को आगरा के दरबार में देखने के लिए भी सम्भवतः इतना कुतूहल न रहा हो। साथ-साथ जो ख़ान आहिस्ते-क़दम चल रहे थे, उन्हें भी क़ैदियों को ख़ुद देखने के इस बादशाही फ़ैसले पर ताज्जुब हो रहा था। बादशाह को उस सवारी के जुलूस के आगे नगाड़े बज रहे थे और बीच-बीच में ऊखली पटाखों की ज़ोरदार आवाज़ें हो रही थीं। शाही हाथी के आगे-आगे घोड़ों पर सवार दो झण्डाबरदार पुतले के समान स्थिर रहकर चल रहे थे, जिनके हाथों में चाँद-तारे की निशानीवाले झण्डे थे।

यूँ चलते-चलते बादशाह औरंगज़ेब की सवारी वढू-बुद्रुक के फ़ौजी थाने पर आ पहुँची। पीलवालों ने अंकुश मारकर हाथियों को बैठाया। बादशाह की अगवानी में तोपें दाग़ी जाने लगीं जिनकी आवाज़ों से कान के पर्दे फटे जाते थे। बादशाह अपने शहज़ादों और नातियों के साथ हाथी से उतर पड़ा।

कितनी विचित्र थी यह भेंट भी! एक था दिल्ली के तख़्त का मालिक जो पूरे शाही ठाठ-बाट से आया था और दूसरा था सम्भाजी, जो रायगढ़ के सिंहासन का स्वामी था और जो अपने राज्य पर चारों ओर से हो रहे आक्रमणों का सामना करने के लिए पूरे आठ वर्षों तक जी-जान से जुटा रहा था।

इस मिलाप का स्थान था तुलापुर का निकटवर्ती वढू-बुद्रुक गाँव का उजाड़ पथरीला मैदान। सारी छावनी में भीड़-ही-भीड़ थी, परन्तु फिर भी भीषण नीरवता छायी हुई थी।

बादशाह कसकर बाँधे गये क़ैदियों की ओर चल पड़ा। उसकी ख्याति थी कि वह अपने सदैव सावधान और संशयशील मन की थाह कभी किसी को पाने नहीं देता था। यही कारण था कि बाबर से लेकर शाहजहाँ तक जो भी मुग़ल-बादशाह हुए, उन सबसे अधिक फ़तह उसने पायी थी। उसने किमॉश में ऐसे कितने ही सम्मानसूचक तुर्रे खोंस लिये थे।

हथियारबन्द सिपाहियों के पहरे के बीच बादशाह औरंगज़ेब वज़ीर असद ख़ाँ, रुहुल्ला ख़ाँ, मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ के साथ-साथ आगे बढ़ा और खम्भों से बँधे हुए, परन्तु सिर शान से ऊँचा उठाकर खड़े हुए महाराज सम्भाजी के आगे वह अवश्य आ खड़ा हुआ परन्तु दोनों के बीच कम-से-कम दस हाथ की दूरी रहे, इस बात का ध्यान रखना वह कतई भूला नहीं था!! उसकी शाही नज़र कसकर बाँधे गये राजा को पैर से लेकर सिर तक घूरने लगी और अन्त में क़ैदी की आँखों पर आकर टिक गयी। हृदय में बेहद बेचैनी मची हुई थी। आज तो उसका दिल बुरी तरह डाँवाडोल हो उठा था। वह सोच रहा था—'हमारे तैमूर के इस ख़ानदान में कितने ही बच्चे पैदा हुए, पर किसी भी नावकार की आँखें हमने ऐसी नहीं देखीं। आँखें क्या हैं—दो आफताब ही चमक रहे हैं!'

औरंगज़ेब ने एक बार रुहुल्ला ख़ाँ और असद ख़ाँ की ओर देखा और वह स्वयं राजा सम्भाजी से पूछने लगा, "बताओ, कहाँ है तुम्हारा लूट का ख़ज़ाना? कौन-कौन थे वे लोग, जो

https://t.me/Sahityajunction

हमारा नमक खाकर भी हमारे ख़िलाफ़ बग़ावत किया करते थे?" महाराज घृणा की दृष्टि से और केवल घृणापूर्ण दृष्टि से सूर्यवत् तेजमय नेत्रों से औरंगज़ेब की ओर घूरकर देखने लगे। उस दृष्टि को तीव्र कहना भी पर्याप्त नहीं होगा, वह तो मानो पहाड़ के कगार पर बैठे हुए गरुड़ की चोंच ही थी, जो देखनेवालों के हृदय भेदती जा रही थी। उस दृष्टि की तीव्रता को और पलकों में लबालब भरकर बाहर निकल रही घृणा को पाषाण-हृदय औरंगज़ेब ने भी अनुभव किया। उसने आज तक ऐसा कोई आदमी देखा न था, जो उसके सामने गर्दन ऊँची करके उसे देखता हो और आज जैसी घृणापूर्ण दृष्टि को देखने की तो उसे बिलकुल आदत ही नहीं थी।

निर्णायक संघर्ष के उन स्तब्ध क्षणों को तोड़ता हुआ भयभीत रुहुल्ला ख़ाँ आगे बढ़ा और कमर तक झुककर अपना पुराना नुस्ख़ा आज़माने की सिफारिश करने के लिए अपने आलमपनाह से कहने लगा, "रहम करो आका अली। ये मग़रूर अभी बन जाएगा इस्लाम का बन्दा। ये नाचीज़ बाद में सब बता देगा अपने आप।" रुहुल्ला ख़ाँ ने मराठा राज्य में अपने फूट और विद्रोह के नुस्ख़े को कई मराठा-सरदारों पर आज़माया था और इसी चाकरी के बल पर उसे भ्रम था कि हज़रत उसकी यह सलाह मान लेंगे।

"चुप रहो। कितने नादान हो तुम बख़्शी?" रुहुल्ला ख़ाँ तो वह पुतली था, जो कलाकार के इशारों पर नाचती है। औरंगज़ेब ने एक बार उस कठपुतली को तरस खाती नज़र से देखा। फिर एकटक महाराज को घूरते हुए वह रुहुल्ला ख़ाँ से कहने लगा, "ज़रा ग़ौर से देखो एक दफ़ा इसकी आँखें। अरे, ये जब अपने बाप के साथ आगरा के दरबार में आया था, तो कितनी मासूम थीं ये आँखें! ये क्या खाक कबूल करेगा इस्लाम? ये नहीं बन सकता इस्लाम का बन्दा। ये नमाज़ पढ़ेगा? भूलते हो तुम। देखो तो, किस तरह नफ़रत से घूर के देख रहा है? आँखें नहीं हैं, दो मशालें हैं ये। इसे इस्लाम का बन्दा बनाना और आस्तीन में साँप पालना दोनों बराबर हैं!

"दक्खनीऽ, निकाल दो...निकाल दो ये गुस्ताख आँखें! गर्म सलाखों से आँखें फोड़ डालो इसकी। इस मग़रूर को एक नयी नज़र बख़्श दो।" रुहुल्ला ख़ाँ की ओर न देखकर औरंगज़ेब ने दक्खनी सरदार इख़लास ख़ाँ को आख़िरी हुक्म दिया। वह मुग़ल और शाही बुढ़ापा, जो सारे हिन्दुस्तान में मारा-मारा फिरा था, इस समय खड़ा-खड़ा ग़ुस्से से थर्रा रहा था। सामने बँधा हुआ था एक जवान मावल-खण्ड का युवक, जिसने आदेश को सुनते ही अपने शरीर का समस्त यौवन नेत्रों में भर लिया था। तोप के गोले की तरह भोसले राजा के शब्द छूटने लगे, "अरेऽ! तू जो देख रहा है, ये दो ही आँखें नहीं हैं हमारी। हमारे सैकड़ों मावले, हजारों मावले वीर हमारी आँखें बन चुके हैं। तू हिन्दुस्तान का बादशाह है, ज़रूर निकलवा सकता है तू हमारी आँखें! अवश्य निकलवा दे—एक पल की भी देरी मत कर। निकलवाकर फेंक दे हमारी आँखें। हम तेरी शकल देखना भी नहीं चाहते। हम नहीं देखना चाहते वह शरीर, जिसने भूखे-निर्धन हिन्दुओं का धर्म बदला है—उनके बीवी-बच्चों की दुर्गत बना दी है। हमारी दो आँखें चली भी गयीं, तो क्या हुआ, पर हमारी उसी नज़र से हमारे बलिदानी मावलों को एक नयी नज़र मिल जाएगी!!"

औरंगज़ेब के लिए यह सब कोरी 'बकवास' थी। उसने इन बोलों की ओर ध्यान देने की भी ज़रूरत नहीं समझी। वह अगले क्षण ही कुलेश की ओर दो क़दम बढ़ा और उन्हें भी उसने सिर से पैर तक देखा। इतने आवेगों-आवेशों के बीच भी वह अफ़सोस की भावना उसके मन को छू गयी—'अगर इसी तख़्ते-कुलाह में बाग़ी शहज़ादा अकबर बँधा होता तो! कितनी ख़ैर होती

https://t.me/Sahityajunction

अल्लाह की!'

इख़लास ख़ाँ बादशाह के पीछे-पीछे झुकता हुआ—दोहरा होता हुआ आ रहा था। उसे भी बादशाह का अगला हुक्म मिला, "हर सज़ा पहले इस बम्मन पर लागू करो। हम भी सुनना चाहेंगे कि ख़ुद को 'शेरदिल' समझनेवाली ये क़ाफ़िर 'शीवा' की औलाद अपने शायर की छटपटाहट कैसे देख पाती है।"

अपनी सफ़ेद और कटी-छँटी, साफ-सुथरी दाढ़ी को झटका देकर बादशाह ने गर्दन फिरा ली। शायद सोच रहा था कि इन नाचीज़ और क़ाफ़िर क़ैदियों के लिए उसने बेकार वक़्त ख़राब किया। वह वापस जाने के लिए मुड़ा। उसके किमॉश में जड़ा हुआ हरे-हरे पन्नोंवाला तमग़ा और कपड़ों पर बने हुए ज़री के सलमे-सितारे धूप में चमचमा रहे थे।

उधर महाराज क्रोध से उबल रहे थे—अब यह औरंगज़ेब फिर कभी दिखाई नहीं देगा, यह सोचकर वे छटपटा उठे। ऐसी छटपटाहट और तड़पन सहन की थी उस राजा ने कि जैसी किसी बलि के बकरे ने भी न भोगी होगी। इन अपमान और यातनाओं का बदला लेने के आवेश के कारण राजा होते हुए भी सम्भाजी के मुख से एक गाली निकल पड़ी—बादशाह को उसके सेवकों के सामने ही ठोकर से उड़ानेवाली एक गाली, "सूअर की औलाऽद! शेर के बच्चे शेर जैसे जीते हैं, और मरते भी हैं तो शेर जैसे!"

औरंगज़ेब को ऐसा नापाक लफ़्ज सुनने की आदत नहीं थी। सुनते ही वह ग़ुस्से के कारण बुरी तरह काँपने लगा। एक मामूली क़ैदी हिन्दुस्तान के शहंशाह को उसके सामने ही 'सूअर' कहे। और वो भी तब जब कि शहज़ादे वज़ीर, सरदार और पैदल सिपाही भी खड़े हों!! उसके भींचे हुए पतले होंठ थरथर काँपने लगे। माथे की नस उभरकर फूल उठी। शरीर तो काँप ही रहा था, ज़रदोज़ी के बेल-बूटोंवाली शाही पोशाक भी थरथर काँप रही थी। उँगलियों में लटकी हुई तसबीह एकदम जमा होकर मुट्ठी में बँध गयी। उसका तैमूरवंशीय ख़ून खौल उठा। जीवन भर उसने कई कठोर, अति कठोर आदेश दिये थे, परन्तु सदा बहुत शान्त और मन्द वाणी से ही, परन्तु आज उसकी शान्त वाणी ने उसे धोखा दे दिया। उसकी ऊँची आवाज़ सुनकर आज वज़ीर असद ख़ाँ की भी कँपकँपी छूट गयी। औरंगज़ेब ने आज ऐसा हुक्म दिया, जो उसने पहली बार ही दिया था, जीवन में पहली बार। बादशाह कड़ककर कहने लगा :

'इख़लासऽ दक्खनीऽ, आँखें निकालने से पहले, इसकी ये बदगुमान और मगरूर ज़बान काट डालो। फेंक दो ज़बान कुत्तों के आगे!!!"

"हँऽऽ, औरंगज़ेब, कितना मूर्ख है तू भी! अरे कहीं ज़बान काट डालने से किसी के वचनों को मारा जा सकता है!" सूखते होठों पर से जीभ फिराते हुए महाराज के मुख से अत्यन्त शान्त और दृढ़ वचन निकल पड़े। अब राजा सम्भाजी किसी प्रकार से भय की सीमाओं से बहुत दूर पहुँच चुके थे।

औरंगज़ेब ने किसी ओर ध्यान नहीं दिया। वह जल्दी-जल्दी चला और जाकर अम्बारी में बैठ गया। वढ़ू-बुद्रुक में सिर पर तप रहा भीषण दुपहरी का वह सूरज अपनी दहकती किरणों के रूप में नीचे उतर रहा था। वढ़ू की काली मिट्टीवाली ज़मीन उन किरणों से जल रही थी, तप रही थी।

https://t.me/Sahityajunction

यह तो हज़रत की ही ख़्वाहिश थी कि क़ैदियों की आँखें जलाने से पहले उनकी जीभ काट डाली जाय। इख़लास ख़ाँ ने इस काम के लिए जल्लादों के झुण्ड में से कुछ ऐसे जल्लाद चुल लिये, जो पूरे पत्थरदिल थे और जिन्होंने हिचकिचाहट कभी जानी ही नहीं थी। उसने जल्लादों की खुली हुई छातियों को मूठ से ठोंक बजाकर उनकी मज़बूती भी परख ली थी।

इख़लास ख़ाँ ने छावनी के लोहारख़ाने से कुछ फ़ौजी लुहार बुलवा लिये। लुहार जलती हुई अँगीठियाँ और सँडसी लेकर आ गये। लुहारों ने लोहे की बनी अँगीठीनुमा भट्ठियों में एक हाथ लम्बी दो सलाखें डाल दीं। सलाखों को पकड़ने वाले के हाथ न जलें, इसलिए सलाखों के दूसरे छोर पर कपड़े की मूठ बनायी गयी थी। कुछ जल्लाद हाथ में सँडसा लिये खड़े थे, जिनसे क़ैदियों की जीभ को बाहर खींचा जाना था। दूसरे कुछ जल्लाद ऐसे थे, जो कन्धे पर नंगी तेग रखकर तैयार थे। सब हुक्म होने का इन्तज़ार करते हुए कतारों में खड़े हुए थे।

आलमपनाह का हुक्म था, "आँखें निकालने से पहले ज़ुबान काट दी जाए। हर सज़ा का अमल पहले शायर पर किया जाए और बाद में सम्भा को वही सज़ा दी जाए।"

कवि कुलेश को पहले दण्डित करने की आज्ञा औरंगज़ेब ने किस उद्देश्य से दी होगी? उद्देश्य सम्भवतः यही था कि अपने प्रिय कवि को दण्ड दिया जाता हुआ देखकर, उसकी दुर्दशा देखकर राजा सम्भाजी का हृदय फट जाएगा। वे साहस खो बैठेंगे और उनका हृदय अवश्य टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। फिर तो निराश सम्भा कोई भी शर्त मानने के लिए तैयार हो जाएगा और अपने प्राणों की भीख माँगने लगेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो भी कम-से-कम अपने सेवक की दुर्दशा देखकर उन्हें मानसिक यातना तो भोगनी ही पड़ेगी।

इख़लास ख़ाँ पाँच-दस काले-कलूटे हबशी जल्लादों को लेकर कुलेश के सामने आया। खुले-नंगे बदन वाले उन जल्लादों ने केवल कमर में ढीले-ढाले पाजामे (सलवार) पहन रखे थे, सारा बदन नंगा था, हाथों में सँडसा और नंगी तलवारें लिये खड़े हुए वे जल्लाद पसीने से नहा उठे थे।

इस समय तक सज़ा की ख़बर सारी छावनी में फैल गयी थी। सभी लोग क़ैदियों की सज़ा के दृश्य को देखकर अपनी आँखें ठण्डी करना चाहते थे। थोड़ी ही देर में ठठ के ठठ लग गये वहाँ। सब पंजों के बल उचक-उचककर उस अभूतपूर्व दृश्य को देखने को लालायित थे। उन खम्भों के आसपास इतनी भारी भीड़ जमा थी, फिर भी ख़ामोशी ऐसी छायी थी कि उड़ते हुए जंगली कीड़े के पंखों की फड़फड़ाहट भी साफ सुनाई दे जाय।

"ए शायर के बच्चे, मुँह खोलो।" इख़लास ने कवि कुलेश का जबड़ा पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से इधर-उधर हिलाया। कुलेश ऐसे शान्त थे, मानो उन्होंने उसकी बात ही न सुनी हो।

ऐसी आज्ञा देनेवाले इख़लास ख़ाँ को भला क्या कहा जाय? भला अपनी जीभ कटवाने के लिए अपना मुँह कोई कैसे और क्योंकर खोलेगा? इतना भी नहीं समझा मूरख।

कुलेश को घूरकर देख रहे इख़लास ख़ाँ ने जब उन्हें सर्वथा शान्त-संयमित देखा, तो वह ग़ुस्से से पागल-सा हो गया। वह आगे बढ़ा और कुलेश का जबड़ा खोलने के लिए अपने दोनों हाथों की ताकत आज़माने लगा। कुलेश केवल कवि नहीं थे, वे थे लड़ाका भी, जिन्होंने कई अभियानों में भाग लिया था। इख़लास ख़ाँ ने ख़ूब हाथ-पैर मारे, पर उनका मुँह वह नहीं खोल सका। कुलेश ने दाँत ऐसी दृढ़ता से दबा रखे थे कि जैसे उनके दाँत बैठ गये हों। इख़लास ख़ाँ बहुत देर तक उनके जबड़ों से लड़ता-भिड़ता रहा और इस कोशिश के कारण वह पसीने से नहा

https://t.me/Sahityajunction

उठा, बुरी तरह खीज उठा। फिर तंग आकर उसने कुलेश के गाल पर एक थप्पड़ मारा और गुर्राया, "सूअर, मुँह को लकवा मार गया क्या तेरे?"

फिर अपने जल्लादों की ओर देखकर ग़ुस्से से जलता-भुनता हुआ वह कड़ककर बोला, "सब मिल के खोलो इसका जबड़ा। बाहर खींचो इसकी ज़बान।" अब पाँच हबशी जल्लाद आगे बढ़े और उन्होंने अपने ताक़तवर हाथों से कुलेश का मुख एक जगह दबाकर पकड़ रखा।

अब कुलेश भी जान गये थे कि जीभ उनसे विदा होने जा रही है, सो सारी प्राणशक्ति अपने जिह्वा में समेटकर वे पुकारकर कहने लगे, "प्रणाऽम, स्वामीऽ, एक तुच्छ कन्नौजी कवि का आपके चरणों में प्रणाम। मन्त्रियों ने हमें भोजन की पंक्ति में न बैठाया हो, परन्तु आज हम भाग्यशाली हैं कि आपके साथ इस पंक्ति में बैठने का सौभाग्य तो मिला हमें...। इस अन्तिम यात्रा में तो आपके साथ पग-से-पग मिलाकर चलने का सौभाग्य मिला हमें!! जय भवानीऽ, जय चण्डी माता।" जल्लादों ने उस 'बकबक' करती हुई जीभ को मुँह में सँडसा खोंपकर पकड़ लिया और झटका देकर उस जीभ को बाहर खींच लिया। वेदना से कवि की जिह्वा काँप उठी। पास ही जो जल्लाद नंगी तेग ताने खड़ा था, उसने इख़लास ख़ाँ का इशारा पाकर एक ऐसा जोरदार वार किया कि जीभ का टुकड़ा दूर नीचे जा गिरा, इतना ही नहीं, तेग का वह वार दो-तीन दाँत तोड़ता हुआ उनके निचले होंठ और ठोड़ी को चीरता हुआ ज़मीन पर आ पड़ा। एक चीख़ और वेदनाभरी पुकार उठी और भीड़ में से उठ रहे ख़ुशी के शोरगुल में खो गयी। ख़ून के फव्वारों से तख़्ते-कुलाह भी गीला हो गया। उनके माथे पर कन्नौजी तिलक केवल नाममात्र को ही शेष रहा था। वह रहा-सहा तिलक भी इस ख़ून के फव्वारे के कारण अब अदृश्य हो गया था। विदूषकों वाले उनके कपड़े ख़ून से तर-बतर हो गये।

महाराज ने तख़्ते-कुलाह में से गला घुमाकर कुलेश के रक्तसिंचित मुख को देखा। एक धीमी-सी पुकार उन्होंने लगायी, "कऽविराजऽ!" जैसे वे अपने बालराजा को ही दुलार-भरे स्वर में पुकार रहे हों।

कटी हुई जीभ के कारण मुख में वेदना की दाहक ज्वालाएँ उठ रही थीं, तथापि छन्दोगामात्य कुलेश नेत्र खोलकर अपने स्वामी की ओर देखने लगे।

आस-पास खड़ी हुई भीड़ के कोलाहल और जोश-भरी ललकारों के कारण अब इख़लास ख़ाँ का जोश दूना-चौगुना बढ़ रहा था। वह महाराज के आगे आया। पहला अनुभव वह अभी भूल नहीं पाया था, इसलिए उसने महाराज के मुख को हाथ भी नहीं लगाया। जल्लादों को डपटता हुआ वह चिल्लाया, "कमज़ोरो, डर गये क्या? डरपोक कहीं के। खोली इसका भी जबड़ा। काट दो इसकी भी वो गुस्ताख़ ज़ुबान, जिसने हज़रत को गाली दी थी।"

चार-पाँच हुक्म के ताबेदार आगे बढ़े और अब शुरू हो गयी एक दूसरी लड़ाई। चार-पाँच हबशी महाराज का मुँह खोलने के लिए उनसे उलझ रहे थे, परन्तु महाराज उन्हें हाथों में अपना सिर पकड़ने ही नहीं दे रहे थे।

"वो तो शायर था, फिर भी कितना सताया कमबख़्त ने! ये तो शेर है, आसानी से हुक्म नहीं मानेगा। सब मिलके पूरी ताकत लगाकर पकड़ो इसका जबड़ा।" मुकर्रब ख़ाँ और इख़लास ख़ाँ चिल्ला-चिल्लाकर जल्लादों का हौसला बढ़ा रहे थे। तमाशबीनों में से दो-चार लोग भी अब आगे बढ़ आये और जल्लादों की मदद करने लगे।

https://t.me/Sahityajunction

आख़िर काले-कलूटे दस-बीस हाथों ने राजा सम्भाजी का मुख ऐसा धर दबाया कि ज़रा भी हिल न सके। लो, बिच्छुओं ने शिवलिंग ढक लिया। महाराज की कनपटी के निकट इतने ज़ोर से दबाव पड़ा कि असह्य पीड़ा के कारण राजा भोसले का मुख खुल ही गया। रायगढ़ के महाद्वार के दो किवाड़ अन्ततः खुल ही गये। जिन होठों ने कभी जगदीश्वर के चरणामृत का पान किया था, कभी जिजाऊ, धाराऊ, येसूबाई और पुतलाबाई द्वारा शुभकामनाओं सहित दिये गये दही के थक्के का आचमन किया था, उन्हीं होठों में आज जल्लादों ने लोहे का सँडसा पूरी शक्ति से घुसेड़ दिया।

वह जिह्वा, जो हर्ष एवं शोक के प्रत्येक अवसर पर 'जगदम्बे-जगदम्बे' कहकर अपने कुल देवता का जाप करती थी—'क्षत्रिय कुलावतंस, श्रीमन्महाराज, हिन्दुपद पादशाह, गोब्राह्मण प्रतिपालक सम्भाजी' की उसी जिह्वा को आज जल्लादों ने सँडसे से पकड़ लिया।

"लाऽइलाहऽ" हबशी जल्लाद ने ऐसी ऊँची ललकार की कि देखनेवालों के सिर से पैर तक सिहरन दौड़ गयी। जल्लाद ने आँखें चौड़ी कीं—जितना भी वह फैला सकता था उतनी आँखें फैलायीं और ताक़तवर हाथ से तेग का पूरा वार सम्भाजी की जीभ पर किया।

तमाशबीनों ने बेहद हल्ला-गुल्ला मचाया। पुकारों और शोर-शराबे से कान के परदे फटने लगे। चारों ओर शोर मच रहा था, "दीऽन, दीऽन..."

'गुस्ताख़ और मग़रूर' ज़बान का टुकड़ा सँडसे में ही छटपटा रहा था—तड़प रहा था। जल्लाद ने उस पर जोर से थूक दिया। "अब खाने दो इसे कुत्तों को..." कहते हुए वह टुकड़ा सँडसे के साथ ही वढू-बुद्रुक की तपती हुई भूमि पर फेंक दिया।

जिस शरीर पर कभी राज्याभिषेक के समय पवित्र नदियों के जल से अभिषेक हुआ था, वही शरीर अब रक्त की धाराओं से भीग उठा। असह्य पीड़ा हुई थी, तथापि महाराज के मुख से आह या चीत्कार की तनिक-सी ध्वनि भी नहीं निकली। होठों को दाँतों से दबाकर उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये तथापि जिह्वा मूल से बहते हुए रक्त को वे रोक नहीं सके। बहने वाली रक्त की धारा भूमि पर टपकने लगी।

कुछ क्षणों के बाद सम्भाजी ने आँखें खोलीं। सामने देखा तो उनकी अपनी जीभ धूल में पड़ी हुई है। इस समय बस एक ही विचार ने उनके हृदय को छटपटाकर रख दिया—आज तक इस जिह्वा से निकला हुआ हर एक शब्द झेला गया है, नीचे भूमि पर नहीं गिरा है। परन्तु आज... आज यह जिह्वा ही भूमि पर पड़ी हुई है। छटपटाकर शायद हमसे पूछ रही है—'स्वामिन्, कोई आज्ञा मिले तो इस समय भी पालन के लिए तत्पर हूँ मैं।' जीभ की ओर एकटक देखकर वे अतीव विह्वल हो उठे। अन्तस्तल में कहीं पर विचित्र-सी हलचल मच रही थी।

महाराज और कुलेश रक्त से सने हुए मुख से एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। अब वे दो भिन्न 'अस्तित्व' नहीं थे, वे उस 'राजकाव्य' के गहन आशय से परिपूर्ण दो छन्द थे, जिनका आशय एक ही था और जो काव्य मावल-खण्ड की बोली में लिखा गया था। वे 'छत्रपति' और 'छन्दोगामात्य' अवश्य थे और दो भिन्न शरीर भी अवश्य थे, परन्तु जिह्वा-मूल से प्रवाहित उन दोनों के रक्त ने सारे शरीर को भिगो दिया था और रक्त की दो धाराएँ दोनों के पाँवों के नीचे एक रूप हो गयी थीं। लाल-लाल रक्त से शरीर एकरूप था। रक्त की भेंट चढ़ाकर मन भी एक हो चुका था। आज यदि आबासाहब के प्रिय महाकवि भूषण यहाँ होते, तो अवश्य ही उन्होंने

https://t.me/Sahityajunction

‘शिवराजभूषण’ के समान एक दूसरा काव्य-ग्रन्थ भी रच दिया होता—‘कविराज-भूषण’।

दण्ड का पहला भाग समाप्त हो चुका था। जीभ के अवशिष्ट भाग में वेदना ऐसी असह्य थी कि मृत्यु भी उससे अधिक सुखदायी होती, तथापि दोनों बन्दियों को उस वेदना की ओर ध्यान देने का समय ही कहाँ था—वे केवल यह सोच-सोचकर दुःखी हो रहे थे—रायगढ़ के विषय में, शिर्के के बारे में, बागलाण से तंजौर तक फैले हुए विशाल मराठा साम्राज्य के बारे में। औरंगज़ेब अब किस नीति को अपनाएगा? जाने क्या चाल चलेगा वह? प्रश्न मन में ही उठकर मन ही में खो जाते थे। परस्पर विचारों के आदान-प्रदान का कोई साधन ही न रहा था।

कुलेश अन्तर्मन में सोचते थे और महाराज से कहना चाहते थे—‘और अधिक जलदुर्ग बनाने की आवश्यकता है। इसी तरह पुर्तगाली और मुग़लों को मिलने से रोका जा सकेगा। शिर्के स्वयं हमारे स्वामी पर भी वार करने से नहीं चूके। वे अब औरंगज़ेब की मदद लेकर महारानी को भी चैन की नींद नहीं सोने देंगे!!’

परन्तु वे कहने को तरसकर ही रह गये। बस, गले के स्वर-यन्त्र की बाहर दिखनेवाली घण्टी ही ऊपर-नीचे हिलती रही। अभिव्यक्ति की इस असमर्थता ने उन्हें अतीव विह्वल बना दिया।

महाराज की भावनाएँ भी पिंजरे में बन्द गरुड़ के समान बार-बार भीतर-ही-भीतर उठती थीं, भीतर स्वर-यन्त्र से टकरा-टकराकर लौट जाती थीं। वे कुलेश से कहना चाहते थे—‘हम्बीरराव और म्हलोजी बाबा ने युद्ध-क्षेत्र में वीरगति पायी, देह कंचन बन गया उनका। येसाजी कंक तो अब बूढ़े हो चुके हैं। हमारी सेनाएँ सारे राज्य में जहाँ-तहाँ लड़-भिड़ रही हैं। इन सेनाओं का अब सेनापति कौन होगा? रूपाजी, मानाजी, विठोजी अथवा सन्ताजी और धनाजी—जाने इनमें से कौन सेना का नेता बनेगा?...कहीं हमारी ‘श्रीसखी’ हमारे स्थान पर पुत्र बालराजा को गद्दी पर न बिठा दें। पर क्या वे ऐसा ग़लत पग उठाएँगी? क्या हमारे भैया राजाराम स्वयं को ऐसा साहसी वीर सिद्ध कर सकेंगे, जो औरंगज़ेब के इस रेले को रोक सकें? हम न रहेंगे, तो हमारी ‘श्रीसखी’ का क्या होगा?’

और इसी समय जब उनके मन में खुल्दाबाद की कोठरी में बन्द दुर्गाबाई की स्मृति अकस्मात् आयी, तब तो उनका ‘भोसलेवंशीय’ मन छटपटाकर रह गया। आँतों में बल पड़ गये उस तिलमिलाहट के कारण।

सूर्य अब ढलने लगा था। थोड़ा-थोड़ा बड़ा होता जा रहा था उसका गोल-गोल बिम्ब।

जल्लादों की टोली जीभ काटने के काम में पसीना-पसीना हो चुकी थी। इख़लास ख़ाँ ने उस टोली को आराम करने का हुक्म दिया और दूसरी नयी टोली को दूसरी सज़ा पूरी करने के लिए आगे बढ़ाया। इख़लास ख़ाँ ने इतनी भागाभाग तो शायद जंग के मैदान में भी कभी नहीं की होगी—। उसे पूरा भरोसा था कि उसकी यह चाकरी बेकार नहीं जाएगी। उसके मालिक हज़रत इस ख़िदमत को ज़रूर ख़याल में समा रखेंगे।

उधर तमाशबीन भी बाग़ी क़ैदियों की आँखें फोड़ने की सज़ा को देखने के लिए इस क़दर बेकरार थे कि अगर उन्हें मौक़ा दिया जाता, तो कई लोग आगे बढ़कर अपने दिल की मुरादें पूरी कर लेते।

https://t.me/Sahityajunction

इख़लास ख़ाँ ने जल्लादों की नयी टोली में से दो तगड़े हबशी चुन लिये। फिर वह ख़ुद ही झुका और लोहे की भट्ठी में तपकर लाल-सुर्ख़ हुई दो सलाखों को उसने कपड़े की मूठ वाले छोर से पकड़कर खींचा। फिर वह उन तपी हुई सलाखों को उन दो जल्लादों की आँखों के पास ले गया। मानो कि अब सलाखें उनकी आँखों में घुसेड़ देना। यह एक था उसका अजीबो-ग़रीब तरीक़ा-शायद यह परखना चाहता था कि ये जल्लाद ही कहीं डरपोक तो नहीं हैं! उन चुने हुए दो हबशियों को तो इन्सान बस इसीलिए कहा जा सकता था कि उनके हाथ-पाँव, मुख-आँख आदि अवयव थे, अन्यथा तो वे थे दो लोहे के पुतले—जंग लगे हुए। वे भला सलाखों से क्या डरते? वे ज़रा भी न हिले, न डुले। इख़लास ने एक जल्लाद के हाथों में वे दो गर्म सलाखें थमा दीं और कुलेश की ओर देखकर उसने जल्लाद से कहा, "घुसेड़ दो ये गर्म सलाखें इस बम्मन शायर की आँखों में। अब देखेगा इसका मालिक कि इस शायर की आँखों से शायरी टपकती है या ख़ून!!"

जैसे समुद्री तूफान गरजता-हहराता हुआ आकर किसी पथरीली चट्टानोंवाले द्वीप से आ टकराता है, इस प्रकार वह हबशी सलाखें लेकर कुलेश के सामने आया—आँखें जला डालने के लिए।

कुलेश 'कवि' थे। उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण इस मावल-खण्ड को आँखों से जी भर निहारा था। अब उन्हें यही अनुभूति अतीव व्यथित किये देती थी कि इन आँखों से वह आकाश-सा ऊँचा दृढ़ दुर्ग रायगढ़ तथा उनकी प्राणप्रिय पत्नी अब देखने को नहीं मिलेंगे। परन्तु इससे भी अधिक कष्टदायी यह भाव था कि जिन महाराज सम्भाजी के लिए वे अपनी प्यारी जन्मभूमि कन्नौज को छोड़कर दूर दक्षिण देश में आये थे, उन महाराज सम्भाजी को अब ये आँखें कभी देख नहीं पाएँगी। इस विचार के आते ही उन्होंने एक बार सम्भाजी के लहूलुहान मुख को आँखों से जी भरकर निहार लिया।

जल्लाद की सलाखें ज्यों-ज्यों आँखों की ओर बढ़ रही थीं, कुलेश अपने सिर को तेज़ी से इधर-उधर हिलाने लगे। उधर जल्लाद भी सलाखें आँखों में घुसेड़ने के लिए बेचैन था। सलाखें कभी गालों से तो कभी कानों से छू जाती थीं और चमड़ी जला डालती थीं। आख़िर जल्लाद खीजकर चिल्लाया, "देखते क्या हो बेवकूफो, पकड़ लो इसकी गर्दन।"

जल्लादों की नयी टोली में से दो-चार जल्लाद झटपट आगे बढ़े और उन्होंने कुलेश का मुख एक जगह पर दबाकर जकड़ दिया। सभी हबशी जल्लाद आज अचरज से पुतला बने खड़े थे। वे इस बात से आश्चर्यचकित हो उठे थे कि आज तक उन्होंने तख़्ते-कुलाह में बँधा हुआ कोई भी क़ैदी ऐसा नहीं देखा था, जिसकी आँखें फोड़ डालने के लिए सलाखवाले जल्लाद को किसी की मदद की ज़रूरत पड़ी हो।

जलने की 'चर्रर्रऽचर्रर्र आवाज़ हुई। जैसे बढ़ई शीशम के फट्टे में छेद करने के लिए बर्मा घुमाता हो, इस तरह उस जल्लाद ने कुलेश की आँखों में वे गर्म सलाखें घुसेड़ दीं और उन्हें गोल-गोल घुमाया। आँखों की पुतलियाँ जलने लगीं। जलते हुए मांस की तेज़ बदबू चारों ओर फैल गयी। कुलेश का सारा शरीर छटपटा उठा—'आःआऽ' बिना जीभ के मुख से, उस अधूरे कण्ठ से बड़ी विचित्र-सी ध्वनि निकली।

जलते हुए मांस की उस भयानक बदबू के साथ-साथ जब महाराज के कानों में ये 'आःआऽ' की आवाज़ भी आयी, तो महाराज के मन में भ्रम उत्पन्न हुआ। वे समझे कि मृत्यु के भय से

https://t.me/Sahityajunction

छन्दोगामात्य भयभीत हो उठे हैं, अतः छटपटा रहे हैं। इस समय स्वयं उनके मुख से भी 'आःऽआः' के समान कुछ ध्वनि निकली इस ध्वनि की बोली में वे सम्भवतः कुलेश से पूछना चाह रहे थे—'ये मराठा साम्राज्य के छन्दोगामात्य मृत्यु से कब से डरने लगे।'

परन्तु वास्तव में कुलेश की 'आःआऽ' ध्वनि यह कह रही थी—'राजन्, हो तुम साँचे, ख़ूब लड़े तुम जंग।'

यद्यपि वे दोनों आत्मा और मन से एकरूप हो चुके थे, तथापि वाणी के अभाव के कारण उन दोनों के विचारों में इस प्रकार भ्रम उत्पन्न हो चला था।

आसपास खड़े तमाशबीन मानो ख़ुशी के मारे पागल हो उठे थे। तालियाँ पीट-पीटकर चिल्ला रहे थे, "बहुत ख़ूब! जल्दी करो बहादुरोऽ! निकालो इसकी भी कौड़ियाँ बाहर।"

जल्लाद भी अब जोश से बाबला हो उठा था। उसकी सलाखें जले हुए काले-काले ख़ून से सनी हुई थीं, पर फिर भी गर्म थीं और वह ख़ुद भी उन सलाखों से अधिक गर्म हो चला था। 'बेकार हो गयीं ये सलाखें' कहते हुए उसने उन पकड़ी हुई सलाखों को अत्यन्त घृणापूरक बिना जीभ और बिना आँखवाले कुलेश के पैरों के पास ही पटक दिया।

फिर वह पलटा और आँच में तप रही दो गर्म सलाखों को उसने उठाया, भट्ठी से खींचकर निकाला और उन्हें हवा में हिलाकर तमाशबीनों को दिखलाने लगा। इस बार उसे सिर दबा रखने के लिए चिल्लाना नहीं पड़ा। उसके चार-पाँच मददगार पहले से ही दौड़ पड़े थे और उन्होंने रायगढ़ के नरेश, मराठा साम्राज्य के छत्रपति, शिवाजी के सपूत की गर्दन और सिर दबाकर पकड़ लिये थे।

एक ही क्षण शेष था और फिर वे नेत्र इस लोक से विदा होने वाले थे—फिर भी सम्भाजी की उन आँखों में अपार शान्ति और असीम दृढ़ता थी परन्तु वे आँखें थीं ही कहाँ, वे तो सूर्य के दो बिम्ब थे। आज इतनी तीव्रता से चमक रहे थे कि कभी जीवन में इतने प्रभावान न हुए होंगे।

हबशी का वही निचला होठ, जो हमेशा नीचे को लटकता रहता था, उसे उस हबशी जल्लाद ने आज दाँतों में दबा लिया और सलाखें तानकर वह राजा सम्भाजी के सामने आया। जल्लाद के सिर के बाल और ढीला-ढाला पाजामा भी पसीने से पूरा भीग गया था। गर्मी के कारण पसीना आना तो स्वाभाविक ही था, पर आज गर्मी के साथ-साथ आँखें जला डालने जैसे कृत्य के मानसिक दबाव के कारण भी उसे दूना पसीना आ रहा था। धीरे-धीरे क़दम बढ़ाता हुआ वह उन गर्म लाल-सुर्ख सलाखें को तानकर राजा सम्भाजी के आँखों की ओर टक लगाये बढ़ने लगा।

पर फिर अचानक न जाने क्या हुआ? सलाखें हाथ में यूँ ही तनी रह गयीं और वह जल्लाद जैसे पत्थर की मूरत बनकर वहीं ठहर गया। उसने देखी थी राजा की दो आँखें—जिनमें असीम तेज़ लबालब भरकर बाहर बहा जा रहा था। पुखराज की तेजस्वी-सी उन निर्भय आँखों को देखकर वह सोचने लगा—'ज़िन्दगी में न जाने कितनी आँखें जला डालीं, पर ऐसी आँखें नहीं देखीं! उफ!...जलाने लायक नहीं हैं ये आँखें, इन्हें तो सँभालकर रखना चाहिए।'

कितना पत्थरदिल था वो जल्लाद, मगर राजा सम्भाजी की ओर देखकर आज वो भी अपने-आप ही चौंककर दो क़दम पीछे हट गया। वह यूँ पीछे हट ही रहा था कि उसकी पसीने से भीग रही पीठ पर पीछे से एक ज़ोरदार तमाचा लगा। इख़लास ख़ाँ कड़ककर कह रहा था,

https://t.me/Sahityajunction

“नमकहराम। रुक क्यों गया! निकाल दे ये आँखें!”

तमाचे के दर्द ने उस ताबेदार जल्लाद को आगे बढ़ने पर विवश कर दिया, परन्तु आगे बढ़ने से पहले अपने हृदय के भीतर छिपे हुए ‘मनुष्य’ को उसने वहीं भूमि पर पटक दिया। सम्भाजी की आँखों के पास सलाखें वह ले तो आया, मजबूर जो था, परन्तु उसने ख़ुद अपनी आँखें भी मींच लीं। इसी एक क्षण में शिवपुत्र ‘शम्भु’ के नेत्रों के आगे अष्टभुजा कुलदेवी तुलजा भवानी की एक विचित्र-सी आकृति नाच उठी। उस भवानी देवी का मुख था—बड़ी आऊसाहिबा जिजाऊ के समान। उसके सिर पर राजमुकुट था ऐसा जैसा कि आबासाहब पहनते थे। उस देवी के आठ हाथों के स्थान पर कभी सती माँ पुतलाबाई, कभी ‘श्रीसखी’ और आश्चर्य कि कभी-कभी तो राजाराम की माता सीयराबाई भी दिखलाई पड़ रही थीं। सम्भाजी द्वारा बाल्यकाल और युवावस्था में पूजित-वन्दित व्यक्ति प्रतापराव गुजर, मालुसरे काका, मुरारबाजी, कोंडाजी, कृष्णाजी कंक, हम्बीरराव, म्हलोजी बाबा आदि अनगिनत मुख देवी की उँगलियों में उलझे हुए दिखलाई दे गये। कानों में कभी प्रार्थना, कभी जयजयकार के निनाद गूँजने लगे, ‘जय जय रघुबीर समर्थ। उदे उदे ग अम्बाबाई! हर ऽ हर महादेव। या गोंधलासी माये, अम्बे लवकर यावे।’

‘चर्रर्र ऽचर्रर्र।’ जल्लाद ने सलाखें क़ैदी की आँखों में घुसेड़ दीं। घुसेड़ने के बाद वहीं गोल-गोल फिरायीं। सलाखों को उसी तरह घुसा हुआ ही छोड़ दिया और थकावट के मारे उस जल्लाद ने आँखें मींचकर घुटने ज़मीन पर टेक दिये।

तमाशबीन पागल हो उठे, मस्ती और ख़ुशी के मारे हुड़दंग मचाने लगे। “दीऽन, छोड़ दो अब इसे। अब जाने दो इसे औरंगाबाद और बुरहानपुर तक।”

इस दशा में भी महाराज के मन में बार-बार यही सोच-सोचकर टीस उठ रही थी—‘आलमगीर के किसी ईमानदार जल्लाद ने हमारे नाक और कानों में भी कीलें क्यों न ठोंक दीं!!’

‘हमारी नाक पर यह संकट तो न आता कि कुलेश की और अपनी आँखों के जलने की दुर्गन्धि वे सूँघें! न होते ये कान, तो इन बिजूकों का ख़ुशी से उफन रहा हमें खिझानेवाला यह कोलाहल तो न सुनाई देता।’

अब महाराज और कुलेश के चेहरे इतने भयानक दिखाई दे रहे थे कि औरंगज़ेब का कोई कम-उम्र नाती या पोता उन चेहरों को देख पाता, तो डर के मारे दाँत बैठ जाते उसके।

ओह!! कैसे विरूप-कुरूप मुख थे वे भी! सिर पर लकड़ी की ऊँची टोपी, गले में और हाथों में तख़्ते-कुलाह, शरीर पर विदूषकों वाले ख़ून से सने कपड़े, कमर में काँटेवाली बेलों से बँधी हुई और ख़ून में सनी हुई घण्टियाँ, आँखों के जले हुए गढ़े, आँखों से और मुख से बह रही रक्त की धाराएँ, जो सूखकर पपड़ी हो चुकी थीं! कैसे प्रतीत हो रहे थे वे मुख भी? ऐसे रंगबिरंगे, सुन्दर, मोहक भित्तिचित्र थे वे, जो कभी मन को मोहते थे, परन्तु आज धूप और वर्षा की मार से धुल-पुँछ गये थे! पश्चिम दिशा की पहाड़ी के पीछे सूर्य छिप रहा था। इन्द्रायणी और भीमा नदियों का जल संगम में एक-दूसरे से मिल रहा था—टकराकर लहरें उठती थीं, जल फिर आगे बढ़ जाता था।

https://t.me/Sahityajunction

मुग़ल छावनी में शाम की नमाज़ की सूचना देनेवाले नगाड़े बजने लगे और थोड़ी ही देर में सारा वातावरण 'अल्लाहो अकबरऽऽ' की आवाज़ों से भर उठा।

महाराज सम्भाजी और कुलेश अब उस शारीरिक दशा में पहुँच चुके थे, जहाँ पहुँचकर वेदना का अस्तित्व नहीं रहता। महाराज का मन आज एक अभूतपूर्व संवाद में उलझ गया था, मन के भीतर मन की मन से ही चर्चा हो रही थी। बाहर अन्धकार फैल चुका था और जगह-जगह पर मशालें जल उठी थीं। सम्भाजी के अन्तःहृदय में अनेक विचार-ज्योतियाँ सुलग रही थीं—बाह्य जगत् से बहुत दूर। औरंगज़ेब के आदेश के अनुसार सशस्त्र पहरेदार चमचमाती तलवारें ताने जगह-जगह पहरा देते हुए घूम रहे थे—'होशियाऽर!'

आँख और जिह्वा खोये हुए, यही नहीं हाथ-पैर आदि अवयवों सहित जो अब शरीर को भी पीछे छोड़कर बहुत दूर के किसी कोने में जा पहुँचा था, सम्भाजी के उस मन में अब विचारों की विचित्र-सी खलबली मच रही थी। एक तटस्थ व्यक्ति के सामने वे मन-ही-मन देख रहे थे—बचपन से लेकर आज तक के फैले हुए अपने विस्तृत जीवन-काल को।

मन में विचारों की बौछारें-विचारों के बेबस फव्वारे छूटने लगे। उन फव्वारों से निकल रहा था विचारों का ताज़ा नूतन जल। ऐसे विचार कि जो उनके लाड़ले घोड़े 'चन्द्रावत' से भी शुभ्र-वर्ण थे, आँखों से बहुत दूर पहुँच गये तेजःपुंज सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी थे। रायगढ़ के ध्वजदण्ड पर मावल-खण्ड की वायु से लहरा रहे भगवे ध्वज के समान थे। आबासाहब के मुख से समय-समय पर सुने हुए शिव-वचनों का वेश धारण किये हुए थे। समर्थगुरु रामदास के कमण्डलु के पावन जल के समान थे, बड़ी आऊसाहिबा के मुख से सहज रीति से उच्चारित होनेवाले 'जगदम्बे, हे जगदम्बे' नामस्मरण के समान थे। 'श्री' को राज्य की रक्षा एवं उन्नति के लिए जिन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी थी, उन कोंडाजी फर्ज़न्द, तुकोजी पालकर, निलो बल्लाल, हम्बोरराव, म्हालोजी बाबा आदि परमश्रेष्ठ वीरों के रक्त की याद दिलानेवाले विचार इस काल सम्भाजी के मन में बारम्बार आ रहे थे।

अब उनके भीतरी नेत्र देख रहे थे विस्तृत मराठा भूमि में आनेवाली तीन ऋतुओं के सुन्दर-सुहावने दृश्य कि जो उन्होंने अनेक अभियानों के समय देखे थे—रायगढ़ की वर्षाऋतु की वह सुहावनी शाम, तटों को फोड़कर बह निकलनेवाले कुशावर्त सरोवर और गंगासागर सरोवर, जलधाराओं में भीगती हुई दो मीनारें, जगदीश्वर का मन्दिर, उपरिकोट, व्यापारी-हाट, मन्त्री-बाड़ी, हिरकणी, बुर्ज़, भवानी-कगार, टकमक पर्वत-नोक। सातमहल, सिंहासन, राजसभागृह—इन सब भवन स्थानादि सहित वर्षा की झड़ियों में नहा रहा वह रायगढ़ दुर्ग! रायगढ़ के पर्वतीय मार्ग से उतरते समय आस-पास के करौंदों के झुरमुटों में तथा अंजनी, रामेटी की घनी पहाड़ी, झाड़ियों में छिपकर बोलनेवाले झींगुरों की झनकार; रायगढ़ के हौज़ और कुओं में टर्रानेवाले मेढकों की ध्वनि, जो वर्षा की धाराओं में खो जाती थी; पाचाड़ की हवेली, जो अन्य ऋतुओं में मावलमाची से नीचे घाटी में साफ दिखलाई देती थी, परन्तु वर्षाऋतु में जो पानी की बौछारों के कारण धुँधली दिखलाई देती थी, रायगढ़ के वे प्रहरी, जो वर्षा की परवाह न करके हर चौकी और बुर्ज़ पर निरन्तर जागरूक बने पहरा देते थे, रायगढ़ के पर्वत से उछलते-कूदते हुए नीचे घाटी में कूदनेवाले अनेक छोटी-बड़े जलप्रपात, रायगढ़ की तलभूमि में बहनेवाली काल और गाँधारी नामक टेढ़ी-मेढ़ी नदियाँ, जो वर्षाऋतु में अपने पाट को छोड़कर पानी को दोनों किनारों पर दूर-

https://t.me/Sahityajunction

दूर तक फैला देती थीं। समतल भूमि की वर्षाऋतु और पर्वतीय प्रदेश की वर्षा-ऋतु में कितना अन्तर है, उसे तो रायगढ़ की वर्षाऋतु में देखकर ही समझा जा सकता है।

शीत काल में मावल-खण्ड के पर्वतीय दुर्गों का रूप भी क्या ही अनोखा होता है! सारे ऊँचे दुर्गों का प्यार से आलिंगन करनेवाला वह घना कोहरा, दिन चढ़े परकोटे के पत्थरों पर जमनेवाली वे थरथरा रही ओस की बूँदें, दुर्गों, के नक्कारख़ानों के नीचे कहीं पर तापने के लिए बनाये गये अलावों में सुलगती धुँधुआती हुई वे आम और बबूल की लकड़ी की गाँठें, घुड़सालों में बँधे हुए घोड़ों के मुखों से जाड़े के कारण निकलनेवाली वह भाप, चाहे सर्दी से ठिठुरते हुए हों, फिर भी दूर-दूर से आवश्यक समाचार लानेवाले बहिर्जी और विश्वास जैसे विश्वासपात्र गुप्तचर, बरार से लेकर ख़ानदेश और दक्षिण में गोवा तक 'चन्द्रावत' के पीछे-पीछे घुड़दौड़ लगानेवाले हज़ारों मावले घुड़सवार, जिन्होंने मावल-खण्ड की बदन काटती हुई सर्द हवाओं की कभी चिन्ता नहीं की और...रायगढ़ में निवास करते समय स्वयं 'श्रीसखी' द्वारा दिया जानेवाला कुलथी की गरम-गरम कढ़ी से भरा वह कटोरा!

ग्रीष्म ऋतु के आते ही पर्वतीय दुर्गों की तलहटी की भूमि में कृषकगण धान के खेतों में सूखे पत्ते और घास-फूँस जलाते थे, ताकि मिट्टी गर्म हो जाय और बरसात आते ही धान की बोआई की जा सके। आम, बड़, पीपल और इमली के विशाल वृक्षों की छाया में जुगाली करते हुए विश्राम कर रहे वे प्यासे और थके मवेशी, पचास कोस की लम्बी दौड़ लगाकर पड़ाव पर आते ही पानी के घाट की ओर भागनेवाले झाग से भरे मुँहवाले घोड़े, तेज़ गर्मी के साथ-साथ भट्ठी की आग से उलझनेवाले, हथियार बनानेवाले, माथे पर आये पसीने को तर्जनी से पोंछकर दूर फेंकनेवाले और फिर काम में जूझनेवाले वे लुहार, घूमती हुई सान पर हथियारों को माँजकर तेज़ करनेवाले वे सिकलीगर, अस्तबलों के सामने घोड़ों की उखड़ी हुई नाल को निकालकर खुरों को छीलकर फिर दृढ़ नाल बिठाने वाले वे नालबन्द, राज्यभर में हमारे पीछे-पीछे मन्दिरों में प्रविष्ट होनेवाले वे हमारे सशस्त्र सैनिक जो देवमन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व बाहर ही अपने पैरों को पटक-पटककर मिट्टी झाड़ लेते थे, आज याद आ रहे हैं वे सब!

मिट्टी! हाँ, मिट्टी ही तो वह अनमोल वस्तु है, जो बचपन में दूध पिलाकर पालती-पोसती है, युवावस्था में रोटी-पानी देती है। शरीर के इस पिण्ड को वही तो बनाती-सँवारती है! आख़िर हमारा मिट्टी से क्या नाता है? राजा के, सेनापति के अथवा शस्त्रधारी के रूप में नहीं, एक 'मनुष्य' के नाते हमारा इस मिट्टी से कैसा नाता है? क्याऽ? मनुष्य का मिट्टी से नाता? हाँ, हाँ, मनुष्य का मिट्टी से ही तो नाता है। इस 'मिट्टी में मिलकर' मिट जानेवाले अनेक हैं, परन्तु 'मिट्टी के लिए' मर जानेवाले विरले ही हुआ करते हैं!! क्या हमें भी यह सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा?

'जगदम्बे, हे जगदम्बे!' गला सूख आने के कारण उन्होंने मन ही में मन्त्र का पाठ किया। सूखे गले को गीला बनाने का प्रयत्न किया, तो पानी की बूँदें थीं ही कहाँ! कुछ ख़ून की बूँदें ही गले के नीचे उतर पड़ीं।

ठीक इसी समय औरंगज़ेब नमाज़ पढ़कर अपने शाही डेरे में लौटा था और वहाँ इख़लास ख़ाँ से सज़ा का विस्तृत विवरण सुन रहा था। आज शायद जीवन में यह पहला अवसर था कि औरंगज़ेब इस बुढ़ापे में भी बेचैन होकर इतनी जल्दी-जल्दी इधर-उधर चक्कर लगा रहा था। इख़लास ख़ाँ उसकी बेचैनी और खलबली को देखकर बुरी तरह सकपका रहा था। सोचता था—

https://t.me/Sahityajunction

कहीं हज़रत हम पर नाराज हो जाएँ, तो जाने क्या कर दें?'

परन्तु औरंगज़ेब की बेचैन चहलक़दमी का कारण कुछ दूसरा ही था। वह कभी चलते-चलते बीच में ही रुक जाता था और डेरे की छत की ओर देखने लगता था। "कुछ नहीं चीख़ा-चिल्लाया क़ाफ़िर इतनी सज़ा दिये जाने पर भी?" उसने इख़लास ख़ाँ से यों पूछा, जैसे ख़ुद से ही सवाल पूछ रहा हो।

"जी हाँ, जहाँपनाह, बिलकुल सही बात है।" इख़लास ख़ाँ ने जैसे-तैसे जवाब दिया।

इस बात को सुनकर हिन्दुस्तान का वो बादशाह एक बात सोचकर तो बेहद बेचैन हो उठा—'अगर इस जगह हमारा बाग़ी शहज़ादा अकबर होता तो? और उस पर ऐसी सजा भोगने की नौबत आती तो?'

ख़यालों में खोया हुआ बादशाह यह भी भूल गया कि इख़लास ख़ाँ जाने की इजाज़त पाने के लिए खड़ा है। उसकी खुली हुई आँखों के आगे से इस समय उसकी सारी ज़िन्दगी सरकती-खिसकती जा रही थी—शुरुआत थी वहाँ से जबकि वह दक्खिन के शहज़ादे के रूप में दक्खिन से चला था उत्तर की ओर और अपने बाप को क़ैद करने के बाद राजस्थान, बंगाल, बीजापुर और गोलकुण्डा की ख़ाक छानता हुआ अन्त में मराठा राज्य में आ पहुँचा था। 'काश! हमारे भी एक औलाद होती 'सम्भा' की जैसी? तो हम इतनी बड़ी सल्तनत का बोझ उसके कन्धे पर डाल देते और बुढ़ापे की ये ज़िन्दगी तसल्ली से गुज़ारते। हज़रत पैगम्बर की ख़िदमत में चन्द दिन गुज़ारते!' लगभग सारे हिन्दुस्तान पर उसकी हुक़ूमत चल रही थी, फिर भी बूढ़ा औरंगज़ेब आज एक विचित्र-सी हृदयविदारक व्याकुलता में खोया-खोया घूम रहा था। इसी ख़याल से ज्योंही वह बाहर निकला और उसने इख़लास ख़ाँ को वहाँ खड़ा देखा, तो बड़ी ज़ोर से चिल्ला उठा, "चले जाऽओ ऽ!"

छावनी में कहीं पर मुर्गे ने पहली बाँग दी और फिर बाँगों का सिलसिला-सा शुरू हो गया। अब महाराजा सम्भाजी और कवि कुलेश मुर्गों की बाँग होने से ही जान पाते थे कि सुबह हो गयी है। तेज़ धूप की जलन उन्हें दोपहर होने का ज्ञान करा जाती थी और नमाज के लिए बजनेवाले नगाड़ों से वे शाम होने का अनुमान कर लेते थे। उनकी अँतड़ियों की भूख को समस्त शारीरिक पीड़ाओं ने शान्त कर डाला था।

पौ फटी और कुछ ही देर में पूर्व दिशा की ओर से आनेवाली उष्ण किरणें बन्दियों के शरीरों को छूने लगीं। आज यह उष्णता उन्हें बहुत भिन्न-सी प्रतीत हुई। जिस प्रकार नदी के जल में कलसी को उलटा दबाया जाय तो भी वह कलसी एकदम ऊपर की ओर उछल आती है, इसी प्रकार सम्भाजी के मन में आज जिजाऊ, सती माँ, श्रीसखी, धाराऊ, दुर्गाबाई, भवानीबाई आदि अपने परिवार की सभी बड़ी-छोटी पूज्य महिलाओं की स्मृति आने लगी। इस स्मृति में दो बार गहरी टीस भी उठी, जब मिट्टी की गगरी के समान दो भिन्न स्मृतियाँ भी उछलकर ऊपर आ गयीं। एक थी गोदावरी की स्मृति, दूसरी स्मृति थी राजाराम की माता सोयराबाई की।

बड़ी आऊसाहिबा जिजाऊ! कौन थीं वे? वे नारी नहीं थीं—शिवरात्रि के प्रभातकाल में साक्षात् जगदम्बा को आया हुआ एक मधुर स्वप्न थीं वे। उस स्वप्न ने जन्म दिया था एक साक्षात्

https://t.me/Sahityajunction

सत्य को आबासाहब के रूप में। और हम क्या हैं? हमें उस स्वप्न और सत्य की छाया बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हो पाएगा क्या? आज हमारे स्थान पर यदि बड़ी आऊसाहिबा के दुलारे और हमारे प्यारे आबासाहब होते, तो क्या होता? कैसा आचरण करते वेऽऽ?

एक विचित्र-सी सुरसुराहट महाराज के मेरुदण्ड में ऊपर से नीचे तक दौड़ गयी। पेट में अनाज का एक दाना न था, लहूलुहान मुख की चमड़ी चटक गयी थी। फिर भी आबासाहब के स्मरण मात्र से उनकी ग्रीवा गर्व से तन गयी। उन्होंने मन-ही-मन आबासाहब की तथा आऊसाहिबा की समाधियों के चरणों में प्रणाम किया। हमारे अपने सम्बन्धियों ने और अन्य अनेकों ने विद्रोह कर दिया—हमें धोखा दे गये वे अपना कहलानेवाले। आबासाहब, हमें शक्ति दो कि हमारे शरीर के ये अवयव और तुम्हारे प्यार-दुलार से पाला-पोसा गया मन कहीं इस अन्त समय हमें धोखा न दे जाय।

महाराज ने अपनी जन्मदात्री जननी के मुख को याद करने का बहुत प्रयत्न किया। बार-बार याद करने पर भी वह जन्मदात्री न आयी, परन्तु उसके स्थान पर आ गया धाराऊ का चेहरा। धाराऊ वह कुनबी हृदय जिसे वात्सल्य और निष्काम प्रेम कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। अपनी कोख के जाये रायाजी, अन्तोजी पर उसने इतना प्यार नहीं लुटाया होगा, जितना हमें दे डाला है। कौन थी भला धाराऊ हमारे जीवन में? वह थी चंगेरी, हल्दी-रोली की चंगेरी, जिसे साक्षात् जगदम्बा ने ही जिजाऊ साहिबा को दिया था। उस कुनबी देहातिन ने कितनी निर्व्याज स्नेहरूपी 'हल्दी-रोली' उछाली थी हम पर।

हमारी सती माँ पुतलाबाई! आषाढ़ी एकादशी दिन होता है व्रत करने का, उपवास रखने का! उस सती माँ ने इसी एकादशी के दिन चिता की अग्नि का भक्षण करके अपने जीवनभर का उपवास तोड़ा था! आबासाहब से अन्यों ने बहुत कुछ माँगा-पाया, परन्तु इस सती माँ ने क्या पाया? चिता में भस्म होते समय पायीं आबासाहब की चरण-पादुकाएँ। रायगढ़ ने न जाने कितनों को प्राण त्यागते देखा होगा, परन्तु 'सती' होने का सर्वप्रथम पद पाया इन्हीं माँजी ने! अग्नि-ज्वालाओं से जब देह कर्पूर-सी जलती होगी, तो कैसा अनुभव किया होगा उन्होंने? उनकी चिता में आग देते समय उन्होंने हमसे जो धैर्यपूर्ण वाक्य कहे थे, आज भी वे कानों में गूँज रहे हैं—'कभी ऐसा अवसर आ ही पड़ा, तो हमारा यह रूप ध्यान रखना। पुत्र हो तुम हमारे!'

इन शब्दों की याद आते ही महाराज का मन व्याकुल-विह्वल हो उठा। 'माँजी माँजी! हमने तुम्हारे रूप का ही स्मरण नहीं रखा है, आज इस काल हम तुम्हारे उसी रूप को साकार कर दिखा रहे हैं। तुम सती हुई थीं—आबासाहब के लिए, हम भी 'सती' हो रहे हैं! हाँ, पुरुष होकर भी सती हो रहे हैं...इस मावल देश की धूलि को मस्तक पर लगाकर तुम्हें आग देने के लिए वहाँ हम तो थे तुम्हारे अपने, परन्तु हमारे आस-पास कौन है? औरंगज़ेब के टुकड़ों के भूखे कुछ लाचार शरीर! तुम्हारी स्मृति के रूप में रायगढ़ में 'सती का चौरा' तो हमने बनवाया, परन्तु क्या हमारे जाने के बाद मराठों की यह भूमि हमें याद करेगी कभी? कभी हमारे लोग भी हमें भूले-भटके याद किया करेंगे?

'तुम कभी भी हमें परायी नहीं लगीं। क्यों? और राजाराम की माँ हमें कभी अपनी माँ नहीं लगी, क्यों? सच है, यदि हम और राजाराम तुम्हारी कोख से पैदा होते, तो मराठा-साम्राज्य के कितने ही विवाद स्वयं समाप्त हो जाते! हमें राजाराम की माता ने कभी अपना नहीं माना। क्यों

https://t.me/Sahityajunction

हुआ ऐसा? क्या राजगद्दी के लिए? परन्तु, यदि राजगद्दी के लिए ही यह झगड़ा-बखेड़ा होता, तो फिर राजाराम और औरंगज़ेब के बाग़ी शहज़ादे अकबर में क्या अन्तर होता? क्या बनकर आयी थीं माँ सोयराबाई हमारे जीवन में? विष खाकर उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। आज यदि वे जीवित होतीं, और हमें इस दशा में देख पातीं, तो? विश्वास है कि वे हमें भी पुत्र राजाराम के समान प्यार से अपनी गोद में ले लेतीं।

'हमारे जीवन की सबसे भूल-चूक भरी कहानी है दुर्गाबाई की! हमने नाम रखा था उनका 'दुर्गाबाई' परन्तु 'दुर्ग' में तो हम रख न पाये। बेचारी को जीवन भर 'काल कोठरी' में रहना पड़ा। और कालकोठरी भी किसकी? औरंगज़ेब की!

'जीवन में सूझ-बूझ से, सोच-समझकर जो कुछ किया, उसके लिए हमें कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ा। कभी पीड़ा-व्यथा नहीं हुई उन कामों की, परन्तु दुर्गा! तुम्हारी स्मृति के मन में आते ही टीस मार जाती है। हृदय टूक-टूक हो उठता है! छत्रपति की रानी होकर भी तुम कोठरी में पड़ी छीजती रही हो, बच्चे ऊधो सिंह और मदनसिंह को साथ लेकर! और हमारी राणूदीदी? साथ आयी थीं हमारे, हमारी रक्षा के लिए! वे ससुराल से आयी थीं नैहर में चार दिन बिताने। कैसा नैहर पाया उन्होंने भी! आबासाहब की पुत्री होते हुए भी औरंगज़ेब की कोठरी में बन्द होना पड़ा उन्हें? दीदी, तुम्हारी मुक्ति के लिए हमने बहुत हाथ-पैर चलाये।...परन्तु ओह! आबासाहब और हम आगरा की पकड़ से छूट निकले परन्तु तुम्हें नहीं छुड़वा सके हम। छिः-छिः, कैसा रहा ये हमारा जीवन भी! कहते हैं—राजा भूमि का उपभोग शून्य स्वामी होता है—होगा। परन्तु तुम दोनों, सती माँजी, हमारी श्रीसखी आदि राजस्त्रियाँ कौन हैं? हमने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उत्तर आज भी मिल नहीं पाया।

'और...और लिंगाणा दुर्ग के पहाड़ी कगार से खाई में कूद जानेवाली गोदावरी! कौन थी वह? हमारे जीवन में जाने कहाँ से आ पड़ी वह और जीवन भर की कसक दे गयी। ठीक ऐसे, जैसे ऊँचे गगन के मेघों के बीच चमकती हुई चपला अकस्मात् कहीं भूमि पर गिर पड़े और उसका हृदय फाड़ दे। लिंगाणा दुर्ग की तलहटी में स्वयं आबासाहब ने उसका 'सती का चौरा' बनवाया। हमने अण्णाजी को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया, फिर भी इस आदेश के कारण हम कभी दुखी नहीं हुए। परन्तु व्यर्थ ही मारी गयी गोदावरी की मृत्यु हमारे हृदय में शल्य बनकर आज भी चुभ रही है। हृदय-सरिता के दोनों तटों को काटती-तोड़ती है।

'और हमारी श्रीसखी का मुखमण्डल याद आते ही एक कान्तिमयी ज्योत्स्नालता ही नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित होती है। हमसे उनका पत्नी का नाता है, सो तो ठीक, परन्तु श्रीसखी आबासाहब की सुपुत्री ही प्रतीत होती है। हम नहीं जानते कि ऐसा क्यों प्रतीत होता था हमें, परन्तु उन्हें देखते ही हमें बड़ी आऊसाहिबा की स्मृति जाग उठती थी। कैसी घोर यातना भोग रही होंगी वे इस समय? वे सदा कहती थीं—हमने जंगल की तूफ़ानी हवाओं से नाता जोड़ लिया है।

'सोचते हैं—हमारे बाद वे क्या करेंगी—कैसा आचरण होगा उनका? वाह, गणोजी और कान्होजी शिर्के! इन दो भाइयों ने अपनी बहन के आँचल में 'भैया-दूज' की कैसी अनोखी भेंट दी है! खुल्दाबाद की कोठरी में पड़ी हुई दुर्गा को याद करके मन अनुभव करता है अपराधी होने का, परन्तु रायगढ़ की श्रीसखी की याद आते ही मन उनके ऋण के बोझ से दब जाता है! भरपूर

https://t.me/Sahityajunction

दिया है उन्होंने, हम ऋणी हैं उनके। येसू! हमने गांगोली में तुम्हें मछली की आकृति वाली अँगूठी दी थी। उस समय हमें क्या पता था कि हमारे जाने के बाद तुम्हें जलबिन मछली बनकर छटपटाना पड़ेगा?

'हुँः!' पत्नी की स्मृतियों का इतना तीव्र प्रवाह उठा कि उन्होंने गरदन झटक दी।

उनके सामने ही इन्द्रायणी और भीमा नदियाँ गलबाँही डालकर धूप पीती हुई, चमचमाती हुई भागी जा रही थीं। सूर्य ऐन सिर पर आ चुका था—और तेज़ किरणें बरसा रहा था!!

जैसे घोड़ों का दल दूर कहीं से निकट आता जा रहा हो और उनके टापों की धीमी आवाज़ धीरे-धीरे तेज़ होती जाती हो, उसी प्रकार अब 'शम्भु' के मन में अपने अष्टप्रधान मण्डल के मन्त्री तथा युद्ध में काम आये हुए अपने अनेक स्वर्गवासी वीर सरदारों की स्मृतियाँ भूतकाल से उठ-उठकर मन्द से प्रबलतर होने लगीं।

मोरोपन्त! जीवन के अन्तकाल में भ्रान्त हो गये थे वे, परन्तु उस अवस्था में भी उन्होंने 'पेशवा' पद की मुद्रा और सिक्के की डिबिया तथा सोने की एक मोतीवाली बाली अपने तकिये के नीचे से निकालकर अपने पुत्र नीलोपन्त को दी थी। भला मोरोपन्त धूर्त अण्णाजी तथा महारानी सोयराबाई के जाल में कैसे उलझ गये? कोई दे सकता है इस प्रश्न का उत्तर? प्रथम पेशवा शामराज ने किसी जागीरदार को क़र्ज़ देकर उसकी अदायगी के बदले में उस क़र्ज़दार की जागीर ही निगल ली। इस नियम-भंग के दण्डस्वरूप आबासाहब ने उन्हें पेशवा-पद से च्युत कर दिया था। यदि पेशवा मोरोपन्त ने आबासाहब के सामने भी वैसा ही व्यवहार किया होता, जैसाकि उन्होंने हमारे विरुद्ध किया था, तो आबासाहब मोरोपन्त को कौन-सा दण्ड देते? सोचते हैं हम आज यह! कौन उत्तर दे सकेगा इस प्रश्न का भी? मोरोपन्त की बात तो दूर, क्या हम स्वयं ही भ्रमवश दिलेर ख़ाँ से नहीं जा मिले थे? क्यों हुआ ऐसा? क्या हम भी अपने इस प्रश्न का उत्तर स्वयं दे सकते हैं? अथवा फिर क्या यही सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे अन्धकारमय क्षण अवश्य आते ही हैं! हाँ, अवश्य यही सत्य है, अन्यथा इतने चतुर एवं दूरदर्शी हमारे आबासाहब ने भी औरंगज़ेब से मिलने के लिए आगरा जाने का निर्णय कैसे कर लिया।

हमें रह-रहकर आबासाहब की याद आती है। क्या हमारे पेशवा निलोपन्त को भी इसी प्रकार अपने पिता की स्मृति न आती होगी? परन्तु उन्होंने अपने पिता मोरोपन्त का किंचित् नामोल्लेख भी कभी हमारे सम्मुख नहीं किया। क्यों? अथवा फिर क्या यही सत्य है कि कन्धों पर उत्तरदायित्व के आ पड़ते ही मनुष्य को अपने नाते-रिश्ते भुला देने पड़ते हैं? मोरोपन्त! हमने तुम्हारी कोठी पर पहरे बैठाये थे, पर हम ही जानते हैं कि ऐसा आदेश देते समय हमारे दिल पर क्या बीती थी! जैसे दायें हाथ ने बायें हाथ को काट फेंका था। उफ्—ऐसी नौबत तो औरंगज़ेब पर कभी न आये। हमने मोरोपन्त के स्थान पर पेशवा पद उनके ही पुत्र निलोपन्त को दे दिया था—परन्तु इतना होते हुए भी मोरोपन्त की घटना के कारण हृदय में जो घाव हुए थे, वे आज भी हरे हैं।

मोरोपन्त! हमारा मावल-खण्ड की मिट्टी से उपजा यह मन आज भी तड़प रहा है कि तुमसे, आबासाहब और गोदावरी से सच्चे हृदय से क्षमा माँग ले, परन्तु अरे! तुम...तुम सब लोग हाथ

https://t.me/Sahityajunction

हिला-हिलाकर हमें क्षमा माँगने से मना क्यों कर रहे हो? क्यों, क्यों? बोलो, बताओ!

महाराज सम्भाजी ने बड़ी ज़ोर से गरदन झटक दी। कुछ पसीने की बूँदें, जो मुख पर जमी हुई ख़ून की बूँदों में अटक गयी थीं, इस झटके के कारण नीचे ढुलक पड़ीं। कुछ इधर, कुछ उधर।

अब सम्भाजी की आँखों के आगे, आँखों के नहीं जमे हुए ख़ून के दो गढ़ों के आगे आ उपस्थित हुए अण्णाजी! अण्णाजी...अण्णाजी इस व्यक्ति से कौन से जनम का लेना-देना था हमारा? इस अण्णाजी ने आबासाहब के समय लगानबन्दी का काम कितनी कुशलता से किया था! वे अण्णाजी ही हमारा गला घोंटने आगे बढ़ आये। कैसे सूझा उन्हें ऐसा? अण्णाजी, गोदावरी, माँ सोयराबाई—ये कैसा तिकोना अड़ंगा था, जो हरदम हमारे पाँवों में उलझता रहा? कभी-कभी मन करता है कि गोदावरी से क्षमा माँग लें, परन्तु, अण्णाजी से अथवा माँ सोयराबाई से क्षमा माँगने की बात को आज भी मन लौटा देता है। क्यों होता है कभी ऐसा?

और गोवा की समुद्री खाड़ी में बहे जा रहे हमारे घोड़े को प्राणों को दाँव पर चढ़ाकर भी हमारे प्राणों की रखवाली करनेवाले खण्डोजी के पिता बालाजी, आबासाहब के निष्ठावान चिटनीस! क़लम के धनी बालाजी! लेखनी, जो तीक्ष्णतम शस्त्रों से भी अधिक प्रभावशाली शस्त्र है! बालाजी माँ सोयराबाई के फन्दे में फँस गये और उन्होंने वह लेखनी-रूपी शस्त्र हम पर ही चला दिया। परन्तु पुत्र खण्डोजी ने हमारे सामने कभी अपने पिता का नाम भी नहीं लिया! बालाजी ने अपने हाथ से वह पत्र लिखा था, जिसमें हमारे प्राणों से प्यारे इस मावलदेश का भाग शहज़ादा अकबर को देने की बात लिखी थी। कैसे लिख पायी उनकी लेखनी ऐसा कूटमन्त्र? यदि शहज़ादा अकबर बालाजी द्वारा लिखे गये वे दो पत्र हमारे पास न भिजवा देता, तो क्या होता? माँ सोयराबाई ने हमें पन्हालगढ़ में विष देने का जो षड्यन्त्र रचा था, वह यदि सफल हो जाता तो क्या होता? तो...इतना अवश्य होता कि हमारी ये चन्द अन्तिम साँसें इतनी वेदनामय न होतीं! परन्तु नहीं...ये वेदनाएँ कहाँ हैं? पहुँची, कण्ठा और चौकड़े के समान आभूषण प्रतीत हो रही हैं हमें ये वेदनाएँ आज! क्यों लग रहा है ऐसा?

अण्णाजी, बालाजी, हिरोजी और शामजी को हमने हाथी के पाँवों तले रौंदवा डाला। कैसा लगा होगा उन्हें उस समय? दुःख? असह्य पीड़ा? अपार यातना? नहीं-नहीं, हमें वृत्तान्त मिला था कि पहाड़ से हाथी का बोझ शरीर पर था उनके, परन्तु वे शान्त थे। ठीक ही तो है, जो काम पूर्ण निश्चय और संकल्प के बाद किया गया हो, उस कार्य को करके निराश नहीं होते कभी सच्चे शूरवीर। जो अन्धकारमय घड़ियाँ कभी उनके सामने आयी थीं, वैसे ही अँधेरे क्षण आज हमारे सामने क्योंकर आ धमके? परन्तु वे अन्धकारमय क्षण भी उज्ज्वल होना क्यों चाहते हैं? हमारे ये बँधे हुए हाथ उठकर उन क्षणों को अनुमति क्यों देना चाह रहे हैं?

सारे शरीर को हिलाकर महाराज सम्भाजी ने अपने दो हाथों को झटका देकर उठाना चाहा, परन्तु हुआ इतना ही कि उनकी कलाइयों में तख़्ते-कुलाह की लकड़ी ज़ोर से घुस गयी।

निरुपाय होकर महाराज का शरीर स्थिर ही रहा, परन्तु मन अपने पंख फड़फड़ाता रहा। उस फड़फड़ाहट से ध्वनियाँ निकल रही थीं...प्रह्लादपन्त-न्यायाधीश। उनसे पहली बार भूल हुई थी, फिर भी हमने उन्हें न्यायाधीश पद दुबारा सौंपा था। उस समय उनसे कहा था राज्य में पर्वत-शिखरों के समान उच्च स्थान है न्यायाधीश का!

https://t.me/Sahityajunction

झंझावात से झाड़-झंखाड़ हिलने-डुलने लगें, यही नहीं उखड़कर गिर पड़ें, यह तो स्वाभाविक ही है। परन्तु यदि पर्वत-शिखर ही अपनी नींवसहित हिलने लगें, तो क्या होगा? जब औरंगजेब हमारे राज्य को मिट्टी में मिलाने का अन्तिम निर्णय करके आया था, ऐसे कठिनतम समय में स्वयं न्यायाधीश शिर्केवंशीय जनों से हाथ मिलाने लगे! कैसी विचित्र बात है यह? उनके इस कुचक्र के कारण हमें उन्हें बन्दी बनाने का आदेश देना पड़ा। और...आज तो यह अवस्था आ पड़ी है कि हम अपराधी बने हुए हैं और औरंगजेब हमारा 'न्यायाधीश' बना हुआ है? अन्ततः क्या यही वास्तविक सत्य है कि समय और भाग्य ही प्रत्येक व्यक्ति का 'न्यायाधीश' हुआ करते हैं? आज भी हमें बारम्बार ऐसा क्यों अनुभव होता है कि औरंगजेब ने हमारे साथ अन्याय नहीं किया, अपितु न्याय ही किया है? वह दण्ड से भी भिन्न एक दण्ड दे सकता था...वही जो उसने नेताजी पालकर को दिया था कि उसे दिल्ली के चाँदनी चौक में ले जाकर नेताजी पालकर से मुहम्मद कुली ख़ाँ बना दिया था। अवश्य ही औरंगज़ेब ने वह बात भी सोची होगी, अन्यथा वह हमारे सामने ही रुहुल्ला ख़ाँ को फटकारकर क्यों कहता—'ये नहीं पढ़ेगा नमाज़ कभी।'

औरंगज़ेब! यदि हम पर ऐसी नौबत आती, तो हम भी अवश्य पढ़ लेते नमाज़ परन्तु तेरी तरह नहीं। तूने इस्लाम को ढाल बनाकर हमेशा अपनी राज्य-लालसा पूरी की है। हम इस्लाम धर्म को स्वीकार न करके भी नमाज़ पढ़ लेते! केवल एक ही उद्देश्य से कि उस अल्लाहताला से दुआ माँगें कि—'ऐ परवरदिगार, रहम कर उस पर कि जिसने अपने बाप और भाइयों को भी बुरी मौत मारा है! रहम कर उस पर कि जिसने अपनी बेटी को ही क़ैद में डाल रखा है। लाखों भूखे-लाचार हिन्दुओं को मौत के घाट उतारनेवाले, शरणागत को भी मुसलमान बनानेवाले, शक्तिशाली विरोधियों को 'मनसब' का लोभ दिखलाकर लाचार बनानेवाले इस औरंगज़ेब को, ऐ ख़ुदा, तू एक बार तो माफ़ कर दे और दिखला दे कि तू 'रहीम' है।'

दिन और रात गलबाँही डाले हुए अपने अटूट नाते के साथ एक-एक पग आगे बढ़ाते जा रहे थे और उधर महाराज और कुलेश के मन भी अब सिमटकर एक ही विचार में एकाग्र हो गये थे। एक ही विचार पर केन्द्रित हो रहे थे उनके चित्त—'जीवन धन्य हो गया अपना। प्राणों की मिट्टी कंचन बन गयी।'

सारी छावनी में इन दिनों एक विचित्र-सा वातावरण बन गया था। विचित्र विचारों के पाश ने वातावरण को घेर लिया था। जीभ और आँख खोये हुए बन्दी एक दूसरे के विषय में सोच रहे थे। उनके मन में यदि कभी कोई चिन्ता आती भी थी तो केवल यही कि 'महारानी अकेली हैं वहाँ। राज्य का विस्तार दूर-दूर तक फैला पड़ा है, कैसे धीरज बँधाएँगी वे प्रजा को? कैसे दृढ़ बना पाएँगी वे अपने मन को? कौन-कौन होंगे वे अपने, जो उनका साथ देंगे?'

मुग़ल छावनी में दूसरी ओर था औरंगज़ेब, जो तसबीह फिराते-फिराते कभी तो क़ैदियों के बारे में सोचता था, तो कभी 'शीवा' के मुलक को कैसे नेस्तनाबूद किया जाय, इस बारे में सोचता था। खेमे में ही कभी छत की ओर देखते हुए, कभी यूँ ही वह चहलकदमी करता रहता था। उनकी बेटी ज़ीनतुन्निसा उसे बीच-बीच में खस मिलाया हुआ नीबू का शरबत देती जाती थी और बड़ी हिम्मत करके पूछती थी, "कैसी तबीयत है अब अब्बाजान?" सच बात तो यह थी कि

https://t.me/Sahityajunction

उसके अब्बाजान ने क़ैदियों को जो सख़्त सज़ा दी थी, उसके कारण उस स्त्री का कोमल मन भी रह-रहकर टीस उठता था।

औरंगज़ेब भी चिन्तित था—'हमारे बाद कौन सँभालेगा ये हिन्दुस्तान की सल्तनत?' वास्तव में साम, दाम, दण्ड और भेद का सहारा लेकर किसी राज्य की स्थापना अथवा विस्तार करना सरल है, परन्तु उसकी सुरक्षा के लिए प्राणों का उलझाव बहुत कष्टदायी होता है?

छावनी में जितने सरदार और सिपाही थे, वे भी दबी ज़बान से, कानाफूसी करते हुए तीन लोगों के बारे में ही चर्चा करते थे—दो क़ैदी और एक शहंशाह। उस समय वह फ़ौजी छावनी नहीं थी—वह तो था एक विशाल जाल, जिसमें संशय और भयात्मक विचारों की उलझनें ही उलझनें बनी हुई थीं।

नौवाँ दिन उदित हो चुका था। क़ैदियों की जितनी दुर्दशा की गयी थी, उतनी भी शायद काफी नहीं थी। इसीलिए ताबेदार इख़लास ख़ाँ जल्लादों की नयी टोली लेकर वहाँ आ धमका!!

जल्लादों ने क़ैदियों के बदन पर विदूषकों वाले रहे-सहे कुरते भी खींच-खींच कर फाड़ डाले। अब बदन पर शेष रहे कुछ दो-चार चीथड़े, जो तख़्ते-कुलाह और लोहे की जंजीरों में अटकने के कारण बच रहे थे।

"देखते क्या हो? खाल छील दो इनकी और फिर फेंक दो इन कुत्तों पर नमक का पानी।" हबशी-जल्लाद भी भौचक्के हुए बौराये से खड़े हुए थे और इख़लास ख़ाँ चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें हुक्म दे रहा था।

हाथ में बड़े-बड़े छुरे लेकर जल्लाद आगे बढ़े और जैसा कोई कद्दूकश पर खोपरा रेतता हो, इस तरह वे जगह-जगह से दोनों क़ैदियों के शरीर की खाल छीलने लगे। अब तो जल्लाद भी हैरान हो रहे थे, क्योंकि बदन की खाल खींचने पर भी दोनों क़ैदियों के मुख से एक आह भी नहीं निकल रही थी। इन्हीं जल्लादों ने आज तक जाने कितने क़ैदियों की खाल छील डाली थी और उन क़ैदियों की छटपटाहट और चीखों को सुन-सुनकर जल्लादों का जोश हमेशा दुगना हो उठता था, परन्तु आज का तो माजरा ही निराला था। वे भौचक होकर यह ताज्जुब देख रहे थे। आज छुरे से खींचते-छीलते हुए उनके ही हाथों में कँपकँपी छूट रही थी।

महाराज और कुलेश के शरीर अब दो मानव-शरीर नहीं प्रतीत होते थे, वे तो बन गयी थीं हनुमान की दो मूर्तियाँ, ऐसी मूर्तियाँ, जिनके शरीर पर हनुमान-जयन्ती के दिन सिन्दूर का लेप चढ़ा दिया गया हो।

छुरेवाले जल्लाद अपना काम करके पीछे हट गये। अब आगे बढ़े वे हबशी, जिनके हाथों में ताँबे की चौड़ी चिलमचियाँ थीं। इनमें भरा था नमक का पानी। जैसे बढ़ई गाड़ी के पहिये पर हाल चढ़ाते समय गर्म हाल पर चारों ओर पानी छिड़कता है, यों उन हबशियों ने राजा सम्भाजी और कुलेश के उस छीले गये, घायल लहूलुहान शरीर पर नमक का पानी छिड़कना शुरू कर दिया। बढ़ई के गर्म हाल पर पड़नेवाली पानी की 'चर्रर्र' आवाज़ तो हर कोई सुन सकता है, परन्तु इस नमक के पानी की आवाज़ भला कोई क्योंकर सुन पाता? इस असीम दाहकता को केवल महाराज और कुलेश ही अनुभव कर सकते थे...जैसे कोई सारी देह में सैकड़ों सुइयाँ चुभा रहा हो। सारी देह जैसे अग्निकुण्ड बन गयी थी। क़ैदी यदि अपनी आँखें ज़ोर से भींचकर उस वेदना को दूर करना भी चाहते, तो आँखें भी तो कहाँ थीं? जिस प्रकार कौडिल्ला पक्षी क्षुब्ध

https://t.me/Sahityajunction

सरोवर के किनारे के वृक्ष पर बैठकर केवल उठनेवाली ऊँची-ऊँची लहरों को देखता है और शाखा पर बैठा-बैठा चोंच से पंखों को साफ करता रहता है, इसी प्रकार वे दोनों बन्दी शरीर की वेदनाओं को मन के किनारे पर बैठे शान्त रीति से अनुभव कर रहे थे।

तमाशबीनों का कोलाहल अब एकदम समाप्त हो गया—सामने खड़े दो क़ैदी अब असली शैतान से प्रतीत हो रहे थे उन्हें। इस सज़ा को अपनी आँखों से देखने के लिए यदि ख़ुद औरंगज़ेब भी सामने खड़ा होता, तो? तो यह निश्चय है कि वह सारी छावनी के सरदारों की 'ख़िलअती' पोशाक उतरवाकर मँगवा लेता और अवश्य ही वे सारे सम्मान-वस्त्र अत्यन्त सम्मानपूर्वक इन दो क़ैदियों पर कफ़न बनाकर ओढ़ा देने की आज्ञा दे डालता। उसने आज तक किसी को भी इतनी बुरी, इतनी दुर्गति भरी सज़ा नहीं दी थी—कभी नहीं दी थी।

तमाशबीनों के दिल भी अब दहल उठे थे। वे धीरे-धीरे वहाँ से खिसककर अपनी रावटियों की ओर जाने लगे। जल्लादों ने भी छुरे और चिलमचियाँ वहीं फेंक दीं और वे भी रफ़ूचक्कर हुए। बच रहा केवल इख़लास ख़ाँ। उसे अभी सजा की आख़िरी ज़िम्मेदारी पूरी करनी थी। वह यह कि जब क़ैदियों की जान निकल जाए, तो दो ताक़तवर जल्लादों को चुना जाए, जो तलवार के एक ही वार में क़ैदियों का सिर धड़ से जुदा कर डालें। फिर उन कटे हुए सिरों को भाले की नोक पर लटका लिया जाय और ढोल-ढमाके के बीच सारी छावनी में उन सिरों का 'बेइज्जती का जुलूस' निकाला जाय और अन्त में जंजीरों में बँधे हुए वे दो धड़ और भाले में खोंसे हुए वे दो सिर छावनी से कहीं दूर फेंक दिये जाएँ, ताकि गीदड़ और कुत्ते उन्हें नोच-नोचकर खा जाएँ। परन्तु... अभी वह वक़्त नहीं आया था; इख़लास ख़ाँ को इन्तज़ार करना ज़रूरी हो गया था।

इस भीषण यातनापूर्ण दण्ड के कारण स्वयं इख़लास ख़ाँ भी इतना थक चुका था कि उसे लगा, मानो वह भी किसी अदृश्य स्तम्भ के साथ बँधा हुआ है। वह उन दोनों बन्दियों की ओर एकटक देख रहा था। इस समय उसके आस-पास उसके निजी खिदमतगार दस-पाँच सिपाही खड़े थे। तभी उसके मन में क्या समाया, कौन जाने। वह धीरे-धीरे क़दम बढ़ाता हुआ महाराज के सामने आया। मराठों के उस बाग़ी सरदार के भीषण-भयावह रूप को उसने एक बार सिर से पैर तक देखा। इस समय इख़लास ख़ाँ की नज़र कुछ विचित्र-सी हो गयी थी, हमेशा दिखाई देनेवाली क्रूरता और घमण्ड नहीं था उन नज़रों में। महाराज के शरीर पर घूमती हुई उसकी नज़र उनकी छाती पर पड़ी हुई कौड़ियों की माला, 'भवानी माला' पर आकर ठहर गयी।

फिर उसने इतनी धीमी आवाज़ से कहा कि केवल सम्भाजी ही सुन सकें, "सूबेदार, दे डालो हमें यह चीज।" ऐसा कहकर उसने ख़ून, पसीना और नमक के पानी से भीगी हुई उस माला को हाथ लगाया।

"ऑ ऽ ऽऑ ऽ ऽ ऑ ऽ ऽ!" महाराज अब अपने मृतप्राय शरीर की समस्त शक्ति को संचित करके सारी देह ही झकझोरने लगे। इसी के साथ उनकी ग़रदन भी बुरी तरह हिल-हिलकर निषेध और विरोध का भाव प्रकट कर रही थी। सारा खम्भा जड़ से हिलने लगा।

इख़लास ख़ाँ जैसे आगे गया था, उसी तरह माला छोड़कर पीछे हट गया। आख़िर इख़लास ख़ाँ को उस माला की क्या आवश्यकता थी? क्या वह एक पहाड़ी सूरमा की यादगार के रूप में उसे सँभालकर रखना चाहता था? इसीलिए तो सारे शरीर को देखने के बाद उसे सँभालकर रखने योग्य केवल वह एक ही वस्तु दिखाई दी थी। परन्तु उधर क़ैदी तो तिलमिलाकर,

https://t.me/Sahityajunction

छटपटाकर कह रहा है—'ना-ना, इसे मत लेना।' इख़लास ख़ाँ भी क़ैदी की इस ख़्वाहिश को जान गया था।

फिर अचानक वह अपने सिपाहियों पर ही बरस पड़ा, "चले जाओ सब यहाँ से! तमाशा देखनेवाले नावकार छोकरे! क्यों रुके हो तुम यहाँ? जाओ, भाग जाओ यहाँ से!" इख़लास ख़ाँ कूदकर घोड़े पर बैठा और ख़ुद ही वहाँ से चला गया।

अब वहाँ शेष रह गये मराठा-साम्राज्य के छत्रपति राजा सम्भाजी और छन्दोगामात्य कवि कुलेश। उनके सिर पर था नीला आकाश, पैरों के नीचे थी वढू-बुद्रुक की, मावल-खण्ड की पुरातन धूलि। निकट ही इन्द्रायणी और भीमा एक-दूसरे से लिपट कर बही जा रही थीं। अब तो महाराज सम्भाजी का अपने ही मन से हो रहा वार्तालाप भी थम चुका था। अब मन में प्रारम्भ हो गयी थी— 'शिव' और 'जीव' के बीच प्रश्नोत्तरों की मन्द, शान्त शृंखला।

दोनों बन्दी अब दिन और रात्रि की सीमाओं से बहुत दूर पहुँच चुके थे। अब तो नमाज़ के लिए बजनेवाली नौबत और बाँग देनेवाले मुर्गों की ओर भी उनका ध्यान नहीं जाता था।

'राजा' कौन होता है? 'दण्ड भोगने वाला राजा' का क्या अर्थ है? आदि दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए अब सम्भाजी भोसले नामक मनुष्य का 'जीवात्मा' मन के नाते तोड़कर 'शिव' को पाने का प्रयत्न कर रहा था; अपने समस्त जीवन का हर कोना ढूँढ़ता-खोजता फिर रहा था।

'हमें जन्म देनेवाली माता कौन थी? उनका चेहरा भी हमें याद क्यों नहीं आता? हमें कभी भी ऐसा अनुभव क्यों न हुआ कि हम अन्धकार में से इस प्रकाशमय जगत् में आये हैं?' आबासाहब को भी अन्त समय में अवश्य ही अपनी माता की स्मृति आयी होगी! और...और यह भी निश्चित है कि चाहे औरंगज़ेब कितना ही पाषाण हृदय और महत्त्वाकांक्षी हो, पर उसे भी आख़िरी साँसें गिनते समय अवश्य ही अपनी माँ की याद आएगी। कौन थे आबासाहब? यह औरंगज़ेब कौन है?

आबासाहब थे इस मावल-खण्ड की मिट्टी से, इस पहाड़ी देश के पहाड़ों-घाटियों द्वारा उत्पन्न एक चैतन्यमय जीवन का उष्ण श्वास! जिसने निराश और हतोत्साहित लोगों को जीवन की उष्णता दी और उन्हें परिश्रमपूर्ण जीवन बिताने की प्रेरणा दी। यदि आबासाहब उत्पन्न ही न हुए होते, तो...तो औरंगज़ेब पर भी दक्खिन में आने की नौबत न आती!

आबासाहब जब हमसे पन्हालगढ़ में अन्तिम बार मिले थे, तो कितनी गहन अर्थपूर्ण बात कही थी उन्होंने! कहा था— 'आँख की पलक इतनी नन्ही-सी है, परन्तु वह एक तिनके को भी अपने भीतर आने नहीं देती। तुम तो युवराज हो—कल राजा बननेवाले हो। याद रखो, पहले मन मरता है, फिर मनुष्य का शरीर मरता है! राजा मत बनो, केवल सच्चा मावला सैनिक बनो।' इन बोलों के याद आते ही सम्भाजी के मुख से एक लम्बी आह निकल गयी—एक मावले सैनिक की आह। कभी ऐसी ही लम्बी उसाँस आबासाहब के वे बोल सुनकर भी निकली थी।

कौन है भला यह औरंगज़ेब? हमारा मन खण्ड-खण्ड हो जाए, ऐसा कठोर प्राणान्तक दण्ड दिया है उसने हमें! अब बूढ़ा हो गया है, परन्तु उसका मन पहले की तरह ऐंठबाज़ है। कौन है यह मनुष्य, जो सारे हिन्दुस्तान को इस्लाम क़बूल कराने निकला है? जो मनुष्यता को फूँक मारकर

https://t.me/Sahityajunction

बुझाने निकला है, कौन है यह? उस आदमी को अब इसी समय यदि उस ताजमहल के सामने खड़ा कर दिया जाय कि जिसे ख़ुद उसके पिता ने बनवाया है, तो क्या होगा? तो अवश्य ही यह होगा कि उस बेटे की नज़र रूपी बिजली ज्यों ही उस ख़ूबसूरत क़बर पर पड़ेगी, तो वह सफ़ेद क़बर भी ज़रूर काली-कलूटी बन जाएगी।

नहीं-नहीं। आबासाहब और औरंगज़ेब की तुलना भी सम्भव नहीं है। आबासाहब क्या थे, इसे न हमने जाना, न ही रायगढ़ के सातमहल की निवासिनी रानियों ने जाना! आबासाहब को यदि पहचाना है, तो केवल तीन व्यक्तियों ने—एक बड़ी आऊसाहिबा जिजाऊ ने, दूसरे समर्थगुरु रामदास ने और...और तीसरे औरंगज़ेब ने!

इन तीनों में हम कौन हैं? बड़ी आऊसाहिबा और समर्थगुरु की दृष्टि में हम केवल आबासाहब की छाया मात्र हैं। और औरंगज़ेब की दृष्टि में हम क्या हैं? सम्भवतः हम हैं एक दर्पण मात्र, जिसमें झाँककर औरंगज़ेब आबासाहब को जान सकेगा। क्या हिन्दुस्तान का वह बादशाह हमारे शरीर-रूपी दर्पण में देखकर आबासाहब का वास्तविक व्यक्तित्व पहचान पाएगा? आज हमारे स्थान पर यदि उसका ही कोई शहज़ादा बँधा होता तो?

हमारे कोंडाजी, सेनापति हम्बीरराव, म्हलोजी बाबा जब इस जगत को त्याग गये, तो हमें क्यों ऐसा अनुभव हुआ था कि मानो हमारा एक अवयव ही कटकर गिर पड़ा हो? निलोपन्त, खण्डोजी, रामचन्द्रपन्त, हरजीराजा, रूपाजी, विठोजी चव्हाण, मानाजी मोरे आदि सरदारों ने अपने प्राणों को दाँव पर लगाया था हमारे लिए। क्यों वे खपते रहे हमारे लिए? इतने दूर देश से आकर कुलेश भी हमारे लिए अपने प्राणों की समिधा क्यों बनाते रहे? क्या इसलिए कि हम राजा थे? नहीं, नहीं, कदापि नहीं।

झूठ है कि मनुष्य केवल रोटी के टुकड़ों के लिए अपने बनते हैं। जो लोग जान हथेली पर लिये फिरते हैं और प्राणों को न्यौछावर कर देते हैं, वे व्यर्थ में नहीं गँवाते अपने प्राण। जिन लोगों ने आबासाहब द्वारा स्थापित इस राज्य के लिए, दीन-दुःखी प्रजाजनों के कल्याण के लिए, इस राज्य की सुरक्षा एवं वृद्धि के लिए हमारा साथ निभाया है, इस समय भी उनकी स्मृति आते ही हमारी छाती अभिमान से भर उठती है। और जो विद्रोही बनकर पीठ मोड़ बैठे, उनके किये पर हमें यत्किंचित् भी दुःख नहीं है।

सच ही तो है, राजा तो उपभोगों से वंचित स्वामी होता है और अब जो हम हैं, वह राजा कौन होता है? कई षड्यन्त्रों से पार उतरते हुए, अपनों द्वारा विश्वासघात पाये हुए, औरंगज़ेब जैसे क्रूर-कठोर व्यक्ति के पंजे में फँसे हुए हम जो आज हैं, वह राजा का कौन-सा रूप है? दण्ड भोगनेवाला राजा कैसा राजा है यह?

हाँ, दण्ड भोगनेवाला राजा भी होता है। परन्तु वह दण्ड का 'स्वामी' नहीं, 'सेवक' होता है। भूतकाल में उसने राजा होते हुए भी क्या कम वेदनाएँ सहन की होती हैं? यह अन्तिम दण्ड भोगनेवाला राजा है एक सेनापति, जिसने जीवनभर भी वेदनाओं को भोगा है—सहा है। और वही 'सेवक' भी है, वेदनाओं को सहनेवाला अन्तिम सेवक!

इस विचार के मन में आते ही महाराज को असीम सन्तोष हुआ। कितना कृतकृत्य अनुभव किया उन्होंने स्वयं को!

वढू गाँव के परिसर में सन्ध्या धीरे-धीरे उतरने लगी। परन्तु दोनों बन्दियों को दोपहर अथवा

https://t.me/Sahityajunction

सन्ध्याकाल की अनुभूति थी ही कहाँ! दोनों सूरमा जान गये थे कि जीवन की दौड़-धूप का अन्तिम पड़ाव अब आ रहा है—निकट आ पहुँचा है। हाथ, पैर, आँख, जीभ आदि इन्द्रिय-रूपी घोड़ों के मुख से अब झाग निकल रही है, थक चुके हैं ये अश्व! अब तो इन्हें एड़ लगाने की भी इच्छा नहीं होती।

मावल-खण्ड के सूर्य की गगन विहारिणी किरणें दिनभर विस्तीर्ण आकाश में दौड़-भागकर थक चुकी थीं : इन्द्रायणी और भीमा नदियाँ उन्हें वात्सल्य भाव से अपनी छाती से लगाकर लहरों के हाथों से उन थकी-माँदी किरणों की पीठ सहला रही थीं—प्यार से, दुलार से।

जिस दिन महाराज और कुलेश की जीभ और आँखें निकाली गयी थीं, उस दिन से लेकर आज बारहवाँ दिन था। अपार यातनाएँ भोगकर छन्दोगामात्य कुलेश के प्राण-पखेरू गत रात्रि के मध्यकाल के किसी क्षण में बसेरा त्यागकर उड़ चुके थे। मृत्यु से पूर्व उन्होंने 'प्रणाम हो स्वामी,' कहने के लिए उच्च स्वर से 'ऑ ऽऽ ऑऽऽ' ध्वनि की थी। उस विचित्र ध्वनि के कारण वहाँ पहरा देनेवाले पहरेदार भी अचानक चौंक उठे थे।

'ऑऽऽ ऑऽऽ' की ध्वनि द्वारा ही महाराज ने भी उनकी पुकार का उत्तर दिया था। इसके बाद भी महाराज बहुत देर तक 'ऑऽऽ ऑऽऽ' करते रहे, परन्तु छन्दोगामात्य अब उस लोक में प्रविष्ट हो चुके थे, जहाँ पहुँचकर कोई उत्तर नहीं दे सकता।

कवि की आत्मा 'परमात्मा' में विलीन हो गयी थी। कविता का एक छन्द उस अनन्त महाकाव्य से जा मिला था। उस महाकाव्य से मिलकर एकरूप हो चुका था।

बारहवाँ दिन! महाराज सम्भाजी को यह ज्ञात न था कि उनके आबासाहब भी जब रुग्ण होकर शय्या पर पड़े थे, तो ठीक बारहवें दिन वे अनन्त ब्रह्म में लीन हो गये थे। उस बारहवें दिन आबासाहब के पद-नख से लेकर सिर के केशों तक एक-एक अवयव ठण्डा होता चला गया था।

आज यह क्या हो रहा है हमें? गत दस-बारह दिनों में कभी ऐसा नहीं हुआ! प्रत्येक अवयव में यह कैसी दाहकता फैल रही है?

बड़े महाराज ने—आबासाहब ने मावल-खण्ड के हर बच्चे-बूढ़े को बल देकर, भुजा उठा-उठाकर समझाया था कि जीवन का अर्थ क्या है—मनुष्य जिये तो कैसे जिये। आज छोटे महाराज इस जग से विदा होते समय यह अर्थ स्पष्ट कर रहे हैं कि अवसर आ पड़ने पर यहाँ के हर व्यक्ति को मृत्यु का सामना किस प्रकार करना चाहिए। मनुष्य मरे भी, तो यों मरे।

'शिव' अब 'जीव' के दृष्टि-पथ में आ चुका था। उनका 'जीव' अब समर्थगुरु रामदास की उस कविता के प्रत्येक शब्द को सम्मुख देख रहा था, जो समर्थगुरु ने आबासाहब के देहावसान के बाद लिख भेजी थी।

समर्थगुरु ने राजनीति को धर्म के माध्यम से समुचित मार्ग पर चलाया था और आबासाहब ने राजनीति की व्यस्तता के बीच भी धर्म को क्रियान्वित किया था। दोनों ने एक-दूसरे को कितनी उत्तम रीति से जाना-समझा था!

'जीवन को तुम तृणवत् जानी...' समर्थगुरु के पत्र में लिखित हितोपदेश के ये वचन अब

https://t.me/Sahityajunction

महाराज के कानों में...नहीं, नहीं, सारी देह में गूँज रहे थे।

अगले क्षण उन्हें आभास होने लगा, मानो सम्पूर्ण मराठा-साम्राज्य ही नृत्य-गानमय कीर्तन के लिए सुसज्जित एक मन्दिर का प्रांगण बन गया है। हम्बीरराव, खण्डोजी, निलोपन्त, बहिर्जी, कोंडाजी फर्ज़न्द, म्हलोजी बाबा, कृष्णाजी कंक, रामचन्द्रपन्त, कुलेश आदि अनेक जीवित अथवा मृत व्यक्ति देवी के कीर्तनकार बन गये हैं। नृत्य-गानमय कीर्तन के समय की विशेष वेशभूषा धारण करके ये सब हाथों में एकतारा और ढोल लेकर नेत्र बन्द करके देवी का जय-जयकार कर रहे हैं, 'जय हो अम्बे की, जय हो, जय हो।' ओह कितना भव्य, कितना सुन्दर कीर्तन है यह भी! हमने इससे पूर्व कभी नहीं देखा ऐसा कीर्तन! वह देखो, सब सम्मानित श्रेष्ठजनों के सारे माथे पर कुंकुम का कितना बड़ा लेप किया हुआ है? वह देवी तुलजा भवानी क्यों नहीं दिखलाई देती? यह सब कैसा चमत्कार है? अथवा क्या यह भ्रान्ति हो रही है हमें?

यह सामने क्या है? हाँ, हाँ—जगदम्बा की मूर्ति है यह तो। बस केवल उसका मुख बड़ी आऊसाहिबा के समान है। उसके दो नेत्रों के स्थान पर हैं आबासाहब और समर्थगुरु रामदास। जगदम्बा के कुंकुम की आड़ी दो रेखाओं के बीच हमें ये दो कौन दिखलाई दे रही हैं?...हाँ, ये हैं हमारी श्रीसखी और राजाराम की पत्नी ताराऊ। पीछे खड़े हैं भाई राजाराम—उनके माथे पर हल्दी-रोली का बड़ा-सा लेप है...। पर...परन्तु यह क्या हो रहा है? इन सबके बीच नहीं हैं तो केवल हम। इस विराटरूपिणी जगदम्बा की मूर्ति में हम कहीं पर क्यों नहीं दिखलाई देते? क्यों? क्यों?

फिर अगले क्षण ही राजा सम्भाजी को अपने सम्मुख हो रहे उस विराट भव्य कीर्तन के बीच अपनी जीवन-ज्योति का स्पष्ट, सरस तथा सम्मानपूर्ण स्थान दिखलाई पड़ने लगा। चित्र-विचित्र रंगों से युक्त विस्तीर्ण आकाश जिस प्रकार सूर्य के तेजमय बिम्ब को अतीव सन्तुष्ट मन से, सम्मोहित-सा होकर एकटक निहार रहा हो, इसी प्रकार राजा 'शम्भुजी' के शरीर के समस्त अवयव उस जीव-ज्योति को सन्तोष से, समाधानपूर्वक केवल निरख रहे थे। देह के पास नेत्र न थे, तथापि भाव-नेत्रों से ही वे अंग-प्रत्यंग उस 'आत्म-ज्योति' को निरख रहे थे।

वह आत्म-ज्योति 'राजा सम्भाजी शिवाजी भोसले' नहीं थी—। वह ज्योति उस उन्मत्त युवक से ही नितान्त भिन्न थी जो युवक कभी विवशता का मारा होकर, निर्बन्ध होकर दौड़ पड़ा था और दिलेर ख़ाँ के दल से जा मिला था।

वह ज्योति न 'छत्रपति' थी, न थी किसी की 'स्वामी' और न थी किसी की 'मालिक'। 'छत्रपति', 'स्वामी', 'मालिक'—इन सम्बोधनों से वह मुक्त हो चुकी थी।

वह किसी का 'सुहाग' नहीं थी, किसी का 'आबा' नहीं थी, किसी का 'भाई' भी नहीं थी।

अब वह जीव-ज्योति मानवीय, आत्मीय सम्बन्धों से सर्वथा पृथक् हो चुकी थी। वह धन-धाम-धरा से भी मुक्त हो चुकी थी।

'क्षत्रिय-कुलावतंस, सकलगुणालंकृत, अखण्ड लक्ष्मी अलंकृत गोब्राह्मण प्रतिपालक श्रीमन्हाराज राजा शम्भु'—अनेक वर्षों तक इस विरदावली को वे धारण किये रहे। आज इन सब पदवियों को उनके बहते हुए रक्त ने कभी का धो डाला था।

अब उन्हें दिखलाई देने लगी एक भव्य प्रकाशमय ज्योति, वायु से काँपती हुई, भूमि से ऊँचे

https://t.me/Sahityajunction

गगन तक फैली हुई।

ज्योति ज्योति से पूछ रही थी—'कैसा रूप है यह?'

'कैसा? कैसा? कैसा?' ध्वनि-प्रतिध्वनि गूँजने लगी। उच्च घण्टानाद शिवालय के गर्भगृह में गूँज उठा। इकतारे और ढोल की ध्वनि अत्युच्च हो उठी। कोई हल्दी-रोली को मुट्ठी में भर-भरकर उछाल रहा था—सारा आकाश पीला-लाल हो उठा था।

'कैसा रूप है इस ज्योति का?'

पाँचों इन्द्रियों ने उस ज्योति को अब अपने भीतर खींच लिया था। अब वह जीव-ज्योति बन गयी थी। पाँच बटोंवाली एक पूजा की वस्त्र-ज्योति, जो माँ जगदम्बा की उस भव्य कीर्तन-मण्डली के बीच जल रही थी—वायु से कम्पायमान हो रही थी।

सन्ताजी और धनाजी उस वस्त्र-ज्योति को हाथ में लिये नाच रहे हैं...। वही वस्त्र-ज्योति उनके हाथों से अब दूसरों के हाथों में पहुँच जाती है—सभी नाचते हैं उस वस्त्र-ज्योति को हाथ में लेकर। झूमते हैं...डोलते हैं।

पाँच बटोंवाली वस्त्र-ज्योति थी वह जगदम्बा की। एक क्षण उस वस्त्र-ज्योति ने अपने से ही प्रश्न पूछा, 'जीवन को तुम तृणवत् जानो।' पुनः स्वयं ही उसने उत्तर भी दिया—'समर्थगुरु! तृण को भी जल जाने का भय होता है। हमें तो इस काल वह भी नहीं है।'

वह वस्त्र-ज्योति पूजा की महिमा सुन रही थी :

'पंचेन्द्रिय निर्मित यह जीव—
वस्त्र-ज्योति है पाँच बटों की।
तीन गुणों से बँटी गयी है,
वस्त्र-ज्योति यह जीव—प्राण की।'

जिस प्रकार कोई कानों से कर्णाभूषण उतार फेंकता है, उसी प्रकार उस वस्त्र-ज्योति ने त्रिगुणों को कभी का छोड़ दिया था। वस्त्र-ज्योति अब कुछ भी देखने में असमर्थ हो चुकी थी। यदि उसे दीखता था तो केवल इन्द्रायणी और भीमा का संगम।

इद्रायणी का यही तो वह पावन तट है, जहाँ बैठकर सन्त ज्ञानेश्वर ने विट्ठल देवता के भक्तों को स्वलिखित महाकाव्य 'ज्ञानेश्वरी'—मराठी की 'गीता' सुनायी थी। सन्त तुकाराम ने अपने काव्य 'अभंग-गाथा' की रचना इसी के तट पर बैठकर ही तो की थी। हमारे शरीर से जो रक्त यहाँ प्रवाहित हुआ है, इसी तट पर उस रक्त से लिखी जा रही है एक 'राजगाथा'।

वस्त्र-ज्योति फहरने-काँपने लगी। औरंगज़ेब के आदेश से बधिकों द्वारा छिन्न-भिन्न की गयी वह देह छोड़कर अब 'शम्भु' प्रस्थान करने लगा।

सम्मुख बह रही इन्द्रायणी और भीमा के पावन संगम में वह वस्त्र-ज्योति डूबने लगी। डूबते समय भी मन्त्र गान कर रही थी वह—'जगदम्बे, हे जगदम्बे।'

वस्त्र-ज्योति जल में डूब गयी।...बुझ गयी। जगदम्बा की उस वस्त्र-ज्योति को हृदय में बिठाकर सरल धारावाली उन नदियों ने भी आज अपनी ग्रीवा घुमा ली थी और तट पर बने हुए उन स्तम्भों की ओर देखती हुई वे मन्द गति से आगे बढ़ती जा रही थीं।

https://t.me/Sahityajunction

उन्हें दिखलाई दे रहा था कि 'शम्भु' की ग्रीवा एक ओर लटक रही है। रक्त से सिंचित तथापि अति प्रभामयी यह कौन-सी वस्तु है—'शम्भु-देह' के वक्षस्थल पर? इन्द्रायणी और भीमा ने देखा—वह थी चौंसठ कौड़ियों की माला—केवल एक भवानी माला!

❑❑❑

https://t.me/Sahityajunction

https://t.me/Sahityajunction

ज्ञानपीठ पेपरबैक

छावा

छत्रपति शिवाजी के पुत्र सम्भाजी के जीवन-संघर्ष का अद्भुत एवं रोमांचकारी चित्रण करनेवाला ऐतिहासिक उपन्यास। दुर्लभ एवं प्रामाणिक शोध-सामग्री पर आधारित एक सशक्त कृति।

शिवाजी सावंत

मराठी के सशक्त कथा-शिल्पी। जन्म : 31 अगस्त 1940 को आजरा, जिला कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में।

प्रकाशन : 'मृत्युंजय' (महाभारत के कर्ण के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास), 'छावा' (छत्रपति शिवाजी के पुत्र सम्भाजी के जीवन-संघर्ष पर आधारित उपन्यास), 'युगन्धर' (युगपुरुष श्रीकृष्ण के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास) तथा 'संघर्ष' (नाटक), लढत (जीवनी), शोलका साज (ललित निबन्ध) आदि। भारतीय ज्ञानपीठ के 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' सहित अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

18 सितम्बर, 2002 को मडगाँव (गोवा) में देहावसान।

भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003
संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन

https://t.me/Sahityajunction